पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण

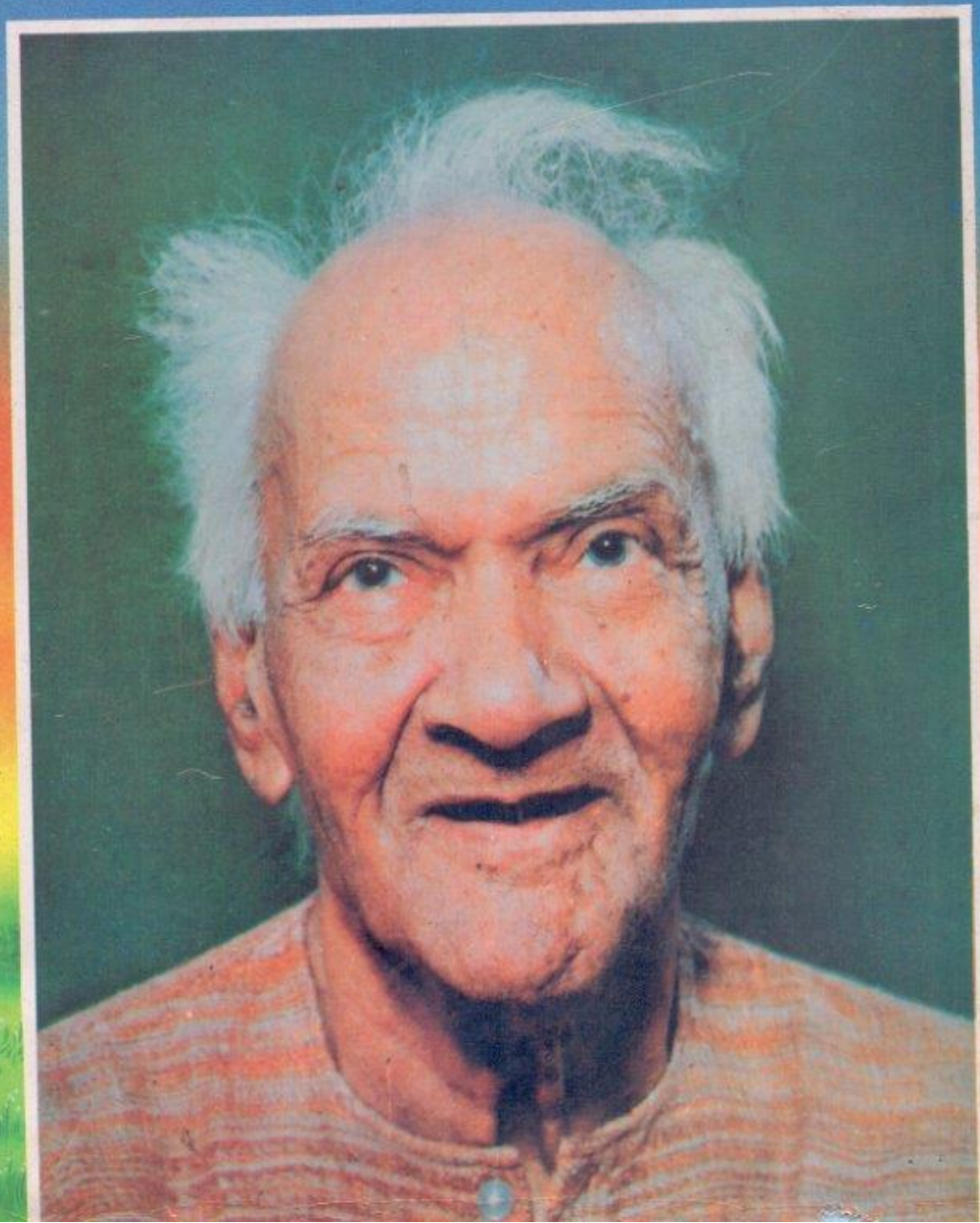

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण

सम्पादक
ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक :

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा-२८१ ००३

© सर्वाधिकार सुरक्षित

द्वितीय संस्करण १९९८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

मूल्य १२५)

मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ।।

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ।।

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ।।

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ।।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूमिका

आज के बालक ही कल के विश्व के, इक्कीसवीं सदी के नागरिक होंगे। उनका निर्माण उनकी परिपक्व आयु उपलब्ध होने पर नहीं, बाल्यकाल में ही संभव है, जब उनमें संस्कारों का समावेश किया जाता है। संतानोत्पादन के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण उपक्रम है उन्हें बड़ा करना, उन्हें शिक्षा व विद्या दोनों देना तथा संस्कारों से अनुप्राणित कर उनके समग्र विकास को गतिशील बनाना। सद्‌गुणों की सम्पत्ति ही वह निधि है जो बालकों का सही निर्माण कर सकती है। इसी धुरी पर वाङ्मय का यह खण्ड केन्द्रित है।

परमपूज्य गुरुदेव लिखते हैं कि अन्यान्य पशु, जीव-जन्तु आदि प्रकृति प्रेरणा से ही अपना विकास कर वैसा जीवन जीने लगते हैं जैसा कि शिश्नोदर परायण होने के नाते उन्हें जीना चाहिए। भ्रूण से विकसित होते ही जल की मछली अपना भोजन अपने आप ढूँढ़ लेती है, कुत्ते अपना ठिकाना जमा लेते हैं किंतु अभागे इनसान के बच्चे में इतनी बुद्धि नहीं होती कि वह पास लेटी माँ के स्तन को ढूँढ़ कर अपनी क्षुधा-तृप्ति कर सके। वह तो मात्र रोना जानता है। गीली मिट्टी की तरह वह बच्चा जिस साँचे में ढाला जाएगा, ढलता चला जाता है। बच्चा निश्चित ही कुछ संस्कारों को पूर्व जन्म की संचित निधि के रूप में साथ लाता है, फिर भी उसका विकास बहुत अधिक माता-पिता, शिक्षक, गुरु एवं वातावरण पर निर्भर करता है। उपेक्षा और उदासीनता के द्वारा जिस प्रकार बच्चों को क्रूर एवं निकम्मा बनाया जाता है, उसी प्रकार प्रयत्न और भावनापूर्वक उन्हें तेजस्वी और मनस्वी भी बनाया जा सकता है, प्राचीनकाल में यही व्यवस्था थी। प्यार के साथ सुधार की, तप-तितीक्षा-योगाभ्यास की व्यवस्था बनी रहने से एक समग्र व्यक्तित्व विकसित होता था। दुर्भाग्य से अपने देश से वह वातावरण गुरुकुलों, आश्रमों, आरण्यकों के समापन के साथ ही समाप्त होता चला गया, इसीलिए आज हमारी संतति निस्तेज, खोखली होती चली जा रही है। यह हमारी उपेक्षा, वातावरण की विषाक्तता एवं सांस्कृतिक मूल्यों को भूल जाने का ही परिणाम है। भोगवाद की दौड़ में हमने संततियों की उपेक्षा की है, उसी का परिणाम आज भोग रहे हैं।

बालक-बालिकाओं के निर्माण में माता का अंश अधिक होता है। पिता तो बिन्दु मात्र का सहयोगी होता है, शेष रचना तो माता करती है। नौ माह तक वह अपने गर्भ में अपने जीवन तत्व से उसे पालती और जन्म के बाद भी स्तनों द्वारा अपना जीवन तत्व पिलाकर अनेक वर्षों तक उसे पालती है। जब तक उसके शरीर व चेतना का विकास नहीं हुआ होता है, वह माता पर ही निर्भर होता है। भविष्य का सारा स्वरूप गर्भावस्था से किशोरावस्था तक दिए गए शिक्षण के अनुसार ही निर्धारित होता है। वस्तुतः माता जिस तरह के संकल्प और विचार बच्चे में पैदा करती है, वैसी ही उसमें ग्रहणशीलता का आविर्भाव हो जाता है और बाद में उसी तरह के तत्व वह संसार में ढूँढ़ कर अपने संस्कारजन्य गुणों में वृद्धि करता चला जाता है। संस्कारवान माताएँ बच्चों के चरित्र की नींव बाल्यावस्था में डालती हैं, जबकि उन्हें दिग्भ्रान्त कर आचरणहीन बनाने में भी प्रमुखतः हाथ उन्हीं का होता है।

शिशु-अवस्था वस्तुतः कोरे कागज के समान है। इस कोरे कागज पर चाहे काली स्याही से लिख दें अथवा रंगीन कलाकृति ढाल दें। बालक वस्तुतः उस रूप में ढलता चला जाता है जैसा वह बड़ों को, औरों को करते देखता है। माँ के साथ वह पिता, मित्रों, परिवेश, अपने शिक्षकों को देखता है व उनके आचरण के अनुरूप ही ढलता चला जाता है। परमपूज्य गुरुदेव इस नाजुक अवस्था का विशद् विवेचन कर मनोवैज्ञानिक आधार पर यह प्रतिपादन करने का प्रयास करते हैं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org
कि यदि इस समय का सही उपयोग कर संस्कारों की गहरी छाप डाली जा सके तो जैसा हम चाहते हैं, वैसा ही नागरिक ढाला जा सकना संभव है। पूज्यवर लिखते हैं कि प्रेम, प्रोत्साहन, सम्मान तथा सुरक्षा की आवश्यकता बड़ों से अधिक बच्चों को है। एक अनचाहा, उपेक्षित बच्चा एक रोगी व समस्यापूर्ण बच्चा ही नहीं, अपराधी भी बन सकता है। मात्र थोड़े से स्नेह व दुलार-सुधार की समन्वित नीति से बच्चों को वह दिशा दी जा सकती है जिससे वे राष्ट्र के एक जिम्मेदार नागरिक बन सकें।

वाङ्मय के इस खण्ड में अनेकानेक उदाहरणों के साथ माता-पिता, वातावरण एवं शिक्षा-दीक्षा से बालकों के विकास की प्रक्रिया का विवेचन अनेकानेक प्रतिपादनों के साथ प्रस्तुत किया गया है। बाल मनोविज्ञान पर पूज्यवर की बड़ी गहरी पकड़ दिखाई देती है एवं जन्म से पूर्व से लेकर किशोरावस्था तक के विकास के एक भी पक्ष को उनने छोड़ा नहीं है। निश्चित ही समाज एवं राष्ट्र के नवनिर्माण के विषय में चिन्तित रहने वालों के लिए यह वाङ्मय का खण्ड एक बहुमूल्य सामग्री का प्रस्तुतीकरण कर उनका सही मार्गदर्शन करेगा।

सबसे विलक्षण पक्ष तो इसका यह है कि इसमें सभ्यता एवं संस्कृति के समन्वित विकास का बड़ा ही व्यावहारिक प्रस्तुतीकरण है। सभ्यता की दृष्टि से बहिरंग जीवन में कैसा व्यवहार बालकों का होना चाहिए- शालीनता, सुव्यवस्था, समय की पाबंदी, नागरिकों नियमों का पालन, सहकारिता आदि सद्गुणों को किस कुशलता के साथ बच्चों के जीवन में प्रविष्ट कराया जाय इसका आमूलचूल शिक्षण इस खण्ड में उपलब्ध है। सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से बच्चों में जिज्ञासा की सहज वृत्ति का समाधान, संवेदनशीलता का जागरण व व्यावहारिक नियोजन, सहृदयता-परमार्थ-परायणता-आस्तिकता, बड़ों के प्रति सम्मान व कृतज्ञता आदि सत्प्रवृत्तियों के दैनन्दिन जीवन में समावेश का बिन्दुवार शिक्षण परिजन इसमें पा सकते हैं।

यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि राष्ट्र का आधार है समर्थ सशक्त भावी पीढ़ी, जो संस्कारवान हो। आज के आस्था-संकट व सांस्कृतिक प्रदूषण के युग में यह एक अनिवार्य आवश्यकता है कि भौतिक विकास के साथ-साथ बालकों के भावनात्मक नवनिर्माण व सर्वांगीण विकास पर भी समान रूप से ध्यान दिया जाय। उस संबंध में क्या किया जाय, कैसे किया जाय, यह समग्र मार्गदर्शन वाङ्मय के इस खण्ड में मिलता है।

-ब्रह्मवर्चस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है। परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है। परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी माँ शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही हैं। उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया। आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं हैं किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानीकणों के वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देखा सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये। इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबोकर लिखा गया हो। हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता, मन को व विचारों को बदलता चला जाता है। लाखों-करोड़ों के मनों के अन्तःस्तल को छूकर उसने उनका कायाकल्प कर दिया। रूसो के प्रजातंत्र की, कार्लमार्क्स के साम्यवाद की क्रान्ति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है। उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्बोधन से एक विराट् गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े करते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाये, कैसे छन्दबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर, १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पन्द्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता। वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आस-पास के, दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंतःकरण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था। साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा। जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे, छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे। किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुतः अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी। जाति-पाँति का कोई भेद नहीं। जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला

की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवा कर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा। उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किंतु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभासम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजास्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में सम्पन्न क्रिया-कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषिसत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष्य के चौबीस महापुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रान्ति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक-दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था, जिसमें भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि- ''प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरुसत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गईं- संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।''

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने ताड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख-सुनकर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद

पैदल लम्बा रास्ता पार कर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल भी गये। छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई। जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अँग्रेजी सीखकर लौटे। आसनसोल जेल में वे श्री जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मदनमोहन मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से, मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना। यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान, बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जनआक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रान्तिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था। नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं। बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये। जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा झीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्तजी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्यमंत्री श्रीगोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधीजी के समक्ष पेश किये गये। बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए। कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुंज में सम्मानित किया। उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधानमंत्री राहत फण्ड के नाम समर्पित कर दीं। वैरागी जीवन का सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरू हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये। सांस्कृतिक, आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्रीकृष्णदत्तपालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रहकर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया। प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर- घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदयस्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ। स्थान बदला, आगरा से मथुरा आ गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे। पुस्तकों

का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अन्तःस्तल को छूने की प्रक्रिया चालू रही। साथ देने आ गयीं परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भावभरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुःखी था- पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रान्ति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि-विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परमवंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५७ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्त्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देशभर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की रचना गायंत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनने महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूलथाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञानसम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तप-पूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों के द्वारा विचार क्रान्ति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों को विशेष कार्य-भार सौंप परमवंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया-पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्तन, संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के

अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक, साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य, प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी-बूटी, यज्ञ विज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना, मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञानसम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का, एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युगशिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता व आस्तिकता संवर्धन एवं जन-जाग्रति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञासंस्थान, शक्तिपीठ, प्रज्ञामण्डल, स्वाध्याय-मण्डल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया-कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तपसाधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया-कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून, १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी को दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट-आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देवसंस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नवनिर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरुसत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युग संधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेध महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नवनिर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रान्ति ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर, १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद, दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु सम्पन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९५ में कार्त्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी गई। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो एक सौ आठ खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हुआ। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जाएँगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़-चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है। ❑❑❑

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
अध्याय-१	
सुसंतति-निर्माण का शुभारम्भ कहाँ से और कैसे हो ?	**१.१**
चरित्रवान माता-पिता ही सुसंस्कृत संतान बनाते हैं	१.१
शिशु-निर्माण माता के गर्भ में	१.२
शिशु का निर्माण गर्भावस्था से	१.३
औषधि अवघ्राण	१.६
आश्वास्तना	१.७
चरु प्रदान	१.८
सद्भाव एवं शुभकामना संचय	१.९
गर्भ में बालक का विकास	१.१०
गर्भस्थ शिशु का पोषण	१.११
गर्भवती स्त्री की सावधानियाँ	१.१२
गर्भवती की परिचर्या	१.१५
पारिवारिक वातावरण और गर्भिणी के प्रति उनका कर्तव्य	१.१६
गर्भिणी की इच्छाओं की पूर्ति	१.१८
वंशानुक्रम तथा वातावरण का प्रभाव	१.१९
नामकरण संस्कार	१.२१
नामकरण संस्कार का उद्देश्य	१.२१
अन्नप्राशन संस्कार	१.२३
विद्यारम्भ संस्कार	१.२६
बच्चे की प्रारम्भिक देखभाल	१.२८
शिशुओं के साथ सावधानी बरतें	१.३१
छोटे बालकों की स्वास्थ्य समस्याएँ	१.३३
बालकों को स्वस्थ बनाइए	१.३४
छोटे बच्चे रोते क्यों हैं	१.३६
बच्चों को दूध पिलाने का महत्व ठीक से समझें	१.३८
भावी पीढ़ी को इस अमृत से वंचित न करें	१.४०
डिब्बे का नहीं, माँ का दूध पिलाएँ	१.४२
माताएँ शिशुओं को स्तनपान क्राने में संकोच न करें	१.४३
माँ का दूध-अमृत समान	१.४७
स्तनपान बच्चे के स्वास्थ्य का वरदान	१.४८
दुग्धपान बनाम पयपान	१.४९
सन्तान के व्यक्तित्व का आरम्भ	१.५२
बच्चों के सुशिक्षण का शुभारम्भ	१.५४
सांस्कृतिक उत्थान की नींव बाल-उत्थान	१.५५
शिशु को आहार और सहयोग ही नहीं स्नेह भी चाहिए	१.५७
शैशव का विकास-क्रम	१.५९
प्रजनन-एक आमन्त्रित संकट	१.६३
आमन्त्रितों को दुर्दशा के गर्त में न धकेलें	१.६४
संतान को सुसंस्कारवान भी बनाएँ	१.६६
भावी पीढ़ी की चिन्ताजनक स्थिति	१.६८
हम कहते हैं कि हम बुद्धिमान हैं	१.६९
भावी पीढ़ी का निर्माण यों कीजिए	१.७०
बच्चों का नैतिक विकास	१.७२
बच्चों का निर्माण वाणी से नहीं, आचरण से किया जाए	१.७८
पहले अभिभावकों को ही शालीनता का पाठ पढ़ना पड़ेगा	१.७९
बाल मनोविज्ञान को समझें, उन्हें सही दिशा दें	१.८०
बच्चों को कहानियाँ सुनाइए	१.८१
कथा-कहानियों का महत्व समझें	१.८५
बच्चों को कहानियाँ ऐसे सुनाएँ	१.८६
हारिये न हिम्मत	१.९१
मनुष्य मात्र एक कोरा कागज है	१.९५
नन्हें शिशुओं की प्रकृति का अध्ययन कीजिए	१.९५
बच्चों के सद्गुण जगाये और बढ़ाये जाएँ	१.९७
बच्चों का निर्माण-आवश्यक सावधानियाँ	१.९९
बच्चों का निर्माण उपदेश से नहीं आचरण से	१.१०१
बालकों के निर्माण में अभिभावकों के उत्तरदायित्व	१.१०३
बच्चे ऐसे सुधारे जाते हैं	१.१०४

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
बाल-निर्माण में अभिभावकों का योगदान	१.१०५
माँ के दिए संस्कार सफल हुए	१.१०६
अभिभावक अपना कर्तव्य समझें और निवाहें	१.१०८
एक्टिंग कैसी रही ?	१.१०९
बच्चों का पालन-पोषण कैसे करें ?	१.११०
निर्दयता का दुष्परिणाम भी नृशंस ही	१.११२
नवनिर्माण में नारी का योगदान आवश्यक	१.११२
बच्चों को आत्महीनता के दोष से बचायें	१.११४
बालकों में चौरवृत्ति न आने दें	१.११५
बच्चे जन्म से अपराधी नहीं होते	१.११६
बच्चे अपराधी क्यों बनते हैं ?	१.११८
बालकों को अपराधी बनाने वाला-अपराधी समाज	१.१२०
बढ़ते हुए बाल अपराध	१.१२१
बाल अपराध बढ़े तो राष्ट्र गिर जाएगा	१.१२२
बालकों में अपराध-वृत्ति और उसके कारण	१.१२४
बाल अपराध-कारण और निवारण	१.१२८
बच्चों का सुधार कैसे हो ?	१.१३०
बालकों को रचनात्मक ढंग से सुधारें	१.१३१
बच्चों की दण्ड व्यवस्था	१.१३२
क्या दण्ड से बच्चे सुधरते हैं?	१.१३५
समझाने से काम न चले तो ही प्रताड़ना की जाए	१.१३६
बच्चों को प्रताड़ना नहीं, प्रेरणा की जरूरत है	१.१३७
बच्चों को प्रेम से सुधारिए	१.१३८
बच्चे चाहते क्या हैं ?	१.१४०
बच्चे घर छोड़कर क्यों भागते हैं ?	१.१४३
बच्चों का घर से मोह भंग क्यों होता है ?	१.१४५
बच्चों का घर से पलायन-एक घातक सामाजिक रोग	१.१४६
अध्याय-२	
बालकों की शिक्षा ही नहीं, दीक्षा भी आवश्यक है	**२.१**
बच्चों को स्कूल ऐसे भेजें	२.१
बच्चों को स्कूल भेजकर ही निश्चिन्त न हो जाएँ	२.२
पाठशाला भेजने के साथ यह भी ध्यान रखें	२.३
बच्चे घर की पाठशाला में	२.५
बच्चों की शिक्षा और छोटी-छोटी बातें	२.७
बच्चे पढ़ने से जी क्यों चुराते हैं	२.९
बच्चों को पढ़ाई के लिए घर से प्रोत्साहन मिले	२.११
बच्चों का अवकाश काल इस तरह बीते	२.१३
बच्चों में स्वाध्याय की सुरुचि विकसित करें	२.१५
बालकों के लिए सत्साहित्य जुटाया जाये	२.१६
बच्चों के संस्कार निर्माण में बाल-साहित्य का योगदान	२.१८
बच्चे क्या पढ़ें, क्या न पढ़ें?	२.१९
बच्चों को क्यों और कैसी पुस्तकें पढ़ाएँ ?	२.२०
अपनी और बच्चों की मानसिक भूख का ध्यान भी रखें	२.२२
केवल पुस्तकीय शिक्षा ही नहीं, बच्चों को अनुभवीय ज्ञान भी दीजिए	२.२३
शिक्षा के साथ संस्कारों की अनिवार्य आवश्यकता	२.२५
बच्चों को शिक्षा ही नहीं, दीक्षा भी दी जाए	२.२६
बालकों की शिक्षा में चरित्र-निर्माण का स्थान	२.२८
गुरुजनों का सम्मान	२.२९
बालकों की शिक्षा और संस्कृति	२.३३
बालकों को जन्म ही न दीजिए, उनका निर्माण भी करिए	२.३४
सन्तान को जन्म ही नहीं, संस्कार भी दें	२.३५
बालकों का चारित्रिक विकास सद्गुणों से	२.३६
सत्य एवं शील	२.३७
शौर्य एवं धैर्य	२.४२
बल और विवेक	२.४७
भ्रातृभावना कैसे जगाई जाए ?	२.५२
पुरुषार्थ और परिश्रम	२.५३

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
सहयोगवृत्ति का कैसे विकास हो ?	२.५५
बच्चों को व्यवहारकुशल बनाइए	२.५९
बच्चों को शिष्टता का प्रशिक्षण दें	२.६०
बच्चों को ईर्ष्यालु होने से बचाएँ	२.६२
न तो दब्बू बनें, न ही उद्दण्ड	२.६३
बच्चों को हठी न होने दीजिए	२.६५
बालचरित्र-निर्माण सम्बन्धी कुछ आवश्यक ज्ञातव्य	२.६७
बच्चों में स्वस्थ व मौलिक आदतें डालें	२.७२
बच्चों में अच्छी आदतें बढ़ायें, कुटेव छुड़ायें	२.७३
बच्चों की अवांछनीय एवं अस्वाभाविक शारीरिक क्रियाएँ	२.७५
बच्चों में अच्छी आदत इस तरह डालें	२.७७
बच्चों की अवांछनीय आदतें कैसे सुधारें ?	२.७९
बच्चों में भोजन की स्वस्थ आदतें डालें	२.८१
बच्चों को कुसंग से दूर रखने की सतर्कता बरतें	२.८२
बच्चों को डराया न करें	२.८३
स्वयं निर्भीक बनें एवं बच्चों को निर्भीक बनाएँ	२.८५
बच्चों को भीरु नहीं, वीर बनाइए	२.८७
अबोध बालकों को भयभीत न करें	२.८८
बच्चों में भयपूर्ण संस्कार मत डालिए	२.९०
आप बच्चों को डरपोक तो नहीं बना रहे हैं?	२.९०
बालक्रीड़ा नहीं क्रीड़ाशील बालक	२.९१
बच्चों को खेलने दीजिए	२.९२
खेलने से बच्चों को मना मत कीजिए	२.९५
बच्चों के महत्वपूर्ण पाँच वर्ष	२.१०२
बच्चों के खिलौने सस्ते, सुलभ तथा उपयोगी हों	२.१०४
खेल विधि से शिक्षण	२.१०५
खेल-खेल में बालकों को सद्गुणों का प्रशिक्षण	२.१०८
खेलों द्वारा पराक्रम उभारा जाए	२.११०
बच्चों को पंगु मत बनाइए	२.१११
चाहे जो हो पर बालक आलसी न हो	२.११२
बच्चों को अनुशासन कैसे सिखाएँ ?	२.११३
बच्चे सेवाभावी कैसे बनें?	२.११५
आज्ञाकारी ही नहीं, बच्चों को आत्मविश्वासी बनाएँ	२.११७
आत्मविश्वास का उद्गम-स्वावलम्बन	२.११८
बच्चे को स्वावलम्बन और सन्तुलन की शिक्षा दें	२.११९
बच्चों को आत्मनिर्भर बनने दें	२.१२१
बच्चों को अर्थ अनुशासन की शिक्षा दीजिए	२.१२२
बच्चों को जेबखर्च दें-सुधार के लिए, बिगाड़ के लिए नहीं	२.१२४
बच्चे क्यों झगड़ालू हो जाते हैं ?	२.१२६
बच्चों की लड़ाई में आप न उलझें	२.१२८
बालकों का पोषण करें, उत्पीड़न नहीं	२.१३०
सद्गुणों की सच्ची विरासत का चमत्कार	२.१३१
उत्तराधिकार में बालकों को पाँच रत्न दीजिए	२.१३३
चरण-स्पर्शपूर्वक अभिवंदन	२.१३५
बच्चों की जिज्ञासा	२.१३६
बच्चों की जिज्ञासा का विकास हो	२.१३८
बाल जिज्ञासाओं का समाधान सृजनात्मक हो	२.१३९
प्रश्नों की झड़ी लगाना	२.१४०
बच्चों को सुसंस्कारी इस प्रकार बनाएँ	२.१४३
बच्चों के व्यक्तित्व- निर्माण में माता-पिता	२.१४४
बच्चों को सद्गुणी कैसे बनाएँ	२.१४५
बालकों का चरित्र निर्माण कैसे हो?	२.१४७
संस्कारों को समुचित दिशा भी तो मिले	२.१४८
बच्चों को सच्चरित्र बनाया जाय	२.१५०
बालकों के स्वभाव परिष्कार की पृष्ठभूमि	२.१५१
संतति को सुयोग्य और समुन्नत बनाने की समस्या	२.१५३

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
अध्याय-३	
बालकों के सर्वांगीण विकास में अभिभावकों का योगदान	३.१
सही ढंग से समग्र लालन-पालन	३.१
बच्चों का बहुमुखी विकास कैसे हो ?	३.३
कुपोषणजन्य अकाल मृत्यु का उपचार	३.४
बाल-स्वास्थ्य पर समुचित ध्यान दिया जाए	३.५
दु:खदायी बाल मृत्यु-अकाल मृत्यु	३.७
बच्चे का विकास और परिपोषण माँ पर निर्भर	३.८
बच्चों के विकास पर समुचित ध्यान दें	३.१०
बौद्धिक विकास की धुरी-माता-पिता का स्नेह-दुलार	३.११
बौद्धिक विकास के स्वर्णिम सूत्र	३.१२
बच्चों के मानसिक विकास की समस्या	३.१३
अभिभावकों द्वारा बच्चों का भावनात्मक विकास	३.१५
बच्चों के शासक नहीं, सहायक बनें	३.१६
शारीरिक श्रम के साथ बच्चों का बौद्धिक विकास भी जरूरी	३.१८
एक आँख दुलार की, दूसरी सुधार की	३.१९
बालकों के विकास सम्बन्धी समस्याएँ	३.२१
बाल-विकास में घातक अवरोध-विघटित परिवार	३.२३
बच्चे आपके सच्चे मित्र	३.२४
अभिभावकों की महती जिम्मेदारी	३.२६
राष्ट्र की आत्मा-बच्चे, उपेक्षित न रहें	३.२८
आचार्य, अभिभावक और बच्चे	३.२९
बच्चों की इच्छाएँ परिवेश से प्रभावित होती हैं	३.३०
अभिभावकों पर पर निर्भर है, बच्चों का विकास	३.३२
बालकों के साथ बड़े कैसा व्यवहार करें ?	३.३३
बाल-विकास में अभिभावकों का उत्तरदायित्व	३.३४
बालकों को प्यार तो करें, पर सुधार का भी ध्यान रखें	३.३७
सन्तान के प्रति पिता के उत्तरदायित्व	३.३९
सन्तान पालन की शिक्षा भी चाहिए	३.४०
बच्चों की आदतों की जिम्मेदारी अभिभावकों पर	३.४१
बालकों के विकास के प्रति सावधानी बरतें	३.४४
समाज का इन निरपराध बच्चों के प्रति अन्याय क्यों ?	३.४५
बच्चों का समुचित विकास कीजिए	३.४७
बाल-विकास कक्षाओं में नैतिक शिक्षा	३.४८
बाल-विकास केन्द्रों को स्थापना हो	३.५०
बाल-विकास हेतु परिवारों की महती भूमिका	३.५६
प्रेम का स्वरूप और विस्तार विवरण	३.५७
भावना और व्यवहार का विवेकयुक्त समन्वय	३.६०
समानता का भ्रान्त अर्थ न लें	३.६३
क्या पुत्र जन्म वास्तव में सौभाग्य है?	३.६४
पुत्र और पुत्री में अन्तर क्यों	३.६५
कन्या शिक्षा पर भी ध्यान दिया जाए	३.६७
छात्राओं का अनुकरणीय उदाहरण	३.६८
पुत्र और पुत्री के बीच विषमता	३.७०
बच्चों के मूल्यांकन का आधार गुणवत्ता हो, रूप नहीं	३.७१
कन्या की गरिमा पुत्र से कम नहीं	३.७२
दश पुत्रा समा कन्या	३.७३
लड़की जन्मे या लड़का ?	३.७५
कुमारी कन्याओं की आध्यात्मिक गरिमा	३.७६
लड़के और लड़की में भेदभाव मत कीजिए	३.७७
कन्या पर विशेष ध्यान दें	३.७८
इतना तो बेटियाँ भी किया करें	३.८१
कन्या की उपेक्षा-तिरस्कार न हो	३.८२
बच्चियों को सच्चे अर्थों में देवी बनाया जाए	३.८३
भाई-बहिन के सम्बन्धों की गरिमा	३.८४

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
भाई-बहिन का रिश्ता कितना पवित्र ?	३.८५
बाप-बेटी के रिश्ते की सूखती संवेदनाएँ	३.८७
कन्या और वधू को भी लड़के जितना दुलार मिले	३.८९
उठती उम्र में सतर्कता बरती जाए	३.९०
किशोरावस्था भटकाव में न पड़े	३.९३
एकाकीपन में किशोर दोष-दुर्गुण सीखते हैं	३.९४
किशोरावस्था को खतरों से बचाएँ	३.९६
किशोरों के विकास में अधिक सतर्कता की आवश्यकता	३.९७
किशोरों को स्वास्थ्य, शिक्षा और शील का महत्व समझाएँ	३.९९
किशोरों के निर्माण में सावधानी बरती जाए	३.१०१
किशोरों को स्नेहपूर्ण मार्गदर्शन दिया जाए	३.१०३
परीक्षा में उत्तीर्ण कैसे हों ?	३.१०४
रोकथाम भी और प्रतिरोध भी	३.१०९
हमारा तरुण वर्ग और उसकी कुण्ठाएँ	३.१११
युवकों को सत्संस्कारों से भरी सहायता दी जाये	३.११३
नवयुवक सज्जनता और शालीनता सीखें	३.११५
सुसंस्कृत युवा पीढ़ी कैसे बने ?	३.११७
समर्थ और समुन्नत नई पीढ़ी का निर्माण	३.११८
भावी पीढ़ी का स्तर उठाने की समस्या	३.१२०
सर्वतोमुखी प्रगति की आधारशिला चरित्र निर्माण	३.१२२
टूटी धुरी का समाज-रथ चलेगा कैसे ?	३.१२५
सुसंस्कारिता जीवनचर्या का एक महत्वपूर्ण अंग	३.१२७

* * *

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुसंतति-निर्माण का शुभारम्भ कहाँ से और कैसे हो?

चरित्रवान माता-पिता ही सुसंस्कृत सन्तान बनाते हैं

अँग्रेजी में कहावत है—"दि चाइल्ड इज ऐज ओल्ड ऐज हिज एनसेस्टर्स।" अर्थात् बच्चा उतना पुराना होता है जितना उसके पूर्वज। एक बार सन्त ईसा के पास आई एक स्त्री ने प्रश्न किया महाराज ! बच्चे की शिक्षा-दीक्षा कब से प्रारम्भ की जानी चाहिये ? ईसा ने उत्तर दिया। गर्भ में आने के १०० वर्ष पहले से। स्त्री भौचक्की रह गयी, पर सत्य वही है जिसकी ओर सन्त ने इंगित किया। सौ वर्ष पूर्व जिस बच्चे का अस्तित्व नहीं होता, उसकी जड़ तो निश्चित ही होती है, चाहे वह उसके बाबा हों या परबाबा—उनकी मनःस्थिति, उनके आचार, उनकी संस्कृति पिता पर आई और पिता-माता के विचार, उनके रहन-सहन, आहार-विहार से ही बच्चे का निर्माण होता है, कल जिस बच्चे को जन्म लेना है, उसकी भूमिका हम अपने में लिखा करते हैं। यदि यह प्रस्तावना ही उत्कृष्ट न हुई तो बच्चा कैसे श्रेष्ठ बनेगा ? भगवान राम जैसे महापुरुष का जन्म रघु, अज और दिलीप आदि पितामहों के तप की परिणति थी, तो योगेश्वर कृष्ण का जन्म देवकी और वसुदेव के कई जन्मों की तपश्चर्या का पुण्य फल था। अट्ठारह पुराणों के रचयिता व्यास का आविर्भाव तब हुआ था, जब उनकी पाँच पितामह पीढ़ियों ने घोर तप किया था। अपने यहाँ कन्या के वर ढूँढ़ते समय वर के संयोग और उसकी आर्थिक परिस्थितियाँ पीछे जानी जाती हैं। सर्वप्रथम वंश-गोत्र से बात प्रारम्भ होती है। उसका मन्तव्य यही होता कि बालिका किसी दुर्गुण सम्पन्न परिवार में पड़ जाये। यह सब सन्तति के लिये किया जाता रहा है जो उचित भी रहा है। आज के बच्चे ही कल के नागरिक बनेंगे। कल की सामाजिक सुव्यवस्था, शान्ति, समुन्नति का आधार यह होगा कि हमारे बच्चे श्रेष्ठ, सद्गुणी बनें और इसके लिये मातृत्व और पितृत्व को गम्भीर अर्थ में लिये बिना काम नहीं चलेगा।

महाभारत के समय की घटना है—द्रोणाचार्य ने पाण्डवों के वध के लिये चक्रव्यूह की रचना की। उस दिन चक्रव्यूह रहस्य जानने वाले एकमात्र अर्जुन को कौरव बहुत दूर तक भटका ले गये। इधर पाण्डवों के पास चक्रव्यूह भेदन का आमन्त्रण भेज दिया। जब सारी सभा सन्नाटे में थी तब १६ वर्षीय राजकुमार अभिमन्यु खड़े हुए और बोले—मैं चक्रव्यूह भेदन करना जानता हूँ। युधिष्ठिर ने साश्चर्य प्रश्न किया—तात ! मैंने तो तुम्हें कभी भी चक्रव्यूह सीखते नहीं देखा, नहीं सुना। इस पर अभिमन्यु ने हँसकर उत्तर दिया—आर्य ! जब मैं अपनी माँ सुभद्रा के पेट में था। माँ को जब प्रसव पीड़ा प्रारम्भ हुई तब मेरे पिता अर्जुन पास ही थे। माँ का ध्यान दर्द की ओर से बँटाने के लिए उन्होंने चक्रव्यूह भेदन क्रिया बतानी प्रारम्भ की। ६ द्वारों के भेदन की क्रिया बताने तक मेरी माँ ध्यान से सुनती रहीं और गर्भ में बैठा हुआ मैं उसे सीखता चला गया पर सातवें और अन्तिम युद्ध की बात बताने से पूर्व ही माँ को निद्रा आ गयी, उन्हीं के साथ मैं भी विस्मृति में चला गया। उसके बाद मेरा जन्म हो गया। ६ द्वार तो मैं आसानी से तोड़ लूँगा। सातवें में सहायतार्थ आप सब पहुँच जायेंगे, तो उसे भी तोड़ लूँगा।

यह घटना उस सत्य की ओर संकेत करती है कि पुत्र गर्भ में आये उससे पूर्व ही माता-पिता को अपनी शारीरिक और मानसिक तैयारी प्रारम्भ कर देनी चाहिए। कुछ दिन पहले अमेरिका में जन्मे एक बालक की बड़ी चर्चा चली। इस बालक की आँख में 'जे' और 'डी' की आकृति उभरी हुई थी। वैज्ञानिकों ने उसकी बहुत जाँच की पर कारण न जान पाये, आखिर इस गुत्थी को मनोवैज्ञानिकों ने सुलझाया। युवती ने उन्हें बताया कि मैं अपने विद्याध्ययन काल से ही जान डिक्सन की विद्वत्ता से प्रभावित रही हूँ। मेरी सदा से यह इच्छा रही है कि मेरे जो सन्तान हो वह जान डिक्सन की तरह ही विद्वान हो। मैंने अपनी यह इच्छा कभी किसी को बताई तो नहीं पर जब-जब इस बात की याद आती मैं अक्सर दीवाल पर कापी पर जे. डी. अक्षर लिखकर अपनी स्मृति को गहरा करती रही हूँ। उन्होंने अपने अध्ययन काल की कई कापियाँ और पुस्तकें भी दिखाईं जिनमें जे. डी. लिखा मिला।

हमारे पितामह इन तथ्यों से पूर्ण परिचित थे तभी उन्होंने न केवल ऐसी जीवन-व्यवस्था निर्मित की थी जिससे जाति स्वतः ही श्रेष्ठ आचरण वाली सन्तान देती चली जाती थी। गर्भाधान को उन्होंने षोड़स संस्कारों में से एक संस्कार माना था और उसे पूर्ण पवित्रता के साथ सम्पन्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने की प्रथा प्रचलित की थी। बालक का निर्माण माता-पिता भावभरे वातावरण में किया करते थे और जैसी आवश्यकता होती थी उस तरह की सन्तान समाज को दे देते थे। सती मदालसा ने अपने तीन पुत्रों—विक्रान्त, सुबाहु और अरिदमन को जो शिक्षा-दीक्षा और संस्कार दिये वे पारमार्थिक और पारलौकिक थे, फलतः उन तीनों ने ही प्रौढ़ावस्था में पहुँचने से पूर्व ही संन्यास धारण कर अपना सारा जीवन लोकमंगल में लगा दिया। वह कहा करतीं—

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि
संसारमाया परिवर्जितोऽसि।
संसारस्वप्नं त्यज मोहनिद्रां
मदालसा वाक्यमुवाच पुत्रम्॥

"हे पुत्र ! तू अपनी जननी मदालसा के शब्द सुन ! तू शुद्ध है, बुद्ध है, निरञ्जन है, संसार की माया से रहित है। यह संसार स्वप्नमात्र है। उठ, जाग्रत हो, मोहनिद्रा का परित्याग कर। तू सच्चिदानन्द आत्मा है, अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर।"

महारानी की शिक्षा से महाराज ऋतध्वज बहुत चिन्तित हुये। उन्होंने मदालसा से कहा यदि ऐसा ही रहा तो राज-काज कौन सँभालेगा ? इस बार जो पुत्र हुआ उसे मदालसा ने राजनीति की शिक्षा दी और कहा—

राज्यं कुर्वन सुहृदो नन्दयेथाः
साधून रक्षस्तात् ! यज्ञैर्यजेथाः
दुष्टान्निघ्नन वैरिणाश्चाजिमध्ये
गोयिप्रार्थे वत्स ! मृत्युं व्रजेथाः॥

मा. पुत्र. २६/४१

अर्थात् हे तात ! तुम राज्य करो। अपने मित्रों को आनन्दित करो, सज्जन पुरुषों की रक्षा करना, यज्ञ करना, गौ और ब्राह्मणों की रक्षा के लिये युद्ध अनिवार्य हो तो युद्ध भी करना भले ही रणभूमि में तुम मृत्यु को प्राप्त हो।

यह उदाहरण इस बात के प्रतीक हैं कि बालक माता-पिता के शारीरिक और मानसिक साँचे और ढाँचे में ढले, समाज द्वारा, संस्कृति द्वारा संस्कारित मिट्टी के पुतले होते हैं। जैसे हमारे माता-पिता होंगे वैसी ही सन्तान, अतएव मातृत्व की जिम्मेदारियों का निर्वाह निष्ठापूर्वक किया जाना चाहिए। हँसी-खेल की तरह श्रेष्ठ आचरण वाली जाति ही श्रेष्ठ सन्तान को जन्म देती है। माता-पिता दोनों का प्रभाव बच्चे पर अधिक पड़ता है। अतएव उन्हें तो विशेष रूप से तैयारी करनी चाहिये। राम वन गये तब की घटना है, राम ने लक्ष्मण के चरित्र की परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने प्रश्न किया—

पुष्पं दृष्ट्वा फलं दृष्ट्वा दृष्ट्वा योषितयौवनम्।
त्रीणि रत्नानि दृष्ट्वैव कस्य नो चलते मनः॥

हे लक्ष्मण ! सुन्दर पुष्प, पके हुये फल और मद-मत्त यौवन देखकर ऐसा कौन है जिसका मन विचलित न हो जाय। इस पर लक्ष्मण ने उत्तर दिया—

पिता यस्य शुचिर्भूतो माता यस्य पतिव्रता।
ताभ्यां यः सूनुरूत्पन्नस्तस्य नो चलते मनः॥

आर्यश्रेष्ठ ! जिसके पिता का आचरण सदैव से पवित्र रहा हो, जिसकी माता पतिव्रता रही हो उसके रज-वीर्य से उत्पन्न बालकों के मन कभी चंचल नहीं हुआ करते।

लक्ष्मण का यह उपदेश प्रत्येक माता-पिता को यह सोचने के लिए विवश करता है कि यदि श्रेष्ठ सन्तान की आवश्यकता है, तो उसे ढालने के लिए अपना चरित्र साँचे की तरह बनाना चाहिए।

शिशु-निर्माण—माता के गर्भ में

देवी मदालसा का नाम भारतवर्ष की उन आदर्श नारियों में लिया जाता है जिन्होंने अपने बालकों के निर्माण में आत्म-ज्ञानी गुरु की भूमिका निभाई है। वस्तुतः पुत्र के लिये पथप्रदर्शक, मार्गदर्शक, स्रष्टा और निर्माता सब माता ही है। शरीर का रस-रक्त, जीवन प्राण-तत्त्व लेने के साथ ही गुण और सांसारिक ज्ञान भी बच्चे को प्रायः माता से ही प्राप्त होते हैं। बच्चा बहुत दिनों तक, जब तक कि उसकी स्वतन्त्र विचार-शक्ति पकने नहीं लगती तब तक वह माता के पास ही रहता है। गुण और संस्कारों का परिपाक बाद में होता है पर उनका निर्माण तो माँ ही करती है। संस्कारों की पूर्व सूत्रधार माता ही है। वह जिस तरह के संकल्प और विचार बच्चे में पैदा करती है, वैसी ही उसमें ग्रहणशीलता और आविर्भाव हो जाता है और बाद में उसी तरह के तत्त्व वह संसार में ढूँढ़कर अपने संस्कारजन्य गुणों का अभिवर्द्धन करता है। इसलिये यही कहना पड़ेगा कि मनुष्य आज जिस स्थिति में है उसका श्रेय अधिकांश उसकी माता को ही है। संस्कारवान माताएँ बच्चों के चरित्र की नींव बाल्यावस्था में डालती हैं, जबकि उन्हें दिग्भ्रान्त कर आचरणहीन बनाने में भी प्रमुख हाथ उन्हीं का रहता है।

सन्तान के रूप में जीवात्मा का अवतरण और उसकी विकास-यात्रा में योग देना माता-पिता की सबसे बड़ी जिम्मेदारी है। पिता गर्भ-धारण में केवल सहयोग प्रदान करता है, बाद में उस गर्भ को पकाने का कार्य माता ही करती है, इसलिए पिता की अपेक्षा माता का उत्तरदायित्व अधिक है। बिना उचित ज्ञान और स्थिति की जानकारी हुए माता इस कर्त्तव्य का भली-भाँति पालन कर सकती होंगी यह असम्भव है। अतएव महिलाओं को यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है कि सन्तान काम-वासना का परिणाम नहीं है, काम तो एकमात्र प्रेरक तत्त्व है, जो एक आत्मा के अवतरण के लिए माता-पिता को प्रेरित करता है।

गर्भ में आने पर सन्तान का शरीर बढ़ता है, शरीर में उसका मस्तिष्क का भाग भी है, इसलिए मानसिक-क्रिया का संचालन भी उसी समय से प्रारम्भ हो जाता है। जीव अनेक योनियों में रहने के बाद जब सांसारिक विषमताओं से थक जाता है, तो उसकी इच्छा होती है कि वह आत्म-कल्याण प्राप्त करे, ऐसा सुयोग केवल मनुष्य-जीवन में ही सम्भव है क्योंकि आत्म-विकास के सम्पूर्ण साधनों का संकलन केवल मनुष्य देह में हुआ है। शरीर की स्थिति सामान्य जीवों की तरह होते हुये भी बौद्धिक ज्ञान का आविर्भाव होना, उसके लिए सबसे बड़ा सहयोग है। उसी के द्वारा वह मनुष्य योनि में अपना ज्ञान विकसित करता है और ज्ञान के आधार पर ही आचरण करता है। दोनों का ठीक समन्वय होने पर ही आत्म-कल्याण की स्थिति प्राप्त करना सम्भव है। ज्ञान और आचरण श्रेष्ठ तभी हो सकता है जब पूर्व में बच्चे को तदनुकूल शिक्षा दी गई हो। जिस प्रकार संस्कृत की शिक्षा प्राप्त बच्चा अँग्रेजी नहीं बोल सकता, उसी प्रकार यदि बच्चे को पूर्व में ही संस्कारवान नहीं बनाया गया, तो बाद में उसके ज्ञान और आचरण में श्रेष्ठता पैदा करना प्रायः असम्भव ही होता है।

गर्भावस्था में बच्चा अपनी माता के केवल प्रकट आचरण से ही प्रभावित नहीं होता, उससे तो बहुत हल्का असर बालक की मनोभूमि पर पड़ता है, अधिकांश प्रभाव तो मानसिक भावनाओं और विचारणाओं का होता है। नारी की मनोभूमि को व्यवस्थित रखने में उसके पति और परिजनों की जिम्मेदारी भी कम नहीं है, पर प्राणवान और संकल्पशील माताएँ अपने बच्चे के लिए उन सब परिस्थितियों की अपेक्षा भी कर सकती हैं, जो उसके मस्तिष्क में विषाद उत्पन्न कर सकती थीं। घर में अमंगल वातावरण को भी वे गर्भस्थ बच्चे के कल्याण के लिये पचा सकती हैं और उनकी अपने पर छाप न पड़ने देकर निष्ठापूर्वक अच्छे विचार, अच्छी भावनाएँ और पवित्र जीवन बिता सकती हैं। इसी निष्ठा का बालक के निर्माण में उपयुक्त प्रभाव होता है। ऐसे ही बच्चे दृढ़ निश्चयी, मनोजयी और संकल्पवान होते हैं, वही आगे चलकर श्रेष्ठ और प्रतिभावान भी बनते हैं।

यह तभी सम्भव है जब माँ यह ध्यान करे कि उसकी कोख में आई हुई सन्तान माँस-पिण्ड नहीं है। उसे अपनी सम्पत्ति भी न समझे। यह नासमझ उसे गलत कर्त्तव्य के लिए भी उत्साहित कर सकती है। वस्तुतः सन्तान परमात्मा की धरोहर के रूप में मिलती है। यदि उसके आत्म-कल्याण में सहयोग बन पड़े तो यह परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ सेवा हुई। कदाचित् उसकी उपेक्षा हुई तो यह मानना पड़ता है कि माँ ने मातृत्व की कसौटी को सही सिद्ध नहीं किया। उसने वस्तु-स्थिति समझने में भूल की।

सुयोग्य बालक ही राष्ट्र के सुयोग्य नागरिक बनते हैं। अच्छे बीजों से उत्पन्न खेती ही अच्छी होती है। सुयोग्य सन्तान होना बहुत कुछ इस बात पर अवलम्बित है कि माताएँ भी सुयोग्य हों और बालक के निर्माण की प्रचुर क्षमता और आवश्यक ज्ञान भी उन्हें हो। स्वस्थ रहने, स्वच्छताप्रिय होने, व्यवहारकुशल, मधुरभाषिणी, कर्मनिष्ठ व सादगीप्रिय होना यह सभी आवश्यक गुण एक सुयोग्य माता में हों पर साथ-साथ उसका संकल्प बल भी प्रखर हो और वह संकल्प शिशु को एक आत्मा के रूप में ध्यान रखकर ही हो। संकल्प तो सांसारिक और स्वार्थपरक भी हो सकता है पर ऐसा होना एक प्रकार का विकार है, जो जीवात्मा के दुःख का कारण भी हो सकता है। सुयोग्यता का आधार पवित्रता और आध्यात्मिकता ही होना चाहिए।

आध्यात्मिकता का अर्थ है कि नारी में मातृत्व के सभी आवश्यक गुणों का समावेश होना। प्रेम, स्नेह, आत्मीयता, वात्सल्य, आस्तिकता आदि सभी गुण उसी के अन्तर्गत हैं। नारी जीवन में इसका समावेश होने पर ही यह सम्भव है कि वह अपने बच्चे को शुद्ध, प्रबुद्ध, निरंजन और आत्म-स्थित होने का उपदेश दे सके। आत्मवादी या ब्रह्म-परायण होना, सांसारिक कर्त्तव्यों से विमुख होना नहीं है, वरन् उसमें दिव्य-जीवन के प्रति दृढ़ता उत्पन्न करना है। इसीलिए माताओं को कर्त्तव्य-परायण होने के साथ-साथ ईश्वर-परायण होना भी आवश्यक है। इस प्रकार का समन्वय होने से ही गर्भस्थ शिशु के निर्माण की आवश्यकता को पूरा किया जा सकता है।

शिशु का निर्माण गर्भावस्था से

बच्चे के गर्भ में आ जाने के साथ ही माता को उसके विकास के प्रति सतर्क हो जाना चाहिए, क्योंकि बालक के सम्यक विकास में जिन सूक्ष्म संस्कारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है, उनका समावेश इसी समय से होने लगता है। इस समय वह जो कुछ भी खाती-पीती है, सोचती-विचारती है, उसका सूक्ष्म प्रभाव बच्चे पर पड़ता है, इसलिए माता को इस समय ऐसा कुछ आहार-विहार नहीं रखना चाहिए, जिसका कुप्रभाव बच्चे पर पड़े और उसका विकास अवरुद्ध हो जाय। बालक के समग्र विकास के लिए गर्भवती माता को अपने गुरुतर उत्तरदायित्व को समझकर वैसी ही तैयारी एवं सतर्कता बरतने का प्रयास करना चाहिए, ताकि बालक का शारीरिक व भावनात्मक विकास समुचित रीति से सम्भव हो सके।

गर्भस्थ शिशु का पोषण माँ के द्वारा खाये-पिये गये पदार्थों के द्वारा ही होता है, माता के रस-रक्त से ही शिशु का शरीर विनिर्मित होता है। इस दृष्टि से माता को अपने आहार-विहार का स्तर ऐसा रखना चाहिए, जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसके अपने लिए तो स्वास्थ्यवर्द्धक हो ही, साथ ही बच्चे के लिए भी लाभदायक सिद्ध हो सके। शास्त्रकारों ने इस तथ्य की ओर **भावी-माताओं का ध्यान आकर्षित** किया है। उनका कथन है—

'तदाहारो विहारश्च भवेत् शुद्धोऽतिसात्विकः।

शोकसन्तापरहितः ईर्ष्यद्वेष विसर्जितः॥

अर्थात्—"माता का आहार-विहार शुद्ध, सात्विक हो, मन उल्लासयुक्त तथा ईर्ष्या-द्वेष से रहित रहे।" बालक के पूर्ण-विकास के लिए माता को पौष्टिक व उपयोगी आहार उपलब्ध होना चाहिए। ताजे फल, हरी शाक-सब्जियाँ, दूध, छाछ आदि दैनिक भोजन में सम्मिलित रहने चाहिए। आहारजन्य पोषण के अभाव में गर्भस्थ एवं दूध पीते बच्चों को वह पौष्टिकता नहीं मिल पाती, जो उनके लिए आवश्यक होती है। इस अभाव के कारण प्रायः वे रोगी-दुर्बल ही बने रहते हैं। भारत में तो लगभग बीस लाख बच्चे जन्मते ही माँ की गोद सूनी कर जाते हैं, जो बचते हैं, उनमें से अधिकांश पौष्टिकता की कमी एवं माताओं की शिशु-पालन अनभिज्ञता आदि के कारण शक्तिहीन व रोगी बने रहते हैं।

वैसे तो कामचलाऊ पौष्टिक तत्त्व द्विदल अनाजों, शाकों और मौसमी फलों से प्राप्त हो जाता है, फिर भी इतनी ही पौष्टिकता पर्याप्त नहीं होती। गर्भवती माता को पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन, खनिज-लवण व विटामिन भी आवश्यक होते हैं। दूध में वे समस्त तत्त्व विद्यमान रहते हैं, जिनकी आवश्यकता माता को रहती है। दूध का प्रोटीन शीघ्र पचने वाला होता है, साथ ही उसमें वह खनिज-लवण व विटामिन, कैल्शियम, फास्फोरस आदि तत्व भी होते हैं, जिनका गर्भस्थ शिशु के दाँतों एवं हड्डियों के बनने में पर्याप्त सहयोग प्राप्त होता है। बच्चों के लिए रोग-निरोधक क्षमता के रूप में आवश्यक विटामिन 'ए' भी दूध द्वारा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। इन सब दृष्टियों से माता को यथासम्भव दूध का सेवन करना चाहिए।

स्वस्थ-शरीर के लिए जहाँ पौष्टिक भोजन की प्रमुख भूमिका होती है, वही हल्का श्रम या व्यायाम भी आवश्यक होता है। विश्राम के नाम पर खाट पर पड़े रहना, आलस्य में समय गुजारते रहना, गर्भिणी एवं बच्चे दोनों के लिए हानिकारक होता है। बच्चे पर आलसी स्वभाव की छाप पड़ती है। इससे बचने के लिए माता को हल्के व्यायाम करने चाहिए। घर के छोटे-मोटे कार्यों को करते हुए अपने को व्यस्त रखना चाहिए, इससे स्फूर्ति बनी रहेगी। जिसका प्रभाव बच्चे को भी स्फूर्तिवान बना सकेगा। हाँ, नाड़ियों और माँसपेशियों पर अधिक दबाव डालने वाले परिश्रम न किये जाएँ।

माता के भले-बुरे चिन्तन का भी प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर वैसे ही गुण, कर्म, स्वभाव एवं संस्कारों के रूप में पड़ता है। माता के मन-मस्तिष्क में जैसे विचार उठते हैं, उनकी छाप सूक्ष्म रूप से बालक के मन-मस्तिष्क पर पड़ती है। शास्त्रों में इसीलिए माता को किस प्रकार चिन्तन-मनन करना चाहिए ? यह बताते हुए कहा गया है—

'काम-क्रोध भयादीश्च हृदये नैव चिन्तयेत्।

सर्वदा शुभसंकल्पान कुर्यात् सन्तति धारिणी॥

अर्थात्—सन्तान धारण करने वाली माता को काम, क्रोध, भय आदि का चिन्तन नहीं करना चाहिए। सदैव अच्छे विचारों में रहना चाहिए।

'महतां नररत्नानां बलैश्वर्य-प्रपूरितम्।

शृणुयात् कीर्त्तयेन्नित्यं चरितं हर्षवर्द्धनम्॥

अर्थात्—'महान पुरुषों के बल, ऐश्वर्य से युक्त हर्षवर्धक चरित्र को सुनना और कहते रहना चाहिए।'

आजकल मनोरंजन के नाम पर प्रायः सिनेमा आदि को ही माध्यम बनाया जाता है, जिसमें गन्दे दृश्यों, फूहड़ गीतों आदि का बाहुल्य होता है, परिणामतः इन्हीं कुसंस्कारों की छाप गर्भस्थ बच्चों पर पड़ती रहती है। बड़े होकर ये इन्हीं बातों में रस लेने लगते हैं।

इस समय की पड़ी हुई सद्गुणों, सुसंस्कारों की छाप बच्चे में जीवनपर्यन्त प्रतिबिम्बित देखी जा सकती है। इसके अनेकों उदाहरण महाभारत आदि ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। अभिमन्यु को चक्रव्यूह-वेधन की शिक्षा माँ के गर्भ में रहते समय ही प्राप्त हुई थी। प्रह्लाद में भक्ति-भावना के संस्कार नारद जी द्वारा उनकी माता 'कयाधू' को भक्ति के उपदेश देने से आये थे।

भारतीय-संस्कृति में षोडस संस्कारों में से एक पुंसवन संस्कार का यही उद्देश्य होता है। इस संस्कार के माध्यम से गर्भवती माता व परिवार वालों को भावी सन्तान के प्रति उत्तरदायित्वों व सावधानियों की बात विस्तारपूर्वक समझाई जाती है, जो एक आदर्श सन्तान के लिए आवश्यक होती है।

बड़े होने पर भी बच्चे को कुसंग आदि से बचाकर अच्छे वातावरण में रखने के लिए प्रयत्न तो करना ही होता है, यह कार्य उसके गर्भावस्था में रहते समय से ही प्रारम्भ करना अधिक श्रेयस्कर है।

इस प्रकार स्वस्थ, सुन्दर, नीरोग व सुसंस्कारी सन्तान के लिए माता को अपने विशेष उत्तरदायित्व को समझना चाहिए और इस अवस्था में अपने शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य का संरक्षण करते हुए, बालक के व्यक्तित्व एवं मस्तिष्क का भी निर्माण करना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गर्भाधान संस्कार—

षोडश संस्कारों से सबसे प्रथम संस्कार गर्भाधान का है जिसका अर्थ यह है कि यह दम्पत्ति-युग्म अपनी प्रजनन प्रवृत्ति से समाज को सूचित करता है। विचारशील लोग यदि उसकी स्थिति इसके लिए अनुपयुक्त समझें तो उन्हें इसके लिए मना भी कर सकते हैं। प्रजनन वैयक्तिक मनोरंजन नहीं वरन् सामाजिक उत्तरदायित्व है। इसलिए समाज में विचारशील लोगों को निमन्त्रित कर उनकी सहमति लेनी पड़ती है। यही गर्भाधान संस्कार है। अखण्ड ब्रह्मचारी एवं शरीर-मन से निरोग, पति-पत्नी का अन्य जीव-जन्तुओं की भाँति एक बार के समागम में ही गर्भ स्थापित हो जाना सम्भव है। पूर्वकाल में यही सब होता था। आज लोगों के शरीर खोखले हो गये और काम-क्रीड़ा को भी वैयक्तिक मनोरंजन मान लिया, तो फिर गर्भाधान का महत्त्व भी चला गया। इतने पर भी उसकी मूल भावना को भुलाया न जाय, तब भी यह कहा जा सकता है कि वह परम्परा किसी रूप में जीवित है।

पति-पत्नी शरीर, मन और अर्थ की दृष्टि से सन्तानोत्पादन का भार उठा सकने में पूर्ण समर्थ हों तभी उस भार को उठाने के लिए तत्पर हों। इसे वैयक्तिक मनोरंजन नहीं एक सामाजिक कार्य समझें और जैसा बालक बनाना हो उसके अनुरूप अपने गुण, कर्म, स्वभाव स्वास्थ्य, विचार, संस्कार सभी कुछ सुव्यवस्थित कर लें। उत्कृष्ट स्तर के माता-पिता ही उत्कृष्ट बालक उत्पन्न कर सकते हैं। इसलिए सन्तान को जिस स्तर का बनाना हो, अपने को उसी स्तर का बनाने का प्रयत्न पति-पत्नी आरम्भ कर दें तो समझना चाहिए कि वे गर्भाधान संस्कार की मूल भावना से परिचित हैं, भले ही उस संस्कार को न करते हों। इसके विपरीत यदि किसी ने संस्कार तो कराया पर तथ्यों को भुला दिया तो यह एक चिह्न पूजा मात्र ही मानी जायेगी। पति-पत्नी एकान्त मिलन के समय वासनात्मक मनोभाव न रखें वरन् मन ही मन आदर्शवादी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते रहें तो उसकी मानसिक छाप बच्चे की मनोभूमि पर अंकित होगी। लुक-छिपकर पाप-कर्म समझते हुए भयभीत और आशंका ग्रसित अनैतिक समागम-व्यभिचार के फलस्वरूप जन्मे बालक अनेक दोष-दुर्गुण साथ लाते हैं। इसी प्रकार उस समय यदि दोनों की मनोभूमि आदर्शवादी मान्यताओं से भरी हुई हो तो मदालसा, अर्जुन आदि की तरह मनचाहे प्रकार के स्तर वाले बालक उत्पन्न किये जा सकते हैं। गर्भाधान संस्कार का प्रयोजन यही है। वस्तुतः वह प्रजनन विज्ञान का आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्थिति का मार्ग-दर्शन कराने वाला प्रशिक्षण ही है।

आज संस्कारों का जबकि एक प्रकार से लोप ही हो गया है, गर्भाधान का प्रचलन कठिन दिखाई पड़ता है इसलिए उसे आज व्यावहारिक न देखकर उस पर विशेष जोर नहीं दिया गया है। आवश्यकता अनुभव हुई तो उसकी विधि एवं व्याख्या भी प्रस्तुत कर दी जायेगी।

पुंसवन संस्कार की आवश्यकता—

गर्भ स्थापना के उपरान्त आठ मास में दो बार पुंसवन और सीमन्त दो संस्कार, बालक पर सुसंस्कारों की छाप डालने और माता-पिता एवं कुटुम्बियों को उत्तरदायित्व बताने के लिए किए जाने का विधान है। पर आज तो कहीं एक भी नहीं होता। इसलिए व्यावहारिक यह समझा गया है कि उनमें से एक का ही प्रचलन आरम्भ हो जाय तो भी काम चल सकता है। अतएव पुंसवन का आरम्भ करने की चेष्टा की गई है।

दो महीने पूरे होने तक गर्भ स्थापना का निश्चय नहीं होता। दो मासिक धर्मों का समय चूक जाय तभी स्थापना का निश्चय करना चाहिए। अन्यथा शारीरिक कारणों से भी मासिक धर्म दो-दो महीने तक रुक जाता है। तीसरे महीने निश्चय हो जाने के उपरान्त संस्कार की तैयारी की जा सकती है। यह आरम्भिक महीनों में हो सके तो अधिक उत्तम है ताकि जो शिक्षाएँ दी जाने वाली हैं, उनका उपयोग अधिक दिनों तक हो सके। फिर भी यदि तीसरे-चौथे महीने नहीं हो सका है तो जब भी सम्भव हो, कर लेना चाहिए।

सभी संस्कारों में सुन्दर सुसज्जित मण्डप बनाने, चौक पूरने, यज्ञ वेदी बनाने, कलश स्थापना, घृत, दीप, अग्नि आवश्यक उपकरण एक समान ही एकत्रित किये जाते हैं। इन्हें हर बार हर जगह एकत्रित करना कठिन पड़ता है, इसलिए संस्कार समितियों या पुरोहितों को सारे उपकरण स्वयं ही एकत्रित करने चाहिए और टूट-फूट का खर्च लेकर सभी के यहाँ उन्हें सरलतापूर्वक उपलब्ध होने की सुविधा कर देनी चाहिए।

उत्सव में पड़ौस तथा रिश्ते के अधिकाधिक नर-नारियों को एकत्रित करना चाहिए, ताकि अपने यहाँ न सही, दूसरे के यहाँ देखकर भी वे आवश्यक कर्त्तव्य और उत्तरदायित्वों को समझ सकें और जब अवसर आवे तब वे भी इन शिक्षाओं के अनुरूप गतिविधि बना सकें। संस्कारों के प्रति अधिक व्यापक क्षेत्रों में आकर्षण बढ़े उस दृष्टि से अधिक उपस्थिति का प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए घरों में स्वयं बुलावा देने जाने का अच्छा प्रभाव पड़ता है। आगन्तुकों के बैठने की ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि वे ठीक तरह सब कुछ देख-सुन सकें।

संक्षिप्त गायत्री हवन पद्धति के विधि-विधान ही प्रायः सब संस्कारों में काम आते हैं। दो-तीन जगह संस्कारों से सम्बन्धित क्रियाएँ काम में आती हैं। इसलिए जिन्हें गायत्री हवन कराना आता है, उनके लिए संस्कारों का विधान भी कुछ कठिन नहीं रहता। प्रयत्न यह होना चाहिए कि जितने भी सुशिक्षित नर-नारी ऐसे हैं, जो संस्कृत श्लोक ठीक तरह बोल सकते हैं, उन सभी के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हाथ में पुंसवन संस्कार की पुस्तिकाएँ देनी चाहिए ताकि वे भी उच्चारण एवं विधान की जानकारी के अभ्यस्त बन जायें और समय आने पर वे इस प्रयोग को सम्पन्न करा सकें।

प्रत्येक संस्कार या यज्ञ कार्य में पत्नी को दाहिनी ओर और पति को बाँई ओर बिठाया जाता है। स्नान करके, शुद्ध वस्त्र पहनकर पीले दुपट्टे कन्धे पर धारण किये हुए अच्छे आसनों पर पति-पत्नी को 'भद्रं कर्णेभिः' मन्त्र की सामूहिक ध्वनि करते हुए बिठाया जाय। पवित्रीकरण, आचमन, शिखा बन्धन, प्राणायाम, न्यास, पृथ्वी पूजन, यज्ञोपवीत धारण, आचार्य वरण, यजमान वरण, संकल्प, पंचामृत बनाना और पिलाना, प्रयोजनीय वस्तुओं का मार्जन, दीप पूजन, कलश पूजन, देव पूजन, नमस्कार, षोडशोपचार, चन्दन धारण, स्वस्तिवाचन, रक्षा विधान इतने कृत्य सभी संस्कारों में एकसमान होते हैं। पुंसवन संस्कार में भी वही सामान्य क्रम चलेगा।

पुंसवन संस्कार के विशेष विधान तीन हैं— (१) औषधि अवघ्राण, (२) आश्वास्तना, (३) चरु-प्रदान। इसके अतिरिक्त खीर की विशेष आहुतियाँ, मंगल फल प्रदान और आशीर्वाद ये तीनों ही कृत्य यथासमय सभी संस्कारों में होते हैं, इसमें भी होंगे। विशेष कृत्य ये तीन ही हैं। इन्हें कराने तथा व्याख्या करने की व्यवस्था इस प्रकार करनी चाहिए कि संस्कार का विशेष प्रयोजन ठीक प्रकार समझा जा सके।

औषधि अवघ्राण

वट वृक्ष की जटाओं का अति कोमल भाग, जिसे जटा, कोंपल भी कहते हैं, उसे तथा गिलोय का एक टुकड़ा लेकर दोनों को पानी में बारीक पीस लेना चाहिए, दोनों औषधियों की मात्रा तीन-तीन माशे और पानी डेढ़ तोला हो तो पर्याप्त है। पानी के साथ दोनों वस्तुएँ बारीक पीसकर उन्हें कपड़े में छानकर एक कटोरे में रख लिया जाय। यह वधू को सुँघाने के लिए है। उसमें से थोड़ा भाग उसे पिलाया भी जा सकता है। सुँघाने या पिलाने का मंत्र "अदृभ्य सम्भृत" है।

वट वृक्ष विशालता, शक्ति तथा स्थिरता का प्रतीक है। गिलोय विकार, विनाशक एवं बलवर्द्धक तत्वों से युक्त है। हर औषधि वनस्पति में जहाँ स्थूल गुण होते हैं, वहाँ उसमें सूक्ष्म प्रेरणाएँ एवं भावनाएँ भी रहती हैं। स्थूल प्रयोग के रूप में बरगद के पत्ते, लकड़ी, फल छाया आदि का जो लाभ है, उतनी ही उसकी उपयोगिता है। इसी प्रकार गिलोय को बलवर्द्धक तथा रोग निवारक माना जाता है। दुर्बलता एवं ज्वर जैसे शरीर कष्टों को दूर करने में औषधि जैसा जो लाभ उसका है, वही उसकी उपयोगिता है। पर इतना ही मूल्य उसका नहीं है। जैसे मनुष्य शरीर के भीतर एक सूक्ष्म, अदृश्य आत्मा रहता है, उसी प्रकार इन दोनों औषधियों की भी आत्मा है, जिसे भावना एवं प्रेरणा कहना चाहिए। संस्कारों में इसी की व्याख्या-विवेचना की जानी अभीष्ट है।

यों स्थूल दृष्टि से भी ये दोनों औषधियाँ गर्भिणी के लिए व गर्भस्थ शिशु के लिए शारीरिक आरोग्य बढ़ाने वाली हैं। गर्भावस्था में अपच, उल्टी, आलस, सिर-दर्द, नींद कम आना, कमर में दर्द आदि की शिकायत रहती है। इनको दूर करने में ये परम सौम्य औषधियाँ बड़ी उपयोगी मानी गई हैं। इनका थोड़ा-सा अंश अभिमन्त्रित करके इसलिए पिला दिया जाता है कि माता तथा उसके उदरस्थ शिशु के शरीर में कोई हानिकारक रोग कीटाणु हों तो वह नष्ट हो जाएँ, बल बढ़े तथा पोषण में सहायता मिले। इन्हें सुँघाया इसलिए जाता है कि उनके अन्दर जो प्रेरणा एवं भावना सन्निहित है, उसका प्रभाव गर्भिणी के तथा उसके अन्तराल में बैठे हुए बालक के मस्तिष्क तक पहुँचे। नाक के द्वार से ही कोई वस्तु मस्तिष्क में पहुँचती है। सुँघाने का प्रयोजन यही है कि बरगद एवं गिलोय की आत्मा में समाये हुए संस्कार इन दोनों मस्तिष्कों पर अपना प्रभाव पहुँचा सकने में सफल हों। शक्तिशाली वेद-मन्त्रों के उच्चारण से यह कार्य और भी सरल एवं सम्भव हो जाता है।

वट वृक्ष धीरे-धीरे बढ़ता है और दीर्घजीवी होता है। उतावले मनुष्य सब कुछ बहुत जल्दी चाहते हैं, कार्य की व्यवस्था एवं परिपक्वता के लिए जिस दृढ़ता, निष्ठा एवं धैर्य की आवश्यकता होती है वह उनमें नहीं होती, अतएव वे तत्काल आवेश में आकर बहुत कुछ कर डालने की बात सोचते हैं, किन्तु कुछ ही समय पश्चात् वह जोश पानी के बबूले के तरह ठण्डा हो जाता है और आरम्भ किये हुए कार्य को अधूरा छोड़ बैठते हैं। यह दोष गृहस्थ जीवन में बुरा है। शिशु निर्माण में धैर्य की बड़ी आवश्यकता है। वट अंकुर इस गुण की शिक्षा देते हैं।

वट वृक्ष अपनी जड़ें जमीन में गहराई तक ले जाता है और अपने को हर दृष्टि से मजबूत, परिपुष्ट बनाता है। आँधी-तूफान आते हैं, पर उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाते। सब वृक्षों से उसकी आयु भी अधिक होती है। संयमी, सदाचारी रहकर हमें अपने शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य की जड़ें गहराई तक ले जानी चाहिए और हर दृष्टि से अपनी समर्थता, बलिष्ठता एवं परिपुष्टता बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। आँधी-तूफान आते रहते हैं, उनका प्रभाव अपने ऊपर न पड़ने पावे, ऐसी सुदृढ़ मनोभूमि तथा शारीरिक स्थिति बनाये रखनी चाहिए।

वट-वृक्ष अपने विकास, विस्तार के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। जटाएँ भी जड़ के रूप में बदल जाती हैं। वृद्धावस्था को भी युवावस्था में परिणत करने का प्रयास करना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वट-वृक्ष अपने विस्तार का लाभ दूसरे अनेकों को देता है। कितने ही पक्षी उस पर घोंसले बनाकर रहते हैं, उसके फलों से अपना आहार प्राप्त करते हैं ? कितने ही पशु उसकी छाया में विश्राम लेते हैं, अपनी क्षुधा मिटाते हैं। उसकी घनी छाया में कितने ही पथिक सुस्ताते हैं, कथा-प्रवचन, सत्संग तथा देवस्थापन उसके नीचे होते रहते हैं। इन्हीं पारमार्थिक विशेषताओं के कारण उसे देव वृक्ष माना जाता है। उसके दूध, जटा, जड़, छाल, फलों के आधार पर कितने ही रोग दूर होते हैं ? हमारे जीवन भी ऐसे ही उदार, परोपकारी होने चाहिए।

गिलोय की बेल भूमि पर ही नहीं फैलती, वरन् किसी सुदृढ़ वृक्ष का सहारा लेकर ऊपर की ओर उठती जाती है। दुर्बल काया होने पर भी निम्न स्थिति में समतल जमीन में नहीं पड़ी रहती है। हमें जीवनोत्कर्ष की भावनाएँ सदा सजीव रखनी चाहिए। आदर्शवादी सिद्धान्तों का, सुदृढ़ वृक्षों का सहारा लेकर ऊपर उठना चाहिए। अपनी परिस्थितियाँ दुर्बल हों, शरीर, मन एवं अर्थ साधन स्वल्प हों, तो भी सुयोग्य व्यक्तियों का सान्निध्य पकड़कर प्रगति का पथ प्रशस्त करना चाहिए।

गिलोय में गजब की रोग निरोधक शक्ति होती है। बुखार जैसे दुष्ट रोगों के कीटाणुओं को अपने प्रभाव से मार गिराती है। अपने भीतर छिपे हुए कुविचारों एवं कुसंस्कारों से लड़ने और परास्त करने के लिए हमें भी अपने भीतर आवश्यक मनोबल एकत्रित करना चाहिए। संसार में जो कुबुद्धि, दुष्टता एवं अन्ध-परम्परा फैली हुई हैं, उन सामाजिक बीमारियों को शान्त करने के लिए भी हमें वैसा समर्थ होना चाहिए, जैसा कि रोग निवारण के लिए गिलोय समर्थ होती है।

गिलोय में केवल मारक-संहारक गुण ही नहीं अपितु वह सौम्य, स्निग्ध एवं बलवर्द्धक भी है। उसका रस चिकना होता है। हमारा अन्तःकरण स्नेहसिक्त, सौम्य एवं मधुर होना चाहिए। हमारा व्यक्तित्व सबको पुष्टता, स्फूर्ति एवं सशक्तता देने वाला होना चाहिए।

वट और गिलोय के कुछ थोड़े-से सूक्ष्म संस्कार यहाँ दिये गये हैं। ऐसी और भी अनेक विशेषताएँ उनमें हो सकती हैं, उन्हें ढूँढ़ना चाहिए और उन विशेषताओं को गर्भवती अपनी मनोभूमि में धारण करे तथा वैसे ही संस्कार गर्भस्थ बालक में रोपे, ऐसी चेष्टा करनी चाहिए। औषधि अवघाण का यही प्रयोजन है।

आश्वास्तना

बालक यद्यपि पत्नी के गर्भ में है, पर वह अकेले ही उसे सुविकसित एवं सुसंस्कारी नहीं बना सकती। उसके लिए पति का योगदान विशेष रूप से अपेक्षित है। माता अपने शरीर के रक्त-माँस से बालक का शरीर बनाती है, नौ मास तक भार वहन करती है, भारी पीड़ा सहती हुई प्रजनन करती है, अपना रक्त सफेद दूध के रूप में निकाल-निकालकर बच्चे को पोषण करती है, उसके मल-मूत्र, स्नान, वस्त्र तथा दिनचर्या की हर घड़ी साज-सँभाल रखती है। इतना भार तथा त्याग कुछ कम नहीं। माता इतना करके भी अपने हिस्से की जिम्मेदारी पूरी कर लेती है। अब शिशु को सुसंस्कारी बनाने योग्य उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न करना पिता का काम रह जाता है। उसे पूरा करने के लिए उतना ही त्याग करना, उतना ही कष्ट सहना और उतना ही ध्यान रखना पिता का भी कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य को पूरी तरह पालन करने के लिए पति को पत्नी के कन्धे पर हाथ रखकर आश्वासन देना पड़ता है कि वह इस प्रकार के कर्त्तव्यों को पूरा करने में तनिक भी प्रमाद या उपेक्षा न बरतेगा।

पुंसवन संस्कार की शिक्षाओं में नौ श्लोक दिये गये हैं। उनकी व्याख्या इस अवसर पर की जानी चाहिए। दोनों को बताना चाहिए कि उन दोनों ने एक महान सामाजिक उत्तरदायित्व अपने कन्धे पर ओढ़ा है। यदि वे राष्ट्र-माता को सद्गुणों से सुसज्जित भावी सन्तान के रूप में एक सुरभित हार पहना सकें, तब तो उनका श्रम सार्थक है, अन्यथा रोगी, क्रोधी, आलसी, अपराधी प्रकृति का बालक जन्मा तो उससे अनेकों को जो कष्ट मिलेंगे उनका पाप उनके जन्म देने वाले माता-पिता को भी लगेगा। प्रजनन को मिट्टी से खेलने जैसा एक मखौल मनोरंजन नहीं मानना चाहिए कि बच्चा जन्मा और ढोलक बजाने, बताशे बाँटने की तैयारी हो गई। यह इतनी बड़ी जिम्मेदारी है कि माता-पिता को अपने ऊपर अत्यधिक नियन्त्रण करके बच्चे के स्वस्थ विकास के लिए समुचित परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी पड़ती है।

घर में अवतरित होने वाली आत्मा न जाने कितने उत्कृष्ट स्तर की हो, न जाने किस महान आत्मा का अस्तित्व गर्भ में आया हो, यह सोचकर उसके स्वागत, सम्मान का समुचित प्रबन्ध किया जाना चाहिए। घर में यह महान मेहमान आ रहा है, उसके लिए वैसी ही परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी चाहिए, जैसी कि किसी अत्यन्त प्रतिष्ठित एवं सम्भ्रान्त अतिथि के आगमन पर घर में की जाती हैं।

इन दिनों शारीरिक श्रम कम बन पड़ता है, आलस रहता है तथा तबियत भी गिरी-गिरी रहती है। ऐसी दशा में जितना श्रम वह सुविधापूर्वक कर सके, उतना ही करने देना चाहिए। जो उससे न बने पड़े, उतने श्रम के लिए दबाया न जाय। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि वे आलस्य में ही पड़ी रहें। बड़े घरों की स्त्रियाँ अक्सर श्रम से जी चुराती हैं। अतएव उन्हें न तो ठीक से भोजन ही पचता है और न बालक को हिलने-डुलने का अवसर मिलता है। ऐसी दशा में बच्चे का शरीर भी भिचा-भिचा अविकसित रह जाता है और गर्भवती को प्रजनन के समय कष्ट भी बहुत होता है। जो स्त्रियाँ चक्की चलाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जैसा श्रम करती हैं, उनके बालक का भी व्यायाम होता रहता है। इन सब बातों का ध्यान रखते हुए श्रम का सन्तुलन रखा जाय। न आलसी बना जाय और न इतनी मेहनत की जाय जो शरीर और मन को तोड़कर रख दे।

आस्तिकता का वातावरण इन दिनों बना ही रहना चाहिए। आस्तिकता का प्रभाव आत्म-बल बढ़ाने के लिए अनुपम उपाय है। उपासना से अन्तःकरण शुद्ध होता है और उसमें दिव्य प्रकाश बढ़ता है। इसलिए गर्भवती को नित्य नियमित रूप से ईश्वर उपासना अवश्य करनी चाहिए। भारतीय धर्म में गायत्री ईश्वर की सर्वोपरि उपासना मानी गई है। यह महाशक्ति सद्बुद्धि की देवी है। गायत्री जप से सद्बुद्धि का उदय होता है, भावनाएँ शुद्ध होती हैं और आन्तरिक प्रगति का पथ प्रशस्त होता है। इसलिए जिन्हें पूरा गायत्री मन्त्र याद हो सके वे पूरा जप किया करें। अशिक्षित "ॐ भूर्भुवः स्वः" इतने से भी काम चला सकती हैं। स्नान करके एक माला नियमित जप करना चाहिए। इसके अतिरिक्त जब भी अवसर हो गायत्री महामन्त्र का मानसिक जप करते रहना चाहिए। जिन्हें भगवान का कोई अन्य नाम प्रिय हो, वे उससे भी काम चला सकती हैं। घर में भगवान की स्थापना, पूजा-वेदी, प्रातः-सायं आरती, भोग-प्रसाद का वातावरण हर आस्तिक के घर में रहना चाहिए। ऐसे वातावरण का प्रभाव नवीन आत्मा के मंगलमय अवतरण में विशेष रूप से श्रेयस्कर होता है। आस्तिकता का प्रभाव उत्कृष्टता के रूप में ही देखा जाता है।

उपरोक्त आशय की शिक्षाएँ पुंसवन संस्कार के साथ जुड़े नौ श्लोकों में दी गई हैं। इनका जहाँ जैसा वातावरण या परिस्थिति हो, उसका समन्वय करते हुए विवेचन किया जाना चाहिए। पति के द्वारा पत्नी के कन्धे पर हाथ रखकर जो आश्वासन दिया जाता है उसको एक गोल बात ही नहीं रहने देना चाहिए, वरन् वह सब कुछ बताया जाना चाहिए जो उसे करना है।

पति परिवार का प्रतिनिधि है, चूँकि पत्नी, पति के माध्यम से ससुराल में आई है। गर्भ स्थापना का उत्तरदायी भी वही है, इसलिए प्रधान आश्वासन तो उसे ही देना चाहिए। घर के लोगों के असहमत होने पर भी उपरोक्त कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए। पर इतने से ही बात पूरी नहीं हो जाती। परिवार के अन्य लोगों का भी गर्भवती पर प्रभाव रहता है और वे भी उसकी शारीरिक, मानसिक क्रम-व्यवस्था बनाने-बिगाड़ने में बहुत हद तक सहायक होते हैं। इसलिए इस 'आश्वासन क्रिया' में परिवार के अन्य लोगों को भी सम्मिलित किया जाना उचित है। परिवार के अन्य लोगों के हाथ में एक-एक फूल दिया जाय और आश्वास्तना मन्त्र के साथ वे सब उस पुष्प को गर्भवती को वैसा ही आश्वासन देने की भावना के साथ प्रदान करें। गर्भवती उन पुष्पों को कृतज्ञतापूर्वक शिरोधार्य करें और अपना साहस एवं सन्तोष बढ़ाने के लिए उन आश्वासन-पुष्पों को सुरक्षित रखे। इस प्रक्रिया के साथ-साथ पति ही नहीं, घर के सभी लोगों को यह उत्तरदायित्व अनुभव करना चाहिए कि होनहार आत्मा की उत्कृष्ट स्थिति बढ़ाने के लिए उन सभी को अपना-अपना योगदान करना है।

चरु प्रदान

गायत्री मन्त्र की आहुतियाँ पूर्ण हो जाने पर—(१) स्विष्टकृत से पूर्व खीर की पाँच-पाँच आहुतियाँ पति-पत्नी को देनी होती हैं। गाय का दूध, चावल, मेवा, जरा-सी शक्कर डालकर खीर बनानी चाहिए और उसे एक बड़े कटोरे में रख चम्मचों के साथ पति-पत्नी के सामने रख देना चाहिए। "ॐ धाता दधातु" मन्त्र पाँच बार उच्चारण करके पाँच-पाँच आहुतियाँ पति-पत्नी दोनों को देनी चाहिए। आहुतियों के बाद बची हुई खीर गर्भिणी को खाने के लिए दी जाती है। इसे चरु-प्रदान क्रिया कहते हैं। आहुतियाँ पूरी होने के बाद पूर्णाहुति, वसोधारा, आरती, घृत-अवघ्राण, भस्म धारण, क्षमा प्रार्थना, नमस्कार, शुभ कामना, अभिसिंचन, प्रदक्षिणा तथा उपस्थित लोगों द्वारा श्रद्धाञ्जलि देने के कृत्य किये जाने चाहिए। इसके पश्चात् यज्ञ से बची हुई उस खीर को यज्ञ के प्रसाद स्वरूप गर्भिणी को प्रदान किया जाना चाहिए। यह 'चरु-प्रदान है।' आहुतियों से लेकर श्रद्धाञ्जलि तक कई क्रियाएँ करनी पड़ती हैं, तब 'चरु-प्रदान' का नम्बर आता है। इस बीच के समय उस बची हुई खीर को ढककर एक ओर रख देना चाहिए ताकि उसके फैलने, गन्दी होने या मक्खी आदि पड़ने को भय न रहे।

यज्ञ में बची हुई खीर यज्ञीय संस्कारों से युक्त होती है। यह देवताओं का प्रसाद भी होती है। दशरथजी ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया था, तब यज्ञ से बची हुई खीर तीन रानियों को खिलाई गई थी। उससे उन्हें होनहार सन्तानें प्राप्त हुईं। यह यज्ञ-चरु गर्भस्थ शिशु को संस्कारवान् बनाने के लिए एक अद्भुत औषधि की तरह अपना प्रभाव प्रदान करती हैं।

इस चरु-पात्र को सम्मानपूर्वक गर्भिणी को "ॐ पयः पृथिव्यां' इस मन्त्र के साथ दिया जाता है। इसे वह ले जाती है और उस दिन के आहार में सबसे प्रथम इस चरु को ही ग्रहण करती है। कोई और चीज इसके बाद खानी चाहिए। यह यज्ञ-उच्छिष्ट माता और बालक दोनों के ही अन्तःकरण पर प्रभाव एवं संस्कार छोड़ता है जिससे उनकी मनोभूमि में भविष्य को प्रकाशवान् बनाने वाले सद्गुण उदय होने लगते हैं। इस चरु को जितनी अधिक श्रद्धापूर्वक सेवन किया जायेगा, उतना ही उसका अधिक प्रभाव पड़ेगा। औषधियों में अपना निज का जितना गुण होता है, उससे अनेक गुना सेवन करने वाले की श्रद्धा द्वारा विनिर्मित हो जाता है। जिस चिकित्सक पर विश्वास हो, उसकी साधारण दवा भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जादू जैसा काम करती है, किन्तु जिन पर अविश्वास हो उसकी कीमती औषधियाँ भी कुछ काम नहीं करतीं। वेद-मन्त्रों से अभिमन्त्रित, यज्ञ भगवान का उच्छिष्ट यह चरु-प्रसाद यदि गर्भवती ने परिपूर्ण श्रद्धा के साथ सेवन किया होगा तो उसे अपनी श्रद्धा का भी मनोवैज्ञानिक लाभ होगा, चरु का अपना फल तो है ही।

दूध और चावल दो पृथक् स्थानों पर पैदा होते हैं, पृथक् गुण, कर्म और स्वभाव के भी हैं, पर वे दोनों जब अपनी-अपनी पृथकता समाप्त करके एक-दूसरे में समर्पित हो जाते हैं, तब उनका सम्मिलित स्वरूप खीर बनता है। इसे देव भोजन की गरिमा मिलती है। यज्ञ कार्यों में इसे उपयोग किया जाता है। इसी प्रकार पति-पत्नी भले ही दूर-दूर स्थानों में जन्मे हों, भिन्न-भिन्न प्रकृति के हों, फिर भी यदि वे परस्पर पूरी तरह घुल-मिल जाते हैं, एक-दूसरे के लिए अनन्य आत्मीयता रखते हैं, सहिष्णुतापूर्वक एक-दूसरे की कमी को निबाहते हैं और उसके पूरक बनने का प्रयत्न करते हैं, तो उनका सम्मिश्रित स्वरूप दम्पत्ति जीवन देवप्रिय खीर बन जाता है।

दूध और चावल दोनों के पूर्णतया आत्मसात हो जाने पर एक तीसरी चीज खीर बनती है। उसे जीवन-यज्ञ, समाज यज्ञ की पूर्णता के लिए प्रयोग किया जाता है। पति-पत्नी में जितना अधिक प्रेम, विश्वास एवं सहयोग होगा, उसी अनुपात से उनका सम्मिश्रित निर्माण-सन्तानोत्पादन सफल रहेगा। ऐसे दम्पत्ति ही सद्गुणी और सुसंस्कृत बालक उत्पन्न कर पाते हैं। देखा गया है कि जिन स्त्री-पुरुषों में परस्पर मनोमालिन्य, असन्तोष एवं असहयोग रहता है, कोई किसी की उपेक्षा अथवा अनादर करता रहता है, तो उसका बुरा प्रभाव बालक के स्वभाव एवं शरीर पर भी आता है। ऐसे बालक मन्द बुद्धि, कुरूप एवं अनेक दोष-दुर्गुणों से, रोगों से ग्रसित पाये जाते हैं। सुसन्तति की आशा वहीं की जा सकती है, जहाँ पति-पत्नी में अनन्य प्रेम हो। जिस प्रकार दोनों के रज-वीर्य के सम्मिश्रण से बालक का शरीर बनता है, उसी प्रकार दोनों के बीच परस्पर सम्बन्धों के मिश्रण से उसका स्वभाव एवं मानसिक स्तर बनता है। इस तथ्य को 'चरु-प्रदान' की क्रिया के माध्यम से हृदयंगम करना चाहिए। यदि अब तक पारस्परिक सम्बन्धों में तनिक भी खिंचाव रहा है तो इन दिनों उस भूल को तुरन्त सुधार लेना चाहिए। अपनी ओर से जो भूल हो रही हो, उसे ढूँढ़ने तथा सुधारने का प्रयत्न किया जाय और साथी की त्रुटियों को हँसते हुए निबाहने एवं प्रेमपूर्वक सुधारने के लिए सचेष्ट रहा जाय तो कटुता एवं उपेक्षा आसानी से स्नेह-सहयोग में परिणत हो सकती है।

सद्भाव एवं शुभकामना संचय

गर्भवती को अपने पति का नहीं वरन् पूरे परिवार का ही स्नेह-सद्भाव अपने लिए अर्जित करना चाहिए। इन दिनों उसे क्रोध तो तनिक भी नहीं करना चाहिए। रूठना, कुढ़ना, भोजन छोड़ बैठना जैसी बुरी आदतें तत्काल छोड़ देनी चाहिए। घर का कोई व्यक्ति कटु या अनुचित व्यवहार करे तो भी अपनी शालीनता तथा उदारता से उसे उपेक्षा में बहलाकर अपना मानसिक सन्तुलन सही बनाये रखना चाहिए। उत्तेजना का वातावरण शान्त हो जाने पर पीछे उचित अवसर पर अपनी भूल हो तो उसकी क्षमा-याचना और यदि गलतफहमी हो तो उसका स्पष्टीकरण नम्रता और मधुरता के साथ कर देना चाहिए। इससे कटुता दूर हो जाती है। लड़ाई तो तब बढ़ती है, जब आवेशग्रस्त होकर कटु व्यवहार करने वाले को वैसा ही तुर्की-ब-तुर्की जवाब दिया जाता है। आग को आग से नहीं पानी से शान्त किया जाता है। आवेश का आवेश के साथ उत्तर देने पर बात बढ़ जाती है, किन्तु यदि एक पक्ष शालीनता एवं सज्जनता अपनाये रहे तो आवेशग्रस्त को जल्दी ही शान्त कर सकता है। गर्भवती को अपना स्वभाव ऐसा ही शालीनता एवं सज्जनतापूर्ण बनाना चाहिए ताकि घर में भी शान्ति रहे, उसकी प्रशंसा भी हो और बालक पर वैसी ही छाप पड़े।

मधुर व्यवहार, शिष्टाचार, सेवा भाव, मुस्कान, समादर के साथ घर के लोगों से व्यवहार किया जाय तो कई तरह की त्रुटियाँ रहने पर भी सद्भाव रखते हैं। सारे परिवार का सद्भाव प्राप्त करने के लिए गर्भवती को पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिए। श्रद्धा के बदले आशीर्वाद मिलता है। इसलिए परिवार के सभी सदस्यों के प्रति समुचित श्रद्धा, सहानुभूति एवं समादर बुद्धि रखी जाय तो वे सभी अपने प्रशंसक रहेंगे और वाणी या मन से आशीर्वाद देते रहेंगे। यह शुभकामना गर्भवती एवं गर्भस्थ बालक के भावनात्मक विकास में सब प्रकार सहायक होती है।

अपने से बड़ों को नित्य चरण-स्पर्श करने का नियम इसी पुंसवन के दिन से गर्भवती को बना लेना चाहिए। सास, ससुर, जिठानी, ननद, बुआजी, दादी आदि सभी बड़ों के प्रातःकाल उठकर चरण-स्पर्श करने का नियम बना लेना चाहिए और उसे स्मरणपूर्वक नित्य ही प्रयोग में लाना चाहिए। इस प्रकार के श्रद्धा व्यवहार से बालक भी श्रद्धालु प्रकृति का होता है और बड़ों के आशीर्वाद तथा छोटों के सद्भाव का लाभ निरन्तर मिलते रहने से बालक भावनात्मक स्तर का सुविकसित बनता है। गर्भवती को प्रसन्नता एवं सन्तोष का लाभ मिलता रहता है, सो अलग। गर्भवती का यह नियम यदि पहले से ही नहीं चल रहा है तो पुंसवन संस्कार के दिन से तो उसे आरम्भ कर ही देना चाहिए।

संस्कार के अन्त में सब लोग मिलकर पुष्प बिखेरते हुए आशीर्वाद देते हैं, तब उन्हें भी यह समझना चाहिए कि वे आज ही नहीं निरन्तर अपनी सद्भावना, शुभकामना उसके ऊपर अजस्र रूप में बरसाते रहें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गर्भिणी की ओर से कोई भूल हो तो उसको ध्यान में न लाते हुए सभी अपना कर्त्तव्य पालन करें। गर्भस्थ बालक को सच्चा मानसिक आहार इन महीनों में अधिकाधिक सद्भाव आशीर्वाद देकर ही पहुँचाया जा सकता है। इसमें घर का कोई सदस्य अपनी ओर से किसी प्रकार की कमी न रहने दे। जन्मने के बाद तो शिशु को सभी प्यार करते हैं, आवश्यकता इस बात की है कि जन्म से पूर्व भी माता की मारफत उस तक अधिकाधिक स्नेह पहुँचाया जाय। यदि वह भावनात्मक आहार उसे समुचित मात्रा में मिलता रहा तो निःसंदेह उसमें साहस, धैर्य, पराक्रम, संयम, व्यवस्था, सज्जनता, बलिष्ठता, प्रतिभा जैसी कितनी ही विशेषताएँ आरम्भ से ही उपजने और बढ़ने लगेंगी। शुभ संस्कारों के बीजारोपण का उपयुक्त समय पुंसवन संस्कार के दिन से ही आरम्भ हो जाता है, इसलिए इस पवित्र पारिवारिक उत्तरदायित्व को घर का हर सदस्य निबाहने के लिए पूरी तरह तत्पर होना चाहिए। पुंसवन की यह प्रेरणा सभी को शिरोधार्य करनी चाहिए।

गर्भ में बालक का विकास

गर्भ में रहने के बाद से शरीर-रचना के पूर्णतया प्राप्त होने तक बच्चे के अंगों का लगभग अस्सी प्रतिशत विकास हो जाता है। जब तक वह गर्भ में बनता और बढ़ता रहता है, उसके शरीर को अधिक से अधिक कोषों की आवश्यकता पड़ती है, जो संख्या में लाखों तक पहुँच जाते हैं। जिस प्रकार सुन्दर व मजबूत इमारत बनाने के लिए मजबूत ईंटों व अच्छे मसाले की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार शिशु की रचना के लिये अच्छे व स्वस्थ कोष चाहिए। यह मानी बात है कि जब बच्चे के शरीर का पोषण माता के शरीर के भीतर ही होता रहता है तो उसकी आवश्यकता के उचित माल-मसाला माता के खाये हुए भोजन पर ही निर्भर रहता है।

शिशु की नाभि में नाल लगा होता है, जिसे उसके पैदा होने के बाद काट दिया जाता है। गर्भाशय में बच्चे की नाभि से निकला हुआ नाल बच्चेदानी की सतह में बने हुए प्लेसेंटा अर्थात् कमल से जुड़ा रहता है और इसी के द्वारा गर्भ अथवा भ्रूण माता के शरीर से सम्बन्धित होता है। प्लेसेंटा में बहुत-से ऐसे स्थान होते हैं, जो रक्त से भरे रहते हैं। प्लेसेंटा को हम एक छोटा-सा रसोईघर कह सकते हैं। जिस प्रकार ब्लाटिंग-पेपर स्याही को सोख लेता है, उसी प्रकार प्लेसेंटा माता के शरीर में दौड़ते हुए रक्त से बच्चे के योग्य खाद्य-पदार्थ सोख लेता है और उसे फिर नाल द्वारा बच्चे की रक्त नाड़ियों में पहुँचा देता है। माता की रक्त-नाड़ियों से एक बूँद भी रक्त बच्चे की रक्त-नाड़ियों में सीधा नहीं पहुँचता। माता और शिशु के बीच एक अच्छी-खासी दीवार रहती है और माता के शरीर के भीतर ही रहता हुआ बच्चा अपना अस्तित्व माता से अलग रखता है। पर जिस प्रकार बिना जड़ की अमरबेल अपना अलग अस्तित्त्व रखते हुए भी किसी अन्य वृक्ष में अपने अंकुर गढ़ाकर अपना भोजन चूस लेती है, उसी प्रकार गर्भस्थ शिशु भी नाल के द्वारा माता के शरीर से ही अपना पोषण किया करता है। उसका पोषण केवल माता के शरीर में दौड़ते हुए रक्त से होता है।

अच्छा रक्त अच्छे और पौष्टिक भोजन पर ही निर्भर है। नशीली अथवा जहरीली वस्तुओं के गुणावगुण, सोचने का ज्ञान नाल अथवा प्लेसेंटा में नहीं होती। यदि माता शराब या तम्बाकू पीती है तो इन दोनों में पाये जाने वाले विष बच्चे के शरीर के तन्तुओं में पहुँच जाते हैं और बहुत हानि पहुँचाते हैं। गर्भावस्था में कुनैन नाम की दवा अधिक मात्रा में खाने से बहरा बच्चा पैदा होने का अन्देशा रहता है। अफीम या मारफिया खाने वाली माँ अधिकतर नशेबाज या ऊँघते-से बच्चे को जन्म देती हैं। भाग्यवश हमारे देश में शराबी, अफीमची, गँजेड़ी, भँगेड़ी अथवा सिगरेट फूँकने वाली स्त्रियों की संख्या बहुत कम है, अतः गर्भस्थ शिशु पर इन पदार्थों के प्रयोग के प्रभाव विस्तार सहित लिखने की आवश्यकता नहीं दीखती। पर सभ्य कहे जाने वाले समाज में (शिक्षित नव-युवकों में) एक बात अवश्य देखने में आती है। दस-पन्द्रह वर्ष पूर्व लोग जिन आदतों को बुरा समझते थे और उनसे दूर रहने का प्रयत्न करते थे, उनको अब शिक्षित नवयुवक खुल्लम-खुल्ला अपनाने लगे हैं। सिगरेट और शराब तो आजकल में दाखिल हो गये हैं। गाली बकना आज का वेद-मन्त्र उच्चारण है। इन बुराइयों का प्रभाव गर्भस्थ बालक पर पड़ता है। इसलिए आहार और विचार दोनों की ही समुचित सावधानी रखी जानी चाहिए।

बहुत-सी माताएँ जब तक उनके गर्भ रहता है, मिर्च, खटाई और अचार के पीछे पड़ी रहती हैं। यह बहुत ही हानिप्रद है। मिर्च, खटाई का अधिक उपयोग साधारण स्थिति में ही बहुत हानि पहुँचाता है। गर्भावस्था में तो यह हानिकारक वस्तुएँ विशेष रूप से मना हैं। स्वाद भर के लिए तरकारी में नाममात्र मिर्च डाली जा सकती है पर किसी भी रूप में उसे न खाना चाहिए। तेल में पकी हुई चीजें खाना भी छोड़ देना चाहिए। सबसे बढ़कर लाभदायक और बिना पैसे की वस्तु है पानी। पानी खूब पीना चाहिए। डाक्टरों का कहना है कि गर्भस्थ शिशु की सुन्दरता गढ़ने वाले नुस्खे में कुदरत ने स्वच्छ, ठण्डे पानी को विशेष महत्त्व दिया है।

गर्भावस्था के नौ महीनों में ज्यों-ज्यों पेट बढ़ता जाता है, पीठ की माँसपेशियों पर जोर भी अधिक बढ़ता जाता है। उन माँसपेशियों के आराम के लिए दिन में कई बार दस-दस मिनट के लिए तखत अथवा समतल भूमि अथवा किसी कड़ी सतह पर पीठ के बल घुटने मोड़कर लेटे रहना चाहिए। इससे पीठ की माँसपेशियों को आराम मिलता है और माता का शरीर भी भद्दा नहीं होने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाता। ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिससे अत्यधिक थकान मालूम हो।

यह तो एक साधारण-सी बात है। मनुष्य जब चिन्ताग्रसित होता है अथवा उसे कोई बड़ा दुःख होता है तो वह चाहे जितने प्रकार के पौष्टिक पदार्थ खाये, उसके शरीर में कुछ लगता ही नहीं। माता के चिन्तित होने से अथवा दुःखी रहने से उसके शरीर पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ेगा। उद्विग्न मन से अस्त-व्यस्त हुआ पाचन-संस्थान ठीक प्रकार भोजन पचा नहीं पाता, फिर गर्भ में बच्चे को भोजन कहाँ से मिलेगा, जो माता के खाये हुए भोजन के बने रक्त से ही खाद्य-पदार्थ चूसकर पलता है। हँसमुख होना, प्रसन्नचित्त रहना भी एक संक्रामक विषय होता है, जो एक-दूसरे के संसर्ग से फैलता रहता है। यदि माता हँसमुख है, सदा प्रसन्न रहती है, तो उसके बच्चे में भी यह गुण पाया जायेगा। प्रसन्नचित्त माता के मुहर्रमी बच्चा होने की सम्भावना बहुत कम होती है। स्वास्थ्य, सौन्दर्य और सुख—जहाँ यह तीनों हों, वहाँ और क्या कमी रह जाती है ?

पाश्चात्य देशों में बालक पर माता-पिता के प्रभाव एवं उसे सुन्दर बनाने के विषय पर बहुत मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया है और इसके लिए वहाँ के वैज्ञानिक गर्भस्थ शिशु पर माता के रहन-सहन, खान-पान के प्रभाव के विषय में कोई प्रमाणपूर्ण बात की खोज में लगे रहे हैं। ऐसे ही एक प्रयोग के अन्तर्गत जिस मैदान में भेड़ें चरने के लिए जाया करती थीं, वहाँ एक वैज्ञानिक ने ऊँचे-ऊँचे बहुत-से तख्ते खड़े कर दिये, जो आधे काले और आधे सफेद पुते हुए थे। कहा जाता है, गर्भवती भेड़ों पर उन तख्तों को निरन्तर देखते रहने का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनके बच्चे चितकबरे पैदा हुए।

किस प्रकार के दम्पत्ति कैसी सन्तान को जन्म देते हैं, इस विषय में मेण्डल नाम के एक वैज्ञानिक के आरम्भ किये हुए अनुसन्धानों के आधार पर आज तक खोज चल रही है। वैज्ञानिकों का कुछ ऐसा विश्वास-सा हो गया है कि सन्तान का स्वास्थ्य, उसकी सुन्दरता अधिकतर इस बात पर निर्भर करती है कि उसके माता-पिता का जोड़ कैसा है ? यदि दोनों की आँखों की पुतलियाँ काली हैं, तो सन्तान भी काली पुतलियों वाली होगी, यदि कंजी है, तो सन्तान भी कंजी होगी। यदि दोनों का रंग गोरा है, तो काली सन्तान होने की बहुत कम सम्भावना है। यदि माता-पिता दोनों लम्बे कद के हैं, तो सन्तान भी औसत लम्बाई वालों से ऊँची होगी। यदि माता-पिता ठिगने कद के हैं, तो सन्तान भी ठिगनी होगी। पर उन दोनों से थोड़ी ऊँची होगी। यदि दोनों में एक लम्बा है, एक ठिगना, तो सन्तान का कद ठिगना होने की अधिक सम्भावना है। इकहरे शरीर वाले माता-पिता की सन्तान उनसी हो सकने की अधिक आशा है, पर मोटे अथवा दोहरे शरीर वाले माता-पिता के बच्चे उनसे नहीं भी हो सकते हैं।

गर्भस्थ शिशु का पोषण

केवल शरीर-गठन, स्वास्थ्य-संरक्षण और आदतों से ही नहीं, बच्चे की चेतन-शक्ति का विकास भी माता के सोचने और चिन्तन के अनुरूप ही विकसित होता चला जाता है। शिशु पर उन बाह्य-परिस्थितियों का भी प्रभाव पड़ता है, जिनसे माता प्रभावित होती है। कहने का भाव यह कि शिशु—माँ के भीतर बैठा हुआ वह जीव है, जो अपना सब कार्यकलाप माता की इन्द्रियों के माध्यम से ही सम्पन्न करता है।

शिशु जब जन्म लेता है और जब तक माता का दूध पीता रहता है, उस समय तक उसका स्वास्थ्य बहुत कुछ माता के भोजन पर निर्भर करता है। उसकी दूसरी आदतों में माँ का ही विशेष हाथ रहता है, फिर भी बाद में बालक अन्य क्षेत्रों से भी कुछ सीखना प्रारम्भ करता है, परन्तु भोजन के सम्बन्ध में उस समय भी वह माता के खान-पान से प्रभावित होता रहता है।

अतः माता के भोजन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जिस समय गर्भ में बालक के शरीर का विकास होने लगता है, माता के शरीर में उपस्थित पोषक-तत्वों की बड़ी कमी पड़ने लगती है क्योंकि माता के रक्त, माँस, हड्डी से ही बालक का शरीर बनना प्रारम्भ होता है। फलस्वरूप माता के शरीर में प्रोटीन, खनिज-लवण, विटामिन, कैल्शियम, फॉस्फोरस की कमी पड़ने लगती है और माता का शरीर इनके अभाव में दुबला-पतला, शक्तिहीन और पीला पड़ने लगता है।

इस समय उसे इन सभी पोषक-तत्त्वों की पूर्ति उसके अनुरूप पोषण-तत्त्वों को देकर करनी चाहिए और इसके लिए सन्तुलित आहार के चार्ट से बड़ी सहायता मिलती है। प्रोटीन की पूर्ति दो दाल वाले अनाज जैसे—चना, मटर, अरहर आदि एवं फलों और सागों से होती है।

साथ ही साथ दूध का भी उचित मात्रा में नित्य प्रयोग करना चाहिए क्योंकि दूध से प्राप्त प्रोटीन उच्च कोटि का होता है और शीघ्र पचता है, इसमें सभी प्रकार के तत्त्व पाये जाते हैं, जो बड़ी शीघ्रता से पूरे अंग में फैल जाते हैं। बालक की हड्डियों और दाँतों का निर्माण कैल्शियम से होता है। यह भी दूध से प्राप्त होता है, इसलिए गर्भिणी के स्वास्थ्य एवं शिशु दोनों के लिए दूध का यथेष्ट मात्रा में उपयोग होना चाहिए।

ताजे फल, हरी सब्जियाँ, मक्खन, घी, मट्ठा, दही एवं मेवे का भी यथाशक्ति प्रयोग करना चाहिए। फलों का प्रयोग शरीर को हल्का, विकाररहित एवं प्रसन्नचित्त बनाता है। हरी सब्जियाँ पचने में सरल एवं मल के निष्कासन में सहायक होती हैं। इनसे भोजन सुपाच्य हो जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छोटे बच्चे अपनी इच्छानुकूल खिलौने पाकर फूले नहीं समाते। विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण होने की बात सुनकर आत्मविभोर हो उठते हैं। ठीक यही इसके विपरीत होने पर उनका हृदय कुण्ठित हो जाता है। इसी के अनुरूप गर्भवती माता की और उसके गर्भ में आये हुए बच्चे की परिस्थिति समझनी चाहिए।

इस सन्दर्भ में महर्षि सुश्रुत का आदेश है कि गर्भवती माँ, जिसे दौहृद अर्थात्—'दो हृदय रखने वाली' कहते हैं, उसकी इस अवस्था की प्रत्येक इच्छाओं की पूर्ति करनी चाहिए क्योंकि उसकी इच्छाओं की पूर्ति के साथ गर्भ के बच्चे की इच्छाओं की पूर्ति हो जाती है और बच्चे का मन प्रसन्न-मुद्रा में रहता है, जिससे उसे दीर्घायु मिलती है और वह वीर्यवान होता है। लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता है कि गर्भवती की कुछ इच्छाएँ स्वास्थ्य के विचार से न्यायसंगत नहीं रहतीं। ऐसे अवसर पर बड़े विवेक एवं चतुरता से उनका समाधान करना चाहिए अन्यथा शिशु में दोष आ जायेंगे।

ऐसा वातावरण बनाये रखना चाहिए कि गर्भवती माता की मनःस्थिति सुव्यवस्थित एवं सन्तुष्ट और आशा से परिपूर्ण बनी रहे। इसके लिए उसे सुन्दर, सुसज्जित स्थान में रहना चाहिए। उसके कमरे में वीर-पुरुषों के चित्र और विचारकों के उद्देश्य सूक्ष्म रूप में लिखकर लगे रहने चाहिए। इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव बड़े अच्छे ढंग से पड़ता है।

हम देखते हैं कि छोटे बच्चे अपनी माता तथा पास-पड़ोसियों की बातों और उनके कार्यों से बहुत जल्दी प्रभावित हो जाते और उनके अनुरूप काम करने लगते हैं। यही बात गर्भस्थ-शिशु की भी है। माता जैसी कथाएँ पढ़ती, जैसा सुनती हैं, उसकी ही छाप गर्भस्थ-बालक पर भी पड़ती रहती है। अतः माताओं का यह आवश्यक कार्य है कि गर्भस्थ शिशु के कल्याण और उनके भविष्य का सर्वप्रथम ध्यान रखकर अपना खान-पान और रहन-सहन बनावें।

गर्भवती स्त्री की सावधानियाँ

माता बनना गौरव की बात है, परन्तु श्रेष्ठ सन्तान की माता बनना सौभाग्य की बात है। सात्विक माता-पिता की सन्तानें जिनका लालन-पालन उचित रीति से होता है, उन्हीं से माता-पिता सुख उठाते हैं और संसार का भी कुछ हित-साधन होता है। उत्तम सन्तान के लिए भारी मूल्य चुकाना पड़ेगा। जन्म से पहले भी और गर्भावस्था से शैशव काल तक।

यह तैयारी का समय होता है, जिस दिन से गर्भ में बालक आ जाता है, उसी दिन से माता-पिता पर भारी जिम्मेदारी आ जाती है। कुछ नवीन कार्य उन्हें करने आवश्यक हो जाते हैं और पहले से करते रहने वाले कुछ कार्यों को उन्हें 'निषेध' करना पड़ता है। माता को अपने खान-पान, सोच-विचार की शैली, दिनचर्या में आवश्यक हेर-फेर करना पड़ता है, पिता को कुछ अधिक ध्यान देना अनिवार्य रहता है। घर के सभी लोगों को भी गर्भवती माता की विशेष रूप से देखभाल करनी चाहिए।

आयुर्वेद का श्लोक है—

उपचारः प्रियहितैर्मात्रा भृत्यैश्च गर्भधृक्।
नवनीतघृतक्षीरैः सदा चैनामुपाचरेत्॥

गर्भवती स्त्री के साथ पति और भृत्यादिकों का प्रिय और हित उपचार गर्भ के स्थिर रखने में और पुष्ट करने में हितकारी होता है, यथा गर्भवती स्त्री को घृत, मक्खन और दूध आदि हितकारक पदार्थों का प्रयोग कराते रहना चाहिए, जिससे गर्भ का बालक सुन्दर और सर्वगुण सम्पन्न हो।

खान-पान—उपरोक्त श्लोक के अनुसार गर्भस्थ बालक में तीन विशेषता उत्पन्न करने के लिए उसके खान-पान पर सर्वप्रथम ध्यान देना पड़ेगा। ये तीन विशेषताएँ हैं—(१) सन्तान का सुन्दर होना, (२) पुष्ट अर्थात् स्वस्थ होना, (३) सर्वगुण सम्पन्न होना।

शायद प्रत्येक माता-पिता अपनी सन्तान में यह तीन विशेषताएँ पैदा करना चाहेंगे। कौन अभागा होगा जो न चाहेगा, परन्तु इच्छा मात्र से काम चलने वाला नहीं। जब 'इच्छा' के साथ 'प्रयत्न' को जोड़ा जायेगा तभी फल मिलेगा। अतः उपाय भी करना चाहिए।

गर्भवती स्त्री को घी, मक्खन, दूध, फल शाक आदि सुपाच्य और बलवर्द्धक वस्तुओं का सेवन अधिकाधिक करना चाहिए। गरीब लोगों को भी यथासम्भव अपनी सामर्थ्यानुसार इस सम्बन्ध में अधिकाधिक प्रयत्न करना चाहिए। परिवार के लोगों को विशेष रूप से गर्भवती स्त्री के लिए घी-दूध की व्यवस्था कर देनी चाहिए। स्त्रियाँ वैसे तो स्वभाव से संकोची होती हैं फिर भी त्यागी मनोवृत्ति की होती ही हैं। अपने पति, बच्चों या दूसरों को छोड़कर स्वयं दूध पीना, घी खाना उनके लिए अटपटा लगने लगता है। अतः यदि पति व्यवस्था भी करदे तो जब वह बाहर चला जाता है तो चुपके से बच्चों को पिला देंगी, समय से स्वयं न पियेंगी। इसलिए पति को या बड़ों को इस पर ध्यान देना चाहिए, प्रारम्भ में थोड़े दिनों तक अपने सामने उनको घी, दूध का सेवन कराना चाहिए ताकि उनका संकोच मिट जाये, आदत पड़ जाये। घर के सब लोगों तथा पति को गर्भवती स्त्री के मन में यह विश्वास जमा देना चाहिए कि यह विशेषता उसे अपने लिए नहीं वरन् बच्चे के लिए करनी पड़ रही है, यदि ऐसा न करेगी तो बच्चा हृष्ट-पुष्ट न होगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गर्भवती को हल्का, सुपाच्य और भूख से कम भोजन करना चाहिए। ठूँस-ठूँसकर खाना किसी भी दृष्टि से अच्छा नहीं होता।

गर्भ के दिनों में स्त्रियों की तबियत आमतौर पर अच्छी नहीं रहती। जी मिचलाना, दिल घबराना, बदन टूटना, सिर चकराना ये शिकायतें उन्हें इन दिनों में आमतौर पर रहती हैं। मुँह का स्वाद भी बहुधा बिगड़ जाता है। जीभ अजीब-अजीब चीजें जैसे—कोयला और मिट्टी आदि खाने को माँगती है। ये सब बातें अस्वस्थता के लक्षण हैं। शास्त्र निर्देश है—

अतिव्यवायमायासं भारं प्रावरणं गुरु।
अकाल जागरं स्वप्नम् कठिनोत्कटकासनम्।।
शोक क्रोध भयोद्वेग वेग श्रद्धा विधारणम्।
उपायासाध्वतीक्ष्णोष्ण गुरु विष्टं भिभोजनम्।।
रक्ते निवसनंश्चभ्रकूपेक्षां मद्यमामिषम्।
उतान शयनं यच्च स्त्रियों नेच्छति तत्त्यजेत्।।

गर्भवती स्त्री को मैथुन, अति व्यायाम और अति भार उठाना नहीं चाहिए तथा सीधे लेटकर भारी वस्त्र को ऊपर धारण करना, बिना समय जागना, बिना समय सोना, कठिन पदार्थों का खाना, कठिन आसन पर बैठना, पाँवों के भार बैठना, बहुत जोर से खाँसना, शोक, क्रोध, भय और उद्वेग करने वाले हेतुओं का सेवन करना, मूलमूत्रादि वेगों का रोकना, अपनी शुभ इच्छाओं को रोकना, उपवास करना, तीक्ष्ण, उष्ण, भारी और विष्टम्भी पदार्थों का भोजन करना त्याग देना चाहिए। ऐसे ही लाल रंग के कपड़े पहिनना, गड्ढे की ओर और कुएँ की तरफ देखना, मद्य और माँस खाना, उत्तान शयन करना तथा अन्य जिन अनुचित वस्तुओं को वृद्ध स्त्रियाँ उचित नहीं समझती हों अथवा गर्भवती को जिन वस्तुओं से द्वेष हो, उन सबको त्याग देना चाहिए।

वातलैश्च भवेद्गर्भः कुब्जान्ध जडवामनः।
पित्तलैः खलतिः पिंग:श्चित्री पांडुःकफात्मभिः।।

वातकारक पदार्थों को गर्भवती अधिक सेवन करे तो उसके गर्भाशय में वायु प्रकुपित होकर गर्भ के बालक को कुबड़ा, अन्ध, जड़ अथवा वामन बना देती है। ऐसे ही अधिक पित्तकारक आहार-विहार से गर्भ का बालक खल्वाट अथवा पिंगलवर्ण वाला हो जाता है एवं कफकारक अधिक आहार-विहार से श्वित्ररोगी या पाण्डुवर्ण वाला बालक उत्पन्न होता है। इस कारण किसी भी दोष को प्रकुपित करने वाले आहार-विहार का अति सेवन नहीं करना चाहिए।

व्याधींश्चाध्या मृदुसुखैरतीक्ष्णैरौषधैर्जयेत्।

यदि गर्भवती स्त्री को कोई व्याधि उत्पन्न हो जाय तो उसकी मृदु और सुखकारी स्वल्प तथा कोमल औषधि से चिकित्सा करनी चाहिए तथा रोग के चिकित्सा के समय भी कोई तीक्ष्ण पदार्थ या औषधि ऐसी नहीं देनी चाहिए जो गर्भ के लिए हानिकारक हो।

ऊपर के श्लोकों से चार बातें स्पष्ट होती हैं। गर्भवती को चार प्रकार की सावधानियाँ बरतने की आवश्यकता है—(१) कठोर पदार्थों का सेवन न करना, (२) कठोर और भारी वस्तुओं को न उठाना, (३) भय, क्रोध, उद्वेग उत्पन्न करने वाले कार्य न करना और (४) मैथुन क्रिया का निषेध।

१. कठोर पदार्थों का सेवन न करना—वह पदार्थ जो शीघ्रता से पचते नहीं हैं, देर तक पेट में अपच किए रहते हैं, उन्हें गर्भिणी को सेवन न करना चाहिए, क्योंकि इससे गर्भ के स्वाभाविक विकास में बाधा पड़ती है। उदाहरणार्थ, किसी खेत में जब बीज बो दिया जाता है, तो यदि उस खेत की मिट्टी नर्म और भुरभुरी रहती है तो बीज से अंकुर शीघ्र और सीधे निकलकर बाहर आ जाता है, लेकिन किसी कारण मिट्टी मुलायम नहीं होती या हल्की बूँदाबादी होने से ऊपर की मिट्टी में पपड़ी पड़ जाय तो अँखुए के निकलने में बाधा पड़ती है। वह बीज से फूटकर ऊपर तो निकलना चाहता है, परन्तु अधिक मुलायम और कोमल होने से कड़ी मिट्टी को भेदकर बढ़ने में उसकी अपनी शक्ति काम नहीं देती फलतः अन्दर इधर-उधर टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता है, सिकुड़ जाता है, कड़ा पड़ जाता है और देर से निकलता है। ठीक यही दशा गर्भस्थ बालक की होती है। उसके चारों ओर जड़ कड़े पदार्थों का बाड़ा लगा दिया जाता है तो बालक का स्वाभाविक विकास रुक जाता है। उसके नव-प्रस्फुटित अंग टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं। यही बालक उत्पन्न होने पर लूले, कुबड़े आदि प्रकार के होते हैं।

२. कठोर और भारी वस्तुओं का उठाना—कठोर और भारी वस्तुओं के उठाने से शरीर के अंग खिंचते हैं, उनमें तनाव पैदा होता है। गर्भाशय में बच्चे के होने से माँ के पेट के अन्दर अंग पहले से ही तन जाते हैं। जैसे किसी गुब्बारे में हवा खूब भर दी जाये तब यदि थोड़ी और हवा उसमें भरिये तो वह फटकर भ्रष्ट हो जायेगा। माता का पेट पहले ही बालक के धारण करने से तन जाता है, इतना तन जाता है कि उस बेचारी को चलना-फिरना भारी हो जाता है, बोलने में साँस फूलने लगती है। ऐसी अवस्था में यदि उसने कोई भारी वस्तु उठा ली तो यकायक पतले तन्तुओं के टूट जाने का सन्देह उत्पन्न हो जाता है। इसी कारण गर्भपात हो जाने या गर्भ में बच्चे के मर जाने की स्थिति हो जाती है।

३. भय, क्रोध, उद्वेग उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ न आने देना—आपने देखा होगा कि अति भय की परिस्थिति उत्पन्न होने पर रोंगटे खड़े हो जाते हैं, शरीर में कम्पन पैदा हो जाती है, होश-हवाश गायब हो जाते हैं। क्रोध में आदमी अपने को भूल जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उद्वेगों का प्रभाव मनुष्य शरीर पर बहुत पड़ता है। इससे हमारी अन्तर्निहित शक्तियाँ यकायक जाग्रत भी हो जाती हैं और जाग्रत शक्तियाँ सुप्तावस्था में भी हो जाती हैं। यही कारण है कि अति प्रसन्नता, अति शोक, अति क्रोध में मनुष्य की यकायक मृत्यु भी हो जाती है या पागल हो जाता है। उसकी क्रियाएँ बदल जाती हैं। गर्भवती के सामने इन विषम परिस्थितियों के आने से यही अवस्था हो जाने का भय तो रहता है लेकिन उससे भी अधिक गर्भस्थ बालक पर प्रभाव पड़ने का डर रहता है। स्त्रियाँ स्वभावतः दुर्बल हृदय की होती हैं। उन पर इन उद्वेगों का प्रभाव शीघ्र पड़ जाता है। अतः गर्भिणी को इन कार्यों से बचाना चाहिए। इसीलिए कुएँ में झाँकना, नदी या जलाशय आदि में झाँकना आदि भयप्रद दृश्य का देखना भी वर्जित किया गया है।

'नेशनल ऐकेडेमी ऑफ साइंसेज' तथा 'नेशनल रिसर्च कौंसिल' अमेरिका के सर्वेक्षणों से पता लगा है कि जो माताएँ गर्भावस्था में गरिष्ठ, चटपटे एवं नशीले पदार्थ खाती रहीं हैं, उनके बालक उदर रोगों से ग्रसित, देर से विकसित होने वाले तथा मन्दबुद्धि पाये गये हैं, जो स्त्रियाँ मितली तथा उदासी की दवा अधिक मात्रा में उन दिनों लेती रही हैं, उनकी और डाक्टरों की गलती का दण्ड निर्दोष शिशुओं को भोगना पड़ता है।

इसी प्रकार मानसिक चिन्ताएँ तथा विग्रहजन्य मनःस्थिति का प्रभाव बच्चों के चरित्र तथा स्वभाव पर पड़ता है। ऐसी स्थिति से ग्रसित रहने वाली स्त्रियाँ ऐसे बच्चे जनती हैं, जो अपने लिए तथा दूसरों के लिए समस्या बनकर रहते हैं।

कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी की एक जाँच समिति ने कहा है कि गर्भवती स्त्रियों को प्रोटीन देने के नाम पर उन्हें माँस और अण्डे खाने की सलाह दी जाती है। यह दोनों ही चीजें उन दिनों दूसरे प्रकार की प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करती हैं। इसलिए उन्हें शाकाहारी भोजन ही देना चाहिए और नशीली चीजों से तो सर्वथा बचाना चाहिए।

उन दिनों बिल्कुल निठल्ले बैठना तो ठीक नहीं, किन्तु इतना परिश्रम भी न करना चाहिए जो पेट में बच्चे की स्थिति पर दबाव डाले, कड़े परिश्रम से तेज साँस चलती है और उसका बच्चे के फेफड़ों पर दबाव पड़ता है। कॉफी और चाय की भरमार करने से गर्भपात तक का भय रहता है। मिट्टी खाने लगना तथा तम्बाकू का सेवन करना भी प्रसवकाल की कठिनाइयों को बढ़ाना और बच्चे के भविष्य को अनेक प्रकार से झंझट भरा बनाना है।

गर्भवती का मन उत्साहित रखने के लिए डाक्टर अक्सर स्टीमुलेण्ट स्तर की दवाएँ देते हैं। उसका एक अंश बच्चे के शरीर में भी चला जाता है। फलतः बच्चे जन्म से पहले ही अपने साथ रक्त विकार की शिकायतें साथ लेकर आता है। उसके गुर्दे कमजोर पाये जाते हैं।

गर्भवती की स्वयं की बड़ी जिम्मेदारी है कि वह बच्चे के हित-अहित का ध्यान आरम्भ से ही रखे और परिस्थितियाँ कठिनाई से भरी हों तो भी उन्हें सहन करे या सरल बनाने की कोशिश करे। उन दिनों मन आमतौर से अस्वस्थ रहता है और छोटी-छोटी बातों पर खीज, झल्लाहट आने लगती है। दूसरों की शिकायतों को भी कई बार भावुकतावश बहुत अधिक बढ़ा-चढ़ाकर मन में धारण कर लेती है। इन परिस्थितियों से अपने आपको बचाना चाहिए।

परिवार के सभी लोगों का कर्त्तव्य है कि वे गर्भिणी को एक प्रकार से नवजात शिशु के रूप में समझें और न केवल उसके शारीरिक स्वास्थ्य का वरन् मानसिक स्थिति का भी ध्यान रखें। उस पर चिन्ता, भय, क्रोध का असर पड़े ऐसे अवसर नहीं आने देना चाहिए। जरूरी होने पर औषधियों का सेवन भी सतर्कतापूर्वक ही करने दें।

गर्भावस्था में ली गई औषधियाँ गर्भस्थ शिशु में शारीरिक, मानसिक विकृतियाँ पैदा कर सकती हैं। येल विश्वविद्यालय के शोधार्थी ब्रेन्डा एक्सेना तथा मिशैल ब्रैकेन ने लगभग १५०० उन महिलाओं का अध्ययन किया है, जिन्होंने जन्मजात दोषयुक्त सन्तानों को जन्म दिया था। तुलनात्मक अध्ययन के लिए ३००० स्वस्थ सन्तानों की जन्मदात्रियों से भी शोधार्थी मिले। मिचली, उल्टी आदि से बचने के लिए जिन गर्भिणी महिलाओं ने एण्टी हिस्टेमीनीक, एण्टीएमेटीक आदि दवाओं का प्रयोग किया था उनके बच्चे अन्यों की अपेक्षा अधिक दोषी विशेषतया उदर विकारी मिले। अन्य शोधों में प्रायः उल्टी रोकने वाली दवाओं का सेवन करने वाली माताओं के शिशुओं के हृदय किसी न किसी प्रकार दोषयुक्त मिले। इन शोधकर्त्ताओं के अध्ययनों के अनुसार अमेरिकी खाद्य एवं दवा संघ ने बेने डेक्टिन जैसी दवाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया है, क्योंकि इससे शिशु के आमाशय में विकृति पाईलोरिक स्टेनोसिसे के रूप में बनती है। स्पष्ट है कि गर्भवती को मिचली आदि से बचाकर गर्भस्थ शिशु के गलत निर्माण का खतरा उठाना विवेकसम्मत नहीं है।

आलसी महिलाओं के बच्चे देर से चलने एवं बोलने वाले पाये गये हैं। न्यूजीलैण्ड विश्वविद्यालय में ऐसी महिलाओं का विशेष रूप से सर्वेक्षण किया गया जिनके बच्चे मन्द बुद्धि, धीमी प्रगति के थे। मालूम हुआ कि उनकी माताएँ गर्भावस्था में अक्सर खिन्न रहती रही हैं और उन दिनों उनका उत्साह मन्द रहा। इस अध्ययन में डेढ़ वर्ष के बाद चलने वाले शिशुओं को मन्द माना गया। इसी प्रकार २ वर्ष बाद बोलने वाले मन्द की श्रेणी में विभाजित किये गये। संग्रहीत आँकड़ों के अनुसार २० प्रतिशत से अधिक मन्द डोलने या बोलने वाले अथवा दोनों निकले। इनकी बुद्धिलब्धि भी निम्नतम स्तर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की रही। अपेक्षाकृत पाठन योग्यता में भी वे पीछे रहे। सामान्य औसत १०० मान लेने पर मन्द बोलने या डोलने वालों का प्रतिशत ६६ रहा।

जिन माताओं को भविष्य के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का भान नहीं, वे उन दिनों अस्त-व्यस्त रहकर उनकी प्रगति में बाधा डालती हैं। जो बच्चों को भार और प्रसव को आफत मानती हैं, उनके लिए यही अच्छा है कि वे गर्भ धारण न करने को अच्छा समझें और उस बचाव के लिए आवश्यक सतर्कता बरतें। किन्तु जो गर्भावस्था से गुजर रही हैं, उन्हें प्रसन्नचित्त रहना चाहिए, अवांछनीय खान-पान, विकृत वातावरण, प्रदूषित माहौल आदि से बचना चाहिए। सुसंततियाँ तभी जन्मेंगी।

गर्भवती की परिचर्या

गर्भाधान यद्यपि शरीर का एक प्राकृतिक कर्म है, तथापि इस काल में गर्भिणी को अत्यन्त सावधान रहना आवश्यक है। बहुधा इस काल की तनिक-सी असावधानी का फल अत्यन्त घातक हो जाता है। इसीलिए सभी चिकित्सा शास्त्रज्ञों का मत है कि गर्भिणी को प्रारम्भ से ही किसी चतुर चिकित्सक या लेडी-डाक्टर की देख-रेख में आ जाना चाहिए। इस समय अपने व भावी शिशु के प्रति अपना कर्त्तव्य पूर्णतः पालन करने के हेतु आरम्भ में प्रति मास एक बार और पाँच मास पश्चात् प्रति मास दो बार चिकित्सक के पास जाकर परामर्श लेते रहना आवश्यक है।

गर्भवती स्त्री के स्वास्थ्य की स्थिरता के लिए स्वच्छ वायु एवं सूर्य के प्रकाश की सर्वप्रथम आवश्यकता है। स्वच्छ एवं शीतल वायु में ऑक्सीजन की पर्याप्त मात्रा के कारण शरीर में न केवल प्राणों का संचार होता है वरन् जीवनीशक्ति की वृद्धि भी इसी पर आधारित होती है। शरीर के विभिन्न अंग निरन्तर क्रियाशील रहते हैं। जिसके फलस्वरूप वे कोषाणु जिनसे तन्तुओं का निर्माण होता है, निरन्तर टूटते-फूटते रहते हैं। यह टूट-फूट दूषित द्रव्य का रूप ग्रहण कर लेती है। इस दूषित पदार्थ का शरीर से बाहर निकलना नितान्त आवश्यक है। जिस प्रकार अँगीठी की जाली पर से राख को बराबर न झाड़ा जाय तो आग अँगीठी में नहीं जलती, उसी प्रकार इस दूषित पदार्थ का उचित रूप से निष्क्रमण न होने पर शारीरिक प्रक्रिया में बाधा पड़ती है। गर्भवती स्त्री के शरीर में दूषित पदार्थ के एकत्रित हो जाने पर उसे तथा भ्रूण दोनों को हानि पहुँचेगी।

यदि ऑक्सीजन समुचित मात्रा में नहीं प्राप्त होगी तो दूषित पदार्थों पर रासायनिक प्रक्रिया भली प्रकार से न हो सकेगी और मैल भी शरीर के बाहर पूर्णतः न निकल सकेगा। अतः गर्भिणी तथा भ्रूण के स्वस्थ रहने के लिए अधिक से अधिक ऑक्सीजन मिलनी आवश्यक है। इसके लिए उसके कमरे की खिड़की, दरवाजे खुले रहें ताकि कमरे की दूषित वायु निकल सके व स्वच्छ वायु निरन्तर अन्दर प्रवेश करे।

सूर्य-प्रकाश भी एक विलक्षण 'बल-वर्द्धक औषधि' है। यह रक्त को शक्ति प्रदान करता है तथा उसे शरीर के विभिन्न भागों में लोहा, कैल्शियम, फॉस्फोरस व आयोडीन पहुँचाने की क्षमता प्रदान करता है। यदि प्रातः उदित होते सूर्य की किरणें शरीर पर पड़ें तो शरीर में वह प्रकाश का पोषण-तत्त्व विटामिन 'डी' उत्पन्न हो जाता है। इससे गर्भिणी का स्वास्थ्य व शक्ति बनी रहती है तथा भ्रूण के अस्थि-निर्माण में बहुत सहायता मिलती है। इसीलिए उसे प्रातःकाल कुछ देर सूर्य-प्रकाश लेना लाभदायक होगा। उसके कमरे में भी दिन में किसी न किसी समय धूप का प्रवेश अवश्य होना चाहिए। इससे कमरे का शुद्धीकरण हो जाता है।

परिश्रम—गर्भाधान शरीर की एक प्राकृतिक क्रिया है। यह किसी रोग का लक्षण नहीं है। अतएव स्वस्थ व्यक्ति की भाँति ही शरीर को सचेष्ट रखने, पाचन क्रिया को व्यवस्थित रखने तथा विभिन्न अंगों को पुष्ट रखने के लिए प्रसवा को कुछ न कुछ परिश्रम करते रहना चाहिए। स्वयं को किसी असाधारण दशा में ग्रस्त अथवा रोगी मानकर गर्भवती का सारा दिन लेटे रहना अपने व भ्रूण के प्रति शत्रुता करना है।

साधारण घरों में गृहस्थी के साधारण कार्यों के सम्पादन से भी गर्भिणी का पर्याप्त परिश्रम हो जाता है। जहाँ तक हो चलने-फिरने का कार्य करते रहना चाहिए। हर समय बैठे रहने से अथवा लेटे रहने से स्वास्थ्य की हानि के अतिरिक्त प्रसव-काल में भी अत्यन्त कष्ट होता है।

श्रम करते समय अत्यधिक बोझ-भार उठाने से गर्भपात का भय रहता है। गर्भ के प्रथम तीन मासों में इस ओर विशेष सावधानी रखना आवश्यक है, क्योंकि इस समय रक्त-स्राव की अधिक सम्भावना रहती है। शारीरिक श्रम में इस बात का भी अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि गर्भिणी स्वयं को अत्यधिक न थका ले। इससे बहुधा निद्रा-नाश की शिकायत हो जाती है।

विश्राम व निद्रा—जैसे ही गर्भिणी को थकान प्रतीत हो तुरन्त विश्राम करना चाहिए। थक जाने पर चारपाई पर आराम से लेट जाये तथा पैरों के नीचे गद्दी अथवा तकिया रखकर उनको तनिक ऊँचा करे। इससे थकान शीघ्र दूर होती है। यह स्मरण रहे कि सगर्भा को विश्राम की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी श्रम की। अतः रात्रि में कम से कम ८-९ घण्टे तथा मध्याह्न में भी एक-दो घण्टे विश्राम अवश्य कर लेना चाहिए। विश्राम से शरीर की व्यय की हुई शक्ति की पूर्ति होती है।

गर्भ के अन्तिम काल में प्रायः निद्रा-नाश की शिकायत हो जाती है। इसके लिए अत्यधिक थकान से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बचना आवश्यक हो जाता है। शाम को भोजन करने के बाद थोड़ा टहल लेना नींद लाने में सहायक होता है। भोजन के विषय में विशेष सावधानी बरतनी होगी। रात्रि को भोजन बहुत देर से न किया जाय। भोजन तला-भुना व कठिनता से पचने वाला न हो। पेट को हल्का रखने के लिए भोजन की मात्रा भी अधिक न ली जाये। इन सबके अतिरिक्त, सोते समय अपने मस्तिष्क को हर प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त करके व ईश्वर-चिन्तन करके सोया जाय तो नींद सरलता से आती है। प्रसूता व भ्रूण के स्वास्थ्य के लिए गहरी नींद उतनी ही आवश्यक है जितना कि आहार।

विश्राम करने व सोने के स्थान का भी नींद पर प्रभाव पड़ता है। स्वच्छ व हवादार स्थान में गहरी व सुखद नींद आती है। अतः सोने के कमरे की खिड़कियों का खुला रखना उचित है।

नियमित व्यायाम—स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए गर्भिणी को थोड़ा-बहुत नियमित व्यायाम करना भी आवश्यक है, विशेषतया उन स्त्रियों को जिनके घर में नौकर-चाकर हैं और गृह के साधारण कार्यों से जो मुक्त रहती हैं। कुछ साधारण तथा हानि की आशंकारहित व्यायाम नियमित रूप से करने से प्रसव-काल के कष्ट में बहुत कमी हो जाती है। इस दृष्टि से चक्की पीसना, दही मथना आदि परिश्रम बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं। प्रातः-सायं घण्टे, दो घण्टे के लिए स्वच्छ-वायु में टहलना प्रत्येक गर्भिणी के लिए अत्यन्त लाभकारी होता है। इससे शरीर में स्फूर्ति आती है व हल्कापन रहता है। पाचन-क्रिया उत्तम रहती है तथा रात्रि में नींद खूब आती है। स्वच्छ वायु रक्त को शुद्ध करती है तथा हृदय व मस्तिष्क को बल पहुँचाती है।

इंग्लैण्ड के कई प्रसूति-केन्द्रों में गर्भवती स्त्रियों को पूर्व प्रसव व्यायाम की विशेष विधियाँ सिखाई जाती हैं। इनको करने से पेडू, कूल्हों तथा टाँगों आदि की माँस-पेशियाँ पुष्ट होती हैं और रीढ़ के निचले भागों, वस्ति प्रदेश तथा कूल्हों के जोड़ों में लचीलापन बढ़ता है, जिससे प्रसव-काल में अत्यन्त सुविधा रहती है। गर्भ के अन्तिम मासों में भ्रूण बड़ी तेजी से बढ़ता है, जिसके कारण वस्ति-प्रदेश तथा अन्य निचले अंगों से रक्त परिभ्रमण की गति मन्द पड़ जाती है। व्यायाम की क्रियाएँ करने से रक्त के प्रवाह में वृद्धि होती है तथा फलस्वरूप प्रसव के पूर्व व पश्चात् प्रसूता एवं शिशु को लाभ होता है।

व्यक्तिगत स्वच्छता व सुरक्षा—गर्भिणी तथा भ्रूण के मल का निष्क्रमण भली-भाँति होता रहे इसके लिए गर्भिणी की त्वचा का स्वच्छ रहना तथा रोमों का खुला रहना आवश्यक है। स्वच्छ शरीर उत्तम स्वास्थ्य के लिए सहायक होता है। मस्तिष्क हल्का रहता है तथा हृदय प्रफुल्लित रहता है।

प्रतिदिन स्नान करते समय त्वचा व सब अंगों को मल-मलकर साफ करना चाहिए। तत्पश्चात् रगड़कर पोंछ डालें ताकि रोमावली खुली रहें। गर्भ सम्बन्धी अंगों की स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

पारिवारिक वातावरण और गर्भिणी के प्रति उनका कर्त्तव्य

शरीर व मन का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है, दोनों अभिन्न हैं। शरीर का स्वास्थ्य, मन की स्वस्थता के बिना अधूरा रह जाता है। पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति वही है, जिसका शारीरिक, मानसिक व चारित्रिक स्वास्थ्य संतुलित दशा में हो। अतः गर्भिणी के मानसिक स्वास्थ्य एवं विचारों की शुद्धता का भी बड़ा महत्त्व है। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि उसको यथासम्भव चिन्ता मुक्त रखा जाय। कहावत है कि 'चिन्ता सब रोगों की जननी है।' चिन्ता से पाचनशक्ति मन्द होती है, रुधिर की न्यूनता, हृदय की दुर्बलता व अन्य कई हृदयरोग हो जाते हैं। विशेषज्ञों का मत है कि निद्रा-नाश, चित्त की घबराहट तथा कब्ज आदि कष्टों के कई कारणों में से चिन्ता व कलह, क्लेश भी एक महत्त्वपूर्ण कारण है। सभी जानते हैं कि शुभ समाचार रोगी के आधे रोग को ठीक कर देता है और बहुत-सी दशाओं में रोग-मुक्त भी कर देता है। अतिशय चिन्ता व क्लेश में कभी-कभी गर्भपात तक हो जाता है। अतएव गर्भिणी के अभिभावकों, विशेषतया पति को इस ओर विशेष सावधानी रखनी चाहिए।

परिवार के सभी लोगों का विशेषतया बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे गर्भिणी के सामने कोई ऐसी समस्या, चर्चा या बात न रखें जिससे गर्भिणी को चिन्तातुर होना पड़े। हमारे परिवारों में मुख्यतया गाँवों में सम्पन्नता, हँसमुखपन, प्रफुल्लता अब कम दीख पड़ती है। कुछ तो बाह्य परिस्थितियाँ इसका कारण हैं, जैसे—आर्थिक स्थिति का सन्तोषजनक न होना, घर के सभी लोगों के लिए आवश्यक साधनों का अभाव होना आदि। कहीं अनाज नहीं है तो बच्चों के लिए कपड़े बनवाने हैं, कहीं घर में पुताई करनी है आदि इस प्रकार की कठिनाइयाँ आये दिन परिवार के लोगों के सामने चर्चा का विषय होती हैं। एक ही साथ रहने-सहने से किसी से इनको छिपाने की बात तनिक कठिन अवश्य होती है। उसमें तो बुद्धिमत्ता ही काम देती है। स्त्रियों के मन में बात पचती नहीं है। उनके कान में जो बात पड़ी, उसे जब तक वे घर के सभी स्त्री-बच्चों और पास-पड़ौस की सहेलियों से न कह दें उन्हें चैन नहीं मिल सकता। अतः घर की छोटी से छोटी बात वे गर्भिणी के सामने कहने में संकोच नहीं करतीं। अज्ञानतावश यह नहीं जानतीं कि इससे वे भावी सन्तान को कितनी हानि पहुँचा रही हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गर्भवती स्त्री के लिए पति का सहयोग परम वाञ्छनीय है। प्रायः देखने में आता है कि पुरुष गर्भवती पत्नी की ओर से विरक्त जैसे हो जाते हैं, उनका व्यवहार नीरस हो जाता है। इससे स्त्री के मन को बहुत ठेस लगती है। गर्भवती स्त्री के मन में इस समय वासना-तृप्ति की चाह नहीं होती, परन्तु वह लाड़-प्यार, दुलार आदि की भूखी होती है। समझदार पुरुष अपने मीठे वचनों तथा कोमल व्यवहार से पत्नी को प्रफुल्ल रखने की चेष्टा करते हैं। इससे स्त्री की आत्मा को परम सन्तुष्टि होती है और वह प्रसव वेदना की कल्पना करके कभी डरती नहीं अपितु प्रसव वेदना सहने के लिए वह मानसिक रूप से तैयार भी हो जाती है। यह मानसिक तैयारी ही उसे आत्मबल देती है, जिसके कारण प्रसव आसानी से हो जाता है।

पति को चाहिए कि पत्नी को प्रसन्नता देने वाला वार्तालाप करने में शिथिलता न आने दे। काम-काज की बातों के अतिरिक्त आत्मीय आधार पर उससे समय-समय पर बातें करता रहे। घर के अच्छे कामों में, व्यवस्था सम्बन्धी मामलों में उससे परामर्श लेता रहे और किसी प्रकार का छिपाव-दुराव न करे। जब कभी वह बाहर जाये तो कुछ न कुछ खाने अथवा उपयोग की वस्तु अपनी स्त्री के लिए लेता आये। समय-समय पर उसका कुशल-क्षेम पूछकर उसे आदर देता रहे। चित्रों के सम्बन्ध में वार्तालाप रूप में महापुरुषों के जीवन की छाप गर्भिणी के मानस पर बिठा देने की बात पहले ही कही जा चुकी है। इस बात की पूर्ण व्यवस्था जुटाना पति का ही काम होता है। उसे सदैव यह चेष्टा करते रहना चाहिए कि जो कुछ वह बाहर से लावे वह सुन्दर हो, जो-जो बातें करें वह सुन्दर हों। इस सन्दर्भ में फूलों के गुलदस्ते घर में रखना, उनसे अपने घर की सजावट करना बड़ा उपयोगी रहता है।

स्त्री का आदर-सत्कार घर के माध्यम से होता है। जिस स्त्री को उसका पति आदर देता है, मानता है, प्यार करता है, उसके प्रति सास, जेठानी, देवरानी तथा ननदों का प्रेम भी बढ़ जाता है। लेकिन जहाँ कहीं भी घर के लोगों को यह आभास मिल जाता है कि अमुक स्त्री का पति उससे प्रेम नहीं करता, तो वे उससे अनादरपूर्वक व्यवहार करने लगती हैं, घर की कोई विरली स्त्री ऐसी मिलेगी जो उससे प्रेम दिखावे।

पति स्त्री का खूँटा होता है, जिसके सहारे वह नाचती है। अतः सबसे बड़ी आवश्यक वस्तु पत्नी के लिए पति का प्रेम प्राप्त करना है, गर्भकाल में जब स्त्री को यह विश्वास हो जाता है कि उसका पति उससे सच्चे हृदय से प्रेम करता है तो सारे अभाव उसके लिए दूर हो जाते हैं। यदि उसकी छोटी-छोटी इच्छाओं की पूर्ति न भी हो तो उन सबका कोई विशेष प्रभाव गर्भस्थ बालक पर नहीं पड़ता। शरीर तथा भ्रूण के पोषण के लिए सबसे आवश्यक खाद्य-पदार्थों की तुलना में पति का सच्चा प्रेम अधिक महत्त्व रखता है। वह अगर मिल गया, तो समझ लो सब कुछ मिल गया। इसलिए गर्भकाल में पति का सबसे बड़ा कर्तव्य अपनी पत्नी को सच्चा प्रेम प्रदान करना है। यह मिल जाने पर वह पौधे की तरह हरी-भरी रहेगी और भ्रूण का स्वाभाविक विकास होता चलेगा।

गर्भवती के प्रति परिजनों का सहयोग—गर्भवती के प्रति घर भर का व्यवहार बहुत सहानुभूतिपूर्ण तथा सन्तोषजनक होना चाहिए। कर्कशा सास या झगड़ालू ननद अथवा कटाक्ष करने वाली जिठानी आदि से उसकी रक्षा करनी होगी। देखने में आता है कि वे ईर्ष्यावश एक-दूसरे का नुकसान करती हैं। ईर्ष्या की भावना स्त्रियों में प्रबल होती है। वह भी विशेष रूप से स्त्रियों के प्रति।

पोता या भतीजा होने पर घर की बड़ी-बूढ़ियाँ लाखों लुटावेंगी पर गर्भवती माता की उपेक्षा करने और उसके आराम तथा खान-पान की ओर से लापरवाही दिखाने में उन्हें संकोच नहीं होता।

इसीलिए हमारे देश का यह रिवाज कि प्रथम प्रसव के समय बहू को पीहर भेज दिया जाये ठीक ही है। माँ के घर वह अपना कष्ट भी निःसंकोच कह सकती है साथ ही ममतामयी माँ अपनी लाड़ली की व्यवस्था यथाशक्ति करती है। उसके सुख-दुःख को सहानुभूतिपूर्वक सुनकर उसे मिटाने के लिए दौड़-धूप करेगी। परन्तु प्रसव के लिए पीहर जाने की प्रथा हमारे स्वार्थपरक भाव की द्योतक है तथा इससे स्त्रियों की हीनावस्था का ज्ञान होता है। अतः यदि पीहर वाले गरीब न भी हों तो भी पति का और उसके घर वालों का यह कर्तव्य है कि गर्भवती के प्रति सारी जिम्मेदारियों को स्वयं निभाएँ।

प्रायः देखा गया है कि मिलने-जुलने वाली स्त्रियाँ गर्भवती को व्यक्तिगत प्रसव कष्ट की कहानियाँ बढ़ा-चढ़ाकर सुनाती हैं। इससे गर्भवती भयभीत हो जाती है और फलस्वरूप बालक को जन्म देते समय उसके स्नायु ढीले न होकर तने रहते हैं, जिससे उसको अधिक कष्ट होता है। यह वेदना प्रायः फैशनपरस्त तथा नियमोल्लंघन करने वाली उन स्त्रियों को होती है, जो बालक के जन्म को एक अस्वाभाविक और स्वास्थ्य-बलिदान की घटना समझती हैं। अगर स्त्री के मन में माता बनने का उत्साह हो और वह निर्भय रहे, तो प्रसव-क्रिया आसानी से हो जाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गर्भवती के अभिभावकों का यह कर्त्तव्य है कि वह होने वाले बच्चे के प्रति माता की ममता तथा उत्सुकता जाग्रत करें। उसके छोटे-छोटे कपड़े, टोपी, मोजा, गुदड़ी, गिलाफ, नैपिकन आदि सीने-बुनने के काम से गर्भवती का मनोरंजन तो होगा ही, साथ ही भावी सन्तान के लिए कुछ कष्ट सहने आदि की भावना का विकास होने से प्रसव-पीड़ा के भय को दूर करने अथवा सहने के लिए मानसिक बल भी प्राप्त होगा तथा दुग्ध ग्रन्थियों को भी उत्तेजना मिलेगी जिससे जन्म के बाद बच्चे को पर्याप्त दूध मिलेगा।

जच्चा का कमरा पहले से ठीक कर लेने से कई लाभ हैं। एक तो गर्भवती को एकान्त में उठने-बैठने की सुविधा रहती है, दूसरी बात बच्चे के स्वागत की उत्सुकता उसे मानसिक रूप से प्रसव काल के लिए तैयार रहने की प्रेरणा देती रहती है। बच्चे के जन्म पर अचानक सभी चीजों का प्रबन्ध करना सरल नहीं होता।

गर्भिणी की इच्छाओं की पूर्ति

गर्भ के बालक का हृदय माता के हृदय से बनता है। सिनेमा स्टूडियो में चित्र खींचने के समान यह क्रिया सम्पन्न होती है। बाहर के परदे पर प्रदर्शन करके कैमरों से फोटो लेने का क्रम जारी किया जाता है। तनिक भी गड़बड़ी उत्पन्न होने पर लिए जाने वाले चित्र भी उनको तुरन्त धारण कर लेते हैं और उसी के अनुकूल बन जाते हैं और सब कारखाने तो छोटे-बड़े पुर्जे तैयार करते हैं। भिलाई, राउरकेला और दुर्गापुर, बोकारो के इस्पात के कारखाने जो कि विशेष सहायता से बने हैं, लोहे की पटरियाँ, गार्डर, इंगिल आदि का निर्माण करते हैं। इनमें कभी जाकर देखिए कि लोहा गलाने के स्थान से गार्डर बनने तक उसे कितनी भट्टियों में से गुजरना पड़ता है। कार्य करने वाले इन्जीनियरों, मशीनमैनों और सभी कर्मचारियों को कितनी सतर्कता बरतनी पड़ती है ? उनकी थोड़ी-सी असावधानी तुरन्त निर्मित वस्तुओं पर अपना प्रभाव प्रकट कर देती है। किसी शक्कर के मिल में देखिए, गन्ना से रस पेरने के स्थान से उस रस को कितने टैंकों में कितनी-कितनी देर के लिए जाना पड़ता है? हर टैंक के पास कारीगर खड़ा घड़ी को देखा करता है और रस की अवस्था का सूक्ष्म निरीक्षण किया करता है। उससे तनिक भी असावधानी हुई नहीं कि तुरन्त सारा माल खराब हो गया। यह कुल प्रक्रिया केवल रस से शक्कर के छोटे दाने बनाने के लिए की जाती है, कोई बहुत बड़ा निर्माण नहीं।

फिर सोचिए कि मनुष्य-निर्माण के कारखानों में कितनी सावधानी की आवश्यकता है ? चींटी को देखिए कितनी छोटी है वह, परन्तु उसके भी हाथ-पैर, नाक, पेट-पीठ, मुँह, आँख, बाल सभी अंग हैं, हृदय भी है, उसके पेट में खाना पचता है, रस बनता है, फिर खून। उसी से वह शक्तिशाली रहती है। यही दस इन्द्रियाँ भी हैं। उसकी घ्राण-शक्ति इतनी तीव्र है कि दूरी पर रखे हुए खाने-पीने वाले पदार्थ, शक्कर, गुड़ आदि का वह पता लगा लेगी, तुरन्त अपने साथियों को बता देगी और दल बल सहित वहाँ जायेगी। एक लघुतम जीव में इतना सब कुछ समावेश कर देना, सोचिए किस कारखाने में होता होगा ? क्या उसमें असावधानी की कहीं गुंजाइश है। फिर मनुष्य तो और अधिक शक्तियों से सम्पन्न है। उसके पास बुद्धि है। स्वयं निर्माण शक्ति का स्वामी है। इन सबको सोचकर उस बड़े इन्जीनियर परमपिता के बारे में क्या यह नहीं कहा जा सकता है—'धन्य तेरी कारीगरी करतार।' यदि ईश्वर इस कारखाने का प्रधान इन्जीनियर है तो माता-पिता भी इसके मशीनमैन तो हैं ही। उनकी भी ड्यूटी उतनी ही है। उन्हें सतर्कता से अपना कर्त्तव्य-पालन करना है। उनकी थोड़ी-सी असावधानी भावी सन्तान पर बहुत बड़ा कुप्रभाव डाल सकती है। उसकी देखभाल आपको प्रत्यक्ष रूप से भी करनी नहीं। उस कारखाने के अन्दर आप प्रवेश करके निरीक्षण नहीं कर सकते। बाहर से ही सब कुछ करना पड़ेगा।

माँ गर्भ धारण के बाद स्वयं को सन्तान में घुला देती है, उसके भोजन, विचार, भाव तथा कार्य से ही बालक के निर्माण की प्रक्रिया चलती है।

इसलिए उन दिनों गर्भवती की उन इच्छाओं की पूर्ति का यथासम्भव प्रयत्न करते रहना चाहिए। उसके चारों ओर ऐसा वातावरण बनाये रहना चाहिए, जो प्रसन्नतावर्द्धक, सन्तोषदायक, उत्साह बढ़ाने वाला तथा प्रगतिशील हो। गर्भवती की कई छोटी-छोटी इच्छाएँ उठती रहती हैं, उन्हें पूरा करने में यदि विशेष कठिनाई न हो तो पूरा करने का प्रयत्न करना चाहिए। साथ ही गर्भिणी को भी यह ध्यान रखना चाहिए कि कोई ऐसी इच्छा न करे जो अनुचित या कष्टसाध्य हो। ऐसी इच्छाएँ अपूर्ण रहने पर उसको असन्तोष बढ़ता है जिसका बालक के मन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। सारांश इतना ही है कि शारीरिक स्वास्थ्य की तरह भावी जननी के मानसिक स्वास्थ्य को भी सुविकसित बनाये रखने का प्रयत्न करना उस परिवार के लोगों के लिए उचित है।

गर्भवती के कमरे की सजावट—उन सभी उपायों में जो कि सन्तान पर उत्तम संस्कार डालने में सहायक होते हैं, एक यह भी है कि गर्भिणी जिस कमरे में सोती हो, जिसमें बैठकर अधिक काम करती हो उसकी सजावट मनोवैज्ञानिक ढंग से कर दी जाये। यह कार्य तो वास्तव में पति का है। महापुरुषों व वीरांगनाओं के चित्र ही कमरे में लगाने चाहिए, जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, योगीराज श्रीकृष्ण, महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी, लक्ष्मीबाई, गाँधीजी, सुभाषचन्द्र बोस, जवाहरलाल नेहरू, भगवान गौतम बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामतीर्थ,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अब्राहम लिंकन, ईसामसीह, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, भगतसिंह आदि देश-विदेशों के महापुरुष जो आपको प्रिय हों, उनके चित्र भी आप लगा सकते हैं। थोड़े-से श्रेष्ठ भावों युक्त आदर्श-वाक्य भी उसमें टाँगे जा सकते हैं, जिनसे पवित्र मनोवृत्ति उत्पन्न हो। यह ध्यान रखना चाहिए कि विचारों का गर्भस्थ बालक पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

सिनेमा की नर्तकियों के या अश्लील चित्रों को तो आपको कभी भी भूलकर गर्भिणी के कमरे में स्थान न देना चाहिए।

ऐसा इसलिए करना चाहिए ताकि गर्भिणी स्त्री जब लेटे अथवा आते-जाते, उठते-बैठते उसकी दृष्टि उन पर पड़ा करेगी और उनका प्रभाव गर्भस्थित बालक पर पड़ता रहेगा। उन चित्र वाले महापुरुषों के गुण, कर्म और स्वभाव का भी प्रतिबिम्ब बालक पर पड़ेगा, रंग-रूप भी वैसा बनेगा।

वंशानुक्रम तथा वातावरण का प्रभाव

हम में से प्रत्येक व्यक्ति दो प्रभावों की परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया का परिणाम है। वह क्या है और जो कुछ है वह कैसे बना है ? इसके लिए दो बातें उत्तरदायी हैं—(१) एक तो प्रत्येक व्यक्ति में अपनी कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं, जिन्हें वह जन्म से वंशानुक्रम द्वारा प्राप्त करता है। वंशानुक्रम में उन गुणों या विशेषताओं का समावेश है, जो हमें अपने माता-पिता तथा पूर्वजों द्वारा जन्म से प्राप्त होते हैं। इन्हें लेकर ही हम जन्म लेते हैं। वास्तव में हमारा जन्म ही वंशानुक्रम द्वारा होता है, इसके अतिरिक्त हममें से प्रत्येक व्यक्ति का पालन-पोषण तथा विकास प्रारम्भ से ही किसी विशेष वातावरण में होता है। वातावरण से उन परिस्थितियों और प्रभावों को समझा जा सकता है, जो जन्म के पूर्व से ही प्रारम्भ होकर जीवनभर हमारे चारों ओर रहते हैं और जो हमारी क्रियाओं पर निरन्तर प्रभाव डालते रहते हैं।

ये दोनों ही बातें प्रत्येक व्यक्ति में दूसरे से भिन्न होती हैं। एक व्यक्ति का वंशानुक्रम दूसरे के वंशानुक्रम से सर्वथा भिन्न होता है, उसी प्रकार उसका वातावरण भी सबों से अलग है। इन्हीं दोनों की विभिन्नता के कारण सभी व्यक्तियों में विभिन्नता पाई जाती है। व्यक्ति की प्रत्येक विशेषता उसके वंशानुक्रम और वातावरण दोनों के द्वारा ही प्रभावित रहती है। कुछ लोगों का कहना है कि वंशानुक्रम ही सब कुछ है। एक व्यक्ति में जितनी विशेषताएँ हैं, वातावरण से सामंजस्य स्थापित करने में जितनी भी क्रियाएँ उसकी होती हैं, वे सभी वंशानुक्रम द्वारा प्राप्त हैं। उनका विचार है कि बालक जो कुछ अपने वंशानुक्रम से पाता है, उसी के सहारे वह जीवन में सामंजस्य रखता है। वातावरण द्वारा उसमें कोई सुधार नहीं लाया जा सकता। इसके विपरीत कुछ लोगों का कहना है कि वातावरण ही सब कुछ है। बालक के विकास की सम्भावनाएँ असीम हैं और पर्याप्त सुविधाएँ पाने पर प्रत्येक व्यक्ति सफलता के उच्च शिखर पर पहुँच सकता है, जिस पर अन्य लोग पहुँचे हैं। चाहे उसका वंशानुक्रम कैसा भी हो।

हमें यह ध्यान रखना होगा कि वंशानुक्रम अथवा वातावरण दोनों में कोई भी अलग होकर कोई महत्त्व नहीं रखता। जिस प्रकार किसी लेखक ने लिखा है कि आज की राजनीति आने वाले कल का इतिहास है और कल का इतिहास आज की राजनीति है। इन दोनों को अलग करना वैसा ही है, जैसे सिक्के के दो पहलुओं को अलग करने की चेष्टा करना। वे चाहे कितने पतले क्यों न काटे जाएँ, उनमें दो पहलू हो ही जायेंगे। प्रत्येक बालक इन दोनों के द्वारा ही प्रभावित होता है। दोनों की क्रिया-प्रतिक्रिया से बालक का निर्माण होता है। अतः हमें इन दोनों का ज्ञान प्राप्त करना होगा। बालक के विकास में मुख्य वंशानुक्रम निम्नलिखित समझे जाते हैं—(१) शारीरिक बनावट, जिसमें लम्बाई-चौड़ाई के अतिरिक्त नाड़ी-मण्डल और अन्तःस्रावी पिण्ड भी सम्मिलित हैं, (२) आयु, (३) लिंग और (४) बुद्धि।

शारीरिक बनावट—साधारणतया बलिष्ठ और दीर्घकाय बच्चे अन्य बच्चों की अपेक्षा अपने माता-पिता के सदृश होते हैं। पिता-माता के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति भी ऐसे बच्चों की प्रशंसा करते हैं। इन सब बातों को जानकर उस बच्चे में उच्चत्व-भावना उत्पन्न होती है। इस भावना से प्रेरित होकर वह समझने लगता है कि वह सब बच्चों से सब बातों में बढ़ा-चढ़ा है, इसलिए सभी बातों में उसकी वाहवाही होनी चाहिए। ऐसे बच्चे कभी परस्वार्थी होकर प्रेमी जीव नहीं हो सकते। उसी प्रकार कमजोर बच्चे की माता अधिक देखभाल करती है और उसे सब प्रकार से अपनी छत्र-छाया में रखती है। ऐसे बच्चे दूसरों पर निर्भर रहने लगते हैं। कभी-कभी अपनी दुर्बलताओं को छिपाने के लिए औसत से भी अधिक काम करना चाहते हैं और ऐसा न कर सकने के कारण जीवन को भारमय समझने लगते हैं।

कहावत है कि काने, लँगड़े, कन्जे, कुबड़े उत्पाती होते हैं। बात यह है कि शरीर में किसी विकार के रहने से बच्चों पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। बड़े ही नहीं, परन्तु बच्चे भी अपना उपहास नहीं सहन कर सकते। शरीर में किसी विकार के रहने पर वे उपहास-पात्र हो जाते हैं, जिससे उनके मन में हीनता का भाव उत्पन्न हो जाता है। बच्चों के शारीरिक विकास पर हमें अच्छी या बुरी टिप्पणियाँ, कम-से-कम बच्चों के ही सामने नहीं करनी चाहिए। बच्चों को यह मालूम नहीं होने पाये कि वह किसी प्रकार से विलक्षण जीव हैं। यदि उसके अन्दर कोई भी विकार हो तो उसका ज्ञान बच्चे को न होने पाये। जब बच्चा बड़ा होगा, तब वह स्वयं अपने विकारों को जान लेगा और तब या तो अपनी सीमा को जानकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समायोचित हो जायेगा या ऐसे कार्यों में लग जायेगा, जिससे उसका विकार उसके आत्मप्रकाशन में विघ्न न डाल सके। प्रत्येक अवसर पर हमें बच्चों की उन शारीरिक क्रियाओं को विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, जिससे समाज में रहकर उसका कल्याण हो सके।

लिंग-भेद—लड़कियों की अपेक्षा लड़कों में बल-प्रदर्शन तथा आक्रमण करने की प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। शायद इसी से लड़कों और लड़कियों के व्यक्तित्व में इतना अन्तर पड़ जाता है। मिथ्याचरण में लड़के-लड़कियों में कोई विशेष अन्तर नहीं पाया जाता। ऐच्छिक व्यवहार में कोई निर्णयात्मक निष्कर्ष तो नहीं कहा जा सकता, पर लड़कों में निर्भीकता, दम्भ, आत्म-प्रधानता अधिक पाये जाते हैं। इसकी अपेक्षा लड़कियों में शक्कीपन, काल्पनिक होना तथा समाज द्वारा अधिक प्रभावित होने के लक्षण पाए गए। सहानुभूति और सहयोग दिखाने में लड़कियों का स्थान प्रायः लड़कों से थोड़ा ऊँचा देखा गया है। अपराध करने में लड़कियों की अपेक्षा लड़के अधिक भारी अपराध की क्षमता और प्रवृत्ति रखते हैं। फिर लड़कियों के अपराध विशेषतः काम-वासना सम्बन्धी, घर से निकल भागने के और आज्ञापालन न करने के लिए देखे गये हैं। लड़कों के अपराध दूसरों की वस्तुओं के अपहरण के सम्बन्ध में हुआ करते हैं।

व्यक्तित्त्व विकास में लिंग सम्बन्धी घटक के विषय में हम कह सकते हैं कि लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा सामाजिक आदर्श के अनुकूल अधिक अपना आचरण रखती हैं। फिर लड़के, लड़की की अपेक्षा समाज की दृष्टि में अधिक गिरते भी हैं। औसत से लड़कियों की अपेक्षा लड़कों का आचरण खराब होता है। लड़के समाज सुधारक और देश के नेता भी होते हैं और साथ ही साथ पशुवत् व्यवहार भी कर सकते हैं।

वातावरण—जो शक्तियाँ अथवा परिस्थितियाँ जीव को गर्भ-धारण से जीवनपर्यन्त प्रभावित करती हैं, उन्हें 'वातावरण' कहते हैं। जीव को प्रभावित करने का तात्पर्य है कि उसके आहार, व्यवहार अथवा क्रियाओं को प्रभावित करना। जब जीव गर्भ में रहता है उस समय उसकी सभी क्रियाएँ आन्तरिक वातावरण से प्रभावित होती हैं। उस जीवाणु को छोड़कर उसके चारों ओर जो रहता है और जिसका असर उसकी क्रियाओं पर पड़ता है, वही उसका आन्तरिक वातावरण कहलाता है। जन्म के बाद जीव आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार के वातावरण से प्रभावित होता है। शरीर के अन्दर जो रक्त संचार, रस पाक क्रिया, पाचन क्रियाएँ होती हैं, उनकी परिगणना आन्तरिक वातावरण के अन्तर्गत होती हैं इस प्रकार कोई भी आन्तरिक, शारीरिक परिवर्तन जिसका असर जीव की क्रियाओं पर पड़ता है, वही उसका आन्तरिक वातावरण कहलाता है। माता-पिता, भाई-बहिन, परिवार, पाठशाला, समुदाय, समाज पेड़-पौधे, नदी, पर्वत, सूर्य आदि बाह्य वातावरण का निर्माण करते हैं। यह वातावरण दो प्रकार का होता है—सामाजिक तथा भौतिक। परिवार तथा सदस्य, टोला, मोहल्ला सामाजिक संस्थाएँ आदि सामाजिक और सूर्य, पर्वत, नदी आदि भौतिक वातावरण के अन्तर्गत आते हैं। वातावरण के असर के परिणामस्वरूप जीव तरह-तरह की क्रियाएँ करता है और इसी के अनुरूप उसकी जीवनशैली भी निर्धारित होती है।

इस स्थल पर यह स्मरणीय है कि जीव की विभिन्न क्रियाओं और विशेषताओं पर वातावरण का प्रभाव पड़ता है या आनुवंशिकता का, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। वातावरणवादियों का कहना है कि मनुष्य की विशेषताएँ वातावरण द्वारा निर्धारित होती हैं। वह जिस प्रकार के वातावरण में रहता है, उसी के अनुसार उसमें तरह-तरह की विशेषताओं का आविर्भाव और विकास होता है। खान-पान, वेशभूषा, मानसिक योग्यताएँ सभी वातावरण के फलस्वरूप होती हैं। सज्जन, विद्वान, उपकारी परिवार में जन्म लेने वाले और पालित-पोषित होने वाले व्यक्ति उपर्युक्त गुणों से युक्त होते हैं, किन्तु जुआरी, शराबी, धूर्त, पाखण्डी व्यक्ति अपने आस-पास के दुर्गुणों को अपनाते हैं। इस पक्ष को पुष्ट करने के लिए कई प्रयोगात्मक प्रमाण भी दिये गये हैं।

रामू नाम का एक १० वर्षीय बच्चा आज से ५-६ वर्ष पूर्व लखनऊ के निकट किसी रेलवे स्टेशन पर मिला था। इस बच्चे को जन्म के बाद एक भेड़िया उठा ले गया था। उसने मारकर खाने के बजाय बच्चे को अपनी माँद में रखकर अपने बच्चे के समान उसका पालन-पोषण करना शुरू किया। बच्चे के दस वर्ष वहीं बीते। जब वह बच्चा अचानक किसी शिकारी द्वारा मिला तो इसकी बड़ी चर्चा हुई। भेड़िया बालक के रूप में रामू की ख्याति देश-विदेशों में पहुँची। तमाम लोग इस बच्चे के बारे में जानकारी करने को उत्सुक हो उठे।

रामू की सारी क्रियाएँ भेड़िये जैसी होती थीं। वह चार पैरों से चलता था। भेड़िये जैसा गुर्राता था और माँस भी खाता था। रामू वैज्ञानिकों और चिकित्साशास्त्रियों की खोज के लिए एक अमूल्य मसाला मिला। इसे बलरामपुर अस्पताल में भर्ती कर दिया गया और विशेष रूप से इसकी सेवा शुरू की गई।

निरन्तर कई वर्षों की सेवा-सुश्रूषा के बाद भी रामू में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। वह थोड़ा-बहुत अन्न तो खाने लगा परन्तु पशुवत क्रियाएँ उसकी बनी रहीं। अब वह बच्चा जीवित नहीं है।

रामू में वंशानुगत सभी संस्कार व शक्तियाँ क्या नहीं थीं ? अवश्य थीं। परन्तु वातावरण ने उसकी इन सारी शक्तियों को दबाकर पशु बना दिया। अतः वातावरण के प्रभाव को हम भली प्रकार समझ सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाटिका में न जाने कितने पौधे उचित सेवा, खाद, पानी, निराई एवं सुरक्षा के अभाव में नित्य-प्रति सूखते, मुरझाते एवं दुर्बल होते हम देखते हैं। जिन पौधों को उचित खुराक एवं सुरक्षा मिल जाती है, वे दिन दूने रात चौगुने होते हैं। यही दशा मनुष्यों के बालकों की होती है। वंश का प्रभाव अपनी जगह पर निश्चित है, परन्तु उसे पनपाने के लिए उचित वातावरण का अस्तित्व अपने स्थान पर है।

दूसरे पक्ष के विद्वान वातावरण के महत्त्व को अस्वीकार करते हुए आनुवंशिकता के ही महत्त्व पर जोर देते हैं। इस सम्बन्ध में उनका कहना है कि मनुष्य की सभी विशेषताओं या योग्यताओं का श्रेय वंशानुक्रम को ही है। बुद्धिमान और योग्य माता-पिता के बच्चे भी बुद्धिमान और योग्य होते हैं, किन्तु मन्द-बुद्धि और अयोग्य माता-पिता के पुत्र अयोग्य और बुद्धिहीन होते हैं। गाल्टन जैसे विद्वानों ने कई प्रकार के अन्वेषणों से इस पक्ष को पुष्ट किया है।

वस्तुतः उपर्युक्त दोनों विचारधाराएँ अपूर्ण हैं। सच्ची बात तो यह है कि मनुष्य की किसी प्रकार की विशेषता में इन दोनों का समान हाथ रहता है, जो कुछ बालक को वंशानुक्रम से प्राप्त होता है, उसी का विकास वातावरण में होता है। अतएव हम कह सकते हैं कि जीव की क्रियाओं पर दोनों अंगों का असर समान मात्रा में पड़ता है। यदि वंशानुक्रम उसकी सीमा को निर्धारित करता है तो वातावरण उसकी दिशा में निश्चित करता है। अतः बालक के स्वाभाविक विकास में दोनों का समान हाथ है, उसे अलग करके अध्ययन करना ही उचित नहीं है।

नामकरण संस्कार

षोडष-संस्कारों में नामकरण चौथे नम्बर का है, जो जन्मते समय नामरहित है परन्तु वह जीवन भर अपने नाम से ही समझा जायेगा। नाम से उसका इस संसार में बोध होता है। प्रायः अब ऐसा भी होता है कि नवजात शिशु का विधिवत् नामकरण संस्कार न होने के कारण जब लोग इधर-उधर से आकर माँ-बाप से पूछते हैं—''इसका क्या नाम रखा है ?'' तो कोई समुचित उत्तर नहीं मिलता। फिर घर वाले मनमाने ढंग से उसका अलग-अलग नाम रख लेते हैं। कोई प्यार से मुन्ना, लल्लू आदि कहने लगते हैं, तो कोई भय के कारण कि कहीं बच्चे को नजर न लग जाय, बुरे-बुरे नामों से सम्बोधित करने लगते हैं। ग्रामों में तो इस प्रकार के नामों की बहुतायत मिलेगी। लड़कियों का नाम 'कुरकुटिया, जिय्यै, महरजिया, लड़कों के नाम कूड़ा, घसीटा, ननकू, ढोढे, मँगरे, विपतिया आदि। शास्त्रकारों ने इसी कारण नामकरण संस्कार का विधान किया है। प्रत्येक सुशिक्षित व्यक्ति को अपने बच्चे-बच्चियों का विधिवत् नामकरण संस्कार कराना चाहिए।

कब करना चाहिए ? नामकरण संस्कार बच्चा पैदा होने के दस दिन बाद में या शुभ दिन करना चाहिए।

नामकरण संस्कार का उद्देश्य

दुहिता पुत्रयोस्तुल्यवात्सल्यम् भवेत्। द्वयोः प्राप्तयोः तुल्यानन्दमनुभवेत्। दुर्योर्विकासोन्नतिभ्याम् समानम् प्रयत्नम् ध्यानच्च एवं सुखशान्तिः सुविधायाश्च सुव्यवस्था भवेत्।

''कन्या और पुत्र दोनों पर समान वात्सल्य हो। दोनों की प्राप्ति से समान प्रसन्नता का अनुभव हो। दोनों के विकास एवं उन्नति के लिए समान प्रयत्न और ध्यान हो। दोनों की सुखशान्ति और सुविधा का समान ध्यान एवं सुव्यवस्था हो।''

आज हमारे समाज की दशा बदली हुई है। पुत्र-उत्पत्ति पर तो धड़ाधड़ गोले दगते हैं, बड़ी धूमधाम होती है, चारों ओर मंगल गीत गाये जाते हैं लेकिन कन्या-जन्म बड़ी शान्तिपूर्वक हो जाता है। कोई जान भी नहीं पाता। पुत्र और पुत्री की अवस्था में यह भेद-भाव क्यों ? इसके पीछे हमारी सामाजिक रचना का दोष है।

अतः शास्त्र कहता है कि दोनों की प्राप्ति में समान प्रसन्नता का अनुभव हो, दोनों के विकास एवं उन्नति के लिए समान प्रयत्न व ध्यान हो तथा दोनों की शान्ति एवं सुविधा की समान सुव्यवस्था हो। इस प्रकार हमें पुत्र तथा पुत्री दोनों पर समान भाव रखना चाहिए। यह नामकरण संस्कार का प्रथम उद्देश्य है।

तस्य तस्याः वा नाम गुणबोधकम् महापुरुषाणाम्।
विशदकर्मणाम् प्रेरकम् भवेत्।।

''नाम गुण बोधक तथा महापुरुषों के विशद् कर्मों की अनुप्रेरणा देने वाला हो।''

नाम मनुष्य के अन्तर्निहित गुणों का बोध कराने वाले होने चाहिए। जब गुण के विपरीत नाम होता है तो लोगों के उपहास का कारण बनता है जैसे नाम फतेहसिंह, पोत ढाई आना। एक सज्जन का नाम था बादशाह। एक दिन उसके कुछ मित्र उसके गाँव गये। उसके द्वार से जाते हुए एक ने पुकारा 'बादशाह महाराज !' अन्दर से आवाज आई—नहीं है, घास छीलने गये हैं। यह उत्तर सुनकर सभी साथी खिलखिला कर हँसने लगे। अतः ऐसे नाम भी न रखने चाहिए, जो स्वाभाविक गुणों के विपरीत पड़ते हों। बच्चों के नाम अपने जाति और धर्म के महापुरुषों के नाम पर रखने चाहिए, क्योंकि महापुरुषों के विशद् कर्मों से नामधारी व्यक्ति में अनुप्रेरणा होती रहती है। धीरे-धीरे वह उन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महापुरुष के गुण, कर्म और स्वभाव को बहुत अंश में धारण कर लेता है।

इसलिए नाम गुण बोधक और महापुरुषों के नाम के आधार पर रखना चाहिए।

शैशवे मातुः सात्विक स्वच्छाहार विहाराणाम् एव मनस्तुष्टि-पुष्टि-उल्लासानाम् प्रबन्धो भवेत्।।

''शैशव काल में, माता के सात्विक-स्वच्छ आहार-विहार एवं मानसिक तुष्टि-पुष्टि तथा उल्लास का सौम्य प्रबन्ध हो।''

नामकरण संस्कार का तीसरा उद्देश्य यह भी है कि बच्चे तथा उसकी माता दोनों के सात्विक भोजन, शयन की सुव्यवस्था करना भी पिता एवं घर वाले अपना कर्त्तव्य मानें। घर के प्राणी माता की इच्छाओं का आदर करें तथा उसे प्रसन्न रखने का प्रबन्ध करें। माता की मानसिक अवस्था का बहुत कुछ प्रभाव बच्चे पर पड़ता है। यदि माता गरिष्ठ और ठण्डे पदार्थों का सेवन करेगी, तो बच्चे को कब्ज तथा जुकाम से पीड़ित होना पड़ेगा, क्योंकि बच्चे का पोषण माँ के दूध से होता है। इसी प्रकार यदि माता स्वस्थ और प्रसन्नतचित्त रहेगी और तभी वह ऐसा रह सकती है जब घर में उसका सम्मान हो, उसके आहार-विहार की समुचित व्यवस्था हो, उसका बालक स्वभावतया स्वस्थ और प्रसन्नचित्त होगा। लेकिन यदि माता पारिवारिक क्लेशों में उलझी रहेगी, वह सदैव चिन्तातुर रहेगी तो उसका बच्चा नाना प्रकार के रोगों से जकड़ जायेगा। उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहेगा। अतः नामकरण संस्कार के समय इस बात को भी हृदयंगम कर लेना चाहिए।

बालकस्य हृदि सुसंस्कारार्थं सुस्नेह सद्भाव प्रेरयत्, मोहवशादपि, अनुचित्त सुविधां परित्यज्य दुर्गुणभ्यो वर्जयेत्।।

'स्नेह और प्यार का सन्तुलित उपयोग कर सुसंस्कारी बनने में बालक के हृदय में सद्प्रेरणा उत्पन्न करें। मोह से उसे अनुचित सुविधा प्रदान कर बुराई में प्रवृत्त न होने दें।'

चौथा उद्देश्य है—स्नेह और प्यार के सन्तुलित उपयोग द्वारा बालक के हृदय में अच्छे संस्कारों को उत्पन्न करना। मोहवश अनुचित सुविधाएँ प्रदान कर बालक को नाना प्रकार की बुराइयों में फँसा देते हैं। यही बच्चे आगे चलकर घर की सारी सम्पत्ति लुटाकर घर फूँक तमाशा करने वाले बनते हैं। अपने कुल और परिवार की सात पीढ़ियों का नाम कलंकित करते हैं।

गरिष्ठोत्तेजकमादकादि द्रव्याणाम् औषधीनाच्च सन्तानोपरि उपयोगम् न कुर्यात्।।

'गरिष्ठ, उत्तेजक, मादकीय द्रव्यों और औषधियों का सन्तान पर उपयोग न होने दें।'

अन्न का प्रभाव शरीर रचना पर बहुत पड़ता है। जिस प्रकार का अन्न मनुष्य खाता है, उसी प्रकार उसके विचार बनते हैं। गरिष्ठ, उत्तेजक और मादक द्रव्यों के सेवन से पेट खराब होता है। आँतों का कार्य मन्द और शिथिल पड़ जाता है। तब व्यक्ति नाना प्रकार के रोगों में जकड़ जाता है। इसी प्रकार तेज औषधियों का परिणाम भी है। बच्चे की तबियत थोड़ी-सी भी खराब हुई कि इन्जेक्शन पर इन्जेक्शन लगने लगे। आजकल तेज दवाइयों द्वारा रोग को दबा देने का ऐसा चलन हो गया है कि हमारा स्वास्थ्य, बौद्धिक स्तर दिन-प्रतिदिन गिरता जाता है। संयम न होने से शक्ति दिन-दिन क्षीण होती जाती है।

शास्त्रकारों ने नामकरण संस्कार के अवसर पर ही इस भयंकर परिस्थिति से अवगत रहने के लिए माता-पिता को सतर्क रहने की सलाह दी है। यही इस संस्कार का पाँचवाँ उद्देश्य है।

सर्वांगीण विकास दृष्टाया बालक बालिकानाम् क्रीड़ार्थ, विनोदाय ज्ञानाप्तये, हृदयमस्तिष्कयोः एवं कर्म शक्तिनां विकासार्थं सम्पूर्णानुकूल सुविधां स्थितिच्च प्रदद्यात्।।

'सर्वांगीण विकास की दृष्टि से बालक-बालिकाओं के खेलने, विनोद करने, ज्ञान प्राप्त करने, हृदय, मस्तिष्क एवं कर्मशक्ति के विकास के लिए सारी अनुकूल सुविधा, साधन एवं स्थिति प्रदान करे।'

बालक-बालिकाओं के सर्वांगीण विकास के लिए निम्न चीजों की आवश्यकता होती है। खेल एवं विनोद से शरीर का विकास होता है, ज्ञान प्राप्त करने से हृदय एवं मस्तिष्क का विकास होगा, रचना प्रवृत्ति का विकास होना चाहिए। इसलिए बालक के सर्वांगीण विकास के लिए सारी अनुकूल सुविधा-साधन एवं स्थिति की आवश्यकता होती है। उन सबको जुटाना माता-पिता का पुनीत कर्त्तव्य होता है। केवल बच्चा पैदा कर देने मात्र से उनका काम समाप्त नहीं होता। बालक को हर दृष्टि से योग्य बना देने पर ही माता-पिता का कर्त्तव्य पूरा होता है। यह उन पर नवीन जिम्मेदारियाँ आती हैं, जिसके लिए धन, बुद्धि, समय तथा विवेक सब कुछ उन्हें सन्तान को योग्य बनाने के लिए देना पड़ेगा। अपनी सुख-सुविधा को पुत्र की सुख-सुविधा पर बलिदान करना पड़ेगा। स्वयं आधा पेट खाकर बालक के लिए पौष्टिक भोजन जुटाना पड़ेगा, उसके लिए खेल-खिलौने लाने पड़ेंगे। उसकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करना पड़ेगा।

अतः नामकरण संस्कार का छठा उद्देश्य यह है कि बालक के उत्पन्न होने के दसवें दिन ही माता-पिता विधिवत् इस नवीन जिम्मेदारी को अपने कन्धों पर धारण करें। अपनी शक्ति एवं सामर्थ्यानुकूल वे सोच-विचार कर आगे की योजना बना लें कि किस प्रकार बालक का लालन-पालन करेंगे ? उसकी शिक्षा के लिए कहाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पढ़ावेंगे और किस प्रकार की शिक्षा उसके लिए हो ? बालक के स्वभाव में सद्गुण लाने के लिए उन्हें रहन-सहन में कौन-कौन-से परिवर्तन लाने पड़ेंगे, क्योंकि अब तो उनको अपने पूर्व जीवन से भिन्न जीवन बिताना है।

मालाकारवत् वात्सल्येन प्रभु प्रदत्तपादपन् सुष्ठु सिच्यत्वातान् सुविकासयेत्।

'प्रभु के सौंपे हुए कोमल पादपों को वात्सल्य भरे माली की भाँति, खाद देकर, सींचकर, निरोकर सुविकसित होने में सहायता करें।'

माता-पिता का पद बगीचे के माली के समान है। जिस प्रकार वाटिका में माली का कार्य होता है कि छोटे-बड़े विभिन्न प्रकार के पौधों को आवश्यकतानुसार खाद देता है, सिंचाई करता है। पौधा के किनारे जो अनावश्यक घास-फूस उगकर पौधे के स्वाभाविक विकास में बाधा पहुँचाते हैं, माली उनको निकाल फेंकता है। वह पौधों की मिट्टी को पोली बनाता है, यही छोटे-छोटे पौधे आगे चलकर बड़े विशाल वृक्ष बनते हैं, फल-फूल से लद जाते हैं।

माता-पिता के घर में प्रभु ने पुत्र रूप में एक कोमल पौधा प्रदान किया है। अभी उसके सब अंग कोमल और अविकसित हैं। बीज रूप में तो उसमें अथाह शक्तियाँ छिपी पड़ी हैं, लेकिन उनका विकास अभी नहीं हुआ है। प्रभु की वाटिका में एक कुशल माली की आवश्यकता है। मालिक कितने ही सुन्दर और मूल्यवान पौधे अपनी वाटिका में लगाने के लिए खरीद लाये लेकिन यदि बगीचे का माली फूहड़-अज्ञानी है, तो कीमती पौधे जो किसी दिन बढ़कर मूल्यवान फलदार वृक्ष बनते, बचपन में ही कुम्हला जाते हैं। लेकिन कुशल माली के हाथों से छोटे-छोटे दुर्बल पौधे भी विकसित होकर अच्छे वृक्ष बन जाते हैं। इसी प्रकार अयोग्य माता-पिता के असंख्य बच्चों की आन्तरिक शक्तियाँ अविकसित होकर कुण्ठित रह जाती हैं। वे या तो बचपन में मृत्यु को प्राप्त होते हैं या फिर अंगहीन, बुद्धिहीन, कर्महीन और अपाहिज होकर किसी प्रकार अपना जीवनयापन करते हैं, संसार और समाज पर बोझ बने रहते हैं।

लेकिन कुशलतापूर्वक लालन-पालन से बहुतेरे कम शक्तियों वाले बच्चे आदर्श मनुष्य बनकर समाज व राष्ट्र के पथ-प्रदर्शक बनते हैं। नामकरण संस्कार के दिन माता-पिता को पूरी सावधानी बरतनी चाहिए।

नामकरण संस्कार विधि—किसी शुभ दिन व शुभ मुहूर्त में बच्चे का पिता स्नान करके स्वच्छ वस्त्र धारण करे और तिलक लगावे। फिर अपने आचार्य को बुलाकर नामकरण संस्कार विधि के अनुसार गणेशादि पाँच देवताओं का पूजन करावे फिर सुवर्ण पड़े हुए गर्म जल से बच्चे के ऊपर अग्रलिखित मन्त्रों से अभिषेक करें—

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्। स दाधार पृथिवीद्यामुतेमाँ कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

ॐ कुमारम् जातं पुराऽन्यैरालम्भात् सर्पिर्मधुनी हिरण्य निकाषं हिरण्येन।

फिर इसी जल से बच्चा की माँ को छींटा दें। यजमान के हाथ में आचार्य कलाया बाँधें और तिलक करें इसके बाद बच्चे की कमर में करधनी बाधें। फिर स्वर्ण और कुशा इन दोनों से बालक को शहद, घी मिलाकर चटावें। बालक के कान में निम्नलिखित मन्त्र बोलें—

ॐ मेधां ते देव सविता मेधां देवी सरस्वतीः मेधां ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ।

फिर निम्नलिखित मन्त्र को बोलकर बालक को दूध पिलावें।

ॐ यस्तेस्तनः शशयोमयो भूर्येन विश्दा पुष्यसिवापाणि।
योरत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवेकः॥

इसके पश्चात् पाँचों संस्कार करके, अग्नि-स्थापन करके विधान से सब कार्य करते हुए बारह आहुति होमें और बाद में जो कृत्य हैं उन्हें करें।

पीछे लोकरीति के अनुसार बालक की माँ की गोद में पूरी या मीठा रखें। तत्पश्चात् बालक का नाम धरें। जिस नक्षत्र में जन्म हुआ है उस नक्षत्र के चार चरण के जो अक्षर हों उन अक्षरों पर नाम उच्चारण करें। फिर बालक को सूर्य का दर्शन करावें और उसके हाथ में जल-चावल लगाकर सूर्य के सम्मुख चढ़ावें।

फिर पृथ्वी का पूजन करके बालक से पृथ्वी का स्पर्श करावें। फिर आचार्य अपने हाथ में मिष्ठान्न, फल, पुष्प, चावलों को लेकर यजमान को दें और फिर उसे पुत्र के दीर्घजीवी होने तथा यजमान को बालक के प्रति कर्त्तव्य को भली-भाँति निभाने का आशीर्वाद दें।

बहुत-से लोग इस अवसर पर आतिशबाजी दागते हैं, नाच कराते हैं। इस प्रकार तमाम रुपया व्यर्थ में फेंक देते हैं। हर प्रसन्नता के अवसर पर दान-पुण्य की विशेष महिमा होती है, लेकिन यह दान सुपात्रों को देना चाहिए जिसको आवश्यकता हो। विद्यार्थियों को पुस्तक दान, अस्पताल के रोगियों को फल व धन-दान, गरीब व असहायों को भोजन तथा वस्त्र का दान करना उत्तम होता है।

अन्नप्राशन संस्कार

षोडश संस्कारों में से पाँचवाँ संस्कार 'अन्नप्राशन' का है, जिसका अर्थ है—बच्चे को विधिवत् किसी शुभ दिन से अन्न का सेवन कराना आरम्भ करना।

जन्म से छठे महीने या वर्ष के भीतर किसी शुभ दिन में अन्नप्राशन संस्कार करें, क्योंकि इस अवस्था तक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहुँचते-पहुँचते बालक विकसित हो जाता है। प्रकृति तो सबसे बड़ी धात्री है। छह महीने का बालक घुटनों के बल बैठने लगता है। उसके हाथ-पैर, सिर कुछ मजबूत होने लगते हैं, उनमें शक्ति आ जाती है। थोड़ा-बहुत गूँ-गा भी करने लगता है। उसके आगे की दो दंतुलियाँ भी निकल आती हैं। माँ के दूध से अब उसका काम चलने वाला नहीं। उतने से ही उसकी क्षुधा तृप्त नहीं होती। फिर आगे के जीवन में तो उसे अन्न खाकर ही इस शरीर को धारण करना है। एक वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते तो उसे दूध बिल्कुल छोड़ देना पड़ेगा।

अन्न के सूक्ष्म भाग से ही मन बनता है। इसलिए पवित्र मन बनाने के लिए अन्न का न्यायपूर्ण अर्जन, पवित्र भाव एवं सात्विक क्रियाओं के द्वारा स्वच्छ और निर्मल बनाना चाहिए।

शास्त्रकारों ने अन्न के सम्बन्ध में बड़े सूक्ष्म विचार प्रकट किए हैं, क्योंकि अन्न से हमारे मन की रचना होती है और मन ही सम्पूर्ण मानवी क्रियाओं का केन्द्र-बिन्दु होता है। मन की शक्ति अथाह है। जिसका मन अपने वश में है वही योगी, ऋषि, मुनि, महापुरुष, प्रतिभाशील आदि नामों, उपाधियों को धारण करता है और जिसका मन अपने वश में नहीं है, चंचल है वह नाना प्रकार के व्यसनों, बुराइयों के पीछे मारा-मारा फिरता है, उसका जीवन सार्थक जीवन नहीं होता। मन पर विजय प्राप्त करने वाला व्यक्ति ही संसार-विजयी हो सकता है।

फिर जिस मन पर हमारी मानवी क्रियाएँ निर्भर हैं, बच्चे का सारा सुख-दुःख निर्भर है, उसकी रचना के लिए माता-पिता का कर्त्तव्य विशेष हो जाता है और सारे उपाय तो गौण परन्तु बालक के विकास में उसे ठीक मार्ग पर लगाना सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। आजकल भोजन की शुद्धता-अशुद्धता पर कोई विचार किये बिना पेट को कूड़ाखाने की तरह भरना हमारी आदत बनती जा रही है। उसमें चाकलेट, आइसक्रीम, लैमनजूस आदि तो बचपन से ही पड़ने लगते हैं, फिर चाहे और जो भी भोजन खिलाना हम बच्चों को प्रारम्भ कर देते हैं। यह एक गलत प्रक्रिया है। बच्चे को जिस मार्ग पर ले जाना है, जिन वस्तुओं या आदतों के प्रति प्रेम पैदा करना है उनका अभ्यास इसी अवस्था से करना है।

अन्नस्य सूक्ष्मविभागात् मनः सुविकसितं भवति।

अतः न्याया अर्जनं सद्भावनया सत्क्रियाभिश्च सुनिर्मलाम् कुर्यात्।।

जिस अन्न को हम बच्चे को खिलाना प्रारम्भ करें उसमें तीन विशेषताएँ होनी चाहिए—

(१) माता-पिता द्वारा न्यायपूर्वक उस अन्न का अर्जन किया गया हो। (२) अन्न के साथ पवित्र भाव हो। (३) सात्विक क्रियाओं के द्वारा उसे स्वच्छ और निर्मल बनाना चाहिए। संक्षिप्त में 'अन्नप्राशन' संस्कार का उद्देश्य निम्नलिखित है—

(१) **'तथैवान्नचयनम् कृत्वा तद्भावानुकूलक्रियाभिः त्यक्त्वा प्राशनम् कारयेत्।'**

'बालकों को जिन गुणों से सम्पन्न कराना हो, वैसे ही अन्नों का चयन कर उसी भाव एवं तदनुकूल क्रियाओं से उसे तैयार कर खिलाना चाहिए।'

आप बच्चे को क्या बनाना चाहते हैं ? व्यापारी, मजदूर, कृषक, सैनिक, इन्जीनियर, अध्यापक आदि। हर पद की तैयारी में अन्न का विशेष हाथ होता है। यदि आपकी चाह है कि बच्चा बड़ा होकर सेना का जनरल बने तो उसे खिलाने वाले अन्नों में बहुत ज्यादा सात्विकता का विचार करने की आवश्यकता नहीं है। वह अन्न खिलाइए जिससे उसका शरीर स्वस्थ हो, माँसल व सुदृढ़ हो। बुद्धिजीवी बनाना हो तो उस प्रकार के अन्नों का चयन करना चाहिए अर्थात् पौष्टिक और गुणकारक भोजन।

गीता में भगवान ने तीन प्रकार के अन्नों का वर्णन किया है—सात्विक, राजसी और तामसी।

"आयुष्य, सात्विकता, बल आरोग्य सुख और रुचि बढ़ाने वाले रसदार, चिकने, पौष्टिक और मन को रुचिकर आहार सात्विक स्वभाव के लोगों को प्रिय होते हैं।"

"तीखे, खट्टे, खारे, बहुत गरम, चरपरे, रूखे, दाहकारक आहार राजस लोगों को प्रिय होते हैं और वे दुःख, शोक तथा रोग उत्पन्न करने वाले होते हैं।"

'पहर भर से पड़ा हुआ, नीरस, दुर्गन्धित, वासी, जूठा, अपवित्र भोजन तामस स्वभाव के लोगों को प्रिय होता है।'

इस तरह आप अपने बच्चे को किस स्वभाव का बनाना चाहते हैं—सात्विक, राजस अथवा तामस। उसी के अनुसार उसके लिए भोजन का चयन करें।

(२) **"स्वस्थित्यानुरूपम्, अभ्यागतेभ्यः सहवासिभ्यः आश्रितेभ्यश्च दत्वा शेषान्नान् भुञ्जीत्।।"**

'अपनी स्थिति के अनुरूप अभ्यागतों, पड़ोसियों एवं आश्रित प्राणियों को देने के उपरान्त शेष अन्न के गुण को ग्रहण करना।'

अन्नप्राशन के दिन अपने बच्चे को जिस प्रकार का अन्न खिलाने का चयन आपने किया हो, उसे अधिक मात्रा में बनवाएँ और सबसे पहले अतिथियों, अपने पड़ोसियों और नौकर-चाकरों को उसे खिलाकर तब उसका सार भाग बच्चे को खिलायें। इससे दान-पुण्य की भावना बच्चे में उत्पन्न होगी, उन सभी का आशीर्वाद उसे मिलेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(३) **"अन्नम् 'ब्रह्म' इति मत्वा प्रेमादरेण, उपयोगं, अनष्टं औच्छिष्टं कुर्यात्।।"**

'अन्न को भी ब्रह्म मानकर उसे प्रेम आदर से उपयोग करना, नष्ट नहीं करना तथा उच्छिष्ट नहीं छोड़ना।'

अन्न को ईश्वर का प्रसाद समझकर खाने का भाव बच्चे में उत्पन्न करना है। उत्तम भाव से ईश्वर का प्रसाद समझकर जिस अन्न को खाया जाता है वह हमारे शरीर में लगता है। अन्न की मात्रा और विटामिन पर विचार की तुलना में भाव पर अधिक जोर देना लाभप्रद है। अपने विद्यालय के भोजनालय में परीक्षण करके मैंने स्वयं देखा है। वहाँ शुद्ध भाव से मन्त्रोच्चारण के साथ नित्य भोजन करने का नियम है। भोजन बनता है जिसे पौष्टिकता की दृष्टि से बहुत उच्चकोटि का नहीं कह सकते। परन्तु उस भोजन का प्रभाव लड़कों और अध्यापकों सब पर देखा। सबके स्वास्थ्य में आश्चर्यजनक परिवर्तन पाया।

उस दिन हमें यह भाव भी ग्रहण करना है कि भारत में आज अन्न की समस्या बड़ी विकट है। बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए भोजन की व्यवस्था करना बड़ा कठिन हो रहा है। प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये का अन्न बाहर से मँगाना पड़ता है। ऐसी अवस्था में अपनी थाली में अन्न बचा देना राष्ट्रीय पाप है। ऐसा हमें न करना चाहिए। बड़े लोग तो यह विचार करते हैं, परन्तु प्रायः हमने देखा है कि छोटे बच्चों के लिए माता-पिता कुछ नहीं करते। छोटी-सी थाली या कटोरी में उनको भोजन दे देते हैं। अगर अपने हाथ से खाने लगे हैं तो आधा खाते हैं और आधा बिखेरते हैं। माता-पिता भी इसके लिए उन्हें कुछ नहीं कहते। ऐसे अवसर पर बच्चों को प्रेम से समझाना चाहिए ताकि तदनुकूल भाव बने और उतना ही देना चाहिए जितना वह खा सके। इस भाव को ठीक अन्नप्राशन के दिन से ही शुरू करना चाहिए।

(४) **'भोजनकालस्य, आवश्यकतायाः मात्रायाः स्वच्छतादेश्च सुविचारपूर्णं सदुपयोगम् कुर्यात्।'**

'भोजन का समय, आवश्यकता, मात्रा, स्वच्छतादि का विचारपूर्वक सदुपयोग करना।'

जब से बच्चे को भोजन कराना प्रारम्भ करें, उसी दिन से उसके प्रति चार बातों पर ध्यान देना चाहिए—

(अ) भोजन समय का निर्धारण—दिन में ४ बार या ५ बार थोड़ा-थोड़ा भोजन चटावें, परन्तु नित्य एक ही समय पर वैसा करें, तब बच्चे का हाजमा ठीक रहेगा। अनियमित ढंग से भोजन कराते रहने पर बच्चा नाना प्रकार की बीमारियों से जकड़ जाता है। दस्त आने लगते हैं, हाँड़ी की तरह पेट आगे निकल आता है। शरीर बेडौल हो जाता है। पेट फूलने लगता है, जीवनभर वह रोगों का शिकार बना रहता है।

(ब) आवश्यकता—छह-सात महीने के बच्चे को तो केवल अन्न चटाना रहता है, उसे अधिक खिलाने का प्रयास न करना चाहिए। केवल पतली चीजें चटानी चाहिए, जो कड़वी और तीखी न हों। ज्यों-ज्यों बच्चा बढ़ता जाये उसके भोजन की मात्रा बहुत धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए। बहुतेरी माताओं की यह धारणा होती है कि यदि उनका बच्चा अधिक खा लेगा तो खूब मोटा हो जायेगा। इसलिए वे उसे हर समय अधिकाधिक खिलाने का प्रयास करती हैं और नजर न लगे इसलिए दूसरी स्त्रियों से कहा करती हैं—'भइया, कुछ खाता ही नहीं इसे तो न जाने क्या हो गया है ?' उन्हें क्या पता कि वे स्वयं ऐसा करके अपने बच्चे को लाभ पहुँचाने के बजाय हानि पहुँचा रही हैं। बच्चा भद्दा और काहिल बनता जाता है। अतः भोजन उतना ही कराना चाहिए जितने की उसके लिए आवश्यकता हो तथा उसकी पाचन-क्रिया उस बोझ को सँभाल सके।

(स) स्वच्छता—भोजन में स्वच्छता रखना अति आवश्यक है। बच्चे खाते रहते हैं, सैकड़ों मक्खियाँ भिनभिनाती रहती हैं। गन्दे स्थानों पर भी उन्हें भोजन करने के लिए बिठा दिया जाता है। बच्चा उसमें अपनी उँगली सानता है, मिट्टी और कूड़ा भरता है। अतः माता को स्वयं चाहिए कि वह बच्चे को अपने सामने भोजन कराये। स्वच्छता का पूरा-पूरा ध्यान रखे। बच्चा तो अभी आपके आश्रित है आप उसको जैसे ढर्रे पर चलायेंगा, वही मार्ग उसे प्यारा लगने लगेगा। फिर बच्चे में तो स्वच्छता की आदत डालनी है। स्वच्छता में सबसे पहले भोजन की स्वच्छता आती है। इन सबों को आपको पहले सिखाना है। स्थान की स्वच्छता के बारे में तो बच्चा दो-तीन वर्ष बाद ही कुछ कर सकेगा।

(५) **भोजनस्य याचिते, प्रदत्ते, कारायेते एवं भक्षिते काले तस्मिन् यद्भावाविचारसंकल्पनाम् सन्निवेशं कुर्यात्।।**

अर्थात्—'भोजन को सिद्ध करने, परोसने, खिलाने और खाने के समय उसमें सद्भावों एवं संकल्पों का सन्निवेश करना, जो कल्याणकारी हो।'

जिस समय हम भोजन करते हैं, तो हमारे मुँह के अन्दर दो ग्रन्थियाँ होती हैं, उनमें से लार निकलती रहती हैं। जब कौर को मुँह में डालते हैं और चबाते हैं तो यही लार उसमें मिलती रहती है। भोजन को पचाने के लिए इस लार का पर्याप्त मात्रा में खाने के साथ मिलना आवश्यक होता है। जितनी ही अधिक देर तक 'कौर'—भोजन को चबा-चबाकर खायेंगे उतनी ही अधिक मात्रा में उसमें लार मिलेगी। तभी वह भोजन पेट के अन्दर शीघ्र पचेगा।

शरीर-शास्त्र विशारदों ने भली प्रकार यह परीक्षण किया है कि क्रोध, आवेग की अवस्था में ये ग्रन्थियाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने में से लार निकालना बन्द कर देती हैं। अतएव इस अवस्था में यदि भोजन किया जाये तो उसमें उचित मात्रा में लार न मिल पायेगी फिर पेट के अन्दर जाने पर वह शीघ्र पचेगा नहीं।

इसलिए प्रसन्नचित्त, शान्त स्वभाव के साथ बैठकर भोजन करना चाहिए, हाथ-पैर धोकर, पवित्र स्थान पर भोजन करना चाहिए। भोजन करते समय हमारे विचार शुद्ध और पवित्र रहें।

इसी प्रकार जो लोग भोजन बनाते और परोसते हैं, उनका भी पवित्र विचार और भोजन करने वाले के प्रति स्नेह-भाव होना चाहिए। होटल में खाने वाले ९० प्रतिशत व्यक्ति पेट के रोगों के शिकार होते हैं। कारण यही है कि होटल में भोजन बनाने और परोसने वालों में यह भाव नहीं होते। सुन्दर बरतनों में चाहे कई प्रकार की तरकारियाँ, दाल, चटनी आदि भले ही सजे हों परन्तु उसमें स्वास्थ्य को बढ़ाने वाले भाव का सर्वथा अभाव रहता है। वहाँ तो होटल के मालिक और समस्त कर्मचारियों की मनोवृत्ति ग्राहक से अधिक पैसा ऐंठने की होती है।

सबसे अधिक उत्तम माता के हाथ का परोसा भोजना माना गया है क्योंकि बच्चे को बिठाकर खिलाते समय वह सोचा करती है कि बेटा खूब आनन्द से भोजन करे और खूब मोटा हो जाये। माता के हाथों का बनाया और परोसा हुआ रूखा-सूखा भोजन होटल के हजार कीमती भोजनों से श्रेष्ठ होता है।

आज सारा देश अस्पतालों की ओर क्यों दौड़ा चला जा रहा है ? शहरों तथा स्टेशनों के भोजनगृहों को देखिये, भण्डारी जूता पहने, बीड़ी पीता हुआ खाना भी बना रहा है और परोस भी रहा है। थालियों में सामान निकालकर रख दिया, मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। शुद्धता-अशुद्धता का कोई ध्यान नहीं, भोजन खाने वाले के प्रति स्नेह और सद्भाव नहीं फिर वह भोजन कैसे गुणकारी बने ?

अपने बच्चे को अन्न खिलाना प्रारम्भ करते समय माता-पिता को भी इन तथ्यों को भली प्रकार हृदयस्थ करना चाहिए और अपने बच्चे में भी उन तथ्यों को धीरे-धीरे प्रविष्ट करना चाहिए। उसे इधर-उधर की सभी चीजें न खिलानी चाहिए। शुद्ध और पवित्र हाथों से बना हुआ, परोसा हुआ और शुद्ध विचारों के साथ जो भोजन आप अपने बच्चों को करायेंगे वह उसके शरीर में लगेगा और तीव्र गति से बच्चे का स्वाभाविक विकास होता चलेगा। इन आधारभूत सत्यों को न स्वीकार कर आधुनिक सभ्यता में बहुतेरे माता-पिता बहुत कीमती एवं विटामिनयुक्त भोजन कराने की धुन में लगे रहते हैं। आहार की पौष्टिकता पर बल देना उचित है परन्तु उससे जुड़े मनोभावों को भी समझना पड़ेगा। गन्दे हाथों से परोसा हुआ स्वादिष्ट भोजन अहितकारी सिद्ध होगा। प्रेम से परोसी गई चने की रोटी मैले मन से परोसी गई गेहूँ की रोटी से हजार गुना श्रेष्ठ है।

अन्नप्राशन का यह एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। इसीलिए कहा है—

'अन्नम् औषधि, प्रसादे, 'ब्रह्मस्वरूप'

मत्वा प्रसन्नतया सद्भावतया भक्षयेत्।।'

'अन्न को औषधि, प्रसाद, अन्न-ब्रह्म के रूप से प्रसन्नता, आदर और सौम्य भाव में ग्रहण करना चाहिए।'

अन्नप्राशन संस्कार विधि—जन्म के छठे मास या वर्ष के भीतर किसी शुभ दिन में यह संस्कार करने का आयोजन करना चाहिए। अपने बन्धु-बान्धवों, मित्र एवं सहयोगियों को भी बुलाना चाहिए।

तत्पश्चात् पिता और माता बालक सहित मंगल द्रव्यों से युक्त जल से स्नान करके, स्वच्छ वस्त्र पहनकर, तिलक लगाकर शुभ आसन पर बैठकर मार्जनादि छह कर्मों को अपने आचार्य की सहायता से पूरा करके संकल्प करें।

देशकाल कीर्तनान्ते ममास्य शिशोर्मातृगर्भा पूतप्राशन शुद्धयर्थमन्नाद्य ब्रह्मवर्चस् तेज इन्द्रियायुर्बल लक्षण सिद्धि बीजगर्भ समुद्भव कल्मषापमार्जन द्वारा श्री परमेश्वरप्रीत्यर्थमन्नप्राशनाख्यं कर्महं करिष्ये।

'देशकाल का स्मरण कर मेरे इस बालक का गर्भवास और मलिनभक्षण की शुद्धि के अर्थ अन्नप्राशन से होने वाले इन्द्रिय, आयु, बल की स्थिरता तथा ब्रह्मवर्चस् तेज की सिद्धि और बीज गर्भ-सम्बद्ध मलिनता नष्ट करने द्वारा परमेश्वर की प्रीति के लिए मैं अन्नप्राशन करूँगा।'

फिर सब मंगलों के प्रदान करने वाले देवता गणेश आदि की पूजा करके स्वस्तिवाचन करना चाहिए।

तत्पश्चात् कड़ुवा, तीखा, कषैला, मीठा, खट्टा, नमक इन छह रसों और चावल आदि जितने अन्न प्राप्त हों उन सबको शुद्ध कर पकाकर एक उत्तम पात्र में रखकर बालक के पास लाकर एक चाँदी के चम्मच से नीचे लिखे मन्त्र को बोलकर बच्चे को खीर चटावें।

''ॐ अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्य नमावस्य शुष्मिणाः प्रप्रदातरंतारिष्ट ऊर्ज्जन्नोधेहि द्विपदे चतुष्पदे।'

विद्यारम्भ संस्कार

विद्वानों ने कहा है कि किसी कार्य का शुभारम्भ अच्छी सफलता का द्योतक होता है। आपका बच्चा कुछ जब बड़ा हो चले तो मानव जीवन के सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य प्राप्त करने की ओर आपको उसे लगाना है। शास्त्रकारों ने कहा है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

''एह लौकिक पारलौकिनामानन्दरया हो रुपाय: विद्यैवास्ति। सर्वोत्कृष्टकर्मणाम् परिसमाप्ति: ज्ञाने (ज्ञानपूर्ण कर्मणि) एव भवति। शारीरिकं, मानसिकं, आन्तरात्मिक विकास: अनयैव सुसम्पद्यते।''

अर्थात् जागतिक सुख और पारलौकिक आनन्द प्राप्ति का साधन विद्या ही है। सभी उत्कृष्ट कर्मों की परिसमाप्ति ज्ञान में (ज्ञानपूर्ण कर्म में) ही होती है। शारीरिक, मानसिक तथा अन्तरात्मक विकास इसके द्वारा ही सुसम्पन्न होता है।

''विद्यै वसार्वविषयिकी सत्या नामाप्ति: वस्तुत: भवति। अनयैव व्यक्तित्वे नम्रताया: एवं पालनायश्च वृद्धिर्भवति, सदैव धर्मधन सुखानि प्राप्यते। सर्वत्रैव उन्नतिर्भवति। अस्या: सदुपयोगेन विविधैश्वर्य सुख सम्पत्ति कल्याणानाम् अभि वृद्धिर्भवति तथा दुरुपयोगेन दुर्दान्तासुरी प्रवृत्तिमाप्य अन्ते दुसहनरकाप्तिर्भवति।''

अर्थात्—विद्या से सर्वविषयक सत्यों की वास्तविकता की प्राप्ति होती है। इससे व्यक्तित्व में नियम, भाव और पात्रता की वृद्धि होने से धर्म, धन और सुख मिलते हैं। सर्वविषयक और सभी क्षेत्रों में उन्नति होती है। इनके सदुपयोग से विविध ऐश्वर्य, सुख-सम्पत्ति एवं कल्याण की अभिवृद्धि होती है और दुरुपयोग से भयंकर दुर्दान्त आसुरी दुर्गुणों से भरकर अन्त में घोर दुर्दशा और नरक की प्राप्ति होती है।

''विद्यैव अज्ञान भ्रम मोहभय वासनानी त्यनाचारादिभ्य: आसुरी दुर्गणेभ्य: मुक्त्वाज्ञानी सदाचार पारायण: एवं लोक सेवक: भवति तथा जीवने मंगलमयीं सम्भावनां सम्पत्स्यते।''

''विद्या के द्वारा अज्ञान, भ्रम, मोह, भय, वासना, अनीति, अनाचार आदि आसुरी दुर्गुणों से मुक्त होकर ज्ञानी, निर्मल, सदाचार, परायण एवं लोकसेवी बनने की मंगलमयी सम्भावनाओं का जीवन में उदय होता है।''

जिस युग में हम लोग निवास कर रहे हैं, यह प्रजातन्त्र युग है। प्रजातन्त्र की शासन पद्धति तभी सुचारु रूप से चल सकती है जबकि नागरिक पढ़े-लिखे हों, उनमें यह विवेक-बुद्धि हो कि वह अच्छे आदमी को वोट देकर उसे सरकार में भेजें। यदि पक्षपात, दबाव, घूँस, भय अथवा अन्य किसी कारण से लोग अच्छे और योग्य व्यक्ति के बजाय बुरे और अयोग्य व्यक्ति को चुनने की परम्परा डालते हैं तो सरकार का ढाँचा लड़खड़ा जायेगा। धन और शक्ति का अपव्यय होगा। देश के निवासियों का जीवन नरक तुल्य बन जायेगा। जिसका परिणाम यह होगा कि चारों ओर अशान्ति, हिंसा और क्रूरता फैलेगी, लोग एक-दूसरे के जान से दुश्मन बन जायेंगे।

हमारे देश में चूँकि वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रजातन्त्र शासन प्रणाली को अपना लिया गया है, दूसरे के सामने हमारे नेतागण आदर्शवाद की दुहाई देकर कह भी सकते हैं कि ४४ करोड़ जनता का प्रजातन्त्रीय देश संसार में भारत को छोड़कर अन्यत्र नहीं है।

भारतवर्ष में शिक्षा केवल २० प्रतिशत है। सौ के पीछे अभी बीस व्यक्ति ही साक्षर हो पाये हैं। किसी भी स्वाधीन एवं प्रगतिशील राष्ट्र आज के युग में शत-प्रतिशत शिक्षित होना चाहिए।

यह सब प्रयत्न इसीलिये किया जा रहा है क्योंकि आज के शिशु बालक और युवक अच्छी शिक्षा प्राप्त करें, क्योंकि कल उन्हीं के ऊपर देश, समाज और राष्ट्र के संचालन की जिम्मेदारी आने वाली है। भावी भारत की उन्नति की कल्पना को वही साकार करेंगे। उन्हीं की योग्यता पर भारतीय संस्कृति के जीवित एवं प्रसारित रहने की आशा बाँधी जा सकती है।

इसलिए माता-पिता को अपने बच्चे को पढ़ाने की ओर ध्यान देना चाहिए। जो माता-पिता इस ओर समुचित ध्यान नहीं देते उनके लिए चाणक्य ने लिखा है कि 'माता बैरी पिता शत्रु जे न बालक पठिताः।'

वह माता बैरी के तुल्य है और पिता शत्रु है जिन्होंने अपने बालक को समुचित रूप से शिक्षा देने की ओर ध्यान न दिया हो। सन्तानों का पैदा कर देना कोई बड़ी बात नहीं है, उन्हें शिक्षा भी देनी चाहिए।

पाँच वर्ष की आयु से बच्चे की शिक्षा आरम्भ कराने की बात करनी चाहिए। तभी वह ज्ञान के मार्ग पर चलना शुरू करेगा और धीरे-धीरे एक दिन आदर्श नागरिक, विद्वान और गुणसम्पन्न व्यक्ति बन सकेगा।

कहावत है कि 'बिना पढ़े नर पशु कहाये।' ऐसा क्यों कहा गया है ? एक ही माँ-बाप के दो बच्चे होते हैं, उनमें सौभाग्य से एक तो पढ़-लिखकर विद्वान बन गया और दूसरा घर पर ही गृहस्थी का काम करता रहा। आप उन दोनों में अन्तर देखिए। यह बात दूसरी है कि सायंकाल तक अपने लिए भोजन की व्यवस्था बेपढ़ा भी कर ले लेकिन उनकी बोलचाल में जमीन-आसमान का अन्तर मिलेगा, पढ़े की बातचीत सलीके की होगी, उसकी वाणी में मिठास होगी, वह किसी आगन्तुक का अपने द्वार पर स्वागत करेगा, उसे प्रसन्न करने का तरीका जानेगा, इसके विपरीत बे-पढ़े-लिखे में न तो बात-चीत करने का तरीका होगा, न स्वागत-सत्कार करने का। पढ़े का चेहरा सज्जनतापूर्ण दिखायी पड़ेगा, बेपढ़े का यदि जानवर का नहीं तो जानवर जैसा रूखा अवश्य होगा।

भारत के अनेक गाँवों में घोर अशिक्षा व्याप्त है। अशिक्षा से ही गन्दगी, छुआछूत, वैमनस्य, जाति-पाँति का भेद-भाव जड़ जमाये हुए है। शिक्षा रूपी सूर्य के प्रकाशित होते ही यह रजनीचर सब स्वयं भागकर बिलों में शरण ले लेंगे। इसलिए भारतवासियों की उन्नति का एकमात्र आधार है—शिक्षा। शिक्षा के व्यापक प्रसार से ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

युग-निर्माण की कल्पना साकार होगी। तभी तो उत्तम विचार फैल सकेंगे। नवीन विचारों से ही नवीन युग का प्रादुर्भाव होगा, नवीन युग की आज की दुर्दशाओं का अन्त करेगा, मानव जीवन सार्थक होगा।

विद्या-आरम्भ की शुभ बेला को विद्या आरम्भ संस्कार कहा गया है। पाँचवें वर्ष में आप बच्चे की विद्या आरम्भ संस्कार कराएँ। मुंडन संस्कार पर तो लोग बड़ा पैसा खर्च करते हैं लेकिन विद्या आरम्भ संस्कार को उतना महत्त्व नहीं देते, बड़े संक्षिप्त रूप में उसका आयोजन करते हैं। जब बच्चा पाँचवें वर्ष में पहुँचे तो किसी योग्य आचार्य से आप पूछकर शुभ मुहूर्त निश्चित करें। फिर उसी के अनुसार अपनी तैयारी प्रारम्भ करें। तैयारी से एक लाभ यह भी होता है कि उसके उस संस्कार के प्रति अनुकूल वातावरण बनता है। बच्चा भी कुछ-कुछ समझने लगता है कि यह सब उसी के लिए हो रहा है। उसके लिए जब उस दिन पहनने के लिए अच्छे कपड़े बनते हैं टोपी आती है, जूता खरीदा जाता है, पट्टी बनती है, तो यह सब देखकर उसे भारी प्रसन्नता होती है, वह फूला-फूला घूमता है, अपनी सखा-मण्डली में सबसे अपनी तुतली भाषा में कहता है कि मेरा विद्या-आरम्भ संस्कार है।

रिश्तेदार, मित्रों और सहयोगियों को आप उस दिन आने के लिए निमन्त्रण अवश्य दें। इससे दो लाभ होंगे— प्रथम तो सब लोग आपके बच्चे के लिए विद्या पढ़ने के लिए मंगलकामना करेंगे, आशीर्वाद देंगे जिसका सूक्ष्म प्रभाव बच्चे पर अवश्य पड़ेगा, दूसरे आपके संस्कार आयोजन से वह लोग भी प्रेरणा ग्रहण करेंगे, अपने बच्चे को पढ़ाने की तथा विद्या-आरम्भ संस्कार करने की।

बच्चे की प्रारम्भिक देख-भाल

पहले दिनों की गलत देख-भाल बच्चे के भविष्य-निर्माण पर बुरा असर डालती है। इस बात का ध्यान रखें कि बच्चे को उचित ढंग से उठाया जावे। सिर और कन्धों के नीचे हल्का-सा हाथ रखकर उठाना चाहिए, क्योंकि उसकी गर्दन और रीढ़ की हड्डी अभी स्वयं सिर का बोझ नहीं सँभाल सकती। बच्चे के तालु का बचाव किया जाय। यह बहुत कोमल होता है। उस पर जरा भी दबाव न पड़ने दिया जाय। बच्चे को आवश्यकता से अधिक नहीं उठाना चाहिए। आने-जाने वालों के लाड़-प्यार के कारण बच्चे को बहुत हिलाया, डुलाया, उछाला, थपथपाया न जाय।

प्रथम सप्ताहों में बच्चे के स्वास्थ्य की हर प्रकार रक्षा करनी चाहिए। बच्चे के कमरे में कभी अधिक भीड़ न होने दें। उसे ऐसे कमरे में भी न ले जावें जहाँ बहुत से लोग इकट्ठे हों। किसी व्यक्ति को अपना मुँह बच्चे के बहुत निकट न करने दें क्योंकि इस प्रकार साँस की गन्दी वायु बच्चे के फेफड़ों में प्रविष्ट हो जाती है। शिशु को देखकर प्रत्येक व्यक्ति का मन करता है कि वह उसको प्यार करे, किन्तु आप इस बात पर कठोरता से दृढ़ रहें कि किसी को बच्चे का मुख न चूमने दें।

माता के मन में भी यदि बहुत प्यार आये तो वह भी उसके गालों का चुम्बन न करे किन्तु सिर, हाथों या बाहों को चूम ले। बच्चे का शरीर अत्यन्त कोमल होता है। बड़ों की साँस के द्वारा कई रोगों के कीटाणु उसके अन्दर प्रवेश कर सकते हैं। इस मामले में अपने सगे-सम्बन्धियों की अप्रसन्नता की कोई चिन्ता न करें। यदि आप स्वयं अपने मुख से उन्हें कुछ नहीं कहना चाहते तो पहले ही दिन से बच्चे के कमरे में लिखकर लगा दें।

किसी रोगी व्यक्ति के घर में आने पर उसे बच्चे के समीप न आने दें। अधिक अच्छा यही है कि वह उसके कमरे में ही न आये। बीमारी से उठे हुए बच्चे को कभी छोटे बच्चे के समीप न आने दिया जावे। दूसरे की अप्रसन्नता अथवा निन्दा की चिन्ता न करें। कोई भी व्यक्ति जिसे जुकाम हो तो वह भी पूर्ण सावधानी रखे कि उसके नाक और मुँह की भाप बच्चे की नाक में और मुँह में न जाये। दूध पिलाते समय वह अपनी नाक और मुँह को कपड़े से ढाँप ले। जुकाम से बच्चे को पूरी तरह बचाया जाय, क्योंकि जुकाम से कई बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं।

बच्चे की पहली आवश्यकताएँ—

बच्चे के लिए सबसे पहली आवश्यकताएँ ये हैं—

१. **हवा**—ताजा, स्वच्छ, न बहुत ठण्डी, न बहुत गरम हो।

२. **पानी**—साफ उबला हुआ।

३. **भोजन**—जो प्रकृति ने उसके लिए नियत किया है अर्थात् माता का दूध। उसके बाद उससे मिलता-जुलता आहार।

४. **गरमी**—वस्त्र, गरम बिस्तर, गरम कमरा और सबसे अधिक आवश्यक, माता के अपने शरीर की गर्मी।

५. **स्वच्छता**—बच्चे की प्रत्येक वस्तु को पूर्ण रूप से स्वच्छ रखा जाये। बार-बार धोना और उबालना अत्यन्त उत्तम बातें हैं। उसके समीप आने वाले लोग पूर्णतया साफ-सुथरे हों। उनके हाथ साफ कराये जायें। उनके जूते अपने साथ बच्चे के कमरे में गन्दगी और मैल न लाएँ। बच्चे के कमरे में मक्खी और मच्छर का नाम तक न हो।

६. **विश्राम**—कोमल बिस्तर, छोटा सुखद सिरहाना, धूप, हरियाली, आराम, सुन्दर हल्के रंगों वाले खिलौने और रमणीक वातावरण।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

७. नियमितता—भोजन समय पर दिया जावे और बच्चे के शेष कामों में नियमितता लाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया जावे। उसकी नींद के और टट्टी करने के समय भी यत्नपूर्वक निश्चित किये जा सकते हैं।

अक्सर बच्चे का पिता घर के जीवन में कोई हाथ नहीं बँटाता। बच्चे के लिए पिता का महत्त्व इस बात में है कि वह कभी-कभी उसके लिए खिलौना या बिस्कुट आदि लाता है। कभी-कभी वह बच्चे को गोद में भी उठा लेता है, परन्तु उसे डर बना रहता है कि कहीं पेशाब या टट्टी न कर दे। हाँ, रविवार या किसी छुट्टी के दिन पिता के घर पर रहने से माता को थोड़ी फुरसत मिल जाती है। बच्चे के बीमार पड़ने पर तो बेचारी माँ को और भी कष्ट उठाने पड़ते हैं। कभी-कभी इन परेशानियों से तंग आकर वह अपने मायके को चली जाती है। वहाँ बच्चे को सँभालने में कुछ लोग हाथ बँटाने वाली होती हैं किन्तु मौसियाँ और बुआएँ कई बार बच्चे को ऐसी बुरी-बुरी आदतें सिखा देती हैं, जो आयुपर्यन्त उसका साथ नहीं छोड़तीं। बच्चे को हँसाना, उछालना, उसे चुटकियाँ काटना और धौल-धप्पा करना, ये काम मौसियों और बुआओं को बड़े प्रिय होते हैं। वे तो अपना शौक पूरा करती हैं, किन्तु बेचारे बच्चे की शामत आ जाती है।

पहले बच्चे के जन्म के बाद आमतौर से ऐसी ही बातें देखने में आती हैं। नई माताओं को बहुत हद तक पुरानी लीकों पर चलना है, उन्हें वही सब करना पड़ता है, जो पुरानी माताएँ करती आई हैं। हमारा समाज कोई नया विचार सहन नहीं करता। यदि अड़ौस-पड़ौस में कोई ऐसी स्त्री आ जाये जिसका ढंग कुछ अलग तरह का हो, तो वह भी अपनी पड़ोसिनों के पद-चिह्नों पर चलने लगेगी या उसे अपने लिए कहीं अलग मकान लेना पड़ेगा। इस तरह पुरानी लीकें पक्की एवं गहरी होती चली जाती हैं। नई माँ जिस तरह का व्यवहार अपने मायके या ससुराल में देखती आई है, उसी तरह का व्यवहार वह स्वयं अपने बच्चे के साथ करती चली जाती है। जिस तरह अड़ौस-पड़ौस की स्त्रियाँ करती हैं, उसी तरह वह भी करती है। बच्चे को डरा-धमकाकर उन्हें वश में रखना, न मानने पर पीटना आदि वह सीख जाती है। साथ ही वह पड़ोसियों से यह भी सीख लेती है कि बच्चे को 'नजर' कैसे लगती है, उसकी झाड़-फूँक कौन करता है तथा अन्य आवश्यक रीति-रिवाज कैसे पूरे किये जाते हैं ?

हमारे बच्चे पेड़-पौधों की भाँति उत्पन्न होते हैं और उन्हीं की तरह उनका पोषण होता रहता है। हम उनके पोषण में उनकी कोई विशेष सहायता नहीं देते। समय, भोजन तथा पानी, यही तीन चीजें उनकी सहायता करती हैं। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, उनके शरीर का पालन-पोषण होता जाता है। पानी और रोटी भी हम कभी ढंग से और कभी बेढंगेपन से देते हैं। बच्चों के हाथों-पैरों या अन्य अंगों को समय के प्रवाह के साथ बढ़ना ही होता है। किन्तु उनके अंग और सारा शरीर सुन्दर ढंग से पुष्ट और परिवर्धित हो, इसके लिए हम उनकी कोई सहायता नहीं करते। हमारी धारणा है कि जिस परमात्मा ने उन्हें पैदा किया है, वही उनका पालन-पोषण भी करेगा। हमें चिन्ता करने या किसी प्रकार का प्रयत्न करने की, आवश्यकता नहीं। बच्चे इसी तरह जैसे-तैसे, अच्छे या बुरी तरह पलते रहते हैं।

हम बच्चों के कपड़ों, भोजन, आराम तथा जीवन की अन्य आवश्यकताओं के सम्बन्ध में कुछ अधिक सोच-विचार करने का प्रयत्न नहीं करते। जो मिला, वही उन्हें खाने को दे दिया। बच्चे के लिए सर्वश्रेष्ठ और उपयुक्त भोजन दूध है। किन्तु जब हम स्वयं खाना खाने बैठते हैं, तो उसे भी एक टुकड़ा रोटी का पकड़ा देते हैं। वह काटकर या थोड़ा-बहुत चबाकर खा ही लेता है। हमारी इस लापरवाही का परिणाम यह होता है कि बच्चे का पेट खराब हो जाता है तथा उसे कई प्रकार की बीमारियाँ हो जाती हैं। दूध, जो उसके लिए आवश्यक भोजन है, वह भी हम उसे ढंग से नहीं पिलाते। बच्चा जब भी रोने लगता है, माँ उसे चुप कराने के लिए अपना स्तन उसके मुँह में ठूँस देती है। उसे सुलाने के लिए या उससे अपना पीछा छुड़ाने के लिए भी वह यही काम करती है। यह ठीक नहीं।

मातृत्व अपने आप में एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। गर्भ में शिशु का पालन होता है और प्रकृति उसका संरक्षण करती है किन्तु प्रसव के पश्चात् शिशु के पालन-पोषण एवं देख-रेख का दायित्व माता का होता है। यदि शिशु के संरक्षण एवं व्यवस्था की साधारण जानकारियाँ भी न हों तो माता को बहुत बड़ी उलझन उत्पन्न हो जाती है।

शहरी क्षेत्र छोड़कर अभी भी भारत में ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा का अभाव है और शिक्षा के अभाव में महिलाओं का अज्ञान बना रहना स्वाभाविक है। इस विषय में उनकी मार्ग-दर्शक तो वृद्ध महिलाएँ ही होती हैं। शहरी क्षेत्र में भी पढ़ी-लिखी और अशिक्षित दोनों ही प्रकार की महिलाएँ माता बनने से पूर्व या गर्भवती अवस्था में मातृत्व के दायित्व की शिक्षा प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करतीं और न ही हमारे समाज में इस प्रकार की कोई व्यवस्था ही है। घर की वयस्क महिलाओं को इस प्रकार का प्रयत्न करना चाहिए। बेटियों, बहुओं को गर्भवती अवस्थाओं और गर्भवती अवस्थाओं के बाद शिशुओं की देखभाल और सँभाल करने की सावधानियों और साधारण बातों का शिक्षण कर दिया करें।

'माता निर्माता भवति' शास्त्रवचनानुसार तो माता शिशु को केवल जन्म देने वाली ही नहीं होती, पाल-पोष कर बड़ा कर देने वाली ही नहीं होती, अपनी भावनाओं और संस्कारों से संस्कारित करके जैसा चाहती है, बनाकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तैयार कर देने वाली होती है। इतना सब करना तो पीछे की बात है। कम से कम देख-रेख और साधारण बातों का ज्ञान तो प्रत्येक महिला को होना चाहिए। यदि यह सब जानकारियाँ महिलाओं को हों, तो माता बनने पर उनकी अनेक उलझनें स्वाभाविक रूप से कम हो सकती हैं।

शिशु के स्वास्थ्य पर वातावरण का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। घर, आस-पास बच्चे के बिस्तर, पहनने के कपड़े तथा वस्तुएँ जो उसके प्रयोग में आती हैं स्वच्छ रहना चाहिए। अस्वच्छता रखना मानो रोगों को आमन्त्रण देना है। गन्दी जगह पर खेलने, गीले, गन्दे कपड़े पहनने और गन्दे बिस्तर पर सोने से कई रोग हो सकते हैं। पानी, दूध आदि के बर्तन या उपकरण गन्दे रहने से तो शिशु कभी स्वस्थ नहीं रह सकता। सदैव किसी-न-किसी रोग का पात्र बना रहेगा। अतः स्वच्छता का चारों ओर पूरा ध्यान रखना चाहिए।

शिशु के पहनने के वस्त्र ऋतु अनुकूल ढीले-ढाले होने चाहिए; जिससे उसे खेलने, हाथ-पैर हिलाने में असुविधा न हो। तंग तो होना ही न चाहिए। ढीले भी इतने न हों कि उन्हें अपने शरीर-संचालन में व्यवधान उपस्थित हो। जाड़े के दिनों में मोटे, ऊनी कपड़े पहिनाना चाहिए किन्तु वे भी इतने अधिक न हों कि उसे भारी लगने लगें या अत्यधिक गरमी उत्पन्न करने लगें। ऐसी अवस्था में बच्चे रोते, चिल्लाते हैं, स्वयं परेशान होते हैं और दूसरे भी तंग होते हैं। पीछे भी फिर बच्चे कपड़ा पहिनाने में रोते हैं, पहिनने में आना-कानी करते हैं, पहिना भी दो तो खींच-खींचकर उतरवा देते हैं। अतः जैसा मौसम हो उसके अनुकूल वस्त्र पहिनाना चाहिए। गरमी के दिनों स्वच्छ, सूती, हल्के रंग के कपड़े पहिनाना चाहिए। अधिक महीन कपड़े भी गरमी में भी न पहिनाना ठीक होगा, क्योंकि महीन कपड़ों में लू लगने का सन्देह बना रहता है।

शिशु के कपड़े ऐसे खुले हुए सिलना चाहिए कि पहिनाते-उतारते समय उन्हें असुविधा न हो। बटन सामने या कन्धे पर लगाये जाने से सुविधा होती है। बच्चों के कपड़े व नैपकिन आदि सदैव धुले, स्वच्छ और सूखे होना चाहिए। गीले होने पर कपड़े तुरन्त बदल देने चाहिए। हो सके तो पाउडर भी छिड़क देना चाहिए।

ऋतु के अनुसार शिशु को स्नान भी कराना चाहिए। प्रारम्भ में तो बच्चों को स्नान कराना भी एक समस्या होती है। जाड़े में गरम पानी से और गर्मियों में ठण्डे पानी से स्नान कराना चाहिए। स्नान कराते समय पहले सिर में साबुन लगाना चाहिए और माथे की ओर से जल डालकर धोना चाहिए, जिससे आँखों में पानी न जाये। फिर शरीर के अन्य अंगों में साबुन लगाकर धो देना चाहिए। साबुन धोते समय यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि साबुन लगा न रहे। काँखों में, कानों के पीछे, घुटनों के पीछे इन स्थानों पर प्रायः साबुन लगा रह जाता है, उसे अच्छी तरह धो देना चाहिए अन्यथा कभी-कभी कम आयु के शिशुओं को साबुन के कारण छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाती हैं।

स्नान के पूर्व शिशु को तेल मालिश और धूप स्नान बहुत लाभप्रद होता है। इससे उसके अंग-प्रत्यंग पुष्ट होते हैं और विटामिन डी. जो शिशु के लिए अत्यन्त आवश्यक है, प्राप्त होता है। जाड़े के दिनों में सरसों, तिल्ली अथवा जैतून के तेल से मालिश करके पन्द्रह-बीस मिनट के लिए धूप में लिटा देना चाहिए और उसके पश्चात् स्नान कराना चाहिए। गर्मी के दिनों में भी तेल मलकर थोड़ी देर हल्की धूप में या धूप के पास छाँव में लिटाकर थोड़ी देर पश्चात् स्नान कराना ठीक होगा।

स्नान के पश्चात् मुलायम तौलिये से अच्छी तरह शरीर को पोंछ देना चाहिए। कोई अच्छा बेबी पाउडर लगाकर कपड़े पहना देना चाहिए।

शुद्ध वायु स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। बच्चों के लिए भी शुद्ध वायु की व्यवस्था रखना बहुत आवश्यक है। घर में बच्चे के रहने का कमरा हवा और प्रकाश वाला होना चाहिए। बच्चों को वायुसेवन के लिए भी ले जाना ठीक रहता है। बच्चे जब करवट लेने लगें तो कुछ समय उन्हें पेट के बल भी लिटाना चाहिए। बच्चों को कभी-कभी थोड़ी देर तक रोने भी देना चाहिए। रोने से उनके फेफड़े गले के अंग सबल होते हैं।

बच्चों को सोते समय विघ्न न हो, मक्खियाँ, मच्छर उसकी नींद खराब न करें, इसलिए कोई पतला झीना कपड़ा ऊपर डाल देना चाहिए। उत्तम तो यह होगा कि छोटी मच्छरदानी जो बच्चों के लिए आती है, उसके ऊपर खोलकर रख दें जिससे वह गहरी नींद सो सके। सोते बच्चे को जगाना ठीक नहीं। यदि आवश्यकता पड़े तो धीरे से इस प्रकार जगाना चाहिए कि वह चौंक न पड़े। बच्चों को दूध पिलाकर, थपकी देकर, झूले में झुलाकर, लोरियाँ गाकर सुलाना चाहिए। बहुत-सी महिलाएँ काम की व्यस्तता के कारण बच्चों को अफीम खिलाकर सुला देती हैं, यह ठीक नहीं। बच्चों को किसी भी नशीली वस्तु का सेवन नहीं कराना चाहिए। इसका उनके स्वास्थ्य पर कालान्तर में अत्यन्त हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

शिशु को आहार नियमित, पुष्ट और उपयुक्त मिलना चाहिए। प्रारम्भिक आठ महीने तक तो दूध ही शिशु का भोजन होता है। माँ का दूध पर्याप्त मात्रा में मिल सके तो वह उसके लिए सबसे उत्तम आहार होता है, किन्तु माँ को भी बच्चे के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक तत्त्वों की पूर्ति करने के लिए अपने भोजन को सन्तुलित, पौष्टिक और आवश्यक तत्त्वों से परिपूर्ण बनाने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे दूध के माध्यम से वे बच्चे को प्राप्त हो सकें। बच्चे के उत्तम स्वास्थ्य के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

माँ को अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने का पूरा प्रयास करना चाहिए।

बच्चों को पेशाब और टट्टी का समय-समय पर कराने का अभ्यास डाल लेना चाहिए, जिससे उनके बिस्तर, कपड़े भी गीले, गन्दे होने से बचते हैं। माँ की नींद खराब नहीं होती और बच्चे का स्वभाव सुन्दर बन जाता है।

इस प्रकार थोड़ी-सी सामान्य बातों की जानकारी माँ बनने से पूर्व करा दी जाये, तो उनके सामने जो छोटे-मोटे काम बड़ी परेशानी के दिखाई देते हैं, सामान्य लगने लगते हैं और उनमें उन्हें परेशानी के स्थान पर रुचि उत्पन्न हो जाती है। माँ की प्रसन्नता के साथ-साथ बच्चे के शारीरिक और मानसिक विकास में भी नियमितता बनी रहती है।

शिशुओं के साथ सावधानी बरतें

ऊबड़-खाबड़ जंगलों में भी झाड़ियाँ उगी पाई जाती हैं और बहुत-से टेड़े-तिरछे पेड़ भी होते हैं। उन सब पर दृष्टि डालने पर भी उनमें से ऐसे बहुत कम दीख पड़ते हैं, जो किसी उपयोगी काम में आ सकें। जलावन भर की वे आवश्यकता पूरी करते हैं। इसमें दोष जमीन का नहीं, वरन् उस उपेक्षा का है, जिससे उनमें से किसी की देखभाल होनी सम्भव न हो सकी। किसी ने सोचा भी नहीं कि यहाँ कुछ बोया-उगाया जाना चाहिए। चिड़ियाँ जहाँ-तहाँ उड़ती-फिरती हैं और बीट कर जाती हैं। इस बीट में कुछ दाने साबुत भी होते हैं। वे छितराये हुए पड़े रहते हैं और वर्षा की नमी पाकर उग आते हैं। जमीन में नमी सदा नहीं रहती, जो झाड़-झंखाड़ इस किस्म के होते हैं कि बिना पानी के काम चला सकें, धूप-सर्दी बर्दाश्त करते हुए खड़े रहें, वे ही जड़ जमाये रहते हैं और ज्यों-त्यों करके बढ़ते रहते हैं। सारा उजाड़ जंगल ऐसे ही अगड़म-बगड़म से भरा रहता है। उसमें जंगली जानवर भी नहीं रहते, क्योंकि चरने के लिए न काम की घास होती है और न पेड़ों की पत्तियाँ। अनगढ़ों की यही स्थिति होती है। उन बीहड़ों के कँटीले पेड़ ही जिन्दा रहते हैं, जो उधर से निकलने वाले जानवरों या आदमियों को छठी का दूध याद करा सकें।

कितने ही जंगल ऐसे होते हैं, जो वन-विभाग के संरक्षण में पलते हैं यों सिंचाई, निराई-गुड़ाई तो उनकी भी नहीं होती। पर कोई ऐसा जरूर होता है, जो जमीन की स्थिति और पौधों की उपयोगिता तथा पनपने की सम्भावना का अनुमान लगा सके। वन-रक्षक उसमें क्या बोना-उगाना चाहिए, इसकी बुद्धि और सावधानी रखते हैं। इतने भर से उस क्षेत्र में कीमती लकड़ी उगने लगती है। देखने में भी वह क्षेत्र अच्छा लगता है और उसका उत्पादन भी काम आता है।

इससे बढ़िया बात वहीं बनती है, जहाँ किसी कुशल माली की देख-रेख में फल-फूल वाले पेड़-पौधों का बगीचा लगाया जाता है। नयनाभिराम भी लगता है। आमदनी भी देता है और जिसकी सूझ-बूझ ने काम दिया उसकी प्रशंसा भी करता है। पर यह सब होता है जब खाद-पानी की जरूरत पूरी की जाती है और पशु-पक्षियों से रखवाली भी की जाती है। ऐसा न किया जा सका होता तो बगीचा, वन-विभाग का उत्पादन और खड्ड-खाबड़ के झाड़-झंखाड़ों में कोई अन्तर न पाया जाता।

प्रसंग सन्तानोत्पादन का है। यह विद्या मक्खी-मच्छरों से लेकर कूकर-शूकरों तक को आती है। वयस्क होते ही जीवित प्राणी यौनाचार की ओर उत्साहित होते हैं और प्रकृति उनकी उच्छृंखलता को अनुशासन के रस्से में बाँधने के लिए संतान का भार लाद देती है। उनके लिए यह कौतुक-कौतूहल मात्र होता है। पिता पर चूँकि कोई भार नहीं पड़ता, इसलिए वह पल्ला झाड़कर अलग खड़ा हो जाता है और तमाशा भर देखता है। माता के हृदय में प्रकृति ने करुणा भर दी है। वात्सल्य का स्वभाव दिया है। इसी आधार पर बच्चों का आरम्भिक भरण-पोषण हो जाता है, अन्यथा इस उत्पादन का जीवित रहना तक कठिन था। अनगढ़ लोगों का सन्तानोत्पादन इसी प्रकार का होता है। इसे ऊबड़-खाबड़ के झाड़-झंखाड़ों की उपमा दी जा सकती है। निरुद्देश्य का प्रतिफल इससे अच्छा हो भी क्या सकता है ? प्रकृति की प्रेरणा से जन्मे और भाग्य भरोसे पलकर बड़े हुए इन बालकों का शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य जैसा होना चाहिए वैसा ही होता है। हवा के झोंकों के साथ छितराये हुए जैसी भी संगति में पड़ गये वैसे बन जाते हैं। इनमें से किसी से किसी बड़ी बात की आशा अपेक्षा नहीं की जा सकती। जो करते हैं वे गलती ही करते हैं।

पत्थर से अच्छी मूर्ति गढ़ने वाले और कागज पर बढ़िया तस्वीर बनाने वालों का छैनी-हथौड़ी या ब्रुश स्याही लेकर बैठ जाने से क्या काम बनने वाला है ? इससे तो अच्छा-खासा पत्थर या कागज भी बेकार हो जायेगा। इन सामान्य वस्तुओं को बनाने के लिए सालों प्रयत्न और अभ्यास करना पड़ता है। अच्छा बगीचा लगाने वाले माली से पूछना चाहिए कि उसकी कल्पना कहाँ तक दौड़ी और मेहनत कितनी लगी है ? उसे परिपूर्ण सावधानी बरतनी पड़ती है। साथ ही प्रतिष्ठा दाँव पर लगानी पड़ती है। बच्चे को सुयोग्य बनाने के लिए स्वस्थ और सुसंस्कारी बनाने के लिए जनक और जननी दोनों को एक-दूसरे से अधिक योग्यता का परिचय देना पड़ता है। इस सन्दर्भ में काम आने वाली योग्यता में सबसे अधिक है—दिलचस्पी। दिलचस्पी मन के मोदक फोड़ते रहने—डाक्टर, वकील, कलेक्टर, मिनिस्टर बनाने के सपने देखने को नहीं कहते वरन् बच्चे के साथ बच्चा बनकर अपनी आदतें ऐसी बनानी दिखानी पड़ती हैं, जिन्हें बच्चा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आसानी से सीख सके और अपने स्वभाव का अंग बना सके। यही है वह मूल्य जो सुसंतति की आकांक्षा करने वालों में से प्रत्येक को चुकाना पड़ता है।

बच्चा खाता तो है पर उसे यह नहीं मालूम होता कि उसे क्या, कब और कितना खाना चाहिए ? इसका निर्धारण करने के लिए विशेषतया माता को प्रवीण होना चाहिए। अपने और बच्चे के पाचन-तन्त्र का अन्तर समझना चाहिए। इसलिए साथ बिठाकर वही नहीं खिलाने लगना चाहिए जो स्वयं खाते हैं। अपने मस्तिष्क में बालक के पाचन-तन्त्र तथा आयु की दृष्टि से उपयुक्त मात्रा में भोजन का सही और समुचित ध्यान रखना चाहिए। यह कार्य एक सुशिक्षित नर्स का है। माता को अपने बालक के सम्बन्ध में तो कम से कम यही भूमिका निभानी चाहिए। टट्टी और पेशाब नियत समय पर कराने की आदत कुछ दिन नियमित रूप से डाली जाय तो समय-कुसमय कपड़े खराब करने और झल्लाने की बिल्कुल भी आवश्यकता न पड़ेगी।

स्वस्थ बच्चा दो सप्ताह का होने के बाद ही मुस्कराना चाहता है। यह अभिभावकों का काम है कि अपनी मुख-मुद्रा वैसी ही बनाकर बार-बार दिखाया करें ताकि वह नकल करना सीखे और अपना तथा अभिभावकों का चित्त प्रसन्न रखे।

एक महीने का होने पर बच्चा अपनी जान-पहचान का क्षेत्र बढ़ाना चाहता है। इसलिए अभिभावक जब भी बच्चे के सम्पर्क में आवें, नियत रंग की पोशाक और मुख-मुद्रा से सम्पर्क साधें। कभी-कभी बच्चे रोते पाये जाते हैं। बिना कारण कदाचित् ही कोई बच्चा रोता हो। वह अपनी आवश्यकताएँ प्रकट करता है। शरीर में कोई रोग होने से मच्छर काटने तक, भूख लगने से लेकर सूनापन लगने तक के कारणों से उसका रोना शुरू होता है और देर तक चलता है। कभी-कभी फेफड़ों को मजबूत बनाने और पूरी साँस लेने की दृष्टि से भी बच्चे रोते और हाथ-पैर फेंकते हैं। अभिभावकों को इतना मनोविज्ञानी होना चाहिए कि बच्चे की आवश्यकताओं को ताड़ते रहें और तदनुरूप उपाय अपनाते रहें। अपनी समझ काम न करे तो दूसरे अनुभवियों से परामर्श लेना चाहिए।

सर्दी-गर्मी से बचाने के लिए कपड़े पहनाना तो ठीक है पर व ऐसे भारी या कसे हुए न होने चाहिए जो शरीर के सभी अंगों तक ताजी हवा पहुँचाने में रुकावट डालें। शोभा और शृंगार के लिए कोई भी ऐसी चीज न पहनानी चाहिए जो दबाव डाले।

दो-तीन महीने का होते-होते बच्चा नकल करना तेजी से सीखता है और एक वर्ष का होने तक कुछ शब्द बोलने लगता है। इस समय उसे सूनापन अखरता है। इसलिए पास बैठना, मालिस करना, खिलाना आदि सम्भव न हो सके तो ऐसे खिलौने ला देने चाहिए जो मुँह में जाने पर कोई मुसीबत खड़ी न करें। समझ आने पर बच्चे पहले आकर्षक वस्तुओं को पकड़ते हैं और फिर मुँह में देने लगते हैं। चींटी, बर्र जैसे चलते-फिरते कोई भी उन्हें खिलौने लगते हैं। छोटे सिक्के हाथ लगे तो उन्हें भी मुँह में ठूँसते हैं और गले में नीचे उन्हें उतार लेने पर संकट में फँसते हैं।

निरन्तर गोदी में लिए रहने की आदत न डाली जाय। इससे उनकी स्वावलम्बन वृत्ति दबती है और जो हिस्सा गोदी में लेने के कारण दबता है, वह कमजोर या टेढ़ा होने लगता है। पालने में झुला देना ठीक रहता है, पर उसकी भी आदत न डाली जाय।

एक वर्ष के बाद शिष्टाचार की मोटी बातें स्वभाव में डालनी चाहिए। जैसे रसोई, टट्टी आदि स्थानों में नहीं जाना चाहिए। मूँछ, बाल आदि नहीं खींचने चाहिए, घड़ी दावात आदि इधर-उधर नहीं करनी चाहिए, यह बातें बार-बार अभ्यास कराने से बालक की समझ में आ जाती हैं। इसी प्रकार जूते कहाँ उतारने चाहिए ? इसका अभ्यास भी कुछ बार वैसा करने या कराने से सहज ही हो जाता है।

बच्चे को कई हाथों में जाने देना चाहिए। सदा एक दो हाथों में ही रहे तो औरों को अजनबी समझता है और उनके पास जाने से कतराता है। स्वभाव ऐसा बनाना चाहिए जिसमें अपने-पराये का संस्कार अधिक न पनपने पावे। खिलौनों से दूसरे बच्चों को भी साथ खिलाये। खाने की चीजें बाँटकर खाये। जो चीज जहाँ रखने की है, उसे वहीं रखे और जरूरत पड़ने पर वहाँ से उठाये, ये आदत शिष्टाचार में सम्मिलित है, उन्हें स्वयं उसके साथ करने और उससे भी कराने में ऐसी अनेक बातें स्वभाव का अंग बन सकती हैं, जिससे उसे शिष्ट परिवार का बालक समझा जा सके।

पैदल चलने की आदत तीन पहियों वाली गाड़ी के सहारे डालनी चाहिए। पर आरम्भिक दिनों में उसके साथ रहना चाहिए ताकि गिर पड़ने से बचाया जा सके। बोलना सिखाना तब आता है जब वस्तु या व्यक्ति का नाम पहले स्वयं लिया जाय और बाद में उससे वैसा ही कहने के लिए कहा जाय। गलतियों को धीरे-धीरे सुधारते रहा जाय और रोजमर्रा काम आने वाली वस्तुओं को खाने, रखने, पहचानने तथा काम बताने की प्रश्नोत्तरी बालकों के लिए शिक्षा का अच्छा तरीका है। जो सीखते जाते हैं, उससे वे प्रसन्न भी होते हैं। अन्य लोगों के सामने उनकी इस शिक्षा की परीक्षा लेना और सही उत्तर देने पर पुचकारना जैसा उपहार देना उनका उत्साह बढ़ाने और सीखने में प्रगति लाने का अच्छा तरीका है।

बच्चे के या किसी और के शरीर पर गन्दगी लगी हो, घर में कूड़ा-कचरा फैला हो तो उसकी सफाई के लिए घर वालों से कहने लगे, इशारा करने लगे तो समझना चाहिए कि बच्चे में स्वच्छता सम्बन्धी संस्कारों का उदय हुआ। रूठने, मारने जैसी किसी बुरी आदत का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आरम्भ हुआ तो उसे बढ़ने नहीं देना चाहिए। आरम्भ में ही उसे बुरी बात बताने और न करने की शिक्षा उस भाषा में देनी चाहिए, जिसमें समझ सकने की उसकी क्षमता हो। पाँच या दस तक गिनती गिनना एक-डेढ़ वर्ष के बच्चे सीख सकते हैं। शरीर के अंग वर्तनों के नाम, खाद्य पदार्थ घर के लोगों के साथ रिश्ते आदि उन्हें आसानी से सिखाये जा सकते हैं। शिक्षा, स्वच्छता शिष्टता का प्रशिक्षण बच्चे को उतना देते ही रहना चाहिए, जितना वह आसानी से हृदयंगम करता चले। यह छोटे काम हैं पर बालक की प्रतिभा विकसित करने के लिए आवश्यक है। अभिभावकों की विशेषतया माता-पिता की दिलचस्पी आरम्भ से ही रहे तो यह उपक्रम क्रमशः बालक को अधिक सुसंस्कारी बनाता चलेगा।

छोटे बालकों की स्वास्थ्य-समस्याएँ

बालकों का स्वास्थ्य आदि बचपन में ही खराब रहने लगे तो उसका असर बालक के भविष्य पर बुरा पड़ता है। प्रायः बच्चों को छोटे-मोटे रोग होते रहते हैं और माँ-बाप या तो उनकी उपेक्षा कर देते हैं अथवा इस कदर घबरा उठते हैं कि लगता है—जैसे वे निराश ही हुए जा रहे हों। यदि उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में थोड़ा-बहुत जान लिया जाय तो तत्काल की तथा बाद में आने वाली सम्भावित परेशानियों से छुटकारा पाया जा सकता है। बच्चों के स्वास्थ्य-सम्बन्धी कुछ सामान्य नियम तथा उनकी कुछ समस्याओं पर यहाँ प्रकाश डाला जा रहा है।

माता-पिता अपने बच्चों को हृष्ट-पुष्ट और मोटा-ताजा देखना चाहते हैं। इसके लिए हरसम्भव उपाय करने के साथ विज्ञापित टॉनिक-औषधियाँ भी खिलाना शुरू कर देते हैं। इस सम्बन्ध में ध्यान रखना चाहिए कि बिना डाक्टर की सलाह के बच्चों को कोई ताकत की दवा न दी जाये। इस प्रकार मनमाने ढंग से दवाएँ देना बच्चों के स्वास्थ्य के लिए हानिकर बन जाता है। बच्चा यदि दुबला-पतला है तो भी स्वस्थ-तन्दुरुस्त हो सकता है। शरीर के आकार-प्रकार से स्वास्थ्य का कोई सम्बन्ध नहीं है। जिस प्रकार मोटे-ताजे व्यक्ति भी स्वास्थ्य की दृष्टि से दुर्बल और रोगी पाये जाते हैं तथा दुबले-पतले, डीलडौल भी तन्दुरुस्त और स्वस्थ, सशक्त स्फूर्तिवान हो सकते हैं। यह नियम बालकों के लिए अपवाद नहीं है।

बच्चे को समय-समय पर एकाध चम्मच पानी भी पिलाते रहना चाहिए। कई माताएँ अज्ञान और भ्रम धारणाओं के कारण गोद के बच्चों को पानी नहीं पिलातीं। इस भूल से बच्चों में कई स्वास्थ्य-विकार आ जाते हैं।

लाड़-प्यार के कारण बहुत-से अभिभावक बच्चों को अनावश्यक वस्त्रों से हर वक्त लादे रहते हैं, जिससे उन्हें खुली हवा और धूप नहीं लगती। फलस्वरूप बच्चों का स्वास्थ्य इससे प्रभावित होने लगता है, अतः आवश्यक है कि बच्चों को मौसम और ऋतु के अनुकूल आवश्यकतानुसार ही कपड़े पहनाये जायँ।

जब तक बच्चों के पूरे दाढ़-दाँत न निकल आयें, तब तक उन्हें ठोस आहार जैसे—रोटी, टोस्ट चबाने वाले पदार्थ न दिये जायँ। ऐसा आहार बिना पूरे दाँत आये, देने से वह बिना चबा हुआ ही पेट में जाता है और अजीर्ण, दस्त, कब्ज जैसे रोग पैदा करता है। दूध पीते बच्चों को फलों का रस अवश्य पिलाया जाना चाहिए, जो उनमें लौह-तत्त्व की कमी पूरी करता है। स्मरणीय है कि माँ के दूध में लौह-तत्त्व नहीं होता।

प्रकृतितः बच्चे स्वस्थ होते हैं। यदि उनमें स्वास्थ्य सम्बन्धी विकार होते भी हैं, तो उसका कारण कीटाणु-संक्रमण या अन्य बातें नहीं होतीं, बल्कि व्यवहार, दोष ही मूल कारण होता है। बच्चों के खान-पान के सम्बन्ध में माता-पिता आवश्यक ध्यान नहीं देते, इसलिए तरह-तरह की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, जो सामान्यतः बदहजमी से सम्बन्धित हैं।

कई बार बच्चा पिया हुआ दूध उलटने लगता है। माता-पिता को इससे चिन्तित नहीं होना चाहिए। कब्ज, अजीर्ण और अधिक दूध पिलाना जैसे कई कारण हैं, जिनकी बजह से बच्चा दूध उलट देता है। जब उल्टी में बच्चा ढेर सारा दूध उलट देता है तो माता-पिता इसलिए चिन्तित हो जाते हैं कि दूध हजम न होने के कारण बच्चा कहीं कमजोर न हो जाय। माताएँ यह सोचने लगती हैं कि बच्चे ने जितना दूध पिया था, उतने से ज्यादा तो उलट दिया लेकिन यह सोचना भ्रममात्र है। उल्टी करने पर दूध फैल जाता है और इससे वह ज्यादा दिखाई देने लगता है। यदि बच्चा कमजोर नहीं हो रहा है तो उसके दूध उलटने से चिन्तित नहीं होना चाहिए।

कई स्थितियों में बच्चे सामान्य रूप से स्वस्थ होते हुए भी दूध उलट देते हैं। बहुत बार बच्चे तेजी से दूध पीने लगते हैं या माँ के स्तनों में तेजी से दूध उतरता है। ऐसी दशा में बच्चे द्वारा दूध डालने की सम्भावना बढ़ जाती है। लेकिन जब बच्चा अधिक दूध उल्टे या कई दिनों तक दूध उलटता रहे तो डाक्टर को जरूर दिखा लेना चाहिए।

छह मास तक के बच्चों को पाचन सम्बन्धी छोटे-मोटे विकार उत्पन्न होते हैं। जब उसमें यह विकार उत्पन्न होते हैं तो वह रोने के साथ-साथ इधर-उधर हाथ-पैर फेंकने लगता है। चूँकि वह अपनी कठिनाई बता तो नहीं सकता, इसलिए उसकी हरकतों और शरीर की स्थिति को देखकर ही निष्कर्ष निकालना पड़ता है। उसके पेट पर थोड़ा तनाव भी होने लगता है। बेचैनी और दूध उलटने के साथ-साथ उसे पतली टट्टियाँ भी होने लगती हैं। ऐसी हालत में माता-पिता को डाक्टर की सलाह लेनी चाहिए। ऐसे लक्षण जब पैदा होकर ठीक भी हो जायँ तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चिन्ता नहीं करना चाहिए, क्योंकि इसका अर्थ है—बच्चे की पाचन-शक्ति ठीक है।

कहा जा चुका है कि माँ के दूध में लौह-तत्त्व तथा विटामिन-सी नहीं होते। इसलिए बच्चों की पाचन-शक्ति ताकतवर नहीं बन पाती। बाल-रोग विशेषज्ञों का मत है कि तीन माह की आयु वाले बच्चों को नारंगी, मौसम्मी जैसे फलों का रस थोड़ा-थोड़ा पिलाया जाना अच्छा रहता है। नीबू रस भी पानी मिलाकर पिलाया जा सकता है।

कब्ज पड़ने से भी बच्चे परेशान रहने लगते हैं। इस हालत में बच्चों का मल थोड़ा और खुश्क निकलता है। उस समय उन्हें तकलीफ भी अधिक होती है। कब्जीले बच्चों को दस्तावर दवाइयाँ भूलकर भी नहीं देनी चाहिए। पानी और फलों के रस से तरावट पाकर प्रायः कब्ज दूर हो जाता है, यदि न हो तो ग्लिसरीन की बत्ती का इस्तेमाल किया जा सकता है। जब बच्चों को ठोस आहार देना शुरू किया जाता है, तब भी उनमें कब्ज की शिकायत होने लगती है, पर ऐसा कब्ज अपने आप ही दूर हो जाता है।

बच्चों को सर्दी भी जल्दी लगती है। सर्दी लगकर जुकाम और खाँसी हो जाती है, उनकी नाक बहने लगती है तथा सूखी खाँसी भी हो जाती है। इसका उपचार शीघ्र ही करना चाहिए, क्योंकि देर तक बनी रहने वाली सर्दी खाँसी फेफड़ों को प्रभावित करती है और उससे बांके न्युमोनिया होने का डर हो जाता है।

इस न्युमोनिया की दशा में बच्चों का श्वास बड़ी तेजी से चलता है, नथुने जल्दी फूलते हैं और बहुत तेज बुखार रहता है। सूखी खाँसी भी कम-ज्यादा उठती रहती है। अतएव ऐसे लक्षण सामने आने पर डाक्टर का परामर्श लेना चाहिए।

यहाँ बच्चों के स्वास्थ्य-विकारों के सम्बन्ध में यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि जब विकार थोड़ी-बहुत मात्रा में दिखाई देने लगे तो परेशान नहीं होना चाहिए। चिकित्साशास्त्री तो अधिक तकलीफ में भी बच्चों के लिए चिन्तित न होने की बात कहते हैं। इसका कारण यह बताया जाता है कि बच्चों की प्रकृति बहुत निर्मल और निर्दोष रहती है, इसलिए सामान्य-विकार भी बड़ी तेजी से उभड़कर निकलते हैं। इसलिए कहा जाता है कि वृद्ध व्यक्ति के बुखार की परवाह जितनी १०२ डिग्री में करनी चाहिए, बच्चे को १०५ डिग्री बुखार होने पर उससे ज्यादा नहीं करनी चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि उपचार-इलाज का प्रबन्ध न किया जाय। उपचार तो करायें, पर उन स्थितियों में अभिभावक जिस बुरी तरह परेशान होते हैं, वह निराधार है।

बच्चों को डिफ्थीरिया, पोलियो, चेचक, कौलरा एवं बी. सी. जी. के टीके भी समय पर लगवा देना चाहिए। कुछ टीके इतने तेज होते जरूर हैं, जिनसे बुखार आदि आने लगते हैं। पर इस कारण उनके स्वास्थ्य की रक्षा पंक्ति बनाने से पीछे न हटा जाय। साथ ही माँ अपने खान-पान और रहन-सहन में थोड़ी सावधानी रखे तो बच्चों की कई स्वास्थ्य समस्याएँ अपने आप हल हो जाती हैं।

बालकों को स्वस्थ बनाइए

बालक समाज का सबसे सुकुमार और कोमल अंग है। समाज की आशाओं, आकांक्षाओं और भावी-निर्माण की सम्भावनाओं का केन्द्र-बिन्दु भी वही है। आगामी सांस्कृतिक पुनरुत्थान की चेतना सतृष्ण नेत्रों से अपने नौनिहालों की ओर देखती है किन्तु यह वर्ग कितना उपेक्षित है, इधर कितनी उदासीनता बरती जाती है—यह चिन्ता का विषय है। भारतवर्ष में मृत्यु के आँकड़ों से पता चलता है कि यहाँ शिशुओं की मृत्यु संसारभर में सबसे अधिक होती है। इसका एक ही कारण है कि बालकों के स्वास्थ्य, रहन-सहन और उनके जीवन-स्तर की समुचित व्यवस्था नहीं की जाती। वृक्षारोपण कर दिया जाता है किन्तु उनके लिए खाद-पानी, सावधानी और सुरक्षा की ओर कोई ध्यान नहीं देता।

बालक सच्चे निर्माणकर्त्ता बनकर आयें, इसके लिए उनकी विद्या-बुद्धि, उमंग, स्फूर्ति, उल्लास और शक्ति अपेक्षित है और इनका उद्गम है—उनका सुन्दर स्वास्थ्य। स्वास्थ्य की समस्या ही आज की सबसे उलझी हुई समस्या है। इस पर विचार कर लिया तो दूसरी परिस्थितियाँ अपने आप बनती रहेंगी। इसे हल कर लिया तो आधा मोर्चा जीत लिया समझा जाना चाहिए।

इस सम्बन्ध में पहली आवश्यकता है कि बालक के शारीरिक अवयवों के अनुरूप, उनकी अवस्था और सुकुमारता का विचार करते हुए शुद्ध, सरल और पौष्टिक आहार की कमी अथवा इसकी उचित जानकारी के अभाव को दूर किया जाय। इसमें एक अंश तक अभिभावकों की अशिक्षा बाधक मानी जा सकती है। थोड़ा ध्यान देने और सावधानी बरतने से भी काम चल जायेगा।

साधारणतया आठ माह तक बच्चा माता के अथवा ऊपरी दूध पर निर्भर रहता है। माता के दूध में उसे सारे तत्त्व प्राप्त हो जाते हैं किन्तु ऊपरी दूध में कुछ ध्यान देने योग्य बातें आ जाती हैं। सर्वप्रथम यह कि वह उसके पाचन-संयन्त्रों की तुलना में भारी पड़ता है सो उसमें आधापानी मिलाकर और उबालकर देने से माता के दूध जितनी सरलता प्राप्त हो जाती है। भैंस का दूध देते समय उसका सारा मक्खन निकाल लेना चाहिए। यह पेट में कब्ज उत्पन्न कर देता है। दूध की मात्रा एक बार में ७ औंस अर्थात् ३॥ छटाँक से अधिक न हो। धीरे-धीरे जैसे उसकी उम्र बढ़े पानी की मात्रा कम करते चलें किन्तु मात्रा में अधिक परिवर्तन की आवश्यकता नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जैसे ही बच्चे के दाँत निकलना प्रारम्भ हो, उसे हरी तरकारियों का उबला हुआ रस, ऋतु फल, कन्दमूल देना चाहिए। बार-बार खाने की उसकी आदत होती है। इसलिए कम से कम मात्रा में देना उचित है। जिससे दूसरी बार आहार लेने के पूर्व पहले का सारा आहार भली प्रकार पच जाय। मौसम के अनुकूल एक से दो औंस तक सन्तरा, गाजर, टमाटर आदि का रस देना अच्छा होता है। धीरे-धीरे जामुन, सन्तरा, मौसम्मी, चीकू, पके भुने हुए सेव भी दिये जाते हैं। बालक जब अच्छी प्रकार चलने-फिलने लगे तो उसे आलू, चावल, ताजा शाक, सलाद, मक्खन विटामिन डी. वाले पदार्थ, चोकर मिले हुए आटे की रोटियाँ, खीरा, ककड़ी, खरबूजा, आम जैसी वस्तुएँ खाने को दें। उसको शरीर के अंग-प्रत्यंगों को विकसित होने की शक्ति मिलती है और होते भी रुचिकर हैं। इनसे हानि की सम्भावना नहीं रहती। किशोरावस्था पार कर जाने तक भारी गरिष्ठ पदार्थ देना भूल है। छोटे बच्चों को दूध के साथ अथवा अलग से एक-दो चम्मच शहद देना लाभप्रद होता है। इससे पेट भी साफ रहता है और बच्चे के फेफड़े भी मजबूत होते हैं। कुल मिलाकर बालक को अधिक से अधिक सरल, सुपाच्य तरल पदार्थ देना अच्छा होता है। भारी पदार्थों से कब्ज आमय बना रहता है। बच्चों की बीमारियों में अपच कब्ज आदि ही प्रधान कारण होता है। जो अपने बालकों को दिनभर भारी पदार्थ अधिक मात्रा में खाने को देते रहते हैं उनके पेट बाहर निकल जाते हैं, जिगर बढ़ जाता है और हाथ-पाँव दुबले हो जाते हैं। इसलिए आहार का चुनाव करते समय यह ध्यान देने योग्य है कि वह सरल, सुपाच्य और रुचिकर हो।

आहार के बाद व्यायाम का नम्बर आता है। स्वस्थ बालक १ मिनट में २० से लेकर ३४ साँसें लेता है। इस श्वास-प्रश्वास क्रिया में गति उत्पन्न करने के लिए व्यायाम नितान्त आवश्यक है। बहुधा यह देखा जाता है कि अधिक हाथ-पैर चलाने वाले बालक अधिक स्वस्थ होते हैं। चिड़-चिड़ापन और सुस्ती रोग का लक्षण माना जाता है। इसलिए अपनी ओर से भी ऐसे प्रयत्न करते रहना आवश्यक है जिससे बच्चे का व्यायाम होता रहे। बालक की प्रत्येक क्रिया में उसकी रुचि को प्राथमिकता दिये बिना कोई काम न करें। जैसे बच्चा मिट्टी के साथ खेलना चाहता है, आपको यह अप्रिय है पर उसे रोकिए नहीं, ऐसा करने से उसकी क्रिया में गतिरोध उत्पन्न होगा जिससे अशुभ मनोविकारों का उदय हो सकता है। उन्हें ऐसे किसी दूसरे मनोरंजक काम से लगा दिया जाय जिससे वह मिट्टी के साथ खेलना छोड़ दे।

नवजात शिशुओं का व्यायाम उन्हें नहलाने-धुलाने और तेल मालिश करने से हो जाता है। तेल लगाना सर्वोत्तम व्यायाम. है, किन्तु केवल चुपड़ देना अथवा बिल्कुल धीरे या तेजी से लगाना उचित नहीं। बच्चे की अवस्था के अनुरूप गदेलियों को बल देकर उसकी मालिश करें। हाथ जल्दी-जल्दी घर्षण करते हुए चलें इससे विद्युतशक्ति का संचार होता है। दिन में एक या दो बार मालिश करना अधिक उपयोगी है। तेल सरसों का सबसे अच्छा और गुणकारी माना गया है। मालिश करते समय यह ध्यान रखें कि घर्षण का रुख प्रत्येक दशा में हृदय की ओर रहे। बच्चे को प्रसन्न करने के लिए बीच-बीच में हाथ-पैरों को मोड़ने व हल्की थपकी देते रहना चाहिए। 'माई सिस्टम फॉर चिल्ड्रेन' के लेखक जे. पी. मुलर ने सभी तरफ से मालिश करने की बात लिखी है ताकि प्रत्येक अंग का सभी ओर से व्यायाम हो जाय।

एक वर्ष के बाद बालक की प्रवृत्ति खेलने की ओर मुड़ती है। इससे वह अपना व्यक्तित्व प्रकट करता है। खेलना बच्चों को प्राणप्रिय होता है। इससे उनको प्रफुल्लता भी मिलती है। व्यायाम भी होता है। शारीरिक और मानसिक विकास की आवश्यकता एक साथ खेल-कूद से पूरी होती है, इसलिए उसे स्वेच्छापूर्वक खेलते रहने देना चाहिए। इससे स्नायु जाल पूर्ण रूप से क्रियाशील हो उठता है। अपनी ओर से भी उन्हें खेलना सिखाना चाहिए।

इनका चुनाव इस प्रकार करें जिसमें कन्धों के भाग रीढ़, पेट और माँस-पेशियों का पूर्ण व्यायाम हो जाय। १ से ६ वर्ष तक के बालकों को को खिलौने से अथवा पकड़कर चलाने-दौड़ाने आदि के हल्के-फुल्के खेल, जिसमें उसकी श्वास क्रिया में अधिक दबाव न पड़े, खिलाना उपयोगी होता है। जैसे-जैसे उम्र बढ़े वैसे-वैसे इसमें परिवर्तन करते चलें। जितने अंग-प्रत्यंग पुष्ट और विकसित होते चलें, उसी अनुपात से अधिक परिश्रमशील खेलों में उनकी रुचि पैदा करें। दौड़ना, कूदना गुलाटें खाना, तैरना, कुश्ती करना आदि अच्छे खेल हैं, इनसे शरीर में सहनशीलता, चंचलता, क्रियाशक्ति, दृढ़ता और स्नायु सशक्तता उत्पन्न होती है। खेलने का स्थान सदैव साफ-सुथरा कंकड़-पत्थर रहित होना चाहिए। इस प्रकार आहार को पचाने, शारीरिक अवयवों के विकास के लिए व्यायाम की अत्यधिक उपयोगिता है।

इतने से ही बच्चे के स्वास्थ्य संरक्षण की बात पूरी नहीं होती आहार, व्यायाम के सन्तुलन के साथ निद्रा उसे अधिक से अधिक, गहरी और एक-सी आती है या नहीं—यह विशेष रूप से जाँच करते रहना चाहिए। बच्चा ठीक प्रकार नहीं सोता समझिये गड़बड़ी है। ५ सप्ताह के बालक को २०-२२ घण्टे सोना चाहिए। चार माह तक उसे २१ घण्टे की नींद आवश्यक मानी गई है। ९-१० माह के बाद ३।।-४ घण्टे का विश्राम दे देकर सुलाना चाहिए। इसमें नियमबद्धता अर्थात् समय की पाबन्दी आवश्यक है। प्रगाढ़ निद्रा बच्चे के सुन्दर स्वास्थ्य का प्रतीक है। सोने के बाद उसका मुँह गुलाब के फूल के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समान खिल उठता है और उसका जी खेलने को करता है। दिन में बच्चे को अकेले खुले मुँह और साफ स्थान में सुलायें। रात में माँ के साथ। सम्भव हो तो मसहरी लगावें, जिससे मच्छरों से बचाव हो जाय और बच्चा पूरी नींद ले ले। न हो तो तेल लगाने के बाद सुलायें। शरीर पर हल्का कपड़ा डालना चाहिए। करवट बदलकर सुलाने की देख-रेख माता को करनी पड़ती है। कपड़े आदि अच्छे बने रहें इसके लिए यह आवश्यक है कि सुलाने के पूर्व उससे मल-मूत्र का त्याग करा लें। नींद पूरी हो जाने पर हल्का गरम दूध पिलाना चाहिए। सोते समय यथासम्भव पेट खाली रहे।

ऋतु के अनुसार बच्चे को स्नान कराना भी स्वास्थ्य की दृष्टि से उतना ही आवश्यक है। जिन बालकों को प्रत्येक दिन स्नान कराना सम्भव न हो, उन्हें भी दो-एक दिन के अन्तर से स्नान कराते रहना आवश्यक है। इसमें ऋतु का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। स्नान कराने के एक घण्टा पूर्व बच्चे को दूध पिला देना चाहिए ताकि स्नान के बाद ही बच्चे को निद्रा आ जावे पर स्नान के बाद दूध पिलाने से अपच हो जाता है, नींद भी गहरी नहीं आती। स्नान के बाद हो सके तो बच्चे को किसी ऐसे स्थान पर सुलायें जहाँ उसके गीले शरीर पर सूर्य की बाल किरणों का प्रभाव पड़ सके। इससे वह विटामिन डी. प्राप्त कर लेगा और आहार में उसके ढूँढ़ने की आवश्यकता न पड़ेगी।

माँ के स्तनों का पान करते हुए बालक माता का स्नेह-दुलार भी पीता है, जो बाजार के दूध की अपेक्षा अधिक पुष्टिदाई सिद्ध होता है। बाजारू दूध तभी पिलाना चाहिए जब माता उसके लिए असमर्थ हो। नई सभ्यता में पली कई लड़कियाँ अपना रूप-सौन्दर्य घटने के भय में बच्चों को बाहरी दूध पिलाती हैं। इस अनुदारता का बच्चे के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। शहरी बच्चों की अपेक्षा ग्रामीण बालकों का स्वास्थ्य अधिकतर इसी कारण से अधिक अच्छा होता है। पयपान बालक के मानसिक विकास में भी उतना ही सहायक होता है जितना शारीरिक में। इस बीच में उसके बालों को सहलाते रहना, थपथपाना, लोरियाँ सुनाना उसकी प्रतिभा बढ़ाने में बड़े सहायक होते हैं। इसलिए चतुर माताएँ ऐसे समय इन बातों का बड़ा ध्यान रखती हैं।

इनके अतिरिक्त भी बच्चे के कोमल अंगों, हाथ-पैर, नाक, आँख, उँगलियों आदि का संरक्षण भी करते रहना चाहिए। सर्दियों में टोपे, मौजे आदि उसको शीत प्रकोप से बचाते हैं। अधिक कपड़े पहनाना स्वास्थ्य के हित में अच्छा नहीं होता, इससे बच्चे को कम-से-कम और ढीले कपड़े ही पहनाना चाहिए ताकि उसका शारीरिक विकास अबाध-गति से चलता रहे।

उपर्युक्त सभी वस्तुओं के आधार पर ही बच्चे के स्वास्थ्य को सुरक्षित रखा जा सकता है। माग्रेड बेडी ने अपनी पुस्तक 'चिल्ड्रेन हेल्थ एण्ड हेप्पीनैस' में लिखा है कि संतुलित भोजन, पर्याप्त दूध, निद्रा, विश्राम-व्यायाम, स्वच्छ वायु और रुचिकर वातावरण के अभाव में ही बच्चे रोगग्रस्त होते हैं। अतएव उसकी जीवनचर्या में इन सभी बातों का समावेश बनाये रखना चाहिए। इसी से स्वास्थ्य संरक्षण की समस्या हल हो सकेगी।

छोटे बच्चे रोते क्यों हैं ?

बच्चे को दूध पिला दिया, कपड़े बदल दिये, ढककर गुदगुदे पालने में लिटा दिया, फिर भी वह रो रहा है। अब क्या तकलीफ है, जो रो-रोकर सारा घर सिर पर उठाये हुए है ? गोदी में उसे उठा लीजिए, तो चुप हो गया।

माँ को घर के तमाम काम करने हैं, नाश्ता बनाना है, कपड़े साफ करने हैं, सफाई करनी है, फिर वह कहाँ तक बच्चे को गोद में लिए रहे। लेकिन इधर यह है कि मुनमुना देकर उसे पालने में लिटाया नहीं कि लगा रोने। माँ डाक्टर को दिखाती है कि बच्चा गोदी में ही क्यों रहना पसन्द करता है ? पालने में रोने क्यों लगता है ? वह भी कोई खास रोग नहीं बताते।

रोना बच्चे के लिए स्वाभाविक है। इससे उसके फेफड़े का व्यायाम होता है। रोने से फेफड़े में हवा भरती है और वे फैलते हैं। बच्चा रोकर अपनी शिकायत करता है, अपनी ओर ध्यान आकृष्ट करता है, रोकर उसे प्यार-दुलार मिलता है, प्यार और आदर किसे नहीं भाता ? कुछ ही दिनों में उसे यह भी पता चल जाता है कि असहाय होते हुए भी उसके पास एक अमोघ अस्त्र है—रुदन। उसका वह जब तक उपयोग करता है। क्रोध प्रगट करना होगा तो चिल्लाकर जोर से चीखते हुए रोयेगा। अगर कुछ चुभ गया है या उसे तकलीफ है, तो रोते-रोते आँखों से आँसू भी झरने लगेंगे और तभी माँ विकल होकर उसे उठा लेगी और पुचकारेगी।

रोने का कारण—पेट में या कान में दर्द होने पर बच्चा विकल होकर रोता है। कान या सिर में दर्द होगा तो अपना हाथ बार-बार उस ओर ले जाएगा। पेट में दर्द होने पर वह घुटनों को पेट की ओर इकट्ठा करेगा। कन्धे से लगाने या उल्टा लेटाने से उसे आराम मिलेगा। बहुधा बच्चा जब थककर सोने के लिए रोता है, तो अपनी मुट्ठियों से आँखें मलने लगता है। अगर उस समय माँ साथ में लेटकर, एकान्त में ऐसे स्थान पर जहाँ प्रकाश हो, उसे सुला दे तो वह झट-से सो जायेगा।

जब बच्चा भूखा होता है तो अपनी दोनों मुट्ठियाँ मुँह में ठूँस-ठूँसकर रोता है। अनुभव से माँ को यह पता चल जाता है कि बच्चा क्यों रो रहा है ? जिन बच्चों के नहाने, खाने-पीने तथा सोने का समय बँधा होता है उनके रोने के कारण का पता लगाना कठिन नहीं होता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

अगर नहाने का समय है तो तेल मलकर गुनगुने पानी से उसे नहला दें, नहाने के बाद दूध पीते-पीते ही वह सो जायेगा और अगर मक्खी-मच्छर उसे तंग नहीं करते और आस-पास शोर-गुल नहीं है तो वह आराम से तीन घण्टे सोयेगा। पूरी नींद सोकर, वह हँसता हुआ उठेगा। अब कुछ स्वस्थ होकर वह दूध के समय फिर ठुनकेगा। अगर उसके पीने का समय हो गया है तो दूध पहले से तैयार रखा जाय। अगर दूध का समय नहीं है तो थोड़ा-सा पानी बच्चे को दें। पानी पीने से उसकी बेचैनी बहुत कुछ दूर हो जाएगी।

बच्चे के कपड़े या नैपकिन तंग या उसकी हरकत में अड़चन डालने वाले न हों, बिस्तर सख्त या तकिया अधिक ऊँचा न हो, इसका भी विशेष ध्यान रखें। जहाँ उसका पालना हो, वहाँ हवा और रोशनी का रुख ठीक हो। बच्चे को गीला रहना पसन्द नहीं रहता, इसलिए भी वह रोता है। अगर उसके मुँह में दूध लगा है और मक्खियाँ नाक-मुँह पर बैठकर उसे परेशान कर रही हैं, तब भला अपनी माँ का ध्यान आकृष्ट करने के लिए, वह क्यों न रो-रोकर घर सिर पर उठाये ? बेचारा बच्चा तो बोल सकता नहीं, अपनी तकलीफ रोकर ही बताएगा।

माँ-बाप के मिजाज का असर—बच्चे अधिकतर अपने माँ-बाप का मिजाज भी लेते हैं। अगर माँ कमजोर हृदय की है, बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली की कड़क से डरकर तकिये में अपना मुँह छिपा लेती है अथवा चूहे को कमरे में इधर-उधर भागता देख चौंककर पलंग पर चढ़ जाती है, तो अचानक डर जाने का दोष बच्चे में भी आना स्वाभाविक है। कोई भी जोर का शब्द या धमाके को सुनकर अथवा अपरिचित शक्ल को देखकर वह भी डरकर रोने लगेगा।

स्वस्थ बच्चे आरम्भ के कुछ दिनों तक रोते हैं, बाद में अपनी दिनचर्या के आदी हो जाने, पेट भरे रहने पर वे पालने में अपनी मौज में खेलते रहते हैं। दुर्बल बच्चे अधिक चिड़चिड़े होते हैं। इसका कारण उनका स्वास्थ्य है। ऐसे बच्चों को चुप कराने के लिए हरदम गोद में नहीं रखना चाहिए। इससे तो उनके स्वास्थ्य पर और बुरा प्रभाव पड़ेगा। रो-रोकर वे जो चाहें, करवा लेंगे। हर समय दूध ही माँगेंगे। परेशान होकर, थककर माँ उनके आगे हार मान लेगी। इससे माँ का जीवन तो दुःखी होता ही है साथ ही ऐसे बच्चों का स्वास्थ्य भी दिन पर दिन गिरता जाता है जिससे परिजनों की परेशानी भी बढ़ती जाती है।

ऐसे रोनू बच्चे की किसी योग्य चिकित्सक द्वारा परीक्षा करवानी चाहिए। अगर कोई बीमारी हो, तो उसका इलाज करवाया जाय। अगर रोने का कारण केवल दुर्बलता ही है, तो उसकी दिनचर्या नियमित रखी जाय। खाना-पीना, नहाना-धोना, खेलना और सोना सब काम के लिए समय बँधा हो। इस पर भी अगर बच्चा रोये तो घबराएँ नहीं। कुछ दिन बाद वह स्वयं ही चुप हो जाएगा और दिनचर्या का आदी होकर वह शीघ्र ही स्वस्थ तथा प्रफुल्ल दिखाई पड़ेगा।

बच्चे के पेट की सफाई का विशेष ध्यान रखा जाय, क्योंकि कब्जियत तथा पेट में वायु भर जाने से बच्चे बुरी तरह रोते हैं। अगर अचानक ऐसी तकलीफ हो जाय तो बच्चे को सौंफ का पानी या ग्राइप वाटर देकर, पेट पर आटे और तेल की गोली फेर दें अथवा पेट पर हल्का-सा तेल लगाकर अपना हाथ गर्म करके सेंक दें। अगर कब्जियत के कारण बहुत ही तकलीफ हो तो ग्लिसरीन या साबुन की बत्ती चढ़ाकर फौरन टट्टी करवा दें, तभी बच्चे की बेचैनी दूर होगी। इसके बाद दूसरे दिन घुट्टी या मिल्क ऑफ मैगनेशिया देना ठीक है।

गर्मी या बरसात में मरोरी से बच्चे बहुत परेशान होते हैं। उन्हें खुली हवा में रखा जाय, हल्के और ढीले कपड़े पहनाये जाएँ तथा नियमपूर्वक दोनों समय स्नान कराकर 'प्रिक्ली हीट पाउडर' छिड़कना चाहिए।

छोटे बच्चे के रोने से माँ को अधिक घबड़ाना नहीं चाहिए। उसकी तो वह भाषा ही है। अपनी माँग पूरी करवाने के लिए वह रोता है। तभी तो कहावत है कि 'बिना रोये तो माँ भी दूध नहीं देती।'

रोगी बच्चा—कई बच्चों का स्वभाव बात-बात पर रोने का हो जाता है। अधिकतर वे ही बच्चे प्रायः रोते हैं, जिनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं होता या फिर खाना हजम न होता हो या लिवर बढ़ा हो। अन्य स्वस्थ बच्चों को खेलते-कूदते, खाते-पीते देख उन्हें अपने खाने-पीने पर लगी पाबन्दियों तथा अपने संगी-साथियों के खेल-कूद में शामिल होने में अपनी असमर्थता पर झुँझलाहट आती है। ऐसे बच्चों में सहनशक्ति की तो वैसे कमी होती है, अतएव वे किसी के जरा-सा कुछ कह देने पर बिलख-बिलख कर रोने लगते हैं।

घर का अधिक दुलारा बच्चा भी रो-रोकर अपनी जिद पूरी करवाने की चेष्टा करता है और जब दो-चार बार के अपने अनुभव से उसे यह पता चल जाता है कि मेरे रोने के आगे सबको झुकना पड़ता है, तब तो वह इस अमोघ अस्त्र का बार-बार प्रयोग करता है। कभी-कभी माता या बहिन भी रोनू स्वभाव के बच्चे की उपस्थिति में ही यह कह बैठती हैं 'अरे भाई इसे मत छेड़ो, यह रो देगा तो बड़ी मुश्किल से चुप होगा।' बस ऐसे कथन से बच्चे को और भी रोने का प्रोत्साहन मिलता है। वह रो-रोकर घर को डराता है और फिर उसे दुर्बल तथा असहाय जानकर घर भर उसकी खुशामद करता है। इस प्रकार अपने रोने को महत्त्व मिलते देख, बच्चा सचमुच ही रोनू बन जाता है।

सहानुभूति प्राप्त करने के लिए—कभी-कभी बच्चा अपने अधिकार और सम्मान की रक्षा करने में स्वयं को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असमर्थ पाकर भी रोने लगता है। एक लड़के को जन्म-दिवस पर एक नया इंजन मिला, उसकी मौसी की लड़की ने आकर इंजन हथिया लिया। वह लड़का जानता था कि उसकी मौसेरी बहिन प्रीता उसके खिलौने प्रायः तोड़ जाती है। उसने लपककर प्रीता के बाल पकड़ लिए, पर वह प्रीता से अपना इंजन नहीं छीन सका, इसलिए बिखर-बिखर कर रोने लगा। ऐसे समय में माँ को चाहिए था कि बच्चे के अधिकारों की रक्षा करती। बच्चा रोकर अपनी असमर्थता प्रकट करता है और न्याय की दोहाई देता है। ऐसी स्थिति में बच्चे को बड़ों का सहयोग मिलना चाहिए। पर अगर बच्चा बेकार और बेमतलब रोता है तो उसे उठाकर एक कमरे में बिठा दिया जाय। ऐसी स्थिति में मारना व्यर्थ है। बच्चा अपने मिजाज को काबू में करने में असमर्थ है, रोने से उसे भी कष्ट होता है, यह उसके लिए बड़ी सजा है। जरा डपटकर उसे चुप करें और हाथ पकड़कर दूसरे कमरे में बिठा आयें। जब वह देखेगा कि मेरी ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा है तो वह कुछ देर बाद सिसकता हुआ स्वयं ही चुप हो जायेगा। प्रायः इसके बाद बच्चे थककर सो जाते हैं। उठने पर उन्हें समझाया जाय। 'इस प्रकार रोना बहुत बुरी बात है, समझदार और अच्छे बच्चे ऐसा नहीं करते। रोने वाले बच्चों को कोई पसन्द नहीं करता।'

जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, उसको अपने मिजाज पर काबू पाना आ जाता है। तीसरे और चौथे वर्ष में पदार्पण करते-करते उसका यह दोष छूट जाता है। कभी-कभी बच्चे को अपने रोने का कारण समझ में नहीं आता और वह कुछ बताने में असमर्थ होता है। ऐसा तभी होता है जबकि बच्चे का स्वास्थ्य दुर्बल हो और वह अपनी शक्ति से अधिक खेल-कूद कर थक गया हो अथवा अपनी सामर्थ्य से अधिक उसे पढ़ना पड़ता हो, उसके जीवन में स्नेह और प्रोत्साहन का अभाव हो, उसे हर समय कटु आलोचना और डाट-डपट सुननी पड़ती हो, उसकी दिनचर्या बड़ी नीरस और मनोरंजन से शून्य हो, अपने किसी प्रियजन की उसे याद आ रही हो या उसके अधिकार और सम्मान को किसी ने चोट पहुँचाई हो। ये बातें ऐसी हैं जो बच्चे के मन और शरीर को मथकर रख देती हैं और वह दुःखी होकर रोने लगता है।

बच्चों का हृदय बहुत कोमल होता है, अतएव वह चोट भी जल्द ही खा जाता है। अपनी बात मनवाने के लिए करुणा और सहानुभूति उत्पन्न करने के लिए बड़े-बड़े तक रोते हैं। असहाय बच्चों का तो सहारा ही रुदन है, मानो उनकी एक आँख में हँसी और दूसरे में रोना रहता है। वे अभी रो रहे हैं तो अभी हँस देंगे। मनोविज्ञान के ज्ञाता रोते हुए बच्चे को एक-दो बात कहकर ही हँसा देते हैं। प्यार भरी एक थपकी और सहानुभूतिपूर्ण मुस्कान से वे बच्चे के घायल मन पर ठण्डक डाल देते हैं।

ऐसे ही व्यक्ति बच्चे की समस्याओं को झट सुलझा देते हैं। भगवान ने माता को अपने बच्चे के दुःख को समझने की सहज बुद्धि दी है। वह बच्चे के शरीर पर हाथ फेरकर उसकी अस्वस्थता को प्रायः समझ जाती है, उसकी आँखों में झाँककर उसके हृदय की कचोटन को पढ़ लेती है। तभी कहावत है कि अपनी माँ तो सूखा हाथ भी फेर दे, तो बच्चा हरा-भरा हो जाता है।

बच्चों को दूध पिलाने का महत्त्व ठीक से समझें

बच्चों में माँ-बाप के संस्कार कहाँ से आएँ ? बोतल से तो वे दूध पीते हैं और माँ-बाप द्वारा कुछ शिक्षा मिलती नहीं। सरकार अपने लिए नौकर तैयार करने को जो शिक्षा देती है, वही शिक्षा प्राप्त करते हैं। इससे वे सभ्य तो बन सकते हैं, पर संस्कारवान नहीं। संस्कार-सम्वर्द्धन में माता-पिता के विचार, व्यवहार और प्रशिक्षण का महत्त्व तो है ही, माँ द्वारा बच्चे को अपना दूध पिलाते समय भी उसमें सूक्ष्म रूप से घुले संस्कार बच्चे को प्राप्त होते रहते हैं। शिशु द्वारा स्तन-पान का यह पहलू भी महत्त्वपूर्ण है।

जेनेवा में विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक बैठक में विशेषज्ञों ने एकमत से यह प्रकट किया कि बच्चों के सर्वांगीण विकास में रुकावट और उनकी पेट की बीमारियों का मुख्य कारण 'बेबी फूड' डिब्बे का दूध देना है।

यद्यपि 'बेबी फूड' बनाने वाली कम्पनियाँ इसका बराबर विरोध कर रही हैं, परन्तु देखना यह है कि महिलाएँ कहाँ तक इस अभियान को सफल बना सकेंगी?

राष्ट्र संघ द्वारा संचालित 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' ने विश्व में माताओं को दुग्ध चूर्ण के डिब्बों से शिशु रोग फैलने वाले और कभी-कभी उनके प्राण तक ले लेने वाले तत्त्वों के कारण, उनका उपयोग न करने का आग्रह किया है। स्वास्थ्य संगठन का मत है कि माँ के दूध के अतिरिक्त शिशु के लिए और कोई आहार सर्वोत्तम नहीं हो सकता।

अमेरिका व अन्य विकसित देशों पर इसका परिणाम अच्छा हुआ और वहाँ माताएँ अपने बच्चों को अपना ही दूध पिलाने लगी हैं, जिसमें वहाँ १६०० करोड़ डालर मूल्य के—न बिके हुए, 'बेबी मिल्क फूड' का—अंबार लग गया है। बेबी मिल्क फूड की निर्माता कम्पनियाँ अपने भ्रामक लुभावने विज्ञापनों द्वारा इनको भारत या अन्य विकासशील देशों में विक्रय करने में लगी हुई हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भारत में 'कंज्यूमर गाइडेंस सोसायटी' जैसी संस्था जो कि भारत सरकार द्वारा नियुक्त की गई है और बेबी मिल्क फूड के निर्माताओं के लिए आचार-संहिता भी बना रही है, ने बेबी मिल्क फूड की बिक्री को काफी प्रतिबन्धित कर दिया है। विकासशील देशों में लंका पहला देश है जिसने बेबी मिल्क के विज्ञापन पर ही पूरी रोक लगा दी है।

शिशु रोग विशेषज्ञ डा. आर. के आनन्द जो कि बेबी मिल्क फूड के लिए आचार-संहिता समिति के सदस्य भी हैं, ने स्पष्ट कहा है कि कमजोर और रुग्ण माँ का दूध ही क्यों न हो, वही अपने बच्चे के लिए नैसर्गिक व सर्वोत्तम आहार है और बेबी मिल्क फूड से श्रेष्ठ है। आधुनिक माताएँ शारीरिक सौन्दर्य में कमी के डर से बेबी मिल्क फूड को श्रेष्ठ बतलाती हैं, जो कि एकदम आधारहीन है। एक निर्धन परिवार में जन्मे माँ के दूध पर पले बच्चे का स्वास्थ्य एक सम्पन्न परिवार में बेबी मिल्क फूड पर पले शिशु की अपेक्षा उत्तम देखा जा सकता है।

शिशु के जन्म के तुरन्त बाद ही माँ के स्तन में हल्के पीले रंग का दूध आता है, जो कोलोस्ट्रम के नाम से विख्यात है, यह दूध बच्चे की उन सब रोगों से रक्षा करता है, जो इस काल में हो सकते हैं। प्रसव काल में, जिन माताओं की मृत्यु हो जाती है, उनके शिशुओं को अन्य माता का कोलोस्ट्रम देना उपयोगी सिद्ध हुआ है।

स्तन का दूध पिलाने से माँ को कई लाभ होते हैं। एक तो स्तन पान कराने वाली माताओं के गर्भाशय अधिक जल्दी पूर्ववत् हो जाते हैं, जबकि स्तनपान न कराने वाली माताओं के भीतर यह क्रिया उनसे बहुत देर बाद सम्पन्न होती है। दूसरे, उसे एक गहरी भावनात्मक तुष्टि भी मिलती है, जो एक विशिष्ट मनोवैज्ञानिक लाभ है।

प्रत्येक जननी को यह ध्यान रखना चाहिए कि स्तनपान कराते समय की शारीरिक स्थिति से अधिक महत्त्वपूर्ण भावनात्मक स्थिति है। अर्थात् जिस प्रकार अस्वच्छ शरीर रहने पर स्तनपान कराना ठीक नहीं, उसी प्रकार उद्विग्नता-व्यग्रता, उपेक्षा, आतुरता की मनःस्थिति में भी स्तनपान नहीं कराना चाहिए। बच्चे को दूध पिलाते समय माँ द्वारा कोई मनोरंजक पुस्तक पढ़ते जाना या दूसरों से गपशप करना अथवा हड़बड़ी-उतावली में रहना शिशु के लिए अस्वास्थ्यकर सिद्ध होता है। वस्तुतः स्तनपान करते और कराते समय शिशु एवं जननी दोनों को ही प्रशांत, प्रफुल्ल मनःस्थिति में होना चाहिए। शरीर में किसी भी प्रकार का तनाव नहीं रहे, प्रत्युत शिथिलन की स्थिति रहे। जहाँ दूध पिलाया जा रहा हो, वह स्थान भी विश्रांतिदायक, शान्तिपूर्ण हो। वहाँ गर्मी या ठण्डी की अधिकता न हो। चारों ओर का वातावरण प्रसन्नतावर्द्धक हो। दूध पिलाते समय जननी को पूरी तरह दत्तचित्त होकर बच्चे को स्तनपान कराना चाहिए। उस समय माँ में जितने ही शुभ, श्रेष्ठ, उत्साहपूर्ण विचार उठेंगे, बच्चे के भीतर उतना ही अनुकूल प्रभाव वह दूध उत्पन्न करेगा। अतः प्रत्येक जागरूक जननी को स्तनपान का महत्त्व भलीभाँति समझना चाहिए और उसे एक विशेष कर्त्तव्य समझकर अत्युच्च मनोभाव के साथ सम्पन्न करना चाहिए।

स्तनपान करते-कराते समय बच्चे और माँ दोनों के चेहरे पर जो उल्लास, तन्मयता और आत्मविभोर होने के भाव अंकित होते हैं, वे स्वयं ही इस तथ्य के द्योतक हैं कि यह प्रक्रिया कितनी गहरी भावनात्मक अनुभूति से जुड़ी रहती है ? अनेक श्रेष्ठ चित्रकारों और शिल्पियों ने अपने चित्रों एवं मूर्तियों में उस मनोभाव को कुशलता से अंकित किया है तथा ऐसे चित्र या ऐसी प्रतिमाएँ दर्शकों में भी मृदुता, स्निग्धता, पवित्रता एवं प्रसन्नता को ही उत्कृष्ट मनोभावों का संचार करती हैं। स्तनपान कराती जननी के मुखमण्डल पर बहुत कुछ वैसी ही तल्लीनता एवं दिव्य रहस्यात्मक आनन्दपूर्ण अनुभूति की छाप दिखाई पड़ती है, जैसे किसी ध्यानलीन योगी के चेहरे पर देखी जाती है। वस्तुतः माँ की यही एकाग्रता, तन्मयता और दिव्य-भावापन्न प्रसन्नता बच्चे के लिए भावनात्मक, मानसिक पोषण बन जाती है। अतः धैर्य एवं आत्मविश्वास से भरपूर, शान्त निश्चिन्त मनःस्थिति में ही माँ को बच्चे को स्तनपान कराना चाहिए। तभी जननी का दूध बच्चे के लिए अमृतोपम बन जाता है और शक्ति, ओज तथा सुसंस्कारों की अभिवृद्धि करता है।

जननी के दूध का पोषक स्तर उच्चकोटि का हो, इस हेतु परिवार के जिम्मेदार लोगों को उसके सात्विक, पौष्टिक भोजन की व्यवस्था भी करनी चाहिए। माँ के भोजन में खनिज-द्रव्य आदि पर्याप्त मात्रा में होंगे तभी उसके स्तन से स्वस्थ दूध निकलेगा। इस हेतु जननी को चोकर समेत आटे की रोटी, पर्याप्त फल एवं हरी सब्जी आदि पोषक तत्त्व भोजन में लेने चाहिए और शुद्ध दूध मिल सके तो उसे भी लेना चाहिए। जिन माताओं के दूध नहीं निकलता है—प्रकृति की इस स्वाभाविक देन से किसी कारण जो जननी वंचित रह गई हैं, वे भले ही विवशता में बच्चे को गाय का शुद्ध दूध पिलाएँ। किन्तु जिनके दूध पर्याप्त उत्पन्न होता है या हो सकता है, वे माताएँ गाय का वह दूध बच्चे को पिलाने के स्थान पर स्वतः पिएँ। इससे उनके भीतर अधिक मात्रा में तथा अधिक अच्छी कोटि का दूध उत्पन्न होगा, जो बच्चे के अधिक अनुकूल होगा। अतः बाहरी शुद्ध दूध बच्चे को पिलाने के स्थान पर उसे प्रकृति-प्रदत्त अनुपम यन्त्र अर्थात् अपने शरीर के माध्यम से माताएँ बच्चों तक पहुँचाएँ तो उन्हें तथा शिशु दोनों को शारीरिक दृष्टि से भी अधिक लाभ होगा, भावनात्मक दृष्टि से तो होगा ही।

सन्तुलित भोजन के साथ ही, दूध पिलाने वाली माता को अपनी दिनचर्या भी सन्तुलित रखनी चाहिए। बच्चा पैदा होने के लगभग डेढ़ माह बाद से उन्हें थोड़ा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शारीरिक श्रम भी नियमित अवश्य करना चाहिए। साथ ही रात को जल्दी ही सो जाना चाहिए। शरीर को पर्याप्त विश्राम देना चाहिए और स्वच्छ, खुली हवा में भी सुबह टहलना चाहिए। साफ हवा प्राप्त करने के लिए सतर्क रहना चाहिए।

प्रसव के दिन बच्चे को चौबीस घण्टे में तीन बार दूध पिलाना काफी होगा, दूसरे दिन से चार बार तक दूध पिलाना चाहिए। एक-डेढ़ वर्ष की आयु तक बच्चों को स्तनपान अवश्य कराना चाहिए। इसके बाद फलों के रस देने का अभ्यास बढ़ाते हुए दूध पीना छुड़ाना चाहिए। नारंगी के रस से शुरू करना अच्छा रहता है।

इस प्रकार बच्चे को स्तनपान कराने का महत्त्व ठीक से समझकर, प्रशान्त, प्रसन्न मनःस्थिति में बच्चे को दूध पिलाने वाली माताएँ स्वयं भी स्वस्थ, प्रफुल्ल रहती हैं और बच्चे को भी स्वास्थ्य के साथ ही श्रेष्ठ संस्कारों का अनुपम अनुदान देती हैं, जो जीवनभर के लिए उसकी उल्लेखनीय पूँजी बनता है।

भावी पीढ़ी को इस अमृत से वंचित न करें

नवजात शिशुओं के निर्माण एवं विकास पर किसी भी समाज अथवा देश का भविष्य अवलम्बित होता है। जन्मते ही शिशु की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति माँ द्वारा होती है। पोषण का एकमात्र आधार बनता है—माँ का अमृत तुल्य दूध माँ का दूध एकमात्र शरीर को ही पोषण नहीं देता वरन् मानसिक एवं भावनात्मक विकास की भी भूमिका सम्पन्न करता है। दुर्भाग्यवश जिन बच्चों को जन्म लेने के बाद माँ की छत्रछाया नहीं मिल पाती उनमें से अधिकांश जीवित नहीं रह पाते। असमय दम तोड़े देते हैं। किसी तरह जो जीवित बचते भी हैं, उनका समग्र रूप से शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक विकास नहीं हो पाता।

इस युग को मनोवैज्ञानिक युग कहा जा सकता है। एक ओर जहाँ मनोविज्ञान के विकास द्वारा कितनी ही नवीन जानकारियाँ प्राप्त हुई हैं। वहीं दूसरी ओर इस विधा का दुरुपयोग भी कम नहीं हुआ है। व्यावसायिक प्रतिष्ठानों ने प्रचार कार्यों में मनोवैज्ञानिक तन्त्र का खुलकर प्रयोग किया है। व्यावसायिक सफलता के लिए ऐसे प्रचार किये जाते हैं, जो जनमानस की स्वस्थ मान्यताओं तक को भी बदल देने में समर्थ होते हैं। विद्वानों का, प्रतिभावानों का एक वर्ग ऐसा है, जो इनके इशारे पर नाचता है। बदले में उन्हें मोटी रकम मिलती है। विद्वानों द्वारा प्रोपेगण्डा पर प्रामाणिकता की मुहर लगा देने पर स्वतन्त्र विचारणा से रहित बहुसंख्यक वर्ग के मस्तिष्क में आसानी से प्रचार की गई बात बैठ जाती है। इन दिनों इस तरह के मनोवैज्ञानिक प्रयोग व्यावसायिक तन्त्रों द्वारा प्रचार कार्यों में धड़ल्ले से किये जा रहे हैं।

माँ का दूध शिशु के लिए सदा से एक सर्वोत्तम और परिपूर्ण आहार समझा जाता रहा है। कृत्रिम दूध का निर्माण करने वाले प्रतिष्ठानों ने अपनी व्यावसायिक सफलता के लिए उपरोक्त सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक प्रचारों द्वारा कितने ही प्रकार की भ्रान्तियाँ फैला रखी हैं, जिसमें से प्रमुख यह है कि अपने स्तन को दुग्धपान कराने से माँ का स्वास्थ्य गिरता तथा सौन्दर्य नष्ट होता है। स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य को बनाये रखने की आकांक्षा हर युवा नारी में होती है। सम्बद्ध प्रचार के प्रभाव से आधुनिकता के परिवेश में पली कितनी ही नारियों के मन में यह डर आरम्भ से ही बैठ जाता है कि अधिक दिनों तक बच्चे को दूध पिलाना खतरे से खाली नहीं है—अपना स्वास्थ्य और सौन्दर्य दोनों ही गँवाना होगा। फलतः वास्तविकता से अपरिचित नारियाँ शिशु के जन्म लेने के कुछ ही माह बाद अपने वक्ष का दुग्धपान कराना छुड़ा देती हैं तथा डिब्बे, बोतल आदि के कृत्रिम दूधों पर पान बच्चे को कराने लगती हैं। अज्ञानतावश ऐसी नारियाँ अपने स्वास्थ्य तथा बच्चे के स्वास्थ्य के साथ भारी अहित करती हैं।

विशेषज्ञों का मत है कि बच्चे को पयपान न कराने से माँ के स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य दोनों ही के ऊपर उल्टा प्रभाव पड़ता है। विश्व के मूर्धन्य चिकित्साशास्त्रियों ने चौंकाने वाले निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं, जो इस मान्यता को निराधार साबित करते हैं कि स्तनपान से माँ का स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य नष्ट होता है। अमेरिका के स्वास्थ्य अनुसन्धान विभाग की रिपोर्ट के अनुसार अमेरिका में आठ प्रतिशत महिलाएँ वक्ष कैंसर से इसलिए ग्रस्त होती हैं कि वे अपने नवजात शिशुओं को अपना दुग्धपान नहीं कराती हैं।

अपने देश में भी अब अबोध शिशुओं को वक्ष से पयपान न कराने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। मद्रास कैंसर इंस्टीट्यूट के विशेषज्ञों ने इस प्रवृत्ति को घातक बताया है। उनके अनुसार भारत में भी वक्ष कैंसर की रोगी महिलाओं की संख्या तेजी से बढ़ रही है। इस इंस्टीट्यूट में किए गये शोध एवं अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि महिलाओं में वक्ष कैंसर से ग्रस्त रोगियों के हार्मोन सम्बन्धी दोष ही अधिकांशतः वक्ष कैंसर के कारण बनते हैं। यह दोष अधिकतर महिलाओं में शिशुओं को स्तनपान न कराने से उत्पन्न होता है।

माँ के ऊपर कुप्रभाव तो पड़ता ही है, उससे भी अधिक दुष्प्रभाव बच्चे के ऊपर देखा जाता है। विश्व

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

स्वास्थ्य संगठन के एक सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार छह माह से कम समय तक स्तनपान करने वाले बच्चों की मृत्यु-दर अगले छह महीने में उन बच्चों की तुलना में पाँच से दस गुना तक अधिक होती है, जो छह महीने से अधिक समय तक माँ का स्तनपान करते हैं। विशद् अध्ययन एवं विश्लेषण के उपरान्त विश्व के मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने माँ के दूध को सर्वाधिक पौष्टिक, निरापद और समग्र आहार माना है। एक ऐसा आहार जिसके पौषक तत्त्वों की पूर्ति अन्य किसी भी माध्यमों से नहीं हो सकती। भैंस, गाय आदि के दूध में भी वे जीवन-तत्त्व नहीं पाये जाते, जो माँ के दूध में होते हैं। उनका मत है कि माँ के दूध में पाये जाने वाले लैक्टोज की मात्रा अत्यधिक होती है, जिसे मस्तिष्क के विकास के लिए विशेष रूप से आवश्यक माना गया है। लैक्टोज से बनने वाला गैलक्टोज मस्तिष्क को पोषण देता है।

भारतीय आयुर्वेद शास्त्र माँ के दूध की महिमा से भरा पड़ा है। आयुर्वेद के ऋषि का निर्देश है कि—

मातुरेव पिवेत्स्तन्य तत्परं देह वृद्धये।
स्तन्य धात्री उभे कार्य तद सम्यदिवत्सले।।

अर्थात्—तत्पर होकर शरीर वृद्धि के लिए माता के ही स्तन का पान कराये। यदि किसी कारण से माता के पास दूध न हो, तो उसे दूध पिलाने के लिए दो दाइयाँ रखी जाएँ।

माँ के स्तन के दूध की उपमा ऋषि सुश्रुत ने अमृत से दी हैं—

पयोऽमृत रसं पीत्वा कुमारते शुभानने।
दीर्घमायुरवाप्नोतु देवाः प्राश्यामृतं यथा।।

—सुश्रुत संहिता

अर्थात्—हे शुभानने ! जिस प्रकार देवता अमृत का पान करके दीर्घायु हुए उसी प्रकार तुम्हारा अमृत रूपी दूध पीकर बालक दीर्घायु हो।

जीवन वृहणं सात्म्यं स्नेहनं मानुषं पयः।

—चरक संहिता

अर्थात्—स्त्री का दूध जीवनी-शक्ति से भरपूर वृहण, सात्म्य पुरुष शरीर के अनुकूल तथा स्निग्धता से युक्त करने वाला है।

माँ के दूध में पाये जाने वाले लैक्टिक एसिड, वैक्टीरिया स्तनपान करने वाले शिशुओं की आँत की हर तरह से सुरक्षा करते हैं। आँत के कितने ही रोगों में इनकी भूमिका एन्टीबायोटिक जैसी होती है। विविध प्रयोगों में यह देखा गया है कि कुछ ही समय बाद बच्चे को जन्म देने वाली महिलाओं के जननांगों में लैक्टोवैसिल्स एसिडोफिलस तथा वाइफिडो वैक्टीरियम भारी संख्या में पाये जाते हैं, जो नवजात शिशु के मुँह और मलद्वार से उसकी आँत में दो से तीन दिन के भीतर प्रवेश कर अपना स्थायी स्थान ग्रहण कर लेते हैं। माँ के दुग्ध में पाये जाने वाले कुछ विशेष फैक्टर्स उन्हें शीघ्रतिशीघ्र आँत में दुग्धपान के समय प्रविष्ट करने में मदद करते हैं। दुग्ध में विद्यमान ये विशिष्ट तत्त्व उपरोक्त लाभकारी वैक्टीरिया की संख्या वृद्धि की गति बढ़ा देते हैं साथ ही आँत से 'इम्यूनोग्लोबुलिन्स' जीवन-शक्ति के लिए उत्तरदायी कण एन्जाइम्स उत्सर्जन पित्त रस आदि की गतिविधियों को भी तीव्र कर देते हैं, जो शिशु के आरोग्य के लिए लाभकारी हैं।

वाइफिडम फैक्टर मातृ-दुग्ध की प्रमुख विशेषता है, जो अन्य किसी भी कृत्रिम दूध तथा पशुओं के दूध में नहीं पायी जाती है। ऐसा देखा गया है कि वाइफिडो वैक्टीरियम में वाइफिडम स्तनपान करने वाले बच्चों में बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। जो स्वास्थ्य संरक्षण आरोग्य एवं विकास को विशेष रूप से योगदान देते हैं, जबकि उन शिशुओं में जो बोतल आदि का कृत्रिम दूध पान करते हैं उपरोक्त प्रकार की विशेषता नहीं विकसित हो पाती। पहले से ही विद्यमान वाइफिडो वैक्टीरिया रोगों के आक्रमण से सुरक्षा करने में समर्थ होते हैं। अस्तु, ऐसे बच्चे, जो अधिक दिनों तक माँ का दूध पीते रहते हैं, में आँत के रोगों से ग्रस्त होने की सम्भावना कम रहती है।

यों तो माँ के दूध की कीमत नहीं लगायी जा सकती क्योंकि दूध के साथ-साथ माँ बच्चे को अपनी भावनाओं एवं प्राणों का जो पान कराती रहती है। उसका मूल्य भला कैसे आँका जा सकता है ? पर चर्चा अर्थ की चल ही पड़ी तो 'इण्डियन काउन्सिल ऑफ मेडिकल रिसर्च' के महानिदेशक डा. सी. गोपालन का माँ के दूध के आर्थिक मूल्यांकन का निष्कर्ष देना अप्रासंगिक नहीं होगा। डा. गोपालन के अनुसार भारत में माँ के स्तनों से बच्चों को ३७ लाख टन दूध प्रतिवर्ष प्राप्त होता है। यदि अधिक समय तक माताएँ बच्चों का स्तनपान करायें तो यह मात्रा दुगुनी हो सकती है। दो रुपये प्रतिकिलो का भी न्यूनतम हिसाब लगाया जाय, तो ३७ लाख टन दूध की कीमत दो करोड़ चालीस लाख रुपये होती है, जो समूचे भारत सरकार के स्वास्थ्य बजट से चार गुना है। पूरे समय तक माताएँ बच्चे को दूध पिलाएँ तो उपरोक्त संख्या आठ गुनी हो सकती है। यदि इस मूल्य में कृत्रिम दूध से पैदा होने वाली बीमारियों पर होने वाले खर्च को भी जोड़ दिया जाय, तो उपरोक्त राशि कई गुनी अधिक जा पहुँचती है, क्योंकि माँ के दूध से रुग्णता की सम्भावना कम रहती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन दिनों जनसंख्या वृद्धि की विभीषिका मुँह फाड़े विश्व के समक्ष खड़ी है। ऐसे में वैज्ञानिकों ने एक सरल उपाय जनसंख्या नियन्त्रण का यह बताया है कि यदि महिलाएँ अधिक समय तक बच्चों को स्तनपान कराएँ तो गर्भधारण करने की सम्भावना कम रहती है, क्योंकि स्तनपान की अवधि में डिम्ब निर्माण की प्रक्रिया थोड़ी देर से आरम्भ होती है और एक सीमा तक स्तनपान की प्रक्रिया गर्भनिरोधक का भी कार्य करती है। इस सन्दर्भ में लन्दन की मेडिकल अनुसन्धान का शोध निष्कर्ष उल्लेखनीय है। एडिनवर्ग विश्वविद्यालय के डा. रोजट शार्ट का कहना है कि आजकल महिलाओं की प्रजनन शक्ति पहले की तुलना में कहीं अधिक बढ़ गई है। आज के युग में महिलाएँ अपने जीवन-काल में लगभग दो सौ बार प्रजनन कर सकती हैं, जबकि प्राचीनकाल में यह संख्या आठ से लेकर दस बार तक सीमित थी। डा. शार्ट के अनुसार इस अन्तर का सबसे प्रमुख कारण यह है कि प्राचीनकाल में लम्बी अवधि तक महिलाएँ स्तनपान कराती थीं। फलतः डिम्ब निर्माण प्रक्रिया उस अवधि तक रुकी रहती थी, जबकि वर्तमान समय में महिलाएँ कुछ ही माह तक बच्चों को दुग्धपान करातीं हैं अथवा बिल्कुल ही नहीं करातीं, जिससे डिम्ब बनने की प्रक्रिया शीघ्र ही आरम्भ हो जाती है। ऐसी स्थिति में जनसंख्या वृद्धि को प्रश्रय मिलता है।

इस प्रकार स्तनपान हर दृष्टि से लाभकारी ही सिद्ध होता है, अतः इसे हतोत्साहित नहीं, प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

डिब्बे का नहीं, माँ का दूध पिलाएँ

रूप-यौवन में कमी पड़ने की बात सोचकर बहुत-सी माताएँ बच्चों को कम उम्र में ही दूध पिलाना बन्द कर देती हैं। सुशिक्षित महिलाएँ, जो नौकरी पर जाती हैं, प्रायः घर पर न रहने पर उनके बच्चे भी माँ का स्तनपान नहीं कर पाते। ऐसी दशा में बच्चा बाहर का दूध पीने से दुर्बल भी रहता है और रुग्ण भी। डिब्बे के दूध में वह भावनात्मक विशेषता कहाँ हो सकती है, जिसकी, जन्म देने के बाद भी माता द्वारा ही पूर्ति होनी सम्भव थी।

गरीबों की बात और है। उन्हें दिनभर कठोर श्रम करना पड़ता है। भोजन भी पूरी मात्रा में उपलब्ध नहीं हो पाता और उसमें पौष्टिकता की भी कमी रहती है। ऐसी दशा में रक्ताल्पता की शिकायत बनी रहती है। इन्हीं परिस्थितियों में महिलाओं को बच्चे भी पैदा करने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में यदि वे डिब्बा बन्द दूध का सहारा लें, तो इसे उनकी विवशता ही कही जायेगी, पर अमीर और शिक्षित परिवारों की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। उन क्षेत्रों में समझा जाता है कि दूध पिलाने से जननी कमजोर हो जाती है, अपना वक्ष सौन्दर्य और सुगढ़ता गँवा बैठती है। इसलिए इन वर्गों में बच्चे को कुछ ही दिनों अपना दूध पिलाकर ऊपरी दूध पिलाना आरम्भ कर दिया जाता है। यह जननी और शिशु दोनों के लिए अहितकर है।

जमैका के प्रख्यात 'पोषण विज्ञानी' डॉ. डैरिक जैलिक ने अपने सर्वेक्षण में बताया है कि उन्नत देशों एवं तथाकथित सभ्य एवं सुसम्पन्न परिवारों में एक करोड़ से अधिक बच्चे बोतल का दूध पीने को विवश हैं, परिणामस्वरूप उन्हें अधिक रोगग्रस्त पाया जाता है। माताएँ उन्हें स्तनपान कराकर इस तरह की रुग्णता से बचा सकती हैं। उनके अनुसार शिशुओं में आँतों की बीमारी के लिए कृत्रिम दूध विशेष रूप से उत्तरदायी है। बाल रोग विशेषज्ञों का कहना है कि प्रायः वे ही माताएँ अपने बीमार बच्चे को लेकर डाक्टर के पास जाती हैं, जो उन्हें स्वयं अपना दूध न पिलाकर बाहरी दूध पर रखती हैं। सर्वेक्षणकर्त्ताओं ने यह भी पाया है कि ऐसे बच्चों की मृत्यु-दर अधिक होती है, जिन्हें सर्वथा जीवन के प्रारम्भ से बाहरी या कृत्रिम पोषण पर निर्भर रहना पड़ता है।

पोषण की दृष्टि से माताओं के दूध में सभी आवश्यक तत्त्व विद्यमान होते हैं। इससे बच्चों को ऊर्जा की मात्रा लगभग ६५० कैलोरी प्रतिलीटर की दर से उपलब्ध होती है। कुछ माताएँ शिशुओं को मिश्रित दूध पिलाती हैं, जो उनके स्वास्थ्य को तनिक भी रास नहीं आता और वे बीमार रहने लगते हैं। इस सन्दर्भ में हार्वर्ड मेडिकल स्कूल के चिकित्साविज्ञानी डॉ. डब्ल्यू एलन वाकर ने गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया है और पाया है कि माँ के दूध के साथ बाहरी दूध मिलाकर देने से बच्चों में एलर्जी सम्बन्धी कितनी ही बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं ? माँ के दूध में विद्यमान विकासकारक एवं रोग प्रतिरोधक तत्त्वों की डिब्बा बन्द दूध में कमी पड़ जाने से कोलाइटिस जैसी आँत की बीमारियाँ पनपने लगती हैं और बच्चा सदा के लिए इनका शिकार बन जाता है। उनके अनुसार ब्रैस्ट मिल्क की थोड़ी-सी नैसर्गिक मात्रा भी शिशु के लिए जीवनरक्षक एवं उत्तम पोषण प्रदान करती है। इससे उन्हें वंचित नहीं किया जाना चाहिए।

माता के दूध से उत्तम किसी अन्य आहार अथवा दूध की कल्पना नहीं की जा सकती। वह शिशु के लिए एक प्राकृतिक अनुदान है। उसमें उपलब्ध २.१ प्रतिशत प्रोटीन का लगभग पूर्ण अवशोषण शिशु की आँतें सरलतापूर्वक कर लेती हैं। इसी तरह चिकनाई का ९७ प्रतिशत भाग विविध हलचलों हेतु ऊर्जा के रूप में प्रयुक्त हो जाता है। पोषक तत्त्वों के अतिरिक्त प्राकृतिक रूप में ग्रहण किये गए दूध में उपस्थित मातृ रसायन रोग प्रतिरोधी क्षमता को सशक्त बनाते और जीवनी-शक्ति का अभिवर्द्धन करते हैं, जिससे सर्दी-जुकाम से लेकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आँत्रविकार एवं संक्रमित होने वाली बीमारियों से उनकी रक्षा सहज ही होती रहती है।

मनोविज्ञानियों का कथन है कि स्तनपान द्वारा भावनात्मक निकटता इतने स्वाभाविक रूप में स्थापित होती है कि उसी के आधार पर शिशु बोलने से लेकर अपनी समस्त जैविक गतिविधियों को जीवनपर्यन्त संतुलित बनाये रखता है। ज्यों ही माँ अपने बच्चे पर वात्सल्य भरा गर्व अनुभव करती है, उसके वक्षस्थल का स्नेह-स्रोत उमड़ पड़ता है।

चिकित्सकों के अन्वेषण ने यह रहस्योद्घाटन किया है कि जितनी लम्बी अवधि तक बच्चा माँ के दूध पर अवलम्बित रहता है, जननी के शरीर में उस हार्मोन का उत्सर्जन बराबर होता रहता है, जिससे डिम्बोत्सर्ग की प्रक्रिया रुक जाती है। मूर्धन्य वैज्ञानिक डा. एन. एन. फोरिश के अनुसार उस उपक्रम द्वारा अपने देश में प्रतिवर्ष ५० लाख शिशुओं के जन्म को रोका जा सकता है।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने इस सम्बन्ध में गहन खोजें की हैं। ऐडिनवर्ग, लन्दन की मेडिकल रिसर्च काउन्सिल यूनिट के चिकित्साविज्ञानीद्वय एच. डब्ल्यू पीटर होवे एवं हेलेन एस. नैले ने स्कॉटलैण्ड की २७ ऐसी महिलाओं का परीक्षण किया जो अपने बच्चों को निरन्तर स्तनपान कराती रहीं। दूसरे प्रयोग के लिए उन्होंने १० ऐसी महिलाओं को चुना जिन्होंने प्रसवोपरान्त बॉटल फीडिंग पर अपने बच्चों को रखा। दोनों ही वर्गों में विशिष्ट प्रकार का अन्तर देखा गया। अपना शोध-निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए उन्होंने बताया कि बोतल से दूध पिलाने वाली महिलाओं में प्रसव के ११ सप्ताह बाद ही डिम्बक्षरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी, जबकि ब्रैस्ट फीडिंग वाली महिलाओं की उक्त शारीरिक क्रिया को क्रियाशील होने से ३३ से ३६ सप्ताह लगे। टोरंटो के बोरेसेली एवं इरवेन डी. बोर ने तो विश्वभर में यायावरों की ९० प्रतिशत ऐसी जातियाँ खोज निकाली हैं, जो बच्चों को चार वर्ष तक अपना दूध पिलाती और जल्दी गर्भधारण के बोझ से बची रहती हैं। उनका कहना है कि बच्चे को यदि पूरी समयावधि तक माताएँ दूध पिलाती रहें तो पुनः प्रजनन की अवधि को पाँच वर्ष तक टाला जा सकता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी वे ही मजबूत रहती हैं, जिन्हें इस संकट का सामना नहीं करना पड़ता है।

स्तनपान का बच्चे के साथ सीधा भावनात्मक सम्बन्ध जुड़ा होने के कारण जन्मदात्री के मस्तिष्क को पूरी तरह प्रभावित करता है। यही कारण है कि बच्चे के दूध पीते समय माता के मस्तिष्क में अवस्थित पिट्यूटरी ग्रन्थि से स्रावित हार्मोन न केवल पोषण क्षमता में वृद्धि करते हैं, वरन् दुग्ध उत्पादन प्रक्रिया को लम्बे समय तक बनाये रखते हैं। इससे कुपोषण से मरने वाले शिशुओं की संख्या में काफी कमी हो सकती है और बहुप्रजनन पर भी अंकुश लग सकता है। यह बच्चे एवं जननी दोनों के स्वास्थ्य के लिए उत्तम है, पर इन सबमें जो महत्त्वपूर्ण लाभ है वह है—बालक का भावनात्मक विकास, जो डिब्बा बन्द दूध से कदापि सम्भव नहीं। इन्हीं सब तथ्यों को देखकर शायद अकबर इलाहाबादी के यह उद्‌गार फूट पड़े हों—

''तिफ्ल(बालक) में बू आये क्या, माँ-बाप के एतबार की।
दूध तो डिब्बे का है, तालीम है सरकार की॥''

माताएँ शिशुओं को स्तनपान कराने में संकोच न करें

इन दिनों सोचा जाता है कि बच्चे को दूध पिलाने से माता का स्वास्थ्य दुर्बल होता है। इसलिए शिशुओं को ऊपरी दूध पिलाना चाहिए, ताकि माता की स्वास्थ्य रक्षा सम्भव हो सके। सुसम्पन्न और शिक्षित लोग प्रायः ऐसा ही करते हैं।

यह एकांगी चिन्तन है। माता के स्वास्थ्य और सौन्दर्य की रक्षा के लिए समुचित ध्यान दिये जाने और उसकी सुरक्षा-व्यवस्था बनाने की बात का औचित्य सहज ही समझ में आता है। इस सन्दर्भ में जो कुछ भी सम्भव हो सो किया ही जाना चाहिए, पर यह ध्यान रखने योग्य बात यह भी है कि जिस बालक को आमन्त्रित करके बुलाया गया है, उसके परिपोषण एवं विकास के सम्बन्ध में कृपणता क्यों बरती जाय ?

नवजात बालक का पाचन तन्त्र इतना कोमल और संवेदनशील होता है कि माता का दूध ही सरलतापूर्वक पच सके। जिस शरीर के भीतर रहकर उसने अपना अस्तित्व विकसित किया है, उसी के रासायनिक पदार्थ अनुकूल पड़ते हैं। पशुओं के दूध तथा अन्यान्य खाद्य पदार्थों को पचाने की क्षमता तो धीरे-धीरे ही विकसित होती है। जन्मकाल से लेकर कई महीने तक पेट की स्थिति इसी स्तर की बनी रहती है कि वह माता के दूध को ही ठीक तरह पचा सके और उससे उचित एवं अनुकूल पोषण प्राप्त कर सके।

नवजात असहाय बालक की सेवा-सुश्रूषा, देखभाल, स्नेह-दुलार के लिए ही नहीं, उचित आहार के लिए भी माता की ओर ही आशा भरी दृष्टि से निहारना पड़ता है। यदि उस अंचल में भी उसे शरण न मिले तो किसका मुँह जोहे, किसका पल्ला पकड़े ? यों उसकी क्षुधा शान्त करने के लिए तो डिब्बे का, पशुओं का दूध भी काम दे सकता है, पर उसकी वह आवश्यकता जिसमें न केवल शरीर का वरन् प्राणों का भी रस टपकता है, अन्यत्र कहाँ से मिलेगा ? पति और पत्नी भी कहने को तो एकत्व का दावा करते हैं, पर तात्विक दृष्टि से माता और बालक की एकात्मकता ही सही सिद्ध होती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पति-पत्नी अपना रिश्ता तोड़ और नया सम्बन्ध जोड़ सकते हैं, पर माता और सन्तान के बीच इस जोड़-तोड़ की कोई गुंजाइश नहीं है। जन्म देने तक तो उदरस्थ बालक माता की सत्ता में घुला ही रहता है। प्रसव के उपरान्त भी बहुत समय तक यह परिपोषण चलता रहता है घटोत्तरी तो तब आरम्भ होती है, जब बालक को संसार की अन्य वस्तुएँ आकर्षित करने लगती हैं।

गर्भस्थ शिशु को सींचने की प्रक्रिया प्रसव के उपरान्त भी बहुत समय तक माता को जारी रखनी पड़ती है। यह सम्पर्क सूत्र अन्य आधारों के साथ-साथ स्तनपान के साथ विशेष रूप से जुड़ा रहता है। पेट में माता का परिपोषण किसी कारणवश शिथिल हो जाय तो भ्रूण की सत्ता अविकसित स्थिति में ही पड़ी रहेगी और अपना अस्तित्व खो बैठेगी। यह तथ्य जन्म के उपरान्त भी जारी रहता है और उसमें क्रमशः ही कमी आती है। नवजात शिशु को बहुत समय तक माता के दूध की आवश्यकता बनी रहती है, क्योंकि शारीरिक एवं मानसिक पोषण के अतीव उपयोगी तत्त्व उसी केन्द्र से मिल सकते हैं जिसने उसे जन्म दिया है। इतनी अधिक अनुकूलता अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं हो सकती, जितनी कि बच्चे को माता से मिलती है।

माता रुग्ण अथवा अशक्त हो तो उसे स्थिति में शिशु के आहार की 'ऊपरी' व्यवस्था की जा सकती है। किन्तु जब दूध निकलता हो तो उसे इसलिए नहीं रोका जाना चाहिए कि इससे माता को दुर्बलता घेरेगी। यही बात थी तो गर्भस्थापना से ही बचा जाना चाहिए था। भ्रूण का विकास माता के शरीर को क्षति पहुँचाये बिना सम्भव नहीं। प्रसव वेदना के साथ-साथ होने वाले रक्त स्राव में कितनी क्षति पहुँचती है यदि इसका हिसाब लगाया जाय तो प्रतीत होगा कि स्तनपान कराने में होने वाली क्षति उससे कहीं बहुत कम है जो प्रसव से पूर्व हो चुकी है। यह तो मुँहर देने के उपरान्त एक पैसे पर झंझट करने जैसी बात हुई।

बालक के शारीरिक, मानसिक पोषण के साथ उसके समग्र व्यक्तित्व के अन्तःकरण के विकास की भी आवश्यकताएँ रहती हैं, इनकी पूर्ति माता के भावनात्मक एवं रासायनिक अनुदानों से ही हो पाती है। स्तनपान में अवरोध खड़ा होने पर बालक तो निश्चित रूप से घाटे में रहता है। शिशु आहार के नाम पर जिन वस्तुओं का गुणगान किया जाता है वस्तुतः उनकी उत्कृष्टता माता के दूध की तुलना में शतांश भी नहीं होती। यों बहकाने को तो द्रोणाचार्य ने अपने बेटे अश्वत्थामा को दूध-माँग को खड़िया मिट्टी का सफेद पानी पिलाकर भी काम चला लिया था। माता के दूध से वंचित बालक को जिस-तिस वस्तु के सहारे इसी प्रकार अपना गुजारा करना पड़ता है। ऐसी स्थिति उत्पन्न करना किसी सहृदय माता के लिए किस प्रकार सन्तोषजनक हो सकती है। इसे मोटे तर्कों और भौतिक स्वार्थों को आगे रखकर नहीं किया जा सकता। ऐसे मार्मिक प्रसंगों में तथाकथित स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य रक्षा की बात सोचते समय बालक के विकास और भविष्य को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

असभ्य लोगों में अपने ढंग के अन्धविश्वास उठते मरते रहते हैं। सभ्य कहलाने वाले लोग भी इस मामले में उनसे पीछे नहीं हैं। असभ्यों की मूढ़-मान्यताओं पर सभ्य लोगों द्वारा व्यंग्य-उपहास करने की बात समझ में आती है, पर आज की स्थिति में यदि तथाकथित समझदार और सभ्यताभिमानी लोगों पर पिछड़े लोग कभी मूर्खता का आरोपण करने लगें तो उसे भी अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता। सभ्य अन्धविश्वासों में से एक यह भी है कि बच्चे को दूध पिलाने से माता कमजोर हो जाती है। वस्तुतः वैसा कुछ नहीं। प्रसव के उपरान्त जिस स्तर के आहार-विहार की सतर्कता बरतनी चाहिए उसमें त्रुटि करने से स्वास्थ्य को आघात पहुँच सकता है और उस गड़बड़ी को स्तन पिलाने के साथ जोड़ा जा सकता है। यह आत्मप्रवंचना फिर भी तथ्यों से प्रतिकूल ही बनी रहेगी।

शरीर-विज्ञान के जानकार भली प्रकार समझते हैं कि प्रकृति हर प्राणी के शरीर में सामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप कई प्रकार के अतिरिक्त उत्पादन करती है। उनका सही प्रयोग होता रहे तो इससे स्वास्थ्य बिगड़ता नहीं वरन् उल्टी सुरक्षा होती है। किशोरियों को मासिक धर्म प्रारम्भ होता है और हर महीने रक्त जाता है। साधारणतया नस काटकर उतना रक्त बहाया जाया करे तो उससे हानि होगी, पर मासिक धर्म नियमित होते रहने से उनका स्वास्थ्य बिगड़ता नहीं वरन् बनता है। किसी सामान्य अंग का असामान्य रूप से बोझिल हो जाना चिन्ता का विषय है। ट्यूमर, रसौली गाँठ, फोड़ा आदि के उभार आपत्तिजनक माने जाते हैं, किन्तु लड़कियों की उठती उमर में वक्षस्थल का उभार स्वाभाविक माना जाता है। लड़कियों की आयु बढ़ जाने पर भी यदि मासिक धर्म आदि यौवन चिह्न प्रकट न हों तो इसमें स्वास्थ्य संकट जैसी चिन्ता करनी पड़ती है। शिशु जन्म से पूर्व ही माता का दुग्ध संस्थान विकसित एवं सक्रिय हो जाता है। प्रकृति प्राणी की आवश्यकताओं का भली प्रकार ध्यान रखती है और उनकी पूर्ति के साधन जुटाती रहती है। इस स्वाभाविक क्रिया-प्रक्रिया में किसी विपत्ति की आशंका नहीं करनी चाहिए। उत्पादन-विसर्जन का चक्र हर क्षेत्र में घूमता है और क्षतिपूर्ति की व्यवस्था अनायास ही होती रहती है।

शरीरविज्ञानी जानते हैं कि यौवन के आरम्भ होते ही 'इस्टेरोजेन' और 'प्रोजेस्टेरान' हार्मोन सक्रिय हो जाते हैं और स्तन संस्थान को विकसित एवं दुग्ध उत्पादन के लिए सक्षम बनाते हैं। गर्भावस्था में इस संस्थान का चरम विकास होता है। प्रसव के उपरान्त प्रेजेस्टोरान अकेला ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शरीर को सामान्य प्रक्रिया के अन्तर्गत ही शिशु आहार के लिए आवश्यक दुग्ध बनाते रहने का काम सँभाल लेता है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत दुग्ध-स्राव के कारण होने वाली क्षति की पूर्ति भी साथ-साथ होते चलने की व्यवस्था है। यदि दुग्ध-स्राव बन्द कर दिया जाय तो प्रकृति उलटकर प्रेजेस्टोरान को निष्क्रिय बनाती है अन्यथा दूध बनते रहने पर भी उसके निकलने का प्रबन्ध न रहने के कारण उस संस्थान में भयंकर पीड़ा एवं अर्बुद आदि उठ खड़े होने का संकट हो सकता है। उपरोक्त हार्मोन जब अपना कार्य समेटता है तो उसके साथ ही माता को पयपान के कारण होने वाली क्षतिपूर्ति के अतिरिक्त आधार भी बन्द हो जाते हैं। दूध पिलाने के बदले प्रकृति से जो अन्य अतिरक्त अनुदान मिल रहे थे, उनका स्रोत बन्द हो जाने से माताएँ किसी लाभ में नहीं रहतीं, वरन् बच्चे को उचित पोषण से वंचित करके अपने गौरव से गिरती ही हैं।

माता के दूध में कई अतिरिक्त पदार्थ हैं जो पशुओं से प्राप्त अथवा रसायन निर्मित पदार्थों से बने दूध में सम्भव नहीं। रक्त के ग्लूकोज से लेक्टोन, अमीनो ऐसिड से प्रोटीन और न्यूटरल पेन्टस से पेन्टस बनता है। यह तीनों पदार्थ माता के दूध में ही उस स्तर के पाये जाते हैं जिनमें शिशु पोषण की संतुलित व्यवस्था बन सके। यों इनके स्थानापन्न में अन्य पदार्थ भी मिलाये जा सकते हैं, पर उनका स्तर माता के दूध की तुलना में कहीं घटिया होता है। अस्तु, उससे शिशुपोषण के उपयुक्त आहार में त्रुटि ही रह जाती है।

रासायनिक जाँच से यह सिद्ध होता है कि शिशु की आयु बढ़ने के साथ-साथ उसकी पोषण आवश्यकताएँ बढ़ती जाती हैं। उसे नये-नये रासायनिक पदार्थों की क्रमशः अधिकाधिक मात्रा अपेक्षित होती है। इस सन्तुलन को माता का दूध ही पूरा करता है। प्रसवकाल के समय माता का दूध जिस स्तर का होता है, उसमें क्रमशः परिवर्तन होता चला जाता है। यह परिवर्तन छह महीने उपरान्त तो इतना अधिक हो जाता है कि उनमें आश्चर्यजनक भिन्नता देखी जा सकती है। यह सब इसलिए होता है कि बच्चा आयु वृद्धि के साथ-साथ अपनी पाचन-प्रणाली तथा आवश्यकता के अनुरूप अधिक उपयुक्त पोषण प्राप्त कर सके। इस क्रम से कुछ घटोत्तरी होती है तो कुछ बढ़ोत्तरी प्रथम मास में प्रोटीन अधिक होता है, जो क्रमशः घटता है किन्तु आयु वृद्धि के साथ-साथ अभीष्ट कोसिनोजन की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती चली जाती है।

डिब्बे बन्द दूध को चूर्ण अथवा चटनी के रूप में सूखा या गीला बनाने के लिए उसे उबालना आवश्यक होता है। दूसरी यान्त्रिक एवं रासायनिक क्रियाओं की भी इस सन्दर्भ में सहायता ली जाती है। पेनसलवानिया के रसायनविज्ञानी ब्रोकयन और जेफरी के अनुसार इस प्रकरण में लगभग आधे जीवन तत्त्व नष्ट हो जाते हैं और वह खाद्य अपनी प्रकृत विशेषताएँ बुरी तरह खो बैठता है। दूध का लायसिन रसायन जो दाँतों की सुरक्षा तथा अन्य पोषक प्रयोजनों के लिए नितान्त आवश्यक है, डिब्बा बन्द स्थिति में पहुँचते-पहुँचते अपना अस्तित्व बहुत बड़ी मात्रा में खो बैठता है। केलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रो. डेश्किवी जेलिफ ने न्यूट्रिशन सोसाइटी में भाषण करते समय बताया कि स्तनपान द्वारा उचित पोषण प्राप्त कर सकने के कारण विश्वभर में प्रतिवर्ष प्रायः ४ करोड़ बच्चे बेमौत मरते हैं। यों माता की शारीरिक दुर्बलता ही दूध की कमी का प्रमुख कारण होती है, पर जान-बूझकर न पिलाने वाली माताएँ भी कम नहीं होतीं।

डा. जेलिफ के अनुसार बच्चा माँ का दूध पीता रहे तो अगला बच्चा देर में पैदा होगा। यदि उसे बन्द कर दिया जाय तो प्रकृति नये बालकों के उत्पादन का सरंजाम जुटाने लगती है। माता को जल्दी मासिक धर्म शुरू हो जाता है और दो बालकों के बीच जितना अन्तर होना चाहिए, उसकी तुलना में कहीं जल्दी नया बच्चा जन्मने का उपक्रम चल पड़ता है।

स्तन कैंसर के कारणों का सर्वेक्षण करने पर यह पता चला है कि दूध पिलाने वाली माताओं की तुलना में उन्हें यह विपत्ति अधिक घेरती है जो दूध पिलाने में आना-कानी करती हैं। स्वभावतः दूध आना बन्द हो जाय तो बात दूसरी है अन्यथा उत्पादन के उफान में कृत्रिम अवरोध उत्पन्न करने में प्रतिक्रिया हानिकारक ही होती है। इससे स्तन-संस्थान में कई तरह की ऐसी विकृतियाँ उठ खड़ी होती हैं, जिनसे पयपान करते रहने पर सहज ही बचा जा सकता है।

बच्चे को दूध पिलाने पर माता घाटे में रहती है यह शिक्षित कहे जाने वाले लोगों का अन्धविश्वास ही है। नहीं पिलाने से माता और सन्तान दोनों को दुहरी हानि उठानी पड़ती है। वस्तुस्थिति को यदि समझा जा सके तो इस निरर्थक अवरोध में बढ़ता हुआ उत्साह घट सकेगा और उससे जननी तथा शिशु दोनों को ही लाभ मिलेगा।

'भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसन्धान परिषद्' के राष्ट्रीय पोषण संस्थान के क्लीनिकल विभाग की अध्यक्षा डॉ. विनोदिनी रेड्डी ने जानकारी दी है कि संस्थान के अध्ययन से पता चला है कि शिशु के लिए माँ का दूध पोषक तो होता ही है, साथ ही वह संक्रमण से भी बच्चे की रक्षा करता है। अध्ययन से यह भी पता चला है कि भारत में कुछ इलाकों में जो यह भ्रान्ति फैली है कि नवजात शिशु को पहले तीन दिन माँ का दूध नहीं दिया जाना चाहिए, वह भी निराधार है। परीक्षणों से यही तथ्य प्रकाश में आया है कि पहले तीन दिन के दूध में संक्रमण से बच्चे की रक्षा करने वाले तत्त्व और अधिक होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परीक्षण से यह भी पता चलता है कि न्यायशील प्रकृति के इस अनुपम अनुदान में किसी भी तरह का पक्षपात नहीं होता। माँ पोषकतत्त्वों से भरपूर भोजन करती हो या नहीं, किन्तु उसके दूध में संक्रमण निरोधक तत्त्व अवश्य रहते हैं। संस्थान ने गरीब तथा अमीर दोनों वर्ग की तीन सौ माताओं के दूध की जाँच कर पाया कि उनमें संक्रमणरोधी तत्त्व एक जैसे हैं।

डा. रेड्डी ने यह भी जानकारी दी कि बोतल द्वारा दिये जाने वाले दूध में बाहरी रोगाणुओं के द्वारा सदूषण की अधिक सम्भावना रहती है। यह पाया गया है कि माँ का दूध छुड़ा देने के बाद बच्चे को संक्रमण होने की सम्भावना बढ़ जाती है और संक्रमण की उस स्थिति में यदि पुनः माँ का दूध दिया जाने लगे, तो लाभ पहुँचता है।

यद्यपि माँ के दूध में संक्रमणरोधक तत्त्वों का उनके आहार से विशेष सम्बन्ध नहीं होता, किन्तु पोषक आहार ग्रहण न कर पाने पर अन्य पोषक तत्त्वों की कमी अवश्य रह जाती है। खासकर वी. वर्ग के विटामिनों की तथा अस्थि-निर्माण करने वाले खनिज-तत्त्वों की ऐसी स्थिति में कमी हो जाती है। ऐसे पोषक-आहार से वंचित नारियों की तुलना में गाय के दूध में अस्थि निर्माण करने वाले खनिज द्रव्यों तथा वी. वर्ग के विटामिनों की प्रचुरता रहती है, किन्तु उसमें दूसरे तत्त्व उतने नहीं रहते और बोतल द्वारा दिए जाने पर संदूषण का खतरा भी बना रहता है, जबकि माता के दूध में प्रोटीन, खनिज लवण, विटामिन, वसा, शर्करा, जल आदि पदार्थ तो पर्याप्त मात्रा में होते ही हैं, कुछ अन्य ऐसे पदार्थ भी होते हैं, जो आमाशय के रस के साथ घुलमिल जाते हैं तथा दूध का पचना सरल बना देते हैं। ये तत्त्व प्रकृति में कहीं भी अन्यत्र नहीं पाये जाते, सिवाय दूध का स्राव करने वाले स्तनों के। दूध पर्याप्त पोषक तत्त्वों से युक्त हो, इसके लिए माताओं के भोजन में प्रोटीन तथा विटामिन बी. तत्त्वों वाले पदार्थ की प्रचुरता पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

खोजों से यह भी ज्ञात हुआ है कि शिशु का पाचन-संस्थान जन्म के बाद ही सक्रिय होता है। पहले वह निष्क्रिय रहा आता है और गर्भ में वह अपने शरीर की धातुओं के द्वारा ही माँ से पोषण प्राप्त करता रहता है। अतः बच्चे के जन्म लेने के कुछ ही घण्टों बाद उसे 'जन्मघुटी' नहीं देनी चाहिए, क्योंकि इससे बच्चे की आँतों की श्लैष्मिक कला पर उत्तेजक प्रभाव पड़ता है। बच्चे की आँतों में सर्वप्रथम माँ का दूध ही पहुँचना चाहिए, वह भी जन्म के २४ घण्टे बाद क्योंकि तब तक चारों ओर की उत्तेजना तथा शोरगुल का वातावरण समाप्त होकर शान्ति छा जाती है। शिशु को प्रथम आहार देते समय वातावरण का भी गहरा प्रभाव पड़ता है।

भरसक तो बच्चे को स्तनपान ही कराना चाहिए। यदि दूध पर्याप्त नहीं होता हो, तो स्वस्थ गाय के शुद्ध दूध की व्यवस्था करनी चाहिए। माता के दूध के बाद गोमाता का दूध ही सर्वोत्तम होता है। दूध बासी या बहुत देर का दुहा हुआ न हो और या तो दूध के बराबर ही पानी मिला लिया जाये या फिर दो भाग दूध और एक भाग पानी रहे। दूध में थोड़ी-सी दुग्धशर्करा डालकर थोड़ा गरम कर पिलाना चाहिए। बोतल से दूध पीने वाले शिशु के लिए प्रातःकाल थोड़े तरकारी के रस का या फल के रस का प्रबन्ध हो सके, तो उत्तम।

माँ के दूध और गाय के दूध में पाचन की दृष्टि से भी विशेष अन्तर होता है। माँ के दूध में जो 'अल्बुमिन' पायी जाती है, वह जल्द नहीं जमती, जबकि गाय के दूध की 'अल्बुमिन' जल्द जम जाती है। गाय के दूध की 'अल्बुमिन' बड़ी-बड़ी फुटकियों या थक्कों के रूप में जमता है और देर से पचता है। माँ के दूध की 'अल्बुमिन' छोटी-छोटी फुटकियों में जमती है और सहज सुपाच्य होती है।

बोतल से दूध देना अनिवार्य लगे, तो बोतल की सफाई पर सदैव पूरा-पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। प्रयोग के बाद बोतल को धोकर साफ कर लिया जाय और उसे धूप में खड़ा कर दिया जाय। बोतल की भली-भाँति धुलाई सोडा, विम आदि से अवश्य की जानी चाहिए। अधिक अच्छा हो कि एक से अधिक बोतलें रखी जाएँ, ताकि सफाई के लिए समय मिल सके। टोंटी की सफाई का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

यों, जहाँ तक सम्भव हो, कम से कम ९ माह से एक वर्ष तक माताएँ बच्चों को स्तनपान ही करायें। जो बच्चे 'स्टरलाइज्ड' दूध के आधार पर रखे जाते हैं, वे रोगाणुओं के प्रभाव से तो माँ के दूध के उपयोग की तरह ही सुरक्षित रहे आते हैं, किन्तु उन्हें स्तन के दूध से मिलने वाले उन स्वास्थ्यवर्द्धक जीवाणुओं से वंचित रहना पड़ता है, जो आँत में एक विशेष हलचल उत्पन्न कर एक प्रकार का विटामिन पैदा करते हैं। यह विटामिन शरीर में रोगनिरोध की शक्ति उत्पन्न करता है। 'स्टरलाइज्ड' दूध पर पले बच्चे इस शक्तिप्रद विटामिन से वंचित रह जाते हैं और आगे चलकर उनके स्वास्थ्य को इससे क्षति पहुँचती है।

एक विशेष बात यह है कि माँ के दूध के हर घूँट के साथ मातृ-प्रेम का जो अद्वितीय मिश्रण रहता है, वह प्रत्येक घूँट को अमृत भरा ही बना देता है। इससे अधिक लाभदायक कोई भी आहार शिशु के लिए दुनिया में मिल पाना सम्भव नहीं है।

जहाँ तक स्तनपान से स्तनों के बहुत लटक जाने और सौन्दर्य समाप्त हो जाने की बात है, ऐसा पयपान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कराने से नहीं, अपितु प्रसवोपरान्त आवश्यक आहार न पाने से होता है।

शिशु का पोषक तत्त्व मात्र खाद्य-पदार्थ नहीं, अपितु वह प्राणरस भी है, जो माँ के दूध की हर बूँद में घुला रहता है। उससे शिशु को वंचित रखकर माताएँ अपने ही लाड़ले या लाड़ली के साथ तो अन्याय करती ही हैं, स्वयं के साथ भी घाटे वाला कार्य ही करती हैं, क्योंकि प्रकृति के नियमानुसार दूसरों को प्राण-अनुदान से स्वयं को भी प्रकृति के अक्षयकोष से उपहार अवश्य मिलता है।

माँ का दूध—अमृत समान

परिस्थिति और आवश्यकता के अनुरूप व्यवस्था प्रकृति का एक ऐसा गुण है जिसे देखकर वैज्ञानिक तक यह मानने को बाध्य होते हैं कि प्रकृति में बौद्धिक सचेतनता है। जलवायु और शरीरों में परिवर्तन, खानपान की विशिष्ट आदतों के अनुरूप प्राणियों के दाँतों की बनावट में अन्तर, सुरक्षा की दृष्टि से शरीर के रंग और अवयवों का अन्तर यह सब इस बात के प्रतीक हैं कि प्रकृति की प्रत्येक रचना वास्तविक अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर होती है, जो भी व्यक्ति या प्राणी उसका व्यतिक्रम करता है उसे हानि उठानी पड़ती है। बीमारियों का अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं, वह प्राकृतिक सन्तुलन को अस्त-व्यस्त करने का ही दूसरा नाम है।

शिशु जन्म और माँ के स्तनों में उभार और दूध का बनना उसी प्राकृतिक व्यवस्था का एक अनूठा उदाहरण है। माँ का दूध प्रकृति ने केवल बच्चों के लिए बनाया है। उससे अच्छा पौष्टिक, गुणवर्द्धक और पोषक अन्य कुछ भी नहीं हो सकता। गाय के दूध में बछड़े के उपयुक्त पोषण और बकरी के दूध में उसके मेमने की शारीरिक व मानसिक रचना के अनुरूप तत्त्व पाये जाते हैं। स्वाभाविक है कि वह दूध बालक के लिए उपयुक्त नहीं होगा और यदि बलात् दिया ही जाता है तो निश्चित ही बच्चे के व्यक्तित्व में प्रतिकूल प्रभाव पड़े बिना रहेगा नहीं। जैसे-जैसे शरीर की क्षमता बढ़ती जाती है माँ के स्तन का दूध स्वयं ही कम होता जाता है और बालक के शरीर की प्रौढ़ता तथा क्षमता इस योग्य हो जाती है कि अन्य दूध भी अनुकूल पड़ने लगे, पर उससे पूर्व यदि बच्चे को माँ अपना दूध नहीं पिलाती तो यह न केवल अपने अतिथि बालक का अपमान है, अपितु प्राकृतिक व्यवस्था को खण्डित करना भी है। उसका दण्ड मनुष्य और समाज को अनेक तरह से मिलता हो तो इसमें आश्चर्य की क्या बात ?

डॉ. ग्रासमैन ने इस सम्बन्ध में जो अनुसन्धान किये हैं, उनकी जानकारी हर माँ को रहनी आवश्यक है ताकि वे अपनी उस संकीर्ण बुद्धि का परित्याग कर सकें कि स्तनपान उनके स्वास्थ्य को नष्ट करता है। सच तो यह है कि जो बच्चों को अपना दूध पिलाने से कतराती नहीं, दूध न पिलाने वाली स्त्रियों की अपेक्षा वे स्वयं को अधिक स्वस्थ अनुभव करती हैं। प्रसव के काल में उनके प्रजनन अवयवों पर जो आघात पहुँचता है, वह जल्दी दूर हो जाता है मुख पर कान्ति आ जाती है, जबकि न पिलाने वाली स्त्रियों के शरीर में यह विकार जड़ जमाने लगते हैं और उन्हें दुर्बल बनाने की प्रक्रिया प्रारम्भ कर देते हैं।

शरीर-विज्ञान की दृष्टि से डॉ. ग्रासमैन ने निष्कर्ष निकाला है कि दूध पिलाने वाली महिलाओं की पिट्यूटरी ग्रन्थि, जिसका सीधा सम्बन्ध माँ की संवेदनाओं से होता है, उससे कुछ ऐसे हार्मोन्स का स्राव होता है, जो दूध के साथ मिलकर बच्चे के हृदय, मस्तिष्क तथा आँतों को शक्ति प्रदान करते हैं। बालक के व्यक्तित्व के विकास में इन तीन संस्थानों का प्रभाव प्रारम्भ से ही होता है। यही हार्मोन्स स्त्री के रक्त से मिलकर प्रसवकाल की शारीरिक क्षति को दूर करने में प्रमुख सहायक होता है।

माँ के स्वास्थ्य की किसी कमी के कारण उसे तदनुकूल आहार देकर दूध की मात्रा और पौष्टिकता को बढ़ाया तो जा सकता है, उसकी कमियों को दूर तो किया जा सकता है, किन्तु बच्चे को दूध न पिलाने का अर्थ यह होगा कि हम उसे एक यथार्थ आहार से वंचित कर रहे हैं, जो उसकी पूर्णता का आधार है। बच्चे को माँ दूध पिलाये और उसका स्वास्थ्य खराब हो यह बहकाने वाली और आत्म-प्रतारणा की बात है। सच पूछा जाये तो मानसिक चिन्ताओं से ग्रस्त, आलसी और आवश्यकता से अधिक आधुनिक बनने वाली महिलाएँ ही ऐसा सोच सकती हैं।

अमरीका में आज ऐसी स्त्रियों की संख्या मुश्किल से ४० प्रतिशत रह गई है। इसी से यहाँ की केलीफोर्निया यूनिवर्सिटी के बाल चिकित्सा शोध विभाग के डॉक्टर एलपर ग्रासमैन को यह चिन्ता हुई कि कहीं एक दिन ऐसा न आ जाये जब अमेरिकी समाज नितान्त भावनाहीन हो जाये और सामाजिक जीवन में स्नेह, आत्मीयता, करुणा, दया और उदारता के लिए कोई स्थान ही न रह जाये। डॉ. ग्रासमैन के अध्ययन के निष्कर्ष यह हैं कि मानसिक रूप से नितान्त कमजोर, अस्थिर बुद्धि, असन्तुलित मस्तिष्क बालकों का ९० प्रतिशत भाग वह था, जिसे बाल्यावस्था में उनकी माताओं ने स्वस्तन पान नहीं कराया। सर्दी, जुकाम, कब्ज, गैस, अफरा, बदहजमी के शिकार वही बच्चे पाये जाते हैं, जो ऊपर का दूध पीते हैं। जिन्हें अपनी बाल्यावस्था में जी भर माँ का दूध पीने को मिलता है, वे शक्ति व जीवट के धनी तो होते हैं, उनमें बौद्धिक पूर्णता और प्रसन्नता की मात्रा अधिक होती है। ऐसे लोगों के पास समय बिताने को हर किसी का मन करता है, क्योंकि वे विनोदप्रिय, मृदुल और स्निग्ध स्वभाव के होते हैं। वास्तव में इन गुणों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विकास माँ का दूध पाने से मिली सन्तुष्टि और बच्चे के स्वाभिमान की पूर्ति के रूप में होता है।

एक कहावत है बच्चा दूध नहीं माँ का प्यार पीता है। यह उक्ति बहुत कुछ यों सच है कि माँ जब बच्चे को दूध पिलाती है, तो उसकी निजी चिन्ताएँ तिरोहित हो जाती हैं। बच्चे के सिर पर हाथ फेरते वक्त दूध में छलकने वाला स्नेह, उसे थपकी देने में प्रस्फुटित होने वाली प्रमुदा और निश्चिन्तता के कारण उत्पन्न हुई स्थिरता और सन्तुलन उस दूध में मिश्री की तरह घुलकर बच्चे के शरीर में प्रवेश करते हैं और अनेक आकर्षक गुणों के रूप में बच्चे में विकसित होते हैं।

माँ बच्चे की आत्मीयता, बच्चे और नारी के बीच पवित्रता के विकास में सहायक होता है। जिन बच्चों को माँ का दूध नहीं मिलता उनमें सद्भावना का अभाव रह जाने से ही दुश्चरित्रता पनपती है, किन्तु माँ के स्तन, उनकी गर्मी बच्चों को जो शान्ति और सुख प्रदान करते हैं वे बालक में उस संवेदना, गम्भीरता और भावनाशीलता का बीजारोपण करते हैं, जो वयस्क अवस्था में इन गुणों की परिपक्व अवस्था के रूप में उनकी अपनी सफलता, आधार और दूसरों के लिए मार्गदर्शन का प्रकाश बनते हैं।

माँ के दूध को इन गुणों की खान देखकर ही उनके दूध पिलाने को अमृतपान कहा जाता है। अमृत का गुण है स्वास्थ्य, आयु, बल, बुद्धि और व्यक्तित्व का पूर्ण विकास। माँ के दूध में भी यही तत्त्व हैं इसलिए स्तनपान को अमृतोपम कहना कतई अतिशयोक्ति नहीं।

स्तनपान बच्चे के स्वास्थ्य का वरदान

विदेश ही नहीं, भारत में भी कुछ समय से माताओं में अपने शिशुओं को स्तनपान न कराके उन्हें शीशी से दूध पिलाने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। अधिकांश महिलाएँ स्वास्थ्य बिगड़ने के भय से इस प्रवृत्ति को अपना रही हैं और अपने बच्चों को दूध नहीं पिलातीं। बहुत-सी माताओं के अधिक सन्तान हो जाने और उपयुक्त पोषण न मिलने से और कुछ को स्वाभाविक दूध न उतरने के कारण इस प्रक्रिया को अपनाना पड़ता है। परिस्थिति जो भी हो प्रयत्न यह रहे कि बच्चे को माँ का दूध अवश्य मिले।

हमारे देश में कितनी ही महिलाएँ विशेषतः ग्रामीण महिलाएँ स्तनपान तथा उससे सम्बन्धित रोगों के विषय में अनेक भ्रमपूर्ण विचारों और अज्ञान से ग्रसित हैं। बहुतों का विश्वास है कि कई प्रकार के पकवान खाने से माता का दूध पौष्टिक और शिशु को पिलाने योग्य हो जाता है। इन सभी माताओं को अपने दूध के लाभ के विषय में, दुग्धागम प्रक्रिया के बारे में, स्तन के रोगों के सम्बन्ध में कोई वैज्ञानिक ज्ञान नहीं। आज भी वे सब भगवान, भाग्य और दुर्भाग्य का ही परिणाम मानती हैं।

एक ओर शिक्षित महिलाएँ फैशन के प्रभाव में आकर स्तनपान नहीं कराना चाहतीं तो दूसरी ओर ऐसी अज्ञानग्रस्त स्त्रियाँ भी हैं, जिन्हें शीशी से दूध पिलाने, दूध शीशी और उसके उपकरणों की व्यवस्था, स्वच्छता का भी ज्ञान नहीं होता। यह नितान्त सत्य है कि अधिकांश महिलाएँ स्तनपान के सम्बन्ध में गम्भीर अवैज्ञानिक सन्देहों से ग्रसित हैं। अनेकों अज्ञानता के कारण अपने बच्चों को स्वच्छ एवं स्वस्थ आहार नहीं दे पातीं। ऐसी माताओं के बच्चे बचपन से ही कमजोर रहते हैं और कमजोरी के कारण थोड़ा-सा कुछ ऊँचा-नीचा वातावरण होता है तो बीमार हो जाते हैं।

स्तन में दूध उतरने की प्रक्रिया के विषय में यदि ज्ञान प्राप्त हो जाय तो माताओं का यह भ्रम दूर हो सकता है कि न स्तन में दूध ईश्वर की कोई देन है और न ही स्तन में किसी प्रकार का कष्ट या रोग या बच्चे का दुर्भाग्य है।

दूध उतरने की अवधि गर्भावस्था में तथा उसके पश्चात् माता को प्राप्त पोषण पर आधारित है। दूध पिलाने वाली माता को गर्भवती माता की अपेक्षा कैलोरी, प्रोटीन, कैल्शियम, विटामिन 'ए' तथा अन्य रासायनिक पदार्थ पर्याप्त मात्रा में मिलने चाहिए। ये पदार्थ दुग्ध ग्रन्थियों को ठीक से कार्य करने के लिए सहायक होते हैं। उक्त सभी तत्त्वों की पूर्ति हेतु माता को सामान्य पोषक खाद्य के अतिरिक्त कम से कम ५०० ग्राम दूध, हरी शाक-सब्जी, विटामिन सी, प्रधान फल लेना चाहिए।

दूध जब बच्चा भूखा हो और तीव्रता से दूध पीने के लिए आतुर हो, तब पिलाना चाहिए। यदि सम्भव हो तो पूरक के रूप में बोतल का दूध न ही दिया जाय। माता को संवेगात्मक द्वन्द्व, घबराहट और कष्ट की परिस्थितियों से बचने का प्रयत्न करना चाहिए।

उस समय माताएँ चिन्तित हो जाती हैं जब जन्म के पश्चात् प्रसूता को कम दूध उतरता है, किन्तु वे इस बात पर विचार नहीं करतीं कि उस समय शिशु को दूध की आवश्यकता भी कम होती है। यह जानकारी भी कुछ महिलाओं को नहीं होती कि परिपक्व दूध पाँच दिन के बाद ही उतरता है।

यह तथ्य कि माँ के दूध का संवेदनात्मक तथा शारीरिक प्रभाव किसी भी दूसरे दूध से या दूध की अन्य प्रक्रियाओं से श्रेष्ठ होता है। अगस्त १९७७ में नाइजीरिया की राजधानी लागोस में देश के केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय द्वारा आयोजित एक राष्ट्रीय विचारगोष्ठी में शिशु को शीशी का दूध देने के दुष्परिणामों पर विस्तार से चर्चा की गई और यह अपील की गई कि बच्चे को कम से कम दो वर्ष तक तो माँ का दूध मिलना ही चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक वर्ष से छोटे बच्चे को स्तनपान से वंचित करना उनके लिए घातक है। अपील के समर्थन में इसके परिणामस्वरूप होने वाले लाभों को भी बतलाया गया।

भारत में माँ के दूध के पूरक के रूप में गाय का दूध अधिक प्रयोग किया जाता है। माँ और गाय के दूध की तुलना करके देखा गया है कि गाय के दूध में माँ के दूध का ३ गुना अधिक प्रोटीन, ४ गुना अधिक कैल्शियम और ६ गुना अधिक फास्फोरस मिलता है और माँ के दूध में गाय के दूध से ३, ४ गुना अधिक वसा, अम्ल, एक-तिहाई अधिक लौह तत्त्व तथा २ गुना अधिक विटामिन 'ए' और 'सी' पाया जाता है।

गाय के दूध में प्रोटीन अधिक होता है, पर वह बच्चे के पेट में दही जैसे पदार्थ का अधिक मात्रा में निर्माण करता है, जो बच्चे की अपरिपक्व आँत की पाचन-क्रिया में बाधक होता है। माँ के दूध में यह ठोस भाग कम होता है, जिससे पाचन क्रिया सरलता से स्वाभाविक रूप से सम्पन्न हो जाती है। गाय के दूध में कैल्शियम और फास्फोरस अधिक मात्रा में होते हैं। किन्तु जो कुछ भोजन में लिया जाता है, उसका पूरा उपयोग भी होना चाहिए। बच्चे के गुर्दे प्रारम्भिक दिनों में तीव्रता से पूर्णरूपेण कार्य नहीं करते। बच्चे को गाय का दूध अधिक मात्रा में दिया जाय, तो शरीर में कुछ धातु अनावश्यक रूप से इकट्ठे हो सकते हैं, जो उसके स्वास्थ्य पर कुप्रभाव डालते हैं। माँ के दूध में लौह पदार्थ अधिक होता है। यद्यपि प्रारम्भ में शिशु उसका पूर्ण उपयोग नहीं कर पाता, किन्तु पीछे यदि लौह की कमी हुई तो उसका स्वास्थ्य बहुत कम प्रभावित होता है। अतः यदि शिशु को पूरक के रूप में कोई अन्य दूध दिया जाय तो थोड़ी मात्रा में पूरक लौह भी औषधि के रूप में देना आवश्यक है। माँ के दूध में विटामिन 'ए' और 'सी', 'बी' ६ और १२ आवश्यकतानुसार सन्तुलित मात्रा में पाये जाते हैं और गाय के दूध में नहीं होते। गाय के दूध के विटामिन जो कुछ होते भी हैं, वे दूध को तैयार करने के ढंग से नष्ट हो जाते हैं।

माँ का दूध पीने वाले बच्चे का मल एसिड युक्त होता है, अन्य दूध पीने वालों का नहीं। विभिन्न शोधों से ऐसा पता लगा है कि माँ का दूध पीने वाले बच्चों की आँत में 'लैक्टोबेसिल्स विफिडस' होते हैं, जो रोगजन्य कीटाणुओं से उसकी रक्षा करते हैं।

हमारे यहाँ माँ के दूध के विकल्प के रूप में मुख्यतः गाय और बकरी के दूध का ही प्रयोग किया जाता है और यह माना जाता है कि यह दूध ही शिशु के लिए माँ के दूध के अधिक समीपवर्ती और सुपाच्य है। चूँकि शोधों से ऐसा ज्ञात हुआ है कि इसके रासायनिक तत्त्व माँ के दूध की अपेक्षा अधिक जटिल हैं। अतः उसमें उपयुक्त पानी मिलाकर वे जटिलताएँ कम कर ली जा सकती हैं और अभाव की स्थिति में काम चलाया जा सकता है।

पश्चिमी देशों में हुए शोधों से यह परिणाम निकला है कि भारत जैसे विकासशील देश के लिए स्तनपान अधिक उपयुक्त, लाभकारी और अनिवार्य है। अशिक्षा, अज्ञान, आर्थिकहीनता और साधनहीनता के कारण किसी भी प्रकार के रोग होने की सम्भावना अधिक रहती है।

स्तन के रोगो की जानकारी होना भी आवश्यक है। स्तन का रक्तवर्ण हो जाना और उसमें हल्की-हल्की पीड़ा होना एक सामान्य रोग है। इसमें डाक्टर की सहायता लेनी चाहिए। डाक्टरों द्वारा ब्रेस्ट पम्प की सहायता से एकत्रित दूध को निकालकर चिकित्सा द्वारा रोग को ठीक किया जा सकता है।

दुग्धपान बनाम पयपान

जन्म के पश्चात् बच्चा अधिक समय तक सोता ही है। जो यात्रा वह करके आया है; उसकी थकावट नींद द्वारा ही पूरी होती है। अगर आराम के बाद माँ स्वस्थ दीखे तो दूसरे दिन मुन्ने को माँ के स्तनों पर लगायें। उसके मुँह चलाने से माता के स्तनों में दूध उतरता है और बच्चे को भी दो-एक-दिन में दूध पीने का अभ्यास हो जायेगा। प्रत्येक माता का कर्त्तव्य है कि वह अपने बच्चे को स्वयं का दूध पिलाएँ। माँ के दूध पर बच्चे का जन्मसिद्ध अधिकार है। जो माताएँ बच्चे को अपना दूध पिलाती हैं, उनके बच्चे पर ममता अधिक होती है। साथ ही बच्चे को दूध पिलाने से गर्भाशय तथा माँसपेशियों को सिकुड़ने में सहायता मिलती है। प्रत्येक माँ को अपने बच्चे को दूध पिलाने में एक स्वर्गीय आनन्द मिलता है। उसके रोम-रोम से ममता फूट उठती है और इसी वात्सल्य प्रेम के आवेग से दूध बहने लगता है।

'माँ का दूध' ! कितना उत्साहवर्द्धक है यह शब्द, जैसे गंगाजल। सभी जल उसकी तुलना नहीं कर सकते, सब दूध माता के दूध की तुलना नहीं कर सकते। जब किसी के बल को ललकारा जाता है तो लोग कहते हैं 'अगर तूने अपनी माँ का दूध पिया है तो जोर लगा ले'। माँ के दूध की समता कोई भी वस्तु नहीं कर सकती। जब बच्चा गर्भ में रहता है, माँ के रुधिर से उसका पालन-पोषण होता है। जन्म के बाद माँ का दूध ही उसका प्राकृतिक भोजन होता है। जैसा माँ खाती है, उसका सार दूध में आ जाता है। जो बच्चे माँ के दूध पर पलते हैं, उनका स्वास्थ्य ऊपरी दूध पर पले बच्चों से श्रेष्ठ होता है। एक बार एक माँ ने जब अपने लड़के को, जो कि जन्म के समय जरा दुर्बल था, दो वर्ष तक दूध पिलाया। उस समय उसके पति लड़ाई पर गये हुए थे। साल भर के बाद बच्चा ऊपरी भोजन भी करने लगा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

था, पर दूध की अधिकता होने के कारण वह उसे दूध पिलाती रही। उसके पश्चात् अन्य दो बच्चे जल्द हो गये, अतएव उन दोनों को केवल ४-६ महीने ही दूध पिला सकी। परिणाम यह हुआ कि बड़े लड़के का स्वास्थ्य बचपन से ही इतना अच्छा था कि उसने 'बेबी शो' में प्रथम इनाम जीता। वह पाँच महीने का था, तब बैठने लग गया था और सालभर का भागा-भागा फिरता था। दाँत निकलने के समय भी उसे कुछ कष्ट न हुआ, जबकि बीच वाला बच्चा जन्म के समय आठ पौंड था, परन्तु उसका स्वास्थ्य बाद में इतना अच्छा नहीं रहा। दाँत भी उसके बड़ी कठिनाई से निकले। अन्य दोनों बच्चों को खसरा तथा कुकुर खाँसियाँ हो गईं, किन्तु बड़ा लड़का उनके सम्पर्क में रहकर भी इन बीमारियों से बचा रहा।

अभी हाल में लन्दन के प्रसिद्ध डॉ. कैथलीन ने मेडिकल जर्नल्स में लिखा है 'माता के दूध से बच्चे का न केवल शरीर ही पुष्ट होता है परन्तु वह सहन-शक्ति, शारीरिक बल और मानसिक तथा शारीरिक दृढ़ता भी उत्पन्न करता है। इन गुणों का, ऊपरी दूध पीकर पले हुए बच्चों में प्रायः अभाव ही रहता है। डॉ. कैथलीन ने आगे यह भी कहा "मैंने अनेक खिलाड़ियों के जबड़े, दाँत और हड्डियों का अध्ययन किया। जिन खिलाड़ियों को बचपन में माँ का दूध मिला, उनकी बनावट ही दूसरों से भिन्न थी और खेल का नतीजा निकलने से पहले ही मैं बता देता था कि वे अवश्य ही विजयी होंगे।"

"अगर किसी राष्ट्र की नारियाँ अपने इस कर्त्तव्य (बच्चे को दूध पिलाने) को ठीक से करने में असमर्थ रहती हैं, तो उस देश में लीडर और वीरों का अभाव रहेगा। खिलाड़ियों और लीडरों की सफलता का बहुत कुछ श्रेय माता के दूध को होता है।"

अगर माता का स्वास्थ्य ठीक है, उसे कोई छूत की बीमारी या मानसिक अस्वाभाविकता नहीं है, तो उसे बच्चे को दूध अवश्य पिलाना चाहिए। अगर माता को पूरा आराम मिले तथा भोजन पौष्टिक दिया जाय, तब दूध पिलाने में स्वास्थ्य पर कोई बुरा असर नहीं पड़ता। दूध पिलाते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

१. बच्चे को दूध एकान्त में आराम से बैठकर पिलाया जाय, शोरगुल में बच्चा दूध ठीक से नहीं पीता और माँ का ध्यान बातों में बँटा रहने से या संकोचवश सहूलियत न होने से बच्चे की ओर पूरा-पूरा ध्यान नहीं देती।

२. दूध का समय बच्चे और माँ की सुविधानुसार बाँध देना चाहिए। कमजोर बच्चे को दो या ढाई घण्टे बाद, क्योंकि वह पूरी ताकत से भरपेट दूध पी नहीं सकता तथा स्वस्थ बच्चे को तीन घण्टे बाद दूध पिलाया जाय।

३. जब बच्चा एक स्तन को पूरा खाली कर दे, तब थोड़ी देर दूसरे स्तन से भी लगा दें। जो बच्चा भली प्रकार दूध पीता है, वह १५ मिनट में अपनी पूरी खुराक ले लेता है। कमजोर बच्चा धीरे-धीरे पीता है, इसलिए उसे २० मिनट तक दूध पिलाएँ।

४. कई डाक्टरों की राय है कि एक समय की खुराक केवल एक ही छाती से दी जाय, दूसरी छाती का दूध बाद की खुराक के लिए छोड़ दिया जाय परन्तु इससे माता को बहुत कष्ट होता है। एक ओर दूध का आरम्भ में जोर होता है अतएव ममतावश दूसरी छाती से दूध अपने आप बहने लगता है और दूध के बहने के कारण माँ को अड़चन होती है।

५. अगर दूध की कमी हो तो माता को दलिया, खीर और फलों का रस पिलायें, इससे दूध बढ़ेगा। बच्चे को दूध पिलाते समय यदि माता का मुँह सूखे, तो थोड़ा दूध, चाय या पानी पी ले, इससे दूध भी उतरेगा।

६. दूध पीने के बाद बच्चे को सुसकार अवश्य लें, क्योंकि दूध पीकर या सोकर उठने के बाद बच्चे प्रायः पेशाब करते हैं।

७. अगर बच्चे की तबियत ठीक नहीं है या पेट में अफरा है, तो उसे दूध देकर चुप कराने की चेष्टा न न करें। यदि बच्चा नींद में हो या खिलवाड़ में लगा हो तब भी वह दूध नहीं पियेगा। अगर उसके मुँह में छाले होंगे या गला दुःखता होगा, तब भी वह दो-चार घूँट पीकर रोने लगेगा। ऐसी स्थिति में दूध पिलाना व्यर्थ है। उसके दूध न पीने के कारण को समझें, कष्ट को दूर करें और तब दूध पिलायें।

८. जिन माताओं को अपने दूध की कमी के कारण ऊपर का दूध पिलाना पड़े, उन्हें बोतल तथा दूध के बर्तनों की सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए। अगर बकरी का दूध मिल सके तो सबसे अच्छा अन्यथा स्वस्थ गाय का दूध पानी मिलाकर दिया जाय। बच्चे की आयु तथा स्वास्थ्य के अनुकूल पानी की मात्रा घटाई-बढ़ाई जा सकती है। दूध की किस्म में बार-बार परिवर्तन नहीं करना चाहिए, जिस डिब्बे या गाय अथवा बकरी का दूध बच्चे को माफिक पड़ जाये उसे चालू रखें। दूध को पिलाने के सम्बन्ध की आवश्यक सूचनाएँ सूखे दूध के डिब्बों के ऊपर लिखी रहती हैं। उसके अनुसार दूध में थोड़ा पानी और जरा-सी चीनी मिलाकर ऐसा मिश्रण शिशु को देना चाहिए जो उसकी पाचन-शक्ति के अनुकूल हो सके। उदाहरणार्थ, एक सप्ताह तक बच्चे को तीन-तीन घण्टा के अन्तर से ६ बार दूध पिलाना चाहिए और उसे पौन छटांक दूध, पौन छटांक पानी तथा चौथाई छोटा चमचा चीनी मिलाकर बनाना चाहिए। दूध रखने व उबालने के बर्तनों को स्वच्छ रखना चाहिए। जिस बर्तन में दूध उबाला जाय उसमें कोई दूसरी चीज न उबालनी चाहिए। बर्तन को माँजने के पश्चात् भली प्रकार धो-पोंछ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिया जाना चाहिए। तीन-चार महीने के बच्चे को अंजीर का रस या फलों का रस भी थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दिया जा सकता है।

जब बच्चा छह महीने का हो जाये तो उसको दूध के अतिरिक्त थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दलिये का पानी, फलों का रस, दही आदि भी चटाएँ। जैसे-जैसे चीजें हजम होती जायें, मात्रा बढ़ाई जा सकती है। दो-दाँत निकल आने पर बच्चे को कुतरने की चीजें भी दी जायें, इससे उसके मसूड़ों का व्यायाम होता है।

बच्चे की दिनचर्या नियमित रखी जाय, उसके भोजन, आराम तथा स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखा जाये।

दूध पिलाने वाली माता की स्वास्थ्य रक्षा—प्रसव के पश्चात् प्रथम दो महीने तक माता को अतिशय दुर्बलता होती है और पूरे समय लेटी रहती है। इस काल में हल्का भोजन जो शीघ्र पच सके, ४ घण्टे में चार-पाँच बार लेना चाहिए। तत्पश्चात् धीरे-धीरे काम-काज प्रारम्भ करने पर साधारण भोजन, जिसमें पौष्टिक तत्त्व—प्रोटीन, कैल्शियम, विटामिन आदि पहले से कहीं अधिक मात्रा में हों, लेना प्रारम्भ कर देना उचित है। स्तनपान काल में शिशु की वृद्धि व विकास तीव्र गति से होता है। उस समय भी उसको प्रोटीन, विटामिन, कैल्शियम व अन्य लवणों की आवश्यकता गर्भावस्था से किसी प्रकार भी कम नहीं होती, अपितु बढ़ती ही है। चिकित्सा-विज्ञानवेत्ताओं का कथन है कि शिशु, माता के दूध के पोषक तत्त्वों को प्रतिदिन काफी मात्रा में प्राप्त करता है। इन सभी तत्त्वों की प्राप्ति का साधन मुख्यतः माता का दूध होने से माता का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपने आहार को, अपने स्वयं के स्वास्थ्य के तथा शिशु की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाए। स्तनपान काल में, विशेषकर पाँचवें मास में पौष्टिक पदार्थों का बाहुल्य होना आवश्यक है।

इस काल में निरन्तर कुछ महीनों तक माता को बच्चे की शीघ्रता से हो रही वृद्धि के लिए प्रोटीन के अतिरिक्त खनिज लवण (विशेषकर कैल्शियम) अधिक मात्रा में अपेक्षित हैं।

इस सम्बन्ध में धात्री-शिक्षा की निम्नलिखित तालिका से शिशु के लिए कैल्शियम की आवश्यकता का पता लगता है—

आयु (मास)	कैल्शियम की पूर्ति (प्रति सप्ताह)
३	१.९ से २.२ ग्राम
६	२.५ से २.७ ग्राम
९	२.७ से ३.० ग्राम

मिशीगन (अमेरिका) के एक बाल-चिकित्सालय में तीन स्तन-पान कराने वाली स्त्रियों पर इसका प्रयोग किया गया। वे समस्त गृह-कार्य करती थीं और स्वेच्छानुसार भोजन करती थीं। उनके आहार में दूध की मात्रा पर्याप्त थी, जिससे १/४ भाग कैल्शियम व आधे से अधिक फास्फोरस की पूर्ति होती थी। शिशु के लिए उनका दूध भी काफी होता था। किन्तु उनके शरीर से २ से ४ ग्राम तक कैल्शियम प्रतिदिन निकल जाता था। स्तनपान काल के कुछ मास तक तो उनके अन्दर कैल्शियम की मात्रा सन्तुलित रही परन्तु उसके पश्चात् उनके आहार में एक विशेष खाद्य को सम्मिलित कर देने पर भी उस सन्तुलन को बनाए रखना कठिन हो गया। इससे भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि दूध पिलाने वाली माता के लिए इस तत्त्व की कितनी अधिक मात्रा में आवश्यकता है ? साधारणतः चिकित्सक स्तनपान कराने वाली माता के लिए प्रतिदिन २ ग्राम कैल्शियम, २ ग्राम फास्फोरस, १५ मिलीग्राम लोहा, १ मिलीग्राम आयोडीन लेना आवश्यक बताते हैं। विटामिन भी प्रोटीन व कैल्शियम से कम महत्त्व की नहीं।

चारों विटामिन ए, बी, सी और डी शरीर वृद्धि व विकास के और स्वास्थ्य तथा नीरोगिता के लिए माता व शिशु दोनों के वास्ते नितान्त आवश्यक है, अतः स्तनपान काल के आहार में दूध, दही, हरे शाक, फल आदि का प्रचुर मात्रा में होना आवश्यक है।

शौचादि—इस काल में प्रायः कोष्ठबद्धता (कब्ज) हो जाती है। अतः नियमित एवं सन्तुलित आहार व व्यायाम पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। भोजन में हरे शाक, फल, चोकर सहित आटे की रोटी आदि लाभकारी है। प्रातः उठते ही एक गिलास पानी पीना उत्तम उपाय है। स्वच्छ वायु में टहलना व नित्य-नियम से शौच जाना प्रत्येक माता की आदत का आवश्यक अंग होना चाहिए।

स्नान—प्रातः ६ बजे के पश्चात् तथा १० बजे से पूर्व स्नान अवश्य कर लेना चाहिए। इस समय कार्य की अधिकता से बहुत पसीना आ जाता है, अतः पूर्णतया स्वच्छ होकर ही शिशु को १० बजे का दूध पिलाना चाहिए। अन्दर पहनने की चोली आदि को नित्य बदलकर धो डालना चाहिए।

निद्रा व विश्राम—इस काल में निर्विघ्न निद्रा आवश्यक है। बच्चा जब एक मास का हो जाये, उस समय से धीरे-धीरे रात्रि को दो बजे का स्तनपान बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए। इस प्रकार माता को रात भर प्रगाढ़ निद्रा-लाभ का अवसर मिल जायेगा। रात्रि में ८ घण्टे तथा दिन में १ घण्टा सो लेना माता के लिए अत्यन्त लाभकारी है। थकित अवस्था में माता बच्चे का कभी भी उचित पोषण नहीं कर सकती।

यदि बच्चा किसी कारणवश रात्रि में एक-दो बार जागता है तो माता के स्थान पर पिता अथवा अन्य कोई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिजन उसकी देखभाल कर सकता है। माता व शिशु दोनों के स्वास्थ्य के लिए उचित है कि बच्चे को पृथक् बिस्तर पर सुलाया जाये।

कार्यभार—स्तनपान काल में माता को अधिक परिश्रम नहीं करना चाहिए तथा गृहस्थी के कार्यों में अन्य किसी की सहायता लेना उचित है। अति कार्य संलग्नता, दूध की मात्रा को कम कर देती है। इसका कारण यह है कि जो भोजन खाया जाता है, वह परिश्रम के आधिक्य से शरीर की व्यय हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने में लग जाता है और फलस्वरूप शिशु के निमित्त आवश्यक पोषक तत्त्वों में कमी पड़ जाती है। अतएव प्रत्येक साधारणतः स्वस्थ माता को सवा महीने तक तथा अत्यन्त दुर्बल माता को कम से कम ६ मास तक यथेष्ट आराम की आवश्यकता होती है। परिस्थितिवश यदि माता के लिए सभी गृह-कार्यों का सम्पादन अनिवार्य है तो थोड़ी-थोड़ी देर बाद ५-१० मिनट के लिए लेटकर आराम करने से शरीर में शक्ति का पुनः संचार हो जाता है।

स्वच्छ वायु एवं व्यायाम—माता के लिए प्रतिदिन स्वच्छ वायु में टहलना एवं साधारण व्यायाम करना बहुत लाभकारी है। घर में फुलवारी आदि लगाना तथा थोड़ा-बहुत साग-सब्जी उगाना भी अच्छा व्यायाम है। शीत-ऋतु में दोपहर को कुछ देर धूप-सेवन भी दूध की मात्रा को बढ़ाने तथा माता के स्वास्थ्य के स्थायित्व में सहायक होता है।

सन्तान के व्यक्तित्व का आरम्भ

फ्रांस के राज्यतन्त्र की स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता के विरुद्ध वहाँ की जनता ने सन् १७८९ ई. में आवाज उठायी। जन-क्रान्ति हुई और कर्त्तव्यविमुख, स्वार्थलोलुप सम्राट को फाँसी की सजी दी गई। तदुपरान्त वहाँ के क्रान्तिकारी नेताओं ने शासन-सूत्र अपने हाथ में लिया। लेकिन स्थिति अभी निरापद नहीं हुई थी। आस-पास के देशों और राज्यों में सत्तासीन राजाओं को फ्रांस का यह घटनाक्रम असह्य लगा। जनता की चेतना और शक्ति का आदर्श उदाहरण कहीं अपने देश की प्रजा को भी जागरूक न बना दे, इसलिए उन्होंने जनतान्त्रिक फ्रांस के दमन की सम्मिलित योजना बनायी।

आस-पास के सभी स्वेच्छाचारी शासकों ने मिलकर फ्रांस पर हमला बोल दिया। कुछ समय पूर्व ही हुई जन-क्रान्ति के कारण फ्रांस अपनी सुरक्षा-व्यवस्था को सशक्त बना भी नहीं पाया था कि इस अनपेक्षित आक्रमण का सामना करना पड़ा, सैनिकों ने गाँववासियों और नगरवासियों पर पाशविक अत्याचार किये। नागरिक विदेशी आक्रमण का मुकाबला करने के लिए घरों से बाहर निकल पड़े। देशभक्तों ने जीतेंगे या मर जायेंगे की शपथ ली और अपने स्त्री-बच्चों को यथास्थिति छोड़कर विदा हो गये।

इधर सैनिकों ने गाँव के गाँव उजाड़ डाले। घरों की महिलाएँ अपनी रक्षा के लिए जंगलों में भाग गयीं। इन भागी हुई औरतों में से ही एक कोर्सिका द्वीप की निवासिनी एक महिला गर्भवती भी थी। गर्भवती होने के कारण वह दूर जंगल में सुरक्षित स्थान तक पहुँच नहीं पायी। इसलिए समीपस्थ पहाड़ी इलाके में ही उसे शरण लेनी पड़ी। चारों ओर से तोपों तथा बन्दूकों की गड़गड़ाहट, बन्दूकों की आवाज और कदमताल करते सैनिकों की पदचाप सुनाई देती थी। दिनभर उसकी स्मृति इन्हीं दृश्यों से भरी रहती थी। वह कभी सोचती काश इन नर-पिशाचों से बदला लेने के लिए वह भी हाथ में शस्त्रास्त्र लेकर मुकाबला कर सके। शरीर की विवशता और प्रतिरोध-क्षमता के अभाव में वह अपनी इस इच्छा को मूर्त रूप तो नहीं दे सकी। परन्तु दिन-रात हृदय में उमड़ने वाले भावों और संकल्पों ने गर्भस्थ शिशु को प्रभावित किया और जब बच्चे ने जन्म लिया तो आगे चलकर गर्भकाल के संस्कार ही विकसित होकर उसके सम्पूर्ण जीवन और व्यक्तित्व पर छाये रहे।

आसपास के वातावरण से गर्भवास में प्रभावित होने वाला वह बालक नैपोलियन बोनापार्ट के नाम से विख्यात हुआ। इस साहसी वीर पुरुष का जीवन युद्ध और संघर्षों में ही बीता। लगातार दिन-रात घोड़े की पीठ पर बैठे रहना और शत्रु का मुकाबला करना उसके लिए सहज था। कहने का तात्पर्य यह है कि गर्भिणी की मनोवस्था का शिशु पर असंदिग्ध रूप से प्रभाव पड़ता है।

साहसी और वीर सन्तान के लिए माता को अपनी भाव-भूमिका उस काल में इसी प्रकार की रखनी चाहिए। कहा जा सकता है कि वे परिस्थितियाँ तो सभी के लिए उपलब्ध और सम्भव नहीं हैं। मूल बात परिस्थितियों से सम्बन्धित नहीं है, वह तो मनोभूमि की स्थिति और अन्तर्वस्था का प्रभाव है, जो शिशु को तदनुरूप व्यक्तित्व प्रदान करता है। परिस्थितियाँ मात्र सहायक होती हैं, आधार नहीं।

फिर भी वातावरण के प्रभाव से इन्कार नहीं किया जा सकता। गर्भवती स्त्री जैसे वातावरण और परिस्थितियों में रहेगी, उनके सम्पर्क की प्रतिक्रिया अवश्यमेव तो होगी ही। इसलिए संसारभर के बुद्धिजीवियों तथा मनीषियों ने श्रेष्ठ सन्तति के लिए गर्भिणी की दिनचर्या से लेकर मनःस्थिति, भावभूमिका और हृदयावस्था की ओर विशेष ध्यान देने पर जोर दिया है।

चूँकि गर्भिणी के आस-पास का वातावरण उसने स्वजन तथा परिवार के सदस्यों से ही विनिर्मित होता है। अच्छी सन्तान के लिए स्थान बदलने या किसी सुन्दर और सुरम्य प्राकृतिक छटाओं में रहने की बात न तो सुविधाजनक है और न ही व्यावहारिक। घर के लोगों से दूर चले जाने पर शिशु के पलायनवादी या असामाजिक बनने की ही सम्भावना अधिक रहती है। इसलिए उचित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यही है कि माँ बनने जा रही स्त्री के निकट सम्पर्क में रहने वाले लोग ही ऐसा वातारवंण निर्मित करें, जिसमें गर्भिणी प्रसन्न, उत्साहित, आदर्श और स्निग्ध स्वभाव की बनी रहे।

शरीर पर विशेष भार पड़ने से उन दिनों महिलाएँ विशेष संवेदनशील हो जाया करती हैं। वैसे भी स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक भावुक होती हैं। इसलिए परिजनों को उन दिनों विशेष रूप से यह सावधानी रखनी चाहिए कि गर्भवती स्त्री परिवार की समस्याओं, स्वजनों के सम्बन्ध तथा अन्य स्थिति घटनाओं के कारण खिन्न न हों। इसके लिए यही किया जा सकता है कि ऐसी बातों की सूचना और चर्चा गर्भिणी से न की जाय। परन्तु इससे भी अधिक ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि अन्य स्रोतों द्वारा समस्याओं से अवगत होकर कहीं वह चिन्तित तो नहीं रह रही है।

प्रायः परिवार तथा पड़ौस की महिलाएँ आदतन ऐसी चर्चाएँ चलाती रहती हैं, जिनसे गर्भिणी की भी अन्य लोगों की तरह घर की तथा बाहर की स्थिति का पता चल जाता है। भले ही वह उनकी चर्चा किसी ने न चलाये लेकिन अन्दर ही अन्दर तो चिन्तित और उद्विग्न बनी रहती है। इस दुष्प्रभाव से बचाने के लिए उनके पतियों को गृहिणी का अन्तर टटोलते रहना चाहिए। औरतें तनिक भी सहानुभूति जताने या प्रेम-स्नेह व्यक्त करने वाले के सामने शीघ्र ही खुल जाती हैं। सर्वाधिक निकट आत्मीय होने के कारण पति से तो वे और भी खुली होती हैं—इसलिए यह काम पति अच्छी तरह आसानी से कर सकता है। घर के और भी सदस्य अपना पारिवारिक दायित्व समझकर इस दिशा में सचेष्ट रहे तो बड़ा ही अच्छा है।

जीवनभर स्त्री को अपने पति का अनन्य प्रेम और सहयोग तो अपेक्षित है ही सही। यह क्रम सामान्य गति से चलता रहता है, परन्तु उन दिनों जब गृहिणी माँ बनने वाली होती है पति के दुलार और प्रेम की आकांक्षा और अधिक जागृत होती है। लेकिन सामान्य घरों में पति को गर्भिणी की ओर से निरपेक्ष तथा उदासीन ही देखा गया है। इस काल में कुछ कारणों से पुरुष पत्नी पर इतना ध्यान नहीं देते, विपरीत वे नीरस व्यवहार भी करने लगते हैं। कारण चाहे जो भी हो, यह अनुचित और गर्भिणी तथा भावी सन्तान के लिए परिणाम में अलाभप्रद ही रहते हैं।

होना तो यह चाहिए कि पुरुष-स्त्री को बातचीत और व्यवहार से प्रेमप्रदर्शन कर सन्तुष्ट रखने में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री न समझें, वरन् सामान्य कामकाज और गृह-व्यवस्था में भी पत्नी का हाथ बँटाकर अपना दायित्व पूरा करें। किसी भी प्रकार दुराव-छिपाव न रखकर सभी कार्यों को पत्नी के परामर्श से सम्पन्न करें। उसकी आवश्यकताओं, रुचियों और इच्छाओं को पूरा करने, तृप्त रखने के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील रहें।

गर्भवती के प्रति परिजनों को भी सहयोग और सहानुभूति से भरी व्यवहार नीति अपनानी चाहिए। घर की अन्य महिला सदस्याएँ स्त्री स्वभाव से गर्भवती के प्रति ईर्ष्यालु हो सकती हैं। प्रयत्न यह किया जाय कि इस मनोभूमि की स्त्रियाँ भी अपने कलहपूर्ण दुर्व्यवहार को कम से कम उस अवधि के लिए तो पूर्णतया रोक दें। ससुराल में विशेष रूप से सास-बहू, ननद-भौजाई और देवरानी-जिठानी के परस्पर सम्बन्धों की-सी खेदपूर्ण स्थिति, इस काल में गम्भीर रूप से हानिकारक होती है। सम्भवतया इन्हीं कारणों से ग्रामीण परिवारों में प्रथम प्रसव के समय बहू को मायके भेज देने का रिवाज है। मायके जैसी स्थिति ससुराल में ही बनायी जा सके तो भावी सन्तान परिवार के प्रति विशेष रूप से दायित्व और आत्मीयता अनुभव करने, निभाने वाली होगी।

प्रायः ऐसा होता भी देखा गया है कि गर्भवती के पास रहने वाली स्त्रियाँ प्रसव वेदना का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करती हैं। इससे गर्भवती स्त्री प्रसव को नितान्त अस्वाभाविक और स्वास्थ्य को चौपट कर देने वाली प्रक्रिया समझ लेती है। उनके मन में मातृत्व का उत्साह मर-सा जाता है। कल्पित भय और प्रसव वेदना का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन गर्भिणी को त्रस्त कर देता है। मानसिक बल टूटने के साथ सन्तान के पौरुष, शौर्य और बल विश्वासी बनने की सम्भावना भी इससे समाप्त होती है, इसलिए प्रयत्न यह किया जाना चाहिए कि गर्भवती स्त्री प्रसव को एक स्वाभाविक और आवश्यक मान सकने के लिए मानसिक रूप से तैयार रहे। वस्तुतः यह कोई काल्पनिक सिद्धान्त है भी नहीं। सृष्टि के सभी प्राणी उसी सहजता से प्रसव कर अपने जीवनक्रम को शीघ्र ही व्यवस्थित कर लेते हैं। प्रसवोपरान्त आयी अशक्तता और क्षीण शरीर स्थिति में यदि यही वातावरण अधिकांश कारण माना जाय तो गलत वही होगा।

गर्भवती के अभिभावकों का यह पवित्र कर्त्तव्य है कि वह होने वाले बच्चों के प्रति माँ की ममता और औत्सुक्य जगाते रहने का प्रयास करें। बच्चों के छोटे-छोटे कपड़े, ओढ़ने, बिछाने के छोटे गदिया, गुदड़ी, गिलाफ, नैपकिन उसी के हाथों तैयार करवाये जायें। प्रसूता के विशेष आहार का कूटना, पिसना भी गर्भवती के ही हाथों से सम्पन्न हो तो भी यह उत्साह बना रहने में सहायता मिल सकती है।

व्यवहार आत्मीयतापूर्ण तो रहे परन्तु लाड़-प्यार की मात्रा भी सीमा को लाँघ न जाये—यह ध्यान भी अवश्य रखना चाहिए। मायके में अथवा बहू को बेटी मान-समझकर रखने वाले परिवारों में गर्भिणी को बिल्कुल भी काम नहीं करने दिया जाता। आलसी और विश्रान्त स्थिति में ही गर्भवती स्त्री को रखते हुए यह भले ही उसे दुलारा, लाड़ किया जा रहा है परन्तु यह लाड़-दुलार उसके हित में नहीं। दिनभर सोते रहने वाली स्त्रियों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असह्य प्रसव वेदना तो भोगनी ही पड़ती है, उनकी सन्तान भी आलसी और दीर्घसूत्री निकलती है।

गर्भवती स्त्री के अंग-प्रत्यंग का समुचित रूप से श्रम होता रहे यह आवश्यक है। हो सके तो उसके लिए व्यायाम आदि की व्यवस्था भी करनी चाहिए। कम से कम प्रति प्रातः-सायं जो समय उपयुक्त रहे, घूमने-टहलने का क्रम बनाया जाना चाहिए। शरीर श्रम से गर्भवती की ग्रन्थियाँ और पेशियाँ जहाँ स्वस्थ, स्फूर्त और मजबूत बनेंगी, वहीं भावी जातक भी श्रमशील, शक्तिशाली, हृष्ट-पुष्ट और नीरोग रहेगा।

माँ बनने का विशेष उत्तरदायित्व गर्भवती पर ही आता है। इसलिए भावी सन्तान के निर्माण में सर्वाधिक मनोयोग और प्रयत्न करना भी उसी के लिए आवश्यक है। परिजनों का व्यवहार, आस-पास का वातावरण और पति का प्रेम प्रदर्शन ठीक प्रकार से होते रहने पर भी गर्भवती स्त्रियाँ स्वयं के प्रति सचेत न रहें तो कोई लाभ नहीं होने का। स्वजन-बांधव उसके सम्मुख 'प्रेरणादायी स्थितियाँ प्रस्तुत करें यह तो ठीक है परन्तु रुचि तो गर्भवती को ही लेनी होगी। सत्शास्त्रों, प्रेरक, प्रसंगों, शुभ विचारों, उदात्त चरित्रों तथा मानवीय आदर्शों से सम्पुटित पुस्तकों, साहित्य, चित्रों और घटनाओं का चिन्तन-मनन और अध्ययन चलता रहे तो समझना चाहिए कि समाज को एक सुयोग्य सदस्य, देश को एक अच्छा नागरिक देने की आधी मंजिल तय कर ली है।

उस समय माता विधाता-ब्रह्मा की भूमिका निभा रही है। माँ बनना गौरव की बात है, परन्तु श्रेष्ठ सन्तान की माता बनना सौभाग्य की बात है। जिस दिन से बालक गर्भ में आ जाता है—गर्भिणी को अपने व्यवहार, विचार और रहन-सहन में कई विधि-निषेधों को पालन करना पड़ता है। किन-किन बातों में क्या-क्या परिवर्तन किये जाएँ यह एक अलग विषय है ? इसकी एक मोटी कसौटी है, जिन विचारों, भावनाओं और आदतों का विकास अपनी सन्तान में देखने की आकांक्षा है, उन्हें प्रधान महत्त्व दिया जाय और जिन बातों तथा कमजोरियों से अपने बच्चों को बचाना चाहते हैं, उनका सर्वथा निषेध कर दिया जाय।

कहना नहीं होगा मातृत्व और पितृत्व एक लम्बी साधना तथा दायित्व की क्षमता, अनुभूति की आवश्यकता रखता है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कभी निराश नहीं होना पड़ता।

सन्तान के रूप में माता-पिता समाज और राष्ट्र को एक ऐसा व्यक्तित्व प्रदान कर सकते हैं, जिसके द्वारा समाज एवं देश का भारी हित सध सकता है। क्षणिक वासना के आवेग को तृप्त करने के परिणामस्वरूप, उत्पन्न हुई सन्तति न स्वयं के लिए लाभदायक होती है और न परिवार तथा समाज के लिए ही। इस आधारभूत सिद्धान्त को सदैव गम्भीरता से ध्यान में रखना चाहिए।

बच्चों के सुशिक्षण का शुभारम्भ

कहा जाता है कि बालक माता-पिता के गुण-सूत्रों के आधार पर विशेषताओं से युक्त होते हैं। यह कथन आंशिक रूप से सही रहा है। यह तथ्य आकृति के रूप में किसी अंश तक सही माना जा सकता है, किन्तु प्रकृति के स्वभाव के बारे में यह प्रभाव बहुत कम अंशों में ही शेष रह जाता है।

गर्भावस्था में प्रवेश करते ही जीव माता के पेट रूपी आँवे में पकने लगता है। इस अवधि में माता की शारीरिक और मानसिक स्थिति का भ्रूण पर असाधारण प्रभाव पड़ता है। यदि माता अस्वस्थ, खिन्न, उद्विग्न रहेगी तो नौ महीने तक बालक पर वैसे ही संस्कार जमते रहेंगे और जन्मने के उपरान्त बच्चा भी इन्हीं विषमताओं से घिरा रहेगा।

बच्चा क्या है ? इस सम्बन्ध में यदि गुण-सूत्रों की गहराई तक न जाया जाय तो मोटे अर्थों में यही समझा जा सकता है कि उसके बिन्दु कलल से बढ़ते-बढ़ते संसार के वातावरण में रहकर जीवित रह सकने की स्थिति तक पहुँचने में माता का योगदान ही प्रमुख होता है। उसी का रस-रक्त बालक के शरीर का गठन करता है। इतना ही नहीं उसका चिन्तन, स्वभाव, दृष्टिकोण आदि ही तदनुरूप ढलता और बनता है। लवकुश, भरत चक्रवर्ती, शिवाजी, नैपोलियन आदि के व्यक्तित्वों पर उनकी माताओं की ही विशेषताएँ सवार रही हैं। पिता का पराक्रम तो मकरध्वज, घटोत्कच, अष्टावक्र, अभिमन्यु आदि में ही दीख पड़ा था।

वास्तविकता यह है कि माता की शारीरिक या मानसिक स्थिति में प्रसन्नता, दृढ़ता एवं विशिष्टता लाने में पिता का माता के प्रति सद्भाव ही प्रधान रूप से काम करता है। यदि दोनों के बीच मनोमालिन्य-विद्वेष रहे तो फिर उन परिस्थितियों में बालक की स्थिति भी विपन्न बनी रहेगी और जन्मने के उपरान्त वह आशाकारी, सद्गुणी एवं अनुशासित न रहेगा।

अपनी निज की शारीरिक, मानसिक स्थिति अच्छी रखने में सफल रहने वाली माताएँ गुणवती सन्तान को जन्म देती हैं। इस कार्य में इस विशेष अवसर पर पिता को अपनी गतिविधियाँ ऐसी रखनी चाहिए कि पत्नी पर किसी प्रकार का प्रतिकूल प्रभाव न पड़ने पाये। स्नेह और सहयोग प्रदर्शन में वातावरण अनुकूल बनाये रहने में पिता का सामर्थ्य भर प्रयत्न करना चाहिए। पत्नी की दिनचर्या—विधि-व्यवस्था ऐसी रहे जिसमें न केवल उसका स्वास्थ्य सही रहे, वरन् मानसिक स्थिति भी विनोद, उत्साह और प्रसन्नता से भरी रहे। सम्भव हो तो पिता को प्रसव के दिनों में पत्नी का साहस बढ़ाने एवं डर निकालने के लिए अपनी उपस्थिति निकटवर्ती बनाये रखनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए। उन दिनों की उपेक्षा, विशेषतया प्रतिकूल स्वभाव उत्पन्न करने वाली होती है।

जन्मने के बाद बालक सर्वथा अनजान होता है। सांसारिक रीति-रिवाजों से उसका परिचय नहीं के बराबर होता है। गर्भ-बन्धनों और प्रसव के उपरान्त सर्वथा अजनवी वातावरण में प्रवेश उसके लिए भय एवं कौतूहल का कारण होता है। इन दिनों वह कोरे कागज की तरह होता है, जिस पर माताएँ चाहे जैसा अंकन कर सकती हैं। पेट में साथ-साथ नौ महीने तक उसका स्वाभाविक परिचय माता के साथ ही होता है। मात्र उस अकेली को वह पहचानता है और अपनी सुरक्षा एवं सहायता के लिए पूरी तरह उसी पर निर्भर रहता है।

माता का शिशु को पास बुलाना एवं दूध पिलाना प्रायः वैसी ही स्थिति उत्पन्न करता है, जैसी कि गर्भावस्था में घनिष्टता और निर्भरता थी। अतएव इन दिनों में माता को कष्टकारक स्थिति से उबारने में परिवार के लोगों को विशेषतया पिता का सहयोगी बनकर रहना चाहिए। आश्वासनों और सुविधाओं के लिए ठीक यही उपयुक्त समय है। उसे सही रूप में सँभाल लेने पर न केवल प्रसूता अपने खोये हुए स्वास्थ्य की क्षतिपूर्ति कर लेती है, वरन् विचित्र परिवर्तन से आश्चर्यचकित नवजात शिशु को आश्वस्त करती है।

अपने देश में अनभिज्ञता के कारण कई विचित्र रिवाज प्रचलित हैं। जच्चा को खुली हवा न लेने देना, तेल-घी, मिठाई, मैदा से बने हुए लड्डू खिलाना, प्रसूति के कमरे में भूत-प्रेत भगाने के लिए आग जलती रखना—यह सभी प्रचलन आदि से अन्त तक गलत हैं। किन्तु वृद्धाओं ने जो देखा है, वे उसी अनुभव को सब कुछ मानकर प्रसूता को एक प्रकार से हैरान करती हैं। यों वे यह सब शुभ-चिन्तक के नाते करती हैं, पर उससे होता अनर्थ ही है। गन्दे वातावरण में, गन्दे कपड़ों से लिपटे हुए दम घुटने जैसे वातावरण में रहने के कारण जच्चा-बच्चा दोनों ही संकट में फँसते हैं। उन्हें स्वच्छ हवा और हल्के भोजन की आवश्यकता पड़ती है। बच्चे को घुट्टी आदि पिलाते रहना उसके स्वास्थ्य को खराब करना है।

पालन-पोषण में किन सतर्कताओं की आवश्यकता है, यह समस्त विवरण धात्री पुस्तकों से जाना जा सकता है या किसी सुशिक्षित नर्स से पूछा जा सकता है। दुर्बलों और बीमारों की जैसी परिचर्या की जानी चाहिए उसी से मिलती-जुलती व्यवस्था सद्यः प्रसूता एवं उसके बालक को भी उपलब्ध होनी चाहिए।

इन पंक्तियों में जच्चा-बच्चा प्रसंग के क्रिया पर प्रकाश नहीं डाला जा रहा है, वरन् यह कहा जा रहा है कि आदतों में जो उतार-चढ़ाव आते रहते हैं, उनकी देख-रेख कैसे करनी चाहिए ? उस शुभारम्भ का उपयुक्त मुहूर्त कौन-सा है ? गर्भकाल में बच्चा इतना सक्रिय होता है कि मात्र नौ महीने की अवधि में अपनी समग्र संरचना परिपूर्ण कर लेता है। मिनट-मिनट पर वह स्वरूप को बदलता रहता है। इतना ही नहीं वह माता से शारीरिक पोषण प्राप्त करने के अतिरिक्त उसके स्वभाव और दृष्टिकोण को भी अपने में उतारता रहता है। यह क्रिया प्रसव के बाद भी जारी रहती है और जब तक वह माता पर आधारित रहता है, तब तक उसके मनःसंस्थान से ही तेजी के साथ प्रभाव ग्रहण करता रहता है।

देखा गया है कि छोटे बच्चे थकान उतारने के लिए अधिक समय सोये पड़े रहते हैं पर उनकी चेतना तब भी काम करती रहती है और जिस वातावरण में रहते हैं उसका भावनात्मक स्वर अप्रत्यक्ष रूप से चूसते रहते हैं और अपना स्वभाव विनिर्मित करने में लगे रहते हैं।

अनगढ़ आदतों में मल-मूत्र का यथासमय और यथास्थान न कर पाना—गन्दगी और स्वच्छता का अन्तर न समझ पाना, चिड़चिड़ाना और जोर-जोर से देर तक चिल्लाना, क्रुद्ध मुद्रा में हाथ-पैर पीटना जैसी आदतें प्रकट होने लगती हैं। यह निषेधात्मक दौर है। जिनके व्यक्तित्व विधेयक स्तर की ओर चलते रहते हैं। वे जाग्रत या प्रसुप्त स्थिति में हँसते-मुस्कराते हैं। अपनी भूख या मल त्याग, ठण्डक, गर्मी, मक्खी-मच्छर आदि की आवश्यकताओं को भगाने के इस प्रकार के अंग-संचालन करके संकेत करते हैं कि मनोयोगपूर्वक अनुमान लगाने पर उनकी इच्छा का पता चल सकता है, यहाँ तक कि उनका कोई अंग-अवयव पीड़ित हो रहा हो तो सांकेतिक भाषा समझने का अभ्यास करने पर वस्तुस्थिति का पता चलने लगता है। दोनों के बीच एक बेतार का तार काम करता रहता है और एक-दूसरे की मनःस्थिति का परिचय प्राप्त करते रहते हैं। प्रिता अथवा जो उसे हँसाने-खिलाने में सहयोग दान दे वह भी उसी परिधि में आने लगता है।

भावनात्मक संकेत पहुँचाकर लगभग उसी प्रकार शिक्षण दिया जा सकता है, जिस प्रकार बोलने-समझने वाले बालक को कह-सुनकर अच्छी आदतें अपनाने और बुरी आदतें छोड़ने के लिए प्रेरित किया जाता है। नियमित, अनुशासित और प्रसन्न रहने की, शान्ति से रहने और रहने देने की आदतें यदि कोई चाहे तो उस आयु में ही सिखा सकता है, जिसमें उसका समुचित बौद्धिक विकास नहीं हुआ होगा।

सांस्कृतिक उत्थान की नींव

बाल-उत्थान

भूलों, त्रुटियों और पापपूर्ण जीवन को कठोर तपश्चर्या और गहन पश्चाताप के बाद भी उतना पवित्र और निर्मल नहीं बना सकते जितना प्रारम्भिक जीवन के चरित्र निर्माण से ही मनुष्य का जीवन शुद्ध होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्तर्मन में प्रसुप्त कुसंस्कार जब भी अनुकूल परिस्थिति पाते हैं, तभी मस्तिष्क में घोर क्रान्ति उत्पन्न कर देते हैं, जिससे आन्तरिक पवित्रता पर बार-बार मल-विकारों का उतार-चढ़ाव बना रहता है। इस स्थिति के रहते स्वाभाविक उज्ज्वलता आ नहीं पाती। इसलिए भारतीय धर्म का निरूपण करने वाले आचार्यों ने यह व्यवस्था पहले ही बना दी थी कि लोगों के चरित्र उनके शैशवकाल में ही दृढ़ कर दिये जाएँ। आयु बढ़ने के साथ उनमें चारित्रिक प्रौढ़ता आती जाती थी। ऐसे मनुष्य ही आगे चलकर महान, मनस्वी, तेजवान तथा आत्म-बल सम्पन्न होते थे। जब तक यह परम्परा देश में यथावत् चलती रही, तब तक यहाँ सुख-शान्ति और समृद्धि में किसी बात में कमी नहीं रही।

किन्तु आज जिस रूप में बालकों को इतना उपेक्षित देखते हैं, उससे प्रत्येक विचारवान को गहरा धक्का लगता है। बालकों के नैतिक अपराध आज जिस गति से बढ़ रहे हैं, उन्हें देखते हुए, समाज-सुधारकों का चिन्तित होना स्वाभाविक ही है। स्वभाव में जब द्वेष तथा दुर्गुण गहराई तक जम जाते हैं, तो यदि किसी प्रकार के सुधार के कार्यक्रम बनाये भी जाएँ तो उनमें भारी शक्ति लगाकर भी मनोवांछित सफलता मिलती नहीं है। व्यावहारिक कठिनाई यह है कि हमारे अभिभावक इस जिम्मेदारी को उदारतापूर्वक वहन नहीं करते। अधिकांश को तो इस विषय में ज्ञान ही नहीं होता कि बालकों का चारित्रिक विकास किस प्रकार करें ? स्वेच्छाचारी बालक समाज के द्वेष-दुर्गुणों को ही ग्रहण कर लेते हैं, क्योंकि यही सब तो उनके आस-पास जमा होते हैं। बालकों का निर्माण गर्भावस्था में आने से ही होने लगता है। इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए ही भारतीय आचार्यों ने संस्कार-पद्धति चलाई थी। इससे बालकों के नैतिक-प्रशिक्षण में किसी प्रकार की कठिनाई उत्पन्न नहीं होती थी।

दार्शनिक सुकरात के पास एक स्त्री गई। उसने पूछा गुरुदेव ! अपने बच्चे की शिक्षा मैं कब से प्रारम्भ करूँ ?

"बच्चे की उम्र क्या है ?" सुकरात ने पूछा।

"चार वर्ष।" स्त्री ने सरलता से उत्तर दिया।

"तब तो आप चार वर्ष नौ माह, बच्चे को शिक्षा देने में पीछे रह गईं।" सुकरात ने उसका समाधान किया। माता के आहार-विहार आदि से बच्चे के संस्कार बनने प्रारम्भ हो जाते हैं अतएव यह कहना अत्युक्ति नहीं कि गर्भावस्था से ही बच्चों की शिक्षा प्रारम्भ कर देनी चाहिए। हमारे यहाँ यह पद्धति क्रमिक और वैज्ञानिक थी। यही कारण था कि घर-घर ध्रुव, प्रह्लाद, भरत, अभिमन्यु जैसे प्रतिभाशाली बच्चे जन्म लिया करते थे। अब उन प्रथाओं के फिर से जाग्रत करने की आवश्यकता है। सांस्कृतिक उत्थान की नींव बालकों के उत्थान से प्रारम्भ करें तभी चारित्रिक समृद्धि अपने मौलिक रूप में आ सकेगी।

बालकों को संस्कारवान बनाने का अभ्यास उनके गर्भ में आने से ही प्रारम्भ करना चाहिए। माता-पिता की मनोदशा का बालक की मनोदशा पर प्रभाव पड़ता है। माता के शरीर से रस और रक्त लेकर उसका स्वास्थ्य बनता है। उनके रहन-सहन का सूक्ष्म प्रभाव बालकों की आत्मा पर पड़ता है। अतएव खान-पान, रहन-सहन तथा व्यवहार में माता-पिता को गर्भावस्था में बालक के आते ही सात्विकता का पर्याप्त समावेश कर लेना चाहिए। जो माताएँ मिर्च-मसाले, खटाई, तीखे, कसैले बासी भोजन का प्रयोग करती हैं उनके बच्चे अधिकांश क्रोधी, दुष्ट तथा तामसी प्रकृति के होते हैं। वस्त्र, आभूषण, बोली-भाषा आदि का भी गर्भस्थ बच्चे पर प्रभाव पड़ता है। पति-पत्नी में प्रेम और सदाचार न हो तो बच्चे भी दुर्गुणी, नास्तिक तथा चिड़चिड़े प्रकृति के होते हैं। इन सभी बातों का माता-पिता को पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है।

जन्म लेने के पश्चात् किशोरावस्था में आने तक बच्चा अधिकांश माता के ही संरक्षण में रहता है। उस समय माता की चेष्टाओं और क्रिया-कलापों का बालक बड़ी सूक्ष्मता से अवलोकन करता रहता है, इसलिए यह समय माता की सबसे बड़ी जिम्मेदारी का होता है। इस अवस्था में बच्चों को भय दिखाना, अपवित्र रखना, उन्हें निद्रा आदि के लिए नशीली वस्तुएँ खिलाना हानिकारक होता है। कामजन्य चेष्टाएँ, क्रोध, कलह आदि का दूषित प्रभाव बालक पर पड़े बिना रहता नहीं। जिन स्त्री-पुरुषों में पारस्परिक स्नेह, प्रेम और मैत्री की भावना नहीं उनके बच्चे स्वभावतया उद्दण्ड और स्वेच्छाचारी ही बनते हैं अतएव यह हमेशा ध्यान बना रहे कि आप कोई ऐसी चेष्टा नहीं करते जो बालक के कोमल मस्तिष्क पर अपना बुरा असर जमा ले।

पाँच वर्ष की अवस्था आ जाने पर बालक की ज्ञान-पिपासा बढ़ने लगती है। अभी तक जिन वस्तुओं को मात्र खेल और तोड़-फोड़ की जरूरत समझता था, अब उनके प्रति उसका जिज्ञासा भाव बढ़ने लगता है। इस उम्र में बच्चों को चित्र, कथा, कहानियाँ बहुत पसन्द आती हैं। लोरियाँ व मधुर संगीत की भी उनकी रुचि जाग्रत होती है। इनके लिए वे कभी-कभी हठ भी करते हैं। इस समय बालकों को सुन्दर-सुन्दर चित्र जिसमें महापुरुषों के चित्र, प्राकृतिक दृश्य आदि हों, दिखाने चाहिए। कलात्मक वस्तुओं से अपने निवास को सजाना और बालकों में उसकी रुचि पैदा करना चाहिए। महापुरुषों की जीवनियाँ सरल व सुबोध ढंग से सुनानी चाहिए। करुण, शान्त और मनोरंजक लोरियों से बालकों का मन-बहलाव भी होता है और उनके मनोजगत में सात्त्विक संस्कारों का आविर्भाव भी होने लगता है। इस अवस्था में चाहें तो बच्चे का मस्तिष्क किसी भी दिशा में लगा सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस युग में शिक्षा का उद्देश्य अर्थ-उपार्जन हो गया है। अतएव यह तो सम्भव नहीं है कि गुरुकुल प्रथा का एकाएक प्रचलन हो जाये पर इतना तो प्रत्येक अभिभावक कर ही सकते हैं कि बालकों को पूर्ण ब्रह्मचर्य और संयम के साथ रखकर उन्हें शिक्षित तथा विचारवान तो बना दें। अपरिपक्व अवस्था में विवाह या सांसारिक व्यवसाय आदि में लगा देना भारी भूल है। अनुभवहीनता के कारण ऐसे बच्चों का जीवन प्रायः असफल ही रहता है और उन्हें जीवनभर तरह-तरह के दुःख, कष्ट और क्लेश भुगतने पड़ते हैं। गृहस्थ की दुर्दशा का एक जबर्दस्त कारण यह भी है कि गृहस्थी की बागडोर जैसे मजबूत हाथों में पड़नी चाहिए थी वैसे, हाथ मजबूत हो नहीं पाते। अनियन्त्रित घोड़ों वाले रथ की जो दशा होती है, ठीक वैसी ही दुर्दशा उस गृहस्थी की भी होती है जिसके सदस्यों को न तो जीवन जीने की कला ही आती है, न उनमें इतना ज्ञान और अनुभव ही होता है। अन्ध-परम्पराओं के रूप में चल रही आज की गृहस्थियों में किस प्रकार के द्वन्द्व छाये हैं यह किसी से छुपा नहीं है।

शिक्षा मनुष्य के जीवन को सत्यवादी और कर्मशील बनाती है। यह शिक्षा यदि धार्मिकता से अनुप्राणित रहे तो गृहस्थ-जीवन में वह आनन्द आता है कि मनुष्य की बार-बार भूमि में आकर जन्म लेने की इच्छा होती है। सामाजिक प्रगति और राष्ट्रीय उत्थान के लिए भी यह आवश्यक बात है कि यहाँ का प्रत्येक नागरिक शिक्षित तथा धर्म-दीक्षित बने। शिक्षा मनुष्य का बौद्धिक विकास करती है और आध्यात्मिकता, लौकिक तथा पारलौकिक सुखों का आधार बनाती है। इस प्रकार मनुष्य का इहलोक और परलोक दोनों ही सुधरते हैं। जीवन के समग्र-विकास का सबसे अच्छा उपाय और कुछ हो नहीं सकता।

सांस्कृतिक उत्थान के लिए आत्म-निरीक्षण और जीवन-शोधन के द्वारा अपना जीवन समुन्नत बनायें, पर यह न भूलें कि इतने से ही अपनी संस्कृति को आर्ष-रूप में लाना सम्भव न होगा। आज की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि हमारे बालकों का चारित्रिक विकास हो। बालकों का नैतिक-उत्थान होगा तो वह परिस्थितियाँ आते देर न लगेगी, जिनमें हमारे समाज का गौरव फिर से अपने पूर्व रूप में झिलमिलाने लगेगा।

शिशु को आहार और सहयोग ही नहीं स्नेह भी चाहिए

भ्रूण जब तक गर्भावस्था में रहता है तब तक माता से परिपोषण और संरक्षण की सभी सुविधाएँ प्राप्त करता है। इसके उपरान्त संसार क्षेत्र में पदार्पण करने के उपरान्त भी माता से दूसरे प्रकार के अनुदान की आवश्यकता पड़ती है। वह आहार है—प्यार। उसे बहुत समय तक माता को ही देना पड़ता है। उसमें न्यूनता पड़ने पर बाल-विकास में वैसी ही बाधा पड़ती है जैसी कि गर्भस्थ स्थिति में आवश्यक पोषण न मिलने पर अपंग बना देने जैसी विपत्ति बनकर सामने आती है।

नवजात शिशु और उसकी निकटवर्ती संरक्षिका के बीच प्यार का प्रत्यक्ष आदान-प्रदान उसी प्रकार चलते रहना चाहिए जैसा कि गर्भावस्था से प्रकृति व्यवस्था के अनुरूप पोषक रसों के रूप में उसे अनायास ही उपलब्ध होता रहता था। जन्म के उपरान्त यह प्रक्रिया विवेकपूर्वक अपनानी पड़ती है और उसके लिए उदारता, सतर्कता एवं भाव-संवेदना की समुचित आवश्यकता पड़ती है। जननी का कौशल इसी स्थिति में परखा जाता है। वह इस अवसर पर दूध ही नहीं उससे भी बढ़कर स्नेह, वात्सल्य एवं श्रम, समय, संरक्षण आदि बहुत कुछ स्वेच्छापूर्वक प्रदान करती है। यदि इस प्रवाह-अनुदान में व्यतिरेक उत्पन्न हो तो बालक का व्यक्तित्व अविकसित रहेगा और शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से पिछड़ेपन की स्थिति में पड़ा रहना पड़ेगा साथ ही माता भी उत्तरदायित्व की उपेक्षा करके वैसा सन्तान सुख प्राप्त न कर सकेगी जैसा कि उसे इस कष्टसाध्य व्यवसाय के बदले प्राप्त होना चाहिए था।

नवजात शिशु की नाल को काटते ही वह एक स्वतन्त्र अस्तित्ववान प्राणी के रूप में अपनी भूमिका निभाने लगता है। प्राकृतिक शरीर रचना के अनुसार वह माँ से अपना सम्बन्ध समाप्त कर लेता है। अब उसका पोषण माँ के रक्त से न होकर माँ के द्वारा दिये गये आहार एवं प्यार से होने लगता है। माँ उस शिशु को देखकर अपने गत कुछ महीनों के स्वप्नों को अब साकार होने की कल्पना करती है कि उसका शिशु जल्दी ही सुयोग्य, बलवान और स्वतन्त्र विचारधारा वाले व्यक्ति के रूप में अपने व्यक्तित्व का विकास करेगा। वह अपने आनन्द की कई गुनी अभिवृद्धि का अनुभव करने लगती है, जब वह देखती है कि उसका शिशु अपनी माता को अन्य परिवार के लोगों से अधिक प्रिय मानता है। उसके आनन्द में फिर वृद्धि होने लगती है, जब वह देखती है कि उसका शिशु उसके संकेतों को ग्रहण कर उस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगता है।

शिशु अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए पहले अपनी माता से, तत्पश्चात् अपने भाई-बहिनों एवं पिता से प्रेम की प्राप्ति करता है और उनके द्वारा ही वह अपनी दुनिया एवं समाज को जानने का प्रयत्न करता है। अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास करने के लिए वह धीरे-धीरे मन्द गति से अपने विचारों को विकसित करने और अपना बोझ स्वयं वहन करने के लिए अपने परिवार वालों के संरक्षण से अलग हटना चाहता है। इस बाल चेष्टा को देखकर माँ अत्यन्त आनन्दित होती है, उसे शिशु का लालन-पालन भार स्वरूप अनुभव न होकर एक आह्लाद भरा कार्य प्रतीत होता है। एक शिशु जो कि अपरिष्कृत स्वकेन्द्रित प्राणी होता है और अपनी सारी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यकताओं के लिए माँ और परिवार पर आश्रित रहता है, वह अब अपेक्षाकृत स्वार्थहीन, परिष्कृत, सामाजिक इकाई के रूप में विकसित होना चाहता है। इसे ही दूसरे शब्दों में समाजीकरण की प्रक्रिया कह सकते हैं।

वास्तव में शिशु की प्यार पाने की लालसा ही उसके भावी व्यक्तित्व को आकार देने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। विभिन्न शोधकर्त्ताओं ने इस बात को एक स्वर में स्वीकार किया है कि शिशु का मानव से सर्वप्रथम सम्बन्ध ही उसके भावी व्यक्तित्व की आधारशिला है और शिशु सर्वप्रथम अपनी जननी के प्यार के बन्धन में बँधता है। शिशु और उसकी जननी की एक-दूसरे पर आसक्ति ही अधिकतर शोधकर्त्ताओं का विषय रहा है। शिशु मूलतः मिलनसार नहीं होता। वह अपनी इच्छा की पूर्ति तत्काल चाहता है, किन्तु जैसे-जैसे उसकी उम्र बढ़ती जाती है, उसे सभ्य समाज का अंग बनने के लिए कई प्रतिबन्धों का पालन करके अपनी अनुचित इच्छाओं का त्याग करना पड़ता है।

मनोविश्लेषक ओटो फेनिकेल का मत है कि बालक के प्रेम को प्राप्त करने के लिए माँ बड़े से बड़ा त्याग और बलिदान करने को तत्पर रहती है। इसी प्रकार जब छोटा बालक प्यार पाने में असफल होता है तो वह स्वाभिमान खो बैठता है और प्यार पाकर उसे फिर से प्राप्त कर लेता है और यही उसकी ज्ञान-पिपासा में सहायक होता है। बालक को प्यार पाने की इतनी अधिक आवश्यकता होती है कि उसे प्यार करने का लालच देकर अथवा प्यार न करने की धौंस देकर किसी भी बात के लिए राजी किया जा सकता है।

शोधकर्त्ताओं ने बताया है कि छोटा बालक अपनी आग्रहपूर्ण माँग के द्वारा अपने माता-पिता के व्यवहार पर अधिकार जमाता है। कुछ माताओं से साक्षात्कार करने पर मालूम हुआ है कि उन्हें अपने शिशु के व्यवहार पर अपनी प्रतिक्रिया आवश्यकता से अधिक व्यक्त करने के लिए विवश होना पड़ता है। शिशु निष्क्रिय रहकर अपनी बात मनवाने के लिए प्रतीक्षा करना नहीं जानता वरन् उसके लिए वह हाथ-पैर मारकर स्वयं प्रयत्न करता है।

आरम्भ में शिशु अपनी माँ को देखकर मुस्कराता फिर हँसता एवं किलकारी भरता है। कुछ दिनों बाद वह आनन्द भरी मुद्रा में उसका स्वागत करता है और बदले में इसी प्रकार प्रतिक्रियाओं की वह अपनी माँ से भी अपेक्षा करता है। माँ अपने बच्चे की कुछ क्रियाओं को प्रोत्साहित और कुछ को निरुत्साहित कर उसके व्यक्तित्व को आकार देती है, किन्तु विविध क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं द्वारा उसके व्यवहार को उसका शिशु भी वास्तविक आकार देता है। जननी और बालक का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध ही बालक को एक व्यक्ति के रूप में विकसित होने में सहायक सिद्ध होता है। माँ और बालक की मनःस्थिति ऐसी हो जाती है कि उनमें से कोई भी एक-दूसरे को भुला नहीं सकता। मनोवैज्ञानिकों के परीक्षणों ने इस बात को प्रमाणित कर दिया है। अपने एक प्रयोग में उन्होंने एक अनजान खाली कमरे में माँ और उसके शिशु को ले जाकर देखा फिर वहाँ से उसकी माँ को हटाया और उसके स्थान पर एक नये अनजान व्यक्ति को जब रखा गया तो उस बालक की विपरीत प्रतिक्रियाएँ देखी गईं।

बालक संकेत करने की कला में सिद्धहस्त होता है। वह अपने संकेत मुस्कराकर, हँसकर एवं बड़बड़ाकर व्यक्त करता है और निश्चयपूर्वक आशा करता है कि इन संकेतों के कारण उसके पास वयस्क लोग आवेंगे और उसके निकट सम्पर्क में रहेंगे। शिशु के कार्य-कलापों की ओर ध्यान देकर उसमें यथासम्भव भाग लेकर उसके बड़बड़ाने में, उसकी मुस्कान में वृद्धि की जा सकती है।

जन्म के प्रथम सप्ताह में ही शिशु लोगों से विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करने लगता है। यद्यपि अभी वह दो व्यक्तियों के बीच भेद करने में असमर्थ होता है। वह किसी भी व्यक्ति के पास आने पर अपनी स्थिति बदलकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। स्थिति बदलते समय वह मुस्कराता है, कसकर मुट्ठी बाँधता है, कभी दृष्टि मिलाता, कभी रोता तो कभी विशेष प्रकार की आवाज को सुनकर चुप भी हो जाता है। चार महीने की आयु होते-होते अपनी माँ के प्रति उसका व्यवहार विशेष प्रकार का होने लगता है। वह अपनी माँ को पहचानने लगता है, उसे देखकर मुस्कराता है और जब वह उसे छोड़कर इधर-उधर जाती है तो अपनी नजरों से उसका पीछा करता है। मूर्धन्य वैज्ञानिक एवं चिकित्सक डॉ. एच. शेफर तथा डॉ. पेगी इमरसन ने स्कॉटलैण्ड के कुछ शिशुओं पर माँ के प्यार से उनके विकास पर पड़ने वाले प्रभाव पर शोध कार्य किये। उन्हें उनके मध्य आसक्ति का परिचय उस समय मिला जब बच्चे की माँ उसे कमरे में छोड़कर जाने लगती है और बच्चा रोने लगता है तथा उसके साथ जाने का असफल प्रयत्न करता है। रोते बच्चे को चुप कराने के सारे प्रयास विफल होते हैं, परन्तु माँ को पाते ही वह शान्त-चुप हो जाता है। इस कार्य में उसकी माता ही सक्षम होती है। इन अनुसन्धानकर्त्ताओं के लगभग एक दिन की आयु से लेकर १२ महीने की आयु वाले शिशुओं की ६० माताओं से साक्षात्कार किया और उनसे शिशु की प्रतिक्रिया को एक कमरे में अकेला छोड़ने पर बच्चों द्वारा व्यक्त की गई प्रतिक्रियाओं के बारे में जानना चाहा। उन्हें इस सर्वेक्षण से पता लगा कि छह माह की आयु सीमा के एक-तिहाई बच्चों ने और नौ माह की आयु वाले तीन-चौथाई बच्चों ने अपना विरोध प्रदर्शित किया। भावनात्मक रुचि दिखाने वाले बच्चों पर अध्ययन करने से पता चला कि उनमें से एक-चौथाई बच्चे अपने परिवार के सदस्यों से घनिष्टता से जुड़े होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब बालक अपनी स्वयं की शक्ति से बिना विघ्न के इधर-उधर चलने-फिरने लगता है। तब फिर भी अपनी माँ को अपने नेत्रों के सामने से ओझल नहीं होने देना चाहता। माँ पर अपनी अनुरक्ति उसके पास पहुँचकर उसके पीछे-पीछे चलकर, उसकी गोदी में बैठकर, अपने चेहरे को उसके आँचल में ढककर, अन्य लोगों को छोड़कर उसके पास ही अधिक समय तक रहकर प्रकट करता है। बालक माँ को एक सुरक्षित आधार-स्थल के रूप में प्रयोग करता है और उपन्यास के छापामार पात्र की तरह वह इधर-उधर घूम-फिरकर फिर अपने सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाता है।

अपने शिशु विषयक ज्ञान को बढ़ाने के लिए हमें उसका गहन व सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन करना आवश्यक है। शिशु उस व्यक्ति से ही अपना प्रेम बढ़ाएगा, जिससे उसे प्यार और सद्भाव मिलेगा। ऐसा व्यक्ति ही उस बालक को भावनात्मक मोड़ दे सकने में सफल हो सकता है।

मूर्धन्य भारतीय व पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बालक को ३ वर्ष की आयु से पूर्व किसी भी नर्सरी स्कूल में भर्ती नहीं कराया जाना चाहिए। उनका कहना है कि इस अवधि में नैतिक और मनोवैज्ञानिक शिक्षा उसे अपने माँ-बाप से प्राप्त होती है। इस अवधि में जितनी तद्विषयक शिक्षा उसे अपने माँ-बाप, घर-परिवार से मिल सकती है, उस स्तर की शिक्षा वह विद्यालय के परिवेश में नहीं प्राप्त कर सकता। उसके जीवन का यही वह नाजुक समय होता है, जब किसी अच्छे-बुरे व्यक्ति होने की नींव पड़ती है। इसी काल में उसका भावनात्मक विकास भी होता है। अतः कच्ची मिट्टी की तरह इस काल में बालक को जैसा वातावरण मिलेगा, वह तदनुरूप बन जाएगा।

जन्म से लेकर किशोर होने तक बालक को स्नेह-संरक्षण, सहयोग एवं मार्गदर्शन की नितान्त आवश्यकता रहती है। जो यह सब नहीं पा सकते, वे अविकसित रह जाते हैं और विकृत व्यक्तित्व से अपना और समाज का अहित करते हैं। इसके विपरीत जिन्हें इन आवश्यकताओं की पूर्ति का समुचित संयोग मिलता रहता है, वे सुयोग्य, समर्थ एवं सुसंस्कृत बनते और समुन्नत जीवन-यापन करते देखे जाते हैं। समूचे परिवार का उत्तरदायित्व है कि वे बालक को सुसज्जित रखने, सुविधा देने की ही बात न सोचें, वरन् यह प्रयत्न भी करें कि जिन्हें जन्म देकर सम्मानित अतिथि के रूप में बुलाया गया है, उनकी उन आवश्यकताओं को जुटायें, जिनके लिए वे नैतिक रूप से बँधे हुए हैं। जनक जननी पर तो यह उत्तरदायित्व और भी अधिक होता है। उन्हें इसे समझना भी चाहिए और निभाना भी चाहिए।

शैशव का विकास-क्रम

जीवन क्या है ? आत्मा के साथ शरीर का संयोग। चेतन अजर-अमर है। शुद्ध-बुद्ध है। पर शरीर में अनेक प्रकार की विकृतियाँ, विपन्नताएँ, दुर्बलताएँ तथा रुग्णताएँ उपजती रहती हैं। आवश्यक है कि इसका कारण खोजें, उपचार सोचें और इस प्रयत्न में सफल रहें तो स्वास्थ्य अक्षुण्य बना रहे, यह पूर्णतया सम्भव है। सृष्टि के सभी प्राणी समयानुसार मरते तो हैं, पर बीमार नहीं पड़ते। पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों को मरते तो देखा गया है पर उनमें से कोई बीमार नहीं पड़ता क्योंकि वे प्रकृति का अनुशासन निबाहते हैं। इस प्रसंग में उच्छृंखलता नहीं बरतते। इसलिए उन्हें दुर्बल रहने या बीमार पड़ने की विपत्ति नहीं सहनी पड़ती। एक मनुष्य ही है जो परस्पर ही अनाचार नहीं बरतता वरन् प्रकृति के नियम-मर्यादाओं को भी तोड़ता-मरोड़ता रहता है। इस उच्छृंखलता का दण्ड भी उसे मिलता रहता है। आये दिन बीमारियों का शिकार बनते उसे देखा जाता है। यह उसकी आमन्त्रित विपत्ति है, जो अनायास ही नहीं आती वरन् न्यौता देकर बुलाई जाती है। यदि संयम बरता और अनुशासन में रहा जाये तो प्रकृति इस प्रकार उसे प्रताड़ित न करे जैसे कि अनेकों आधि-व्याधियों से पीड़ित होकर रोते-कलपते देखे जाते हैं।

मनुष्य जीवन का शुभारम्भ उस दिन से होता है जिस दिन कि वह भ्रूण रूप में माता के उदर में आता है। उन दिनों बालक की समस्त आवश्यकता माता पूरी करती और जिम्मेदारियाँ उठाती है। इस सन्दर्भ में प्रथम नियम यह है कि माता स्वस्थ और प्रौढ़-परिपक्व हो। पिता को भी ऐसा ही होना चाहिए। दोनों में जो कोई अवयस्क, दुर्बल, रुग्ण या अविकसित है तो उन्हें गर्भाधान से दूर रहना चाहिए अन्यथा उन्हें भी दुर्बल बालक का भार वहन करना पड़ेगा। अविकसित माता-पिता द्वारा जना गया बालक स्वयं तो शारीरिक, मानसिक दृष्टि से असमर्थ होता ही है। कृशकाय माता को भी त्रास देता है। प्रसवकाल में पीड़ा सहता और देता है। यदि पिता ने इस सम्बन्ध में पहल की है, दबाव डाला या फुसलाया है तो समझना चाहिए कि उसने पत्नी और सन्तान दोनों के साथ अनीति बरती है। अत्याचारी कृत्य किया है। इसका दुष्परिणाम जननी और सन्तान को तो तत्काल भुगतना पड़ता है। आगे चलकर पिता भी उन दोनों की दुर्दशा करने के पाप का दण्ड भुगतता है। दो दुःखियारे उसे कोसते हैं और उपचार का तकाजा करते हैं।

बालक गर्भकाल में ही बनना, विकसित होना आरम्भ कर देता है। वह अपना शरीर और मन माता की स्थिति में से ही हिस्सा बँटाता है। गर्भिणी को अपनी स्थिति भी सँभालनी पड़ती है और बच्चे की संरचना भी करनी होती है। इस दुहरे कार्य की पूर्ति के लिए उसे उपयुक्त आहार-विहार, विश्राम, उत्साह, सन्तोष, सन्तुलन उपलब्ध होना चाहिए। पिता का विशेष रूप से और परिवार का साधारण रूप से यह दायित्व है कि ऐसे साधन जुटायें, ऐसा वातावरण बनायें जिसमें गर्भिणी शारीरिक और मानसिक दृष्टि से सुखी, स्वस्थ, सन्तुलित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और प्रसन्न रहें। इन साधनों को उपलब्ध करने वाली गर्भवती ही सुविकसित बालक को जन्म देती है। सतर्कता, सुव्यवस्था का प्रथम चरण यही है। भ्रूण स्थिति के बालक को समुन्नत बनाने के लिए उसे धारणकर्त्री को ही अच्छी स्थिति में रहने देना चाहिए, क्योंकि बालक का शरीर माता के शरीर और मन का ही एक भाग होता है।

प्रसव के उपरान्त भी बालक प्रायः माता से ही चिपका रहता है। वही उसें स्तनपान कराती, सर्दी-गर्मी से बचाती, स्वच्छ रखती तथा अपने शरीर की विद्युत-शक्ति से उसकी जीवनी-शक्ति बढ़ाती है। इस स्थिति में भी उसे अपनी साज-सँभाल वैसी ही रखनी चाहिए जैसी कि भ्रूण को पोसते समय रखती थी। शिशु बड़े संवेदनशील होते हैं। वे माता की स्थिति का महत्त्वपूर्ण अंश सोचते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए माता को स्वयं अपने को अच्छी स्थिति में रहना चाहिए और पति समेत समूचे परिवार को यह ध्यान रखना चाहिए कि जन्मदात्री के माध्यम से बच्चे की शारीरिक और भावनात्मक आवश्यकताएँ पूरी होती रहें। कुपथ्य और आक्रोश बच्चे को प्रभावित करता है। उसे इस प्रकार पोसा जाना चाहिए जिसमें न अतिवाद हो, न उपेक्षा। समय पर हर काम करने और कराने की आदत का यहीं से आरम्भ होना चाहिए। कुशल माताएँ इन दिनों निभाई जाने वाली जिम्मेदारियों के सम्बन्ध में समय रहते आवश्यक जानकारियाँ उपलब्ध कर लेती हैं और उन्हें कार्यान्वित भी करती हैं। बाल-विकास का यह दूसरा चरण है। बच्चा इस अवधि में प्रत्यक्ष रूप से तो चतुर नहीं होता पर परोक्ष रूप में उसकी अदृश्य क्षमता असाधारण रूप से तीव्र होती है। इसलिए उसे अनजान समझकर समीपवर्ती वातावरण ऐसा नहीं बनने देना चाहिए, जो कोमल किन्तु संवेदनशील बालक पर बुरा प्रभाव डाले।

बालक के बढ़ने के साथ-साथ उसकी आहार-विहार की, विनोद, खेल-कूद की ऐसी व्यवस्था रखनी चाहिए, जो उसे समग्र रूप में विकसित होने में सहायक सिद्ध हो। जब तक वह पाँच वर्ष का न हो जाये, तब तक नये गर्भाधान की तैयारी नहीं करनी चाहिए अन्यथा प्रथम बालक को मिलने वाला स्नेह-सहयोग टूटकर दो हिस्सों में बँट जाता है। गर्भिणी प्रायः अस्वस्थ रहने लगती है। बालक उस उदासी, कठिनाई से मन ही मन खिन्न रहने लगता है। इन दिनों की यह खिन्नता आगे चलकर उसमें कई कमियाँ उत्पन्न कर देती है। बच्चे के भविष्य के साथ खिलवाड़ करके ही नया बालक बुलाने की जल्दबाजी की जा सकती है।

माता से थोड़ा हटने लगने पर बच्चा परिवार वालों के साथ रमने लगता है। यह समुदाय भी अनगढ़, उजड्ड, असभ्य नहीं होना चाहिए, अन्यथा उनसे चलना, बोलना, खेलना आदि सीखने के साथ-साथ ही भले-बुरे गुणों का भी हस्तान्तरण होने लगता है। स्कूल जाने लगने पर साथी बच्चों के साथ तो आदान-प्रदान चलता ही है। अध्यापक सबका अधिपति होने तथा परिपक्व रहने के कारण हर बालक को ज्ञान के साथ-साथ चरित्र भी उपलब्ध कराता है। हेय स्तर के अध्यापक पुस्तकीय शिक्षा भले ही प्राप्त करा दें, पर अपने छात्रों को चरित्रवान, सुसंस्कारी नहीं बना सकते। इसलिए देखना यह भी चाहिए कि जहाँ बालक को पढ़ाया जा रहा है, वहाँ का वातावरण कैसा है ? बालक पूर्व जन्मों के संस्कार तो साथ लाता ही है, पर इसके अतिरिक्त अभिभावकों, परिवारों, साथियों, अध्यापकों का भी प्रभाव उस पर पड़ता है। दस वर्ष की आयु तक पहुँचते वह बहुत कुछ बन और ढल चुका होता है। सतर्कता बरते जाने की यही अवधि है।

दस वर्ष से अधिक आयु होती चलती है तो बालक सम्बद्ध समाज से प्रेरणा लेने लगता है। जैसे आचरण-व्यवहार उसे देखने को मिलते हैं, उसकी नकल बनाने में अधिक उत्साह रहता है। चौदह-पन्द्रह वर्षों के उपरान्त किशोरावस्था आरम्भ होती है। इस समय में व्यक्तित्व उभरने लगता है। महत्त्वाकांक्षाएँ जागने लगती हैं। उमंगें उठती हैं और विपरीत लिंग के प्रति कामुक आकर्षण बढ़ने की शुरूआत हो जाती है। कुसंग में अधिक आकर्षण होता है। यदि कड़ी निगरानी न रखी गई तो आवारा साथी उसे कुमार्ग पर घसीट ले जाते हैं। जिन्दगी के बनने-बिगड़ने का यही मोड़ है।

सम्पन्न घरों में लोग अपने बच्चों को महँगे पब्लिक स्कूलों में इसलिए पढ़ने भेज देते हैं कि वहाँ अच्छी शिक्षा-सुविधा एवं विशिष्ट लोगों की मण्डली मिलेगी। यह होते हुए भी दो हानियाँ ऐसी हैं, जिनके कारण वह कदम निरर्थक हो जाता है। एक बात यह कि वे अपने अभिभावकों से बिछुड़ जाते हैं। उन्हें समुचित स्नेह नहीं मिल पाता। दूसरा यह कि बड़े लोगों का वह भाव नहीं रहता जो रहना चाहिए। माता, पिता, भाई, बहिन, चाचा, ताऊ, चाची, मामी आदि सभी अनजान विराने जैसे हो जाते हैं। भावनात्मक सम्बन्ध टूट जाने पर मात्र परिचितों जैसी मनःस्थिति हो जाती है। परिवार के प्रति विरानेपन की मान्यता बन जाती है। यह बीजांकुर बड़े होने पर इस प्रकार पनपते हैं कि पारिवारिक उन्नति-अवगति में उनकी विशेष रुचि नहीं रहती। अपने को अलग इकाई मानकर व्यक्तिगत लाभ-हानि की ही बात सोचने लगते हैं। परिवार को तो अपना निर्वाह भेजते रहने का स्रोत भर मानते हैं। दूसरी हानि यह है कि इन पब्लिक स्कूलों में बड़े आदमियों के लड़के पढ़ते हैं। खर्चीली व्यवस्था का अभ्यास उन्हें पड़ जाता है। अपने को बड़ा आदमी मानते हैं। अपनी एक अलग बिरादरी ही बना लेते हैं। अहंकार भी उसी स्तर का हो जाता है। छोटे लोगों के प्रति उपेक्षा और तिरस्कार की वृत्ति पनपती है। आगे चलकर यह एकता और समता का वातावरण बनाने में उसमें घुल-मिल जाने की प्रवृत्ति को पनपने देने में व्यवधान बनाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अच्छा तो यह है कि अभिभावक अपनी व्यावसायिक व्यस्तता में कटौती करें और खेल-मनोरंजन में उन्हें सहभागी बनाने के लिए अपने को बच्चों जैसी मनःस्थिति में उतने समय के लिए रख लिया करें। स्कूली पढ़ाई में जो कमी रह जाती है, उसकी पूर्ति में उनके साथ रहकर अभ्यास करायें। साथ ही चरित्रनिष्ठा और व्यवहारकुशलता के हर पक्ष पर प्रश्नोत्तर करते हुए उनका कर्त्तव्य ज्ञान बढ़ायें। इससे कम में अभिभावक का उत्तरदायित्व निभता नहीं है। बच्चों के व्यक्तित्व विकास को भी इतना ही जरूरी काम समझा जाय जितना कि व्यवसाय को एवं निजी मनोरंजन को समझा जाता है।

जो हर काम को दूसरों से कराते हैं, जिन्हें नौकर रखने की सुविधा है। वे मात्र स्कूली पढ़ाई पूरी करने के लिए मात्र ट्यूटर ही न रखें, वरन् ऐसे सुयोग्य व्यक्तियों की तलाश करें जो गार्जियन (अभिभावक) की भूमिका भी निभा सकें। अभिभावकों को जिस प्रकार बच्चे साथ रखकर हँसने, खेलने, सीखने, सिखाने का क्रम चलाना चाहिए। वैसा ही वे भी कर सकें। स्कूली फीस, पुस्तकें तथा कापी, कलम आदि जुटाने की जिस प्रकार खर्च का प्रबन्ध किया जाता है, उसी प्रकार एक छोटे बाल मण्डली के पीछे संरक्षक भी रखा जाय तो स्कूल से बचे समय का उस प्रकार उपयोग करायें, जिसमें उन्हें भी भार या बन्धन तो प्रतीत न हो पर बातों ही बातों में, खेल ही खेल में उतनी जानकारी मिलती रहे जो सामान्य ज्ञान की अभिवृद्धि का भी प्रयोजन पूरा करे और साथ ही स्कूली पाठ्यक्रम में जो कमी रह गई थी उसकी पूर्ति होती चले। घर के अभिभावक स्कूल के अध्यापक जिस पद पर रहे होते हैं, इसी प्रकार एक तीसरे मध्यवर्ती संरक्षक की भी आवश्यकता है। कुछ कर्त्तव्य-पालन अध्यापकों से छूट जाता है, कुछ अभिभावकों से। दोनों ही की कमियाँ इस संरक्षक को पूरी करनी है, साथ ही सहचर, सहपाठी जैसी मित्रता का निर्वाह भी करना है। बच्चे का सारा समय तो खप जाय पर उसे यह प्रतीत न हो कि उन्हें सारे दिन बन्धन में जकड़े रहने की स्वतन्त्रता छीन लेने की दुरभिसंधि की गई है। संरक्षण के योग्य वह है, जो हँसाने, खिलाने और पढ़ाने, बनाने की सभी आवश्यकताएँ पूरी करता रहे। समय को देखते हुए ऐसी संरक्षण पद्धति विकसित की जानी चाहिए। इसे अलग-अलग न करके सामूहिक रूप में किया जाय। शान्तिकुंज की बाल संस्कारशाला योजना इसी निमित्त है। इसका महत्त्व समझा जाना चाहिए और कार्यान्वित करने में यदि ढूँढ़-खोज की, व्यवस्था बनाने की, अर्थभार अतिरिक्त रूप से सहने की आवश्यकता पड़े तो उसे बाल-विकास के भारी सत्परिणामों को सोचते हुए करना ही चाहिए। घर के सद्विचारशील और सेवा-निवृत्त सदस्य यदि इस कार्य को अपने जिम्मे ले सकें। घर के बालकों के अतिरिक्त इस मण्डली में पड़ोसियों के बालकों को भी सम्मिलित कर सकें तो और भी अच्छा।

यदि उपरोक्त रचनात्मक कार्य न बन पड़ें तो कम से कम इतना तो ध्यान रखना चाहिए कि बच्चा सुसंस्कारी परिवार के बच्चों के साथ ही मित्रता करे। इसकी आवारा लड़कों के साथ साँठ-गाँठ न होने पाये। उठती आयु का कुसंग उसको दुष्प्रवृत्तियों का अभ्यासी बना देता है और भविष्य को अन्धकार के गर्त में धकेल देता है। इस स्थिति में पड़ने देने से बचाव करने की परिवारीजन तीखी दृष्टि रखें।

शिक्षा सन्दर्भ कुछ समय पहले तक एक ही दिशा में ले जाता था और सीधा-सादा था। पढ़ाई का अर्थ नौकरी। जब तक शिक्षा कम थी और शिक्षित नौकरों की भी सरकारी और गैर-सरकारी संस्थान में आवश्यकता बनी रहती थी, तब तक कोई बात नहीं थी। थोड़ी पढ़ाई का थोड़ा और बड़ी पढ़ाई का बड़ा लाभ मिलता रहता था। किन्तु अब परिस्थितियों में जमीन-आसमान जैसा अन्तर आ गया है। जिस अनुपात से स्कूल-कॉलेज खुल रहे हैं और उनमें से उत्तीर्ण होकर जितनी संख्या शिक्षितों की निकल रही है। इस हिसाब से न स्थान खाली हो रहे हैं और न नये बन रहे हैं। यही कारण है कि शिक्षितों की बेकारी चरम सीमा तक पहुँच रही है। काम न मिलने पर युवा और विकसित बुद्धि वाला व्यक्ति कुछ न कुछ खुराफात सोचता है। वह न चैन से बैठता है न बैठने देता है। इस सम्भावित स्थिति का प्रत्येक अभिभावक और विद्यार्थी को पहले ही अनुमान लगा लेना चाहिए और विकल्प सोचने के लिए मस्तिष्क पर दबाव डालना चाहिए। दूसरे अनुभवी लोगों से इस सम्बन्ध में पूछताछ करनी चाहिए। शिक्षा में समय भी लगता है और पैसा भी। उठती उम्र में इसके लिए घर वाले भी सुविधा दे देते हैं, पर जब आयु बढ़ जाती है और नौकरी कहीं नहीं लगती तब भारी निराशा होती है और साथ ही सम्पर्क क्षेत्र में भर्त्सना भी सहनी पड़ती है। अच्छा हो कि यह स्थिति आने ही न पाये। पहले से ही यह सोचना चाहिए कि नौकरी नहीं मिलेगी, तब जो काम करना पड़े, उसे आरम्भ से ही सीखना चाहिए। शिल्प व्यवसाय में अभी भी गुंजाइश है। भविष्य में भी रहेगी। अपना देश कृषि प्रधान है। इसमें खेती, पशु-पालन, परिवहन के लिए अधिक अच्छी तरह काम करने की अभी भी गुंजाइश है और आगे भी रहेगी। पैतृक धन्धा यदि समय के अनुरूप है तो उसे करके अभिभावकों का हाथ बँटाया जा सकता है। उसमें उन्नत तरीकों का समावेश करके अधिक लाभदायक बनाया जा सकता है। भवन-निर्माण, जल-व्यवस्था के लिए पम्प, सैप्टिक टैंक वाले पाखाने, शुद्ध खाद्य-पदार्थों के सहकारी स्टोर, कपड़ों की धुलाई, डेरी आदि कितने ही काम अब ऐसे निकलते आ रहे हैं, जिनकी आवश्यकता समय की प्रगति के साथ बढ़ी है। कुछ समय पहले उनकी ओर ध्यान भी नहीं दिया जाता था और भारी गरीबी के कारण मजबूरी भी थी, पर अब ऐसे उद्योगों के लिए गुंजाइश बन रही है, जो बड़े गाँवों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और कस्बों में आरम्भ किये जा सकते हैं, चल भी सकते हैं।

बच्चों की प्राथमिक शिक्षा तो अनिवार्य है। माध्यमिक शिक्षा को पूरी करने तक भी बच्चों की आयु इतनी नहीं हो पाती कि वे शिल्प व्यवसाय की बारीकियों को समझ सकें और मन लगाकर सतर्कतापूर्वक उनका अभ्यास कर सकें, किन्तु माध्यमिक शिक्षा पूरी करने के उपरान्त उनकी शारीरिक और मानसिक स्थिति ऐसी हो जाती है कि वे नौकरी न मिलने की दशा में वैकल्पिक कारोबार के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार कर सकें और स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप किसी सुलभ निष्कर्ष पर पहुँच सकें।

आवश्यक नहीं कि अपने वैकल्पिक व्यवसाय चयन के अनुरूप सरकारी शिक्षा व्यवस्था ही हो। यदि है भी तो उसमें काम के विषय कम और जंजाल अधिक होते हैं। दूर भेजने पर खर्च भी पड़ता है और संरक्षण के अभाव में कुसंग में पड़कर दुर्गुण सीख लेने का भी जोखिम रहता है। इसलिए यह उत्तम है कि किसी चलते कारोबार में इस तरह साथ लगा दिया जाय कि भले ही वेतन न मिले और उस कारोबार में संचालक जी खोलकर उतार-चढ़ाव की शिक्षा देते रहें। तान्त्रिकों, मान्त्रिकों की तरह शिल्पी भी ऐसा सोचते हैं कि नये लोग कारोबार में प्रवेश करेंगे तो उन्हें प्रतिद्वन्द्विता का सामना करना पड़ेगा और आजीविका घट जायेगी। यदि कोई कारोबार बढ़ता है तो उसका उपयोग नये लोगों की समझ में आता है और प्रचलन बढ़ने से उसमें अभिवृद्धि ही होती है। अर्थोपार्जन के लिए हमें बदलते हुए समय के अनुरूप नये कारोबार की खोज करनी चाहिए और उस उत्पादन पर ध्यान देकर ऐसी प्रवीणता प्राप्त करनी चाहिए जो नौकरी नर्सरी का एक नया उद्योग ही अगले दिनों विकसित होने वाला है। किसान मात्र अन्न उगाने के साथ ऐसी दूसरी जिन्सें भी पैदा करेंगे जो अधिक लाभ देती हैं, जिनकी बाजार में अभी कमी है।

कॉलेज में शिक्षा उन्हीं लोगों को ग्रहण करनी चाहिए जो बढ़ी हुई बौद्धिकता की योग्यता का कोई उच्चस्तरीय उपयोग कर सकते हैं। डॉक्टर, इन्जीनियर आदि बन सकते हैं। सरकारी उच्च अफसर बनने के सपने जितने कम विद्यार्थी और उनके अभिभावक देखना बन्द करें, उतना ही अच्छा है। हवा का रुख बदलते देखकर अपनी कार्यपद्धति को बदल लेने में ही बुद्धिमानी है।

बच्चों का विवाह तब करना चाहिए जब वे कमाने लगें। पत्नी का खर्च अपनी निजी कमाई से चलाने लगें। इससे पूर्व विवाह कर देना उनकी शिक्षा और प्रगति में बाधा डालना है। चित्त दो ओर बँट जाने से दोनों ही कार्य अधूरे रह जाते हैं। समग्र सफलता के लिए यह आवश्यक है कि तन्मयतापूर्वक किसी एक ही कार्य में लगे रहा जाय। कच्ची आयु में विवाह हो जाने पर शरीर की क्षीणतावाली बात तो शीशे की तरह स्पष्ट है। शरीर और मन को असमय में ही कोंचने-कचोटने लगना उन्हें गिराने-जलाने के बराबर है।

ज्ञान वृद्धि के माध्यम विद्यालय नहीं पुस्तकालय हो सकते हैं। स्कूलों में पाठ रटाये जाते हैं ताकि परीक्षा के समय स्मृति के आधार पर उनके उत्तर लिखे जा सकें। पढ़ाई में कई तरह-तरह की जानकारियाँ तो होती हैं, पर जीवन में निरन्तर काम आने वाले विषयों से सम्बन्धित उतार-चढ़ावों का उनमें कोई उल्लेख नहीं होता। इसके अतिरिक्त किसी जिज्ञासु की किसी विषय विशेष में अतिरिक्त अभिरुचि है और वह उसमें प्रवीण-पारंगत होना चाहता है तो भी उसकी इच्छा की पूर्ति स्कूली किताबों से नहीं हो सकती क्योंकि उसमें अनेक विषयों का चुंचु प्रवेश मात्र ही होता है। प्रवीणता उपलब्ध करने के लिए यह आवश्यक है कि अभीष्ट विषयों में कितने ही लेखकों की कितनी ही पुस्तकें पढ़ी जायें ताकि उनमें पाये जाने वाले विशेष प्रतिपादनों और मतभेदों को भी समझने का अवसर मिले। यह कार्य समर्थ पुस्तकालयों में ही हो सकता है। इतनी अधिक पुस्तकें खरीद सकना सामान्य स्थिति के व्यक्ति के बलबूते की बात भी तो नहीं है।

जिस प्रकार नित्य भोजन किया जाता है उसी प्रकार मानसिक उत्कर्ष के लिए उपयोगी स्वाध्याय भी आवश्यक है। यह क्रम निरन्तर चलना चाहिए। स्वाध्याय में उसी प्रकार प्रमाद नहीं किया जाना चाहिए जैसे—सोने, खाने, नहाने, मल-मूत्र त्यागने जैसे नित्य कर्मों की उपेक्षा नहीं की जाती। स्वाध्याय के लिए ऐसा साहित्य चुना जाना चाहिए जो उपयोगी जानकारियाँ देता हो और जीवन को आदर्शों की, सत्प्रवृत्तियों की ओर घसीट ले जाता हो।

विद्यालय गाँव-गाँव खुलने के लिए उत्साह पाया जाता है। इससे भी बढ़कर पुस्तकालयों पर ध्यान दिया जाना चाहिए, जिनमें उपयोगी विषयों की चुनी हुई पुस्तकें हों। पुस्तकालयाध्यक्ष ऐसा होना चाहिए, जो हर शिक्षित के रुझान से तालमेल बिठाते हुए प्रगतिशील साहित्य का परामर्श दे सके और पढ़ने के लिए उत्साह, फलश्रुतियाँ बताते हुए उत्पन्न कर सके। इस प्रयोजन की पूर्ति में झोला पुस्तकालय या चल पुस्तकालय का स्वरूप अति उत्तम है, जिसमें हर शिक्षित को घर बैठे उपयोगी साहित्य उपलब्ध करते रहने का निरन्तर लाभ मिलता रहता है। स्कूली पढ़ाई पूरी करने के बाद ज्ञान वृद्धि का सिलसिला समाप्त न कर दिया जाय, वरन् उसे पुस्तकालय के माध्यम से आजीवन गतिशील रखा जाय। युवावस्था में तो यह उत्साह बढ़ी-चढ़ी स्थिति में रहना चाहिए, ताकि भावी जीवन के लिए समुचित मात्रा में उपयोगी ज्ञान सम्पदा संचित होती रह सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रजनन—एक आमन्त्रित संकट

सीताजी की अग्निपरीक्षा की तरह अब भी नारियों को जीवन में कई बार ऐसे ही धर्म-संकटों में फँसना पड़ता है। वह परीक्षा है—प्रसव वेदना। छोटे-मोटे आपरेशनों के लिए सुन्न करने या बेहोशों की दवा देने का प्रचलन है। किन्तु प्रसव के मेजर आपरेशन जैसा होते हुए भी सुँघाने या सुन्न करने की मनाही है क्योंकि बालक पेट से बाहर निकलने के लिए जब कठोर संघर्ष करता है, तो उसकी उत्तेजना से प्रजनन अंगों को फैलने का अवसर मिलता है। सुन्न कर देने पर माता की ओर से अपना पक्ष पूरा किया जाना सम्भव नहीं हो पाता। नवागन्तुक बालक अकेले का पुरुषार्थ उसे बाहर आने में सफलता प्रदान नहीं करता। इसलिए वेदना निग्रह की दवा उस समय नहीं दी जा सकती। इससे बच्चे को शारीरिक एवं मानसिक क्षति हो सकती है और अपंगता एवं बुद्धि मन्दता जैसी कोई विपत्ति बच्चे के पीछे जीवन भर के लिए जम सकती है।

जिन महिलाओं के शरीर सुदृढ़ हैं और गर्भकाल में भी किसान मजदूरों जैसा परिश्रम या व्यायाम करती हैं, उनकी नस-नाड़ियाँ इस योग्य बनी रहती हैं कि वे प्रसव वेदना सहते हुए भी उसके कारण होने वाली क्षति की पूर्ति कर सकें किन्तु जो लड़कियाँ छोटे कद की, कम आयु की एवं भावुक प्रकृति की होती हैं, उनके लिए इस आपरेशन का कष्ट असाधारण कष्टकर होता है, विशेषकर पहली बार। लम्बे समय तक—कई-कई दिन पीड़ा चलने की सम्भावना देखकर बुद्धिमान डाक्टर अपवाद स्वरूप पेट का 'सीजेरियन आपरेशन' करके बच्चे को बाहर निकाल देते हैं। इसमें बेहोश करने की अवधि थोड़ी होती है। इसलिए बच्चे पर अधिक बुरा असर पड़ने की आशंका नहीं रहती। जिन्हें यह ''सुविधा'' साधन न होने एवं दुर्गम स्थान होने के कारण प्राप्त नहीं है, उन्हें 'प्रसव : नया जन्म' की कहावत चरितार्थ करनी पड़ती है। अनेक महिलाएँ इसी वेदना में दम तोड़ देती हैं।

बाहर रहने वाले लोगों को उस कष्ट की अनुभूति नहीं होती। प्रजनन के कारण इसे स्वाभाविक माना जाता है। पर दाइयाँ जानती हैं कि इस कारण जननी के अवयव कितने क्षत-विक्षत हो जाते हैं, कितना रक्त निकलता है और उन जख्मों को भरने में कितना समय लगता है ? यह जख्म भरने की क्रिया सही रीति से सम्पन्न न हो तो सैप्टिक होने तथा इसके बाद जन्म भर के लिए श्वेत प्रदर जैसी व्यथाएँ लग जाने और उनके कारण शरीर खोखला होते रहने का डर रहता है। गुर्दे की, मूत्राशय की, अन्यान्य उदर के नीचे भाग से सम्बन्ध रखने वाले अवयवों को कोई और व्याधि लग सकती है और वह जन्मभर चलती रह सकती है।

यह सम्भावनाएँ प्रथम प्रसव (प्राइमीपेरा) में तो विशेष रूप में रहती है। किन्तु आगे की संतानों में भी यह खतरा सर्वथा समाप्त नहीं हो जाता है जितने अधिक बच्चे होते हैं, वे उतनी ही बार पाचन-तन्त्र आँतों, मूत्राशय, गुर्दे, जननेन्द्रिय की माँसपेशियों पर दबाव डालते हैं और हर बार यह आशंका रहती है कि इन अंगों में से कोई रोगग्रस्त न हो जाय।

पेट में नौ महीने बालक रहता है। इतने दिनों में उसका शरीर माता के शरीर में से ही कटकर बनता है। अतः दुर्बलता आना स्वाभाविक है। बच्चे के बढ़ने के साथ-साथ आमाशय और आँतों पर दबाव बढ़ता है। फलतः भूख कम लगती है। पाचन ठीक से नहीं होता। अतएव नया रक्त माँस बनने की प्रक्रिया में कटौती हो जाती है। अपच से और भी कई तरह की विकृतियाँ बनती हैं। उन दिनों तेज दवा भी नहीं दी जा सकती। इससे उदरस्थ बच्चे पर बुरा असर पड़ने की आशंका रहती है।

अच्छा हो डिलेवरी किसी अच्छे अस्पताल में ही कराई जाय। गाँव की दाइयों के मैले हाथ और नाल काटने के गन्दे औजार टिटनिस जैसी बीमारियाँ लगा सकते हैं और बच्चे तथा जननी दोनों के लिए संकट खड़ा कर सकते हैं।

प्रजनन के उपरान्त जननी की शारीरिक, मानसिक क्षति की पूर्ति होना भी एक समस्या है। हल्का किन्तु पौष्टिक भोजन दूध, फल आदि ही हो सकते हैं। उसकी व्यवस्था साधारण आर्थिक स्थिति के परिवार में नहीं हो सकती। घी मिले ही पदार्थ पौष्टिक समझे जाते हैं परन्तु गरिष्ठ होने के कारण ठीक तरह पचते नहीं और लाभ के स्थान पर हानि करने लगते हैं। प्रसूतिगृह के घरों में उतनी स्वच्छता भी नहीं रह पाती जितनी कि जननी और नवजात शिशु के लिए आवश्यक है।

प्रसव का शरीर पर ही नहीं मस्तिष्क पर भी दबाव पड़ता है। फलतः सिरदर्द, घुमेड़, नींद का कम आना, बुरे सपने दीखना जैसी मानसिक विकृतियाँ बहुधा दीख पड़ते हैं। भावुक महिलाएँ इस अग्निपरीक्षा से अत्यधिक भयभीत हो जाती हैं और मानसिक सन्तुलन खो बैठती हैं। उनमें न्यूनाधिक मात्रा में विक्षिप्तता के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं। आवेश में रूठने का, रोने का, भूलने का, कुछ का कुछ कह बैठने का नया परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगता है। यदि वह स्थिति परिवार वाले मिल-जुलकर सँभाल न लें तो भविष्य में किसी छोटे-बड़े मानसिक रोग की भी आशंका रहती है।

अपने देश में बुढ़ियाओं को, विवाह के तुरन्त बाद बच्चे होने की प्रतीक्षा रहती है। देर होने पर वे देवी-देवताओं की मनौती मनाने लगती हैं। लड़का ही होना चाहिए। लड़की न हो। लड़की होने पर उस जननी तथा बच्ची का तिरस्कार होता है। उनकी उपेक्षा होने लगती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसका बुरा असर जननी पर पड़ता है और उसकी शारीरिक और मानसिक क्षति पूरी होने में और भी अधिक कठिनाई पड़ती है।

कई बार प्रसव भय जननी के मन में बुरी तरह समा जाता है और उनकी कामवासना ही समाप्त हो जाती है। वे उस संकट के फिर आने की कल्पना से अपना प्राण बचाती फिरती हैं। फलतः इसी प्रश्न को लेकर पति-पत्नी में मन-मुटाव रहते देखा जाता है, जो छोटे-छोटे कारणों को लेकर कलह रूप में फूटता है। नीरसता छाने लगती है।

देश की वर्तमान स्थिति में कम से कम अगले बीस वर्षों तक प्रजनन पूरी तरह बन्द रखे जाने की जरूरत है। इसे नासमझ तो नहीं पर समझदार तो कर ही सकते हैं। पुरुषों का फैमिली प्लानिंग कम जोखिम और कम कष्ट का है। फिर भी उन्हें डर लगता हो तो महिलाओं को करा लेना चाहिए।

जनगणना के हिसाब से इन दिनों अपने यहाँ १००० पुरुषों के पीछे ८२३ महिलाएँ हैं। कारण कि कितनी ही महिलाएँ प्रसवकाल में या उसके बाद अपने प्राण गँवा बैठती हैं। संख्या असन्तुलन को देखते हुए अब लड़कियों की आवश्यकता अधिक है और लड़कों की कम तो भी रूढ़-मान्यताओं के आधार पर हर कोई लड़का चाहता है। उनसे वंश चलते और बुढ़ापे का सहारा होने की आशा करता है। यह दोनों ही आशाएँ समय को देखते हुए सर्वथा निरर्थक हैं। फिर भी पुरानखण्डी सड़े दिमाग के नर-नारी बेटा होने की ही रट लगाये रहते हैं। लड़की होने पर वधू का और उन निर्दोष बच्चे का तिरस्कार करते हैं।

वर्तमान स्थिति को देखते हुए प्रजनन में अधिक उत्साह दिखाने से जननी का स्वास्थ्य चौपट होता है। पिता पर आर्थिक संकट चढ़ता है। परिवार की आवश्यकताओं में कटौती होती है। बच्चे को सुविधा-साधन न मिलने से उनका भविष्य खराब होता है। बढ़ती हुई आबादी देश की प्रगति में सबसे बड़ी बाधक है। इन सब बातों को देखते हुए उचित यही है कि प्रजनन का संकट बुलाकर अकारण मुसीबत मोल न ली जाय। पति चाहें तो पत्नी को इस संकट से थोड़ी-सी बुद्धिमत्ता एवं सहानुभूति का परिचय देकर सहज बचा सकता है।

आमन्त्रितों को दुर्दशा के गर्त में न धकेलें

मेहमानों को आमन्त्रित करने से पूर्व सभी विचारशील यह प्रबन्ध करते हैं कि आगन्तुकों को बिठाने और उनको खिलाने आदि का प्रबन्ध करके रखा जाय वैसे अविवेकी थोड़े ही होते होंगे जो प्रीतिभोज का ही नहीं, स्थाई रूप से उनके घर निवास करने की बात भी कहें। पर जब वे लोग नियत समय पर घर आ पहुँचे तो बगलें झाँकें और उन बेचारों को तिरस्कार की, अस्त-व्यस्तता की स्थिति में डालकर हैरान करें। इस सन्दर्भ में आमतौर से सभी बुद्धिमान व्यक्ति सावधानी बरतते हैं और वैसा कदम उठाने से पूर्व आवश्यक प्रबन्ध कर लेते हैं।

यह सावधानी न जाने क्यों बच्चे उत्पन्न करने के सम्बन्ध में नहीं बरती जाती। ये नवागन्तुक अपने आप नहीं आ टपकते वरन् आग्रहपूर्वक निमन्त्रण देकर बुलाने पड़ते और नियत समय पर उनके पधारने की प्रतीक्षा होती रहती है। दिन गिने जाते रहते हैं पर जब वे आ विराजते हैं, तब लगता है कि अदूरदर्शिता बरती गई। उन्हें बिठाने, खिलाने, स्वागत, आतिथ्य करने का प्रबन्ध नहीं बना तो उन्हें क्यों बुलाया जाना चाहिए ? बिना उन्हें आमन्त्रित किये क्या हर्ज हो रहा था ? न बुलाते तो किसे क्या दबाव पड़ रहा था ? बुला लेने पर अपने को क्या उन आगन्तुकों ने भला मनाया।

भारत गरीब देश है। उसकी जनसंख्या पहले से ही इतनी बढ़ी हुई है कि जो हैं उन्हीं का गुजारा भारी पड़ रहा है फिर नयों को बुलाकर अपने लिए, नये आगन्तुकों के लिए तथा समूचे समाज के लिए आफत उत्पन्न करने का कोई तुक रहता नहीं। वर्तमान पीढ़ी के लिए अन्न, वस्त्र, निवास, शिक्षा, चिकित्सा, आजीविका, जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं के लिए साधन नहीं तो फिर अन्य हिस्सेदारों को बुलाकर जो वर्तमान लोगों के हिस्से में आना है, उसमें और अधिक कटौती होती है, जो ऐसी मुसीबत उत्पन्न करते हैं, उनकी नादानी पर दुःख ही व्यक्त किया जा सकता है।

जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में भारत का स्थान दूसरा है। १९९६ के प्रारम्भ में भारत की जनसंख्या लगभग ९० करोड़ तक पहुँच चुकी है। इस समय भारतवर्ष की जनसंख्या में प्रतिवर्ष लगभग एक करोड़ दो लाख वृद्धि हो रही है। हर सेकण्ड में २ बच्चे पैदा हो रहे हैं। आबादी की यह सालाना वृद्धि देश की राजधानी दिल्ली की कुल आबादी की दुगुनी है। जनसंख्या की इस वार्षिक वृद्धि से अतिरिक्त साधनों की भी वार्षिक आवश्यकता बढ़ती जा रही है जैसे एक लाख तीस हजार स्कूल खोले जायें, तीन लाख चार हजार अतिरिक्त अध्यापक हों, एक करोड़ ढाई लाख क्विंटल अतिरिक्त अनाज, पन्द्रह लाख चालीस हजार मीटर अतिरिक्त कपड़ा, बत्तीस लाख सरसठ हजार अतिरिक्त नौकरियाँ हों। बहुत प्रयत्न करने पर भी इतने अभावों की पूर्ति हर साल होते चलने और चक्रवृद्धि गति से बढ़ने वाली नई जनसंख्या की आवभगत का कहीं कोई प्रबन्ध बनते दीख नहीं रहा है।

ऐसी दशा में स्वाभाविक है कि पुराने निवासियों की मुसीबत बढ़े और नये लोग त्रास सहें। गरीबी का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सबसे अधिक भार बालकों पर पड़ता है, क्योंकि उनकी कोमलता, असमर्थता को देखते हुए जितनी देखभाल एवं साधन-सुविधा की आवश्यकता है, वह न मिल सके तो उन बेचारों को अपने शारीरिक, मानसिक विकास से वंचित रहकर अन्धकार भरे भविष्य की ओर रेंगना होता है। बड़ी आयु के तो कुछ कर भी सकते हैं। अपनी आवश्यकता बताने और जुटाने की भी क्षमता होती है पर असमर्थ बालक तो सर्वथा पराधीन होते हैं। संरक्षकों, अभिभावकों के पास यदि उनकी सहायता करने के लिए समय, कौशल, साधन न हों तो फिर इन नवागन्तुकों का दुर्दशाग्रस्त होना स्वाभाविक है। वैसा ही हो भी रहा है।

केन्द्रीय सरकार की एक रिपोर्ट के अनुसार देश में ६ वर्ष तक की उम्र के बच्चों की संख्या ग्यारह करोड़ पचास लाख है, जिनमें से चार करोड़ साठ लाख घोर दरिद्रता का जीवन बिता रहे हैं। इसी प्रकार एक आँकड़े के अनुसार भारत में १४ वर्ष तक की आयु के २५ करोड़ ६६ लाख बच्चे हैं, जिनमें लगभग ११ करोड़ ९० लाख बच्चे निर्धनता की रेखा से भी निम्न स्तर का जीवनयापन कर रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्रसंघ ३२ देशों में ही बाल-कल्याण का ठोस कार्य कर पा रहा है, पर ४३ देश ऐसे हैं जिनमें बच्चों की वर्तमान स्थिति बड़ी दयनीय है—उनमें अफगानिस्तान, बंगलादेश, वर्मा, बुरून्दी, चाड, केन्द्रीय अफ्रीका साम्राज्य, यमन, मिश्र, उत्तरी कोरिया, जाम्बिया, घाना, ग्वाटेमाला, गाइना, गाईनाबिसाऊ, होंडुरास, आइवरी कोस्ट, केनिया, मेडागास्कर, माली, नेपाल, नाइजीरिया, पाकिस्तान, श्रीलंका, सूडान, युगाण्डा, कैमरून, तंजानिया तथा भारत भी है। विश्व का सम्पन्न वर्ग बाल-कल्याण के लिए उदासीन है।

ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले चौदह वर्ष तक के १६ करोड़ बच्चों को सुरक्षित पानी भी उपलब्ध नहीं है। १ लाख १३ हजार गाँवों में पीने का पानी या तो १.६ किलोमीटर दूर है या विषाक्त रूप में प्राप्त है, जो हैजा, कृमि या रसायन की अधिकता और न्यूनता के लिए उत्तरदायी है। अन्य २ लाख १४ हजार गाँवों में जहाँ कुआँ, नदियाँ, नालों, तालाबों से पर्याप्त मात्रा में पानी तो मिलता है पर ये भी प्रदूषित अवस्था से प्राप्य है। १ लाख ८५ हजार गाँवों में पानी की आपूर्ति अपर्याप्त और असुरक्षित है।

भारत में कुल मृत्युओं की संख्या ४० प्रतिशत पाँच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की होती है और इन मृत्युओं में भी आधी संख्या तो एक वर्ष से भी कम उम्र के बच्चों की होती है।

एक वर्ष से कम उम्र वाले बच्चों की ५० प्र. श. मृत्यु अतिसार के रोगों के कारण होती है। एक से चार वर्ष के बच्चों की मृत्यु श्वसन, पाचन तथा कीटाणु वाले रोगों के कारण होती है।

स्कूल जाने वाले बच्चों में से ३० प्रतिशत किसी न किसी तरह के रोग से ग्रस्त पाये जाते हैं।

भारत की लगभग ८० प्र. श. जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। लेकिन उन क्षेत्रों के अस्पतालों में मात्र ३० प्र. श. मरीजों को रखने की व्यवस्था है तथा देशभर के २० प्रतिशत डाक्टर उनकी सेवा के लिए उपलब्ध हैं।

सरकार द्वारा कई स्वास्थ्य केन्द्र भी इन क्षेत्रों में ग्रामीणों की स्वास्थ्य सेवा के लिए खोले गए हैं, हर वर्ष खोले जाते हैं परन्तु गाँवों से उनकी औसत दूरी १० किलोमीटर से भी अधिक होने के कारण आम लोग इससे लाभान्वित नहीं हो पाते। प्रसव के समय बहुत कम स्त्रियों को विशिष्ट सहायता मिलती है।

देश में लगभग २५ करोड़ बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मात्र २५ बच्चों के बड़े अस्पताल और ४२४ बाल-चिकित्सा वार्ड हैं, जहाँ ९,३०० रोगग्रस्त बच्चों को रखने की सुविधाएँ हैं। ये सारी सुविधाएँ न्यूनतम आवश्यकता की मात्र ५० प्र. श. ही हैं। वे सुविधाएँ गाँव से बहुत दूर पर स्थित हैं। बिहार, उड़ीसा और हरियाणा में तो एक भी बच्चों का अस्पताल नहीं है।

ब्रिटेन से प्राप्त सूचना के अनुसार प्रतिवर्ष दुनिया के लगभग १ करोड़ २० लाख बच्चे पोलियो आदि निरोधात्मक रोगों से मर जाते हैं। अन्य एक और सूचना के अनुसार पोलियो, तपेदिक, टिटनिस, डिप्थेरिया, काली खाँसी तथा छोटी माता जैसे रोगों से प्रतिवर्ष विश्व के ५० लाख बच्चे पर्याप्त संरक्षण के अभाव में एक वर्ष होते ही मर जाते हैं। इसी कारण से १५ वर्ष की उम्र तक के लगभग १ करोड़ २० लाख बच्चे हर वर्ष इन रोगों से मर जाते हैं।

राष्ट्रसंघ की रिपोर्ट के अनुसार संसार में २५ करोड़ बच्चों के लिए शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है। तथा विश्व में १ अरब ५० करोड़ ऐसे अशक्त, अनपढ़ तथा दरिद्र व्यक्ति हैं, जिनके भरण-पोषण का कोई प्रबन्ध नहीं है। उनके बच्चों की क्या गति होगी, यह एक विचारणीय प्रश्न है।

गरीब देशों में, धनी देशों की तुलना में शिशु मृत्यु-दर ८ गुनी अधिक है और शिशु के बच जाने पर उसकी औसतन आयु ३० वर्ष से अधिक नहीं है। पिछड़े देशों में ९० प्रतिशत लोगों के लिए १० किलोमीटर के भीतर चिकित्सा केन्द्र नहीं है। ९७ ऐसे पिछड़े देश हैं जिनकी देहाती आबादी के ९५ प्रतिशत के लिए शुद्ध पेयजल भी प्राप्य नहीं है। विश्व में ८० प्रतिशत बीमारी, रोग तथा मृत्यु का कारण शुद्ध पेयजल का अभाव है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गरीब देशों में १५ वर्ष तक की उम्र के ५० प्रतिशत बच्चे अनपढ़ हैं। यदि यही क्रम रहा तो १९९५ तक विश्व के ६-११ वर्ष की उम्र वाले बच्चों में, प्रति दस बच्चों के पीछे केवल तीन ही शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे। सन् १९८१ में विश्व भर में स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या एक मोटे आँकड़े के अनुसार ३१ करोड़ २० लाख थी और स्कूल जाने की उम्र होते हुए न जाने वालों की संख्या ३६ करोड़ ९० लाख से भी अधिक थी।

सन् १९६० में विश्व में अशिक्षित बच्चों की संख्या ७० करोड़ थी तथा १९७० में यह संख्या बढ़कर ७५ करोड़ ६० लाख हो गई। सन् १९६९-७१ के बीच अशिक्षित लड़कों की संख्या में मात्र १ करोड़ १० लाख की वृद्धि हुई जबकि अनपढ़ लड़कियों की संख्या में ४ करोड़ ५० लाख की वृद्धि हुई। लगभग यही क्रम गत दशक १९७०-१९८१ में भी रहा है जबकि उसी अनुपात में आबादी बढ़ी है। एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व में इस समय ११० करोड़ व्यक्ति अशिक्षित हैं। इनमें से लगभग तीस करोड़ तो हमारे ही हिस्से में आते हैं।

लन्दन विश्वविद्यालय की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व में ३५ करोड़ बच्चे पौष्टिक भोजन, स्वस्थ स्थान, शुद्ध पेयजल तथा शिक्षा के अभाव से ग्रस्त हैं और इसी स्थिति के कारण उनकी शीघ्र मृत्यु हो जाती है या वे मानसिक दृष्टि से गई-गुजरी स्थिति में जीवन बिताते हैं।

यह एक स्मरणीय तथ्य है कि वर्ष १९८१ विश्व बाल वर्ष के रूप में मनाया गया। इस वर्ष संसारभर में १२ करोड़ २० लाख शिशु जन्मे। उनमें से १ वर्ष के भीतर १ करोड़ २२ लाख बच्चे मर गए। विश्व में प्रतिदिन ३५ हजार बच्चे इसी प्रकार मृत्यु के मुँह में चले जाते हैं।

सन्तानोत्पादन से पूर्व नवागन्तुकों की व्यवस्था कर सकने में असमर्थ बुद्धिहीन जीवधारी हो तो एक बात है पर मनुष्य जैसे बुद्धिमान समझे जाने वाले प्राणी के लिए सर्वथा अशोभनीय है। बहुप्रजनन की प्रवृत्ति निर्दयतापूर्वक कुचलकर रख देती है। मक्खी-मच्छरों के झुण्ड और श्वान-विलावों के बच्चे ऐसे ही ठण्ड से अकड़कर, पहियों के नीचे कुचलकर, भूख से तड़पकर मरते देखे जाते हैं। यदि इसी निमित्त मनुष्य भी अविवेकपूर्ण प्रजनन करे और अपनी सन्तान को दुर्दशाग्रस्त देखें तो उसकी मूर्खता ही नहीं, दुष्टता भी कही जायेगी।

सन्तान को सुसंस्कारवान भी बनायें

बच्चों पर एक वर्ष से लेकर दो वर्ष की आयु के मध्य से सम्पर्क का प्रभाव पड़ना शुरू हो जाता है और वह अठारह वर्ष की आयु होने तक तेजी से चलता रहता है। इसलिए यह आयु व्यक्तित्व के निर्माण की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

स्कूली पढ़ाई का अपना महत्त्व है। उसके पाठ्यक्रम से कई प्रकार की जानकारियाँ मिलती हैं। पर जहाँ तक स्वभाव का सम्बन्ध है वह सम्पर्क से बनता-बिगड़ता है। सहपाठियों से, अध्यापकों से बच्चा बहुत कुछ सीखता है। पाठ्य-पुस्तकों का मूल्य उसकी तुलना में बहुत कम है।

बच्चों का आरम्भिक भाषा-ज्ञान घर-परिवार के लोगों द्वारा ही सीखने को मिलता है। घर के लोग जो भाषा बोलते हैं, उसे बच्चे सहज ही सीख जाते हैं। तब तक न स्कूल जाते हैं और न पुस्तक पढ़ते हैं पर भाषा-ज्ञान परिवार का अनुकरण करके ही बालकों को उपलब्ध हो जाता है। कहीं-कहीं घर वालों से एक और बाहर वालों से दूसरी भाषा बोलनी पड़ती है। ऐसी दशा में उन्हें दो भाषाओं में वार्तालाप करने में भी कठिनाई होती है। शब्दकोश को बड़ा बनाना और व्याकरण की त्रुटियों को निकालना, यह काम स्कूल में होता है पर कामचलाऊ भाषा-ज्ञान वे तीन वर्ष के होने तक सीख जाते हैं। इन दिनों उनके सीखने की क्षमता व आकांक्षा बहुत तीव्र होती है। भाषा के अतिरिक्त रहन-सहन, पहनाव-उढ़ाव, खान-पान आदि सम्बन्धी ढेरों बातें हैं, जो परिवार के लोगों तथा साथी बच्चों से उन्हें सीखने को मिल जाती हैं। व्यक्तित्व की ढलाई का शुभारम्भ यहीं से होता है। स्कूल जाने से पहले वे पड़ौस के बच्चों के साथ खेलने जाते हैं। इसमें उनके अनुकरण से ढेरों बातें सीखते हैं। अब स्कूली समय आता है। इसमें वे आपस में अपने व्यक्तित्व की छाप दूसरों पर छोड़ते हैं। किताबें हर बच्चे की अलग-अलग होती हैं। पढ़ते तो वे उन्हीं को हैं पर क्लास का, स्कूल का वातावरण अलग ही होता है। इस सामूहिक परिवार का असाधारण प्रभाव एक-दूसरे पर पड़ता है, इसमें सिखाया नहीं सीखा जाता है। इसमें लड़के क्या करते हैं, इसको ढेरों तरह से वे देखते हैं और उनमें से जो आकर्षक लगती हैं उनकी नकल करते हैं। सहपाठियों की गतिविधियों में ढेरों आकर्षक लगते हैं, ढेरों अनाकर्षक। बिना किसी के कहे-समझाये हुए भी आकर्षक गतिविधियों को लड़के एक-दूसरे से ग्रहण करने लगते हैं। इस प्रकार परिवार-पड़ौस की संस्कृति से बाहर निकलते ही स्कूली संस्कृति में प्रवेश पाते हैं। सीखने की द्रुतगामी पीढ़ी इन तीन क्षेत्रों में इतना सीख लेती है, जितना गुरुजनों के उपदेश या पाठ्य-पुस्तकों का प्रशिक्षण भी उन्हें सिखा नहीं पाते।

बात आरम्भिक कक्षाओं की ही नहीं कही जा रही है। महत्त्वपूर्ण किशोरावस्था को माना जा रहा है। छोटे बच्चों में तेजस्विता नहीं होती। समझाने या धमकाने से अक्ल बदल जाती है किन्तु किशोरावस्था में नया रक्त होता है। निज की बुद्धि होती है और निज की पसन्दगी। वे जो बात पसन्द करते हैं उसके लिए आग्रही हो जाते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। रोकने पर अपना अपमान अनुभव करते हैं और विद्रोह पर उतर आते हैं। बड़ों से लड़ना-झगड़ना नहीं बन पड़ता तो मौन हो जाना, रोटी न खाना, रूठकर घर से चले जाना जैसे टेड़े रास्ते अपनाते हैं। प्रकारान्तर से यह विद्रोह का रास्ता है और रोकने-समझाने वालों को दबाने, मजबूर करने का ढंग है। तर्क करने और विवेकपूर्वक किसी निष्कर्ष तक पहुँचने की क्षमता विकसित नहीं होती। सही बात के लिए समझाना, रोकना भी उन्हें अपमान लगता है। यह असमंजस भरी परिस्थिति ऐसी होती है, जिससे सहसा समझ में नहीं आता कि क्या किया जाय और क्या न किया जाय ?

छोटी आयु में शारीरिक गन्दगी लपेटे रहने वाले, कटु या अश्लील वचन बोलने वाले, शिष्टाचार उल्लंघन करने वालों की संगति से बच्चों को दूर रखना चाहिए। ये आदतें छोटेपन में ही पीछे पड़ जायें तो बड़ी आयु में पककर दुःख देती हैं। भूख न होने पर भी बार-बार खाना माँगने, कुछ न कुछ सदा खाते ही रहने की आदत उनका पेट खराब करके तरह-तरह की बीमारियाँ पीछे लगा देती हैं। इसी प्रकार किशोरावस्था में बड़े आदमियों के लड़कों के साथ रहने, उनसे दोस्ती गाँठने के पीछे भी कई खतरे हैं। यहाँ बड़े आदमियों से मतलब मालदार आदमियों से है, वे अपने बड़प्पन को फिजूलखर्चों में दिखाते हैं। पैसे का भी एक अहंकार होता है। ओछी प्रकृति के आदमी उसे दिखाये बिना रह नहीं सकते। वे जिस प्रकार स्वयं ढेरों प्रकार की फिजूलखर्चियों के द्वारा अपनी अमीरी का प्रदर्शन करते हैं, उसी प्रकार बच्चों को भी इस रूप में पेश करते हैं मानो वे सामान्य नहीं हैं। शरीर तो सभी का एक जैसा है तो फिर अमीरी कैसे झलके ? इसके लिए कीमती वस्त्र, आभूषण, वाहन, नौकर जैसे माध्यम ही ऐसे हैं जो विद्यार्थी की अमीरी और तज्जनित अहंकार को प्रकट करते हैं। उतना पैसा पास में न होने से वे साधन तो पास में नहीं हो सकते, पर अहंकार की नकल आसान है। अहंकार के साथ कई तरह के व्यसन जुड़ जाते हैं, उन्हें साथी बनाकर अपनाया जा सकता है। अमीर लड़कों की दोस्ती या चापलूसी के सहारे जब तब उन व्यसनों में भागीदार बनने का अवसर भी मिलता है। बीड़ी, सिगरेट, ताश, शतरंज, सिनेमा आदि का व्यसन बड़े आदमियों, लड़कों में आमतौर से होते हैं। कई शराब भी पीने लगते हैं। इन सभी के लिए पैसा चाहिए, उसके लिए पहले घर वालों से किसी बहाने या पैसे चुराकर प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। पीछे बाहर चोरी, उठाईगीरी पर हाथ साफ करते हैं। कई लड़कों का गिरोह बनाकर अपराधी प्रवृत्तियों को सफल बनाने में सफलता भी अधिक मिलती है। पीछे हौंसला बढ़ जाता है तो अमीरी एवं अहंकार दिखाने के लिए पैसे मिलने लगते हैं। कई भोले लड़कों पर दबाव डालकर उनके घर में चोरी करते हैं और सिनेमा, सिगरेट आदि के लिए पैसे मिलते हैं। छुरी, चाकू अब आसान हो गया है। उनकी कीमत अधिक नहीं रही। देशी पिस्तौलें, कट्टे अब गाँव-गाँव के लुहार बनाते और बेचते हैं। धमकी दिखाने और पैसे ऐंठने के लिए ये भी काम दे जाते हैं। जब गिरोह बन जाता है तो उससे निकलना भी कठिन हो जाता है। साथी धमकाते हैं और गिरोह टूटने नहीं देते। ऐसे लड़कों को फैशन बनाने से लेकर और भी कई तरह की बुरी लतें पड़ जाती हैं, जिनमें एक आलस भी है। अहंकार प्रदर्शन करने वाला आलसी होता है। हाथ से काम करने में शान कम होती है। ऐसे ही लड़के, पढ़ने में लगाया जाने वाला समय आवारागर्दी में लगाते हैं और जब परीक्षा का समय आता है; तब मास्टरों को छुरी, चाकू दिखाकर पास हो जाने देने की धमकी दिखाते हैं। छोटा गिरोह छोटे अपराध करता ही रहता है, पर जब हिम्मत खुल जाती है तो डकैती, हत्या जैसे बड़े अपराधों पर उतर आता है।

साधारणतया किशोर बालकों से आशा की जाती है कि वे घर की स्थिति के अनुरूप मितव्ययिता से काम चलायेंगे। अमीर लड़कों के कुसंग से दूर रहेंगे। अपने में कोई दुर्व्यसन न पलने देंगे। अपना पूरा समय पढ़ने में लगायेंगे और अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होकर दिखायेंगे। बुद्धिमान और मेहनती लड़कों में अपनी गणना करायेंगे। घर के बड़े लोग यह आशा करते हैं कि वे अब बड़े हो गये हैं तो घर के छोटे-मोटे कामों में उन्हें हाथ बँटाना चाहिए, जिससे प्रतीत हो कि वे पारिवारिक उत्तरदायित्वों को समझते और उनमें हाथ बँटाते हैं।

अमीर घराने के लोगों के पास फालतू पैसा होता है। उस पैसे को शान के लिए खर्च करने में ही उनको बड़प्पन दीखता है। इसलिए वे हाथ खोलकर खर्च कर सकते हैं किन्तु गरीब एवं मध्यम घर के लड़कों की शान और बुद्धिमानी इसी में है कि अधिक परिश्रम और कम खर्च करें। ऐसे लड़कों को अमीर लड़कों की दोस्ती से बचना चाहिए। वह उन्हें महँगी पड़ेगी। व्यर्थ ही चापलूसी करनी पड़ेगी और उसके दुर्व्यसनों में भागीदार बनना पड़ेगा। कुछ दिन यह दोस्ती चलती रहे तो नकल करते हुए फिजूलखर्ची के लिए पैसा पाने के लिए कुछ न कुछ अनुचित तरीके अपनाने पड़ेंगे। गरीब होते हुए भी जब अमीरों का स्वाँग करना पड़ता है, तो उसकी कीमत दुर्व्यसनों में, दुश्चरित्रता में चुकानी पड़ती है। इसलिए आरम्भ से ही ध्यान रखना चाहिए कि छोटी आयु के लड़के गन्दे, अशिष्ट स्वभाव के लड़कों की संगति से बचाये जायें और बड़ी उम्र के किशोरवय वालों को उद्धत अमीरों से दूर रखा जाये। आवश्यक नहीं है कि हर खाती-पीती परिस्थिति वालों का उनके घर वाले शिष्टाचार न सिखाते हों और शालीनता के शिकंजे में कसकर न रखते हों। बुद्धिमान बालकों की गतिविधियों पर पूरी तरह ध्यान रखते हैं। इस कड़ाई के बिना गरीब-अमीर किसी के भी बच्चे प्रगतिशील नहीं बन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकते। पहचान इसकी यह है कि वे अपने बच्चों को व्यस्त रखते हैं। दोस्ती के फेर में नहीं पड़ने देते। आजकल दोस्ती और आवारागर्दी दोनों ही चीजें हैं। फिजूलखर्ची हजार दुर्गुणों की जननी है, चाहे पैसा बेकार उड़ाया जा रहा हो, चाहे समय। प्रकारान्तर से दोनों एक ही बात है।

यहाँ यह नहीं कहा जा रहा है कि शिष्ट और सज्जन प्रकृति के लड़के होते ही नहीं और उनके साथ मिल-जुलकर रहने में कोई हर्ज है। जिस प्रकार बुरी संगति में दुर्गति होती है, उसी प्रकार सत्संगति से सद्गुण विकसित होने का लाभ भी मिलता है। पर इस सम्बन्ध में बहुत जाँच-पड़ताल कर लेने की आवश्यकता है, क्योंकि इन दिनों समय की हवा ऐसी चल रही है जिसमें सज्जनता बुरी तरह घट रही है और दुर्गुणों की आँधी अपनी चपेट में भले लड़कों को भी बर्बाद करती रहती है।

किशोरावस्था सबसे महत्त्वपूर्ण अवधि है। जो इन दिनों सँभल जाते हैं, वे आगे चलकर प्रशंसा के योग्य बनते हैं और प्रगतिशील कहलाते हैं। साथ-ही-साथ यह बात भी निश्चित है कि जिन्होंने उठती आयु बे-सिलसिले गँवा दी, उनकी बाद में सुधरने की आशा बहुत कम रह जाती है। सादा जीवन प्रगतिशीलता का मन्त्र है। यहाँ सादगी के साथ सज्जनता को भी जोड़े रखने की आवश्यकता है।

यह जिम्मेदारी प्रधानतया अभिभावकों की है। वे जहाँ अपने बालकों को लाड़-प्यार करते हैं, वहाँ दूसरा उत्तरदायित्व उन्हीं के कन्धों पर यह भी आता है कि उन्हें सुधारने की ओर पूरा-पूरा ध्यान रखें। घर का वातावरण ऐसा बनावें जिससे आरम्भ से ही उन्हें सुसंस्कार मिलें। 'एक आँख प्यार की—एक आँख सुधार की' रहे तो कोई कारण नहीं कि बच्चे दुर्गुणी बन सकें।

यह सोचना गलत है कि हमने बच्चों के लिए बहुत पैसा छोड़ रखा है। उन्हें कमाने के लिए कुछ करना न पड़ेगा। ध्यान रहे, दुर्गुणों के रहते दौलत रहती नहीं। जीवन में आदमी को कुछ न कुछ करना ही पड़ता है। बिना किये किसी का भी काम नहीं चलता। कोई व्यक्ति कमा नहीं रहा होगा तो अच्छे काम नहीं तो बुरे काम कर रहा होगा। बुजुर्गों की छोड़ी दौलत पोखर के समान है। जिन्दगी ऐसी होनी चाहिए जैसे झरना। चाल तेज न हो, मन्द सही। किन्तु आदमी को निरन्तर सक्रिय रहना चाहिए। ध्यान रखना चाहिए कि यह सक्रियता यदि सज्जनता से जुड़ी हुई न होगी, सद्गुणों का उसमें समावेश न होगा तो फिर पतन और पराभव कहीं-न-कहीं से आकर घेर लेगा।

मनुष्य-मनुष्य सब एक जैसे हैं। आकृति से नहीं, प्रकृति में अन्तर पाया जाता है। जब गाय-भैंस, घोड़े, गधे, भेड़-बकरी आदि मिलती-जुलती आकृति में होते हैं तो कोई कारण नहीं कि मनुष्य-मनुष्य के बीच चेहरे के यत्किंचित अन्तर के अतिरिक्त और कोई बड़ा अन्तर हो। अन्तर प्रकृति का होता है जिसके कारण एक महात्मा गाँधी और दूसरा दर-दर ठुकराये जाने वाला चोर-उच्चक्का बन जाता है। यह प्रकृति ईश्वरकृत नहीं मनुष्यकृत है। गुण, कर्म, स्वभाव के समन्वय को ही संस्कार कहते हैं। यही संस्कृति किसी की उन्नति और अवनति का मूलभूत कारण बनती है। संस्कारी बनाना अभिभावकों का काम है। शरीर भ्रूण के रूप में आता है। पिता के संयोग से बनता है। शिक्षा एवं सम्पत्ति की व्यवस्था भी अभिभावक करते हैं। यहाँ यह भी ध्यान रखने योग्य बात है कि संस्कार भी उन्हें ही बनाने चाहिए। इसके लिए सत्संगति सबसे आवश्यक है। कुसंग से बचाना और सत्संग का सुयोग जुटाना जो जानते हैं, समझना चाहिए कि अभिभावक की जिम्मेदारी निभाना उन्हीं को आता है। सन्तान के सच्चे अर्थों में शुभचिन्तक वे ही हैं।

भावी पीढ़ी की चिन्ताजनक स्थिति

किसी देश का भविष्य उसकी नवीन पीढ़ी पर निर्भर है। जो आज गोद में खेलते या स्कूल में पढ़ते हैं, वे ही कल समाज का निर्माण एवं नेतृत्व करेंगे। इसलिए छोटा होने के कारण उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस सन्दर्भ में अपने देश की स्थिति विचारणीय है। देहाती क्षेत्र में कुपोषण एवं चिकित्सा के अभाव में शहरों से भी अधिक संख्या में वे मरते हैं। शहरों में अस्पताल हैं, चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध हैं तथा दूसरी सुविधाएँ हैं, इसलिए उनकी मृत्यु-दर कम है।

आँकड़े बताते हैं कि ग्रामीण जन-स्वास्थ्य की स्थिति बड़ी दयनीय है। नगरों में बच्चों की मृत्यु-दर ९·३ प्रति हजार है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह १५३ प्रति हजार तक है। शहरों में शिशु मृत्यु-दर हजार पीछे ७० है, किन्तु गाँवों में यह १७० प्रति हजार है। गाँवों में रहने वालों की औसत आयु भी शहरों की तुलना में १० वर्ष कम है।

एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में एक वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु-दर ५० प्रतिशत है। एक से आठ साल की आयु वालों की ४० प्रतिशत है। यह आँकड़े बताते हैं कि प्रायः आधे बच्चे माता पर ९ महीने वजन लादकर और बाद में उन्हें रोती-बिलखती छोड़कर विदा हो जाते हैं। इनसे भविष्य की आशा कैसे बँधे ?

स्वास्थ्य विशेषज्ञों के एक सर्वे के अनुसार विश्व में प्रतिवर्ष १ करोड़ २० लाख बच्चों की पोलियो से और पचास से अस्सी लाख तक की टिटनेस, डिप्थीरिया, काली खाँसी, छोटी चेचक आदि बीमारियों के कारण मृत्यु हो जाती है। निर्धन एवं पिछड़े देशों में इन बीमारियों से शिशुओं की मृत्यु-दर धनी एवं विकसित देशों की तुलना में ८ गुना अधिक है। वहाँ लोगों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

औसत आयु भी अपेक्षाकृत कम है। लन्दन विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित एक स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार दुनिया भर में ३५ करोड़ बच्चे पौष्टिक आहार, स्वच्छ पेयजल, समुचित आवास तथा शिक्षा के अभाव में जिस-तिस प्रकार जीवन व्यतीत करने और गई-गुजरी, अनगढ़ मानसिक स्थिति में बने रहने को बाध्य हैं।

सुप्रसिद्ध चिकित्साविज्ञानी डा. केनहाल का कहना है कि अधिकांश शिशु जन्म से ही विकृतियाँ लिए होते हैं। इन विकृतियों में शिरोवृद्धि, हाथ-पैरों का अपेक्षाकृत अधिक बड़ा या टेढ़ा-मेढ़ा होना, कानों के बाह्य भाग का गायब होना, आँखें बाहर निकली हुईं एवं पलकें जुड़ी हुईं, असामान्य आवाज, यौन विकास न होना आदि असमानताएँ हैं, जिनका बोझ जिन्दगी भर उन्हें ढोना पड़ता है। इसके अतिरिक्त रक्त की कमी और मानसिक विकास में अवरोध ऐसी कमियाँ हैं, जो जीवन को भारभूत बना देती हैं।

डा. केनहाल के अनुसार नवजात शिशुओं की विकृति का प्रमुख कारण जन्मदाताओं की अभिरुचि, रहन-सहन एवं व्यवहार में कृत्रिमता, पालन-पोषण की समुचित जानकारी का अभाव, बाजारू रंगीन एवं गन्धयुक्त पदार्थों एवं तीव्र औषधियों पर बढ़ती निर्भरता है। शहरों में जहाँ महिलाएँ विभिन्न क्षेत्रों में सेवारत हैं, उनकी सन्तानों में उच्च विचार अधिकतर देखे जाते हैं। नौकरी पेशा महिलाएँ दोहरा श्रम करती हैं, अतः यह दुष्परिणाम उन्हें कम देखने पड़ रहे हैं। पिछले दिनों ब्रिटेन के औद्योगिक शहरों में किये गये शिशुओं के स्वास्थ्य सर्वेक्षण का विवरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने बताया है कि बच्चों में सबसे अधिक विकृतियाँ वहाँ के वातावरण में पाई गईं जहाँ प्रदूषणजन्य विषाक्तता की भरमार के कारण हैं। देहातों की तुलना में यह १० गुना अधिक है। यह स्थिति तब है जबकि नगरों में चिकित्सा की सबसे अधिक सुविधाएँ हैं।

अपने देश का जहाँ तक सम्बन्ध है, वहाँ अन्य देशों से विकृत शिशुओं की संख्या यहाँ न्यूनतम है। कारण यह है कि भारत में प्रदूषण एवं अखाद्यों का प्रचलन उतना नहीं है। यौनाचार में भी अपेक्षाकृत कमी है।

गाँवों में दूसरे ढंग की समस्याएँ हैं, शहरों में दूसरे ढंग की। किन्तु दोनों ही क्षेत्रों में बच्चों का अविकसित, अस्वस्थ और अवांछनीय स्थिति में दिन गुजारने पड़ते हैं।

समय रहते समस्या का सुधार न किया गया तो अगले दिनों हम नयी पीढ़ी को इस योग्य न पा सकेंगे, जो उज्ज्वल भविष्य का नवसृजन करने में सफल हो सकें।

हम कहते हैं कि हम बुद्धिमान हैं

विज्ञान का उपयोग मानवी जीवन में जिस स्तर पर जिस क्रम से चलता है उससे कहीं अधिक, कहीं पहले ज्ञान का विभिन्न रूपों में प्रयोग चल पड़ता है। छोटे शिशुओं को मलमूत्र त्यागने की, भूख, सर्दी-गर्मी आदि को बताने के लिए रोने का संकेत करने की आदत डालनी पड़ती है। इसके बाद भाषा-ज्ञान का, अपने-पराये का भेद करने का ज्ञान विकसित होता है। शिष्टाचार निर्वाह, समय का पर्याप्त उपयोग, आहार में रुचिकर-अरुचिकर का वर्गीकरण ग्रहण करने की मात्रा का अनुमान जैसी अनेकों जानकारियाँ अभिभावकों और परिजनों से प्राप्त होती रहती हैं। इन सबकी गम्भीरता, आवश्यकता एवं उपयोगिता पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। जो सीखा और सिखाया जाता है उसका अधिकांश भाग अनुपयुक्त होता है। यही कारण है कि अनुपयुक्त को चरितार्थ करते रहने के कारण बालकों में से अधिकांश बीमार पड़ते और बेमौत मरते हैं। आदतें आरम्भ से ही ऐसी पड़ जाती हैं, जिनके कारण सदा-सर्वदा कठिनाइयों, आपदाओं का सामना करना पड़ता है। यदि शिशुपालन की उनके विकास की सही जानकारी अभिभावकों, परिजनों में हो तो बच्चा विकास के क्रम पर सही रीति-नीति से चलता रह सकता है। उसका शरीर स्वभाव और विधि-निषेध करने का निर्णय करने वाला मन सुसंस्कारी ढाँचे में ढल सकता है। किन्तु कठिनाइयाँ प्रत्यक्ष हैं। बच्चा अपने बलबूते ज्ञानार्जन कर नहीं सकता और जो सिखाने वाले हैं, उन्हें इस बात का पता नहीं होता कि आरम्भिक आयु कितनी महत्त्वपूर्ण है और उसके निमित्त किस अवसर पर, किस प्रकार क्या सीखा और क्या सिखाया जाना चाहिए ?

संसार में प्रतिमिनट हजारों बच्चे पैदा होते हैं पर उनमें से कुछ ही ऐसे भाग्यवान होते हैं, जो आहार से लेकर आदतों तक का सही आधार उपलब्ध कर सकते हों। इससे पूर्व शिशुप्रजनन की प्रक्रिया भी आँखें बन्द करके चल पड़ती है। शिशु के आविर्भाव के यही क्षण हैं। बीज बोने से पहले खेत को उर्वर बनाना पड़ता है। उसके लिए खाद-पानी, निराई-गुड़ाई, रखवाली आदि की अग्रिम व्यवस्था बनानी पड़ती है। शिशु उत्पादन से पूर्व उसकी जन्मदात्री का स्वास्थ्य, चिन्तन, वातावरण, अनुशासन, आवश्यकताओं की पूर्ति-प्रकरण यह सभी बातें ऐसी हैं जिनकी सही और समुचित जानकारी न केवल जननी को वरन् उसके संरक्षकों-सहायकों को भी उस प्रसंग में निष्णात् होना चाहिए। इतना ही नहीं, इस अभिभावक परिकर के प्रत्येक सदस्य को, जननी को ऐसी परिस्थितियों में रखने में सहायक होना चाहिए जिससे वह उस गुरुतर कार्य का भार वहन सही रीति से कर सके। इस सम्बन्ध में अधिकांश परिवार एवं दम्पत्ति नितान्त अज्ञान में फँसे होते हैं। यही कारण है कि आकाश से बरसने वाले रात्रि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के ओस कणों की तरह बच्चे जन्मते रहते हैं। वे किसी प्रकार धरती पर कूद तो पड़ते हैं, पर यह अनुमान नहीं कर पाते कि मनुष्य जन्म लेने के पीछे कितने अधिक कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व उसके पीछे लदे हैं, उन्हें किस प्रकार पूरा करना है ? फलतः ऊसर, बीहड़ों में उगने वाले झाड़-झंखाड़ों की तरह उनकी उत्पत्ति और अभिवृद्धि होती रहती है।

चूँकि बच्चा समझदार नहीं होता, वह अपने उज्ज्वल भविष्य के सम्बन्ध में न तो कुछ सोच ही सकता है और न व्यवस्था बनाने, साधन जुटाने में ही समर्थ होता है। ऐसी दशा में सभी स्तर की जिम्मेदारियाँ उन सबके कन्धों पर आती हैं, जिन्होंने प्रजनन का वातावरण बनाया, प्रोत्साहन या सहयोग दिया। यदि बड़े होने पर बालक अस्वस्थ, असंस्कृत, अनगढ़ स्तर का है तो उसकी जिम्मेदारी अभिभावक समुदाय की है। दुःख की बात यह है कि इस समुदाय को इस सन्दर्भ में यह ज्ञान होता ही नहीं, जिसको नितान्त आवश्यक समझा जाना चाहिए। इस सन्दर्भ में कोई सज्जनोचित शास्त्र रचा भी नहीं गया है। एक अनगढ़ ढर्रा चला आता है। उसी को सहज बुद्धि के लोग अपना लेते हैं। फलतः बच्चे वैसे ही बन जाते हैं जैसे कि बिना माली वाले उद्यान या बिना किसान वाले खेत को होना चाहिए।

बालक छोटी आयु में अत्यधिक संवेदनशील होता है। वह गर्भकाल से लेकर बोलने-चलने योग्य होने तक व्यक्तित्व को विनिर्मित करने वाली अधिकांश विद्याएँ हृदयंगम कर लेता है। सम्पूर्ण जीवन में वह इसी पूँजी के सहारे अपने व्यक्तित्व का परिचय देता है। व्यवसाय कुछ भी क्यों न हो पर दृष्टिकोण वही रहता है जो अल्प-वयस्क स्थिति में अपना लिया जाता है अथवा यों कहिये कि जो अभ्यास करा दिया जाता है।

उदाहरण के लिए, कन्या और पुत्र के बीच बरता जाने वाला भेदभाव है। यह विभेद बालक पर थोपा हुआ है। उसे लिंग भेद के संस्कार आरम्भ से ही थोपे जाते हैं। लड़के का सम्मान लड़की की उपेक्षा। आत्मपरिचय देने में स्त्रीलिंग वाचक शब्द-विन्यास को प्रयुक्त करना, कपड़े स्त्रीलिंग वाले वर्ग के धारण करना, प्रसाधन-उपकरण, खिलौने उसी प्रकार के देना, वार्तालाप करते समय उसके भावी जीवन का निरन्तर संकेत देते रहना, सहेलियों में खेलने देना, अध्यापिकाओं द्वारा शिक्षण दिलाना आदि-आदि बातों से बालक यह समझने लगता है कि वह मानव समाज में हेय वर्ग का घटक है, जिसे पराधीनता भरा जीवन जीना है। जो कमी रह जाती है उसकी पूर्ति नाक, कान छेदकर, केश-विन्यास का, कपड़ों का तरीका बदलकर यह विश्वास करा दिया जाता है कि वह पिछड़े वर्ग का प्राणी है।

उसे यह सोचने का अवसर ही नहीं मिला कि वह पूर्ण मनुष्य है। मनुष्य में जो मनोबल-पुरुषार्थ पाया जाता है, उसकी वह अधिकारिणी है और अवसर मिलने पर उस प्रतिभा का सर्वतोमुखी परिचय दे सकती है, जो किसी भी पूर्ण मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। यदि ऐसी स्थिति रही होती तो नर-नारी का वर्तमान दुःखदायी हेय-हीन विभेद वर्गीकरण न होता। आधे मनुष्य कैदी की और आधे जेलर की स्थिति में न रहते। दोनों वर्ग मिल-जुलकर सहयोगपूर्वक काम करते। एक-दूसरे का भार हल्का करते और मिल-जुलकर साथी को आगे बढ़ाने, ऊँचा उठाने का प्रयत्न करते। ऐसी दशा में समाज की स्थिति आज की अपेक्षा सर्वथा दूसरे ढंग की होती। समूची जनसंख्या समर्थ, सुयोग्य, सुसंस्कृत, सुविकसित एवं सुसम्पन्न होती। ऐसे युग्म यदि दूरदर्शिता अपनाकर अपने साथी के, बच्चे के, समाज के हित को गम्भीरतापूर्वक समझते हुए प्रजनन की दिशा में कदम बढ़ाते तो निश्चित रूप से भावी पीढ़ी उस स्तर की ढलती, जिसे सहज ही महामानव की संज्ञा मिलती।

इस लाभ से आज समूचा समाज वंचित है। इसका एकमात्र कारण है प्रजनन एवं शिशु-विकास सम्बन्धी विचारणा में गर्हित तत्त्वों की भरमार का होना। दूरदर्शी विवेकशीलता और तथ्यान्वेषी विचारशीलता को कहीं प्रश्रय ही नहीं मिलता।

इतने महत्त्वपूर्ण, आरम्भिक विषयों पर ऐसी उपेक्षा क्यों बरती गई ? इतनी महती आवश्यकता की पूर्ति क्यों नहीं की गई ? स्थिति पर पुनर्विचार क्यों नहीं हुआ ? उपर्युक्त मार्ग क्यों नहीं खोजा गया। सही दृष्टिकोण अपनाकर सही व्यवस्था बनाने का उत्साह मानव मन में उत्पन्न नहीं हुआ ? इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर है कि ज्ञान के धनी तो हम बनते रहे, बुद्धिमत्ता का ढिंढोरा भी पीटते रहे, उसका अहंकार भी करते रहे, पर मौलिक सूझ-बूझ से दूर रहे। परम्परा ही हमारे लिए पत्थर की लकीर है। उसी को ज्ञान-विज्ञान शास्त्र मानते हैं। इस पर भी दावा करते हैं कि हमें ज्ञान प्राप्त है, हम जानकार या बुद्धिमान हैं।

भावी पीढ़ी का निर्माण यों कीजिए

'भावी पीढ़ी का निर्माण करिये' का अर्थ है, बच्चों को अच्छा बनाइये। क्योंकि बच्चे ही कुछ समय में सयाने होकर आपकी जगह समाज और राष्ट्र का सारा भार अपने ऊपर लेंगे। लेंगे ही क्या, वह तो स्वभावतः उन पर आ ही जायेगा। किन्तु एक सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना से स्वभावतः आने वाला भार भी जब दायित्वपूर्ण ढंग से सँभाला जाता है तो उसका वहन सरलता और सुन्दरता से किया जा सकता है और आने वाला भार जब अनजाने ही ऊपर आ पड़ता है तो उसको सँभालने की ठीक-ठीक तैयारी न होने से वह एक दुर्वह बोझ ही बन जाता है, जिसे वहन तो करना ही पड़ता है, किन्तु उसमें वह वांछित सुख-सुन्दरता नहीं रहती जो होनी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आज हम अपने को ही देख लें कि हममें से कितने ऐसे हैं जो समाज में वर्तते हुए भी अपना दृष्टिकोण सामाजिक रखते हैं। हम जब भी कोई विचार करते हैं केवल अपने को आगे रखकर सोचते हैं। जो कुछ करते हैं अपने लिए और जो कुछ चाहते हैं अपने लिए ही। इस निजत्व की प्रधानता के कारण ही आज हममें सामाजिकता का नितान्त अभाव हो गया है। हर आदमी अपने चारों ओर स्वार्थ का कुण्डल मारकर सर्प की भाँति स्थित हो गया है और इसी संकीर्णता के कारण पारस्परिकता का सारा भाव उठता चला जा रहा है।

जिस समाज में पारस्परिकता का अभाव हो जाता है वह ऊपर से एक जैसा दीखता हुआ भी अन्दर से विशृंखलित होता है और विशृंखल समाज अपनी अथवा अपने राष्ट्र की रक्षा में असमर्थ रहने के कारण सदा सशंकित रहा करता है। उसका प्रत्येक सदस्य अपने को हर प्रकार से असुरक्षित एवं असहाय अनुभव किया करता है।

समाज को सुरक्षित बनाने के लिए वर्तमान पीढ़ी को अपने तुरन्त बाद आने वाली पीढ़ी को एक सुनिश्चित सामाजिक चेतना के साथ आगे बढ़ाना चाहिए—अर्थात् अपने बच्चों का निर्माण इस प्रकार करना चाहिए कि वे अपने को अपने समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग समझें, वे जो कुछ सोचें सामाजिक दृष्टिकोण से और जो कुछ करें समाज को ध्यान में रखते हुए ही करें।

समाज में बुराइयों का जन्म ही तब होता है जब उसके सदस्यों में सामाजिक भावना का अभाव हो जाता है। हर व्यक्ति निरंकुश रूप से, मनमाने ढंग से बर्ताव करने लगता है। उसको अपने बर्ताव से दूसरे को होने वाले कष्टों का ध्यान ही नहीं रहता, जिससे कदम-कदम पर संघर्ष होने लगता है और जीवन सुखमय बनने के स्थान पर दुःखमय बन जाता है।

आज भारतीय समाज दिन-दिन दुःखमय बनता चला जा रहा है। उन्नति और प्रगति के प्रचुर साधन होने पर भी इसकी उन्नति एवं प्रगति के सारे मार्ग अवरुद्ध से दिखाई देते हैं। दिन-दिन इसमें बुराइयों की वृद्धि होने से संसार में इसकी साख घटती जा रही है। एक दिन संसार में सर्वोपरि कहा जाने वाला भारतीय समाज आज निम्नतर हो गया है। इसका क्या कारण है कि इसके सारे आदर्श, सारी संस्कृति और सारे साधन मौजूद हैं फिर भी यह दिन-दिन गिरता जा रहा है ? इसका एकमात्र कारण है इसकी सामाजिक भावना का ह्रास हो जाना।

लोग धर्म का अनुगमन करते हैं, संस्कृति एवं सभ्यता की बात करते हैं किन्तु अलग-अलग केवल अपने तक सीमित होकर। बड़े-बड़े व्यापारी, बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ, प्रकाण्ड विद्वान और महान से महान व्यक्तित्व होने पर भी हमारा भारतीय समाज समग्र रूप से फिर भी कुछ नहीं दीखता। संसार में इसकी गणना पिछड़े हुए समाजों में ही की जाती है।

अस्तु, अपने समाज को प्रगतिशील बनाने के लिए आगामी पीढ़ी का नया निर्माण करना बहुत आवश्यक है। समाज में सुधार लाने के लिए निरन्तर प्रयत्न हो रहे हैं किन्तु उनका कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। इसका कारण यह है कि जो पीढ़ी आज समाज को चला रही है, वह केवल अपने सुधार में लगी हुई है। जबकि आवश्यक यह है कि अपना सुधार करने के साथ-साथ बच्चों पर सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए।

प्रौढ़ों की अपेक्षा बच्चों का निर्माण अधिक सरल होता है। उनका मानसिक धरातल इतना कोमल और निर्विकार होता है कि उसमें बोये हुए बीज आसानी से फल-फूल सकते हैं। इसलिए सामाजिक कल्याण के लिए बच्चों का एक निश्चित रूप से निर्माण किया जाना चाहिए।

बच्चों के निर्माण के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उनके लिए कोई निर्माण करने वाली संस्थाएँ खोली जाएँ या उन्हें समय-समय पर एक जगह इकट्ठा करके किसी सामान की तरह उनका निर्माण किया जाये। बच्चों के निर्माण की जो संस्थाएँ हैं उनका लाभ तो उठाया ही जाना चाहिए, किन्तु उन पर सर्वथा निर्भर नहीं रहना चाहिए। बच्चों का सबसे स्थायी और प्रभावपूर्ण निर्माण घर पर अभिभावकों के द्वारा ही हो सकता है।

बच्चों को प्रारम्भ से ही एक ऐसे वातावरण में रखना चाहिए, जिससे उनमें उदार भावनाओं का विकास हो। उनको भाई-बहनों से समता का व्यवहार सिखाया जाना चाहिए। जिन घरों में अनेक बच्चे होते हैं, वहाँ बहुधा देखा जाता है कि कोई एक बच्चा माता-पिता का अधिक प्यारा होता है। उसको अन्य बच्चों की अपेक्षा अधिक विशेषता दी जाती है। यह व्यवहार उचित नहीं है। इससे अन्य बच्चों में असमानता का भाव जागता है और वे आपस में एक-दूसरे से असमानतापूर्ण व्यवहार करना सीख जाते हैं।

बहुत बार छोटे बच्चों को बड़े बच्चों का इतना मातहत बना दिया जाता है कि बड़ा बच्चा दूसरे छोटे भाई-बहिनों को बिल्कुल अपना सेवक समझ लेता है और अपना हर काम उनसे लेने का प्रयत्न करने लगता है। इससे बड़े बच्चे में अनुचित अधिकार और परावलम्बन की भावना पनपने लगती है और दूसरी ओर छोटे बच्चे में एक हीन भावना घर करने लगती है।

अनेकों बार ऐसा होता है कि बच्चों की शिकायत सुनते समय अभिभावक किसी बच्चे का अनुचित पक्षपात कर बैठते हैं जिससे एक बच्चा ढीठ और दूसरा कायर हो जाता है। यदि इसी प्रकार के पक्षपात की पुनरावृत्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बहुत बार होती है तो बच्चों में न्याय के प्रति अश्रद्धा का भाव पैदा हो जाता है।

अस्तु, अनेक बच्चों के परिवार में बच्चों के साथ ऐसा व्यवहार किया जाना चाहिए जिससे उनमें समता, सत्यता, न्याय और पारस्परिकता का भाव जगे।

बच्चों से धीरे-धीरे क्रम से ऐसे काम लेने और सौंपने चाहिए जिससे वे करते समय अपने अन्दर एक उत्तरदायित्व अनुभव करें। इन कामों में से एक काम घर का हिसाब रखना भी हो सकता है। किन्हीं मित्रों अथवा सम्बन्धियों को प्रीतिभोज अथवा खाने के समय उन्हें भोजन परोसने में मदद करना आदि। अधिकतर लोग करते यह हैं कि इस तरह के उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों और अवसरों पर बच्चों को अधिक से अधिक दूर रखते हैं, जबकि उत्तरदायी बनाने के लिए उन्हें यथासम्भव इन कामों में शामिल करना चाहिए।

उनको रहन-सहन, ओढ़ने-पहनने और उठने-बैठने का एक सलीका सिखाना चाहिए, जिससे उनमें अस्त-व्यस्तता अथवा लापरवाही का विकार पैदा न होने पावे। शिष्टाचार और मिलनसारियत सिखाने के लिए सम्बन्धियों और मित्रों के यहाँ जाते समय यथासम्भव उन्हें साथ ले जाना चाहिए, इससे उनमें परिचय की जिज्ञासा का जन्म होगा और उनके परिचय का क्षेत्र बढ़ेगा।

यह ऐसी कुछ बातें हैं जिनका सम्बन्ध घर के लोगों के बीच व्यवहार से है। बच्चों को बाहर व्यवहार में आने वाली कुछ छोटी-मोटी बातों का भी ध्यान रखना चाहिए। जैसे वह अपने साथियों के साथ कैसा व्यवहार करता है ? बाहर अपने से बड़ी आयु वालों के साथ कैसे पेश आता है ? वह कहाँ किन-किन बातों में दूसरों से दबता है और कहाँ किन-किन बातों में दूसरों को दबाने का प्रयत्न करता है ? यदि बच्चों सम्बन्धी ऐसी बातों का पता लगे तो उनमें तत्काल आवश्यक सुधार किया जाना चाहिए। उसके बाह्य व्यवहारों में एक सन्तुलन पैदा किया जाना चाहिए।

बच्चों में सामाजिकता और पारस्परिक स्नेहभाव उत्पन्न करने के लिए कभी-कभी पर्व आदिकों पर उसे अवसर दिया जाना चाहिए कि वह अपने साथियों को अपने घर चाय-पानी करने या भोजन करने के लिए आमन्त्रित करे। इससे उनमें आपस में स्नेह और विश्वास बढ़ेगा और अभिभावकों को उसके साथियों को पहचाने का अवसर मिलेगा।

अधिकतर अभिभावक बच्चों पर चारों ओर से एक घेरा डाले रहते हैं, जिससे उनका व्यक्तित्व दबकर रह जाता है। उनको अच्छी-बुरी संगत पर ध्यान रखते हुए उन्हें अपने अनुरूप समाज में घुलने-मिलने और एक-दूसरे को जानने, समझने में बाधा न दी जानी चाहिए।

यह सब बातें अपने बच्चों के साथ बर्ताव में लाने की हैं। कुछ ऐसी आवश्यक बातें भी हैं, जो दूसरों के बच्चों के साथ व्यवहार में लाई जानी चाहिए। उनमें से सबसे पहली और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हर बच्चे को बिल्कुल अपने बच्चे के समान समझना और उससे प्यार करना चाहिए। कोई भी बच्चा किसी अभिभावक के सामने आकर यह न अनुभव करे कि वह किसी गैर के सामने खड़ा है, उसे ऐसा अनुभव होना चाहिए कि वह अपने माता-पिता अथवा सगे-सम्बन्धियों के सामने है। किसी भी बच्चे को कोई गलती या बुरा काम करते देखें तो उसे ठीक उसी प्रकार सुधारने की कोशिश की जानी चाहिए जैसे अपने बच्चे को।

अधिकतर देखने में आता है कि आपस में दो मित्र एक-दूसरे के अभिभावकों से या तो डरते हैं या बहुत शरमाते हैं। यदि दो मित्र आपस में बैठे हैं और उनमें से किसी के अभिभावक आ जाते हैं तो वे दोनों एकदम सिटपिटा जाते हैं। एक-दूसरे के घरों पर बैठे होने पर अभिभावकों के आने का समय होने पर खिसक चलते हैं। इसका मूल कारण यह है कि अभिभावक अपने बच्चों के मित्रों से परिचित नहीं होते और होते भी हैं तो उनके ठीक अपने बच्चे जैसा व्यवहार नहीं करते।

इस प्रकार क्या अपना और क्या पराया, हर समय हर बच्चे का नव-निर्माण ध्यान में रखते हुए व्यवहार किया जाना चाहिए, जिससे कि बच्चों की आने वाली नागरिक पीढ़ी कुछ सुधरकर आ सके।

बच्चों का नैतिक विकास

आचरण के लिए समाज निर्धारित नियमों के अनुसार चलना ही नैतिकता माना जाता है। अतः विभिन्न समाज द्वारा आचरण के लिए निर्धारित विभिन्न नियमों के अनुसार नैतिकता के स्वरूप में कुछ भेद पाया जा सकता है। इस प्रकार एक ही समाज के विभिन्न वर्गों की नैतिकता के स्वरूप में भी विभेद पाया जा सकता है। अच्छे तथा बुरे व्यवहार सम्बन्धी किसी वर्ग के विचार के अनुसार ही यह निर्णय किया जा सकता है कि उस वर्ग के व्यक्तियों के लिए नैतिक व्यवहार क्या है ?

अच्छे नैतिक व्यवहार के लिए कुछ बातों की आवश्यकता होती है—

१. अच्छा स्वास्थ्य। २. संवेगात्मक सुरक्षा, दूसरों से प्यार और आदर पाने की प्रवृत्ति। ३. विभिन्न भावनाओं के प्रकाशन के लिए स्वास्थ्यकर साधनों की प्राप्ति, जिससे व्यक्ति अवांछित मार्ग की ओर न झुकें। ४. कुछ आत्म-नियन्त्रण रखना, जिससे बचपन जैसी प्रकृतियों पर आवश्यक रोक रखी जा सके। ५. सामाजिक दृष्टिकोण का सदा विस्तार होते रहना, जिससे व्यक्ति दूसरों के प्रति सहानुभूति और सहिष्णुता दिखला सकें और दूसरों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के अधिकारों और सुविधाओं पर ध्यान दे सकें। ६. उचित वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए प्रेरणा का रहना और उचित कार्य को ही करने में सन्तोष प्राप्त करना।

बच्चा न तो नैतिक होता है और न अनैतिक। वस्तुतः वह तो विनैतिक होता है, क्योंकि उसका व्यवहार नैतिक नियमों द्वारा अनुशासित नहीं होता। नैतिक व्यवहार दिखलाने के पहले बालक को यह सीखना चाहिए कि उसका समाज किस वस्तु को अच्छा और किसको बुरा कहता है ? यह सब धीरे-धीरे अपने मित्रों, शिक्षकों तथा माता-पिता से सीखता है। यदि समाज द्वारा मान्य व्यवहार बालक के लिए सुखद है तो उसे वह शीघ्र सीख लेगा और उस प्रकार के व्यवहार दिखलाने की उसकी आदत हो जायेगी। अतः उचित पथ-प्रदर्शन और शिक्षण से माता-पिता तथा शिक्षकों को यह देखना चाहिए कि सामाजिक सन्दर्भ में बालकों के अनुभव यथासम्भव सुखद हों, तभी वे सरलता से नैतिकता का पाठ सीख सकेंगे। यदि बालक को कोई कार्य करने के लिए विवश किया जाता है तो वह कुछ भी न सीख सकेगा। अतः स्वाभाविक रूप से ही उसे सब कुछ सिखाने का प्रयत्न करना चाहिए।

नैतिक व्यवहार का विकास—नैतिक विकास के दो अंग किए जा सकते हैं—(१) नैतिक व्यवहार का विकास और (२) नैतिक प्रत्यय का विकास। इन दोनों अंगों पर हम नीचे विचार करेंगे।

सामाजिक रीति-रिवाज के अनुसार व्यवहार दिखा पाना बच्चा कई वर्षों में सीख पाता है। यदि उसके ऊपर मनोवैज्ञानिक नियन्त्रण रखा गया और उसके विविध अनुभव सुखद बनाए गये, तो वह नैतिक व्यवहार दिखलाने में समर्थ नहीं होता। आवश्यक ज्ञान देने के बाद उदाहरण द्वारा यह दिखलाना चाहिए कि उस ज्ञान को कार्यान्वित कैसे किया जाए ? कुछ विशिष्ट परिस्थितियों के सन्दर्भ में ही बालक को नैतिक व्यवहार सिखलाया जा सकता है।

नैतिक व्यवहार सिखाने के लिए सर्वप्रथम बालक को यह सिखाना चाहिए कि घर पर उचित व्यवहार कैसे दिखलाना चाहिए ? इसके बाद स्कूल जाने लगने पर उसे स्कूल के नियमों के अनुसार नैतिक व्यवहार दिखलाने का प्रयत्न करना चाहिए। तब उसे यह सिखाना चाहिए कि खेल के मैदान में नैतिक व्यवहार का तात्पर्य क्या होता है ? यदि घर, स्कूल और खेल के मैदान के नैतिक नियम समान न हुए अर्थात् यदि व्यवहार सम्बन्धी उनमें कुछ विरोध होता है तो बालक विस्मित होता है कि एक परिस्थिति में उसके किसी व्यवहार की क्यों प्रशंसा की जाती है और दूसरी परिस्थिति में उसी प्रकार के व्यवहार की क्यों निन्दा की जाती है ? ऐसी स्थिति में नैतिक प्रत्यय का विकास करना उसके लिए बड़ा कठिन हो जाता है। उदाहरणार्थ, यदि बालक को चुपके-चुपके सन्दूक से मिठाई निकालकर खाने की सुविधा दे दी जाती है, तो वह यह नहीं समझ पाता है कि दूसरे बालकों की पेन्सिलें चुराने पर उसे क्यों दण्ड दिया जाता है ? कहने का अर्थ यह है कि 'चोरी करना' प्रत्येक स्थिति में अनैतिक मानना चाहिए, चाहे वह घर में, स्कूल में अथवा खेल के मैदान में हो।

नैतिक व्यवहार का सीखना संयोग पर नहीं छोड़ा जा सकता और न इसे बालक के प्रत्यय और भूल सम्बन्धी अनुभवों पर ही छोड़ा जा सकता है। बालक को नैतिक व्यवहार सिखलाने के लिए चार प्रमुख सिद्धान्तों पर विशेष ध्यान देना चाहिए—(१) नैतिक व्यवहार को समाज द्वारा स्वीकृत नियमों पर चलना चाहिए। (२) बच्चे को स्पष्टतः यह बतलाना चाहिए कि क्या उचित है और क्या अनुचित। (३) समझने योग्य हो जाने पर बालक को यह बतलाना चाहिए कि कुछ बातें ठीक मानी जाती हैं और दूसरी गलत। (४) बच्चों के पथ-प्रदर्शन का भार जिनके ऊपर है, उन्हें यह देखना चाहिए कि उचित व्यवहार के साथ बच्चों को सुखद अनुभव मिलते हैं और अनैतिक व्यवहार के साथ दुःखद अनुभव मिलते हैं। अर्थात् नैतिक व्यवहार पर बच्चे को पुरस्कार देना चाहिए अथवा उसकी प्रशंसा करनी चाहिए और अनैतिक व्यवहार पर उसे दण्ड देना अथवा उसकी निन्दा करनी चाहिए।

किसी भी आदत-निर्माण का यह मनोवैज्ञानिक नियम है कि इसमें कभी छूट नहीं देनी चाहिए, अर्थात् आदत को दृढ़ करने के लिए एक अवसर को भी न खोना चाहिए। नैतिक आदतों के सम्बन्ध में यह नियम लागू करना चाहिए। नैतिक शिक्षा के क्रम में कभी विरोध न दिखलाई पड़े। जो बात आज गलत मानी जाती है, उसे कल भी गलत कहना चाहिए। यदि इस स्थिरता की रक्षा न की गई तो बालक की समझ में कुछ न आयेगा। इस स्थिरता के अभाव में बहुत-से बालक समस्या-घातक हो जाते हैं, क्योंकि वे नहीं समझ पाते कि उनसे क्या अपेक्षा की जा रही है ?

नैतिक प्रत्ययों को सीखना नैतिक विकास का दूसरा अंग है। इसमें बालक शान्ति रूप से उचित और अनुचित के सिद्धान्तों को सीखता है। बहुत छोटे बालक के लिए यह समझना कठिन होता है। जब बालक में इतनी मानसिक शक्ति आ जाती है कि वह विभिन्न बातों का विश्लेषण और संश्लेषण कर सके, तब वह इन सब सिद्धान्तों को समझ सकता है। तभी वह एक परिस्थिति में सीखे हुए आचरण नियमों को दूसरी परिस्थिति में लागू कर सकता है। भाषा कौशल में निपुणता प्राप्त करने के साथ नैतिक प्रत्ययों को समझने की शक्ति भी बालक में बढ़ जाती है क्योंकि तब अमूर्त सिद्धान्तों और वास्तविक परिस्थितियों के परस्पर सम्बन्ध को समझना उसके लिए पहले से सरल हो जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने कार्यों के फलस्वरूप बालक अपने आचरण को अच्छा या बुरा मानता है। बड़ा होने पर बालक को यह समझना चाहिए कि उसके कार्यों का सामाजिक फल क्या होगा ? उसे अब यह सोचना चाहिए कि उसके किसी आचरण के बारे में उसके समूह के लोग क्या सोचेंगे ? समूह के सम्पर्क से ही वह समझ पाता है कि उसके व्यवहार के बारे में दूसरे क्या सोचते हैं ? अपने अथवा दूसरों के कार्यों के औचित्य अथवा अनौचित्य को समझ सकने की योग्यता स्वयं अपने व्यक्तिगत अनुभवों से आती है, न कि नैतिक सिद्धान्तों पर दूसरों का प्रवचन सुनने में।

बच्चों के नैतिक प्रत्ययों के सम्बन्ध में कई परीक्षण हुए हैं। उनसे यह पता चला है कि नैतिक प्रत्ययों और बुद्धि तथा प्रौढ़ता में घनिष्ट सम्बन्ध है। 'मैकाले' और 'वाटकिन्स' ने २५०० बालकों को सबसे अधिक पाप पूर्ण बातों की सूची बनाने के लिए कहा। उन्होंने देखा कि नौ वर्ष की उम्र तक बच्चों के प्रयत्न मूर्त और निश्चित होते हैं। इस अवस्था तक अमूर्त बातों को समझना उनके लिये कठिन होता है। नौ वर्ष के बच्चों के लिए सबसे अधिक पापपूर्ण बातों का सम्बन्ध माता की अवज्ञा करना अथवा छोटे पशुओं को चोट पहुँचाना था। नौ वर्ष के बाद नैतिक विकास का घेरा कुछ बढ़ जाता है। उदाहरणार्थ, अब बच्चे 'चोरी करना' क्यों बुरा मानते हैं, चाहे जिस वस्तु की चोरी की जाए। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अब उनमें चोरी करने का सामान्य प्रत्यय बन गया है। बच्चों के उत्तरों से उचित और अनुचित के ज्ञान के स्रोत का अनुमान किया गया और यह देखा गया है कि वे इसका ज्ञान बहुधा अपनी माँ से सीखते हैं। उनके उत्तरों में पिता की ओर संकेत बहुत कम ही मिला।

व्यवहार और ज्ञान का सम्बन्ध—कुछ परीक्षणात्मक अध्ययनों से पता चलता है कि नैतिक प्रत्यय के होने से यह आवश्यक नहीं है कि व्यक्ति तदनुकूल नैतिक व्यवहार भी दिखलावें। 'हार्टशोन' और 'मे' ने देखा कि धोखा देने के अर्थ को समझ लेने पर विशिष्ट परिस्थिति के आने पर बच्चे अपने धोखा देने की प्रवृत्ति का संवरण नहीं कर सके। एक परीक्षा में १३३ विद्यार्थियों को नकल करते पाया गया। इनमें ८९ प्रतिशत ने बतलाया कि वे जानते थे कि नकल करना धोखा है। अपराधी बालकों के सम्बन्ध में नैतिक प्रत्यय और नैतिक व्यवहार के अन्तर को अच्छी तरह समझा जा सकता है, क्योंकि ये लड़के बहुधा उचित और अनुचित का ज्ञान रखते हुए भी असामाजिक कार्यों में भाग लेते हैं। हाईस्कूल के विद्यार्थियों तथा अपराधी बालकों के नैतिक प्रत्ययों के ज्ञान में बड़ी समानता थी। 'बेवर' ने किसी जेल स्कूल की १२८ लड़कियों से एक क्रम से १६ बुरी बातों की सूची बनाने के लिए कहा। उनकी सूचियों से बेवर को ज्ञात हुआ कि उनमें उतनी ही अन्तर्दृष्टि होती है जितनी विश्वविद्यालय की लड़कियों में होती है। इन सब निष्कर्षों का तात्पर्य केवल इतना ही है कि उचित और अनुचित का ज्ञान किसी को अनैतिक व्यवहार से रोकता नहीं, अर्थात् नैतिक प्रत्यय और नैतिक व्यवहार में अन्तर पाया जाता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि किसी वस्तु के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर लेने का तात्पर्य यह नहीं होता कि व्यक्ति तदनुकूल व्यवहार भी दिखलाए ही।

विकास की अन्य अवस्थाओं के सदृश्य नैतिक विकास भी एक क्रम से चलता है। अतः बालकों के सम्बन्ध में यह पूर्व अनुमान किया जा सकता है कि किस अवस्था पर कौन-से नैतिक गुण बालक में अपेक्षित किए जा सकते हैं। अपने नैतिक विकास के क्रम में बालक एक अवस्था से दूसरी अवस्था में बड़े धीरे-धीरे आता है। विकास की एक अवस्था महीनों तक चल सकती है। नीचे नैतिक विकास की केवल तीन प्रधान अवस्थाओं का संक्षेप में उल्लेख किया जायेगा—(१) शैशव में नैतिकता, (२) प्रारम्भिक बचपन में नैतिकता, (३) बचपन के अन्तिम दिनों में नैतिकता।

शैशव में नैतिकता—पीछे कहा जा चुका है शिशु न तो नैतिक होता है और न अनैतिक, वह विनैतिक (Non moral) होता है। अतः उसे उचित और अनुचित कार्यों को सीखना है। समाज द्वारा स्वीकृत और अस्वीकृत नैतिक नियमों का अर्थ बालक के लिए कुछ नहीं होता। उसके व्यवहार स्वाभाविक प्रवृत्तियों द्वारा नियन्त्रित होते हैं। सुख और दुःख की अनुभूति के आधार पर वह किसी कार्य के औचित्य और अनौचित्य के विषय में निर्णय करता है। उसके कार्य से किसे लाभ अथवा हानि होती है इसकी उसे चिन्ता नहीं रहती। बिना बुरे परिणाम को जाने बच्चे के लिए यह समझना कठिन हो जाता है कि उसका कोई कार्य बुरा है। वह सोचता है कि उसके व्यवहार का सम्बन्ध केवल उसी से है और जब तक उसे अपने किसी कार्य का अरुचिकर अनुभव नहीं मिलता, तब तक उसमें सुधार लाना वह आवश्यक नहीं समझता।

तीन या चार वर्ष की अवस्था से बच्चा कुछ-कुछ समझने लगता है कि जिसे लोग चाहते हैं, वह कार्य अच्छा है और जिसकी लोग निन्दा करते हैं, वह कार्य बुरा है। इस समय दूसरों के प्रति किसी कर्त्तव्य की भावना उसमें नहीं रहती। अतः जो मन में आता है, वही वह करता है। किसी को प्रसन्न करने की भावना उसमें नहीं रहती। उसके कार्य से यदि दूसरों को किसी प्रकार का दुःख पहुँचता है, तो उसमें पश्चाताप की भावना नहीं आती।

शैशव में सम्पत्ति अधिकार की भावना बच्चे में नहीं रहती। बच्चे को जो अच्छा लगता है, उसे वह उठा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेता है, वह यह नहीं सोचता कि वह किसकी वस्तु है ? दूसरे के खिलौने अथवा किसी दुकान के खिलौने को वह बिना संकोच के उठा लेगा। यह सब करने में उसमें चोरी की भावना नहीं होती।

बचपन में नैतिकता—तीसरे या छठे वर्ष के अन्दर नैतिक आवरण के कुछ मूल सिद्धान्तों से बच्चों का परिचय हो जाना चाहिए। लेकिन इस काल में बच्चे से यह कहना आवश्यक नहीं है कि कोई कार्य क्यों बुरा है, क्योंकि इस समय बच्चे की मानसिक प्रौढ़ता इतनी अधिक नहीं होती कि वह इन सब बातों को समझ सके। किसी अनुचित कार्य के करने पर उसे कैसा दण्ड मिलता है ? इसी के आधार पर किसी कार्य के औचित्य को वह समझता है। अतः उसके वातावरण के लोग जिस प्रकार के कार्य करने पर उसकी प्रशंसा करते हैं, वह वैसा ही करने का प्रयत्न करता है। इस समय उसकी नैतिकता का स्तर केवल यहीं तक रहता है। इस प्रकार कभी-कभी वह उचित कार्यों को करता है, परन्तु वह उनके औचित्य के कारण को नहीं समझता।

पाँच या छह वर्ष के हो जाने पर बच्चे में आज्ञाकारिता की आदत आ जानी चाहिए। 'अच्छा', 'बुरा', 'बहुत ठीक' 'शरारती' 'पाजीपन' इत्यादि शब्दों के प्रयोग से इस समय बच्चे को 'अच्छे' या 'बुरे' का कुछ विचार दिया जा सकता है।

नैतिक प्रत्यय और अनैतिक व्यवहार का अन्तर इस काल में देखा जा सकता है। बच्चा स्वयं अच्छे या बुरे की ओर संकेत कर सकता है। परन्तु तदनुसार आचरण दिखलाने में वह असमर्थ हो सकता है।

समूह के नैतिक विचारों के अनुसार ही बचपन के अन्तिम दिनों में व्यक्ति के नैतिक विचार होते हैं। छठे वर्ष की उम्र से लेकर किशोरावस्था आने के पूर्व तक बालक उसी प्रकार आचरण दिखलाने का प्रयत्न करता है जैसा कि उसका समूह उससे अपेक्षा करता है। दस या बारह वर्षों की अवस्था पर बालक नैतिक नियमों में निहित सिद्धान्तों को कुछ-कुछ समझने लगता है। विभिन्न परिस्थितियों में अब तक वह नैतिक और अनैतिक व्यवहार के स्वरूप को कुछ हद तक समझ सकता है, परन्तु अब भी अपने कार्यों की नैतिकता को पूर्णरूपेण वह नहीं समझ सकता। अतः अब भी उसे दूसरों के निर्णय पर निर्भर रहना पड़ता है।

दस-बारह वर्ष के बाद बालक ज्यों-ज्यों बड़ा होता है, वह 'न्याय' और 'आदर' के अर्थ को समझने लगता है। अब वह समझने लगता है कि झूठ बोलना, दूसरों की निन्दा करना, गाली देना, कायरता दिखलाना, दूसरों को सताना या हानि पहुँचाना, मित्रों को धोखा तथा दूसरों की वस्तुओं को ले लेना बुरा अर्थात् अनैतिक है। अतः जो झूठ बोलते हैं, धोखा देते हैं अथवा चोरी करते हैं, उनसे वह घृणा करने लगता है।

'लर्नर' और 'मर्फी' के अनुसार आठ से दस वर्ष की अवस्था में व्यक्ति नैतिकता के दोहरे स्वरों से अनुशासित होता है। उदाहरणार्थ, माता और पिता के साथ अपने व्यवहार में बच्चे इस काल में दो सिद्धान्तों के अनुसार चलते हैं। वे पिता से बहुत डरते हैं अथवा उनकी अवज्ञा की कल्पना वे शीघ्र नहीं करते। इसके विपरीत माता से वे कम डरते हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि माता उन्हें अधिक प्यार करती है और उनके दोषों पर वह विशेष ध्यान नहीं देती। इस भावनावश माता से झूठ बोलना अथवा उसे किसी बात में धोखा देना उसके लिए कठिन नहीं होता।

बच्चों में विनय कैसे आये—व्यवहार के मान्य स्तरों के अनुसार चलने का तात्पर्य विनय के अनुसार चलना है। विनय के अनुसार चलने के लिए बालक को अपनी कुछ आदतें बनानी चाहिए। आदतें बनाने के सम्बन्ध में विनय के चार प्रधान सिद्धान्तों का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है—

१. बालकों को वांछित रूप में व्यवहार करना चाहिए। उसे अपने अवांछित व्यवहार को छोड़ देना चाहिए। २. वांछित कार्यों से उसे सुख का अनुभव करना चाहिए और अवांछित कार्यों से दुःख। ३. उसे वांछित कार्यों को इस प्रकार करना चाहिए कि वे स्वचालित हो जायें अर्थात् उन्हें करने के लिए दूसरे के आदेश और नियन्त्रण की आवश्यकता न हो। ४. अवांछित व्यवहार के स्थान पर वांछित व्यवहार दिखलाना उसे सीख लेना चाहिए।

प्रशंसा और पुरस्कार के रूप में विधेयात्मक अभिप्रेरणा (पोजीटिव मोटीवेशन) निषेधात्मक अभिप्रेरणा (नेगेटिव मोटीवेशन) की अपेक्षा बालक को नैतिकता की ओर खींचने के लिए अधिक उपयुक्त है। परन्तु बालक के नैतिक विकास में 'दण्ड' के स्थान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। किसी कार्य का सम्भावित फल क्या होगा इस समझ के आधार पर बालक अपने कार्य के औचित्य और अनौचित्य को समझने का प्रयत्न करेगा। इस प्रकार वह स्वयं यह निश्चय कर सकेगा कि उसका कार्य अच्छा है अथवा बुरा है। ऐसा निश्चय कर सकने का अर्थ यह है कि बालक विनय के नियमों के अनुसार कार्य करने में समर्थ हो रहा है अर्थात् उसका व्यवहार नैतिकता की ओर उन्मुख है।

विनय के नियमों का प्रयोग बालक के सम्बन्ध में इस प्रकार करना चाहिए कि वह उनके तथा प्रौढ़ों के प्रति स्वास्थ्यप्रद भावना कर सके। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से यह पता चला है कि शारीरिक दण्ड के अत्यधिकता से बच्चों में वास्तविकता से भागने की तथा प्रौढ़ों के ध्यान और प्रेम पर निर्भरता की प्रवृत्ति आ जाती है। अत्यधिक डाँटने और डराने से बच्चों का व्यक्तित्व अनाकर्षक होता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाता है। बच्चों से प्रायश्चित कराने अथवा उन्हें धमकियाँ दिखलाने का फल अच्छा नहीं होता। इससे उनमें सामाजिकता की प्रवृत्ति घट जाती है और उनकी आत्मनिर्भरता कम हो जाती। घर में कड़े नियन्त्रण और विनय का बालक के व्यक्तित्व पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

विकास पर प्रभाव डालने वाली बातें—बालक के नैतिक विकास पर उसके वातावरण का बड़ा प्रभाव पड़ता है। वातावरण की जिन बातों से उसका नैतिक विकास प्रभावित होता है, उनमें से कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण बातों की ओर नीचे संकेत किया जा रहा है—

कुटुम्ब-कुटुम्ब के लोगों का बालक के नैतिक विकास पर चार प्रकार का प्रभाव पड़ता है—

(१) कुटुम्ब का व्यवहार बालक के लिए आदर्शस्वरूप होता है, अतः वह उसके अनुकरण की चेष्टा में रहता है। (२) पुरस्कार, प्रशंसा तथा दण्ड के सहारे कुटुम्ब बालक को सामाजिक व्यवहार दिखलाना सिखलाता है। (३) बुरे कार्य के अनुसार दण्ड देकर कुटुम्ब बालक को उसके बुरे कार्य की कठोरता को समझाता है। (४) अच्छे कार्य को करने के लिए कुटुम्ब बालक को अनेक प्रकार की प्रेरणा दे सकता है। इसीलिए कुटुम्ब को बच्चे की प्रथम पाठशाला कहा गया है।

साधारणतः बालक अपने कुटुम्ब के बड़े लोगों, जैसे माता-पिता, चाचा-चाची तथा भाई-बहिन के व्यवहार को आदर्श मानता है और उनके बुरे आचरण को भी अच्छा समझता है और तदनुसार स्वयं व्यवहार दिखलाने का प्रयत्न करता है। माता-पिता का बुरा स्वास्थ्य तथा उनकी मन्दबुद्धि, बुरी आर्थिक स्थिति तथा अन्य बातों से घर का वातावरण दूषित हो जाता है। घर के बुरे वातावरण से बालक का नैतिक विकास अवांछित दिशा की ओर जा सकता है और आगे चलकर बालक सामाजिक कार्यों में भाग ले सकता है। लड़कियों को प्रायः घर के अन्दर रहना पड़ता है। अतः बुरे वातावरण का उनके नैतिक विकास पर लड़कों की अपेक्षा अधिक बुरा प्रभाव पड़ता है।

अपराधी लड़कियों के अपने अध्ययन में 'फरनवर्ड' ने देखा कि उनमें से ८७ प्रतिशत कुव्यवस्थित घरों की थीं। अपने चिकित्सालय में लाये गये बालकों के अध्ययन में 'वेन्टर' और 'ब्लनचर्ड' ने देखा कि उनमें ९० प्रतिशत बुरे कौटुम्बिक वातावरण से आये थे। जब बालक स्कूल जाना प्रारम्भ कर देता है तो दिन का उसका अधिकांश समय घर के बाहर ही बीतता है। अब वह प्रौढ़ों की अपेक्षा अपने ही उम्र के अन्य बालकों के सम्पर्क में अधिक आता है। अतः उसके नैतिक विकास पर उसके साथियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

मनोवैज्ञानिक 'फिट' ने अपने अध्ययन में देखा कि नर्सरी स्कूल के बच्चों के भी नैतिक व्यवहार पर उनके साथियों का प्रभाव पड़ता है। 'वार्नर' ने अपराधी बालकों के अध्ययन से निष्कर्ष निकाला है कि हर प्रतिशत अपराध बुरे साथियों द्वारा अभिप्रेरित किये जाते हैं।

प्रतियोगिता—स्कूल जाने लगने से बालक प्रतियोगिता के खेलों में भाग लेने लगता है। प्रतियोगिता सम्बन्धी खेलों में नैतिक शिक्षा के बड़े अवसर मिलते हैं। खेल में बच्चों को ईमानदार बनने तथा स्वार्थ त्याग करने की शिक्षा मिलती है। खेल में खेल के नैतिक नियमों की जो अवहेलना करता है, उसे अन्य लड़के हेय दृष्टि से देखते हैं। अतः ऐसे अवसरों पर नैतिक नियमों का पालन करना बालक को बड़ा ही आवश्यक जान पड़ता है। जो खिलाड़ी किसी तरह जीतना चाहता है उसे अच्छा खिलाड़ी नहीं कहा जाता। जो खेल में सारा श्रेय अपने ही पास रखना चाहता है और अपने अन्य साथियों को अपना कौशल दिखलाने का अवसर नहीं देता, उसकी निन्दा की जाती है। इस प्रकार स्कूल के द्वारा आयोजित खेलों से बालकों को नैतिक शिक्षा मिलती है।

जिस स्कूल में स्वशासन के आधार पर विनय स्थापना की व्यवस्था की जाती है, उस स्कूल के बालकों के वांछित नैतिक प्रत्ययों का विकास होता है, क्योंकि इससे आत्म-नियन्त्रण तथा दूसरों की सुविधाओं पर ध्यान देने की शिक्षा मिलती है। प्रत्यक्ष परिस्थितियों में वास्तविक अनुभूति से बालकों को बहुत कुछ सिखाया जा सकता है। कहना न होगा कि ऐसे अवसरों का स्कूल में सरलता से आयोजन किया जा सकता है।

पुस्तकें—जिस प्रकार माता-पिता तथा शिक्षकों का प्रभाव बच्चों के नैतिक विकास पर पड़ता है, उसी प्रकार उनके द्वारा पढ़ी हुई पुस्तकों का भी प्रभाव पड़ता है। छपी हुई बातों का प्रभाव पाठक पर बड़ी ही जल्दी पड़ता है।

सिनेमा—मनोवैज्ञानिकों ने यह जानने का विशेष प्रयत्न किया है कि बालकों के नैतिक विकास पर सिनेमा का क्या प्रभाव पड़ता है ? जिस प्रकार सिनेमा का व्यक्ति की वाणी और पहनावे पर प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार उसका भाव, उसके नैतिक व्यवहार पर भी पड़ता है। सिनेमा से व्यक्ति के जीवन-दृष्टिकोण पर प्रभाव पड़ सकता है। उससे धन और वैभव की इच्छा व्यक्ति में उत्पन्न हो सकती है। उससे उसकी प्रवृत्ति अपराध करने की ओर भी जा सकती है। किशोर अवस्था में बालकों में निर्देश की योग्यता बड़ी प्रबल होती है। अतः इस पर कड़ी दृष्टि रखनी चाहिए कि वे कैसा सिनेमा देखने जा रहे हैं। नैतिकता के लिए केवल बुद्धि की ही आवश्यकता नहीं होती, यद्यपि नैतिकता के विकास में बुद्धि की उपेक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि किसी परिस्थिति की अच्छाई और बुराई को समझने के लिए बुद्धि की आवश्यकता होती है। परन्तु इसे समझने के लिए बहुत ही उत्कृष्ट कोटि की बुद्धि की आवश्यकता नहीं। एक सामान्य बुद्धि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

वाला व्यक्ति भी इसे सरलता से समझ सकता है। 'टरमन' को १००० बालकों के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि उनमें १३० बुद्धि-लब्धि वाले ईमानदारी, सच्चाई तथा अन्य समान नैतिक गुणों में सामान्य बालकों की अपेक्षा कहीं अधिक आगे बढ़े हुए थे।

'विगम' का कथन है कि बुद्धि नैतिक व्यवहार के साथ-साथ इसलिए चलती है, क्योंकि बुद्धिमान लड़के समझते हैं कि उचित व्यवहार ही बुद्धि-युक्ति आचरण है। बुद्धिमान लड़के प्रायः नैतिक व्यवहार दिखलाते हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि ऐसा व्यवहार ही सबसे अच्छा फल देगा। एक बुद्धिमान बच्चा अथवा प्रौढ़ व्यक्ति यह शीघ्र समझ लेता है कि जीवन में जो कुछ वह चाहता है, उसे बेईमानी और धोखे की अपेक्षा ईमानदारी और सच्चाई के सहारे अधिक सरलता से पा सकता है।

शरारतें—कुछ बच्चे अपने मन में यह धारणा बना लेते हैं कि ऊधम करने से वे दूसरों का ध्यान अपनी ओर अधिक आकर्षित कर सकेंगे। इन ऊधमों के कारण दण्ड पाने पर भी वे अपने ऊधमों को शीघ्र नहीं छोड़ते, क्योंकि दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में उन्हें कुछ विशेष आनन्द आता है।

कुछ बड़े बच्चों का समूह शरारतें करने में विशेष आनन्द का अनुभव करता है। दूसरों को चिढ़ाने, दरवाजे की घण्टी बजाने, चुपके से साइकिल या मोटर वाले की टायरों की हवा निकाल देने, सड़कों, रास्तों या दीवालों पर मनमाने चित्र बनाने या लिख देने में समूह का प्रत्येक सदस्य आनन्द लेता है, क्योंकि वह समझता है कि परिस्थिति का वह पूरा स्वामी है। स्कूल में दूसरे बालकों के साथ कानाफूसी करने, इधर-उधर कागज के टुकड़े पहुँचाने तथा दूसरे बच्चों को तंग करने से दण्ड पाने पर भी कुछ बालकों को इसमें आनन्द आता है, क्योंकि वे सोचते हैं कि वे दूसरों के ध्यान के केन्द्र हो जाते हैं।

कुछ व्यक्तियों के व्यवहार में सारे बचपनभर शरारत पाई जाती है। बचपन में बालक माता-पिता के नियन्त्रण को ढीला कर समूह के नियन्त्रण में आ जाता है। अतः इस काल में उसमें शरारतों का पैदा होना स्वाभाविक है। अतः इस काल की शरारतों से माता-पिता तथा शिक्षक का घबड़ाना ठीक नहीं। घर पर की जाने वाली शरारतों में बिस्तर पर पेशाब कर देना, ऊधम मचाना, छोटे बच्चों को अनायास पीट देना, मटरगश्ती करना, अवज्ञा करना, अनियमितता, झूठ बोलना तथा चोरी करना आदि के नाम लिए जा सकते हैं। ये सभी शरारतें बच्चे के अप्रौढ़ता के लक्षण हैं। मनोवैज्ञानिक नियन्त्रण और व्यवहार दिखलाने पर इनमें से अधिकांश स्वतः दूर हो जाते हैं।

तरुणावस्था के पूर्व अर्थात् ग्यारह से चौदह वर्ष के लगभग बच्चों में स्वार्थपरता तथा उत्तरदायित्व से भागना अधिक देखा जा सकता है। इस समय उन्हें अपने व्यक्तित्व स्थापना की कुछ चिन्ता हो जाती है। अतः अपने कार्यों में दूसरों के हस्तक्षेप का भी वे कभी-कभी स्पष्टतः विरोध करते हैं।

बच्चों के झूठ—बच्चों की शरारतों में 'झूठ बोलने' का मनोवैज्ञानिकों ने विशेष अध्ययन किया है। 'लेनार्ड' ने बच्चों के ७०० झूठ का अध्ययन किया है और उसमें देखा है कि उनमें ६८ प्रतिशत दूसरों द्वारा अस्वीकृति तथा दण्ड के भय से थीं। उनमें से १२ प्रतिशत बच्चों की कल्पना अथवा अतिशयोक्ति के कारण और २० प्रतिशत जानबूझकर कल्पना के कारण अथवा धोखा देने के उद्देश्य से थीं।

'मार्गन' ने कहा है कि बच्चों में झूठ को सात श्रेणियों में रखा जा सकता है—

१. कल्पना के कारण खेल में। २. बातों को ठीक-ठीक न समझ सकने का कारण अथवा दूसरों द्वारा बहकाने में। ३. दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए। ४. घृणा और प्रतिशोध की भावना से। ५. कड़े नियन्त्रण के भय से। ६. अपने स्वार्थपूर्ति के हेतु दूसरों को धोखा देने में। ७. अपने मित्र की रक्षा के लिए।

कुछ लड़के और लड़कियाँ दण्ड के भय से दूसरों को दोष देती हैं। लड़के झूठ बोलकर दण्ड से बच जाने में प्रायः अपनी बहादुरी समझते हैं, जिसमें प्रौढ़ लोग शेखी में अनायास झूठ बोला करते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन में देखा है कि झूठ बोलने वाले बच्चे प्रायः ऐसे अव्यवस्थित घरों से आते हैं, जहाँ उन्हें कोई प्यार नहीं करता और जहाँ उन्हें अस्थिर विनय नियमों का पालन करना होता है। ऐसे बच्चों की माताओं के अध्ययन से पता चला कि उनमें से लगभग ६७ प्रतिशत अपने बचपन में बहुत झूठ बोलती थीं।

बेईमानी—बच्चों की बेईमानी के सम्बन्ध में 'हर्टशोन' और 'मे' ने ११००० बच्चों का कुछ परीक्षणात्मक अध्ययन किया। अपने अन्वेषण के आधार पर उन्होंने निष्कर्ष निकाला है कि धोखा देने में लिंग भेद विशेष उल्लेखनीय नहीं है। उनका कहना है कि बड़े बच्चे छोटे बच्चों की अपेक्षा अधिक धोखा देते हैं। ऊँची सामाजिक और आर्थिक स्थिति वाले बच्चे भी कम सामाजिक और आर्थिक स्थिति वाले बच्चों की अपेक्षा कम धोखा देते हैं। ईमानदारी और बेईमानी बहुत हद तक परिस्थिति विशेष तथा बच्चों के निहित उद्देश्य पर निर्भर करती है न कि किसी सामान्य नैतिक गुण पर। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि एक परिस्थिति में बालक ईमानदार हो सकता है और दूसरी परिस्थिति में बेईमान तथा एक परिस्थिति में उसके निहित ध्येय के अनुसार बेईमानी का लक्षण उसमें देखते हुए भी उसे ईमानदार कहा जा सकता है और दूसरी परिस्थिति में उसके ध्येय के अनुसार उसे बेईमान कहा जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों का निर्माण वाणी से नहीं, आचरण से किया जाय

सोचा यह जाता है कि उपदेश अथवा भाषण द्वारा दूसरों को प्रभावित किया जा सकता है तथा इतने भर से लोग अपना दृष्टिकोण एवं व्यवहार परिवर्तित कर लेते हैं, श्रेष्ठता के मार्ग पर चलने लगते हैं। इस मान्यता के आधार पर आज प्रवचनों, उपदेशों एवं लेखों की धूम मची हुई है। यह यदि सत्य होता तो किसी व्यक्ति में अवगुण नहीं पाये जाते, प्रत्येक व्यक्ति सदाचारी एवं चरित्रवान होता। परन्तु तथ्य इससे सर्वथा विपरीत है। वक्ता का व्यक्तित्व एवं चरित्र ही वह आधार है, जिससे प्रभावित होकर लोग अपनी गतिविधियाँ बदलने के लिए विवश होते हैं।

यहाँ प्रवचन एवं भाषण की अनुपयोगिता नहीं बताई जा रही है, न ही यह कहा जा रहा कि इनका कुछ भी प्रभाव व्यक्ति के ऊपर नहीं पड़ता है बल्कि इस तथ्य का प्रतिपादन किया जा रहा है कि वक्ता अथवा प्रवचनकर्त्ता के दिये गये व्याख्यान का प्रभाव तभी पड़ता है जबकि उसके अनुरूप उसका व्यक्तित्व हो तथा उन बातों को उसने अपने आचरण का अंग बनाया हो।

राजनैतिक से लेकर सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में वक्ताओं की कमी नहीं है। जुआ, नशा सिनेमा, असंयम, आलस्य, कुविचार जैसे दुर्गुणों पर इनके व्याख्यान आये दिन होते रहते हैं परन्तु उनका प्रभाव सुनने वाले व्यक्तियों पर नहीं पड़ता है। इन बुराइयों के परित्याग कराने में उच्च कोटि के श्रेष्ठ संस्कार वाले व्यक्ति ही सफल होते हैं क्योंकि वे अपनी वाणी से नहीं अपने आचरण एवं व्यक्तित्व द्वारा दूसरों को प्रभावित करते हैं। इनके प्रभाव से दुराचारी, अचरित्रवान तथा दुष्ट सन्त बनते देखे जाते हैं। व्यक्ति की गतिविधियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर देना इन्हीं के द्वारा सम्भव होता है।

वाणी की चतुरता की कला को अब जनता द्वारा उपेक्षित किया जा रहा है। लोग इससे कुछ मनोरंजन भले ही कर लें परन्तु उनके आचरण में परिवर्तन सम्भव नहीं है।

यह तथ्य जितना सामाजिक क्षेत्र में लागू होता है उतना ही पारिवारिक क्षेत्र में। हम चाहते हैं कि हमारे परिवार के बच्चे सभी हमारा कहना मानें, उनके आचरण श्रेष्ठ हों तो उनके सामने अपना श्रेष्ठ आचरण प्रस्तुत करना होगा। समझाने-बुझाने का कुछ न कुछ प्रभाव तो पड़ता ही है परन्तु स्वभाव विचार एवं भाव में परिवर्तन करना हो तो पहले स्वयं का निरीक्षण एवं उसमें आवश्यक सुधार करना होगा। उत्कृष्ट व्यक्तित्व का प्रभाव ही परिवार के सदस्यों पर पड़ता है। जलता हुआ दीपक ही दूसरे दीपक को जला सकता है।

परिवार में शान्ति एवं व्यवस्था भी तभी रह सकती है जब परिवार में सज्जनता, स्नेह, सदाचरण की गतिविधियाँ अपनायी जाएँ। आज चारों तरफ जो दूषित वातावरण फैला है, उससे लोग शीघ्र ही प्रभावित होते हैं। अच्छाई की अपेक्षा बुराई शीघ्र ही ग्रहण की जा सकती है। परिवार के बड़ों का अनुकरण अन्य सदस्य एवं बच्चे शीघ्र ही कर लेते हैं। घर में व्यक्ति की आदतें नंगी होती हैं क्योंकि अपने दुर्गुणों की पूर्ति वह घर के वातावरण में स्वतन्त्र रूप से करता है। घर के बाहर तो ढोंग से भी काम चल जाता है।

परिवार में दुर्गुणी सदस्य उतना ही दुःख देते हैं जितना कोई कष्टसाध्य रोग। इनका सुधार करना उतना ही आवश्यक है जितना कि बीमार को नीरोग बनाना। इसकी उपेक्षा करने से परिजनों में घुसे दुर्गुण पूरे परिवार की सुख-शान्ति को नष्ट कर नारकीय स्थिति बना डालते हैं। दुर्गुणों के उपचार के लिए आरम्भिक स्तर पर ही प्रयास किया जाना चाहिए अन्यथा परिपक्वता आ जाने पर सुधार की गुंजाइश बहुत ही कम रह जाती है।

किसी व्यक्ति को यदि सुख की आकांक्षा हो तो उसे परिवार को भी सुसंस्कृत बनाना होगा। यह सोचते समय हमें ध्यान देना होगा कि परिवार के सदस्यों पर उपदेश की प्रक्रिया का बहुत थोड़ा प्रभाव पड़ता है। इतने से यदि काम चलता तो प्रत्येक परिवार में कोई न कोई समझाने वाला रहता ही है, जिनके समझाने से घर के सभी सदस्य सद्गुणी होते तथा वातावरण स्वर्ग जैसा दिखाई देता। फिर कोई घर अशान्ति का केन्द्र क्यों रहता ? बच्चे उद्दण्ड एवं अवगुणी क्यों होते ?

परिवार को सुधारने की इच्छा रखने वालों को सर्वप्रथम अपने आपको सुधारना चाहिए क्योंकि वास्तविक प्रवचन यही है कि माता-पिता के ऊपर बच्चों को जन्म देने का ही नहीं उन्हें सुसंस्कारी बनाने का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। बच्चों की आदतों के ठीक न होने का अधिकांश दोष उनके अभिभावकों को ही दिया जा सकता है। लाड़-प्यार में माँ-बाप बच्चों पर बहुत अधिक खर्चा करते रहते हैं। परिणामस्वरूप बच्चा पैसे का मूल्य समझ नहीं पाता तथा फिजूलखर्ची की आदत सीख जाता है। यही आदत बड़े होने पर अपव्यय के रूप में देखी जाती है।

माता-पिता में जो परस्पर कलह-संघर्ष होता रहता है, उसका प्रभाव बच्चे के कोमल हृदय पर पड़ता है। वे भी द्वेष, घृणा, कटुता की भावनाएँ अपना लेते हैं जिसका परिणाम आगे चलकर पारिवारिक जीवन के लिए घातक सिद्ध होता है। जिस माता के हृदय में अपने बड़ों के प्रति श्रद्धा होगी, उसके बच्चे भी अपने माता-पिता, बड़ों के प्रति श्रद्धावान एवं भावनाशील होंगे।

माता-पिता के संयोग से बच्चे का शरीर ही नहीं बनता, वरन् उनकी मानसिक स्थिति के आधार पर ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बालक का मन भी विनिर्मित होता है। जो अभिभावक स्वयं दुर्गुणों एवं कुसंस्कारों से भरे हैं, उनके बच्चों में भी प्रायः उसी स्तर के संस्कार आयेंगे।

अच्छी सन्तान सुसंस्कारी माता-पिता प्रयत्नपूर्वक उत्पन्न कर सकते हैं। इसके लिए माँ-बाप को पहले अपने आपको संस्कारवान बनाने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। कुसंस्कारी बच्चे तो पैदा होते ही रहते हैं और समाज के लिए भार बनते देखे जाते हैं। यदि संस्कारी बच्चों की कामना है तो उसके लिए स्वयं में परिष्कार करना ही होगा अन्यथा यह कामना छोड़ देनी चाहिए तथा जैसे भी दुर्गुणी बच्चे जन्में उन्हें अपनी करनी का फल मानकर सन्तोष करना चाहिए।

एक सन्त के पास एक महिला यह जानकर पहुँची कि उनकी बातों का प्रभाव शीघ्र ही पड़ता है तथा व्यक्ति अपने अवगुणों को छोड़ देता है। उस महिला का बच्चा शक्कर खाता था, जिससे उसका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। डाक्टरों एवं स्वयं उसके द्वारा समझाये जाने का उस बालक के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सन्त ने उससे पन्द्रह दिन का समय माँगा तथा उसके बाद आने को कहा।

इस अवधि के बाद वह अपने बच्चे को लेकर पहुँची। सन्त ने बच्चे से शक्कर न खाने का उपदेश दिया। परिणामस्वरूप उसी दिन से उसने शक्कर खाना छोड़ दिया। निकट रहने वालों ने सन्त से इसका रहस्य पूछा कि इतनी-सी बात तो आप पन्द्रह दिन पहले भी कह सकते थे फिर इतना समय लेने का क्या कारण था ? उन्होंने बताया कि वह स्वयं उन दिनों शक्कर बड़ी रुचि के साथ खाते थे, इसलिए उनके द्वारा दिये गये उपदेश का प्रभाव उस समय बच्चे पर नहीं पड़ता। इन पन्द्रह दिनों में उन्होंने स्वयं शक्कर का त्याग किया जिससे यह सम्भव हो सका कि बच्चे को शक्कर छोड़ने का उपदेश दे सकें।

प्रत्येक माता-पिता एवं अभिभावक अपने बच्चों को राम, कृष्ण, श्रवण के रूप में देखना चाहते हैं परन्तु यह नहीं सोचते कि दशरथ, वासुदेव के समान पहले इस इच्छा की पूर्ति के लिए मूल्य चुकायें। गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से अपने को इस योग्य बनायें कि उनके बच्चे भी श्रेष्ठ आचरण करें। वाणी की अपेक्षा अपना अनुकरणीय आचरण सामने प्रस्तुत करके बच्चों का सुधार आसानी से कर सकते हैं।

पहले अभिभावकों को ही शालीनता का पाठ पढ़ना होगा

विख्यात समाजशास्त्री डा. जेम्स बोसार्ड ने अपने जीवन के ४० वर्ष ''आज के पारिवारिक जीवन की सबसे उपेक्षित समस्या'' का समाधान निकालने और बच्चों के पालन-पोषण की सही रीति-नीति के अनुसन्धान में लगाये हैं। अपने अनेक प्रयोगों में से एक का निष्कर्ष बताते हुए उन्होंने लिखा है कि विभिन्न परिवारों के व्यक्तियों द्वारा भोजन के समय की जाने वाली बात-चीत के विषय का अध्ययन करते समय मैं यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि कुल वार्तालाप का ९९ प्रतिशत से भी अधिक दूसरों की निन्दा से सम्बन्धित था। निन्दा की यह पद्धति इतनी अधिक प्रचलित है कि शायद इन परिवारों के लोग दूसरों की प्रशंसा में एक शब्द भी नहीं कहते हैं। दोस्तों, रिश्तेदारों, पड़ोसियों, उधार देने वाले दुकानदारों, धोबियों, ग्वालों सभी की वे निन्दा ही निन्दा करते हैं। परिवार का यह निन्दामय वातावरण अभिभावकों की उपेक्षावृत्ति और लापरवाही के कारण बच्चों के कोमल मस्तिष्क पर जहर-सा खतरनाक असर करता है। ऐसे परिवारों के बच्चे अधिकतर समाज विरोधी और क्रोधी स्वभाव के हो जाते हैं। ऐसे परिवारों के छोटे-बड़े सदस्य साधारण-सी बातों पर अपनी तुनकमिजाजी का प्रदर्शन करते रहते हैं और आपस में झगड़ते रहते हैं। बच्चे भी इन दुष्प्रवृत्तियों का चोरी-छिपे अनुकरण करने में गर्व महसूस करते हैं, जिन्हें वे अपने दैनिक जीवन में परिवार में देखते हैं।

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि शत-प्रतिशत परिवारों का यही हाल है। ऐसे भी परिवार हैं, जिनके सदस्य अपने शिष्ट एवं सौम्य व्यवहार से बच्चों के मानसिक विकास में अपना योगदान देते हैं। अपनी आपसी बात में उन्हें भी हिस्सा लेने देते हैं तथा उनका उत्साहवर्द्धन करते हैं। सुझाव देते हुए डॉ. बोसार्ड का कहना है कि अभिभावकों को अपनी बात-चीत की पद्धति बदल देनी चाहिए, जिससे बच्चों को स्वस्थ वातावरण मिल सके। इस बात पर हमेशा ध्यान देना जरूरी है कि हम जो बातें करते हैं, उस पर बच्चे भी अपना विचार प्रकट करना चाहते हैं। भले ही वे विचार अपरिपक्व हों, हमें उन्हें गौर से सुनना चाहिए अन्यथा उनके विचार सदैव के लिए अपरिपक्व ही रह जायेंगे।

डॉ. बोसार्ड का कथन है—'आपको सही तरीका नजर नहीं आये तो आप उस मशहूर वकील का तरीका अपनाइये जो प्रतिदिन अपनी परिवार गोष्ठी में एक प्रश्न उठाता था। उसकी पत्नी और बच्चे एक-एक करके उसका समाधान करने की चेष्टा करते थे। अन्त में वह सही उत्तर बताता था। वकील के इस प्रयास से बच्चों की तर्क, बुद्धि और ज्ञान का विकास तो होता ही था—आवश्यक निन्दाओं और आलोचनाओं की बुरी आदतों से भी उनकी अनायास ही रक्षा हो जाती थी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आर्मी में एवं कान्वेण्ट स्कूलों में पढ़ाई की जो अन्य विशेषताएँ हैं वे अलग हैं, पर 'एटीकेट' का शिक्षण अपने आप में एक ऐसी स्वचालित प्रक्रिया है कि वह बच्चों के कच्चे मन में अच्छी तरह जड़ जमाती चली जाती है। आध्यात्मिक शिक्षण, नैतिक मूल्यों की जीवन में महत्ता, जीवनोद्देश्य एवं उसकी गरिमा का ज्ञान उन विद्यालयों में नहीं दिया जाता—इसलिए बच्चा एकांगी शिक्षा पाता है, मात्र 'एटीकेट' सीखकर रह जाता है, यह शिक्षण पारिवारिक संस्था में अभिभावक भली-भाँति दे सकते हैं। यह इस पर निर्भर करता है कि सहज रूप में, अपने जीवनक्रम में वे आपस में किस प्रकार बात करते हैं। सिविकसेन्स, शिष्टाचार, शालीनता का जीवन में समावेश एक बालक की पोषक आहार की पूर्ति से भी बड़ी आवश्यकता है।

आवश्यकता है कि समय रहते परिवारों की इस उपेक्षित समस्या के समाधान के प्रयास आरम्भ किये जायें और इसे माता-पिता, बड़े भाई-बहिन पहले स्वयं पर प्रयुक्त करें, तभी हमारी दिनों-दिन टूटती-बिखरती जा रही परिवार संस्था को नष्ट-भ्रष्ट होने से बचाया जा सकेगा।

बाल मनोविज्ञान को समझें, उन्हें सही दिशा दें

बालकों का मनोविज्ञान बहुत रोचक है। उनके कार्य-कारण का सम्बन्ध समझने का ढंग अनूठा है। वे अनायास न तो ऊँचाई से कूदते हैं, न एक बार हाथ जला लेने पर दुबारा आग या गरम वस्तु को छूते हैं। किसी वस्तु की अच्छाई-बुराई, शोर मचाना, मारपीट को अभ्यास के उपरान्त समझने लगता है। छोटे बच्चे अन्धानुकरण करते हैं, बड़े होने पर उनमें मौलिकता आ जाती है। आयु बढ़ने के साथ उनकी दिलचस्पी, रुचि, चेष्टाएँ बढ़ने लगती हैं। बाल-मनोविज्ञान को समझना और सही रचनात्मक दिशा प्रदान करना, हर अभिभावक या माता-पिता का प्रथम अनिवार्य कर्त्तव्य है।

जब छोटे बच्चे किसी काम को करना आरम्भ करें और उसमें त्रुटि की आशंका हो, तो उन्हें डाँटना नहीं चाहिए। यदि काम खराब भी किया जा रहा है तो उसे दूसरे काम पर लगाकर उसका ध्यान बँटा भर देना पर्याप्त है। डाँटने-फटकारने से तो उनमें हीन भावना ही विकसित होगी। इससे तो काम के प्रति अस्त-व्यस्तता और अरुचि ही पैदा होती है।

बालकों में कुछ न कुछ करते रहने, जानने-सीखने की प्रवृत्ति होती है। यही प्रवृत्ति इनके विकसित भविष्य का संकेत है। इसमें इनका सहयोग किया जाना चाहिए। टूट-फूट की आशंका, समय खर्च हो जाने की वजह से कितने ही अभिभावक बच्चों को डाँट-फटकार कर उनकी रचनात्मक प्रवृत्ति समाप्त कर देते हैं। दो वर्ष पूरा करते-करते बच्चे इतने समझदार हो जाते हैं कि वस्तु उठा-पटककर बना-बिगाड़ सकते हैं। तीन साल की उम्र तक बच्चा हाथ में पेंसिल उठाना सीख जाता है और आड़ी-तिरछी रेखाएँ खींचने लगता है। गोल छेद में गोल, चोकोर में चोकोर वस्तु फँसाना भी सीख लेता है। इस तरह उनका क्रमशः बौद्धिक विकास होता जाता है।

बच्चों की वाक्शक्ति इस बात पर निर्भर करती है कि घर का अथवा संगी-साथियों का वातावरण उसे कैसा मिला ? बालक सुन-समझकर, देखकर और अनुभवों से उस वातावरण और ध्वनि से अभ्यस्त हो जाता है। उसे इसके लिए अपने दिमाग पर सीखने के लिए जोर नहीं डालना पड़ता, वरन् सहज अभ्यास से ही वह उस शब्दावली, हाव-भाव, भाव-भंगिमा से अभ्यस्त होने लगता है। जिन बच्चों के कोई साथी नहीं होते वे अपने गुड्डे-गुड़ियों, खिलौने, तस्वीर से वार्तालाप करने लगते हैं। बच्चों के विकास के लिए संगीत, मधुर भावनात्मक कविताएँ, कहानियाँ सुनाना एवं अभिनय, चित्रकारी आदि कराना चाहिए। उसके अनुरूप खेल, नाटक आदि कराते रहना चाहिए। इस माध्यम से उन्हें जितनी ही रचनात्मक दिशा दी जायेगी उतना ही विकास होगा।

अमेरिकन मनोवैज्ञानिक ई. आर. हिलगार्ड ने अपने अध्ययन 'द साइक्लॉजी ऑफ चिल्ड्रेन विहेवियर' में कहा है कि बालकों को माता-पिता के गुण-दोष, स्वभाव-संस्कार विरासत में सहज ही मिल जाते हैं। सूक्ष्म जीन्स से लेकर दिन-प्रतिदिन का आचरण-व्यवहार बच्चों को प्रभावित करता है। समीपस्थ वातावरण आदि से मिलकर ही उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। इन सबके अतिरिक्त शिक्षण का अपना महत्त्व है, जिससे उसकी अनेकानेक विकास की सम्भावनाओं का मार्ग प्रशस्त होता है।

हिलगार्ड के अनुसार लोगों का यह अनुमान सही नहीं है कि बच्चा बोल नहीं पाता इसलिए कुछ नहीं समझता। छह महीने से एक वर्ष का बालक ध्वनियों और संकेतों के माध्यम से भावनाओं को समझ लेते हैं। वही बालक अपने माँ-बाप की आवाज सुनकर हँसता है, पशुओं की आवाज अथवा विस्मय-डरावने संकेतों से उसे कौतूहल होता है और डरता है।

विख्यात मनोविद् आर. एच. वुड फील्ड ने बाल-मनोविज्ञान के क्षेत्र में गहन अध्ययन किया है। अपने अध्ययन के निष्कर्ष को 'थ्यौरी एण्ड प्राब्लम इन चिल्ड्रेन साइक्लॉजी' में प्रस्तुत करते हुए उन्होंने बताया है कि योग्यता एवं कुशलता वंश परम्परा की उतनी देन नहीं है जितना कि शिक्षण द्वारा उसका विकास किया जा सकता है। उनके अनुसार दोनों ही बातें अपने स्थान पर आंशिक रूप से सही या गलत हो सकती हैं किन्तु तथ्य यह है कि अभिभावकों तथा परिवेश का अपना विशेष महत्त्व है। जिज्ञासु प्रवृत्ति यदि उसे विरासत में प्राप्त हुई है तो बौद्धिक विकास की सम्भावनाएँ अधिक सुनिश्चित हैं। जिन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों की जिज्ञासु प्रवृत्ति मन्द है अथवा है ही नहीं उन्हें कोई वस्तु-दृश्य आकर्षित नहीं करते। वे सामान्य बुद्धि या मन्द बुद्धि के रह जाते हैं। जिनके मन में नित नये प्रश्न उभरते हैं, वे विशद् ज्ञान के भण्डार संचय कर लेते हैं। माता-पिता को चाहिए कि ऐसे बच्चे की प्रश्नोत्तरी दमित करने का प्रयास न करें, उसे संतुष्ट करने का प्रयत्न करें। इससे उसके मन की परतें खुलेंगी, ज्ञान विकसित होगा।

आयु के विकास के साथ बालकों की जिज्ञासा की परिधि की सीमा भी बढ़ती जाती है। घर-परिवार की वस्तुएँ, सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति, आवश्यक उपकरण सभी परिचित जाने-माने से लगने लगते हैं। अतः कुछ समय पश्चात् उनमें कुछ नवीनता न दिखाई देने से अब वह बाह्य वातावरण को झाँकने का प्रयास करता है। ऐसे में अभिभावकों को चाहिए कि टोका-टोकी 'मत करो', 'मत जाओ' जैसे रोकने की आदेशात्मक अथवा उपदेशात्मक शैली न अपनाकर उसका सहज मार्गदर्शन करें। यह उसके हित में एवं विकास में सहायक होगा। रोकने-टोकने से उसमें विद्रोही भावनाएँ जाग्रत होती हैं। उनकी प्रवृत्ति जिद करने की बन जाती है, जो आगे चलकर विद्रोह-विग्रह का रूप धारण कर लेती है। बच्चों की ज्ञान पिपासा, जिज्ञासु वृत्ति की तुष्टि करने का यही अवसर होता है। उनका विकासक्रम अवरुद्ध नहीं होने पाता। इस प्रकार के बाल मनोविज्ञान की जानकारियाँ आमतौर से माता-पिता को नहीं होतीं। वे तो हर समय बालक को रोकते रहते हैं, जिससे वे उद्दण्ड, जिद्दी, हठी, उपद्रवी हो जाते हैं।

बालकों के विकास का एक मनोवैज्ञानिक तरीका यह है कि उनको रुचिकर कार्यों के प्रति प्रेरित किया जाय। बच्चों द्वारा किये गये कार्यों में गलती निकालकर उनको सही ढंग से करने का तरीका इस तरह बताया जाय कि उनको मनोरंजन-कौतूहल जैसा कुछ न कुछ जान पड़े। बच्चे असफलता से निराश न होकर दूने उत्साह से उस काम को करें, ऐसा प्रयास हर अभिभावक को करना चाहिए। उनकी सफलता पर हर्ष व्यक्त किया जाना चाहिए। साहसी प्रयासों पर उनकी प्रशंसा की जानी चाहिए। प्रलोभन देकर किसी काम में संलग्न कराने की अपेक्षा उस कार्य की उपयोगिता बताई जाय। उसके दूरगामी परिणाम होंगे अन्यथा लोभवश तो उसको काम में रुचि रहेगी किन्तु प्रलोभन के बिना टालमटोल करने की उसकी प्रवृत्ति बन जाएगी, जो उसके भविष्य निर्माण के लिए हितकर न होगी।

उक्त मनोवैज्ञानिक तथ्यों को ध्यान में रखकर प्रत्येक अभिभावक अपने बच्चों के अन्तराल में निहित विकास एवं प्रतिभा के बीजों को न केवल अंकुरित कर सकता है, वरन् उनका संवर्द्धन भी कर सकता है। इन्हें न समझ पाने के कारण अनेक बच्चे कुण्ठा का शिकार हो जाते हैं, अनेक प्रतिभा के खजाने यों ही दबे-छिपे पड़े रह जाते हैं। यदि उन्हें प्रतिभा-प्रदर्शन एवं स्वस्थ-प्रतिस्पर्द्धा का अवसर दिया जा सके तो उनके मानसिक विकास में सहायता मिलती है। उनके अन्दर कुछ करने और कुछ बनने की तीव्र उत्कण्ठा उभरती है। प्रतिभा प्रदर्शन के उनके कार्यों को प्रोत्साहन मिलता है। यही प्रोत्साहन उनके आगे बढ़ने में, किये कार्यों में संतोषप्रद सफलता दिलाता है।

बच्चों को कहानियाँ सुनाइये

बड़ा व्यक्ति हो या बच्चा, जिस वस्तु, विषय या चर्चा में उसका मन लगता है उस स्थिति को कहते हैं—तन्मयता। यह तन्मयता व्यक्ति के अन्तर्जगत पर अपने इतने गम्भीर और गहरे प्रभाव डालती है कि उसकी जीवन-दिशा धीरे-धीरे उसी ओर मुड़ने लगती है। आकस्मिक रूप से घटने वाली कोई घटना या बात जो हृदय को छू लेती है और तत्काल सम्बन्धित व्यक्ति का जीवन-प्रवाह बदल डालती है। उस समय तो व्यक्ति की तन्मयता इतनी प्रगाढ़ हो जाती है कि लगता है कि समाधि ही लग गयी।

पर ऐसी घटनाएँ हर किसी के साथ नहीं घटतीं और न ही घटने की आशा की जानी चाहिए। इसलिए बच्चों के व्यक्तित्व को किसी साँचे में ढालना है तो आवश्यक है कि उसमें उपयुक्त संस्कार डालने से पूर्व संस्कार माध्यमों के प्रति तन्मयता उत्पन्न की जाय।

तन्मयता लाना एक बात है और बच्चा किस माध्यम से तन्मय होता है यह अलग बात है। पहले की अपेक्षा दूसरा तरीका ही अधिक आसान और व्यावहारिक है। हम देखते हैं—बच्चा कोई गम्भीर बात या विषय में रस नहीं लेता क्योंकि उसकी मानसिक क्षमता इतनी विकसित नहीं होती।

इसलिए बेहतर है कि ऐसा कोई माध्यम अपनाया जाय जिससे बच्चे को रस भी मिले और संस्कार भी। वह माध्यम है—कथा-कहानियाँ सुनाने का। अब तक हमारे देश में दादी और माताएँ बच्चों को सोते समय कथा-कहानियाँ सुनाती आयी हैं। पर उनका स्तर इतना घटिया होता है कि बच्चों में कोई अच्छी वृत्ति पलने, अच्छे संस्कार उत्पन्न होने की अपेक्षा अन्ध-विश्वास, भय और अज्ञान ही जड़ें जमाता है। बड़े-बड़े इन्जीनियर, डॉक्टर या सुशिक्षित लोगों में भी तरह-तरह के अन्ध-विश्वास देखे जाते हैं। इसका कारण यह नहीं है कि उनकी शिक्षा-दीक्षा ठीक प्रकार से न हुई हो अथवा उनमें विचारशीलता का अभाव हो, वरन् इसका कारण यह है कि बचपन में अम्मा, दादी से उन्होंने भूत-प्रेतों की, जादू-टोनों की, टोने-टोटकों की जो कहानियाँ सुनी थीं उनके संस्कार इतनी मजबूती के साथ मानस पर जम गये हैं कि पत्थर की लकीर बन गये हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक प्रभाव तो यह है—बच्चों को कहानियाँ सुनाने का, जो उन्हें आजीवन भीरु, कायर और अन्ध श्रद्धालु बनाये रहता है। इसका एक और उजला पक्ष भी है कि बच्चों को अच्छी कहानियाँ सुनाई जाएँ, जिससे उनमें विचारशीलता जागे, अच्छी आस्थाएँ उत्पन्न हों, अच्छी मान्यताएँ जाग्रत हों और आगे चलकर उनका व्यक्तित्व फूल की तरह खिले तथा चन्दन की तरह महके।

एक नहीं ढेरों उदाहरण हैं इस तरह के जिनमें कि बच्चों को केवल कहानियाँ सुनाकर ही योग्य बनाया गया। आचार्य विष्णु शर्मा की कथा प्रसिद्ध है। उस राज्य के राजकुमार मन्दबुद्धि और अयोग्य थे। राजा को बड़ी चिन्ता थी कि मेरे बाद इस राज्य का क्या होगा ? कई शिक्षक नियुक्त किये गये, पर कोई परिणाम नहीं आया। अन्ततः विष्णु शर्मा ने अपने ढंग का एक अनूठा ही प्रयोग किया—जानवर पात्रों की कथाएँ सुना-सुनाकर राजकुमारों को योग्य और राजनीति में दक्ष बना दिया। उस प्रयोग का विवरण इतिहास में आज भी पंचतन्त्र के नाम से मशहूर है।

राम-लक्ष्मण को बाल्यकाल में जब विश्वामित्र अपने आश्रम में ले गये थे तो उनका अधिकांश शिक्षण कहानियों द्वारा ही किया। यहाँ तक कि सीता स्वयंवर के लिए आश्रम से जनकपुर जाते समय मार्ग में पड़ने वाली नदियों, वनों, स्थानों, पर्वतों और खण्डहरों तक के अतीत का विवरण कहानी शैली में बताते थे। महर्षि गौतम के उजड़े हुए आश्रम के सम्बन्ध में उन्होंने बताया था कि यह आश्रम इन्द्र द्वारा गौतम पत्नी अहिल्या को छले जाने के बाद इस दशा को प्राप्त हुआ है।

भगवान बुद्ध के समय में सर्वसाधारण का बौद्धिक विकास इतना नहीं हुआ था कि वह गूढ़ दार्शनिक सिद्धान्तों को उसी स्तर की भाषा में समझ सके। इसलिए जातक कथाएँ, वार्तालाप, दृष्टान्त, उपदेश और कथा पद्धति को ही अपनाया गया।

जीजाबाई अपने बेटे शिवाजी को लेकर पूना में अलग रहीं। वे चाहती थीं कि मुगल शासकों के अधीन एक मामूली मुलाजिम पिता की परछाई और संस्कार मेरे बेटे पर न पड़ें, वरन् वह हिन्दू जाति का मुख उज्ज्वल करने वाला वीर पुरुष बनकर इतिहास में एक देदीप्यमान नक्षत्र के रूप में चमके। इसलिए उन्होंने शिवाजी को बचपन से ही रामायण और महाभारत की वीरतापूर्ण कहानियाँ सुनाना आरम्भ किया। फलस्वरूप शिवाजी में स्वदेश भक्ति, स्वातन्त्र्य प्रेम, जाति और धर्म के प्रति निष्ठा की भावनाएँ इस कदर जम गईं कि ये बचपन से ही ग्वाले जाति के पिछड़े और अशिक्षित, असभ्य बच्चों को संगठित कर युद्ध-विद्या का अभ्यास करने लगे।

बाद में कोण्डदेव शिवाजी के गुरु बने। सत्य और न्याय की भावना तब तक और भी परिपक्व हो चुकी थी। कोण्डदेव में भी यही संस्कार बचपन से भरे थे। एक बार की घटना है। कोण्डदेव कहीं बाहर से आ रहे थे। रास्ते में एक बगीचा पड़ा और दिखाई दिया ऊपर सुन्दर-सुन्दर पके हुए आम के फल लगे हैं। एक आम तोड़ लिया। तभी संस्कारों ने कहा—'अरे यह तो चोरी है।' और उन्होंने प्रायश्चितस्वरूप अपने हाथ काट लिए। यह शिक्षा भी कोण्डदेव को अपने माता-पिता द्वारा सुनाई कहानियों से मिली थी।

बच्चों को शिक्षाप्रद कहानियाँ उपलब्ध कराया जाना आवश्यक है। इसके दो ही स्रोत हो सकते हैं। माता-पिता द्वारा सुनाई कहानियाँ और दूसरे बाल साहित्य। प्रश्न उठता है बच्चों को कैसी कहानियाँ सुनायें ? प्रातः बच्चों को अलौकिक कहानियाँ अधिक पसन्द होती हैं पर आजकल जितनी भी अलौकिक कहानियाँ मिलती हैं वे तो परियों, दानवों, भूत-प्रेतों और जादू-टोनों से ज्यादा सम्बन्ध रखती हैं। कुछ कहानियों की शुरूआत इस प्रकार भी होती है—एक राजकुमार था। वह घोड़े पर चढ़ा चला जा रहा था, बीच में एक महल दिखाई दिया उसके झरोखे में से राजकुमारी ने उसे देखा और दोनों एक-दूसरे की ओर आकृष्ट हो गये।

इस तरह की प्रेम-कथाएँ भी बच्चों के लिए बेमतलब की होती हैं और उनके अच्छे संस्कार नहीं पड़ते। परियों, दानवों और राक्षसों की कहानियाँ न सुनाई जाएँ, भले ही वे शिक्षाप्रद हों पर बच्चे के मन में उनका ऐसा काल्पनिक चित्र बन जाता है कि वे उन पात्रों को सचमुच का ही मान लेते हैं। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि इस तरह की कहानियाँ बच्चों के मन में पलायनवाद का भूत भर देती हैं। अलौकिक कहानियों का इतना ही तात्पर्य नहीं है कि उनमें राक्षसों और भूत-पात्रों की ही भूमिका हो। वरन् इसका वास्तविक तात्पर्य है कि कहानी की विषय-वस्तु पृथ्वी की ही हो और मनुष्य की असीमित क्षमताओं का प्रगटीकरण करती हो।

कहानियाँ सुनाने का एक ही उद्देश्य है कि एक मनुष्य में जो सद्गुण होना चाहिए, बच्चों में उनके अंकुरण योग्य मानस-भूमि बनायी जाय और उसे योग्य नागरिक बनने की दिशा में अग्रसर किया जाय। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि बच्चों को कहानियाँ सुनाते समय उनके चयन में उपयुक्त सावधानी बरतना आवश्यक है। उस समय माता-पिता अथवा दादी को यह लक्ष्य अपने सामने रखना परम आवश्यक है।

प्रश्न उठता है कि फिर किस उम्र के बच्चों को कहानियाँ सुनाना चाहिए ? प्रायः तीन-चार वर्ष के बच्चों का मानसिक विकास इतना हो चुका होता है कि उन्हें हल्की-फुल्की बातें समझाई जा सकें। तब से ही कहानियाँ सुनाने का क्रम आरम्भ कर दिया जाय। कहानी पाँच से दस मिनट लम्बी हो ताकि उसमें समाविष्ट की गई बातों को बच्चा अच्छी तरह ग्रहण कर सके। प्रारम्भ में प्रतिदिन एक कहानी सुनाने का क्रम ही रखा जाय। बच्चा रुचि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेता दिखाई दे तो कहानियों की संख्या फिर बढ़ाई भी जा सकती है। ऐसी कहानियाँ कहाँ से प्राप्त की जाएँ ? अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर, कर्ण, शिवि, राजा नल, भीष्म, राम, लक्ष्मण, भरत, सीता से लेकर बुद्ध, महावीर, प्रताप, शिवाजी, गाँधी, नेहरू, शास्त्री जी तक अनेक महापुरुष हैं जिनके जीवन में असंख्य प्रेरणा प्रसंग भरे हैं। उनमें से चुन-चुनकर सुनाये जा सकते हैं। इस तरह के प्रसंगों से बच्चों को नैतिक शिक्षा तो मिलती ही है, उनका सामान्य ज्ञान भी बढ़ता है।

बच्चे जब बड़े हो जाएँ। स्कूल जाने लगें और पढ़ना-लिखना सीख जाएँ तो, उन्हें केवल स्कूली किताबों से ही चिपटाये न रखा जाय, वरन् नैतिक शिक्षा देने वाला बाल साहित्य भी पढ़ाया जाय। पर समस्या यह है कि आजकल स्तरीय बाल साहित्य मिलता कहाँ है ? आप किसी भी रोडवेज, रेलवे या बाजार के बुक-स्टाल पर चले जाइये, आपको वहाँ रोमाण्टिक उपन्यास मिल जायेंगे, जासूसी उपन्यास मिल जायेंगे, अर्धनग्न तस्वीरों वाली कुत्सा और वासना भड़काने वाली पत्रिकाएँ मिल जायेंगी, पर जीवनोपयोगी साहित्य शायद ही कहीं मिले। खेद की बात है कि बाल साहित्य को भी इस बाजारूपन ने भ्रष्ट कर दिया है और प्रेरणाप्रद कथा-कहानियों तथा आदर्श महापुरुषों के जीवन-चरित्रों की पुस्तकों के लिए भटकते रहना पड़ता है।

फिर भी निराश होने की आवश्यकता नहीं है। कंकड़ों की भीड़ में हीरे भी अभी हैं। सस्ती और चटपटी पुस्तकों के जंगल में उपयोगी साहित्य भी ढूँढ़ा जाय तो मिल सकता है। बच्चों को वही पढ़ने को दिया जाय अन्यथा जो मिला सो पढ़ने को दे दिया की नीति अपनाई गई तो बच्चों के लिए विषतुल्य ही सिद्ध होगी।

कथा-कहानियाँ न केवल बच्चों के ही हृदय को छूती हैं, वरन् जन-सामान्य के लिए भी वे बड़ी उपादेय होती हैं। उन्हें भी कहानियों से बड़ी प्रेरणा मिलती है और रस भी आता है। यही कारण है कि हमारे यहाँ वेद-उपनिषद् और दर्शन ग्रन्थों की अपेक्षा रामायण, भागवत, महाभारत, पुराण और कथा आदि अधिक लोकप्रिय हैं। उनको कई-कई दिन तक सुनाने और सुनने की बड़ी महिमा है। इसका कुल इतना ही कारण है कि विशुद्ध सैद्धान्तिक प्रतिपादन प्रबुद्ध लोगों के बूते की ही बात है अन्यथा सर्वसाधारण का मन तो कथा-कहानियों में ही लगेगा फिर बच्चों को सुसंस्कारी बनाने के लिए क्यों न इस लोकप्रिय माध्यम का उपयोग किया जाय ?

लोकशिक्षण में कथा साहित्य का कितना महत्त्व है ? यदि इस तथ्य को समझा जा सके तो प्रतीत होगा कि हर परिवार को यह माध्यम अनिवार्य रूप से अपनाना ही चाहिए।

लेखकों, पुस्तक विक्रेताओं और प्रकाशकों का क्षेत्र प्रधान रूप से कथा साहित्य होता है। आधी से अधिक पुस्तकें कथापरक छपती और बिकती हैं। यह लोक-रुचि सनातन है। वेद चार ही लिखे जा सके, पर पुराण अठारह और उपपुराण अठारह लिखे गये। चारों वेदों में मात्र २० हजार मन्त्र हैं पर अकेला महाभारत ही एक लाख श्लोकों का—अर्थात् चारों वेदों का पाँच गुना है। अन्य कई पुराण भी इतने ही बड़े हैं। संस्कृत में नाटक काव्य आदि कथा साहित्य के अन्य ग्रन्थ भी कम नहीं हैं। व्रत-पर्वों के साथ अगणित कथाएँ जुड़ी हुई हैं और वे चावपूर्वक कही-सुनी जाती हैं। वह प्राचीन अभिरुचि अभी भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। आज भी कथा-कहानियों का, पत्रिकाओं में प्रमुख स्थान रहता है। फिल्में आखिर कहानियों का दृश्य रूप ही तो हैं। नाटक अभिनय, गीत वाद्यों में प्रायः कथा-प्रसंग ही जुड़े रहते हैं। लोकरुचि इसी क्षेत्र के इर्द-गिर्द उमड़ती-घुमड़ती रहती है।

कथा-क्षेत्र में मध्ययुगीन भटकाव की दो मुख्य दिशाएँ याद रखना और उनसे बचना चाहिए—(१) अस्वस्थ अवांछित प्रवृत्तियों को उकसाने, बढ़ाने वाली अर्थात् डर, मक्कारी, हताश, खुदगर्जी बनाने वाली और होशियारी के नाम पर झूठ, पाखण्ड, कपट सिखाने वाली कथाएँ। (२) अवास्तविक, अविवेकी आस्थाएँ जमाने-बढ़ाने वाली अर्थात् भूत-प्रेत, टोना-टोटका, चमत्कार पर विश्वास जमाने वाली कथाएँ।

बच्चों के लिए कहानियाँ चुनते समय उनके आयु-वर्ग का यह ध्यान तो रखना ही पड़ेगा कि बच्चा अभी शिशु है या किशोर हो गया है, किन्तु प्रत्येक दो वर्ष में उसके लिए कोई विभाजक सीमा-रेखा नहीं खींची जानी चाहिए।

कहानियाँ चुनते समय वैविध्य का ध्यान रखना ही चाहिए। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इनमें से कुछ कहानियाँ मुख्यतः भावनात्मक हों, तो कुछ अन्य मुख्यतः जानकारियाँ देने वाली उपयोगी कथाएँ हों।

बच्चों की कल्पना-शक्ति अत्यधिक उर्वर होती है। साथ ही उसके दिमाग पर जानकारी का ज्यादा बोझ डालना भी अनावश्यक होता है। इसलिए प्रारम्भ में उसकी कल्पना और भावना को उकसाने वाली तथा तुष्ट करने वाली कहानियाँ ही सुनानी चाहिए। बच्चे की कल्पना में चिड़ियों द्वारा आदमी की बोली बोलना, यहाँ तक कि फूलों, नदी, पर्वतों, चाँद-तारों से बातें करना, हवा में उड़ने वाली परी की कल्पना करना और स्वयं को भी हवा में उड़ने में समर्थ मानना—यह सब नितान्त स्वाभाविक है । अपनी परिचित वस्तुओं और परिचित क्रियाओं से जुड़ सकने वाला कल्पना विस्तार शिशु को भाता तो है ही, उसे याद भी अपेक्षाकृत शीघ्र हो जाता है। राजकुमार, राजा आदि की या राक्षसों, भूत-प्रेतों की कहानियाँ उसके दिमाग में प्रभाव तो छोड़ती हैं, पर वे उसे याद बहुत कम रह पाती हैं, सिर्फ उनकी छाप ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसके मन पर अंकित रह जाती है। बच्चों को याद कराये जाने वाले गीतों के बारे में भी यही बात ध्यान में रखनी चाहिए। "चुग-धुग करती आई चिड़ियाँ, दाल खजाना लाई चिड़ियाँ" अथवा "बड़ी भली है अम्मा मेरी, मुझको दूध पिलाती है" जैसी पंक्तियाँ उसे भीतर तक छू जाती हैं। वह खिल उठता है, लेकिन देवताओं के यशोगान या कि "हम हैं भारत माँ के लाल" जैसी पंक्तियाँ बच्चे को सुनानी बेकार हैं। हाँ, उसके लिए अर्थहीन बोझ है। यह इस तरह के गीत किशोरों के काम के हैं, "देश की रक्षा कौन करेगा ? हम करेंगे, हम करेंगे" जैसे उद्घोष ३-४ साल का शिशु भी झट याद कर लेगा, क्योंकि "हम करेंगे" में उसके आत्म-प्रदर्शन की आकांक्षा तृप्त होती है और इसी के सहारे वह देश से भी भावनात्मक रूप से जुड़ सकता है। उसके अनुभवों से जुड़ी कल्पना को फैलाना तो उसे भायेगा ही, परन्तु भारत माता का वह लाल कैसे है समझ नहीं सकता। हाँ, भारत माता की कोई प्रतीक प्रतिमा या प्रतीक-चित्र (नारी-मूर्ति) उसे दिखाकर फिर कहा जाये कि भारत-माता यह कह रही थीं, भारत माता ऐसी हैं आदि, तो यह कल्पना कर सकता है। चोर या डाकू की कहानी भी शिशु को नहीं सुनानी चाहिए। ये किशोरों को सुनाई जा सकती हैं। परियों, पशुओं, पक्षियों और परिचित वस्तुओं की कल्पनापरक उत्साहवर्द्धक कहानियाँ शिशुओं को सुनाना उपयोगी होता है। जो कहानियाँ जानकारी बढ़ाने के लिए हों, उनमें आवृत्तियाँ होनी चाहिए अर्थात् सरल-रोचक ढंग से तरह-तरह से एक ही बात बार-बार कहनी चाहिए। जैसे—"हम क्या हैं ?" हम बन्दर नहीं हैं। हम शेर नहीं हैं। हम मछली भी नहीं हैं और कुत्ता ? हम कुत्ता भी नहीं हैं। कोई पेड़ भी नहीं हैं हम। हम तो आदमी हैं।" यह शैली छोटे बच्चों के लिए उपयुक्त है।

लोरियाँ बच्चों को बहुत भाती हैं। उनमें आवृत्तियाँ भी होती हैं और चन्दामामा, खीर, कटोरी, दूध, मलाई, परियों जैसी उनकी परिचित वस्तुओं का ही मनभावन वर्णन होता है—ये लय-तालयुक्त ढंग से गाई जाती हैं। इससे बच्चों को लोरियाँ गहराई तक छू जाती हैं और मीठी पुलक से भर देती हैं।

नन्हें-मुन्नों के शिक्षण के लिए लोक-कथाएँ भी बहुत उपयोगी हैं। किन्तु उनमें से डर पैदा करने वाली, भूत-पलीतों, जन्तर-मन्तर, टोना-टोटका पर विश्वास बढ़ाने वाली कथाएँ न चुनकर परिचित चिड़ियों, जानवरों आदि की कथाएँ ही, चुननी और सुनानी चाहिए।

किशोरों को लोक-कथाएँ सुनाते समय भी यही सावधानियाँ बरतनी होती हैं। साथ ही किशोरों के योग्य लोक-कथाओं में से कई जाति-विशेष की खिल्ली उड़ाने वाली या जाति-विशेष का दर्प बढ़ाने वाली होती हैं, ऐसी कहानियाँ किशोर-मस्तिष्क में जातीय भेदभाव का जहर बोती हैं, इनसे परहेज रखना जरूरी है।

किशोरावस्था का भाव जगत् शिशु की तुलना में बहुत अधिक विस्तृत हो जाता है। ऐतिहासिक कथाएँ, साहस, संघर्ष और वीरता की गाथाएँ, नई-नई खोजों एवं वस्तुओं का परिचय उन्हें आकर्षित करता है। शिक्षण का यानी जीवन-कला सिखाने का भी यही अवसर होता है। रामायण, महाभारत की कथाएँ और पंचतन्त्र, हितोपदेश के किस्से सुनाने-पढ़ाने का यही समय है। अब उसे लोरियाँ और पशु-पक्षियों की कहानियाँ उतनी आकर्षक नहीं लगतीं। १३ वर्ष की उम्र के बाद तो किशोरों को सभी प्रकार की कहानियों में रुचि होने लगती है। यहाँ दो बातें ध्यान में रखने की हैं—एक तो वैज्ञानिक और तकनीकी जानकारी देने के फेर में किशोरों को जटिल बोझिल शब्दावली में कहानियाँ न सुनाई जायें, अन्यथा उनकी रुचि इनमें खत्म हो जायेगी और तब वे मुहल्ले-पड़ौस में दुस्साहसिक कथाएँ सुनना या जासूसी उपन्यास चोरी छिपे पढ़ना पसन्द करने लगेंगे।

दूसरे, आजकल बाजारों में आयु-वर्ग के आधार पर वर्गीकृत पुस्तकें बहुत बिकती हैं। शिक्षित माता-पिता इन्हें खरीद-पढ़कर यह भ्रान्ति पाल सकते हैं कि अमुक आयु के किशोर को अमुक ढंग की ही कहानियाँ सुनानी चाहिए। यह एक नकली विभाजन है और इसका शोर व्यापारिक कारणों से अधिक मचाया जाता है। एक तो प्रत्येक बच्चे की बौद्धिक तीक्ष्णता भिन्न-भिन्न होती है, कोई एक किशोर या किशोरी ८-९ वर्ष की उम्र में इतना जान-समझ सकती है, जितना दूसरे १२-१३ वर्ष की उम्र में। यह तथ्य भी स्मरणीय है कि आज दुनिया भर से जो बाल-साहित्य की मानक पुस्तकें मानी जाती हैं—जैसे पंचतन्त्र, हितोपदेश, जातक-कथाएँ, बैताल-पच्चीसी याकि 'एलिस इन दि वण्डर लेंड' आदि। वे वस्तुतः बड़ों के लिए लिखी गई पुस्तकें हैं तो भी वे बच्चों के शिक्षण का सर्वोत्तम माध्यम हैं। तुलसीदास या सूरदास के कई पद जो चौथी, पाँचवीं के बच्चों को आनन्द देते हैं, वही बी. ए., एम. ए. के छात्रों को भी। किशोर बच्चों को सुनाई जाने वाली एक-सी कहानियाँ, ८ वर्ष के किशोर को अलग ढंग के भाव से, १० वर्ष वाले को भिन्न तथा १२-१४ वर्ष वाले को किसी अन्य भाव से उल्लसित-आनन्दित कर सकती हैं। इसलिए आयु सीमा के विभाजन के फेर में माथापच्ची करने की बजाय प्रेरक, ज्ञानवर्द्धक, सुरुचिपूर्ण, मनोरंजक कथाएँ उन्हें सुनानी चाहिए।

कहानी सुनने के साथ ही बच्चों को कहानी कहने का भी शौक होता है। उन्हें इसके लिए प्रेरित करना चाहिए। शिशु तो अपनी अनुकरण-वृत्ति से ही कहानी सुनाते हैं, पर किशोरों में विकसित कल्पना-शक्ति होती है। इसीलिए उन्हें ऐसी कहानियाँ सुनना अधिक अच्छा होता है, जिसे वे अपनी कल्पना-शक्ति से थोड़ी भिन्नता के साथ कह सकें। इसके लिए कहानियों का अन्त इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकार किया जा सकता है कि वे "आगे क्या हुआ होगा ?" इसकी कल्पना कर उड़ानें भरते रहें या फिर प्रारम्भ इस प्रकार का रखा जा सकता है कि उसे कई रूप दिये जा सकें।

लोक-कथाओं में वे कहानियाँ बड़ी मार्मिक होती हैं, जो मैना, तोता, कौआ, कोयल तथा परिचित चिड़ियों या कुत्ता-बिल्ली, गाय-बैल, भैंस-बकरी, घोड़ा-हाथी, ऊँट आदि सुपरिचित पशुओं की बोली और रहन-सहन के मनोरंजक अर्थ गढ़कर कही जाती हैं। जैसे भोर में बोलने वाली एक चिड़िया को यह बताना कि वह रोज अपने चिड़ा को जगाती हुई कह रही है—"ठाकुर जी, उठो"—आदि। पंचतन्त्र और हितोपदेश की कथाएँ तथा उसी तर्ज पर रची गई प्रचलित लोककथाएँ बच्चों का मनोरंजन एवं भाव-परिष्कार उत्तम रीति से करने में समर्थ होती हैं। उन्हें प्रत्येक कहानी के बाद उनका निष्कर्षपरक शिक्षण भी स्पष्ट कर देना चाहिए।

ऐतिहासिक स्थानों से जुड़ी रोचक कथाएँ तथा महापुरुषों की जीवनियाँ अधिक उम्र के किशोरों के लिए बहुत प्रेरक एवं उपयुक्त होती हैं।

प्रत्येक स्थिति में यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि कहानी का बच्चे पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? वह उसका आत्मबल बढ़ायेगी या घटायेगी ? विवेक पर बल दे रही है या अन्धविश्वास पर भरोसा जमा रही है ? मनोरंजन के साथ संस्कार-सम्वर्द्धन की क्षमता कहानी में होना आवश्यक है।

कथा-कहानियों का महत्त्व समझें

इस देश में कथा सप्ताहों की परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है। परम्पराएँ और अन्धविश्वास के सम्पुट जोड़ दिए जाने के कारण आज इन कथाओं की कितनी उपयोगिता रह गई है, यह अलग और विचारणीय प्रश्न है किन्तु इसमें दो सम्मत्तियाँ नहीं हो सकतीं कि जनमानस को आदर्शोन्मुख बनाये रखने में कथाओं की महत्ता असाधारण है। आज इनका रूप भले ही विकृत और व्यावसायिक बन गया हो किन्तु भागवत सप्ताह, रामायण नवाह्न पारायण, सत्यनारायण व्रत-कथाओं के पीछे लोकशिक्षण की ही भावना रहती रही है और किसी युग में यह आधार व्यक्ति के चारित्रिक विकास और सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से उनका सर्वोपरि योगदान रहा है।

वाणी और विचार मन को प्रेरित और प्रभावित कर सकते हैं, किसी को प्रसन्न करके तात्कालिक लाभ भी लिया जा सकता है किन्तु मन को प्रभावित करने से सम्पूर्ण जीवन प्रभावित नहीं हो सकता। मन की गहराई उथली होती है, चित्तवृत्तियाँ निरन्तर बदलती रहती हैं। इसलिए आज जो वस्तु मन को प्रिय लगती है कल वही अप्रिय लगने लगती है, किन्तु विचारणा का एक और भी स्तर है जिसे अन्तःकरण या भाव संवेदना कहते हैं। यह मानवीय अस्तित्व की गम्भीर इकाई और स्थिर तत्त्व है—अन्तःकरण में जड़ जमा लेने वाले संस्कार परिस्थितियों के दबाव में भी बदलते, झुकते और टूटते नहीं। राजवैभव त्यागकर ईश्वर दर्शन के लिए तप करने वाला बालक ध्रुव, विचारों का नहीं भावनाओं से बना था। माता-पिता की सेवा में अपने सुखों को तिलांजलि देकर काँवर उठाये फिरने वाले श्रवणकुमार के संस्कार अन्तःप्रेरित थे। देश के लिए हँसते-हँसते शहीद जो जाने वाले रामप्रसाद बिस्मल, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद और राजगुरु संवेदनशील व्यक्ति थे, जोन ऑफ आर्क, कैसावियान्का और पम्पई के प्रहरी ऐसे ही व्यक्ति थे जिनके कर्तृत्व अन्तःकरण का स्पर्श करते थे। इसीलिए प्राचीनकाल से हमारी पारिवारिक परम्पराएँ, शिक्षा-पद्धति, सामाजिक व्यवहार सभी में भाव संवेदना को उच्चस्तरीय स्थान प्रदान किया गया था। इन संवेदनाओं को उभारने में कथा-साहित्य की प्रधान भूमिका रही है। आज सिनेमा ने इतनी लोकप्रियता प्राप्त कर ली है, उसका भी आधार यही है कि कथा के माध्यम से मर्मस्थल का स्पर्श किया जाये ? जो फिल्म जितनी अधिक मर्मस्पर्शी होती है वह उतनी ही लोकप्रिय और देर तक चलती है। इसके विपरीत भाव-विहीन कथानकों वाली फिल्में कुछ ही दिन चलकर बन्द हो जाती हैं। कथाओं में मानवीय अन्तःकरण को प्रभावित करने वाले कोई विलक्षण तत्त्व, कोई गहन दर्शन विद्यमान है तभी तो और कुछ कोई सुनना चाहे या नहीं, पर कहानी, कथाएँ सुनने की उत्कण्ठा बालक वृद्ध, स्त्री-पुरुष हर किसी को होती है। इस सर्वाधिक शक्ति तत्त्व को भुलाया और उपेक्षित नहीं किया जाना चाहिए। वरन् उसकी सार्थकता मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठापन में है, उसे सफल बनाया जाना चाहिए।

इस पुण्य परम्परा का प्रारम्भ बच्चों को कहानियाँ सुनाने से होता है। बड़ों की अपेक्षा बच्चे अधिक भावुक और संवेदनशील होते हैं इसका अर्थ यह हुआ कि इस प्रारम्भिक आयु में उस पर चाहे जैसे संस्कार डाल दिये जायें, बच्चा उसी दिशा में ढल जायेगा, ढलाव में आई यह दृढ़ता फिर जीवन भर डिगाये नहीं डिग सकेगी। भारतीय आचार-संहिता के आचार्यों ने उस तथ्य का प्रतिपादन करते हुए लिखा है—

यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारः नान्यथा भवेत्।
कथाच्छतोन बालाना नीतिस्तदिह कथ्यते॥

अर्थात्—बालक को कहानियों के माध्यम से जो कुछ भी सुनाया जाता है, वह उसी को अपने आचरण में ढाल लेता है और वह संस्कार फिर जीवन भर उसको नहीं छोड़ते। तात्पर्य यह है कि कथाएँ बालकों को इच्छानुकूल ढालने वाले साँचे होती हैं। उन्हें नियमित रूप से कहानियाँ सुनाई जाती रहें, तो कहानियों में जो भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अच्छे-बुरे आदर्श, प्रेरणाएँ और प्रभाव मुखर होंगे बच्चा उन्हें ही ग्रहण करता चला जायेगा।

इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि सती मदालसा ने पौराणिक आख्यायिकाओं का आश्रय लेकर जहाँ अपने पूर्ववर्ती बच्चों को ब्रह्मनिष्ठ, सन्त और भक्त बनाया वहीं दिशा बदलकर तीसरे राजकुमार को उन्होंने ऐतिहासिक कहानियों के आधार पर राजनीति के संस्कारों में ढाल दिया। यही राजकुमार अन्त में राजगद्दी का उत्तराधिकारी हुआ।

माँ सुनीति से धार्मिक कथाएँ सुनकर ध्रुव को ब्रह्म-ज्ञान की दीक्षा बाल्यावस्था में ही मिल गई थी, उधर सीताजी को स्वयं उनके पिता जनक ने कर्मयोग का शिक्षण कथाओं के माध्यम से किया था। राम और लक्ष्मण में अनीति के विरुद्ध संघर्ष की भावना वशिष्ठ और विश्वामित्र ने कथाओं के माध्यम से ही जाग्रत की थी—

करि भोजन मुनिवर विज्ञानी। लगे कहन कुछ कथा पुरानी।।

वेद पुरान वशिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम यद्यपि सब जानहिं।।

इन दोनों चौपाइयों में जहाँ महर्षि विश्वामित्र व वशिष्ठ द्वारा राम की कथा दीक्षा की बात बताई गई है वहीं बालकों को कहानियाँ सुनाने के महत्त्व और अवश्य सुनाये जाने का निर्देश भी स्पष्ट है। **'सुनहिं राम यद्यपि सब जानहिं'**—का अर्थ भी यही है कि शिक्षित और ज्ञानवान होकर भी कहानियाँ अवश्य सुनी या सुनाई जानी चाहिए क्योंकि उनसे लोगों में संस्कारों का विकास होता है।

इस प्रतिपादन का एक दूसरा पक्ष भी है और वह इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है, वह है कथानकों का चुनाव। कथाएँ सुनने का अर्थ मात्र पुराण सुनने से नहीं, असंगत कल्पनाओं वाली कहानियाँ तथा जिनका न कोई आधार है, न यथार्थता; ऐसी कथा वस्तुएँ तो लाभ के स्थान पर हानिकारक अधिक होती हैं। बन्दूक की गोली से आत्म-रक्षा भी हो सकती है, आत्म-हत्या भी। रस मनुष्य को जीवन भी दे सकते हैं, पर विकृत होने पर वही प्राण तक हरण कर सकते हैं। कहानियाँ भी एक प्रकार का रस हैं जिन्हें निश्चित अनुपात, मर्यादा और मानवीय आदर्शों की दृष्टि में रखकर प्रयुक्त किया जाये तो वह व्यक्ति व समाज, दोनों के लिए कल्याणकारक हो सकती हैं किन्तु यदि वह विकृत है तो सामाजिक शान्ति और सुव्यवस्था को चौपट कर देने वाले दुष्परिणाम ही पैदा करती हैं।

इसीलिए आचार्यों ने जहाँ बालकों को कहानियाँ सुनाने की महत्ता और आवश्यकता पर जोर दिया वहीं उन्होंने सावधान भी किया है कि—

तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम्।।
अथवास्य पदाम्भोजमकरन्दलिहां सताम्।।
किमन्यैरस दालापैरायुषो यद् सद् व्ययः।।

—श्रीमद् भा. ३/१३/४

अर्थात्—इतनी सावधानी अवश्य बरती जाये कि कथाएँ आध्यात्मिक उत्थान और जीवन में ब्रह्मी गति देने वाली हों, जो चरित्र निर्माण में सहायक हों वही कथाएँ सुनी जाएँ अनर्गल और झूठी अधोमुखी प्रेरणाएँ देने वाली कथाओं से बचने में ही कल्याण है। यह अत्यन्त दुःखद बात है कि आज कथाओं, कहानियों के नाम पर यह विकृति ही सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है।

यह आवश्यक नहीं कि कथाएँ धार्मिक ही हों, विष्णु शर्मा की भाँति गढ़ी हुई, ऐतिहासिक एवं समसामयिक घटनाएँ भी हो सकती हैं, किन्तु उनमें किसी न किसी रूप में सदिच्छाओं, सद्गुणों और साहस, सूझ-बूझ, स्वावलम्बन, सच्चाई, ईमानदारी, नैतिकता जैसे गुणों का ही प्रस्फुटन होना चाहिए। तभी बच्चों में रचनात्मक प्रतिभा का विकास हो सकता है।

आज की पत्र-पत्रिकाएँ, उपन्यास, साहित्य तथा सिनेमा आदि इस दिशा में बिल्कुल भी न्याय नहीं वरत रहे हैं। किशोरों, बालकों और युवकों के दिक्भ्रान्त होने का यही कारण है। आये दिन किशोरों द्वारा ऐसी दुर्घटनाओं के समाचार छपते रहते हैं, जिनमें उनकी स्वीकारोक्ति यह होती है कि चोरी, हत्या, अपराध की प्रेरणा उन्हें अमुक पुस्तक या अमुक फिल्म से मिली। यह एक प्रकार से बालकों के प्रति कहानियाँ सुनाने की जिम्मेदारी की अपेक्षा करना ही है। यह उपेक्षा और अधिक देर तक नहीं चलने देनी चाहिए। आज ही अभी-अभी यह विचार करें कि क्या हम बच्चों के प्रति इस बड़े उत्तरदायित्व का पालन कर रहे हैं या नहीं यदि नहीं तो यह कर्त्तव्य अभी से पालन करना प्रारम्भ करें।

बच्चों को कहानियाँ ऐसे सुनाएँ

गूढ़ से गूढ़ तथ्यों, सिद्धान्तों को भी कथा-कहानियों के माध्यम से जितने रोचक और प्रभावशाली ढंग से समझाया जा सकता है, उतना गहन विश्लेषण द्वारा भी सम्भव नहीं है। यही कारण है कि प्राचीनकाल से कथा कहने और सुनने का बड़ा महत्त्व माना गया है। हमारे यहाँ पुराण, उपनिषद्, महाभारत, भागवत, रामायण आदि के साथ अनेक छोटी-छोटी कथाएँ संयुक्त हैं। प्रायः हिन्दू व्रत-त्यौहारों के अवसरों पर इन्हें कहने का विशेष माहात्म्य माना गया है। प्रत्येक कथा-कहानी का निर्माण किसी उद्देश्य विशेष को सम्मुख रखकर किया है और वृद्धजनों द्वारा उन्हें बच्चों को सुनाने की परम्परा प्रायः हर घर में है। इसका उद्देश्य यही है कि बच्चों में बचपन से ही सात्विक संस्कार जम जायें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्य बोलना, वचन का पालन करना, कठोर परिश्रम से सिद्धि, दृढ़-संकल्प की महत्ता, दानशीलता, प्रेम-सहानुभूति, सेवा और सहयोग, पात्यव्रत्य या पत्नीव्रत, न्यायशीलता आदि को स्पष्ट करने के लिए भारतीय ऋषियों ने बड़ी ही सुन्दर बोधगम्य कहानियों का निर्माण किया है। आज भी कथाएँ अनेक स्थानों पर सुनी जाती हैं।

कथा कहने वाला और सुनने वाला दोनों ही पुण्य के भागी माने गये हैं। जब कोई व्यक्ति उपदेश प्रधान कल्याणकारी कथा कहता है तो कुछ देर के लिए उसकी मानसिक भूमि में समग्र कल्याणकारी, विश्व-हितकारी भावनाओं और विचारों का एक वातावरण बनता है। कुछ देर के लिए वह स्वयं कथा के पात्रों के साथ घुल-मिलकर तादात्म्य प्राप्त कर लेता है। उसका अलग कोई व्यक्तित्व नहीं रह जाता। इसलिए वे सद्गुण उसके ऊपर जादू जैसा प्रभाव डालते हैं। संगति का व्यापक प्रभाव होता है। देव-पूजा, देव-आराधना से संयुक्त इन पवित्र गाथाओं के सत्संग से कहने तथा सुनने वाले की आत्मा शुद्ध होती है, उनके ऊपर समाज के कुसंस्कार नष्ट हो जाते हैं, मनोविकार घटते हैं और कथाओं के शुभ संकल्प मजबूत बनते हैं।

प्रत्येक हिन्दू धार्मिक कथा का गुप्त तात्पर्य आत्मकल्याण है, इसी में पवित्र विचारों को सर्वत्र प्रधानता दी गई है। इनमें ऐसे-ऐसे रोचक तत्त्व भरे पड़े हैं कि सुनने वाला बड़ी उत्सुकता से कथा को सुनता जाता है। स्त्रियाँ तो इसमें बेहद दिलचस्पी लेती हैं। वास्तव में ये हिन्दू ऋषियों के मस्तिष्क के चमत्कार ही हैं, जिनमें ज्ञान, उपदेश, भक्ति, दान, तप, कर्म की सद्शिक्षाएँ भरी पड़ी हैं। मनुष्य के असुरत्व को घटाकर उसमें देवत्व की, न्याय की, सतोगुण की, धर्मपक्ष की प्रवृत्ति उत्पन्न करना, ठीक दिशा में कदम आगे बढ़वाना और असत्य से लड़ना या उसका विरोध करने के लिए सदा तत्पर बनना, इन कथाओं का उद्देश्य है।

इस पद्धति से अच्छा वातावरण उत्पन्न हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि इन सब धार्मिक, लोक-कथाओं को एकत्रित कर इनके सस्ते, सुलभ संस्करण तैयार कराये जाएँ और स्कूलों में इनका व्यापक प्रचार किया जाय। इनकी भाषा सरल और बोधगम्य रखी जाय जिससे हमारे ग्रामीण भाई भी इन्हें आसानी से समझ सकें।

हमारे पुराणों में जो छोटी-छोटी कथाएँ हैं, उनमें भारतीय संस्कृति का खजाना छिपा हुआ है। अनेक प्रकार के उच्चकोटि के उपदेश, ज्ञानसूत्र, प्रतीक, उपयोगी तत्त्व इनमें भरे पड़े हैं। हमारे पुराणों में हमारे उन पूर्वजों की यशोगाथाओं का संग्रह है, जिनसे हमारा संस्कारों और रक्त का सम्बन्ध है। वे स्वभावतः हमें प्रिय हैं। उनका प्रभाव केवल हमारे मस्तिष्क पर ही नहीं, हृदय पर भी पड़ता है। यदि हम पुराणों की कथाओं को ही सुनाएँ, तो उन अलौकिक कथाओं के साथ ऐसी कथाएँ भी सुनने को मिलती हैं, जो हमारे अन्धकारमय जीवन में प्रकाश उत्पन्न करती हैं और इतिहास की कसौटी पर भी सत्य उतरती हैं। पुराण स्वयं अपने पाठकों की त्रुटियों को पहचानते और शंकाओं का समाधान करते हैं। उनकी कथाओं को कह और सुनकर जो आनन्द और उच्च जीवन के लिए प्रेरणा मिलती है, वह वर्णनातीत है। पौराणिक गाथाएँ तो हमारे वे भण्डार हैं, जिनमें छोटी से छोटी वस्तु से लेकर बड़ी से बड़ी वस्तु एक स्थान पर सरल ढंग से सजाकर रख दी गई है। पुराण साहित्य के अलावा भी ऐसी कई कथाएँ बिखरी पड़ी हैं, जिन्हें सुनाकर बच्चों को चरित्र निर्माण की प्रेरणा दी जा सकती है।

बच्चों के निर्माण में कथा-कहानी सुनाने की प्रक्रिया बड़ी ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। इस क्रम में कुछ बातें ध्यान में रखना चाहिए। एक तो यह कि कहानियाँ अधिक लम्बी-चौड़ी न हों, छोटी कहानियाँ ही बच्चों को भली-भाँति स्मरण रह सकती हैं। इसलिए कहानियाँ छोटी ही चुननी चाहिए। दूसरे कहानी कहते समय वाक्यों को छोटा ही रखा जाय और सरल शब्दों का प्रयोग किया जाय। जहाँ तक हो सके रात-दिन काम आने वाले शब्दों को ही कहानी सुनाने में प्रयुक्त करना चाहिए। कहानियाँ सुनाते समय यह भी स्मरण रखना चाहिए कि कहानी का निष्कर्ष भी बच्चों को समझा दिया जाय। इस प्रकार बच्चों के मन पर कहानियों का अभीष्ट प्रभाव पड़ सके और उनमें अपेक्षित संस्कार डाले जा सकें। प्रयोग के तौर पर हम यहाँ कुछ कहानियाँ प्रकाशित कर रहे हैं, जिन्हें आधार मानकर बच्चों को कहानियाँ सुनाई जा सकती हैं।

सच्ची मित्रता

यमुना नदी के किनारे एक बहुत बड़ा जंगल था। उसमें तरह-तरह के पेड़ लगे हुए थे। कोई आम का था तो कोई बबूल का, कोई बरगद का था तो कोई पीपल का। उन पेड़ों पर अनेक पक्षी रहते थे।

आम के पेड़ पर एक कोयल रहती थी। उसका नाम था चित्रा। चित्रा बड़ा ही मीठा गाना गाती थी। तोता, मैना, कौवा, कबूतर आदि सभी पक्षी सुबह-शाम काम में लगे रहते थे। दोपहर में वे थोड़ा आराम करते थे। उस समय चित्रा सबका मनोरंजन करती थी।

चित्रा कोयल में एक और बहुत बड़ा गुण था। वह था सबकी सहायता का, भलाई करने का। एक बार हरियल तोता का पैर टूट गया तो वह सात दिन तक उसके लिए नित्य लोमड़ी के यहाँ से दवा लाती रही, पट्टी बाँधती रही। चित्रग्रीव कबूतर को बुखार आ गया तो वह उसकी सेवा करती रही। जो भी बीमार पड़ता, चित्रा सभी की सेवा को हाजिर रहती। जो भी दुःख-मुसीबत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होती, चित्रा उसे दूर करने को तैयार रहती। यही कारण था कि सभी चित्रा को बहुत-बहुत प्यार करते थे।

एक बार की बात है, नदी के उस पार से एक बारहसिंगा उस जंगल में आया। चिड़ियाँ, कबूतर, तोता, मैना सभी ने चहचहाकर उसका स्वागत किया। बारहसिंगे ने पेड़ों पर बैठे सभी पक्षियों को एक बार देखा। जाकर नदी के किनारे हरी-हरी घास में आराम से बैठ गया।

उसका यह व्यवहार सभी पक्षियों को बड़ा बुरा लगा। कबूतर बोला—"कैसा है यह, हमारी बात का कोई जवाब भी नहीं देता।"

तोता बोला—"अरे, घमण्डी है, घमण्डी ! इसलिए मुँह फेरकर चल दिया है।"

मैना बोली—"यह हमारा मेहमान है। चलो हम एक बार और उसका स्वागत करते हैं।" फिर वह चित्रा से बोली—"चित्रा दीदी, तुम बारहसिंगे के स्वागत में सुन्दर-सा गाना गाओ।"

चित्रा मीठे स्वर में गाने लगी—बड़े दादा तुम्हारा स्वागत—कुहू करते हम सब पक्षी आज—कुहू यह भी घर अपना समझो—कुहू मिल-जुलकर रहें हम सब ही कुहू; पर इसका भी कोई प्रभाव न पड़ा। वह सोच रहा था मैं तो बड़ा हूँ। बड़े घर का हूँ। इन छोटे-छोटे पक्षियों से क्यों मित्रता करूँ ? और वह वहाँ से छलाँग लगाकर जंगल में भाग गया।

चित्रा को यह बड़ा बुरा लगा। पहले तो उसे गुस्सा आया। पर फिर उसने सोचा कि यह तो उसके माता-पिता की गलती है कि उसे व्यवहार करना नहीं सिखाया, चित्रा ने सोचा कि मैं उसे व्यवहार करना सिखाऊँगी।

वह जंगल बड़ा ही हरा-भरा और सुहावना था। खाने को भी वहाँ खूब मिल जाता था। इसलिए बारहसिंगा वहाँ रोज जाता था। पर वह बोलता किसी से नहीं था। अकेला ही झाड़ियों में सींग उलझा-उलझा कर खेलता रहता था। कबूतर, मैना, तोता कोई भी उससे बोलने का प्रयास नहीं करते थे। बोलती तो उससे चित्रा भी नहीं थी पर उसका आना चित्रा को अच्छा लगने लगा था। यह घण्टों उसके लम्बे सींगों को, चंचल कुदानों को देखती रहती थी।

एक दिन अचानक ही जंगल की शान्ति भंग होने लगी। खट-खट और धाँय-धाँय की आवाजें सुनाई देने लगीं। तोता, कबूतर आदि सभी घबरा गये। वे अपने पंखों को फड़फड़ा-फड़फड़ा कर कभी इस पेड़ पर, कभी उस पेड़ पर उड़ने लगे। इतने में कौवा भागा-भागा आया और बोला—"भागो सभी यहाँ से ! दो शिकारी आ रहे हैं। उनके पास बन्दूक भी है। भून डालेंगे हम सभी को।"

कौवे की बात सुनते ही सभी पक्षी अपने घोंसले को छोड़-छोड़कर तेजी से नदी के उस पार उड़ चले।

रास्ते में चित्रा ने देखा कि बारहसिंगा दौड़ा-दौड़ा उसी जंगल में जा रहा है। चित्रा चिल्लाई "दादा, वहाँ न जाना। शिकारी हैं। भून डालेंगे।"

बारहसिंगे ने, जैसा कि उसकी आदत थी, पक्षियों को देखकर भी अनदेखा कर दिया था। चित्रा अभी कह ही रही थी कि वह तेजी से छलाँग लगाकर आगे बढ़ गया था। चित्रा की पूरी बात भी वह न सुन पाया था।

जंगल में जाते ही बारहसिंगे ने शिकारियों को देखा। अब उसकी समझ में सारी बात आ गयी। वह तेजी से वहाँ से भागा। उसने पीछे मुड़कर भी न देखा। पर शिकारियों ने उसे भागते हुए देख लिया। फिर क्या था, वे लगे उसका पीछा करने। जो लोग सच्ची मित्रता अपनाते हैं। उनकी बात पर ध्यान न देने के कारण इसी तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ता है।

बारहसिंगा अपने को झाड़ियों में छिपाकर भागते हुए तंग हो गया। पर अन्त में एक गोली आकर उसके पैर में लग ही गई। वह बेहोश होकर घनी झाड़ियों के पीछे गड्ढे में गिर पड़ा।

शिकारी अपने शिकार को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आये। उन्होंने चारों ओर देखा पर कहीं भी वह दिखाई नहीं दिया। घनी झाड़ियों और गड्ढे ने उनकी दृष्टि से बारहसिंगे को छिपा लिया था। अन्त में वे निराश होकर लौट गये।

रात होने पर भी जब बारहसिंगा न लौटा तो जंगल के उस पार आम के पेड़ पर बैठी चित्रा को चिन्ता होने लगी। एक बार उसके मन में यह भाव भी आया कि बारहसिंगा जब बोलता तक नहीं तब फिर क्यों उसकी परवाह की जाये, पर दूसरे क्षण उसने सोचा कि हम सब जीव-जन्तुओं को मिल-जुलकर रहना चाहिए। एक-दूसरे की सेवा-सहायता करनी चाहिए। सारा आलस्य त्यागकर, नींद से भरी आँखों को खोलकर चित्रा ने अँगड़ाई ली, अपने पंखों को फड़फड़ाया और जंगल की ओर उड़ चली।

चाँदनी रात थी। हर जगह चाँदनी छिटकी थी। सभी कुछ साफ-साफ दिखाई दे रहा था। चित्रा ने नदी के किनारे, पेड़ों के नीचे, हरी-भरी घास पर, झाड़ियों के बीच में सभी जगह घूम-घूमकर बारहसिंगे को देखा पर कहीं भी वह दिखाई न दिया। अन्त में निराश होकर चित्रा उड़ चली। झाड़ियों के बीच में से वह उड़ रही थी, तभी उसकी निगाह उस गड्ढे पर पड़ी जहाँ बारहसिंगा पड़ा था। वह तुरन्त नीचे उतरी। उसने देखा बारहसिंगा बेहोश पड़ा है। वह अपनी चोंच में भरकर तीन-चार बार नदी से पानी लायी और उसे बारहसिंगे के मुँह में डाला। तब कहीं जाकर उसे होश आया।

आँखें खुलने पर बारहसिंगे ने सामने चित्रा कोयल को देखा। सुबह की घटना उसकी आँखों के आगे घूम गई। पलभर में उसकी समझ में सारी बात आ गई। यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सोचकर कि वही चिड़िया मेरी सहायता कर रही है, जिससे मैं बात तक न करता था, बारहसिंगे की आँखों में आँसू भर आये।

"अभी आयी दादा" कहकर चित्रा उड़ गई। थोड़ी देर बाद लौटी तो उसकी चोंच में लगी थी हरी-हरी घास और फल। आते ही बोली—"सुबह से भूखे हो, लो खाओ।"

भूखा तो था ही बारहसिंगा। वह जल्दी-जल्दी खाने लगा। अन्त में उससे न रहा गया और पूछ ही बैठा—"चित्रा बहिन, एक बात बताओ। तुम मेरी इतनी सहायता, इतनी सेवा क्यों कर रही हो ? मैं तो तुमसे बोलता तक न था। सुबह भी मैंने तुम्हारी बात न सुनी।"

चित्रा मुस्कराई और बोली "भइया, हम दूसरों के काम आ पायें, उनकी सहायता कर पायें, इसी में जीवन की सार्थकता है। जो केवल अपने लिए जीते हैं, अपनी ही बात सोचते हैं, वह बड़े तुच्छ होते हैं।"

बारहसिंगे की समझ में भी बात आने लगी थी। बोला—"हाँ, हम सबको एक ही ईश्वर ने बनाया है। हम भाई-बहिन हैं। सभी को मिल-जुलकर ही रहना चाहिए।"

रात आधी के करीब बीत चुकी थी। चित्रा ने बारहसिंगे से सोने के लिए कहा और स्वयं भी आम के पेड़ पर बने अपने घोंसले में जाकर सो गई। दूसरे दिन यमुना नदी के उस पार सभी पक्षी भी वापस आ गये।

अब बारहसिंगा, तोता, मैना, कौवा, कबूतर सभी से बड़े स्नेहपूर्वक बातें करता है। किसी को भी उससे शिकायत नहीं रही है। चित्रा कोयल ने भी नीतू लोमड़ी के यहाँ से रोज दवा-ला-लाकर बारहसिंगे को स्वस्थ बना दिया है। वह तो अब उसकी पक्की सहेली ही बन गई है। दोनों दोपहर भर आम की अमराई में बैठे बतियाते रहते हैं।

इस कहानी से शिक्षा मिलती है कि अपने आप को बड़ा समझकर दूसरों को छोटा नहीं समझना चाहिए। दूसरे जब सच्चे हृदय से हमारे मित्र बनना चाहें तो घमण्ड में आकर उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। सबसे प्रेम, सच्चे मित्रों की पहचान और उनकी मित्रता से अनेक संकटों से बचाव होता है। कहना चाहिए जिन्दगी में सच्चे मित्रों की जरूरत सभी को पड़ती है।

भेड़िया और बकरी

एक बार की बात है। कालू भेड़िया अपने घर जा रहा था। वह शेर से लड़कर आ रहा था। इसलिए गुस्से में भरा था। चलते-चलते अँधेरा भी हो गया था। रास्ते में एक जगह कुआँ पड़ता था। पर गुस्से में होने के कारण भेड़िये को यह ध्यान ही न रहा। गुस्से में बहुत-से गलत काम हो जाते हैं। बहुत हानि हो जाती है। कालू को भी कुएँ का ध्यान नहीं रहा। उसका पैर कुएँ के ऊपर पड़ गया। कालू कुएँ में गिर गया।

कुएँ में पानी अधिक नहीं था। जैसे-तैसे कालू ने वहाँ रात बिताई। सुबह से ही उसने चिल्लाना शुरू कर दिया—"कोई मुझे कुएँ से निकाल लो ! मुझे कुएँ से निकाल लो।" पर किसी ने उसे निकाला नहीं। ऐसी बात नहीं थी कि वहाँ कोई नहीं था। शेर, गीदड़, लोमड़ी, हाथी, ऊँट सभी उस जगह से गए थे। सभी ने कालू भेड़िए की आवाज भी सुनी थी। पर सभी यह कहते हुए चले गए कि तुम तो सभी से लड़ते-झगड़ते रहते हो। तुम कभी किसी की सहायता नहीं करते। फिर हम ही तुम्हें क्यों निकालें ? उन्हें डर भी था कि यदि वे भेड़िये को निकालेंगे तो वह उन्हें काट खायेगा।

कालू बड़ी देर तक कुएँ में पड़ा-पड़ा रोता-चिल्लाता रहा। एक रंजू बकरी भी उसी रास्ते से जा रही थी। उसने भेड़िये की आवाज सुनी। रंजू ने इधर-उधर देखा। उसे कोई भी दिखाई न दिया। रंजू बकरी ने पूछा "तुम कौन हो, कहाँ से बोल रहे हो ?"

कालू चिल्लाया "दीदी", मैं यहाँ कुएँ में हूँ। मुझे जल्दी निकालो। नहीं तो मैं डूब जाऊँगा।'

रंजू को दया आ गई। वह दौड़ी-दौड़ी अपने घर गई। वहाँ से एक मोटी-रस्सी लाई। रंजू ने रस्सी का एक सिरा पकड़ा और एक कुएँ में लटका दिया। फिर बोली "कालू भइया ! तुम जल्दी से रस्सी का सिरा पकड़कर ऊपर आ जाओ। मैं दूसरा सिरा पकड़े यहाँ खड़ी हूँ।"

भेड़िया रस्सी पकड़कर धीरे-धीरे ऊपर तक आया। पर यह क्या-कालू भेड़िये का हल्का-सा धक्का लगा रंजू सँभल न पाई। वह कुएँ में गिर पड़ी। वह कुएँ के अन्दर से चिल्लाई "कालू भइया ! जल्दी निकालो ! नहीं तो मैं डूब जाऊँगी।"

पर कालू बड़ा स्वार्थी था। अपनी जान बचाने वाली बकरी की भी उसने परवाह न की। उसने बहाना बनाया "रात भर कुँए में रहने से मेरे हाथ जकड़ गए हैं। मैं तुम्हें निकाल नहीं सकता।" कालू सोच रहा था कि बकरी मरे तो मर जाये। मुझे इससे क्या ? मैं तो बच ही गया।

बकरी कालू की चालाकी समझ गई। वह बोली—"दुष्ट कालू ! सब ठीक कहते हैं कि तू बड़ा स्वार्थी है। तुझे बचाने के कारण मैं कुएँ में गिरी। पर तुझे मेरी जरा भी परवाह नहीं। तू न बचाए तो न सही। मुझे निकालने वाले बहुत आ जायेंगे। मैं तो दूध देती हूँ। सभी को पिलाती हूँ। सभी का उपकार करती हूँ। तू ही नीच है जो किसी के काम नहीं आता। सबको हानि पहुँचाता है। इसलिए किसी ने तेरी सहायता नहीं की।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कालू तो चला गया। थोड़ी देर बाद एक आदमी उधर से निकला। उसने बकरी के मिमियाने की आवाज सुनी। आदमी ने पूछा—"तू कहाँ से बोल रही है ?"

"मैं यहाँ कुएँ में हूँ, बकरी बोली।"

आदमी ने सोचा यह तो बड़े काम की है। इसे देखकर मेरे बच्चे खुश होंगे। यह दूध देगी। उसने जल्दी से बकरी को निकाल लिया। बाहर आकर बकरी बोली "काका, मैं तुम्हारी कृतज्ञ हूँ। तुमने मेरी जान बचाई है।"

आदमी ने पूछा कि वह कुएँ में कैसे गिरी थी ? बकरी ने सारी घटना बताई। आदमी बोला—"तू तो बहुत अच्छी है। चल मेरे साथ घर चल।" वह बकरी को अपने घर ले गया। वहाँ बकरी उसके बच्चों के साथ खेलती रहती थी। खूब खाती-पीती थी। खूब काम करती थी। इस कहानी से शिक्षा मिलती है कि जो भेड़िये की तरह दूसरों को हानि पहुँचाता है, किसी की सहायता नहीं करता, उसे कोई नहीं चाहता। जो बकरी की तरह दूसरों को लाभ देता है, अच्छे काम करता है, वह सुखी रहता है। यह शिक्षा भी मिलती है कि मीठी बातें बोलकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाले भी दुनिया में कम नहीं हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति से समझकर ही व्यवहार करना चाहिए।

घोंसला

एक लड़की थी, उमा। उमा के घर के पीछे एक बबूल का पेड़ था। उमा अपने कमरे की खिड़की से उसे देखती रहती थी। एक दिन उसने देखा कि एक चिड़िया बार-बार आ रही है। वह अपनी चोंच में छोटे-बड़े तिनके लाती है। उन्हें वह एक पेड़ की डाल पर रखती जाती है। उमा ने देखा कि एक बड़ा ही सुन्दर घोंसला बनना शुरू हो गया। उसने अपनी माँ से पूछा—'माँ, यह चिड़िया कैसा सुन्दर घोंसला बना रही है ? पर हमारे घर में जो चिड़िया घोंसला बनाती है, वह तो इतना अच्छा नहीं होता। ऐसा क्यों है ?'

माँ ने कहा—"तुम यह जो घोंसला देख रही हो, यह बया नाम की चिड़िया का है। यह चिड़िया घोंसला बनाने के लिए बड़ी प्रसिद्ध है। इसके घोंसले बड़े ही सुन्दर होते हैं। इसका कारण यह है कि यह जी-जान से अपने काम में जुटी रहती है। यह अपने काम को पूरी मेहनत और लगन से करती है। इससे इसका काम अच्छा होता है।"

यह कहकर माँ तो रसोई में खाना बनाने चली गई। अब उमा को एक शरारत सूझी। उसने खिड़की में से एक डण्डा डाला। डण्डे से धीरे-धीरे हिलाकर घोंसला गिरा दिया। इतने में दाना चुगकर चिड़िया वापस आई। उसने देखा कि घोंसला टूटा पड़ा है। कुछ तिनके बिखर गये हैं, कुछ हवा में उड़ गये हैं। अपनी मेहनत यों बेकार होते देख बया को बड़ा दुःख हुआ। वह थोड़ी देर तक चीं-चीं करके रोती रही। फिर उसने सोचा कि रोने से क्या होता है ? रोते रहने से तो कोई भी काम पूरा हो नहीं सकता। इससे अच्छा तो यही है कि मैं दुबारा से ही घोंसला बनाना शुरू करूँ। अतएव वह फिर अपने काम में जुट गई।

दूसरे दिन बया जब खाना खाने गई तो उमा ने फिर उसका घोंसला गिरा डाला। उसने यह न सोचा कि इससे उसे कितनी परेशानी और दुःख होगा ? दो-तीन दिन तक यही होता रहा। बया घोंसला बनाती। उसके जरा हटने पर उमा उसे तोड़ डालती। एक दिन जब उमा घोंसला गिरा रही थी तो उसकी माँ ने उसे देख लिया। उन्होंने कहा—'उमा ! तुम यह क्या कर रही हो ? किसी के काम को बिगाड़ते नहीं हैं। बया चिड़िया है तो क्या, तुम्हारे काम से उसे बड़ी कठिनाई होती है। तुम्हें उसकी सहायता करनी चाहिए। उसे तंग नहीं करना चाहिए। मनुष्य हो या पशु-पक्षी किसी को परेशान नहीं करते।"

पर माँ की बात का भी उमा पर कोई असर नहीं हुआ। जैसे ही वह कमरे से बाहर जाती, वह डण्डा उठाकर घोंसला गिराने लगती। पर बया थी कि बार-बार घोंसला बनाये जाती थी। वह सोचती थी, कभी तो उसकी मेहनत सफल होगी।

माँ ने देखा उमा गलत काम करती है। वह उनकी बात नहीं मानती। उन्होंने एक उपाय सोचा। माँ ने उमा के सामने उसकी गुड़िया तोड़ डाली। उस गुड़िया को उमा बहुत प्यार करती थी। प्यारी गुड़िया के दो टुकड़े देखकर उमा बड़ी दुःखी हुई। वह फूट-फूटकर रोने लगी।

माँ ने कहा—"मैं तुम्हारी गुड़िया जोड़ दूँगी। पर तब, जबकि तुम भी बया का घोंसला बनाकर आओगी। अब तक तो उसका पूरा घोंसला बन जाता। तुमने उसकी सारी मेहनत बेकार कर दी।"

माँ की बात सुनकर उमा दौड़कर कमरे से निकली। उसने अपने घर के बगीचे से तिनके और टूटी घास बीनी। वह पिछवाड़े से निकलकर जल्दी से पेड़ के पास पहुँची। वह सोच रही थी कि मैं अभी मिनटों में घोंसला बनाकर तैयार किये देती हूँ। वह डाल पर तिनके रखती, घास से उन्हें लपेटती जाती। पर तिनके थे कि डाल पर टिकते ही न थे। कुछ नीचे गिर जाते थे। कुछ हवा के झोंकों से उड़ जाते थे। वह बार-बार कोशिश करती पर सब बेकार जाती। अन्त में वह खीजकर पेड़ के नीचे बैठकर रोने लगी। जिसे वह छोटा-सा काम समझ रही थी, वह तो बड़ा कठिन निकला। थोड़ी देर बाद लगा कोई उसके सिर पर हाथ फिरा रहा है। उमा ने पीछे मुड़कर देखा तो माँ सामने खड़ी थीं। वे कह रही थीं, "कोई काम बिगाड़ना तो सरल है पर बनाना कठिन होता है। यदि कर सकती हो तो दूसरों की सहायता करो। किसी को न तो सताओ, न उसका काम बिगाड़ो।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लगन का फल

पुराने समय की बात है। एक बड़े विद्वान गुरु थे। उनके आश्रम में दूर-दूर से बच्चे पढ़ने आते थे। गुरुजी जब पढ़ाते थे तो सारे बच्चे बड़े ध्यान से उनकी बात सुनते थे। पर एक बालक ऐसा भी था जो अपना मन पढ़ाई में नहीं लगाता था। उसका नाम था वोपदेव। जब कुछ बात सिखाई जाती थी तो वह बाहर देखता रहता था। कभी वह हिरणों का दौड़ना देखता। कभी चिड़ियों का फुदकना देखता तो कभी बच्चों को खेलते हुए देखता रहता। उसका मन करता था कि वह भी बाहर जाकर खेले-कूदे। पर गुरुजी के डर से ऐसा नहीं कर पाता था। इस सबका फल यह हुआ कि वोपदेव मूर्ख ही रह गया। उसके दूसरे साथी पढ़-लिखकर होशियार होते गये।

गुरुजी को यह अच्छा नहीं लगता था कि वोपदेव कुछ न पढ़े-लिखे, क्योंकि जो बच्चे शुरू से मन लगाकर नहीं पढ़ते, वे बड़े होकर भी अच्छे नहीं बनते। पहले तो गुरुजी ने वोपदेव को प्यार से समझाया कि वह ठीक से पढ़े-लिखे। पर वह फिर भी न माना। तब एक दिन गुरुजी को गुस्सा आ गया। उन्होंने वोपदेव को खूब डाँटा।

डाँट खाकर वोपदेव फूट-फूटकर रोने लगा। उसने सोचा कैसे मैं गुरुजी को मनाऊँ ? कैसे फिर उनका प्यार पाऊँ ? मैं तो कक्षा में बहुत पिछड़ गया हूँ। अब मैं कैसे आगे बढ़ सकता हूँ ? यही सब सोचते-सोचते वह आश्रम से बाहर आ गया। उसे दुःख हो रहा था कि उसने समय क्यों बर्बाद किया। मन लगाकर क्यों नहीं पढ़ा। गुरुजी जो कुछ कहते हैं, उसकी भलाई के लिए ही कहते हैं। उनके कहे के अनुसार ही उसे काम करना चाहिए। तभी वह अच्छा बच्चा बन सकता है।

चलते-चलते वोपदेव को प्यास लगी। उसे एक कुआँ दिखा, वहाँ कुछ स्त्रियाँ पानी भर रही थीं। वह पानी पीने उसके पास पहुँचा। पानी पीकर वोपदेव ने देखा कि कुएँ के मुँडेर पर कई बड़े गोल-गोल गड्ढे बने हुए थे। उन्हें देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। इतने चिकने-सुडौल गड्ढे किसने बनाये हैं ? उसने उन स्त्रियों से पूछा—"क्या इतने सुन्दर गड्ढे तुमने बनाये हैं ?" यह सुनकर वे सभी हँस पड़ीं। उनमें से एक बड़ी आयु की महिला बोली—"बेटा ! यह गड्ढे किसी ने बनाये नहीं हैं ? हम सब यहाँ रोज पानी भरकर अपने घड़े रखती हैं। इससे पत्थर पर घिसाव पड़ता है और गड्ढा बन जाता है। यह मिट्टी का घड़ा कड़े पत्थर में अपने बैठने की जगह बना लेता है।" यह सुनकर वोपदेव को और भी अचम्भा हुआ। उसे लगा कि इतने कड़े पत्थर से घड़े से गड्ढे कैसे बन सकते हैं ?

उसने पूछा—"सच कह रही हो ? घड़े से ही यह गड्ढे बने हैं ?"

स्त्री बोली—"हाँ बेटा ! अगर हम एक काम को हर दिन करते रहें तो उसका अभ्यास हो जाता है। रोज-रोज मन लगाकर किया गया काम, चाहे कितना ही कठिन क्यों न हो, जरूर पूरा होता है।"

वोपदेव को बड़ी खुशी हुई। वह गुरुजी के पास दौड़ा गया और बोला—"गुरुजी ! मैं पढ़ाई में बहुत पिछड़ गया हूँ तो क्या हुआ। जब मैं रोज-रोज मन लगाकर पढ़ूँगा। खूब मेहनत करूँगा। मैं अच्छा बच्चा बन जाऊँगा।"

तब वोपदेव ने सच्चे मन से पढ़ना शुरू किया। पहले पढ़ाई उसे कठिन लगती थी, वही अब सरल लगने लगी। अपनी लगन के फल से वह बड़ा विद्वान बना। वोपदेव बड़े होकर अपने ज्ञान के लिए प्रसिद्ध हुए। उन्होंने व्याकरण की एक पुस्तक भी लिखी, जिसका नाम है—'मुग्धबोध'। आज भी विद्वान बड़े आदर से इसे पढ़ते हैं।

इस कहानी से शिक्षा मिलती है कि सच्चे मन से जो कार्य किया जाता है, वह जरूर सफल होता है। यह भी कि प्रत्येक व्यक्ति अपना जो भी लक्ष्य बना ले, उसे प्राप्त कर सकता है। संसार में कोई भी काम कठिन नहीं है, परिश्रम से सभी काम सरल हो जाते हैं।

हारिये न हिम्मत

विज्ञान के क्षेत्र में आइन्स्टाइन का नाम सभी का जाना-माना है। आज वे सारे विश्व में अणु विज्ञान के परिचायक महान गणितज्ञ और वैज्ञानिक के रूप में प्रतिष्ठित हैं, परन्तु आइन्स्टाइन प्रारम्भ से ही ऐसे प्रतिभाशाली नहीं थे।

बालक आइन्स्टाइन जब विद्यार्थी थे तो कक्षा के सहपाठी उन्हें बुद्धू कहकर चिढ़ाया करते थे। कई बार साथी उनकी पीठ पर चिट चिपका देते जिस पर लिखा होता था 'बुद्धू'। साथी हँसते परन्तु आइन्स्टाइन कोई उत्तर न दे पाते। ऐसा लगता था जैसे वह स्वयं को वैसा ही समझते हों।

गणित कक्षा में तो उनकी शामत ही आ जाती। अध्यापक किसी प्रश्न को कई-कई बार समझाने के पश्चात् जब उनसे पूछते तो वह बगलें झाँकते बुद्धू से ताकते रहते। एक बार अध्यापक ने उनके इस भोंदूपन से चिढ़कर कहा कि "तुम सात जन्मों में भी गणित नहीं सीख सकते, कुछ और सीखो।" यह बात आइन्स्टाइन को चुभ गई और उन्होंने कठोर परिश्रम आरम्भ कर दिया।

आत्मविश्वास के साथ कठोर श्रम करते रहने के कारण आइन्स्टीन के इस युग के महान वैज्ञानिक और गणितज्ञ बने। अपनी इस महानता के रहस्य को उन्होंने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक विद्यार्थी को बतलाया कि मैंने अपने जीवन में कभी भी हिम्मत नहीं हारी। निराश न होकर निरन्तर श्रमपूर्वक प्रयत्न करता रहा। इसी से सबसे कठिन विषय गणित मेरे लिए सरल बन गया।

आत्मविश्वासपूर्वक निरन्तर सही दिशा में प्रयत्न करते हुए भी बुद्धू बुद्धिमान बन जाता है।

सत्यप्रिय जार्ज

एक बार एक किसान ने अपने छोटे बेटे को एक कुल्हाड़ी लाकर दी। वह देखने में बड़ी चमकदार थी और उसकी धार भी तेज थी। बालक उसे पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। बड़ी देर तक उसे उलट-पलट कर देखता रहा। फिर उसकी इच्छा हुई कि इसकी धार को अजमाया जाये। वह कुल्हाड़ी लेकर बगीचे में चला गया। वहाँ उसने बहुत-से पेड़ों पर कुल्हाड़ी चला-चलाकर देखी। उसकी धार इतनी तेज थी कि जहाँ भी लगती थी, पेड़ कट जाता था। बालक यह देखकर बड़ा प्रसन्न होने लगा। इसी प्रकार काफी समय अपना मनोरंजन करने के बाद वह घर चला गया।

बालक का पिता जब बगीचे में आया तो उसे देखकर सन्न रह गया। उसके प्यारे वृक्ष जगह-जगह से कटे पड़े थे। किसी का तना कटा हुआ था तो किसी की डाल। किसी के फल गिरे पड़े थे तो कोई जड़ से ही कटा पड़ा था। पिता ने गुस्से में भरकर मालियों को उनकी लापरवाही के लिए डाँटा। उन सभी को आश्चर्य हो रहा था कि बाहर का कोई भी व्यक्ति तो आया नहीं है फिर वृक्ष कैसे कट गये ?

घर आकर उसने बड़े खिन्न मन से पत्नी से सब नुकसान की यह बात बतलाई। जार्ज भी यह सुन रहा था। बोला—"पिताजी ! मैंने ही पेड़ों पर कुल्हाड़ी चला कर देखी थी कि इसकी धार कितनी तेज है ? मैं ही इस काम के लिए दोषी हूँ।" बालक जानता था कि पिता उस पर क्रुद्ध हो सकते हैं, उसे दण्ड दे सकते हैं, पर उसे लगा कि सच्चाई को स्वीकार तो करना ही चाहिए।

पिता उसकी बात से नाराज तो हुए पर बोले—"बेटे, तुमने वृक्षों को नुकसान पहुँचाकर बुरा काम किया है। पर फिर भी सच बोला है, झूठ बोलकर अपनी करनी छिपाई नहीं है इसलिए मैं तुमसे प्रसन्न हूँ।"

आगे चलकर यही बालक जार्ज वाशिंगटन के नाम से अमेरिका का राष्ट्रपति बना तथा अपनी सत्यप्रियता, न्यायशीलता और ईमानदारी के कारण प्रसिद्ध हुआ।

पुरस्कार वापस

गणित की कक्षा चल रही थी। अध्यापक ने गणित का एक कड़ा प्रश्न पूछा। सारे विद्यार्थी चुप बैठे रहे। कोई उस प्रश्न को हल न कर सका।

थोड़ी देर में एक नन्हा विद्यार्थी उठा और उसने प्रश्न का सही उत्तर बता दिया। अध्यापक विद्यार्थी की प्रतिभा से बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उस बालक को एक पुरस्कार भी दिया। पुरस्कार लेते में बालक कुछ अशान्त-सा हो गया। घर पहुँचकर तो उसकी अशान्ति और उदासी इतनी बढ़ गई कि वह रातभर सोया नहीं। बस दिन निकलने और विद्यालय पहुँचने की चिन्ता करता रहा।

दूसरे दिन विद्यालय पहुँचते ही बालक अध्यापक के सामने गया। उसने पुरस्कार उनके सामने रख दिया और हाथ जोड़कर बोला—"गुरुजी ! कल प्रश्न का उत्तर मुझे एक-दूसरे सहपाठी ने बताया था। मैंने स्वयं नहीं सोचा था। इसलिए यह पुरस्कार भी आप कृपया उसे ही दीजियेगा।"

अध्यापक बालक के साहस, सत्यप्रियता और ईमानदारी से बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सारे विद्यार्थियों को एकत्रित कर उस बालक की बात उन्हें बताई। उन्होंने सभी बालकों को समझाया, "झूठ बोलने वाले का झूठ चाहे कोई और जाने अथवा न जाने परन्तु भगवान और अपना अन्तरात्मा जानता है। इसीलिए झूठ बोलने और बेईमानी करने से शान्ति और सुख नहीं मिलता। जैसे इस बालक को नहीं मिला। इसलिए हमें सदैव सत्य का पालन करना चाहिए।"

पुरस्कार उस बालक को लौटाते हुए उन्होंने कहा—"यह पुरस्कार अब तुम्हारी अच्छाई, साहस और सत्य-पालन के लिए है। तुम इसके सच्चे अधिकारी हो।"

यह नन्हा बालक था गोपालकृष्ण गोखले, जो बचपन से अभावों और कठिनाइयों में पले। परन्तु कभी सत्य, न्याय, ईमानदारी और देशभक्ति में पीछे नहीं रहे।

छोटी-छोटी भूल

एक बार भाई-बहिन दोनों घूमने निकले। घूमते-घूमते वे जंगल की ओर चले गये। अब दोनों में होड़ लगी कि कौन पहले दौड़कर रास्ता पार करता है ? बालिका इलायजा तेजी से दौड़ी जा रही थी। अपनी धुन में उसे कुछ भी ध्यान न था। उसके आगे एक कृषक बालिका चली जा रही थी। उसके सिर पर अमरूदों से भरी टोकरी रखी थी। इलायजा की टक्कर लगी और अमरूदों की टोकरी पास ही बहते नाले में जा गिरी।

अब क्या था—"किसान की वह गरीब लड़की फूट-फूटकर रोने लगी। इलायजा ने यह देखा तो घबड़ा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गई। इतने में पीछे से बालक नैपोलियन भी आ गया। इलायजा बोली—"चलो, जल्दी भाग चलें यहाँ से। कोई आ गया तो मुसीबत खड़ी हो जायेगी।"

बालक समझदार था। बोला—"नहीं, गलती हमने की है तो उसका प्रायश्चित भी हम ही करेंगे। चाहे कोई देखे या न देखे पर भगवान हमारे सारे काम देखता है।"

उधर वह गरीब बालिका रोते हुए कह रही थी कि "अब मैं बाजार में जाकर क्या बेचूँगी ? कहाँ से पैसे लाऊँगी ? अपने बीमार माता-पिता को दवा और दूध कैसे लाऊँगी ?"

उसकी बात सुनकर बालक का हृदय पिघल उठा। उसकी जेब में कुछ पैसे पड़े थे। उन्हें वह देते हुए बोला—"तुम हमारे साथ चलो। हम अपने घर से तुम्हें फलों का मूल्य दे देंगे। हमने गलती की है तो उसका दंण्ड भी हम ही भुगतेंगे।"

तीनों घर पहुँचे। माँ ने सारी बातें सुनीं तो झुँझला उठीं और बोली—"तुम जानते नहीं कि घर का खर्च भी जैसे-तैसे बड़ी कठिनाई से चलता है। मैं कहाँ से पैसे दूँ ?"

बालक जो पहले से ही कुछ विचार कर रहा था बोला—"माँ ! गलती हम दोनों की है। उसके कारण यह गरीबनी कष्ट क्यों उठाये ? तुम इसे मेरे और दीदी के विद्यालय के नाश्ते के पैसे दे दो। हम दोपहर में नाश्ता नहीं करेंगे।"

माँ ने उस लड़की को अमरूदों के पैसे दे दिये और वह बड़ी खुशी से अपने घर चली गई। बालक और उसकी बहिन ने दो महीने तक विद्यालय में दोपहर का नाश्ता नहीं लिया।

अपनी छोटी-छोटी भूलों पर गम्भीरता से विचार करने वाला, उन्हें सुधारने वाला यही बालक बड़ा होकर नैपोलियन बोनापार्ट के नाम से विश्व में प्रसिद्ध हुआ।

दृढ़निष्ठा

लाहौर के मिशन स्कूल की घटना है। एक बार वहाँ के प्रधानाध्यापक नवीं कक्षा को पढ़ा रहे थे। पढ़ाते-पढ़ाते हिन्दू धर्म की कुछ चर्चा आई और उन्होंने उसमें दोष निकालने, उस पर आक्षेप छोड़ने प्रारम्भ कर दिये। काफी देर तक जब यह चर्चा चलती रही तो एक विद्यार्थी से यह सहन न हुआ। उसने तुरन्त उन बातों का खण्डन करना प्रारम्भ कर दिया, उसने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि सत्य, अहिंसा, परोपकार आदि नैतिक मूल्यों पर सभी धर्मों में बल दिया गया है। जहाँ तक कुरीतियों और अन्धविश्वासों का प्रश्न है, वे ईसाई धर्म में भी कम नहीं हैं। इसके लिए किसी धर्म विशेष को दोषी ठहराना ठीक नहीं है।

किशोर की बातों से प्रधानाचार्य का आक्रोश और बढ़ गया। उन्होंने बेंत से बालक की खूब पिटाई की। तब भी क्रोध न गया तो कॉलेज से उसका नाम ही काट दिया।

बालक तो चला गया पर प्रधानाचार्य के मस्तिष्क में कई दिनों तक तर्क-वितर्क चलता रहा। उनकी अन्तरात्मा उन्हें धिक्कारने लगी कि उन्होंने धर्म के मद में चूर होकर किसी निरपराधी बालक के प्रति दुर्व्यवहार किया है। अन्त में उन्होंने उसे वापस स्कूल में बुला लिया।

यही किशोर बड़ा होकर महात्मा हंसराज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जीवनभर उन्होंने हिन्दू धर्म और भारतीय संस्कृति के अनुरूप शिक्षा देने के लिए पंजाब में 'दयानन्द आर्य महाविद्यालय' की भी स्थापना की।

गौरवान्वित माँ

एक बार बालक सुभाष तीन-चार दिन घर नहीं लौटा। कई व्यक्ति उन्हें ढूँढ़ने-खोजने इधर-उधर दौड़े, सभी जगह खोजा, पूछ-ताछ की, परन्तु कुछ पता न चला। बेचारी माता बालक के किसी कष्ट में पड़ जाने की आशंका से बिलख रही थी।

व्याकुल माता की आँखों को अचानक पीछे से आकर किसी ने नन्हें हाथों से बन्द कर लिया। माता स्पर्श पहचान गई। आँख बन्द करने वाले हाथों को पकड़कर उसे अपनी गोद में खींच लिया और पूछा—"चार दिन से तुम कहाँ थे बेटे ?"

बालक सुभाष मुस्कराते हुए बोला—"माँ ! यहीं पास के गाँव में हैजा फैला था। बीमारों को सेवा-सहायता की आवश्यकता थी। इसलिए इतने दिन वहीं उनकी सेवा में लगा रहा। तुम्हें सूचना देने का समय ही नहीं रहा।"

माँ ने उसकी सेवा-भावना को सराहा और सराहते हुए कहा "शाबाश बेटा ! तुमको पुत्र रूप में पाकर मैं गौरवान्वित हूँ।"

यही बालक भारत माता का वीर सपूत स्वाधीनता सेनानी नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के नाम से अमर हैं।

लोभी कबूतर

एक जंगल में कबूतरों का एक झुण्ड रहता था। वह सब एक ही परिवार के थे, उनका एक मुखिया था। सारे कबूतर उसकी आज्ञा का पालन करते थे। एक दिन कबूतरों का झुण्ड शाम को अपने घर लौट रहा था। रास्ते में एक जगह बहुत-से दाने बिखरे पड़े थे। झुण्ड के कुछ कबूतरों को दाने चुगने का लोभ आ गया। उनमें से कुछ नीचे उतरने लगे पर मुखिया बड़ा चतुर था उसने समझाया—भाइयो ! अनाज बड़ी कीमती चीज होती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

है, उसे लोग सँभालकर घरों में रखते हैं, यहाँ इतने दाने बिखरे पड़े हैं इसका मतलब कोई धोखा है, तुम लोग दानों का लालच न करो, अब शाम हो गई है, इसलिए भी रुकना ठीक नहीं।

मुखिया के इतना समझाने पर भी कबूतरों का लालच कम न हुआ। धीरे-धीरे सब कबूतर नीचे उतर गये, टोली नायक को भी विवश होकर साथ देना पड़ा पर अभी वे मुश्किल से दो-चार दाने ही मुँह में डाल पाये थे कि उन्होंने देखा कि वे सचमुच जाल में फँस गये हैं और शिकारी जिसने जाल फैला रखा था दूर से दौड़ा हुआ उन्हें पकड़ने के लिए आ रहा था।

कबूतरों की पहली गलती तो यही थी कि उन्होंने पेट भरे होने पर भी अनावश्यक लालच किया। घर पहुँच गये होते तो बच्चों से मिलते-जुलते, विश्राम करते पर लोभ के कारण सबके सब जाल में फँस गये। दूसरी भूल उन्होंने यह की कि अपने से बड़े टोलीनायक की आज्ञा नहीं मानी। बड़ों का अनुभव और ज्ञान दोनों बड़े होते हैं, इसलिए अच्छे-बुरे की पहचान भी उन्हें अधिकतर होती है।

छोटे बच्चों और घर के लोगों पर उन्हें स्नेह होता है, इसलिए वे जब भी कोई शिक्षा देते हैं, भले के लिए ही देते हैं, पर जो लोग उनकी शिक्षाओं पर नहीं चलते और आज्ञाओं का पालन नहीं करते वे भी कबूतरों की तरह ही कठिनाइयों और मुसीबतों के जाल में फँस जाते हैं।

संकट आया जान कबूतरों ने अपने मुखिया से कहा अब तो आप ही हमें इस कष्ट से छुटकारा दिला सकते हैं ठीक भी है। जब कोई कष्ट आये तो बड़े और बुद्धिमान व्यक्तियों की शरण में जाने से कल्याण होता है। कबूतरों ने इतनी तो बुद्धिमानी की कि कष्ट पड़ने पर उन्होंने अपने विश्वासपात्र मुखिया को याद किया और अपनी भूल स्वीकार की। कुछ देर तक सोचने के बाद दलनायक बोला—"भाइयो ! अब हमारे सामने एक ही रास्ता है और वह यह कि सब लोग मिलकर शक्ति लगायें और जाल समेत यहाँ से उड़ चलें।" कबूतरों ने बात मान ली। सबने मिलकर जोर लगाया जिससे जाल का बोझ भी उठ गया और वे आकाश में उड़ गये, शिकारी हाथ मलता ही रह गया। मिल-जुलकर काम करने की शक्ति ऐसी ही होती है।

कबूतरों का दल अपने निवास स्थान के समीप ही एक स्थान पर उतर पड़ा। वहाँ दलनायक का एक मित्र चूहा रहता था। उसने अपने मित्र को बुलाया। चूहा निकलकर बाहर आया। अपने मित्र को जाल में फँसा हुआ देखकर वह बड़ा दुःखी हुआ। उसने इस तरह फँस जाने का कारण पूछा। कबूतर ने सारा किस्सा अपने मित्र चूहे को सुनाया। कबूतरों के लालच और दलनायक की बात न मानने की सारी कथा सुनकर चूहे ने कहा—मित्र ! लाओ मैं जाल काटकर तुम्हें मुक्त कर दूँ। पर इन लोगों को तो किये का फल पाने दो। दलनायक बोला—नहीं भाई, ऐसी बात न कहो। तुम मेरे विश्वासपात्र मित्र हो। ऐसा मित्र जो कठिनाइयों में काम आये वही सच्चा मित्र होता है। ऐसे मित्र संसार में हर व्यक्ति को रखने चाहिए, जो कठिन से कठिन आपत्ति पड़ने पर साथ दे सकें।

परमार्थी कबूतर की बात सुनकर चूहा बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने थोड़ी देर में ही सारा जाल काट दिया। कबूतरों का दल फिर स्वतन्त्र हो गया। चूहे को धन्यवाद देकर सब अपने घर लौटे।

साधारणतया घरों में कहानी सुनकर जैसे ही उसका अन्त हुआ लोग प्रसंग को वहीं समाप्त कर देते हैं पर दर-असल कहानी का यथार्थ लाभ इतने से नहीं मिल सकता। इतनी कहानी का अर्थ यह हुआ कि एक शिक्षा के लिए आपने सुनने वालों के मस्तिष्क में केवल वातावरण बनाकर छोड़ दिया। उसमें लहर पैदा करने वाली बात छूट गई। इसलिए कहानी के अन्त में निष्कर्ष देकर समझाने वाली पद्धति आवश्यक है। उसके बिना कहानी का सारा महत्त्व बेकार हो जाता है, वातावरण तैयार हो जाना उसी तरह है जैसे बीज बोने के लिए खेत तैयार कर दिया गया। बीज डालने का काम तो अब शुरू होता है। तभी तो दी हुई शिक्षा की पौध उग सकती है। इसलिए कहानी के अन्त में उससे सम्बन्धित शिक्षा देना अनिवार्य है। जैसे प्रस्तुत कहानी में निहित शिक्षा के समझाने के निमित्त यह कहा जा सकता है—कबूतरों ने नासमझी और जल्दीबाजी न की होती तो इतना सारा झंझट ही क्यों पैदा होता ? हमारे जीवन में भी ऐसी परिस्थितियाँ अक्सर आती हैं, जो लोग उनसे बच जाते हैं वे बुद्धिमान होते हैं। पर जो फल-कुफल पर ध्यान नहीं देते उन्हें कबूतरों की तरह ही संकट में पड़ना पड़ता है। इसके बाद लम्बी परेशानी उठाकर ही वे उस संकट से बचते हैं। जैसे दूसरों के धन का लालच करने वाले चोरों को सजा होती है, अधिक मुनाफे का लोभ नहीं त्याग पाते और मिलावट करते हैं। ऐसे बनियों और दुकानदारों की लोग बड़ी निन्दा करते हैं, पकड़े जाने पर दण्ड दिया जाता है। लोभ छोटा हो अथवा बड़ा वह हमेशा मनुष्य को कष्ट ही देता है इसलिए बुद्धिमान और विचारवान लोग पहले ही उसका परित्याग कर देते हैं। वे लोग ईमानदारी और परिश्रम की कमाई पर विश्वास करते हैं फिर जो कुछ मिलता है उसे अपने लिए ही नहीं रखते वरन् मिल-बाँटकर उपभोग करते हैं। इससे सबका भला होता है और खुद को भी सुख मिलता है। याद रखो—लोभ संकट की जड़ है, इससे सदैव बचना चाहिए।

छोटी-सी कहानी में शिक्षाएँ और परिस्थितियों का विश्लेषण देकर जितना चाहें बढ़ा लेते हैं। परिवार निर्माण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए इससे अच्छा प्रशिक्षण और क्या हो सकता है ? पर हमें याद रखना चाहिए कहानी केवल मनोरंजन के लिए न कही जाय, वरन् उसमें शिक्षाओं और सम्मतियों का समन्वय भी किया जाये। उसका प्रारम्भ और निष्कर्ष दोनों उद्देश्यपूर्ण रहने चाहिए।

मनुष्य मात्र एक कोरा कागज है

फिलीपाइन्स के एक कबाइली इलाके में ऐसे परिवार पाये गये हैं, जिन्हें आदिम सभ्यता का अवशेष समझा जा सकता है। वे पत्तों से वस्त्र का काम लेते हैं और वनस्पतियों तथा जन्तुओं को आहार बनाते हैं। वे घुमन्तू स्तर के हैं। जब तक मर्जी होती है पर्वतीय गुफाओं में या पेड़ों के झुरमुटों में बस जाते हैं और जब उचंग आती है, इच्छानुसार किसी भी दिशा में चल पड़ते हैं।

किन्तु रहते कबाइली सीमा में ही हैं। सभ्य मनुष्यों के सम्पर्क में लाने के लिए अब तक के किये गये सभी प्रयत्न निष्फल हुए हैं। उन्हें अपना ढर्रा ही पसन्द है। बदलने की अपेक्षा जान देना या लेना उन्हें अधिक पसन्द है। समुदाय में नरों की संख्या अधिक है, नारियों की कम क्योंकि वे प्रजनन तथा कष्टसाध्य जीवन को वहन करने में पिछड़ जाते हैं।

इस खोज से पता चलता है कि यदि मनुष्य को सभ्यता, सुसंस्कारिता का वातावरण न मिले, तो वह आदिम काल की पशु परिस्थितियों में ही बना रहेगा।

ऐसे और भी कबीले संसार के अन्यान्य स्थानों में हैं, जिनका रहन-सहन, आचार-व्यवहार सामान्य लोगों की तुलना में कहीं अधिक पिछड़ा हुआ है। वे पशुओं से कुछ ही ऊँचे दर्जे तक पहुँच पाते हैं।

यह सोचना गलत है कि मनुष्य जन्मजात रूप से अनेक विशेषताएँ लेकर साथ आता है। साथ तो मनुष्य की संरचना ही अपवाद रूप मान लेना पर्याप्त है। ऐसे हाथ किसी को नहीं मिले। दो पैरों के सहारे चलना भी किसी को नहीं आता और मस्तिष्कीय ग्रहणशीलता का, संवेदना का उपहार और किसी प्राणी को नहीं मिला। किन्तु साथ ही निश्चित है कि इनका अद्भुत उपयोग सिखाने पर ही सीखा जा सकता है। इसलिए विकास की दिशा में अग्रसर करने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि उसे समुचित प्रशिक्षण प्राप्त हो, भले ही वह अभिभावकों, कुटुम्बियों, सम्बन्धियों या पड़ोसयों द्वारा दिया जाय। मनुष्य दूसरों को देखकर उसकी नकल बनाने में प्रवीण है, जबकि दूसरे प्राणी वैसा नहीं कर पाते।

ऐसे उदाहरण संसार में कितने ही हैं कि भेड़िया या चिम्पाजियों द्वारा मनुष्य बालकों का अपहरण किया गया। उन्होंने उन्हें मारा नहीं, वरन् अपना बच्चा समझकर पाल लिया। बड़े होने पर वे शिकारियों द्वारा प्रयत्नपूर्वक पकड़े गये। पाया गया कि उनमें अपने पालकों की सभी आदतें अभ्यास में उतर गई हैं। वे उसी प्रकार रहते, खाते और बोलते, जैसे कि उनके पालने वाले। पकड़े जाने के उपरान्त उन्हें मनुष्योचित रहन-सहन एवं शिष्टाचार, उच्चारण सिखाने का बहुत प्रयत्न किया गया, पर इसमें आंशिक सफलता ही मिली। परिपूर्ण मनुष्य वे न बन सके। कारण कि बालक जन्म के उपरान्त आरम्भिक तीन वर्षों में जो कुछ सीख लेता है, वह इतना अधिक होता है कि जिसकी तुलना जीवन के शेष भागों में सम्पादित किये गये अनुभव से नहीं हो सकती। मानसिक बीजांकुर इसी अवधि में उगते और बढ़ते हैं। पूर्णता-परिपक्वता शेष जीवन में आती है।

इस वास्तविकता को देखते हुए आवश्यक हो जाता है कि बच्चों के लिए भोजन, वस्त्र का ही प्रबन्ध न किया जाय, वरन् उनमें उन संस्कारों के बीजारोपण का भी प्रबन्ध किया जाय, जिससे वे समझदार, बुद्धिमान और नीतिवान नागरिक बन सकें।

नन्हें शिशुओं की प्रकृति का अध्ययन कीजिए

बच्चों की मूल भावनाएँ तो लगभग समान हैं किन्तु उन सबकी रुचि एक ओर नहीं झुकती। उनमें कुछ का झुकाव किसी ओर तो कुछ का किसी दूसरी ओर होता है। एक शिशु प्रारम्भ से तस्वीरें बनाने में आनन्द लेता है, दूसरा गाना गाता है, तीसरा पढ़ना-लिखना नहीं छोड़ता, चौथा पेड़-पौधों में प्रवृत्त है। नन्हें बच्चों की विशेष प्रवृत्तियाँ पहचानने में प्रत्येक माता-पिता को बड़ा सतर्क रहना चाहिए। बच्चा जिस दिशा की ओर अधिक प्रवृत्त है, वह उसकी विशिष्टता है। प्रकृति ने वह विशेष गुण शिशु को उपहारस्वरूप प्रदान किया है। अतः उस मनोवृत्ति का किसी मनोवैज्ञानिक से अध्ययन कराकर उसे अपने स्वभाविक गुणों के विकास में सहायता करना चाहिए।

किन्तु सभी शिशुओं की छुपी हुई प्रवृत्तियों के बीज एक से नहीं पनपते। किसी बालक में विकास अन्यों की अपेक्षा तेजी से होता है, किसी की प्रवृत्ति का विकास संतोषप्रद हो पाता है, किसी का यौवन में होना प्रारम्भ होता है। यही कारण है कि युवावस्था में सबकी मानसिक प्रवृत्तियों में जन्मगत प्रभेद दीख पड़ता है। बच्चे की कौन-सी विशिष्टता किस मर्यादा तक विकसित होगी, यह बात बच्चे के जन्मजात संस्कारों पर निर्भर है।

बच्चे की मनोवैज्ञानिक रीति से शिक्षा का प्रबन्ध अनिवार्य है। मनोविज्ञान इस बात पर जोर देता है कि बच्चे के स्वभावतः गुणों को उचित रीति से बढ़ने, फैलने, पूर्ण परपक्व होने का अवसर प्रदान किया जाय। उसके सहज गुणों का विकास मार-पीट, सख्ती, अनुपयुक्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वातावरण, बुरी संगति—कहीं रुक न जाय। यदि बच्चे के चारों ओर एक तीव्र सहानुभूतिमय दृष्टि रखी जाय और प्यार से उसकी बुद्धि को समझकर उसका विकास किया जाय तो जन्मजात दोष पनप नहीं सकते और उसकी महत्ता का पूर्ण प्रकाश हो सकता है।

मानव इस विविध-विघ्न बाधा संकुल जगत् से त्रस्त होकर निज इच्छा तृप्ति के लिए एक काल्पनिक जगत की सृष्टि किया करता है। स्वप्न भी हमारी छुपी हुई इच्छाओं की एक पूर्ति का मार्ग है। हमारे बच्चे भी २ से ७ वर्ष की अवस्था तक अधिकतर काल्पनिक जगत में विचरण किया करते हैं। ८ वर्ष पश्चात् बालक को स्वप्नजगत् तथा इस कटु जगत् में अन्तर प्रतीत होने लगता है।

शैशवावस्था में किए गए अत्याचार इसी अवस्था में अपना विषैला प्रभाव दिखाना प्रारम्भ करते हैं। बच्चों के भय, भूत-प्रेत, हव्वा इत्यादि के डर दिल में बैठकर घोर मानसिक यंत्रणा पहुँचाता है, बच्चा कायर, डरपोक एवं बिछुड़ने वाला बन जाता है। कभी-कभी कामोत्तेजना का शिकार बनकर आत्मग्लानि का शिकार बनता है और पाप के विचारों से दबा रहता है।

सच पूछा जाय तो बचपन में ही जीवन निर्माण का कार्य होता है। अव्यक्त मन में जो अच्छे-बुरे संस्कार बैठ जाते हैं, वह जीवनपर्यन्त चलते हैं। अतः बच्चों को कोमल मन में केवल उत्तम, स्वास्थ्यप्रद, हिम्मत एवं बड़प्पन के विचार ही जमाइये। बच्चे ऐसे शान्त एवं आनन्द के वातावरण में रहें कि उत्तम संस्कार ही उन पर पड़ें। शिशु का काल्पनिक जगत् महत्त्वाकांक्षा से ओत-प्रोत बनना चाहिए। शिवाजी, प्रताप इत्यादि पर शैशवास्था में ऐसा ही प्रभाव पड़ा था।

प्रायः हम सभी थोड़ा-बहुत चिढ़ते हैं किन्तु कुछ बालकों में अन्यों की अपेक्षा चिढ़ने की प्रवृत्ति अधिक होती है। यह निर्बल इच्छाशक्ति एवं न्यून सामर्थ्य की द्योतक है। ऐसे शिशुओं का स्वभाव अत्यन्त सुकोमल होता है तथा 'अहं' की भावना अत्यन्त बढ़ जाती है। चिढ़ प्रायः बच्चे की किसी विशेष दुर्बलता की सूचक होती है। हम चिढ़ते तब ही हैं, जब दूसरे हमारे 'अहं' वृत्ति पर आक्षेप करते हैं। चिढ़ने से हीनत्व की भावना शिशु में घर कर जाती है।

स्मरण रखिए, प्रत्येक बच्चा किसी विशेष क्षेत्र में अनुपम है। इस क्षेत्र को खोज निकालने से चिढ़ दूर हो जाती है। बच्चे का मजबूत पहलू खोज निकालिये। उस क्षेत्र में वह सदैव विजयी होता है। ऐसे बच्चे को ऐसे अवसर दीजिए कि उसकी छिपी हुई शक्ति को निकलने का मौका मिले और वह अपने क्षेत्र में मजबूत बने।

कितने ही शिशुओं का मानसिक एवं भावात्मक वातावरण इतना नीचा होता है कि वे अपनी शक्तियों को विकसित नहीं कर पाते। ऐसे बच्चे प्रायः शारीरिक विकास में भी पंगु रह जाते हैं। फिसड्डी बच्चों में शारीरिक रोग तो होते ही हैं किन्तु उसमें संगति का भी कम प्रभाव नहीं होता। जब बालक में मानसिक न्यूनता होती है तो उसकी बुद्धि मन्द पड़ जाती है, तब शारीरिक दुर्बलता उसके पिछड़ने का एक सहायक कारण हो जाती है।

ऐसे मन्दबुद्धि के बालकों को बड़ी सहानुभूति से पढ़ाने की आवश्यकता है। इनके लिए एक पृथक् कक्षा होनी चाहिए और प्रत्येक बालक पर पृथक् ध्यान देना चाहिए, जिससे प्रत्येक क्षेत्र की न्यूनता पूर्ण हो जाय। सहानुभूति, जिम्मेदारी एवं प्रशंसा से हम कितने ही मन्दबुद्धि बच्चों को पूर्ण मनुष्यत्व प्राप्त करने में मदद कर सकते हैं। इस तत्त्व का ध्यान रहे कि बच्चे की हिम्मत सदैव बढ़ती रहे, उसे निरन्तर प्रोत्साहन, उत्साह, सहानुभूति मिलती रहे। स्कूल में घर जैसा वातावरण बन जाय।

अनेक छोटे-छोटे बालक हीन बुद्धि होने के कारण अपराध करते हैं। कुछ दूषित वातावरण के शिकार होते हैं, कुछ को भयंकर ताड़ना, सजाएँ मिली हुई होती हैं। अतः उनकी प्रेरणा निन्दनीय कामों की ओर हो जाती है। शरारती बच्चों में ये ही छिपी हुई अव्यक्त क्रियाएँ प्रकट हुआ करती हैं। अपराधी बच्चों की अन्य शक्तियाँ प्रायः अत्यन्त विकसित होती हैं, जिनकी पर्याप्त वृद्धि द्वारा उनका यह स्वभाव दोष मूल से मिटाया जा सकता है।

बच्चे का भी हमारी तरह एक व्यक्तित्व है। अतः जिस कुटुम्ब में बालक बड़ा होता है, उसका प्रभाव उसके विकास पर अधिक पड़ता है। यदि बच्चे की मानसिक शक्तियों के विकास के लिए योग्य वातावरण का सृजन किया जाय, तो बचपन से ही बालक की शक्तियाँ विकसित होनी प्रारम्भ हो जाएँ और अवस्था के साथ-साथ बढ़ती जावें। जिन-जिन मानसिक शक्तियों के अनुकूल संगति और परिस्थितियों में बच्चा रहता है, वे शक्तियाँ उसमें उत्पन्न होती तथा विकसित होती हुई दिखाई देती हैं। सुखी दम्पत्ति के शिशु बड़े सन्तुष्ट एवं सुखी रहते हैं। उनके मुख पर संतोष की छटा रहती है।

बच्चे ढीठ तथा जिद्दी अधिक प्रेम के कारण हो जाते हैं। अतः प्रेम करते समय संयम, सीमा तथा उचित-अनुचित का सदैव ध्यान रखना चाहिए। इसी प्रकार अधिक डाँटने-फटकराने से भी बच्चे के 'अहं' भाव पर भयंकर ठेस लगती है।

चौदह वर्ष पश्चात् बालक युवा हो जाता है और यौवन की कुछ अस्पष्ट तरंगें उसके मनःप्रदेश में उद्वेलित होने लगती हैं। वह अपने आपको प्रकट करने के लिए शृंगार करता, गाता-बजाता, सिगरेट पीता फिरता है। वह अपने आपके साथ, साथी या मित्र जैसा व्यवहार चाहता है। उसकी दबी हुई इच्छाएँ क्रमशः निकलनी शुरू होती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। इस अवस्था में जो मानसिक एवं शारीरिक परिवर्तन होते हैं, उनके अनुसार ही व्यवहार होना चाहिए।

ऐसा नव-युवक सहानुभूति की आकांक्षा करता है तथा जो कोई सहानुभूति प्रदर्शन करता है, उसी का चिरदास हो जाता है। किन्हीं बच्चों में अतृप्त कामेच्छा उत्तेजित होकर भयंकर उत्पात मचाती है और वे निम्न पथों में पड़कर जीवन बिगाड़ लेते हैं। अतः माता-पिता को चढ़ती जवानी में सदैव सतर्क रहना चाहिए। कामवासना का जाग्रत होना स्वभाविक है। इसे दबाने के स्थान पर निकलने के नए अवसर देने चाहिए—चित्रकारी, संगीत, कविता, व्यायाम, आदर्श जीवन में प्रवेश करा सकते हैं। कितने ही युवा कामवासना के प्रकाशन को भयंकर पाप समझकर आत्मग्लानि के शिकार रहा करते हैं। पाप की कल्पना से वे इतने चिंतित रहते हैं कि यह कारण हीनत्व की भावना ग्रन्थि निर्माण कर देता है, जो उन्हें सदैव कष्ट देती रहती है। माता-पिता को अपना उत्तरदायित्व समझकर युवा से व्यवहार करना चाहिए।

बच्चों के सद्गुण जगाये और बढ़ाये जाएँ

हम सब सामाजिक व्यक्ति हैं। हमारे बच्चे भी सामाजिक व्यक्ति हैं, यह ठीक है कि आज वे समाज में उस तरह से नहीं बरत रहे हैं, जिस प्रकार से हम सब। वे अभी पारिवारिक ही अधिक हैं तथापि उनका इस समय भी एक समाज है, बाल समाज, जिसमें वे उसी प्रकार कुछ भिन्नता के साथ व्यवहार करते हैं जिस प्रकार हम प्रौढ़जन अपने प्रौढ़ समाज में करते हैं। फिर जल्दी ही उन्हें पूरा सामाजिक बन ही जाना है। जल्दी ही वे सामाजिकता का अर्थ जानेंगे और उत्तरदायी नागरिक होकर कर्मक्षेत्र में उतरेंगे। सफल नागरिक बनकर समाज में रहना ही नागरिकता है। दूसरों की प्रतिष्ठा का मार्ग प्रस्तुत करते हुए अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखना एक सच्चे नागरिक का मुख्य लक्षण है। जो नागरिक अपनी प्रतिष्ठा खो बैठते हैं वे दूसरों की प्रतिष्ठा भंग करने की कुत्सित प्रवृत्ति के शिकार बन जाते हैं। जो स्वयं प्रतिष्ठित हैं, वही दूसरे की प्रतिष्ठा का मूल्यांकन कर सकता है। अस्तु, हम सब अभिभावकों का कर्तव्य है कि बच्चों में अभी से प्रतिष्ठा का भाव बढ़ाने में सहयोग करें। बच्चों को ऐसे गुण और ऐसी परिस्थितियाँ दें जिससे कि उनकी प्रतिष्ठा बढ़े, वे उसका मूल्य समझें, आगे-आगे चलकर भी उसकी रक्षा करते हुए एक सफल नागरिक सिद्ध हों।

प्रतिष्ठा का सबसे बड़ा आधार है—सद्गुण। धन-वैभव, जमीन-जायदाद, व्यापार-व्यवसाय, सम्पन्नता, सुविधा-साधन अथवा दल-बल को प्रतिष्ठा का हेतु मानने वाले भूल करते हैं। यह सब चीजें तो दुष्ट तथा दुराचारी व्यक्ति को भी मिल जाती हैं, किन्तु इससे वह प्रतिष्ठा का अधिकारी नहीं बन जाता। दुर्गुणी व्यक्ति कितना ही धनवान अथवा बलवान क्यों न हो प्रतिष्ठा का अधिकारी नहीं हो सकता। उसके प्रति मान-सम्मान, आदर-सत्कार का भाव या तो नहीं दिखला सकता है जो स्वयं उस जैसा ही दुर्गुणी होगा अथवा कोई स्वार्थी चाटुकार कोई भद्र पुरुष तो दुष्ट का सादर नहीं कर सकता कि वह कितना ही बलवान अथवा धनवान क्यों न हो ?

सच्ची प्रतिष्ठा का आधार सद्गुण ही माने गये हैं। ऐसे एक नहीं हजारों सत्पुरुष संसार में हुए हैं और आज भी हैं, जो धन के दृष्टिकोण से कुछ भी न होते हुए भी गुणों के कारण समाज ने जिनको सदा सिर आँखों बिठाया है। इसलिए प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए बच्चों को धनवान बनाने की अपेक्षा गुणवान बनाने की ओर अधिक ध्यान दीजिए।

बच्चों को गुणों में सबसे पहला गुण सिखाइए शिष्टता। शिष्टता बच्चों का वह दिव्य अलंकार है जो उनको अत्यधिक आकर्षक बना देता है। सबसे विनम्रतापूर्वक मीठी बोली बोलने वाले, गुरुजनों का यथायोग्य आदर करने वाले बच्चे सबको प्यारे लगते हैं। जो भी उन्हें देखता है प्रसन्न हो उठता है। उनकी मुस्कान भरी मीठी बोली सुनने के लिए उन्हें विरमा लेता है। उनसे अच्छे-अच्छे प्रश्न पूछकर प्यारे-प्यारे उत्तर सुनने के लिए उत्सुक रहता है। मुँह पर उन्हें शाबाशी देता है, पीठ और सिर पर हाथ फेरता है, पीछे सराहना करता है और दूसरे बच्चों को वैसा बनने की प्रेरणा देता है। शिष्ट बच्चे सबके लिए आकर्षक, श्लाघ्य तथा प्यारे होते हैं। यही लोकप्रियता बच्चों की प्रतिष्ठा है, जिसे दिलवाने के लिए अभिभावकों को उन्हें शिष्टाचार के साँचे में ढालना चाहिए।

दूसरा गुण उन्हें परिश्रम तथा परोपकार का दीजिए। परिश्रमी बच्चे स्वस्थ रहते हैं—एक बात, दूसरे वे आलसी न होने से आज्ञाकारी भी होते हैं। उनमें स्फूर्ति, ताजगी तथा प्रसन्नता बनी रहती है, जिससे वे न केवल मन लगाकर पढ़ते ही हैं बल्कि सहज ही अपने पाठों को हृदयंगम भी कर लेते हैं। जो बच्चे पढ़ने में तेज हों, तुरन्त आज्ञा का पालन करने वाले हों, वे किसका हृदय न जीत लेंगे ? सम्पर्क में आने वालों की सद्भावना पा लेने वाले बच्चे प्रतिष्ठित ही माने जाएँगे।

बच्चों का परोपकार उनकी सेवा-भावना में ही निहित रहता है। उनके लिए जरूरी नहीं कि वे दानी हों, जरूरी नहीं है कि आवश्यकता के स्थानों में जाकर शारीरिक अथवा आर्थिक परोपकार करें, नंगों को वस्त्र एवं भूखों को भोजन दें। बच्चे इस स्थिति में नहीं होते। उनका परोपकार तो दूसरों की सेवा ही माना गया है। घर में गुरुजनों की सुविधा का ध्यान रखना। छोटे भाई-बहिनों को साफ-सुथरे रहने तथा पढ़ने-लिखने में सहायता करना, अपने निर्धन साथियों को समय-समय पर अपनी पुस्तकें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उधार दे देना। उनका पाठ तैयार करा देना अथवा कोई अस्वस्थ हो गया है तो उसकी देख-रेख तथा परिचर्या करना आदि वे सेवाएँ हैं, जो उनका परोपकार ही माना जायेगा। बाजार जाते समय पड़ोस की नानी, दादी, ताई अथवा किन्हीं वृद्धजनों का सौदा ला देना, छोटे बच्चों को साथ लेकर स्कूल पहुँचा देना अथवा जो बच्चे स्कूल नहीं जा पाते, उन्हें थोड़ा-बहुत पढ़ा देना उनका परोपकार ही है। बच्चों का यह परोपकार उन्हें कितनी प्रतिष्ठा दिला सकता है इसका अनुमान तो तभी लग सकता है जब हमारे बच्चे वैसे बनें और वैसा करते दिखलाई दें। परोपकारी बालक एक स्थायी स्वभाव तथा स्थिर प्रतिष्ठा सहज ही अर्जित कर लेते हैं, जो आगे चलकर भी उनके साथ बनी रहती है, जो उनके सफल नागरिक बनने में सहायक होती है।

बच्चों की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए उन्हें स्वच्छता तथा व्यवस्था का गुण दीजिए। शिष्ट, सदाचारी तथा सेवा-भावी बनाने पर भी यदि आप उन्हें स्वच्छता तथा व्यवस्थाप्रिय न बना सके तो मानिए उनको बहुत कुछ देकर भी न दिया। जहाँ उनके अन्य गुण उनके अंक बढ़ायेंगे, वहाँ गन्दगी तथा असभ्यता उनके नम्बर कटवा देगी। गन्दे आदमी से कोई सेवा भी लेने को तैयार नहीं होता। गन्दे बच्चे गुणी होने पर भी कम ही पसन्द किये जाते हैं। अव्यवस्थित स्वभाव के बच्चों से अनुशासनहीनता हो जाने का भय रहता है। सब कुछ अच्छा करते हुए भी उन्होंने यदि भूल से भी कोई अनुशासनहीनता कर दी तो सारे किये कराये पर पानी फिर जायेगा। अव्यवस्थित अथवा अस्त-व्यस्त बालक से काम लेते भी डर लगता कि कहीं यह काम बनाने के बजाय बिगाड़ न दें। यदि सेवा-भाव से किया हुआ किसी का काम बिगड़ जाये तो बड़ी हानि होती है। अच्छाई में बुराई पैदा हो जाती है। लोग यही समझते हैं कि यह तो बेगार टालता है अथवा काम बिगाड़ने के लिए ही सेवा का नाटक करता है। यह भयानक अपवाद होगा। इससे बच्चे की प्रतिष्ठा बढ़ने की जगह वह दूसरों की नजरों से गिरेगा ही। अस्तु, उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाने की दिशा में उन्हें स्वच्छता तथा सुव्यवस्था का गुण देना एक बड़ी सहायता है।

जो अभिभावक अपने बच्चों का सम्मान स्वयं नहीं करते उन्हें या तो महत्त्वहीन समझकर तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं अथवा उनकी उपेक्षा करते हैं; वे समाज में भी उनकी उपेक्षा की भूमिका बना देते हैं और तो और उसके समीपस्थ साथी तथा सहपाठी तक यह कहकर व्यंग्य करते रहते हैं—क्या बातें बनाते हो दिनभर तो घर पर धुत्तेरे की होती रहती है, कोई दो कौड़ी का पूछता नहीं छोटे भाई वह तक किसी गिनती में नहीं लाते और यहाँ हम सबके बीच शान दिखाते हो। यह बात तो उनके सामने करो जो तुम्हारी दशा जानता न हो, अभिभावकों से अनाहत बच्चे समाज में अनायास ही अन्नहत हो जाते हैं। लोग यह समझकर उनका उपहार नहीं करते कि जरूर ही इसमें कोई दुर्गुण होंगे तभी तो घर पर इसका कोई आदर नहीं होता। बच्चों को अपनी औलाद और उसके नाते अपने से तुच्छ समझकर अनाहत नहीं करना चाहिए इससे उनकी अप्रतिष्ठा होती है। बच्चों की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए स्वयं भी उनका उचित सम्मान करिए। उनके स्वभाव, सद्व्यवहार, उनके अधिकारों की रक्षा तथा जिनके साथ प्रेम-पूर्वक बोलना ही उसका आदर है जो हर अभिभावक को करना ही चाहिए। जो अभिभावक स्वयं अपने बच्चों का सम्मान करते हैं, उनका तिरस्कार करने का साहस बाहर वाले नहीं कर सकते। माता-पिता तथा भाई-बहिनों से आदर पाये हुए बच्चे साथियों की दृष्टि में अनायास ही ऊँचे उठ जाते हैं और वे प्रभावित होकर उनका आदर करने लगते हैं। "घर आदर तो बाहर भी आदर" वाले सिद्धान्त को ध्यान में रखकर सभी अभिभावकों को अपने बच्चों का समुचित सम्मान करना चाहिए।

किसी का आदर, सम्मान उसकी संगति के आधार पर भी होता है। जिसकी संगति खराब है, वह बुरा बनेगा और जो बुरा है उसको प्रतिष्ठा पाने का अधिकार भी क्या हो सकता है ? कुसंग वाला बच्चा जहाँ भी जायेगा लोग उसे दूर रखने की कोशिश करेंगे। न कोई ठीक से बात करेगा और न उसकी किसी बात की ओर ध्यान दिया जायेगा। उसके द्वारा किया हुआ कोई अच्छा काम भी मान्यता से वंचित रह जाता है। एक बार यदि वह स्वयं खराब न भी हो तब भी लोग संगति के कारण उस पर विश्वास न करेंगे। सभी लोग उसका अपने बच्चों के साथ मिलना-जुलना नापसन्द करेंगे। अपने बच्चों को उसके साथ खेलने से मना करेंगे और उसके आने पर आपत्ति करेंगे। कुसंग अप्रतिष्ठा का बहुत बड़ा कारण है। इसमें बच्चों को अवश्य ही बचाये रखना चाहिए। बच्चे की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए आपका कर्त्तव्य है कि आपसे अच्छे साथी चुन सकने में मदद दीजिए। ऐसे परिवारों से सम्पर्क करिये जिनके बच्चे सज्जन तथा शिष्ट हों। ऐसे परखे हुए बच्चों को घर पर प्यार से बुलाइये जो पढ़ने-लिखने में तेज तथा अपने माता-पिता द्वारा शुभ संस्कारों में ढाले गये हों। इस प्रयत्न से आपके बच्चों का सम्पर्क अच्छे बच्चों के साथ हो जायेगा। बच्चों को कुसंग-सुसंग की हानि-लाभ बतलायें और इस बात की प्रेरणा दें कि ऐसे बच्चों से ही मित्रता करें, जो सभ्य तथा सुशील हों। सुसंगत से ही मनुष्य गुणवान बनता है और गुणों के आधार पर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है। एक बार व्यक्तिगत रूप से खराब आदमी भी अच्छी संगत, ऊँचे तथा महान मित्रों की आड़ में सम्मान का भागी बन जाता है। अस्तु, बच्चों की प्रतिष्ठा के लिए उनको उचित साथी चुन सकने में मदद देने से प्रमाद न करें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए उसके साथियों से प्यार भरा व्यवहार करना चाहिए। बहुत-से अभिभावकों को अपने बच्चों के साथी देखे नहीं भाते। यदि उनमें से कोई घर आ जाता है तो उनकी आवाज में नाराजगी तथा दृष्टि में तीक्ष्णता आ जाती है। बच्चे के साथी से प्यारपूर्वक बोलना तो दूर उसका अभिवादन स्वीकार करने का भी शिष्टाचार नहीं करते। यदि कोई बच्चा साथी को पूछने आ जाता है तो उसे ऐसे कर्कश तथा तीखा उत्तर देते हैं कि बेचारे का दिल टूट जाता है और रोता हुआ-सा वापस चला जाता है। ऐसे कठोर एवं अशिष्ट अभिभावकों के बच्चे साथियों द्वारा सम्मान नहीं पाते। कभी-कभी बदलने में उनके अभिभावकों से कर्कश व्यवहार भी पा जाते हैं। कर्कश अभिभावक बच्चों की प्रतिष्ठा के बड़े गहरे दुश्मन होते हैं। जो अभिभावक बच्चों के मित्रों को उनकी तरह ही प्यार करते हैं, उनको वात्सल्य देते हैं, उनका हित-चिन्तन करते हैं, उनके बच्चों का सर्वत्र सम्मान होता है। साथी माता-पिता के सद्व्यवहार से परिप्लावित होकर साथी को सिर आँखों चढ़ा लेते हैं। इसलिए बच्चे का सम्मान बढ़ाने के लिए अभिभावकों को चाहिए कि वे उसके साथियों से सदा व्यवहार ही करें। थोड़ा-सा प्रेम, थोड़ी-सी सद्भावना और थोड़ी-सी धुरता लिए दो ममत्व भरे शब्द किन्हीं साथियों को ओत-प्रोत करने के लिए पर्याप्त हैं। ऐसा करने से पास से क्या जाता है ? हर कोई कर ही सकता है।

माता-पिता के आचार-व्यवहार और घर के वातावरण का, बच्चों की प्रतिष्ठा, अप्रतिष्ठा से बड़ा गहरा सम्बन्ध है। जिनके माता-पिता सदाचारी, सज्जनोचित व्यवहार और ऊँचे व्यवहार वाले होते हैं और जिनके घरों में सदा शान्ति बनी रहती है सब सबसे प्रेम रखते, मिल-जुलकर रहते हैं उनके बच्चों को समाज में अनायास ही प्रतिष्ठा मिल जाती है। जिनके माता-पिता असहायों जैसा व्यवहार करें, अस्त-व्यस्त दशा में रहते परस्पर लड़ते-झगड़ते और गाली-गलौज करते रहते हैं, उनके बच्चों का भी सम्मान नहीं होता। बच्चों को प्रतिष्ठित बनाने के लिए अभिभावकों को चाहिए कि वे अधिक से अधिक अच्छे बनें। समाज में उनकी प्रतिष्ठा रहे।

बच्चे भी सामाजिक होते हैं। उनका भी एक समाज होता है—बाल समाज। उनकी भी अपनी प्रतिष्ठा-अप्रतिष्ठा होती है इसलिए हर प्रकार से यह प्रयत्न करना चाहिए कि बच्चों की प्रवृत्ति प्रतिष्ठा बढ़े, वे गुण तथा गौरववान बनें। यह हम सब अभिभावकों का केवल कर्त्तव्य ही नहीं, बल्कि उत्तरदायित्व भी है जिसे निभाना ही चाहिए।

बच्चों का निर्माण— आवश्यक सावधानियाँ

बच्चा घर में शैतानी करता या उद्दण्डता बरतता है तो माँ अक्सर कहती है—"आजकल मास्टर लोग स्कूलों में पढ़ाते तो हैं नहीं, यों ही निठल्ले बैठे रहते हैं और विद्यार्थियों पर कोई ध्यान नहीं देते। इसीलिए तो देखो न, लड़का कैसी-कैसी शैतानियाँ करना सीख गया है।" दूसरों पर दोषारोपण कर, स्वयं को निर्दोष साबित करने की प्रवृत्ति हर जगह पाई जाती है। कई मामलों में दूसरे दोषी हो भी सकते हैं, पर बच्चों के सम्बन्ध में ऐसा कहना एकदम अपनी लापरवाही का शर्मनाक परिचय देना है क्योंकि बच्चा जो कुछ सीखता है, उसका अस्सी प्रतिशत भाग घर में ही पाया हुआ होता है। वैसे भी बच्चा चार-पाँच घण्टे से अधिक स्कूल में नहीं रहता और शेष सारा समय घर में—माता-पिता के संरक्षण में व्यतीत करता है। पिता भी उपार्जन, निर्वाह-व्यवस्था के लिए अपना अधिकांश समय बाहर ही गुजारता है, इसलिए अधिक जिम्मेदारी माता पर ही आती है।

अधिक ही नहीं, बल्कि पूरी कही जा सकती है। अब तक हुई मनोविज्ञान की शोधों से यह निश्चित हो चुका है कि छह वर्ष की आयु तक बच्चे के सम्पूर्ण जीवन का आधार बनकर तैयार हो जाता है। इस उम्र तक वह जिन परिस्थितियों से भी गुजरता है, जैसी शिक्षा और संस्कार ग्रहण करता है, जिस तरह के वातावरण में रहता है, तदनुसार ही उसके जीवन की दिशा और प्रवृत्ति निर्धारित होती है और छह वर्ष की आयु तक बच्चा पूरी तरह माता के संरक्षण-सान्निध्य में रहता है। अतः स्वयं सिद्ध है कि कोई व्यक्ति अच्छा, सच्चरित्र और ईमानदार है तो उसका अधिकांश श्रेय उसकी माँ को जाता है और कोई व्यक्ति बुरा, चरित्रहीन, बेईमान तथा निन्द्य-प्रकृति का है तो उसके लिए ज्यादातर दोषी उसकी माँ है।

असंस्कृत घरों में बच्चा बाहर से किसी की कोई वस्तु उठाकर लाता है और उसकी इस हरकत पर ध्यान नहीं दिया जाय तो बहुत सम्भव है कि बच्चा आगे चलकर चोर बन जाये। झूठ बोलने वाले बच्चे बेईमानी, दूसरों के साथ मार-पीट करने और उनकी वस्तुएँ छीन लेने वाले बदमाशी तथा उच्छृंखलता की दिशा प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे अनेकों उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनमें छोटी-छोटी बातें चरित्र का बहुत बड़ा दोष बन जाती हैं। उस चोर का उदाहरण कई बार दिया जाता है, जिसने पकड़े जाने पर अपनी बूढ़ी माँ को बहुत बुरी तरह फटकारा था। वस्तुतः व्यक्ति का भविष्य उसके बचपन से ही आँका जा सकता है कि वह आगे क्या बनेगा और उसका स्वभाव कैसा रहेगा ? और इस सबका श्रेय अथवा दोष माता पर आता है। इसीलिए कहा गया है कि माँ न केवल बच्चे की जन्मदात्री है, वरन् उसकी निर्मात्री भी है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने बच्चों को अच्छा, सच्चा और श्रेष्ठ व्यक्ति बनाने के लिए माता का समझदार और सुशिक्षित होना जरूरी है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि माँ के अतिरिक्त शेष सभी सदस्यों को चाहे जिस ढंग से रहना चाहिए। बच्चे के निर्माण में माता की भूमिका प्रथम है अवश्य, हर परिवार में अन्य सदस्य भी होते हैं, जिनसे कि घर का वातावरण बनता है। उनके रहन-सहन, व्यवहार और बोलचाल का भी बच्चों पर निश्चित प्रभाव पड़ता है। इसलिए माँ के सुशिक्षित, समझदार और सुसंस्कारी होने के साथ-साथ परिवार के अन्य सदस्यों को भी अपना रहन-सहन तथा प्रवृत्ति नियन्त्रित और अनुशासित रखना चाहिए।

लेकिन गिने-चुने परिवारों को छोड़कर अधिकांश घरों में बच्चों के निर्माण को लेकर न गम्भीरता से कुछ सोचा जाता है और न सावधानीपूर्वक कोई ध्यान दिया जाता है। यही कारण है कि एक ओर जहाँ पुरानी रूढ़ियाँ, कुरीतियाँ, अन्धविश्वास, संकीर्ण और हानिकारक रीति-रिवाज समाप्त होने लगे हैं, वहीं दूसरी ओर बच्चों के आवारा बनने, घर से भाग जाने, शैतानियाँ करने तथा उच्छृंखलता, उद्दण्ड होते जाने की शिकायतें भी बढ़ती जाती हैं। घर में जब कभी माता-पिता अपने बच्चों की शिकायतें सुनकर आपस में चर्चा करते हैं तो माँ, पिता को इसका कारण बताती है और पिता, माँ को। कई बार इस प्रकार भी एक-दूसरे पर दोषारोपण किया जाता है—लड़का ठीक तुम पर गया है।

स्मरणीय है, बच्चे के व्यक्तित्व में न केवल माता का हाथ है और न केवल वह पिता की प्रकृति है, वरन् बच्चा दोनों के व्यक्तित्व और स्वभाव का संगम-समन्वय है। कहा जा सकता है कि माता-पिता तो अपने-अपने काम में व्यस्ततापूर्वक रहते हैं या घर में ही रहते हैं। फिर आवारा हो जाने वाले बच्चे आवारागर्दी कहाँ से सीख लेते हैं ? दरअसरल बच्चों का मन जब घर के वातावरण से वितृष्ण हो उठता है तो वे अपना सन्तोष बाहर खोजने लगते हैं। इस वितृष्णा का कारण प्रमुख रूप से घर का वातावरण कलहपूर्ण होना है। घर के सदस्य आपस में मनमुटाव रखते हों या माता-पिता में रोज तनाव पैदा होता हो तो इस कारण होने वाले कुहराम अथवा सूनेपन से बच्चे भयभीत हो उठते हैं और वे इस वातावरण से यथासाध्य अलग रहने की कोशिश करते हैं। एक तो यह विलगाव तथा दूसरे घरेलू वातावरण का संस्कार उन्हें आवारा-उद्दण्ड बना देता है।

बच्चों के कुमार्गगामी होने की परिस्थितियाँ माता-पिता के स्वभाव में रहने वाली त्रुटियों से भी बनती हैं। यह तो सभी जानते हैं कि बच्चे अनुकरण से सीखते हैं। पिता में सिगरेट पीने या मदिरापान करने की आदत होती है तो बच्चे भी स्वाभाविक ही दुर्व्यसनी होंगे। माँ झूठ बोलती हो या परिवार के बुजुर्ग सदस्यों का निरादर करती हो तो बच्चों में भी अशिष्टता और उद्दण्डता जन्मेगी। माता-पिता की प्रत्येक प्रवृत्ति का बच्चों के अपरिपक्व मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है और वे बेरोक-टोक अपने माता-पिता की अनुकृति बन जाते हैं।

प्रायः घर के वयस्क सदस्य बच्चों को योग्य और सच्चरित्र बनाने के लिए, मेहनती व लगनशील बनाने के लिए तरह-तरह से प्रेरित किया करते हैं। पर यदि स्वयं उसके विपरीत आचरण किया जा रहा हो तो किये गये सारे प्रयास व्यर्थ चले जाते हैं। स्वभावतः अनुकरणप्रिय बच्चा अपने पिता को सिगरेट पीता देखकर समझता है कि यह अच्छा काम है, क्योंकि उसके लिए तो घर के लोग ही आदर्श हैं और वह भी सिगरेट पीने अथवा माता-पिता की दूसरी गन्दी आदतों का अनुकरण करने लगता है। डाँट-डपट कर उन्हें मना लिया जाता है तो वे चोरी-छुपे करने लगते हैं और समझाया-बुझाया जाता है तो उनके मन में यह प्रश्न उठता है कि जब यह काम खराब है तो ये लोग क्यों कर रहे हैं ? कई बच्चे पूछ भी उठते हैं और उस समय अभिभावक निरुत्तर हो जाते हैं।

कई बार घर के बड़े लोग बच्चों के साथ अकारण ही मारपीट या डाँट-डपट कर बैठते हैं। कितने ही लोगों के लिए वह प्रेम जताने का ढंग भी है। वे बच्चों को रुला देते हैं और फिर उसे चुप कराते हुए समझाते हैं कि हम तो तुम्हें प्यार कर रहे थे। जिन लोगों के लिए यह आदत स्वभाव का अंग-सी बन चुकी हो, उनको तो इसमें कोई खास बात नजर नहीं आती। लेकिन विचारशीलता की दृष्टि से देखा जाय तो इससे अधिक अविवेकग्रस्तता कोई दूसरी नहीं दिखाई देगी। स्नेह-दुलार को दुश्मनी की तरह व्यक्त करना या फटकार कर प्रेम जताना कहाँ की संगति रखता है ?

बच्चे अपनी सामर्थ्य भर तो इस विचित्र स्नेह प्रदर्शन का प्रतिरोध करते ही हैं, क्योंकि इससे उन्हें कष्ट होता है। पर समझने वे भी यही लगते हैं कि प्रेम-प्रदर्शन इसी प्रकार होता है और वे भी अपने से छोटे बच्चों को तंगकर उसी तरह की स्नेहाभिव्यक्ति करने लगते हैं। बच्चों में झगड़ालू प्रवृत्ति का जन्म यहीं से होता है। दूसरों को पीड़ित करने में आनन्दित होने की प्रवृत्ति हिंसक ही कही जा सकती है और किसी भी कोण से हिंसा तथा प्रेम का तालमेल नहीं बैठता। नाम उसे 'प्रेम' क्यों न दिया जाय, पर वह प्रेम नहीं होता और हिंसा का, उत्पीड़क व्यवहार का प्रभाव भी उसी रूप में होता है। इस तरह का व्यवहार भुगत चुके बच्चों के झगड़ालू बन जाने पर कोई आश्चर्य नहीं किया जाना चाहिए।

गलतियाँ करने पर बच्चों की पिटाई भी की जाती है। वैसे तो पिटाई करना मात्र बच्चों के मन में हीनता या कुण्ठा की ग्रन्थियाँ बनाता है। अकारण जब पीटा जाता है तो वह और भी ज्यादा हानिकारक होता है। ऐसे में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन्हें यह समझाना कि हम बड़े हैं, इसलिए तुम्हें पीट सकते हैं—उन्हें दूसरे बच्चों के साथ मार-पीट करने को उकसाता है। जब वे दूसरे छोटे बच्चों के साथ मार-पीट करते हैं, तो भी उन्हें डाँटा-फटकारा जाता है। इस तरह उन्हें हर बात में डराने, दबाकर रखने का कोई अर्थ समझ में नहीं आता। या तो हम उन्हें निर्जीव खिलौना समझकर यह व्यवहार कर रहे होते हैं अथवा दुर्बल को दबाने की नीति बरतते होते हैं। दोनों ही अर्थों में बच्चों के निर्माण की भावना का चिह्न कहाँ दिखाई देता है ? सिद्ध यही होता है कि बच्चा होने के नाते उन्हें मनमाने ढंग से तोड़ा-मरोड़ा जाता रहता है और इसका दुष्प्रभाव उन्हें कभी भी अच्छा नागरिक तथा सुयोग्य व्यक्ति नहीं बनने देता। उनके लिए जीवन भर चलने वाली दौलत इकट्ठी करके भी हम छोड़े जा रहे हों, तो भी इस तरह हम उनके साथ दुश्मनी ही बरत रहे होते हैं, क्योंकि इससे उत्पन्न हुए बुरे संस्कार और कुप्रभाव उनमें सम्पत्ति के दुरुपयोग की सम्भावना को ही अधिक प्रबल बनाते हैं।

इसीलिए सन्तान के लिए उत्तराधिकार में सम्पत्ति छोड़ने की अपेक्षा उन्हें गुणवान और सच्चरित्र बनाना अधिक महत्त्वपूर्ण समझा गया है। उनके चरित्र का विकास अनुशासन पर निर्भर है। पर अनुशासन ऐसा न हो, जो वे ऊपर से लादा हुआ या जबरन अनुभव करें। वरन् उनमें ऐसी मनोभूमि का विकास किया जाय, जिससे कि वे गुणों का महत्त्व समझें और उन्हें अर्जित करने के लिए स्वेच्छया मर्यादाओं को निबाहें। स्मरणीय है, यह कार्य न कठोरता से सम्भव है और न क्रूरतापूर्ण दमन से। वरन् इसके लिए प्रेम और प्रोत्साहन की आवश्यकता है।

अपने बच्चों को सभी कोई चाहते हैं, उन्हें प्रेम करते हैं और प्रायः इसीलिए उन्हें दबाते या कठोरता भी बरतते हैं, पर इसके लिए विवेक का होना भी नितान्त जरूरी है। इसके अभाव में बच्चे प्रेम की अनुभूति नहीं कर पाते और न प्रोत्साहन ही पाते हैं। उदाहरण के लिए कई अभिभावक बच्चों में फिजूलखर्ची की प्रवृत्ति पैदा न होने देने के लिए उन्हें जेब-खर्च देना एकदम अनुचित समझते हैं। यदाकदा बच्चे माँगते भी हैं, तो उन्हें बुरी तरह डाँट देते हैं। लाड़-प्यार की अधिकता से बच्चों को अनाप-शनाप खर्च करने के लिए पैसा देना जितना बुरा है, उतना ही बुरा है—उन्हें खर्च करने के लिए एकदम कुछ भी न देना। अपने दूसरे साथियों को बाजार में खर्च करते देखकर बच्चों में वैसी ही ललक पैदा होना स्वाभाविक है। यदि उसे निर्दयतापूर्वक दबा दिया जाय तो बच्चों में असन्तोष का भाव आ जाता है। इससे बचने के लिए होना यह चाहिए कि उन्हें निश्चित जेब-खर्च देने के साथ-साथ खर्च करना भी सिखाया जाय। कहीं वह भूल के कारण अनुचित खर्च करता हो तो उसके लिए समझाया जाय।

कई बच्चे चिड़चिड़े और जिद्दी स्वभाव के होते हैं। बात-बात पर मचलना, जिद करना या रोना उनकी आदत बन जाती है। ऐसा तभी होता है, जबकि बच्चा अपने को उपेक्षित समझ रहा हो या उस पर समुचित ध्यान न दिया जा रहा हो। प्रायः बच्चों के लिए खाना खिला देना, नहला देना, कपड़े बदलना और स्कूल भेज देना ही पर्याप्त समझा जाता है। शेष समय माँ को अपने कामों से फुरसत पाकर बच्चों से बातचीत करने, उनके मनोरंजन का ध्यान रखने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती। ऐसी परिस्थितियों में बच्चा अपने को घर का महत्त्वहीन सदस्य मान लेता है और अपनी ओर ध्यान आकृष्ट करने को जिद करने लगता है।

बच्चे का घर महत्त्वपूर्ण अंग है। उनके साथ बातचीत करने, हँसने-बोलने के लिए पर्याप्त समय निकालकर कहानियों, नीति-कथाओं, अच्छी शिक्षाओं के साथ-साथ बाल-सुलभ जिज्ञासाओं का समाधान भी करना चाहिए।

बालकों की प्रत्येक गतिविधि पर निगाह रखें कि वह बाहर क्या करता है ? स्कूल में उसकी क्या प्रगति है ? कैसे लड़कों के साथ रहता है ? दूसरों के साथ वह कैसा व्यवहार करता है ? आदि बातों की जानकारी रखी जाय तो बच्चों में उत्पन्न होने वाली कितनी ही विसंगतियों का निपटारा किया जा सकता है। यह निगरानी गुप्तचर की तरह नहीं, वरन् मित्र की तरह हो और मित्र की भाँति ही उसे सही दिशा में अग्रसर होने की प्रेरणा दी जाती रहे।

इस प्रकार सजगता और सावधानी से बच्चों में अच्छे संस्कार उत्पन्न किये जाएँ तथा उन्हें सही दिशा दी जाय तो बच्चों के चरित्र, भविष्य और निर्माण की आवश्यकता एक बड़ी सीमा तक पूरी की जा सकती है तथा उन्हें योग्य नागरिक और सच्चरित्र व्यक्ति बनाया जा सकता है।

बच्चों का निर्माण उपदेश से नहीं आचरण से

किसी विचारक ने कहा है कि बच्चों की मनोभूमि एक रंगफलक की होती है, जिस पर अभिभावक अपने आचरण, व्यवहार और व्यक्तित्व की तूलिका से और कलाकारिता से कोई चित्र बनाते हैं। उसे यों भी कहा जा सकता है कि बच्चों का व्यक्तित्व जिस दिशा में भी मुड़ता है और जैसा जो कुछ बनता है, यह उसके अभिभावकों पर ही निर्भर है। यह निर्माण किन्हीं विशेष प्रयत्नों, रोक-टोक और सुझाव-निर्देशों के द्वारा नहीं अपने आचरण और व्यवहार के प्रभाव से ही होता है। बच्चों का मन तो एक कोरे कागज जैसा होता है जिस पर जो चाहा लिखा और जो चाहा वह अंकित किया जा सकता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। यह अभिभावकों पर निर्भर करता है कि वे अपने बच्चों को क्या बनाना चाहते हैं ? कैसा बनाना चाहते हैं ? और उसके लिए क्या करते हैं ?

यह निर्विवाद है कि बच्चों का व्यक्तित्व अपने समान ही ढलता और बनता है। इसलिए जिन्हें अपने बच्चों को सुसंस्कारी, सच्चरित्र बनाना है, उन्हें चाहिए कि वे इस तरह की व्यवस्था करें और अपने व्यक्तित्व के माध्यम से ही उनके व्यक्तित्व पर वैसा प्रभाव छोड़ें। खेत में लहलहाती फसल की सुरक्षा के लिए चतुर किसान उसके चारों ओर मेंड़ बाँधता, कँटीले तार लगाता और समय-समय पर उसकी पहरेदारी करता है। इतना करने पर कहीं जाकर फसल को वन्य पशुओं से बचा पाना सम्भव होता है। यदि खेत को यों ही बिना देख-रेख के छोड़ दिया जाए तो सारी फसल को चिड़िया, तोते, गिलहरियाँ, खरगोश और ढोर-ढंगर यों ही चर जायेंगे। भली-भाँति सुरक्षा का प्रबन्ध करने पर ही फसल जल से, वायु और सूर्य से पर्याप्त पोषण प्राप्त कर परिपक्व होने लगती है। इस क्रिया में जितना समय लगता है, उसमें किसान को कितनी दौड़-धूप करनी पड़ती है, श्रम और सावधानी बरतनी पड़ती है। बच्चे को भी एक सुकुमार पौधा कहा जा सकता है, जिसे जिधर चाहा मोड़ दिया।

बच्चे के व्यक्तित्व की पौध घर की चहारदीवारी में ही सुरक्षा पाती है और वहीं वह अपने जीवन विकास की आवश्यक सामग्री या कि पोषण अपने माता-पिता तथा अभिभावकों से प्राप्त करता है। वृक्ष की जड़ें अपने लिए आवश्यक जीवन-तत्त्व धरती से चूसती रहती हैं और बच्चा अपना बौद्धिक पोषण, व्यक्तित्व का आहार अपने अभिभावकों से प्राप्त करता है। सुकुमार स्थिति से बढ़कर पूर्ण नागरिक बनने तक बच्चे की सुरक्षा घर में ऐसी ही होती है जैसे किसान अपने खेतों की रखवाली करता है। इसलिए बच्चों के विकास में कई तरह की सावधानियाँ और सतर्कताएँ बरतना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी हो जाता है।

प्रायः सभी विचारकों, मनीषियों और ऋषि-मुनियों ने बच्चों को परमात्मा का स्वरूप बताया है। यह तो सभी जानते हैं कि उसमें निश्छलता, स्वाभाविक और प्रकृतिदत्त रूप में होती है। जाति-पाँति, भाषा भेद, ऊँच-नीच और आगे-पीछे का ज्ञान बच्चों में नहीं होता है। इन सभी दृष्टियों से उसे निर्दोष और आदर्श कहा जा सकता है। कमी होती है तो मात्र इतनी कि वह अबोध होता है और उसकी अबोधावस्था के लिए कारण यह माता-पिता पर निर्भर है कि वे चाहें तो उसे विकसित कर उच्च चरित्र वाला नैतिक सद्गुणों से सम्पन्न बनावें अथवा उसका समूल नाश कर दें। वह तो कोरा कागज है कि जिस पर चाहे काली स्याही से भौंड़ी आकृति बना दें और चाहें तो उस पर सुन्दर रंगीन कलाकृति चित्रित कर दें।

बच्चों को किस प्रकार सुविकसित व्यक्तित्व सम्पन्न, सद्गुणी और सच्चरित्र बनाया जाए इसके लिए किसी को अँगुली पकड़कर सिखाने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता स्वयं के माध्यम से ही उस पर अभीष्ट प्रभाव डालने की है। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध बाल मनोवैज्ञानिक आर्थर डिग्ले ने कहा है कि—"बालक उस पर अमल नहीं करता जो कुछ आप कहते हैं, बल्कि वह तो उससे सीखता है जो आप करते हैं।" यह अक्षरशः सत्य है।

परिवार का वातावरण अनिवार्य रूप से बच्चों को प्रभावित करता है। घर के लोगों का रहन-सहन कैसा है ? वह कैसे उठते-बैठते और व्यवहार करते हैं ? उनकी क्या आदतें हैं और स्वभाव कैसा है ? आदि बातें ही किसी बच्चे के व्यक्तित्व को अपने साँचे में ढालती हैं। घर के लोगों का स्वभाव उसके व्यक्तित्व को असामान्य रूप से प्रभावित करता है और वहाँ का वातावरण ही उन्हें अपने अनुरूप ढालता है। यही कारण है कि इतिहास में जितने भी महापुरुष हुए हैं, उनमें से दो-चार को छोड़कर शेष सभी अपने माता-पिता से ही प्रभावित हुए हैं। अपवादों की बात जाने दें तो यह ध्रुव सत्य है कि सुसंस्कृत, सुविकसित और सच्चरित्र दम्पत्ति ही उच्च मनोबल और उत्कृष्ट व्यक्तित्वसम्पन्न मेधावी बालकों का निर्माण करने में समर्थ हो सके हैं। ध्रुव, प्रह्लाद, श्रवणकुमार, भरत, लवकुश, कर्ण, अभिमन्यु, गोरा, बादल, फतेहसिंह, शिवाजी, गाँधी, तिलक, टैगोर जैसी विभूतियों को उनके विभूतिवान होने का प्रमाण छोटी आयु में ही देना केवल उनके अभिभावकों का ही पुण्य-प्रताप था। सती मदालसा ने जिस पुत्र के सम्बन्ध में चाहा कि वह बालक ब्रह्मविद्, आत्मवेत्ता बने तो वैसा ही हुआ और जब चाहा कि यह पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी बने तो उसे राजकुमार बना दिया। शकुन्तला को न तो राजकीय संरक्षण प्राप्त था और न ही वह महलों में रही थी। यहाँ तक कि प्रसव भी वन में हुआ किन्तु उसने अपने पुत्र को ऐसी शिक्षा दी कि एक दिन वहाँ सम्पूर्ण आर्यावर्त का स्वामी बना और उसी भरत के नाम पर, अपने देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

बच्चे गीली मिट्टी की तरह होते हैं। जिस साँचे में उन्हें ढाला जाता है वे वैसे ही बन जाते हैं और वैसा ही आदर्श प्रस्तुत करते हैं, किन्तु इसके लिए किन्हीं विशेष प्रयत्नों की आवश्यकता नहीं पड़ती। अपने व्यक्तित्व के माध्यम से ही उनमें वैसा प्रभाव उत्पन्न कर पाना सम्भव है। अपना आचरण और व्यक्तित्व भिन्न तरह का हो तथा बच्चे को भिन्न तरह का ढालने के लिए डाँट-डपट की जाए, मौखिक उपदेश, निर्देश दिए जाएँ तो उससे बच्चों में भय, विद्वेष, क्रोध और कटुता की भावनाएँ ही पैदा होती हैं। कहना नहीं होगा कि ये भावनाएँ बच्चों के जीवन निर्माण में हानिकारक प्रभाव डालती हैं। इससे उसका साहस विलुप्त हो जाता है और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिनोंदिन भय तथा कायरता की हीनता वृत्ति बढ़ती, पनपती जाती है। ऐसे बच्चों में सहयोग और सहानुभूति की भावनाएँ प्रायः नहीं ही पनप पातीं। परिणामस्वरूप वे अल्पविकसित और अविकसित ही रह जाते हैं और जीवन के किसी भी क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय प्रगति या सफलता प्राप्त नहीं कर पाते।

ऐसी संतति जो स्वभाव से ही दुर्बल, भीरु और कायर हो वह किसी समाज या राष्ट्र को कैसे सुदृढ़ और शक्तिशाली बना सकती है ? जो अपने व्यक्तिगत जीवन में ही किसी मसले को ठीक तरह से नहीं सुलझा पाते वे राष्ट्र निर्माण के महान दायित्व को कैसे वहन कर सकते हैं ? इसके लिए अभिभावकों को चाहिए कि वे बच्चों के सामने सही आचरण करना सीखें और अपने व्यक्तित्व के माध्यम से ऐसा आदर्श प्रस्तुत करें, जिससे कि उनका पथ-प्रदर्शन हो। अन्य प्रकार से उन्हें अभीष्ट दिशा में मोड़ने का प्रयास न केवल असफल होता है, अपितु उनके स्वाभिमान को भी आहत कर, बलपूर्वक किसी दिशा में लगाने का प्रयत्न किया जाए तो उनका स्वविवेक नष्ट हो जाता है और सही दिशा चुनने की मौलिक शक्ति का पतन हो जाता है।

बड़े लोगों में जो आदतें परिपक्व रूप में देखी जाती हैं, वस्तुतः उनके बीज बचपन में घर के लोगों द्वारा ही बो दिए गए होते हैं। घर के वातावरण में यदि अशुभ संस्कारों का, हानिवृत्तियों का कुटिल आचरण और क्लेश-कलह का वातावरण है, परिवार के समझदार सदस्य ऐसी ही दुष्प्रवृत्तियों से घिरे हुए हैं तो बच्चों में विकसित और सुसंस्कृत बनने की सम्भावनाएँ क्षीणतर ही हो जाती हैं। अतः चाहिए कि परिवार के लोग शुभ-वृत्तियाँ अपनाएँ और अशुभ अवांछनीय दुष्प्रवृत्तियों का परिहार कर दें। इसी तरह के वातावरण में पले बच्चे ही सुन्दर आचरण विचार वाले बनते हैं। अस्तु, बाह्य संस्कारों के प्रभाव की प्रतीक्षा किए बिना परिवार के समझदार सदस्यों को अपने आन्तरिक सद्गुणों का ही विकास करना चाहिए। ताकि बच्चे भी उनका शुभ प्रभाव ग्रहण कर सकें।

बालकों के निर्माण में अभिभावकों के उत्तरदायित्व

प्रसिद्ध बाल-मनोवैज्ञानिक डा. ओनील ने बाल समस्याओं का वर्णन करते हुए अपनी पुस्तक में एक घटना उद्धृत की है। वे लिखते हैं—"एक दिन मेरे क्लीनिक में एक बच्चे को लाया गया। पिता ने कहा—इसे चोरी करने का दुर्व्यसन लग गया है। हमने तो पूरा प्रयास कर लिया, अब आप ही इसे छुड़वा सकते हैं।" डॉ. ओनील ने बच्चे को अध्ययन के लिए अपने पास रोक लिया। पता चला बच्चे की आयु १३ वर्ष थी। इसके बावजूद उसके पिता ने उसके लिए आधी टिकट खरीदकर रेलवे को जान-बूझकर धोखा दिया। उम्र पूछी जाने पर पिता ने उम्र कम बता दी। पिता की इस हरकत को बच्चे ने बड़ी गहराई से देखा और पूछा—तो पिता ने ऐसे ही हल्के से जवाब से बात समाप्त कर दी। बालक के मन में यह अन्तर्द्वन्द्व चलता रहा एवं उसने यह सोचा कि पिता ने सरकार की चोरी की व कोई गलत काम इसे नहीं माना। यहीं से उसकी चोरी की आदत आरम्भ हुई क्योंकि उसके विकसित हो रहे बालक मन ने उसे कभी अनैतिक-नैतिक सोचने पर मजबूर ही नहीं किया।

डॉ. ओनील लिखते हैं कि जो पिता स्वयं गलत काम करता है, वह अपने बच्चे से क्यों यह आशा रखता है कि वह चोरी की आदत छोड़ देगा। पिता व बच्चे दोनों की चिकित्सा एक साथ की गयी। पिता ने उसी मूल्य का टिकट खरीदा व फाड़ दिया। बच्चे ने बात का महत्त्व समझा व चोरी की आदत छोड़ दी।

रोजमर्रा के जीवन में हम देखें तो पता चलता है कि हम स्वयं ही जान-बूझकर या अनजाने में अपने बच्चे को झूठ बोलने की शिक्षा देते हैं। वह घटना तो चुटकुले के रूप में अक्सर याद की जाती है, जिसमें एक बालक ने आगन्तुक से कहा—"पिताजी कह रहे हैं कि अमुक आये तो कह देना घर में नहीं हैं वस्तुतः यहीं से बालक के मन में कुसंस्कार जड़ जमाना आरम्भ करते हैं। सत्य एक ऐसा गुण है जिसकी उपेक्षा-अवज्ञा यदि अभिभावकगण ही करने लगें तो बालक क्यों कर उसका महत्त्व समझेगा ? कभी-कभी तो हम दूसरों से नहीं स्वयं अपने बच्चों से भी झूठ बोल बैठते हैं, झूठे वायदे कर देते हैं और इस प्रकार उनके मन में यह बात बिठा देते हैं कि सत्य का कोई महत्त्व नहीं।

यह एकमात्र सामान्य बहुविदित तथ्य है कि विदेशों से आये माल की बाजार में बड़ी माँग रहती है। मूल्य चाहे भारत में बनी वस्तुओं से अधिक हो, हमारे देशवासी आयातित माल लेना अधिक पसन्द करते हैं। इसका एकमात्र उत्तर यही है कि उनके माल में सच्चाई है। जो भी कुछ बाहर लिखा है, वही अन्दर है। इसके विपरीत कतिपय, स्वार्थी, धोखेबाजों के कारण हमारी साख बुरी तरह गिरी है। सच्चाई का सौदा हर जगह प्रमाणिकता बढ़ाता है। अभिभावकगण भी इस सौदे में भाग लेकर अपनी अप्रामाणिकता के प्रचार को और बढ़ाते हैं तथा बच्चों को भी सिखाते हैं। बच्चों को सत्यनिष्ठ बनाने के लिए उन्हें यह विश्वास दिलाना होगा कि सच बोलने में, ईमानदारी बरतने में, सदाचारी रहने में किसी प्रकार की कुटिलता, होशियारी नहीं बरतनी पड़ती, जबकि झूठ बोलने वाला उसे छिपाने के लिए कई झूठ बोल जाता है—ठग, चोर, बेईमान बनता है। आवश्यक है कि बचपन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से ही सत्य बोलने की आदत डाली जाय। इसके लिए क्या किया जाय ?

पहली बात तो यह कि माँ-बाप स्वयं सच बोलें। झूठे माँ-बाप अपने बच्चों में सत्य के प्रति कभी आस्था नहीं पैदा कर सकते। महात्मा गाँधी ने सत्य का पाठ अपने पिता से ही पढ़ा। उनके पिता राजकोट रियासत में एक उच्च पदाधिकारी थे किन्तु सत्य बोलने के कारण उन्हें राजा का कोपभाजन बनना पड़ा और वे जेल भेज दिये गये। थोड़े दिनों बाद उन्हें छोड़ दिया गया। परन्तु सत्यनिष्ठ होने की उनकी ख्याति तब और फैल गयी। माँ-बाप के ज्वलन्त उदाहरण ने बालक मोहनदास में सत्य के प्रति ऐसी निष्ठा पैदा की कि उसने उसे अपने जीवन का एक अंग बना लिया।

दूसरी आवश्यकता यह है कि ऐसा वातावरण बच्चों को मिले कि वे सच्चाई को जीवन-नीति मानने लगें। दूसरे शब्दों में इसे सत्संग भी कह सकते हैं। आदर्श व्यक्तियों अथवा उनकी पुस्तकों के सतत् सम्पर्क में बच्चों को रखा जाय। बचपन से ही सत्यनिष्ठ महापुरुषों की कथा-गाथाएँ सुनाकर मदालसा व विनोबा की माँ की तरह हर माता अपनी सन्तानों में ये संस्कार डाल सकती हैं। बच्चे के संगी-साथी ऐसे हों जैसा कि माता-पिता अपने बच्चों को बनाना चाहते हैं। फैशनपरस्त, फिजूलखर्च, बात-बात में बहाना बनाने वाले बच्चों के साथ तो अपने बालक को रहने ही न दिया जाय।

सामान्यतया १४-१५ वर्ष की अवस्था में ही भटकाव आता है। उमंगों से भरी यह उम्र ऐसी होती है कि हर किशोर को जीवन का अच्छा-बुरा मजा चखने को प्रेरित करती है। इसमें उसे कोई गलत-अनैतिक बात नजर नहीं आती। नियन्त्रण इसी आयु में होना चाहिए। बच्चों की तर्कशक्ति व बहानेबाजी की कला इस आयु में कुछ बढ़ भी जाती है। इस अवस्था में कुछ कड़ाई करनी भी पड़े तो अवश्य की जानी चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं कि मनोरंजन का अवसर बच्चों को न दिया जाय। ऐसा जब भी अवसर आये उसे औचित्य-अनौचित्य भली-भाँति समझकर स्वस्थ मनोरंजन की ओर प्रेरित करें।

जब भी अवसर मिले सत्य बात कहने, सत्याचरण करने का उदाहरण प्रस्तुत करने व बच्चे ने जब भी कोई ऐसा आचरण किया हो, उसकी प्रशंसा करने में कंजूसी न की जाय। सार्वजनिक रूप से उसके कार्य की चर्चा की जाय एवं उपयोगी वस्तुएँ उपहार में दी जाएँ।

बच्चे प्रायः भय के कारण झूठ बोलते हैं। उन्हें यह समझा जाय कि भूलें तो सबसे होती हैं। ऐसे में अपनी कोई गलती की पुरानी घटना को सुनाया जा सकता है। उन्हें यह लगेगा कि हम से जो भी गलती हुई है, वह अस्वाभाविक नहीं है। अभिभावक यदि बच्चों को भयरहित कर प्रोत्साहित करें तो बच्चे के मन में सत्य के प्रति सही माने में आस्था पैदा होगी।

लेकिन सत्य अकेला ही काम का नहीं। यह भी बालकों को बताया जाना चाहिए कि सत्यशील युक्त हो। सत्य अप्रिय हो तो प्रतिद्वन्द्विता और खड़ी कर देता है। गोस्वामी जी ने सत्य को ध्वज, तो शील को पताका की उपमा दी है। पताका के सहारे ही ध्वजा लहराती है। सत्य की शोभा इस प्रकार शील से ही है। शील अर्थात् शालीनता-शिष्टाचार युक्त आचरण। महात्मा गाँधी जीवन भर सत्य और अहिंसा का प्रचार करते रहे। सत्य पर सदैव दृढ़ रहे पर व्यवहार में हमेशा मुलायम। अपनी बात वे इस प्रकार कहते थे कि सुनने वालों को कर्ण कटु न लगे। मीठी वाणी से भी अपने विरोधी के हृदय तक अपनी बात उतार देना सम्भव है, इसकी झाँकी गाँधी जी के जीवन में देखी जा सकती है।

सद्व्यवहार-शालीनता का बच्चों को अभ्यास सत्य के साथ कराया जाय तो कोई कारण नहीं कि सुसंस्कृत, सभ्य एवं ईमानदारों से युक्त एक मानव समाज बना सकना सम्भव न हो।

बच्चों को यदि ये दो सुसंस्कारिता के अभ्यास करा दिये गये तो मान लेना चाहिए कि परिवार में सुख-शान्ति भरा वर्तमान तथा समृद्धि उज्ज्वल भविष्य वाला वातावरण विनिर्मित हो गया। बच्चे ही वे नींव के पत्थर हैं जिन पर राष्ट्र रूपी भवन बनता है। यदि इसे मजबूत बना लिया तो राष्ट्र भी सुदृढ़ होगा, समर्थ बनेगा। जिन कोमल कलियों को प्यार भरे परामर्श की आवश्यकता है उन्हें समय रहते हर माता-पिता परिवार रूपी पाठशाला में चारों ओर उपलब्ध साधनों से गढ़ना आरम्भ कर सकते हैं।

बच्चे ऐसे सुधारे जाते हैं

जो माताएँ बच्चों के चरित्र-निर्माण के लिए पत्थर की तरह कठोर होती हैं, वह अपने ही बच्चों का नहीं समाज का भी महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन करती हैं। ऐसी अनेक घटनाएँ इतिहास के पृष्ठों पर पढ़ने को मिलती हैं। लीजिए पढ़िए एक साधारण गृहस्थी में रहकर बच्चों के जीवन किस तरह सुधारे और समुन्नत बनाए जाते हैं ?

किशनपुर में 'मातृ-मन्दिर' इस गाँव का एक भव्य भवन है। इस मकान के बनाने वाले श्री अतिबल सिंह जी हैं। उनकी वह गाथा भी उतनी ही पवित्रता से सुरक्षित है जिसमें उनके इस स्थिति में पहुँचने का रहस्य बना हुआ है। इस परिवार में सब मिलाकर सात सदस्य हैं। सब सम्मिलित कुटुम्ब में रहते हैं किसी में कोई झगड़ा नहीं है, इसका सम्पूर्ण श्रेय अतिबलजी की माता शारदा देवी को है।

शारदा देवी दर्जा ५ तक पढ़ी थीं। उनके एक ही पुत्र अतिबल का जन्म हुआ था उसके तीसरे वर्ष ही वह विधवा हो गई। समाज में उनका जीना कठिन था। आजीविका सम्बन्धी ही सैकड़ों कठिनाइयाँ थीं पर उन्होंने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस बात का ध्यान कड़ाई से रखा कि बच्चे में कहीं ओछे संस्कार तो जड़ नहीं पकड़ रहे। जहाँ भी ऐसी स्थिति दिखाई दी उन्होंने उसे निर्ममता से दबाया और कुचल दिया।

बच्चा पढ़ने जाने लगा। उसे घर से पैसे नहीं मिलते थे। एक दिन एक बच्चे के पैसे चुरा लिये। दूसरे बच्चे ने देख लिया। उसने आकर शारदा से शिकायत कर दी। शारदा ने पहले दिन बच्चे को उपयुक्त सजा दी। एक दिन बिल्कुल भूखा रखा। उसे चोरी से व्यक्ति की हानि और उसके कारण समाज में होने वाली प्रतिक्रिया समझाई और प्रेमपूर्वक बताया कि पाप का प्रायश्चित होना ही चाहिए। उसे एक दिन भूखा रहना ही चाहिए और जिसका पैसा लिया है उसे लौटाते हुए क्षमा भी माँगनी चाहिए।

बच्चा बड़ा हुआ, सर्दी के दिन थे। गन्ना खाने की इच्छा हुई। माँ ने कहा बेटा अपने पास गन्ने हैं नहीं, पैसे भी नहीं हैं। जो वस्तु उपलब्ध नहीं उसे न पाने का सन्तोष करना चाहिए। पर बच्चे की समझ सुलझी न थी। चुपचाप घर से निकल गया। एक खेत से दो गन्ने तोड़े और चुपचाप खेत में ही गन्ने चूसने लगा। किसी तरह माँ को पता चल गया। शारदाजी सीधे खेत पहुँचीं। बच्चा एक गन्ना चूस रहा था दूसरा पास रखा था। माँ उसे पकड़कर किसान के पास ले गई। एक गन्ना लौटाया, माफी माँगी और एक गन्ने की कीमत जितनी उसकी कुछ मजदूरी कर दी। किसान ने मना किया कि गन्ना कोई बड़ी चीज नहीं है। पर माँ ने कहा—भले ही न हो पर चरित्र तो बड़ी चीज है, उसे इतने सस्ते दामों पर कोई क्यों खरीदे ?

एक दिन गाँव के कुछ बदमाशों के चक्कर में आकर अतिबल भी एक चोरी में चले गये। इस चोरी में काफी पैसा हाथ लगा। अपना हिस्सा अतिबल ने लाकर चुपचाप घर में छिपा दिया। उसका पता उनकी माँ को लग गया।

माँ ने सोचा, जब तक मामला छोटा था अपनी अधिकार सीमा में था स्वयं दण्ड दिया अब अपराध के अनुरूप दण्ड भी मिलना चाहिए। उन्होंने स्वयं थाने जाकर चोरी की सूचना दी और अतिबल को जेल भिजवा दिया। उसमें १ वर्ष की सजा हुई।

इस बार अतिबल की आँखें खुल गईं। जेल से आकर उन्होंने नेकी, ईमानदारी और परिश्रम का जीवन जीकर माता की इच्छा पूर्ण की। माँ को न रहे कई वर्ष हो गये पर अभी उनकी आज्ञाओं का पालन परिवार में उसी तरह किया जाता है, जैसे नेक नागरिक कानूनों का पालन करते हैं।

बाल-निर्माण में अभिभावकों का योगदान

छात्रावस्था से निबटकर युवक को कार्यक्षेत्र में उतरना होता है। ऐसे कठिन क्षेत्र में जिसमें उपार्जन की प्रतिभा तथा सुसंस्कारिता की परीक्षा पग-पग पर होती है। उसकी पूर्व तैयारी न हो तो प्रतिस्पर्धा-प्रतियोगिता में पिछड़कर रहना और उपहास, तिरस्कार का भाजन बनना पड़ता है। यह शिक्षा समय रहते न मिले तो फिर अँधेरे में भटकना और पग-पग पर ठोकरें खाना ही हाथ रह जाता है।

विद्यालयों में इन दोनों में से एक की भी पूर्व तैयारी कराने की कोई व्यवस्था नहीं है। पाठ्य-पुस्तकों में मरघट के भूतों का तो परिपूर्ण उल्लेख है। पर वर्तमान में प्रतिभा उगाने और भविष्य की अनेकानेक जिम्मेदारियाँ उठाने जैसा तौर-तरीका सिखाने की कोई व्यवस्था नहीं।

अन्धे के हाथ बटेर लगने की तरह किसी को ऊँची नौकरी लगने और ऊपरी आमदनी का जुगाड़ भिड़ने का सिलसिला चल पड़े तो समझना चाहिए कि पढ़ाई सार्थक हुई अन्यथा समय, श्रम, धन और साधन की बर्बादी, हानि का घाटा तो प्रत्यक्ष ही है। उसमें कहीं ऐसा कुछ उल्लेख नहीं है कि व्यक्तिगत जीवन को परिष्कृत-प्रतिभावान कैसे बनाया जा सकता है ? और नौकरी न मिलने पर श्रमिक स्तर के कामों में हेटी न समझते हुए निर्वाह कैसे किया जा सकता है ? सज्जनता, शालीनता, सुसंस्कारिता से छात्रों को सम्पन्न करने का अध्ययन-काल में कोई अवसर नहीं मिलता। न कोई इस प्रकार की आवश्यकता अनुभव की गई है और न कोई ठोस प्रयास। सब कुछ पोला ही पोला चल रहा है। असंख्य छात्र उसी पोल में घुसे कुलबुलाते-बिलबिलाते रहते हैं। भविष्य की कोई राह उन्हें सूझती नहीं। ऐसी दशा में कुण्ठाग्रस्त मनःस्थिति उन्हें उद्दण्डता अपनाने के लिए प्रेरित करे तो आश्चर्य ही क्या है ?

शिकायतें करना और बीते के लिए पछताना व्यर्थ है। होना यह चाहिए कि बालकों, किशोरों और युवकों के व्यक्तित्व निर्माण का कार्य अभिभावक अपने कन्धों पर उठायें, यदि व्यस्तता अधिक थी और इस दायित्व के निर्वाह का ज्ञान न था तो प्रजनन के लिए आतुर नहीं होना चाहिए था। जो काम अपने बलबूते का नहीं उसकी जिम्मेदारी ही क्यों उठाई जाय ? क्यों न बिना सन्तान के काम चलाया जाय, पर जब एक गलती हो ही चुकी है तो उलझन को सुलझाये बिना, जिम्मेदारी को निभाये बिना और कोई रास्ता नहीं है। यदि स्वयं को कोई आवश्यक बात नहीं आती तो दूसरे से जानकारी वकील, डाक्टरों की तरह अक्ल किराये पर लेनी चाहिए अन्यथा अनगढ़ सन्तानें जन्मदाताओं को ही सबसे अधिक त्रास देती हैं। यहाँ तक कि बहिन-भाइयों के अधिकार भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छीनती-झपटती रहती हैं। कुसंस्कारियों का दाम्पत्य जीवन तक चैन से नहीं बीतता, फिर उनकी सन्तानें वह सारा बदला चुका लेती हैं। जो परिवार वालों के साथ बाप ने किया है। ओछे स्वभाव के व्यक्ति अपनी क्षुद्रता का फल हाथोंहाथ पाते हैं और भर्त्सना भरा जीवन जीते हैं।

इतने प्रकार के संकटों से समय रहते बचाव हो सकता है। यदि अभिभावक अपने जन्मदाता, पालनकर्त्ता ही न मानें वरन् शिक्षक की, मार्गदर्शक की महती आवश्यकता भी स्वयं ही वहन करें। माना कि उपार्जन कार्यों तथा अन्य व्यस्तताओं में समय घिरा रहता है, पर बालकों को जन्म देना भी तो एक भारी-भरकम ऋण है। जिसे चुकाने की उपेक्षा करने पर वह ब्याज समेत कुछ ही समय में इतना बोझिल हो जाता है जिसका भार-निर्वाह, उपार्जन की व्यस्तता से कम बोझिल नहीं होता।

कुछ गुण ऐसे हैं जिन्हें आरम्भ से ही बच्चों के स्वभाव में सम्मिलित करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। (१) श्रमशीलता (२) स्वच्छता (३) सुव्यवस्था (४) मितव्ययिता (५) नियमितता (६) शिष्टता (७) उदारता (८) सहकारिता आदि गुण ऐसे हैं जिनके चमत्कारी प्रतिफल समग्र सफलता के रूप में हाथोंहाथ उपलब्ध होते हैं। जिनमें यह गुण होंगे उनका दृष्टिकोण परिमार्जित रहेगा और सूझ-बूझ इस प्रकार काम करेगी कि जिससे गुत्थियाँ उलझने ही न पायें या उलझें तो उसके समाधान में देर न लगे।

रोटी कमाना किसी के लिए कठिन नहीं होना चाहिए। जब बिना बुद्धि और घटिया शरीर संरचना के सहारे पशु-पक्षी पेट भर लेते हैं तो कोई कारण नहीं कि बुद्धिमान समझा जाने वाला, पढ़ा-लिखा और सही हाथ-पैरों वाला बेकारी-बेरोजगारी आदि की शिकायत करे। अभावग्रस्तता मात्र हरामखोरी, शान-शेखी और आराम-तलबी का प्रतिफल है। इन दुर्गुणों को आरम्भ से ही निरस्त करते रहा जाय। घर के काम-काजों में उत्साहपूर्वक भाग लेते रहने के लिए अनुशासनबद्ध रखा जाय तो किसी भी काम को छोटा न मानने का, परिश्रम में गौरव अनुभव करने का स्वभाव बना रहेगा और परिश्रम की रोटी कमाने के लिए हजार रास्ते सामने खड़े दिखाई देंगे।

छोटों और बड़ों के साथ उपयुक्त शिष्टाचार बरतने, सज्जनता भरा व्यवहार करने और मधुर शिष्ट शब्दों में विनम्र वार्तालाप करने का अभ्यास कराया जाय तो प्रशंसकों-सहायकों की संख्या बढ़ेगी और आसन्न झंझट जो अनगढ़ स्वभाव के कारण उत्पन्न होते रहते हैं वे हैरान न किया करेंगे।

सच्चाई, ईमानदारी, भलमनसाहत आदि ऐसे गुण हैं, जिनके कारण अनुचित उपार्जन में तो बाधा पड़ती ही है और खर्चीला ठाट-बाट एवं विलासी सरंजाम जुटाने में भी कठिनाई होती है तथा दूसरों की तुलना में अपने को घाटा रहा प्रतीत होता है किन्तु उनके निराकरण का हाथों-हाथ दूसरा उपाय समझ में आ जाता है। 'सादा जीवन उच्च विचार' का सिद्धान्त अपना लेने पर सादगी मितव्ययता साक्षात् लक्ष्मी की तरह साथ हो जाती हैं और खर्च घटा लेने पर दुहरा सन्तोष होता है—एक आदर्शवादिता अपनाने का, दूसरा गुजारे में कमी न पड़ने का। यह आदत भी ऐसी है जिसे मास्टर लोग सिखा सकने में भी सफल नहीं होते। उन्हें तो भावनापूर्वक आत्मीयता के वातावरण में अभिभावक ही सिखा पाते हैं।

बुरी आदतें गली, कूचों की गंदगी की तरह हर नाली-नाटदान में अपनी सड़न और दुर्गन्ध उड़ाती, बीमारियाँ उगाते देखी जा सकती हैं, पर सत्प्रवृत्तियों का पुष्पोद्यान कुशल माली जैसी बुद्धिमत्ता अपनाये जाने पर निर्भर करता है। सन्तान के लिए, परिवार के लिए यदि उत्तराधिकार में धन-दौलत छोड़ सकने जैसा कुछ न बन पड़े तो हर्ज नहीं, पर उन सबको ऐसी आदतें देकर जाना चाहिए कि वे अपने परिष्कृत दृष्टिकोण के आधार पर अपना निज का जीवन सुखी बना सकें और जो भी सम्पर्क में आये उन्हें उठाने, बढ़ाने में सफल हो सकें।

सन्तान का अर्थ पुत्र ही नहीं, पुत्री भी है। पुत्री को उपरोक्त सद्गुणों के अतिरिक्त सहिष्णुता, सेवा और मधुरता का अतिरिक्त अभ्यास कराना चाहिए ताकि उनके आधार पर पराये घर पर अधिकार जमा सके और परायों को विनम्रता से मनोमुग्ध करके अपना बना सकें। सच तो यह है कि लड़कियों को लड़कों की उपेक्षा अधिक स्नेह, अधिक सहानुभूति और अधिक प्रशिक्षण मिलना चाहिए ताकि उनकी समर्थता इतनी बढ़ी-चढ़ी हो कि परदेश की तरह माने जाने वाले घर में से वे अपने लिए स्नेह एवं सद्भाव अर्जित कर सकें। स्वयं भी सुखी रह सकें और दूसरों को भी सुखी रख सकें तथा उस परिवार को सुख-शान्ति का भण्डार बना सकें, जिसमें कि उनका पदार्पण हो।

माँ के दिए संस्कार सफल हुए

मिदनापुर (बंगाल) के एक धनवान व्यापारी को अपने घर की सफाई करानी थी। लेकिन सब घर को एक साथ साफ नहीं कराना चाहता था। पूरे घर की एक साथ सफाई कराने से बड़ी अस्त-व्यस्तता आ जाती और फिर सामान की व्यवस्था ठीक करने में बड़ा समय खराब होता और परेशानी होती सो अलग। वह एक दिन में कमरा साफ कराना चाहता था। इसलिए उसने एक बारह-तेरह साल का मजदूर लड़का बुलाकर काम पर लगा लिया। कोई बड़ा मजदूर एक दिन में एक कमरा साफ करने को तैयार भी नहीं होता था और सेठ उसे घर के आन्तरिक भाग में ले भी नहीं जाना चाहता था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

लड़का 'अतुला' रोज आता और एक कमरा साफ करके चला जाता। अभी तक वह बाहर के कमरे ही साफ करता रहा था। जब बाहर के कमरे साफ हो गये तो अन्दर के कमरे साफ करने का क्रम आया। लड़का अन्दर के कमरे में गया और अपने काम में लग गया। कई दिन से काम कर रहा था। कोई शिकायत का अवसर दिया नहीं था। इसलिए उस पर अविश्वास का होना जरूरी नहीं था। घर के लोग अपने और धन्धों में लगे रहे। लड़का अन्दर कमरे में काम करता रहा। उसकी कोई रखवाली नहीं की जा रही थी।

अन्दर कमरे में एक बड़ी-सी मेज पर एक से एक सुन्दर चीजें रखी हुई थीं। सोने, चाँदी की और मोती, मूगों से जुड़ीं। एक-से-एक सुन्दर, एक-से-एक कीमती। लड़के ने अपने जीवन में इससे पहले इतनी सुन्दर, इतनी कीमती, इतनी ज्यादा और इतनी तरह की चीजें कभी नहीं देखी थीं। बेचारा उस चकाचौंध के आकर्षण से भौंचक्का हो गया।

वह काम तो कर रहा था। पर उसका मन काम में लग नहीं रहा था। मन उसका उन चीजों में रखा हुआ था। वह सब चीजों को खूब पास से ध्यानपूर्वक और उठा-उठाकर देखना चाहता था लेकिन काम का हर्ज सोचकर वैसा कर नहीं पा रहा था। वह कुछ देर और काम करता रहा लेकिन उसका बाल-हृदय अपनी उत्सुकता को सहन न कर सका और वह काम छोड़कर सामान की मेज के पास आकर खड़ा हो गया, हर चीज को बड़े गौर से देखता और समझने का प्रयत्न करता रहा।

बड़ी देर तक उस प्रदर्शिनी को देखते रहने पर भी उसे तृप्ति न हुई। तब वह एक-एक चीज को हाथ में उठा-उठाकर देखने और प्रसन्न होने लगा। वह जितनी गौर से जो चीज देखता वह उसे उतनी ही अच्छी लगती और वह उसे बार-बार देखता रहा।

बच्चा ही तो था। नहीं समझ पा रहा था कि वह अपने को जिस असंयत वातावरण और विचारों में खींच लाया है, वे नैतिक स्वार्थ के लिए घातक होते हैं। पराई चीजों से आत्म-भाव जोड़ लेने से मन में लालच आ जाता है और लालच तो बुरी बला होती है। यह अवकाश पाते ही बड़ी जल्दी अकुंरित और पल्लवित होने लगता है।

बच्चा था। इस सूक्ष्म रहस्य को नहीं समझ पाया और आखिर लालच के जाल में फँस ही गया। उसने देखी तो सारी चीजें, अच्छी भी लगीं। किन्तु एक छोटी-सी सोने की घड़ी ने उसका मन मोह लिया और वह उसे बार-बार देखने और रखने लगा। कान में लगा कर बहुत बार और देर तक उसकी नन्हीं और मीठी आवाज भी सुनी। हाथ पर क्रम से रखकर और बाँधकर देखी। सजकर रह गई। हाथ खूबसूरत लगने लगा। हाथ लटकाया, हिलाया और कान के पास लाया।

सारी चीजों से हटकर उसका ध्यान घड़ी पर केन्द्रित हो गया और उसके मन में एक आवाज उठी—"यदि यह घड़ी मुझे मिल जाती"—वह आवाज क्या थी, खतरे की घण्टी थी। लेकिन बच्चा ही तो था। न समझ सका और न सावधान हो सका। घड़ी उसकी होने का उपाय क्या हो सकता था—'चोरी'।

कमरे में बड़ी देर शून्यता रहने से घर की मालिकिन उधर यह देखने यों ही चली आई कि लड़का कर क्या रहा है ? दोपहर के खाने का वक्त हो गया है और वह जलपान करने भी नहीं आया। उसने लड़के की लीला देख ली और बड़ी देर से उसका और उसके हाथ की घड़ी का तमाशा देख रही थी। एक तरफ दरवाजे की ओट में छिपी हुई। क्या यह लड़का घड़ी चुरायेगा ? उसके सामने यह प्रश्न था और वह उसका अन्त देखना चाहती थी।

तो घड़ी अपनी होने का उपाय क्या हो सकता है ? 'चोरी'—चोरी शब्द मन में गूँजते ही लड़के का सारा शरीर सिहर उठा और उसके पैर लड़खड़ा गये। उसे इस संकट-काल में उसकी माता की यह शिक्षा सहायक हो गई—'बेटा चाहे भूखे-नंगे रहना लेकिन कभी किसी की कोई चीज न चुराना। चोरी करना बड़ा भारी पाप है। मनुष्य देखे या न देखे पर परमात्मा अवश्य देख लेता हैं। वह हाथ-पैरों की तो दूर मन की चोरी भी जान जाता है और उसके लिए बड़ी भारी सजा देता है। वैसे भी चोरी एक दिन पकड़ी ही जाती है और तब बड़ी बेइज्जती होती है और जेल भी जाना पड़ता है।"

बच्चा ही तो था, भावावेश को नहीं सँभाल पाया। उसे ऐसा लगा कि उस सूने कमरे में परमात्मा की आँखें उसे घूर-घूरकर देख रही हैं, उसने उसके मन की चोरी पकड़ ली है। वह रोने लगा और घड़ी मेज पर डाल कर यह कहता हुआ बाहर भागा—नहीं, नहीं मैंने चोरी नहीं की, मैं चोरी नहीं करूँगा। अम्मा कहती है चोरी करना बहुत बड़ा पाप है। परमात्मा उसका कड़ा दण्ड देता है, जेल काटनी पड़ती है। नहीं, नहीं मैं चोरी नहीं करूँगा। मैंने चोरी नहीं की।

मालिकिन बड़ी समझदार स्त्री थी। उसने समझ लिया कि लड़का किसी मनोभाव से घबड़ा गया है। उसने तुरन्त उसे पकड़ लिया और छाती से चिपटाकर कहने लगी—"बेटा, बेटा कौन कहता है तूने चोरी की, तू तो बड़ा राजा बेटा है। घबड़ाता क्यों है ? मैंने तेरी सब बातें देख ली हैं। तू बड़ा ईमानदार लड़का है ? रो मत, आ मेरे साथ मैं खुद अपने हाथ से घड़ी तेरे हाथ पर बाँधकर तुझे दे दूँगी।"

लड़का फिर रोने और कहने लगा "नहीं, नहीं मैं उस कमरे में नहीं जाऊँगा और न घड़ी लूँगा। मुझे उन चीजों से बहुत डर लग रहा है। मैं अपनी अम्मा के पास जाऊँगा।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मालिकिन जानती थी कि लड़के को इस समय ढाढ़स की बहुत जरूरत है। इसलिए वह खुद लेकर उसकी माँ के पास गई और सारी कथा बतलाती हुई बोली—बहिन, तुम धन्य हो जो बच्चे में ऐसे संस्कार बोये। गरीब होकर भी तुम इतनी ईमानदार हो और चाहती हो कि बच्चा भी ईमानदार बने। तुम्हारा प्रयत्न सफल हुआ। तुम्हारा यह बच्चा बहुत ईमानदार है और सदा ईमानदार रहेगा। अब तुम ऐसा करो कि इसको स्कूल में भरती करा दो, सारा खर्च मैं दे दूँगी और यह जितना पढ़ेगा पढ़ाऊँगी।

लड़का स्कूल में भरती करा दिया गया और आगे चलकर वही अतुल बंगाल का बड़ा भारी राजनेता, विद्वान और सुप्रसिद्ध महापुरुष बना।

अभिभावक अपना कर्त्तव्य समझें और निबाहें

मानव-जीवन के अनेकानेक कर्त्तव्यों में सन्तान उत्पन्न करना और उसको यथायोग्य पालने का उत्तरदायित्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसे यों ही संयोग के आधार पर उठा लेना ठीक नहीं। जिसे इस महत्त्वपूर्ण विषय का ज्ञान न हो, उसे तब तक इस ओर से उदासीन रहना चाहिए जब तक कि उसका उचित ज्ञान अर्जन न कर लिया जाये। सन्तानों के सुयोग्य अथवा अयोग्य होने पर ही परिवार, समाज तथा संसार का उत्थान-पतन निर्भर करता है।

निःसन्देह यह गहरे खेद का विषय है कि लोग खाने-कमाने, पहनने-ओढ़ने और तरह-तरह के मनोरंजन की ओर जितना ध्यान देते हैं, उसका शतांश भी सन्तानों के समुचित लालन-पालन की ओर नहीं देते। जबकि सन्तान का निर्माण उक्त सामान्य बातों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। जिस कर्त्तव्य पर पारिवारिक शान्ति, समाज का उत्कर्ष और संसार का हित दूर तक निर्भर हो, उस विषय को यों ही प्रकृति के भरोसे उपेक्षित रखना ठीक नहीं। ऐसा नहीं कि यह भूल समाज के सामान्य अथवा अशिक्षित लोग ही करते हों, इस भूल के भागी वे लोग भी पाये जाते हैं, जो सभ्य, शिक्षित सम्पन्न तथा समाज के अच्छे लोग माने जाते हैं।

अन्य देशों के विषय में तो कुछ कहना नहीं, किन्तु भारतवर्ष के विषय में यह अधिकारपूर्वक कहा जा सकता है कि यहाँ के लोग अधिकांशतः सन्तानोत्पत्ति से लेकर उसके पालन-पोषण तक प्रकृति तथा संयोग पर ही निर्भर रहते हैं। उनका सन्तान विषयक ज्ञान शून्य होता है। जो माता-पिता सन्तान-पालन की किसी प्रकार की शारीरिक, नैतिक शिक्षा प्राप्त किये बिना ही सन्तानोत्पत्ति का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व उठा लेते हैं, उनके इस साहस पर आश्चर्य नहीं खेद भी होता है। जिनको सन्तानोत्पत्ति से पूर्व की तैयारी, उनके पालन-पोषण की समुचित विधि और उनका जीवन सार्थक तथा उपयोगी दिशा में उन्मुख कर सकने का ज्ञान नहीं होता, वे किस भरोसे और किस अधिकार से सन्तान-पर-सन्तान पैदा करते चले जाते हैं, यह बात कुछ समझ में नहीं आती।

इस सत्य से कौन इनकार कर सकता है कि सन्तान के उत्पन्न करने तथा पालन-पोषण के तरीके पर ही उनका मरना-जीना और उनका नैतिक उत्थान अथवा पतन अवलम्बित है। किन्तु वे लोग जो माता-पिता बन बैठे हैं या कुछ समय बाद बनने जा रहे हैं, इस विषय में जरा भी ज्ञान प्राप्त करने के उत्सुक नहीं होते और न उनको इस विषय में कोई शिक्षा देने की ही व्यवस्था है। भारत में ९५ प्रतिशत बच्चों की जन्म-प्रक्रिया तथा उनका निर्माण प्रकृति तथा समय के संयोग के अधीन रहता है। यही तो वह भयंकर अज्ञान है, जो भारतीय समाज में व्याप्त व्याधियों, अपराधों तथा भ्रष्टाचार का कारण बना हुआ है। समाज की सुव्यवस्था, उसकी शान्ति तथा उन्नति उसके नागरिकों पर निर्भर है और नागरिकों का चरित्र-निर्माण बाल्यकाल में हुए उनके पालन-पोषण की विधि पर निर्भर है, जिसका ठीक-ठीक निर्वाह तब तक हो ही नहीं सकता जब तक कि माता-पिता इस सम्बन्ध का समुचित ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेते।

आज के वैज्ञानिक एवं विकसित युग में भी नई पीढ़ी का भाग्य बुद्धिहीन प्रथाओं, परम्पराओं, सम्भोगों, प्रकृति अथवा मूर्ख दाइयों, अविवेकी बुढ़ियों आदि के भरोसे छोड़े रखना सामाजिक विकास में बहुत भयंकर बाधा है और जब तक इस बाधा को हटाकर हितकारी विधि-विधानों को स्थानापन्न नहीं किया जायेगा, समाज की अभिनव रचना का स्वप्न धुँधला तथा निष्फल ही बना रहेगा।

सन्तानों का होना मात्र ही सौभाग्य का विषय नहीं है। सौभाग्य का विषय है, उनका प्रबुद्ध तथा सुयोग्य होना। यदि केवल सन्तानों की संख्या ही सौभाग्य का आधार होती है तो बहुसन्तानों वाले माता-पिता संसार में अधिक सुखी तथा सन्तुष्ट दिखाई देते किन्तु वास्तविकता इससे सर्वथा विपरीत दिखाई देती है। किसी भी बहु-सन्तानक परिवार के निकट सम्पर्क में आकर इस सत्य को स्पष्ट एवं मूर्त रूप में देखा तथा अनुभव किया जा सकता है। कठिनता से कतिपय परिवार ही सुखी तथा सन्तुष्ट दिखलाई पड़ेंगे, अन्यथा अधिकांश क्लेश, कलह, आवश्यकताओं तथा अभावों से ही पीड़ित दिखलाई पड़ेंगे। सन्तानों के भरण-पोषण की आवश्यक व्यवस्था के अभाव तथा उनकी शिक्षा-दीक्षा तथा पालन एवं निर्माण की विधि के अज्ञान के कारण सन्तानें लोगों को अभिशाप बनी हुई हैं। सन्तानों की बहुतायत और तत्सम्बन्धी अज्ञान मिलकर इस सौभाग्य को ऐसे दुर्भाग्य में बदल देते हैं जिससे जीवन में निपट सकना असम्भव जैसी बात है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कितना अच्छा हो कि आज के संक्रान्ति तथा दिन-दिन तेजी उसे आगे बढ़ते हुए समय में लोग सन्तानोत्पत्ति की तत्परता त्यागकर उनके पालन-पोषण तथा निर्माण कर सकने योग्य ज्ञान का सम्पादन करने में अधिकाधिक उत्साह दिखायें, जिससे कि भारतीय समाज की दुरवस्था तथा राष्ट्र की निर्बलता दूर हो सकने की आशा पर विश्वास किया जा सके।

भारतीय समाज की इस कुरीति पर जितना खेद किया जाय वह कम है, कि यहाँ पर सन्तान सम्बन्धी ज्ञान तो दूर उस योग्य आयु से पहले ही किशोर कुमारियों को दाम्पत्य सूत्र में बाँध दिया जाता है। वे अल्हड़ माता-पिता का उत्तरदायित्व तथा सन्तानोत्पत्ति का अर्थ जाने बिना ही इस ओर अग्रसर हो उठते हैं, जिसका परिणाम उन दोनों के स्वास्थ्य-ह्रास के साथ, रोगी, निर्बल तथा अयोग्य सन्तानों की वृद्धि के रूप में सामने आता है, जिसके कुपरिणाम न केवल वे ही भोगते हैं, अपितु सारे समाज तथा राष्ट्र को ही भोगने पड़ते हैं। सन्तान-निर्माण की व्यवस्था तथा ज्ञान अभाव ही तो इसका कारण है कि आज हजारों अबोध बच्चे अनाथ एवं अपराधियों जैसी दशा में आवारा फिर रहे हैं और उनकी दशा को कोई पूछने वाला नहीं। न जाने इस प्रकार कितने अनाथ तथा आवारा बच्चे गुण्डों के हाथ में फँसकर भिक्षा तथा अपराधों द्वारा उनकी आय के साधन बने रहे हैं। चरित्र, शिक्षा तथा स्वावलम्बन की योग्यता न होने से हजारों बच्चे माता-पिता अथवा अभिभावक के न रहने पर अनाथालयों में भरती हो रहे हैं और न जाने कितने ईसाई अथवा मुसलमान मिशनरियों के हाथ लगकर उनकी जनसंख्या बढ़ा रहे हैं। पेशेवर अपराधियों में ऐसे लोग ही ज्यादा पाये जाते हैं। बाल्यकाल में जिनका पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा समुचित रूप से न की जा सकी हैं। इस प्रकार के निकम्मे बच्चे जब तक छोटे रहते हैं, तब तक आवारागर्दी करते और भीख माँगते फिरते हैं। तदनन्तर सयाने हो जाने पर अपराधी बनकर या तो गुण्डागर्दी करते फिरते हैं अथवा चोर-डाकू बनकर समाज की शान्ति-व्यवस्था के लिए घातक सिद्ध होते हैं। कहना न होगा कि यदि इनके माता-पिता को सन्तानों को उत्पन्न करने तथा उनके पालन-पोषण का ज्ञान रहा होता और ये उसी प्रकाश में पाले गये होते तो इनमें से न जाने कितने योग्य, उपकारी, समाजसेवी सभ्य नागरिक तथा महापुरुष तक निकलते। महापुरुषत्व कोई जन्म से साथ लेकर नहीं आता, इसका बहुत कुछ विकास माता-पिता की योग्यता तथा उनके समुचित चरित्र-निर्माण पर निर्भर रहता है।

यदि समाज को समुन्नत बनाना है, राष्ट्र का उत्कर्ष वांछनीय है, तो उसकी वर्तमान तथा भावी पीढ़ियों का समुचित निर्माण करने के लिए गृहस्थों को सन्तान नियमन तथा उनके निर्माण सम्बन्धी ज्ञान का अर्जन करना ही होगा। इस ज्ञान के प्रचार के लिए सरकारी व्यवस्थाओं का तो लाभ उठाया ही जा सकता है। शिक्षा-क्रम में इस प्रकार का पाठ्यक्रम भी बढ़ाया जा सकता है। साथ ही व्यक्तिगत रूप से यह ज्ञान सत्परामर्शों तथा तत्सम्बन्धी उत्तम साहित्य द्वारा भी प्राप्त किया जा सकता है। 'जहाँ चाह वहाँ राह' के सिद्धान्त के अनुसार माता-पिताओं में इसके लिए जिज्ञासा होनी चाहिए फिर साधन तो आप-से-आप जुटते चले जायें।

एक्टिंग कैसी रही ?

छोटे बच्चों द्वारा असाधारण कार्यों एवं प्रतिभा के प्रदर्शनों की अनेक घटनाएँ नई नहीं हैं। पौराणिककाल से वर्तमान समय तक हर क्षेत्र में ऐसे उदाहरण प्रचुर मात्रा में मिल सकते हैं, जबकि बच्चों ने अपने कर्त्तव्य से बड़ों को आश्चर्य में डाल दिया। लव-कुश, दुष्यन्त-पुत्र भरत, ध्रुव, प्रह्लाद, अष्टावक्र, अभिमन्यु, शंकराचार्य के छोटी आयु के विभिन्न संस्मरण भुलाये नहीं जा सकते। इनके अतिरिक्त ऐतिहासिक घटनाक्रम में भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। गुरु गोविन्दसिंह के बच्चों का अल्पायु में त्याग, झुँझलाहट में बड़े भाई को मारने की सलाह देने पर गाँधीजी द्वारा माता को उपदेश, विनोबा द्वारा माता-पिता के बीच के सैद्धान्तिक विवादों की मध्यस्तता, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा अपने पिता द्वारा आयोजित कवि गोष्ठियों में समस्याओं का समाधान आदि घटनाएँ हममें से बहुतों को ज्ञात हैं। इन सबको याद करके बहुधा लोग शंका किया करते हैं कि क्या आज के बच्चों में इस प्रकार की प्रतिभा का लोप हो गया है ?' किन्तु बात यह है कि वह बाल-प्रतिभा किसी अन्य दिशा में लगी है। इस कारण से उससे लाभ, प्रसन्नता और सन्तोष के स्थान पर हानि, कष्ट एवं शिकायतों का वातावरण ही बन रहा है। प्रस्तुत उदाहरण पर ध्यान देने से बात स्पष्ट हो सकती है।

समाचार ग्राम हरतौली का है। एक छह वर्षीय बालक एक दिन शाम को झूला झूलने से गिर पड़ा। कोई प्रत्यक्ष चोट नहीं दिखी तथा रात्रि को बालक सामान्य रूप से सो गया। घर के सब लोगों ने प्रसन्नता व्यक्त की तथा ईश्वर को धन्यवाद दिया। किन्तु प्रातः उनकी प्रसन्नता लुप्त हो गई। काफी दिन निकल आने पर जब बच्चे को उठाया गया तो न वह उठा और न बोला ही।

लोगों में घबराहट फैल गई। अपने-अपने ढंग से सबने प्रयास किया किन्तु बालक की स्थिति ज्यों की त्यों रही। श्वास सामान्य ढंग से चल रही थी, स्पर्श की संवेदना उसमें दिख रही थी किन्तु पूर्ण चेतना का अभाव था। उसे अस्पताल में ले जाया गया। डाक्टरों ने देखा बालक निश्चल एवं निश्चेष्ट पड़ा था। नाड़ी तथा हृदय की गति सामान्य थी। अन्य परीक्षणों से भी किसी बात

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का अनुमान न हो सका। समस्या खड़ी हुई कि उपचार भी किया जावे तो क्या किया जावे ? पिछले दिन की घटना सुनकर डाक्टरों ने अनुमान लगाया कि गिरने से किसी मर्मस्थल पर अज्ञात आघात के कारण बालक की बोलने की शक्ति लुप्त हो गयी है।

सब लोग परेशान थे कि अचानक बच्चा उठकर बैठ गया। पिता को सम्बोधित करके सामान्य ढंग से बोला—"पिताजी, ऐक्टिंग कैसी रही ?" भौंचक्के से खड़े व्यक्ति कुछ समझे, तब तक बालक ने अगला स्पष्टीकरण दिया "एक फिल्म में ओमप्रकाश ने ऐसी ही एक्टिंग की थी।" लोग हँस पड़े। अभिभावक तथा डाक्टर खीझ भरी मुस्कुराहट के साथ अपने-अपने कार्यों में लग गये। कमाल का अभिनय किया था बालक ने।

छह वर्षीय बालक की ओर देखते हुए उसके साहस तथा स्वाभाविक अभिनय पर विचार करने से प्रत्यक्ष दिखता है कि उसमें प्रतिभा है। किन्तु इसका विकास किस दिशा में हो रहा है ? क्या हमारी बढ़ती हुई बाल समस्याओं के मूल में इसी प्रकार की प्रतिभा का दुरुपयोग नहीं है ?

बच्चों के बारे में हम बहुधा कह बैठते हैं—वह क्या समझें ? ऐसा कहकर हम अपने दोषों-दुर्व्यवहारों को नियन्त्रित न कर सकने वाली अपनी दुर्बलता की उपेक्षा भले ही कर जावें किन्तु वह उपेक्षा हमें महँगी पड़ती है। बच्चे वातावरण का प्रभाव ग्रहण करने में बहुत संवेदनशील होते हैं। जिस क्रिया एवं जिस भावना को वह महत्त्व मिलता देखते हैं, उसे ही ग्रहण करके विकसित करने लगते हैं। अस्तु, बच्चों की प्रतिभा का लाभ लेना है—तो उनके आस-पास संस्कारवान वातावरण उत्पन्न करना ही पड़ेगा अन्यथा वे जो सुनते-देखते हैं, उसी की नकल बनाते हुए भविष्य को अन्धकारमय बनाने वाली समस्याएँ उत्पन्न करते रहेंगे।

बच्चों का पालन-पोषण कैसे करें ?

बच्चों के शारीरिक और मानसिक जीवन का गठन बहुत कुछ अभिभावकों पर निर्भर करता है। पालन-पोषण से सम्बन्ध रखने वाली सामान्य-सी बातें भी बच्चों के जीवन में महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। वैसे प्रत्येक बच्चे के स्वभाव, संस्कार, मूल प्रवृत्तियों में अपनी कुछ न कुछ विशेषताएँ ठीक उसी तरह होती हैं जैसे सबके अलग-अलग चेहरे, अँगूठे की अलग-अलग छाप। फिर भी माँ-बाप द्वारा बच्चों का पालन-पोषण उनके विकास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अच्छी तरह खाद-पानी देकर, काट-छाँट करके माली पौधों को अधिक उपयोगी और फलदायी बना सकता है। उपेक्षा, साज-सँभाल के अभाव में मूल्यवान पौधा भी सूख जायेगा या अविकसित, भौंड़ा रह जायेगा जिससे मधुर फलों की भी कोई आशा नहीं की जा सकती। इसी तरह बच्चों का ठीक-ठीक पालन-पोषण किया जाय, उनकी शिक्षा का समुचित ध्यान रखा जाय तो मनुष्य की शक्ल में पैदा होने वाला प्रत्येक बालक उत्कृष्ट और महान व्यक्ति बन सकता है। इसके विपरीत ठीक-ठीक पालन-पोषण न होने पर, बच्चों के निर्माण में ध्यान न देने से होनहार बालक भी अविकसित रह जाते हैं।

बाल्यकाल में जिन आदतों की नींव लग जाती है वे ही सारे जीवन भर अपना प्रभाव डालती रहती हैं। बचपन में पड़े संस्कार, भावनाएँ जीवन का एक प्रमुख अंग बन जाते हैं। वस्तुतः बाल्यकाल सम्पूर्ण जीवन की नींव है। बच्चों की कोमल मनोभूमि पर पड़े हुए विभिन्न प्रभाव उसके मानस-पटल पर चित्रवत् अंकित हो जाते हैं। अच्छा या बुरा जैसा भी प्रभाव बच्चों पर पड़ता है वैसे ही वे बन जाते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि बच्चों पर अच्छा प्रभाव पड़े, उन्हें अच्छाइयों की प्रेरणा मिले। यह सब माँ-बाप के ऊपर ही निर्भर है। बच्चों का पालन-पोषण एक महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। इसे पूर्ण करने के लिए उन्हें काफी समझदारी, ज्ञान, विचारशीलता से काम लेना आवश्यक है।

कई माता-पिता बच्चों पर आवश्यकता से अधिक प्यार, स्नेह, लाड़ करते हैं। हालांकि बच्चों के लिए स्नेह, प्यार-दुलार की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी उन्हें खिलाने-पिलाने की। अभिभावकों के लाड़-प्यार से बच्चों का मानसिक विकास होता है। उनके जीवन में सरसता पैदा होती है, उनका व्यक्तित्व पुष्ट बनता है। किन्तु अमर्यादित लाड़-प्यार बच्चों के जीवन में अनेकों बुराइयाँ पैदा कर देता है। जब अमर्यादित लाड़-प्यार से बच्चों को कोई काम नहीं करने दिया जाता, उनकी उचित-अनुचित माँगों को पूरा करने में कोई कसर नहीं रखी जाती, तब उनके तनिक-से रूठने, मचलने या दूसरे बच्चों की शिकायत पर परेशान हो जाना, माँ-बाप की ऐसी भूल है जिससे बच्चों में अनेकों बुराइयाँ, खराब आदतें पैदा हो जाती हैं। ऐसे बच्चे आत्म-निर्भर, स्वावलम्बी नहीं बन पाते। वे अपने प्रत्येक काम की पूर्ति दूसरों से चाहते हैं। परावलम्बन, आलस्य, आरामतलबी, फिजूलखर्ची, आवारागर्दी आदि बुराइयाँ माँ-बाप की उन सामान्य-सी भूलों से ही पैदा होती हैं जो बच्चों के लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा में उन्होंने लाड़-प्यार वश कीं। यह एक आम बात है कि "लाड़ले बच्चे अक्सर बिगड़ जाते हैं" ऐसे बच्चों में जिन्दगी के कठिन दिनों में चलने की शक्ति नष्ट हो जाती है।

प्रत्येक बालक में अपनी एक जन्मजात प्रतिभा होती है। एक विशेषता होती है। बच्चे की इस मूलभूत प्रतिभा, प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर उसी दिशा में उसे बढ़ाया जाय तो वह एक दिन असाधारण स्थिति प्राप्त कर सकता है। इसके विपरीत यदि बालक को उसकी मूल प्रवृत्ति, प्रतिभा के विपरीत चलाया जायेगा तो वह विशेष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

सफलता, विकास की स्थिति प्राप्त करने में असमर्थ रहेगा। वह बेचारा सामान्य-सी घिसी-पिटी जिन्दगी ही व्यतीत करेगा। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि माता-पिता बच्चे की मूल प्रवृत्ति, मूल प्रतिभा को जानें, पहचानें और उसी के अनुरूप उसे विकसित होने की दिशा, साधन, सुविधाएँ प्रदान करें। जो माँ-बाप अपने ही दृष्टिकोण से अपनी इच्छानुसार बच्चे का भविष्य देखना चाहते हैं वे बड़ी भूल करते हैं। इंजीनियर का लड़का इन्जीनियर बने, कलाकार का कलाकार और वकील का लड़का भी वकालत करे यह कोई नियम नहीं है। रुचि, प्रतिभा, मूल प्रवृत्ति से अभिभावक और बच्चे के कार्यक्रमों में असमानताएँ रहनी स्वाभाविक ही हैं। अतः एकांगी निर्णय, एकांगी दृष्टिकोण से बच्चे के भावी जीवन की रूपरेखा न बनाई जाय। संगीत प्रतिभायुक्त बच्चों को क्लर्क, राजनीतिज्ञ बनाना, संवेदनशील, भावुक, कोमल हृदय बच्चों को डाक्टर बनाना; चिन्तनशील, दार्शनिक, विचारक बच्चों को तराजू तौलने की दुकान पर बैठाना अभिभावकों की बड़ी भारी भूल है। इससे बच्चों की मूलभूत प्रतिभा का विकास नहीं होता वे सामान्य-सा जीवन ही बिताते रहते हैं।

बच्चों को अपने बाल साथियों में न खेलने देना, दूसरे बच्चों से मिलने-जुलने से रोकना भी ठीक नहीं। परस्पर दूसरे बच्चों में मिलने-जुलने से ही बालकों का विकास होता है। उनमें मेल-जोल की वृत्तियाँ पैदा होती हैं। किन्तु कई अभिभावक संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण, बच्चों के बिगड़ जाने के भय से, आवारा बन जाने की शंका से बच्चों को दूसरे बच्चों से मिलने-जुलने नहीं देते। उन्हें बार-बार डाँटते-फटकारते हैं और रोकते हैं। इससे बच्चों में कई मानसिक विकृतियाँ पैदा हो जाती हैं। ऐसे बच्चे आगे चलकर अन्यमनस्की, एकाकी, असामाजिक वृत्ति के बन जाते हैं। वे दूसरों से मिलने-जुलने में संकोच अनुभव करते हैं। संसार उन्हें कैद की तरह लगता है। उनकी कोमल भावनाएँ कुण्ठित हो जाती हैं। यह भी ध्यान रखने योग्य बात है कि बच्चों को ऐसे ही बालकों से मिलने-जुलने दिया जाय जो सभ्य घरों में जन्मे और श्रेष्ठ वातावरण में पले हों तथा सुसंस्कृत हों। कुसंस्कारी, बुरे, आवारा बालकों से तो बच्चों को बचाये रखना ही उचित है।

कई माँ-बाप बच्चों को यह सोचकर कि उनका बच्चा अधिक पढ़ेगा, अधिक परिश्रम करेगा और उन्नत बनेगा बार-बार टोकते हैं। बार-बार आदेशपूर्ण दबाव डालते रहते हैं। दूसरे लड़कों की तुलना करते हुए समझाते हैं "अमुक तो इतना होशियार है उसकी बराबरी यह क्या करेगा ?" इस तरह कई माँ-बाप अपने बच्चों को कहते-सुनते देखे जाते हैं। वे सोचते हैं इससे बच्चा अधिक मेहनत करेगा किन्तु परिणाम इसके विपरीत ही निकलता है। इससे बच्चों का आत्म-विश्वास नष्ट हो जाता है। उन्हें अपनी शक्ति, सामर्थ्य और सफलता में सन्देह होने लगता है। कई बच्चों में तो यह सन्देह इतना प्रबल हो जाता है कि वे असफलता को निश्चित मानकर प्रयत्न ही नहीं करते। जैसे-तैसे अधूरे मन से प्रयत्न भी करते हैं तो सफल नहीं होते। बच्चों को हीन, कमजोर बताना, उनकी बार-बार आलोचना करना उन्हें वैसा ही बनाना है जैसा अभिभावकगण स्वयं नहीं चाहते। बच्चों को स्पर्धा की, प्रोत्साहन और प्रेरणा-भरी बातें कहना, उनके आत्मविश्वास के उत्साह को बढ़ाना ही उनके जीवन की सफलता, प्रौढ़ता, विकास का रहस्य है। इतना ही नहीं गलतियों, भूलों से होने वाली हीन प्रतिक्रिया को ही बच्चों के मानसपटल से दूर कर देना चाहिए। इससे महत्त्वपूर्ण कार्यों में निर्भीकता, निसंकोच हाथ डालने की क्षमता और जीवन पथ पर आगे बढ़ते रहने की मानसिक दृढ़ता प्राप्त होती है।

बच्चों को जन्म देना, उनका पालन-पोषण करना उनकी साज-सँभाल रखना माँ का उत्तरदायित्व है। किन्तु बच्चों की शिक्षा-दीक्षा, उनका मानसिक विकास, स्वस्थ व्यक्तित्व का निर्माण, उन्हें मनुष्य बनाने का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व पिता पर ही है। स्कूल-कॉलेजों में भी पुस्तकीय ज्ञान, अक्षर ज्ञान ही हो पाता है किन्तु जीवन के आन्तरिक एवं बाह्य समग्र ढाँचे का निर्माण पिता द्वारा ही पूर्ण होता है, यह एक निश्चित तथ्य है। इसके लिए बच्चों और पिता में नित्यप्रति का सम्पर्क रहना पिता द्वारा बच्चों के जीवन में गहरी दिलचस्पी का होना आवश्यक है। अक्सर आजकल के संघर्षमय, भाग-दौड़ के जीवन में इसकी भी कमी होती जा रही है। बच्चों से पिता का सम्पर्क बहुत कम हो पाता है या इसका सर्वथा अभाव ही रहता है। वकील, व्यापारी, डाक्टर, शिक्षक, राजनीतिज्ञ नेता सभी अपने कार्यक्रमों में इतने व्यस्त रहते हैं कि वे इसके लिए अपना कुछ समय भी नहीं दे पाते। अन्य सामान्य अशिक्षित लोगों को इसका पूरा ज्ञान ही नहीं होता। कई लोग बच्चों में घुलना-मिलना अच्छा नहीं समझते। कुछ भी हो किन्तु यह एक भारी भूल है।

पिता के साथ खेलने-कूदने की बच्चों में एक स्वाभाविक भूख होती है, जिसके तृप्त न होने पर बच्चों का मानसिक विकास नहीं होता और वे परित्यक्त की तरह निराशा, उदासीनता, अवसाद से ग्रस्त हो जाते हैं। मानसिक दृष्टि से ऐसे बच्चे जिन्हें पिता का सम्पर्क प्राप्त नहीं हुआ, अविकसित, फूहड़ व अयोग्य निकलते हैं।

बड़े आदमी, जो बच्चों के लिए कुछ भी समय नहीं लगाते, उनके बच्चे अधिक बिगड़ते देखे जाते हैं। अतः एक पिता होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन कुछ न कुछ समय बच्चों के लिए अवश्य निकालना चाहिए। समाज में भले ही कोई कुछ भी हों, बड़ी सम्पत्ति के मालिक, बड़े नेता, राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, व्यापारी, वकील से लेकर सामान्य श्रेणी के व्यक्ति भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने बच्चों के लिए पिता ही हैं और पिता के कर्त्तव्य उत्तरदायित्व को निबाहना भी उनके लिए उसी तरह अनिवार्य और आवश्यक है जिस तरह उनका पिता होने का अधिकार है।

निर्दयता का दुष्परिणाम भी नृशंस ही

घटना शेखपूरा (पाकिस्तान) की है। मुर्गा खाने की इच्छा हुई तो एक पाकिस्तानी सज्जन मुर्गी खरीद कर लाये। मकान की छत पर उन्होंने उसे काटना शुरू किया। उनके दो लड़के एक की उम्र सात वर्ष और दूसरे की चार वर्ष पास में बैठे-बैठे अपने पिता का कार्य देखने लगे।

मुर्गी काटना बच्चों के लिए एक खेल बन गया। कभी वह क्रूर हाथों से अपने को छुड़ाने का प्रयास करती, कभी अपने पंख फड़फड़ाती। बच्चे यह देख-देखकर हँस रहे थे। जब मुर्गी लहू-लुहान हो गई, तो वे उदास हो गये। उन्हें अवश्य ऐसा प्रतीत होने लगा कि पिता जी द्वारा अवश्य मुर्गी को यातना दी गई है। मुर्गी दम तोड़ चुकी थी।

पिता किसी कार्य से नीचे चला आया। छुरी वहीं पड़ी हुई थी। बच्चे जिस नाटक को अपने पिता द्वारा करते देख चुके थे उसी का अभ्यास उनकी अनुपस्थिति में करने लगे। बड़े लड़के ने छोटे को जमीन पर लिटा लिया। अपने हाथ में छुरी लेकर वह उसी तरह छोटे भाई को दबाकर बैठ गया। जैसे पिता जी मुर्गी को दबाये हुए थे।

गर्दन पर छुरी चलने लगी। जब उसकी गर्दन कटने लगी। खून निकलने लगा तो उस लड़के को असह्य पीड़ा हुई। उसने जोर से चीखना-चिल्लाना शुरू किया। नीचे माँ अपने चार माह के छोटे बच्चे को स्नान करा रही थी सामने परात में पानी भरा रखा था। जब उसके कान में चीखने-चिल्लाने की आवाज पड़ी, तो वह व्याकुल होकर अपने छोटे बच्चे को वहीं छोड़ ऊपर दौड़ी। देखा ४ वर्षीय बालक दम तोड़ चुका था। चारों ओर खून बह रहा है। अपनी माँ को आता देख बड़ा बालक घबरा गया। माँ अवश्य उससे बुरा-भला कहेगी, डाँट-डपट करेगी। अतः वह बचने के लिए सहमकर छत से नीचे कूद पड़ा।

बेचारी माँ समझ नहीं पाई कि क्या करे वह छत से नीचे उतरने के लिए जैसे ही सीढ़ियों की ओर बढ़ी कि एक बार जोर से चीख सुनाई पड़ी। जब तक वह नीचे पहुँची वह ७ वर्षीय बालक भी अपनी लीला समाप्त कर चुका था। उसका सिर नीचे पत्थर से टकराया और सदैव के लिए माता-पिता से अलग हो गया।

माँ की स्थिति पागलों सरीखी हो गई थी। दो-दो चलते-फिरते, हँसते-खेलते बच्चों को दम तोड़ते देख चुकी थी। अब उसमें इतना साहस नहीं रहा था कि वह कुछ कर सके। उसे चक्कर आ गया और वह भी वहीं लुढ़क गई। थोड़ी देर में होश आया, आँख खोली तो उसे ध्यान आया कि वह गोदी वाले बच्चे को स्नान कराते-कराते वहीं छोड़ आई है। जैसे-तैसे अपने को सँभाल कर वहाँ तक पहुँची कि वह अवाक् खड़ी देखती रही। दुर्भाग्य ने अभी भी उसका पीछा नहीं छोड़ा था।

जिस बच्चे को पानी में स्नान कराते छोड़ गई थी, वह इतना छोटा था कि स्वयं उठकर न तो बैठ ही सकता था और न अपने आप उस परात से बाहर निकल सकता था। जब पानी उसके नाक, कान और मुँह में भरने लगा। बेचारा रोया-चिल्लाया। हाथ-पैर चलाता रहा। पर वहाँ उसकी सहायता करने वाला कोई न था। पानी में गोते खाकर उसने भी इस परिवार से सदैव के लिए नाता तोड़ लिया था।

पन्द्रह मिनट तो तब हुए जब दुर्भाग्य ने माँ को हृदय के तीनों टुकड़ों से अलग कर दिया। अब रोने-चिल्लाने से क्या लाभ था ? पर दिल जो न मानता था। माता-पिता जैसा कार्य करते हैं, उसी को देखकर बच्चे करने का अभ्यास करते हैं। उन्हें अच्छाई-बुराई का ज्ञान कहाँ होता है ? यदि हम चाहते हैं कि बच्चों में सद्प्रवृत्तियों का विकास हो तो हमें अपने को सुधारना होगा।

एक हिंसक दुर्घटना भी कितने भयंकर दुष्परिणाम लेकर आती है।

नवनिर्माण में नारी का योगदान आवश्यक

विगत स्वतन्त्रता संग्राम को अभी अधिक दिन नहीं हुए। हमने अपनी आँखों से देखा कि भारतीय नारियों ने परिवार का मोह त्यागकर जेल की यातनाएँ सहीं, पुलिस के निर्मम अत्याचारों को मूक होकर सहा और आवश्यकता पड़ने पर भारत माता हेतु अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। हमें अच्छी तरह स्मरण है कि लोक नायक गाँधीजी की एक आवाज पर महिलाएँ घर से निकलकर धरना, विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार, असहयोग आन्दोलन, नमक बनाने और शराब-बन्दी के अनेक कार्यक्रमों में पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर सहयोग देती थीं। जिन दिनों अधिकतर कार्यकर्त्ता जेल की सीखचों में बन्द थे, महिलाओं ने संघर्ष के सूत्र को अपने कोमल हाथों से सँभालकर विदेशी सरकार तथा भारतीय नेताओं को आश्चर्य में डाल दिया था।

स्वतन्त्रता के बाद महिलाओं ने विविध क्षेत्रों में आगे आकर अपने परिश्रम, लगन, दृढ़ इच्छाशक्ति और अटूट आत्मविश्वास के द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि वह अब किसी से पीछे नहीं है। यदि नर और नारी दोनों को समान सुविधाएँ दी जायें तो नारियाँ प्रगति की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दौड़ में आगे निकल सकती हैं। पर इतने से ही हम सन्तोष कर चुप नहीं बैठ सकते। अभी भी देश में दो वर्ग हैं—एक प्रगतिशील और दूसरा पिछड़े हुए लोगों का।

गाड़ी के एक पहिये को, शरीर के एक अंग को क्षत-विक्षत स्थिति में तो नहीं रखा जा सकता। देश की कोई योजना, युग-निर्माण का कोई कार्यक्रम आधी जनसंख्या को छोड़कर नहीं बनाया जा सकता और न सफलता ही प्राप्त की जा सकती है। किसी भी देश की प्रगति और सभ्यता का सही अनुमान उस देश की महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति से लगाया जा सकता है।

अब बदली हुई परिस्थितियों में यह आवश्यक है कि आन्तरिक मोर्चों पर नियुक्त नारी अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह ईमानदारी के साथ करे। यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो हमें पता चलेगा कि राष्ट्र-निर्माण में नारी का योगदान उसके रसोईघर से प्रारम्भ होता है। देश का बहुत बड़ा भाग खाद्य संकट से ग्रस्त है। ऐसे में अमीरी के झूठे प्रदर्शन को त्यागकर गरीबों के कहे जाने वाले खाद्यान्न—चना, बाजरा, ज्वार, मक्का आदि को काम में लाये। महँगी सब्जियों, फलों तथा पकवानों के स्थान पर गाजर, पालक, मूली, बथुआ, आलू मूँगफली, केला, नीबू, अमरूद, पपीता जैसे मौसमी और सस्ते फलों तथा सब्जियों का उपयोग कर सकते हैं। यह वस्तुएँ स्वास्थ्यप्रद तो हैं ही साथ ही पैसों की बचत भी हो सकती है। महँगाई के समय में बढ़ते हुए भावों का रोना रोने से कोई लाभ नहीं हो सकता। हमें तो फिजूलखर्ची त्यागकर मितव्ययी बनने का आदर्श उपस्थित करना होगा। पुरुष धन कमाता है और उसको व्यय करने का उत्तरदायित्व तो गृहलक्ष्मी पर है। धन का सदुपयोग कर वह सीमित आय से ही परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति कर भविष्य के लिए बचत कर सकती है।

गाँव की स्त्रियाँ कृषि कार्यों में अपने पति को पूरा-पूरा सहयोग देती हैं। शहर की स्त्रियों को चाहिए कि अपने घरों के अन्दर की थोड़ी जगह का सब्जी उत्पादन में उपयोग करें। बड़े-बड़े शहरों में जगह का काफी अभाव रहता है फिर भी तुरैया, लौकी, सेम, जैसी बेलों में लगने वाली सब्जियाँ आसानी से उगाई जा सकती हैं। लकड़ी की पेटियों तथा गमलों में पौधे उगाने की व्यवस्था करनी चाहिए। छोटे कस्बों में तो मकानों के आँगन इतने बड़े होते हैं कि उनमें इतनी सब्जी उगाई जा सकती है कि बाजार से लेने की आवश्यकता ही न पड़े। घर के काम-काज से बचने वाला गन्दा पानी पौधों को हरा-भरा रख सकता है। कपड़े धोने, बर्तन माँजने के बाद का बचा पानी क्यारियों में डाल दिया करें अथवा एक ऐसी कच्ची नाली क्यारियों तक बना दी जाये तो अलग से पानी देने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

धार्मिक, शारीरिक और राष्ट्रीय तीनों ही दृष्टियों से सप्ताह में एक दिन का उपवास उपयोगी है। भूतपूर्व प्रधानमन्त्री लाल बहादुरशास्त्री ने देश संकट के समय साप्ताहिक उपवास का महत्त्व सबके सामने रखा था।

बच्चे राष्ट्र के भावी निर्माता होते हैं। उनमें राष्ट्रीयता की भावना का विकास, अनुशासन और देश के प्रति समर्पण की भावना संस्कारवान माता के लालन-पालन से ही आती है। देश का भविष्य माताओं की गोद में बनता-बिगड़ता है, क्योंकि नई पीढ़ी उनसे जन्म लेकर उनकी गोद में बढ़ती और पनपती है। यदि बालकों को साहसी चरित्रवान, ईमानदार, परिश्रमी तथा ईश्वर से डरने वाला बनाया जा सके तो समाज में व्याप्त अनीति और भ्रष्टाचार को समूल नष्ट किया जा सकता है। इसीलिए नेपोलियन अच्छी सन्तानों के लिए अच्छी माताओं के महत्त्व पर जोर देता था। उसका कहना था 'बच्चों के भविष्य का निर्माण माताओं पर निर्भर करता है।' भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि यहाँ की माताओं ने अपने बच्चों के पूर्ण विकास में ही रुचि नहीं ली वरन् उनमें मानवता के प्रति प्रेम, देशभक्ति और त्याग की भावनाओं को कूट-कूटकर भर दिया था। अतः नारी का यह प्रमुख दायित्व वह अपने बच्चों का पालन-पोषण, स्वस्थ ढंग से करे और उनमें ऐसे गुणों को विकसित करे कि वे स्वस्थ-सशक्त और सचेतन नागरिक बन सकें।

आज जबकि मध्यम और निम्न श्रेणी के परिवार आर्थिक जटिलताओं से गुजर रहे हैं तब सीमित परिवार की बात को भुलाया नहीं जा सकता। ५ अस्वस्थ, अविकसित और अशिक्षित बच्चों की अपेक्षा एक या दो स्वस्थ, प्रतिभासम्पन्न और सुसंस्कारित बच्चे अच्छे हैं। हमारे परिवार में बच्चों की संख्या उतनी ही होनी चाहिए जितने पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा तथा शारीरिक और मानसिक विकास के साधन जुटाये जा सकें। जनसंख्या की द्रुतगति से होने वाली वृद्धि से राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक अर्थशास्त्री और समाजसेवी सभी चिन्तित हैं। कितनी ही बार तो एक के बाद दूसरे बच्चों के जन्म से माता का स्वास्थ्य खराब हो जाता है। उनका शरीर दुर्बल हो जाता है। वह बच्चों के पालन-पोषण तथा पारिवारिक कार्यों को सम्पन्न करने में अपने को अक्षम अनुभव करने लगती है। ऐसी स्थिति में सीमित परिवार की बात प्रत्येक नारी के सम्मुख विचारणीय है।

शिक्षित महिलाएँ परिवार निर्माण और समाज निर्माण के विविध कार्यक्रमों में प्रत्यक्ष रूप से अपना योगदान दे सकती हैं। उन्हें अपनी शक्ति, प्रभाव तथा समय का उपयोग अशिक्षितों को साक्षर बनाने, अज्ञानियों को ज्ञान की किरणें प्रदान करने, बेरोजगारों को स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाने तथा सामाजिक कुरीतियों को नष्ट करने में करना चाहिए। शिक्षित नारियों को तो दोहरी भूमिका अदा करनी ही होगी। जो वृद्धाएँ यह कहती हैं कि 'हमारी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिन्दगी कट गयी अब बूढ़े तोते क्या राम-राम पढ़ेंगे ? उनके बीच जाकर शिक्षा का महत्त्व बताना होगा। यह महिलाएँ मध्यान्ह में दो घण्टे का एक विद्यालय चलाकर बच्चों के पालन-पोषण, स्वच्छता, सिलाई-बुनाई और अनेक कुटीर उद्योगों का प्रशिक्षण देकर उन्हें शिक्षित ही नहीं आत्म-निर्भर भी बना सकती हैं।

नशाबन्दी और माँसाहार के क्षेत्र में ही महिलाएँ महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकती हैं। जहाँ मनुष्यों के सारे बौद्धिक प्रयास निष्फल हो जाते हैं, वहाँ नारी अपनी सहानुभूति, ममता और सहृदयता के द्वारा अपना कार्य पूर्ण कर लेती है। लाखों ऐसे परिवार हैं जिनमें माँस, मछली, अण्डे, धूम्रपान और मदिरा आदि वस्तुओं का खुलकर प्रयोग किया जाता है। वहाँ पत्नी का सुमधुर व्यवहार और सत्याग्रह की भावना पति को ऐसे दुर्व्यसनों से छुटकारा दिला सकती है। एक विचारक ने कहा भी है 'मद्य निषेध का कार्य बौद्धिक विकास का नहीं वरन् संवेदना और सहानुभूति कार्य है।'

आज छात्रों में बढ़ने वाली अनुशासनहीनता राष्ट्रीय सम्पत्ति की तोड़-फोड़, बड़ों के प्रति उदण्डतापूर्ण व्यवहार, पाश्चात्य सभ्यता के प्रति विशेष आकर्षण जैसी अनेक बातें हैं जो समझदार माताएँ पारिवारिक स्तर पर आसानी से दूर कर सकती हैं। वह अपने पुत्रों को सुविधाएँ, प्रेम और धन आदि सब कुछ प्रदान करती हैं। वह उनकी गतिविधियों पर दृष्टि रखकर विवेकशीलता के साथ मार्गदर्शन दे सकती हैं।

बच्चों को आत्महीनता के दोष से बचायें

कई बच्चे हर दृष्टि से सुयोग्य होते हुए भी आत्महीनता के शिकार हो जाते हैं और अपनी प्रतिभा से हाथ धो बैठते हैं। ऐसा अपने बच्चे के साथ तो नहीं हो रहा है, इसके सम्बन्ध में अभिभावकों और अध्यापकों को समुचित ध्यान रखना चाहिए।

मनोवैज्ञानिकों एवं मनःचिकित्सकों ने किए गये अपने विभिन्न सर्वेक्षणों और अध्ययनों के आधार पर निष्कर्ष निकाला है कि अधिकांश स्थितियों में हीनता दोष के शिकार वही बच्चे होते हैं, जिन्हें बचपन में भरपूर लाड़-प्यार, स्नेह और आत्मीयता नहीं मिल पाती। उनका कहना है कि यदि श्रेष्ठता की दिशा में प्रोत्साहित किया जा सके तो उनका आत्मविश्वास जाग्रत होता है। प्रशंसा पाकर वे अपने से बड़ों का आदर करना सीखते हैं। बच्चों के प्रति बरती गई ईमानदारी उन्हें न्यायप्रिय बनाती है साथ ही अपनी अच्छी बातों को मान्यता मिलती देखकर गर्व का अनुभव करते और आगे वैसा ही क्रम बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं। मित्रता और सहृदयता का व्यवहार उन्हें सर्वाधिक पसन्द होता है। इससे उनके आस-पास के परिकर में स्नेह-सौजन्य का वातावरण विनिर्मित होता है। मनोवेत्ताओं के अनुसार—आगे चलकर जीवन संघर्ष से जूझने और उस पर विजय प्राप्त करने में बचपन में दिया गया उचित प्यार और प्रोत्साहन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। तब वे बिना किसी मनःचिकित्सक के भी अपने सुदृढ़ आत्मविश्वास एवं पुरुषार्थ से प्रगति के मार्ग में आये अवरोधों से टक्कर लेने और उन्हें निरस्त करने में समर्थ होते हैं।

संसार में ऐसे कितने ही महापुरुष, विद्वान, कलाकार एवं वैज्ञानिक हुए हैं, जिन्होंने अपने संरक्षकों का, सहयोगियों का तनिक-सा प्यार भरा सहयोग पाकर बचपन की आत्महीनताजन्य ग्रन्थियों का उच्छेदन कर कमजोरियों पर विजय पायी और सफलता के सोपान पर आगे बढ़े। इस प्रकार के उदाहरणों से इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं।

नेपोलियन बोनापार्ट के बारे में विख्यात है कि वह कद में छोटा था और रूप में साँवला। बातचीत में भी वह गँवार, अनपढ़ों जैसा व्यवहार करता था। विश्लेषकों का मत है कि उक्त कारणों से बचपन में ही वह हीन भावनाओं का शिकार हो गया था। स्कूल के सभी बच्चे उसका उपहास किया करते थे। पढ़ाई के प्रति उदासीनता बढ़ती जा रही थी। जन्मदात्री माँ का ध्यान जब इस ओर आकृष्ट हुआ तो उसने उसके निवारण का उपाय किया और अध्ययन के लिए बराबर प्रोत्साहित करती रहीं। नेपोलियन अब चिढ़ाने वालों की उपेक्षा करके अपना पूरा ध्यान पढ़ने में लगाता और उन सबसे आगे निकल जाने का स्वप्न देखा करता। सभी जानते हैं कि दृढ़ लगन और अध्यवसाय के सहारे एक दिन उसने अपने सपनों को साकार कर दिखाया।

विल्मा रूडाल्फ ने रोम में हुए ओलम्पिक खेलों में स्वर्ण पदक प्राप्त किया था। बचपन में उसे सभी 'ब्लैक गैज़िल' काली हिरन कहकर चिढ़ाते और ताना मारते थे कि वह जीवन में कुछ नहीं कर पायेगी, परन्तु जिसका उद्देश्य आगे बढ़ना ही हो भला कौन-सी विघ्न-बाधा है जो उसके प्रगति के मार्ग को अवरुद्ध कर सके। विल्मा के साथ भी यही हुआ। अभिभावकों का सहयोग एवं स्वयं की संकल्पबद्धता ने उसे अन्ततः सफलता के शिखर पर पहुँचा दिया। ओलम्पिक-स्पर्द्धाओं में उसने कितने ही स्वर्णपदक जीते ?

आस्ट्रेलिया के चोटी के खिलाड़ी जान कोनार्ड को बचपन में पोलियो हो गया था। चिकित्सकों एवं प्रशिक्षकों ने उसे निराश नहीं होने दिया। उपचार के साथ-साथ खेलकूद में भाग लेने के लिए बराबर प्रोत्साहन मिलता रहा। आशावादी विचारधारा का संचार होने पर वह अपनी अपंगता से लगातार आठ वर्षों तक संघर्ष करता रहा और अन्ततः विजयी हुआ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसी प्रकार फ्रांस के एक स्कूल में कैरीलीन नामक लाल बालों वाली एक बालिका पढ़ती थी। साथ में पढ़ने वाले बच्चे 'गाजर' कहकर उसका मजाक उड़ाया करते थे। तब वह मात्र आठ वर्ष की थी। एक दिन खीजकर उसने अपने सारे बाल कटवा डाले, फिर भी सहपाठियों के व्यंग्य वाणों से उसे त्राण नहीं मिला। इसका परिणाम यह हुआ कि कैरीलीन आत्महीनता का शिकार हो गयी। धीरे-धीरे स्मरण शक्ति भी कमजोर पड़ने लगी। उसकी बदलती मनःस्थिति की ओर जब अध्यापकों का ध्यान गया तो उन्होंने उस बालिका का परिचय उसी के रंग-रूप वाली एक अन्य लड़की से कराया। कुछ ही दिनों में दोनों घनिष्ट मित्र बन गयीं और एक-दूसरे की पूरक बनकर अपने जीवन-क्रम को बदल डाला।

मनःचिकित्सकों का मत है कि चार वर्ष की उम्र तक बच्चों में आत्महीनता का दोष नहीं पनपता। इस उम्र में उनकी रुचि मात्र अपने साज-सँवार और स्वयं के खेल-खिलौनों पर होती है, किन्तु जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है, बच्चे अच्छे-बुरे का विभेद करना सीख जाते हैं। उनमें स्वतः के प्रति, अपने एवं अन्यों के प्रति एक भावनात्मक लगाव विकसित होने लगता है। सन्तुलित मार्गदर्शन एवं प्यार न मिलने पर वह अपने को उपेक्षित महसूस करने लगते हैं और धीरे-धीरे आत्महीनता का शिकार बन जाते हैं। बच्चों के लिए यह वह घातक स्थिति है, जिसका दुष्परिणाम जीवन में उन्हें अविकसित एवं अनगढ़ता के रूप में भुगतना पड़ता है।

बालकों में चौरवृत्ति न आने दें

छोटा बालक सामाजिक व्यवहार से, औचित्य-अनौचित्य से अपरिचित होता है। उसमें संग्रह की भावना, वस्तुओं को अपना मानने और मनवाने की भावना प्रबल रहती है। यही कारण है कि वह अपने खिलौने, अपनी रुचि की अन्य छोटी-मोटी वस्तुएँ तो एकत्रित करता ही रहता है, साथ ही अपने बहिन-भाइयों और मित्र बालकों की वस्तुएँ भी अपने पास इकट्ठी कर लेता है। उसकी दृष्टि में कुछ पराया नहीं है। सभी की चीजें संग्रहीत करने की यह भावना आगे चलकर चोरी के रूप में विकसित हो सकती है। अतएव माता-पिता को स्नेहपूर्वक यह बात बालक को समझानी चाहिए कि अमुक वस्तु उसकी है, अमुक वस्तु उसके भाई-बहिन और मित्रों की। दूसरो की चीजें बिना उनसे पूछ कर लेना गलत है, चोरी है। बार-बार इस प्रकार के अभ्यास से बालक अपनी और दूसरे की वस्तु का अन्तर समझने और सही उपयोग करने की आदत पड़ती है।

बालक असुरक्षा की भावना के कारण भी चोरी करने लगता है। जिस परिवार में माता-पिता में प्रायः लड़ाई-झगड़े होते रहते हैं, कई भाई-बहिन होने के कारण बालक पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता, माता-पिता दोनों के जीविकोपार्जन में व्यस्त होने के कारण बच्चे को पूरा प्यार नहीं मिल पाता, उसमें बालक स्वयं को असुरक्षित अनुभव करता है, एकाकी और असहाय अनुभव करता है। इस स्थिति का प्रत्यावर्तन मार-काट, तोड़-फोड़ या चोरी आदि में होता है, जिससे कि उसे भावनात्मक तनाव से थोड़ी मुक्ति मिले। इसी प्रकार अतिसुरक्षा और अति, अनुचित प्रेम भी बालक को बिगाड़ देता है। ऐसे सिर चढ़े बालक हर वस्तु को अपना समझते हैं और दूसरों की वस्तुओं को चुपचाप उठा लेने में भी कोई हानि नहीं समझते। माता-पिता तथा अभिभावकों को इन दोनों ही स्थितियों से बचना चाहिए। बालक को समुचित स्नेह देना चाहिए, जिससे उसके व्यक्तित्व के विकास में बाधा न पड़े।

अधिकाधिक ईर्ष्या की भावना भी बालक को चोरी जैसे गलत कार्य करने को प्रेरित करती है। एक परिवार का उदाहरण है—माता-पिता छोटे लड़के को अधिक प्यार करते थे क्योंकि यह सुन्दर, विनीत और पढ़ने में बहुत तेज था। पिता जहाँ जाते छोटे लड़के की ही प्रशंसा किया करते। बड़े लड़के को सबके सामने मूर्ख कह देते। छोटे लड़के को बढ़िया खिलौने, मिठाई आदि दी जातीं। उसकी माँगें तुरन्त ही पूरी हो जाया करतीं। इस सबकी प्रतिक्रिया बड़े लड़के में ईर्ष्या के रूप में हुई। ईर्ष्याभाव से संचालित होकर उसने पहले छोटे भाई की किताबें और खिलौने चुराना, तोड़-फोड़ करना प्रारम्भ कर दिया। इससे भी जब उसे सन्तोष न हुआ तो उसने स्कूल में सहपाठियों की वस्तुएँ चुराना प्रारम्भ कर दिया। माता-पिता और अध्यापक बहुत दुःखी थे कि ऐसे कुलीन परिवार के बालक में यह आदत कहाँ से आ गयी ? मनोवैज्ञानिक जाँच कराने पर इस तथ्य का उद्घाटन हुआ कि बालक छोटे भाई के समान प्यार पाने की आकांक्षा से, माता-पिता का ध्यान विभाजित करने के लिए चोरी करता है। जब दोनों बालकों का समान रूप से ध्यान रखा गया, उन्होंने एकसमान खिलौने, वस्त्र, भोजन आदि दिये गये, समान रूप से उनकी प्रशंसा की गयी तब कहीं बड़े लड़के की चोरी की आदत छूटी।

बालकों की आवश्यकताओं की पूर्ति न होने पर भी वे चोरी करने लगते हैं। जब बच्चा अपने साथ के दूसरे बच्चों को अच्छी चीजें खाते-पहिनते देखता है, तो उसके मन में भी उन्हें पाने की लालसा जग जाती है। कुछ बालक तो अपनी इन इच्छाओं का शमन कर लेते हैं; परन्तु कुछ का मन विद्रोह करने लगता है। वे माता-पिता पर खीजते हैं कि वे भी वैसी ही वस्तुएँ लाकर क्यों नहीं देते। इस खीज के और अधिक बढ़ने पर वे चोरी करने लगते हैं। माता-पिता द्वारा जब बालक पर बहुत नियन्त्रण लगाया जाता है और उसकी इच्छाएँ अपूर्ण रह जाती हैं, तब भी वह चोरी का साधन अपनाता है। एक स्त्री में खाने-पीने की चीजें चुरा-चुराकर खाने की गन्दी आदत पायी गयी। मनोविश्लेषण करने पर पता लगा कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब वह बच्ची ही थी तब माता-पिता उसके भाई को तो अच्छी चीजें खिलाते थे और लड़की होने के कारण उसे उससे वंचित रखते थे। बस उसने चुराकर चीजें खाना प्रारम्भ कर दिया और बड़े होने पर भी उसकी यह आदत निरन्तर बनी ही रही। इसी प्रकार एक उच्चवर्गीय परिवार का लड़का सौतेली माँ के अत्यधिक अत्याचारों, प्रतिबन्धों के कारण चोर बन गया। माँ अपनी तुच्छ मनोवृत्ति के कारण बच्चे को उन सभी सुख-साधनों से पृथक् रखती थी जो प्रायः परिवार के तथा मुहल्ले के अन्य बच्चों को प्राप्त थे। उसे साधारण से भोजन-वस्त्र दिये जाते, खूब कार्य कराया जाता और समय-असमय मार-पिटाई की जाती। पत्नी के आज्ञाकारी उसके पिता में न अभागे बालक के प्रति दया थी, न बाहर के कार्यों से अवकाश। फलतः बालक अपनी इच्छाएँ पूरी करने के लिए चोरी करना सीख गया। माँ की सोने की वस्तुएँ, पिता की जेब से पैसे चुराकर ले जाता। अपने साथ-साथ साथियों को भी चाट-मिठाई खिलाता, महँगे खिलौने दिलवाता, सिनेमा दिखाता। बदले में उसे साथियों का प्यार मिलता था। अतएव इस कार्य से उसे आत्मतुष्टि होती थी। माता-पिता को जब बालक की इस दुर्वृत्ति का पता लगा तो उन्होंने उसकी पढ़ाई छुड़ा दी, शारीरिक दण्ड और घोर तिरस्कार करना प्रारम्भ कर दिया। फलतः बालक बिगड़ता चला गया, माता-पिता की उपेक्षा करने के लिए और अधिक चोरी करता गया और आगे चलकर पक्का चोर बना।

माता-पिता को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उनका बच्चा जिन साथियों के साथ रहता है, वे कहीं गन्दी आदत वाले तो नहीं हैं। बालक साथियों की बातें बहुत जल्दी सीखता है। यदि वे चोरी की आदत वाले होंगे तो दूसरे बच्चों को भी चोरी करना सिखा देंगे।

माता-पिता तथा शिक्षकों द्वारा नैतिक शिक्षा न दिये जाने से भी बच्चा चोरी करने की दुष्प्रवृत्ति अपनाता है। अनेक बार बच्चे सिर्फ शरारत करने के लिए, दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए चोरी किया करते हैं। बच्चों को ऐसी कहानियाँ सुनानी चाहिए जिनसे उनके मन में यह संस्कार दृढ़ हो जाये कि चोरी करना गलत बात है, बुरा है। विविध उदाहरणों से यह बात उनके सम्मुख रखनी चाहिए कि चोर को समाज और भगवान के दण्ड का पात्र बनना पड़ता है। बचपन में बनायी गयी यह आस्थाएँ आजीवन बालक का मार्ग निर्देशन करती हैं। माता-पिता तथा अभिभावकों की बालकों की छोटी से छोटी गतिविधियों का ध्यान रखना चाहिए। यदि वह कोई अवांछनीय दुर्गुण अपनाता है तो प्रारम्भ से ही उसे रोका जाना चाहिए। उसके कारणों का पता लगाया जाना चाहिए। यदि वह किसी अभाव के कारण चोरी करता है तो उसे दूर करने का प्रयास करना चाहिए। बच्चे को समझाना चाहिए कि कौन-सी वस्तु उसकी है और कौन-सी दूसरों की ? किस वस्तु के प्रयोग करने का उसे अधिकार है और किस वस्तु के लिए अन्यों से पूछना है। समझाने-बुझाने के बाद भी बालक यदि चोरी करता है तो उसकी इस आदत को कभी स्वीकृति नहीं मिलनी चाहिए। चोरी की वस्तु कभी भी बालक के पास नहीं रहने देनी चाहिए। न ही चीज वापस कराने के लिए उसे किसी प्रकार का पुरस्कार प्रदान करना चाहिए। बच्चे को चोरी के लिए दूसरों के सामने निंदित भी नहीं करना चाहिए और न ही प्रारम्भ में कोई सजा देनी चाहिए। चोरी करने के बाद भी बच्चे में यह भावना नहीं उभरने देनी चाहिए कि माता-पिता ने उसे प्यार करना, उस पर विश्वास करना छोड़ दिया है अन्यथा वह कुण्ठित होने लगेगा। माता-पिता को बहुत ही सावधानी से बालकों की चोरी की आदत को छुड़ाना चाहिए। प्यार के साथ-साथ बच्चे की आवश्यकता को भी समझना चाहिए। बच्चे माता-पिता से उन सब वस्तुओं को पाने की लालसा नहीं रखते, जिन्हें वे दे नहीं सकते। परन्तु बालकों को जो कुछ दिया जा सकता है, उससे भी उन्हें वंचित करने की भूल नहीं करनी चाहिए।

बच्चे जन्म से अपराधी नहीं होते

बच्चों के निर्माण में माता-पिता या अभिभावकों की भूमिका एक कुशल माली की तरह होती है। उन्हें ही सारा ध्यान रखना होता है कि बालकों के समुचित विकास में उनका योगदान हो पा रहा है या नहीं। थोड़ी-सी भी असावधानी अनेकानेक समस्याओं को जन्म दे सकती है। बच्चों के अपरिपक्व स्थिति से परिपक्व होते समय यदि कोई त्रुटि रह जाती है तो शारीरिक, मानसिक रूप से वे अविकसित रह जाते हैं। अनगढ़ स्वभाव होने पर ऐसे बच्चे अपराध करने से लेकर अनेकानेक सामाजिक समस्याएँ खड़ी करते हैं, साथ ही अपना भविष्य भी बिगाड़ लेते हैं।

'लैंग्वेज ऑफ द अण्डर वर्ल्ड' नामक अपनी कृति में सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री डॉ. डेविड डब्ल्यू. मॉरर ने कहा है कि आज समाज में इस तरह के बच्चों की भरमार है। बाल-अपराध एक विश्वव्यापी समस्या बनती जा रही है। गाँवों से लेकर शहरों तक गरीब-अमीर सभी वर्गों के बच्चे अपराधी प्रवृत्तियों में सम्मिलित देखे जाते हैं। अनैतिक कार्यों में लिप्त होना, वर्जनाओं का उल्लंघन करना, मार-पीट करना आदि उनके लिए एक सामान्य-सी बात है। छूत की बीमारी की तरह यह रोग एक से दूसरे बच्चे को लगती जाती है और उनके नये-नये समूह संगठन बनते जाते हैं। 'मीडिया' द्वारा अपराधियों को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाने से यह रोग और भी अधिक बढ़ा है। समाज में बालक, किशोर और युवा वर्ग का झुकाव आपराधिक या अर्ध आपराधिक उप-संस्कृति की ओर बढ़ता ही जा रहा है। उन्होंने इसका प्रमुख कारण इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वर्ग में वैयक्तिक दायित्व एवं आचरणशास्त्र की अनभिज्ञता को माना है और कहा है कि इन कमियों को दूर करके ही बच्चों एवं नवयुवकों के उज्ज्वल भविष्य को सँवारा जा सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस संस्था—इंटरपोल ने अपने एक सर्वेक्षण में बताया है कि पिछले दिनों की अपेक्षा इस दशक में बाल-अपराध सम्पूर्ण विश्व में बढ़े हैं। ४६ देशों के जो आँकड़े उसने प्रस्तुत किये हैं, उनसे स्पष्ट होता है कि आर्थिक एवं तकनीकी दृष्टि से विकसित देशों में इस तरह के अपराधों की संख्या सबसे अधिक है। नार्वे, आस्ट्रेलिया, अमेरिका, पश्चिम जर्मनी, इंग्लैण्ड, वेल्स तथा जापान शीर्षस्थ नम्बर पर हैं। चीन में आम अपराधों की अपेक्षा बच्चों द्वारा किये गये अपराध कहीं अधिक होते हैं।

भारत भी इस महामारी से अब अछूता नहीं रहा है। यहाँ बाल अपराध पहले कुछ बड़े शहरों तक सीमित था, परन्तु अब वह देशव्यापी हो गया है। 'नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल डिफेन्स' द्वारा प्रस्तुत आँकड़े बताते हैं कि सजा पाये लोगों में ५ में से एक २१ वर्ष से कम का होता है। महाराष्ट्र में ४ अपराधों में तथा मध्य प्रदेश में ५ अपराधों में एक का जिम्मेदार अल्प-वयस्क होता है। पूरे देश में यह दर १२ प्रतिशत से भी अधिक है। प्रतिवर्ष इसमें बढ़ोत्तरी होती जाती है। पुलिस के 'रिसर्च एण्ड डेवलपमेण्ट ब्यूरो' के अनुसार १८ वर्ष तक के दो लाख तथा १६ वर्ष के ३० हजार किशोर प्रतिवर्ष विभिन्न अपराधों में पकड़े जाते हैं। कम उम्र वाले बच्चों की संख्या में भी असामान्य रूप से अभिवृद्धि हुई है। वे जान-बूझकर इरादे के साथ तथा समझते हुए भी उस समाज की मर्यादाओं की उपेक्षा करते या तोड़ते हैं, जिससे कि उनका सम्बन्ध है।

विशेषज्ञों का मत है कि यह समस्या बच्चों के मानसिक संघर्ष का प्रतिफल है, जो मानसिक अथवा भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु किया जाता है। अपराधी आचरण के द्वारा ही वह अपनी वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। मनोवैज्ञानिक खोजों ने भी बच्चों के इस प्रकार के मानसिक असन्तुलन की पुष्टि की है। पाश्चात्य देशों में इस प्रकार के बालकों के उपचार के लिए बड़ी-बड़ी संस्थाएँ संचालित की जा रही हैं और उन्हें मनोवैज्ञानिक तरीके से प्रशिक्षित किया जा रहा है।

वस्तुतः अपनी अनेक स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बालक को दूसरों पर आश्रित रहना होता है। इन आवश्यकताओं की सन्तुलित पूर्ति पर ही उसका स्वस्थ एवं समग्र विकास निर्भर करता है। इन्हें तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) शारीरिक आवश्यकताएँ जैसे—भोजन, जल-नींद तथा अन्य शारीरिक सुविधाएँ, (२) आत्मा-सम्बन्धी जैसे—दूसरों से प्रशंसा, राय, स्नेह, दुलार तथा अपनत्व पाने की इच्छा। (३) सामाजिक—जैसे दूसरों के कार्यों में हाथ बँटाने हेतु कुछ सामाजिक कौशल प्राप्त करने की इच्छा। ये स्वाभाविक आवश्यकताएँ बच्चों के विभिन्न व्यवहार और कार्यों के लिए अभिप्रेरणाएँ हो जाती हैं, जिसकी क्रियाशीलता में बाधा आने पर वह तनावग्रस्त हो जाता है। यद्यपि उलझनों और परेशानियों का सामना तो सभी बालकों को कुछ न कुछ करना ही होता है, परन्तु जब इनकी अवधि बहुत दीर्घ हो जाती है अथवा आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती तो उसके व्यवहार अवांछित रुख लेने लगते हैं। वह अपराधी जीवन की ओर झुकने लगता है। जैसे भोजन न मिलने से शरीर कमजोर होने लगता है, उसी प्रकार बच्चे का मन जर्जरित होने लगता है और वह धैर्य खो बैठता है। यदि उसकी इन आवश्यकताओं की सदा समुचित पूर्ति होती रहे तो समाज में सुखी-समुन्नत बालकों की संख्या बढ़ जाये और दुःखी तथा अपराधी बालकों की संख्या घट जाये। यहाँ इन आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयास में अतिवाद बरतने पर अभिभावकों को इस तथ्य को भी याद रखना है कि यह प्रक्रिया बच्चों के व्यक्तित्व के संतुलन को उसी प्रकार बिगाड़ सकती है जैसे उनका दमन व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास के लिए घातक होता है।

बालकों के लिए अपराधी बनने का कोई एक ही कारण नहीं हो सकता। अतः किसी अपराधी बालक को पूर्णरूपेण समझने के लिए उसकी विशिष्ट परिस्थिति का अध्ययन करना चाहिए। प्रत्येक बालक की अपनी-अपनी परिस्थितियाँ होती हैं। जन्मदाताओं का आचार-व्यवहार, पारिवारिक वातावरण, स्कूल, साथी, पड़ोसी, कार्यकाल तथा अवकाश, मनोरंजन के साधन एवं सामाजिक वातावरण आदि सभी बातों का बच्चों के व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव पड़ता है। वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर ही किसी बालक के अवांछित व्यवहार के सम्बन्ध में निर्णय कर लेना उचित नहीं होगा, क्योंकि भूतकाल में जो हो चुका है, उसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर स्थायी रूप से जमा रहता है। अतः यह स्मरण रखने योग्य है कि कोई भी बालक जन्मजात अपराधी नहीं होता। बालकों के अपराधी होने में परिस्थितियों से लेकर पारिवारिक, सामाजिक, ऐतिहासिक सभी कारण अपना-अपना योग देते हैं। स्पष्ट है कि अपराधी बालक एक सामाजिक समस्या है और समाज को दृष्टि में रखते हुए उसके सुधार के उपायों को हमें खोजना है।

'इम्मारल अमेरिका' नामक अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में प्रोफेसर जार्ज सी. एस. बेन्सन तथा टामस एस. एंजीमैन ने कहा है कि जिस अनुपात से इधर अपराधों में वृद्धि हुई है, उसका प्रमुख कारण बालकों में व्यवहारशास्त्र की शिक्षा का अभाव है। उनके अनुसार पहले स्कूलों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानवी नैतिक मूल्यों की शिक्षा को स्कूली पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किया जाता था, पर अब उसका कोई स्थान नहीं रह गया है। इसी तरह के विचार प्रकट करते हुए सैन बर्नार्डियो के प्रख्यात न्यायविद एफ. डगलस ने कहा है कि बच्चों को आदर्श मूल्यों की शिक्षा घर-परिवार से ही मिलनी चाहिए। पर दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हो रहा है। उदारता, सहिष्णुता, दया, शिष्टता, उत्तरदायित्व, समय और प्रतिभा का सही सदुपयोग जैसे सद्गुणों की शिक्षा ही बच्चों को अपराधी बनने से रोक सकती है और सच्चे नागरिकों का निर्माण कर सकती है।

वस्तुतः अपराध प्रवृत्ति को रोकने का काम बालक के जन्म के पूर्व ही प्रारम्भ कर देना चाहिए। शिशु के गर्भ में आ जाने के बाद तो आचरण-व्यवहार की शुद्धता के साथ ही जन्मदात्री के शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देना बहुत आवश्यक है। जन्म के बाद लालन-पालन इस प्रकार का हो कि बच्चा अच्छी आदतों को ही अपनाये। सुसंस्कारी, पारिवारिक एवं सामाजिक वातावरण ही सुसंस्कृत भावी नागरिकों का निर्माण कर सकता है।

बच्चे अपराधी क्यों बनते हैं ?

बच्चे अपराधी क्यों बनते हैं इसका कोई एक निश्चित कारण नहीं, वरन् उनके जीवन से सम्बन्ध रखने वाली अनेक बातें हैं, जो बच्चों को अपराध की ओर प्रवृत्त करती हैं। बाल अपराधों के लिए समाज का वह सम्पूर्ण ढाँचा ही उत्तरदायी है, जिसमें बच्चों का व्यक्तित्व ढलता है। समाज की जैसी हवा बच्चे को लगती है, उसका वैसा ही प्रभाव उसके जीवन पर अंकित हो जाता है।

बच्चे का प्रथम सम्पर्क माता-पिता से होता है। उसमें अपराधी प्रवृत्ति का बीज बहुत कुछ उसके गर्भस्थ जीवन में ही जम जाता है, जब माता-पिता अनैतिक जीवन बिताते हैं। बाल-अपराध के प्रसिद्ध अन्वेषक हीली लिखते हैं कि "कुछ ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे मालूम होता है कि शराब अथवा किसी अन्य नशे में सम्भोग करने पर पैदा होने वाले बच्चों में पैदायशी अवगुण आ जाते हैं। जिस तरह शरीरगत दोष कोढ़, क्षय आदि बीमारियाँ वंश परम्परागत चलती हैं, उसी तरह बच्चों के मानसिक संस्थान की बनावट में भी वंशानुक्रम का बहुत कुछ हाथ होता है। हीली ने १००० बाल अपराधियों पर प्रयोग करके यह निष्कर्ष निकाला कि ५६ प्रतिशत अपराधी वंश परम्परागत थे। उन्होंने आगे लिखा है—गर्भकाल में माँ का जैसा जीवन-क्रम, मनोभाव होता है उसकी सूक्ष्म छाप बच्चे पर अवश्य पड़ती है। यही कारण है कि गर्भकाल में जिन स्त्रियों में उत्तेजना, क्रोध के आवेश अधिक आते हैं, उनके बच्चों का स्वभाव भी उत्तेजक क्रोधी बन जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बहुत-से बच्चों के अपराधी जीवन के पीछे उनके माँ-बाप का चरित्र मुख्य होता है।

पैदा होने के बाद घर वालों के व्यवहार पर बच्चों का जीवन बहुत कुछ निर्भर करता है। कई बार वे अपने अभिभावक, माता-पिता, अध्यापक आदि के कठोर व्यवहार के कारण अपराधी बन जाते हैं। ऐसी स्थिति में दूसरों को तंग करने में, परेशान करने में उन्हें प्रसन्नता होने लगती है। वे अपने से बड़ों की आज्ञा का उल्लंघन करके, उनकी इच्छा के विरुद्ध आचरण करके उन्हें तंग करने में गर्व अनुभव करते हैं, जो आगे चलकर उनकी आदत में आ जाता है। ये ही बच्चे अपने छोटे भाई-बहिन या दूसरे बच्चों को मारने-पीटने में सन्तोष अनुभव करते हैं।

बच्चों को सख्ती से दबाने पर या उनकी आलोचना करने पर वे बुराई के प्रति अधिक आग्रही बन जाते हैं। अभिभावकों के कटुवचन भी बच्चे में कितना स्थायी प्रभाव पैदा कर देते हैं इसका उदाहरण हीली ने दिया है। उन्होंने एक ११-१२ वर्ष के बहुत ही सच्चरित्र अच्छे लड़के का जिक्र किया है, जो अपने पिता के एक ही वाक्य से बिल्कुल बदल गया। शाम को पिता घर पर आया। उसका स्वभाव काफी चिड़चिड़ा हो रहा था। उसने देखा बच्चा पढ़ने के समय आराम कर रहा है। पूछने पर दूसरे लड़के ने बताया—"उसकी तबियत खराब है—इसलिए आराम कर रहा है।" पिता ने गुस्से में कहा—"झूठ बोल रहा है।" बस इसी बात की प्रतिक्रिया बच्चे पर ऐसी हुई कि उस दिन से उसका जीवन ही बदल गया। उसने कहा—"मैं बहानेबाज हूँ, झूठा हूँ। अब ऐसे ही करूँगा।" वह अकर्मण्य, आलसी बन गया। सारे दिन ताश खेलने लगा। पढ़ना-लिखना सब छोड़ दिया।

हीली ने एक अन्य उदाहरण में बताया है कि पिता द्वारा पीटकर घर से बाहर निकाल दिए गये एक बच्चे ने आवारा जीवन बिताना शुरू किया। यह विचारणीय है कि उसे दूसरों को पीटने में, अपमानित करने में अधिक आनन्द आता था।

किसी भी तरह से दुर्बल माँ-बाप जो अपने बच्चों पर भली प्रकार नियन्त्रण नहीं कर पाते उनके बच्चे बिगड़ जाते हैं। अक्सर देखा जाता है कि गूँगे, बहरे, अन्धे, अपाहिज, निर्धन माँ-बाप की सन्तानें प्रायः बिगड़ जाती हैं, क्योंकि वे अपने बच्चों पर भली प्रकार नियन्त्रण और उनका संरक्षण नहीं कर पाते। जो माँ-बाप दिन भर अपने काम-धन्धे में ही उलझे रहते हैं, बच्चों के जीवन में कोई दिलचस्पी नहीं रखते, उनके बच्चे बहुधा पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं क्योंकि बच्चों में उछल-कूद की प्रवृत्ति होती है, जब उसे सही दिशा नहीं मिलती तो वह गलत दिशा में प्रवृत्त हो जाती है। ऐसे नेता, सार्वजनिक कार्यकर्त्ता जो अपने बच्चों के लिए समय नहीं दे पाते उनके बच्चे भी आवारा बन जाते हैं। आधुनिक युग की औद्योगिक सभ्यता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ने जहाँ बच्चों और अभिभावकों के परस्पर सम्पर्क को कम कर दिया है, वहाँ बाल अपराधों की संख्या में भी कम वृद्धि नहीं की है।

जिस परिवार के लोग एक स्थान छोड़कर दूसरा स्थान, एक घर छोड़कर दूसरा घर बदलते रहते हैं, उनके बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ता है, उनके जीवन में अस्थिरता आ जाती है। दूसरों के प्रति ममता, मित्रता एवं अपनेपन की भावना नष्ट, शिथिल हो जाती है। इससे उनमें एकाकीपन, स्वार्थपरता एवं उदासीनता की वृत्तियाँ उभर आती हैं।

बहुत-से बच्चे निराश होकर तब अपराधी बन जाते हैं जब उनकी अपनी सीमा से बढ़ी हुई महत्त्वाकांक्षाएँ पूरी नहीं होतीं। प्यार के स्थान पर बच्चों को फटकारना, स्वयं बच्चों के जीवन में दिलचस्पी न लेकर उसे दूसरों पर छोड़ देना, अभिभावकों द्वारा उनके प्रति मनोरंजन, स्नेह का अभाव होना ऐसी कई बातें हैं, जिनसे वे अपराधी प्रवृत्तियों में लग जाते हैं। घर ही बच्चे की प्रथम पाठशाला है और घर के सदस्यों का व्यवहार ही उसका पाठ्यक्रम है। परिवार में जैसी प्रेरणाएँ बच्चे को मिलती हैं वैसा ही वह बन जाता है। बच्चों को बुराई की ओर प्रवृत्त करने तथा अपराधी जीवन बिताने के लिए बुरे साथी और कई सामाजिक बुराइयाँ भी कम उत्तरदायी नहीं हैं। स्मरण रहे बच्चों को गड्ढे में गिराने वाला, पतित करने वाला, अपराधी बनाने वाला, सर्वप्रथम बुरा साथ ही मुख्य होता है। यह साथ पहले घर में ही मिलता है। माता-पिता, रिश्तेदार, भाई-बहिन कोई भी हो सकते हैं, जो बच्चों को बुराई की ओर प्रवृत्त करते हैं। सबसे पहले बच्चों को बिगाड़ने के लिए घर में ही बुरा साथ मिलता है, उसके बाद फिर पड़ौस, स्कूल और घर से बाहर। स्मरण रहे कई बुरी आदतों, कामवासना सम्बन्धी बुराइयों का प्रारम्भ प्रायः बुरे साथ से ही होता है।

अभिभावकों को इतना तक ध्यान नहीं रहता कि उनके बच्चे किनके साथ उठते-बैठते हैं, किनके साथ खेलते हैं, कितना भी होनहार बालक क्यों न हो बुरे संग में पड़कर वह भी पतित हो जाता है। बच्चों का ग्रहणशील किन्तु विवेकहीन मस्तिष्क शीघ्र ही बुराइयों की ओर आकर्षित हो जाता है। बच्चों में बुराइयों की जड़ अधिकतर बुरे साथियों से ही जमती है।

बच्चों को बिगाड़ने में कई सामाजिक बुराइयों का भी काफी महत्त्व है। इनमें गन्दे सिनेमा, दूषित अश्लील साहित्य, गलत सामाजिक मान्यता, परम्पराएँ आदि मुख्य हैं।

सिनेमा का बच्चों की भावनाओं को दूषित कर उन्हें बुराइयों की ओर प्रवृत्त करने में बड़ा हाथ है। मद्रास के एक समाजशास्त्री रामास्वामी अय्यर ने बाल-अपराधियों की जाँच करके अपनी रिपोर्ट में लिखा है—"सिनेमा बाल-अपराध का एक बहुत बड़ा कारण है।" यहाँ तक कि धार्मिक फिल्मों में भी अश्लीलता, अशिष्टता की बहुतायत होती है। तथाकथित सामाजिक चलचित्र तो और गये-बीते होते हैं। फिर इनसे बच्चों में अपराध प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है। इसीलिए उक्त समाजशास्त्री ने सुझाव दिया है कि बाल-अपराधों को मिटाने के लिए अन्य उपायों के साथ-साथ चल-चित्रों के प्रति काफी कड़ाई बरतनी चाहिए। ऐसी फिल्में जिनमें काम, प्रेम, अश्लील, अर्द्धनग्न, भड़कीली वेष-भूषा, हाव-भाव, तड़क-भड़क की प्रधानता होती है, बच्चों के कोमल मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव डालती हैं। बच्चे भी वैसा ही करने लगते हैं और इस अभ्यास में उन्हें अपराधी जीवन का मार्ग अपनाना पड़ता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अधिकांश फिल्मों का प्रभाव बच्चों में वासनामय जीवन का सूत्रपात कर देता है।

गन्दे उपन्यास, कहानियाँ, भद्दी तस्वीरें, बच्चों की अपराध प्रवृत्तियों को जगाते हैं, बुद्धि तथा चरित्र को भ्रष्ट करते हैं। वस्तुतः बच्चों को अपराध की नियमित शिक्षा गन्दे साहित्य से ही मिलती है। ब्रिटेन के अपराधशास्त्रियों ने कुछ दिनों पहले बाल-अपराध के कारणों पर प्रकाश डालते हुए बताया है—"सिनेमा में दिखाई जाने वाली हिंसात्मक, क्रूर, अश्लील घटनाएँ बच्चों को अपराधी बनाने के लिए बहुत कुछ उत्तरदायी हैं।"

हमारे समाज का संकीर्ण दृष्टिकोण जिसके अनुसार कोई बच्चा तनिक-सी गलती कर बैठे तो फिर उसे बुरा मान लिया जाता है, उसके प्रति बुरी धारणा बना ली जाती है और बात-बात में उसे अपमानित किया जाता है, इससे भी बहुत-से बच्चे अपराधी जीवन की ओर प्रेरित हो जाते हैं। भूल करना मनुष्य का जन्मजात स्वभाव है। प्रारम्भ की गई गलतियों को भुलाकर बच्चों के प्रति सौम्य व्यवहार रखने पर वे सुधर सकते हैं।

बहुत-से बच्चे अपने आप में अपराधी नहीं होते वरन् एक अपराधी बच्चों के समुदाय की प्रेरणा अथवा दबाव से बुराइयाँ करते हैं। प्रत्येक स्थान पर ऐसे बच्चों का एक समूह अवश्य होता है, जो अन्य सीधे-सादे, सरल बच्चों को बहला-फुसलाकर या धमकाकर बुरे कर्मों के लिए प्रेरित करते हैं।

बहुत-सी शिक्षण संस्थाओं में अध्यापकों के गलत आचरण के कारण भी बच्चों में बुराइयाँ पैदा हो जाती हैं। जो अध्यापक बच्चों के समक्ष धूम्रपान करते हैं, ताश, चौपड़ आदि खेलते हैं, अपने मित्रों के साथ गपशप और अश्लील बात-चीत करते हैं, उनसे बच्चे क्या सीख सकते हैं ? इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपने शिक्षकों की नकल करके बच्चे भी वैसा ही करने का प्रयत्न करने लगते हैं। बहुत-से अध्यापक बच्चे की किसी शारीरिक या मानसिक कमजोरी को महत्त्व देकर उन्हें तिरस्कृत करते हैं, अपशब्द कहते हैं या उनकी उपेक्षा करते हैं। परिणाम यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होता है कि बालक के मन में एक तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है और वह कई गलत कार्यों, बुराइयों में फूट निकलती है। बच्चा स्कूल में केवल अक्षरीय ज्ञान ही प्राप्त नहीं करता वरन् उस चरित्र और आदर्श को भी ग्रहण करता है, जो अध्यापकों और अपने सहपाठियों के जीवन से उसे मिलता है। यही कारण है कि बहुत-से बच्चे जो प्रारम्भ में बहुत ही भले होते हैं, स्कूल-कॉलेजों में जाने के बाद बिगड़ जाते हैं।

बालकों को अपराधी बनाने वाला— अपराधी समाज

किसी भी बालक को अपराधी कहने से पूर्व यह अवश्य सोच लेना चाहिए कि उस अपराध का उत्तरदायी केवल बालक ही है या जिस समाज और वातावरण में वह पला है, वह भी इसका जिम्मेदार है।

कोई भी शिशु जन्मतः स्वभावतः अपराधी नहीं होता, चाहे वह मानव जगत् का हो अथवा पशु जगत का। मानव शिशु और पशु शिशु परस्पर गहरे दोस्त हो सकते हैं लेकिन दो सजातीय बालक परस्पर अच्छे सम्बन्ध नहीं बना पाते। निर्दोष बालक को ऐसी विकृति के लिए उत्तरदायी ठहराना प्रौढ़ लोगों का, अभिभावकों का, अध्यापकों का सबसे बड़ा अपराध है।

बिगड़े हुए बच्चे या समस्यामूलक बच्चों का अध्ययन करते समय हमें एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि कोई भी शिशु एक विशिष्ट वातावरण में जन्म लेता है और उसे वातावरण की भाषा एवं व्यवहार का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। उस समय वह एक कोरी कापी की तरह होता है। उसे यह भी ज्ञान नहीं कि जिसने उसे जन्म दिया है उसे क्या कहना चाहिए ? उसे जो कुछ सिखाया जाता है, उसे सीखता है और जो कुछ सीखता है वह वही होता है जिसे वह अपने चारों ओर होते देखता है।

व्यक्तिगत सम्पत्ति के सिद्धान्त पर संगठित राजनीतिक और आर्थिक ढाँचे वाले समाज में यह बात तो साफ तौर पर प्रकट होती है कि वह एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से जिस सम्बन्ध सूत्र से जुड़ा होता है, वह स्नेहिल या प्रिय कतई नहीं होता। इसके विपरीत यह सम्बन्ध दुःखदायी और अपमानजनक होता है। मनुष्य-मनुष्य के बीच आर्थिक खाई इतनी गहरी है कि उसे कोरी भावुकता, दिखावटी प्रेम या सम्मान से नहीं भरा जा सकता।

आज की परिस्थिति में एक मजदूर अपने मालिक से प्रेम नहीं कर सकता, एक क्लर्क अपने 'बौस' की चापलूसी भर कर सकता है मगर सम्मान नहीं। वह हो भी कैसे सकता है ? सच्चे मानवीय व्यवहारों या सम्बन्धों का आदान-प्रदान तो दो समान स्तर के मनुष्यों में ही हो सकता है। यदि दो मनुष्यों के सम्बन्धों का कारण आर्थिक नहीं तो वही सम्बन्ध मानवीय और सच्चा तो होना ही चाहिए।

इसी आर्थिक अन्तर को समाज की बस्तियाँ, स्कूल और सरकारी संस्थाएँ व्यक्त करती हैं। एक ही शहर की दो बस्तियों में कितना अन्तर होता है ? एक ही शहर के दो स्कूलों में कितना अन्तर होता है ? एक ही शहर की दो सरकारी संस्थाओं में कितना अन्तर होता है ? परिवार, समाज और सरकारी संस्थाओं का यह परस्पर संघर्ष और दूरियाँ अभिभावकों को जिस रूप में प्रभावित करती है। उसी प्रकार उनके शिशुओं को भी।

एक बालक यह सोचता है कि—मैं मजदूर का लड़का हूँ, दूसरा सोचता है कि मैं मालिक का लड़का हूँ दोनों एक-दूसरे से बातें करने में हिचकिचाते हैं, दोनों एक-दूसरे के लिए अजनबी हैं और एक-दूसरे से घृणा करने लगते हैं। संशय, घृणा और अजनबीपन की इस प्रवृत्ति को कोई नहीं रोक सकता, जब तक परिवार, समाज और राज्य की दूरियाँ नहीं मिट जातीं, शहर और गाँव का फर्क कम नहीं होता। जब तक व्यक्तिगत सम्पत्ति पर आधारित ढाँचा तोड़कर, समाजवादी ढाँचा निर्मित नहीं कर लिया जाता, तब तक स्वस्थ शिशु को स्वस्थ मनुष्य के रूप में विकसित कर पाना असम्भव है।

व्यक्तिगत सम्पत्ति की वृद्धि करने के लिए रात-दिन दस गुना या सौ गुना मुनाफा कमाने के लिए होड़ लगी हुई है। छोटे-मझोले पूँजीपति इसमें एक ओर तो मालामाल हो उठते हैं, दूसरी ओर मजदूर 'भूख-भूख' चिल्लाते हैं। कोई हजार-हजार रुपये वेतन पाता है तो लाखों-करोड़ों लोग बेरोजगारी का शिकार होकर सड़क पर धूल फाँकते फिरते हैं। कहीं भी किसी तरह का सामंजस्य नहीं रह गया।

ऐसे समाज में शिशु के लिए जो वातावरण मिलता है, उसकी रूपरेखा कितनी भयावनी और अमानवीय होगी, इसकी कल्पना करना किसी भी अभिभावक के लिए कठिन नहीं होना चाहिए।

बिस्तर भिगो देना यानी शिशु का सोते में मूत्र-त्याग कर देना मनोविज्ञान की दृष्टि में एक मनोविकार का संकेत करती है। मनोविज्ञान में जिस तथ्य पर गम्भीरता से विचार किया जाना है, उस पर अभिभावक ध्यान ही नहीं देते, ऊपर से मारना-पीटना आम बात है। कटी पतंग के लिए बच्चों के झुण्ड के झुण्ड जिस तरह झपटते हैं उससे उनकी मनोवृत्ति का पता चलता है। उनमें सामूहिक प्रवृत्ति के बदले व्यक्तिवादी प्रवृत्ति जोर पकड़ती है, जो किसी भी समाज के लिए भयंकर साबित हो सकती है।

परीक्षाओं में उपयोग की जाने वाली पद्धति, बालकों को परस्पर एक-दूसरे का प्रतियोगी बनाने में सहायक होती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। इससे एक ओर स्पर्द्धा से बच्चे पढ़ते हैं तो दूसरी ओर प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणियाँ बन जाने से इन बालकों के जीवन के भविष्य को निर्धारित करना व्यवस्था के दोषों में एक और बड़ा दोष है।

इससे न केवल बालकों में ही परस्पर द्वन्द्व बढ़ता है, बल्कि छात्रों और अध्यापकों के बीच भी तनाव बढ़ता है। तीन घण्टों में ही विद्यार्थी को उत्तर-पुस्तिका पर अपनी योग्यता दिखानी पड़ती है, जिससे उसकी योग्यता का पूर्ण प्रकाशन नहीं हो पाता। परीक्षा के इन्हीं परिणामों पर जीवन की सफलता और असफलता को निर्भर कर देने से, छात्रों में संशय, घबराहट, नकल करने की प्रवृत्ति जोर पकड़ती है और कभी-कभी इसके इतने भयंकर परिणाम निकलते हैं कि अच्छे अंक न पाने पर या परीक्षा में असफल हो जाने पर उन्हें आत्म-हत्या ही करते देखा गया है।

उनके अन्दर यह भावना भर दी जाती है कि इस समाज में फेल हो जाना मृत्यु के बराबर है। अच्छी नौकरी नहीं मिलेगी, सम्मान प्राप्त नहीं होगा, अतः वे आत्मघात या रोकने वाले के आत्महत्या जैसे बुरे विचारों की ओर प्रेरित होते हैं।

किसी भी बालक को अपराधी कहने से पूर्व यह सोच लेना चाहिए कि वह किसी पवित्र समाज में पैदा नहीं हुआ है। उसके जन्म लेने के पहले ही वातावरण में अपराध के विभिन्न रूप उपस्थित रहे हैं। चोरी के अनेक रूप, व्यभिचार के अनेक रूप, बेईमानी, घूसखोरी और वेश्यावृत्ति के अनेक रूप समाज में पहले से ही मौजूद हैं। ये सब बालक के साथ जन्म से ही नहीं आते।

यदि समाज में से बाल अपराधों को मिटाना है तो इस ओर पहले उनके अभिभावकों को बढ़ना चाहिए। जब तक वे स्वयं को नहीं सुधार पाते तब तक बालकों को सुधार पाना असम्भव है। बालक तो बड़ों का प्रतिबिम्ब होता है। जैसा बड़ों को करता देखता है, उसी की प्रतिछवि वह उनको दिखा देता है। इस पर भी अगर बालकों को अपराधी कहा जाता है, तो वह समाज को धिक्कारने भर की बात है।

बढ़ते हुए बाल अपराध

दिनों-दिन बढ़ते हुए बाल अपराध हमारे सामाजिक जीवन के लिए एक चुनौती हैं। छोटे-छोटे बच्चों में अपराधी प्रवृत्तियाँ संसार के सभी देशों में एक गम्भीर समस्या बन गई है। कुछ दिनों पहले समाचार-पत्रों में एक खबर प्रकाशित हुई थी जिसके अनुसार ब्रिटेन के क्लेक्टन नामक स्थान पर एक हजार से अधिक ब्रिटिश किशोरों ने हमला बोल दिया। उन्होंने कारें नष्ट कर दीं, लोगों को मारा-पीटा, दुकान और क्लबों में घुसकर सम्पत्ति को भारी नुकसान पहुँचाया, राह चलने वालों को धक्का देकर गिरा दिया। नगर में जो छुट्टी मनाने आया उसके साथ उन्होंने दुर्व्यवहार किया। शराब, तम्बाकू आदि की चोरी की। दो दिन तक सारे नगर में उत्पात मचाये रखा। पुलिस के आने पर दिन निकलते-निकलते वे शहर से भाग गये।

यह समाचार तो बाल अपराधों का एक बढ़ा हुआ रूप है. किन्तु बच्चों के जीवन में दैनिक व्यवहार की छोटी-छोटी बातों से ही अपराध की जड़ें जमती हैं। बहुत-से बच्चे घर से स्कूल का नाम करके जाते हैं किन्तु वहाँ अनुपस्थिति लगती रहती है और ये अपने दूसरे साथियों के साथ खेलते रहते हैं, घूमते हैं। कई तो स्कूल में छुट्टी की अर्जी दे देते हैं। घर के सोचते हैं बच्चा पढ़ने गया है लेकिन वह खेल-कूद के लिए घर से जाता है यह वे बहुत समय तक नहीं जान पाते।

फीस के पैसों की चाट-पकौड़ी उड़ाई जाती हैं। बहुत-से बच्चे सिनेमा, खेल, तमाशे, पतंगबाजी आदि में पैसा उड़ा देते हैं। जब पैसे की और जरूरत पड़ती है तो मित्रों से पूरा कर लेते हैं फिर घर में चोरी करने लगते हैं। ये ही बच्चे आगे चलकर जेब काटते हैं। सार्वजनिक सम्पत्ति को हानि पहुँचाते हैं।

बहुत-से बच्चों में अपने साथी, भाई-बहिन आदि को मारने-पीटने की आदत पड़ जाती है। लेकिन यही प्रवृत्ति आगे नृसंश हत्या, मार-पीट, छुरा भोंकने, जैसी बुराइयों में बदल जाती है। एक लम्बे अभ्यास के बाद उनका ऐसा स्वभाव बन जाता है कि दूसरों को मारने-पीटने, पीड़ित करने में उन्हें आनन्द आने लगता है। वे अकारण ही इस तरह की हरकतें करने लगते हैं। चौदह वर्षीय एक लड़के ने आठ वर्षीय एक लड़के को पेड़ से लटकाकर मार दिया। पूछने पर उसने बताया "मेरे मन में ऐसी ही तरंग उठी थी।"

अमेरिका में सेक्रामेंटों नामक स्थान पर चौदह वर्ष के एक लड़के ने दस वर्षीय एक लड़की को हथौड़े की चोट से मार दिया, इसलिए कि "किसी को मार देने की उसकी इच्छा तीव्र हो उठी थी।" एक पन्द्रह वर्षीय किशोर ने एक लड़की को छुरा भोंककर मार डाला। लड़की जब तड़पते हुए प्राण त्याग रही थी तब लड़का बड़ा प्रसन्न हो रहा था। पूछने पर उसने बताया कि "बहुत दिनों से किसी के छुरा भोंक देने की मेरी इच्छा प्रबल हो रही थी।" इस तरह के अनेकों उदाहरण हमारे सामने आया करते हैं जिसमें लड़के-लड़कियाँ बिना मतलब ही अपने साथियों को, दूसरे बच्चों को मारते-पीटते हैं। उक्त नृशंस घटनाओं की शुरूआत प्रारम्भ में मामूली मार-पीट से ही होती है।

माता-पिता, अभिभावकगण, अध्यापक आदि की आज्ञा न मानना, उन्हें परेशान करना, दुर्वचन कहना, उन्हें दुःखी-पीड़ित देखने में प्रसन्नता का अनुभव करने की प्रवृत्तियाँ भी बच्चों में दिनों-दिन बढ़ती जा रही हैं। छोटे-छोटे बच्चों तक में ये प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और ये ही आगे चलकर उनका अपमान करने, लड़ने-झगड़ने यहाँ तक कि हत्या तक कर देने में बदल जाती हैं।

समाज में फैले हुए यौन अपराध, बलात्कार, अपहरण आदि की प्रारम्भिक प्रवृत्तियाँ बचपन से ही शुरू होती हैं। छोटे-छोटे बच्चों में भी कामुक प्रवृत्तियाँ सहज ही देखी जा सकती हैं। अभिभावकों को पता भी नहीं चलता है कि बच्चों में यौन भावनाएँ जाग्रत हो जाती हैं और उन्हें शान्त करने के लिए वे तरह-तरह के गलत मार्ग अपनाते हैं। बचपन से ही कामुक रोगों से पीड़ित हो जाने वाले बच्चों के दूषित जीवन की सहज ही कल्पना की जा सकती है। जब ये समाज में भयंकर यौन अपराधों को जन्म देते हैं।

इनके अतिरिक्त बाल-जीवन में बढ़ती जा रही हिंसा, क्रूरता, गुण्डागर्दी, नशेबाजी, आवारापन मानव-समाज के लिए एक गम्भीर समस्या है। बाल अपराध इस तरह बढ़ रहे हैं कि उनका अनुमान कर सकना मुश्किल है। विभिन्न देशों में बाल अपराधों के लिए सर्वेक्षण होता रहता है किन्तु कहीं की भी रिपोर्ट पूर्ण नहीं है। वस्तुतः बच्चों के जीवन में अधिक हाथ रखने वाले माँ-बाप अभिभावकगण ही जब इन्हें नहीं जान पाते तो बेचारी सरकार क्या जानेगी ? वह तो इने-गिने जो प्रकट हो चुके हैं, उन्हीं तथ्यों का पता लगा पाती है। फिर भी जो आँकड़े मिले हैं वे सनसनीखेज हैं। उत्तर प्रदेश में पिछले दिनों एक सर्वे के अनुसार कुल कैदी २४२९४३ थे, जिनमें बाल-अपराधियों की संख्या २३५९ थी। बम्बई प्रदेश में दण्डित अपराधी १३१७८ थे, जिनमें बाल-अपराधियों की संख्या ८४७ थी जबकि बम्बई, मद्रास तथा बहुत-से राज्यों में बाल-अपराधियों को जेल में नहीं रखा जाता। वैसे बम्बई में बाल-अपराधी अदालतों और संस्थाओं के सर्वे के अनुसार वहाँ कुल ६८१५ पुरुष बाल-अपराधी तथा २५१४ कन्या अपराधी थे। वर्तमान में यही संख्या बढ़कर क्रमशः ७७९० और २६९९ हो गई। इसी तरह विभिन्न प्रदेशों में भी कुछ न कुछ आँकड़े अवश्य होंगे लेकिन वे उपलब्ध नहीं हुए।

ये तो वे आँकड़े हैं जो पुलिस की निगाह में आये हैं, जिनकी संख्या नगण्य है किन्तु हमारे दैनिक जीवन में जरा सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो छोटे-छोटे बच्चों के आचार-विचार, रहन-सहन, बोलचाल, व्यवहार में तरह-तरह की बुराइयाँ घर करती जा रही हैं, जो हमारी भावी पीढ़ी की स्थिति को सूचित करती हैं।

बाल-अपराधों के विदेशी आँकड़े भी इस सम्बन्ध में आँखें खोल देने वाले हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में बाल-अपराध विशेषज्ञ मोंटगोमरी हाइड के अनुसार प्रति वर्ष १० लाख बाल-अपराधी होते हैं, जो वहाँ के कुल अपराधों की आधी संख्या है। एक रिपोर्ट के अनुसार ब्रिटेन में इन दिनों १४ से १६ वर्ष के बच्चों में शराब पीकर उन्मत्त हो जाने का अपराध ८ गुना बढ़ गया और १७ से २० वर्ष के युवक-युवतियों में चौगुना। इसी तरह हिंसात्मक बाल-अपराधों की संख्या दुगुनी-तिगुनी तक हो गई। इसी तरह अनैतिक-यौन अपराधों की संख्या भी बहुत बढ़ गई है।

एक रिपोर्ट के अनुसार सन् १९६५ में न्यूयार्क के ९०० स्कूलों में से सितम्बर-अक्टूबर माह में ५४४ लफंगे विद्यार्थियों को निकाला, जो इस तरह के उद्दण्ड छात्र-छात्राओं की संख्या का केवल एक प्रतिशत ही था।

इस तरह मानव समाज में बाल-अपराध एक बहुत बड़ी समस्या बन गये हैं। इससे हमारी समाज व्यवस्था ही सदोष नहीं बनती, उल्टे आने वाली योग्य और उत्तरदायी पीढ़ी का भी भविष्य अँधेरे में पड़ गया है। अपराधों की छूत बच्चों में बड़ी जल्दी लगती है। जाने-अनजाने एक को देखकर दूसरा बालक भी वैसा ही गलत आचरण करने लगता है। बच्चों की ग्रहणशील वृत्ति होती है। फिर आवश्यकता इस बात की है कि समाज के सभी हितचन्तकों को, अभिभावकों को इस बुराई की ओर ध्यान देना चाहिए। बच्चों को केवल खिलाने-पिलाने या शिक्षा दिलाने में ही अपना कर्त्तव्य पूरा न समझकर उन्हें अपराधी जीवन से बचाये रखना, बुराइयों में प्रवृत्त न होने देना भी आवश्यक है। बाल-अपराधों को रोकने में जितना घर वाले सफल हो सकते हैं, उतना और कोई नहीं।

बाल अपराध बढ़े तो राष्ट्र गिर जाएगा

राष्ट्र का भावी विकास और निर्माण आज के व्यक्तियों पर उतना अवलम्बित नहीं है जितना कल की पीढ़ी पर। विशाल स्तर पर चल रहे कार्यक्रमों का आधार स्तम्भ हमारे बालक हैं। जिनके लिए अनेक योजनाएँ बनाते हुए चले जा रहे हैं। जिस आधार स्तम्भ पर यह निर्माण कार्य चल रहा है वही विशृंखलित, अस्त-व्यस्त और कमजोर हुआ तो ऐसी हजार योजनाएँ बनें लाभ कुछ न होगा, राष्ट्र उठेगा और उठकर गिर जायेगा। निर्माण का भवन बनेगा और बनकर धराशायी हो जायेगा।

जंगलों के बीच बसे हुए गाँवों से लेकर शहर के विद्यार्थियों तक उद्दण्डता, उच्छृंखलता और अनुशासनहीनता आज बिलकुल सामान्य हो गई है। उनके चरित्र की झाँकी लें तो छुटपन से ही अश्लीलताओं, वासनाओं, दुर्व्यसनों की दुर्गन्ध उड़ती दिखाई देगी। छोटे-छोटे बच्चों को बीड़ी पीते देखकर ऐसा लगता है कि सारा राष्ट्र बीड़ी पी रहा है। युवतियों के पीछे अश्लील शब्द उछालता है तो लगता है सम्पूर्ण राष्ट्र काम-वासना से उद्दीप्त हो रहा है। अपराधी बालकों ने आज सारे समाज को ही कलंकित करके रख दिया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न अभिभावकों के प्रति सम्मान और श्रद्धा और न समवयस्कों के साथ प्रेम और सहयोग। अध्यापक और बाजार में बैठे दुकानदार उनके लिए एकसमान हैं। कुछ शेष रहा है तो फैशन, शौकीनी, सिनेमा, ताश, चौपड़ और मटरगस्ती।

बाल-अपराध के आँकड़े उठाकर देखते हुए हाथ काँपते हैं, कलेजा मुँह को आता है। सन् १९५८ में यह संख्या १५ हजार थी जबकि इनसे कई गुने प्रकाश में नहीं आये हुए होंगे या जान-बूझकर छुपा दिये गये होंगे। सन् १९६१ में यह संख्या बढ़कर ३३ हजार तक पहुँची और विगत चार वर्षों में भी इसी क्रम से अपराध हुए होंगे तो अब यह संख्या ५४ हजार होनी चाहिए। इस दिशा में सरकारी और गैर-सरकारी तौर पर प्रयास भी किए गये किन्तु लाभ कुछ न निकला, समस्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती और उलझती ही गई।

परिपक्व व्यक्ति की मानसिक स्थिति का अनुमान करना आसान होता है। अतः उन्हें दण्ड से भी, शिक्षा से भी सुधारा जा सकता है। किन्तु बाल-अपराधों का सही कारण ज्ञात करना भी कठिन कार्य है। इसलिए यह समस्या अधिक दुरुह और गम्भीर हो रही है।

हम इस समस्या का अध्ययन प्रारम्भिक स्थिति से करते हैं और बालकों के अपराध का दोषी उनके माता-पिता तथा परिवार वालों को मानते हैं। यों तो समाज-प्रवेश के बाद बालक अपनी गतिविधियों का निर्माण दूसरों को देखकर भी करता है पर यह उसकी रुचि के अनुरूप होता है और अच्छी या बुरी, विकासशील या अधोगामी रुचि की उत्पत्ति का मूल-केन्द्र बालक के माता-पिता ही होते हैं। सच कहा जाय तो पिता-माता की महत्त्वाकांक्षाएँ ही बालक की रुचि बनकर उभरती हैं और इन्हीं से उसके चरित्र का विकास होता है। 'बर्ट' तथा 'टैपन' आदि प्रमुख पाश्चात्य बाल-अपराधशास्त्रियों ने भी इस बात की पुष्टि की है कि बालक के शारीरिक व मानसिक दोष वंशानुगत होते हैं, इन्हीं का आश्रय लेकर वह अपराधों की ओर प्रवृत्त होता है। वातावरण केवल साहस पैदा करता है। पास-पड़ौस, स्कूल, मित्र, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियाँ सहयोग तो देती हैं किन्तु अपराधों का मूल कारण उनके परिवार वालों का रहन-सहन और उनकी आदतें ही होती हैं।

उदाहरण के तौर पर जिन घरों के लोग बीड़ी, सिगरेट, गाँजा, भाँग या शराब पीते हैं। उनके बालक भी इनमें से कोई नशा करना सीख जाते हैं। जिन घरों में माँस पकाया जाता है, उन्हीं घरों के बच्चे माँस खाते हैं। ऐसा बहुत कम होता है कि माता-पिता शाकाहारी हों और बच्चे माँसाहारी हो जाएँ। अवगुण अधिकांशतः वंश-परम्परा से ही विकसित होते हैं।

परिवार की निर्धनता जैसी कमियाँ, बुरे लोगों का संग, अवांछित पड़ौस, नैतिकता को गिराने वाली सिनेमा जैसी प्रवृत्तियाँ, स्कूल के अविवेकपूर्ण वातावरण आदि से भी बालक की मानसिक स्थिति का संगठन होता है किन्तु यदि माता-पिता पूर्व में बालकों में अधिक शक्तिशाली संस्कार भर सकें तो बाहरी परिस्थितियाँ उतना प्रभाव नहीं डाल सकतीं और बच्चा बुराइयों से अधिकांश बचा रह सकता है।

इस सम्बन्ध में कुछ उपयोगी सुझाव हैं, जिन्हें प्रयोग में लाया जा सकता है और उससे बालकों का चरित्रबल और मनोबल बढ़ाया जा सकता है।

जो लोग बालक की उपस्थिति में कैसा भी उचित-अनुचित कार्य किया जाना अनुचित नहीं समझते वे भूल करते हैं। उनकी यह आम धारणा होती है कि बालक अज्ञान होता है, कुछ जानता नहीं पर वस्तुस्थिति इससे बिलकुल विपरीत होती है। बालक सबसे चतुर विद्यार्थी, संवेदनशील एवं ग्रहणशील बुद्धि वाला होता है। वह माता-पिता की प्रत्येक हरकत को बड़े गौर से देखता है कि वे क्या कर रहे हैं और फिर स्वयं भी वैसी ही चेष्टाएँ दिखाता है। कभी-कभी वह प्रारम्भ में वैसी रुचि भले ही न प्रदर्शित करे तो भी उसके अन्तर्मन में वैसी ग्रन्थि बन जाती है, जो अवस्था के साथ विकसित होकर स्वभाव में परिवर्तित हो जाती है।

अपने घर से भेद-भाव की मंथरा को दूर रखें अन्यथा वह राम और भरत का संग्राम उठा देगी। एक बच्चे को अधिक प्यार दूसरे को कम। पढ़ने वाले बच्चे को अच्छे कपड़े और जो घर में रहता है उसे कम अच्छे कपड़े—आप इस बात से सावधान रहें। बच्चे आप से पूरा न्याय चाहते हैं। उन्हें समानता न देंगे तो उनकी विग्रह-बुद्धि बढ़ेगी और अपराधों की दिशा में अग्रसर करेगी।

अपने व्यवहार से बच्चे को सांवेगिक असुरक्षा का शिकार न बनाइये। आपके दुर्व्यवहार से, कटुता से, छल से तंग आकर कहीं ऐसा न हो कि वह विद्रोह खड़ा कर दे। अपना जीवन संकट में डाल ले और अपनी मनोवृत्तियों को दूषित बना लें। अनुचित व्यवहार की तरह अनुचित प्यार भी करना बालक के लिए हितकर नहीं होता क्योंकि ऐसा करने से वह अपने आपका विशेष महत्त्व समझने लगता है और जब आर्थिक जीवन में पहुँचने पर उसकी इस क्षेत्र में उपेक्षा की जाने लगती है तो वह विद्रोह कर देता है और समाज के प्रति उसके भी हृदय में उपेक्षा का भाव जाग्रत हो जाता है।

बच्चे के गुण, साहस और शौर्य की प्रशंसा में कृपण मत हूजिये। इन कार्यों में प्रशंसा से उसको आन्तरिक प्रसन्नता होती है और यदि ऐसा नहीं हुआ तो वह आत्मप्रशंसा के लिए बल प्रयोग के मार्ग का अवलम्बन ले सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चे पर अविश्वास न कीजिए और उससे कुछ छुपाइये नहीं। अर्थ अनुशासन की उसे शिक्षा मिले यह तो ठीक है पर यदि उसकी पुस्तकों के लिए या फीस के लिए पैसे देने हों तो उसे टोकिये मत, न ही ऐसा विचार व्यक्त कीजिए कि वह इस पैसे का दुरुपयोग तो नहीं करेगा ? बच्चा यदि अपनी स्वाभाविक दुर्बलता के कारण कभी ऐसी गलती कर भी दे तो सुधार का एक तरीका है कि आप उसे अधिक बड़ी जिम्मेदारी दीजिए। उत्तरदायित्व सँभालने में बालक प्रसन्न भी होते हैं और इससे उनमें कर्मठता भी आती है।

उनसे कुछ छिपाना इसलिए नहीं चाहिए क्योंकि इससे उनके हृदय में भी भेद-भावना उत्पन्न होगी और मानसिक कटुता बढ़ेगी। मन असंतुलित रहा तो उसके कार्य भी असंतुलित होंगे और उससे बालक का अहित ही होगा।

अपने घर का वातावरण और बालक के प्रति व्यवहार यदि आपने दुरुस्त कर लिया तो यह समझिये कि बालक को आपने ९० प्रतिशत अपराधी प्रवृत्ति से बचा लिया। आज बाल-अपराधों में अभिवृद्धि का कारण लोगों की पारिवारिक अव्यवस्था ही है। इसमें सुधार हो जाय तो बालकों के चरित्र का विकास कोई कठिन बात न रह जाये।

शेष १० प्रतिशत अपराधों का कारण समाज की बुराइयाँ होती हैं। बच्चे को बुरे लोगों की बैठक से बचाकर सिनेमा आदि के स्थान पर साहित्यिक या अन्य कोई रचनात्मक आदत डालकर सुधारा जा सकता है। यह कार्य कोई मुश्किल कार्य नहीं। थोड़ा-सा ध्यान रहे तो बाल-अपराध बढ़ें नहीं क्योंकि इनका कारण कोई और नहीं होता। अपने उत्तरदायित्व का समुचित पालन न करने से लोग स्वयं ही अपने बालकों को अपराधी बनाते हैं तो सुधार का श्रीगणेश भी अपने आप से ही किया जाना चाहिए।

बालकों में अपराध-वृत्ति और उसके कारण

बच्चे बहुधा बड़े प्यारे लगते हैं और प्रायः यह कहा जाता है कि वे बड़े ही अच्छे हैं और उनका जीवन बड़ा ही सुखी है, परन्तु सभी बच्चों के विषय में यह बात लागू नहीं होती। कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जो वातावरण में अपने को व्यवस्थित नहीं कर पाते। ऐसे बच्चे प्रायः ऐसे व्यवहार दिखलाते हैं, जिन्हें सामान्य नहीं कहा जा सकता। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि उनमें व्यक्तित्व सम्बन्धी कुछ कठिनाइयाँ आ गई हैं। ऐसे बच्चे संवेगात्मक दृष्टि से अस्वस्थ होते हैं। यों तो कठिनाइयाँ और समस्याएँ सभी व्यक्तियों के अनुभव की वस्तु होती हैं, चाहे वे बच्चे, प्रौढ़ या बूढ़े क्यों न हों ? परन्तु संवेगात्मक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति अपनी समस्याओं का हल समाज द्वारा स्वीकृत साधनों के सहारे करना चाहता है। इसके विपरीत संवेगात्मक दृष्टि से अस्वस्थ व्यक्ति अपने आवेशवश किसी समय कुछ भी कर सकता है।

पुराने जमाने में अपराधी बालक के असामान्य व्यवहार का कारण किसी भूत-प्रेत अथवा शैतान को समझा जाता था। ऐसे बालकों से लोग डरा करते थे और कभी-कभी उनकी पूजा भी किया करते थे। इसके विपरीत उन्हें कभी-कभी मार डालने की भी चेष्टा की जाती थी। परन्तु अपराधी बालकों के प्रति आजकल ऐसा व्यवहार नहीं किया जाता। मनोवैज्ञानिक खोजों के फलस्वरूप अब उनके व्यवहार के कारण को समझने की उपयोगिता मान ली गई है। पाश्चात्य देशों में तो अपराधी-बालकों के उपचार के लिए बड़ी-बड़ी संस्थाएँ संचालित की जा रही हैं और उनसे अपराधी-बालकों का बड़ा ही उपकार होता है।

स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति न होना—अपनी अनेक स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बालक को दूसरों पर आश्रित रहना होता है, फलतः उसे दूसरों के अनुसार भी अपने को व्यवस्थित करने की चेष्टा करनी होती है। इन आवश्यकताओं का तीन प्रकार का वर्गीकरण किया जा सकता है—(१) शारीरिक—जैसे भोजन, जल, नींद तथा अन्य शारीरिक सुविधाएँ। (२) आत्मा-सम्बन्धी—जैसे दूसरों से प्रशंसा, राय तथा अपनत्व की भावना पाने की इच्छा। (३) सामाजिक—जैसे दूसरों के कार्यों में हाथ बँटाने हेतु कुछ सामाजिक कौशल प्राप्त करने की इच्छा। ये स्वाभाविक आवश्यकताएँ बालकों के विभिन्न व्यवहार और कार्यों के लिए अभिप्रेरणाएँ हो जाती हैं। इन अभिप्रेरणाओं की क्रियाशीलता में जब कभी किसी प्रकार की बाधा उपस्थित होती है तो बालक एक तनाव में आ जाता है। यदि यह तनाव गहरा हुआ और यदि उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती तो उसके व्यवहार अवांछित रुख लेने लगते हैं। स्पष्ट है कि व्यक्तित्व व्यवस्थापन इन आवश्यकताओं की समुचित पूर्ति पर निर्भर करता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयास में अभिभावकों को यह भी याद रखना है कि उनकी अत्यधिक पूर्ति भी व्यक्तित्व के सन्तुलन को उसी प्रकार बिगाड़ सकती है जैसे उनका अवदमन व्यक्तित्व के स्वास्थ्य के लिए घातक होता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बालक का स्वस्थ विकास उसकी आवश्यकताओं की सन्तुलित-पूर्ति पर निर्भर करता है। यदि बालक की शारीरिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती तो बालक के व्यक्तित्व का स्वस्थ विकास न होगा। उलझनों और परेशानियों का सामना तो सभी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बालकों को कुछ न कुछ करना ही होता है, परन्तु इनकी अवधि बहुत दीर्घ हो जाती है तो बालक अपराधी होने की ओर झुक सकता है। जैसे भोजन के न मिलने से शरीर जर्जरित होने लगता है, उसी प्रकार बालक का मन जर्जरित होने लगता है और वह धैर्य खो बैठता है। यदि उसकी इन आवश्यकताओं की सदा समुचित पूर्ति होती रहे तो समाज में सुखी बालकों की संख्या बढ़ जाये और दुःखी तथा अपराधी बालकों की संख्या घट जाये। परन्तु बालकों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती क्योंकि उनकी पूर्ति करने में प्रौढ़ों को थोड़ा आत्म-नियन्त्रण करना पड़ता है और वे इस आत्म-नियन्त्रण में सफल नहीं होते। इच्छाओं के दमन का कुपरिणाम विविध बालकों पर विभिन्न प्रकार से पड़ता है। कुछ बहुत ही साधारण बातों से अव्यवस्थित हो जाते हैं और कुछ पर बड़ी गहरी-गहरी बातों का भी विशेष प्रभाव पड़ता दिखाई नहीं देता परन्तु हमें यह तो मानना ही पड़ेगा कि सभी बालक उन आवश्यकताओं की पूर्ति चाहते हैं, जिनके लिए आज तक मनुष्य संघर्ष करता रहा है। अतः जो बालकों के प्रति उत्तरदायी हैं उनका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि बालक के साथ वैसा ही व्यवहार करें जैसा वे दूसरों से अपने लिए चाहते हैं।

अपराधी बालकों के उत्पन्न करने वाले मनोवैज्ञानिक कारणों की चर्चा के बाद हमें नीचे कारणों पर दृष्टिपात करेंगे जो घर और बाह्य वातावरण तथा व्यक्तिगत बातों से सम्बन्ध रखते हैं।

अपराधी बालकों के होने का कोई एक ही कारण नहीं हो सकता। अतः किसी अपराधी बालक को पूर्णरूपेण समझने के लिए उसकी विशिष्ट परिस्थिति का अध्ययन करना चाहिए। प्रत्येक बालक की अपनी-अपनी परिस्थिति होती है। घर, स्कूल, साथी, पड़ोसी, कार्यकाल तथा अवकाश, समय आदि सभी बातों का बालकों के व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव पड़ता है। वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर ही किसी बालक के अपराधी होने के सम्बन्ध में निर्णय कर लेना ठीक नहीं होगा, क्योंकि भूतकाल में जो हो चुका है उसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर स्थायी रूप से जमा रहता है। अतः याद रखना है कि जन्म से ही बालक अपराधी नहीं होता। उसके अपराधी होने का प्रधान कारण उसकी परिस्थितियाँ ही होती हैं। केवल बाह्य रूप के देखने से अपराधी बालक को पहचान लेना अत्यन्त कठिन है; क्योंकि किसी सामान्य बालक और उसमें बाह्यतः कोई अन्तर नहीं दिखलाई पड़ता। किसी अपराधी बालक को समझने तथा उसके उद्धार के लिए हमें उसके वंशानुक्रम, सामाजिक इतिहास तथा तात्कालिक उत्पादक परिस्थिति का अध्ययन करना चाहिए। उसके अपराधी होने में ये सभी कारण अपना-अपना योग देते हैं। स्पष्ट है कि अपराधी बालक एक सामाजिक समस्या है और समाज को दृष्टि में रखते हुए उसके सुधार के उपायों को हमें खोजना है।

अपराधी बनाने वाले घरेलू कारण—प्रायः यह सोचा जाता है कि गरीबी बालक को अपराधी बना देती है। बालक के अपराधी बनने में गरीबी का प्रभाव अवश्य पड़ता है; क्योंकि गरीबी के कारण उसकी बहुत-सी इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो पाती और अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए वह अनैतिक साधनों की ओर झुक सकता है। न्यायालय में जितने अपराधी बालक उपस्थित किये जाते हैं उनमें अधिकांश गरीब कुटुम्ब के होते हैं। परन्तु हमें यह भी याद रखना है कि धनी घर के अपराधी बालक न्यायालय में बहुत ही कम लाए जाते हैं, क्योंकि उनके अभिभावक स्वयं उस सम्बन्ध में आवश्यक उपचार करने की चेष्टा करते हैं।

माता-पिता की बेकारी के कारण बच्चे प्रायः भूखे रह जाते हैं और वे अपनी साधारण शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भीख माँगने, चोरी करने अथवा कुछ ऐसे कार्यों को करने की ओर झुक सकते हैं, जिनसे उनका नैतिक अधःपतन हो जाता है। बेकारी के कारण माता-पिता में बहुधा ऐसे झगड़े हो सकते हैं जिनसे घर का सारा वातावरण दूषित हो सकता है। ऐसी स्थिति के आ जाने पर लड़के घर को छोड़कर बाहर चले जाते हैं। बाहर जाकर वे घर की आर्थिक स्थिति को सुधारने का कुछ प्रयत्न करने में अनैतिक साधनों का सहारा ले सकते हैं।

यदि माँ को घर में छोटे-छोटे बच्चों को छोड़कर बाहर नौकरी अथवा मजदूरी करने जाना होता है तो इसका प्रभाव नियन्त्रणहीन बालकों पर बुरा पड़ सकता है। माँ की अनुपस्थिति में लड़के मनमानी करने लगते हैं और ऐसी आदतें सीख सकते हैं, जो बाद में उन्हें अपराध करने की ओर अभिप्रेरित कर सकती हैं।

अपराधी बालकों के अध्ययन में देखा गया है कि पिता के कड़े नियन्त्रण में रहने वाले लड़के बहुधा अपराधी की कोटि में आ जाते हैं। पिता के कड़े नियन्त्रण से उनकी स्वाभाविक इच्छाओं का दमन होता है इस दमन के कुपरिणाम की ओर पिता का ध्यान नहीं जाता। दमन का प्रभाव कभी स्वास्थ्यकर नहीं होता। इससे व्यक्ति अपनी स्वाभाविक इच्छाओं की पूर्ति चुपके-चुपके अनैतिक साधनों के सहारे करने की ओर झुक सकता है। पिता के अधिकारवाद का मन-ही-मन अथवा स्पष्टतः विरोध करते-करते उसमें सभी प्रकार के अधिकारियों के विरुद्ध हो जाने की प्रवृत्ति आ सकती है। इस प्रवृत्ति के कारण कोई अपराध कर बैठना उसके लिए सरल हो सकता है।

पति और पत्नी के आपसी झगड़े का बालक पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जिन घरों में ऐसे झगड़े आये दिन हुआ करते हैं, उनके लड़के अपने को अरक्षित समझने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लगते हैं। इस अरक्षित भावना को दूर करने के लिए वे चोरी करना प्रारम्भ कर सकते हैं, क्योंकि चोरी से प्राप्त वस्तुओं से वे अपनी स्थिति मजबूत बनाना चाहते हैं। यदि माता-पिता के झगड़े के कारण उन्हें घर में शान्ति नहीं मिल सकती तो वे शान्ति तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बाहर चले जाना अच्छा समझ सकते हैं। इस प्रकार का बाहर जाना उनके नैतिक विकास में बाधक हो सकता है। 'बाल निर्देशन केन्द्रों' को यह अनुभव है कि व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं वाले बालकों में घरेलू वातावरण में सुधार कर देने से स्वतः बड़े सुधार आ जाते हैं।

घर में उपमाता तथा उपपिता की उपस्थिति का बालकों के विकास पर अवांछित प्रभाव पड़ सकता है। जब उपमाता अथवा उपपिता के कारण बालक पहले जैसा प्यार नहीं पाता तो उसमें संवेगात्मक तनाव आ जाता है और वह अपराध की ओर झुक सकता है।

जिन लड़कों को घर में यथोचित प्यार नहीं मिलता उनके मन में असामाजिक भावना-ग्रन्थियाँ घर करने लगती हैं। ये भावना-ग्रन्थियाँ साधारण से उद्दीपन के उपस्थित होने पर अवांछित व्यवहार की ओर व्यक्ति को अभिप्रेरित कर देती हैं। जिन लड़कियों को घर में प्यार नहीं मिलता वे काम-भावना सम्बन्धी अनैतिक व्यवहार की शिकार हुआ करती हैं। वे प्यार और सम्मान की भूखी हो जाती हैं और जो व्यक्ति उन्हें तात्कालिक प्यार और सम्मान देने को तैयार होता है उस पर वे सब कुछ निछावर करने को तैयार हो जाती हैं। साथ ही यही लड़कियाँ आगे चलकर तानाशाही विचार की होती हैं। घर में पति, बच्चों, ससुर, सास सब पर अपनी हुकूमत चलाने की प्रबल इच्छा रखती हैं।

अत्यधिक लाड़-प्यार का भी परिणाम बहुधा अवांछित ही होता है। बच्चों की प्रत्येक इच्छा को पूरी करने की चेष्टा की जाती है और जिसके प्रत्येक इशारे पर नाचने के लिए सभी हर समय तैयार रहते हैं, उनकी दशा वास्तव में आगे चलकर दयनीय हो जाती है। घर में तो उनकी किसी प्रकार निभ जाती है, परन्तु उनका बाहर निभना अत्यन्त कठिन होता जाता है; क्योंकि बाहर समाज में उन्हें घर जैसा प्यार नहीं मिलता। ऐसे बच्चे किशोर अवस्था में जो ही मन में आता है उसी के अनुसार आचरण दिखलाने लगते हैं। 'बाल निर्देशन केन्द्रों' द्वारा अन्वेषण से पता चला है कि ऐसे लड़के बहुधा चोरी के अपराधी पाए जाते हैं।

जिन घरों में शराबखोरी, अनैतिकता तथा निर्दयता का वातावरण बना रहता है उनके लड़के बहुधा विभिन्न प्रकार के अपराध करते पाए जाते हैं। यह इतनी स्पष्ट बात है कि इसके लिए उदाहरण की आवश्यकता नहीं। कुछ ऐसे गरीब, अनैतिक और निर्दयी माता-पिता होते हैं जो अपने बच्चों को भीख माँगने अथवा चोरी करने के लिए विवश किया करते हैं।

कुछ अन्य कारण—प्रायः प्रत्येक शहर में कुछ ऐसे क्षेत्र होते हैं, जिनमें विशेषतः ऐसे गरीब लोग रहते हैं जिनकी रहन-सहन को नैतिक नहीं कहा जा सकता। ऐसे लोगों के घरों के लड़के प्रायः अनैतिक कामों में लग जाते हैं; क्योंकि उनका वातावरण ही बड़ा अनैतिक होता है। मनोरंजन के लिए बुरे स्थान, जुआ खेलने का स्थान तथा वेश्यालय आदि उनके अनुभव के अंग होने लगते हैं; क्योंकि वातावरण में उपस्थित इन स्थानों का प्रभाव उनके चरित्र पर पड़े बिना नहीं रहता।

अपराधी बालकों के अध्ययन से पता चला है कि एक बालक दूसरों को किसी अनैतिक कार्य में लगने के लिए उत्साहित करता है और अन्य अपराधी बालक अपना एक समूह बनाकर अनैतिक व्यवहार के भागी होते हैं। यह अनैतिक व्यवहार ऐसा होता है, जिसे कदाचित् कोई बालक अकेले करने का साहस न करता। ऐसे अनैतिक व्यवहार में रेलगाड़ी पर पत्थर फेंकना, बिना टिकट रेलयात्रा करना, वर्जित जलाशयों में तैरना, वर्जित स्थानों में ऊधम मचाना तथा कहीं आग लगा देना आदि हो सकते हैं।

इन सामूहिक अनैतिक व्यवहार से यह जान पड़ता है कि यदि इन बालकों को अपने अवकाश-काल को बिताने का समुचित और स्वास्थ्यकर साधन दिया जाता तो कदाचित् वे ऐसे कार्यों में न लगते। अतः समाज का यह कर्त्तव्य है कि वह बालक के अवकाश-काल के उपयोग के लिए उचित साधनों का आयोजन करें।

फैक्ट्री में काम करने वाले बालकों की भी दशा दयनीय होती है। फैक्ट्री में उन्हें मशीन की तरह काम करना होता है। उनकी सभी कोमल भावनाओं पर तुषारापात हो जाता है। फलतः वे फैक्ट्री में कार्य करने के बाद अनैतिक रूप में अपने अवकाश-काल को बिताने की ओर झुकते हैं। अपने मनोरंजन के लिए वे अवांछित स्थानों, सिनेमाघर, ताड़ीखाना, वेश्यालय, जुआघर को जाते हैं। इन स्थानों का उनकी नैतिकता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

धुआँधार जहरीले प्रचार—बालकों को अनैतिकता की ओर प्रेरित करने में आज के जहरीले, गन्दे प्रचार साधनों का बहुत बड़ा हाथ है। कोई भी शहर ऐसा नहीं है जहाँ सैकड़ों प्रकार की बीड़ी, तम्बाकू के प्रचार वाहन, अश्लील गीत गाते हुए अपने माल का प्रचार करते हुए न मिलें। जनसाधारण का मन अपनी ओर लुभाने के लिए ये सब कुछ नैतिक-अनैतिक करने में तनिक भी संकोच नहीं करते। प्रायः यह देखा जाता है कि अपने साथ नाचने वाले लौंडे रखते हैं, वे विचित्र ढंग से अपने को सजाये रहते हैं। विचित्र प्रकार के हाव-भाव दिखाकर, आँखें मटकाकर गन्दे और अश्लील, कामुकता उत्पादक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गीत गा-गाकर प्रचार करते हैं। इन्हें देखते ही मुहल्ले के बच्चे उस जगह एकत्रित हो जाते हैं। बच्चों का कोमल हृदय इनकी अश्लीलता को शीघ्र ग्रहण करता है। कुछ रंगे रँगाये पोस्टर भी पा जाते हैं। थोड़ी देर प्रचार करके मोटर तो आगे बढ़ जाती है मगर उनकी छाप इन बच्चों पर पड़ती है। वे इसी ढंग से उन्हीं गीतों को दोहराते हैं। परिणाम यह होता है कि उनके विचार तो दूषित हो ही जाते हैं साथ ही वे बचपन से ही नशीली वस्तुओं का सेवन प्रारम्भ कर देते हैं। समाज की नैतिकता पर इन अनियन्त्रित प्रचार साधनों ने बड़ा घातक प्रभाव डाला है। यदि समय रहते इन्हें रोका न गया तो अच्छाई की ओर ले जाने वाले सारे साधन इनके सामने निष्फल हो जायेंगे। इस ओर सबसे अधिक ध्यान देने का कार्य सरकार का है। जिस तरह अफीम के खुले व्यापार ने सारे चीन देश के निवासियों को अफीमची और काहिल बना दिया था, उसी प्रकार का खुला प्रचार भारतवासियों को बीड़ी-सिगरेट तम्बाकू का अभ्यासी बना देगा। आज नगर तो नगर ही हैं, गाँव के ८० प्रतिशत बच्चे दस वर्ष से पहले ही नशीली वस्तुओं का सेवन प्रारम्भ कर देते हैं।

इस प्रचार साधन में सिनेमा का हाथ सबसे अधिक है। एक नगर में जितने सिनेमा होते हैं, सबके नये चलचित्रों का रोज सजधज कर जुलूस निकलता है। आप देखेंगे इस जुलूस के साथ सबसे अधिक संख्या बच्चों की होती है। सिनेमा का प्रचारक आगे-आगे लाउडस्पीकर से खेल की प्रशंसा करता जाता है, परचे बाँटता है और बच्चे पीछे-पीछे दौड़ते जाते हैं। इनके जुलूसों को ये ही बच्चे सफल बनाते हैं। इनके कोमल हृदय सूक्ष्म रूप से बुराई को ग्रहण करते रहते हैं और अनैतिकता की ओर तेजी से कदम बढ़ाते जाते हैं।

व्यक्तिगत कारण—किसी शारीरिक दोष के कारण बालक का कोई अनैतिक व्यवहार दिखलाना अवश्यम्भावी नहीं। परन्तु शारीरिक दोष के कारण जो वह दूसरों का व्यंग्य सुना करता है, उससे उसमें असामाजिक व्यवहार दिखलाने की प्रवृत्ति आ सकती है। उदाहरणार्थ, जो बालक सदैव बीमार रहा करता है, उसमें एक प्रकार की आत्महीनता की भावना आ सकती है और वह उन बालकों के प्रति विरोध भावना ला सकता है, जो प्रायः स्वस्थतर होते हैं। ऐसे बालक अन्य बालकों के समूह में अपने से कमजोर बालक को तंग कर सकते हैं अथवा दूसरों को चिढ़ाना आरम्भ कर सकते हैं, अतः उन्हें अपने व्यवस्थापन में बड़ी कठिनाई का सामना करना होता है। दोनों को अपनी उम्र वाले बालकों के साथ निभाना कठिन हो जाता है। मन्दगति से विकसित होने वाला बालक अपने को छोटा और तीव्र गति वाला अपने को बड़ा पाता है। ऐसी स्थिति में दोनों में एक प्रकार का ऐसा मानसिक असन्तोष उत्पन्न होता है, जिससे अनैतिक व्यवहार की ओर झुकना कठिन नहीं होता। तीव्र गति से विकसित होने वाला बालक अपने से छोटे बालकों को विविध प्रकार से तंग कर सकता है और मन्दगति वाला अपनी आत्महीन भावना के प्रति प्रक्रियास्वरूप अनैतिक व्यवहार दिखला सकता है। बहुत-से अन्वेषकों का कहना है कि दोष युक्त व्यवहार और मानसिक विकास की मन्दता में घनिष्ट सम्बन्ध है। इस घनिष्ट सम्बन्ध की यहाँ व्याख्या करना हमारे क्षेत्र से बाहर की बात है। परन्तु इस सम्बन्ध में इतना कह देना आवश्यक है कि मन्द बालक में अनैतिक प्रलोभनों से अपने को बचाने की सामान्य बालकों की अपेक्षा कम सामर्थ्य होती है। अतः समाज का यह कर्त्तव्य है कि ऐसे बालकों की रक्षा के लिए आवश्यक उपायों का आयोजन करें।

अपराधी बालकों के उपचार के सम्बन्ध में बेकर फाउण्डेशन, बोस्टन, यू. एस. ए. ने कुछ सुझावों का प्रतिपादन किया है। इन सुझावों का नीचे संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है—

१. बालक की रुचियों के साथ माता-पिता की सहानुभूति का भी अध्ययन करना चाहिए। २. माता-पिता को अपने व्यवहार में अपराधी बालकों के प्रति कड़ा नहीं होना चाहिए। ३. बालक की शारीरिक और मानसिक लीलाओं को समझना चाहिए। ४. निर्दयतापूर्ण व्यवहार को बन्द करना चाहिए। ५. कोसना, तरह-तरह की बातें कहना, धिक्कारना बन्द करना चाहिए। ६. ऐसे बच्चों को हर अवसर पर कुछ रियायतें देना चाहिए। ७. माता-पिता को अपने उत्तरदायित्व को निभाना चाहिए। ८. बालक के अपराध को मामूली न समझना चाहिए। ९. कौटुम्बिक गलतफहमी को दूर करना चाहिए। १०. काम सम्बन्धी भावनाओं के प्रति माता-पिता को मनोवैज्ञानिक और स्वस्थ विचार रखना तथा इस सम्बन्ध में बालक और बालिकाओं की जिज्ञासा को शान्त करना। ११. उचित घरेलू वातावरण उत्पन्न करना चाहिए। १२. कुटुम्ब के अन्य सदस्यों के अनैतिक व्यवहार को बन्द करना चाहिए। १३. कुटुम्ब के उन सम्बन्धियों को निकाल देना चाहिए, जिनका बालकों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

बालकों की अपराध प्रवृत्ति को रोकने के लिए किसी एक ऐसे उपाय की चर्चा नहीं की जा सकती, जो हर स्थिति में लागू हो, क्योंकि उनकी अपराध प्रवृत्ति के कई कारण होते हैं। इस सम्बन्ध में रुचि रखने वालों को सभी उपलब्ध साहित्य से परिचित होना चाहिए, जिससे इस सम्बन्ध वाली आधुनिक विचारधारा से वे अवगत रहें।

अपराध प्रवृत्ति को रोकने का कार्य बालक के जन्म के पूर्व ही प्रारम्भ कर देना चाहिए। शिशु के गर्भ में आ जाने के बाद माता को स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जन्म के बाद लालन-पालन इस प्रकार का हो कि शिशु अच्छी ही आदतों को अपनाए। इस सम्बन्ध में नर्सरी स्कूलों की उपयोगिता से इनकार नहीं किया जा सकता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बाल अपराध—कारण और निवारण

अपराधी प्रवृत्तियाँ हर आयुवर्ग के व्यक्ति के लिए आत्मघाती हैं। उसकी बढ़ोत्तरी न केवल कर्त्ता के व्यक्तित्व की प्रामाणिकता गिराती है, वरन् जनसहयोग से वंचित रखकर पिछड़ी परिस्थितियों में पड़े रहने के लिए विवश करती है। आतंक से सामाजिक व्यवस्था एवं प्रगति में भी बाधा पड़ती है इसलिए अपराधियों के लिए सामाजिक भर्त्सना और शासकीय प्रताड़ना का प्रचलन भी है।

व्यक्तिगत विकास व सामाजिक सन्तुलन के लिए जहाँ अन्यान्य प्रयास किये जाते हैं, वहाँ अपराधों की रोकथाम का भी महत्त्व समझा जाता है और इस सम्बन्ध में कुछ न कुछ सोचा और किया भी जा सकता है। किन्तु देखते हैं कि इस सन्दर्भ में अपनाये गये उपाय-उपचार कारगर सिद्ध नहीं हो रहे हैं और रोकथाम के कानून तथा कर्मचारी अधिकारी बढ़ने पर भी स्थिति सुधरने के स्थान पर बिगड़ती ही जा रही है। हर वर्ष अपराधों की घटनाएँ घटती ही नहीं वरन् पिछले दिनों की अपेक्षा अधिक विकराल बनकर सामने आ खड़ी होती हैं।

इस प्रसंग में बढ़ते हुए बाल अपराधों को सबसे अधिक चिन्ता का विषय माना जाता है। कारण कि बड़ी आयु वालों में अपेक्षाकृत अधिक समझदारी तथा सावधानी रहने के कारण वे एक सीमा तक ही कुकृत्यों को अपनाते हैं और दबाव पड़ने पर उनके सुधरने-बदलने की भी सम्भावना रहती है। पर छोटी आयु के बालक यदि किसी ढाँचे में ढलने लगें तो उनका स्वभाव ही वैसा बदल जाता है। आयु बढ़ने के साथ-साथ आदत भी परिपक्व होती है। यह तथ्य बुरी आदतों के सम्बन्ध में और भी अधिक लागू होती है। भले का बुरा बनना तनिक से कुसंग में बन पड़ता है पर बुरे को भला बनाना अपेक्षाकृत कहीं अधिक कठिन पड़ता है। बालकों को छोटी आयु में ही यदि दुष्प्रवृत्तियों को अपनाने का अवसर मिलता रहे। सुधार के लिए कारगर प्रयास न हो तो समझना चाहिए कि उनका भावी व्यवसाय ही अपराध करते रहना जैसा बन गया। पीछे प्रताड़ना से भी सुधार की सम्भावना नहीं रहती। आदतें बदलना कितना कठिन होता है यह सभी जानते हैं। विशेषतया बुरी आदतों के सम्बन्ध में तो भी आशा कम ही रह जाती है।

बढ़ते हुए बाल-अपराध यह संकेत करते हैं कि भावी पीढ़ी का स्तर उज्ज्वल बनाने की आशा धूमिल होती जा रही है। ऐसा समुदाय बढ़ने की आशंका है जो स्वयं पतित स्तर में पड़ा रहे और अपने प्रभाव क्षेत्र में त्रास उत्पन्न करे। यह सम्भावना भयावह है। अनगढ़ व्यक्तियों का समाज फलता-फूलता नहीं, भले ही उसे कितने ही सुविधा-साधन उपलब्ध क्यों न हों ? प्रगति की बात सोचने वालों को इस तथ्य से भी बेखबर नहीं होना चाहिए कि उज्ज्वल भविष्य की संरचना में परिष्कृत व्यक्तित्वों का बाहुल्य भी एक बहुत बड़ी आवश्यकता है। यह समस्या बिना सुलझी पड़ी रहे और वैयक्तिक चरित्र का स्तर गिरता रहे तो समझना चाहिए कि ईश्वर ही रक्षक है।

बाल-अपराधों के कारण तो सामाजिक एवं आर्थिक भी हो सकते हैं। कुसंग और वातावरण को भी इस सन्दर्भ में उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। पर सबसे बड़ी बात है उस पारिवारिक वातावरण का अनैतिक होना जिसमें बच्चा पलता है और जन्म के दिन से ही चीखना आरम्भ करता है। विभिन्न विषयों की जानकारी होने न होने के सम्बन्ध में स्कूली प्रशिक्षण को भी सुविधा-असुविधा को भी कारण माना जा सकता है किन्तु जहाँ तक बालकों के चरित्र और स्वभाव का सम्बन्ध है उस पर तो निश्चित रूप से पारिवारिक वातावरण की ही सबसे गहरी छाप रहती है।

सुसंस्कृत परिवारों के बीच बालकों के व्यक्तित्व के विकास की बहुत कुछ सम्भावना रहती है। वे जो देखते हैं वही सीखते-समझते हैं और वैसा ही अनुकरण करने लगते हैं। जब उन्हें परिवार में ओछा दृष्टिकोण और अवांछनीय प्रचलन कार्यान्वित होता दीखता है तो वे उसी को सहज स्वभाव एवं उपयोगी मान बैठते हैं। बालक आमतौर से बड़ों की नकल करते हैं। यह नकल क्रियापरक ही नहीं। दृष्टिकोण, स्वभाव, चरित्र एवं व्यक्तित्व भी उसी प्रवाह में बहने लगता है। बालक कोरे कागज की तरह होते हैं, उन्हें क्या बनना है इसको जान या अनजान में अभिभावक ही बनाते हैं।

इन दिनों बच्चों का उत्पादन एक खिलवाड़ बन गया है। बाजार से मनोरंजन के लिए खिलौने खरीद लाने और नापसन्द होने पर उसे कूड़े-करकट में फेंक देना एक बात है और बच्चों को उत्पन्न करना दूसरी। उनसे घर की शोभा बढ़ती है, चहल-पहल रहती है और मन बहलता है। यह आशा भी रहती है कि बड़े होने पर वे सहायक सिद्ध होंगे, विकसित करने के बदले श्रेय-सम्मान मिलने जैसा गौरव प्रदान करेंगे। पर साथ भी यह भी एक तथ्य है कि यदि उनका व्यक्तित्व अवांछनीय स्तर का बन पड़ा तो वे स्वयं दुःखी रहने, सामाजिक विग्रह खड़ा करने के लिए सबसे अधिक कष्टकारक अभिभावकों के लिए ही बनेंगे क्योंकि उनकी चित्र-विचित्र आदतों और आवश्यकताओं की पूर्ति का सबसे अधिक दबाव उन्हीं पर पड़ता है।

बच्चे जिन्हें जनने ही हों वे इस बात की जिम्मेदारी समझें कि उन्हें केवल उनका भरण-पोषण ही नहीं वरन् स्वभाव और चरित्र के रूप में उपयोगी अनुदान भी प्रदान करना है। यह कार्य सर्वप्रथम अभिभावकों को इस सन्दर्भ में अपना उत्तरदायित्व समझने के रूप में करना चाहिए। उन्हें अपना निजी आवरण और परिवार का वातावरण ऐसा बनाना चाहिए जिसमें नई पीढ़ी को ढलने का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

अवसर मिले। इस कर्त्तव्य से विमुख रहने पर वह सारा प्रयास एवं खर्च निरर्थक चला जाता है कि भरण-पोषण, शिक्षा, सुविधा आदि के निमित्त किया गया था। समझा जाना चाहिए कि नई पीढ़ी को सुसम्पन्न बनाना ही नहीं सुसंस्कृत बनाना भी अभिभावकों का ही कर्त्तव्य है और उन्हें इसके लिए न केवल अपने को वरन् उस समूचे परिवार को ही समय से पूर्व तैयार करना चाहिए जिसके बीच रहकर नवजात को पलना और ढलना है।

बढ़ते हुए बाल-अपराधों के सन्दर्भ में सबसे बड़ा कारण है उस परिवार का असंस्कृत होना जिसमें रहकर उनका पालन-पोषण हुआ है। सम्पन्न एवं शिक्षित होना एक बात है और सुसंस्कृत होना सर्वथा दूसरी। आवश्यक नहीं कि तथाकथित बड़े लोग सुसंस्कारी भी हों। बच्चे सुविधा-साधनों के सहारे सुसंस्कारी नहीं हो सकते, वरन् सच तो यह है कि ऐसे वातावरण में आलसी, अहंकारी, दुर्गुणी और दुर्व्यसनी बनने के आसार अधिक रहते हैं, यों दरिद्र परिवारों में भी दुष्प्रवृत्तियों की कमी नहीं रहती। यही है वह अवांछनीय वातावरण जिससे बच्चों का व्यक्तित्व और भविष्य बिगड़ता है।

बच्चों के प्रति दूरगामी उत्तरदायित्व समझने वाले समझदार लोगों को प्रजनन में तभी प्रवृत्त होना चाहिए जब वे दाम्पत्य जीवन में ऐसी शालीनता का समावेश कर लें जो नई पीढ़ी को सही ढाँचे में ढालकर सही स्तर का बना सके। देखा जाता है कि इन दिनों स्वेच्छाचार की बाढ़ है। अभिभावक निजी विलास में मस्त रहते हैं और जब बालक उनके शौक-मौज में अपनी उपस्थिति के कारण अड़चन उत्पन्न करते हैं, तब उन्हें दूर भगाने की कोशिश करते हैं। सम्पन्न लोगों के लिए इस सन्दर्भ में एक अच्छा बहाना तथाकथित उन पब्लिक स्कूलों में भर्ती कर देने का मिल जाता है, जिनमें अधिक खर्च वसूल करने के साथ-साथ व्यक्तित्व विकास की दावेदारी भी जुड़ी रहती है। बालकों को आरम्भिक दिनों में अपने अभिभावकों विशेषतया माता के स्नेह-सौजन्य की सबसे बड़ी आवश्यकता होती है। उसका स्वभावतः परिवार के वातावरण में रहकर ही विकास करना चाहिए। अजनबी वातावरण में भले ही उसे कुछ भी खिलाया या कुछ भी सिखाया, करायां जाता है पर अभिभावकों विशेषतया माता जैसी आत्मीयता कहीं नहीं मिलती। इस अभाव के कारण बालक भीतर ही भीतर टूटने और बिगड़ने लगता है, भले ही वह तथाकथित शिष्टाचार अधिक सीखे पर पढ़ाई में अच्छे नम्बर लाए। भविष्य बातों से ही नहीं बनता। योग्यता से धन कमाया जा सकता है, चतुर बना जा सकता है पर व्यक्तित्व के उच्चस्तरीय विकास में न केवल उपयुक्त वातावरण को, वरन् ऐसे प्रगाढ़ स्नेह-सौजन्य की भी आवश्यकता पड़ती है जिसकी पूर्ति अभिभावकों के अतिरिक्त कदाचित ही कहीं अन्यत्र हो सके।

व्यक्तित्व के विकास की सर्वोत्तम पाठशाला परिवार की पृष्ठभूमि है। इसलिए जिन्हें बालहित का ध्यान हो उन्हें उस क्षेत्र में सुव्यवस्था एवं सुसंस्कारिता का अधिकाधिक अभिवर्धन करना चाहिए। बच्चों को दूर भगाने की बात सोचने की अपेक्षा उन्हें अपने संरक्षण में ऐसा वातावरण प्रदान करना चाहिए जिसमें रहकर वे अपराधों के कुचक्र में न फँसे, वरन् सुयोग्य नागरिक बनकर अपनी, समाज की तथा अभिभावकों की सुख-शान्ति बढ़ा सकने योग्य बन सकें। इस सन्दर्भ में बरती गई उपेक्षा ही फलतः बढ़ते हुए बाल-अपराधों का कारण मानी जा सकती है।

'मैटर्नल केयर एण्ड मेण्टल हैल्थ' में वाडल्वी ने यह प्रतिपादित् किया कि बालक ५ वर्षों का होते-होते जो बनने को होता है, बन जाता है। ५ वर्ष वय पाने के पूर्व पारिवारिकता चरमरा जाने से नियन्त्रित ४६.७ और बालापराधी ५६.३ प्रतिशत, ९ वर्ष वय पूर्व २८.१ और ३१.० प्रतिशत, १० वर्ष पहुँचने के पहले कुमार्ग की ओर चल पड़े थे।

'मदर चाइल्ड सेपरेशन एण्ड डेली-क्वेन्सी' की लेखिका एस. नेइस ने ओस्लो चाइल्ड प्रोटेक्शन कौन्सिल की फाइलों से ४२ बालापराधी और उतने ही नियन्त्रित सम वय वाले बालकों को चुना। उन्हें यह तथ्य निरूपित करने को मिला कि मातृस्नेह के विलगाव के बालापराधियों में अनेक तरह की दुष्प्रवृत्तियाँ पनपीं।

अन्तर्राष्ट्रीय बाल-मनोविज्ञान परिषद् लिस्वन के अधिष्ठाता आर. एन. स्पिट्ज ने उपेक्षित वातावरण में पले ऐसे बालकों के सम्बन्ध में शोध की जिन्हें सुविधा की कमी न थी पर वे तिरस्कृत, उपेक्षित स्तर का निर्वाह करते थे। फलतः वे खिन्न रहने लगे और उत्साहवर्धक वातावरण में पलने वाले गरीब बालकों की तुलना में कहीं अधिक पिछड़ गये। उनकी मृत्युदर भी अधिक रही। बीमार भी अधिक हुए और बौद्धिक दृष्टि से पिछड़ गये। उनकी व्यवहारकुशलता भी अपेक्षाकृत कम थी। २१-२१ बालकों पर चार वर्ष की आयु तक की गई इस उभयपक्षीय शोध से परिणाम यह निकले कि उपेक्षित वर्ग बहुत घाटे में रहा।

उनमें से २० बिना किसी की सहायता से अपने कपड़े नहीं पहन सके। सफाई की सुरुचि १५ ने किसी प्रकार प्राप्त कर ली थी। ६ को अवरोधन शक्ति नहीं अर्जित हो सकी थी। ६ एक भी शब्द नहीं बोल पा रहे थे। ५ के पास दो शब्दों का कोष था। मात्र एक वाक्य बोल सका था।

डॉ. जे. बोल्बी ने अनेकों बाल-अपराधियों के ऊपर अध्ययन किया तथा पाया कि उनमें से अधिकांश बच्चे १ वर्ष से ५ वर्ष की आयु के बीच लगभग ६ महीना या उससे अधिक समय तक माता से अलग रहे। डा. एच. बैरे ने यह पाया है कि मानसिक उपचार करा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहे अधिकांश रोगी बचपन में माता के प्यार से आंशिक काल हेतु त्याग, मृत्यु अथवा बीमारी के कारण वंचित रहे।

१९६० तक ब्रिटेन के चिकित्सालयों में बच्चों को माता से पृथक् रखा जाता था। उनकी यह धारणा थी कि बच्चों के स्वास्थ्य-सेवा कार्य में माता असमर्थ होंगी। परन्तु ऐसे बच्चों में बाद में चलकर व्यावहारिक परेशानी, झल्लाहट तथा दुःस्वप्न आदि बातें समाने आईं और इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया कि बालकों के विकास का स्तर बढ़ाने के लिए उन्हें अभिभावकों से विशेषतया माता से दूर नहीं किया जाना चाहिए। यहाँ यह भी ध्यान रखने योग्य है कि अभिभावक बालकों की चारित्रिक विकास समस्या और उसके समाधान के सम्बन्ध में भी सुविज्ञ हों। स्मरण रहे भोजन, वस्त्र, फ़ीस, विनोद-विन्यास जैसी सुविधाओं से ही बालकों को सुयोग्य नागरिक नहीं बनाया जा सकता और यदि इतना न बन पड़े तो यही कहा जायेगा कि कुसंस्कारी पीढ़ी को जन्म देकर अपना ही नहीं, बालकों तथा पूरे समाज का अहित ही किया गया।

बच्चों का सुधार कैसे हो ?

बच्चों में पैदा होने वाली खराब आदतें, बुराइयों का कारण उनके पूर्वाग्रह, संस्कार, मूल प्रवृत्तियाँ तो हैं ही; किन्तु इस सम्बन्ध में माँ-बाप का गलत व्यवहार अदूरदर्शिता, अज्ञान भी एक बहुत बड़ा कारण है। बहुत-से माँ-बाप अपने बच्चों के मचलने जिद्द करने की शिकायत किया करते हैं और इससे वे बड़ी परेशानी भी महसूस करते हैं। इसके पीछे घर में अशान्ति, क्लेश, मारपीट, झल्लाहट आदि के प्रसंग आये दिन घटते रहते हैं। बच्चों को इस गुस्ताखी के लिए दोषारोपण, ताड़ना, तिरस्कार आदि का अवलम्बन किया जाता है। किन्तु विवेकपूर्वक देखा जाय तो बच्चों को जिद्दी और उद्दण्ड बनाने में अभिभावकों का ही बहुत बड़ा हाथ होता है। बच्चे तो उस नवजात कोमल पौधे की तरह हैं, जिसे विधिवत् सींचकर, खाद देकर, काट-छाँटकर माली सुसंस्कृत रूप देता है। माली की भूल, अज्ञान अथवा लापरवाही से सुन्दर दीखने वाले उद्यान भी बीहड़ जंगलों में परिणत हो जाते हैं। अच्छे-भले दीखने वाले पौधे बेडौल और कुरूप लगते हैं।

अक्सर माँ-बाप प्रारम्भ में अधिक लाड़-प्यार अथवा उदारतावश, उचित-अनुचित का ध्यान रखे बिना ही बच्चों की विभिन्न माँगों को पूर्ण करने लगते हैं। इतना ही नहीं कई माँ-बाप तो गर्वपूर्वक कहते हैं "मैं नहीं चाहता मेरे बच्चे दुःखी रहें, किसी तरह का अभाव महसूस करें।" जब बच्चे इस अत्यधिक उदारता के वातावरण में पलने लगते हैं तो उनके मन और मस्तिष्क पर वैसा ही प्रभाव पड़ने लगता है। जिस स्तर पर माँ-बाप उनकी आवश्यकताएँ पूर्ण करते हैं, वही बच्चों का स्तर बन जाता है किन्तु गृहस्थ जीवन में बढ़ती हुई जिम्मेदारियों, खर्चे, बदलती हुई परिस्थितियों अथवा आकर्षण कम होने पर बच्चों के साथ व्यवहार में भी परिवर्तन होने लगता है। पहले जितनी उदारता से बच्चों की आवश्यकता पूर्ति का ध्यान रखा जाता था वैसा बाद में नहीं रहता, किन्तु बच्चों का मानसिक स्तर पूर्व जैसा ही बना रहता है। जिस वातावरण में उनका पालन-पोषण पहले हुआ उसी की आगे भी अपेक्षा रखते हैं। पूर्व अभ्यासजन्य आदतों से प्रेरित होकर बच्चे वैसी ही माँग भी करने लगते हैं। उधर माँ-बाप से उनकी माँग की पूर्ति नहीं होती। इस पर बच्चे रोते हैं, मचलते हैं, रूठने लगते हैं, चिल्लाते हैं। मुँह फुलाकर एक कोने में दुबक जाते हैं तो माँ-बाप द्वारा ही झल्लाहट, ताड़ना, मारपीट आदि शुरू हो जाती है। सारे घर में कुहराम मच जाता है। बच्चों को दोष दिया जाता है, उनकी आदतों की आलोचना की जाती है।

विचार, विवेक से शून्य बालक कभी-कभी दूसरों की देखा-देखी भी कुछ अनावश्यक माँगें कर बैठते हैं। ऐसी स्थिति में बच्चों का ध्यान, प्यार, दुलार और स्नेह से किसी दूसरे पहलू पर केन्द्रित कर देना चाहिए। उन्हें किसी खेल में लगा दिया जाय। समझदार बच्चों को समझा भी देना चाहिए। कई माँ-बाप जो ऐसी स्थिति में बच्चों को ताड़ना देते हैं, उनकी माँगों को ठुकराते हैं, उन्हें बुरा कहते हैं, वे वस्तुतः अपने बच्चों में मचलने, जिद करने की आदत डालते हैं। बच्चों के साथ जिद करना उल्टा उन्हें अधिक जिद्दी और हठी बनाना है। किसी भी बात पर बच्चों का विरोध करने पर उन्हें उत्तेजना मिलती है और वे अधिकाधिक जिद्दी बन जाते हैं। यही खराब आदतें आगे चलकर अनुशासनहीनता, उद्दण्डता, झगड़ालू प्रवृत्ति, अशिष्टता, असभ्यता को जन्म देती हैं।

बच्चों में सहज स्वतन्त्रता का भाव अधिक होता है। उनकी स्वतन्त्रता में बाधा डालना, उनकी बातों का विरोध करना उनमें अधिक जिद्दी, झगड़ालू एवं मचलने की वृत्ति को भड़काना है। बच्चों के सुधार का कोई भी नियम स्वयं बच्चों की सहमति प्राप्त करके लागू करना अधिक प्रभावकारी होता है। बच्चों की खराब आदतों को ठीक करने के लिए जबरदस्ती और हठपूर्ण प्रयत्न करना उसी तरह की भूल है जैसे कुपथ्य का आचरण करके रोग को ठीक करना। बच्चे यदि अपने ही अहित की बात पर भी मचलते हैं तो उन्हें मचलने दिया जाय। ठोकर लगने पर वे स्वतः ही वैसा नहीं करेंगे।

चंचल, अधिक क्रियाशील बच्चों में फुर्ती तेजी, जीवट अधिक होता है। उनकी शारीरिक एवं मानसिक शक्तियाँ औसत दर्जे के बच्चों से अधिक काम करता है। बुद्धि एवं प्रतिभा भी ऐसे बच्चों में तीव्र होती है। ऐसे बच्चे तनिक भी शान्त नहीं रहते। तोड़-फोड़, मारना-पीटना घर वालों को परेशान करना, अभिभावकों को खिजाना ये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन क्रियाशक्ति बच्चों की साधारण-सी बातें हैं। यदि इन बच्चों का भली प्रकार निर्माण किया जा सके, इनकी क्रियाशील को रचनात्मक बनाया जा सके तो ये बच्चे जीवन में महान कार्यों का सम्पादन करते हैं अन्य बच्चों से अधिक सफल होते हैं।

चंचल और क्रियाशील बच्चों की यह विशेषता होती है कि वे हर बात में अपनी ही मर्जी को प्रमुख स्थान देते हैं। खाने-पीने, सोने, उठने-बैठने तक में भी ये बच्चे दूसरों की इच्छा पर आनाकानी करते हैं। ऐसे बच्चों से जोर-जबरदस्तीपूर्वक काम नहीं लेना चाहिए। चंचल बच्चों की अच्छी आदतों का सम्मान करते हुए उनसे घुल-मिलकर, उन्हें अपने से सहमत बनाकर फिर चाहे जैसा काम लिया जा सकता है। साथ ही उन्हें सन्तुष्ट बना इच्छानुसार मार्ग पर चलाया जा सकता है। बच्चों के साथ किए जाने वाले व्यवहार में चालाकी, भेद-भाव न रखा जाय। उसे ये तीव्र बुद्धि के बालक फौरन ही ताड़ लेते हैं और फिर अविश्वासी बन जाते हैं। फिर किसी सही बात को भी वे सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और उसे मानने को तैयार नहीं होते। वस्तुतः रहस्यमय, चालाकी और भेदभावपूर्ण व्यवहार बच्चों के साथ कभी भी नहीं करना चाहिए।

बच्चों के निर्माण के स्थान पर प्रभाव भी बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। बच्चों के मानसिक स्तर पर स्थान का अनुकूल अथवा प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जो उनके व्यक्तित्व के निर्माण क्रम को भी प्रभावित करता है। जिन बच्चों का प्राकृतिक स्वभाव बहुत-से लोगों के बीच रहने का होता है, उन्हें एकाकी और सुनसान स्थान में रखना ठीक नहीं। इससे उनमें कई मानसिक उलझनें, भय, सन्देह, शंका, विक्षिप्तता आदि पैदा हो जायेंगे। ऐसे बच्चों का मानसिक विकास और पुष्ट व्यक्तित्व का निर्माण सामूहिक रहन-सहन में भली प्रकार हो सकता है।

चंचल एवं क्रियाशील बच्चों के लिए सबसे आवश्यक बात है, उन्हें किसी न किसी रचनात्मक कार्य, खेल-कूद, भाग-दौड़ आदि में लगाये रखा जाय। जिन घरों में बच्चों को किसी रचनात्मक कार्य में लगा दिया जाता है वे बच्चे जीवन में महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं और वे औसत दर्जे के बच्चों से अधिक सफल होते हैं और ठीक-ठीक शिक्षण, निर्माण न होने पर ऐसे बच्चे औसतन बच्चों से अधिक खराब, अपराधी और भयंकर भी बन जाते हैं।

बालकों को रचनात्मक ढंग से सुधारें

कई बच्चे माता-पिता के लिए समस्या बने रहते हैं। घर में शैतानियाँ करते रहते हैं और बाहर दूसरे बच्चों को तंग करते हुए परिवार में शिकायतों को न्यौता देते रहते हैं। ऐसे उद्दण्ड बच्चों को प्रायः दण्ड देकर सुधारने की कोशिश की जाती है। बच्चे दण्ड पाकर तो जरा कुछ अपनी हरकतों को कम करते हैं, पर उनके भीतर जो प्रवृत्ति रहती है, वह दण्ड पाने से सुधरती नहीं, कुछ काल के लिए दब जरूर जाती है और बच्चा दण्ड के भय से अपनी हरकतों को छुपकर करने लगता है तथा यथा-साध्य अभिभावकों की निगाह से उन्हें छुपाने के लिए, झूठ बोलने, चालें चलने और उद्दण्डता करने के दुर्गुण और सीख लेता है।

बच्चों में सुधार करने के लिए उन्हें दण्ड देने की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक तरीके अपनाना अधिक अच्छा रहता है। ऐसा नहीं है कि उद्दण्डता करने के बाद बच्चा खुश होता हो या फलस्वरूप मिलने वाले दण्ड से उसे कोई प्रसन्नता प्राप्त होती हो। सही बात तो यह है कि अपनी बुरी आदतों के कारण बच्चा स्वयं ही परेशान रहता है। उनके कारण उसे जो प्रताड़ना मिलती है, उससे वह स्वयं अपने को अपमानित अनुभव करता है और दुःखी रहता है। वस्तुतः तो कई बच्चे इसलिए शैतानियाँ करना सीख जाते हैं कि बिलकुल छोटी उम्र में उसकी इन हरकतों को माँ-बाप मनोविनोद का साधन बना लेते हैं। बच्चा अपनी बड़ी बहिन की चोटी खींच रहा है या किसी हमजोली बच्चे को पीटकर भाग रहा है तो माँ-बाप उसे देखकर हँसने लगते हैं तथा समझने लगते हैं कि बच्चा होशियार हो रहा है। यह प्रशंसा और प्रसन्नता ही उनमें इस तरह के दुर्गुणों को प्रोत्साहित करती है। अच्छा हो, आरम्भ से ही सँभलकर चला जाय। फिर भी जिन बच्चों के लिए सुधार की आवश्यकता हो, उन्हें दण्ड देने तथा तिरस्कृत करने की अपेक्षा प्रेम और सहानुभूति से काम लिया जाय।

बड़ों की तरह बच्चों में भी अपनी प्रशंसा सुनने का चाव रहता है। वह चाहता है कि घर के लोग उसकी तारीफ करें, उसे दुलारें और पुचकारें। बचपन में मिले व्यवहार के कारण वह समझने और मानने लगता है कि इस तरह की हरकतों से ही बड़ों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया जा सकता है। पर उसकी शैतानियों के कारण घर के लोग उसकी ओर कोई ध्यान ही नहीं देते। वह महत्त्वहीन प्राणी समझा जाने लगता है। अपनी इसी कमी को ढकने के लिए, अपनी मौजूदगी का एहसास कराने के लिए वह शैतानियाँ करने लगता है।

यह एक तथ्य है कि बच्चा अनुकरण के द्वारा ही बड़ों से बहुत कुछ सीखता है। रोते हुए बच्चे को यदि माँ-बाप डाँट-डपट कर, थप्पड़ मारकर चुप करायें, उसे जबर्दस्ती बाँह पकड़कर घसीटकर नहलायें या डरा-धमकाकर पढ़ने के लिए बिठायें अथवा अपना काम करने को बाध्य करें तो बच्चे भी यही सीख जाते हैं। वह भी अपने साथियों को मारना-पीटना सीख जायेगा अथवा उस व्यवहार की यह प्रतिक्रिया होगी कि इंगित कामों से वह नफरत करने लगेगा। वस्तुतः बच्चों की प्रकृति एक स्वच्छ स्फटिक की तरह होती है। उसमें किसी बुराई या गन्दगी की छाया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ने की अधिकांश जिम्मेदारी माँ-बाप पर है, क्योंकि वह माँ-बाप के सम्पर्क में ही अधिक रहता है।

अक्सर यह प्रश्न किया जाता है कि माँ-बाप बच्चों को अवज्ञाकारी तो नहीं बनाते या कहना मानने के लिए मना नहीं करते, फिर बच्चे अवज्ञाकारी क्यों हो जाते हैं ? यह ठीक है—माँ-बाप आज्ञाकारिता की जितनी अपेक्षा अपने बच्चे से करते हैं, उतनी अपेक्षा शायद ही किसी दूसरे गुण की करते हों, पर बच्चों के सम्बन्ध में जितनी शिकायत कहना न मानने की, की जाती है, उतनी शिकायत किन्हीं दूसरे दुर्गुणों की नहीं होती। प्रत्यक्ष रूप से तो कोई अपने बच्चों को अवज्ञा करना नहीं सिखाता, परन्तु उसे इसकी प्रेरणा हमारे व्यवहार से ही मिलती है।

यह एकदम सही है कि बच्चे वातावरण से ही सीखते और प्रभावित होते हैं। घर में यदि तनावपूर्ण वातावरण रहा तो बच्चा भी अब्बल ऊधमबाज बन जाता है। कभी-कभी दूसरे रूप में भी इसकी प्रतिक्रिया होती देखी गई है, जैसे घर में चलने वाली उथल-पुथल से इस कदर प्रभावित हो जाता है कि वह बदमिजाज तथा जिद्दी बन जाता है, उसमें बाल-सुलभ चपलता और स्फूर्ति भी लुप्त होने लगती है। फलस्वरूप आगे चलकर वह सुस्त और भौंदू लगने लगता है। उसका स्वभाव चिड़चिड़ा भी हो सकता है। इन परिस्थितियों में बच्चों को सुधारने के लिए पहले उन कारणों की ओर ध्यान देना चाहिए, जिनकी वजह से ये बुराइयाँ आई हैं।

कई बार बच्चों में चोरी करने की आदत भी पाई जाती है। ऐसा उन्हीं परिस्थितियों में होता है, जबकि बच्चों की माँग को बुरी तरह ठुकराया जाता है। ऐसे बच्चे दूसरे बच्चों को अच्छे खिलौनों से खेलते हुए देखते हैं या खाते-पीते देखते हैं तो उनका मन भी इसके लिए तरस जाता है। इधर वह घर में यह भी देखता है कि अन्य कार्यों में शान-शौकत के लिए या सजावट आदि के लिए तो खूब खर्च किया जाता है, पर उसकी माँगों को जरा भी महत्त्व नहीं दिया जाता। ये परिस्थितियाँ उसे विद्रोही बना देती हैं। या तो वह चोरी करना सीख जाता है अथवा ईर्ष्यावश अपने साथियों के खेल-खिलौनों पर आक्रमण, छीना-झपटी करने लगता है। इस दुर्गुण से बच्चों को बचाने के लिए उनकी पूर्ति योग्य माँगों को पूरा करना चाहिए। यदि घर की आर्थिक-स्थिति ऐसी न हो तो उसे उचित रीति से सन्तोष करना सिखाना चाहिए।

बच्चे घर में कभी-कभी नुकसान भी कर बैठते हैं। यदि वह जान-बूझकर नुकसान नहीं करते तो उन्हें सावधानी की शिक्षा दी जानी चाहिए। पर अक्सर माता-पिता अपने बच्चों को नुकसान के लिए डाँटते-डपटते देखे गये हैं और कोई नुकसान, असावधानीवश होने पर वे यह डर अनुभव करने लगते हैं कि अब उनकी खैर नहीं। कई बार हमें बच्चों के ऐसे कार्य भी नुकसान जैसे लगने लगते हैं, जिन्हें वह मनोरंजन की दृष्टि से करते हैं। जैसे छोटी बच्ची को माँ की साड़ी लपेटकर दर्पण के सामने खड़ा रहना बहुत अच्छा लगता है। वह काँच के सामने खड़ी होकर माँ की कंघी से बाल सँभालने लगती है, लिपस्टिक, पाउडर और बिन्दी लगाने लगती है। लड़के अपने पिता या दादा की छड़ी, चश्मा लेकर उनकी नकल निकालते हुए भी देखे जा सकते हैं। अक्सर माँ-बाप अपने बच्चों की इन हरकतों को देखकर नाराजी प्रकट करने लगते हैं।

कई बच्चे अपने साथियों से पिछड़े या कम प्रतिभाशाली होते हैं। पढ़ने में वे अपने अन्य साथियों की बराबरी नहीं कर पाते या अन्य तरह से उनके साथ प्रतियोगिता नहीं कर पाते। अपने साथियों को अपने से अधिक योग्य पाकर एक तो वे वैसे ही हीनभावना का अनुभव करते हैं, इस पर घर से माँ-बाप की मिलने वाली प्रताड़ना उन्हें और हतोत्साहित करती है। उचित यह है कि उनके साथ सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाया जाय और उन्हें आगे बढ़ने की प्रेरणा दी जाय। यदि किसी बच्चे में कोई न्यूनता हो तो उसे यह आभास न होने देना चाहिए कि उसकी उपेक्षा हो रही है या उसे अपनी कमजोरी के कारण उपेक्षित किया जा रहा है। इस उपेक्षा-भर्त्सना के स्थान पर उसे अपनी कमजोरी को दूर करने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए।

बच्चों को सुधारने और उनकी समस्या का हल करने के लिए उसका अध्ययन करें, उसके कारण का पता लगायें और आई कठिनाइयों तथा समस्याओं को सोच-समझकर हल करें, न कि तुरत-फुरत कोई रवैया अख्तियार कर लिया जाय।

बच्चों की दण्ड व्यवस्था

यह ठीक है कि बच्चों को सुधारने और उन्हें शरारत से रोकने के लिए, कभी-कभी दण्ड की आवश्यकता होती है किन्तु वह दण्ड व्यवस्था सुधार अथवा शरारत से रोकने के ही लिए होनी चाहिए, न कि गुस्सा उतारने के लिए।

बहुधा देखा यह जाता है कि बच्चों को दण्ड देने में अभिभावकों का दृष्टिकोण सुधार का न होकर, उसे किसी शरारत के बदले में, उतनी ही पीड़ा पहुँचाना होता है, जितनी कि उन्हें, उसके किसी काम से पहुँची है। तभी तो जब तक उन्हें सन्तोष नहीं हो जाता, दण्ड का कार्यक्रम जारी रखते हैं।

प्रायः वे अपनी इस प्रतिशोध भावना से परिचित नहीं होते। यदि उन्हें दण्ड के कार्य से रोका जाये, तो वे यही कहेंगे कि "जब तक इसे यों ही पीटा नहीं जायेगा, यह ठीक नहीं होगा। बड़ा शरारती है।" पर यदि उनसे पूछा जाये कि आपकी इस कार्यवाही से इसमें किस प्रकार से सुधार का संचार होगा ? तो वे निश्चित रूप से इसकी विवेचना नहीं कर सकते।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिन अभिभावकों को अपने दण्ड-विधान के उद्देश्य, उसके परिमाण और परिणाम का स्पष्ट ज्ञान न हो, उन्हें बच्चों को दण्ड देने में, शीघ्रता के बजाय, सोच-विचार करना अधिक आवश्यक है क्योंकि अविचारित दण्ड, प्रायः बच्चों को और बिगाड़ देता है। अतएव उसके स्वरूप, सीमा और प्रभाव को समझ लेना बहुत जरूरी है।

अनेक अभिभावकों का स्वभाव कतिपय मनोवैज्ञानिक कारणों और परिस्थितियों से ऐसा बन जाता है कि उन्हें बच्चों की हर बात शरारत मालूम होती है, जिसके लिए उसे दण्ड देने में वे यन्त्र की तरह परिचालित रहते हैं। इधर बच्चे की कोई बात नापसन्द लगी नहीं कि उधर उसे पीट डाला। उन्हें अपने इस स्वभाव के कारण यह विचार करने का अवसर या अवकाश ही नहीं रहता कि बच्चा खतावार है भी या नहीं ?

इस प्रकार बच्चों की किसी भी बात अथवा काम से, हर समय चिढ़े रहना एक व्यसन है, जो मानसिक न्यूनता से उत्पन्न होता है। वे अपने किसी न किसी मानसिक अभाव से क्षुब्ध रहते हैं, जो झूठ-सच्चा अवसर पाकर बच्चों पर दण्ड के रूप में प्रकट होता है।

अस्तु, सबसे पहले ऐसे अभिभावकों को अपना मानसिक उपचार, विवेक द्वारा, धैर्य धारण करके करना चाहिए। बच्चों के प्रति क्षमा भाव से, उनके अपराधों की वास्तविकता पर विचार करके प्रतिशोध भावना से रहित, अपराध के अनुरूप दण्ड देना निर्धारित करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि दण्ड-विधान, व्यसन-तुष्टि के लिए नहीं, सुधार की दृष्टि से होना चाहिए।

जहाँ तक सम्भव हो, बच्चों को शारीरिक दण्ड न दिया जाये इससे, उनके बाह्य और आन्तरिक, दोनों प्रकार के स्वास्थ्यों पर कुप्रभाव पड़ता है। बच्चों के लिए मौखिक दण्ड ही सबसे उपयुक्त है।

यद्यपि, बहुत-से लोग मौखिक दण्ड के रूप में अपशब्दों का प्रयोग कर बैठते हैं किन्तु यह हर प्रकार से सभ्यता के विरुद्ध है, इससे बच्चों में गाली देने और गाली सुनने का स्वभाव उत्पन्न हो जाता है।

मौखिक दण्ड के अनेक स्वरूप हो सकते हैं—(१) जैसे जोर-जोर से डाँटना और बेतहाशा गुस्सा करना, यह आतंकवादी मार्ग है। इससे बच्चा भयभीत हो सकता है। उसे इस बात की लज्जा भी हो सकती है कि आस-पास लोग सुन रहे होंगे कि अमुक लड़के की फटकार हो रही है। लोग उसे बुरा समझेंगे। साथी हँसी उड़ायेंगे और नीची नजर से देखेंगे। हो सकता है इसका कुछ प्रभाव पड़े और अपनी शरारत कुछ कम करदे किन्तु इससे अधिक स्थायी फल की आशा नहीं की जा सकती क्योंकि, कुछ समय में वह उसका आदी हो जायेगा और समझ लेगा कि आपकी बात-बात में चिल्लाने की आदत हो गई है। साथ ही वह आपके रौद्र-रूप तक ही सहमकर सीमित रह जायेगा, न कुछ स्वयं सोच सकेगा और न आपका आशय समझ पायेगा। इसके अतिरिक्त अधिक चिल्लाने और क्रोध करने से, आपके नाड़ी-संस्थान पर जोर पड़ेगा जो स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं है।

(२) तीखे व्यंग्य-वाणों की वर्षा करना—जैसे तू जिन्दगीभर गधा रहेगा, तू क्या खाक पढ़े-लिखेगा, जरा सूरत तो देखना बड़ा भारी अफसर बनेगा, तुझे तो कोई दो कौड़ी को नहीं पूछेगा, भीख माँगेगा भीख, तुझ पर पैसा खर्च करना घूरे पर फेंकना है, पत्नी से कहते हैं—"अजी सुनती हैं, आपके लाड़िले साहब के तो लक्षण मालूम हो गये, इनकी किताबें तो लीजिये रख, और घर में झाड़ू बुहारी कराया करिये।" आदि।

समझा तो यह जाता है कि बच्चा इससे शर्मिन्दा होकर सुधार की ओर अग्रसर होगा, किन्तु ऐसा बहुत कम है क्योंकि कभी-कभी इस प्रकार के व्यंग्यों में कुछ ऐसे असंगत व्यंग्य भी शामिल हो जाते हैं, जिनको सुनकर दूसरे भाई-बहिन हँस पड़ते हैं और तत्काल वातावरण की गम्भीरता समाप्त हो जाने से बच्चे पर प्रभाव पड़ने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता और उल्टे आप ही कुछ उपहासास्पद हो जाते हैं।

फिर इस प्रकार के व्यंग्यों में भले हार्दिक न भी हो, कुछ न कुछ, असद् भावना की प्रतिध्वनि रहती है और असत्ता से सदाशयता का जन्म एक अस्वाभाविक-सी बात है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी इस शाप-सूचक व्यंग्यवादिता से बच्चे को पितृत्व के प्रति सन्देह होने से अश्रद्धा हो जाती है, जिससे वह ढीठ होने लगता है और परोक्ष रूप में आपके इन हितकारी वाक्यों को चुनौती समझकर यह सोचने का साहस कर बैठता है—न पढ़-लिख पायेंगे, न सही, भीख माँगना ही बदा होगा तो भीख माँग लेंगे।

(३) बच्चे की भर्त्सना ऐसे शब्दों और शैली में की जाये, जिससे उसके मन पर एक गहरा प्रभाव पड़े और उसे अपराध के प्रति ग्लानि और अपने पर लज्जा आये, जैसे—ठीक है ऐसा न करोगे तो खानदान का नाम कैसे ऊँचा होगा ? इन्हीं बातों से ही तो आपके पिता की प्रतिष्ठा बढ़ेगी, जब आपकी हरकतों से लोग यह कहेंगे कि जैसा लड़का वैसे ही माँ-बाप होंगे—तब आपको बहुत अच्छा लगेगा। इन लक्षणों से तो आपको जीवन में उन्नति की आशा नहीं करनी चाहिए। मैं तो यही चाहता था कि आप होनहार बनें—खैर, आपकी मर्जी, जो चाहिए करिये" आदि। इस प्रकार के उपालम्भों से उसे अनुभव होगा कि उसके पिता उसके प्रति बड़े ऊँचे विचार रखते हैं किन्तु उसकी कुछ हरकतें उनके अनुरूप नहीं हैं और वह सोचेगा कि उसकी इन बातों से पारिवारिक गौरव को धक्का पहुँचता है, जबकि उसे,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसकी वृद्धि करनी चाहिए। इस प्रकार वह उन्नत भाव से ओत-प्रोत होकर, अपनी बुरी बातों को छोड़ देने का प्रयत्न करेगा। यदि आपके उपालम्भों में क्रोध के स्थान पर एक हृदयस्पर्शिनी पीड़ा का समन्वय हो, तब कोई प्रश्न ही नहीं, वह सीधे-सीधे उसके मर्म पर आघात करेंगे जिससे वह पुत्र के नाते पिता की पीड़ा अपने में अनुभव कर अपराध करना ही भूल जायेगा और साथ ही उसमें एक गहरे आन्तरिक स्नेह का आविर्भाव होगा।

इसके अतिरिक्त एक निःशब्द मौखिक दण्ड भी है जिसे 'मौन' की संज्ञा दी जा सकती है। अपराध करने पर उसे एक गहरी दृष्टि से देखकर मुँह फेर लीजिए, कहिए कुछ मत और चुपचाप 'मौन' धारण कर लीजिए। एक कठोर 'मौन'। अव्वल तो वह आपके उस प्रकार देखते ही सहम जायेगा। सारी शरारत भूलकर हक्का-बक्का हो जायेगा। नहीं तो आपका मौन उच्चार तो कर ही देगा। न उससे बोलिये और न उसकी किसी बात का उत्तर दीजिए। सामने पड़ने पर उससे इस ढंग से नजर बचाइये जैसे आप उसे देखना ही नहीं चाहते। इस प्रकार वह आपके मौन और उपेक्षा भाव से अपने अन्दर एक ऐसी उलझन अनुभव करेगा, जिसका हल वह आपकी प्रसन्नता के सिवाय और कोई सोच ही न सकेगा। आपका यह मौन और उपेक्षा भाव जितना गहरा होगा उतना ही शीघ्र वह विचलित हो उठेगा और उसकी क्षमा-प्रार्थना आँसुओं में बोलने लगेगी। बस ! ठीक उसी वक्त उसे क्षमा कीजिए और सान्त्वना देते हुए प्यार भरे शब्दों में समझाइए। इस प्रकार उसके अर्द्धचेतन पर सुधार के जो बीज बोये जायेंगे। वे न केवल सफलीभूत ही होंगे अपितु चिरंजीवी भी होंगे।

यद्यपि, प्रायः लोग नाराज होकर बच्चों से बोलना बन्द कर देते हैं किन्तु उस न बोलने की पृष्ठभूमि में क्रोधजन्य घृणा की प्रतिक्रिया रहती है और इस 'मौन' में निर्विकार सुधार भावना की कसक।

अब रही शारीरिक दण्ड की बात। इसके लिए पहले ही कहा जा चुका है कि बच्चों को शारीरिक दण्ड देना उपयुक्त नहीं है तथापि कुछ अभिभावकों का तमोगुणी स्वभाव और कुछ बच्चे की असत्यता दोनों मिलकर कभी-कभी इसका अवसर उपस्थित कर देते हैं।

अब यदि बच्चे को शारीरिक दण्ड देते ही बने तो उसमें कुछ बातों का ध्यान अवश्य ही रखा जाना चाहिए। जैसे जितना अपराध हो, दण्ड उतना ही दिया जाना चाहिए, अधिक नहीं, दण्ड को दण्ड तक ही सीमित रखना चाहिए, उसे अत्याचार के रूप में नहीं बदला जाना चाहिए। बच्चे की क्षमता और दण्ड की गुरुता का संतुलन बहुत आवश्यक है—इत्यादि।

कुछ अभिभावक बच्चे की सुकुमारता का विचार कर बैठते हैं, जिसके परिणामस्वरूप कभी-कभी उन्हें स्वयं ही उसका फल भोगना पड़ता है। कुछ अभिभावक बिना अपराध समझे-बूझे पीटना शुरू कर देते हैं, जिससे निरपराध बच्चे को जो दोहरी पीड़ा होती है, वह तो होती ही है स्वयं उन्हें भी लज्जित होना पड़ता है और वे बहुधा आत्म-ग्लानि मिटाने के लिए निर्दोषता में भी दोष आरोपित करने लगते हैं। इधर बच्चा पिता की इस गलती से प्रोत्साहित होकर उस आक्रमण दण्ड के बदले में अपने को एक अपराध कर सकने की छूट का अधिकारी समझने लगता है।

कुछ अभिभावक तो बच्चे को ठहर-ठहर कर कई बार पीटते हैं और फिर भी यदि संतोष नहीं होता तो कभी उठक-बैठक कराते हैं, कभी मुर्गा बनाते हैं, तो कभी हाथ-पैर बाँधते हैं, कभी लटकाने लगते हैं। आशय यह है कि विविध त्रासदायक उपायों के साथ उनका यह कार्यक्रम चलता रहता है। यदि उनकी इस कार्यवाही और बकवास का मुखर चलचित्र लेकर, शान्त अवस्था में दिखाया जाये, तो शायद उन्हें अपने उस अत्याचार पर स्वयं ग्लानि और पश्चाताप हो।

बहुधा देखा जाता है कि शारीरिक दण्ड देने के अभ्यस्त अभिभावकों के पास न तो कोई मानदण्ड होता है और न सन्तुलन। जैसे रोशनाई गिरने पर उतना ही पीटना, जितना चोरी करने पर। इससे बच्चा अपराधों की अपेक्षाकृत न्यूनाधिकता के प्रति उदासीन हो जाता है। जब सारे अपराधों का दण्ड बराबर ही मिलना है तो बड़ा अपराध करने में वह क्यों हिचकेगा ?

कुछ अभिभावक देशकाल का विचार किये बिना ही पीटने लगते हैं। जैसे उसे खेलते देखकर मैदान में ही, झगड़ते देखकर सड़क पर ही, फेल हो जाने पर स्कूल ही में, पानी गिर जाने पर खाते वक्त और देर हो जाने पर स्कूल जाते समय आदि। इस प्रकार देशकाल का विचार न किये जाने से बच्चे निर्लज्ज एवं निरपेक्ष हो जाते हैं।

सुधार के लिए जहाँ बच्चों को दण्ड देना कुछ आवश्यक-सा हो सकता है, वहाँ उसका कोई नियम संतुलन, माप और स्तर होना भी आवश्यक है। दण्ड से पहले बच्चे को स्पष्ट पता होना चाहिए कि उसका क्या अपराध है ? जिसके लिए वह दण्ड का भागी हुआ। ओछे और भौंडे दण्ड देने से उनमें मानसिक-मलीनता आती है, जिससे वे असभ्य और अशिष्ट हो जाते हैं। दण्ड के रूप में उन पर अत्याचार करने से, उनके क्रूर और आततायी हो जाने का भय रहता है। हर अपराध पर समान दण्ड देने से उनकी दृष्टि में दण्ड की कोई महत्ता ही नहीं रहती।

शारीरिक दण्ड देने के फलस्वरूप अधिकतर बच्चे या तो दीन-हीन हो जाते हैं या विद्रोही और कभी-कभी अंग-भंग, चोट-चपेट अथवा अस्वास्थ्य के रूप में उसका परिणाम सामने आता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतएव अधिक स्थूल और पीड़ाप्रद दण्ड देने के स्थान पर सूक्ष्म, मौखिक एवं मनोवैज्ञानिक दण्ड-व्यवस्था ही अधिक श्रेयस्कर है, जिससे सुधार की दिशा में बच्चों पर एक ही स्थायी प्रभाव पड़े और उनका शारीरिक, बौद्धिक एवं मानसिक विकास भी अक्षुण्य रहे।

क्या दण्ड से बच्चे सुधरते हैं ?

बच्चों को सुधारने, उनमें से बुरी आदतों को छुड़ाने के लिए अन्य बातों की तरह दण्ड देने की भी एक प्रणाली चली आ रही है। सामान्यतया भूलों, गलतियों पर, बच्चों की शैतानी पर अभिभावकगण उन्हें दण्ड देते हैं, पीटते हैं, उनकी आलोचना करते हैं। बच्चों ने कुछ गड़बड़ी की कि उन्हें ठोक-पीट दिया। अच्छे, समझदार, पढ़े-लिखे माँ-बाप भी इसी का सहारा लेते देखे जाते हैं। यद्यपि दण्ड की व्यवस्था सुधार के लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है, नीतिकार ने सुधार के साम, दाम, दण्ड, भेद चार उपायों में दण्ड को भी स्थान दिया है, आवश्यकता पड़ने पर दण्ड दिया भी जाना चाहिए, लेकिन उसका प्रयोग दवा की खुराक की तरह ही किया जाना चाहिए। बिना सोचे-समझे, अनावश्यक मात्रा में दी गई अच्छी दवा भी नुकसान पैदा कर देती है। इसी तरह दण्ड भी बिना सोचे-समझे, अनावश्यक रूप से दिए जाने पर अपने दुष्परिणाम पैदा करता है।

दण्ड सुधार के लिए अन्तिम और महत्त्वपूर्ण समर्थ माध्यम है, किन्तु इसका ठीक-ठीक प्रयोग न करने पर हानि की ही अधिक सम्भावना रहती है और कई दुष्परिणाम पैदा हो जाते हैं। अनावश्यक, अव्यावहारिक दण्ड से सुधार न होकर बच्चों के विकास, उन्नति, निर्माण में गड़बड़ी पैदा हो जाती है। कई मानसिक विकृतियाँ-बुराइयाँ पैदा हो जाती हैं।

दण्ड के भय से मनुष्य के सौन्दर्य-बोध की क्षमता, शक्ति नष्ट हो जाती है। बच्चों को बात-बात पर अपने अनन्य और निकटस्थ सूत्र माँ-बाप से सजा मिलने लगती है तो संसार और इसके अन्य तत्त्वों का आकर्षण कम होने लगता है। संसार और इसके पदार्थ बच्चे को अरुचिकर, भयानक, क्रूर लगने लगते हैं। बच्चों का मानसिक विकास नहीं होता, वे बड़ी उम्र पाकर भी बच्चों जैसे ही बने रहते हैं।

माँ-बाप के सुधारात्मक दण्ड प्रधान फौजी अनुशासन से बच्चे दण्ड से बचने अथवा भय के कारण झूठ, चालाकी का आसरा लेते हैं। जिन बातों अथवा कारणों से बच्चों को सजा मिलती है, उन्हें वे छिपाते हैं, झूठ बोल जाते हैं। इस तरह धीरे-धीरे बच्चों में झूठ बोलने, चालाकी, फरेबबाजी की आदतें पड़ जाती हैं, जो दिनोंदिन परिपाक होकर जीवन का अंग बन जाती हैं। मानव जीवन और संसार में बहुत बड़े-बड़े दुष्परिणाम, बुराइयाँ पैदा करने वाली इस झूठ, चालाकी, फरेबबाजी की शुरूआत इस रूप में बहुत कुछ घर से ही होती है।

सुधार के लिए अन्य बातों को छोड़कर केवल प्रारम्भ से ही दण्ड का आसरा लेने पर, बच्चों को बार-बार पीटने, सजा देने पर बच्चों के सुधार की सम्भावना बहुत कुछ नष्ट हो जाती है, क्योंकि बच्चा भी बार-बार पिटने से दण्ड का आदी हो जाता है। दण्ड एक समर्थ शक्तिशाली प्रयोग है, इसका अवलम्बन तो अन्य सभी बातों में असफल होने पर ही निश्चित मात्रा में करना चाहिए। जिन बैलों को डण्डे मार-मारकर चलाया जाता है वे फिर डण्डे खाने के आदी हो जाते हैं। प्रारम्भ में एक-दो डण्डे खाकर जो तेज दौड़ते थे वे फिर बार-बार डण्डे पड़ने पर भी धीरे-धीरे चलते हैं। अपराध करने वाले कई व्यक्ति तरह-तरह से कई बार सजाएँ पाकर सजा के ही आदी हो जाते हैं। उन्हें कठोर सजा भी या अधिक दण्ड भी सामान्य-सी बात लगती है। बार-बार सजा पाकर भी वे अपनी अपराध प्रकृति का क्रम चालू रखते हैं। यही बात बच्चों पर भी लागू होती है। बच्चे भी बार-बार मिलने वाले दण्ड के आदी हो जाते हैं। उन पर दण्ड का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

मानव मन की सामान्य स्थितियों में यह विशेषता है कि उसमें दण्ड देने वाले, प्रकट रूप में अहित करने वाले, आलोचना, अपमान करने वाले के प्रति विद्रोही प्रतिक्रिया पैदा हो जाती है। बच्चों के अन्तर्मन में भी दण्ड देने वालों के प्रति विद्रोही भावनाएँ उठती हैं। इस विद्रोही भावना के अत्यन्त प्रबल हो जाने पर कई बच्चे अपने अभिभावकों पर आवेशवश घातक आक्रमण कर बैठते हैं और कटुवचन कहते सुने जाते हैं। समर्थ हो जाने पर इस तरह के बच्चे अपने माँ-बाप, अभिभावकों की कोई परवाह भी नहीं करते। उनकी दुर्दशा, पीड़ा में भी ऐसे बच्चों का दिल नहीं पिघलता। बचपन के दण्ड और सजा की चोटें खा-खाकर बच्चों का हृदय कठोर, शुष्क, नीरस, भयानक बन जाता है। ऐसे बच्चे कटु शब्दों, व्यंग्य बाणों से अपने माँ-बापों को व्यथा पहुँचाते हैं। अभिभावकगण अपने भाग्य और जमाने को दोष देकर रोते हैं किन्तु वे भूल जाते हैं कि इस क्रूरता और कठोरता की नींव बच्चों में उन्होंने स्वयं ही लगाई है। यह तो उसकी बाह्य प्रतिक्रिया मात्र है।

बच्चों का मानस बहुत ही कोमल, संवेदनशील होता है। जीवन में होने वाली तनिक-सी घटना उनके मानस पर चित्रवत् अंकित हो जाती है। छोटी-छोटी बातों से ही उनकी भावनाओं को ठेस लग जाती है। इस पर सजा-ताड़ना तो इस तरह प्रभाव डालती है जैसे पत्थर की चोट से काँच का बर्तन क्षत-विक्षत हो जाता है। दण्ड बच्चों की कोमल भावनाओं, हृदय, बाल सुलभ कल्पनाओं को कुचल देता है और उन्हें सदा के लिए अयोग्य, अपंग, अनुपजाऊ, निष्क्रिय बना देता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसका यह अर्थ नहीं कि बच्चों को कभी सजा, दण्ड देना ही नहीं चाहिए। नीतिशास्त्र के पण्डितों ने ताड़ना भी बच्चों के सुधार के लिए आवश्यक बताई है। किन्तु दण्ड देना एक महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक तथ्य है। किस सीमा तक बच्चों को सजा दी जाय, कैसी सजा कब कैसे दी जाय; यह बातें जानना उसी तरह आवश्यक हैं जैसे किसी डाक्टर का यह जानना कि रोगी को कौन-सी दवा कब-कब कैसे कितनी दी जाय ? दण्ड के कारण उत्पन्न होने वाले उक्त दुष्परिणाम दण्ड नीति का दुरुपयोग करने पर ही मिलते हैं।

सुधार के लिए सर्वप्रथम यह देखा जाना आवश्यक है कि बिना दण्ड के अन्य बातों से सुधार की प्रेरणा दी जा सके तो उत्तम है। बच्चों को सुधारने में स्नेह-ममता का बहुत बड़ा स्थान है। एक बार महात्मा गाँधी से बचपन में कोई भारी भूल हो गई, इस पर उनके पिता ने उस भूल को स्वयं ठीक कर लिया। गाँधीजी को देखकर उनकी आँख में केवल आँसू आ गये। इसका ऐसा मूक प्रभाव पड़ा कि फिर गाँधीजी ने कभी वैसा काम नहीं किया जिससे उनके पिता को ठेस लगे—दुःख होवे।

जब बच्चों में अपराध प्रवृत्ति बहुत ही बल पकड़ ले और वह स्नेह सरलता से न सुधरे उल्टा बिगाड़क्रम ही चालू रहे तो फिर सजा का भी आश्रय लेना आवश्यक होता है। इस पर भी यह देखना आवश्यक है कि उसे शारीरिक सजा देना आवश्यक है या मानसिक। जहाँ तक बने प्रारम्भ में फटकार देने अथवा डरा-धमका देने से काम बन जाय तो ठीक है। इसके अतिरिक्त भूल को सुधारने के लिए उसे खेल या मनोरंजन का रूप देकर बच्चे से ही भूल-सुधार कराने का प्रयास करना चाहिए। उदाहरणार्थ, बच्चे सामान बिखेर देते हैं तो उन्हीं से उसे ठीक रखाया जाय। बच्चे कुछ तोड़-फोड़ देते हैं तो टूट-फूट से होने वाली हानि को बताते हुए बच्चे को समझाना चाहिए। किसी भी तरह की सजा का आधार रचनात्मक हो दमनात्मक नहीं। चार-पाँच साल के बच्चे को शारीरिक सजा भी दी जा सकती है, किन्तु ७-८ साल बाद तो बच्चों को इस तरह का दण्ड कभी भी नहीं देना चाहिए। इस समय बच्चे का मानसिक विकास काफी हो चुकता है और वह अपने मान-अपमान को समझने लगता है। विद्रोही भावनाएँ, विपरीत प्रतिक्रिया इसी समय पैदा होने लग जाती है।

बच्चों की अच्छाइयों की भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करनी चाहिए। उत्साह बढ़ाने, अच्छे काम करने के लिए पुरुस्कार देना बच्चों का विश्वास प्राप्त करना है। इस तरह बच्चों को सुधारात्मक निर्देश देकर उन्हें अच्छा बनाया जा सकता है। भूलों से होने वाली हानि समझाकर उनकी आदतो में आवश्यक सुधार किया जा सकता है। दण्ड-सजा तो अन्तिम उपाय है, जिसका आवश्यकतानुसार ही उपयोग किया जाना चाहिए।

समझाने से काम न चले तो ही प्रताड़ना की जाय

सुसंस्कृत मनुष्य अपने चारों ओर स्वर्गीय वातावरण का निर्माण करता है किन्तु जहाँ मनुष्य के भीतर दबे पशु-संस्कारों की विकृतियाँ उभरती हैं, वहाँ नरक की सृष्टि होते भी देर नहीं लगती। उस स्थिति में लोग सामान्य मानवीय, शील और मर्यादा का उल्लंघन करने तथा दूसरों के लिए कष्टकारक आचरण करने में भी झिझकते नहीं।

परिवार के गैर-कमाऊ लड़कों में यह मर्यादाहीनता जब उभरती है, तो वह एक नई समस्या बन जाती है। भाई-बहिनों से गाली-गलौज, मार-पीट करना, हर अच्छी वस्तु अपने ही लिए चाहना, घर के कामों में हाथ न बँटाना उसकी आदत बनती जाती है। परिवार के प्रति क्या, वह स्वयं अपने प्रति भी कर्त्तव्यों का निर्वाह नहीं करता। पढ़ाई से दूर भागेगा। किताबें, कापियाँ, बस्ते सँभालकर नहीं रखेगा। कॉलेज जाने के बहाने दिनभर आवारागर्दी, मटरगस्ती करेगा। चाट-पकौड़ी, सिनेमा, नाच-गाना, जलसा-जुलूस की हुड़दंगियों में ही रस लेगा। अपने लिए कीमती कपड़े चाहिए, भले घर के अन्य विद्यार्थी सदस्यों के लिए पुस्तकों के लिए भी पैसे न बचें या बूढ़े माँ-बाप के लिए दवा का भी इन्तजाम न हो पाये। घर में तंगी है तो मितव्ययता, थोड़े में गुजारा करने, मिल-जुलकर काम चलाने आदि के रूप में सहयोग देना तो दूर, अपने लिए ही अधिकाधिक पैसों की माँग कर आर्थिक परेशानी को और अधिक बढ़ाएगा।

पुस्तकालयों में जाकर पढ़ना जरूरी अंशों को लिखना, सहयोगियों से मदद लेकर काम चलाना ऐसे बिगड़े लड़कों को मूर्खतापूर्ण कार्य प्रतीत होते हैं। वे पिता की कोट की जेब में या माँ की पेटी में पड़े पैसों को चुराकर जीभ का चटोरपन मिटाने, यारों के साथ सिनेमा देख लेने को ही पुरुषार्थ मानते हैं। कभी छोटे भाई, छोटी बहिन के हाथ से वे पैसे छुड़ाकर भाग जायेंगे, जो वे सब्जी खरीदने के लिए बाजार जाते समय ले जा रहे थे, तो कभी घर से वे पैसे उड़ा देंगे, जो छोटे भाई-बहिन की फीस के लिए रखे थे। कभी माँ से जोर-जबर्दस्ती करेंगे, कभी भाभी से छीना-झपटी कर रुपये या कोई चीज झटक ले जाएँगे, उसे बेचकर मजा-मौज करेंगे। आदत बिगड़ती जाती है तो अपनी क्षुद्र आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए घर की महत्त्वपूर्ण वस्तुओं की चोरी करने में भी हिचक नहीं महसूस होती।

ताश-जुए, सट्टा-लाटरी की लत लग गई, तब तो अनर्थ का अन्त नहीं। जब पाण्डवों जैसे सच्चरित्र लोग जुए के चक्कर में राजपाट, धन-दौलत और धर्मपत्नी तक को दाँव में लगा-बैठे, तो इन लड़कों द्वारा घर की इज्जत दाँव पर लगा देने में क्या देर लगती है ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शराब पीना, वेश्यागामिता, गुण्डाई यह सब उसी विकृति की परिणतियाँ हैं, जो बिगड़े लड़कों में कर्त्तव्य की अवहेलना और अपनी ही इच्छाओं की पूर्ति के आग्रह से प्रारम्भ होती हैं। अतः उस ओर शुरू से ही कड़ी नजर रखी जानी चाहिए।

प्रारम्भिक क्रम में ऐसे लड़कों को समझाना चाहिए। कुपथ पर चलने से होने वाली हानियों को विस्तार से समझाया जाय। घटनाओं, उद्धरणों, नीति, कथनों, ऐतिहासिक कथानकों एवं पौराणिक आख्यानों आदि का सहारा लेकर जो बुराई लड़के में उभर रही हो, उससे उत्पन्न होने वाले दुष्परिणाम बताये जाएँ। पास-पड़ौस, परिचय क्षेत्र में वैसी प्रवृत्ति के कारण जिन लोगों को व्यक्तिगत रूप से हानि उठानी पड़ी, उनका स्मरण कराया जाय। उनके परिवार को उस दुष्प्रवृत्ति से जिन संकटों, कलह, विग्रह, अपयश, कर्ज आदि का सामना करना पड़ा हो, वह भी विस्तार से बताया जाय। समाज में अन्ततः इस कुमार्गगामिता के कारण उन लोगों के प्रति क्या भाव बना, जो लोग साथ रहकर उन्हें उकसाते-बढ़ाते रहे, वे ही किस प्रकार मुँह फेर बैठे, यह सब बताकर उधर से विमुख किया जाय। साथ ही, अमुक-अमुक ने दुष्प्रवृत्ति छोड़ने का संकल्प कर लिया, तो छोड़ ही दी, फिर यह इस प्रकार प्रगति करता गया, अमुक-अमुक लाभ उसे मिले, यह भी गिनाया जाय।

समझाने का यह काम वे लोग न करें, जिनसे कि इस विपथगामिता के कारण उस लड़के की कहा-सुनी हो चुकी हो, खिंचाव हो या झंझट हो चुका हो। जिन लोगों के प्रति उसका मैत्री-भाव हो, वे ही समझाएँ।

समझाते समय भी चतुराई की जरूरत होती है। यदि लड़के को लगा कि यह उन लोगों के उकसाने या भेजने पर हमें समझा रहा है, जो परिवार में हमसे नाराज हैं या असहयोगी हैं, तो समझाने का अनुकूल परिणाम न हो पायेगा। समझाने वाला किन्हीं दूसरों का हिमायती है, हमारे आनन्द से ईर्ष्या रखने वालों का साथी है यदि आशंका हो तो समुचित प्रभाव नहीं हो सकेगा। अतः ऐसे सहज मैत्री-भाव से चर्चा की जाये, जिससे उसे लगे कि अनायास ही प्रसंग चल पड़ने पर हितैषिता की दृष्टि से बात कही जा रही है। पहले दौर में कुछ देर तक चर्चा के बाद बात को संक्षेप में ही कहा-समझाया जाय। अगली बार कुछ अन्य सम्बन्धित मुद्दों पर प्रकाश डाला जाय। इस प्रकार किश्तों में समझाने का क्रम भी अच्छा होता है। हर बार समझाने के बाद कुछ दिनों तक यों ही प्रतीक्षा की जाय। सम्बन्धित व्यक्ति उस पर खुलकर विचार-मंथन कर सकें, इस हेतु उसे मुक्त छोड़ दिया जाये। तत्काल ही परिणाम की अपेक्षा न की जाने लगे। कई बार, कुछ देर से ही सही, किन्तु समुचित परिणाम सामने आता है।

यदि समझाने-बुझाने का अन्ततः कोई भी प्रभाव होता है न दिखाई पड़े, तो फिर पारिवारिक विचारगोष्ठी के समय परिजनों द्वारा सामूहिक रूप से कहा जाय कि तुम्हारा अमुक आचरण अनुचित है। इस आचरण से तुम्हारी स्वयं की भी हानि है, परिवार की भी। गोष्ठी में अनुचित आचरण की स्पष्ट भर्त्सना की जाय। किन्तु सम्बन्धित व्यक्ति का अपमान न किया जाय अन्यथा भावोद्वेग में हानिकर प्रतिक्रिया सम्भव है। घर से भाग जाने से लेकर उद्दण्डता पर उतर आने तक के कदम उठाये जा सकते हैं। अतः सामूहिक आलोचना-निन्दा व्यक्ति के गार्हित पक्ष की ही की जाय, सम्पूर्ण व्यक्तित्व का ही तिरस्कार न कर दिया जाये।

यदि जिद, अहं या कुसंग से उत्पन्न औद्धत्य इतना गहरा हो गया हो, कि अकेले में मैत्रीभाव से समझाने से लेकर सामूहिक भर्त्सना तक के उपाय विफल हो गये हैं, तब उस व्यक्ति से पारिवारिक असहयोग किया जाय। उसे परिवार से किसी भी प्रकार की मदद देना बन्द कर दिया जाय। इसमें किसी प्रकार का सहयोग किसी सदस्य द्वारा न किया जाये। माँ व अन्य अधिक स्नेह रखने वालों को बता दिया जाय कि यह उग्र कदम आवश्यक सुधार के लिए ही उठाया जा रहा है। यह जानकारी तो उन्हें रहेगी कि समझाने और डाँटने के प्रयास विफल हो जाने के बाद में ही यह कठोर उपाय अपनाया जा रहा है। ऐसी स्थिति में उस उपाय योजना को विफल बनाने वाले छिद्रों का निर्माण पारिवारिक अनुशासन को ही भंग करने वाला सिद्ध होगा। अतः असहयोग पर तब तक दृढ़तापूर्वक अमल किया जाय, जब तक कि ऐसे लोग परिवार में अपनी भूल सबके समक्ष स्वीकार कर उसे सुधारने का संकल्प न कर लें। तभी पारिवारिक मर्यादा की रक्षा हो सकेगी।

बच्चों को प्रताड़ना नहीं, प्रेरणा की जरूरत है

कभी-कभी बच्चों को डाँट-फटकार भी आवश्यक हो सकती है और शायद कभी एकाध चपत लगाने का भी मौका आ जा जाए, किन्तु इस कभी-कभी को आए दिन की बात बनाना हर तरह से हानिकारक है। इससे लाभ की तो कोई भी सम्भावना है ही नहीं।

बच्चा मुख्यतः वातावरण से ही प्रेरणाएँ ग्रहण करता है। उसके लिए प्रत्येक व्यवहार एक संकेत है, एक प्रेरणा है। जब माँ-बाप बच्चे को प्रेरणा देने का मुख्य माध्यम प्रताड़ना को बना लेने हेतु तत्पर हो जाते हैं, तो इसके मनोवैज्ञानिक अर्थ क्या होते हैं ? यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए। बच्चे के भीतर इसकी एक साथ दो प्रकार की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं और दोनों ही अनिष्टकारी हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहली प्रतिक्रिया तो यह होती है कि बच्चा स्वयं भी प्रताड़ना को एक सशक्त माध्यम मानने लगता है। वह अपने साथियों को मारने में शान समझता है और मार-पीट को ही महत्त्वपूर्ण क्रिया समझता है। प्रकारान्तर से वह शरीर को तथा हिंसक वृत्ति को अधिक प्रधानता देने लगता है। वह मानने लगता है कि शरीर को दबाने, शरीर पर जोर-जुल्म करने से ही दूसरों से मनचाहे काम कराए जा सकते हैं। विचारों-भावनाओं पर प्रभाव डालने की दूसरी विधियों की वह उपेक्षा करने लगता है।

दूसरी प्रतिक्रिया विद्रोह की होती है। यह भी स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया है, क्योंकि प्रताड़ना बच्चे की इच्छा को कोई स्वाभाविक मोड़ तो दे नहीं पाती। जबकि मनोविज्ञान का बहुचर्चित सिद्धान्त है कि 'विल्स डामिनेट बॉडी' इच्छाएँ शरीर से अधिक प्रभावशाली होती हैं। अतः शरीर पर पड़ने वाले दबाव से इच्छाएँ नहीं दब सकती हैं, वरन् वे विद्रोह करती हैं।

इस पर अभिभावकों के मन में जिज्ञासा उत्पन्न हो सकती है कि तब क्या बच्चों की हर इच्छा को पूरी होने दें। आखिर हम उन्हें प्रताड़ना तभी तो देते हैं, जब अपनी किसी अनुचित इच्छा के अधीन वे कोई अवांछित हरकत कर बैठते हैं। यदि प्रताड़ना नहीं देंगे, तो उन अनुचित इच्छाओं पर नियन्त्रण कैसे लगाया जा सकेगा ? वस्तुतः यदि इच्छाएँ ऐसी हैं, जिनसे बच्चे का अहित हो सकता है, तो उनको दूसरी समानान्तर अच्छी इच्छा के लिए मोड़ना चाहिए। बच्चे को मालूम नहीं है कि चाय पीना स्वास्थ्य के लिए अहितकर है, उसने अपने मित्र, पिता या किसी पड़ोसी को चाय पीते देखा है। उसकी भी इच्छा है कि चाय पी जाय, उसे दबाना चाहेंगे, तो सम्भव है वह बाजार में जाकर चाय पिये और उसके लिए घर में पैसे की चोरी करें। बेहतर है कि उसे एक चप चाय दे दी जाय, फिर उसको चाय की बुराई से परिचित कराकर प्रतिदिन मीठा दूध या कोई अन्य पौष्टिक पेय लेने को प्रेरित किया जाये। बच्चा यह बात मान लेगा और फिर दुबारा चाय के लिए हठ नहीं करेगा।

सुरुचि का विकास बालक को साहसी और स्वाभिमानी बनाने का महत्त्वपूर्ण साधन है। हमारी भूल यह है कि हम बच्चों को किसी भी काम के अयोग्य समझ लेते हैं। यदि उसमें थोड़ी-सी बुराइयाँ भी हों, तो भी उसे बिलकुल अयोग्य न समझकर यह मानना चाहिए कि उन्हें गलत दिशा दी गई अथवा उसके पूर्वजन्म के संस्कार अच्छे नहीं रहे।

आगे बच्चों में यह दोष प्रबल न हो, इसके लिए उन्हें सुरुचि वाला बनाना चाहिए। पाश्चात्य देशों में प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक विशेष पसन्द (हॉबी) होती है—किसी की खेलने की, किसी की बागवानी की, किसी की घुड़सवारी की, किसी की बढ़ईगीरी और किसी की अपनी प्राइवेट प्रयोगशाला में बैठकर नये-नये प्रयोगों द्वारा छोटी-छोटी सुविधा बढ़ाने वाली नई वस्तुओं के अनुसन्धान की। ऐसी रुचियाँ यदि हम अपने बालकों में पैदा कर सकें तो उन्हें अनेक बुराइयों से सहज ही बचा सकते हैं।

क्रियाशीलता आत्म-चेतना का गुण है। बच्चा चुप रह ही नहीं सकता, यदि उसे कोई निश्चित दिशा न दी जाये, तो यह आवश्यक है कि वह तोड़-फोड़, मार-धाड़, छीन-झपटी करे। यही आदतें धीरे-धीरे बुरे स्वभाव में बदल जाती हैं। यदि प्रारम्भ से ही बच्चे में कोई रचनात्मक रुचि पैदा कर दें तो बच्चा एक नया आत्मविश्वास लेकर आगे बढ़ सकता है।

डॉ. फ्रायड उद्दात्तीकरण (सब्लीमेशन) के पक्ष में थे। कोई लड़का मान लीजिए क्रोधी स्वभाव का है, बहुत बढ़-बढ़कर बातें करता है, अहंकारी है, जहाँ जाता है वहीं झगड़ा कर देता है। उसे यदि कोई अच्छी पुस्तक देकर या खेलने-कूदने की प्रेरणा देकर उस आदत को मोड़ना चाहे, तो सम्भव है कि वह किताब को भी फेंक दे और खेलने-कूदने वाले साथियों को भी मार-पीट बैठे। ऐसे बच्चों को उद्दात्तीकरण द्वारा उपयोगी बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, उसे ग्रुपिंग करना सिखाया जाये और उसे कोई स्काउटिंग एन. सी. सी. आदि किसी ग्रुप का नेता बनाकर उसे एक अच्छे सैन्य अधिकारी का उत्तरदायित्व निबाहने की प्रेरणा दी जाये। इसमें उसके खराब गुणों का उसी प्रकार उपयोग हो सकता है जैसे गन्दी खाद का उपज बढ़ाने में।

इस तरह बच्चों को जब भी कुछ समझाया, सिखाया या अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरित किया जा रहा हो तो यह ध्यान बना रहे कि उसे पूर्ण स्नेह और सहानुभूति पाने का विश्वास हो रहा है। बीच-बीच में उसकी जिज्ञासाओं को भी जगाया जाता रहे। घटनाओं, प्रसंगों या कथाओं के माध्यम से उसकी पुष्टि भी की जाती रहे। उसे दूसरों के आगे परिचित (इन्ट्रोड्यूस) भी कराया जाता रहे। बच्चे की गलत प्रशंसा भूलकर भी न की जाये, पर उसकी छोटी-सी विशेषता को भी बड़ा माना जाये, तो निश्चय ही एक दिन वह उस छोटी-सी अच्छाई को ही बहुत अधिक विकसित कर लेता है।

हर स्थिति में यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि बच्चे की इच्छाशक्ति को भी महत्त्व दिया जाय और उसे दिशा देने की सतर्कता बरती जाय, तभी उसमें सत्प्रवृत्तियों का उभार सम्भव है। प्रताड़ना से तो बच्चों में विद्रोह-भावना ही पनपेगी, आवश्यकता उन्हें प्रेरणा देने की है।

बच्चों को प्रेम से सुधारिये

कई परिवारों में इस विचार के लोग होते हैं कि बच्चों को सुधारने, उनकी बुरी आदत छुड़ाने और उन्हें अच्छा बनाने का एकमात्र उपाय उन्हें समय-समय पर धमकाते रहना तथा शरारतों के लिए दण्डित करना है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

इस विचार से लोग अपने बच्चों को डराने, धमकाने, प्रताड़ना देने में अधिक विश्वास रखते हैं। लेकिन प्रताड़ना और दण्ड की प्रतिक्रिया बच्चों के लिए घातक और अनर्थकारक ही होती है। भयवश कदाचित् बच्चे अपने अभिभावकों के मनोनुकूल चलने और रहने भी लगे तो भी वे पीठ पीछे उद्दण्डता करने, बदमाशियाँ सीखने का रास्ता पा जाते हैं। बच्चा अपने माता-पिता के डर से दोहरी जिन्दगी जीने लगता है। सामने कुछ और पीछे से कुछ।

दण्ड और प्रताड़ना बच्चों को भयभीत बनाकर उन्हें कुण्ठित तो करते ही हैं, माता-पिता के प्रति भी उनमें अवमाननापूर्ण रवैया बढ़ने लगता है और वे अपने अभिभावकों को श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखने के स्थान पर शत्रु और अवमानना की दृष्टि से देखने लगते हैं। कहा जाता है कि बच्चों की मनःस्थिति इस योग्य नहीं होती कि उन्हें हर ऊँच-नीच समझाया जा सके। इसलिए उन्हें सही मार्ग पर रखने के लिए केवल प्रेम ही काफी नहीं है, कुछ डरा-धमकाकर रखने की सतर्कता भी बरती जानी चाहिए। यह ठीक है कि अधिक शरारती बालकों के लिए यत्किंञ्चित दण्ड देना भी आवश्यक है। लेकिन यह भी स्मरणीय है कि बच्चों की शरारतें दण्डनीय तब बनती हैं जब उन पर आरम्भ से ही ध्यान न दिया जाय। छोटे बच्चों की हर उद्दण्डता को पहले तो लाड़-प्यार के वशीभूत होकर सहा जाता है। यहाँ तक कि प्रोत्साहित भी किया जाता है। अक्सर घर के बड़े-बूढ़ों के पास जब छोटे बच्चे किसी मार-पीट की शिकायत करते हैं तो हँसते-हँसते वे कह देते हैं कि वह मारता है तो तू भी मार। लेकिन यही निर्देश जब बच्चा कोई अच्छी बात समझकर अपने मन में बिठा लेता है और थोड़ा बड़ा होने पर मार-पीट करने लगता है तो वही आदत बड़े-बूढ़ों को भी खलने लगती है।

इसके विपरीत यदि आरम्भ से ध्यान रखा जाता तो स्थिति यहाँ तक नहीं पहुँच सकती। बड़ों की गलती से बच्चे सीखते हैं और जब वे जान-बूझकर गलती करने लगते हैं तो बड़े दण्ड भी उन्हें ही देने की फिक्र करते हैं। बच्चों के लालन-पालन में विवेक और उचित-अनुचित का पूर्व विचार तो आवश्यक है ही साथ ही यह जानना भी आवश्यक है कि उसकी ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों को कैसे नियन्त्रण में रखा जाय ? बच्चा जन्मजात ध्वंसात्मक प्रवृत्ति लेकर आता है। बच्चा ही क्यों जहाँ भी प्रतिभापरक सम्भावनाएँ होती हैं, वहाँ सृजन के साथ ध्वंस भी जुड़ा होता है। यही कारण है कि शरारती बच्चे सामान्य बच्चों से अधिक प्रतिभासम्पन्न होते हैं। उन्हें यदि समुचित दिशा दी जा सके, सृजन की ओर अभिमुख किया जा सके तो उनकी प्रतिभा को खुलकर बाहर आने का अवसर मिलता है।

स्मरणीय है कि दण्ड की प्रतिक्रिया कभी लाभदायक नहीं होती। स्वभावतः ही शरारती बच्चों को प्रेम से ही सुधारा जा सकता है न कि दण्ड और प्रताड़ना से अपने बच्चों से सभी कोई प्रेम करता है पर उसकी शरारतों से खीजकर उन्हें रोकने का कोई चारा न दिखाई देने से वे दण्ड का ही सहारा लेते हैं। उन्हें समझना चाहिए कि प्रेम से श्रेष्ठ और कारगर उपाय नहीं है। दण्ड और प्रताड़ना ही नहीं, दूसरा भी उपाय उसका है।

प्रेमपूर्वक बच्चों को सही दिशा किस प्रकार दी जा सकती है ? यह एक स्वाभाविक प्रश्न है। बच्चों के प्रति प्रेमाभिव्यक्ति का रूप एक ही है उन्हें पुरस्कार देना। पुरस्कार फिर वही चूमकर दिया गया हो या थपथपाकर शाबासी देकर अथवा कोई खिलौना या मिठाई देकर। बच्चे इसी रूप में प्रेम का परिचय प्राप्त करते हैं और अनुभव भी। कुछ लोगों के लिए यह आश्चर्य का कारण हो सकता है कि जो बच्चे दण्ड से नहीं सुधर सकते वे प्रेम और पुरस्कार से सुधरते हैं। पुरस्कार प्रोत्साहित करने के लिए दिया जाता है तो क्या शरारत करने पर 'पुरस्कार' द्वारा उन्हें प्रोत्साहित किया जाये ?

वस्तुतः तो पुरस्कार प्रोत्साहन नहीं एक दिशा है। किसी खेल में अब्बल आने पर पुरस्कृत किया जाता है कि वह और अच्छा खेले और अच्छा पढ़े। प्रोत्साहन उसे दिशा मिलने से प्राप्त होता है न कि पुरस्कार से। अन्यथा तो पिछड़े और कमजोर बच्चों को पुरस्कृत कर भी उन्हें पढ़ने में आगे और खेलने में अच्छा बनाया जा सकता था। लेकिन ऐसा होता नहीं है। किसी क्षेत्र में कोई सफलता प्राप्त कर लेने के बाद ही बच्चों को पुरस्कार द्वारा यह अनुभव कराया जा सकता है कि उसे इस दिशा में आगे बढ़ना चाहिए।

लेकिन एक डर यह भी रहता है कि बच्चे में पुरस्कार के प्रति ज्यादा लगाव उत्पन्न हो गया तो उसमें घूस जैसी आदत पड़ जायेगी। वह कहने लगेगा जब तक मुझे अमुक चीज नहीं दी जाती या अमुक ढंग से मेरे मनोनुकूल कार्य नहीं किया जाता, तब तक मैं न तो पढ़ूँगा और न ही आज्ञा मानूँगा। निश्चित रूप से इस स्तर का पुरस्कार घूस ही बन जाता है। अतः पुरस्कार में परिवार के सभी सदस्यों को शामिल करना चाहिए। कहा जा सकता है कि तुम यदि दो दिन तक अपने कपड़े साफ रखोगे तो हम लोग बाजार चलेंगे या तुम आज का पाठ पूरा करोगे तो हम सब एक कहानी सुनेंगे।

इस प्रकार के पुरस्कारों से बच्चों को दिशा और उसमें आगे बढ़ने का प्रोत्साहन तो मिलता ही है, परिवार के अन्य सदस्यों की प्रसन्नता का ध्यान रखने की वृत्ति भी विकसित होती है। बच्चों में जहाँ यह वृत्ति होती है कि उसके कार्यों को सराहनापूर्ण दृष्टि से देखा जाय, वहीं यह वृत्ति भी कम नहीं होती कि घर के लोग उससे प्रसन्न हों, दूसरों को प्रसन्नता देकर आनन्दानुभूति प्राप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करना मनुष्य स्वभाव का एक गुण है। बच्चों में भी वह होता है। यदि उसे आरम्भ से ही विकसित किया जाय तो आगे चलकर मानवीय व्यक्तित्व की अन्य विशेषताओं से भी सम्पन्न बनाया जा सकता है।

अक्सर तो देखा जाता है कि अभिभावक दण्ड देना आवश्यक समझकर बच्चों को उतना दण्ड नहीं देते जितना कि अपनी खीझ उतारने के लिए। घर में कोई बात हो गई हो, पति से मन-मुटाव या कहा-सुनी हो गयी हो तो माताएँ सारा गुस्सा अपने बच्चों पर उतारती हैं। बात-बेबात पर उन्हें पीट देती हैं। इस प्रकार अकारण ही बच्चों को डाँटना-फटकारना, उन्हें भीरू और दब्बू बना देता है अथवा उन्हें भी अपने माता-पिता की नकल करना सिखा देता है। छोटी बालिकाएँ अपनी गुड़ियाओं को उसी प्रकार डाँटती हैं जैसे कि माँ उन्हें डाँटती है। घर में फटकार खाकर आये बालक स्कूल में अपने छोटे साथियों से मार-पीट करते हैं, उन्हें दबाते और धमकाते हैं। हमेशा फटकार खाते रहने वाले बालक भी उतने ही कर्कश और कठोर हो जाते हैं जितने कि अभिभावक उनके साथ।

कहने का अर्थ यही नहीं कि बच्चे को दण्ड देना ही नहीं चाहिए। दण्ड दिया जा सकता है पर वह मार-पीट या धमकी के रूप में ही हो, यह कोई जरूरी नहीं है। इस रूप में भी तो दण्ड हो सकता है कि कल हम तुम्हारे साथ नहीं खेलेंगे या तुम्हारे साथ घूमने नहीं जायेंगे। फिर बालक इतना सुनते ही अपनी भूल को सुधारने के लिए तत्काल तैयार हो जायेगा।

आरम्भ से ही प्रेम, पुरस्कार और विवेकपूर्ण दण्ड देने की बात का ध्यान रखा जाय तो बच्चों में वैसी आदत ही नहीं पड़ती। जिसका कि कोई समाधान न हो। माता-पिता अपने बच्चों से प्रेम करते हैं तो प्रेम व्यक्त भी करें। मन में प्रेम और बाहर से कर्कशता बरतने का क्या तो औचित्य और क्या तुक ?

बच्चे चाहते क्या हैं ?

'पीस इन द होम लीग' नामक एक संगठन बनाकर शिकागो में कुछ बच्चों ने निश्चय किया है कि वे अपने घरों में शान्ति का वातावरण बनाये रखने के लिए प्रयत्न और आवश्यकतानुसार सत्याग्रह करेंगे।

बच्चों के इस प्रकार के संगठन और उनके इस संकल्प को बाल-स्वभाव कहकर उपेक्षा की जा सकती है किन्तु मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय तो पता चलेगा कि इस तरह के प्रयत्न के पीछे बच्चों की कौन-सी आन्तरिक पीड़ा उद्भासित हो रही है।

बात यह है कि इन दिनों यूरोप के अन्य भागों की तरह शिकागो भी चमक-दमक, रूप-सज्जा, वासना-विलासिता के जाल-जंजाल में फँसा हुआ है। जीवन में इस तरह ओछापन बढ़ जाता है, तो उससे पारिवारिक बन्धन, दाम्पत्य प्रेम और परस्पर आत्मीयता के भाव नष्ट होने लगते हैं। स्वार्थ के साथ कलह, कपट, कुविचार और दुष्कर्मों का प्रवाह बढ़ जाता है। कहना न होगा कि इसका सबसे कटु-प्रभाव सौम्य एवं सुकोमल चित्त बालकों पर ही पड़ता है। वे अपने माता-पिता के प्रति ही नहीं समाज के प्रति भी उदासीन होने लगते हैं। यही वृत्ति धीरे-धीरे उद्दण्डता और अपराध में परिवर्तित हो जाती है।

इस प्रकार के प्रयास का मूल संकल्प ऐसे ही कारणों से भोले-भाले बच्चों के मन में पैदा हुआ। इस लीग के प्रधान १४ वर्षीय बालक 'हीदर ग्रे' ने बताया कि हमारे माता-पिता आपस में झगड़ते हैं या अपने-अपने स्वार्थ को लेकर कलह और मनोमालिन्य उत्पन्न करते हैं तो घर में जो क्षोभ और दुराशा का वातावरण बनता है, उससे हमें घुटन अनुभव होती है। यदि एक का पक्ष लें तो दूसरे के कड़ुवे बनें, जबकि दोनों ही बाहें अपनी हैं। माँ से जुड़ें, तो पिता के स्नेह, प्रेम और आदर से वंचित, पिता से हृदय जोड़कर रखें, तो माँ के वात्सल्य, सौम्यता और दुलार को खोयें। हमारे लिए दोनों ही स्थितियाँ कष्टकारक हैं इसलिए अब बुराई के विरुद्ध सत्याग्रह करने का निश्चय किया है।

'हीदर ग्रे' जब अपने परिवार और बालकों की इस मनोदशा का वर्णन कर रहा था तो भावातिरेक से बार-बार उसके आँसू भर आते थे, गला रुँध जाता था। इससे पता चलता था, बच्चों के लिए प्रेम, स्नेह, शान्ति और सौम्यतापूर्ण व्यवहार का कितना अधिक महत्त्व है ? इन रस भरी भावनाओं का आकर्षण हो तो बच्चों को महान व्यक्तित्व बड़ी सुगमता से प्रदान किया जा सकता है।

पारिवारिक जीवन में दुराग्रहों, दुष्प्रवृत्तियों के बढ़ने की यह स्थिति कितनी चिन्ताजनक है और उस दिशा में अभिभावकों को कितनी जिम्मेदारी का पालन करना चाहिए इसका अनुमान इस समाचार से होगा। बच्चों ने निश्चय किया है कि झगड़ालू माता-पिताओं को वह दण्ड देंगे कि उनके बच्चे उनके प्रत्येक झगड़े के बाद एक सप्ताह तक बात नहीं करेंगे। यह दण्ड यद्यपि बालकों की आत्म-पवित्रता के अनुरूप ही है, पर इससे उन अभिभावकों पर कितना प्रभाव पड़ेगा, कहा नहीं जा सकता। यदि वे स्वयं स्थिति की गम्भीरता को नहीं अनुभव करते और अपनी मनोवृत्तियाँ बदलने के लिए स्वेच्छा से राजी नहीं होते।

यदि पति-पत्नी एक समझौता कर लें कि अपने बच्चों को पोषण, विकास और उन्हें सज्जन, उदार, सद्गुणी बनाने के लिए वे परस्पर अत्यधिक प्रेम, सौजन्यता, उदारता और आत्मीयता का जीवन जियेंगे और भोगवासना आदि कलह बढ़ाने वाले और प्रेमस्खलित करने वाले कारणों को जन्म नहीं देंगे, तब तो बच्चों का यह सत्याग्रह भी सफल हो सकता है अन्यथा बालक तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बालक ही हैं, इससे अधिक बेचारे और क्या कर सकते हैं ?

यह बात सुनने में तो जरूर कुछ अटपटी-सी लगेगी कि 'प्रेम और दुश्मनी' क्या अजीब बात है ? किन्तु यह नितान्त सत्य है कि कुछ अभिभावक प्रेम के नाम पर बच्चों से दुश्मनी करते हैं अर्थात् उनका प्रेम-प्रदर्शन कुछ इस प्रकार का होता है, जिससे कि उन्हें बड़ी हानि होती है।

कुछ अभिभावकों का स्वभाव होता है कि वे बच्चों के खाने-पीने का बड़ा ध्यान रखते हैं। ध्यान इस माने में नहीं कि उसने ठीक समय पर खाना खाया है या नहीं। वह कोई ऐसी चीजें तो नहीं खा-पी रहा है, जो उसके स्वास्थ्य के लिए अहितकर हो। ध्यान इस बात का रखते हैं कि क्या बात है कि बच्चे ने आज ठीक से नहीं खाया, क्या कुछ पसन्द नहीं आया ? न हो तो, कुछ अच्छी चीज बनवा दी जाये या बाजार से ही कुछ बढ़िया चीज ले दी जाये।

ऐसा करने से बच्चे चटोरे और तरह-तरह की चीजें खाने के आदी ही होते हैं। उनको स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य की चीजों का ज्ञान नहीं रहता। वे अपव्ययी और बाजारू हो जाते हैं, जिससे उन्हें घर की बनी सामान्य और साधारण चीजें अरुचिकर हो जाती हैं।

बहुत-से अभिभावक तो बच्चों को बार-बार खिलाते हैं। माँ खाती है तो अपने साथ-खिलाती है, पिता खाने बैठता है तो अपने साथ बिठा लेता है और अलग से तो उसे भोजन करना ही पड़ता है। यही नहीं कि माता-पिता अपने साथ केवल बिठा ही लेते हों। जब तक स्वयं खाते हैं, तब तक उसे भी खिलाने की कोशिश करते है और यदि वह नहीं खाता, तो उसे प्यार से, अनुरोध करके या पैसे देने का वायदा करके खाने को विवश करते हैं और इस प्रकार जब उसकी पाचन-क्रिया बिगड़ जाती है तो तरह-तरह की दवाइयाँ खिलाकर भूख बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं।

बहुत-से अभिभावक बहुत-सी चीजें बच्चों को खिलाते-पिलाते रहते हैं। जैसे अभी चाय पिलाई गई तो कुछ देर बाद उसे दूध पिलाते हैं, फिर नाश्ते का नम्बर आता है। पुनः 'मैं तुम्हारे लिए केले लाया था खा लिये या नहीं ?' और "जाओ, माँ से अपनी मिठाई का हिस्सा तो ले लो जाकर" यानी उनका वे खाने-पीने का कुछ ऐसा क्रम लगा देते हैं कि बच्चे को आध घण्टे का भी अवकाश बिना खाये नहीं मिलता।

बहुत-से माता-पिता विश्वास रखते हैं कि बच्चा जितनी बार और जितना अधिक भोजन करेगा, वह उतना ही तन्दुरुस्त और ताकतवर होगा। इसलिए वे उसे बार-बार प्रेरित करके दो-तीन बार से ज्यादा भोजन करने को विवश करते हैं।

कुछ अभिभावक दूध, दही, घी, मलाई, मक्खन आदि गरिष्ठ वस्तुओं का बहुत प्रयोग ही स्वास्थ्य का आधार मान लेते हैं और उन्हें खूब खिलाते हैं। वे उसकी औकात और उसकी पाचन-शक्ति का विचार बिलकुल नहीं रखते। उनकी इस प्रकार की भोजन सम्बन्धी चिन्ता और तत्परता बच्चे के स्वास्थ्य को ठिकाने लगा देती है किन्तु किया क्या जाये उन्हें बच्चे से प्रेम जो है।

बहुत-से अभिभावक बच्चों का बहुत ही कीमती वस्तु पहनाने में सन्तोष अनुभव करते हैं। उनका दृष्टिकोण उपयोगिता का नहीं, तड़क-भड़क, शान-शौकत और प्रदर्शन का रहता है। वे बच्चों को स्वयं बाजार ले जाते हैं और अच्छे-से-अच्छे कपड़े खुद उनसे पसन्द कराकर खरीदते हैं, फिर वे चाहे कितनी ही कीमती, कमजोर और अनुपयोगी क्यों न हों ? अभिभावकों को इस दुर्बलता से दुकानदार खूब लाभ उठाते हैं। वे बच्चों की पसन्द के कपड़ों का अच्छा-खासा मूल्य वसूल करते हैं कि जो कपड़ा बच्चा पसन्द कर लेगा, लेने से इनकार नहीं कर सकते। इधर इस छूट के कारण बच्चे वस्त्रों की उपयोगिता उनसे सम्बन्धित मितव्ययता और उनके मजबूत व टिकाऊ होने के विचार से वंचित रह जाते हैं और जीवनभर इसका महत्त्व नहीं जान पाते हैं। साथ ही वे आदत से फैशनेबल दिखावा पसन्द और तड़क-भड़क वाले बन जाते हैं। जो उनके लिए आगे चलकर अहितकर होता है। ऐसे वस्त्रों की सिलाई और धुलाई पर भी बहुत खर्च होता है।

बच्चों के पास बहुत-से फैशनेबल दिखाऊ और कीमती कपड़े होने से वे उनको बार-बार पहनने, बदलने और दिखाने में ही लगे रहकर अन्य कामों की ओर बहुत कम ध्यान दे पाते हैं। साथ ही कपड़ों की बहुतायत होने से, उनको ठीक से रखने और ठीक से उपयोग करने की ओर से लापरवाह हो जाते हैं। बहुत अच्छे कपड़े पहने होने के कारण कोई काम करते वक्त उनका ध्यान कपड़ों की ओर अधिक, काम की ओर कम रहता है, जिससे कोई काम वे सुचारुता से नहीं कर पाते फलतः किसी काम में दक्ष भी नहीं होने पाते।

इसके अतिरिक्त वे असाधारण कपड़ों वाले अन्य बच्चों से अपने को श्रेष्ठ और अमीर समझते हैं जिससे उनके स्वभाव में विषमता का भाव पैदा हो जाता है और वे अपने साथियों को भी हेय दृष्टि से देखने लगते हैं। उनका अभिमान उनके व्यवहार में व्यक्त होने से दूसरे बच्चे उनसे ईर्ष्या और घृणा करने लगते हैं। इस प्रकार से दोनों ओर से विषमता की खाई और चौड़ी हो जाती है। कुछ बच्चों पर इसकी प्रतिक्रिया हीन भाव में भी होती है, जिससे वे अपने भाग्य और अभिभावकों को मन ही मन कोसने लगते हैं। इस प्रकार भावों में एकता का अभाव हो जाने से समाज में बहुत तरह के असन्तोष पैदा हो जाते हैं, जो सामाजिक दृष्टिकोण से बहुत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अहितकर हैं। किन्तु क्या किया जाये माता-पिता को अपने बच्चे से प्रेम जो बहुत है।

यदि वह बहुत कहने-सुनने पर भी नाश्ता स्कूल नहीं ले गया है तो किसी के हाथ भेजेंगे या खुद लेकर जायेंगे। उन्हें यह विश्वास किये बगैर धैर्य ही नहीं आता कि थोड़ी देर बाद स्कूल में उसे भूख जरूर लगेगी। यद्यपि भूख बहुत देर तक बच्चे के आस-पास से भी गुजरने की कोई सम्भावना नहीं होती तथापि प्रेमवश अभिभावकों को अपनी कल्पना में वह भूख से तड़पता नजर आता है। इस प्रकार का प्रेम स्वास्थ्य के पीछे लट्ठ लिए घूमने के सिवाय और क्या उपकार कर सकता है ?

यदि स्कूल से आने में उसे किसी कारणवश पन्द्रह मिनट की भी देर हो गई तो बस दौड़े-दौड़े स्कूल पहुँचे और उसे अपनी हमराही में घर लेकर आये। बच्चे के लिए इस प्रकार की चिन्ता उसे बिल्कुल निकम्मा और अबोध बना देती है। साथ ही उसे एक ऐसा बन्धन हो जाता है कि वह दस-पन्द्रह मिनट को किसी खेल या मैच में ठहर भी नहीं सकता।

कुछ अभिभावक जरा सर्दी बढ़ जाने अथवा पानी बरस जाने से बच्चे को स्कूल जाने से रोक लेते हैं और यह कहकर घर में ओढ़-लपेटकर बैठ रहने का निर्देश कर देते हैं कि कहीं सर्दी लग जायेगी या जुकाम हो जायेगा। इस प्रकार के निरर्थक बचावों और हिफाजत से बच्चा बिल्कुल सुकुमार और असहिष्णु हो जाता है। जब तब सर्दी-गर्मी का बहाना करके पढ़ने से जी चुराने लगता है।

कुछ अभिभावकों का स्वभाव होता है कि बच्चे के छींकने या खाँसते ही उसकी नब्ज पर हाथ रखते हैं, जिससे बच्चे के मन में सदैव ही बीमारी की एक आशंका लगी रहती है, जो उसके स्वास्थ्य पर सबसे बुरा असर डालती है, पर क्या किया जाये उन्हें अपने बच्चे से प्यार जो बहुत है।

फिर यदि जब कभी वह खेलने-कूदने की इच्छा करता है तो उसे यह कहकर निरुत्साहित कर देते हैं कि बच्चों का खेलना ठीक नहीं, खेलने से चोट लग जाती है। इस प्रकार अभिभावकों द्वारा प्रेमवश उसके स्वास्थ्य के साथ किये गये अन्यान्य के निराकरण की जो थोड़ी-बहुत आशा की जा सकती थी, वह भी उसके खेलने-कूदने पर प्रतिबन्ध लग जाने से समाप्त हो गई। अतः इस प्रकार का सारा लाड़-दुलार मिलकर उसे अस्वस्थ कर ही देता है।

तब बड़ी चिन्ता से अच्छे-से-अच्छे डाक्टर के पास से दवा लायेंगे, किन्तु खिलाते या पिलाते वक्त बच्चे ने मुँह बिगाड़कर यह कह दिया कि ''यह तो कड़ुवी है हम नहीं पियेंगे'' कि बस एक-आध बार तो औपचारिक ढंग से उससे पीने को कह दिया, नहीं तो अच्छा न पियो कल मीठी दवा ला देंगे। दूसरी बार डाक्टर से बार-बार अनुरोध करके ऐसी दवा लाने की कोशिश करेंगे जो बिलकुल शरबत की तरह मीठी और स्वादिष्ट हो और रुचिपूर्वक पी ले।

पथ्य में यदि बच्चे को कुछ खाना-पीना मना कर दिया गया है तो जितना कष्ट बच्चे को नहीं होगा, उससे अधिक स्वयं उन्हें होगा। वे बच्चे के निराहार की कल्पना से त्रस्त हो उठेंगे और खाना न सही खाने की बातें करके ही अपना और उसका मन बहलायेंगे। क्या तुम्हें भूख तो नहीं लगी मुन्ने ? जरूर लगी होगी। कल डाक्टर साहब से जरूर खाने के लिए कहेंगे। आज और धीरज रखो कल फिर खूब अच्छी-अच्छी यह चीजें वह चीजें खाने को देंगे। बाजार से अमुक दुकान से अमुक चीज ला देंगे, गर्ज कि यहाँ तक खाने-पीने की बात करेंगे कि इच्छा न होते हुए भी उसकी भोजन-वृत्ति जाग जाती है और तब उनका लाड़ला झूठी-भूख अनुभव करके खाने के लिए जिद करने लगता है, जिसका फल यह होता है कि माता से बचा तो पिता और पिता से बचा तो माता, भोजन अवश्य करा ही देती है। निदान रोग की आयु एक दिन से बढ़कर एक सप्ताह हो जाती है। किन्तु लाभ न होने की शिकायत डाक्टर से करते हैं, बहुत कुछ पूछने पर भी जहाँ तक सम्भव होता है अपने प्यार की कारगुजारी डाक्टर से छिपाये रहते हैं।

कोई-कोई माता-पिता डाक्टर के बताये पथ्य में कुछ हल्का-सा हेर-फेर अपनी ओर से कर लेने में कोई हर्ज नहीं समझते। जैसे डाक्टर ने केवल परवल का पानी बतलाया है तो वे पानी को साधारण शोरबे का रूप देने को कोई अपथ्य नहीं मानते। यदि डाक्टर ने हल्की चाय बतलाई है तो वे बच्चे की कमजोरी दूर करने के विचार से दो चम्मच दूध बढ़ा देना जरूरी समझते हैं। इस प्रकार यदि रोगकाल में, बच्चे प्यार करने वाले अभिभावकों की क्रिया-कलाप का पूरा-पूरा ब्यौरा दिया जावे तो स्पष्ट पता चल जायेगा कि बच्चे के प्रति उनके प्यार का क्या अर्थ है ?

बहुत-से अभिभावक अपने बच्चों को बहुधा दूसरे बच्चों के साथ खेलने नहीं देते। उन्हें अपने बच्चों के सिवाय दुनिया के सब बच्चे लड़ाकू और झगड़ालू दिखाई देते हैं। अपने बच्चों को रोकने के लिए वे ऐसा भाव उनके मस्तिष्क पर थोप देते हैं, जिससे वह अन्य बच्चों को लड़ाकू और झगड़ालू समझकर उनसे डरने लगते हैं। जिसका फल यह होता है कि वे अकेले पड़ जाते हैं और कुछ दिनों में उन्हें एकाकीपन का विषाद घेरने लगता है, वे उदास रहने लगते हैं और उनका सारा मानसिक विकास रुक जाता है।

कुछ अभिभावक यह पता लगाने की कोशिश करते हैं कि स्कूल में अध्यापक उनके बच्चों के साथ सख्ती का व्यवहार तो नहीं करते हैं और यदि कोई बच्चा कभी उसका आभास दे देता है, तो वे मास्टर के पास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उलाहना देने पहुँच जाते हैं और उसके साथ अच्छा व्यवहार करने की सिफारिश उसी के मुँह पर ही करने लगते हैं। जिसका फल यह होता है कि अध्यापक ऐसे बच्चों की ओर से उदासीन हो जाते हैं वे जिससे पढ़ने-लिखने में बिलकुल शून्य हो जाते हैं।

सारांश यह है कि इस प्रकार लाड़िले बच्चों के अभिभावकगण, जितने भी उपाय हर प्रकार से बच्चे की जिन्दगी खराब होने के हो सकते हैं, प्यार की संज्ञा देकर, कर उठाने में कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखते। अब वह अपने भाग्य से कुछ बन जाय तो दूसरी बात है।

अब यदि इन बातों पर गहराई से विचार किया जाये तो इस प्रकार का प्यार बच्चे के साथ दुश्मनी करने के सिवाय और क्या कहा जायेगा ?

बच्चे घर छोड़कर क्यों भागते हैं ?

समाचार-पत्रों में विज्ञापन के कॉलम 'गुमशुदा की तलाश' से भरते जा रहे हैं। गुमशुदा व्यक्तियों में बहुत-से व्यक्ति तथा किशोरवय के बालकों को खोजने और पता देने वालों के लिए इनाम घोषित होता है। बड़ी उम्र के युवक और वयस्क किसी कारण से घर छोड़कर बाहर निकल सकते हैं; जिनमें प्रेम, रोजगार की तलाश, घर से मन-मुटाव या कोई भी आकर्षण जैसी बात हो सकती है। परन्तु अपरिपक्व बुद्धि और उम्र के किशोर बच्चे घर से क्यों भाग निकलते हैं ? इसका कारण समझने के लिए गहराई से विचार करना होगा। यद्यपि परिवार के हित में भी तथा स्वयं भागने वाले युवक और प्रौढ़ व्यक्ति के हित में घर छोड़ना लाभदायक नहीं होता। हानि उठाकर, भूखों मरते हुए, दर-दर की ठोकरें खाकर भटकते रहना, मंजूर करने वाले युवक और किशोर किन्हीं ऐसी परिस्थितियों और घुटन के शिकार हो जाते हैं, जो परिवार में जन्म ही लेती हैं।

भागने और घर छोड़ने के विचार का बीज प्रायः बचपन में ही मनोभूमि में पड़ चुका होता है। जो समय पाकर अंकुरित होता है और परिवार तथा स्वजनों से विद्रोह करने के लिए बाध्य करता है। बचपन में मिला पारिवारिक वातावरण ही इस प्रकार की घुटन और विद्रोह का उत्तरदायी है।

परिवार के वातावरण निर्माण में माता-पिता और अन्य बड़े सदस्यों का मुख्य हाथ रहता है। यह वातावरण सदस्यों के परस्पर व्यवहार, आदेशात्मक दबाव, कटुता, उपेक्षा, तिरस्कार से बिगड़ता है और एक-दूसरे की इच्छा, आवश्यकता समझकर अपनाया गया सहयोगी दृष्टिकोण, मधुर व्यवहार, सम्मान तथा परस्पर हितकारी रवैये से सुधरता है। इन थोड़ी-सी बातों को समझ लिया जाये और अपने परिवार में अच्छा वातावरण बना लिया जाय तो इस समस्या की जड़ ही समाप्त हो जायेगी। न तो घर की बेइज्जती होगी और न किसी बच्चे को दर-दर की ठोकरें खाने के लिए बाध्य होना पड़ेगा।

घर के बड़े सदस्य यह समझते हैं कि परिवार के छोटे बच्चे या अन्य सदस्य केवल उम्र में छोटे होने के कारण हमारे दास हैं या आश्रित हैं। इसलिए हमें उनसे सेवा कराने या काम लेने का पूर्ण अधिकार है। यह अधिकार की भावना ही उन्हें बच्चों के प्रति अनुचित व्यवहार की प्रेरणा देती है। वे न तो यह सोचते हैं कि बच्चा इस समय किस काम में लगा हुआ है और न ही उसकी सुविधा तथा इच्छा का ध्यान रखते हैं। बच्चों में स्वभावतः ही अपने से बड़ों की सेवा करने, उनके काम आने की हार्दिक इच्छा रहती है। परन्तु कई बार ऐसा भी होता है कि जब वे अपनी दृष्टि के किसी महत्त्वपूर्ण काम में लगे होते हैं या उस समय विश्राम करना चाहते हैं, ऐसे अवसर पर ऊपर से दी गई आज्ञा उन्हें व्यथित कर देती है। वे सोचने लगते हैं कि काश इस समय यह काम नहीं करना पड़ता।

चूँकि उनके मन में शुरू से ही यह बात होती है कि बड़ों की आज्ञा-पालन करनी ही चाहिए। संस्कारवान बालक ऐसी दशा में अपने मन की भावना को दबाकर भी बड़ों का काम कर देते हैं। परन्तु स्वच्छन्द स्वभाव के बच्चे तो ऐसे अवसर पर स्पष्ट रूप से अपनी इच्छा कह देते और असमर्थता जाहिर कर देते हैं।

बड़े सदस्यों पर इसकी बड़ी गहरी प्रतिक्रिया होती है। समझदार व्यक्ति तो जान लेते हैं कि बच्चा इस समय उनकी सेवा या आज्ञा मानने के मूड में नहीं है। लेकिन स्वयं को बड़ा होने का मान रखने वाले व्यक्ति का अहं इससे आहत होता है। वे समझने लगते हैं कि बच्चा अवज्ञा कर रहा है। दुर्गुण न बढ़ने देने की सतर्कता के स्थान पर अहं को पहुँचा आघात उन्हें उत्तेजित कर देता है और वे बच्चों के दण्डनायक बन जाते हैं।

बड़े सदस्यों का रोष और क्रोध स्वतन्त्र प्रकृति के बालकों में ही नहीं संस्कारवान बच्चों के हृदय में भी यह धारणा भर देता है कि उनका महत्त्व अन्य सदस्यों की अपेक्षा गौण है। घर के परिजनों से विद्रोह का बीज इसी अवसर पर पड़ता है, जो समय पाकर अंकुरित होकर अपना फल देगा ही। बड़े सदस्यों और माता-पिता को अपने बच्चों की सेवा का लाभ उठाने के लिए आरम्भ से ही यह सावधानी बरतनी चाहिए कि वह मन से भी तैयार है या नहीं, यदि वह किसी बाहरी कारण से या अन्दरूनी दबाव के कारण काम कर रहा है तो भी अपने किसी कार्य के लिए नहीं कहना चाहिए। ऐसी स्थिति में भी गलत प्रभाव होने की सम्भावना अधिक रहती है।

बच्चों से या उनके सामने भी किसी अन्य सदस्य के साथ किया गया कठोर आचरण उसे भगौड़ा बना देता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। बच्चों से किया गया कटु-व्यवहार उन्हें आतंकित करता है, ऐसे परिवार में बालक स्वाभाविक ही घुटन भरा वातावरण अनुभव करेगा और किसी न किसी प्रकार उससे बच निकलने का मार्ग ढूँढ़ता रहेगा। डाँट-फटकार करते रहने वाले अभिभावकों से बच्चे आरम्भ में केवल उन्हीं से रुख चुराते हैं, परन्तु धीरे-धीरे आतंक का वातावरण पूरे घर को ही डरावना बना देता है। मनुष्य स्वभाव से ही उन्मुक्त, प्रफुल्ल और आनन्दपूर्ण स्थितियों का अभ्यस्त है। स्वभाव की ये विशेषताएँ निस्सन्देह रूप से बच्चों में भी विद्यमान होंगी। इसलिए जिस घर में उसे आतंक और घुटन का अनुभव होता हो, वहाँ क्यों कर रहेगा ?

अक्सर बच्चों के अनुचित कार्यों को ही देखकर माता-पिता डाँट-फटकार शुरू कर देते हैं। यदि उन कार्यों का कारण ढूँढ़ा जाय और उसके आधार पर औचित्य-अनौचित्य का निर्णय लिया जाय तो अधिकांश गलत कामों में उनका कोई दोष नहीं मिलेगा। एक माँ अपनी बेटी की शिकायत कर रही थी। बेटी ने माँ की पेटी में रखे हुए अपने सिक्के जो दस-बारह रुपये के लगभग थे, धीरे-धीरे निकालते रहकर खर्च कर दिये। माँ ने सोचा—आज तो मेरी जिम्मेदारी में पड़ी हुई अपनी ही चीज इसने चुराई, कल से दूसरों की चोरी भी करने लगेगी। बात सही थी, परन्तु वस्तुस्थिति कुछ और ही थी जिसे देखकर बच्ची नहीं माँ ही दोषी ठहराई जानी चाहिए। हुआ यह कि माँ अपनी बेटी को पहले एक चवन्नी रोज दिया करती थी, कुछ पैसे तो वह खा जाती बाकी अपनी माँ के पास गुल्लक में रख देती। जब कुछ पैसे इकट्ठे हो गये तो माँ ने गुल्लक सहेजकर रख दी।

बेटी को तो जेब खर्च की आदत पड़ चुकी थी। स्कूल जाते समय वह अपनी माँ से पहले की ही तरह पैसे माँगती। परन्तु माँ यह कहकर मना करने लगी कि तेरे पास काफी पैसे इकट्ठे हो गये हैं। अब तुझे जेब खर्च की क्या जरूरत ?

हर प्रकार से आग्रह, अनुरोध कर देख लिया परन्तु माँ किसी भी प्रकार जेब खर्च देने के लिए तैयार नहीं हुई और डाँटने-डपटने लगी। बच्चों की अपने संगृहीत पैसों से बड़ा लगाव था, वह उन्हें खर्च नहीं करना चाहती थी परन्तु स्कूल में पड़ी आदत को कैसे तृप्त किया जाये ? उसने गुल्लक में से पैसे निकालना शुरू कर दिया। अब गलती किसकी कही जाय ? लड़की में चोरी की आदत पड़ती है इसके लिए कौन दोषी हुआ ? माँ या बेटी ? एक तो यह लत पड़ी ही ऊपर से अपने रवैये को नजरअन्दाज कर केवल लड़की को ही दोष दिये जाना और उसे डाँटना-फटकारना माँ के प्रति गलत धारणा को जन्म देगा ही।

ऐसे मौकों पर माँ, पिता से शिकायत करती है और पिता, माँ से, दोनों ही एक-दूसरे से सुनी हुई बातों को सुनकर इतने असंतुलित हो जाते हैं कि उन्हें बच्चों से उनकी समस्या सुनने का ध्यान ही नहीं रहता। बच्चा तो अपनी दृष्टि में एकदम सही है, उसे माता-पिता ही गलत महसूस होते हैं। परिणाम यह होता है कि अपने प्रति किया गया अत्याचार वह सह नहीं पाता। एक बार, दो बार, बार-बार इसी प्रकार का व्यवहार उसमें विद्रोह का बारूद भरता रहता है और फिर दुबारा पहुँचा जरा-सा भी आघात एक ऐसा विस्फोट करता है जिसके कारण बच्चा हो या बड़ा घर से मुँह मोड़कर चलता बनता है।

बच्चों को घर से भागने के लिए मजबूर कर देने वाला एक और सशक्त कारण है कि उसके प्रति उपेक्षा पूर्ण व्यवहार। कई घरों में बच्चों के साथ बड़ी उदासीनता का व्यवहार किया जाता है। वे क्या कर रहे हैं ? इस ओर किसी का ध्यान ही नहीं रहता। बच्चा किसी को पीट रहा है या कोई तोड़-फोड़ कर रहा है—इससे जैसे किसी को कोई सरोकार ही नहीं। ऐसा लगता है वे किसी और के बच्चे हैं। ऐसे परिवार में माता-पिता यह मानकर चलते हैं कि बच्चों को अपने ढंग से चलना चाहिए। कील चुभेगी तो उन्हें स्वयं पता चलेगा। रोकने-टोकने से उनका स्वाभाविक विकास अवरुद्ध होगा। प्रत्येक वस्तु के प्रति उनमें एक कौतूहल की भावना रहती है। अतः जब तक वे प्रत्येक वस्तु और विषय का स्वयं परख और अनुभव नहीं कर लेते तब तक चैन से नहीं बैठते।

यह दृष्टिकोण है तो सही, परन्तु इसके लिए उदासीनता की नीति अपनाना किसी भी तरह उनके लिए हितकारी नहीं है। कुछ भी करते रहने से और माता-पिता की ओर उपेक्षा होते देख वे यह समझने लगते हैं कि अभिभावक हमारे प्रति एकदम लापरवाह हैं और कौतूहल की भावना उन्हें घर से बाहर की दुनिया का भी स्वयं ही अनुभव करने के लिए उकसाती रहती है।

बच्चों में अपनी बुद्धि से उचित निर्णय लेने की क्षमता का विकास अच्छी तरह तभी हो सकता है, जब उनके बौद्धिक स्तर के अनुरूप उनसे विचार-विमर्श किया जाय। प्रत्येक वस्तु की समुचित जानकारी दी जाय, समाज की स्थिति का ज्ञान कराया जाय और प्रत्येक विषय में दोनों पक्षों में और विकल्पों से अवगत कराया जाय। इस प्रकार पालन-पोषण का कलात्मक ढंग अपनाकर बच्चों में एक गलत धारणा का जन्म रोका जा सकता है। बच्चों को यह बोध कराया जा सकता है कि उनके प्रति हम लापरवाह नहीं हुए हैं।

उपेक्षा और उदासीनता की नीति उन्हें यह सोचने के लिए बाध्य कर देती है कि माता-पिता को हमसे कोई दिलचस्पी नहीं है। ऐसे बच्चे घर से भागें भले ही नहीं, आगे चलकर वे भी माँ-बाप की उपेक्षा तो अवश्य ही करने लगते हैं। उपरोक्त वर्णित पालन-पोषण की अन्य विधियाँ भी बालकों का हृदय परिवार के प्रति क्रमशः वितृष्णा, अलगाव और विद्रोह से भरती रहती हैं। इन्हीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिस्थितियों में बच्चे या तो लड़कपन में ही घर से भाग निकलते हैं अथवा बड़े होने पर भागते हैं। यदि इन तथ्यों को ध्यान में रखकर आरम्भ से ही बच्चों के प्रति अपने व्यवहार में सावधानी रखी जाय, किस बात की गलत प्रतिक्रिया हो सकती है ? यह समझ-बूझकर आचरण किया जाय तो बच्चे भूखों मरकर भी बाहरी दुनिया का बड़े-से-बड़ा आकर्षण ठुकरा देंगे। वृक्ष को अपने जन्म स्थान से कितना लगाव होता है, उसकी जड़ें जितनी भी गहरी जायेंगी उतना ही वह झंझावातों और आँधियों में भी दृढ़ता के साथ खड़ा रहेगा ? बच्चों के प्रति हमारा आचरण जितना मधुर, प्रेममय और विवेकपूर्ण होगा परिवार उसके जन्म केन्द्र से उतना ही वह मजबूती के साथ बँधेगा। प्रलोभन और आकर्षण की आँधियाँ भी उसे विचलित नहीं कर सकेंगी।

बच्चों का स्वतन्त्र व्यक्तित्व मानकर उनके साथ तदनुकूल व्यवहार करना, उन्हें कभी यह आभास नहीं होने देना कि वे छोटे होने के कारण उन्हें हमारी सेवा करनी ही चाहिए—बालकों के व्यक्तित्व को बहुमुखी विकास करने में सहायक सिद्ध होगा। स्वेच्छा से वे हमारे काम दौड़-दौड़कर करें तो कोई हर्ज नहीं है उन्हें स्वतन्त्रता देने का अर्थ यह भी नहीं है कि किसी प्रकार से उनमें बड़ों के प्रति निरादर की भावना बढ़ती रहे। सावधानी इतनी रखी जानी चाहिए कि वे किसी प्रकार अपने आप पर कोई अनुचित दबाव अनुभव न करें। ऊपर लिखित बातें बच्चों के हृदय में बढ़ने वाली अलगाव की भावना को रोकती हैं या यों कहिए कि ऐसे बीज ही नहीं पड़ने देतीं जिसमें बच्चा परिवार के प्रति वितृष्णा से भरने लगे।

बच्चे भविष्य की थाती हैं। उनका जीवन परिवार के साथ ही सुरक्षित रह सकता है। दूसरी जगह कदापि नहीं। अपने समाज की, देश की और विश्व की भावी कर्णधार पीढ़ी को सुरक्षित जीवन देकर माता-पिता इस संसार को अनुपम उपहार दे सकते हैं।

बच्चों का घर से मोह-भंग क्यों हो जाता है ?

आज का पारिवारिक वातावरण विचित्र है। हर किसी को अपनी आपाधापी पड़ी है। स्नेह और सहयोग का वातावरण घटता जा रहा है। फलतः प्यार के भूखे बालकों को अपनी आत्मिक आवश्यकता से वंचित रहना पड़ता है। वे घर में अपने को उपेक्षित, एकाकी और असहाय अनुभव करते हैं और घर से बाहर निकलकर कहीं अन्यत्र ऐसी जगह खोजते हैं, जहाँ उन्हें स्नेह-सहकार मिल सके। इसी खोज में वे अवांछनीय तत्त्वों के हाथ पड़ जाते हैं और घर से निकल भागने के लिए उनका मन मचलने लगता है।

पिता को आर्थिक समस्याएँ सुलझाने से फुरसत नहीं। माता को देखभाल, गृहस्थी का बोझ ही इतना है कि न समय बचता है और न स्नेह-दुलार देने की मनःस्थिति ही रह पाती है। फैशन और आरामतलबी का भूत उनकी मनोदशा को किसी दूसरे लोक में विचरण करने के लिए घसीटता है। अमीर घरों में बच्चों का भार नौकरों के कन्धों पर लदता है। गरीबों को पेट पालने के लिए इतना व्यस्त रहना पड़ता है कि बच्चों के विकास का भार भाग्य पर छोड़ने के अतिरिक्त और कुछ सम्भव नहीं मानते। जो हो इस स्थिति का प्रभाव बालकों के विकास पर बहुत ही बुरा पड़ता है।

आज पुरुष का कार्यक्षेत्र तो बाहर का बन गया है। वह घर में उसी प्रकार आता है जैसे एक मुसाफिर थका-हारा, भूखा-प्यासा आराम करने या पेट भरने किसी सराय में चला जाये। उसे बाहर की चिन्ताओं से ही छुट्टी नहीं मिलती। घर में भी रहकर हर प्रकार की चिन्ताओं से घिरा रहता है, जीवन उसके लिए ही बोझ है। लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं कि पुरुष घर में आँख मूद ले, केवल बाहर का ही काम देखे, उसे अपने घर-परिवार, औरत-बच्चों के प्रत्येक कार्य का ज्ञान होना चाहिए।

जहाँ माँ का प्यार बच्चों को उद्दण्ड बना देता है वहीं पिता की एक कठोर आवाज उसे भटकने से बचा लेती है। यदि माँ बच्चों को अच्छी तरह पालने के साथ-साथ अच्छा नागरिक भी बनाए तो इसी में माँ बनने की सार्थकता है। नारी पुरुष से अधिक व्यावहारिक व कुशल होती है। उसे ज्ञात होना चाहिए कि बच्चों का मानसिक निखार, बौद्धिक विकास किस तरह होना चाहिए ? बच्चों का सुन्दर भविष्य माँ के हाथ होता है।

पहले चाहे इन भागने वालों की संख्या नगण्य रही हो, लेकिन अब यह दिनोंदिन बढ़ती जा रही है और वास्तविकता यह है कि अब एक साधारण बात न होकर एक समस्या बन गई है। यदि समाज ने इस समस्या पर ध्यान न दिया तो यह और भी अधिक बढ़ती जायेगी लेकिन क्या यह सत्य है कि घर से जाने वाले सभी बच्चों को बलपूर्वक या फुसलाकर ले जाया जाता है। यदि इस बात पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये और कुछ मामलों पर ध्यान दिया जाये तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि अधिकांश लड़के स्वयं घर से भागकर जाते हैं और ये भगौड़े लड़के किसी एक विशेष वर्ग से सम्बन्धित न होकर धनी, निर्धन, शिक्षित, अशिक्षित सभी घरानों से सम्बन्धित होते हैं, लेकिन प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि लड़के घर से भागते क्यों हैं ? यह एक विचारणीय बात है। लड़कों के घर से भागने का एक प्रमुख कारण है पढ़ाई में रुचि न होना। बहुत-से बच्चे ऐसे हैं जो पढ़ना नहीं चाहते लेकिन उनके माता-पिता उन्हें पढ़ने के लिए बाध्य करते हैं। पढ़ाई में रुचि न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होने के कारण पढ़ाई में कमजोर होना तो स्वाभाविक ही है इसका परिणाम यह होता है कि वह विद्यालय में अध्यापकों द्वारा काम न करने के कारण दण्डित किया जाता है। इन बातों से जब लड़का परेशान हो जाता है तो घर से भाग जाता है। दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण है—घूमने की इच्छा होना। बहुत-से बच्चों की यह प्रबल इच्छा होती है कि वे अपनी छुट्टियों में कहीं बाहर घूमने जायें। घर पर माता-पिता का दुर्व्यवहार भी लड़कों के घर से भागने का एक कारण है।

कुछ अध्यापक भी अपने बच्चों के साथ दायित्व भूलकर अच्छा व्यवहार नहीं करते। जरा-सी गलती पर उन्हें समझाने के स्थान पर सजा दी जाती है। इससे बच्चा हतोत्साहित हो जाता है और अपने भविष्य के विषय में बिना कुछ सोचे-समझे घर से भागने का एकदम निर्णय कर लेता है।

इस प्रकार की प्रवृत्ति उन्हीं लड़कों में पाई जाती है, जिनकी उम्र १८ से २० वर्ष की होती है। इस किशोर अवस्था में बालकों में एक विशेष जोश होता है और वे आवेश में आकर परिणामों को सोचे बिना जल्दी में निर्णय कर लेते हैं। अपना अच्छा-बुरा सोचने की शक्ति उनमें कम ही होती है।

घर से भागकर कितने ही लड़के अपना जीवन बर्बाद कर लेते हैं। अच्छे घरानों से सम्बद्ध लड़के जो घर पर रहकर कुछ बन सकते थे, घर से भाग जाने पर वे कम ही वापस लौटकर आते हैं। वे कहीं नौकरी करके अपना पेट भरने का प्रयत्न करते हैं। कुछ लड़के कुसंगति का शिकार हो जाते हैं और उठाईगीरी, जेबकटी जैसे अपराधों से अपना जीवन निर्वाह करते हैं, जिन्हें कोई काम-धन्धा नहीं मिलता और जो गलत मार्ग नहीं अपनाना चाहते वे निराश होकर साधु-सन्त बन जाते हैं और कुछ यहाँ-वहाँ माँगकर अपना पेट भरते हैं। चोरी और छोटा-मोटा काम करते हैं और इस प्रकार अपना जीवन अन्धकारमय बना लेते हैं। कुछ मामले तो बहुत-से निराशाजनक होते हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि लड़कों की प्रवृत्ति को कैसे रोका जाये ? इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। समस्या का काफी समाधान माँ-बाप के हाथ में है। उन्हें अपने बच्चों की रुचि का ध्यान रखना चाहिए।

यदि बच्चे का ध्यान पढ़ाई में नहीं लगता तो उसे किसी काम में लगा देना चाहिए। ऐसा करने से अच्छा परिणाम होता है।

माँ-बाप को लड़कों की संगति पर विशेष ध्यान देना चाहिए। समय-समय पर स्कूल जाकर उसकी रिपोर्ट प्राप्त करनी चाहिए और कोई दोषयुक्त रिपोर्ट मिलने पर तुरन्त उस पर ध्यान देना चाहिए। किसी भी ऐब को शुरू में ही रोका जा सकता है।

इस सम्बन्ध में एक बात और विचारणीय है, वह यह कि घर से भागने के बाद यदि लड़का स्वयं घर लौट आता है तो उसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए ? बहुत-से माता-पिता समझदारी से कार्य नहीं करते हैं। वे प्रायः भागने वाले लड़कों को भागने के अपराध में बुरी तरह पीटते हैं।

उन्हें चाहिए कि प्यार से लड़के से भागने का कारण पूछें और फिर उस कारण को दूर करने का प्रयत्न करें। यदि ऐसा न करके बच्चे के साथ दुर्व्यवहार किया जायेगा, तो सम्भव है कि वह घर से भाग जाये और इस प्रकार घर से भागने की उसकी आदत बन जाये।

बच्चों का घर से पलायन— एक घातक सामाजिक रोग

नगरों में बाल-अपराध की घटनाएँ दिनोंदिन तेजी से बढ़ती जा रही हैं। अधिकांश बाल-अपराध भगौड़े बच्चों द्वारा किये जाते हैं। जिन असामाजिक तत्वों के चंगुल में ये एक बार फँस जाते हैं, फिर जीवन भर उनके दशारों पर नाचने के लिए विवश होते हैं। चोरी, जेबकटी, स्मगलिंग से लेकर भीख माँगने जैसे अनैतिक कृत्यों में इन अबोध बच्चों का भरपूर उपयोग किया जाता है। बाल सुलभ मस्तिष्क में अपराध वृत्ति के कुसंस्कार जड़ जमाते चले जाते हैं और आगे चलकर ये बच्चे ही बड़े अपराधी बन जाते हैं। जो समाज के निर्माण में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते थे, वे ही अभिशाप सिद्ध होते हैं।

बच्चों के घर छोड़कर निकल जाने की प्रवृत्ति इन दिनों प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसे देखते हुए यह प्रतीत होता है कि कहीं कोई भारी त्रुटि हो रही है, जिसके कारण बच्चे ऐसे कदम उठाने में भी नहीं झिझकते। इस समस्या के निदान के लिए बाह्य उपचारों की अपेक्षा समस्या के मूल में जाना होगा, जिसके कारण बच्चे अनिश्चित भविष्य की ओर बढ़ते हैं।

बालक का घर से विमुख हो जाना अभिभावकों के प्रति एक खुली चुनौती है। बच्चों में बढ़ती हुई इस प्रवृत्ति का मूल कारण ढूँढ़ने पर पता चलता है कि वस्तुतः माता-पिता ही दोषी हैं। बच्चों के प्रति कर्त्तव्यों और दायित्वों का भली प्रकार निर्वाह न करने से ही ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता है। बच्चे का हृदय बड़ा ही संवेदनशील होता है, इसके मन पर भले-बुरे व्यवहार की अमिट छाप पड़ जाती है। परिजनों का स्नेहपूर्ण व्यवहार उसके भावी विकास में सहायक होता है। दुर्व्यवहार, कठोर आचरण एवं उपेक्षा से उसकी कोमल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भावनाओं को ठेस पहुँचती है। एक ही माता-पिता के दो बच्चों में योग्यता, रुचि, बुद्धि, प्रतिभा में भिन्नता होना स्वाभाविक है। अभिभावकों की इच्छा के प्रतिकूल होने पर उसे उपहास, अपमान, आक्षेप, तिरस्कार का भाजन बनना पड़ता है। इस भावनात्मक आघात से मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाता है और बच्चा मन ही मन क्षुब्ध होकर घर से चुपचाप निकल जाने का रास्ता अपनाता है।

बाल-मनोवैज्ञानिक एवं अपराध विशेषज्ञ डॉ. दस्तूर ने विभिन्न परीक्षणों के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला कि बच्चों के घर से भागने में सबसे प्रमुख कारण है—पारिवारिक परिवेश। इस अर्थ प्रधान युग में माँ-बाप के पास समय नहीं है कि वे बच्चों को सही ढंग से समझने का प्रयास कर सकें, उनकी इच्छा, रुचि का पता लगा सकें उन्हें समुचित स्नेह-प्यार दे सकें। वे बच्चों से खुलकर हँस-बोल नहीं सकते तथा स्वयं उनके सामने 'रिजर्व' रहने का मिथ्या-ढोंग करते हैं। ऐसी परिस्थिति में बच्चा एकाकीपन अनुभव करने लगता है। इस एकाकीपन, उपेक्षा भाव से बच्चा परिजनों से टूट जाता और उन्हें छोड़ देने में भी नहीं हिचकिचाता।

केवल उपेक्षा एवं अपमान से ही इस प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता हो, ऐसी बात नहीं। अत्यधिक स्नेह के नाम पर बच्चे की हर उचित-अनुचित इच्छा पूरी करना भी अन्ततः हानिकारक ही सिद्ध होता है। बचपन की सुसम्पन्न परिस्थितियों के कारण बच्चे में विपन्न परिस्थितियों से लड़ने की सामर्थ्य समाप्त हो जाती है। विलासिता एवं ऐशोआराम के अभ्यस्त होने के कारण जीवन में छोटी से छोटी कठिनाई आने पर उनसे तालमेल बिठा पाना प्रायः उनसे असम्भव हो जाता है। गरीबी के दिन आने पर उनकी इच्छाएँ पूर्ण होना असम्भव हो जाता है। उसकी पूर्ति के लिए वे घर से इस आशा के साथ बाहर निकलते हैं कि अधिक सम्पत्ति उपार्जित करेंगे। क्षमता एवं अनुभव के अभाव में सफलता प्राप्त करना तो दूर की बात है, भूखों मरने की भी नौबत आती है। ऐसे बच्चे शहरों में मारे-मारे घूमते हैं तथा बदमाशों के चंगुल में आने पर अनैतिक धन्धे करने के लिए मजबूर बन जाते हैं।

भौतिक उपलब्धियों का भी जीवन में अपना महत्त्व है परन्तु जो सम्पन्नता श्रम की वृत्ति को समाप्त कर दे वह मानव जीवन के लिए अहितकर है। आज अधिकांश सम्पन्न परिवारों में बच्चों को सुख-साधन अधिकाधिक देकर उनकी क्षमता एवं श्रम-शक्ति को कुण्ठित कर दिया जाता है। प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करने की उनमें क्षमता नहीं रहती। गरीबी के दिन आने पर ऐसे बच्चे कम में गुजारा करने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं। अर्थ-उपार्जन का कोई और उपाय न मिलने पर घर से भागकर बाहर कमाने का एक ही रास्ता उन्हें दिखाई देता है।

इस प्रवृत्ति से बच्चों को बचाने के लिए माता-पिता पर यह दायित्व आता है कि बच्चों को स्नेह-सद्भाव से तो वंचित न रखें, पर साथ ही उनकी गतिविधियों पर भी बराबर ध्यान रखें। उनमें बचपन से श्रमशीलता का अभ्यास डालें। यदि मोहवश उन्हें श्रम के अभ्यास से वंचित रखा गया तो यह आगे चलकर घातक ही सिद्ध होगा।

बच्चों में प्रारम्भ से ही शिक्षा के प्रति रुचि उत्पन्न करने के लिए प्रयास करना चाहिए। भावी जीवन के लिए उसकी क्या उपयोगिता और महत्ता है, यह समझना चाहिए। स्कूली पढ़ाई के अतिरिक्त घर में भी नियमित पढ़ने का अभ्यास डालने और प्रोत्साहन देते रहने से बच्चे की रुचि को सहज ही इस दिशा में मोड़ा जा सकता है। कुछ बच्चे ऐसे भी होते हैं, जो काफी प्रयत्न करने के बाद भी अध्ययन में रुचि नहीं लेते—ऐसे बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा के उपरान्त उनकी रुचि के अनुसार किसी व्यापार अथवा उद्योग कार्य में लगाया जा सकता है। ऐसा देखा गया है कि जो बच्चे शिक्षा में पिछड़ जाते हैं, वे व्यापार अथवा उद्योग के क्षेत्र में सफल हो जाते हैं। रुचि न होने पर भी शिक्षा के लिए अत्यधिक दबाव देने और विद्यालय जाने के लिए बाध्य किए जाने पर, इनसे बचने के लिए घर से निकल जाने का रास्ता ही चुनते हैं।

गाँव के बच्चों में शहरी तड़क-भड़क का भी एक आकर्षण होता है। बुरे लड़कों के सम्पर्क में आकर बच्चे घर से निकल पड़ते हैं। सिनेमा, पार्क व दर्शनीय स्थलों पर प्रारम्भ में घूमना तो अच्छा लगता है, लेकिन शीघ्र ही जीवन की कठोर वास्तविकता से परिचित होने पर भूख मिटाने के लिए अपराधवृत्ति ही अपनाते हैं।

बच्चों में घूमने-फिरने की सहज ही इच्छा होती है। अतः माता-पिता को बच्चों की इस रुचि का ध्यान रखते हुए समय-समय पर स्वयं पर्यटन के लिए ले जाना चाहिए। इससे बच्चे की जिज्ञासा और उत्सुकता का समाधान तो होगा ही व्यक्तित्व-विकास और ज्ञान-सम्वर्धन में भी समुचित योगदान मिलेगा।

बच्चों का घर से भाग जाने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने में सिनेमा का सर्वाधिक हाथ रहा है। नई पीढ़ी को दिग्भ्रान्त करने का प्रमुख दोषी सिनेमा ही है। जनमानस की पशु-प्रवृत्तियों को भड़काने तथा निकृष्ट गतिविधियों को अपनाने के लिए सिनेमा ही निरन्तर बाध्य कर रहा है। समाज का अनिवार्य अंग बच्चा भला इससे कैसे अछूता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

रह सकता है ? सिनेमा वर्तमान समय में अपराधों की वृद्धि में किस प्रकार सहयोग दे रहा है ? इसका वर्णन मद्रास के चीफ मैट्रीपोलिटन मजिस्ट्रेट ने एक मुकदमे में कहा था—"सिनेमा इस युग का अभिशाप है। इसने मानवीय कुलों में रहने वाले असंख्य लड़के एवं लड़कियों के भविष्य को अन्धकार के गर्त में सदा के लिए डाल दिया है।"

शहरों की चकाचौंध एवं काल्पनिक प्रसंगों ने किशोरों को उनके स्वाभाविक जीवन से अलग कर दिया है। इसके माध्यम से किशोर एवं किशोरियाँ बिना अपनी प्रतिभा, क्षमता एवं परिस्थितियों पर विचार किये भावुकतावश स्वयं भी हीरो-हीरोइन बनने के लिए परिवार और समाज के सारे नैतिक बन्धनों को तोड़कर निकल जाते हैं और जब वास्तविकता के धरातल पर पैर रखते हैं तो निराशा ही हाथ लगती है। लोगों द्वारा व्यंग्य कसे जाने एवं शर्म के कारण तो वापस आ नहीं सकते। मजबूरीवश जीवन के बाकी दिन भीख माँगकर, जेबकटी, वेश्यावृत्ति, चोरी जैसे अनैतिक कार्यों में पूरे करते हैं।

बच्चे राष्ट्र की अमूल्य निधि होते हैं। परिवार एवं समाज की उनसे बड़ी अपेक्षाएँ होती हैं। घर से पलायन करने की प्रवृत्ति को रोकने के लिए माता-पिता से लेकर समाज के अग्रणी नेतृत्व करने वाले व्यक्ति एवं शिक्षाशास्त्री बच्चों की इच्छाओं-अपेक्षाओं एवं रुचि पर ध्यान दें, तदनुरूप साधन उपलब्ध करें, तभी इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति को रोका जाना सम्भव है।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बालकों की शिक्षा ही नहीं, दीक्षा भी आवश्यक है

बच्चों को स्कूल ऐसे भेजें

स्कूल में भर्ती कराने के बाद बच्चों का एक नया संसार आरम्भ होता है। अब तक वे अपने माँ के शासन में रहने का अनुभव करते थे, स्कूल जाना आरम्भ करने के बाद किसी दूसरे व्यक्ति का, जो परिवार के बाहर का है, शासन अनुभव होता है। अब तक वे परिवार के या आस-पड़ौस के बच्चों के साथ रहते थे, स्कूल में प्रवेश करते ही उनके अनुभव में बाहर के बच्चों का अहसास होता है। हर तरह से बच्चों के लिए पहली बार स्कूल जाना अपने ढंग का नया अनुभव है। प्रौढ़ दृष्टि से देखने पर भले ही इस बात का कोई महत्त्व न लगे परन्तु बच्चों के लिए यह एक नयी, अति महत्त्वपूर्ण और चौंका देने वाली घटना है। उस समय की अनुभूतियाँ वयस्क होने तक बहुत कुछ विस्मृत हो जाती हैं पर फिर भी याद की जाय तो घबराहट, हैरानी और आश्चर्य की एक झलक तो मिल ही सकती है।

यही कारण है कि स्कूल में घुसते ही बच्चे हिचकिचाने लगते हैं। वहाँ उनका जी घुटने लगता है। स्कूल का वातावरण उन्हें एक कारागार की तरह लगता है, जहाँ से वे जल्दी से जल्दी बाहर निकल जाना चाहते हैं। अतः बच्चों को स्कूल भेजते समय काफी मनोवैज्ञानिक समझ-बूझ रखने की आवश्यकता है अन्यथा बच्चों के मन में स्कूल के प्रति एक स्थायी अरुचि घर कर जाती है और वे चाहकर भी कभी अच्छा विद्यार्थी नहीं बन सकते।

मनोवैज्ञानिक बातों का ध्यान रखते हुए भी बच्चों के मन से यद्यपि समूची हिचकिचाहट तो दूर नहीं की जा सकती। पर उनके मन में वह क्षमता अवश्य उत्पन्न की जा सकती है, जो नये वातावरण के अनुकूल बनने का आत्म-विश्वास दिला सके। बच्चा स्कूल में प्रारम्भिक दिनों में उस प्रकार प्रवेश करता है जैसे—बतख का बच्चा तालाब में उतर रहा हो, जाना पड़ रहा है—यह विवशता है और जाने का मन नहीं है क्योंकि आस-पास सब कुछ नया ही नया और अनदेखा-सा है।

अतः स्कूल भेजने से पूर्व बच्चों को ऐसा साथी ढूँढ़ने में मदद देनी चाहिए जो उसकी उम्र का हो और जिस कक्षा में भर्ती कराना है उसमें ही पढ़ता हो। जहाँ तक हो सके आस-पास के ही बच्चे तलाश करना चाहिए ताकि बच्चा अपने आस-पास फैले नये वातावरण में किसी को तो अपना विश्वस्त साथी पा सके। नयेपन की हिचकिचाहट दूर करने के लिए कुछ पूर्वाभ्यास भी किये जा सकते हैं। जैसे अपनी मौजूदगी में उसे किसी नये स्थान पर जाना, पास ही कहीं किसी काम से नयी जगह पर अकेले भेजना।

स्कूल में उसे कई बच्चों का साथ मिलता है, जिनकी संख्या काफी बड़ी होती है। बच्चा अक्सर भीड़-भाड़ से भी घबराता है। अतः उसे पहले अपने समवयस्क बच्चे के साथ मेल-जोल बढ़ाने का अवसर देना चाहिए, ऐसा होने पर उसे स्कूली साथियों के साथ हिल-मिल जाने में काफी सहायता मिलेगी।

स्कूल में भर्ती करा देने के बाद ही अपनी सावधानियों से सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए। बाद में भी अनवरत् उसके स्कूली जीवन के प्रति स्वयं रुचि लेनी चाहिए और उसका उत्साह बढ़ाना चाहिए। आरम्भ में बच्चे स्कूल में भर्ती होने के बाद अनियमितता बरतने लगते हैं। चार-छह घण्टे एक स्थान पर बँधे रहना उन्हें रुचिकर नहीं लगता। अतः वे अपने दूसरे अन्य साथियों के साथ स्कूल से भाग आते हैं और कहीं पर खेलते रहते हैं। अतः इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि बच्चा नियमित रूप से स्कूल जा रहा है अथवा नहीं, यदि नियमितता की यह आदत उस समय अच्छी तरह डाली जा सके तो आगे वे अपना जीवन सुव्यवस्थित रखने के अभ्यस्त हो सकते हैं।

स्कूल जाने में अनियमितता बरतने का कारण भी वहाँ के वातावरण का अजनबीपन है। अतः माता-पिता दोनों को मिलकर उसे वहाँ के अजनबी वातावरण के प्रति जिज्ञासु और श्रद्धालु बनाना चाहिए। इस दिशा में उनसे स्कूली कार्य-कलापों के सम्बन्ध में प्रश्न, वहाँ के अध्यापकों की बातें, साथियों और सहपाठियों की जानकारी आदि प्रश्न जानते रहना चाहिए। माता-पिता के लिए ये जानकारियाँ भले ही व्यर्थ हों पर इनसे बच्चों में एक जिज्ञासा का भाव उत्पन्न होता है और वह स्कूल के प्रति और भी तीव्र लगन रखने लगता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाठशाला जाते समय बच्चों को स्नेहपूर्वक विदा करना, प्रोत्साहन देना तथा लौटने पर प्रशंसात्मक बातें करना तुरन्त प्रभाव उत्पन्न करता है। पाठशाला से लौटने पर बच्चे थक-से जाते हैं। स्कूली टाइम में अनवरत् श्रम करते रहने के कारण उनकी बाल सुलभ शक्तियाँ सहलाये जाने की अपेक्षा करती हैं। ऐसी परिस्थितियों में इस प्रकार की बातें उनके लिए टॉनिक का काम करती हैं। ऐसे वक्त पर तो भूलकर भी ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए जिससे बच्चों को कष्ट अनुभव हो। थक जाने पर प्रौढ़ व्यक्तियों को भी बहुत जल्दी क्रोध आता है और उस समय व्यक्ति की संवेदना काफी नम रहती है। फिर वे तो बच्चे ठहरे। अतः उन्हें ऐसी बातें कहकर व्यर्थ नाराज करना उत्साह तोड़ देना जैसा है। जैसे बच्चा स्कूल से लौटकर कहता—"माँ हम आ गये।" झिड़ककर यह कहने की बजाय कि आ गये तो अच्छा किया। कौन-सा तीर मार लाये, यह कहा जाय कि राजा बेटा आ गया। कब आये यह तो तुमने पता नहीं चलने दिया। बच्चे की सुखद अनुभूतियों को कितना चेतन करता है ?

स्कूली जीवन आरम्भ करने के साथ बच्चों में स्वावलम्बन की आदत डालने का प्रयास भी उसी समय किया जा सकता है। रुचिपूर्वक समय मिलने पर उन्हें कपड़े पहनना, बालों में कंघी करना, जूते पहनना जैसी बातें सिखानी चाहिए। यह नहीं कि किसी काम में लगे रहने पर खुद ही तैयार हो जाओ कह दें, वरन् जब अपने पास भी समय हो तब उसे प्रोत्साहित करते हुए इन कार्यों का प्रशिक्षण दें। दैनिक कार्यों का प्रशिक्षण व्यस्तता या शीघ्रता के लिए नहीं संस्कार-स्वभाव के लिए देना चाहिए और इसके लिए शान्त वातावरण ही अधिक उपयुक्त है।

अपने नये जीवन में बच्चा नये समवयस्क लड़कों के सम्पर्क में आता है और अनेकों से प्रभावित होता है तथा अनेकों से घृणा करता है। जिन बच्चों से प्रभावित होता है, उनका साथ करने की भी चेष्टा करता है। ऐसे समय में पूरी सावधानी रखनी चाहिए और वह कैसे बच्चों के साथ रह रहा है तथा उनकी प्रवृत्ति और स्वभाव कैसा है ? इनका ध्यान रखना चाहिए। पाठशाला की संगति के सम्बन्ध में बच्चे के दूसरे साथियों, अध्यापकों और स्वयं बच्चों से जाना जा सकता है। उसके व्यवहार, रहन-सहन और आदतों में आये परिवर्तनों से भी इन बातों का पता चलाया जा सकता है। कहना नहीं होगा कुसंगति से बचाया जाना चाहिए तथा अच्छे बच्चों का साथ करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

बच्चे स्वभाव से चंचल और गैरगम्भीर होते हैं। परन्तु कक्षा में उन्हें एकाग्रता और शान्ति से बैठना पड़ता है। शरारती बच्चों को भी पढ़ाई के समय अपने पर अंकुश रखना पड़ता है। यही कारण है कि बच्चे छुट्टी होने पर जब स्कूल से निकलते हैं तो जोर से शोर करते हैं। एक प्रकार से उनके स्वभाव में आयी थकान का ही यहाँ निराकारण होता है। इस प्रवृत्ति को घर पर ही दिशा देना चाहिए और वे सन्ध्या समय थोड़े-बहुत खेलों से अपनी मानसिक थकान मिटा लें इसका प्रबन्ध करना चाहिए।

स्मरणीय है बच्चों पर अपनी आदतें, पसन्द और रुचियों को जमाने की अपेक्षा उनके स्वाभाविक विकास का प्रयत्न करना चाहिए। प्रत्येक बच्चा जन्मजात अपना अनूठा स्वभाव लेकर आता है। कुछ बातों का ही माता-पिता के स्वभाव से मेल होता है। अतः उसकी समस्याओं और आकांक्षाओं के प्रति समझदारी से ही काम लेना चाहिए। प्रतिभा जिन्हें जन्मजात मिलती है ऐसे बच्चे अपवाद ही होते हैं अन्यथा उनके विकास में अन्तर उचित देख-रेख की सतर्कता और उसके अभाव के कारण ही होता है। स्कूली जीवन में यदि उचित देख-रेख की जाय तो बच्चे स्वाभाविक ही अध्ययनशील और विद्वान बन सकते हैं।

बच्चों को स्कूल भेजकर ही निश्चिन्त न हो जायें

यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों की शिक्षा का एकमात्र माध्यम स्कूल नहीं है। बच्चा प्रत्येक क्षण सीखता है और संस्कार ग्रहण करता है। पाठशाला में एक बच्चा वर्ष भर में औसतन १० प्रतिशत से भी कम समय व्यतीत करता है। एक वर्ष में कुल सतासी सौ साठ घण्टे होते हैं, यानी लगभग पौने नौ हजार। इसमें से अधिकतम साढ़े आठ या नौ सौ घण्टे बच्चा वर्ष भर में पाठशाला में बिताता है। शेष आठ हजार से कुछ ही कम घण्टे वह घर-मुहल्ले में बिताता है। पाठशाला कोई जादूघर नहीं है कि वहाँ बच्चों पर संस्कारों का दबाव इतना सघन हो कि उससे दस गुना अधिक समय तक पड़ने वाले संस्कार उस प्रभाव दबाव के सामने फीके पड़ जायें। अतः स्पष्ट है कि बच्चों के संस्कार-निर्माण में स्वयं घर-परिवार तथा पास-पड़ौस के वातावरण एवं प्रशिक्षण का प्रभाव पाठशाला के प्रभाव से अधिक होता है। इसलिए बच्चे को स्कूल भेजकर निश्चिन्त नहीं हो जाना चाहिए, अपितु संस्कार-निर्माण की अपनी जिम्मेदारी को उस समय भी बराबर स्मरण रखना चाहिए।

मनोवैज्ञानिक बैंजामिन ब्लूम का कथन है कि बच्चा चार वर्ष की आयु तक बौद्धिक दृष्टि से इतना विकसित हो जाता है कि वह प्रौढ़ व्यक्ति की तुलना में आधी बौद्धिक क्षमता का स्वामी हो जाता है। अगले चार वर्षों में यानी आठ वर्ष की आयु होने तक बच्चे की बुद्धि का तीस प्रतिशत विकास और हो जाता है और मात्र बीस प्रतिशत ही अगले वर्षों में होना शेष रहता है। इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दृष्टि से भी बच्चों में सत्प्रवृत्तियाँ विकसित करने में प्रधान भूमिका पारिवारिक वातावरण की ही होती है।

यहाँ यह तथ्य भी विस्मृत नहीं किया जाना चाहिए कि बच्चों में अनुकरण की प्रवृत्ति ही प्रबल होती है। उनके प्रशिक्षण में उपदेशों का नहीं, प्रत्यक्ष आचरण-उदाहरण का ही प्रमुख हाथ होता है। बच्चों में असीमित शक्ति होती है। प्रतिक्षण उनके भीतर उत्साह उमड़ता रहता है। इसे सही दिशा में नियोजित करना ही उन्हें सुसंस्कारित करना है। किन्तु यह नियोजन अभिभावकों के स्वयं के व्यवहार द्वारा ही सम्भव है, कोरे उपदेशों द्वारा नहीं।

बच्चों को सुसंस्कृत बनाने के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता है, घर का वातावरण सुखद, शान्त और उल्लासपूर्ण रखने की। बालकों की न्यूनतम आवश्यकताएँ यथासम्भव अवश्य पूरी की जानी चाहिए।

बच्चे की क्षमता और रुचि को, प्रवृत्तियों के झुकाव को समझकर उसे उस दिशा में विशेष प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। साथ ही उन्हें छोटे-छोटे कार्य करने के अवसर दिये जाने चाहिए, उन्हें ऐसे ही कार्य सौंपे जायें, जो वे सरलता से कर सकें। अपने कपड़े स्वयं पहनें, सुखायें, निकालें, निश्चित जगह पर रखें, ऐसे प्रयासों के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया जाये और सफल ढंग से करने पर उनकी प्रशंसा की जाए, ताकि उनमें आत्मविश्वास विकसित हो।

बच्चे स्वभाव से ही कर्मशील एवं परिश्रमशील होते हैं। आवश्यकता उनके सही दिशा-निर्देशन की होती है। छोटी-छोटी भूल के लिए उन्हें डाँटा-डपटा न जाए। बड़ी सजाएँ न दी जायें। साथ ही उन्हें निषेधात्मक निर्देश नहीं विधेयात्मक संकेत दिये जायें। 'यह न करो', 'वह न करो' ऐसा कहने की जगह 'ऐसा करो'—इस प्रकार से कहा जाय। उन्हें न तो अनुचित लाड़-दुलार दिया जाय, न ही बात-बात में डराया-धमकाया जाय।

सन्तुलन, सादगी और सुरुचि का अभ्यास बच्चे अपने माता-पिता से ही सीखते हैं। उन्हें न तो उच्छृंखल बनने दिया जाय, न दब्बू। न तो उनके शरीर की उपेक्षा ही की जाय न ही ऐसा बनाया जाय कि वे तनिक-सी सर्दी-गर्मी न सह सकें। साधारण सर्दियों में ही उन्हें कपड़ों से बहुत अधिक लाद देने और गर्मी में थोड़ा दिन चढ़ते ही बाहर न निकलने देने की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार बिना भूल के भी बच्चे को आग्रहपूर्वक खिलाना-पिलाना अनुचित है। इससे वह चटोरा भी बनेगा, बीमार भी होगा।

बाल-मस्तिष्क की जिज्ञासाओं की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उनके लिए विश्व की हर वस्तु नवीन, आकर्षक होती है। हर क्षण उनके भीतर प्रश्न उभरते हैं। उनके प्रश्नों के उत्तर सुगम-सुबोध शैली में अवश्य दिये जाने चाहिए। उन्हें झिड़काना अथवा टरकाना नहीं चाहिए। बच्चे की जिज्ञासाओं का समाधान करने पर ही उनका बौद्धिक विकास सम्यक् रीति से हो सकता है।

बच्चों के व्यक्तित्व विकास की सम्पूर्ण जिम्मेदारी से आप स्वयं को मात्र इसीलिए मुक्त न मान बैठें कि आप अपने बच्चे को स्कूल भेजने लगे हैं। स्थिति तो इसके विपरीत ही है। अमरीकी शिशु-विशेषज्ञों के अध्ययन दल के नेता प्रोफेसर डार्कन ने यह बताया कि वे ही बच्चे स्कूल में भी सन्तोषजनक प्रगति करते हैं, जिनके माता-पिता घर में उन्हें पर्याप्त समय देते हैं। अपने में ही व्यस्त माता-पिता अपने बच्चे के पिछड़ेपन के लिए प्रधानतः उत्तरदायी हैं। अतः बच्चे को सुसंस्कारित करने का कर्त्तव्य माता-पिता विस्मृत न करें। बच्चों की सत्प्रवृत्तियों की नींव पक्की करने की प्रधान जिम्मेदारी उन्हीं की है।

पाठशाला भेजने के साथ यह भी ध्यान रखें

बच्चों को पाठशाला जाने से पूर्व पाठशाला के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना माता-पिता का अनिवार्य कर्त्तव्य है। बच्चा जब छोटा है तभी से बाच-चीत के दौरान पाठशाला के महत्त्व तथा उससे होने वाले लाभों की चर्चा बच्चों से करते रहने से उनकी पाठशाला जाने की उत्कण्ठा बढ़ जाती है और वे पाठशाला में भर्ती होने की प्रतीक्षा बड़ी आतुरता से करते हैं। जब उन्हें पाठशाला में भर्ती करने का समय आता है तो कभी घर वालों को तंग नहीं करते। पाठशाला प्रवेश के समय बच्चों पर जोर-जबर्दस्ती का अवसर नहीं आता। इस प्रकार बच्चे का मानसिक स्तर पाठशाला जाने को तैयार रहता है।

प्राइमरी पाठशाला में भर्ती होने के पूर्व बच्चों को बालमन्दिर भेजन से बच्चे पाठशाला के वातावरण से परिचय प्राप्त कर अगली कक्षा में बड़े उत्साह से जाते हैं। जिन बच्चों के मन में प्रारम्भ से पाठशाला के प्रति अरुचि उत्पन्न हो जाये तो उन्हें पाठशाला भेजना टेढ़ी खीर हो जाती है। अतः बालक के मन में पाठशाला के लिए ललक उत्पन्न करना आवश्यक है।

बच्चा जब घर के सीमित परिवार से बाहर जाता है तो उसका नये साथियों, शिक्षकों तथा अन्य लोगों से परिचय होता है। बच्चे पाठशाला के वातावरण में आनन्द अनुभव करते हैं, क्योंकि उनकी विकास करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति को यहाँ बल मिलता है। बच्चे सभी प्रकार के भेदों से मुक्त होकर आपस में खेलते हैं। बच्चों की यह प्रवृत्ति बढ़े, इसका प्रयत्न माता-पिता को करना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों में नियमित पाठशाला जाने तथा पढ़ाई करने की आदत को विकसित करना चाहिए। माता-पिता को चाहिए कि वे रोज पाठशाला में हुई पढ़ाई की चर्चा बच्चों से करें। साथ ही नियमित रूप से घर पर भी बच्चा अपना पाठ पढ़ें, इसका ध्यान माता-पिता रखें। कभी-कभी बच्चे के शिक्षक से मिलकर उसकी प्रगति की जानकारी करते रहना चाहिए। इस सावधानी के कारण बच्चे की पढ़ाई में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं आवेगा।

बच्चों में स्वच्छता का गुण पैदा करना आवश्यक है। बच्चे साफ-सुथरे कपड़े पहनें, पाठशाला में अपने बालों को सँवारकर जावें, स्याही के दाग कपड़े पर न पड़ें इसका ध्यान रखें, पाठशाला के बाहर बिकने वाली गन्दी वस्तुएँ न खावें और पाठशाला से लौटने के बाद अपनी पुस्तकें निर्धारित स्थान पर रखें—इन बातों की जानकारी बच्चों को देते रहें। बचपन में पड़ी आदत ही जीवन भर बनी रहती हैं।

बच्चे बचपन से कहानी सुनने, गाना गाने, तमाशा देखने आदि में रुचि लेते हैं। उनकी इस प्रवृत्ति का उभार करने के लिए वातावरण का निर्माण करना चाहिए। बच्चों को शिक्षाप्रद कहानियाँ बताकर उनसे कहने को कहा जाय जिससे बालक की वाणी को स्पष्ट होने का अवसर प्राप्त होता है। उनको सिनेमा के गन्दे गीतों के स्थान पर राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत गीत, कोरस मार्चगान आदि का अभ्यास पाठशाला में कराना चाहिए, जिससे उनकी कहानी, गीत आदि की भूख शान्त हो सके।

बच्चों में खेलों के प्रति स्वाभाविक झुकाव होता है। इस बात को ध्यान में रखकर बच्चों को खेल की अधिक से अधिक सुविधा पाठशाला में देनी चाहिए, जिससे पाठशाला बच्चों के आकर्षण का केन्द्र बनी रहे। पाठशाला में खेलों के माध्यम से बच्चों में सहयोग, सहनशीलता, साहस आदि गुणों का विकास करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसी प्रकार खेलकूद के सिवाय सांस्कृतिक कार्यक्रमों में बच्चों को शामिल होने का अवसर देना चाहिए। बच्चों को वेश-भूषा-प्रतियोगिताएँ, सामूहिक नृत्य, सामूहिक गान आदि के मौके देते रहना चाहिए, जिससे पाठशाला में उनकी रुचि बनी रहे।

बच्चे का मन चंचल होता है। एकाग्रता के बिना कोई पाठ याद करना सम्भव नहीं। गिनती, पहाड़े, कविता, शब्दार्थ आदि को वे रटकर ही याद कर पाते हैं। बचपन में जो कविताएँ बच्चों द्वारा रटी जाती हैं वे ही उनके जीवन में अनेक वर्षों तक काम आती हैं, अतः बच्चों की याद करने की प्रवृत्ति को बढ़ाना चाहिए।

बच्चों में यह प्रवृत्ति बढ़ाना कठिन नहीं है। बच्चों में नई-नई बातें सीखने-जानने की सहज प्रवृत्ति होती है। बच्चों की आयु और मस्तिष्क के विकास का ध्यान रखते हुए उनके अनुरूप छोटी-छोटी प्रेरक कविताएँ तथा गीत, उन्हें बड़ी अच्छी तरह याद कराये जा सकते हैं। उन्हें याद करने पर बच्चों की प्रशंसा की जाय, प्रोत्साहन दिया जाय तो वे इस दिशा में बहुत तीव्रता से आगे बढ़ते हैं। अन्ताक्षरी करना भी इस दिशा में बड़ा उपयोगी होता है, किन्तु ध्यान यह रखा जाय कि बच्चे निरर्थक और निरुपयोगी अथवा विकृत पद याद न करें। अन्ताक्षरी को मात्र खेल ही नहीं—अच्छा मानसिक व्यायाम माना जाय। संस्कृत के श्लोक भी बच्चे बड़ी जल्दी याद कर लेते हैं। अर्थ वे समझें या न समझें, अच्छे श्लोक याद करा देने से वे आयु बढ़ने के साथ-साथ उन्हें वे समझने भी लगते तथा उनसे प्रेरणा भी लेने लगते हैं।

पाठशाला के प्रति बच्चों का आकर्षण बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक बच्चों के प्रति मधुर व्यवहार करें। यदि शिक्षक ने बच्चों को आते ही डराना, धमकाना आरम्भ कर दिया तो बच्चों को पाठशाला भेजना कठिन हो जाता है। अतः शिक्षक का व्यक्तित्व बच्चों के लिए प्रेरणादायक होना चाहिए। बच्चों के मन में शिक्षक के प्रति जो उच्च सम्मान है उसको बनाये रखने के लिए शिक्षक को आदर्श व्यवहार करना और उत्कृष्ट जीवन जीना चाहिए।

बच्चों में जिज्ञासा बहुत अधिक होती है। उन्हें हर प्रश्न का उचित उत्तर और हर शंका का उचित समाधान देना चाहिए। यदि शिक्षकों ने उनकी उत्सुकता के अनुकूल उत्तर नहीं दिया तो उनकी उत्कण्ठा मारी जाती है और वे डर के मारे आगे कुछ पूछने की हिम्मत नहीं करते। बड़े होने पर भी वे अपने दब्बू स्वभाव के कारण हानि उठाते हैं। इस हानि के लिए कुछ अंश तक शिक्षक भी जिम्मेदार होता है। अतः बच्चों की हर जिज्ञासा को पूरा करना चाहिए।

जिज्ञासा गहन चिन्तन की प्रवृत्ति को बढ़ाती है। उसे कुण्ठित कर देने से चिन्तन की—गम्भीर विचार करने की प्रवृत्ति में गतिरोध आ जाता है। यह बात सही है कि बच्चों की जिज्ञासाएँ कभी-कभी बड़ी अटपटी होती हैं तथा उनका समाधान करना कभी समयसंगत होता है, कभी नहीं भी होता। कई बार वे ऐसे प्रश्न भी कर बैठते हैं कि उनका समाधान बिना सोचे-अध्ययन किए बड़े लोग भी नहीं कर सकते। ऐसे अवसरों पर बच्चों को उनके अटपटे प्रश्नों के लिए डाँटने अथवा कठिन प्रश्नों के ऊटपटांग उत्तर देने की अपेक्षा, उन्हें समझदारी से टाल देना चाहिए। बाद में उनका उचित समाधान शान्तचित्त से निकाला जा सकता है।

बच्चे यदि कोई गलत कार्य करते हों तो उन्हें प्रारम्भ में ही रोक देना चाहिए। वे यदि किसी की वस्तु उठाकर लाते हैं तो उसे तुरन्त वापिस करने को कहना चाहिए। यदि इस प्रवृत्ति को प्रारम्भ में न रोका गया तो वह आगे बढ़ती जावेगी और कुछ दिनों के बाद बच्चों के स्वभाव में दृढ़ हो जावेगी, बच्चों की गन्दी आदतों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को माता-पिता एवं अध्यापक के द्वारा शुरू में ही रोकने का प्रयत्न किया जाना चाहिए, ताकि ये विष अंकुर विष-वृक्षों का रूप धारण न कर सकें।

समग्र रूप से विचार किया जाय तो पाठशाला भेजने के पूर्व का कार्य बड़ा गम्भीर एवं जिम्मेदारी का है। यदि हमने इसमें असावधानी बरती तो वह हमारे बच्चों के लिए महँगी पड़ेगी। पाठशाला के प्रति उनके मन में आकर्षण कम न हो, इसका भरसक प्रयत्न करना चाहिए। यदि प्रारम्भ में ही बच्चों के मन में अरुचि उत्पन्न हो जाय, तो वह पढ़ाई का महत्त्वपूर्ण कार्य वहन नहीं कर पावेगा और उसका जीवन पढ़ाई के बिना असफल हो जावेगा। इसीलिए बच्चों को स्कूल में भर्ती भर करा देना पर्याप्त न समझकर उस सन्दर्भ में अन्य पक्षों पर भी विचार किया जाना चाहिए, अन्यथा उनके साथ सही अर्थों में न्याय नहीं हो सकेगा।

बच्चे घर की पाठशाला में

घर बच्चे की प्रारम्भिक पाठशाला है जहाँ वह जीवन के महत्त्वपूर्ण पाठ सीखता है। स्कूल, कॉलेज, विद्यालयों में तो बालक का बौद्धिक विकास ही होता है, एक निश्चित पाठयक्रम पूरा कर देना ही इनका ध्येय होता है जिसका जीवन में सीमित उपयोग है, लेकिन घर की पाठशाला में सीखी हुई बातें तो बालक के जीवन का अंग ही बन जाती हैं। वस्तुतः बालक के चरित्र, स्वभाव, उसके व्यक्तित्व की निर्णयशाला है घर, जबकि शिक्षालयों में एक स्तर तक बौद्धिक विकास ही हो पाता है।

जिस तरह अनुकूल जलवायु, मिट्टी एवं योग्य माली की देख-रेख में छोटा-सा पौधा बड़ा होकर फलने-फूलने लगता है, उसी तरह घर के उपयुक्त वातावरण में कुशल माँ-बाप के सान्निध्य में रहकर बालक का स्वभाव और उसका व्यक्तित्व, चरित्र उत्कृष्ट बनता है। लेकिन घर के गन्दे वातावरण, माँ-बाप का पापमय जीवन बच्चे को बुराइयों की ओर प्रेरित करता है। घर के वातावरण में घटने वाली सामान्य घटनाएँ, अभिभावकों के व्यवहार, रहन-सहन, आचरणों का बच्चे के मानस-पटल पर बड़ा स्थायी प्रभाव पड़ता है।

जिस घर का वातावरण बड़ा सौम्य, शान्त और मधुर होता है, जहाँ लोगों के परस्पर प्रेम, सेवामय जीवन सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध होंगे, वहाँ बालक के मानसिक विकास में बड़ा योग मिलता है। जहाँ बच्चे को उन्मुक्त होकर सहज जीवन बिताने दिया जाता है, जहाँ उसे सबका स्नेह मिलता है, जहाँ बालक निर्भय-जीवन बिताता है, ऐसा वातावरण बालक के व्यक्तित्व का चतुर्मुखी विकास करने में बड़ा ही सहायक सिद्ध होता है।

लेकिन उस घर में जहाँ नित्य कलह, अशान्ति, परस्पर तनातनी, झगड़ा होता रहता है, जहाँ बालक को स्नेहशून्य सखाविहीन जीवन बिताना पड़ता है और कठोर व्यवहार का सामना करना पड़ता है, वहाँ उसका विकास होना तो दूर उल्टे मानसिक क्षमताएँ, बौद्धिक प्रतिभा, व्यक्तित्व सब कुण्ठित हो जाते हैं।

जो माँ-बाप या अभिभावकगण परस्पर "तू-तू", "मैं-मैं" करते रहते हैं, जिनमें परस्पर आये दिन लड़ाई-झगड़े, मार-पीट होती रहती हैं, जो एक-दूसरे को मूर्ख एवं नीच सिद्ध करने के प्रयत्न करते रहते हैं, भद्दे आक्षेप करते हैं, उनके इस व्यवहार का बालकों के कोमल मस्तिष्क पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। बच्चे का अपरिपक्व मस्तिष्क इस तरह के व्यवहार को समझ नहीं पाता। इससे उसके मन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, जिसके फलस्वरूप माँ-बाप अथवा घर के अन्य सदस्यों के प्रति उसके मन में आदरभाव कम हो जाता है। सम्मान की भावना घट जाने से बच्चों में अश्रद्धा भी पैदा हो जाती है। श्रद्धा के बिना विश्वास स्थिर नहीं रहता। अश्रद्धालु और विश्वासरहित वे बच्चे माँ-बाप की अवहेलना करने लगते हैं, अनुशासनहीन बन जाते हैं। यह स्थिति परिवार तक ही सीमित नहीं रहती, वरन् सम्पूर्ण समाज की मर्यादाओं के प्रति ही ये बालक आगे चलकर आवारा और उच्छृंखल बन जाते हैं।

घर का कलह, परिवार के सदस्यों का परस्पर दुर्व्यवहार, बच्चों में अश्रद्धा, अविश्वास, अनुशासनहीनता, उच्छृंखलता आदि बुराइयों को जन्म देता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि पति-पत्नी के बीच होने वाली तकरार अथवा परिवार में होने वाला कलह सर्वथा दूर करने का प्रयास किया जाय। यदि कुछ इस तरह की बात हो भी जाय तो बच्चों के सामने उसे न आने दें। जिस तरह किसी मेहमान के सामने अपने घर की लड़ाई को छिपा लिया जाता है, उसी तरह बच्चों के समक्ष भी ऐसा ही करना चाहिए। अपने घर के कलह की बात तो दूर रिश्तेदार अथवा पड़ोसियों के झगड़े की बात को बच्चों तक नहीं आने देना चाहिए।

अभिभावकों को चाहिए कि बच्चों के समक्ष अपनी कोई चारित्रिक कमजोरी प्रकट न होने दें। बच्चा कितना ही अबोध क्यों न हो उसके समक्ष परस्पर प्रेम-प्रदर्शन, अश्लील हाव-भाव अथवा गलत आचरण कभी न किया जाय। बच्चे की मनोभूमि इतनी ग्रहणशील होती है कि जाने-अनजाने वह इनको सहज ही अपना लेता है। जहाँ तक बने दुर्व्यसनों को तिलांजलि दे देनी चाहिए, फिर भी कोई बुराई न छूटे तो इतना तो ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों के समक्ष उसे व्यक्त न होने दें। बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू आदि कोई भी व्यसन एकान्त में पूरा किया जाय बच्चों के समक्ष नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों के समझदार और कुछ बड़े हो जाने पर उनके लिए सोने की व्यवस्था अलग कर देनी चाहिए। समझदार बच्चों को एक ही कमरे में लेकर न सोया जाय क्योंकि पति-पत्नी के गुह्य सम्बन्धों का बच्चे पर बुरा असर पड़ता है। इसके साथ-साथ बच्चों को नंगा नहीं रखना चाहिए। इससे असमय में ही बच्चों में यौन-भावनाएँ जाग्रत हो सकती हैं, जो उन्हें कई बुराइयों की ओर प्रवृत्त कर देती हैं।

अभिभावकों, माता-पिताओं को चाहिए कि बच्चों की विधिवत् दिनचर्या बनाकर उसके अनुसार उन्हें चलाने की व्यवस्था करें। बच्चों के खाने, पीने, सोने, पढ़ने, खेलने आदि का समय नियत कर देना चाहिए। लेकिन इसके साथ-ही अभिभावकों का स्वयं का जीवन भी व्यवस्थित, नियमित होना चाहिए। उनका आदर्श ही बच्चों को नियमित जीवन बिताने के लिए प्रेरणादायी होगा। बच्चे अपने नियमित कार्यक्रम में गफलत करें तो उसे टोककर नियमानुसार जीवन बिताने को कहना चाहिए। लेकिन सोने के समय पढ़ने अथवा खेलने के समय घर का काम करने को आज्ञा देने की भूल नहीं करनी चाहिए। बच्चे को उसकी नियम-व्यवस्था के अनुसार चलने देना चाहिए। यदि कोई आवश्यक काम ही आ पड़े तो बात दूसरी है अन्यथा बच्चों के कार्यक्रम में यथासम्भव व्यवधान पैदा नहीं करना चाहिए।

किसी तरह के भय, अन्धविश्वास या गलत धारणा का आश्रय लेकर बच्चों को निर्देश नहीं देना चाहिए भले ही वह उनके हित में ही क्यों न हों। भूत, चुड़ैल, कीड़े, मकोड़े या हौवा आदि का भय बच्चों को नहीं दिखाना चाहिए। बचपन में जमी हुई भय की भावना जीवन भर नहीं निकल पाती है। बचपन के समय अवचेतन मन में समाया हुआ इस तरह का भय तगड़े-तन्दुरुस्त, मोटे-ताजे व्यक्तियों को भी अन्धेरे में, एकान्त में कोई छोटा-मोटा जानवर देख लेने पर परेशान करता है। स्वयं अभिभावकों को भी इस तरह के भय प्रदर्शन से बच्चों के समक्ष बचना चाहिए।

माता-पिता या अभिभावकों की भावनाओं का, उनके व्यवहार का भी बच्चों के जीवन पर बहुत बड़ा असर पड़ता है। वस्तुतः घर की पाठशाला में अभिभावकों का जीवन ही बच्चों की प्रथम पुस्तक होती है। बच्चों के साथ ही नहीं माँ-बाप दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं इसका बाल मन पर भारी प्रभाव पड़ता है। इस सम्बन्ध में एक घटना बड़ी महत्त्वपूर्ण है। एक धनिक व्यक्ति लेन-देन के मामले में एक गरीब व्यक्ति को बड़ी गालियाँ दे रहा था, उसने उसे नौकरों से पिटवाया और धक्के देकर बाहर निकाल दिया, उसका गिरवी रखा हुआ जेवर धनिक ने हड़प लिया। गरीब बेचारा रोता-चिल्लाता चला गया। यह सारी घटना पास ही खड़ा धनिक का पुत्र देख रहा था। बालक का कोमल हृदय यह सब सहन नहीं कर सका और अपने पिता के प्रति उसके हृदय में कटुता और घृणा की भावना पैदा हो गई। वह विद्रोही बन गया। बाप का कहना-सुनना उसे बुरा लगता। ऐसे काम वह करता जिससे धनी पिता को क्लेश होता, पिता की परेशानी से उसे प्रसन्नता होती। अन्त में परिस्थिति यहाँ तक आ गई कि बड़ा होने पर उसने सारे धन पर कब्जा कर लिया और पिता को बीमारी में तड़पकर प्राण छोड़ने पड़े, लेकिन उसके हृदय पर कोई प्रभाव नहीं हुआ।

उस बहू की कहावत प्रसिद्ध है कि जो अपने अन्धे श्वसुर को मिट्टी के पात्र में भोजन देती थी। एक दिन मिट्टी का पात्र फूट गया तो बहू बहुत झल्लाई, कई गालियाँ दीं। उसने लकड़ी का पात्र मँगवा दिया और चौके से बाहर भोजन दे दिया। उसका अबोध बालक यह सब देख रहा था। दूसरे दिन वही बालक एक लकड़ी के तख्ते को पत्थर से ठोक-पीट रहा था। माँ ने पूछा बेटा क्या कर रहा है ? बालक ने अपने बालसुलभ भाषा में कहा—''अम्मा मैं लकड़ी की थाली बना रहा हूँ। जब तू बूढ़ी हो जायेगी तो इसी में भोजन परसा करूँगा। वह स्त्री हक्की-बक्की रह गई और उसी दिन से वृद्ध श्वसुर को अच्छे पात्रों में आदर सहित भोजन देने लगी।

माता-पिता द्वारा नौकर, पड़ोसी, सम्बन्धी, दुकानदार, जन-साधारण से किया जाने वाला व्यवहार बच्चे के कोमल मस्तिष्क पर बहुत बड़ा प्रभाव डालता है। आवश्यकता इस बात की है कि हमें अपने सम्पूर्ण जीवनक्रम में, व्यवहार में पर्याप्त सुधार करना होगा। कोई ऐसा दुर्व्यवहार न बन पड़े जिससे बच्चे पर विपरीत असर पड़े, इसका पूरा-पूरा ध्यान रखना होगा, यदि हमें अपने बच्चों के चरित्र, स्वभाव व्यक्तित्व को उत्तम बनाना है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बच्चे पैदा होने पर माँ-बाप के ऊपर एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है, वह है बच्चों को उत्कृष्ट व्यक्तित्व प्रदान करना, उनके स्वभाव और चरित्र को उत्तम बनाना और वह सब घर की पाठशाला में व्यावहारिक शिक्षा से ही सम्भव है।

बहुत-से माता-पिता अपने बच्चे को किसी बोर्डिंग हाउस या अपने से दूर किसी प्रसिद्ध स्कूल में भेजते हैं, इसलिए कि बच्चा घर पर भली प्रकार नहीं पढ़ता। समय पर स्कूल नहीं पहुँचता। अपनी पढ़ने की पुस्तकें तथा अन्य वस्तुएँ खो देता है। आवारा लड़कों में घूमता है। घर वालों की आज्ञा का पालन नहीं करता। कई लोग तो बच्चे के हित की दृष्टि से नहीं वरन् उससे पीछा छुड़ाने, उसकी आदतों से परेशान होकर अपना सिर-दर्द दूर करने की दृष्टि से बालक को अन्यत्र भेज देते हैं। कई अभिभावक अपने पास अधिक धन होने के कारण बच्चे को बहुत छोटी उम्र में ही अपने से दूर पढ़ने और योग्य बनने के लिए भेज देते हैं। कुछ भी कारण हों लेकिन बच्चों को कच्ची उम्र में जब तक वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

समझने-बूझने लायक नहीं हो पाता है अपनी छत्रछाया से दूर करना अभिभावकों की बड़ी भारी भूल है। किसी भी संस्था, स्कूल, विद्यालय, बोर्डिंग आदि में बच्चों के पढ़ने-लिखने, नियमित जीवन बिताने तथा सदाचार की बाह्य शिक्षा व्यवस्था भले ही हो किन्तु उन्हें उत्कृष्ट व्यक्तित्व प्रदान करने, सफल जीवन बिताने का मार्ग प्रशस्त करने के लिए माता-पिता अभिभावकगण जो कुछ कर सकते हैं, वह कहीं भी नहीं हो सकता। सचमुच अपने परिवार के सदस्यों से अधिक बच्चे के भविष्य की चिन्ता और उस दिशा में आवश्यक प्रयत्न अन्य कोई भी नहीं कर सकता। अतः यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि बच्चे को एक निश्चित आयु तक, जब तक उसका मस्तिष्क प्रौढ़ और परिपक्व न हो जाय, उसे घर की सीमा से बाहर नहीं भेजना चाहिए।

बच्चों के जीवन को उत्कृष्ट बनाने की जिम्मेदारी जिस तरह माता-पिता निभा सकते हैं, उससे अधिक दूसरा नहीं निभा सकता। इसके अतिरिक्त बाह्य वातावरण में बच्चे को भले ही कितनी ही अच्छी शिक्षा क्यों न मिले वह मौखिक होने से अस्थायी होती है। स्थायी और सच्ची शिक्षा तो बच्चा अभिभावकों के संरक्षण में, उनके व्यावहारिक जीवन से ही सीख पाता है। वैसे स्कूल, बोर्डिंग, शिक्षा संस्थाएँ उपयोगी होती हैं किन्तु बच्चों के जीवन निर्माण का पूरा-पूरा उत्तरदायित्व इन पर नहीं छोड़ा जा सकता। वस्तुतः बच्चों के चरित्र-निर्माण में माता-पिता के स्नेह से युक्त शान्त सुखदायी घरेलू वातावरण का बहुत बड़ा महत्त्व है।

बच्चों की शिक्षा और छोटी-छोटी बातें

बया नाम का एक पक्षी छोटे-छोटे तिनकों को चुनकर अपने घोंसले का निर्माण करता है। ये छोटे-छोटे तिनके यों किसी भी काम के नहीं होते, लोग इन्हें जरा भी महत्त्व नहीं देते, पर बया जब इन्हीं के द्वारा अपना सुन्दर घोंसला बना लेता है तो अच्छों-अच्छों को आश्चर्य होता है। मनुष्य का जीवन भी एक नीड़ के समान है, जिसमें छोटे-छोटे कामों का वही महत्त्व है, जो बया पक्षी के लिए घोंसले का निर्माण करते समय छोटे-छोटे तिनकों का है। बाल्यावस्था मनुष्य जीवन की एक आधारशिला है—यहीं से बच्चे के भविष्य का निर्माण शुरू होता है इसके लिए चाहिए कि छोटे बच्चों को छोटे-छोटे काम और छोटी-छोटी आदतों का परिष्कार भी इस प्रकार सिखाया जाय कि उसका व्यक्तित्व सुन्दर और सुघड़ बने।

प्रत्येक बालक में महान बनने की शक्ति और सम्भावना विद्यमान रहती है। यदि उन्हें विकसित किया जाय तो वही बालक एक आदर्श नागरिक बनकर समाज और संसार के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन भली-भाँति कर सकता है तथा उसकी छोटी-छोटी बातों और आदतों को महत्त्वहीन समझकर उपेक्षित कर दिया जाय तो एक सुन्दर व्यक्तित्व की उपलब्धि से बच्चा वंचित रह जाता है। अतएव बालकों को बचपन से ही सावधानी, स्वच्छता, सच्चाई, प्रेम और आत्मीयता की शिक्षा देनी चाहिए। स्मरणीय है—बच्चों का निर्माण कोरे उपदेशों से नहीं होता। पहली आवश्यकता तो यह है कि स्वयं के माध्यम से बच्चों के सामने आदर्श प्रस्तुत किया जाय तथा दूसरी आवश्यकता यह है कि बच्चों के प्रत्येक क्रिया-कलाप और उनकी कार्य-पद्धति का ध्यान रखते हुए उन्हें समुचित मार्गदर्शन दिया जाय। यहाँ ऐसी ही कुछ बातों का उल्लेख किया जा रहा है, जिनसे कि बच्चों को अपने छोटे-छोटे काम करने की सही दशा और छोटी-छोटी आदतों का परिष्कार करने की शिक्षा दी जा सके।

थोड़ा बड़ा होते ही बच्चे को स्कूल में पढ़ने के लिए भेज दिया जाता है। स्कूल भेजते समय उसके लिए कापी-किताबें भी खरीदकर लानी पड़ती हैं और उसके सुपुर्द करनी पड़ती हैं। यह बच्चों पर छोड़ी गई एक छोटी-सी प्रारम्भिक जिम्मेदारी है। उन्हें अपनी जिम्मेदारी ठीक तरह से निभाना सिखाने के लिए यह ध्यान देना जरूरी है कि वे अपनी कॉपी-किताबों को किस तरह रखते हैं और कैसे उनका उपयोग करते हैं ? इस सम्बन्ध में कोई जानकारी न होने के कारण बच्चों के लिए कापी खरीदने के एक सप्ताह बाद ही देखा जाता है कि उनका कवर नुच गया, किताब पर चढ़ाया गया कागज फट गया आदि आदि। बच्चों को उनके उपयोग का कोई तरीका तो बताया नहीं जाता। अभिभावक सोच लेते हैं कि यह काम शिक्षकों का है और शिक्षक के सामने यह समस्या आती है कि वे ४०-५० बच्चों पर व्यक्तिगत रूप से कैसे ध्यान दें ?

दोष न बच्चों का है, न शिक्षकों का। इस बात से तत्काल कोई बड़ी हानि भी नहीं होती, पर बच्चों की प्रवृत्ति में एक लापरवाहीपन आने का डर खड़ा हो जाता है, जो इस समय तो नहीं, पर आगे चलकर अपने भयंकर परिणाम सामने लाता है। इसलिए अभिभावकों को चाहिए कि वे समय-समय पर अपने बच्चों की कॉपी-किताबें देख लिया करें और इस सम्बन्ध में समुचित मार्गदर्शन देते रहें। जिस समय नई किताबें और नई कापियाँ खरीदी जाएँ, उस समय माता-पिता बच्चों को यह प्रेरणा भी दें कि वे अपनी किताबों और कापियों को गन्दी होने से बचाने के लिए उन पर कवर चढ़ा लें। प्रत्येक शिक्षित परिवार में समाचार-पत्र तो आते ही हैं। न आते हों तो रद्दी में भी काफी बिकते हैं। उन्हें खरीद लाया जाय और एक बार बच्चे के सामने स्वयं चढ़ाकर बता दिया जाय।

स्कूल से जैसे ही छुट्टी हुई नहीं कि बच्चे घर को दौड़ते हैं। स्कूल में बिताये गये घण्टे उन्हें कैदखानों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तरह लगते हैं क्योंकि उनका उन्मुक्त मन तो खेल-कूद जैसे स्वतन्त्र कामों में ज्यादा लगता है। वे घर की ओर दौड़ते हैं तथा अपने स्कूल का बस्ता जिसमें पढ़ने-लिखने का सामान रहता है, इधर-उधर फेंक देते हैं। यह आदत भी व्यक्तित्व में एक त्रुटि पैदा कर देने की सम्भावना लिए रहती है। अतः बच्चे को अपना सामान सही ढंग से और ठीक जगह पर रखना सिखाना चाहिए।

कहा जा चुका है कि बच्चा अपने जीवन का पहला उद्योग तब आरम्भ करता है, जबकि वह स्कूल जाना शुरू करता है। इस पहले उद्योग में ही बच्चों ने कई कमजोरियाँ और कई त्रुटियाँ पाल लीं तो आगे के जीवन में भी उनके चलने रहने का भय रहता है। स्कूल के अध्यापक अक्सर कहते हैं कि बच्चे कभी पेन्सिल नहीं लाते तो कभी पेन्सिल की नोंक ठीक से निकली हुई नहीं है। कभी कोई किताब भूल आया है तो कभी कोई कापी। कभी आर्ट के घण्टे में ड्राइंग-बक्स नदारद है तो कभी रेखागणित के घण्टे में कम्पास-बक्स में परकार ही नहीं है। यह अव्यवस्थित जीवन की ओर बढ़ने की घण्टी है। अतः अभिभावकों को चाहिए कि वे अपने बच्चों की पेन्सिल, फाउन्टेनपेन, किताब, कापी आदि की देखभाल कर लिया करें। हो सके तो स्कूल जाने से पूर्व उसे इन सब बातों की याद दिला दी जाय या उसके सामान को उसके सामने अपने हाथों से यदा-कदा बस्ते में रखा भी जाता रहे। इस बात का काफी प्रभाव पड़ेगा और वे अन्य बातों में भी सुव्यवस्था का ध्यान रखना सीखेंगे।

सुव्यवस्था और सावधानी केवल स्कूली मामलों में ही बरतना न सिखाया जाय, वरन् कामों में भी इस बात का ध्यान रखने की प्रेरणा दी जाय। नहाने-धोने के बाद अपने कपड़ों को यथास्थान रखने और उतारने, साबुन उचित स्थान पर रखने, खाना खाने के बाद ठीक से हाथ-मुँह धोने और कुल्ला करने की आदतों का विकास करना चाहिए। स्कूली-जीवन को एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। कभी-कभी बच्चे स्कूलों में अध्यापकों द्वारा फेंके गये चाक के टुकड़े उठा लेते हैं और उनसे रास्ते में पड़ने वाली दीवारों को चित्रित करते चलते हैं। स्कूलों में भी खाली समय बचता है तो वे पेन या पेन्सिल से अपनी कापी-किताबों को गोदते रहते हैं अथवा उन पर तरह-तरह की आकृतियाँ बना देते हैं, जिससे कापी-किताबें गन्दी हो जाती हैं। यदि माता-पिता अपने बच्चों की प्रत्येक गतिविधि पर सजगतापूर्वक ध्यान दें तो उनमें इस आदत को बढ़ने से रोका जा सकता है। उन्हें समझाया जाना चाहिए कि यह अच्छा नहीं है और बच्चे को यदि चित्रकला के प्रति अभिरुचि है तो इसके लिए अलग से अवसर देने तथा व्यवस्था करने की बात सोचनी चाहिए।

स्वभावतः बच्चों में डटकर मेहनत करने की या पूर्णतः आराम करने की प्रवृत्ति होती है। आराम करने की प्रवृत्ति अध्ययन करते समय भी सिर उठाती है और बच्चे लेटकर पढ़ने लगते हैं। थोड़ी ही देर में उन्हें नींद आ जाती है, किताब हाथ से छूटकर मुँह पर गिर पड़ती है। यह अच्छी आदत नहीं कही जा सकती। बच्चों को जहाँ-तहाँ बैठकर पढ़ने-लिखने से भी प्रेमपूर्वक मना करना चाहिए। इससे उनका अध्ययन-क्रम अस्त-व्यस्त हो जाता है। कभी चारपाई पर बैठकर तो कभी फर्श पर बैठकर बक्से या स्टूल पर किताब रखकर पढ़ना अच्छी बात नहीं है। उचित तो यह है कि बच्चों को पढ़ने के लिए मेज-कुर्सी का प्रबन्ध कर दिया जाय। ऐसा न हों सके तो बच्चों को नियत स्थान पर बैठकर ही पढ़ने-लिखने की आदत डाली जाय। इससे बच्चों को वहाँ न ऊँघने की बात ध्यान में आयेगी और न आलस्य करने की, क्योंकि वे समझेंगे—यह तो पढ़ने-लिखने की जगह है, यहाँ पढ़ाई-लिखाई ही करनी चाहिए। दूसरी बातों के लिए दूसरा समय और दूसरी जगह है। पढ़ाई-लिखाई का समय जहाँ तक हो सके—सुबह का निर्धारित रहे तो बड़ा अच्छा रहता है, क्योंकि उस समय बच्चे ताजगी का अनुभव करते हैं और ऐसी मनोदशा में पढ़ी गई चीज देर तक स्थायी रहती है।

रात में पढ़ते वक्त बच्चों को पढ़ने के लिए तेज रोशनी का प्रबन्ध नहीं करना चाहिए। तेज रोशनी में पढ़ने से उनकी आँखें कमजोर होती हैं। यही कारण है कि शहरों में रहने वाले बच्चों को जल्दी ही चश्मा लगाना पड़ता है। बच्चों को पढ़ने के लिए कम पावर का या हरे रंग का बल्ब टेबिल-लेम्प में लगवाकर प्रयोग करना चाहिए। देहातों में या जहाँ पर बिजली नहीं है, उन कस्बों में बच्चे लालटेन की रोशनी में पढ़ते हैं। उनके लिए एक लालटेन खरीदकर ला दी जाती है और उसे जलाने, उपयोग करने का सारा काम उन्हीं के जिम्मे छोड़ दिया जाता है। माता-पिता यह बताना प्रायः भूल जाते हैं कि लालटेन का उपयोग और रख-रखाव किस प्रकार किया जाय। लालटेन देते समय माता-पिता को इस बात का ध्यान भी रखना चाहिए कि बच्चा उसका उपयोग किस प्रकार करता है ? उसे ठीक से लालटेन जलाने, रखने, साफ करने और बुझाने की आदत सिखानी चाहिए। यदि ये काम माता-पिता ही कर दिया करें तो इससे बच्चे परावलम्बी हो जाते हैं और अन्य कामों में उनकी यह आदत बड़ी दुःखदायी बन जाती है।

गरीबी के कारण हो सकता है कि कुछ लोग अपने घर में बिजली का प्रबन्ध न कर सकें। पर इसका मतलब यह नहीं है कि बच्चों के लिए लालटेन भी सुलभ न हो। निर्धन परिवारों में प्रायः देखा जाता है कि बच्चे दिये (दीपक) की रोशनी में पढ़ते रहते हैं। दिये से निकलने वाला धुआँ बच्चों की आँखों में घुसता रहता है और उन्हें खराब करता रहता है। बच्चों के लिए दीपक छोड़कर, लालटेन की व्यवस्था करना न तो कोई ज्यादा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

खर्चीली बात है और न इसके लिए अतिरिक्त धन ही खर्च करना आवश्यक होता है।

इस प्रकार स्कूल में पढ़ते हुए बच्चों में डाली गई ये आदतें उनके जीवनभर काम आती हैं। साथ ही बच्चों को सफाई से रहना भी सिखाना चाहिए। उन्हें अपने पढ़ने-लिखने की चीजों को साफ-सुथरा रखने के साथ अध्ययन-कक्ष की नित्य सफाई करने, प्रयोजनीय वस्तुओं को स्वच्छ रखने और किताब-कापियों को ठीक से सजाकर रखने की प्रेरणा देनी चाहिए। इन संस्कारों से संस्कारित करने के साथ-साथ यह भी ध्यान रखें कि बच्चों को केवल अपना आज्ञाकारी बनाने की ही चेष्टा न की जाय। उन्हें अनुशासित और मर्यादित बनाने के लिए भी प्रयत्न किये जाएँ, पर इसका मतलब यह नहीं है कि बच्चों पर कड़ा नियन्त्रण रखा जाय।

बच्चा अपनी अकल का भी उपयोग करता है। बदलते समय के साथ बच्चों की दुनिया भी बदल रही है। इसलिए ऐसा कम ही देखने में आता है कि बच्चों से जो कहा जाय, वे उसे बिना ननुनच किये मान लें। ऐसे उदाहरण बहुत कम देखने में आते हैं। अतः बच्चों को परामर्श और मार्गदर्शन दिया जाय, आज्ञाएँ दें तो सुझाव के रूप में, अपने लिए किसी काम की कहें तो, पर सोच-समझकर। इस प्रकार बच्चों को बिना कोई दबाव महसूस किये अपनी अकल के सहारे बढ़ने योग्य बनाया जाय। नितान्त आज्ञाकारी बच्चे प्रतिभाशाली और क्षमता सम्पन्न होते हुए भी दूसरों के कहने की प्रतीक्षा करते रहते हैं। अपने दिमाग का कोई उपयोग न करने के कारण वे परावलम्बी से हो जाते हैं, बच्चों में अकल ही कितनी होती है, इस बजह से कहीं वह अपना ही नुकसान न कर लें, इस डर के कारण बच्चों को स्वतन्त्र बुद्धि का प्रयोग करने से रोका न जाय। गिर-गिरकर ही हर कोई चलना सीखा है। गिरने के डर से बच्चे को चलने न देना कौन बुद्धिमानी कहेगा ?

इस प्रकार माता-पिता को बच्चों के साथ प्रशासक नहीं, परामर्शदाता की भाँति अधिक व्यवहार करना चाहिए। यह न सोच लिया जाय कि बच्चों को स्वतन्त्र बुद्धि का उपयोग करने देने की बात कहकर उन्हें अवज्ञाकारी बनाया जाय। कहा इतना भर जा रहा है कि उसे आत्मानुशासित, मर्यादित और आत्म-निर्भर बनाने के लिए अपनी बुद्धि के प्रयोग का अवसर देकर उसके शिक्षण को समग्रता प्रदान की जाय। स्वामी विवेकानन्द की मान्यता है कि "शिक्षा मनुष्य की अन्तर्निहित क्षमताओं के विकास का साधन है।" इस मान्यता को दृष्टिगत रखते हुए प्रयत्न करना चाहिए कि बच्चों की शिक्षा उसे जानकारियाँ देने तक ही सीमित न रखी जाय, वरन् छोटी-छोटी बातों में सावधानी, सजगता और मनोयोग का उपयोग कर उसके व्यक्तित्व के विकास की भी चेष्टा की जाय।

बच्चे पढ़ने से जी क्यों चुराते हैं?

मनोविज्ञान के आधार पर बालकों को बौद्धिक दृष्टि से पाँच भागों में बाँटा गया है—(१) पहली श्रेणी में उत्कृष्ट बालक है, (२) कुछ बालक असाधारण कोटि के होते हैं, (३) साधारण प्रकार के बालक अधिक होते हैं, (४) कुछ साधारण से कम श्रेणी के बालक होते हैं, (५) कुछ बुद्धिहीन होते हैं।

अन्तिम दो प्रकार के बालक अर्थात् साधारण से कम और बुद्धिहीन बालक तो स्वाभाविक ही है कि अपने अध्ययन में रुचि नहीं रख पाते हैं। अध्ययन तो दूर इन श्रेणियों के बालक अपने दैनिक-जीवन के सामान्य कार्य, जैसे भोजन करना, कपड़े पहिनना आदि भी भली-भाँति नहीं कर पाते हैं। ठीक इसके विपरीत प्रथम तीन श्रेणियों के बालक अर्थात् उत्कृष्ट असाधारण और साधारण अस्सी प्रतिशत हैं, जिनके कन्धों पर ही राष्ट्र की भावी आशा होती है। समाज के उत्थान-पतन, प्रगति-अगति, जय-पराजय आदि के लिए इन श्रेणियों के बालक ही जिम्मेदार हैं। यदि इन तीन श्रेणियों के बालकों के मानसिक स्तर का समुचित उपयोग नहीं किया गया तो समझिए समाज और राष्ट्र का दिवाला पिट जावेगा। ऐसे उदाहरण वर्तमान युवा-जीवन की झलक में भी आँके जा सकते हैं। बालकों के मानसिक स्तर का सदुपयोग नहीं होना समाज के लिए महान घातक है।

यदि गहराई से देखा जावे तो आजकल इन तीनों श्रेणियों के बालक पढ़ाई-लिखाई से भागने लगते हैं। यह छूत के रोग-सा फैलता जा रहा है। उत्कृष्ट व असाधारण श्रेणी के बालक तो अपनी तीव्र बुद्धि के सहारे कम समय में अपना अध्ययन कार्य पूरा कर लेते हैं। परन्तु साधारण श्रेणी के बालक इस छूत के रोग से ग्रस्त हैं। इसके कारण उनका जीवन नष्ट-भ्रष्ट हुआ जा रहा है। उनके लिए पढ़ना, विद्यालय में जाना, विद्यालय का गृह कार्य करना आदि बोझ हैं। वस्तुस्थिति का अन्दाज किया जावे तो अध्ययन की बात एक तरफ छोड़िए, विद्यालय में जाना और वहाँ अध्ययन करना उनको व्यर्थ-सा अनुभव होता है। परीक्षा का परिणाम जब हाथ लगता है, तब शिक्षक, परीक्षक, बोर्ड, यूनिवर्सिटी आदि को बदनाम करते हैं। यही नहीं वह असामाजिक व्यवहार भी करने लगते हैं। आखिर इसके पीछे क्या कारण निहित है ? आइये, हम विचार करें।

कुछ बालकों में शारीरिक कमियाँ-दोष जैसे—कम सुनना, कम बोलना, शरीर के किसी अवयव में दर्द बने रहना आदि पाये जाते हैं किन्तु इनकी ओर माता-पिता या अभिभावक सामान्यतया ध्यान नहीं देते हैं। इस प्रकार के छात्र अपने माता-पिता से जब शिकायत करते हैं तो अभिभावक समझते हैं कि बालक काम से मन चुराना चाह रहा है, काम न करने का बहाना कर रहा है अथवा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

काम नहीं करना चाह रहा है। उनकी शारीरिक कमियों की ओर ध्यान देने की अपेक्षा ऐसा समझ लिया जाता है। इस प्रकार के छात्र विद्यालय में जाते रहते हैं, किन्तु संकोचवश अपनी बात और शारीरिक दोष अपने अध्यापक को या अपने मित्र को नहीं बता पाते हैं क्योंकि उनके मन में इन्हें प्रकट करने में हिचकिचाहट बनी रहती है। उधर शिक्षक को भी व्यस्तता के कारण ऐसे बालक के दोषों को देखने का अवसर नहीं मिल पाता है। यदि बालक अपनी भाषा में अपनी बात शिक्षक के सामने भी रख देता है तो वह सुनी-अनसुनी कर देता है। इस प्रकार माता-पिता, अभिभावक और शिक्षक की लापरवाही के कारण बालक को अध्ययन में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इन्हीं दोषों के कारण बालक कक्षा में पढ़ाने को समझ नहीं पाता, सुन नहीं पाता और देख नहीं पाता। धीरे-धीरे इसका प्रभाव यह होता है कि बालक कक्षा में अन्य छात्रों की अपेक्षा पिछड़ने लगता है। कक्षा के काम का बोझ तो बढ़ता रहता है, दूसरी ओर बालक अपने शारीरिक दोषों पर मूक-दुःखी होने लगता है। इसके परिणामस्वरूप बालक को पढ़ाई से अरुचि होने लगती है। दिन पर दिन वह विद्यालय जाने में ऊब का अनुभव करने लगता है।

यह तो पहले ही कहा गया है कि बालकों का मानसिक-स्तर भिन्न-भिन्न होता है। इसके साथ उनकी रुझान भी एक-सी नहीं होती। इनसे माता-पिता अभिभावक और सामान्य शिक्षक परिचित नहीं रहते हैं। जबकि बालक की इन दो बातों से परिचित रहने पर ही निर्धारित करना सरल होता है कि बालक इन विषयों को ठीक तरह से पढ़ पावेगा ? किस विभाग में वह सफल रहेगा ? किन्तु होता यही है कि बालक को जबरन ही ऐसे विषय दिलवा दिये जाते हैं, जिन्हें वह मानसिक स्तर और अपनी अरुचि के कारण पढ़ना नहीं चाहता। इसका परिणाम स्पष्ट है, वह विषय के प्रति घृणा करने लगेगा। एक ओर स्वयं का मानसिक स्तर और अरुचि तो दूसरी ओर अध्यापक की कठोरता, विषय का अधकचरा ज्ञान, विद्यालय का वातावरण आदि उसे बाध्य कर देते हैं कि पढ़ाई से मुक्ति मिल जावे।

घरेलू वातावरण भी बालकों के अध्ययन को प्रभावित करते हैं। टूटा-फूटा घर हो, चारों ओर गन्दगी हो, घर में सारा सामान अव्यवस्थित हो आदि का प्रभाव बालक के मन को अध्ययन के प्रति उदासीन बना देता है। दूसरी ओर घरों में माता-पिता के बीच किच-किच हुआ करती है, जिसके कारण मानसिक तनाव बना रहता है। इस मानसिक तनाव से बालक वंचित नहीं रह सकता। वह घर के वातावरण से दुःखी हो जाता है, उसके प्रभाव से बालक का मन विद्यालय के अध्ययन में भी नहीं लगता है। जब वहाँ मन नहीं लग पाता है तो वह विद्यालय के समय में ही विद्यालय को छोड़कर अन्यत्र मनोरंजन की तलाश करता है। इस प्रकार करते रहने से अध्ययन में पिछड़ जाना स्वाभाविक है। तब फिर वह अध्ययन से दिल चुराने लग जाता है।

घरों में माता-पिता बालकों को व्यर्थ के आदेश देते हैं। जैसे—'यह करो', 'यह मत करो' आदि। इसका प्रभाव भी बालक की पढ़ाई-लिखाई पर पड़ता है क्योंकि ये व्यर्थ के आदेश उसकी पढ़ाई-लिखाई की शृंखला को तोड़ देते हैं। देखा जावे तो बालक को प्यार और ताड़न दोनों समय-समय पर मिलना चाहिए। किन्तु कहीं-कहीं बालकों को अति प्यार और कठोरता मिलती है। इन 'अति' के कारण बालक का मन धीरे-धीरे कुण्ठित होने लगता है। बालक अपने अध्ययन में कैसा है ? विद्यालय में वह क्या करता है ? अपने विषय में वह कैसा कार्य कर रहा है ? आदि के सम्बन्ध में अभिभावक पूछताछ नहीं करते हैं या तो वे इसे अपना कर्त्तव्य नहीं समझते हैं, केवल शिक्षक और विद्यालय का उत्तरदायित्व समझते हैं या इस कार्य को घटिया समझते हैं क्योंकि उनके जीवन में तो बहुत बड़े-बड़े कार्यों का पुलाव बँधा रहता है। इस प्रकार का व्यवहार भी बालक को अपने अध्ययन में उदासीन बना देता है क्योंकि वह समझता है कि घर पर कोई पूछताछ तो करता ही नहीं है। घर के आस-पास यदि चीख-चिल्लाहट, गाली-गलौज आदि का वातावरण बना रहता है तो उससे भी बालक का मन अध्ययन से विमुख होने लगता है।

आजकल शहरों में राशन-पानी आदि के लिए लम्बी प्रतीक्षा करनी होती है। अभिभावकों को तो इतना अवकाश कहाँ है कि वे पंक्ति में लगकर प्रतीक्षा करें। यह बालक के उत्तराधिकार में आता है। इस कारण विद्यालय के कार्य समय पर नहीं होने से बालक पिछड़ने लगता है। धीरे-धीरे वह पढ़ाई से दूर भागने लगता है।

कहीं-कहीं संयुक्त-परिवार के कारण बच्चों की संख्या अधिक होती है क्योंकि इस संयुक्त-परिवार की मान्यता में नियोजन के विपरीत सन्तति बढ़ाते हैं। इस कारण अभिभावक बालकों की ओर ध्यान नहीं दे पाते हैं। उधर बालक अपने आपको असहाय और बेकार बोझ समझने लगते हैं।

कुछ बालक खेलों के प्रति रुझान अधिक रखते हैं। वे इन खेलों में समय के प्रारम्भ से ही लग जाते हैं। आधे सत्र तक संस्थाओं में खेल-कूद की प्रतियोगिताओं का आयोजन होता रहता है। इस समय तक यह खिलाड़ी बालक अध्ययन की ओर ध्यान नहीं दे पाते हैं। कक्षा में वह पिछड़ जाते हैं। यदि छात्र मानसिक स्तर से साधारण श्रेणी का हुआ तो अध्ययन के अधूरे काम को पूरा नहीं कर पाता है। परिणामस्वरूप अध्ययन की ओर से वह दूर हटने लगता है। आगे जाकर, ऐसे बालक अध्ययन कर नहीं पाते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

बाजार में परीक्षा पास करने सम्बन्धी संक्षिप्त नुस्खे मिल जाते हैं। परीक्षा के दिनों बालक उनका सहारा लेकर उत्तीर्ण होने तक का उद्देश्य पूरा कर लेते हैं। जब इतने कम परिश्रम में सफलता हाथ लगती है तो सत्र-भर विद्यालय में जाकर सिर खपाने में क्या तुक ? इस वृत्ति के कारण भी बालक अध्ययन की ओर से विमुख होते हैं।

आर्थिक परिस्थिति या अन्य परिस्थिति के कारण अभिभावक समय पर बालक को पाठ्य-पुस्तकें व अध्ययन सामग्री उपलब्ध नहीं करवा पाते हैं। इस कारण बालक विद्यालय में दिये गये गृह-कार्य आदि को समय पर पूरा नहीं कर पाता है। इसका परिणाम होता है कक्षा के कार्यों में पिछड़ जाना। वही कार्य उसके लिए भारस्वरूप बनता चला जाता है। काम करके नहीं लाने के कारण कक्षा में ऐसे बालकों को अपमान का शिकार होना पड़ता है। इस अपमान से बचने के लिए वह कक्षा से भागना शुरू कर देता है। यही प्रक्रिया उन्हें एक दिन अध्ययन से विरत कर देती है।

मनोवैज्ञानिक आधार पर जैसे ही बालक किशोरावस्था में प्रवेश करता है, उसमें मानसिक-परिवर्तन होने लगता है, जिसे बालक तो नहीं समझ पाता है। किन्तु माता-पिता, अभिभावक और शिक्षक की ओर से भी ऐसी समय में कोई निर्देश, मार्ग-दर्शन नहीं मिल पाने से वे दिवास्वप्न देखने लगते हैं। इन्हीं दिवास्वप्नों को साकार स्वरूप देने के लिए अध्ययन के स्थान पर इधर-उधर भटकने लगते हैं। इस प्रकार के बालक फिर अध्ययन में रुचि क्यों रखने लगे ?

केवल बालक को अध्ययन के प्रति जागरूक कर देने से काम पूरा नहीं हो पाता है। इसके लिए तो माता-पिता, अभिभावक और शिक्षक को भी जागरूक रहना पड़ेगा। माता-पिता और अभिभावक व्यर्थ ही व्यस्तता का जामा पहिनकर इस उत्तरदायित्व से अपने आपको अलग मानते हैं। पर इस वृत्ति को छोड़कर बालकों की समस्या, कठिनाई आदि पर उनसे चर्चा करनी चाहिए। इसके लिए प्रतिदिन थोड़ा-सा समय निकाला जाना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में एक और अभिभावक सम्बन्धी कठिनाई है। वे केवल बालक को विद्यालय में भेज देना एवं पाठ्य-सामग्री दिलवा देना ही अपना उत्तरदायित्व समझते हैं। यद्यपि ग्रामीण माता-पिता अध्ययन सम्बन्धी-ज्ञान तो नहीं रखते हैं। लेकिन वे शिक्षकों से सम्पर्क रखते हुए अपने बालक की अध्ययन सम्बन्धी गतिविधि से परिचित रह सकते हैं। आजकल तो विद्यालयों द्वारा छात्रों को प्रगति-पत्रक दिये जाते हैं, उन्हें ध्यानपूर्वक देखना या दूसरों से दिखवा लेना ग्रामीण माता-पिता अपना कर्त्तव्य समझें। दूसरी ओर ऐसे छात्रों के सम्बन्ध में शिक्षक भी माता-पिता और अभिभावकों से सम्पर्क बनाए रख सकता है।

बच्चों की पढ़ाई के लिए घर से प्रोत्साहन मिले

व्यक्तित्व का निर्बल होना व प्रभावहीन होना स्वयं के लिए व समाज के लिए घातक है; क्योंकि निर्बल व्यक्ति न स्वयं कुछ करने में समर्थ है और न समाज में कुछ करने की सामर्थ्य रखता है। निर्बल और प्रभावहीन व्यक्ति सदा कुटिल और स्वार्थी लोगों का शिकार होता है।

इस निर्बलता और प्रभावहीनता का क्या कारण हो सकता है ? यदि मनुष्य में अज्ञान है तो उसे समाज में निर्बल और प्रभावहीन बनकर रहना पड़ेगा। इस अज्ञान के पीछे अशिक्षा है। मनुष्य अशिक्षा के कारण संसार के क्रिया-कलापों से अपरिचित रहता है। ऐसा व्यक्ति न अपने आपको अभिव्यक्त कर पाता है और न दूसरे को समझ सकता है। वह महान पुरुषों के विचारों और अनुभवों का लाभ लेकर न अपना जीवन निर्माण कर सकता है और न दूसरों को उनका लाभ दे सकता है। कहना चाहिए, जीवन का सच्चा आनन्द लेना है तो मनुष्य को शिक्षित होना चाहिए।

ऐसा भी देखा जाता है कि बहुत-से लोग शिक्षित तो हैं और उन्होंने ऊँची-ऊँची उपाधियाँ प्राप्त कर ली हैं लेकिन वह सामाजिक जीवन में कूद पड़ने की हिम्मत नहीं रख पाते हैं। साहस के अभाव में वह समाज से दूर-दूर रहते हुए, एकाकी जीवन व्यतीत करता है। इसका परिणाम होता है कि उसकी शिक्षा का लाभ न तो स्वयं को मिला और न समाज को उसका लाभ दे सका। संसार में क्या-क्या सामयिक परिवर्तन हो रहे हैं ? उनसे वह पूर्णतः अपरिचित रहता है, इस कारण वर्तमान में उसे क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए, इसका निर्णय नहीं ले पाता है। शिक्षित होते हुए मनुष्य अपने समीपवर्ती जीवन से अपरिचित बना रहे तो उसे शिक्षित कैसे कहें ? क्यों न अज्ञानी ही मानें ? यदि ज्ञान का विकास करते रहना है तो शिक्षित होने के साथ-साथ सांसारिक गतिविधियों से जूझते रहना चाहिए।

इस शिक्षा का शुभारम्भ बचपन से होता है। पाँच-छह वर्ष की आयु से बच्चा जब शिक्षा आरम्भ करता है, तब उसमें निजी समझ का अभाव रहता है। इसी कारण वह स्वयं प्रेरित होकर शिक्षण नहीं लेता है। यदि जबरन पढ़ने हेतु उसे बिठाया भी गया तो वह उसमें रुचि नहीं लेता है बल्कि वह इसके स्थान पर अपने सहज स्वभाववश खेल-खेलना पसन्द करता है क्योंकि पढ़ाई उसके लिए सर्वथा नई बात है। लेकिन धीरे-धीरे अध्यापक और अभिभावक के परिश्रम से बच्चा पढ़ाई की ओर आकर्षित होने लगता है। इस काल में दोनों सतर्कतापूर्वक बालक की पढ़ाई पर ध्यान रखते हैं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तब कहीं बालक पढ़ाई की चाल पकड़ पाता है।

जैसे ही बालक पढ़ाई के सम्बन्ध में रुचि लेना प्रारम्भ कर देता है तो घरों में अभिभावक बालक की पढ़ाई के प्रति ध्यान देना बन्द कर देते हैं। वे इस ओर असावधान और उदासीन हो जाते हैं। इसका प्रभाव बच्चे की पढ़ाई की गति पर गिरता है। उसकी पढ़ाई की गति मन्द होने लगती है। सम्भव है, उसका ध्यान इधर-उधर भी भटक सकता है ताकि वह बालक आगे जाकर पढ़ाई में ही मन्द न होवे, अन्य उल्टे-सीधे मार्ग पर जाकर अपना जीवन बर्बाद कर सकता है। इधर स्कूलों में अध्यापक भी ऐसे बच्चे के प्रति उदासीन हो जाते हैं। यहाँ भी जब बालक ढील देखता है तो उसे इधर-उधर भटकने के अवसर मिलते हैं और उसकी पढ़ाई के स्तर में तो कमी आती ही है।

यदि बालक ने प्रारम्भिक अवस्था में पढ़ाई की चाल पकड़ भी ली है तो अभिभावक और अध्यापक बच्चे का तब तक पीछा नहीं छोड़ें कि बालक में स्वयं की समझ न आ जावें। हमेशा बालकों में पढ़ाई के प्रति अभिरुचि बनाए रखने के लिए उन्हें अपना समय देते रहना चाहिए, जिससे उनकी पढ़ाई की गति में अवरोध उत्पन्न न होने पावे।

जब तक बालक पढ़ाई में रँग न जावें तब तक अभिभावक घर पर प्रतिदिन घण्टा-आधा-घण्टा उनकी पढ़ाई-लिखाई के लिए दिया करें। उन्होंने स्कूल में क्या काम किया है तथा कौन-सा काम किया गया है ? उसकी मात्र जानकारी ही न लें, बल्कि सम्बन्धित समस्या का समाधान भी करें। कभी-कभी पढ़े हुए कुछ प्रश्न पूछकर यह मालूम करने का प्रयत्न करें कि बच्चे ने जो पढ़ा है, वह समझा है या नहीं तथा याद है या नहीं। उनकी गृह-कार्य की कापियाँ देखें। बालक ने शिक्षक से गृह-कार्य को जँचवाया या नहीं, इसके सम्बन्ध में जानकारी लेने के साथ-साथ कापियों में आई गलतियों की ओर से बालक का ध्यान आकर्षित करते रहना चाहिए। अच्छा हो गलतियों को सुधारने के लिए अभ्यास दे देवें ताकि उन्हें दुहरा न पावें।

यदि यह प्रक्रिया नियमित रूप से चलायी जाय तो बालक सतर्क हो जाता है और विद्यालय के कार्य को बराबर करेगा। यही नहीं, वरन् पढ़ाई की ओर उसकी अभिरुचि बढ़ती जावेगी क्योंकि काम का निरीक्षण होते रहने से उस कार्य में कौशल भी आता है और उसे करते रहने के प्रति जाग्रत होता है।

जहाँ अभिभावक इतना नहीं कर पाते हैं तो उनके बालक अध्ययन में रुचि नहीं लेते हैं और एक बार पढ़ाई में पिछड़ जाने पर उनमें निराशा घर करने लगती है। यही निराशा उन्हें अध्ययन से हटाकर इधर-उधर भटकने के लिए बाध्य करती है। कितना महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है—अभिभावकों का बालकों के प्रति ?

विद्यालयों में कई बच्चे पढ़ते हैं। अध्यापक को एक ही दिन में कई बच्चों को पढ़ाना पड़ता है। ऐसी दशा में बच्चे की अध्ययन सम्बन्धी व्यक्तिगत कठिनाई को वह हल करने में असमर्थ ही होता है। यों भी शिक्षक का ध्यान इतना बिखरा होता है कि वह किसी विशेष बालक पर ध्यान नहीं दे पाता है। ऐसे बालकों की पकड़ यदि घर पर अभिभावक नहीं कर पावें तो समझिये कि बच्चा अध्ययन के नाम पर हाथ से निकल जाता है। स्कूल में अध्यापक की विशेष पकड़ नहीं और घर पर अभिभावक का ध्यान नहीं, फिर तो उस बालक के लिए समाज का विशाल क्षेत्र खुला रहता है, वह उस ओर अपने आपको उन्मुख कर लेता है।

जबकि अभिभावक को विद्यालय के अध्यापक पर ही निर्भर रहते हुए, स्वयं लापरवाह नहीं हो जाना है। अभिभावक, अध्यापक के अध्यापन के बाद भी घर पर बालक के अध्ययन के प्रति सतर्क रहें। कम से कम अभिभावक थोड़ा-थोड़ा समय भी निकालते रहें तो बालक अध्यापक के अलावा भी बहुत कुछ सीख सकता है और पढ़ सकता है।

परिवार में यह आवश्यक नहीं कि पिता ही बालक को पढ़ाने की ओर अभिरुचि रखें। परिवार का जो भी व्यक्ति पढ़ा-लिखा हो और बालक के अध्ययन का निरीक्षण कर सकता हो, वह उसे पूरा करें। फिर चाहें उसमें माँ हो सकती है अथवा परिवार का कोई भी वयस्क परिजन हो सकता है। पर इनमें से कोई भी योग्यता न रखता हो तो पिता को इस उत्तरदायित्व को वहन करना चाहिए। चाहे फिर पिता के पास कितना ही समय का अभाव क्यों न हो ?

सन्तान के शिक्षण के लिए उसे थोड़ा समय निकालना ही चाहिए। ऐसे भी परिवार होते हैं, जहाँ कोई भी इतना पढ़ा-लिखा न हो जो बालक का अध्यापन कर सके। ऐसी परिस्थिति में कम से कम पिता अथवा घर के अन्य परिजन को समय-समय पर बच्चे के विद्यालय जाते-आते रहना चाहिए तथा बच्चे के अध्यापकों से उसके अध्ययन सम्बन्धी जानकारी लेते रहना चाहिए। ऐसा करने से भी बच्चों में अध्ययन के प्रति रुचि बनी रहेगी क्योंकि वह समझेगा कि उस पर अध्यापक के अलावा घर के लोगों की भी निगाह है।

यदि बालक को शिक्षित बनाना चाहते हैं तो अभिभावकों की बालक की शिक्षा के प्रति जो उदासीनता है, उसे त्यागना होगा। बच्चा स्कूल की अपेक्षा घर पर अधिक समय व्यतीत करता है। इस समय यदि उसे कोई निर्देशक नहीं मिल पाया तो बालक भी अध्ययन के प्रति आधा मन रखेगा। अस्तु, अभिभावक इस उत्तरदायित्व का वहन ऐसा समझकर करें कि यह उसका महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है, जिसे उन्हें पूरा करना ही है। यदि अभिभावक इस ओर आगे बढ़ गये तो बालक को शिक्षा के विकास में बहुत बड़ी सहायता मिलेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों का अवकाश काल इस तरह बीते

'अवकाश' का अर्थ बेकार पड़े रहना अथवा सोते रहना नहीं है और न उसका यह भी आशय है कि जिन्हें अवकाश मिला है, वे बेकार में इधर-उधर उठ-बैठकर और गप लड़ाकर समय नष्ट कर डालें। अवकाश का तात्पर्य है—निरन्तर किये जाने वाले काम को कुछ समय के लिए स्थगित करके कुछ ऐसा काम करना जिससे नवीनता आये, मन-मस्तिष्क में कुछ परिवर्तन आये, नया ज्ञान मिले और मनोरंजन हो।

पढ़ने वाले लड़कों को वर्ष में सब मिलाकर लगभग छह माह का अवकाश प्राप्त होता है। इस अवकाश में से यदि त्योहारों तथा साप्ताहिक छुट्टियाँ निकाल दी जायें जब भी यह अवकाश का समय चार-साढ़े-चार माह का तो बच ही जाता है। उसमें गर्मी की छुट्टी तो एक साथ ही लगभग दो माह की होती है। यह सारा अवकाश बच्चे या तो घर में पड़े-पड़े सोते हुए बिताते हैं अथवा नाते-रिश्तेदारी में विवाह-शादी करके। इस अवकाश का कोई समुचित उपयोग नहीं होता। यदि हो सके तो निश्चित है कि इस अवधि में बच्चे बहुत-सा नया ज्ञान और अर्थ तक उपार्जन कर सकते हैं।

नौकरी-पेशा अभिभावकों को छोड़कर लगभग अन्य सारे अभिभावकों में से किसी के खेती का काम होता है तो किसी के यहाँ कार-रोजगार और दुकानदारी होती है। ऐसे अभिभावकों को चाहिए कि वे अपने बच्चों को अवकाश के समय में उन कामों में लगाया करें। यह कभी न सोचें कि यह तो पढ़ने-लिखने वाले हैं, इनका मन-मस्तिष्क इसमें अभी नहीं लग सकता। खेल-कूद लेने दिया जाये। जब समय आयेगा, काम-काज सिर पर आ पड़ेगा तो आप कर लेंगे। अभिभावकों की यह विचारधारा बड़ी अवैज्ञानिक है। जिन बच्चों को शुरू से ही थोड़ा-थोड़ा काम में लगाया जाता रहता है, उनका उस काम में एक प्रकार से प्रशिक्षण होता चलता है। उन्हें उसकी बाहरी व भीतरी बातें पता चलती हैं। मस्तिष्क का उसकी बारीकियों तथा कठिनाइयों से परिचय होता है। उनकी रुचि बढ़ती जाती है और जब वे पढ़ाई पूरी करने के बाद वह काम अपने हाथों में लेते हैं तो वह उनके लिए बहुत नवीन या कठिन नहीं होता। आसानी से करते आ रहे के समान ही ग्रहण कर लें और करने लगें।

जिन अभिभावकों के खेती होती है, वे अवकाश के समय में उन्हें खेती के काम से परिचित करायें, सहायता लें। खेतों पर घुमाने ले जायें, उनकी पैदावार और कठिनाई के विषय में अवगत करायें। किन खेतों में पैदावार अच्छी होती है और किनमें नहीं, इसका कारण बतलायें ? हल किस प्रकार ठीक से जोता जाता है, बैल कौन-सी नस्ल के अच्छे होते हैं और उनको किस प्रकार स्वस्थ रखकर अधिक से अधिक काम लिया जा सकता है ? यह सब व्यावहारिक अनुभव उन्हें करायें। ऐसा करने से उनका न केवल ज्ञान बढ़ेगा बल्कि खेती के काम में रुचि भी पैदा होगी, जिससे यह समस्या हल होने में सहायता मिलेगी कि बच्चे पढ़-लिखकर खेती करने के बजाय शहरों में छोटी-मोटी नौकरी कर लेना पसन्द कर लेते हैं। किसी काम की योग्यता उससे हाथ-पाँवों का परिचय और रहस्यों की जानकारी उसमें वह रुचि पैदा कर देती है। यदि बच्चे शुरू से ही हल, बैल, मिट्टी, खाद, खेत आदि से तन-मन से परिचित होते रहें तो वह उनके लिए नवीन काम न रह जाये। उनकी सारी झिझक निकल जाये और वे उसके लाभ तथा उपयोगिता से परिचित होने से सहर्ष वह धन्धा अंगीकार कर लेंगे।

व्यापारी वर्ग भी अपने धन्धों में बच्चों को इसी प्रकार प्रशिक्षित कर सकते हैं। वे उन्हें अपने साथ बाजारों में ले जायें। क्रय-विक्रय की रीति से परिचित करायें। मालों की अच्छाई-बुराई पहचानने की योग्यता दें। अन्य व्यापारियों के शील, स्वभाव तथा आवश्यकताओं से परिचित करायें। बाजारों की आवश्यकता तथा ग्राहकों की माँग व रुचि से अवगत करें। व्यापार की तरक्की का क्या रहस्य है, उसमें पतन तथा घाटा जिन कारणों से आता है वे बताये जा सकते हैं और उनसे सावधान रहने की चेतावनी दी जा सकती है। इस प्रकार उनसे बाजारदारी और दुकानदारी कराकर उनको बहुत पहले से ही उस काम में रमाया जा सकता है, जिससे आगे चलकर उनका मन न लगने का प्रश्न ही न उठे। बच्चों के अवकाश का समय बेकार नहीं जाने देना चाहिए उसे किसी न किसी प्रकार उपयोग में लाना ही ठीक होगा।

वे अभिभावक जिनका अपना कुछ काम नहीं होता, बच्चों को आगे जिस काम में लगाना चाहते हैं उस काम के लिए किन्हीं दूसरे कारवारी के पास भेज सकते हैं। मानिए आप बच्चे को तकनीकी क्षेत्रों में पहुँचाना चाहते हैं किन्तु आप स्वयं किसी कार्यालय में नौकरी करते हैं। ऐसी दशा में आप बच्चे को किसी भी मित्र-परिचित अथवा सम्बन्धी के उस कारखाने में भेज सकते हैं, जिसमें मशीनरी अथवा अन्य तकनीकी काम होता हो। किसी कारखाने के मालिक मैनेजर को बच्चे से काम लेने के लिए कह सकते हैं। शायद ही ऐसा कोई अदूरदर्शी मैनेजर मालिक हो जो आपकी प्रार्थना अस्वीकार कर दे। आज देश को ज्यादा से ज्यादा तकनीशियनों की जरूरत है। सरकार को ही नहीं व्यक्तिगत उद्योगपतियों तथा छोटे-छोटे कारखानेदारों को उनकी कमी रहती है। वे तो खुशी से चाहेंगे कि लोग अपने बच्चे तकनीकी लाइन में सीखने के लिए भेजें।

इसी प्रकार जो अपने बच्चों को व्यापारी बनाना चाहते हैं, वे उनको किसी भी फर्म अथवा दुकान में भेज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकते हैं। यदि बच्चे निःस्वार्थ भाव से ईमानदारी के साथ काम तथा सेवा करेंगे तो कोई भी उन्हें रखने, सिखाने में आपत्ति न करेगा। बहुत-से परिवारों में उनके घरेलू उद्योग-धन्धे होते हैं। वे बच्चों को उसमें लगा सकते हैं। कताई वाले कताई और सिलाई करने वाले उनको सिलाई का प्रशिक्षण दे सकते हैं। रँगाई, मीनाकारी अथवा कढ़ाई, छपाई का काम करने वाले उन्हें अपने काम का अभ्यास करा सकते हैं। इस प्रकार एक नहीं सैकड़ों काम ऐसे हो सकते हैं अवकाश के दिनों में, जो बच्चों को सिखाये और उनसे कराये जा सकते हैं। अवकाश का समय जिस प्रकार से चाहें खराब करें, बच्चों को इसकी स्वतन्त्रता नहीं देनी चाहिए। उन दिनों उनका सामान्य नियम बन्धन भी टूट जाता है। पढ़ाई-लिखाई का काम एक तरह से स्थगित हो जाता है। इसलिए समय पर उठना, स्कूल के लिए तैयारी करना, समय पर पढ़ना और समय पर खेलने के सारे नियम शिथिल हो जाते हैं, जिससे उनमें आलस्य, अव्यवस्था तथा अनियमितता की दुर्बलता पैदा हो जाती है, जो स्कूल खुलने के बाद बहुत-सा समय लेकर दूर हो पाती है। इसलिए उनको अवकाश के दिनों में सोने, मटरगश्ती करने अथवा जहाँ-तहाँ निठल्ले उठने-बैठने की छूट कदापि नहीं दी जानी चाहिए। उन्हें किन्हीं उपयोगी काम में लगाया जाना चाहिए। यह उनके भविष्य के लिए ही हितकारी होगा। बेकार फिरते रहने से उनमें अन्य अनेक प्रकार के विकार व्यसन भी पैदा हो सकते हैं। इन सबकी सम्भावनाएँ बच्चों को काम में लगाये रहने से दूर हो जाती हैं।

प्रगतिशील विदेशों में छात्रों का अवकाश बेकार नहीं जाने दिया जाता है। उनमें संस्थाओं तथा सरकार के सहयोग से छात्रों के अवकाश शिविरों का आयोजन किया जाता है। उदाहरण के लिए, अमेरिका को ले लीजिए— वहाँ ये शिविर बड़े व्यावहारिक ढंग से चलाये जाते हैं और प्रतिवर्ष इनमें अधिकाधिक छात्र आकृष्ट होते रहते हैं। उन अवकाश शिविरों में उन्हें सुन्दर आहार, उचित काम, खेलकूद और स्वस्थ मनोरंजन के अवसर दिये जाते हैं। मनोवैज्ञानिक निर्देश, प्राथमिक चिकित्सा, जन-सेवा, व्यायाम, खेल-कूद, तैराकी, भोजन बनाने आदि का प्रशिक्षण दिया जाता है। उन्हीं शिविरों में उन्हें नैतिकता, देशभक्ति तथा संसार की राजनीति पर प्रवचन तथा भाषण भी दिये जाते हैं और दिलाये भी जाते हैं। विद्यार्थियों में नई स्फूर्ति, नई रुचि तथा नई चेतना होती है। उनका मन पढ़ाई में पूरी तरह से लगता है और वे शिविरों से प्राप्त ज्ञान का उपयोग भी अपनी योग्यता प्रदर्शित करने में किया करते हैं।

अमेरिका की तरह छात्रों के अवकाश शिविरों का प्रचलन रूस में भी है। रूस में इनका आयोजन शिक्षा बोर्ड की तरफ से होता है। यद्यपि अभिभावकों से कुछ अनुदान लिया जरूर जाता है; किन्तु इनका अधिकांश व्यय शिक्षा बोर्ड ही किया करता है। प्रत्येक विद्यालय अपना समावकाश का शिविर स्वयं आयोजित करता है। किसी पूर्व निश्चित स्थान पर बच्चों के रहने का प्रबन्ध झोपड़ों, लकड़ी के मकानों अथवा पुराने ग्रामों के खाली पड़े निवासों में कर दिया जाता है। इन शिविरों में स्वास्थ्य, विश्राम तथा मनोरंजन के कार्यक्रमों के सिवाय विद्यार्थियों को नागरिकता की शिक्षा भी दी जाती है। इन शिविरों में बच्चों की टोलियाँ बँट जाती हैं, जो बारी-बारी से सबके लिए भोजन बनाती और खिलाने की व्यवस्था करती, इस प्रकार उनको न केवल पाक विद्या का अभ्यास होता है बल्कि प्रीति तथा सद्भोज का आनन्द मिलता है।

अवकाश के कार्यक्रमों से निवृत्त होकर विद्यार्थी स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी रुचि के मनोरंजन कर सकते हैं। इस समय कोई तो पेड़ों पर चढ़ने का अभ्यास करता है, कोई हरी-हरी घास पर बैठकर वार्तालाप करते हैं, कोई अपनी कूची और रंग लेकर प्रकृति का चित्रण किया करता है। कोई कविता लिखता तो कोई संगीत का आनन्द लेता है। इसके अतिरिक्त क्षेत्र की सफाई, शिविरों की व्यवस्था तथा दूर-दूर तक सैर-सपाटों का कार्यक्रम भी रहता है। द्वितीय महायुद्ध के समय रूस के छात्रों ने सत्र की छुट्टियाँ अपने अध्यापकों की देख-रेख में सामूहिक तथा सहकारी खेतों में काम करने में ही बिताई थी। १९४२ के अवकाश में पैंतालीस लाख छात्रों और आठ लाख अध्यापकों ने खेती में हाथ बँटाया था। इसके अतिरिक्त छोटे-छोटे बच्चों ने विभिन्न कार्यों के लिए फलों, कुकुरमुत्तों और औषधियों का भी संग्रह किया था। केवल बीस प्रदेशों के बच्चों ने स्थानीय अधिकारियों को लगभग तीन सौ चवालीस टन फुरवा धड़का कुकुरमुत्ता, ग्यारह सौ तिरेपन टन बेरी और फल और ग्यारह सौ पचास टन औषधियों का संग्रह भेंट किया था। बच्चों की यह राष्ट्रीय सेवा किसी भी दृष्टिकोण से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। कौन कह सकता है कि बच्चों की इस देशभक्ति के इस परिश्रम तथा इस पुरुषार्थ ने स्वाधीनता की रक्षा में कितना योगदान किया था ?

इन्हीं अवकाश शिविरों के अवसर पर, बच्चों को सहकारिता, सहयोग, राष्ट्रीयता तथा नागरिकता की शिक्षा व्यावहारिक रूप से दी जाती है। सरकारी खेती और सामूहिक फार्मिका का प्रशिक्षण दिया जाता है। इन भौतिक लाभों के अतिरिक्त इन शिविरों से छात्रों को भावनात्मक लाभ भी कम नहीं होता। इससे उनमें पारस्परिकता, प्रेम तथा सौहार्द्र की भावना बढ़ती है। वे सहकारिता तथा मिल-जुलकर काम करने के मूल्य को समझते हैं, उनमें भाई-चारे का भाव बढ़ता है। कितना अच्छा हो कि भारत में भी ऐसे छात्रों के अवकाश शिविर आयोजित किये जायें और उनको उपयोगी काम तथा महान चरित्र की शिक्षा दी जाया करे। सरकार तथा संस्थाओं से तो आशा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की ही जा सकती है, साथ ही अभिभावकों से भी यह आशा करना अनुचित नहीं कि वे अपने बच्चों को छुट्टियाँ आलस में न बिताने दें, उन्हें ऐसे उपयोगी कामों में लगाते रहें जिनका सुफल वे स्वयं पावें और उनका राष्ट्र भी। अध्यापक तथा अभिभावक मिलकर किसी न किसी प्रकार इस प्रकार के छोटे-मोटे छात्र शिविरों का आयोजन कर सकते हैं और देश व समाज के हित में उन्हें करने ही चाहिए। यदि भावना है तो सब कुछ हो सकना सम्भव है।

बच्चों में स्वाध्याय की सुरुचि विकसित करें

इच्छाएँ बिना पर्याप्त जानकारी, प्रखर सक्रियता और धैर्यपूर्ण अनवरत् प्रयोग के कभी भी साकार नहीं होतीं। अपने बच्चों को प्रत्येक माता-पिता सुयोग्य, श्रेष्ठ, सुसंस्कारी नागरिक बनाना चाहते हैं, पर उस दिशा में विस्तार से सोचने, निरन्तर सजगतापूर्ण सक्रियता बरतने और साधनों का सतर्कतापूर्ण चुनाव करने की तत्परता कम ही लोग बरत पाते हैं। इस न्यूनता के रहते इच्छाओं के फलीभूत होने की कोई भी सम्भावना नहीं रहती।

बच्चों के व्यक्तित्व को विकसित बनाने के लिए उनको पर्याप्त पौष्टिक आहार, शारीरिक श्रम, व्यायाम, खेल-कूद की समुचित व्यवस्था और खिलौनों, क्रीड़ा उपकरणों की पूर्ति जितनी आवश्यक है, उतनी ही आवश्यक है उनके मस्तिष्क के पोषण की पूर्ति। उनकी जिज्ञासा और कौतूहल की स्वाभाविक वृत्ति को श्रेष्ठ दिशा में नियोजित किए रहना आवश्यक है।

एक ओर जहाँ बच्चों की जिज्ञासा को दबाना अनुचित है, वहीं उसके प्रति उदासीनता भी हानिकर है। दिशा-निर्देश न होने और अच्छे साधनों के सुलभ न कराए जाने की स्थिति में, बच्चों की निरन्तर विद्यमान जिज्ञासा यदि विकृतियों की ओर मुड़ जाए, तो इसमें आश्चर्य नहीं। यदि बच्चा ऐसी पुस्तकें पढ़ने लगा, जो चिन्तन को विकृत, भावना को दूषित और मन को अधोगामी बनाती हैं, तो इसका परिणाम अवश्यम्भावी है।

कई अभिभावक बच्चों के बिगड़ जाने के डर से उन पर सदा यह दबाव डालते रहते हैं कि जब देखो तभी, पाठ्यपुस्तकों से चिपटे रहें और उसके अतिरिक्त किसी और पुस्तक को कभी हाथ न लगाएँ। यह स्थिति हर तरह से घाटे की सिद्ध होती है। बच्चे का मानसिक विकास जितना ही सिमटे-सिकुड़ेगा, आगे चलकर उसके बिगड़ने की सम्भावनाएँ उतनी ही बढ़ती जाएँगी। जो बच्चा अच्छे और गन्दे या बेकार साहित्य का अन्तर स्वयं अपने विवेक से पहचानना नहीं सीख पाता और स्तरीय तथा स्तरहीन पुस्तकों में अन्तर ही नहीं कर पाता, वह आगे चलकर किशोरावस्था में सस्ती उत्तेजना को उभारने वाले साहित्य को साहित्य मान बैठता है। ऐसे ही बच्चे स्नातक और स्नातकोत्तर उपाधियाँ बटोर लेने के बाद भी सस्ते, अश्लील उपन्यासकारों को साहित्य सम्राट और निराला, प्रसाद के समकक्ष या कि उनसे भी बढ़कर मानते रहते हैं। बसों, रेलगाड़ियों में सफर करते समय सम्पन्न घर के और सुशिक्षित दीखने वाले लड़के और लड़कियों को ऐसे ही सस्ते, भद्दे, उत्तेजक उपन्यास पढ़ते बिना झिझक देखा जा सकता है। परिष्कृत रुचि वालों के मन में उनके प्रति वितृष्णा का भाव उमड़ता है, यह भी लगता है कि ये निर्लज्जता की हद तक ढीठ हैं, जो ऐसी गन्दी किताब खुलेआम पढ़ रहे हैं, संकोच-शर्म भी नहीं। पर वे बेचारे क्या करें ? वे तो उन्हें ही आधुनिक प्रगतिशील दृष्टिकोण से भरेपूरे साहित्य माने बैठे रहते हैं, इसीलिए उन्हें पढ़ते हैं, न कि किसी निर्लज्जता के प्रदर्शन के लिए। अच्छे साहित्य की जिन्हें प्रारम्भ में ही रुचि नहीं पैदा हो गई, वे बाद में उसे अजूबा जैसा मानते हैं और यह समझते हैं कि ये पुस्तकें हमारे लिए नहीं किन्हीं भिन्नवर्गी लोगों के लिए लिखी गई हैं जो या तो महान हैं या सनकी या दकियानूस, पिछड़े। इसलिए बच्चा बड़ा होकर ऐसी संकीर्ण निम्न मनःस्थिति को ही प्रगतिशीलता न मानता रहे, इस कारण उसमें बचपन से ही अच्छे साहित्य के प्रति रुचि जगानी जरूरी है।

अभिभावकों के दबाव से डरकर जो बच्चे पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त बाहर की किताबों में रुचि लेना बन्द कर देते हैं, उनसे कहीं बड़ी संख्या ऐसे बच्चों की होती है, जो चोरी-छिपे बाहरी किताबें पढ़ना शुरू कर देते हैं। इसी सिलसिले में ऐसे बच्चे दुराव-छिपाव की दुष्प्रवृत्ति तो सीखते ही हैं वे कुसंगति के जाल में भी फँस जाते हैं। उन्हें उसी संगति में सुख मिलने लगता है, जहाँ भूत-प्रेत, चोरी९बदमाशी या बहुत भौंड़े सस्ते विनोद की या झूठे चमत्कारों की चर्चाएँ हों, कहानियाँ कही जाएँ। अतः पाठ्यक्रम से बाहर की सुरुचिपूर्ण श्रेष्ठ भावों से भरी पुस्तकों का बच्चों के लिए प्रबन्ध करना और उनमें उनके प्रति गहरी रुचि जाग्रत करना प्रत्येक समझदार माता-पिता का कर्त्तव्य है। स्कूली पढ़ाई में हर्ज न होने पाये यह सतर्कता भी आवश्यक है और स्वस्थ मनोरंजन तक प्रेरणा प्रदान करने वाली पुस्तकों में उनकी अभिरुचि जाग्रत हो, वह सजगता भी आवश्यक है।

अभिभावकों को स्वयं ही बच्चों में अच्छी पुस्तकों के प्रति रुचि जगानी चाहिए। यहाँ यह ध्यान रखना जरूरी है कि इस मामले में व्यावसायिक पत्र-पत्रिकाओं के प्रचारतन्त्र से प्रभावित होने से बचना चाहिए और स्व विवेक से ही चुनाव करना चाहिए। इसके लिए माता-पिता को स्वयं मेहनत करनी होगी। प्रमाद बरतने से काम नहीं चलेगा। तथाकथित बड़े घर के बच्चे जो पढ़ते हैं, उन्हें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही लाकर दे देने की अनुकरणशीलता से भी अनिष्ट ही होगा क्योंकि सामान्यतः इन दिनों 'कॉमिक' पुस्तकों का फैशन चल पड़ा है। पहले तो कामिक्स मुख्यतः अँग्रेजी में ही छपते थे। पर अब हिन्दी में भी खूब छपने लगे हैं और सम्पन्न घरों के लड़कों को अँग्रेजी 'कामिक्स' पढ़ते देख उनसे प्रभावित अभिभावक अपने बच्चों के लिए हिन्दी में वैसी ही किताबें ला देते हैं। बच्चों में तो ऐसी पुस्तकों के प्रति स्वाभाविक चाव रहता है। ये पुस्तकें सचित्र तो रहती ही हैं। बच्चे उन्हें देखते ही लपककर ले लेते और उन्हीं में खो जाते हैं। किन्तु इन पुस्तकों में सदा चमत्कारों और असम्भव घटनाओं की भरमार होती है। इनमें वर्णित पात्रों में बौद्धिक उत्कर्ष, सूझ-बूझ, विवेक आदि का प्रायः अभाव ही पाया जाता है और प्रधानता चमत्कारों को या संयोगों को दी जाती है। जब भी इनका नायक किसी भारी विपत्ति में फँसता है, सहसा कोई चमत्कार होता है, कोई अतिमानव जिसका नाम प्रायः भूतनाथ, मृत्युंजय, फेंटम आदि रखा जाता है, प्रकट होकर रक्षा करता है। यह रक्षा किस पुण्यकर्म के बदले में की गई, यह भी नहीं बताया जाता। माना वे अतिमानव कोई मनमौजी या पक्षपाती जीव हैं, जो या तो अकारण अथवा किसी अज्ञात रिश्ते के कारण नायक-नायिका की सदा रक्षा करते हैं। स्पष्ट है ऐसी कथाएँ बच्चे में कार्य-कारण-शृंखला के प्रति अनास्था उत्पन्न कर उसे भाग्यवादी, काल्पनिक और पुरुषार्थ-विमुख बनाती हैं। इससे बच्चों का पुरुषार्थ-पराक्रम में विश्वास घटता है और चामत्कारिक संयोगों के प्रति अन्ध-विश्वास बढ़ता है। अतः ऐसे 'कामिक्स' घर में नहीं लाने चाहिए।

इनके स्थान पर बच्चों को पवित्र, सुन्दर, सुरुचिपूर्ण कथाएँ जिनमें देवी-देवताओं की भी प्रतीकात्मक एवं विवेकपूर्ण ढंग से लिखी गई कथाएँ सम्मिलित हो सकती हैं, पढ़ाई जानी चाहिए। 'पंचतन्त्र' आज पूरे विश्व में अपनी अनुपम पुस्तक है, अपने बच्चों को भी पढ़ाई जानी चाहिए।

स्वस्थ एवं मार्गदर्शक बाल-साहित्य में बच्चों की रुचि प्रयासपूर्वक विकसित की जानी चाहिए। विभिन्न विषयों की सरल जानकारी देने वाली पुस्तकें भी सचित्र होने पर बच्चों को बहुत पसन्द आती हैं और उनके जिज्ञासु मन को तृप्त कर उनका मानसिक, बौद्धिक विकास करती हैं।

पुस्तकें पढ़ने की ही नहीं उन्हें सहेज-सँभालकर रखने की भी प्रवृत्ति बच्चों में विकसित करनी चाहिए। पढ़ने के बाद पुस्तकों को बेकार समझकर इधर-उधर बच्चे न फेंक दें, यह ध्यान रखा जाना चाहिए। साथ ही, माताओं को भी ऐसी पुरानी पुस्तकों का इस्तेमाल अँगीठी जलाने या टिफिन में बिछाने के लिए फाड़ डालने के लिए नहीं करना चाहिए। अपितु बच्चे अपनी पुस्तक सँभालकर रखना सीखें, इसमें उनकी मदद करनी चाहिए।

बच्चे को अच्छा नागरिक बनाना प्रत्येक माता-पिता का अनिवार्य कर्त्तव्य है और इस कर्त्तव्य के निर्वाह में उनकी सुरुचिपूर्ण स्वाध्याय की वृत्ति का विकास भी एक विशेष पक्ष है।

बालकों के लिए सत्साहित्य जुटाया जाय

कम आयु के बच्चे ज्ञान, स्तर अनुभव और विकासक्रम के कारण बड़ों की तुलना में पिछड़ी स्थिति के होते हैं। उन्हें उपयुक्त-अनुपयुक्त का ज्ञान कम होता है। इसलिए यह कार्य भी लालन-पालन की व्यवस्था जुटाते हुए अभिभावकों को ही करना पड़ता है कि वे जहाँ आवश्यक सुविधा-सामग्री प्राप्त करें, वहाँ हानिकारक प्रसंगों से बचे भी रहें।

यह सतर्कता बहुत हद तक आहार के सम्बन्ध में बरती जाती है। उन्हें पोषक और हल्का आहार उपलब्ध कराया जाता है अन्यथा मनमर्जी पर छोड़ देने से वे भी कुछ खाने-खरीदने लगेंगे और उस उत्साह में नई मुसीबत खड़ी करेंगे। जब बालक रेंगने, चलने लगते हैं तो कुछ भी पकड़ने-खाने लगते हैं। न रोका जाय तो वे आग भी पकड़ सकते हैं और चींटे, झींगुर, कील, काँटा भी निगल सकते हैं। अस्तु, अभिभावकों को उन्हें रेंगने, चलने की छूट देनी पड़ती है, वहाँ यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि कुछ अनुपयुक्त तो नहीं किया जा रहा है। यह रोकथाम ही सब कुछ नहीं होती वरन् उनकी हलचलों को सीमाबद्ध करने के लिए खिलौनों का पिटारा भी लाकर रखना होता है, ताकि वे उसमें उलझे रहें, प्रसन्न भी रहें और कुछ नया सीखने का प्रयत्न भी करें।

बच्चा जब स्कूल जाने लगे और एक-दो कक्षा पास कर ले तभी से उसमें एक नई भूख 'ज्ञान-पिपासा' की जगती है। उपलब्ध साधनों और परिस्थितियों से जो जाना जा सकता है, उससे अधिक जानने की उसकी सहज उत्कण्ठा रहती है। इसे पूरा करने के लिए पुस्तकों के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं, अब मुद्रण युग में बालकों की सामान्य आवश्यकताओं में ही भोजन, वस्त्र, खेल, मनोरंजन की तरह एक नया अध्याय स्कूली पुस्तकों में आगे चलकर अन्यान्य ज्ञानवर्द्धक पुस्तकें उपलब्ध करने का जुड़ गया है। आमतौर से बच्चे कुछ ऐसा पढ़ना चाहते हैं, जो ज्ञानवर्द्धक भी हों और मनोरंजन भी करे। अभिभावकों को अपने बालकों की इस आवश्यकता को भी अनुभव करना चाहिए और उसे जुटाने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

बच्चों में जिज्ञासा की नैसर्गिक प्रवृत्ति होती है जिसके कारण ही अपने आस-पास खुले पड़े वातावरण से वह विभिन्न जानकारियाँ एकत्रित करता है। ऐसे अवसर पर उनके मस्तिष्क के विकास तथा सामान्य ज्ञान में वृद्धि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए सत्साहित्य का स्वाध्याय सबसे उत्तम माना जाता है।

वर्तमान युग के व्यस्त सामाजिक जीवन में अभिभावक व्यक्तिगत ढंग से बच्चों को शिक्षण देने के लिए समय नहीं निकाल पाते। ऐसी स्थिति में स्वाध्याय ही एक ऐसा माध्यम है, जो उन्हें देश-विदेश की घटनाओं तथा ज्ञान-विज्ञान की जानकारियों से अवगत कराता है। इस प्रकार जहाँ उसे ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन-प्रसंगों से अपने जीवन को उत्कृष्ट बनाने की प्रेरणाएँ मिलती हैं, वहीं संसार के प्रसिद्ध विचारकों के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विचारों को जानने का अवसर मिलता है। दिशाबद्ध साहित्य से अपरिचित बालक जहाँ अन्धविश्वासों एवं रूढ़ियों में ग्रस्त होते हैं, वहीं प्रगतिशील, आस्थापूर्ण साहित्य उन्हें जीवन की वास्तविकता तथा रीति-नीति से अवगत कराता है। ऐसा साहित्य वस्तुतः मस्तिष्क का भोजन है, जिसका अध्ययन उनके समुचित मानसिक विकास के लिए बहुत आवश्यक है।

बच्चों के स्वाध्याय के लिए साहित्य का चयन भी करना आवश्यक है। विकृत भोजन की तरह ही विकृत साहित्य भी उद्देश्य पूरा नहीं कर पाता। उसके पढ़ने से उस जैसे दूषित विचार तथा विकृत भावनाएँ व घटनाएँ बच्चों के मस्तिष्क में घुमड़ती रहती हैं। जो उसके मानसिक विकास को कुण्ठित एवं दिशाहीन ही नहीं विकृत भी बना देती हैं।

इस दिशा में अभिभावकों को बड़ी सावधानी बरतनी चाहिए। उन्हें घर में ऐसी पत्र-पत्रिकाएँ नहीं लानी चाहिए जिनके विचार बच्चे के कोमल मस्तिष्क पर अपना दूषित प्रभाव डालते हों। इनसे हर हालत में बचना चाहिए।

जहाँ अच्छी पत्र-पत्रिकाओं एवं पुस्तकों का अध्ययन बच्चों में श्रद्धा, आत्मीयता, सेवा, सद्भावना, प्रेम, उदारता, करुणा जैसे भाव जाग्रत करने तथा नैतिकता, सदाचार, सहिष्णुता को विकसित करने में सक्षम होता है वही गन्दा व अश्लील एवं उत्तेजक साहित्य बच्चों में सेक्स, हिंसा, क्रोध, घृणा तोड़-फोड़, हत्या जैसे अपराधजन्य कुसंस्कारों के बीज उत्पन्न करता है। अनुकूल परिस्थितियाँ तथा अवसर पाते ही यह बीज उगते एवं अपराधों की फसल के रूप में दिखाई पड़ते हैं। इस बीच वे सूक्ष्म स्तर पर इसी प्रकार के साहित्य से पोषण प्राप्त करते रहते हैं। वर्तमान समाज में बढ़ते घृणित अपराधों को बहुत कुछ इस बाजारू अश्लील साहित्य की देन कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी। उत्कृष्ट विचारों तथा जीवन को दिशा प्रदान करने वाला साहित्य ही बच्चों के मानसिक विकास की आवश्यकता पूरी कर सकता है।

बाजार से मिलने वाली अश्लील पत्र-पत्रिकाओं के मुखपृष्ठ पर ही ऐसे चित्र होते हैं, जो बच्चों के कोमल मस्तिष्क को उत्तेजित करते हैं। इस साहित्य की भाषा तथा कथानक, कविताएँ इतनी रसीली तथा उत्तेजक होती हैं कि बच्चों की सुकोमल भावनाएँ विकृत हो उठती हैं। यह निम्नस्तरीय साहित्य उन्हें अधिक सरल लगने लगता है, फिर वे ऐसे साहित्य को गन्दा समझते हुए भी उसे त्याग नहीं पाते। यहाँ तक कि अभिभावकों से चोरी छिपे भी पढ़ते रहते हैं। तब वे इस तथ्य को गम्भीरतापूर्वक सोचने की आवश्यकता ही नहीं समझते कि यह विकृत साहित्य ही उनकी असफलता, मस्तिष्क की कुण्ठा, विकृति तथा अपराधी जीवन का मूल कारण रहा है।

जिन बच्चों को यह बाजारू पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने की लत पड़ जाती है, वे पुनः ज्ञानवर्द्धक साहित्य के पढ़ने में रुचि नहीं दिखाते। यहाँ तक कि स्कूल की पढ़ाई में पिछड़ते तथा अपना भविष्य खराब कर लेते हैं। तम्बाकू के नशे की तरह यह रसपूर्ण साहित्य पढ़े बिना उन्हें चैन नहीं मिलता। सारा चिन्तन या तो पढ़े हुए विकृत विचारों, कुत्सित घटनाओं के चिन्तन-मनन में डूबा रहता है अथवा ऐसी ही नई पत्रिकाओं, उपन्यासों को खोजने-खरीदने, पढ़ने के तौर-तरीके निकालने में लगा रहता है। खरीदने के लिए पैसों की चोरी करने से लेकर झूठ बोलने तथा उसे छिपाने के लिए अनेक झूठ बोलने जैसे दोष बच्चे के व्यक्तित्व में घुलने लगते हैं।

गन्दा साहित्य वह विष है जो बच्चे के व्यक्तित्व को अपंग, असहाय एवं निर्जीव बनाकर रख देता है। हर साहित्य निर्माता को इन तथ्यों को ध्यान में रखकर ही बाल साहित्य की रचना करनी चाहिए, जो उसके चरित्र निर्माण, आस्थाओं को सुदृढ़, गुणों के सम्वर्द्धन एवं व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के अनुरूप सामग्री प्रस्तुत करता हो। इसी प्रकार प्रत्येक अभिभावक को भी बच्चों के अध्ययन के लिए भी इसी स्तर की सामग्री से युक्त साहित्य ही घर में उपलब्ध कराना चाहिए। अनेक संस्थाएँ ऐसा साहित्य छापती हैं। खोजने पर इतने विकृत वातावरण में भी बच्चों के लिए उच्चकोटि के बाल साहित्य की कमी नहीं है।

सामान्यतया अच्छे मनोरंजक समझे जाने वाले साहित्य में भी इस प्रकार की कई कमियाँ होती हैं जो प्रौढ़ व्यक्तियों को भले ही प्रभावित न करें परन्तु बच्चों के कोमल मस्तिष्क पर बड़ा विपरीत प्रभाव डालती हैं। भूत-प्रेत, अत्यन्त आश्चर्य तथा मिथ्या कल्पनापूर्ण कहानियाँ, कविताएँ भी बच्चों की चिन्तनशैली को वास्तविक ज्ञान से बहुत दूर खींच ले जाती हैं। इस साहित्य के मनोरंजक एवं सरस होने के कारण बच्चे बड़ी अभिरुचि के साथ पढ़ते हैं, परन्तु इस प्रकार व्यावहारिक जीवन के ज्ञानार्जन में उनकी रुचि नहीं रह जाती। इस दृष्टि से उनके पिछड़ जाने की पूरी सम्भावना ही रहती है। तब स्वाध्याय का वास्तविक उद्देश्य नहीं पूरा हो पाता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूत-प्रेत, परी, देवी-देवता, राक्षस-पिशाच जैसे डरावने कथा-प्रसंगों का भय एवं आतंकपूर्ण कहानियाँ भी बच्चों के मन-मस्तिष्क में भय का अंकुर उत्पन्न कर देती हैं। जाने-अनजाने वह विकसित होता रहता है, जो उसके व्यक्तित्व को उभरने नहीं देता।

छोटे बच्चों का सामान्य, अनुत्तेजक एवं पशु-पक्षियों, प्राकृतिक दृश्यों की जानकारी कराने वाली रंग-बिरंगी पत्र-पत्रिकाएँ उपलब्ध करानी चाहिए। ऐसे साहित्य से जहाँ उनकी पढ़ने के प्रति रुचि जाग्रत होगी, वहीं अपने स्तर के अनुरूप जानकारियाँ विकसित कर सकेंगे।

किशोरावस्था के बच्चे समझदार होते हैं उनके बौद्धिक स्तर के अनुरूप बोधगम्य साहित्य उपलब्ध कराना चाहिए। साहस, वीरता, धैर्य, जागरूकता, समाज व संस्कृति के प्रति निष्ठा को विकसित करने में सक्षम कहानियाँ, ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धियों, चिन्तन एवं जिज्ञासा को प्रखर बनाने वाले विचारपूर्ण निबन्ध, देश-विदेश के जीवन के सचित्र वर्णन, विभिन्न स्थानों की संस्कृतियों, परम्पराओं के परिचय से सम्बन्धित साहित्य उनकी मानसिक परिपक्वता विकसित करता है। वर्तमान समाज की विकृतियों, दुष्प्रवृत्तियों एवं पतन में ले जाने वाली परम्पराओं व मूढ़-मान्यताओं के निराकरण हेतु विचारकों, दर्शनशास्त्रियों, समाजसेवियों के विचारों से परिपूर्ण साहित्य उन्हें वर्तमान समस्याओं के प्रति संवेदनशील बनाता है। बालकों को इसी कोटि का साहित्य चयन करने का प्रोत्साहन देना चाहिए।

बच्चों के लिए ऐसा साहित्य उपलब्ध कराया जाना चाहिए जो ज्ञान-विज्ञान की आश्चर्यजनक सफलताओं तथा उनके रहस्यों को समझने की बाल-जिज्ञासा का समाधान कर सके। वह इस स्तर की सामग्री देता हो, जो बच्चों के लिए स्वस्थ मनोरंजन एवं ज्ञानवर्द्धन का दायित्व पूरा करने के साथ-साथ उनकी कल्पना-शक्ति के विकास में सहायक हो।

यहाँ एक तथ्य और स्मरण रखने योग्य है कि घर में कई विद्यार्थी होने और सभी की अपनी-अपनी आयु तथा कक्षा के अनुरूप अतिरिक्त साहित्य पढ़ने की माँग रहती है। बाल-साहित्य की पुस्तकें भी छोटी, सचित्र तथा मोटे अक्षरों की होती हैं, जिसे वे जल्दी ही निपटा लेते हैं। इस दृष्टि से उन सबके लिए एक ही दिन में कई-कई पुस्तकों की जरूरत पड़ सकती है। अभिभावकों में से अधिकांश की स्थिति ऐसी नहीं होती कि वे उस मद में इतना खर्च कर सकें। इस कठिनाई का एक ही समाधान है कि हर गाँव-मुहल्ले में बाल-पुस्तकालय खुलें, उनमें देख-समझकर मात्र ऐसी ही पुस्तकें रखी जायें, जो मनोरंजन के अतिरिक्त इनके बौद्धिक, चारित्रिक, सामाजिक एवं सामान्य ज्ञान के अभिवर्द्धन में भी सहायक हों।

बच्चों के संस्कार निर्माण में बाल साहित्य का योगदान

बच्चों के संस्कार-निर्माण में बाल-साहित्य की विशेष भूमिका है। यह देखा गया है कि एक ओर तो बाल-साहित्य में बहुत स्पष्टतौर पर समाज की प्रधान प्रवृत्तियाँ प्रतिबिम्बित होती हैं, दूसरी ओर बच्चों की सामाजिक चेतना को दिशा देने का काम भी बालसाहित्य करता है।

इन दिनों विश्व में रचे जा रहे बाल-साहित्य पर दृष्टिपात करने से यह स्थिति और भी स्पष्ट हो जाती है। अमरीकी बाल-साहित्य में ऐसे प्रयास हो रहे हैं, जिससे बच्चों में समानता की भावना को जाग्रत, प्रदीप्त किया जाय। अनेक बाल-मनोवैज्ञानिक, शिक्षाशास्त्री और लेखक इस दिशा में प्रयत्नशील हैं। इसके साथ ही, वहाँ इस तथ्य का भी पता लगाया जा रहा है कि बच्चों में किन भावनाओं की प्रबलता है, ताकि उनकी वर्तमान मनःस्थिति को समझकर राष्ट्रीय आकांक्षाओं के अनुरूप उन्हें ढालने के प्रयास किये जा सकें। उदाहरण के लिए, पिछले दिनों बाल-साहित्य लेखक श्री स्टीफेन एम. जोजेफ और इरविंग बीइंग ने न्यूयार्क की कुछ बस्तियों का दौरा कर वहाँ के बच्चों की भावनाएँ जानने की कोशिश की। बच्चों से कहा जाता कि वे एक कागज पर अपने मन की कोई भी बात लिखें। इससे कुछ बड़े ही चौंकाने वाले परिणाम सामने आये। सम्पन्न बस्तियों के बच्चों में जहाँ मौज-मस्ती की ही कल्पनाएँ उमड़ती-घुमड़ती पायी गयीं, वहीं गन्दी बस्तियों के बच्चों में, उनके साथ बरते जाने वाले अनुचित व्यवहार, उपेक्षा तथा अपमान की अनुगूँज थी। वहाँ के गोरों द्वारा कालों पर जो अत्याचार किये जाते हैं, उसकी कचोट भी इन गन्दी बस्तियों के काले बच्चों में थी। इसी प्रकार परिवार के भीतर जो लड़ाई-झगड़े होते हैं, उनके कारण बच्चों के मन में जो पीड़ा होती है, उसकी अभिव्यक्ति कई बार बच्चे अपने शिक्षकों को लिखे पत्रों में व्यक्त करते हैं।

रूस में साम्यवादी क्रान्ति के बाद से, बाल-साहित्य की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है, साथ ही वहाँ इस दिशा में प्रयास किया जाता है कि बच्चों की कल्पनाशक्ति का उपयोग अपनी मातृभूमि को एक पूर्ण साम्यवादी देश बनाने का संकल्प उभारने के लिए किया जाय।

जर्मनी के बाल-साहित्य में वीरतापूर्ण संघर्ष की भावना की प्रधानता है। वहाँ बच्चों को जीवन-संग्राम में साहसपूर्वक भाग लेने और विजयी बनने की प्रेरणा दी जाती है। जबकि फ्रांस के बाल-साहित्य में भावनात्मक परिष्कार तथा कलात्मक कोमलता की प्रधानता होती है। इंग्लैण्ड के बाल-साहित्य में बच्चों को सामाजिक परम्पराओं, सामाजिक आचार-व्यवहार और जीवन-मूल्यों के प्रति जागरूक बनाने के प्रयास विशेष देखे जाते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रसिद्ध अँग्रेज बाल-साहित्यकार हैंस एण्डरसन की वह कथा प्रसिद्ध है, जिसमें उन्हें चाटुकारों की भीड़ से घिरे राजाओं, सामन्तों की मूर्खता पर तथा अकड़ पर चोट की है तथा बच्चों के स्वभावतः सत्यभाषी और निश्छल होने पर प्रकाश डाला है। इस कहानी में राजा एक धूर्त के चकमे में आकर चमत्कारी कपड़ा बनवाता है और निर्वसन होकर दरबार में घूमता है। चाटुकार उस कथित दिव्य पोशाक की तारीफ ही करते रहते हैं, पर एक बच्चा, जो वहाँ रहता है, वह सबकी बात काटकर बल देकर कहता है कि, ''राजा तो नंगा है।''

प्राचीन भारतीय मनीषियों ने भी बाल-साहित्य का महत्त्व भली-भाँति हृदयंगम किया था। पौराणिक कथाओं में आरुणि, श्रवणकुमार, भीष्म जैसे बालकों की आदर्शनिष्ठा का सुन्दर चित्रण है। इसी प्रकार एकलव्य जैसे निर्धन, किन्तु प्रतिभाशाली बालकों के साथ किस प्रकार अन्याय होता था, इसकी झलक भी उस साहित्य से मिलती है। पंचतन्त्र और हितोपदेश की कथाएँ इतने श्रेष्ठ स्तर का बाल-साहित्य हैं, कि वे आज भी न केवल भारत के, अपितु सम्पूर्ण संसार के अनेक देशों के बच्चों को संस्कारित करती हैं। दुनिया में उपलब्ध सर्वाधिक प्राचीन बाल-साहित्य मुख्यतः दो ही हैं—पंचतन्त्र की कहानियाँ और ईसप की कहानियाँ। अध्येताओं का निष्कर्ष यह है कि ईसप ने पंचतन्त्र से ही कथाएँ लीं और उन्हें थोड़े हेर-फेर के साथ अपने नाम से प्रचारित कीं। इस प्रकार पंचतन्त्र ही सर्वाधिक प्राचीन, सुव्यवस्थित बाल-साहित्य है और प्राचीन सभ्यताओं—मिस्र, यूनान एवं ईरान में भी इन्हीं कथाओं को स्वीकार किया गया था तथा आज की सभ्य दुनिया में भी इनका महत्त्व निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाता है।

वस्तुतः बच्चों के समाजीकरण के लिए, उनमें सामाजिकता की भावना उत्पन्न करने के लिए बाल-कथाओं एवं बाल-साहित्य सर्वोत्तम माध्यम हैं। अपने सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक आदर्शों के बीज बच्चों के भीतर अंकुरित, पल्लवित-पुष्पित करने में बाल-साहित्य ही समर्थ होता है। एक ओर जहाँ शाश्वत मानवीय जीवन-मूल्यों को बच्चों के संस्कार जगत में उतारना आवश्यक होता है, वहीं समकालीन, सामाजिक प्रवृत्तियों की भी जानकारी उन्हें देनी जरूरी होती है। पंचतन्त्र में भी पड़ोसी धर्म, मैत्री, सहयोग, एकता के लाभ, अनावश्यक वाद-विवाद से या अनावश्यक छेड़छाड़ से होने वाली हानियाँ आदि सामाजिक व्यवहार सम्बन्धी जानकारियाँ कथाओं के माध्यम से दी गई हैं। सामयिक सामाजिक चलन में समयानुसार परिवर्तन भी होते रहते हैं, इसलिए पंचतन्त्र, हितोपदेश जैसे बाल-साहित्य का लाभ उठाने के साथ ही सामयिक आवश्यकता के अनुरूप बाल-साहित्य की, जिनमें कविताएँ और विज्ञान कथाएँ भी सम्मिलित हैं सृजन आवश्यक है। क्योंकि उन्हीं के द्वारा राष्ट्रीय आकांक्षाओं के अनुकूल संस्कार बच्चों में अंकित किये जा सकते हैं।

बच्चे क्या पढ़ें, क्या न पढ़ें ?

पाठशाला के सिद्धान्त बालक और प्रौढ़ वर्ग दोनों पर समान रूप से लागू नहीं होते, वरन् उनमें विभाजन रखा जाता है। बड़ों को औटाया और उबाला हुआ दूध दे सकते हैं, पर बालक के लिए उसे और अधिक सुपाच्य बनाना आवश्यक होता है। इस कारण अभिभावक उनके दूध में पानी मिला देते हैं और एक ही उबाल के बाद उतार लेते हैं। रोटी और सब्जी में भी अन्तर रखा जाता है। उनको कोमल खाद्य-पदार्थ, कम मिर्च-मसालों वाली सब्जियाँ देते हैं। यह सावधानी इसलिए बरतनी पड़ती है क्योंकि उसके शरीर की प्रकृति, आवश्यकताएँ और क्षमताएँ प्रौढ़ों से भिन्न होती हैं, जहाँ इन बातों का ध्यान नहीं रखा जाता बच्चे जल्दी-जल्दी बीमार होते हैं, उनका शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता।

बालकों के बौद्धिक विकास में उसमें कई गुना अधिक सूझ-बूझ, सावधानी और सतर्कता बरतनी पड़ती है। बच्चे को प्रौढ़ मस्तिष्क मानकर चाहे कुछ भी देखने-पढ़ने की भूल न केवल उस बच्चे के लिए अपितु परिवार और समाज सभी के लिए अहितकर हो सकती है। पिछले दिनों चौदह वर्ष, तेरह वर्ष के दो बालकों ने अलीगढ़ में एक वृद्धा की हत्या कर दी। पुलिस जाँच से ज्ञात हुआ कि इन बच्चों को यह प्रेरणा उन दिनों नगर में चल रही एक फिल्म से मिली। इसी तरह त्रिचिरापल्ली में एक ९ वर्ष के बालक ने एक बैंक के खजान्ची को लूट लिया यह किस्सा भी बड़ा दिलचस्प है। बालक एक दुकान से दो-तीन कप चाय लेकर बैंक में घुसा और कर्मचारियों को चाय बाँटता हुआ कैशियर बाक्स में घुस गया। लोगों ने समझा चाय मैनेजर ने भिजवाई होगी, छोटे बच्चे पर सन्देह का कारण भी क्या हो सकता था ? खजान्ची महोदय उधर चाय की चुस्कियाँ लेने लगे उधर बच्चे ने सौ रुपयों की एक सौ नोटों की गड्डी चुरा ली और चुपचाप भाग आया। बहुत देर बाद पता चला तब बड़ी कठिनाई से बच्चे को पकड़ा जा सका। उसने बताया यह तरकीब उसने एक जासूसी कहानी में पढ़ी थी।

बढ़ते हुए बाल अपराध इस बात के साक्षी हैं कि हम साक्षरता के विकास में तो जुटे हैं पर बच्चे के संस्कारों की ओर अपनी अभिरुचि या तो शून्य है या प्रगतिशीलता और आधुनिक सभ्यता के नाम पर जान-बूझकर हम उसे गलत दिशा में ले जा रहे हैं।

बच्चे का, जिस तरह शरीर विकासशील होता है उसी तरह मस्तिष्क भी, अतएव इस आयु में उसकी जिज्ञासाएँ जितनी तीक्ष्ण होती हैं, उतनी शेष किसी भी अवस्था में नहीं होतीं। स्पष्ट है कि यदि अभिभावक उसकी इन जिज्ञासाओं का समाधान या उन्हें रचनात्मक मोड़ नहीं दे सकते तो भी बच्चे इस तरह के साहित्य के प्रति तीव्र लगाव से बँध सकते हैं, जिनमें घुमाव और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनोरंजन तो बेहद होता है, पर आज की परिस्थितियों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। स्पष्टतः वह बालक की किन्हीं समस्याओं का समाधान न अब कर सकता है और न आगे चलकर। उदाहरण के लिए, राजा-रानियों की कहानियाँ जिनमें या तो शृंगार और विलास होगा या फिर मारकाट, लूट-पाट मचाने वाली तथाकथित बहादुरी होगी। यह साहित्य बच्चे में ऐसी ऊँची कल्पनाएँ पैदा करेगा जिसके धरती पर टिकने के लिए न तो पैर होंगे, न चन्द्रमा को पकड़ लेने जितने लम्बे हाथ। महल और राजकुमारियाँ फिर मिलें कहाँ से ? इस तरह की महत्त्वाकांक्षा से आज हर युवक ग्रस्त दीखता है, पर कितने लोग जानते हैं कि यह संस्कार उन्हें कथा, कहानियों के नाम पर इन्हीं राजा-रानियों, सामन्तों, सरदारों तथा बड़े साहूकारों ने दिये हैं, जिन्हें वह पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ता आया है।

बच्चे की बुद्धि कोमल होती है वे निबन्ध नहीं पढ़ सकते, पर किसी भी कथा, कहानी या गीत की संवेदना और प्रेरणा को ग्रहण करना उनके लिए आसान होता है। अतएव कहानियों का स्वरूप ऐसा हो, जो उन्हें व्यावहारिक जीवन में उपयोगी निष्कर्ष निकालने की क्षमता भी प्रदान करें और अपने आपको उस रूप में ढालने की हिम्मत भी पैदा करें।

उदाहरण के लिए, उन बालकों की कहानियाँ जो भाग्य को अपने परिश्रम, पुरुषार्थ के आधीन मानते हैं और अपने पैरों पर खड़े होना अपनी शान समझते हैं, उन बालकों के जो साहस, कर्त्तव्यनिष्ठा और ईमानदारी के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। बालकों में आशा, विश्वास, परिश्रमशीलता उद्यम, स्वच्छता, देशभक्ति, चरित्रनिष्ठा के भाव जाग्रत करने वाली हल्की-फुल्की रचनाएँ, गीत, नाटक आदि अधिक उपयोगी होते हैं। चित्र, प्रेरणाप्रद वाक्य और कार्टून चित्रों में भी यह ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि उनका उद्देश्य मात्र बच्चों का मनोरंजन पूरा करना या जानकारी भर देना न हो अपितु उससे किसी न किसी निर्माण की प्रेरणा उभरती हो।

इस दृष्टि से चरित्र प्रधान पौराणिक कथाएँ और नीतिपरक कहानियों का भी अपना महत्त्व है। यह उल्लेखनीय बात है कि पंचतन्त्र के रचयिता श्री विष्णु शर्मा उन कहानियों के माध्यम से ही चार आवारा राजकुमारों में मनुष्योचित गुणों के विकास और सम्वर्द्धन में सफल हुए थे। आध्यात्मिकता, धार्मिकता और आस्तिकता को आज प्रौढ़ विज्ञान के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। अतएव इस तरह के संस्कारों को उपेक्षित न किया जाय। इनका चरित्र गठन और नैतिकता से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। समाज के लोग बदल सकते हैं, पर यह आवश्यकताएँ हर युग में एक-सी बनी रहती हैं। अतएव अतिरंजित और अकल्पित, अनगढ़ कहानियों को, इतिहास को तो छोड़ा जाये पर उपयोगी अंश की उपेक्षा न की जाये। सामयिक परिस्थितियों में पौराणिक नीति कथाओं को संशोधित करने की शैली भी उपयुक्त हो सकती है।

जीवन-चरित्र और संस्मरण भी एक तरह की कहानियाँ ही होती हैं। यदि उनमें गुणों को उभारा और परिस्थितियों को बालक की स्थिति के अनुरूप अभिव्यक्त किया जा सके तो इस तरह का साहित्य उनके लिए कहीं अधिक सार्थक हो सकता है। साहित्यकार इसे दृष्टि में रखकर सृजन करें और अभिभावक तथा अध्यापक इसके अनुरूप बालकों को साहित्य उपलब्ध करायें तो बच्चों का मानसिक स्वास्थ्य न केवल सुधारा अपितु उसे सुडौल, सुरुचिपूर्ण और सार्थक बनाया जा सकता है।

बच्चों को क्यों और कैसी पुस्तकें पढ़ाएँ ?

अन्न को शरीर का आहार कहा गया है तो साहित्य को मस्तिष्क का। जिन व्यक्तियों ने भी उल्लेखनीय बौद्धिक क्षमताएँ अर्जित कीं और समाज को अपने विशिष्ट अनुदान दिये उन्होंने किसी न किसी रूप में साहित्य को ही अपनाया और उसी से अपनी प्रतिभा, क्षमता तथा सामर्थ्य को सींचा। जानकारियाँ बढ़ाने, ज्ञानवृद्धि करने और बुद्धि को प्रखर बनाने के अतिरिक्त साहित्य का एक उद्देश्य व्यक्तित्व को परिमार्जित करना भी है। इस दृष्टि से उपरोक्त सभी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए बच्चों के लिए भी साहित्य अनिवार्य रूप से उपयोगी और आवश्यक है। एक अर्थ में उनके उभरते हुए व्यक्तित्व के लिए तो बड़ों से भी ज्यादा इसकी आवश्यकता है। परन्तु खेद है कि बच्चों को इस ओर से निरुत्साहित ही किया जाता है।

अभिभावकों को चाहिए कि इस तरह पाठ्यक्रमेत्तर पुस्तकें पढ़ने से रोकने के स्थान पर उनका मार्गदर्शन करें तथा उन्हें सही पुस्तकों के चुनाव में मदद करें। अभिभावकों से कोई मदद न मिलने के कारण ही बच्चे ऊल-जलूल ढंग की अच्छी-बुरी पुस्तकें पढ़ डालते हैं और उनसे गलत-सलत प्रेरणाएँ लेते रहते हैं।

बच्चों को अच्छी पुस्तकों के चुनाव में किस प्रकार मदद की जाय इससे पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि बच्चों को कैसी पुस्तकें पढ़ना पसन्द है। बच्चों को स्वाभाविक रूप से कहानियों, कविताओं वाली रंग-बिरंगी पुस्तकें आकर्षित करती हैं। कहानी विद्या वैसे भी लोकप्रिय है और बड़े व्यक्तियों को गम्भीर विचार प्रधान साहित्य की अपेक्षा कहानियाँ अधिक रुचिकर लगती हैं। गम्भीर साहित्य जितना पढ़ा जाता है, उससे अधिक कथा साहित्य लोकप्रिय है, क्योंकि उनमें गम्भीर से गम्भीर और गूढ़ से गूढ़ बातों को घटनाक्रम के माध्यम से बड़ी सरलता के साथ प्रस्तुत कर दिया जाता है। प्रतिपादित विषय को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझने के लिए उसमें न ज्यादा दिमाग लड़ाने की आवश्यकता रहती है और न ही मन को सब ओर से खींचकर वहीं केन्द्रित कर देने की।

यद्यपि गम्भीर साहित्य का अपना महत्त्व है, पर कहने का आशय यह है कि बड़े लोग भी उसे आसानी से न समझ पाने के कारण बहुत कम पढ़ते हैं तो बच्चों की तो बात ही और है। उनकी समझ का न इतना विकास होता है कि वह किसी प्रतिपादन को सैद्धान्तिक विवेचन के माध्यम से समझ सकें और न ही उनके बाल-सुलभ चपल मस्तिष्क के लिए एकदम इस गरिष्ठ भाजन का पचा पाना सम्भव ही है।

बच्चों का स्वभाव एक तो कौतूहलप्रिय होता है। इससे घटनाओं के माध्यम से कोई तथ्य वे भली-भाँति समझ भी लेते हैं और दूसरे उनका चपल स्वभाव घटनाक्रम से बँधकर एकाग्रता की दिशा में भी अग्रसर होता रहता है। इन दोनों तथ्यों को कुछ उदाहरणों से भली-भाँति समझा जा सकता है। बच्चों को सैद्धान्तिक आधार पर श्रम का महत्त्व, उसके लाभ तथा जीवन में प्रगति के लिए उसकी आवश्यकता समझायी जाय तो वे सरलतापूर्वक शायद ही समझ सकें। इसके विपरीत उन्हें किसी एक व्यक्ति की कहानी सुनाई जाय जिसमें घटनाओं का तारतम्य बना हुआ हो और जिसमें पग-पग पर श्रम से मिलने वाली सफलताओं का चित्रांकन घटनाओं के माध्यम से ही प्रस्तुत किया गया हो, तो बच्चे श्रम की महत्ता को आसानी से समझ सकते हैं।

कहानी एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा मन्द से मन्द बुद्धि बालक को भी शिक्षित और संस्कारित किया जा सकता है। पंचतन्त्र के रचयिता विष्णु शर्मा को जिन राजकुमारों की शिक्षा के लिए नियुक्त किया गया था। वे सबके सब नितान्त मन्दबुद्धि और मूढ़मति थे। विष्णु शर्मा ने कहानियाँ सुना-सुनाकर ही उन्हें राजनीति और व्यावहारिक जीवन में सफल होने लायक सभी गुण सिखा दिये। समझदार व्यक्तियों को भी कहानियाँ रुचिकर लगती हैं और नासमझ बच्चों को भी उनमें रस आता है। इसलिए बच्चों को कहानियों की ऐसी पुस्तकें चुन-चुनकर पढ़ने के लिए देना चाहिए, जिनसे उनका मनोरंजन तो हो ही उनमें सद्गुणों के प्रति आस्था भी जागे तथा व्यावहारिक जीवन में सफल होने की दिशा भी प्राप्त हो।

बाल कथा साहित्य के रूप में आजकल जो कुछ भी बाजार में मिलता है। उसमें से अधिकांश तो बच्चों को भ्रामक दिशा ही देता है। साहित्य के क्षेत्र में घुस पड़ी ओछी व्यावहारिक मनोवृत्ति के कारण जिस स्तर का साहित्य प्रकाशित हो रहा है और बिक रहा है, वही अनर्थकारी विपर्यय बाल साहित्य पर भी लागू होता है बच्चों के लिए जितनी भी पुस्तकें देखने में आती हैं उनमें से अधिकांश जासूसी कहानियाँ, परियों की कथाएँ, जिन भूतों और राजा-महाराजाओं की सनकों पर आधारित कहानियाँ तथा बच्चों को रोमांचित करने के लिए ऊल-जलूल प्लाटों पर आधारित उपन्यास, कहानियाँ होती हैं। इस तरह के साहित्य से बच्चे कोई भी दिशा या प्रेरणा ग्रहण करने के स्थान पर अन्धविश्वास तथा पलायनवादी मान्यताएँ ही ग्रहण करते हैं। इनसे बच्चों में अच्छे संस्कार विकसित होने के स्थान पर बुरे संस्कार ही अधिक पड़ते हैं।

प्रकाशकों का उद्देश्य मात्र अपनी पुस्तकें बेचना होता है। उन्हें इस बात से कोई सरोकार नहीं होता कि उन पुस्तकों का बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ता है ? प्रकाशकों के इस गैर-जिम्मेदार रवैये में सुधार की बात दूर की है। यदि अभिभावक स्वयं इस बात का ध्यान रखें कि बच्चों को स्तरीय पुस्तकें पढ़ने को मिलें तो उस तरह साहित्य के खतरों से बचा जा सकता है। जैसा कि कहा जा चुका है, सामान्यतः अभिभावक अपने बच्चों को अन्य पुस्तकें पढ़ने से ही रोक देते हैं। वैसी स्थिति में बच्चे चोरी-छुपे पढ़ने लगते हैं और प्रायः पाठ्य-पुस्तकों की भी उपेक्षा करने लगते हैं। यदि इस सम्बन्ध में बच्चों का मार्गदर्शन किया जाय तो उन्हें अपने विद्यार्थी जीवन के प्रति जिम्मेदार बनाया जा सकता है और अच्छे साहित्य के माध्यम से उन्हें एक सुनिश्चित दिशा में अग्रसर भी किया जा सकता है बच्चों के लिए पुस्तकों का चुनाव करते समय अभिभावकों को यह दृष्टि बनाये रखनी चाहिए।

अच्छी पुस्तकों का अभाव तो बच्चों के लिए सार्थक और सोद्देश्य अध्ययन में बाधक है ही अभिभावकों की आर्थिक स्थिति भी बच्चों को पढ़ने से रोकने का कारण होती है। आज के आर्थिक विषमताओं के युग में प्रायः हर अभिभावक के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह अपने बच्चों के लिए पर्याप्त मात्रा में पुस्तकें खरीद सकें। जो खरीद सकते हैं उन्हें तो खरीदना ही चाहिए परन्तु जिनके लिए पर्याप्त मात्रा में पुस्तकें खरीदना सम्भव नहीं है, उन्हें सामूहिक रूप से व्यवस्था करनी चाहिए।

अमेरिका में इस तरह का एक प्रयोग सन् १९३७ में किया गया। कुछ अभिभावकों ने मिलकर थोड़े-थोड़े पैसे इकट्ठे किये और उनसे बच्चों के लिए अच्छी पुस्तकें खरीदकर एक पुस्तकालय की स्थापना की। इस पुस्तकालय के सदस्य अभिभावक नियमित रूप से पुस्तकालय के लिए थोड़ी-थोड़ी रकम निकालते रहते हैं और उसका लाभ सभी के बच्चों को मिल जाता है। यह पुस्तकालय विशुद्ध रूप से बच्चों के लिए ही खोला गया।

बच्चों के लिए अलग से पुस्तकालय खोलने के अतिरिक्त सार्वजनिक पुस्तकालयों में भी बाल-साहित्य रखा जा सकता है। ऐसे पुस्तकालयों में बच्चों के लिए एक कोना सुरक्षित कर दिया जाय, जहाँ उनके बैठने के लिए उनके उपयुक्त कुर्सी टेबल हो और वे वहाँ आराम से बैठकर पढ़ सकें। इस प्रकार व्यक्तिगत या सामूहिक जैसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी सम्भव हो बच्चों की इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए प्रयास किये जाने चाहिए।

बच्चों के लिए यदि अच्छा साहित्य उपलब्ध कराया जाय और उनमें पढ़ने की आदत डाली जाय तो वैसी बहुत-सी उद्दण्डताएँ जिन्हें वह खाली समय का कोई उपयोग न सूझ पाने के कारण करता है—अपने आप कम होने लगती हैं। कहा जा चुका है कि बच्चों का स्वभाव कौतुकप्रिय होता है। नई-नई बातें देखने, नये काम करने और नई-नई बातों की जानकारी प्राप्त करने के लिए वह अपने ढंग से अपनी समझ-सामर्थ्य से प्रयास करते हैं। उनकी समझ तो विकसित होती नहीं, इसलिए वे प्रयास भी ऊटपटाँग हो जाते हैं और नाम उसे उद्दण्डता का मिल जाता है।

पढ़ने की आदत-स्वस्थ और दिशा देने वाले बाल-साहित्य में बच्चों की रुचि उत्पन्न करना, उनके लिए नई-नई बातों की जानकारी देने के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व को भी संस्कारित करने में उपयोगी सिद्ध हो सकता है। उनके लिए कहानियों की पुस्तकों के अतिरिक्त विभिन्न विषयों की सरल भाषा में जानकारी देने वाली सचित्र पुस्तकें उपलब्ध करायी जानी चाहिए। यह बात सही है कि बाल-साहित्य के नाम पर बाजारू साहित्य से ही दुकानें भरी पड़ी हैं। परन्तु अच्छी पुस्तकों का भी अभाव नहीं है। बाजार में जिस ब्राण्ड का चलन अधिक होता है, वह ब्राण्ड बाजार में छा जाता है और दूसरे अन्य ब्राण्ड छुप जाते हैं। वही बात प्रचलित साहित्य के बारे में भी लागू होती है। यदि इसकी उपेक्षा कर अच्छे बाल-साहित्य को अपनाया जाय तो उसकी भी कमी नहीं रहेगी। आवश्यकता इतनी भर है कि बच्चों के लिए इसकी उपयोगिता अनुभव की जाय और इस आवश्यकता को पूरा करने के प्रयास किये जाएँ।

अपनी और बच्चों की मानसिक भूख का भी ध्यान रखें

पिछले दिनों केन्द्रीय शिक्षा एवं समाज-कल्याण मन्त्रालय के तत्वावधान में इस बात का सर्वेक्षण किया गया कि भारत में प्राथमिक पाठशालाओं के बच्चे अपनी पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त और क्या तथा कितना पढ़ते हैं ? पता चला है कि प्रत्येक प्राथमिक छात्र साल भर में मुश्किल से एक किताब पाठ्यक्रम से बाहर की पढ़ता है, वह भी संयोगवश जो मिल गई, वही। जबकि विकसित देशों में बच्चों की स्पष्ट रुचियाँ विकसित की जाती हैं और प्राथमिक कथाओं का प्रत्येक बच्चा छह-सात पाठ्यक्रमेत्तर पुस्तकें प्रतिवर्ष पढ़ता है। वहाँ पाँच से ग्यारह वर्ष के आयु समूह के बच्चों के लिए अत्यन्त आकर्षक पुस्तकें तैयार की जाती हैं और बाल-साहित्य तैयार करने वालों के प्रशिक्षण की भी वहाँ उत्तम व्यवस्थाएँ रहती हैं। भारत में बाल-साहित्य बहुत कम रचा जाता है, उसमें भी अच्छे स्तर का तो बहुत ही थोड़ा होता है। अधिकांश विदेशी साहित्य की भौंडी और भद्दी नकल होती है।

स्वाध्याय की प्रवृत्ति जब बचपन से ही डाली जाती है, तभी वह स्वभाव का अंग बनती है। इसीलिए इस दिशा में प्रारम्भ से ही ध्यान दिया जाना जरूरी है।

जिस प्रकार पौष्टिक भोजन के अभाव में शरीर कृश हो जाता है, उसी प्रकार उत्तम पुस्तक रूपी पौष्टिक आहार न मिलने से मानसिक शक्तियों का विकास नहीं हो पाता।

पुस्तकें मनुष्य की न केवल मानसिक शक्तियों को विकसित करती हैं, अपितु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र, दुःख-सुख में मित्र-सा साथी व मार्गदर्शक बनती हैं। पुस्तकों के सहारे ही व्यक्ति घर बैठे संसार में होने वाले क्रिया-कलापों की जानकारी प्राप्त कर सकता है। देश-विदेश की साहित्यिक कृतियों का रसास्वादन कर सकता है। सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय से सद्गुणों का विकास होता है। इसीलिए स्वाध्याय की प्रवृत्ति का तथा पुस्तकों के सम्बन्ध में सुरुचि-सम्पन्नता का विकास बचपन से ही करने के प्रयत्न जरूरी हैं। साहित्य के द्वारा ही मनुष्य में वैचारिक क्षमता विकसित होती है। इसके लिए बच्चों तथा बड़ों सभी में, श्रेष्ठ साहित्य के प्रति आकर्षण तथा समाज में वैसे साहित्य की पर्याप्त मात्रा में उपलब्धि की उभयपक्षीय व्यवस्थाएँ विनिर्मित की जानी चाहिए। विचारों को उन्नत बनाने वाला साहित्य उपलब्ध रहे और उसके प्रति रुचि जाग्रत रहे, तो प्रगति की यात्रा सुनिश्चित है।

पतनकारी साहित्य से व्यक्ति और राष्ट्र की शक्ति नष्ट होती है। आज इस बात के प्रमाण चारों तरफ फैले दिखाई दे रहे हैं। विलासिता, कामुकता और अनाचार फैलाने वाले साहित्य की जो बाढ़ आई हुई है, उससे सामाजिक सामर्थ्यों का कितना विनाश हो रहा है यह किसी से छिपा नहीं है, लोगों का चरित्र इतनी तेजी से गिरता जा रहा है कि विचारवान लोगों के हृदय इस आशंका से काँपने लगे हैं कि कहीं सामाजिक विद्रोह की ज्वाला न भड़क उठे। आज का अश्लील साहित्य भी बहुत कुछ इसके लिए जिम्मेदार है। ऐसे साहित्य से जितना ही बच सकें उतना ही अपना परम सौभाग्य समझना चाहिए।

सत्साहित्य से सद्विचार ग्रहण करते रहने की परम्परा चल पड़े तो मानसिक उत्थान होता रहेगा और दुर्गुणों से बचते रहेंगे। आज के युग में जबकि सन्तजनों और सहृदय पुरुषों का नितान्त अभाव है—प्रेरणाप्रद विचार प्राप्त करने के लिए साहित्य का ही आश्रय लेना पड़ेगा किन्तु यह ध्यान बना रहे कि साहित्य वही उपयोगी हो सकता है जो हमें ऊँचा उठा सके। हमारे अन्तःकरण में प्रकाश उत्पन्न कर सके। जहाँ कोई अन्य साधन न हों वहाँ नियमित रूप से सद्ग्रन्थों, आत्मनिर्माण करने वाली

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुस्तकों का स्वाध्याय करते रहना चाहिए। इससे भी मन बुरे विचारों से बचा रहता है और सद्भावनाएँ उत्पन्न होती हैं।

साहित्य की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए विद्वान सिसरो ने लिखा है—"साहित्य का अध्ययन युवकों का पालन-पोषण करता है, वृद्धों का मनोरंजन करता है, उन्नति का द्वार खोलता है, विपत्ति में धैर्य बँधाता है, घर में प्रमुदित रखना और बाहर विनीत रखना साहित्य का ही काम है।"

उस सारे वाङ्मय को ऐसे साहित्य की श्रेणी में ले लेते हैं जिससे अर्धबोध के साथ भावनाओं का परिष्कार भी होता हो और प्रत्येक तथ्य की समीक्षात्मक व्याख्या भी होती हो। केवल गूढ़ शब्दों को रट लेना मात्र पर्याप्त नहीं है। पढ़ना और उसे समझना, समझकर उसके सत्यासत्य पर विचार करना तथा जीवनशोधक व्यावहारिकता का अनुसरण करना—इतना कर सकें तो यह समझें कि साहित्य की आवश्यकता को हमने समझ लिया है। रामायण पढ़ने का लाभ तब है; जब हम भी राम, भरत या लक्ष्मण के सदृश बनने का प्रयत्न करें और रामायण का महत्त्व इसलिए है कि उससे आन्तरिक मलिनताओं पर द्वन्द्व उत्पन्न होता है और सदाचार की प्रेरणा मिलती है। इस तरह का तालमेल यदि बन सके तो विचार दृष्टि से शक्तिशाली बनने में कोई कठिनाई न रहेगी।

बुरे संयोग से बचने के लिए और अपनी महानता जगाने के लिए विचारवान बनना जरूरी है। इसके लिए दूसरे साधनों की उतनी आवश्यकता नहीं है जितना कि ज्ञान-साधना की जरूरत है। इस जरूरत को पूरा करना है तो साहित्य की शरण लेनी ही पड़ेगी। ऐसा साहित्य खोजना पड़ेगा जिससे ज्ञान-संवर्द्धन हो और आत्मा का परिष्कार हो। साहित्य शक्ति का उद्रेक है। साहित्य के द्वारा बच्चों की प्रतिभा जगाने का कार्य अविलम्ब शुरू कर देना चाहिए। हर घर में न सही, पर हर गाँव में पाठशाला की ही तरह अच्छे पुस्तकालय की भी व्यवस्था होनी चाहिए। बहुसंख्यक पुस्तकों वाले पुस्तकालय नहीं, थोड़ी चुनी हुई, अध्यात्म और सुव्यस्थित जीवन की प्रखर प्रेरणा देने वाली पुस्तकों से सम्पन्न पुस्तकालय इस समस्या को हल कर सकते हैं, ऐसा हम मानते हैं।

नालन्दा और तक्षशिला के विशाल पुस्तकालय पुस्तकों की संख्या के लिए ही नहीं विख्यात थे, वरन् उनमें ऊर्ध्वगामी जीवन की दिशाएँ देने वाले साहित्य का बाहुल्य था। जो कहीं नहीं मिलता था, उसे ढूँढ़ने के लिए चीन, जापान, जर्मन और अमेरिका तक से यहाँ आते थे।

अब हमें ऐसे पुस्तकालयों की रचना गाँव-गाँव करनी पड़ेगी, जो आकार में भले ही छोटे हों पर गाँव वाले उसमें रखी हुई पुस्तकों में अपने व्यावहारिक, आध्यात्मिक और तात्विक जीवन के समाधान ढूँढ़ने आयें और मानसिक उत्तेजना नहीं सुस्पष्ट कल्पना लेकर लौटें कि हमारा आहार इस तरह का होना चाहिए, हमारी वेष-भूषा, बोल-चाल, रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा, दिनचर्या और जीवनचर्या इस तरह होनी चाहिए, जिसमें आर्ष संस्कृति के अनुरूप तेजस्विता, शक्ति और वर्चस्व का विकास किया जा सके।

इन पुस्तकालयों में मनुष्य को आकांक्षाओं और जिज्ञासाओं को लौकिक व्यवस्था के साथ पारलौकिक लक्ष्य की ओर अग्रसर करने वाला साहित्य उपलब्ध कराया जा सके तो इस देश को धर्म और संस्कृति के पूर्व ढाँचे पर ढालना सम्भव हो जायेगा।

युग निर्माण योजना के अन्तर्गत ऐसे पुस्तकालयों की व्यवस्था-व्याख्या की गई है। उसके आधार पर गाँव-गाँव छोटे-छोटे पुस्तकालय स्थापित होने चाहिए, जो मनुष्यों के विचार, जीवन और क्रिया-कलापों को ऊँचा उठाने में सहायक हों। ऐसी पुस्तकें भी यहाँ भारी मात्रा में तैयार की गई हैं, की जा रही हैं। अन्यत्र भी यह प्रयत्न हो रहे हैं, उन सबको इकट्ठा कर गाँव-गाँव सच्चे देवालय के रूप में पुस्तकालय खुलें। तभी अपनी स्वयं की और भावी पीढ़ी की मानसिक क्षुधा तृप्त हो सकेगी और मानसिक पोषण के द्वारा व्यक्तित्व विकास होता रह सकेगा। विकसित व्यक्तित्व ही प्रगति में समर्थ होता है।

केवल पुस्तकीय-शिक्षा ही नहीं, बच्चों को अनुभवीय ज्ञान भी दीजिए

बालक की पुस्तकीय-शिक्षा को ही सम्पूर्ण शिक्षा मान बैठते हैं। बच्चा स्कूल जाता है और घर पर थोड़ा-बहुत निर्देश के अनुसार पढ़ लेता है तो समझ लिया जाता है कि बालक की शिक्षा हो रही है किन्तु पुस्तकीय-शिक्षा का वृत्त बहुत छोटा होता है। इस शिक्षा से बालक का जो मानसिक एवं व्यावहारिक विकास होना चाहिए, वह नहीं हो पाता। वैसे पुस्तकीय-शिक्षा से मानसिक विकास तो हो जाता है, लेकिन उसमें व्यावहारिक उपयोग की कला उसे समझ में नहीं आती है। ऐसा लगता है—उसके पास पुस्तक का ज्ञान सब कुछ है, पर आस-पास के ज्ञान से वह अनभिज्ञ है। अस्तु, व्यावहारिक ज्ञान देने के लिए, परिवारों में प्रयत्न किये जाने चाहिए।

वैसे व्यावहारिक ज्ञान देने के लिए विद्यालय में अनेक गतिविधियाँ होती हैं। उन पाठ्येत्तर गतिविधियों के द्वारा बालक व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करता रहता है। खेल-कूद, सांस्कृतिक, साहित्य, पर्यटन, प्रकृति-निरीक्षण सम्बन्धी अनेक गतिविधियाँ बालकों में व्यावहारिक कौशल लाती हैं, पर स्कूल में जो बात पुस्तकीय-शिक्षा के लिए लागू होती है, वह व्यावहारिक ज्ञान के लिए भी लागू होगी। विद्यालय के अध्यापक छात्रों के प्रति व्यक्तिगत ध्यान नहीं दे पाते हैं। इस कारण अनेक झिझक वाले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छात्र इन गतिविधियों में भाग नहीं ले पाते। ऐसे बच्चे व्यावहारिक-धरातल पर शून्य बने रहते हैं, चाहे वे पुस्तकीय-ज्ञान में कितने ही कुशाग्र क्यों न हों ?

एक विद्यालय के अतिरिक्त एक और एजेन्सी है, जहाँ बालक को ज्ञान मिलता रहता है। वह एजेन्सी है—बालक का घर। परिवार के अभिभावक पर भी बालक के व्यावहारिक ज्ञान का उत्तरदायित्व रहता है, क्योंकि घर पर बालक पर व्यक्तिगत ध्यान देते हुए, व्यावहारिक ज्ञान दिया जाना सम्भव है। यह अनुकरणीय शिक्षा घर पर बच्चे की कम आयु से ही प्रारम्भ कर देनी चाहिए। इस शिक्षा के लिए घर का कोई परिजन अपना समय निकाल सकता है, इसलिए सृष्टि की खुली पुस्तक सामने रहती है। केवल उसे पढ़ाने के लिए अभिभावकों के पास कुछ समय होना चाहिए।

अभिभावक अपने बच्चों को बाजार, सभा, मेलों, उत्सवों आदि के अवसर पर अपने साथ ले जावें। वहाँ जिन-जिन दृश्यों, वस्तुओं और बातों के बारे में बालक जिज्ञासा प्रकट करें, उनका समझाने के साथ ही समाधान भी किया जाना चाहिए। यदि कहीं बात बच्चे की निगाह की पकड़ में न आ पाई हो, पर आप समझते हैं कि इसका अनुभव देना बालक के लिए उपयोगी है, ऐसे ज्ञान को आप अपनी ओर से बच्चे को दे दीजिए। ऐसे अवसरों पर वस्तु के भाव तथा वस्तुओं के उपयोग के बारे में सामान्य ज्ञान देवें। ऐसे समूह में परस्पर सामान्य व्यवहार कैसे किया जाता है, उसे भी बालकों को समझाते रहना चाहिए। जैसे भीड़ में बायीं ओर से चलना, प्रतीक्षा करते हुए आगे बढ़ना, व्यर्थ की धक्का-धूम न करना आदि का अनुभव दिया जा सकता है।

अभिभावक के पास शाम को घूमने का समय तो होता ही है। वह उसका उपयोग घूमने के साथ-साथ बच्चों को व्यावहारिक ज्ञान देने के लिए भी कर सकता है। बच्चों को साथ ले जाकर प्रकृति के दृश्यों, पक्षियों, वनस्पतियों, पशुओं आदि के बारे में बतलावें। इनके सामान्य उपयोग भी बतलाये जा सकते हैं। प्रकृति के खुले वातावरण में विस्तृत आकाश भी फैला रहता है। वहाँ के सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह आदि के बारे में भी सामान्य परिचय दिया जाना चाहिए। इस प्रकार बालक कुछ बातें पुस्तक में पढ़ लेता है, उनका प्रत्यक्ष साक्षात्कार प्रकृति के प्रांगण में कर लेता है और उनके सम्बन्धी व्यावहारिक जानकारी भी प्राप्त कर लेता है। पुस्तकीय और व्यावहारिक ज्ञान का समन्वय हो जाने से बालक का ज्ञान बढ़ने के साथ-साथ बालक की परिपक्वता भी बढ़ती है।

एक बुद्धिमान अभिभावक ने अपने बच्चों के लिए एक व्यावहारिक विधि अपनाई। उन्होंने अपने बच्चों को अकेले में प्रकृति की खुली पुस्तक को पढ़ने भेजा, जो उनके लिए अपरिचित है। बच्चे घूमघाम कर जब लौटते हैं, तो उस अपरिचित स्थल के बारे में प्रश्न पूछा। बच्चे कुछ जानकारी दे पाते, परन्तु जितनी जानकारी की अपेक्षा वे रखते हैं, उतनी नहीं मिल पाती है। अस्तु, वे पुनः निर्देश दे करके उसी मार्ग पर बच्चों को भेजते हैं। बच्चे निर्देशानुसार प्रकृति को पढ़कर लौटते हैं। इस बार वे जानकारी सम्बन्धी सन्तोषजनक उत्तर देते हैं। इस प्रकार केवल प्रकृति की ओर ही नहीं, कभी अपरिचित बाजार में, कभी अपरिचित मार्ग पर, कभी अपरिचित दर्शनीय स्थल पर भेजकर वे अपने बच्चों का व्यावहारिक ज्ञान बच्चों के प्रयत्न द्वारा ही बढ़ा सकते हैं। परिणाम हुआ बच्चों के व्यावहारिक ज्ञान का भण्डार बढ़ने लगा। जो उनके भावी जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

इस प्रकार कुशल और बुद्धिमान अभिभावक अपने बच्चों को अनुभवीय ज्ञान देने के लिए विभिन्न प्रयोग करते रहें तो बच्चे के लिए घर एक व्यावहारिक पाठशाला माना गया है। जहाँ शिक्षण भी होता है और प्रयोग भी होते हैं। जहाँ बालकों को इस प्रकार का अनुभवीय ज्ञान मिलता रहता है, वहाँ के बालक बाद में जाकर कुशल और अनुभवी नागरिक बनते हैं। उनमें हर समस्या की गहराई में उतरकर समझने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है, वे उन समस्याओं का हल भी सावधानी से निकालने में समर्थ हो जाते हैं।

अनुभवीय शिक्षा बच्चों के जीवन में सफलता के द्वार खोल देती है। इससे बच्चों में हर क्षेत्र में सावधान रहने की आदत बन जाती है, जिज्ञासु वृत्ति के द्वारा हर वस्तु को अच्छी तरह देखने की वृत्ति बन जाती है तथा हर बात को समझने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, नदी, पर्वत, आकाश, प्रकृति के दृश्य आदि में मौन-शिक्षण का भण्डार भरा रहता है। इस मौन-शिक्षण तक ले जाने वाला अभिभावक हर क्षण बालक के लिए तत्पर रहें। जो बालक प्रकृति के विविध अंगों को व्यावहारिक दृष्टि से आत्मसात् कर लेता है तो विद्वत्ता के साथ-साथ यथार्थ ज्ञान का भी अनुभवी बन जाता है। इसके फलस्वरूप बालक के स्वभाव में प्रखरता आ जाती है, उसकी मनोशक्ति विकसित हो जाती है, उसकी आत्मा देदीप्यमान हो जाती है और हर सोपान पर सफलता उसके चरण चूमने लगती है। व्यावहारिक ज्ञान बालक के जीवन-रस को हितकारी बना देता है।

यह भी तो है कि शिक्षा का अर्थ मात्र पुस्तकीय-ज्ञान नहीं है या परीक्षा पास करके उपाधिकारी बन जाना नहीं है। यों पुस्तकीय-ज्ञान के लिए स्वाध्याय करना जीवन के लिए आवश्यक है। परीक्षा उत्तीर्ण भी करनी चाहिए, पर यही पर्याप्त नहीं है। यदि इस ज्ञान के साथ अनुभवीय-ज्ञान का योग हो जाता है तो ज्ञान के दोनों पक्ष—सैद्धान्तिक और व्यावहारिक समन्वित होकर जीवन को प्रशस्त बना देते हैं। जो बालक ब्रह्माण्डरूपी विश्वविद्यालय का अध्ययन सूक्ष्मदर्शिता के साथ नहीं कर पाता है, तो उसकी विद्यालयीन शिक्षा अधूरी-अधूरी ही रहेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षा के साथ संस्कारों की अनिवार्य आवश्यकता

मनोवैज्ञानिक बैंजामिन ब्लूम के अनुसार एक प्रौढ़ व्यक्ति में जितनी बुद्धि होती है, उसका ५० प्रतिशत भाग चार वर्ष की उम्र तक और इसके बाद का ३० प्रतिशत भाग आठ वर्ष की उम्र तक विकसित हो जाता है। डा. फलेचा के अनुसार बच्चा जीवन के प्रारम्भिक ५ वर्षों में जो कुछ बन जाता है, अधिकांशतः वैसा ही बना रहता है।

इन मान्यताओं से यह निश्चित है कि भावी जीवन के लिए बालकों को प्रारम्भ से ही छोटी-छोटी बातों की शिक्षा व्यवहार-बर्ताव के माध्यम से देनी चाहिए। उनके सूक्ष्म गुणों के विकास के लिए माता-पिता और परिवार के अन्य सदस्यों को स्वयं के कार्यों में आदर्श प्रस्तुत करना अच्छा होता है। घर की स्वच्छता और सजावट से लेकर सुरुचिपूर्ण वातावरण बनाये रखने तक ध्यान देना शुरू करें। परस्पर आदर-सम्मान, स्नेह, प्यार और प्रसन्नता का व्यवहार करते रहें।

अनेक माता-पिता बच्चों को उनके प्रत्येक भले-बुरे कार्यों के लिए डाँटते रहते हैं। छोटी-सी भूल के लिए बड़ी-बड़ी सजाएँ देते हैं। ऐसा करना कदापि उचित नहीं होता। बच्चा बड़े भावुक होने के कारण उन पर इसका खराब प्रभाव पड़ता है। यदि बच्चे की बालसुलभ चपलता से कोई वस्तु टूट-फूट जाय तो भी डाँटने की अपेक्षा प्यार से समझाना अच्छा होता है। 'यह न करो', 'वह न करो' कहने की अपेक्षा 'ऐसा करो' कहना अधिक उचित है। बच्चे तो स्वभाव से ही प्रत्यक्षदर्शी होते हैं। यह स्वयं जाँचकर देखना चाहता है कि वास्तविकता क्या है ? पाश्चात्य देशों में बच्चों को इसकी पूरी छूट दी जाती है। तब कोई कारण नहीं कि हम वैसा न करे सकें।

बच्चे स्वभाव से ही कर्मशील और परिश्रमी होते हैं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि उसे सही दिशा दी जाय। जो बच्चे शुरू से ही कर्मशील और परिश्रमी होते हैं, वह भविष्य में आने वाली कठिनाइयों को झेलने में समर्थ होते हैं। उन्हें प्रारम्भ से ही छोटे-मोटे कार्य सौंपते रहें और जिस कार्य में उनकी रुचि दिखे, उसे उधर ही प्रोत्साहित करें। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं, जो सही प्रोत्साहन पाकर महान बन गये। सही व्यवहार और अभिभावक से आदर्श प्रेरणा प्राप्त कर आज के बच्चे कल महान कलाकार, साहित्यकार, कवि, लेखक, नेता और महापुरुष तथा आदर्श नागरिक बन जाते हैं।

कुछ अभिभावक यह सोचते हैं कि बच्चे बिना दबाव और डाँट-फटकार के उच्छृंखल और उद्दण्ड बन जाते हैं। अतः तनिक-सी बात पर बहुत क्रोध करते रहते हैं। क्रोध मनुष्य को पागल बना देता है। वह अपने आप पर नियन्त्रण न कर पाने के कारण सही निर्णय भी नहीं ले पाता। सचमुच बच्चे को डाँटने से उसकी हानि तो होती है, परन्तु अपना क्रोध अपने को भी खाता है। परन्तु इसका अर्थ यह भी न समझें कि बच्चों को अत्यधिक लाड़-प्यार दिया जाय।

अनावश्यक लाड़ से बच्चे बिगड़ जाते हैं। किसी परिवार में अकेला बच्चा होने अथवा स्वभाववश ही अपने बच्चों को अत्यधिक प्यार देते हैं। उनके लिए बहुत अधिक मात्रा में भोजन, वस्त्र तथा खिलौनों का अम्बार लगा देते हैं। साधारण सर्दियों में इतने अधिक कपड़े लाद देते हैं कि उनका स्वतन्त्रतापूर्वक चल-फिर सकना भी कठिन हो जाता है। भूख न लगने पर भी भिन्न प्रकार की चीजें खिलाकर यह सोचते हैं कि उनका स्वास्थ्य अच्छा बनेगा। परिणामस्वरूप बालक चटोर और अस्वस्थ हो जाता है। आदत स्वभाव में परिवर्तित हो जाते है, तब बदली हुई परिस्थिति के कारण पहले जैसी व्यवस्था न होने पर बच्चे, झगड़ालू, जिद्दी तथा चिड़चिड़े हो जाते हैं। ऐसे बालक आगे चलकर समाज के समक्ष प्रश्नवाचक चिह्न के रूप में खड़े हो जाते हैं। अतएव उचित मौकों पर सजा देने से भी काम लेकर उनमें अच्छी आदतें डाला जाना उचित होगा।

अनेक बच्चे संकोची प्रवृत्ति के होते हैं। ऐसे लोग अपनी बहुमुखी उन्नति नहीं कर पाते। अभिभावकों को उनके प्रति सतत् प्रयत्नशील रहकर उनमें आत्मविश्वास, साहस, सहिष्णुता तथा विवेकशीलता जगानी चाहिए। कुछ बच्चे ऐसे भी होते हैं, जो अपने आपको अन्य भाई-बहिनों से कम बुद्धिमान, कम सुन्दर अथवा अयोग्य समझ बैठते हैं। उनके भीतर हीनभावना आ जाती है। ऐसे अवसर पर उन्हें अधिक स्नेह की आवश्यकता होती है।

ऐसे बच्चों के विकास के लिए उनमें आत्मविश्वास जगाने हेतु उन्हें छोटे-छोटे कार्य करने का अवसर देना चाहिए। यह ध्यान रहे कि उन्हें वही कार्य सौंपे जाएँ, जिन्हें वे आसानी से कर सकते हों। अपने कपड़े स्वयं पहिनना, सुखाना, निकालना, एक निश्चित जगह पर सँभालकर रखना जैसे कामों में सफलता प्राप्त कर लेने पर उनकी प्रशंसा करने से आत्मविश्वास परिपक्व होता है। साहसी बच्चों की कहानियाँ सुनाकर साहस की भावना जगाई जा सकती है। दूसरे बच्चों की तुलना में उसे अपने आपको सुन्दर समझने के लिए यह बतायें कि शारीरिक सुन्दरता की अपेक्षा बुद्धि की सुन्दरता महान है। कुशाग्र बुद्धि न हो तो भी उनकी बुद्धि की क्षमता के अनुसार सवाल कराये जाकर सफलता का श्रेय दिया जाना उचित होता है। सभी बच्चे, सभी कार्य नहीं कर सकते यह जानकर उसे चित्रकारी, संगीत, मूर्तिकला जैसी शिक्षा देकर अग्रसर होने का अवसर दिया जाना चाहिए। उनकी प्रत्येक छोटी-छोटी सफलता के लिए बड़ाई देते रहने से धीरे-धीरे संकोची प्रवृत्ति दूर हो जायेंगी। हीनभावना भी इस तरह आसानी से दूर की जा सकेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घर का वातावरण सुखद, शान्त और उल्लासपूर्ण रखने से बालक वही प्रभाव ग्रहण करेगा। बालकों की न्यूनतम आवश्यकताएँ यथासम्भव पूरी करें। इसके अभाव में बच्चे उदास, झगड़ालू और जिद्दी हो जाते हैं। बात-बात पर एक-दूसरे को उलाहना देना, रूठना, मनाना, अपशब्दों का प्रयोग करना बच्चे के हित में नहीं होता। अभिभावक इस प्रकार के दूषित वातावरण को घर से दूर रखें वरना भविष्य में बच्चे बिगड़ सकते हैं।

बच्चों के साथ धार्मिक स्थानों की यात्रा करना भी उनकी शिक्षा की दृष्टि से महत्त्व रखता है। सामाजिक कार्यों के लिए कुटुम्ब यात्रा में अथवा सार्वजनिक स्थानों में जाते समय यथासम्भव बच्चों को भी साथ ले जावें। इससे उनके बाल-मस्तिष्क में इसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा। अनेक ऐसे अवसर आते हैं, जब स्कूलों, क्लबों अथवा अन्य स्थानों पर सांस्कृतिक कार्यक्रम किये जाते हैं। उनमें विभिन्न प्रान्तों और राष्ट्रों के जीवन की झाँकी, गानों, नाटकों, प्रहसनों अथवा चित्रों के माध्यम से किये जाते हैं। इन्हें देखकर बालक अच्छा प्रभाव ग्रहण करता है। ऐसे अवसरों पर बच्चों को अवश्य साथ ले जाना चाहिए।

बाल-मस्तिष्क अनेक प्रकार की शंकाओं से ग्रस्त होता है। संसार की प्रत्येक वस्तु उसके लिए नवीनता लिए होती है। यह सहज है कि उसके दिमाग में अनेक प्रश्न उभर आवें। इन प्रश्नों का उत्तर चाहते हुए अपने अभिभावकों के पास अथवा शिक्षकों के पास जाने पर अनेक बार झिड़क दिये अथवा टाल दिये जाते हैं। सही समाधान अथवा उत्तर न पाने के कारण उदास हो जाते हैं। कई बार शाला में भी ऐसे प्रश्न पूछ लिए जाते हैं, जिनका उत्तर या तो उन्हें बताया नहीं गया होता अथवा वे, नहीं जानते। माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे अपने मतानुसार उचित उत्तर देकर उसकी शंका का समाधान करें। उससे उनका अवश्य ही बौद्धिक विकास होगा। शिक्षक कभी ऐसे प्रश्न न पूछ बैठें, जिनका उत्तर उन्हें बताया ही न गया हो।

अमेरिका के प्रसिद्ध शिक्षा विशेषज्ञ प्रो. डार्कन के सर्वे के अनुसार स्कूल में अच्छे चलने वाले बच्चे वही थे जिनके माता-पिता उन्हें समय देकर उनके कार्यों में सहायता देते थे और बुद्धू बच्चों की पृष्ठभूमि में थे 'व्यस्त' माता-पिता। बच्चे तो शाला जाने पर भी कुछ ही घण्टे वहाँ रहते हैं। शेष सारा समय उनका जीवन अपने माता-पिता और परिवार के बीच बीतता है। अतएव अधिक प्रभाव परिवार का ही पड़ता है।

इस तरह घूम-फिरकर वास्तविक जिम्मेदारी माता-पिता और कुटुम्ब पर आ जाती है। कच्ची नींव के मकान की भाँति गिरने से बचाने के लिए बच्चों की नींव पक्की करने के लिए हमें ही साहसपूर्वक कदम उठाना चाहिए।

बच्चों को शिक्षा ही नहीं, दीक्षा भी दी जाय

संसार में निर्बल और प्रभावहीन रहकर जीने में कोई मजा नहीं है, जो निर्बल अथवा प्रभावहीन होता है उसे कोई पूछता नहीं, सभी उसे अपना शिकार बनाने की कोशिश किया करते हैं। जीवन में निर्बल होने का अर्थ है संसार के कुटिल तथा स्वार्थी लोगों का भोजन बन जाना।

निर्बलता और प्रभावहीनता का कारण है अज्ञान और अज्ञान का कारण है अशिक्षा और संसार की गतिविधि से दूर रहना। जो अशिक्षित है वह किसी से ठीक तरह बात कर सकने में असमर्थ रहता है और दूसरों की बात ही ठीक प्रकार से नहीं समझ सकता। अध्ययन द्वारा महापुरुषों के विचारों तथा अनुभवों का लाभ नहीं उठा सकता। इसलिए ज्ञान प्राप्त करने के लिए शिक्षा बहुत आवश्यक है।

केवल शिक्षा ही ज्ञान की संवाहिका नहीं हो सकती। किसी ने एम. ए., बी. ए. तक शिक्षा तो प्राप्त कर ली किन्तु वह समाज से दूर-दूर से संसार की गतिविधियों से विरत, आत्मलीन जैसा रहता है, न लोगों के सम्पर्क में आता है और न विचारों का आदान-प्रदान ही करता है तो उसकी शिक्षा उसके क्या काम आ सकती है ? इस प्रकार एकाकी रहकर वह अपनी विद्या का लाभ न स्वयं उठा पाता है और न किसी दूसरे को दे पाता है। संसार में कहाँ क्या हो रहा है ? लोगों की विचारधारा किस ओर बह रही है ? वर्तमान परिस्थितियों में हमें क्या और कैसे करना चाहिए ? इसका ज्ञान प्राप्त किये बिना अपनी दिशा, कार्य-पद्धति और साधनों का निर्णय नहीं किया जा सकता। जिसे अपने आस-पास की गतिविधि तथा परिस्थिति की जानकारी नहीं वह शिक्षित होने पर भी अज्ञानी ही माना जायेगा। इसलिए ज्ञान प्राप्त करने के लिए शिक्षा पाना और संसार का अध्ययन करते रहना बहुत आवश्यक है।

शिक्षा का समारम्भ बचपन से होता है। पाँच-छह वर्ष की आयु में जबकि प्रायः शिक्षा प्रारम्भ की जाती है, बच्चों के पास अपनी स्वयं की समझ नहीं होती। वे अपना अच्छा-बुरा भी नहीं समझ पाते। साथ ही उनमें पढ़ने की स्वतः प्रेरणा नहीं होती। उस समय तो उन्हें खेलना और शरारत करना ही पसन्द होता है। पढ़ने के लिए जिस दिन ये बिठाले जाते हैं, उस दिन तक उनका एकमात्र काम खेलना ही होता है। पढ़ाई उनके लिए सर्वथा नवीन तथा स्वभाव अथवा अभ्यास के विरुद्ध होती है। तभी वे उस विषय में अभिभावकों तथा अध्यापकों को काफी दिनों तक परेशान करते रहते हैं। किन्तु जब धीरे-धीरे अन्य बच्चों के साथ अभ्यस्त हो जाते हैं; फिर अपने आप पाठशाला जाने लगते हैं। उनका अभ्यास उस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिशा में ढल जाता है किन्तु इसके लिए अभिभावकों को काफी परिश्रम करना पड़ता है। उन्हें उस सम्बन्ध में बड़ा सावधान तथा सतर्क रहना होता है। बच्चे की गाड़ी जब चल निकलती है तो फिर वे असावधान अथवा उदासीन हो जाते हैं।

पढ़ाई के सम्बन्ध में बच्चों की गाड़ी चल निकलने के बाद अभिभावकों का तटस्थ हो जाना अथवा यह सोचकर असावधान हो जाना कि अब तो वह स्कूल जाने ही लगा है, अपने को परेशान होने की क्या जरूरत, अब बच्चा और अध्यापक आप निपटते रहेंगे, ठीक नहीं। अभिभावकों की इस उदासीनता से बच्चों की शैक्षणिक प्रगति मन्द हो जाती है। अभिभावकों को, जब तक बच्चे पूरी तरह आत्म-प्रबुद्ध न हो जायें उनकी पढ़ाई और उनकी प्रगति में पूरी-पूरी दिलचस्पी लेते रहना और प्रेरणा देते रहना चाहिए। इससे वे उत्तरोत्तर तेजी से बढ़ते चले जाते हैं।

अभिभावकों को चाहिए कि वे नित्यप्रति सायंकाल घण्टा-आध घण्टा बच्चों की पढ़ाई-लिखाई देखने के लिए बैठा करें। इस समय वे उनसे स्कूल में क्या पढ़ाई चल रही है, कितना पाठ्यक्रम हो चुका है और कितना शेष है, इसका पता लगाया करें ? साथ ही उनसे पढ़े पाठों के विषय में प्रश्न करके यह पता लगाया करें कि बच्चे जो पाठ पढ़ चुके होते हैं वह याद भी करते हैं या नहीं ? उनकी कापियाँ देखा करें और पता लगाया करें कि वे अपना काम ठीक से कर रहे हैं या नहीं ? जो गलतियाँ ठीक की जाती हैं, उन्हें बार-बार लिखकर अभ्यास कर लेते हैं या यों ही छोड़ देते हैं।

इस देखा-भाली के अतिरिक्त अभिभावकों को चाहिए कि वे उस समय बच्चों से पढ़ाई के विषय में इस प्रकार बात-चीत किया करें, जिससे वे शिक्षा की गरिमा अनुभव करें और प्रेरणा पायें। इसी समय बच्चों को स्वयं भी कुछ न कुछ पढ़ाना चाहिए और कभी-कभी उनकी परीक्षा लेकर यह पता भी करना चाहिए कि वे किस गति से प्रगति कर रहे हैं ? इस प्रकार बच्चों की पढ़ाई में स्वयं भाग लेकर उनकी अभिरुचि बढ़ाते रहना चाहिए। जो अभिभावक बच्चों की पढ़ाई में स्वयं रुचि नहीं लेते, उनके बच्चे प्रायः पढ़ने-लिखने में कम ही रुचिवान हो पाते हैं।

बच्चों की शिक्षा के लिए केवल मात्र अध्यापकों पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिए। अध्यापकों के लिए कोई एक ही विद्यार्थी तो नहीं होता। उन्हें तो पचासों विद्यार्थियों के साथ माथापच्ची करनी पड़ती है। पचास जगह बँटा हुआ उनका ध्यान तथा समय बच्चों को अधिक लाभ नहीं पहुँचा पाता। इसलिये अभिभावकों को बच्चों को स्वयं भी थोड़ा समय देर उस कमी को पूरा करते रहना चाहिए।

यह तो रही पुस्तकीय शिक्षा की बात। इसके अतिरिक्त एक शिक्षा और है, जिसे अनुभवीय अथवा यथार्थ शिक्षा कहा जा सकता है। वह यह कि बच्चों को संसार का यथार्थ अथवा व्यावहारिक ज्ञान कराया जाये। इसके दो तरीके हैं। एक यह कि बच्चों को अपना साथ बाजार, सभा, सोसाइटियों तथा मेलों, उत्सवों में ले जाना चाहिए। ऐसे अवसरों पर अभिभावक बाजार की चीजों, उनके भावों तथा उपयोग के विषय में बतलावें और दिखलावें कि लोग एक-दूसरे से किस प्रकार बर्तते तथा व्यवहार करते हैं ? यह भी उन्हें बतलाना तथा समझाना चाहिए। व्यावहारिक ज्ञान के लिए बच्चे बड़े ही उत्सुक तथा जिज्ञासु होते हैं। अभिभावकों को अपने प्रयत्न से उनको उनके इस गुण का लाभ पहुँचाना ही चाहिए।

साथ ही अभिभावकों को चाहिए कि नित्य-प्रति प्रातः-सायं बच्चों को बस्ती से दूर, कुछ देर के लिए घुमाने ले जायें। ऐसे अवसर पर उन्हें प्राकृतिक दृश्यों, पक्षियों, सामान्य वनस्पतियों तथा यदि कोई मिल सकें तो पशुओं के बावत बतलायें। साथ ही सूर्य, चन्द्र, ग्रह-नक्षत्रों तथा एकान्त शून्य आदि के आधार पर आध्यात्मिक जिज्ञासा भी जगाते चलना चाहिए। इस प्रकार बच्चों में पुस्तकीय ज्ञान के साथ व्यावहारिक जगत् और अध्यात्म ज्ञान का क्रम बढ़ता चलेगा।

यदि बच्चों में जीवन के हर क्षेत्र में सावधान तथा जिज्ञासु बन और उत्सुक आँख लेकर हर चीज को ठीक से देखते और समझते चलने की आदत का विकास कर दिया जाये तो समझो उनके लिए ज्ञान के साथ सफलता का द्वार ही खोल दिया। पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, नदी, पर्वत, आकाश तथा प्रकृति के सुन्दर दृश्य अपनी मुखरता एवं मौनता से महानतम शिक्षा का भण्डार भरे रहते हैं, जो उस शिक्षा का लाभ उठाने की पात्रता प्राप्त कर लेता है वह विद्वान होने के साथ-साथ यथार्थ ज्ञान से परिपूर्ण अनुभवी मनुष्य बन जाता है। उसका प्रभाव बढ़ जाता है उसकी मनोशक्ति का विकास हो जाता, उसकी आत्मा प्रकाशित हो उठती और वह सफलता के सोपानों पर कदम रखता हुआ दिन-दिन आगे बढ़ता जाता है।

हारवर्ड विश्वविद्यालय के महान जीवशास्त्री प्रोफेसर श्री एगाजिस के पास, जब कोई नया छात्र आता तब वे उसे एक मछली देते और कहा करते थे कि आधे या एक घण्टे तक इसे अच्छी तरह देखो। जब छात्र मछली देखकर वापस आता तो वे उससे उसके विषय में पूछते और कहते कि तुमने अभी मछली को ऊपरी तथा सरसरी नजर से देखा है। इसे गहरी नजर से गहराई तक देखकर आओ। ऐसा वे अनेक बार करते थे और जब छात्र में किसी चीज को गहराई के साथ देखने और समझने की बुद्धि का विकास हो जाता था, तब उसकी शिक्षा प्रारम्भ करते थे। ऐसा करने से उनके सभी छात्र न केवल परीक्षा में ही अच्छे अंकों से पास होते थे बल्कि शिक्षा के बाद एक सफल नागरिक सिद्ध होते थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभिभावकों को चाहिए कि उनके बच्चे जब तक शिक्षा के क्षेत्र में अपनी बुद्धि तथा पैरों के बल खड़े होने लायक न हो जायें उनकी शिक्षा तथा सांसारिक दीक्षा में पूरी-पूरी रुचि लेते रहें। उन्हें अपना अनुभव देते और उनका अनुभव बढ़ाते रहें। जो अभिभावक ऐसा स्वयं न करके बच्चों को पुस्तकों, शिक्षालयों तथा अध्यापकों पर छोड़ देते हैं, वे उनको शिक्षा के बाद भी कच्चा रह जाने देने की भूल करते हैं। अभिभावक होना जितना सुख नहीं उतना उत्तरदायित्व है। जब अभिभावक बने हैं अथवा बनने की तैयार कर रहे हैं तो इस उत्तरदायित्व के प्रति सदा सजग, सावधान तथा सक्रिय रहना ही होगा।

निश्चय ही वे अभिभावक खेद किये जाने के पात्र हैं जो बच्चों के प्रति अपना यह उत्तरदायित्व निर्वाह नहीं करते, बल्कि इसके विपरीत आचरण किया करते हैं। बच्चे की पढ़ाई-लिखाई में रुचि लेना तो दूर उल्टे उनका हर्ज ही किया करते हैं। जिस समय बच्चे स्कूल से और अभिभावक काम से आकर इकट्ठे होते हैं, उनके आदेशों तथा अनुपालन का सिलसिला प्रारम्भ हो जाता है और बच्चों का सारा पढ़ाई-लिखाई का समय उनका काम करते ही व्यतीत हो जाता है। अभिभावक महोदय एक कुर्सी अथवा चारपाई पर बैठ गये और लगे पानी, पान तथा खान-पान यथा-स्थान और कहीं यदि वे बैठक में दोस्तों के साथ शतरंज, ताश या चासर जमाये बैठे हैं तब तो बच्चे न केवल बाप ही बल्कि मुँह बोले चाचा, ताऊ के भी अरदली बन जाते हैं। क्षण-क्षण पर उनकी आवाज पड़ती रहती है। पानी लाना, पान ले आ भाई, देखो चाय बन गई, दौड़कर बर्फ तो ले आ जा, अपने, ताऊ को सिगरेट तो ला दो। अम्मा से कहो कि क्या चाय बिना नाश्ते की चलेगी ? जिस सामान की कमी हो दौड़कर बाजार से ले आओ, जरा घर तक तो चले जाओ, बेटा अपनी चाची से कह आओ कि चाय भाईसाहब के यहाँ पी ली है मेरे लिए न बनाएँ और देखो दूध न हो तो चाची को ला देना आदि एक का नहीं अनेकों का काम करते-करते बेचारे बच्चे चूर हो जाते हैं। खाते-पीते तक नींद धर दबाती है फिर कहाँ की पुस्तकें और कहाँ की पढ़ाई ? सायंकाल तो ऐसा रहता ही है, इस प्रकार के न जाने कितने निरर्थक काम उनके लिए सबेरे भी लगे रहते हैं। इसके अतिरिक्त माता क्या उन्हें कुछ कम घर-गृहस्थी के कामों में लगाये रहती है ? यह अभिभावकत्व नहीं है। यह अन्याय है।

बालकों की शिक्षा में चरित्र-निर्माण का स्थान

हमारे जीवन में शिक्षा का स्थान बहुत ऊँचा है। प्राचीनकाल के विद्वान भी कह गये हैं कि "विद्याविहीन मनुष्य बिना सींग-पूँछ का पशु ही है।" वास्तव में मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों का उचित विकास शिक्षा द्वारा ही होता है और तभी वह संसार में कोई महत्त्वपूर्ण कार्य करने लायक बन पाता है।

इस सम्बन्ध में हमें एक बात बहुत स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि केवल किताबी पढ़ाई को ही शिक्षा नहीं समझना चाहिए। उससे भी पहली शिक्षा चरित्र गठन और आरोग्य की होनी आवश्यक है। यदि दोनों शिक्षाएँ पूरी हो जाएँ और किताबी शिक्षा में कुछ कमी भी रह जाय तो मनुष्य संसार में सुविधापूर्वक जीवन व्यतीत कर सकता है। पर चाहे हम १५ ही वर्ष की आयु में बी. ए. पास कर लें तो भी यदि हम अपने चरित्र और स्वास्थ्य को नहीं सँभाल सके हैं तो वह सब पढ़ाई बेकार ही समझनी चाहिए। एक विद्वान के कथनानुसार—'पहले प्रकार की विद्या सोने में सुगन्ध का कार्य करती है, समाज में एक चमकते हुए रत्न को उत्पन्न करती है, जबकि दूसरे प्रकार की शिक्षा एक बड़े भयंकर रोग से कम दुःखदाई नहीं होती। बन्दर के हाथ में तलवार देने से जो फल होता है, कोरी पुस्तकीय शिक्षा से भी वैसे ही फल की आशा रखनी चाहिए।

जो लोग यह समझते हैं कि छोटी आयु से ही स्कूल में पढ़ाई आरम्भ कर देना और थोड़े ही समय में ऊँची डिग्री हासिल कर लेना बड़ी प्रशंसनीय बात है वे बड़ी गलती पर हैं। जो शिक्षा, स्वास्थ्य को चौपट करके और सदाचार के सिद्धान्तों की उपेक्षा करके प्राप्त की जायेगी वह बहुमूल्य नहीं, वरन् धूल के समान है। उससे कल्याण होने की बजाय अपना, परिवार वालों का और आस-पास वालों का भी कुछ-न-कुछ अहित ही होगा। बालक की असली शिक्षा स्कूल में नहीं होती, वरन् वह होती है जो जन्मकाल से ही पाँच-सात वर्ष की उम्र तक घर में ही प्राप्त की जाती है। उसी अवधि में उसका उचित शारीरिक विकास होता है, मानसिक शक्ति की वृद्धि होती है और उसमें नैतिकता तथा शिष्टाचार के गुणों का विकास होता है। इन सब बातों में सन्तोषजनक प्रगति कर लेने के पश्चात् पुस्तकों द्वारा जो शिक्षा दी जाती है, वह कारगर होती है, उत्तम फल उत्पन्न करती है।

बच्चे को स्कूल में दाखिल कराते समय उसके शारीरिक स्वास्थ्य पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। जरा देर हो जाने से कुछ हानि नहीं होती पर कमजोर शरीर के बालक पर पढ़ाई का जबर्दस्त भार लाद देने से बहुत बुरा परिणाम होता है और वह जन्मभर के लिए अशक्त और रोगी बन जाता है। अँग्रेजी के एक बहुत प्रसिद्ध लेखक जान स्टुअर्ट मिल ने अपनी बाल्यावस्था का वर्णन करते हुए लिखा कि बचपन में अत्यन्त तीव्र बुद्धि होने के कारण, उससे लाभ उठाने के लिए उसके पिता ने शारीरिक और मानसिक शक्ति का विचार किये बिना उसे इतना पढ़ा डाला कि बड़े-बड़े विद्वान उसके विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान को देखकर चकित रह जाते थे। पर अब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब मैं अपने बचपन की याद करता हूँ तो मेरा हृदय क्रोध और क्षोभ से भर जाता है। मुझे इस बात पर आश्चर्य होता है कि उस परिस्थिति में रहकर मैं पागल क्यों नहीं हो गया, क्योंकि मेरे पिताजी का ढंग ऐसा ही था।

फिर इस बात का भी ध्यान रखना आवश्यक है कि सब लड़कों को एक-सी शिक्षा देना हर्गिज लाभदायक नहीं हो सकता। खासकर शहर और गाँव के लड़कों को एक समान शिक्षा कभी उपयोगी सिद्ध नहीं होगी। शहरों के लोग प्रायः अपने लड़कों को कोई बड़ी या छोटी नौकरी प्राप्त कराने का उद्देश्य रखते हैं। वहाँ के शेष लोग अपने लड़कों को थोड़ा पढ़ना और हिसाब आदि सिखाकर व्यापार में लगाने का विचार रखते हैं। पर गाँव के लड़कों को इनमें से कोई शिक्षा लाभदायक नहीं हो सकती। अगर उसे ऐसी शिक्षा दी जायेगी तो उसका परिणाम यही निकलेगा कि वह अपने बाप के धन्धे में सहायता देने के अयोग्य हो जायेगा और अन्य किसी दिशा में भी उल्लेखनीय प्रगति न कर सकेगा। कितने ही अन्य देशों में इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता है, कि ग्रामीण बालक पढ़-लिखकर भी अपने पैतृक पेशे से उदासीन न हो जाएँ। अमरीका के ग्रामीण स्कूलों में जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, उनमें सब पाठ ग्रामीण जीवन के उपयुक्त होते हैं। उनमें यदि गणित पढ़ाया जाता है तो उसके प्रश्न भी ऐसे रखे जाते हैं जो ग्राम की अर्थव्यवस्था के अनुकूल हों। उन पुस्तकों में कृषि सम्बन्धी विभिन्न कार्यों, फसलों में सुधार, फलों की खेती आदि के सम्बन्ध में उपयोगी वैज्ञानिक ज्ञान सरल भाषा में दिया जाता है।

शहरों के स्कूलों में भी बालकों की रुचि वैभिन्य का ख्याल नहीं रखा जाता और सबको एक लाठी से हाँका जाता है। उनमें से कोई क्लर्क बनता है तो कोई शिक्षक, कोई कलाकार होता है तो कोई कारीगरी के क्षेत्र में प्रवेश करता है। पर इन सबको प्रायः स्कूल और कॉलेजों तक एक-सी शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार उनकी कितनी शक्ति और समय बर्बाद जाता है और उसका समस्त राष्ट्र की प्रगति पर क्या प्रभाव पड़ता है, यदि इसका कभी हिसाब लगाया जाय तो तो मालूम होगा कि हम स्वयं अपनी उन्नति के मार्ग में रोड़ा अटका रहे हैं और इतने अधिक मानव श्रम तथा मानसिक शक्ति का अपव्यय कर रहे हैं कि जिसके द्वारा हमारा बहुत हित-साधन हो सकता है।

इस प्रकार हमारे यहाँ की शिक्षा बिना किसी उचित योजना और व्यवस्था के अस्त-व्यस्त ढंग से चल रही है। अधिकांश माँ-बाप बचपन में सिवाय बच्चों को लाड़-प्यार में रखने के उनकी आदतों और चरित्र के निर्माण के विषय में न तो कुछ जानते हैं और न कुछ प्रयत्न करते हैं। यदि कोई थोड़ा-बहुत जान भी लेता है तो उसके पास इतना समय नहीं होता कि वह इस सम्बन्ध में सदैव ध्यान दे सके। इसके बाद पाँच-छह वर्ष की आयु में जब बच्चों को पढ़ने के लिए स्कूल में भेजा जाता है तो वहाँ अध्यापक भी उसकी घर की आदतों और स्वाभाविक प्रवृत्तियों पर ध्यान दिये बिना एक ही ढर्रे पर चलाने लगते हैं। इतना ही नहीं अधिकांश शिक्षक तो अब भी ऐसे ही दिखाई पड़ते हैं, जो बच्चों को धैर्यपूर्वक नये वातावरण के अनुकूल बनाने की अपेक्षा धमकाने, डाँटने-डपटने और छड़ी का भय दिखाने से ही काम लेते हैं। पुराने ख्याल के शिक्षकों में तो यह विचार घुसा ही हुआ है कि पढ़ाई पीटने और भय दिखाने से ही होती है। इस प्रकार बच्चों का रक्षक उनका भाग्य ही होता है और वे संयोगवश जो कुछ बन जाते हैं, उसी से उनको संतोष करना पड़ता है।

सभी विचारशील व्यक्ति यह कहते हैं कि बच्चों पर ही देश और जाति का भविष्य निर्भर है और उनकी शिक्षा की ठीक-ठीक व्यवस्था होने से ही हम एक सुखी और समृद्ध राष्ट्र बना सकते हैं। पर व्यवहार में इस पर अमल करने की कोई चेष्टा देखने में नहीं आती। जैसा हमने आरम्भ में ही कहा है कि सब प्रकार की शिक्षा की नींव मनुष्य का चरित्र और शारीरिक तथा मानसिक शक्ति का उचित विकास है। इसलिए जो माता-पिता तीन-चार वर्ष की आयु में बच्चे को कुछ समझदार देखकर उसे वर्णमाला और पहाड़े सिखाकर प्रसन्न होते हैं वे वास्तव में बड़ी गलती करते हैं। हमने ऐसे सैकड़ों बालक देखे हैं, जो बाल्यावस्था में बड़े चपल और बुद्धिमान प्रतीत होते थे, पर दस-बारह वर्ष की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते बिल्कुल निकम्मे, आवारा और पढ़ने के बजाय तरह-तरह के दुर्गुणों में ग्रस्त बन जाते हैं। इसलिए घर और स्कूल में भी सबसे पहले बच्चों के चरित्र और स्वभाव के निर्माण पर ध्यान दिया जाना चाहिए। यदि ये बातें ठीक हो गईं तो वह फिर अपनी योग्यता के अनुसार कोई भी शिक्षा प्राप्त कर सकता है और उसी से उसका भावी जीवन सुखी बन सकेगा।

गुरुजनों का सम्मान

आज विद्यालयों में फैली अनुशासनहीनता का सबसे बड़ा कारण यही है कि शिक्षक एवं शिष्यों में जिस प्रकार का पवित्र सम्बन्ध होना चाहिए, वह नहीं है। शिक्षा-व्यवस्था इस प्रकार की हो गई है कि अपने मूल रूप में वह धन कमाना और व्यवसाय जैसी बन गई है। शिक्षक धन कमाने के दृष्टिकोण से शिक्षक बनता है, उसमें बच्चे के प्रति उच्च भाव उत्पन्न नहीं हो पाते। वह विद्यार्थी को पुत्रवत् नहीं देखता है।

इसी प्रकार विद्यार्थियों में शिक्षकों के प्रति जो अटूट श्रद्धा और आदर-भाव रहना चाहिए, वह अब नहीं है। विद्यार्थी, शिक्षक को नौकर समझता है, वह बचपन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से ही केवल इतना सीखता है कि चूँकि इस विद्यालय में हमें रहकर पढ़ना है, अध्यापक एवं प्रधानाध्यापक के ही अधिकार में पास-फेल करना होता है। यदि हम इनसे अकड़कर चलेंगे तो सम्भव है, हमें परीक्षा में अनुत्तीर्ण कर दें या हमारा चाल-चलन खराब लिख दें। इस प्रकार श्रद्धा-भाव से नहीं, वरन् गर्ज-वश वह शिक्षकों के प्रति सम्मान रखने का प्रदर्शन करता है। कुछ विभागीय नियमों और कानूनों में जकड़े होने के कारण दोनों पक्ष एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, कोई विद्यालय सरकार से मान्यता-प्राप्त है, तो वहाँ जो शिक्षक हैं, वे तो नौकरी पर हैं ही और बच्चे वहाँ पढ़ने जायेंगे ही। लेकिन दोनों पक्ष के दिलों में एक-दूसरे के प्रति जो भाव होने चाहिए, वह नहीं हैं। जहाँ सच्चाई नहीं होती, वहाँ अधिक दिन तक प्रेम-सम्बन्ध नहीं रहते। झूठी और ऊपरी श्रद्धा, सत्य के आवरण से ढकी नहीं जा सकती। यही कारण है कि विद्यालयों में थोड़ी-थोड़ी बातों को लेकर आन्दोलन, हड़ताल और प्रदर्शन हो जाने के उदाहरण देखने को मिलते हैं। कहीं किसी बदमाश लड़के का स्कूल से नाम काट दिया गया, तो फिर स्कूल के सब लड़कों की सभा उसने की। कुछ लड़कों ने जोशीले भाषण दिये और दूसरे दिन विद्यालय में पूर्ण हड़ताल हो गई। कहीं बच्चों को यूनियन बनाने की अनुमति नहीं मिली, तो उन्होंने अपना आन्दोलन छेड़ दिया। शीशे, खिड़की तोड़ने, उद्दण्डता करने, शिक्षकों से लड़ जाने की घटनाएँ तो नित्य-प्रति की होती जा रही हैं। कक्षा में जब शिक्षक पढ़ाने जाता है, तो उसके लिए शान्ति-व्यवस्था बनाए रखना एक बड़ी समस्या होती है। पीछे जब वह श्यामपट पर कुछ लिखते हैं, तो पीछे से लड़के विचित्र ढंग से हाथों और मुँह से संकेत करके शिक्षक का उपहास करते हैं। कक्षा के बाहर बाजार में, ट्रेन में, चौराहों पर तो खुले रूप में शिक्षकों की आलोचना करना, उनका उपहास करना, खिल्ली उड़ाना और बुरे शब्दों से सम्बोधन करना बच्चों के लिए उतना ही सरल और स्वाभाविक हो गया है, जितना राजनैतिक नेताओं का। इन सब बातों को न तो विद्यार्थी बुरा कार्य समझते हैं और न जनता ही शिक्षकों की निन्दा को बुरा मानती है। सत्य तो यह है कि बच्चों द्वारा अपने विद्यालय के शिक्षकों की निन्दा सुनकर अभिभावक और प्रसन्न होते हैं। उन्हें आलोचना में मजा मिलता है। वे बच्चों को खोद-खोदकर हर शिक्षक के प्रति कुछ-न-कुछ नयी जानकारी देने के लिए उकसाते हैं।

इन सब बातों का प्रत्यक्ष प्रभाव भी हमारी आँखों से ओझल नहीं है। दिन-प्रति-दिन शिक्षा के गिरते हुए स्तर को देखकर आप इसके प्रभाव को समझ सकते हैं। विद्यार्थियों के पास आप नवीनतम ढंग के पेंट, बुशर्ट, कमीज, टाई, जूते, कलम व रूमाल आदि तो देखेंगे। यह भी देखेंगे कि वे अपने को खूब सज-धजकर स्कूल आते हैं। जितनी ही आगे की कक्षाओं में वे बढ़ते जायेंगे, उनके पहनावे, उढ़ावे और जीवन स्तर में तो आपको बड़ी स्पष्ट प्रगति दीख पड़ेगी। उनकी वेष-भूषा को देखकर आप यह अनुमान भले ही लगा सकते हैं कि यह लड़का किसी ऊँची कक्षा में पढ़ रहा है, बड़ा योग्य होगा।

अपनी बातचीत और कपड़ों से वह आपके ऊपर रौब गालिब करने में सफल हो जायेगा, फिर आपका साहस ही नहीं पड़ेगा कि उससे उसकी योग्यता के विषय में कुछ पूछें। लेकिन कभी आप साहस करके किसी ऐसे चमकीले, भड़कते हुए विद्यार्थी की योग्यता को भी टटोलिए। वह जिस कक्षा में पढ़ रहा है, उसी के विषय में दो-चार प्रश्न कीजिए और दो-चार प्रश्न बच्चे के साधारण ज्ञान के बारे में कीजिए, एक कागज देकर हिन्दी अथवा अँग्रेजी में कोई एक प्रार्थना-पत्र लिखने को कहिए, तब आप देखिए कि वह कितने पानी में है ? वास्तव में बच्चे की योग्यता की जाँच कर आपको निराशा उठानी पड़ेगी और सहसा कहना पड़ेगा कि आजकल पढ़ाई का स्तर बहुत गिर रहा है।

गुरु-भक्ति की उपयोगिता—इस परिस्थिति का एक ही कारण है—अश्रद्धा। विद्यार्थी में ज्ञान प्राप्त करने के लिए जितनी मात्रा में अपने शिक्षकों और पुस्तकों के प्रति श्रद्धा होनी चाहिए, वह नहीं है और किसी भी काम में समुचित सफलता प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को अटूट रूप से श्रद्धावान होना चाहिए। कार्यालय के बाबुओं, माल विभाग के कर्मचारियों या सरकारी कर्मचारियों के प्रति स्वार्थपूर्ण सम्मान प्रदर्शन की जो बात होती है, गुरु के प्रति श्रद्धा-भावना से वह भिन्न है। उसी ढंग का सम्मान रखने बालक समुचित ज्ञान प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकता।

हमारे प्राचीन भारतवर्ष में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली लागू थी। उस समय ५ वर्ष से २५ वर्ष तक का जीवन गुरु के सान्निध्य में रहकर विद्याध्ययन करने में बिताना पड़ता था। यद्यपि आज जैसी शिक्षा-प्रणालियाँ उस समय कहीं भी चालू नहीं थीं। न तो बालकों को समझाने में सहायता देने हेतु बाल-मनोविज्ञान का ही इतना अधिक महत्त्व था और न शिक्षण सामग्री पर भी कोई विशेष बल दिया जाता था। जिस प्रकार प्रशिक्षण देकर शिक्षक बनाने की बात अब चल रही है, जिस पर सरकार के करोड़ों रुपये व्यय होते हैं, ऐसी कोई बात उस समय नहीं थी। गुरु सीधे-सादे ढंग से शिष्यों को अपने सामने बिठाकर उन्हें ज्ञान देता जाता था और शिष्य उसे ग्रहण करके कण्ठस्थ करता था। यही एक प्रणाली लागू थी। फिर भी उस समय के विद्यार्थियों की योग्यता का स्तर आज के विद्यार्थियों की तुलना में बहुत ऊँचा था। इसका एक कारण यह ही था कि विद्या देने वाले गुरुजनों के प्रति श्रद्धा-भाव उस समय बहुत था। इसी कारण उनके मुँह से निकले हुए प्रत्येक वाक्य की कीमत होती थी। जो कुछ गुरु कहता था, वह शिष्य के लिए वेद वाक्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के समान सम्माननीय होता था। शिष्य के हृदय में गुरु का स्थान सर्वोपरि होता था। प्राचीन शास्त्रों में गुरु की बड़ी महिमा गाई है। माता-पिता और गुरु इन तीन के ऋण से शिष्य का कभी उद्धार नहीं हो सकता था। माता-पिता रज और वीर्य से यदि बालक को जन्म देने वाले माने गये हैं, तो गुरु, उसे ज्ञान देकर मनुष्य बनाने वाली हस्ती मानी गई है। गुरु को मृत्युलोक का देवता, ईश्वर का प्रतिनिधि और मोक्ष दिलाने वाला माना गया है।

अपने प्राणों को संकट में डालकर मृत्यु से खेलने का साहस करने वाले अनेक शिष्यों के उदाहरण शास्त्रों में भरे पड़े हैं। आरुणी नाम के विद्यार्थी अपने गुरु की आज्ञा मानकर मेंड़ बाँधने गया था। वर्षा का पानी तेज धार से बह रहा था। जल की तेज धार को मिट्टी से रोकने में सफल न होने पर गुरु-भक्त आरुणी ने स्वयं को लिटा देना ही उत्तम समझा। क्योंकि गुरु की आज्ञा लाँघने की कोई बात उस समय के शिष्य के मस्तिष्क में आती ही नहीं थी। जाबालि नामक बालक की कठोर परीक्षा गुरु ने ली। उसका खाना-पीना यहाँ तक गौ का दूध छूना तक भी गुरु ने मना कर दिया और उससे बराबर गौ चराने की सेवा लेते रहे। भूख से व्याकुल होकर उसने आक के पत्ते खा लिए, जिससे उसके आँखों की ज्योति नष्ट हो गई। अन्त में उसकी भक्ति की विजय हुई। परीक्षा के बाद गुरु की कृपा से नेत्र भी मिले और सम्पूर्ण विद्याओं का ज्ञाता भी बना।

आज यदि इस तरह गौ चराते हुए किसी बालक से दूध न पीने की बात कही जाये, तो पीना तो दूर वह बेच भी डाले।

राम-कृष्ण आदि की अपने गुरुओं के प्रति भक्ति सर्वविदित है। वशिष्ठ के सामने राम कभी नेत्र नहीं उठा सकते थे। यद्यपि वे चक्रवर्ती सम्राट और भगवान के अवतार भी थे।

जिस समय भगवान श्रीराम लंका पर विजय करके अयोध्या लौटे हैं तो अवधवासियों से प्रथम मिलन के अवसर पर गुरु के चरणों में जिस उत्सुकता एवं विनम्रता से उन्होंने प्रणाम किया है वह कितना बेजोड़ है ?

धाइ धरे गुरु चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह॥

छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित दौड़कर गुरुजी के चरण कमल पकड़ लिए। 'दौड़कर' शब्द यहाँ क्या प्रकट करता है ? क्या साधारण श्रद्धा वाला व्यक्ति ऐसा कर सकता है ? कृष्ण तो अपने गुरु के लिए लकड़ियाँ काटने जाया करते थे। मार्ग के लिए सुदामा को तो कच्चे चने भी गुरु ने दिये थे, परन्तु कृष्णजी को वह भी नहीं मिले थे। वर्षा में बेचारे पेड़ के नीचे बैठे दाँत कटकटा रहे थे। गुरु के कुल कार्य शिष्य को करने होते थे।

गुरु की आज्ञा के विपरीत आचरण करने की कल्पना का भी उस समय के शिष्य में आना एक प्रकार से अकल्पनीय था। इसी को हम अनुशासन कह सकते थे। यही कारण है कि उस समय के विद्यार्थी विद्याध्ययन के बाद पूर्ण विद्वान होकर निकलते थे।

विचारणीय प्रश्न यह है कि उस समय के शिष्य क्यों अपने गुरुओं का इतना आदर करते थे ? दो ही उत्तर हो सकते हैं या तो वे अन्धविश्वासी और मूर्ख थे जो आँख मूँदकर पुरानी परम्पराओं को मानते थे या फिर गुरु की श्रद्धा से उन्हें लाभ था। हर विचारवान व्यक्ति यह स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता कि अटूट श्रद्धा एवं विश्वास के आधार पर ही सफलता मिल सकती है। आज के वैज्ञानिक युग में भी वह बात शत-प्रतिशत सही है।

गुरुजनों के प्रति आज के विद्यार्थी में उसी श्रद्धा की कमी हो गई है। शिक्षा के स्तर के गिरने तथा अनुशासनहीनता के यही कारण हैं। इसलिए शिक्षा-स्तर को उठाने के प्रयास में हमें विद्यार्थियों में अपने अध्यापकों के प्रति श्रद्धाभाव उत्पन्न करने पड़ेंगे।

यही दशा पुस्तकों के प्रति हुई। आज से १०, २० वर्ष पूर्व ही विद्यार्थियों में अपनी पुस्तकों के प्रति जो आदरभाव थे, वह अब नहीं हैं। यदि किसी बच्चे की किताब भूल से पैर के नीचे पड़ जाती थी अथवा जमीन पर गिर जाती थी, तो वह उसे उठाकर दस बार उस पुस्तक को सिर से लगाता था, उसे चूमता था। विद्या माता का निरादर करने से विद्या नष्ट हो जाती है। यह मान्यता सभी की थी। परन्तु धीरे-धीरे यह श्रद्धा भी लोप होती जा रही है। फिर न तो गुरु के प्रति आदरभाव रह गये और न पुस्तकों के प्रति तो क्या सहज में ही विद्या आ जायेगी ? हजार उपाय किये जायें, अगणित मनोवैज्ञानिक, शिक्षा-पद्धतियों का आविष्कार क्यों न हो जाये, लेकिन जब तक विद्यार्थियों में अध्यापकों एवं पुस्तकों के प्रति, समुचित रूप से आदरभाव पैदा करने के ठोस उपाय नहीं किये जायेंगे, किसी भी प्रणाली द्वारा शिक्षा के गिरते हुए स्तर को उठाने में सफलता मिलने में सन्देह है।

श्रद्धा भाव कैसे बढ़ाया जाय—जमाने की बदली हुई परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाकर हमें चलना चाहिए। प्राचीनकाल जैसे निर्लोभी, सदाचारी तथा तपस्वी गुरु नहीं हैं, फिर विद्यार्थियों में उस प्रकार की श्रद्धा होना कैसे शक्य हो ? लेकिन फिर भी हम बहुत कुछ कर सकते हैं। इस क्षेत्र में अभिभावकों के सहयोग की सबसे अधिक आवश्यकता है। यदि वे सतर्क हो जावें, तो अध्यापकों को भी ठीक मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलेगी। इस दृष्टि से कुछ व्यावहारिक बातें नीचे लिखी जा रही हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(१) आप अभिभावक के रूप में अपने बच्चों में अध्यापक समुदाय के प्रति सम्मान भाव पैदा कीजिए। जब वह स्कूल जाने लगे और विकसित अवस्था में हो, तो आप उसे सदैव समझाते रहें कि शिक्षा प्राप्त करने के लिए उसे अपने सब अध्यापकों के प्रति श्रद्धाभाव रखना आवश्यक है। यदि वह स्कूल में किसी शिक्षक के प्रति अशिष्ट व्यवहार करेगा तो उसकी हानि होगी। उचित सम्मान-शिष्टता की प्रेरणा आप बच्चे को देते रहें। यदि कभी बुरी सोसायटी में फँसकर आपका बच्चा विद्यालय में कोई अशिष्ट कार्य कर बैठे, तो उसकी सूचना पाते ही आप उसे सख्त शब्द कहें, सजा भी दें और स्वयं अपने साथ उसे स्कूल ले जाकर प्रधानाचार्य एवं सम्बन्धित अध्यापकों से क्षमा-याचना करें।

(२) हड़ताल, आन्दोलन या इस प्रकार की सामूहिक विघटनकारी कार्यवाहियाँ बच्चे स्कूलों एवं कॉलेजों में करते रहते हैं। इससे उनका स्कूल से निष्कासन भी हो जाता है या उनका नाम काली सूची में लिख लिया जाता है। आजकल बच्चे राजनैतिक दलों के बहकावे में आकर इस प्रकार की अनियमित कार्यवाहियाँ कर बैठते हैं क्योंकि राजनैतिक दल को स्वार्थ साधन का अवसर मिलता है और अल्पायु बच्चे शीघ्र बहकावे में आ जाते हैं। बच्चों में दलबन्दी, उच्छृंखलता आदि से एक विष फैलता है। उनका ध्यान पढ़ाई की ओर से हटकर अन्यत्र चला जाता है। यह सब बच्चों के लिए हानिप्रद है। इसका प्रभाव बच्चों के भावी जीवन पर पड़ता है। अतः आप इस दिशा में पूर्ण सतर्क रहें। अपने बच्चे को किसी भी दलबन्दी में शामिल होने की अनुमति न दें। यदि वह आपकी जानकारी में किसी सामूहिक विघटनवादी प्रक्रिया में हिस्सा लेता है अथवा रुचि दिखाता है, तो आप उसे इन सबकी हानियों से उसको अवगत करा दें।

(३) परीक्षा पास करने के प्रमाण-पत्र के साथ बच्चे के स्कूल जीवन के रहन-सहन, व्यवहार एवं चरित्र के सम्बन्ध में विद्यालय का प्रधानाचार्य 'चरित्र प्रमाण-पत्र' देता है। इस प्रमाण-पत्र की बड़ी मान्यता होती है। यदि प्रधानाचार्य किसी विद्यार्थी के चरित्र को सन्देहास्पद अथवा असन्तोषजनक लिख दें, तो उस विद्यार्थी का नाम किसी विद्यालय में नहीं लिखा जा सकता है और न नौकरी के किसी चुनाव में ही वह चुना जायेगा, भले ही अच्छे अंकों से क्यों न परीक्षा पास की हो ? बच्चे के भावी जीवन के लिए 'चरित्र प्रमाण-पत्र' बड़े महत्त्व का होता है। चूँकि साधारणतया प्रधानाध्यापक अच्छे चरित्र का प्रमाण-पत्र दे देते हैं, इसीलिए अभिभावकों एवं बच्चों को इसका महत्त्व कम प्रतीत होता है। अभिभावकों को इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि उनके बच्चे को अच्छा प्रमाण-पत्र मिले। इसके लिए उन्हें कभी-कभी विद्यालय जाकर प्रधानाचार्य एवं सम्बन्धित अध्यापकों से मिलते रहना चाहिए और जहाँ एक ओर से बच्चे की पढ़ाई की जानकारी करें, तो चरित्र एवं व्यवहार के सम्बन्ध में भी पूछताछ अवश्य करें। बच्चे के सामने ही उन्हें अध्यापकों से पूछना चाहिए कि क्या वे बच्चे के व्यवहार से सन्तुष्ट हैं ? इससे बच्चे में भय भी पैदा होगा कि यदि कहीं मैंने किसी मास्टर साहब के प्रति कोई अशिष्ट व्यवहार किया, तो इसकी सूचना तो पिताजी को मिलेगी ही, फिर मैं दण्ड से नहीं बच सकता।

(४) सबसे बड़ा उपाय यह है कि आप स्वयं शिक्षक समुदाय के प्रति आदर भाव रखें। अपने घर में अथवा सार्वजनिक रूप से अध्यापक समुदाय की आलोचना न करें। ऐसी बात आप कभी अपने मुँह से न निकालें, जिससे शिक्षकों की प्रतिष्ठा पर आँच आती हो। यह सम्भव है कि कभी आप किसी अध्यापक विशेष के व्यवहार से सन्तुष्ट न हों अथवा उसने आपके बच्चे के साथ किसी प्रकार की ज्यादती की हो, ऐसी स्थिति में आपका कर्त्तव्य हो जाता है कि आप प्रथम तो उसी अध्यापक से मिलकर अपने भ्रम को दूर कर लें, यदि उससे भी आपकी शंका बनी रहे, तो आप अपनी शिकायत मुख्याध्यापक अथवा उच्चाधिकारी तक पहुँचा सकते हैं। लेकिन इस तथ्य को अच्छी तरह समझ लेना है कि एक अध्यापक की भूल का दोष सम्पूर्ण अध्यापक समुदाय पर नहीं मढ़ा जा सकता। सारे अध्यापकों की खुली निन्दा, उपहास आपको नहीं करना चाहिए, विशेषतया बच्चे के सामने तो उस अध्यापक के बारे में कोई भी अपमानसूचक शब्द नहीं कहना चाहिए। इससे बच्चे के हृदय से अध्यापकों के प्रति सम्मान-भाव उठ जायेगा। एक से बिगड़ी बात सबके लिए लागू नहीं होती है।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपने पैसे अथवा पद के मान, अभिमान में मदान्ध होकर बच्चों की छोटी शिकायतों पर विश्वास करके अध्यापकों के प्रति अपशब्द लिखने लगते हैं या उनकी शिकायतें करने लगते हैं। उन्हें चाहिए कि विवेकसंगत मार्ग को अपनावें। यदि कोई बात ऐसी उठे, तो उसे ठीक प्रकार से समझ लें। उदाहरण के लिए यदि आपका छोटा बच्चा रोता हुआ आपके पास पहुँचा और शिकायत की कि मास्टर साहब ने हमें मारा है, तो आप ताव में आकर स्कूल पहुँचे और बिना सही बात का पता लगाये मास्टर साहब से झगड़ा करने अथवा उन्हें डाँटने-डपटने को तैयार हो गये। यह एक गलत तरीका है। इससे अध्यापक का सम्मान घटता है। आपकी विवेकहीनता मालूम होती है और इन दोनों का कुप्रभाव आपके बच्चे पर पड़ता है।

आज के युग में अध्यापक समुदाय सबसे दीन-हीन, गरीब और कमजोर समझा जाता है। इसी कारण योग्य वर्ग इसकी ओर शीघ्र आकर्षित नहीं होता। किसी पढ़े-लिखे को जब तक दूसरे विभाग में नौकरी मिलने की लेशमात्र भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आशा रहती है, वह शिक्षण व्यवसाय की ओर आकर्षित नहीं होता। जब वह चारों ओर से निराश हो जाता है, तो विवश होकर अन्त में अध्यापक बनने की चेष्टा करता है और बनने के बाद भी यदि उसका चुनाव किसी सरकारी नौकरी में हो गया, तो चाहे कम वेतन ही हो, वह त्याग-पत्र देकर वहीं चले जाना पसन्द करेगा।

इसका पूरा दोष हमारी समाज व्यवस्था का है। जनसाधारण में इसी हेतु अध्यापकों की प्रतिष्ठा नहीं हो पाती। बच्चों से यह स्थिति छिपी नहीं रहती, तो फिर जब समाज में उनका हल्कापन है तो बच्चे कैसे उनके प्रति उच्च आदर भाव बना सकते हैं ? अतएव इस दयनीय स्थिति को बदलने और इसमें आवश्यक सुधार लाने के लिए अभिभावकों को प्रयत्नशील होना चाहिए। नेता, अधिकारी, कर्मचारी एवं जिम्मेदार व्यक्ति सब ही तो अपने बच्चों के अभिभावक हैं। उन सबको मिलकर अध्यापकों के उचित अधिकार एवं पद को दिलाना चाहिए। इससे शिक्षा का स्तर उठेगा। तभी बच्चों में आदर-भाव पैदा होगा।

भावी पीढ़ी को अनुशासित, विनम्र एवं श्रद्धा-भाव से ओत-प्रोत होना चाहिए। इसकी नींव घर के साथ-साथ विद्यालय में रखी जाती है। यदि आप उसे इस आयु में अपने अध्यापकों के प्रति श्रद्धावान बनायेंगे तो आगे चलकर वह आप और घर के सभी बड़े-बूढ़ों के प्रति विनम्र और शिष्ट रहेगा, जिससे आपको अपनी सन्तान से जीवन भर सुख मिलेगा।

बालकों की शिक्षा और संस्कृति

अँग्रेजी शासन की जिन दिनों स्थापना हुई थी, उन दिनों उन्हें अपना तन्त्र चलाने के लिए अँग्रेजी पढ़ने की आवश्यकता थी। स्कूल कम थे। जो लड़के पास होकर निकलते थे, उन्हें तत्काल नौकरी मिल जाती थी। मन्दी के जमाने में नौकरी वाला नफे में रहता था। रुतवा बढ़ता था, सो अलग। उस समय की और आज की परिस्थितियों में जमीन-आसमान जैसा अन्तर है पर हमारे सोचने के तरीके में अभी भी अन्तर नहीं आया है।

हर साल ग्रेजुएट लड़के लाखों की संख्या में निकलते हैं, उन्हें नौकरी कहाँ मिले? कौन नौकर रखे ? फिर महँगाई का जो दौर है, उससे आधा-तिहाई वेतन तो मकान किराये में निकल जाता है। शेष में सफेदपोशों के बीच सफेदपोशों का तौर-तरीका अपनाकर गुजारा करना कठिन पड़ता है। फिर घर वाले भी यह आशा करते हैं कि ग्रेजुएट बनने में जो पूँजी लगी है, वह ब्याज समेत बीस-तीस हजार से कम नहीं लगी होती उसका मूलधन न सही, ब्याज तो लौटना ही चाहिए। उधर जब गुजारा कठिन पड़ रहा है तो घर के लिए कहाँ से भेजा जाये ? न भेजने पर छोटे सभी लड़के बागी होते हैं और चित्र-विचित्र तर्कों के सहारे वे भी ग्रेजुएट बनकर कम से कम दो लाभ तो उठाना ही चाहते हैं। एक तो कम पढ़ों के सामने अपनी योग्यता का बखान करना और इसी आड़ में किसी खाते-पीते घर की लड़की दहेज समेत हथिया लेना।

सच बात यह है कि आज की परिस्थितियों में ऊँची शिक्षा दिलाना और उपयुक्त नौकरी दिलाने के लिए पढ़ाई के समतुल्य ही रिश्वत देने का इन्तजाम करना, यह हर किसी के बूते की बात नहीं रही। चपरासियों की जगह खाली होने पर ग्रेजुएटों की अर्जियों का ढेर लग जाता है। उनमें से भी किसी एकाध का तुक बैठता है, शेष इसी प्रतीक्षा में निर्धारित आयु समाप्त कर बैठते हैं। जन्मभर मेहनत करने का अभ्यास न होने से घर का कृषि, शिल्प आदि का काम बन नहीं पाता। सरकार से कर्ज लेकर कोई धन्धा आरम्भ करने पर ऐसे लोग ९९ प्रतिशत असफल होते हैं। यह मान्यता असत्य नहीं है कि साहब लोग हुकम चला सकते हैं, कलम घिस सकते हैं, पर व्यापार नहीं कर सकते। उत्तरप्रदेश की सरकार द्वारा हाथ में लिया हुआ बस व्यवसाय, स्कूटर निर्माण, चीनी मिल आदि निरन्तर घाटा दे रहे हैं। ऐसी दशा में अनुभवहीन कॉलेजों के लड़के कर्ज लेकर कोई व्यवसाय सफल कर सकेंगे, यह आशा करना दुराशा मात्र है। जमानत में गिरवी रखी हुई घर की जमीन नीलाम होने की नौबत आती है और सारा घर हैरान होता है।

स्थिति को देखते हुए हर अभिभावक को सोचना चाहिए कि लड़कों को ऊँची पढ़ाई पढ़ाना उनके भाग्य के साथ जुआ खेलना है। जुए में भी कमाते कम और हारते ज्यादा हैं। यही बात लाटरी के सम्बन्ध में भी है और ऊँची नौकरी के सम्बन्ध में भी। इसलिए अच्छा हो कि औसत दर्जे के लोग मैट्रिक तक, तब तक पढ़ाएँ, जब तक लड़का १८ वर्ष का नहीं हो जाता। इसके बाद किसी कारोबार में लगा देना चाहिए। अच्छा यह है कि नया धन्धा ढूँढ़ने की अपेक्षा पैतृक धन्धा अपनाया जाये। व्यापार में अनुभव मुख्य है। वह अनुभव अभ्यास से बढ़ता है। धन्धा कारोबार पढ़े-लिखे लड़कों से वही कराना चाहिए जिससे उनके सलाहकार, सहायक समय-समय पर सही सलाह दे सकें और अनुभवहीनता के कारण जो कठिनाइयाँ आती हैं, उनसे पार होने का तरीका बता सकें। अब हर किसी को यह समझ लेना चाहिए कि कड़े परिश्रम को अपनाये बिना पार होने का कोई चारा नहीं। पंखे के नीचे, कुर्सी-मेज पर बैठकर साहब बनने और मजा उठाने का जमाना अब चला गया। रिश्वत, बेईमानी के बल पर ही गुलछर्रे उड़ाये जा सकते हैं पर उसका जमाना अब तेजी से जा रहा है। अब समझदारी और मेहनत के सहारे ही कोई अपनी जिन्दगी पार कर सकेगा। अभिभावकों का कर्तव्य है कि कच्ची उम्र के अपने लड़कों को इसी प्रकार का उचित परामर्श दें। उनके बालहठ पर ध्यान न दें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कन्याओं के सम्बन्ध में भी यही बात है। आमतौर से उन्हें गृहस्थी चलानी होती है। परिवार के साथ निर्वाह उनका सबसे बड़ा गुण है। अपना शरीर, दाम्पत्य जीवन, शिशु पोषण, अर्थ-व्यवस्था इन्हीं के आधार पर कोई लड़की गृहलक्ष्मी बनती है और सबका सम्मान पाती है। आज की कॉलेज-शिक्षा में इन नितान्त आवश्यक विषयों का कोई समावेश नहीं है। कॉलेज में पैर रखते ही उनके दिमाग में मेमसाहब बनने, किसी अफसर की पत्नी बनकर मोटरकार में उड़ी फिरने के सपने घूमने लगते हैं। किन्तु साधारण गृहस्थी में जब उन्हें वैसा वातावरण नहीं मिलता तो उनकी मनःस्थिति असंतुलित हो उठती है। हिस्टीरिया, हत्याएँ, आत्महत्याएँ ऐसी ही उद्विग्न मनःस्थिति में होती हैं—तलाकें भी।

इसलिए कन्या-शिक्षा के सम्बन्ध में भी आज के अभिभावकों को नये सिरे से विचार करना चाहिए। अठारह वर्ष की आयु में प्रायः मैट्रिक हो जाती है। इससे कम आयु की किसी लड़की को विवाह करना भी नहीं चाहिए अन्यथा वह अपना स्वास्थ्य भी गँवा बैठेगी और प्रतिभा भी। इसके उपरान्त उसे क्या करना है ? यह निश्चय करना चाहिए। विवाह करना हो तो मध्यवर्ती परिवार में निर्वाह करने का—हाथ बँटाने का सलीका सीखना चाहिए। नौकरी करनी हो तो विवाह के झंझट में नहीं पड़ना चाहिए। बड़ी नौकरियों की बात दूसरी है अन्यथा अध्यापिका स्तर की मामूली नौकरी करते हुए गृहस्थ का संचालन और बच्चों का परिपोषण बहुत भारी पड़ता है और घोषित या अघोषित तलाक की नौबत आ जाती है।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि भारत की परिवार व्यवस्था में फिट होने और उसे उच्चस्तरीय बनाने की शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है। तथाकथित गुरुकुलों में भी नहीं। ऐसी दशा में अच्छा हो कि सुलक्षिणी महिलाएँ ही सयानी कन्याओं को गृहलक्ष्मी बनाने का पाठ्यक्रम स्वयं चलायें और विभिन्न परिस्थितियों में आने वाली विभिन्न घटनाओं को, मोड़-मरोड़ों को सुलझाने की विधि-व्यवस्था सिखाएँ। ऐसी शिक्षा, कहीं बन पड़े तो किसी अच्छे अनुशासन के अन्तर्गत उसे चलाने का प्रबन्ध करना चाहिए। यों सुसंस्कृत परिवारों की रीति-नीति से अवगत होने के उपरान्त चतुर लड़कियाँ स्वयं भी अपने जीवन की रूपरेखा बना लेती हैं। सुसंस्कारिता की ओर ही हर लड़की का ध्यान मोड़ा और महत्त्व समझाया जाना चाहिए।

विवाह योग्य लड़की को समझाया जाना चाहिए कि सिनेमाओं में देखा गया या दिखाया गया स्वप्नलोक नितान्त अवास्तविक और अव्यावहारिक है। उसी प्रकार लट्टू होकर लड़की स्वयं देखकर पसन्द करने की बाल हठ के पीछे अँधी दौड़ नहीं दौड़नी चाहिए। भारत में मध्यम स्तर का रंग-रूप ही लड़कियों का होता है। उसकी गरिमा सुसंस्कारिता पर निर्भर है। नृत्य-गायन पर नहीं। उन्होंने यदि परलोक के सपने सँजो रखे होंगे तो व्यावहारिक धरातल पर उतरते ही प्रतीत होगा कि उनके बच्चे गृहस्थ जीवन में जिस शालीनता की आवश्यकता है, उससे वंचित रहेंगे और ठोकरों पर ठोकरें खाते फिरेंगे।

दहेज, दिखावा, शान से तो दूर रहना चाहिए पर सुसंस्कारी घर-परिवार पसन्दगी का केन्द्र-बिन्दु बनाना चाहिए। अत्यधिक ऊँचे या अत्यधिक नीचे परिवारों की लडकियाँ गृहस्थी को उस तरह नहीं चला पातीं जिस प्रकार कि सभ्य समुदाय में चलना या चलाया जाना चाहिए। इस प्रकार लड़की तलाश करते समय उसका स्वभाव देखना चाहिए। यह शिक्षा, सम्पदा दोनों से अधिक बहुमूल्य है। ऐंठ, अकड़, शेखीखोर, नशेबाज, कुसंगी लड़के भले ही उच्च शिक्षित हों या धनवान, उन्हें कानी-कौड़ी जितना भी महत्त्व नहीं देना चाहिए। संस्कारवान, सहनशील, हँसमुख, मितव्ययी, परिश्रमी, दूरदर्शी लड़के ही गृहस्थ जीवन को सही तरीके से चला या निभा पाते हैं।

बालकों को जन्म ही न दीजिए उनका निर्माण भी करिए

मनोवैज्ञानिकों ने अनेकों परीक्षणों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि बालक के व्यक्तित्व निर्माण की आधारशिला उसके जीवन के प्रथम पाँच वर्ष होते हैं। इस समय जो भी संस्कार उसके मानस-पटल पर बन जाते हैं—उन्हीं का भविष्य में विकास होता है। अतएव ये प्रारम्भिक वर्ष माता-पिता, अभिभावकों की कसौटी स्वरूप ही होते हैं। परिवार का जैसा वातावरण वे बनाये रखेंगे, शिक्षा-दीक्षा बच्चे को देंगे—वही भविष्य में उभरकर सामने आयेगी।

केवल बच्चे पैदा करके ही माता-पिता के कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती अपितु बालक के जन्म के पश्चात् उनकी कर्त्तव्य-कसौटी सम्मुख आती है। बच्चे उत्पन्न करना तो सरल है परन्तु उनके व्यक्तित्व का समुचित विकास करना—उन्हें सद्गुणी, सदाचारी, सुकर्त्तव्यवान नागरिक बनाना अत्यन्त श्रम तथा कष्टसाध्य है। लेकिन उत्तरदायी माता-पिता बालकों पर प्रारम्भ से ही सुसंस्कार डालने में, समुचित शिक्षा-दीक्षा देने में सचेष्ट, सजग रहते हैं।

प्रायः बालक एक वर्ष की आयु तक अपने चारों ओर के पर्यावरण को देखने-समझने लगता है। ज्यों-ज्यों वह बड़ा होने लगता है परिवार के लोगों से हिलता-मिलता जाता है। परिवार के पर्यावरण का, उसके सदस्यों का प्रभाव बच्चे के ऊपर अपरिहार्य रूप से पड़ता है। उसकी ग्रहणशक्ति अत्यन्त तीव्र होती है तथा उचित-अनुचित का ज्ञान न रहने के कारण जो कुछ भी वह देखता है—सीखता जाता है। अतएव अभिभावकों का यह प्रथम कर्त्तव्य हो जाता है कि बच्चे को समुन्नत बनाने से पूर्व वे स्वयं अपने आचार-व्यवहार को सुधारें तथा उसके सम्मुख कोई भी अवांछनीय व्यवहार न करें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ज्यों-ज्यों शिशु बढ़ता जाता है उसे भी बड़ों की भाँति साथियों की तलाश रहती है। बालक के प्रथम साथी बनते हैं खिलौने। यों अधिकांशतः माता-पिता खिलौने को मनोरंजन का साधनमात्र कहकर उनके चयन में उपेक्षा बरतते हैं तथा उन पर तनिक भी धन व्यय करना अनावश्यक भार मात्र ही समझते हैं। परन्तु यह वृत्ति उचित नहीं है।

खिलौने के माध्यम से बच्चों को सरलता से जीवनोपयोगी वस्तुओं का ज्ञान कराया जा सकता है तथा उसकी रुचि-रुझान को अभिप्रेत दिशा में मोड़ा जा सकता है। अमेरिका आदि प्रगतिशील देशों में अभिभावक छोटे-छोटे बालकों को खिलौने के माध्यम से विविध वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करा देते हैं तथा अनेक जीवनोपयोगी वस्तुओं का परिचय कराते हैं परिणामतः बालक अल्पायु में ही व्यावहारिकता में पारंगत बन जाते हैं।

थोड़ा बड़ा होने पर बच्चे अपने हमउम्र बालकों के साथ खेलने में रुचि लेने लगते हैं तथा खिलौनों के प्रति उनका आकर्षण कम हो जाता है। वस्तुतः यह देखा जाये तो बालक के सामाजिक विकास में समवयस्क साथियों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। उनके साथ जहाँ वह विभिन्न खेल सीखता है—वहाँ दूसरी ओर बहुत सारी सामान्य जानकारियाँ भी प्राप्त करता है। मित्रों से वह खुलकर विविध विषयों पर वार्तालाप करता है तथा उनके दृष्टिकोण से परिचित होता है। साथियों के बीच में रहते हुए बालक में उदारता तथा मिल-जुलकर कार्य करने की वृत्ति भी आती है।

बालक जैसे साथियों में रहता है, वैसा प्रभाव उस पर पड़ता है। माता-पिता का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे बालक के लिए उचित साथियों का चुनाव करें। अभिभावकों को चाहिए कि वे न केवल अपने बालक को ही अपितु बालक के मित्रों को, पड़ोसी बच्चों को भी शिष्टाचार सिखायें तथा उनकी रुचियों को परिष्कृत करें। आज के बालक ही कल राष्ट्र के कर्णधार बनेंगे। अतएव उन्हें सन्मार्गगामी, सद्गुणी, सचरित्रवान बनाना राष्ट्र की महती सेवा है।

सन्तान को जन्म ही नहीं, संस्कार भी दें

संस्कारवान माता-पिता बच्चों के चरित्र की नींव बाल्यावस्था में ही डालते हैं, जबकि दिक्भ्रान्त कर आचरणहीन बनाने में भी प्रमुख हाथ उन्हीं का रहता है। उनके निर्माण में सबसे बड़ा हाथ अभिभावकों का है। बच्चों के स्थूल शरीर तथा संस्कार उन्हीं से पूर्णरूपेण प्रभावित रहते हैं। कोई भी बच्चे न तो जन्मजात महापुरुष होते हैं, न असफल व्यक्तित्व। ये दोनों ही परिस्थितियाँ बाल्यावस्था की नींव के आधार पर विकसित होती हैं, जो परिवार की छत्रछाया में सजती, सँवरती हैं।

बच्चों में नया उत्साह रहता है इसे चाहे जिस दिशा में नियोजित किया जा सकता है। एक पक्ष सृजनात्मक है, दूसरा ध्वंसात्मक। वर्तमान समाज के निर्माण में उनसे नयी आशाएँ की जा सकती हैं, तो इसके विपरीत इनकी वृद्धि करने की परिस्थितियाँ भी निर्मित हो सकती हैं। यह उनकी दिशा-निर्देशन पर आधारित है। रचनात्मक दिशा के अभाव में यह शक्ति भटककर निरर्थक ही व्यय हो जाती है। अभिभावकों द्वारा घर की पाठशाला में इसके सदुपयोग हेतु प्रयास किया जा सकता है, जो आज आवश्यक है। नवयुवकों में बढ़ी हुई उच्छृंखलता, उद्दण्डता, अनुशासनहीनता, स्वेच्छाचारिता एवं बुराइयों को उत्पन्न होने का मूल कारण अन्यत्र नहीं उसके अभिभावक में है। यह उनकी सन्तान के प्रति गैर जिम्मेदारी का ही प्रतिमान है।

सन्तान की अनैतिकता, उद्दण्डता का रोना रोने वाले अभिभावकों की कमी नहीं है। वे इसका दोष सामाजिक वातावरण पर मढ़कर स्वयं पाक साफ बचना चाहते हैं। किन्तु समाज का यह दूषित वातावरण कहाँ से आ टपका ? आखिर जो इसे दोषी ठहराते हैं उनका भी तो सहयोग इसमें अभिन्न रूप से जुड़ा है। सभी अभिभावक इस ओर ध्यान दें और स्वयं ही जिम्मेदारी समझते हुए अपनी सन्तान को सही दिशा देने लगें तो आज की निंद्य प्रतिकूल अवस्थाएँ स्वयमेव ही अनुकूल बन जायेंगी।

बाल-सुलभ चपलता के कारण बच्चे तो स्वतन्त्रता पसन्द करते हैं। अभिभावकों की ओर से उन्हें आजादी दिया जाना जितना आवश्यक नहीं उतना उनके भविष्य के प्रति सतर्क रहना। इस दिशा में उदासीनता का दुष्परिणाम स्वयं बच्चों के अभिभावकों को भी भुगतना पड़ता है। अतः इन्हें आजादी के साथ उनकी दिनचर्या के प्रत्येक क्रिया-कलापों का निरीक्षण उनमें आवश्यक सलाह, उनकी सूझ-बूझ को प्रोत्साहन देते रहना तथा अपनी रुचि रखना उनके निर्माण हेतु महत्त्वपूर्ण है। बाल अनुशासन के नाम पर मात्र कुछ नियमों का बना देना तथा उन पर कर्त्तव्यों का भार लाद देना ही पर्याप्त नहीं। हमेशा ही निषेधात्मक प्रक्रिया अपनाते रहने से उनमें मानसिक कुण्ठा बन जाती है। समय-समय पर अच्छे कार्य किये जाने पर प्रशंसा तथा पुरस्कार आदि देना इस दिशा में प्रोत्साहन के लिए जरूरी है।

बच्चों में अनुकरण की प्रवृत्ति सहज होती है। उनको उपदेश से नहीं अपने व्यवहार से भी शिक्षा दी जा सकती है। विकृत व्यवहारों का प्रशिक्षण भी वे अपने अभिभावकों से सीख लेते हैं। अतः उनके उचित-अनुचित निर्माण में माता-पिता का पूर्ण उत्तरदायित्व है। बहुत-से माँ-बाप बच्चे को पैदा करके उनके खिलाने-पिलाने तथा पढ़ने भेज देने में ही अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री समझते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। खिलाना-पिलाना तथा बच्चों का संरक्षण तो पशु भी करते हैं, मानवता इससे ऊँची है। वह सुसंस्कारों में निहित है। यह अधिकतर उपेक्षित रहती है। कुसंस्कारी सन्तान से नहीं, सुसंस्कारी से माता-पिता के गौरव की बात है। उनके आत्म-सम्मान की भी। इसके लिए प्रारम्भ से ही उन्हें सजग रहना चाहिए और अपने निश्चित दायित्वों का अनिवार्य रूप से पालन करना चाहिए।

बालकों का चारित्रिक विकास सद्गुणों से

बच्चों के शारीरिक, मानसिक एवं शैक्षणिक विकास के लिए माता-पिता जितने प्रयत्नशील रहते हैं, उतना ही उन्हें उसके चारित्रिक विकास पर ध्यान देना चाहिए। बड़े होने पर जिन गुणों और अवगुणों को हम खिले फूल के समान देखते हैं—उनका बीजारोपण बचपन में ही होता है। चरित्र पर वंशानुक्रम और वातावरण दोनों का प्रभाव पड़ता है। माता-पिता के रूप, गुण और स्वभाव को बच्चा जन्म से ही लेकर उत्पन्न होता है। यह दूसरी बात है कि अनुकूल या प्रतिकूल वातावरण के कारण वे अधिक विकसित हों या मुरझा जायें। इसलिए इस बात की बहुत आवश्यकता है कि चरित्र की बुनियाद ऐसी मजबूत और सुन्दर डाली जाये कि आगे जाकर उसका उपयुक्त विकास हो सके।

बचपन से ही इस पर समुचित ध्यान न देने का कुपरिणाम यह होता है कि बच्चों में अनेक दुर्गुणों का समावेश हो जाता है। माता-पिता की अधिक लापरवाही, भूल और अधिक लाड़-प्यार या कठोरता से भी छोटा बच्चा भी जिद्दी, भोंदू, चिड़चिड़ा, स्वार्थी, डरपोक तथा क्रोधी बन जाता है। पिता क्रोधित होकर बच्चे को बिगाड़ने का सारा दोष माता पर मढ़ने लगता है और माता अपने को निर्दोष साबित करके पिता पर सारा दोष लगाती है।

बच्चे कारखाने के पुर्जे नहीं हैं, इसलिए एक विशेष नमूने के अनुसार उनके चरित्र को ढालने की बात सोचना उपयुक्त नहीं, साथ ही गुण, कर्म, स्वभाव में बच्चा एक-दूसरे से मिलता नहीं है। इसलिए माँ-बाप को चाहिए कि उसकी विशेषताओं का अध्ययन करके इस बात की चेष्टा करें कि उन्हीं के आधार पर अपने चरित्र को इस तरह ढालें कि वह अपने घर में, समाज में एक उपयोगी व्यक्ति प्रमाणित हो सके। उपयोगी, आदर्श नागरिक एवं परिजन बनने के लिए दया, विनम्रता, निःस्वार्थता, सहनशीलता, धीरता, दूसरे के अधिकारों के प्रति सम्मान और सहानुभूति की भावना आदि गुण आवश्यक हैं। उन सद्गुणों का बालकों में आरोपण करने का उत्तरदायित्व अभिभावकों पर ही होता है।

जिस घर में माता-पिता में परस्पर प्रेम और सहयोग है, अन्य बच्चे तथा परिजन आपस में सहयोग और मेल से रहते हैं, जिस घर में व्यवस्था और शान्ति है, वहाँ बच्चे के चरित्र का विकास सहज रूप से होता है, परन्तु जिस घर पर अनियमित दिनचर्या चलती है एवं स्थिति डावाँडोल रहती है, वहाँ बच्चों के चरित्र का विकास अधूरा रह जाना स्वाभाविक है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। जन्म से लेकर मृत्यु तक उसे समाज में ही रहना होता है। वह घर और समाज में ठीक से निभ सके, अपने सहयोग से जीवन को सुखी बनाये, आस-पास भी प्रसन्नता बिखेरे इसी में उसके जीवन की सफलता है। इसी ध्येय की प्राप्ति की दृष्टि से अभिभावकों एवं अध्यापकों को मिलकर बच्चे का चरित्र निर्माण करना होगा। उसमें निम्नलिखित गुण पैदा करने का प्रयास बचपन से ही किया जाना चाहिए।

१. सदा प्रसन्न रहना—प्रसन्न बच्चे हमेशा स्वस्थ रहते हैं, जबकि चिड़चिड़े बच्चे हमेशा रोगी ही दीखते हैं। जहाँ माता-पिता बच्चे के स्वास्थ्य की चिन्ता करते हैं, वहाँ वे इस बात की भी चेष्टा करें और साधन जुटाएँ कि बच्चे के आस-पास का वातावरण प्रसन्नता बढ़ाने वाला हो, उसको हँसायें, खिलायें तथा सिखायें कि किस प्रकार प्रसन्न रहा जाता है ?

२. साहस—प्रायः माताएँ बच्चों को रोने, जिद करने, अपनी बात मनवाने आदि के समय काल्पनिक हौआ जुजू, भूत, प्रेत, कुत्ता-बिल्ली, सिपाही आदि से डराती हैं। मन पर भय का आतंक बन जाने से वह सदा के लिए डरपोक बन जाता है। साहस का उसमें अभाव हो जाता है। ऐसे बच्चों से भला समाज के आदर्श नागरिक बनने की कल्पना कैसे की जा सकती है ?

३. निःस्वार्थता—बच्चे को स्वार्थी और मतलबी बनने की सीख नहीं देनी चाहिए। इससे वह अपने बहिन-भाइयों से और बड़े होकर माँ-बाप से भी चालाकी करने लगता है। संकीर्ण स्वार्थपरता मनुष्य को हेय-स्तर का बनाती है। परिवार में विघटन का प्रमुख कारण उसके सदस्यों की बढ़ी हुई स्वार्थपरता ही होती है। इसके लिए वह ज्यों-ज्यों बड़ा हो उसे अपने संगी-साथियों और अड़ौस-पड़ौस के संग मिलकर अपने खिलौनों से खेलना सिखाया जाय। उसके हाथ से अन्य बहिन-भाइयों और साथियों को मिठाई, प्रसाद या उपहार बँटवाया जाय। सुख-दुःख में एक-दूसरे की मदद करने की प्रेरणा दी जाय। इन सबसे उसमें निःस्वार्थता का विकास सुगमता से किया जा सकता है।

४. दया और सहानुभूति—कई बच्चों को लँगड़े-लूले व जानवरों या मोहताज भिखमंगों को परेशान करने में आनन्द आता है। किसी पगली या अन्धी बुढ़िया को सब मिलकर परेशान करते हैं। बच्चों की ऐसी वृत्ति को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। पशु-पक्षी पर दया करना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अथवा किसी असहाय की मदद करना उन्हें सिखाया जाय। दया और परोपकार की वृत्ति की कहानियों आदि के माध्यम से बच्चों में विकसित करने का प्रयास करना चाहिए।

५. उत्साह और दिलचस्पी—बालक अपनी दिनचर्या, खेल-कूद, कपड़े, खिलौने, खान-पान आदि में दिलचस्पी लें इसके लिए प्रत्येक कार्य को मनोरंजक और आकर्षक बनाया जाय अन्यथा बच्चों में सुस्ती आने लगती है उनमें प्राकृतिक सजीवता व जिन्दादिली नहीं रह जाती। वे निराशावादी होकर प्रत्येक कार्य को अनुत्साहपूर्ण ढंग से करने लगते हैं। आगे चलकर थोड़ी-सी भी असफलता उनके लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में अवरोधक बन जाती है, उनमें खिलाड़ी स्प्रिट जाग्रत करनी चाहिए।

६. आत्मविश्वास तथा आत्मनिर्भरता—योग्यता होते हुए भी आत्मविश्वास के अभाव में बच्चा यत्न नहीं करता। अपने साथियों में वह झेंपू, चिपकू और पिछड़ा हुआ रहता है। बच्चा जितना अधिक आत्मनिर्भर होगा उसका आत्मविश्वास उतना ही बढ़ता जायेगा। अतः बच्चे में स्वावलम्बन वृत्ति को विकसित करके उसे आत्मनिर्भर व आत्मविश्वासी बनाने का प्रयास किया जाय।

७. नेतृत्व गुण का विकास—बच्चे में इस गुण के विकसित हो जाने से उसका झेंपू और दब्बूपन दूर हो जाता है। बच्चे को दम्भी तो न बनने दिया जाय, पर उसके आत्म-सम्मान को आघात न पहुँचाया जाय। उन्हें अपनी योग्यता के प्रदर्शन के लिए प्रोत्साहित किया जाय, हर समय किसी का पिछलग्गू बनने से बच्चे का व्यक्तित्व छिप जाता है और तरक्की रुक जाती है।

८. सद्गुणों का विकास—बच्चे में सद्गुणों का विकास हो, वे चरित्रवान बनें इसके लिए घर के वातावरण, बड़ों के उदाहरण तथा बच्चों की संगति इन तीनों को विशेष महत्त्व देना होगा, क्योंकि ये ही चरित्र-विकास की आधारशिला हैं। बच्चे को कड़े नियमों से जकड़ने के बदले प्रेम से अनुशासन सिखाना अधिक कल्याणकारी है। इसके अतिरिक्त स्वच्छता, व्यवस्थाप्रियता, समय पर काम करना आदि बातें भी बच्चों को बचपन से ही सिखायी जानी चाहिए।

प्रायः माता-पिता बच्चे के शारीरिक-स्वास्थ्य की ओर सजग रहते हैं, किन्तु उसके मानसिक स्वास्थ्य को परखने की चेष्टा नहीं करते। जिस प्रकार शारीरिक बल, शारीरिक स्वास्थ्य की भित्ति पर खड़ा रहता है, उसी प्रकार चरित्र की आधारशिला मानसिक-स्वास्थ्य है, वह जितना मजबूत होगा, बच्चे का चरित्र भी उतना ही दृढ़ होगा और उसमें सद्गुणों का सुन्दर विकास होगा। सद्गुणों का अभिवर्द्धन ही उत्कृष्टता की दिशा में बढ़ने का श्रेष्ठ-चरित्र निर्माण का सम्बल होता है। बच्चे में इनका समावेश किया जाना यदि सम्भव हो सके, तो उनका भविष्य उज्ज्वल समझा जा सकता है।

सत्य एवं शील

बाल-मनोविज्ञान के प्रसिद्ध यूरोपीय विशेषज्ञ डाक्टर नील ने अपनी पुस्तक बाल-समस्या में एक मनोरंजक घटना का वर्णन किया है। वह लिखते हैं कि एक व्यक्ति अपने बच्चे को मेरे पास लाया और कहने लगा कि इसे चोरी करने का दुर्व्यसन लग गया है, आप इसका सुधार करें। मैंने बच्चे के अध्ययन के लिए उसे अपने पास ठहरा लिया। मुझे मालूम हुआ कि बच्चे की आयु १३ वर्ष की थी। इसके बावजूद उसके पिता ने उसके लिए आधी टिकट खरीदी और रेलवे को जान-बूझकर धोखा दिया। यह लिखते हुए नील प्रश्न करता है कि जो बाप स्वयं अपने बच्चे के सामने झूठ बोलकर पूरे के बजाय आधी टिकट खरीदता है और रेलवे को धोखा देकर हानि पहुँचाता है, वह अपने बच्चे से यह गलत आशा क्यों करता है कि वह चोरी की आदत छोड़ दे।

हम यदि अपने दैनिक जीवन पर दृष्टिपात करें तो पता चलेगा कि हम स्वयं ही जान-बूझकर या अनजाने में अपने बच्चे को झूठ बोलने की शिक्षा देते हैं। उदाहरण के तौर पर, जब कोई ऐसा व्यक्ति हमारे घर आये जिससे हम मिलना नहीं चाहते तो हम किसी बच्चे के मुँह से कहलवा देते हैं कि 'घर नहीं है' यद्यपि हम उस समय घर पर ही होते हैं या कभी कोई व्यक्ति कोई वस्तु माँगने आता है, तो हम उसे कह देते हैं "यह तो अमुक व्यक्ति माँगकर ले गया है।" ऐसे अवसर पर हम यह नहीं सोचते कि घर में जितने बच्चे हैं, वे सब हमारे व्यवहार से झूठ बोलना सीख रहे हैं। मजे की बात तो यह कि हम दूसरों से नहीं स्वयं अपने बच्चों से भी झूठ बोलते हैं। झूठे वादे करते हैं और इस प्रकार उनके मन में यह बात बिठा देते हैं कि सत्य का कोई महत्त्व नहीं।

परन्तु यह हमें समझ लेना चाहिए कि आज का बच्चा ही कल का प्रौढ़ है और किसी व्यक्ति को सफलता इसी बात से नहीं मिल जाती कि उसने अपने स्वभाव के अनुकूल पेशा चुन लिया है। काम में प्रवीणता प्राप्त कर लेना भी सफलता के लिए पर्याप्त नहीं है। प्रत्येक व्यवसाय के कुछ विशेष नियम और ढंग होते हैं, यदि उनका ध्यान न रखा जाए तो प्राकृतिक सुझाव और प्रवीणता आदि गुण कुछ सहायता नहीं कर सकते। बहुत सम्भव है कि इन गुणों के बावजूद भी असफलता का मुँह देखना पड़े और सारा जीवन दयनीय दशा में बीते। संसार केवल यह नहीं देखता कि कोई व्यक्ति अपने काम के विषय में कितनी निपुणता प्राप्त किए हुए है, वह यह भी देखता है कि वह अपने पेशे के व्यावहारिक नियमों से भी परिचित है अथवा नहीं।

कोई भी व्यवसाय हो उसे व्यापार से भिन्न नहीं समझा जा सकता। एक टोकरी उठाने वाला मजदूर भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वास्तव में एक व्यापारी है। वह अपना शारीरिक श्रम बेचकर जीवनयापन करता है। दफ्तर में काम करने वाला क्लर्क भी एक व्यापारी है। वह अपने मानसिक परिश्रम का मूल्य लेता है और दुकानदार तो व्यापारी है ही। वह अपना माल देता है और दाम पाता है। इसी प्रकार वकील, डाक्टर, इंजीनियर सभी व्यापारी हैं। प्रत्येक व्यक्ति संसार की मण्डी में अपना माल बेचकर अपना पेट पाल रहा है। अतः यह कहना गलत नहीं कि व्यापार के नियम प्रत्येक पेशे के आधारभूत नियम होने चाहिए। किसी पेशे को इन नियमों से मुक्त नहीं कहा जा सकता।

ईमानदारी सर्वोपरि—व्यवसाय के व्यावहारिक नियमों के जिक्र में सर्वप्रथम स्थान ईमानदारी का है। इसलिए नहीं कि यह एक धार्मिक आज्ञा है और सभी धर्मों ने इसको बहुत महत्त्व दिया है, वेदशास्त्रों और धार्मिक ग्रन्थों में सत्य की बड़ी महिमा गाई है, वरन् इसलिए कि ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है। इससे ठोस और दृढ़ परिणाम निकलते हैं। इसमें उन्नति का रहस्य छिपा हुआ है। ईमानदारी से अच्छा कोई विज्ञापन नहीं। इससे अच्छी कोई साख नहीं। यह मनुष्य के मानसिक और भौतिक विकास का अमूल्य नियम है।

संसार में ईमानदार व्यापारियों और कर्मचारियों की सदा माँग रही है। वह फर्म, वह दुकान, वह क्लर्क और वह मजदूर बड़ा भाग्यवान है, जिसके साथ बरतने वाले लोग उसे ईमानदार समझते हैं। असफलता अधिकतर उन्हीं लोगों के हिस्से में आती है, जो लेन-देन के खरे नहीं होते। जो अपने आसामियों, ग्राहकों और मालिकों को धोखा देते हैं। जो समय में, धन में, माल में बेईमानी को अपना स्वभाव बना लेते हैं।

कारोबार या पेशे का उद्देश्य लोगों को बुद्धू बनाकर अपना उल्लू सीधा करना नहीं है। यह ठीक है कि कुछ लोग चालाकी और धोखे से भी सफल हो जाते हैं। परन्तु उनकी सफलता वास्तव में कोई सफलता नहीं। एक पुरानी लोकोक्ति है और उसके ठीक होने में कोई सन्देह नहीं है कि "काठ की हाँडी बार-बार नहीं चढ़ती।" बेईमानी और धोखे का भाँडा एक न एक दिन अवश्य फूटता है।

एक वृद्ध व्यापारी को मैं वर्षों से जानता हूँ। उनका देहान्त हो चुका है। ईमानदारी उनके कारोबार का आधारभूत नियम था। वह अपने कारखाने में बढ़िया से बढ़िया माल तैयार करते थे। उनके पास जो ग्राहक आता वह बच्चा हो या बूढ़ा, अज्ञात व्यक्ति हो या अपना सम्बन्धी, सबके साथ समान व्यवहार करते। ऐसा कभी नहीं हुआ कि कोई प्रियजन उनके निश्चित दामों में कोई कमी करवाने में सफल हो सका हो। ऐसा भी कभी नहीं हुआ कि किसी अनजाने व्यक्ति से उन्होंने कभी अधिक दाम लिये हों।

लोगों को उनके तैयार किये हुए माल और उनके लगाए दामों पर पूरा भरोसा था। उनका प्रत्येक ग्राहक उनका चलता-फिरता विज्ञापन था। दूर-दूर से व्यापारी उनसे माल खरीदने के लिए आया करते थे और वह केवल इसलिए कि उनकी ईमानदारी प्रसिद्ध थी।

ईमानदारी मित्र बनाने में सहायता करती है और मित्र सफलता का मुख्य आधार समझे गये हैं। एक बार मेरे एक मित्र ने बताया कि वे एक बार एक पुस्तक विक्रेता की दुकान पर गये, उससे कुछ पुस्तकें खरीदीं। वापस आते समय वे अपना बहुमूल्य कलम उसकी दुकान पर भूल आये। उन्हें याद भी न रहा कि कलम कहाँ रखकर भूल गये हैं। कई सप्ताह बाद उन्हें फिर उस दुकान पर जाने का अवसर हुआ। दुकानदार ने उन्हें देखते ही मेज की दराज खोली और कलम निकालकर उनके हवाले कर दिया। मेरे मित्र के मन पर उसकी ईमानदारी का गहरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इस घटना को कई वर्ष बीत गये परन्तु वे इसे आज तक नहीं भूले और न ही कभी भूल सकते हैं। साथ ही वे उस दुकानदार के स्थायी ग्राहक बन गये।

हम देखते हैं कि अँग्रेजी, जर्मनी तथा अमेरिकन माल की बाजार में बड़ी माँग रहती है। उनका मूल्य चाहे अधिक हो लेकिन भारतवासी भी उसी को खरीदना पसन्द करेंगे। इसका एकमात्र उत्तर यही है कि उनके माल में सच्चाई है। जो कुछ लिखा रहता है माल उसी तरह का होता है। इसके विपरीत हमारे देश की कम्पनियों में प्रायः अधिकांश धोखे पर अपने व्यापार को आधारित करती हैं। दियासलाई जैसी छोटी वस्तु से लेकर बड़ी-बड़ी वस्तुओं में, दवाओं में, खाद्य पदार्थ आदि सब में सजावट ज्यादा दिखती है। यही कारण है कि अपने कारोबार को न तो ख्याति दे पाते हैं, न उससे स्थायी रूप से धन ही कमा पाते हैं।

बच्चे सत्यनिष्ठ कैसे बनें—यह बात भी विश्वास करने योग्य है कि सदा ही सत्य सरल और असत्य कठिन होता है। झूठ बोलने में, बेईमानी करने में, ठगने में, चोरी करने में, व्यभिचार में, चालाकी में, चतुराई में होशियारी और पेशबन्दी की बड़ी आवश्यकता है। इसके विपरीत सच बोलने में, पूरा तौलने में, ईमानदारी बरतने में, सदाचारी रहने में किसी खट-खट की जरूरत नहीं। लेकिन संचित संस्कारों, पुरानी आदतों और वातावरण के दुष्प्रभावों के कारण सन्मार्ग पर चलते-चलते पैर फिर जाता है, आदमी सत्य के विपरीत झूठ का अवलम्बन लेता है। इसलिए आवश्यक है कि बचपन से ही सत्य बोलने की आदत डाली जाए।

(१) बच्चे में सत्य बोलने की आदत डालने हेतु जो सबसे बड़ा प्रयास करना है, वह यही कि माँ-बाप स्वयं सच बोलें। झूठे माँ-बाप अपने बच्चे से सत्य के प्रति आस्था पैदा ही नहीं कर सकते। महात्मा गाँधी ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्य का पाठ अपने पिता से पढ़ा था। उनके पिता राजकोट रियासत के दीवान थे परन्तु सदैव सत्यता के मार्ग पर चलना उन्हें पसन्द था। एक बार सत्य बोलने के लिए उन्हें राजा का कोपभाजन भी होना पड़ा और वे जेल तक भेज दिये गये। परन्तु उन्हें छोड़ दिया गया उनकी स्थायी ख्याति हो गई। व्यक्तिगत उदाहरण सबसे महत्त्वशाली और प्रभावकारी माना गया है। बच्चा चाहे हजार पुस्तकों में सत्य की महिमा का प्रतिपादन करने वाले श्लोक, चौपाइयाँ और दोहे क्यों न पढ़ ले लेकिन यदि कोई व्यक्ति अथवा उसका वातावरण सत्य की महिमा को स्वीकार नहीं करता, तो वह भी सत्य के प्रति आस्थावान नहीं बन सकेगा। माँ-बाप के ज्वलन्त उदाहरण ने बालक मोहनदास करमचन्द गाँधी में सत्य के प्रति निष्ठा पैदा कर दी। पाठशाला में जब निरीक्षक आया तो अपने मास्टर के संकेत करने पर भी उन्होंने अपने साथी विद्यार्थी की कापी से देखकर 'स्पेलिंग' ठीक नहीं किया। यह केवल उनके माता-पिता का प्रभाव था।

(२) सत्य के लिए वातावरण चाहिए। माता-पिता के उदाहरण के साथ-साथ परिवार एवं बच्चे के साथियों को भी ऐसा होना चाहिए, जो सच्चाई को जीवन नीति समझते हों। धार्मिक भाषा में इसी को 'सत्संग' शब्द से सम्बोधित किया गया है। जिन बच्चों को आदर्श व्यक्तियों के सम्पर्क में आने का सुअवसर बचपन से मिल जाता है, उनका चरित्र हीरे के समान चमकदार बनता जाता है। यद्यपि आज सच बोलने वालों की तुलना में झूठे लोगों की बहुतायत है, फिर भी ऐसा नहीं माना जा सकता कि सच्चे लोग हैं ही नहीं। हर क्षेत्र और हर गाँव में ऐसे लोग होते ही हैं। माँ-बाप को चाहिए कि गाँव, मुहल्ले अथवा नगर के ऐसे लोगों, जिनको वह भली-भाँति जानते हों, के पास अपने लड़के को कभी-कभी ले जाकर परिचय करा दें। बच्चे के दिल में उनके प्रति आस्था पैदा करके उन्हें यह उपदेश भी दे दें कि वह कभी-कभी इनके पास अवश्य आया करे, ताकि उनके सम्पर्क से उसे बहुत कुछ शिक्षा मिले। दूर रहने वाले सत्यवादी और आदर्श लोगों से बच्चे का पत्र सम्बन्ध कराना चाहिए। दो चार लोगों के नाम, पते यदि पिता अपने बच्चे को बताकर किसी तात्कालिक समस्या पर अपने बच्चे से उनको पत्र लिखावें तो उत्तर आने से बच्चे में स्वयं उन लोगों के प्रति रुचि पैदा होगी। तब वह उनको पत्र लिखना आरम्भ करेगा और धीरे-धीरे उनके चरित्र का प्रभाव बच्चे पर पड़ता रहेगा।

(३) बच्चे के संगी-साथी ऐसे होने चाहिए जैसा कि आप अपने बच्चे को बनाना चाहते हैं। लोफर, गुन्डे या फैशनपरस्त, लड़कों के साथ उठने-बैठने अथवा खेलने या टहलने की अनुमति आप बच्चे को कदापि न दें चाहे आपको कुछ कड़ाई ही क्यों न बरतनी पड़े ? आप बच्चे की मुँहदेखी न कर उसे बुरे लड़कों के साथ सम्पर्क रखने से मना करें।

साधारणतया १४, १५ वर्ष की अवस्था होती है जब बच्चे के अन्दर उमंग होती है। वह हर अच्छाई-बुराई का मजा चखने की चेष्टा करता है। सभी के सम्पर्क में आने की चेष्टा करता है। इसमें उसे कोई दोष नहीं मालूम होता। जब माँ-बाप उसे किसी विशेष सोसायटी में जाने से रोकते हैं, सिनेमा अथवा नाटक देखने से रोकते हैं, तो वह तरह-तरह के तर्क देकर अपनी श्रेष्ठता एवं दुर्भावना को सिद्ध करने की चेष्टा करता है, माँ-बाप के निर्देशों के औचित्य का अपने तर्कों से खण्डन करके अपनी बात को सही सिद्ध करता है। इस आयु में बच्चे की तर्कशक्ति बढ़ जाती है। ऊँची शिक्षा और अनुभव वाले व्यक्ति तो अपने बच्चों पर तार्किक दृष्टि के प्रभाव डालने में सफल हो जाते हैं, लेकिन साधारण योग्यता वाले माँ-बाप बच्चे के प्रभाव में आ जाते हैं। इसलिए इस अवस्था में चाहे थोड़ी-कड़ाई करना पड़े मगर बच्चे को बुरी सोसायटी में उठने-बैठने, खेलने आदि की अनुमति न दी जानी चाहिए। उसे खेलने, घूमने, टहलने तथा मनोरंजन का अवसर दिया जाए, लेकिन बुरी सोसायटी के साथ नहीं।

(४) सत्यता के मार्ग पर चलकर कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर सँफलता पाने वाले भूत तथा वर्तमानकालीन व्यक्तियों के उदाहरण भी बच्चे के सामने रखने चाहिए। ऐसे लोगों के जीवन चरित्र पढ़ने के लिए बच्चों को पुस्तकें भी उपलब्ध करनी चाहिए तथा उन्हें उत्साहित भी करना चाहिए।

(५) सत्य बात कहने, सत्य आचरण करने अथवा सत्यता का कोई उदाहरण प्रस्तुत करने पर बच्चे की प्रशंसा करने से कभी भी चूकना न चाहिए। यदि किसी समय बच्चे ने सत्य का उदाहरण प्रस्तुत किया है तो उसकी पीठ ठोंकिए, सार्वजनिक रूप से उसकी प्रशंसा कीजिए और उसे उपयोगी वस्तुएँ, पुरस्कार भी दीजिए।

(६) बच्चे प्रायः भय के कारण झूठ बोलने का आश्रय लेते हैं। बच्चों से भूलें तो हो ही जाती हैं। मान लीजिए अनजान में उन्होंने कोई वस्तु तोड़ डाली। उनके मन में भय पैदा होगा कि पिताजी अथवा माताजी को जब मालूम होगा तो वे सजा देंगी। इसी भय के कारण वे तुरन्त इन्कार कर देंगे कि उनसे अमुक वस्तु नहीं टूटी है। मैंने बचपन में एक दिन सहसा बाहर से आकर एक बड़े पत्थर से घर की 'सिल' को तोड़ डाला। यद्यपि मैं उसे तोड़ना नहीं चाहता था परन्तु अनजाने में वह पत्थर उस सिल पर इतनी जोर से पड़ा कि उसके दो टुकड़े हो गये। मैंने उसे उठाकर एक कोने में खड़ी कर दी और स्वयं बाहर बाग में चला गया। शाम को जब वापस आया तब तक सिल टूटने की बात प्रकट हो चुकी थी और मैं मुजरिम भी घोषित हो चुका था। मुझसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब पूछा गया तो साफ इन्कार कर दिया। लेकिन अन्त में पकड़ा गया। इस प्रकार बच्चे भय के कारण झूठ बोलते हैं। माँ-बाप यदि उन्हें भय रहित करें और प्रोत्साहित करें कि कोई भूल होने पर भी वे यदि सत्य बोलेंगे तो उन्हें सजा नहीं मिलेगी तो बच्चों को सत्य बोलने का प्रोत्साहन मिलेगा। इसी प्रकार विद्यालय में अध्यापक भी यदि सत्य बोलने पर, बच्चे को भयभीत करने के बजाय उसके साथ सहानुभूति दिखावें तो बच्चे के मन में सत्य के प्रति आस्था पैदा होगी।

गोस्वामी जी ने सत्य को, ध्वज को, शील को पताका की उपमा दी है। पताका के सहारे ही ध्वज लहराता है। बिना पताका का ध्वज रखा हुआ साधारण वस्त्र मात्र है। इसी प्रकार सत्य की शोभा शील से होती है, अँगूठी में नग जिस प्रकार अँगूठी की शोभा बढ़ाता है, उसीप्रकार शील सत्य की शोभा बढ़ाता है। दोनों एक-दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं।

केवल सत्य से सत्यभाषी के हृदय में अहंकार उत्पन्न होता है। सत्यभाषी यदि शील का सहारा न ले तो वह अहंकारी हो जाता है। नग्न सत्य प्रायः कटु होता है। इस प्रकार का सत्यभाषी को श्रेय मार्ग पर ले जाने के बजाय उसे नाना प्रकार के कलहों में फँसा देता है। वह व्यक्ति अपने पास-पड़ौस वालों की आँखों में खटकने लगता है। सभी लोग उसके विरुद्ध एक मोर्चा जैसा बना लेते हैं। फिर उसका सारा समय आपसी प्रतिद्वन्द्विता में ही लगने लगता है और सत्य भाषण का पूरा-पूरा लाभ उसे नहीं मिल पाता। इसीलिए कहा गया है कि **''सत्यं ब्रूयात् प्रियम् ब्रूयात्।''**

'सत्य बोलो लेकिन प्रिय बोलो, ऐसा सत्य न बोलो जो प्रिय न हो।'

महात्मा गाँधी का सत्य, शील से ओत-प्रोत रहता था। जीवन भर उन्होंने सत्य और अहिंसा का प्रचार किया लेकिन दोनों को प्रेम पर ही आश्रित किया। वे अपनी सत्यता पर हिमालय के समान दृढ़ और अचल रहते थे, भारी से भारी विपत्तियाँ भी उन्हें अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सकती थीं। परन्तु व्यवहार में वे अपने विरोधी से भी रुई के समान मुलायम थे। कभी भी उन्होंने रूखेपन से बात नहीं की। वार्ता के समय सदैव उनके होंठों पर प्रसन्नता नाचती रहती थी। वे अपनी बात को इस प्रकार कहते थे कि सुनने वाले को कर्णकटु न लगे, वरन्, वह उसकी वास्तविकता को हृदय से स्वीकार करें, दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि मीठी वाणी से वे अपने विरोधी के हृदय तक अपनी बात को उतार देने में सफल हो जाते थे।

सद्व्यवहार और शालीनता—ठीक इसी प्रकार हमें अपने बच्चों को अभ्यास कराना चाहिए। एक सबसे बड़ी कमी जो हमें अपने समाज में देखने को मिलती है, वह यही है कि अधिकांश लोग बातचीत का ढंग नहीं जानते। बच्चे तो इससे और भी अधिक अनभिज्ञ हैं। कोई बात कहेंगे तो आधी बात अपने मुँह में रख लेंगे, जल्दी-जल्दी इस प्रकार अपनी बात कह डालेंगे कि सुनने वाला समझ ही नहीं पायेगा कि यह व्यक्ति कह क्या रहा है ? हाइ-स्कूल एवं इण्टर पास विद्यार्थियों को आप देखें उन्हें अपनी बात ढंग से प्रकट करने की योग्यता नहीं होती। बी. ए. में पहुँचते-पहुँचते अभिमान की टोपी उनके सिर पर लग जाती है। चलेंगे तो अकड़कर इधर-उधर कपड़ों को देखते हुए, बातें करेंगे तो अकड़ कर, मानो वे बहुत बड़े उच्चाधिकारी के पद पर पहुँच गये हों। अपने अध्यापकों के सामने तो हर वाक्य के साथ 'जी' जोड़ेंगे मगर किसी बाहर वाले से उनकी बात सुनिये तो इतना बहककर, अकड़ और उच्छृंखल बातें करेंगे मानो जमीन-आसमान का कुलाबा मिला देने की क्षमता उनमें आ गई हो।

ठीक ढंग से बातचीत करने के प्रभाव अपार है। बात का मर्म जानने वाले को किसी जादूगर से कम नहीं समझना चाहिए। वह हर एक से अपना काम बना लेता है। हमारे विद्यालय में एक लड़का है वैसे तो वह काम करने में अधिक सक्रिय नहीं है लेकिन बातचीत करने का ढंग उसे मालूम है, सत्यभाषी भी है। मीठी-मीठी बोली बोलकर अपना कार्य बना लेने की कला में निपुण। एक बार उसे एक अन्य स्कूल से टी. सी. लानी पड़ी। जब वह वहाँ गया तो लिपिक ने तीन दिन के बाद 'टी. सी.' देने को कहा। वास्तव में नियम भी यही है और वह उस समय कार्य व्यस्त भी था। परन्तु कुछ देर चुप बैठने के बाद इस लड़के ने अपनी बात का जादू 'लिपिक' पर चढ़ाना शुरू किया। वह इससे इतना प्रसन्न हो गया कि स्कूल बन्द होते-होते टी. सी. बनवाकर प्रधानाचार्य के हस्ताक्षर कराकर इसे दे ही दिया।

बात तलवार से भी अधिक शक्तिशाली होती है। जिसे बात करने की कला का ज्ञान हो गया, उसकी शक्ति राजा की शक्ति से भी बड़ी माननी चाहिए।

यह बात आती है 'शील' के अभ्यास से। बचपन से ही आप बच्चे को ठीक ढंग से बातचीत करने का अभ्यासी बनाएँ। शील का प्रत्यक्ष प्रदर्शन विनम्रता से होता है। शीलवान व्यक्ति विनम्र होता है, वह जब भी अपनी बात कहेगा, बड़ी विनम्रता से कहेगा, क्रोध के अवसर पर भी अकड़कर अपनी बात न कहना विनम्रता है।

महात्मा गाँधी अपनी सत्य बातों को कहते समय दूसरों की सुनते भी थे और बड़े तरीके से सबकी बातों का उत्तर देते थे।

मधुर भाषण कैसे सिखायें ?—बच्चों को आप जहाँ सत्यभाषी बनाने का अभ्यासी बनाएँ, वहाँ उन्हें ठीक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ढंग से बात करने का तरीका भी बताएँ, जिसे आप निम्नलिखित उपायों से कर सकते हैं—

(१) 'शील' की बात 'शील' से ही समझानी चाहिए। कभी-कभी जब माँ-बाप को अपने व्यस्त जीवन में अवकाश मिले, सायंकाल का समय इसके लिए अधिक उपयुक्त हो सकता है, तब अपने बच्चों को एक साथ बिठाकर उससे बातचीत करना चाहिए। इसी बातचीत के दौरान में उन्हें विनम्रतापूर्वक बात करने का तरीका समझाना चाहिए। उदाहरण द्वारा उन्हें समझाना चाहिए और जीवन में उसकी उपयोगिता भी बतानी चाहिए। यह क्रम एक ही दो बार न चले वरन् महीने में दो एक बार जिस दिन आपको भी अवकाश हो और बच्चे के स्कूल में छुट्टी हो तभी होना चाहिए। सायंकाल आप अपने बच्चों को लेकर टहलने जाएँ, घर भर का मनोरंजन भी होगा और बातों-बातों में उन्हें आप बात करने का ढंग सिखायेंगे।

(२) आप स्वयं उनसे कोमलतापूर्वक हँस-हँसकर बातें कीजिए। जिस समय आप उन्हें सिखा रहे हैं अथवा अवसरों पर भी, आपके बात करने का तरीका बहुत ही सुधरा हुआ होना चाहिए। उसकी कसौटी यह है कि बात करते समय आपका चेहरा प्रसन्न रहे, ऐसा कभी प्रकट न हो कि आप क्रोधावस्था में बातें कर रहे हैं। दूसरी बात यह है कि आपकी बात से आत्मीयता, सहानुभूति एवं सच्चाई की झलक आती हो। यह तीनों गुण ऐसे हैं जो स्वयं श्रोता पर अपना प्रभाव डाल देते हैं। यदि आपकी बात में यह तीनों बातें हैं तो यह हो नहीं सकता कि उसका प्रभाव न पड़े। बच्चे का हृदय भी खुलेगा और वह घुल-मिलकर आपसे बात करना प्रारम्भ करेगा। तब आप देखते रहें कि बच्चे के बात करने में क्या दोष है ? उन दोषों को भी आप धीरे-धीरे समझा-बुझाकर ठीक करें।

(३) बात करने में किन शब्दों पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए किन पर कम, किस समय क्या बात कहनी चाहिए ? श्रोता के 'मूड' को देखकर उसी के अनुसार बातें करनी चाहिए। इन रहस्यों को भी आप क्रियात्मक रूप से बच्चे को सिखाते रहें।

(४) आपके घर में जब मेहमान आवें अथवा कोई भी मिलने-जुलने वाले आवें, आप कहीं अपने बच्चों को लेकर जाएँ, ट्रेन में यात्रा करें अथवा किसी भोज आदि में जाएँ, तो ऐसे स्थानों पर आप ज्यादा से ज्यादा अपने बच्चों को बात करने का अवसर दें। आप कम बोलें अथवा अपनी समान आयु वाले से चाहे आप ज्यादा बात करें लेकिन बच्चे को बात का अवसर अधिक दें। घर पर आने वालों को नाश्ता कराने, खिलाने, कोई चीज लेने का अधिकांश कार्य आप बच्चे से लें। जिस प्रकार राजा अपने बड़े पुत्र को युवराज बनाकर राजकार्य में उसे हिस्सा बाँट देता है, प्रजा से सम्बन्ध स्थापित करना, सेना संचालन, प्रशासकीय कर्त्तव्यों में उसका विधिवत् सक्रिय सहयोग लेता है, उसी प्रकार आपका १५ वर्षीय पुत्र आपका उत्तराधिकारी है। अपने घर के आप राजा हैं तो वह युवराज है। उसे अपने सब कर्त्तव्यों को सिखाइये। जब आपके सामने वह गृहस्थी के कामों में हिस्सा बँटाने लगेगा तो उसका अनुभव बढ़ेगा और जिम्मेदारी आवेगी।

कर्त्तव्यों को निभाने में सबसे बड़ी बात जो बच्चे को सिखानी है, वह है सच्चाई के साथ बातचीत करके दूसरों की सहानुभूति प्राप्त कर लेना। यदि आपका बच्चा अपनी बातों से दूसरों को मित्र बनाने और बड़ों की सहानुभूति प्राप्त करने में सफल होने लगे, तो आप निश्चिन्त हो जाइये और इस बात पर विश्वास कर लीजिए कि वह आपका योग्य उत्तराधिकारी निकलेगा।

(६) घर में अपने साथियों से, बहिनों से तथा माँ से व घर की अन्य स्त्रियों से वह किस प्रकार बातें करता है, इस पर भी आपको ध्यान रखना है। प्रायः यह भी होता है कि बच्चों की जिनसे पटती है या जिन लोगों से वह अपनत्व अनुभव करता है, उनसे तो उसके बात करने का तरीका दूसरे ढंग का होता है और जिनसे उसकी पटती नहीं है, उनसे वह अकड़-अकड़कर, तैश में आकर बातें करता है। आप इन बातों को चुपके-चपके देखते रहें और फिर बच्चे को समय पाकर प्रेम से समझावें कि उसे हर एक से ठीक ढंग से, सलीके से बातें करनी चाहिए। चाहे उससे अपनी पटती हो या नहीं। विचार-भिन्नता रखना दूसरी बात है, लेकिन बेढंगे तरीके से बात करना किसी भी प्रकार शोभनीय नहीं है।

(७) इसी प्रकार आप बच्चे के बाहरी क्षेत्र की देख-भाल करते रहें। अब तो घर से अधिक उसका कार्यक्षेत्र बाहर है। स्कूल, बाजार, मौहल्ला आदि सबमें उसका आना-जाना है, वह अपने मित्रों के परिवारों से भी सम्बन्ध रखता है, उनके घर आता-जाता है। बाहरी दोस्तों से पत्र-व्यवहार भी करता है। इन सब पर आपकी निगाह रहनी चाहिए। कभी-कभी जब आप स्कूल जाएँ तो शिक्षकों और बच्चे के सहपाठियों से पता लगायें कि उसका आपसी व्यवहार कैसा है ? यदि वह सत्य और शील और अपने आचरण में अपनाये है तो निश्चित जानिए कि उसके शिक्षक, सहपाठी सभी उससे प्रसन्न होंगे और उसके प्रति उनकी सहानुभूति होगी। इसी प्रकार बाजार-मुहल्ला अथवा गाँव में भी आप जानकारी रखें। एक सी. आई. डी. के समान पता लगाने का कार्य न करें, क्योंकि इसका पता लगने पर आपका बच्चा आपसे द्वेष-भाव रख सकता है, तब आपकी किसी बात का प्रभाव उस पर न पड़ेगा लेकिन वैसे ही चलते-फिरते, बात-चीत करते अगर आप अपने बच्चे का जिक्र ले आते हैं तो उससे सत्य बातें प्रकाश में आ जाती हैं। आपको पता चल सकता है, तब आप भली प्रकार सोचिए कि जो बातें आप उसे सिखा रहे हैं उस पर वह कहाँ तक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अमल कर रहा है ? यदि उसमें किसी प्रकार की कमी दीख पड़े तो उसे सुधारने की चेष्टा कीजिए।

इस प्रकार धीरे-धीरे परन्तु धैर्यपूर्वक आप अपने बच्चे को सत्य और शील रूप निधियों को उत्तराधिकार रूप में देने में यदि सफल होंगे तो आपका बच्चा भी जीवन भर सुखी रह सकता है और आपको भी सन्तोष करने का अवसर मिलेगा। एक कहावत है—

तुलसी मीठे वचन से सुख उपजत चहुँ ओर।

वशीकरण एक मन्त्र है तज दे वचन कठोर।।

मीठी बोली बोलने का अभ्यास कर बच्चा अपनी जीवनयात्रा सुख, शान्ति और प्रसन्नतापूर्वक पूर्ण करेगा।

शौर्य और धैर्य

दैवी सम्पत्तियों में से सबसे पहला गुण है 'साहस'। साहस मनुष्य का सबसे बड़ा सम्बल है। साहसी व्यक्ति अन्धकार में भी अपना मार्ग ढूँढ़ लेता है। कोई उसे अपने पथ से डिगा नहीं सकता।

एक राजा था जिसके ऊपर शत्रुओं के निरन्तर आक्रमण हो रहे थे। उसे ६ बार पराजय का मुँह देखना पड़ा था। अन्त में वह निराश होकर अपनी जान बचाने के लिए भागकर जंगल के एक कुएँ में छिप गया। वहाँ उसने देखा कि एक मकड़ी अपना जाल बुन रही है, लेकिन बार-बार उसका जाला एक-दूसरा कीड़ा तोड़ देता है लेकिन मकड़ी ने हिम्मत न हारी। एक बार बुनने पर उसका जाला जैसे टूटता कि वह बिना विलम्ब किये फिर बुनना प्रारम्भ कर देती। अन्त में वह जाला बुनने में सफल हो गई। राजा छिपे-छिपे यह देखता रहा उसके मन में भी आवाज उठी कि यदि मकड़ी कई पराजय के बाद अपने उद्देश्य में सफल हो सकती है तो क्या मैं सफल नहीं हो सकता ? राजा कुएँ से निकला और जाकर अपनी बची-खुची सेना इकट्ठी की। अन्त में सातवीं बार उसे विजयश्री मिल ही गई।

जिस मनुष्य में साहस नहीं उसे हम कायर कहकर सम्बोधित करते हैं। 'कायर' किसी काम का नहीं, साहसी एक अमूल्य रत्न के समान है। उसके लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं। सफलतापूर्वक जीवनयापन के लिए साहस रूपी रत्न का धनी होना परमावश्यक है।

जगद्विख्यात वीर नैपोलियन तो साहस का प्रतीक था। बड़ी से बड़ी मुसीबत आ जाने पर वह कभी घबड़ाता नहीं था। एक बार अपनी सेना की छोटी टुकड़ी लिए अन्धकारपूर्ण रात्रि में आक्रमण करने जा रहा था। मार्ग में एक छोटा पुल था लेकिन दुश्मनों ने उसे तोड़ दिया था। पुल को टूटा हुआ देखकर सेना हिचकिचाई। नीचे जमीन दलदल थी। नैपोलियन ने एक मिनट भी सोचने में न लगाया। तुरन्त नीचे कूदा और दलदल में आगे-आगे चलने लगा। अपनी सेना को सम्बोधित कर कहा। आओ जवानों ! तुम्हारा नायक आगे-आगे चल रहा है, घबड़ाने की कोई बात नहीं। सेना भी कूद पड़ी और थोड़ी देर में पूरी सेना उस दलदल के पार खड़ी थी।

उसके साहस की अनेक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं कि जब उसने अपने साहस से पराजय को विजय में बदल दिया। अन्धकार में प्रकाश खोज लिया।

अपने अन्तिम दिनों में जब उसे पराजित करके 'सेंट हेलीना' नामक टापू में बन्दी बना दिया गया था, तब भी उसने अपने साहस का अपूर्व परिचय दिया। उसके चारों ओर कड़ा पहरा था। रात्रि में घोर तूफान आया, वर्षा होने लगी कि पहरे के सारे सैनिक इधर-उधर आत्मरक्षा के लिए छिप गये। नैपोलियन चुपके से निकलकर उसी अँधियारे में फ्रांस की ओर माल ले जाने वाले जहाज में पीछे छुप गया। इधर तूफान निकलते ही उसकी कड़ी खोज होने लगी परन्तु वह तो फ्रांस पहुँच चुका था। जहाज के किनारे लगते ही वह उतरकर चुपके से जंगलों में घुस गया। जब सबेरा हुआ तो सारे फ्रांस में नैपोलियन के भाग जाने का समाचार फैल चुका था। सेना सतर्क कर दी गई थी। लेकिन नैपोलियन भी तो विचित्र धातु का बना था। दिन निकलते ही पेरिस को जाने वाली सड़क पर अकेले ही चल पड़ा। मार्ग में लोग उसे मिलते-देखते मगर साहस की अपूर्व झलक का परिचय देने वाली आँखों के सामने उसका विरोध समाप्त हो जाता। दौड़कर नैपोलियन के पीछे हो जाते। यों पेरिस के किनारे तक पहुँचते-पहुँचते उसके पीछे कई हजार लोगों की भीड़ चलने लगी। जब वह पेरिस के निकट पहुँचा तो सम्राट की सेना नैपोलियन का मुकाबला करने को खड़ी थी। वीर वेष में मार्च करता हुआ नैपोलियन आगे बढ़ रहा था। जैसे ही सेना के निकट पहुँचा तो कड़क कर कहा 'वीरो मैं आ गया, मेरा आदेश है तुम पेरिस के राज्यसिंहासन पर अधिकार करो।' यह वही सेना थी जिसने वर्षों तक नैपोलियन का आदेश माना था। सबकी नसों में बिजली कौंधी। नैपोलियन की वाणी सुनते ही वह सेना एक साथ पेरिस की ओर घूम गई थोड़ी देर में नैपोलियन पुनः पेरिस के राज्यसिंहासन पर विराजमान दिखाई पड़ा। केवल साहस ने यह परिवर्तन कर दिखाया।

प्रथम महायुद्ध में हिटलर जर्मनी के सम्राट विलियम कैसर का एक साधारण सैनिक मात्र था। घमासान युद्ध हो रहा था। मोर्चे पर अचानक हिटलर अकेला पड़ गया था कि उसे शत्रुओं की एक टुकड़ी का उधर से आना सुनाई पड़ा। हिटलर को विश्वास हो गया कि तनिक भी हिचकिचाने से वह बन्दी बना लिया जायेगा। इस समय उसने साहस नहीं छोड़ा। एक तरकीब सोची और तुरन्त बड़ी जोर-जोर से "लैफ्ट-राइट" "लैफ्ट-राइट", "अबाउट टर्न' के आदेश देने लगा। स्वयं ही अपने बूटों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवाज करता और तेज आवाज में आदेश बोलते हुए आगे बढ़ने जैसा प्रदर्शन कर रहा था। हिटलर की आवाज जब शत्रु सेना के कान में पड़ी तो उसे अनुमान हुआ कोई बड़ी टुकड़ी इधर ही आ रही है। हवलदार ने अपनी टुकड़ी को तुरन्त मुड़ने का आदेश दिया और दूसरी ओर तेजी से चला गया। हिटलर अपनी बुद्धिचातुरी और साहस के सहारे खतरे से बचा। आगे यही सैनिक जर्मनी का भाग्य निर्माता तानाशाह बना। भले ही उसे पराजय मिली हो लेकिन उसके एक अद्वितीय वीर होने में कोई सन्देह नहीं कर सकता।

साहस के सामने हिंसक-पशु भी नतमस्तक हो जाते हैं। मनुष्य में जब कायरता उत्पन्न होती है, तभी बाह्य शक्तियाँ उस पर आक्रमण कर सकती हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती जब हिमालय पर तप कर रहे थे। एक दिन सहसा इन्हें एक शेर बिल्कुल निकट सामने ही दिखाई पड़ा। शेर को देखकर दयानन्द जी ने अपना साहस न छोड़ा। उसकी ओर आँखें किये हुए अचल भाव से खड़े रहे। थोड़ी देर तक तो शेर इनकी ओर खड़ा ताकता रहा, तत्पश्चात् हारकर जंगल में चला गया। यदि स्वामी जी भयभीत हो जाते तो निश्चय ही शेर उन पर आक्रमण कर देता।

साहस को धर्म का पहला लक्षण माना गया है। गीता ने इसे दैवी सम्पत्ति के रूप में प्रथम स्थान दिया है। तुलसीदास ने धर्म-चक्र का पहिया माना है। गाड़ी पहिये के सहारे चलती है। इसी प्रकार व्यक्ति साहस रूपी धुरी पर टिककर संसार में अपने सभी कामों को सम्पादित करता है।

देश के उत्थान और पतन में साहस को विशेष महत्त्व देते हैं। जब तक देश के नागरिकों में शौर्य रहा विदेशी शक्तियाँ कुछ भी बिगाड़ नहीं सकीं। बर्बर जातियों के आक्रमण हुए उन सब चोटों को वीरतापूर्वक सहन किया। गुप्तवंशीय सम्राट स्कन्दगुप्त की कहानी हमें मालूम है। सीमा पर मंगोलों के आक्रमण हो रहे थे। इस साहसी युवक ने प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक मंगोलों से देश की रक्षा नहीं कर लूँगा, भूमि शयन करूँगा और विवाह न करूँगा। अन्त में सफल भी हुआ।

शिवाजी के पास क्या था ? औरंगजेब जैसे प्रतापी मुगल सम्राट से मोर्चा लेने के लिए उसके पास न तो सेना ही थी और न युद्ध-सामग्री। मगर था उसका साहस। उसी साहस ने शिवाजी को सदैव विजय दिलाई। मरहठों में जान फूँक देने का काम वे साहस के बल पर ही कर सके।

वीर छत्रसाल की माँ का नाम 'रानी सारन्धा' था वह भी साहस और स्वाभिमान की पुतली थी, तभी तो छत्रसाल जैसे पुत्र को जन्म दे सकी।

शाहजहाँ का जमाना था। सारन्धा के भाई बुन्देला सरदार अनिरुद्धसिंह के पास घुड़सवारों और पियादों का एक छोटा-सा, मगर सजीव दल था। इसी से वह अपने कुल और मर्यादा की रक्षा करता रहता था। श्री प्रेमचन्द जी अपनी कहानी में लिखते हैं कि "उसे कभी चैन से बैठना नसीब न होता था। तीन वर्ष पहले उसका विवाह शीतलादेवी से हुआ, मगर अनिरुद्ध विवाह के दिन और विलास की रात पहाड़ों पर काटता था और शीतला उसके जान की खैर मनाने में। अनिरुद्ध लड़ाई में था। अँधेरी रात में शीतलादेवी पलंग पर पड़ी करवटें बदल रही थी और उसकी नन्द सारंधा फर्श पर बैठी हुई थी।"

इतने में द्वार खुला और एक गठे बदन में रूपवान पुरुष ने भीतर प्रवेश किया। यह अनिरुद्ध था। उसके कपड़े भीगे थे और बदन पर कोई हथियार न था। सारन्धा ने पूछा—

भैया, यह कपड़े भीगे क्यों हैं ?

अनिरुद्ध—नदी तैरकर आया हूँ।

सारन्धा—हथियार क्या हुए ?

अनिरुद्ध—छिन गये।

सारन्धा—और साथ के आदमी ?

अनिरुद्ध—सबने वीरगति पाई।

शीतला ने दबी जबान से कहा—"ईश्वर ने ही कुशल किया।" मगर सारन्धा के तेवरों पर बल पड़ गये और मुख-मण्डल गर्व से सतेज हो गया। बोली "भैया ! तुमने कुल की मर्यादा खो दी। ऐसा कभी न हुआ था।"

सारन्धा भाई पर जान देती थी। उसके मुँह से यह धिक्कार सुनकर अनिरुद्ध लज्जा और खेद से विकल हो गया। वह वीराग्नि जिसे क्षण भर के लिए अनुराग ने दबा दिया था, फिर ज्वलन्त हो गई। वह उलटे पाँव लौटा और यह कहकर बाहर चला गया कि "सारन्धा ! तुमने मुझे सदैव के लिए सचेत कर दिया। ये बातें मुझे कभी नहीं भूलेंगी।"

अनिरुद्ध किले से बाहर निकला। पल भर में नदी से उस पार जा पहुँचा और फिर अन्धकार में लुप्त हो गया।

इस घटना के तीन महीने पीछे अनिरुद्ध मसरौना पर विजय करके लौटा। सारन्धा के साहसपूर्ण वाक्यों ने उसकी पराजय को विजय में बदल दिया।

यही नहीं खेती-बारी, व्यापार, नौकरी सबमें साहस की आवश्यकता है। अर्थशास्त्र में किसी उद्योग को सफल बनाने के लिए पाँच आवश्यक तत्त्व बताए गये हैं—१. पूँजी, २. भूमि, ३. श्रम, ४. व्यवस्था और ५. साहस, साहस के बिना ये चारों बेकार हो सकते हैं। वही व्यापारी सफल हो सकता है, जिसने साहस का परिचय दिया। साहसी मारवाड़ी सुदूर प्रदेशों में पहुँच-पहुँचकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने व्यापार को जमाने में सफल हुए। साहसी अँग्रेज व्यापारियों ने संसार भर में दूर-दूर तक अपना झण्डा फहरा दिया। मुट्ठी भर अँग्रेज आधे भूमण्डल के स्वामी बन बैठे।

१२, १५ वर्ष के बच्चों की अवस्था गुणों के बीजारोपण की अनुकूल अवस्था है। इसलिए इस आयु में हर सम्भव उपायों से आप उनमें साहस रूपी सम्पत्ति दान करिए।

बच्चों में साहस भाव को कैसे जाग्रत किया जाए ?—कुछ निश्चित नियमों को अपनाकर बच्चों में शौर्य भाव जाग्रत किया जा सकता है। जैसे—

(१) बच्चों को कहानी बहुत प्रिय लगती है। माता-पिता साहसी वीरों की कहानियाँ उनमें साहस के भाव जगा सकते हैं। रात्रि में सोने से पूर्व उन्हें वीरों की गौरव-गाथाएँ सुनानी चाहिए।

(२) बच्चे के व्यक्तित्व का आदर करना बहुत आवश्यक है। थोड़ी-थोड़ी भूलों पर उसे बहुत ज्यादा डाँट-फटकार बताने से अथवा बुरी तरह पीटने से बच्चों का शौर्यभाव दब जाता है। वे कायर, डरपोक और दब्बू बन जाते हैं। बच्चे को आदर की दृष्टि से देखना चाहिए। उसका उतना ही आदर होना चाहिए जितना युवराज का होता है। आप यदि उससे सम्मानपूर्वक वार्ता करेंगे, उसकी बातों को ध्यानपूर्वक सुनेंगे, उसकी उचित माँगों को यथाशक्ति पूरा करने की चेष्टा करेंगे तो वह एक साहसी बालक बनेगा।

(३) बहुत-सी माताएँ अथवा पिता ऐसे होते हैं जो अकारण बच्चे को अपशब्द कहा करते हैं, 'तू नालायक है,' तुझ से कुछ भी न हो सकेगा, तूने तो खानदान का नाम डुबो दिया, घर में बैठा-बैठा मक्खी मारा करता है आदि शब्द बच्चों को यथाशक्ति न कहना चाहिए।

(४) स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि "जो माता-पिता दिन-रात बच्चों के लिखने-पढ़ने पर जोर देते रहते हैं, कहते हैं इसका कुछ सुधार नहीं होगा, 'यह मूर्ख है, गधा है आदि-आदि उनके बच्चे अधिकांश वैसे ही बन जाते हैं। बच्चों को अच्छा कहने से और प्रोत्साहन देने से, समय आने पर वे स्वयं ही अच्छे बन जाते हैं।"

(५) दैनिक कार्यों में बच्चों का सहयोग लीजिए, कभी-कभी उनको उनकी सामर्थ्य से अधिक का भी कुछ काम करने को दीजिए। प्रोत्साहन देकर उनसे काम पूरा कराइये, यदि कोई कठिनाई आवे तो उससे पार निकलने की तरकीब भी बताइए, उनका मार्गदर्शन कीजिए। जब वह काम पूरा कर लें तो उनकी पीठ ठोकिए, शाबाशी दीजिए, इससे उनका साहस बढ़ेगा। समय आने पर वह बड़े से बड़ा काम अपने हाथों में लेने से न हिचकेंगे।

(६) उनके स्वाभिमान को भूलकर भी ठोकर मत मारिए। एक छोटी घटना याद आती है। एक सिपाही के एक लड़का था। एक दिन वह बच्चा किसी से रूठ गया और लाठी उठाकर उसे मारने के लिए दौड़ा। वह व्यक्ति भाग रहा था और सिपाही का बच्चा उस खेद रहा था। सिपाही ने जब यह देखा तो वह अपने बच्चे के पीछे-पीछे दौड़ा। उसे समझा-बुझाकर वह हाथ से लाठी लेने का प्रयत्न कर रहा था। बड़ी दूर तक पीछे समझाते हुए जाने पर तब कहीं बच्चा माना। उसने रुककर लाठी अपने बाप को दे दी। लोग इस घटना को देख रहे थे, उन्होंने सिपाही से पूछा कि बच्चे की उद्दण्डता देखकर आपने उससे तुरन्त लाठी को क्यों नहीं छीन लिया ? सिपाही ने उत्तर दिया कि ऐसा करना तो सरल था परन्तु इससे बच्चे का साहस कुचल जाता, मैं उसमें विवेक-बुद्धि उत्पन्न कर उसे बुरे कामों से रोकना चाहता हूँ, लेकिन उसके साहस को कुचलना नहीं चाहता।

(७) देशाटन कराने, ऐतिहासिक स्थलों को दिखाने तथा वीर पुरुषों के सम्पर्क में लाने से बच्चे का शौर्य-भाव जाग्रत होता है। जब भी आपको समय मिले आप उसे अच्छे स्थानों के दिखाने के लिए ले जाइये।

(८) सबसे बड़ा आदर्श तो आप स्वयं उपस्थित कर सकते हैं। रात में चूहे की खड़बड़ाहट से भयभीत होने वाले माता-पिता भला अपने बच्चे में साहस के भाव कैसे भरेंगे ?

(९) साहस के भाव को दृढ़ करने के लिए सफलता प्राप्त करना आवश्यक है। जब खेल में बच्चे की जीत होती जाती है, तो उसका साहस बढ़ जाता है, निर्भयता आने लगती है और आत्मविश्वास बढ़ने लगता है, इसी प्रकार परीक्षा में सफलता मिलने पर, बच्चे के अन्दर से भय की भावना कम होती है, उसका साहस बढ़ने लगता है। अतः आप सदैव यह प्रयत्न करें कि खेल में उसके साथी ऐसे हों जो उसके समवयस्क हों, अर्थात् प्रतिद्वन्द्विता में उसके जोड़े के हों। परीक्षा में सफल कराने के लिए आप उसकी शक्ति को तौल लें। प्रायः ऐसा होता है कि बहुत कच्ची उम्र में कुछ लोग अपने बच्चे से आशा करने लगते हैं कि वह दो-दो प्रारम्भिक कक्षाएँ एक साथ पास करे। इसके लिए पैसे वाले लोग कई-कई ट्यूशन लगाकर उस पर और बोझ लादते जाते हैं। पढ़ाई का बोझ जब बच्चे पर अधिक हो जाता है तो दो-तीन कक्षाओं में तो वह तेजी दिखाता है और आगे चलकर उसकी गति मन्द पड़ जाती है। वह कूचर बैल की तरह अगली कक्षाओं का बोझ उठाने में सर्वथा असमर्थ हो जाता है। तब परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने के अतिरिक्त और क्या चारा हो सकता है ? माता-पिता तब बच्चे को बुरा-भला कहकर उसकी हिम्मत को पस्त करने लगते हैं, वे इस बात को नहीं समझते कि दोष तो उन्हीं का है। इसलिए यदि आपका बच्चा कक्षा में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कमजोर चल रहा है, तो उत्तम तो यह होगा कि आप उसे आगे की कक्षाओं में जाने से रोककर उसकी कमजोरी को दूर करिए। शिक्षकों को लालच दिखाकर सिफारिश पहुँचाकर अथवा किन्हीं अन्य अनुचित उपायों से उसे कच्ची तरक्की दिलाना कदापि हितकारी सिद्ध न होगा। बच्चे को भी आप समझा-बुझाकर यही परामर्श दीजिए कि यदि वह उसी कक्षा में जिसमें वह कमजोर है, एक वर्ष और पढ़कर अपनी पिछली कमजोरी मिटा लेगा तो फिर आगे कभी फेल होने की सम्भावना न रहेगी। यदि आप बच्चे से ऐसा करा लेते हैं तो उसका साहस कभी कम नहीं हो सकता।

पहले जैसी स्थिति तो अब नहीं है जिसमें वीर सैनिकों के उदाहरण काम में आयें। लेकिन खेतीबारी, व्यापार, पढ़ाई, नौकरी एवं उद्योग-धन्धों में जिन लोगों ने अपूर्व साहस का परिचय देकर अपने बिगड़े कारोबार को जमाया हो, ऊसर खेती को आबाद कर उसे अन्नपूर्ण बनाया हो, निर्धनता रूपी पिशाचिनी से मोर्चा लेते हुए जिन लड़कों ने अपनी पढ़ाई को जारी रखकर आखिर में सफल हुए हों, ऐसे लोगों के उदाहरण बच्चों के सामने रखने चाहिए। यदि हो सके और ऐसे लोग अपने क्षेत्र में हों तो कभी-कभी अवसर पाकर अपने बच्चों को उनसे मिलाना, उनके प्रेरणात्मक सम्पर्क में लाना हितकर होता है।

बच्चों को सामूहिक सेवा के कार्यक्रम में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। स्काउटिंग, रेडक्रास, सेण्ट जान्स एम्बुलेंस अथवा सेवा-समितियों के कार्यों में भाग लेने से कभी न रोकना चाहिए। उनको प्रोत्साहित भी करना चाहिए। स्काउटिंग बच्चों के लिए बड़ा उपयोगी साधन होता है।

(१०) नदी, पहाड़, जंगल, प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन जहाँ एक ओर बच्चे में व्यावहारिक ज्ञान भरते हैं, वहाँ दूसरी ओर वे कल्पित धारणाओं, भयोत्पादक शंकाओं का निवारण करते हैं। अतः समय-समय इन स्थानों पर बच्चे को ले जाकर जानकारी करानी चाहिए।

(११) साहस के विपरीत अवगुण 'भय' है। भय कभी-कभी तो सत्य परिस्थितियों से पैदा होता है परन्तु अधिकांशतः शंकाओं के आधार पर उत्पन्न हो जाता है। भूत-प्रेत का भय, देवी-देवताओं का भय, पुलिस और अफसर का भय, वह सब छोटे बच्चों में अपने माता-पिता, परिवार तथा गाँव वालों से मिलते हों। हमारे देश में अफवाहें बहुत उड़ती हैं। लोग सत्य बात का पता कम लगाते हैं और मन-गढ़न्त, कपोल-कल्पित बातों पर तुरन्त विश्वास कर लेते हैं। यह सारी बातें उनके हृदयों में भय उत्पन्न करती हैं। उनका साहस दब जाता है। इसलिए जहाँ एक ओर झूठी डींग हाँककर आप बच्चे के हृदय में अविश्वास पैदा न करें, वहाँ यह भी आवश्यक है कि उसके सामने कायरता की बातें न करें। भविष्य के कर्णधारों को कायर बनाना कोई बुद्धिमानी का कार्य नहीं है।

धैर्य एक महत्त्वपूर्ण गुण—जीवन रूपी गाड़ी का दूसरा पहिया है—'धैर्य'। अकेला साहस उस समय तक पंगु है, जब तक धैर्य का सुमिलन उसके साथ न हो।

विपत्ति के पहाड़ टूटने पर, चारों ओर से निराशापूर्ण परिस्थितियाँ भले ही हों लेकिन धैर्यवान व्यक्ति उन सबका निवारण कर डालता है। महात्मा गाँधी को अहिंसात्मक सत्याग्रह चलाने में कितनी बार असफलताओं का मुँह देखना पड़ता है। सन् १९२१, ३१, ३३ आदि के सभी सत्याग्रह पूर्ण सफलता नहीं दे सके। बीच में ही कुछ बाधाओं के कारण उन्हें रोकना पड़ा। सन् १९२१ का सत्याग्रह बड़े वेग से चल रहा था, सबकी धारणा बनती जा रही थी कि सरकार आजकल में ही उलटने वाली है लेकिन चौरी-चौरा के हिंसात्मक काण्ड से विचलित होकर गाँधीजी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया। सम्पूर्ण देश में एक निराशा एवं शिथिलता का वातावरण फैल गया। मगर क्या वह योद्धा कभी हिम्मत हार सकता था ? सन् १९१४ से १९४७ ई. तक निरन्तर संघर्षरत रहना पड़ा। इन दिनों का उत्साह जगा, कितने निराश हुए लेकिन अविचल गति से परिस्थितियों का सामना करते हुए आगे बढ़ते गये अन्त में सफलता ने उनके पैर चूमे।

थोड़ी-सी कठिनाई पर हिम्मत हार जाने वाले मनुष्य अच्छे नहीं माने जाते। जीवन सदा एकरस नहीं रहता। यह उस नदी की भाँति है, जिसमें कभी तेज चढ़ाव आता है और कभी दिखावे की लहरें ही होती हैं। हमें हर दशा में इसे पार करना है। इसका पानी कम गहरा हो तो बेपरवाही के साथ हँसते हुए और मुस्कराते हुए, चढ़ाव अधिक हो तो बड़ी सावधानी, साहस और धैर्य के साथ।

पालन-पोषण की त्रुटि समझिए या मन की बनावट का दोष। हमसे अनेक लोग ऐसे हैं, जो हर्ष और विनोद के क्षण तो हँसी-खुशी से बिता देते हैं। परन्तु कष्ट और कठिनाई सहन करने की तनिक भी सामर्थ्य नहीं रखते। जैसे ही कोई दुःख या कष्ट सामने आता है, वे घबरा जाते हैं। काँटा भी चुभ जाये तो चिल्लाना शुरू कर देते हैं। कभी जमाने के रूखेपन की शिकायत और कभी साथियों के बेवफाई का रोना। भाग्य, ईश्वर की इच्छा तथा मित्रों का चलन सबमें से उनको शत्रुता की दुर्गन्ध आने लगती है। मानो समस्त संसार उनका शत्रु है।

ऐसे लोगों के जीवन में वास्तविक कठिनाइयाँ इतनी नहीं होतीं, जितनी निराधार शिकायतें। हर समय रोना-चीखना, मुख को उदासीन बनाए रखना, आत्मग्लानि ग्रस्त रहना और शिकायतों का विष उगलते रहना उनके स्वभाव और प्रकृति के अंग बन जाते हैं। जिस कार्यालय या सभा में इस प्रकार का एक भी व्यक्ति बैठा हो, वहाँ के द्वार, दीवार, कमरे में पड़ी प्रत्येक वस्तु और आस-पास के सभी लोगों के मुँह पर निराशा की झलक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिखाई देने लगती है। एक व्यक्ति का निराश मुख आस-पास के सभी लोगों के मनोरंजन को भंग कर देता है। दर्द भरी एक ही बात सारी सभा को उदासीन कर देती है।

कई साधारण-सी कठिनाइयाँ हमें केवल इसलिए हब्बा बनाकर डराती और हमारे जीवन को कटु बना देती हैं क्योंकि हम उनके साथ समझौता नहीं करते अन्यथा जिस प्रकार हमारे अन्दर यह शक्ति होती है कि जीवित व्यक्तियों से समझौता करके द्वेष को मित्रता और सहृदयता में बदल देते हैं, उसी प्रकार अपने रूठे हुए दुःखों को भी मना सकते हैं। जिस दुःख के साथ समझौता कर लिया जाय, वह हमारे मन में शिकायतों का विष नहीं पैदा होने देता। इसके विपरीत रूठा हुआ दुःख हमारे मन और मस्तिष्क, शरीर और स्वभाव का रक्त तो चूसता ही है, साथ-साथ हमारे साथियों की प्रसन्नता की जड़ें भी काट देता है।

अभिभावकों का कर्त्तव्य—अपने जीवन से ही धैर्य की शिक्षा दी जा सकती है। बात-बात में रोना, चिल्लाना, प्रकृति और दैव को दोष देने से किसी की मुसीबत कटती नहीं दीखती। संकटों और दुःखों से तो तभी छुटकारा मिल सकता है, जब उससे मुक्ति पाने के लिए प्रयास किया जाए। संसार की सत्यता को समझने के प्रयास से ही यह भाव उत्पन्न होते हैं। जब हम इस तथ्य को समझ लेते हैं तो सबको दुःख-सुख के झूले में झूलना पड़ता है। कभी दुःखों का सामना करना पड़ेगा तो कभी सुख भोगना पड़ेगा। इससे कोई व्यक्ति छुटकारा नहीं पा सकता तभी मैथिलीशरण गुप्तजी की पंक्तियों पर हमें विश्वास होगा कि—

संसार की समरस्थली में धीरता धारण करो।
चलते हुए निज इष्ट पथ पर संकटों से मत डरो।।

खेल-खेल में बच्चों को कभी-कभी निरन्तर पराजय का मुँह देखना पड़ता है। कई बार लगातार हार से कई बच्चे तो हिम्मत हार बैठते हैं लेकिन कुछ उससे निराश न होकर सतत् प्रयत्न में लगे रहते हैं, परिणाम यह होता है कि वह अपनी पराजय को विजय से बदलने में सफल हो जाते हैं। हमें यह देखते रहना चाहिए कि बच्चे कहाँ और किस अवस्था में हिम्मत हार रहे हैं ? कम पढ़ाई और परीक्षा की कठिनता से इनमें दुर्बलता के भाव उठ आते हैं। कभी-कभी आर्थिक तंगी, घर से फीस आदि की व्यवस्था न होने के कारण वे पढ़ने से मन मारकर बैठ जाते हैं। ऐसे अवसर पर आपके थोड़े-से उत्साहवर्द्धक शब्द बिजली जैसा चमत्कार दिखा सकते हैं। किसी बच्चे को आप उदास देखिये और यदि आपसे अपनी विपत्ति का रोना रोने आये तो दुत्कारना, ठुकराना अथवा झिड़ककर उसे भगा नहीं देना चाहिए। आप उसे सहानुभूतिपूर्वक अपने पास बिठा लीजिए। प्रेम से उसकी सब बातों को सुनिये। उसकी कठिनाई कितनी भी छोटी या मनगढ़न्त क्यों न हो लेकिन आपकी मुखाकृति से यह बात कदापि झलकने न पाए कि आप नकली तरीके से उसकी बातों को सुन रहे हैं। यदि इसका तनिक भी आभास बच्चे को हो गया तो या तो वह आपसे अपने दिल की बात कहेगा ही नहीं और यदि कह भी दिया हो तो आपके उपदेश का उसके ऊपर किंचित्मात्र भी प्रभाव न पड़ेगा। बड़ी तल्लीनता के साथ आप उसकी बात को सुनिए और तब सहानुभूति, प्रेम तथा आत्मीयता के साथ उससे छुट्टी पाने का उपाय बताइए। यदि वह निराश हो चला हो तो उसे आशा बँधाइये, धैर्य दिलाइए।

धैर्य की कसौटी दो परिस्थितियों में भिन्न रूप से होती है, एक तो किसी दुर्घटना या आकस्मिक विपत्ति के समय। चलते-चलते किसी रिक्शा-ताँगा से टकरा जाना, गिर पड़ने से चोट लगना अथवा मारपीट की अवस्था आ जाना। इस समय भी घर के लोग घबरा जाते हैं। इतनी बुरी तरह से हाथ-पैर पीटने लगते हैं, मानो ऐसी विपत्ति उन्हीं पर पड़ी है। हिम्मत हार बैठते हैं और दुर्घटना से छुट्टी पाने के लिए जो उपाय करने चाहिए, वे नहीं करते।

छोटी-छोटी टकराहट, पड़ोसी से मारपीट या उद्दण्डता के कारण कोई घटना उत्पन्न कर देना तो बालकों का स्वभाव ही होता है। उनको उसमें आनन्द मिलता है। कहते हैं 'तरुणाई में आँखें अंधी हो जाती हैं, दूसरों से छेड़-छाड़ करने की ओर रुझान अधिक हो जाती है। इस अवस्था में स्कूलों में देखिए, बच्चे आपस में दो दल बनाकर अपनी शक्ति की आजमाइश करने की चेष्टा करते रहते हैं। अकारण दूसरे लड़कों अथवा राह चलने वाले लोगों को छेड़ते हैं। ऐसा करने से नई-नई विपत्तियों का खड़ा हो जाना स्वाभाविक है। परन्तु इन्हीं सबके द्वारा बच्चे अपने 'साहस' का प्रदर्शन करते हैं। यदि उनकी इस प्रवृत्ति को अच्छाई और पुरुषार्थ की ओर मोड़ा जाए तो उसका अच्छा फल निकल सकता है। बच्चों के साहस को मेले, ठेले या सार्वजनिक सभाओं में भीड़ को सुव्यवस्थित करने में, घाटों के किनारे स्नान करने वाले यात्रियों को डूबने या कुचलने से बचाने की व्यवस्था करने में लगाना चाहिए। यदि बच्चों को सार्वजनिक रचनात्मक सेवा कार्यों में लगाया जाए तो उनमें साहस और धैर्य दोनों गुणों का विकास होगा। माता-पिता को चाहिए कि स्कूलों की ओर से इस प्रकार के जो आयोजन हों, उनमें तो बच्चों को शामिल करायें ही, साथ ही स्वयं भी चेष्टा करके बच्चों को इन अवसरों से लाभ उठाने का अवसर दें। उन्हें क्रियात्मक और ज्ञानात्मक दोनों रूप से यह बताने की चेष्टा माँ-बाप को करते रहना चाहिए कि किसी आकस्मिक विपत्ति के आ जाने पर हिम्मत हार बैठना, केवल कायरता है। अधिक रोने-पीटने, गिड़गिड़ाने से विपत्ति से छुटकारा नहीं मिलता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसे अवसर पर अपने धैर्य को न खोकर उस विपत्ति से बचने के उपाय सोचने चाहिए। कोई भी व्यक्ति यदि विपत्ति के समय शान्तचित्त से उपाय खोजे तो बहुतेरे उपाय निकल सकते हैं।

दूसरी प्रकार की विपत्ति की अवधि लम्बी होती है। आर्थिक कठिनाई, पढ़ने में मन्दबुद्धिता, विमाता का द्वेष अथवा मातृहीन या पितृहीन होने से परिवार के अन्य सदस्यों को उपेक्षा भाव रखना इसके कारण होते हैं।

बालक ध्रुव की कहानी कौन नहीं जानता ? उन जैसे हजारों बालक विमाता के अनुरोध पर पिता की गोद से ठुकराये जाते हैं लेकिन वे अपनी दीनता को सौभाग्य में बदलने की चेष्टा नहीं करते इसीलिए जीवन भर उसी का रोना रोने के अतिरिक्त उन्हें कुछ नहीं मिलता

ध्रुव ने अपने साहस का परिचय दिया। भक्त प्रहलाद की कहानी भी तो हमें यही शिक्षा देती है। पिता हिरण्यकशिपु बालक प्रहलाद के विचारों से क्रुद्ध हो जाते हैं। वे चाहते हैं कि मेरा पुत्र प्रहलाद मुझ को ईश्वर माने, वह ईश्वर की भक्ति न करे, मगर प्रहलाद ने सत्य मार्ग को न छोड़ा। कितनी ही विपत्तियाँ उसके ऊपर ढहाई गईं। परन्तु क्या प्रहलाद मरा ? नहीं, उसने हिम्मत न हारी। अन्त में उसको ऐसी विजय मिली जैसी बिरलों को ही मिलती है। नरसिंह रूप में भगवान को आकर उसकी रक्षा करनी पड़ी।

बहुत दूर हम न जायें। शिवाजी ने बचपन ही से तो अपने धैर्य का परिचय दिया। एक छोटा बालक बीजापुर जैसी शक्ति का विरोध करने की तैयारी करे वह भी कुछ जंगली बच्चों को अपना सहयोगी बनाकर। भला यह बात बुद्धि में आने वाली है ? लोग हँसते थे शिवा की मूर्खता पर।

जब शिवाजी की कार्यवाहियाँ बढ़ने लगीं तो बीजापुर के सुल्तान ने शिवाजी के पिता शाहजी को, जो कि उन्हीं के दरबार में एक उच्च पद पर थे, बन्दी बना लिया कि इसी से शिवा भयभीत होकर हमारी आधीनता स्वीकार कर ले। मगर शिवाजी ने हिम्मत न हारी। उन्होंने अपने पिता को छुड़ाया और स्वयं भी अपनी कार्यवाहियाँ जारी रखीं। जन-साधारण को यह नहीं मालूम कि शिवाजी को कितनी विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ता था, मगर कभी भी उन्होंने अपने धैर्य को न छोड़ा। इसी से वे हिन्दू साम्राज्य के संस्थापक एवं लाखों लोगों के आराध्य देव माने जाते हैं।

मुगल सम्राट अकबर जब केवल १३ वर्ष का था तभी पिता हुमायूँ की मृत्यु से उसे गद्दी पर बैठने का अवसर मिला। तब वह अपने संरक्षक वैरम खाँ की संरक्षकता में था। परन्तु क्या साहसी व्यक्ति कभी किसी का मुँह ताकता रहता है ? उसने अपने सारे बन्धन काटे और अल्पायु में ही वह विशाल साम्राज्य का कुशल प्रशासक बना। यदि विपत्तियों से घबड़ाकर वह हिम्मत हार बैठता तो क्या उसे चमकने का अवसर मिलता ?

भक्त कवि मीराबाई को क्या हम नहीं जानते ? उनके पति राणा ने उन पर कितनी विपत्तियाँ डालीं ? मगर देवी मीरा ने धैर्यपूर्वक उनको सहन किया। कभी न उन्होंने हिम्मत हारी और न राणा अथवा किसी अन्य विरोधी से बदला लेने में अपनी शक्ति लगाई। वे अचल और अटल बनकर अपने पथ पर चलती गईं। इसी से मीराबाई आज भक्त शिरोमणि नारी कवि कहलाती हैं।

आज भी हम देखें कि पिता की मृत्यु से कितने ही बच्चे हिम्मत हार बैठते हैं, अपनी पढ़ाई को त्यागकर अपने विकास को रोक देते हैं। परन्तु ऐसे भी हैं जो हर दशा में अपना मार्ग खोज ही लेते हैं। अपना काम-काज करते हुए पढ़ाई को चालू रखकर प्राइवेट रूप में बी. ए., एम. ए. एवं उच्च शिक्षा प्राप्त करके अपने परिश्रम से उच्च पदों पर पहुँचने वालों के उदाहरण दुर्लभ नहीं हैं।

जीवन के हर क्षेत्र में साहस और धैर्य की आवश्यकता है। जो अपने धैर्य को न खोकर साहस का परिचय देता रहता है, वह धीरे-धीरे दैवी मार्ग की ओर बढ़ता जाता है। अन्त में उच्च पद पर पहुँचकर उसे चमकने का अवसर मिलता ही है।

बच्चे की यह अमूल्य सम्पत्ति है। आप इसे अपने बच्चे को दें तो वह जीवन भर उसे खर्च करके भी कभी भिखारी न बनेगा। ज्यों-ज्यों वह इन सम्पत्तियों को खर्चेगा वह और धनी बनता जाएगा।

बल और विवेक

सुखी बनने की क्षमता 'शक्ति' में है। शक्ति ही वास्तविक सम्पत्ति है। जीवन को प्रकाशित, प्रतिष्ठित एवं सम्पन्न व सुस्थिर बनाने के लिए स्वस्थ शरीर और विवेक अर्थात् दूरदर्शितापूर्ण व्यवहार की आवश्यकता है। कमजोर व्यक्ति चाहते हुए भी कुछ न कर सकने में असमर्थ होते हैं। शरीर बल इसीलिए सबसे बड़ा बल माना गया है कि इसके सहारे जीवन-यात्रा चलती है। बचपन से ही बच्चे के शरीर को स्वस्थ रखने के लिए माँ-बाप को हर सम्भव प्रयास करना चाहिए। वैसे तो एक समय था जब शरीर-बल पर ही हमारी उन्नति-अवनति निर्भर करती थी लेकिन आज वैसी स्थिति नहीं है। बुद्धि-बल की प्रधानता होती जा रही है। परन्तु शारीरिक बल की आवश्यकता और उपयोगिता से कोई इन्कार नहीं कर सकता।

अच्छे स्वास्थ्य के लिए अच्छी खुराक, व्यायाम तथा स्वच्छता की आवश्यकता होती है। विटामिन युक्त भोजन बच्चे को दिये जाने की बात पिछले प्रसंगों में कही जा चुकी है। १४, १५ वर्ष की आयु के बच्चों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बाजार की चटोरी चीजें खाने की लत पड़ जाती है। बाजार में जाने पर बिना चाट खाये उनका जी नहीं मानता। इतनी चमकीली, स्वादिष्ट एवं तत्काल आनन्द देने वाली चीजों का आजकल इतना चलन हो गया है कि उनके आकर्षणों से बच्चे का बच पाना बहुत कठिन है। लेकिन यदि सतर्कता रखी जाये तो इस ओर काफी प्रयास किया जा सकता है। व्यायाम करना, टहलने जाना, स्वच्छता रखने से बच्चे का स्वास्थ्य ठीक रहता है। लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि मनुष्य की मानसिक स्थिति का उसके शरीर पर सीधा प्रभाव पड़ता है। यदि किसी अच्छे-भले युवक को यह भ्रम हो जाये कि वह बीमार है तो उसका बीमार हो जाना सम्भव है। इसके विपरीत यदि कोई लड़का यह विश्वास कर ले कि वह स्वस्थ है तो उसका स्वस्थ हो जाना भी सम्भव है। विचारों की इस शक्ति को रचनात्मक व ध्वंसात्मक परिणामों से कोई इन्कार नहीं कर सकता।

शरीर की अपनी कोई इच्छा नहीं, कोई राय नहीं और कोई अधिकार नहीं। मस्तिष्क सारे शरीर का सम्राट है और इस पर राज्य करता है। उदाहरणतः, जब वह देखता है कि शरीर जिस सड़क पर चल रहा है, उसी सड़क पर सामने से मोटर आ रही है, तो तुरन्त एक ओर हट जाने की आज्ञा देता है। शरीर हट जाता है और खतरे से बच जाता है। हमारे हाथ, हमारे पाँव, हमारी आँखें, हमारा सिर हर खतरे और हर दुर्घटना के समय मस्तिष्क की आज्ञाओं के पालन के लिए तैयार रहते हैं। परन्तु यदि मस्तिष्क ड्यटी पर न हो—यह नींद, नशे या अचेतनता की अवस्था में हो तो इसके अतिरिक्त कोई शक्ति ऐसी नहीं जो हमारे शरीर को खतरे या दुर्घटना की चेतावनी दे सके।

मानसिक स्वास्थ्य की सुरक्षा—मस्तिष्क जीवन की धुरी है। वातावरण से प्रभावित होकर यह जितना निराशा, दुःख, हर्ष और आनन्द प्राप्त करेगा, उतना ही यह सब शरीर पर अच्छा या बुरा प्रभाव डालेगा। जिस युवक का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं, वह सदा चिन्ताग्रस्त रहता है। जो जीवन को आशावादी के बजाय निराशावादी दृष्टिकोण से देखता है, अपने आपको कल्पित खतरे से घिरा समझता है और भविष्य में आने वाले कल्पित दुःखों से भयभीत रहता है, उसने एक प्रकार से जान-बूझकर अपने शरीर में कीटाणुओं को पलने दिया है, जो उसे घुन की तरह खाते रहते हैं, उसके स्वस्थ रहने के विषय में कुछ विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता। जिसे अपने स्वास्थ्य से प्रेम है, उसे अवश्य ही अपनी मानसिक स्थिति बदलनी पड़ेगी।

मानव-मस्तिष्क की स्वास्थ्य बाधक बहुत-सी विकार युक्त भावनाएँ हैं। क्रोध का प्रभाव पेट पर बुरा पड़ता है। यह रक्त को पानी के समान पतला कर देता है। चिन्ता, घृणा, ईर्ष्या, घबराहट, निराशा, रोष, उदासी, बेदिली और चिड़चिड़ापन आदि भी भय के ही घातक परिणाम हैं। इसी प्रकार चिन्ता भी शारीरिक स्वास्थ्य की शत्रु है। बहुत-से लोग अपने बच्चों को अच्छा खाना खिलाते हैं, व्यायाम आदि पर भी बल दिया करते हैं, फिर भी वे स्वस्थ नहीं रहते। चिन्ता ने उन्हें रोगी बना रखा है। ऐसी घटनाएँ देखने और सुनने में आई हैं कि चिन्ता के कारण एक ही रात में सारे बाल सफेद हो गये। ईर्ष्या भी मस्तिष्क की स्वास्थ्यघातक अवस्थाओं में शामिल है। किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति के मुँह पर कभी ताजगी और प्रसन्नता दिखाई नहीं दे सकती।

भ्रम और भय का बड़ा निकट सम्बन्ध है। ये दोनों बच्चे के जीवन के बहुत बड़े शत्रु हैं। जिस युवक को कोई भ्रम होगा, उसे कोई न कोई भय अवश्य परेशान करता रहेगा। जिस लड़के ने भ्रम और भय को स्वीकार कर लिया उसकी इच्छाशक्ति और सुरक्षा-शक्ति दोनों ही बेकार होकर रह जाएँगी।

वह युवक बड़ा भाग्यवान है जिसकी मानसिक अवस्था आशापूर्ण और स्वस्थ है। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि किसी भी व्यक्ति की मानसिक अवस्था उसके बाल्यकाल के शिक्षण और वातावरण से ऊँची नहीं हो सकती। जो माता-पिता हर समय अपने बालकों को डाँटते-डपटते हैं, उन्हें लज्जित करते और मारते-पीटते रहते हैं, उनके नन्हें हृदयों को कटाक्षों से घायल करते रहते हैं, उन्हें देवों, परियों और जिन्नों के किस्से-कहानियाँ सुनाकर कायर बना देते हैं, उन्हें प्रशंसा आदर और मनोरंजन से वंचित रखते हैं, उनके बच्चे मानसिक तौर पर जीवन भर बच्चे ही रहते हैं। उनके मस्तिष्क पर हर समय निराशा और उदासी की छटा छाई रहेगी। वे किसी कठिनाई, किसी दुर्घटना और किसी रोग का बहादुरी से सामना नहीं कर सकेंगे और वे अपना सारा जीवन सहम कर ही बिताएँगे।

प्रशंसा, हर्ष और प्रोत्साहन से परिपूर्ण बचपन ही जीवन भर के दृढ़, महान, निर्भीक विचारों और अच्छे स्वास्थ्य की आधारशिला बनता है।

अच्छे स्वास्थ्य के इच्छुक युवक को अपने विचारों की पवित्रता और शिष्टता की ओर भी अवश्य ध्यान देना पड़ेगा। उसे सभी मानसिक बुराइयों से बचना होगा। मेरा अपना अनुभव है कि झूठ बोलने से स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। झूठ बोलने वाले व्यक्ति को हर समय यह चिन्ता रहती है कि उसकी पोल न खुल जाए। चुगली भी स्वास्थ्य की शत्रु है। चुगली करने वाले को सदा यह भय रहता है कि मैंने जिस व्यक्ति के यश पर धब्बा लगाया है, वह मेरी चुगली को जानकर मेरा शत्रु बन जाएगा। ईर्ष्या और प्रतिक्रिया की भावना बच्चे के उठते रक्त को जला डालती है। इसलिए आवश्यक है कि इन दोषों से स्वयं भी बचा जाए और अपने बच्चों को बचाया जाए। इसके साथ-साथ अपने मन में उच्च

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नैतिक विचार भरने चाहिए। प्रसन्नता, क्षमा, सत्यवादिता और ईमानदारी द्वारा अपने स्वास्थ्य की रक्षा की जानी चाहिए।

महात्मा आनन्द स्वामी ने एक स्थान पर लिखा है कि जिस युवक को स्वस्थ रहने की कामना हो उसे प्रसन्न रहना चाहिए। कठिन से कठिन घड़ियों में अपनी प्रसन्नता को त्यागना न चाहिए। चेहरे पर मुसकराहट साजती रहे। खूब खिलखिलाकर हँसना स्वास्थ्य के लिए बहुत गुणकारी होता है। कुछ भी हो प्रसन्नचित रहना स्वस्थ जीवन की निशानी है। संसार में दुःख-सुख, हर्ष-विषाद, आराम-तकलीफ, संयोग-वियोग लगा ही रहता है। कौन ऐसा है जिसे इन झूलों में झूलने का अवसर न मिला हो लेकिन विपरीत परिस्थितियों में भी प्रसन्नता को हाथ से न जाने देना चाहिए।

स्वास्थ्य हमारी अमूल्य निधि है। स्वास्थ्य को खोकर बच्चा अपने सुख और सौभाग्य को खो बैठता है। इसलिए हर सम्भव तरीके से इसकी रक्षा करनी चाहिए। केवल खुराक, व्यायाम और स्वच्छता पर ही निर्भर न रहकर महत्तम प्रकृति प्रदत्त शक्ति, विचार और कल्पना से भी लाभ उठाना चाहिए। अपने दैनिक जीवन की प्रत्येक क्रिया में विचार की आत्मा समानी चाहिए। सैर करने निकलें तो यह समझें कि शरीर की नाड़ियों में रक्त की गति तीव्र हो गई। हरे-भरे खेती और दूर-दूर तक फैले हुए दृश्यों को देखते हुए आशा रखें कि आँखें स्वस्थ हो रही हैं।

संसार सागर की यात्रा के लिए हमारा शरीर एक नाव—शरीर के ऊपर हमारा पार उतरना या डूबना, बहुत कुछ निर्भर करता है। जिस तरह छिद्रयुक्त जीर्ण-शीर्ण कमजोर नाव से चंचल, गतिशील, तीव्र संघर्षयुक्त जल-धारा को पार करना कठिन है, उसी तरह रोगी, निर्बल और असमर्थ शरीर से जीवनयात्रा भली प्रकार पूरी करना सम्भव नहीं होता। विजय, सफलता, आनन्द और उल्लासमय जीवन बहुत स्वस्थ एवं बलवान शरीर पर निर्भर करता है। शरीर मनुष्य के लिए एक ऐसी ईश्वरीय देन है, जिसके अभाव की पूर्ति संसार में अन्य कोई भी वस्तु नहीं कर सकती। दुर्बल आँख की क्षति-पूर्ति चश्मा लगवाने से नहीं हो सकती। कमजोर एवं खोखले दाँतों के स्थान पर नकली दाँत लग तो जायेंगे परन्तु वे प्राकृतिक दाँतों की तुलना कहाँ कर सकते हैं ? केवल मुँह को पोपला लगने से बचाये रख सकने भर की सामर्थ्य उनमें होती है।

एक महात्मा के पास एक गरीब निर्धन व्यक्ति गया। गिड़गिड़ाकर अपनी दीनता की कहानी सुनाते हुए दुःख दूर करने की याचना की। पैरों पर गिरकर करुण कहानी सुनाने लगा कि "सायंकाल भोजन के लिए भी एक पैसा नहीं है, कोई साधन नहीं कि जिससे कोई रोजगार करके जीविका निर्वाह कर सकूँ।" महात्माजी चुपचाप सब सुनते रहे फिर बोले "तू तो कई हजार का माल अपने पास रखे है फिर मेरे सामने भिखारी बनने का स्वाँग क्यों करता है ?" गरीब बेचारा चौंका और बोला "महाराज मैं आपसे असत्य नहीं बोल रहा हूँ, मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं है।" महात्मा ने कहा "अच्छा सुन तू अपने दोनों हाथ मुझे दे दे और बदले में २ हजार रुपये नकद मुझ से ले ले।" भिखारी बेचारा सोचने लगा, फिर थोड़ी देर बाद बोला, "नहीं, स्वामीजी दो हजार लेकर मैं अपने हाथ देकर जीवन भर के लिए लूला बनना नहीं चाहता।" तब महात्माजी ने कहा "अच्छा ! अपने दोनों पैर ही दो हजार में मेरे हाथ बेच डाल।" गरीब फिर सोच में पड़ गया, थोड़ी देर बाद उसने उत्तर दिया "नहीं। स्वामीजी, दो हजार रुपये लेकर जीवन भर के लिए पंगु बनना स्वीकार नहीं है।" तब फिर महात्मा बोले "अच्छा ले चार हजार देता हूँ अपनी दोनों आँखें दे दे।" भिखारी ने फिर सोचकर इन्कार कर दिया। अन्धे बनकर जीवन काटना उसने किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं किया। इसी प्रकार महात्मा ने अन्य अंगों का मूल्य लगाया लेकिन किसी पर भी वह भिखारी देने को राजी न हुआ। तब अन्त में महात्मा ने कहा—"अरे मूर्ख ! तू कई हजार का ही नहीं, कई लाख, कई करोड़ कीमती सामान रखे रहकर अपने को भिखारी कहता है। यदि तू इन सबका सदुपयोग कर, उनका मूल्य समझ ले तो अपनी गरीबी के साथ सैकड़ों की गरीबी दूर करने की सामर्थ्य तुझमें छिपी है।"

वास्तव में हम अपने शरीर की कीमत नहीं करते। किसी अंग विशेष का मूल्य हमें तब मालूम होता है जब वह हमसे छिन जाता है। आँख फूटने के बाद आँख का, दाँत टूटने के बाद दाँत का, बहरे होने पर कान का मूल्य हमें मालूम होता है।

"अब पछताए होत का जब चिड़ियाँ चुग गई खेत।"

बुढ़ापे में अंधे, बहरे और पंगु बनकर रोने से क्या लाभ ? बचपन से चेतें। अपने बच्चे को उसके हर अंग की महत्ता बताओ, उनकी उपयोगिता समझाओ और उनके सामने उन लोगों के उदाहरण रखो, जिन्होंने मूर्खता में पड़कर अपने अंगों के साथ खिलवाड़ करके उन्हें नष्ट कर डाला है, कृत्रिम दाँत वाले को दिखाकर आप अपने बच्चे को दाँत की उपयोगिता बताइये। अन्धे को दिखाकर आँखों की उपयोगिता का भान कराइये। हाथ-पाँव से दुर्बल व्यक्ति को दिखाकर इन अंगों को सुरक्षित रखने की तरकीब समझाएँ।

देखकर, सुनकर और समझकर यदि बच्चा काठ का पुतला नहीं है तो अवश्य शिक्षा प्राप्त करेगा। अपने अंगों की सुरक्षा रखने की ओर वह सतर्क रहेगा और फिर उसे दीर्घकाल तक इनके उपयोग का आनन्द मिलेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शरीर को दुर्बल न होने दिया जाय—शास्त्रकारों ने शरीर को ही सब धर्मों का साधन बताते हुए कहा है—**''शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्।''** स्वस्थ शरीर के द्वारा ही जीवन और जगत के धर्म कर्त्तव्यों का भार वहन किया जा सकता है। वस्तुतः बिना मजबूत शरीर के न हम किसी का ऋण चुका सकते हैं, न अपना कर्त्तव्य पूर्ण कर सकते हैं। दुर्बल शरीर से न किसी की सेवा ही हो सकती है। बापू ने कहा है, ''शरीर आत्मा के रहने की जगह होने से तीर्थ जैसा पवित्र है।'' आवश्यकता इस बात की है कि हम इसे तीर्थ की तरह ही स्वच्छ-सुन्दर विकारशून्य बनाने का प्रयास करें।

शरीर के माध्यम से ही जीवन और जगत के सौन्दर्य-आनन्द का लाभ उठाया जा सकता है। शरीर में जब भरपूर उछल-कूद, मन में अपार उत्साह होता है तो यह संसार क्रीड़ा भूमि-सा दीखता है, स्वर्ग-सा लगने लगता है और जब शरीर अमसर्थ, अयोग्य, बलहीन हो जाता है तो यह संसार नरकतुल्य जान पड़ता है। जीवन भार स्वरूप लगने लगता है। पाश्चात्य विद्वान बीचर ने कहा है ''शरीर वाणी है और आनन्द संगीत। यह जरूरी है कि यन्त्र दुरुस्त रहे। आनन्द का संगीत स्वस्थ शरीर में ही स्पन्दित होता है।''

शरीर का रोगी जीर्ण-शीर्ण कमजोर होना अपने आप में एक बहुत बड़ा पाप है। जार्ज बर्नार्डशा ने कहा है, ''यदि कोई बीमार पड़ेगा तो मैं उसे जेल भेज दूँगा।'' बीमारी सजा है प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करने की। रोगी होना अपने आप में अपराधी होना है। रोगी होकर जहाँ मनुष्य अपने लिए नरकतुल्य जीवन का द्वार खोलता है, वहाँ समाज की उन्नति में भी बाधा डालता है क्योंकि एक ओर तो वह व्यक्ति समाज के लिए जो कुछ करता है वह रुक जाता है, दूसरे अन्य लोगों का समय, श्रम, धन रोगी को लिए लगने लगता है।

स्वस्थ, बलवान शरीर वाले बच्चे पर फटे कपड़े भी शोभा देते हैं। रोगी और निस्तेज बालक सुन्दर कपड़ों के सौन्दर्य को भी भद्दा बना देता है। उसे कितना ही सजाएँ वह अनाकर्षक और कुरूप ही लगेगा।

वैयक्तिक जीवन में शरीर के बाद नम्बर आता है—हृदय और बुद्धि का। शरीर के साथ-साथ हृदय व बुद्धि का भी अपने-अपने क्षेत्र में स्वस्थ, सतेज होना आवश्यक है। इसी को हम कहते हैं 'विवेक' जिसका साधारण अर्थ यह हो सकता है, कि 'सोच समझकर काम करने की शक्ति'।

अक्सर देखा जाता है कि कई व्यक्ति शरीर से स्वस्थ होते हैं, लेकिन उनके हृदय, बुद्धि अविकसित ही रह जाते हैं। बहुत-से पहलवान कहाने वाले लोग बुद्धि के 'ठस' और हृदय के प्रेम, आनन्द, निर्मलता से शून्य होते है। लोगों को प्रायः यह धारणा बन गई है कि जो शरीर से तगड़ा होगा वह बुद्धि से कमजोर होगा और जो बुद्धिमान होगा उसका शरीर दुर्बल होगा लेकिन वस्तुतः यह विश्वास गलत है।

अकबर के दरबार में दो हट्टे-कट्टे राजपूत नौकरी के लिए आये। अकबर ने कहा कि अपनी ताकत की परीक्षा दो। दोनों राजपूतों ने अपनी तलवारें एक-दूसरे से मुकाबले के लिए खींच लीं। थोड़ी देर में एक ने दूसरे का सिर काट लिया और दूसरे ने पहले के पेट में तलवार भोंक दी। दोनों की लाश नदी में फिंकवा दी गई। यह भी स्वस्थ शरीर के नमूने थे। लेकिन इनमें विवेक-बुद्धि नहीं थी। स्वस्थ शरीर की पहचान है कि हृदय में उमंग हो, कुछ कर डालने को जी चाहता हो, लेकिन उसके साथ सोच-समझकर कुछ अच्छा कार्य करने की ओर शारीरिक शक्ति को लगाने की क्षमता भी बच्चे में होनी चाहिए, अन्यथा उसका शरीर अकबर के दरबार वाले क्षत्रियों जैसा हो सकेगा।

कहावत है कि 'जोश के साथ होश भी हो।' बिना होश का जोश दो कौड़ी का होता है। मध्यकालीन इतिहास के पृष्ठ होश रहित जोश के उदाहरणों से भरे पड़े हैं। आल्हा-ऊदल की लड़ाइयाँ होशरहित जोश के नमूने थे। अकारण दूसरे राज्यों से झगड़ा मोल ले बैठते थे। काश, उनकी शक्ति यदि देश सेवा अथवा राज्य सेवा में लगती तो वे कैसे होते ? पृथ्वीराज चौहान के दरबार में उनके एक काका थे, उनके सामने यदि कोई मूछों पर हाथ फेर दे तो वे उसे बिना मार डाले न छोड़ते। एक दिन पृथ्वीराज के ससुराल के लोग आये थे। दरबार में सभी लोग बैठे थे। अचानक उन्होंने 'मूछों' पर हाथ फेरा, बस काका की त्यौरियाँ चढ़ गईं। वे अपने को सँभाल न सके और तलवार खींचकर उनका सिर ही काट डाला।

ऐसे स्वस्थ युवक किस काम के जिनमें जोश हो लेकिन होश न हो। हड़ताल करना, ट्रेनों की जंजीरें खींचना, सरकारी कर्मचारियों को मार-पीट देना, आपस में हाकियाँ चटकाना आदि अनुशासनहीन कार्य ही उनसे बन पड़ेंगे। उठती जवानी का यह समय भारी नियन्त्रण चाहता है। शारीरिक शक्ति यदि गलत दिशा की ओर लग गई तो अग्नि-दुर्घटना की तरह घर भर का सत्यानाश करके ही छोड़ेगी। अनुचित दिशा में लगी शक्ति सिनेमा, नाच, रंग, फैशनपरस्ती में शरीर को स्वाहा करती है और घर का पैसा उसमें ईंधन बनता है।

इसलिए माँ-बाप का यह कर्त्तव्य है कि जहाँ वे बच्चे के शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए उसके खान-पान, स्वच्छता, मनोरंजन, व्यायाम आदि पर आवश्यकतानुसार ध्यान दें। उसके शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनावें, वहाँ उसके मस्तिष्क को भी परिष्कृत करने, उसमें सोच-समझकर समयानुसार कार्य करने की शक्ति पैदा करें। यह एक आवश्यक कार्य है, जो एक दिन में बड़े प्रयत्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से पूरा नहीं हो सकता। आपको हमेशा कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता—विचार शीघ्र बदले जा सकते हैं लेकिन जीवन का दृष्टिकोण धीरे-धीरे बनता है। उसमें परिवर्तन भी धीरे-धीरे ही हो सकता है। हर व्यक्ति बचपन से ही अपने विषय में सोचता-विचारता रहता है। उस सोचने-विचारने के ढंग के अनुसार अपने तथा समाज के विषय में उसकी एक धारणा बन जाती है। फिर उसके समस्त कार्य उसी 'धारणा' की धुरी से संचालित होते रहते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि बच्चे को शुरू से ही सही दिशा में सोचने और दृष्टिकोण बनाने में सहायता दी जाए।

समाज में अन्धविश्वास का बोलवाला है। बहुत-सी मिथ्या बातों का प्रचलन है। रूढ़िवाद, जाति-पाँति, छुआछूत के भेदभाव के नाम पर लाखों लोग अपमान की चक्की में पिसते रहते हैं तो बहुतेरे ऐसे हैं, जो इन मान्यताओं का लाभ उठाकर बिना परिश्रम किए मौज उड़ाते हैं। चूँकि हमारी निश्चित मान्यता बन गई है कि यह बातें सही हैं। इसलिए हम आँख से देखते हुए भी बुरा नहीं कहते फिर उसमें परिवर्तन की बात कैसे सोचें ?

संसार की बदली हुई परिस्थितियों में हमारी निर्जीव मान्यताएँ भावी पीढ़ी को प्रगति की ओर ले जाने में सहायक नहीं होतीं। जब बच्चा घर पर तो अपनी पुरानी मान्यताओं के अनुसार कार्य करता है और स्कूल में पुस्तकों से, उसमें दूसरे अन्तर्द्वन्द्व उठने स्वाभाविक हैं। यही अन्तर्द्वन्द्व, असन्तोष, कलह और विचार-भिन्नता के रूप में प्रकट होता है। इसीलिए माता-पिता को चाहिए कि बच्चे को हर अच्छी-बुरी मान्यताओं को जैसी की तैसी स्वीकार कर लेने के लिए कभी उत्साहित न करें। जिस प्रकार गणित के नियम सही और खरे हैं, उनके विपरीत चलने से प्रश्न का सही उत्तर नहीं निकल सकता। ठीक उसी प्रकार हमारा धर्म भी वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। उसकी हर बात को आँख मूँदकर मनवाने से क्षति ही होगी। अतः जो भी परिस्थिति सामने आये और बच्चा उसे समझने अथवा जानने की चेष्टा करे तो आप उसकी वास्तविकता को कभी छिपायें।

कोई त्यौहार क्यों मनाया जाता है, यह आप बच्चे को समझाइये। जाति प्रथा क्यों प्रचलित हुई, उससे क्या लाभ थे, यह बच्चे को बताना चाहिए। आज उसकी क्या उपयोगिता है, यह भी बताइए। बदली परिस्थिति में उसमें क्या परिवर्तन लाना चाहिए, इस पर भी बच्चे को सोचने और सम्मति देने का अवसर दीजिए। विशेष रीति-रिवाज को क्यों मनाया जाता है, इस बारे में भी आप बच्चे को बताइए। बच्चे में विचार शक्ति और तर्क शक्ति जाग्रत कीजिए। हर काम को करने से पहले उसके परिणाम को सोचने-विचारने के लिए कहना चाहिए। आँख मूँदकर अपनी आज्ञा को मनवाना बुद्धिमान माँ-बाप का काम नहीं है। यदि, आप बच्चे में हर काम के परिणाम, साधन, उपयोगिता एवं करने के ढंग के विषय में सोचने-विचारने का मौका देंगे और उसे सहायता भी देंगे तो उसमें विवेक-बुद्धि जाग्रत होगी। वह कभी ऊँची मान्यता की भित्ति से नीचे गिरने का अवसर न आने देगा।

इंग्लैण्ड का प्रधानमन्त्री 'लार्ड डिजरायली' कहा करता था कि मेरे छह महान शिक्षक हैं, जिनसे मैंने सब ज्ञान सीखा है। वे शिक्षक कौन हैं ? उनने बताया कि—(१) क्यों ? (२) कैसे ? (३) कब ? (४) किस प्रकार ? (५) कौन ? और (६) किसके द्वारा ? यही छह तर्क उसके शिक्षक थे।

हर काम को करने से पहले यही छः प्रश्न आप अपने से पूछिये, उत्तर स्वयं निकल आवेगा। उन्हीं उत्तरों से मार्गदर्शित होकर आप कार्य करें। यही आदत बच्चों में डालनी चाहिए। यदि उनकी आदत इस प्रकार जानने-बूझने की पड़ जायेगी तो वे समाज के आदर्श नागरिक बनेंगे।

स्वावलम्बन का लक्ष्य—दूसरे, अपने व्यक्तिगत जीवन के विषय में उदारवादी और व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने की सलाह दीजिए। जैसे युवकों के मन में शुरू से ही यह धारणा बनती रहती है कि पढ़-लिखकर वे नौकरी करेंगे। माँ-बाप भी उनकी इस धारणा को पुष्ट करते रहते हैं। वे बच्चों को बताते रहते हैं कि अगर वह पढ़ लेगा तो कहीं नौकरी मिल जायेगी, ठाट से घूमेगा, अन्यथा खेती करते-करते घास छीलेगा, हल जोतना पड़ेगा। व्यापारी भी अपने बच्चे को इसी प्रकार से गलत दिशा में सोचने का अवसर देता है। यह बातें बच्चे के हृदय में नौकरी के प्रति ऊँची धारणा और खेती तथा व्यापार के प्रति हीनभावना उत्पन्न कर देती हैं। परिणाम यह होता है कि पढ़ने-लिखने के बाद बच्चे को जब तक नौकरी न मिले वह घर पर बेकार पड़ा रहना पसन्द करेगा परन्तु खेती में परिश्रम करना उसे नहीं भायेगा। हम नित्य देखते हैं कि कितने ही युवक इस मिथ्या धारणा के कारण ६००) मासिक वेतन पर दिनभर कार्यालय की फाइलों से जूझ-जूझकर अपने प्रतिभा को नष्ट करने में आत्मसन्तोष का अनुभव करते हैं लेकिन उससे आधा परिश्रम करके ही अधिक पैसा कमाना अथवा स्वतन्त्र एवं स्वावलम्बी जीवन बिताना पसन्त नहीं करते, इससे बड़ा देश का दुर्भाग्य और क्या हो सकता है ? परिस्थिति यह है कि शिल्प, उद्योग एवं कृषि की ट्रेनिंग करने वाले लोग भी उसी विभाग में नौकरी को ही जीवन का स्वर्ग समझते हैं।

बच्चों की इस मिथ्या-मान्यता को बदलना है। उन्हें यह कल्पना देनी है कि स्वावलम्बी जीवन बिताकर अपने शरीर, बल एवं बुद्धिबल का परीक्षण करके उसके आधार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर जीविका निर्वाह करना नौकरी से कई गुना श्रेष्ठ है। नौकरी फिर नौकरी ही है, चाहे वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो।

सोच, समझ एवं उचित परिणामों के आधार पर निश्चय करने का मौका दीजिए। जब बच्चे में विवेक-बुद्धि उत्पन्न हो जाती है, सत्यासत्य का निर्णय करने की शक्ति उनमें जाग्रत होने लगती है, तब वह धीरे-धीरे अपनी हर समस्याओं के प्रति एक सही दिशा अपनाने को सोचता है, जिससे उसमें ओजस्विता एवं स्वावलम्बन के गुण पैदा होते हैं।

भ्रातृभावना कैसे जगाई जाय ?

समाज में जितने बच्चे हैं, जो कि किसी न किसी पाठशाला में पढ़ने जाते हैं, उन सबकी आर्थिक दिशा समान नहीं हो सकती। कुछ अति अमीर घराने के होते हैं तो बहुतेरे बच्चे ऐसे मिलेंगे जिनके माता-पिता अत्यन्त गरीबी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनको शाम तक भरपेट भोजन मिलना भी कठिन रहता है। फिर अपने बच्चों को वे किस प्रकार अच्छे वस्त्र पहनाकर स्कूल भेज सकते हैं ?

जिस युग में हम लोग रह रहे हैं वह स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृभावना का युग है। हमारे देश के संविधान ने अपने प्रथम अध्याय में भारत में निवास करने वाले सभी नागरिकों के लिए समानाधिकार, स्वतन्त्रता एवं समान व्यवहार प्रदान करने की घोषणा की है।

यह भाव है कि सब प्राणी समान हैं, सभी ईश्वर के बन्दे हैं, अतः न तो अमीर को गरीब से घृणा करना चाहिए और न बुद्धिमान को बुद्धिहीन को नीची निगाह से देखना चाहिए। वरन् उन्हें अपने से नीचे वाले को सहयोग देकर, सहानुभूति प्रदान कर अपनी शक्ति एवं सम्पत्ति का थोड़ा अंश देकर उन्हें भी ऊँचा उठाना कर्त्तव्य है। नागरिकों में यह भाव तभी जाग्रत हो सकते हैं, जब बचपन से ही उनमें गरीबों के प्रति दया, अपने साथी के प्रति प्रेम के अंकुर का बीजारोपण किया जाय। उन्हें सिखाया जाय कि सबको सहयोग से रहना ही जीवन जीने का सही रास्ता है। अपने साथी की हर सम्भव सहायता करने से अपनी सहायता होती है। बिना दिये कुछ मिलता भी नहीं है। लेना और देना दोनों इस संसार के साथ-साथ चलते हैं।

फिर बचपन से यह अंकुर कौन वपन करेगा ? उत्तर स्पष्ट है कि माता-पिता और विद्यालय। यही दो संस्थाएँ हैं, जो हर अच्छे-बुरे भाव बच्चे में भरते हैं।

बच्चों में भ्रातृ-भावना और समानता विद्यालय और माता-पिता के सहयोग से ही लाई जा सकती है। प्राचीनकाल की गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में यह बात हम देखते हैं कि राजा और रंक दोनों के बच्चे गुरु के आश्रम में भेज दिये जाते थे। वहाँ उनके साथ आश्रम में समान व्यवहार होता था। सान्दीपनि ऋषि के आश्रम में गरीब ब्राह्मण सुदामा भी शिक्षा पाता था और मथुरा के कर्मठ युवराज कृष्ण भी वहीं शिक्षा प्राप्त करने गये थे।

वस्त्रों में सादगी और समानता—स्कूल जाने वाले बच्चों को देखने से ऐसा लगता है जैसे किस रंग-बिरंगी दुकान में विभिन्न प्रकार के गुड्डे-गुड़ियों को देखते हैं। अमीर अपने बच्चों को कीमती कपड़ों से सजाते हैं। बचपन में ही उन्हें घड़ी खरीद देते हैं। रोज कपड़ा बदलवाते हैं। गरीबों के बच्चे बेचारे फटी धोती-कुर्ता या कमीज पहनकर आते हैं। जूते उन्हें पहनने को नहीं मिलते। इसका एक दुष्परिणाम यह होता है कि कीमती कपड़े पहनने वाले बच्चे में अपने पास फटे या साधारण वस्त्र पहनने वाले की तुलना में मिथ्याभिमान के भाव जगते हैं, उसमें उच्चता और अहंकार के भाव पैदा होते हैं, वह समझने लगता है कि मैं अपने पड़ोसी की तुलना में अधिक धनवान तथा बड़ा हूँ। दूसरी ओर फटे-पुराने वस्त्र धारण करने वाले बच्चे भी अपने को निम्न स्वीकार करने लगते हैं। उनमें हीनता के भाव पैदा होने लगते हैं। यह दोनों स्थितियाँ आदर्श नागरिक निर्माण के मार्ग में रुकावट हैं। आवश्यकता यह है कि विद्यालय में विद्याध्ययन करते समय सब बच्चे समान भाव से भावित हों। अहंकार, विनाशकारी है और हीनता भी प्रगति में बाधक है। यही बच्चे बड़े होकर छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, धनी-निर्धन के भेदभाव फैलाते हैं। इन्हीं के कारण समाज में हजारों प्रकार की जातीय समस्याएँ उत्पन्न होती रहती हैं।

इस ओर अमीर और गरीब दोनों प्रकार के माता-पिता के कुछ कर्त्तव्य हैं। अमीरों को चाहिए कि वे अपने बच्चों को सादे कपड़े पहनाकर स्कूल भेजें। इसमें उन्हीं का लाभ है। छोटे बच्चे जब घड़ी या सोने के कोई छोटे जेवर अथवा कीमती कपड़े पहनकर स्कूल या खेलने जाते हैं तो वे समाज के धूर्त, चोर, बदमाश लोगों की निगाह में गड़ जाते हैं। थोड़े-से पैसे या वस्त्रों के लोभ में बच्चों की जान तक ले लेने में उन्हें लेशमात्र भी दया नहीं आती। बहराइच मॉडल स्कूल के प्रधानाध्यापक महोदय का इकलौता बच्चा सोने की छोटी-छोटी दो बालियाँ अपने दोनों कानों में पहने था। उन्हीं बालियों के लोभ में एक दुष्ट ने बच्चे को बहकाकर और एकान्त में ले जाकर उसे मार डाला और बालियाँ निकाल लीं। बताइए ! यह सोना, पैसा या वस्त्र बच्चे के प्राणों का घातक बना।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसी प्रकार की घटनाएँ आये दिन हुआ करती हैं। फिर हर बुद्धिमान का फर्ज है कि बच्चों को ऐसी कीमती चीजें न पहनावें। अब भी चलन मिटता जाता है लेकिन कुछ समय पहले छोटे बच्चों के हाथों और पैरों में चाँदी के कड़े पहनाये जाते थे। अब भी देहातों में अहीर या कुछ अन्य जातियों में इसका प्रचलन है।

समान ड्रेस से समान भाव बनने में सहायता मिलती है। शिक्षा-विभाग की ओर से भी इस आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है। इसीलिए किसी-किसी विद्यालयों में, जिनमें प्रधानाचार्य उत्साही हैं, बच्चों के लिए समान वेष-भूषा अनिवार्य कर दिया है। यह एक अच्छी प्रथा है, सुविधानुसार वस्त्रों का चुनाव तो विद्यालय ही कर सकते हैं लेकिन जब अमीर-गरीब सब बच्चों के ड्रेस समान हो जाते हैं तो स्कूल में एक नया जीवन दिखाई पड़ता है, बालकों में भी एकता व समानता के भाव बनते हैं। इसलिए अभिभावकों का यह कर्त्तव्य है कि जब जिन स्कूलों में उनके बच्चे पढ़ते हैं, वहाँ यदि समान वेष-भूषा की योजना लागू की जाय तो उसमें उत्साहपूर्वक सहयोग देना चाहिए। इसे अतिरिक्त व्यय मानकर बोझ समझने का कोई कारण नहीं, फिजूल में खर्च होने वाले काफी पैसों की बचत हो जाती है। जहाँ यह योजना न लागू हों वहाँ भी अभिभावकों को सम्बन्धित अध्यापकों एवं प्रधानाचार्यों से कहकर उन्हें समान वेष-भूषा का अनिवार्य नियम अपने विद्यालय में लागू करना चाहिए।

इस नियम से अमीर-गरीब दोनों को ही लाभ हो जाता है। गरीबों का यह कर्त्तव्य है कि कितने भी कम कीमत वाले वस्त्र वह अपने बच्चों को क्यों नहीं पहनायें परन्तु उन्हें स्वच्छ और साफ रखने के नियम का तो वे पालन कर ही सकते हैं। इसमें तो धन नहीं श्रम की आवश्यकता है। धोबी से कपड़े न धुलाये जाकर रविवार के अवकाश के दिन बच्चों से ही उनके कपड़े धोने के लिए कहना कोई अनुचित बात नहीं है। सप्ताह में एक दिन का अवकाश इसलिए मिलता है ताकि बच्चे अपने वस्त्रों, सामान आदि सबको ठीक कर लें। बच्चों में यदि अपने कपड़े साफ करने की आदत डाल दी जाय तो यह स्वावलम्बन और सफाई हर दृष्टि से उपयोगी आदतें होंगी। आगे चलकर यह बच्चे कभी भी छोटे-बड़े किसी काम के लिए दूसरों का मुँह नहीं ताकेंगे। इसलिए माँ-बाप को छोटी-छोटी बातों से महानता का पाठ बच्चों को पढ़ाना चाहिए।

पुरुषार्थ और परिश्रम

युग के अनुसार 'मान्यताएँ एवं धारणाएँ' परिवर्तित होती रहती हैं। कालचक्र हर अच्छे-बुरे को फलने-फूलने का अवसर देता रहता है। आज से कई वर्ष पूर्व परमहंस बाबा राघवदास जी भूदान-पदयात्रा में हमारे जनपद में आये थे। अपने प्रवचन में उन्होंने इसी मत का प्रतिपादन करते हुए कहा कि 'प्राचीनकाल में वह व्यक्ति समाज का आदर्श माना जाता था जो धनुर्विद्या में सर्वश्रेष्ठ होता था। मध्यकाल में तलवार का धनी व्यक्ति श्रेष्ठ माना जाता रहा। अँग्रेजी शासनकाल में हमारी मान्यता ने फिर करवट ली। न तो धनुर्धारियों की महिमा रह गई और न तलवारधारियों की, वरन् जो भाषण देने की कला में प्रवीण हो, वह श्रेष्ठ माना जाने लगा। दूसरे इस काल में बाबूगिरी को प्रोत्साहन मिला। समाज का बड़ा आदमी वह बना जो अपने हाथों से कोई काम न करे। जिसके यहाँ कोई खिदमतगार सेवा के लिए लगा हो, जो अपने हाथ से एक तिनका भी न छुए। इस मर्यादा ने सब पर अपना प्रभाव डाला। बच्चों का पालन-पोषण भी इसी दृष्टि से होने लगा, वे अधिक से अधिक नाजुक बदन बनाए जाने लगे। अक्षरज्ञान में प्रवीणता की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा और रचनात्मक प्रतिभा अथवा कामकाज करने की ओर कम। खेती, वाणिज्य, व्यवसाय आदि पेशे निम्नकोटि के माने जाने लगे। इनको करने वाले, छोटे किसान और व्यापारी सर्विस पेशा वालों के सामने नीचे माने जाने लगे। लेकिन युग तो करवट लेता रहता है। मान्यताएँ बदलती रहती हैं। एक के गर्भ से दूसरे का जन्म होता रहता है। स्वतन्त्र भारत के साथ कुछ नई मान्यताएँ बनीं। अब 'श्रम और सेवा' का युग आया है। जो व्यक्ति अपने हाथों अधिक से अधिक काम करता है वह समाज का आदर्श पुरुष माना जाने लगा है और जिसने समाज की सेवा में अपने व्यक्तित्व सुख और सम्पन्नता का परित्याग किया, उन्हें समाज ने श्रेष्ठता की उपाधि से विभूषित किया।

अधिक बोलने वालों की महिमा अब धीरे-धीरे कम हो रही है। जनता यह स्वीकार करने लग गई कि वे केवल 'वाचाल' हैं। नित्य-प्रति देखते हैं कि जिस प्रकार आज से दस वर्ष पूर्व नेताओं की मीटिंगों में भीड़ इकट्ठी होती रहती थी, अब नहीं होती। बड़े-बड़े नेता आते हैं परन्तु जनता में कोई उत्साह नहीं होता। लोग मीटिंगों और सभाओं से ऊब गये हैं। अब उन लोगों की प्रतिष्ठा बढ़ने लगी है जो रचनात्मक प्रतिभा अपने में रखते हैं और जन-साधारण की सच्ची सेवा करके उनके स्तर को उठाने की ओर कार्यरत हैं। वह समय लद गया जब काम न करने वाले और दूसरों पर अधिकाधिक आश्रित रहने वाले ऊँचे माने जाते थे। ऐसे राजाओं, महाराजाओं के लड़के अब बाजारों में इधर-उधर घूमा करते हैं, कोई उन्हें आदर की दृष्टि से नहीं देखता। अब युग आया है कि अपने हाथों काम करने वाले और स्वावलम्बी जीवन बिताने वाले समाज के श्रेष्ठ पुरुष माने जाते हैं। यह निश्चित है कि स्वतन्त्र भारत के विकास के साथ इस मान्यता की अधिकाधिक पुष्टि होगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घर का धन्धा भी देखें—बच्चों को इसी मान्यता के अनुसार ढालने की जरूरत है। इसके लिए सबसे बड़ा काम यह है कि शुरू से ही बच्चों में काम करने की आदत डालें। जिसके यहाँ जो पेशा होता हो, अपने बच्चों को उसमें लगाने की चेष्टा करनी चाहिए। १४-१५ वर्ष का बच्चा इस योग्य होता कि माँ-बाप के काम में कुछ हाथ बँटा सके। मेरे यहाँ एक अच्छे कृषक पाण्डेय जी का बच्चा पढ़ता है। जब भी हमें उनके घर जाने का अवसर मिला, हमने यही देखा कि कहीं वह लड़का भैंस बाँध रहा है, कहीं बैलों को चारा दे रहा है तो कहीं खेत में सिंचाई कर रहा है। पढ़ाई के समय के बाद नित्य सबेरे-शाम वह अपने गृहस्थी के कामों में हाथ बँटाता है। उसकी यह आदत हमें बहुत अच्छी लगी। इसके विपरीत ऐसे भी युवक मिले हैं जिनके माँ-बाप आर्थिक दृष्टि से अधिक सम्पन्न नहीं हैं। बेचारे शाम तक कड़ी मेहनत करके अपनी जीविका चलाते हैं, पेट काटकर किसी प्रकार बच्चे को ऊँची शिक्षा दिलवाने में प्रयत्नशील हैं लेकिन उनके बच्चे के मन में यह धारणा बैठ गई है कि अब तो वह बी. ए. में पहुँच गया। बड़ा आदमी बन गया है। अपने हाथों काम करने में उसके मित्र उसकी हँसी उड़ायेंगे। इसी मिथ्या धारणा में वे छुट्टियों के दिन घर पर पड़े-पड़े सोया करेंगे या गाँव में इधर-उधर मटरगस्ती में अपना समय काट डालेंगे। उनकी आँखों के सामने ही घर के अन्य लोग बेचारे मेहनत करते रहेंगे लेकिन वे उनके कामों में तनिक भी हिस्सा बँटाने की इच्छा तक प्रकट न करेंगे। उनके इस दोष के कारण घर वाले भी उन्हें सम्मान अथवा प्यार की दृष्टि से नहीं देखते, गाँव के भी सभ्य लोग इस बात को अच्छा नहीं समझते। इसलिए माँ-बाप को बचपन से ही इस ओर ध्यान देना चाहिए। पढ़ाई कोई कोल्हू के बैल जैसी तो है नहीं कि उससे छूटने के बाद बैल से कोई काम न लिया जाय। सरकार भी अब इस ओर अधिक ध्यान दे रही है। स्कूलों में प्रसार योजनाएँ चालू की गई हैं। कुछ न कुछ कृषि की शिक्षा हर स्कूलों के साथ इसीलिए लगाई गई है ताकि भारत का मुख्य पेशा कृषि की ओर बच्चों का ध्यान आकर्षित किया जाय। अब तरह-तरह के उद्योग खोलकर बच्चों को उसमें लगाया जाता है। गाँधीजी के बेसिक शिक्षा के सिद्धान्त 'कर्म द्वारा शिक्षा' को सबने सही स्वीकार किया है और उसके अनुसार स्कूलों में थोड़ा-बहुत परिवर्तन हुआ भी है।

१. सरकारी प्रयास तभी कुछ सफलीभूत हो सकता है जब अभिभावकों का पूरा-पूरा सहयोग उसे मिले और अभिभादकों का सबसे बड़ा सहयोग यह है कि बच्चों को अपने व्यवसाय एवं गृहस्थी के कामों में अवश्य लगावें। स्कूल से सबेरे-शाम मिलाकर चार-पाँच घण्टे का समय मिलता है, इसमें से बच्चों के विश्राम एवं मनोरंजन व खेलकूद के लिए भी समय दिया जाना चाहिए लेकिन कम से कम एक-दो घण्टा तो नित्य उन्हें कृषि, गौ-सेवा, दुकानदारी अथवा कला-कौशल के कामों में लगाना ही चाहिए। इस बात की सतर्कता माँ-बाप अवश्य बरतें कि उनके निर्बल कन्धों पर कोई भारी बोझ न डाल दें। जैसे—कृषक अपने बच्चों से बोझ ढोने अथवा सिर के ऊपर कोई वजनदार चीज लाने-ले जाने का काम न सौंपे। सिर पर बोझा ढोने का प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है, जिससे उसका विकास अवरुद्ध होता है और परिणामतः बच्चा मन्द-बुद्धि हो जाता है। दूसरे भारी काम करने से बच्चे की रुचि भी उस ओर से हटने लगती है।

२. बच्चों में अपने पैतृक पेशे के प्रति रुचि भी पैदा करनी चाहिए। बच्चे को ही तो थोड़े समय बाद अपने पिता की सारी जिम्मेदारी सँभालनी है। यदि वह प्रारम्भ से उसमें रुचि नहीं लेता और ठीक प्रकार की जानकारी नहीं रखता तो थोड़े समय बाद सहसा पिता की मृत्यु अथवा किसी अन्य कारण से अचानक कोई संकट आने पर हाथ-पाँव ढीले हो जाते हैं। वह हताश हो जाता है और कुछ कर नहीं पाता। इसलिए पिता को चाहिए कि वह अपने बच्चे को सब कुछ सिखाता जाए। कृषक के लड़के को पिता के साथ खेतों को देखने जाना चाहिए, पैदावार की जानकारी रखनी चाहिए। अपने गाय, बैल, भैंसों आदि की संख्या तथा उनकी अच्छाई-बुराई को समझना चाहिए। तात्पर्य यह है कि गृहस्थी के दिन-प्रतिदिन के समस्त कामों का साधारण ज्ञान बच्चे को धीरे-धीरे अवश्य करा देना चाहिए ताकि वह भावी जिम्मेदारी को सँभालने के लिए सक्षम बन सके।

३. घर और परिवार की आर्थिक परिस्थिति कितनी भी अच्छी क्यों न हो और घर में चाहे कई नौकर काम के लिए लगे हों, पुत्र इकलौता होने का कारण बड़ा दुलारा हो, लेकिन समझदार माता-पिता को यही चाहिए कि बच्चे को अपने निज के सब काम करने को प्रोत्साहित करें। जैसे स्नान के बाद धोती धोने का काम नौकर को नहीं, बच्चे को स्वयं करना चाहिए। हाथ-मुँह धोने तथा नहाने के लिए पानी नल अथवा कुएँ से उसे स्वयं निकालना चाहिए। अपना बिस्तर स्वयं बिछाना चाहिए। अपने छोटे-छोटे काम बच्चे को स्वयं करते रहने की आदत पड़े। इससे उनमें स्वावलम्बन की भावना आती है, बच्चा परमुखापेक्षी नहीं होता। आगे चलकर आज की यह छोटी आदतें उसके बड़े काम की सिद्धि होती हैं। जो माता-पिता दुलार की अधिकता के कारण बच्चे को तो कुछ नहीं करने देते और स्वयं उसके सब कामों को करके उसके प्रति स्नेह-भाव का प्रदर्शन करते हैं, वे स्वयं जान-बूझकर बच्चे के पैर में कुल्हाड़ी मारते हैं। उसके भावी-जीवन को सुख और शान्तिमय बनाने के लिए उसे स्वावलम्बी बनना आवश्यक होता है।

४. बच्चे के दृष्टिकोण को बदलना चाहिए—श्रम के प्रति जो उपेक्षा-भाव आज व्याप्त है, लोग उसे नीची निगाह से देखते हैं, यह हीन-भावना बदलनी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने बड़प्पन की कसौटी अब 'काहिली' नहीं 'कर्मठता' होनी चाहिए। जो आदमी बड़ा काहिल, अपने हाथों अपना कोई भी कार्य कर सकने में असमर्थ, वह बड़ा नहीं, वरन् दो कौड़ी का है, यह विचार अच्छी तरह बच्चे के हृदय में बिठा देने चाहिए। चलते समय, अपने छोटे-छोटे सामान अपने हाथों उठा ले जाने से युवकों को शर्म और संकोच करने की अब जरूरत नहीं है और न उनकी प्रतिष्ठा पर किसी प्रकार की आँच आती है।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के जीवन से आज के युवकों को शिक्षा लेनी चाहिए। वे विद्या के सागर थे मगर सदैव साधारण वेष-भूषा में रहना उन्हें प्रिय था। प्रथम साक्षात्कार में देखने मात्र से उनकी योग्यता एवं महानता का परिचय लगाना कठिन था। वे एक दिन ट्रेन से किसी बड़े शहर को जा रहे थे। जब गाड़ी रुकने पर वे वहाँ उतरे तो क्या देखा कि एक युवक भी उसी गाड़ी से उतरा है, उसके पास एक अटैची है, जिसे स्टेशन से थोड़ी दूर आगे तक ले जाने के लिए वह कुली की खोज कर रहा है। युवक द्वारा थोड़ी देर प्लेटफार्म पर जोर-जोर से पुकारने पर भी कोई कुली न मिल सका। युवक बेचारा बड़ा निराश-सा लगने लगा था। इतने में ईश्वरचन्द्र जी उसके सामने आये और उसकी अटैची उठाकर अपने कन्धों पर रखकर युवक से चलने का संकेत किया। युवक ने समझा कि कोई कुली होगा। वह आगे-आगे चलने लगा और पीछे-पीछे अटैची लिए हुए विद्यासागर जी। जब युवक अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचा तो अटैची उतरवा ली और वह विद्यासागर जी को पैसे देने लगा लेकिन उन्होंने न लिए। दूसरे दिन उसी शहर में विद्यासागर जी का भाषण होने वाला था। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जी के नाम तथा योग्यता से सभी पढ़ा-लिखा समुदाय परिचित था। वह युवक भी उनके भाषण को सुनने के लिए गया। अपार भीड़ थी उनके दर्शनों के लिए। जब विद्यासागर जी मंच पर आये तो जहाँ हजारों ने उन्हें देखकर करतल-ध्वनि की, उस युवक बेचारे के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने देखा कि यह तो वही कुली है, जो कल मेरी अटैची लाया था। शर्म के मारे वह बेचारा धरती में गड़ गया। जब सभा समाप्त हुई तो वह अपने हृदय की भारी वेदना को लिए, जाकर विद्यासागर जी के चरणों में गिर गया। विद्यासागर जी ने पहचानकर उसे गले लगाया और कहा—"बेटा, तुम राष्ट्र के कर्णधार हो, तुम्हारे ऊपर ही देश की भारी जिम्मेदारियाँ आने वाली हैं। यदि तुम अटैची का हल्का बोझ अपने कन्धों पर नहीं उठा सकते तो देश की भावी जिम्मेदारियों का बोझ कैसे उठा सकोगे ?" युवक ने सब कुछ समझ लिया। उस दिन से उसने अपना सारा काम स्वयं करने का संकल्प किया, जिससे उसकी योग्यता तथा प्रतिभा में भी निखार आया।

आज के युवकों को भी विद्यासागर जी के आदर्श से प्रेरणा लेनी है। आज दासता वाला युग लद गया। एक समय था, जब हम अपनी सारी कठिनाइयों के लिए अँग्रेजी सरकार का मुँह ताका करते थे। उसे ही दोष भी दिया करते थे। अब तो देश स्वतन्त्र है, हम अपने भाग्य के निर्माता स्वयं हैं। अपनी सारी परेशानियों, कष्टों, अभावों को स्वयं ही तो दूर करना है। अपने ही पैरों पर खड़ा होने से अपनी मंजिल तय होगी। अपने ही हाथों करने से अपने कार्य पूरे होंगे, अपने ही सोचने और समझने से बुद्धिमानी का मार्ग प्रशस्त होगा, फिर क्यों न भावी भारत की सुन्दर कल्पना के लिए हम अपने युवकों को उस दिशा में समुचित प्रेरणा दें ?

सहयोगवृत्ति का कैसे विकास हो?

इस युग को हम यदि सहकारिता का युग कहें तो अनुचित न होगा। चारों ओर सहकारिता की आवाज गूँज रही है। सहकारी समितियाँ, सहकारी दुकानें, सहकारी क्रय-विक्रय समिति, सहकारी खेती आदि की चर्चा आये दिन अखबारों में पढ़ने को मिलती है। सहकारिता सरकारी मशीनरी का एक विभाग ही है, जिसका बहुत बड़ा जाल सारे भारत में फैला है। इतने कर्मचारी जनता में सहकारिता का प्रचार करते हैं और सहकारीतौर पर काम करने की आदत डालने में सहयोग देते हैं। सरकार की ओर से सहकारीतौर पर खेती, व्यापार कुछ भी करने पर अनुदान या ऋण मिलता है।

यह सब इसीलिए किया जाता है ताकि जनता में मिल-जुलकर काम करने की आदत पड़े। संगठित शक्ति ही अपना तथा राष्ट्र का कल्याण कर सकती है। अपने एक हजार वर्ष के अतीत के इतिहास की ओर यदि मुड़कर देखें तो अपनी सारी मुसीबतों, कठिनाइयों, दुर्दिनों, अपमानों तथा पराजय से उत्पन्न समस्त प्रकार की बुराइयों का एकमात्र कारण यही दिखाई पड़ेगा कि हममें मिल-जुलकर काम करने की आदत का अभाव हो गया। स्वार्थ-भाव और व्यक्तिवाद प्रबल हो उठा। जब पृथ्वीराज पर मुहम्मद गौरी का आक्रमण हुआ तो देश के अन्य राजा तमाशा देखते थे। उनके मतानुसार गौरी का आक्रमण केवल पृथ्वीराज पर था न कि देश पर। अन्त में सारे तमाशबीनों की भी एक-एक कर वही दशा हुई जो पृथ्वीराज की हुई थी।

आज से कुछ समय पूर्व जबकि कानून द्वारा सहकारिता फैलाने की बात नहीं थी, तब सहकारिता हमारे दिलों में थी। गाँव के लोग, विरादरी के लोग, जाति के लोग एक-दूसरे से मिले-जुले रहते थे। विरादरी की पंचायतें होती थीं, उनका चौधरी होता था, उसके फैसले को कोई टाल नहीं सकता था। मजिस्ट्रेट से भी अधिक अधिकार उसे प्राप्त होता था। लोग एक-दूसरे के काम-काज को अपना समझते थे। शादी-विवाहों, शुभ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अवसरों पर न्यौता देने का चलन क्या उत्तम प्रकार के सहकारिता का द्योतक नहीं है ?

यह सब इसीलिए था कि सहकारिता हमारे दिलों में थी। उसका श्रीगणेश तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में ठीक समय से, ठीक आयु में होता था। संयुक्त परिवार प्रथा थी, एक-एक परिवार में पचास-पचास, साठ-साठ व्यक्ति होते थे, परिवार का एक मुखिया होता था, वह सबके दुःख-दर्द का ख्याल रखता था, स्वयं दो बजे दातून करता था, लेकिन बच्चों को सबेरे भोजन करवाने का प्रबन्ध करता था। अपने लिए वह मिरजई, सलूका या बहुत हुआ तो कुरता पहनने को रखता था परन्तु घर के अन्य प्राणियों के पास काफी कपड़े रहते थे। तब चलती थी गृहस्थी और सहकारिता की अमिट छाप बच्चों पर पड़ती रहती थी। गाँव में एक का छप्पर उठाना हुआ तो मुहल्ले भर को आवाज लगाई, सब पहुँच गये और मिलकर छप्पर उठा दिया। किसी का खेत बोने को पिछड़ गया तो गाँव की पचासों बैलों की जोड़ियाँ एक दिन उसके खेत में चलने लगीं। पचास हाथ एक साथ खेत बुवाई का काम करने लगे, तो फिर उसका खेत एक ही दिन में क्यों न बो जाये ?

इन सारी परम्पराओं, रीति-रिवाजों से बच्चा बचपन से ही प्रेरणा लेता रहता था। छप्पर उठाते समय वह भी दूर से खड़ा देखता था कि मेरे काका का छप्पर सब लोग मिलकर उठा रहे हैं। आज उसके दादा अपनी बैल की जोड़ी लेकर रामआसरे का खेत बोआने गये हैं। क्योंकि इस वर्ष लड़के के मर जाने के कारण उनका खेत बोने से पिछड़ गया है, बच्चे भी पीछे-पीछे जाकर रामआसरे की मेंड़ों पर बैठकर भीड़-भाड़ भी देखते थे और घरौंदे बनाकर खेलते भी थे। गाँव में चाहे जिसके यहाँ ब्याह हो, ब्याह वाले घर के द्वार पर बच्चों की भीड़ तीन दिन पहले से इकट्ठी होनी शुरू हो जाती थी। अपने-अपने बाप, भाइयों को भी वे दौड़-दौड़कर सब काम कराते देखते थे। ब्याह के दिन एक स्थान पर न्योता चढ़ाते देखते थे, तो क्या इन सबका प्रभाव उन अबोध बालकों के हृदय पर नहीं पड़ता था ? अवश्य पड़ता था।

परन्तु आज कहाँ देखने को मिलते हैं बच्चों को यह दृश्य ? फिर आदर्शानुकरण की बात कैसे सम्भव हो सकती है ?

सहकारिता की आदत कैसे पड़े ?—बचपन से जबकि बच्चा स्कूल जाने लगता है, तब आप सहकारिता की आदत उसमें डालिए। इसके लिए कुछ छोटे-छोटे उपाय ही आपको करने पड़ेंगे। कोई बहुत बड़ी योजना बनाने की आवश्यकता नहीं और न कुछ धन ही उसके लिए खर्च करना पड़ेगा। केवल आपकी सतर्कता, बुद्धि-चातुरी और देख-रेख आपके बच्चे में सहकारिता के भाव भरने में बड़े सहायक बनेंगे। वे उपाय निम्नलिखित हैं—

(१) अपने घर के समस्त बच्चों को आप एक साथ बैठाकर खाना खिलाने की आदत डालिए। बच्चे सबेरे का नाश्ता, दोपहर तथा शाम का भोजन एक साथ करें, यदि किसी कारण किसी बच्चे को कहीं जाना हो तो चाहे पहले खाना खिला दीजिए, कोई हर्ज नहीं, लेकिन साधारण स्थिति में एक साथ खाने का ही नियम रखना चाहिए।

(२) सभी बच्चों को समान कपड़े पहनाइए। जिस रंग की कमीज बनवाइए, सब बच्चों के लिए बनवाइए। हो सकता है कि छोटी-बड़ी आयु के अनुपात से उनमें कुछ भेद करना पड़े मगर वह भेद आयु के आधार पर ही होना चाहिए। लगभग समान आयु के बच्चों के लिए समान कपड़े बनवाना चाहिए।

(३) घर के समस्त बच्चे एक साथ खायें, एक जैसा कपड़ा पहनें तो एक साथ खेलें भी। खेल में वे अपने मुहल्ले के बच्चों का भी सहयोग ले सकते हैं। एक साथ खेलने से मित्रता बड़ी घनिष्ट होती है। एक-दूसरे को सहयोग प्रदान करने की भावना का जागरण होता है। खेल के मित्रों की एकता अटूट होती है। यह सब लोग जानते हैं कि खेल के संगी साथी एक-दूसरे के लिए मर मिटने को तैयार हो जाते हैं। खेल-खेल में सहकारिता का सच्चा विकास होता है। समूहवाद का उदय खेल से ही होता है। प्रायः मुहल्ले और घरों में झगड़े-झंझट भी बच्चों को निमित्त बनाकर होते हैं, उसी प्रकार घर और परिवार में एकता भी बच्चों को निमित्त बनाकर लाई जा सकती है।

परिवार के सब बच्चे यदि एक साथ खेलें, मुहल्ले के बच्चे उनके साथी बनें तो फिर एक-दूसरे के यहाँ से आना-जाना शुरू हो जायेगा। बिना सोहन को बुलाये लल्लू खेलने जायेगा ही नहीं, अगर सोहन को चलने में कुछ देर है, वह अभी कपड़े पहन रहा है तो लल्लू उसके घर जाकर बैठा रहेगा, प्रतीक्षा करेगा और जब सोहन तैयार हो जायेगा तब दोनों साथ-साथ चलेंगे। बच्चों के प्रेम और एकता के अटूट सम्बन्ध के सामने बड़ों के बैर-भाव भी तिरोहित होने लगते हैं। मान लीजिए कि मुहल्ले के दो परिवारों में आपस में दुश्मनी चल रही है, मुकद्दमेबाजी भी ठनी है, लेकिन दोनों के यहाँ के बच्चे एक साथ खेलने जाते हैं, पढ़ने जाते हैं तो उन सबका एक-दूसरे के यहाँ आना-जाना शुरू हो जायेगा। तब यदि माँ अपने बच्चे को फल खाने के लिए दे रही है, उसी जगह पड़ोसी का बच्चा भी बैठा है, वह अपने साथी को खेलने जाने के लिए बुलाने आया है तो कठोर हृदय माँ भी उस बच्चे को थोड़ा फल अवश्य खाने को देगी। इस प्रकार थोड़ी-थोड़ी बातों से प्रेम-भाव जगेगा और दोनों परिवारों के दिलों में नरमी आनी शुरू होगी, वे सोचने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लगेंगे कि यार बेकार में झगड़े कर रहे हैं, आपस में मिलकर रहना चाहिए। चार दिन की जिन्दगी में सबसे बैर सिर पर क्यों लादें ? दोनों ओर से उठी हुई यह चाह दो परिवारों को मिला देगी।

(४) संकट या कष्ट के समय क्रियात्मक सहयोग एवं सहानुभूति प्रदर्शन करना चाहिए। जो बच्चे घर में एक साथ खाने, एक जैसा कपड़ा पहनने एवं एक साथ खेलने की आदत डालेंगे, वही विद्यालय में भी अपनी कक्षा और स्कूल के बच्चों के साथ मिलकर काम कर सकेंगे।

अब प्रश्न आता है 'सहयोग भावना' को क्रियात्मक रूप देने का, जब बच्चों में सच्चा प्रेम पैदा हो जाता है तो 'सहयोग' की प्रवृत्ति अपने आप जाग्रत हो जाती है, लेकिन माता-पिता को भी प्रेरित करते रहना चाहिए। अपने बच्चे को कक्षा में जो पास-पड़ौस के बच्चे पढ़ते हैं उनसे थोड़ी-बहुत जानकारी तो माता-पिता और परिवार वालों को हो ही जाती है, फिर यदि बच्चे का सहपाठी बीमार पड़े तो उसकी सूचना मिलते ही माँ-बाप को अपने बच्चे को उसे देखने जाने के लिए अवश्य भेजना चाहिए। बच्चा अपने सहपाठी की बीमारी की अवस्था में देखने जाये और उसके किनारे बैठकर घुल-मिलकर बातें भी करें। अस्वस्थ सहपाठी की सेवा-सुश्रूषा में उसके माता-पिता का हाथ भी बँटावें।

पारस्परिक सेवा का धर्म-कर्त्तव्य—मान लीजिए सभी बच्चे स्कूल से वापस लौट रहे हैं, सड़क पर किसी रिक्शे या ताँगे से टकराकर किसी बच्चे को गहरी चोट आ गई, तो अन्य सभी बच्चों का यह नैतिक कर्त्तव्य हो जाता है कि वे उसे तुरन्त प्राथमिक सहायता पहुँचाकर उसे अस्पताल तक ले जायें और उसके माता-पिता को भी सूचित करें। उस समय यदि घायल बच्चे को ले जाने आदि में कुछ पैसे खर्च करने पड़ें तो सब बच्चों को स्वेच्छा से सहयोग करना चाहिए। यदि कभी ऐसी घटना घटे और आपका बच्चा अपने सहपाठी की प्राथमिक सहायता हेतु व्यस्त रहने, उसे अस्पताल ले जाने आदि कार्यों में फँस जाने के कारण देर से घर लौटे तो सही उत्तर जान लेने के बाद माता-पिता को बच्चे के देर से वापस लौटने के अपराध में बिगड़ना या नाराज होना नहीं चाहिए। ऐसा तो स्वार्थी प्रकृति वाले ही करते हैं। उस समय अभिभावकों को बच्चों के कार्य की प्रशंसा भी करनी चाहिए।

यदि ऐसे अवसरों पर आप केवल बच्चे को उत्साहित कर देंगे उनके कार्यों के प्रति अपनी स्वीकृति दे देंगे तो यह निर्विवाद सत्य है कि उनकी सहयोग भावना का समुचित विकास होता चला जायेगा। लेकिन यदि कहीं मूर्खता या स्वार्थवश अपने बच्चे को झिड़क दिया कि तुम्हें तो चोट नहीं लगी थी, तुम क्यों देर से आये, अस्पताल क्यों गये ? रास्ते में कुछ हो जाता तो ? स्कूल से छुट्टी पाते ही सीधे घर आया करो, इधर-उधर के झंझटों में फँसने की जरूरत नहीं है आदि कहकर आप बच्चे की उठती कली को मसल दे रहे हैं तो वे निश्चयात्मक रूप से स्वार्थी प्रकृति के बनते चले जायेंगे, उनकी जीवन-दिशा बदल जायेगी। ऐसे ही बच्चे बड़े होकर स्वार्थी और मतलबपरस्त होते हैं। उनको दूसरों के दुःख-दर्द से कोई लगाव नहीं होता, उनका हृदय गरीबों की अवस्था से द्रवित होना जानता ही नहीं। ऐसे उदाहरण हजारों की संख्या में देखे जा सकते हैं। कई आदमी साथ-साथ बाजार घूम रहे हैं, स्वयं दुकान पर जाकर मीठा मोल लेकर खा लिया, अपने साथियों को पूछने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। दरवाजे पर बैठे खाने-पीने का बहुत-सा सामान रखे खा रहे हैं, चाहे थाली में बच जाये उसे कुत्ते खा लें मगर एक अपंग बेचारा द्वार पर आवाज लगा रहा है। उसे हाथ उठाकर एक रोटी देना उचित नहीं समझेंगे। ऐसे ही स्वार्थी लोग मुनाफाखोर, जखीराबाज आदि गुणों से विभूषित होते हैं। यह समाज के कान वाले बहरे, आँख वाले अन्धे और जबान वाले गूँगे होते हैं।

हृदयहीन स्वार्थपरता—चारों ओर मतलबपरस्तों को देखकर आश्चर्य होता है। एक सज्जन ऐसे ही नेपाल स्टेट के एक जमींदार साहब की कहानी सुना रहे थे। वे बताते थे कि आम की फसल में मैंने जाकर देखा तो उनके कोठार में कोई १०००० आम पड़ा सड़ रहा था। यह सज्जन उस जमींदार की प्रशंसा में ये बातें कर रहे थे कि वह बहुत बड़ा जमींदार था। दस हजार आमों के पड़े सड़ते रहने की बात सुनकर मैंने कहा—कि जमींदार साहब इन आमों को अपने गाँव वालों में क्यों नहीं बँटवा देते, क्योंकि सड़ने से अच्छा तो यह है कि वे लोग जिन बेचारों के यहाँ आम की फसल नहीं है, खाने को पा जाते। इसका बड़ा बढ़िया उत्तर उन्होंने दिया जो मुझे आज तक याद है। उन्होंने बताया कि जमींदार साहब उन आमों को इसलिए नहीं बँटवाते क्योंकि इससे उनके गाँव के लोगों में तब आम खाने की आदत पड़ जायेगी जब उन्हें नहीं मिलेगा तो बाग से चोरी से तोड़कर खायेंगे। आप सोचेंगे, कितना सुन्दर उत्तर यह है ? ये जमींदार साहब बचपन के वही बच्चे हैं, जिनमें इनके माता-पिता ने सहयोग एवं दया-भावना को प्रोत्साहित नहीं किया। इसी प्रकार कई जमींदारों के यहाँ मैंने खुद देखा कि पचासों मन मकई बखार में पड़े-पड़े सड़ जाती है, तब वे उसे कूड़े में फिकवा देते हैं। यह वही अन्न है जिसके लिये न जाने कितने लोग अपने बच्चों को भूखे रखकर सो जाते हैं। मनुष्य जब स्वार्थी हो जाता है तो पशुतुल्य हो जाता है, उसे किसी प्रकार के नीच कर्म करने में कोई हिचक नहीं होती।

'सहयोग-भावना' ही मनुष्यता की पहचान है। जिस व्यक्ति में यह भावना जितने अंश में विद्यमान है वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति उतने ही अंशों में महान् है। अपने बच्चों के स्वभाव का सूक्ष्म निरीक्षण माँ-बाप को करते रहना चाहिए। सहयोग के उपर्युक्त वर्णित अवसर आने पर उनमें हाथ बँटाने के लिए बच्चे को उत्साहित भी करना चाहिए और समय मिलने पर बच्चे को उपदेश भी देना चाहिए।

कृतज्ञता ज्ञापन एवं सहानुभूति—यह भी एक अच्छी आदत है। यदि कोई बच्चा आपके बच्चे को किसी प्रकार का सहयोग प्रदान करता है तो उस समय 'धन्यवाद' कहकर उस सहयोग के प्रति आभार प्रदर्शन करने की आदत भी आप अपने बच्चे में डालें। आप उसे सिखावें कि जब कोई कुछ वस्तु उसे दे तो लेते समय 'धन्यवाद' अवश्य करें। यदि कोई बड़ा, जैसे आपका निजी रिश्तेदार या अधिकारी आपके बच्चे को कोई वस्तु, मिठाई अथवा फल देता है तो लेते समय आपको बच्चे को बता देना चाहिए कि वह वस्तु लेकर 'नमस्ते' अवश्य करे तथा धन्यवाद कहकर आभार-प्रदर्शन करे।

वाणी द्वारा भावों का प्रदर्शन होता है। दूसरी बात आती है—बीमारी या कष्ट के समय सहानुभूति प्रदर्शन की। क्रियात्मक सहयोग तो करना ही चाहिए लेकिन पीड़ित सहपाठी के पास जाते ही शब्दों द्वारा सहानुभूति प्रकट करना भी आवश्यक है "भैय्या ! तुम्हारी बीमारी से मुझे बड़ा दुःख है, क्या करूँ, यदि वश चलता तो तुम्हारी आधी बीमारी मैं बाँट लेता, तुम्हें ईश्वर शीघ्र अच्छा कर देगा, घबड़ाने की बात नहीं है, यह तो फसली बुखार है, आजकल बहुत-से लोगों को हो जाता है।" इस प्रकार के शब्द कहकर आपके बच्चे अपने पीड़ित साथी का मन बहलावें। शब्द समय पर बन्दूक और तोप से ज्यादा काम करते हैं, शब्द-विज्ञान की महिमा अपरम्पार है। आप विश्वास करें कि कष्ट के समय कहे गये यह छोटे वाक्य रोगी बच्चे का आधा दुःख दूर कर देंगे और यह भी बात है कि वह बच्चा आपके बच्चे का सच्चा साथी बन जाएगा। उसकी मित्रता जीवन भर के लिए स्थायी बन जायेगी। संसार में सच्चे मित्रों की अत्यधिक आवश्यकता है, सच्चे मित्र प्राण देकर अपने मित्र की रक्षा करते हैं।

ईश-प्रार्थना—घर पर भी नित्य सामूहिक प्रार्थना करनी चाहिए। पाठशाला में स्कूल प्रारम्भ होने के साथ प्रार्थना होती है लेकिन अधिकांश स्कूलों में उसको वह महत्त्व नहीं दिया जाता जो कि दिया जाना चाहिए। इस कारण प्रार्थना एक प्रदर्शन मात्र रह जाता है। भावनाहीन एवं श्रद्धाहीन मन से की गई प्रार्थना का समुचित प्रभाव बच्चों पर नहीं पड़ता। बचपन से ही आप बच्चों के हृदय में आस्तिकता जगावें। सामूहिक पूजा-पद्धति का प्रसार करें। आपके घर के जितने बच्चे हैं उनके साथ पास-पड़ौस के बच्चों को भी शामिल होने का अवसर आप दे सकते हैं। एक समय निश्चित कर दें। मेरा विचार है सायंकाल ६-७ बजे का समय उत्तम रहेगा जब बच्चे खा-पीकर पढ़ना प्रारम्भ करें। सब बच्चे खड़े होकर कोई सामूहिक प्रार्थना करें, तत्पश्चात् पढ़ना प्रारम्भ करें। एक बच्चा कहे और शेष उसके बाद कहें।

यह एक अच्छी आदत रहेगी। इसका प्रभाव कई दृष्टियों से बच्चों पर पड़ेगा। प्रथम तो उनमें आस्तिकता के भाव जागेंगे, दूसरे एक सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव आप यह देखेंगे कि उनमें अनुशासन अपने आप आ जायेगा। उद्दण्ड एवं नटखट बच्चे भी प्रार्थना के प्रभाव से धीरे-धीरे सीधे होने लगेंगे। तीसरा लाभ यह होगा कि वे सभी बच्चे एकता के सूत्र में बँधने लगेंगे। उनमें सहयोग भावना एवं सहकारिता पैदा होगी।

इस प्रकार आप कुछ उपायों द्वारा अपने बच्चों में मानव-जीवन के वे महान गुण उत्पन्न करने में सफल हो जायेंगे, जिनके सहारे यह संसार टिका हुआ है। सहयोग और सहकारिता जिस दिन संसार से उठ जायेंगे उसी दिन संसार छिन्न-भिन्न हो जायेगा। प्रलय की अवस्था आ जायेगी। आदमी-आदमी के खून का प्यासा बन जायेगा, किसी का भी विकास नहीं हो पायेगा।

अतः बच्चों में आप इस गुण को उत्पन्न करने के लिए बड़ी चातुरी से प्रयास करें।

अन्त में अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति अब्राहीम लिंकन के शब्द सहयोग भावना की महत्ता प्रकट करने के लिए लिखने उचित होंगे।

उन्होंने कहा है—"मनुष्य को परमात्मा ने समर्थ और बुद्धिमान अवश्य बनाया है पर एक त्रुटि भी उसमें रखी है, वह यह है कि परस्पर सहयोग के बिना उसकी कोई भी विशेषता मूर्तिमान नहीं हो सकती। अन्य जीवों के बच्चे जन्म लेने के उपरान्त बहुत स्वल्पकाल तक माता का सहयोग लेते हैं, तत्पश्चात् वह स्वतन्त्र स्वावलम्बी जीवन व्यतीत करने लगते हैं। मनुष्य को यह स्थिति जीवन के अन्त तक प्राप्त नहीं होती। उसे अपनी छोटी-बड़ी सभी आवश्यकताओं के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। क्या कोई मनुष्य ऐसा है जिसने बिना दूसरों की सहायता के अपने लिए अन्न, वस्त्र, मकान, पुस्तक, मनोरंजन, परिवार, वाहन आदि के साधन स्वयं निर्मित करके अपना काम चलाया हो। उसे पग-पग पर दूसरों की सहायता अपेक्षित होती है और इसे जो जितनी मात्रा में प्राप्त कर लेता है, वह उतना ही सफल कहलाता है।"

"बौद्धिक, चारित्रिक एवं सामाजिक प्रगति के लिए भी मनुष्य को पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता होती है। मिल-जुलकर मनुष्य ने अब तक इतनी प्रगति की है। यदि उसे अधिक शक्ति और अधिक प्रगति की आवश्यकता है तो इसके लिए परस्पर अधिक स्नेह, सहयोग के साधन उसे जुटाने ही पड़ेंगे।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों को व्यवहारकुशल बनाइए

बच्चों को व्यवहारकुशल बनाने के लिए उनमें उत्तरदायित्व की भावना का विकास करना बहुत आवश्यक है। जिन बच्चों में उत्तरदायित्व का भाव जाग जाता है, वे हर काम बड़ी होशियारी से करते हैं। हर समय इस बात का ध्यान रखते हैं कि उनसे कोई काम बिगड़ न जाये। उन पर कोई उँगली न उठा सके अथवा किसी समय वे उपहासास्पद न बन जायें।

व्यवहारकुशलता का सीधा-सा अर्थ है कोई ऐसी बात या कोई ऐसा काम न करना, जिससे किसी को कोई तकलीफ पहुँचे अथवा वे आलोचना या उपहास के पात्र बन सकें।

यद्यपि सारे क्षेत्रों में किसी का पूर्णरूपेण कुशल हो सकना असम्भव के समकक्ष जैसी बात है तथापि समाज में साधारण व्यवहारकुशलता प्राप्त कर लेना सबके लिए सुसाध्य एवं आवश्यक है। जो सामान्य सामाजिक व्यवहार में कुशल नहीं होते वे अन्दर से अच्छे होते हुए भी समाज में उचित स्थान नहीं पा सकते। लोग उनके विषय में यह कहकर आलोचना किया करते हैं कि 'अमुक व्यक्ति हो सकता है अन्दर से अच्छा हो किन्तु व्यवहार से अच्छा प्रतीत नहीं होता' और समाज में इस प्रकार की धारणा लोगों को उसके प्रति शंकालु ही बनाये रखती है।

समाज में विनिमय, वार्तालाप, सम्बन्ध एवं सामंजस्य चार ऐसी बातें हैं, जिनकी पृष्ठभूमि पर ही सारे सामाजिक व्यवहार आधारित रहते हैं। इन चार बातों को ठीक से व्यवहार कर सकने की योग्यता प्राप्त कर लेना ही व्यवहार दक्षता है।

विनिमय का अर्थ है, आदान-प्रदान अथवा लेन-देन। जो पैसे का, वस्तु का, भावनाओं का अथवा विचारों का हो सकता है। विनिमय के व्यवहार में जहाँ तक हो सके सीमान्त स्पष्टता एवं ईमानदारी रखनी चाहिए। जैसे कोई वस्तु खरीदते समय अपनी चतुरता अथवा हीलोहज्जत से दुकानदार को साधारण भाव से कम कीमत देने का प्रयत्न न करना चाहिए, क्योंकि इससे दुकानदार अपना नुकसान तो करेगा नहीं उल्टे अच्छा ग्राहक न समझकर ऐसे व्यक्ति के हाथ कोई चीज बेचना पसन्द न करेगा और यदि एक बार, वह ग्राहक बनाने के लिए दब भी जायेगा तो दूसरी बार एक पैसे के दो पैसे वसूल कर लेगा और सबसे पहले घटिया चीज भिड़ाने की कोशिश करेगा। बार-बार ऐसा करने वाले व्यक्ति की साख ग्राहक के रूप में बाजार में कम हो जाती है और हजारों रुपये का सामान खरीदने पर भी वह आदर नहीं पा पाता जो उसे मिलना चाहिए।

अब रही कोई चीज बेचने की बात। कोई वस्तु बेचते समय सामान्य भाव से अधिक पैसे लेने के लिए बढ़ा-चढ़ाकर मूल्य बतलाना, घटिया चीज भिड़ाना या असन्तोषजनक ढंग से विक्रय करने वाले की, दुकानदार के रूप में साख खराब हो जाती है और वह एक बड़ा दुकानदार होने पर भी न तो अपेक्षित बड़प्पन पा सकता है और न अधिक समय तक अपनी स्थिति बनाये रख पाता है। धीरे-धीरे ग्राहक संख्या कम करता हुआ छोटा-सा दुकानदार रह जाता है।

इसी प्रकार पैसा लेने-देने में समय और परिमाण में यथा-सम्भव हेर-फेर करने का प्रयत्न न करना चाहिए और यदि किसी भ्रम, भूल या परिस्थितिवश ऐसा हो जाये या करना पड़े तो ईमानदारी से उसका स्पष्टीकरण करने में संकोच न करना चाहिए।

वार्तालाप में सत्यता, शिष्टता एवं देशकाल का विचार रखना चाहिए। सत्य यदि शिष्ट नहीं है अथवा शिष्टता, सत्यता से परे है या यह दोनों बातें देशकाल के अनुकूल नहीं हैं तो अनुचित ही मानी जायेंगी।

सम्बन्ध मूलतः छोटे, समान, बड़े, पद, योग्यता एवं विशेषता के अनुसार छह प्रकार के होते हैं। जो जिस योग्य हो उससे उसी प्रकार का व्यवहार अपेक्षित है। इसके प्रतिकूल व्यवहार करना किसी भी दशा में ठीक नहीं है। जो जिस योग्य है उसको उसके अनुरूप स्थान देना बहुत बड़ी व्यवहारकुशलता है। छोटों से स्नेहिल, समानों से निःसंकोच और बड़ों से आदरपूर्वक बर्ताव करना चाहिए। पद में बड़े और आयु में छोटे व्यक्ति भी आदर और अदब के अधिकारी होते हैं। अपने से अधिक योग्यता अथवा किसी क्षेत्र में विशेषता (जैसे कला आदि) रखने वाले व्यक्ति भी अपने से बड़े अथवा उच्च पद पर न होते हुए सम्मान एवं सद्व्यवहार के पात्र होते हैं। उनसे व्यवहार करने में इन बातों का ध्यान रखना न केवल आवश्यक है अपितु अनिवार्य भी है।

सामंजस्य का अर्थ है अपने को इस तरह का बनाना कि हर व्यक्ति हर परिस्थिति तथा हर स्थान से समुचित समानता दिखला सके। जैसे दूसरे के दुःख में दुःख, सुख में सुख, परिस्थिति से अनुकूलता स्थान से निरपेक्षता का भाव प्रकट कर सकें। किसी के सुख-दुःख में उदासीन रहना, प्रतिकूल परिस्थिति में अधैर्य अथवा अयोग्य स्थान पर क्षोभ अथवा घृणा व्यक्त करना ठीक नहीं है। अपने अवांछित मानसिक आवेगों पर नियन्त्रण रखना व्यवहारकुशलता की एक महत्त्वपूर्ण शर्त है।

इस प्रकार इन व्यवहार सम्बन्धी आवश्यक बातों की शिक्षा देते हुए यदि बच्चों का पालन किया जाये तो कोई कारण नहीं कि वे व्यवहारकुशल न बन जायें। प्रारम्भ से ही बच्चों में इसकी चेतना का विकास किया जाना चाहिए, जिससे वे स्वतन्त्र व्यवहार करने की आयु तक पहुँचते-पहुँचते दक्षता प्राप्त कर लेंगे। जिन बच्चों में इन बातों का विकास प्रारम्भ से नहीं किया जायेगा वे बच्चे इस आयु तक आवश्यक दक्षता प्राप्त न कर सकेंगे जिसमें पहुँचकर उनका कोई भी व्यवहार महत्त्व रखता है और अच्छा या बुरा माना जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चे जब कुछ समझदार होने लगें यह कार्यक्रम तभी से शुरू कर दिया जाना चाहिए। सबसे पहले उन्हें परिवार के सदस्यों का परिचय कराया जाना चाहिए और उसी के अनुसार उनसे व्यवहार का अभ्यास। यह माता है, यह पिता है, यह बड़ी बहिन है, यह बड़े भाई हैं आदि बतलाते हुए यह भी बतलाना चाहिए कि उनके चरण छूना, उनके प्रति आदर रखना, उनकी आज्ञा मानना उसका परम कर्त्तव्य है। जो अपने से बड़े हैं, शिष्ट और अच्छे बच्चे उनसे तुम नहीं आप कहकर बोलते हैं। उनसे गुस्सा नहीं करते और न कभी उनका तिरस्कार करते हैं। इसका अभ्यास कराने के लिए जब भी इनमें से किसी को बुलवायें या उसे उनके पास किसी काम से भेजें तब कभी भी ऐसा निर्देश न दिया जाना चाहिए, जिससे उसमें कोई अनादर का भाव पैदा होने की सम्भावना रहे। जैसे "मुनिया को बुला लाओ," "विमलेश को आवाज देना" या "देखना, अम्मा क्या करती है ?" इसके विपरीत कहना इस तरह चाहिए कि "अपनी दीदी जी को बुला लाइये" "अपने दद्दा, बड़े भाई साहब या दादाजी को आवाज दीजिये" "जरा देखकर आइये कि आपकी माताजी क्या कर रही हैं ?" कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार निर्देश देने से उसमें उस समय अदब की भावना ताजी हो उठेगी और उन्हीं शब्दों में उनसे बोलेगा, क्योंकि बच्चों के प्रारम्भिक शब्द और सम्बोधन परिवार के गुरुजनों के ही दिये होते हैं। इस प्रकार हर समय इस बात का ध्यान रखने से वह कुछ ही समय में गुरुजनों से आदरपूर्वक व्यवहार करना सीख जायेगा।

व्यवहार में वार्तालाप का एक प्रमुख स्थान है। जिन बच्चों को शुरू में ही शब्दों और स्वर के संयम का अभ्यास करा दिया जाता है, वे आगे चलकर बड़े मधुर तथा उपयुक्त भाषी हो जाते हैं। शब्दों का गलत उच्चारण करना स्वर को अनावश्यक रूप में ऊँचा-नीचा करके बोलना अथवा वाक्यों को पूर्ण और ठीक न बोलना सम्भाषण का आकर्षण समाप्त कर देता है, जिससे दूसरों को उसकी बात न समझ में ठीक से आती है और न वे पसन्द ही करते हैं। अस्तु, शब्द-स्वर और वाक्य-विन्यास ठीक रखने के लिए उसे बहुत पहले से प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

सम्भाषण में नम्रता तथा देशकाल और सम्बन्ध का विशेष ध्यान रखना चाहिए। किन्तु जिस भाषण में अधिक से अधिक सत्यता का समावेश नहीं है, वह नम्र और संयत होने पर भी अच्छा ठीक नहीं है। इससे बच्चा दूसरों की नजर में झूठा, गप्पी और अविश्वस्त हो जाता है और समाज में उसका आदर नहीं होता।

इस प्रकार जो बच्चे, विनिमय, वार्तालाप, सम्बन्ध और सामंजस्य के ज्ञान से परिपूर्ण कर दिये जाते हैं, वे निःसन्देह व्यवहारकुशल होकर समाज में अच्छे नागरिक बनकर अपना निश्चित स्थान प्राप्त कर लेते हैं।

बच्चों को शिष्टता का प्रशिक्षण दें

सामाजिक व्यवहार में वार्तालाप, विनिमय तथा पारस्परिक सम्बन्ध समाविष्ट रहते हैं। इन तीनों में निपुणता होने पर व्यक्ति को सद्व्यवहारसम्पन्न कहा जाता है। जबकि इनमें अनगढ़पन होने पर व्यवहार में अकुशल माना जाता है।

आन्तरिक शिष्टता की अभिव्यक्ति ही सद्व्यवहार में होती है। जहाँ सहृदयता न हो, वहाँ शिष्टता एवं विनम्रता खोखली प्रतीत होने लगती है। तब उसका दूसरों पर अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ता। इसीलिए व्यक्ति को आन्तरिक रूप से ही शिष्ट-सौम्य होना चाहिए। साथ ही, बाह्य व्यवहार भी उसी के अनुरूप करना चाहिए। शिष्टता भी वस्तुतः एक आदत है। बार-बार के व्यवहार से कोई भी कार्यविधि आदत का अंग बनती जाती है। अतः बचपन से ही शिष्टता का प्रशिक्षण देना अच्छा होता है।

बच्चों की अनुकरणशीलता सर्वज्ञात है। जिस घर में शिष्टता का वातावरण रहेगा, वहाँ बच्चे स्वतः ही वैसा व्यवहार सीखते जायेंगे। यदि घर में लोग सुबह उठकर परस्पर अभिवादन करते हैं, सम्बन्धों के अनुसार प्रणाम आदि करते हैं, इष्टदेवता की मूर्ति के समक्ष जाकर प्रार्थना करते हैं, मृदु-मधुर वार्तालाप करते हैं, कटुक्तियों—व्यंग्यवाणों से दूर रहते हैं, तो बच्चा भी वही सब सीखता है। सहयोग-सद्भाव भरे वातावरण में बच्चे में भी सहयोग-वृत्ति बढ़ती है। वह मिल-बाँटकर खाना-पीना, मेल-जोल से रहना सीखता है। व्यवहार की मृदुता, सौम्यता, शालीनता और शिष्टता स्वभाव का अंग बन जाती है तथा आगे चलकर लोक-जीवन में सहयोग के आदान-प्रदान का आधार बनती है।

बच्चों को बाल्यावस्था से ही भिन्न-भिन्न सम्बन्धों का उचित निर्वाह सिखाना चाहिए। छोटों से स्नेहपूर्ण, बराबरी वालों से खुला, निस्संकोच, बड़ों से आदर्शपूर्ण ढंग से बोलना एवं व्यवहार करना सिखाया जाय। भोजन, स्कूल आने-जाने, सड़क पर चलने, किसी सोभा-सोसायटी या सामूहिक एकीकरण वाले स्थान में, यात्रा में, सामूहिक भोज के अवसर पर—प्रत्येक जगह शिष्टाचार के भिन्न-भिन्न नियम होते हैं। उनकी जानकारी बचपन से ही दी जानी चाहिए। काम करने के समूह मान्य ढंग को 'मैनर्स' कहते हैं। इन 'मैनर्स' का भी बहुत महत्त्व है। इन्हें भी जानना चाहिए। किन्तु मात्र ये पर्याप्त नहीं।

दूसरों के साथ वार्तालाप एवं व्यवहार में जब व्यक्ति की शालीनता, सौजन्यता प्रकट होती है, तब वही वास्तविक शिष्टता है। ऐसी शिष्टता में सौजन्यता, मृदुता तो होती ही है, जिसके साथ व्यवहार होता है, उसके प्रति सम्मान एवं संवेदनशीलता भी होती है। दूसरों के अधिकारों पर आघात न किया जाय, उन्हें अकारण अप्रसन्न न किया जाय, अप्रिय या असत्य बात न कही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाय तथा उनके भी सुख एवं सुविधा का ध्यान रखा जाय, तभी उसे शिष्टता कहेंगे। ऐसी शिष्टता व्यक्तित्व की कई कमियों को पूरा कर देती है क्योंकि उससे दूसरों का हृदय प्रभावित हो उठता है। आपस में मधुरता का संचार होता है। वातावरण सरल बनता है। तनाव-खिंचाव नहीं रह जाता।

यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि सच्चाई भी अशिष्ट तरीके से प्रस्तुत की जाती है, तो वह भी लोगों को पसन्द नहीं आती। जबकि कई बार बुराई तक अस्थायी तौर पर, शिष्टता के आवरण में पसन्द कर ली जाती है। इसलिए शिष्टता को सभी कार्यकलापों में अनुस्यूत रहना चाहिए। शिष्टता और मृदुता लोगों के व्यक्तित्व में शालीनता आती है, व्यवहार में लालित्य आता है। दूसरों में विश्वास पैदा होता है। आपसी समीपता बढ़ती है।

जो जैसा बोता है, उसे वैसा ही काटना होता है। दूसरों से प्रत्येक व्यक्ति शिष्ट व्यवहार की अपेक्षा करता है। यह अपेक्षा तभी पूरी हो सकती है, जब स्वयं भी दूसरों के साथ शिष्टता बरती जाय। भद्रता की प्रतिक्रिया भी भद्र ही होगी; जबकि रूखे, अभद्र व्यवहार से सामने के खुले दरवाजे भी बन्द हो जाते हैं।

बच्चों को बचपन से ही शिष्टता-शालीनता का अभ्यास कराया जाये। शिष्टता का अर्थ आडम्बर नहीं। बाह्याडम्बर का दम्भ अधिक समय तक छिपा नहीं रह पाता। उसके प्रकट होते ही मैनर्स यानी ऊपरी शिष्टता का सारा प्रभाव समाप्त हो जाता है। इसलिए 'मैनर्स' से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है विनम्रता।

बच्चों को प्रत्यक्षतः व्यावहारिक शिक्षण देना होता है। अवकाश के समय उनसे बातचीत करते हुए शिष्टता के तौर-तरीके समझाये, बताये जायें। साथ ही जीवन में उसकी उपयोगिता भी समझा दी जाय। यह क्रम कुछ दिनों के अन्तराल से चलता रहे। अपने वार्तालाप के ढंग से भी बच्चों को शिक्षण दिया जाय। बात करते समय किन शब्दों पर अधिक जोर दिया जाना उचित है, किस पर कम, किस समय किस ढंग से क्या बात करनी चाहिए, यह सब बच्चा बड़ों के क्रियात्मक रूप से अभिव्यक्त व्यवहार से ही सीखता है।

घर में जब पड़ोसी-परिचित, मित्र-परिजन, मेहमान आते हैं, उस समय बच्चे द्वारा सीखी गई शिष्टता को जाँचने-परखने का मौका मिलता है। बच्चे के व्यवहार को ध्यान से देखना चाहिए और आवश्यक सुझाव बाद में यथावसर देना चाहिए। घर-बाहर अपने भाई-बहिनों, साथियों-सहयोगियों तथा घर के सदस्यों से बच्चा किस प्रकार व्यवहार करता है ? यदि उसके व्यवहार में अपनत्व, शालीनता, सुघरता नहीं है तो समय पाकर उसे प्रेम से समझाते हुए यह सब सिखाना चाहिए।

वस्तुओं के पारस्परिक विनिमय में भी बच्चा शिष्टता का ध्यान रखे, यह देखना चाहिए। बच्चे की संवेदना पैनी होती है। धीरे-धीरे इन्हीं व्यवहारों से उसकी रागात्मक संवेदना जुड़ती जाती है। वे उसके स्वभाव का अंग बनते जाते हैं। शालीनता-विनम्रता की यह आदत जीवनपर्यन्त काम आती है। उनका व्यक्तित्व शिष्टता के सौरभ से महकता रहता है। बातचीत द्वारा दूसरों का मर्म जानना और जीतना उनके लिए कठिन कार्य नहीं रह जाता, जबकि उद्धत व्यवहार से आसपास तनाव बढ़ता है और तनाव की स्थिति किसी के भी हित में नहीं होती। हमेशा व्यंग्यात्मक ढंग से बोलने, उपहास करने, खिल्ली उड़ाने तथा उपेक्षा प्रदर्शित करने से तनाव और मनोमालिन्य का विषम चक्र चारों ओर चलता है तथा हर एक को अशान्त बनाता है।

बच्चों को सामान्य शिष्टाचार भी ध्यान से सिखाना चाहिए। जूते निश्चित स्थान पर उतारें, भोजनालय एवं पूजन-कक्ष में हाथ-पैर धोने के बाद ही प्रवेश करें, मलमूत्र उचित स्थान पर ही त्यागें, छिलके-कागज के टुकड़े आदि निश्चित स्थान पर ही रखें—यहाँ-वहाँ न फेंकें, गन्दगी न फैलायें, ये सब सुव्यवस्था सम्बन्धी गुण शिष्टता का भी अंग है।

खाँसते-छींकते या जम्हाई लेते समय रूमाल या हाथ का सहारा लेना, सबके सामने ऊँचे स्वर में डकार न लेना, इधर-उधर न थूकना, ये सब शिष्टता के बाहरी व्यवहार हैं। सामूहिक भोज एवं पार्टियों के समय भी शिष्टता के प्रचलन नियम होते हैं, उन्हें सिखाया जाय।

नाखून कुतरना, कमीज या फ्राक के बटन घुमाते रहना—ये कुछ ऐसी आदतें हैं, जो बच्चों में घर कर जाने पर बड़े होने तक बनी रहती हैं। बचपन में जहाँ ये कुटेव के रूप में होती हैं, वहीं बड़े होने पर ये अशिष्टता कहलाने लगती हैं। दूसरों पर इनका अनुचित प्रभाव पड़ता है। जिससे बात कर रहे हैं, वह अपने से बड़ा है, उसी के सामने नाक साफ करने के लिए छीकने-छिनकने लगना या नाखून कुतरने लगना—उसकी उपेक्षा-अवहेलना कहला सकती है।

यहाँ यह तथ्य भी स्मरण रखा जाना चाहिए कि शिष्टाचार सम्बन्धी छोटी-छोटी बातों के बच्चों द्वारा यदा-कदा उल्लंघन से माता-पिता को अधिक अधीर एवं चिन्तित नहीं हो उठना चाहिए। यदि घर का वातावरण श्रेष्ठ है और बाहर की संगति भी अच्छी होती है तो थोड़े ही समय बाद वह शिष्टाचार का अनुसरण स्वयं ही करने लगता है।

कर्म, व्यवहार और वाणी की मधुरता एवं शिष्टता तथा दूसरों के प्रति संवेदनशीलता प्रत्येक बच्चे को सिखाई जानी चाहिए। ताकि उसे आगे भी सभी लोग प्यार करें, सहयोग दें और वह सफल एवं सार्थक जीवन जिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों को ईर्ष्यालु होने से बचाएँ

बाल मनोवैज्ञानिकों एवं बाल अपराध विशेषज्ञों का ऐसा कथन है कि ९० प्रतिशत बाल अपराधों का जन्म ईर्ष्या से होता है। बच्चों में ईर्ष्या का अंकुर अपने घर में ही उत्पन्न होता है एवं बच्चों के अभिभावकों ने बच्चों को ईर्ष्यालु होने से यदि नहीं बचाया, ऐसी परिस्थितियाँ व वातावरण उत्पन्न न किया जिसमें बच्चों में ईर्ष्या के अंकुर बजाय बढ़ने के समूल नष्ट हों तो फिर ईर्ष्यालु बच्चे आगे चलकर न केवल बालपन व किशोरावस्था में ही, अपितु अपने जीवन भर ईर्ष्यावश अपराधी-सा घिनौना व पतित जीवन जीते रहते हैं। अतः यह सर्वथा उचित ही होगा कि अपनी शैशवावस्था से ही बच्चों में ईर्ष्या के अंकुर प्रस्फुटित न होने दिए जाएँ व किसी कारण किसी स्तर पर यदि बच्चों में ऐसे भाव आ भी गए हों, तो उन्हें बच्चों के अभिभावक समूल नष्ट करने के प्रयास करें।

बच्चों में ईर्ष्या के भाव क्यों उत्पन्न होते हैं ? यह एक विचारणीय बिन्दु है। बच्चे को अपने आस-पास जैसा वातावरण मिलता है। उस वातावरण में यदि समय-समय पर बालक को अभिभावकों का समयानुकूल मार्गदर्शन, समयोचित मार्गदर्शन व बच्चों के अनुकूल प्यार-दुलार नहीं मिलता तो बच्चा अपने स्वयं के ही विचार दूसरों के प्रति बना लेता है व दूसरों के बारे में वह विद्वेषपूर्ण विचार बना लेता है। चूँकि विद्वेष, विद्वेष को ही जन्म देता है। अतः बच्चों में उभरे प्रारम्भिक विद्वेषपूर्ण विचार आगे चलकर उसे ईर्ष्यालु बना देते हैं व ईर्ष्यावश बच्चे फिर अपनी प्रतिकूल विचारणा बना लेता है, जो स्वयं उसके लिए, परिवार के लिए एवं पूरे समाज के लिए हानिप्रद रहती है।

ईर्ष्या एक प्रकार का विचार है, जो बच्चों के मन में इसकी अनभिज्ञता एवं पारिवारिक परिवेश के कारण उत्पन्न हो जाता है। आमतौर पर बच्चे में ईर्ष्या का विकार तब उत्पन्न होता है, जब उस घर में उस बच्चे के बाद कोई अन्य शिशु आने वाला होता है एवं नया शिशु आ जाता है। नए शिशु के आगमन की तैयारी में ही माता-पिता व परिवार के अन्य सदस्य रात-दिन लगे रहें व सदैव नवागन्तुक की ही चर्चा में व्यस्त रहें तो बच्चे के मन में सर्वप्रथम यह भाव जागता है कि ऐसा कौन-सा काम होने वाला है—ऐसा कौन-सा नया व्यक्ति आने वाला है, जो उसके माँ-बाप उसी की चर्चा-व्यवस्था में व्यस्त हैं व उनकी कोई चिन्ता ही नहीं कर रहे। नये शिशु के आगमन पर तो स्थिति और भी बिगड़ जाती है हर कोई नये शिशु को ही देखने, उसी की देख-रेख, चिन्ता, चर्चा में व्यस्त रहता है, क्या घर व क्या बाहर वाले हर कोई नये शिशु के आस-पास ही केन्द्रित रहते हैं व कल तक जो परिवार का प्यारा-दुलारा राजा बेटा था, वह आज कितना उपेक्षित हो गया है ? दुर्भाग्यवश यदि माता-पिता ने ऐसे अवसरों पर बच्चे की मनोदशा को ताड़कर उसे भावनात्मक प्यार न दिया व उसे नई स्थितियों से नहीं समझाया-बुझाया तो फिर बच्चा इस नये आगन्तुक के प्रति ईर्ष्यालु हो उठता है व उसके मन में यह विश्वास हो जाता है कि इसका अपना मान-सम्मान, प्यार-दुलार, पूछ-ताछ, नये शिशु के कारण ही कम हो गई है। यदि यह नया न आता तो उसका अपना अधिकार यथावत् बना रहता। अतः वह कई बार तो इतना अधिक ईर्ष्यालु हो उठता है कि अवसर मिलने पर अकेला देख नये शिशु को मारने को भी उद्यत हो जाता है। ऐसे में माँ-बाप को चाहिए कि बच्चे का काफी ध्यान रखें। माँ जब प्रसूति अवधि पूर्ण कर ले तो प्रथम बच्चे को यथासम्भव अपने पास सुलावे तथा नये शिशु से माँ उसका परिचय करावे, उसके बारे में बतावे कि उसका छोटा भाई (अथवा बहिन) घर में आया है, जो उसका छोटा है उसका मित्र बनेगा, साथी बनेगा, उसका प्यार-दुलार चाहेगा। माँ यदि बच्चे को ठीक ढंग से नवागन्तुक के बारे में समझा दें व नये शिशु और बच्चे के परस्पर संभाव्य सम्बन्धों को एवं उसके प्रति उत्तरदायित्व, कर्त्तव्य भाव जाग्रत कर दे तो बच्चा बजाय ईर्ष्या करने के नये शिशु से स्नेह करने लगता है। इसी प्रकार पिता को भी चाहिए कि जब व जिन अवसरों पर माँ व नया शिशु व्यस्त रहें व जिस समय बच्चे की माँ के पास उपस्थिति अवांछनीय हो, तब पिता बच्चे को अपने पास रखे व उसके साथ घूमे-फिरे, खाये-पिये। इससे बच्चे को एक पारिवारिक आश्वासन मिलता है व वह ईर्ष्या के कीड़े को फिर आसानी से नहीं पाल सकता।

नये शिशु के आगमन के बाद भी फिर जब बच्चे बड़े हो जाते हैं कुछ समझने-बूझने लगते हैं, तब भी उनमें एक-दूसरे के गुणावगुणों, पढ़ाई-लिखाई, खेल-कूद में प्राप्त सफलताओं, असफलताओं के कारण भी तुलनात्मक प्रशंसा, अप्रशंसा प्राप्त होते रहने से ईर्ष्या पनपने लगती है। हाथ की पाँचों अँगुलियों के समान घर-परिवार के सभी बच्चे एक समान प्रतिभावान तो होते नहीं यदि कोई किसी अंश तक एक क्षेत्र में विशिष्ट योग्यता अर्जित कर लेता है तो कोई दूसरे क्षेत्र में व कोई बिल्कुल ही औसत से कम प्रतिभावान हो। ऐसे में भी बच्चों में ईर्ष्या भाव जाग्रत होता है। अतः माँ-बाप को व परिवार के अन्य वरिष्ठ सदस्यों को चाहिए कि वे बच्चों की कभी भी तुलनात्मक प्रशंसा-अप्रशंसा, डाँट-फटकार न करें व बच्चों को जो सुख-सुविधाएँ, सामग्री आदि का प्रदाय हो उसमें भी भेदभाव न हो अन्यथा जो बच्चे एक-दूसरे के भाई-बहिन बने हैं, वे ही एक-दूसरे के दुश्मन बन बैठेंगे। ऐसे अवसरों पर कम प्रतिभावान बच्चों को भी निरन्तर प्रोत्साहन, प्रशंसा व सुविधा-सामग्री मिलती रहनी चाहिए। घर पर तो ठीक अक्सर बाहर वाले, मिलने-जुलने वाले, पास-पड़ोसी, रिश्ते-नातेदार भी जब परिवार में मिलने-बैठने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आते हैं तो वे अधिक सुन्दर, स्वस्थ व प्रतिभावान बच्चों की तो प्रशंसा करते हैं व कम प्रतिभावान बच्चों को या तो कोसते हैं अथवा उनको अच्छों का अनुकरण करने की इस ढंग से सीख देते हैं कि कम प्रतिभावान बच्चे बजाय सीखने के लिए अपने प्रतिभावान भाई-बहिनों के प्रति घोर ईर्ष्यालु हो जाते हैं। ऐसे अवसरों पर माँ-बाप ध्यान रखें कि बाहर वालों के सामने ऐसे प्रसंग आवें ही नहीं व यदि आवें तो भी कम प्रतिभावान की भी माँ-बाप किसी न किसी बहाने प्रशंसा करते रहें।

घर-परिवार में जिस तरह बच्चों का तुलनात्मक अध्ययन न किया जाय उसी तरह उनमें प्रतियोगी भाव भी इस अंश में जाग्रत न होने दिये जायें कि बजाय स्वस्थ प्रतिस्पर्धा के ईर्ष्या को ही पल्लवित करें। माँ-बाप अपने बच्चों को यह समझाते रहने का प्रयास करते रहें कि बच्चे अनेक प्रकार की शक्ति के छिपे भण्डार हैं व हर बच्चे में प्रकृति प्रदत्त असीम प्रतिभा छिपी रहती है। कोई भी बच्चा जन्म से कोई गुणावगुण लेकर नहीं आता तथा जो जैसा चाहे अपने अन्तर्निहित गुणों-प्रतिभा का विकास कर उस क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकता है। बच्चों को यह बात भी अच्छी तरह समझाई जानी चाहिए कि मनुष्य शरीर में अगणित प्रकार के शक्ति स्रोत हैं व किसी बच्चे में पढ़ाई के प्रति, तो किसी में खेल के प्रति, तो किसी में साहित्य के प्रति, किसी में कला के प्रति झुकाव रहता है। कोई भी बच्चा ऐसा नहीं जिसमें निर्माणात्मक शक्ति न हो। अतः विभिन्न क्षेत्रों में अपने-अपने स्वभाव व गुणों के अनुसार बच्चे एकाध प्रवृत्तियों में प्रतिभा, विशेष योग्यता प्राप्त करता है। अतः कोई बच्चा यदि पढ़ने में कमजोर है तो वह यह न समझे कि उसका जीवन अब निरर्थक हो गया, हो सकता है जीवन के अन्य क्षेत्रों में वह योग्यता प्राप्त कर ले। बच्चों के मन में यह भावना भर देनी चाहिए कि हर मानव शरीर का अपना विशिष्ट महत्त्व है व हर बच्चे को आगे चलकर अपना योगदान राष्ट्रीय जीवन में किसी न किसी रूप में देना है। अतः प्रारम्भिक सफलता, असफलता से निराश होने के स्थान पर बच्चे बढ़ते चलें। काम करते चलें। उन्हें किसी न किसी क्षेत्र में कभी न कभी अवश्य ही ऐसी उपलब्धि अवश्य होगी, जिससे उन्हें जीवन सार्थक होता प्रतीत होगा। यदि इस तरह के भाव बच्चों में पनप जाएँ तो वे न तो हीनता के भाव से ही ग्रसित होंगे व न ही ईर्ष्या के भाव उनमें जाग सकेंगे।

न तो दब्बू बनें, न ही उद्दण्ड

बाल्यकाल में प्रेम-सम्मान से वंचित, उपेक्षा, उपहास तथा अभावों के बीच समय गुजारने वाले व्यक्तियों में इसकी प्रतिक्रियाएँ दो तरह से सामने आती हैं या तो दब्बू हो जाते हैं या उद्धत-उद्दण्ड। दोनों का मूल एक ही है—आत्महीनता। बचपन में किसी भी तरह का अस्वाभाविक दबाव मन पर पड़ने पर ही आत्महीनता की ग्रन्थि पनपती है। यह दबाव माता-पिता द्वारा अनुशासन की गलत समझ से उत्पन्न अनावश्यक कठोरतापूर्ण बर्ताव के कारण भी हो सकता है। जन्म से भी ऐसी कुछ अविकसित बनावट कभी-कभी रह जाती हैं कि वे बच्चे तब तक सहज उन्मुक्त नहीं हो पाते, जब तक कि उनकी ओर विशेष ध्यान देकर समुचित प्रयास न किये जायें। पर आत्महीनता की ग्रन्थियाँ प्रधानतः जन्म के बाद शैशव काल के अभावों-न्यूनताओं की प्रतिक्रिया में पनपती हैं। बहुत-से पढ़े-लिखे माता-पिता अपने शिशु के अधिकाधिक विकास की शुभ आकांक्षा से ही, उसके एक-एक क्रिया-कलाप की अनावश्यक नुक्ताचीनी करते रहकर उसमें सदा मीनमेख ढूँढ़ते, टोका-टोकी करते रहते हैं। अन्य बच्चों की तुलना में उनके शिशु ने अधिक प्रगति की है किन्तु खेल में या कक्षा में एक-दो बच्चे उससे आगे बढ़ गए हैं तो प्रोत्साहन के स्थान पर भर्त्सना की मूढ़तापूर्ण प्रवृत्ति शिशु मन में कुण्ठा ही उत्पन्न करती है। बीमार, अपंग या मन्दबुद्धि बच्चों को बार-बार डाँट-डपट द्वारा सुधारना-सँभालना तो असम्भव है। दूसरों में अपनी स्थिति गई-गुजरी ही मान बैठने की भाग्यवादी धारणा का विष-वृक्ष उनमें अवश्य पनपा दिया जाता है।

महिलाएँ तथा पिछड़े कहे, समझे जाने वाले वर्ग के लोग निरन्तर उपेक्षा से अपने को हेय, घटिया मान बैठते हैं और उसी के अनुसार अपने सोचने-समझने का ढंग भी ढालते जाते हैं। परिणामतः उनकी प्रत्येक क्रिया से ऐसा दब्बूपन टपकता है, जो क्रूर, अमानवीय अहंता को भले ही अपने अनुकूल जान पड़े, पर संवेदनशील सज्जनों के मन में उससे गहरी पीड़ा तथा करुणा का स्रोत ही फूटता है। हीनताग्रस्त व्यक्ति की नम्रता से उन्हें प्रसन्नता नहीं, परेशानी ही होती है क्योंकि उस नम्रता में दब्बूपन और चापलूसी ही भरी होती है।

प्रकृति में दब्बूपन को पनपने देना वस्तुतः आत्म-तिरस्कार है। दूसरों को, विशिष्ट और अपने को तुच्छ मान बैठने पर अपने तथा औरों के बीच एक ऐसी कल्पित खाई बन जाती है कि सीधी-सी बात भी सहज रीति से औरों के सामने रखने का साहस नहीं होता। ऐसी मनोवृत्ति बन गई, तो अधिकांश समय गलतफहमी से ही अविश्वास, घुटन और अकारण रोष-क्षोभ उत्पन्न होते रहते हैं। दूसरा कुछ अन्यथा न समझ ले, बुरा न मान जाए, झिड़क न दें इस डर से मुँह खोलने का साहस भी नहीं जुटा पाने वाले लोग अपने को तो पीड़ा पहुँचाते ही हैं, औरों के प्रति भी मन ही मन गलत धारणाएँ पालकर अन्याय ही करते हैं।

दब्बू व्यक्ति आलसी भी हो जाते हैं। उनमें उत्साह उमड़ता ही नहीं। सहज सक्रियता के अभाव में उनमें स्थाई असन्तोष जड़ें जमा लेता है। लोग उनका अनुचित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लाभ उठाते रहते हैं। बेगार लेते रहते हैं, ठग लेते हैं, रुपये आदि उधार ले लेते हैं और फिर लौटाते नहीं। ऐसा नहीं कि वे सामने वाले का इरादा भाँप न जाते हों, ऐसा भी नहीं कि गलत इरादों के प्रति उनके मन में विद्रोह न उठता हो, पर अस्वीकार करने का उनमें साहस ही नहीं होता। लोग उनसे लाभ तो उठा लेते हैं, पर कभी भी उनका एहसान नहीं मानते क्योंकि लाभ उठाते समय उनके मन में यह स्पष्ट रहता है कि वे उस दब्बू को ठग रहे हैं। वे उसे उदार नहीं मानते।

हीनता का भाव पूरे व्यक्तित्व को दबोच लेता है। व्यक्ति की चाल-ढाल से भी यह स्पष्ट ध्वनित होता रहता है। वे कंधे झुकाए, सहमे, सिर नीचा किए, जमीन में धँस जाने की-सी इच्छा टपकाते हुए चलते हैं। अपने पुरुषार्थ की विस्मृति ही इस विकृति का एकमात्र कारण है। इस आत्महीनता की छाप प्रत्येक कार्य में अंकित होती है। थोड़े-से साहस और धैर्य से जिन कामों में सफलता सहज सुनिश्चित थी, उनमें भी दब्बू व्यक्ति असफल हो जाते हैं और हर असफलता उन्हें अधिकाधिक निरुत्साहित ही करती है। उत्साह और सजगता रही होती तो असफलता प्राप्त होने पर भी प्राप्त अनुभव से प्रेरणा ही मिलती है। अगले कार्यों में, इस बार की गई गलतियों से बचकर, सफलता को सुनिश्चित बना लिया गया होता, पर अपनी क्षमता पर ही जिसे अविश्वास हो गया, वह हाथ-पैर होते हुए भी अपंग और बुद्धि होते हुए भी संशयग्रस्त बना रहता है। ऐसा नहीं कि वह सोचता ही नहीं, कुछ करने की योजना ही नहीं बनाता। वह निर्णय भी कर लेता है, पर आत्महीनता से भरा संकोच उसे कदम ही नहीं बढ़ाने देता। दुःख और अपमानों पर ही निरन्तर विचार करते रहने का अर्थ है—स्वयं को उन्हीं दोषों के अनुसार और अधिक ढालते जाना, क्योंकि प्रत्येक विचार हमारी मानसिक प्रकृति का निर्माण करता है।

दब्बू व्यक्ति स्वयं तो साहस, धैर्य और स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाकर स्वयं का विकास कर ही सकते हैं। पर उसके सच्चे मित्रों का भी कर्त्तव्य है कि उसके गुणों की सदैव चर्चा प्रशंसा करें। प्रोत्साहन द्वारा उसके व्यक्तित्व परिष्कृत करें। ताकि उसका साहस जाग्रत हो। प्रत्येक दब्बू व्यक्ति, फिर वह संकोची हो या चापलूस बन गया हो, सदा असन्तुष्ट और भीतर ही भीतर खीझा-रूठा रहता है। साहस जाग्रत हो जाने पर उसका असन्तोष उत्साह में और खीझ प्रसन्नता में बदल जाती है। प्रगति के बीज सभी के भीतर छिपे पड़े हैं, उनके विकास के लिए श्रम किया जाए तो सुफल अनिवार्य है।

प्रत्येक विवेकवान व्यक्ति का दृष्टिकोण यह होना चाहिए कि किसी दब्बू, संकोची व्यक्ति के व्यक्तित्व का अनुचित लाभ उठाने के स्थान पर उसे सुधारे-निखारे। बुराइयों का विश्लेषण अधिक न करे, सुधार के रचनात्मक उपाय सुझाए। उत्साह से दिशा-निर्देश करे। भर्त्सना से उसके मन को और भयभीत न कर दे।

अधिकांश लोगों में आत्महीनता बाल्यकाल में तभी पनप जाती है जब बात-बात में उन्हें बेशऊर, मन्दबुद्धि, अभागा, अयोग्य, अविकसित आदि कहा बताया जाता है। बड़ों के ये गलत निर्देश शिशु की कोमल अन्तःचेतना में अंकित-स्वीकृत होते चलते हैं और उनकी अपने प्रति वही मान्यताएँ बन जाती हैं, उन मान्यताओं के इर्ग-गिर्द ही उनका जीवन-चक्र घूमता रहता है।

अन्तश्चेतना में इस स्थिति के प्रति विक्षोभ की लहरें उठती तो हैं, अपनी गई-गुजरी स्थिति से उबरने का उत्साह उत्पन्न तो अवश्यमेव और रह-रहकर होता है, उस समय यदि स्वयं अपनी गलतियाँ ढूँढ़ने, पूछने और सुधारने का प्रयास कम प्रबल कर दिया जाय, तो इस दुःखद स्थिति से छुटकारा पाना कठिन नहीं।

सही दिशा न मिलने पर आत्महीनता के विरुद्ध मन में उठा विक्षोभ औद्धत्य का विकृत नासूर बनकर फूट बहता है। पर इससे आत्महीनता समाप्त नहीं होती और जटिल हो जाती है। उद्धत व्यक्ति ऐसे कार्य करने को बेचैन रहते हैं, जिससे लोगों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो और उन्हें असाधारण समझा जाय। सचमुच असाधारण बन सकने की सामर्थ्य-साधना का धैर्य उनमें होता नहीं। व्यक्तित्व के समग्र निर्माण हेतु वांछित मनोबल की उनमें कमी ही रहती है। आदर्शवादी गतिविधियाँ अपना सकने हेतु आवश्यक उदात्त साहस, संयम, तितिक्षा और प्रखरता के सात्विक आनन्द की अनुभूति से तो वे अपरिचित ही रहते हैं। अतः उच्छृंखलता-उद्दण्डता का मार्ग ही उन्हें सुगम प्रतीत होता है। उस हेतु आवश्यक संगति भी शीघ्र सुलभ हो जाती है। आवाराओं का साथ गुण्डागर्दी के अभ्यास में सहायक होता है और दूसरों को आतंकित करने में आत्म-गौरव की प्रतीति होने लगती है। आर्थिक लाभ तथा अन्य तात्कालिक सुविधाएँ भी साथ ही मिलती हैं। चापलूसों की कमी नहीं हो पाती। पर उद्दण्ड लोगों में साहस का सर्वथा अभाव ही होता है। असलियत तो यह है कि अधिकांश गुण्डे बराबरी की मार-पीट के अवसरों को टालते रहते हैं और रौब दिखाकर दबे-सहमे लोगों को पीटकर अपना आतंक फैलाते रहते हैं। जिन लोगों को गुण्डों के वास्तविक जीवन को जानने का तनिक भी अवसर मिला हो, वे जानते होंगे कि कथित खूँख्वार गुण्डे तक बराबरी की मारपीट से हमेशा बचते हैं, किसी प्रमुख गुण्डे या कि आर्थिक अथवा अन्य दृष्टि से सुदृढ़ ऐसे व्यक्ति के संकेत पर ही वे बड़ी मार-पीट के कार्य करते हैं, जिससे उन्हें किसी न किसी तरह का भौतिक लाभ प्राप्त हो। सभी उद्धत, उच्छृंखल, आवारा लोग अपने निजी जीवन में थोड़ी-सी भी विपत्ति आ जाने पर बेतरह रोते-कलपते देखे गए हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिक साज-शृंगार करने वाले, बन-ठनकर रहने वाले व्यक्ति भी आत्महीनता से ही ग्रस्त होते हैं और सतही तड़क-भड़क से अपने को आकर्षक बनाने का प्रयास करते रहते हैं। पैसे का अपव्यय, अमीरी का ढोंग, कर्ज से लदे रहकर भी बड़े आदमियों की तरह महँगी वस्तुएँ खरीद सकने और पैसे बहा सकने का प्रदर्शन आदि की प्रवृत्तियाँ आत्महीनता की ही निष्पत्ति हैं। इससे उनकी हीन-भावना समाप्त तो होती नहीं, चित्र-विचित्र प्रतिक्रियाओं के उतार-चढ़ाव में उलझती-फैलती रहती है।

आत्मीयता के दोनों ही रूप समान रूप से त्याज्य हैं। विकसित व्यक्तित्व का अर्थ है—अपनी मान्यता को स्पष्ट से नम्र एवं सन्तुलित रीति से कह सकना, औरों की मान्यता का सम्मान करना, जीवन को भार न मानते हुए हँसते-हँसाते रहना और अपने खर्च की सीमा निर्धारित कर सकना। अपनी गलतियों को समझना और उनके सुधार का निरन्तर प्रयास करना, पर अनावश्यक मनस्ताप न पालकर रचनात्मक उपाय अपनाना।

विश्वव्यापी प्रचण्ड शक्ति-सामर्थ्य के समुचित अंश के स्वयं में भी विद्यमान होने की वास्तविकता को स्मरण रखा जाये तो आत्महीनता का कोई भी कारण नहीं उपस्थित होगा। न तो दब्बू होने की स्थिति आयेगी, न उद्दण्ड बनने की प्रवृत्ति होगी। आत्मविकास और सामाजिक प्रगति में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका और गरिमा को बनाए रखना और बढ़ाते रहना ही मनुष्य का उत्तरदायित्व है।

बच्चों को हठी न होने दीजिए

यों तो सभी बच्चे कुछ न कुछ हठी होते हैं, किन्तु कुछ बच्चे तो इतने हठी होते हैं कि उनके माता-पिता हर समय परेशान रहते हैं। उनके हठ की प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ जाती है कि वे हर बात के लिए हठ करने लगते हैं। जो बात साधारणतः पूरी हो सकती है उसमें भी हठ के लिए कोई न कोई कारण निकाल लेते हैं। जैसे वह अपनी माँ से पैसे माँगता है और उसको इन्कार किया जाता है, तब तो वह हठ करेगा ही। इसके विपरीत यदि उसे पैसे दिये भी जाते हैं, तब भी वह उनके कम-ज्यादा होने के विषय में मचल उठेगा। यदि उसे चार रुपये दिये गये हैं तो वह छह के लिये हठ करेगा और यदि छह दिये गये हैं तो आठ के लिए हठ करेगा। तात्पर्य यह है कि किसी इच्छा अथवा आवश्यकता की वह तब तक पूर्ण तुष्टि नहीं मानता जब तक किसी न किसी प्रकार हठ करता रहता है। इसी प्रकार वह खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, उठने-बैठने, खेलने-कूदने आदि सारी साधारण एवं असाधारण सभी बातों में हठ का कारण निकाल लेता है।

कभी-कभी बालकों का यह स्वभाव हठ की परिधि लाँघकर निषेधात्मक प्रवृत्ति का रूप ग्रहण कर लेता है। बालकों की यह प्रवृत्ति बड़ी खराब होती है। इस प्रवृत्ति के बालकों को संतुष्ट करना बड़ा कठिन होता है। साथ ही वे हठ पूरा हो जाने पर भी पूर्ण रूप से स्वयं भी सन्तुष्ट नहीं हो पाते।

किसी माँग को पूरी कराने के लिए हठ करना एक बात है और माँग पूरी होने पर हेर-फेर करने के लिए जिद करना दूसरी बात है। यह दोनों बातें परस्पर भिन्न हैं। इस स्वभाव के बच्चे निषेधात्मक, विरोधात्मक अथवा अस्वीकृतात्मक प्रवृत्ति के होते हैं जिसका सुधार बढ़ा दुःसाध्य होता है।

बच्चों के हठी हो जाने के अनेक कारण होते हैं, जिनमें सबसे प्रमुख कारण होता है—माता-पिता द्वारा उसकी हर बात को तत्काल मान लेना, वह बात उचित हो अथवा अनुचित। बच्चे की ज्यों-ज्यों हर बात मानी जाती है त्यों-त्यों उसकी इच्छाएँ बढ़ती जाती हैं। एक दिन ऐसा आता है कि उसकी हर इच्छा पूरी कर सकना अभिभावकों के लिए कठिन हो जाता है और इन्कार करना पड़ता है। इधर बच्चा अपनी इच्छापूर्ति का इतना अभ्यस्त हो चुका है कि इन्कार होते ही उसको एक धक्का लगता है, जिससे उसे तकलीफ होती है और उस तकलीफ को दूर करने के लिए हठ का सहारा लेता है। उसके लिए रोयेगा, मचलेगा और तरह-तरह से कलह-क्लेश करेगा। कपड़े उतारने लगेगा, उनको नोचने लगेगा, स्कूल नहीं जायेगा, खाना नहीं खायेगा, बाल नोचेगा, सर पटकेगा और विविध प्रकार की ऐसी-ऐसी हरकतें करेगा, जिससे अभिभावक घबराकर, ऊबकर अथवा मजबूर होकर उसकी इच्छा पूरी कर दें।

किन्तु जिन बच्चों को अपनी हर बात पर हमेशा इन्कार सुनने को मिलता है, उनका हठ इस प्रकार का नहीं होता। उनका हठ कोई बाह्य आन्दोलन का रूप न लेकर मन ही मन पलता रहता है, जिससे वे अन्दर ही अन्दर अपने अभिभावकों के प्रति विरोधी हो जाते हैं, जो आगे चलकर स्पष्ट रूप में एक साथ प्रकट होता है। उन्हें माता-पिता से कोई विशेष लगाव नहीं रहता और अधिकतर वे कुछ सयाने होते ही अपना कमाने और अलग रहने की सोचने लगते हैं।

साथ ही अपनी इच्छापूर्ति के लिए उनमें बुरी आदतें पैदा हो जाती हैं, वे किसी चीज के लिए पैसे चुराते हैं, खाने के लिए चीजें चुराते हैं और कोई काम करने के लिए अभिभावकों की नजर बचाते हैं। इस तरह एक प्रकार से उनमें चोरी एवं छिपाव का स्वभाव आ जाता है।

इसके अतिरिक्त हर बात में इन्कार पाने वाले बच्चे अधिकतर दीन-हीन होकर दयनीय भी हो जाते हैं। वे दूसरे बच्चों को देखकर तरसने लगते हैं, लालची बन जाते हैं और ईर्ष्यालु भी हो जाते हैं। उनमें एक ऐसी हीन-भावना आ जाती है जिससे वे साधारण और सामान्य बातों में भी सामंजस्य नहीं कर पाते और अकारण दबते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

या झेंपते रहते हैं। उनके आत्म-विश्वास और आत्म-महत्त्व की भावना का ह्रास हो जाता है जो उनके विकास में हर प्रकार से बाधक होता है।

हठी स्वभाव के बालक न केवल माता-पिता के ही लिए परेशानी के कारण बनते हैं अपितु पाठशाला में अध्यापकों के लिए भी एक समस्या बन जाते हैं। कभी कोई प्रश्न पूछे जाने पर यदि उन्हें उसका उत्तर नहीं आता तो चुपचाप खड़े रहेंगे और 'हाँ, ना' में कोई उत्तर ही नहीं देंगे। अध्यापक कितना भी कुछ बोलने के लिए क्यों न कहें, वे उनकी ओर देखते हुए गुम-सुम खड़े रहेंगे। डाँटने पर चुपचाप आँसू गिराने लगेंगे किन्तु बोलेंगे नहीं। उन्हें न बोलने की जिद सवार हो जाती है। इस प्रकार बड़ी देर तक कक्षा में, अध्यापक के बार-बार कुछ उत्तर देने के लिए कहने और उसके न बोलने का झंझट पड़ा रहता है जिससे पूरी कक्षा का नुकसान होता है। उसकी मौनता से सारे बच्चे एक परेशानी अनुभव करते हैं। दो-एक बार ऐसे होने पर अध्यापक हठी बच्चे की उपेक्षा कर देते हैं, जिससे पाठशाला में वह असहाय-सा हो जाता है, पाठशाला जाने से जी चुराने लगता है। घर से पाठशाला के लिए चलता है, लेकिन पाठशाला न जाकर इधर-उधर घूमता रहता है, जिससे उसके आवारा हो जाने की सम्भावना रहती है।

दूसरे बच्चों के साथ खेलने में भी हठी बच्चों की पटरी नहीं बैठती। वे साथी चुनने में हठ करेंगे, गेंद या बल्ला पहले लेने या पहले खेलने के लिए जिद करेंगे, हार-जीत न मानने में उलझन करेंगे, इस प्रकार वे न सुविधापूर्वक स्वयं खेलेंगे और न दूसरों को खेलने देंगे। एक-आध बार ऐसा करने पर साथी उसका बहिष्कार कर देते हैं और वह अकेला रह जाने से सबसे चिढ़ने या झगड़ा करने लगता है जिससे आगे चलकर वह दिनोंदिन झगड़ालू होता जाता है।

हठी बच्चे के दिमाग में हर समय एक रोष, खीझ और परेशानी बनी रहती है, जिससे वे क्रोधी, चिढ़-चिढ़े और विरोधी बन जाते हैं। उनका बौद्धिक विकास रुक जाता है और वे किसी क्षेत्र में कोई उन्नति नहीं कर पाते।

इसलिए हठी बनने से रोकने के लिए माता-पिता को हर सम्भव उपाय करना चाहिए। माताओं को इस दिशा में अधिक सजग रहने की आवश्यकता है, क्योंकि छोटे बच्चों का अधिकतर सम्पर्क उन्हीं से रहता है। बच्चों के खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने और पैसा आदि देने का सम्बन्ध उन्हीं से रहता है। साथ ही वे कोमल स्वभाव की भी होती हैं और बच्चा पिता की अपेक्षा उनसे डरता भी कम है। इसलिए माँ से हठ करने और उसके पूरे होने की सम्भावना अधिक रहती है।

जहाँ बच्चा किसी बात के लिए थोड़ा-बहुत मचला या रोया कि उनका कोमल हृदय विचलित हो उठा और बच्चे की माँग पूरी हुई। उनको अपने मातृ-भाव के सामने यह विचार करने का मौका ही नहीं रहता कि बच्चे की माँग उचित है अथवा अनुचित है और यदि माँग अनुचित भी होती है, तब भी बच्चे के प्रति प्यार अथवा उलझन से बचने और समय बचाने के लिए वे उसके हठ को जल्दी से जल्दी पूरा कर देती हैं।

माताओं को चाहिए कि वे बच्चे के हित को ध्यान में रखकर अपने वात्सल्य का ऐसे अवसर पर नियन्त्रण रखें। बच्चे की हर माँग की विवेचना करके उसे पूरा करें। यदि माँग उचित है, तब भी तत्काल पूरा करने के बजाय इस ढंग से थोड़ी देर टालकर पूरा करें, जिससे कि उसमें धैर्य रखने की प्रवृत्ति पैदा हो। बच्चे की माँग पूरी करने के लिए न तो तत्काल स्वयं अधीर हो उठना चाहिए और न इतनी टालमटोल करनी चाहिए जिससे वह अधीर हो उठे।

जहाँ तक सम्भव हो बच्चे की अनुचित माँग को कदापि पूरा न किया जाय। इस विषय में अवश्य ही इतनी दृढ़ता बरती जानी चाहिए कि वह हठ छोड़ने पर मजबूर हो जाये और यदि किसी कारणवश उसकी अनुचित माँग करने की मजबूरी ही आ पड़े तो उसे तत्काल पूरी न करके विलम्ब से उस समय इस ढंग से पूरी करनी चाहिए, जिससे उसे हठ के विजयी होने का अनुमान न हो सके। इस प्रकार दो एक-बार परास्त होने पर अनुचित बात के लिए उसका हठ शिथिल पड़ जायेगा।

वास्तव में किसी अनुचित बात के लिए ही बच्चों का हठ ठीक नहीं होता, उचित बात में भी नहीं। कोई भी उचित माँग कर सकना उनका अधिकार है। उनके इस अधिकार की यथासम्भव रक्षा करना अभिभावकों का एक नैतिक कर्तव्य है। कोई उचित माँग पेश करने पर इन्कार कर देना उनके प्रति अत्याचार है। आवश्यकताएँ तो बच्चे की भी हो सकती हैं। यदि माता-पिता उसकी आवश्यकताएँ पूरी नहीं करेंगे तो वह उनके लिए किससे अनुरोध करेगा उसके पास स्वयं अपना कोई साधन या स्रोत तो होता नहीं जिससे वह अपनी आवश्यकताएँ पूरी कर ले और न वह इतना बुद्धिमान ही होता है कि बिना आवश्यकता पूर्ति के काम चला ले, साथ ही वह इतना संयमी भी नहीं होता कि किसी आवश्यकता को उत्पन्न ही न होने दे। हर दशा में वह अपनी आवश्यकता अपने माता-पिता के सम्मुख ही रखने को मजबूर है।

ऐसी दशा में यदि उसे बार-बार निराश होना पड़ेगा तो वह अवश्य हठी होने लगेगा। यदि उसके उचित हठ को भी डाँट-डपट और मार-पीटकर दबा दिया जावेगा तो उसका मन अवश्य अपने माता की ओर से फिर जायेगा। वह अपनी आवश्यकता किसी से कुछ उधार लेकर अथवा माँग कर पूरी करेगा। जिससे उसका सम्मान दूसरों की ओर हो जायेगा। बच्चों के लिए यह स्थिति अच्छी नहीं होती। उसमें लोभ, लालच और याचना की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। दूसरे लोग इसका लाभ उठाकर बच्चे को माता-पिता के प्रति विद्रोही बना देते हैं। यदि मित्र नहीं तो कम से कम वैमनस्य मानने वाले लोग तो इसका फायदा उठायेंगे ही।

इन सब बातों का ध्यान रखते हुए बच्चों की उचित माँग अवश्य मान लेना चाहिए किन्तु इसमें भी इतनी जल्दी नहीं करनी चाहिए जिससे वह उन्हें बार-बार तत्काल पूरी कराने का आदी हो जाये क्योंकि कभी-कभी कोई उचित माँग न पूरी कर सकने की स्थिति हो सकती है और तब तत्काल पूर्ति का अभ्यस्त उसके विषय में परेशानी पैदा करेगा।

कभी-कभी उचित माँग भी अनुचित होती है, जैसे वह घर के नियमानुसार कुछ पैसे माँगने और पाने का अधिकारी है किन्तु यदि वह अपने पैसे माँगता है, पतंग उड़ाने या आतिशबाजी जलाने के लिए तब उसकी वह उचित माँग अनुचित ही है और किसी दशा में भी पूरी नहीं होनी चाहिए, क्योंकि ऐसी माँगों को उसका अधिकार समझकर यदि पूरा किया जायेगा तो जहाँ एक ओर हठ की सम्भावना नहीं है, वहाँ दूसरी ओर उसमें अन्य बुरी बातें पैदा हो जाने की आशंका है। इसलिए बच्चे की उचित माँग को भी विश्लेषण किये बिना पूरी न करना चाहिए।

बच्चे को हठी बनने से रोकने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि उसकी आवश्यकताओं का स्वयं ध्यान रखा जाये और उनको ठीक समय पर उसके बिना कहे ही पूरा कर दिया जाये। इस प्रकार वह अपनी आवश्यकता खुद समझने और उनको पूरा करने के प्रयत्न से मुक्त होकर माता-पिता पर निर्भर रहेगा जिससे उसके लिए हठ करने का कोई अवसर ही न आयेगा और यदि कभी उसके कहने का अवसर आ भी जायेगा तो वह माता-पिता के सामने प्रस्ताव करेगा, स्वयं हठपूर्वक उसकी माँग न करेगा। जिन बच्चों को विश्वास रहता है कि उनके माता-पिता उनकी हर बात का ध्यान रखते हैं, वे बच्चे अपने माता-पिता के सदा अनुकूल रहते हैं और कभी परेशान नहीं करते। किसी बात के लिए इन्कार किये जाने पर भी उनके मन में कोई कुण्ठा अथवा क्षोभ की उत्पत्ति नहीं होती।

किन्तु इस बात में भी यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि उनकी इस निर्भरता से वे आगे चलकर परावलम्बी न बन जाएँ। इसलिए उनकी माँग को पूरा करते समय यह समझाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए कि यह आवश्यकता उनकी क्यों थी और इस समय क्यों पूरी की गई और अनुचित ब्रात के लिए इन्कार करते समय उन्हें बताया जाना चाहिए कि इस बात से उनको अमुक हानि हो सकती है, इसलिए उनके हित में ही उनकी अमुक बात नहीं मानी गई है। इस प्रकार वे आवश्यकता के औचित्य एवं अनौचित्य के प्रति समझदार होकर कभी अनुचित हठ करने के अभ्यस्त न होंगे।

बालचरित्र-निर्माण सम्बन्धी कुछ आवश्यक ज्ञातव्य

आदत और चरित्र एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं, क्योंकि एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। इसी धारणा के आधार पर कुछ लोगों ने चरित्र को आदतों का पुंज और आदतों को व्यक्ति का दूसरा स्वभाव माना है। परन्तु इस धारणा से पूर्णरूपेण हम सहमत नहीं हो सकते, यद्यपि हम यह मानते हैं कि आदतों का व्यक्ति के चरित्र पर अवश्य गहरा प्रभाव पड़ता तो भी आदत और चरित्र में बड़ा भेद है। आदतें यान्त्रिक होती हैं, उन पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। अनुकूल परिस्थिति के अभाव में वे हमारी सहायता नहीं कर सकतीं। परन्तु चरित्र के विषय में ऐसी बात नहीं कही जा सकती। चरित्र तो सदा हमारे साथ रहता है। हमारी प्रत्येक गति का उससे घनिष्ट सम्बन्ध होता है। आदत से व्यक्ति को कोई ऐसी शक्ति नहीं प्राप्त होती जिससे उसके सारे कार्य निर्धारित होते रहें। परन्तु चरित्र तो व्यक्ति के सारे जीवन सिद्धान्त का निचोड़ होता है और उसी के अनुसार वह अपने जीवन का विभिन्न व्यापार चलाता है। विवेक के अनुसार जो कार्य किया जाता है, उससे अच्छी आदतें बन पड़ने की सम्भावना रहती है और तब ये अच्छी आदतें हमारे चरित्र के अंग हो सकती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि चरित्र और आदतों में घनिष्ट सम्बन्ध होते हुए भी वे एक-दूसरे से भिन्न हैं।

आदत का महत्त्व—हमारे अनेक आचरण हमारी विभिन्न आदतों द्वारा नियन्त्रित होते हैं। यदि कोई बुरी आदत पड़ गई तो उससे पिण्ड छुड़ाना बड़ा ही कठिन होता है। बीड़ी, सिगरेट तथा अन्य मादक वस्तुओं की आदत पड़ जाने पर उन्हें छोड़ना बड़ा ही कठिन हो जाता है। पिंजड़े से छोड़ा हुआ तोता फिर पिंजड़े में जा बैठता है। अभ्यस्त घोड़ा स्वतः स्वामी को घर पहुँचा देता है। जब पशु का जीवन आदतों से इतना प्रभावित होता है तो मानवीय जीवन का क्या कहना ? बहुत दिनों तक जेल में रहने वाले कैदी मुक्त किये जाने पर फिर जेल में ही रहना पसन्द करते हैं। फ्रांस की राज्य-क्रान्ति में वर्षों बाद वेस्टील नामक कारागृह से मुक्त किये जाने पर कैदियों में ही जीवन बिता देने की इच्छा प्रकट की। ग्राम्यजीवन से अभ्यस्त व्यक्ति शहरी जीवन से दूर रहना चाहता है। यदि प्रारम्भ में ही बालकों में कुछ अच्छी आदतें डाल दी जाती हैं तो वे उनमें स्थायी हो जाती हैं। बालक के मस्तिष्क में संस्कारों का प्रभाव बड़ी शीघ्रता से पड़ता है। अतः बचपन में आदतों का डालना बड़ा सरल होता है। इसीलिए तो बच्चे पढ़ना-लिखना शीघ्रतर सीख लेते हैं और प्रौढ़ों को सीखने में बड़ी कठिनाई होती है। लिखने का थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करते रहने से एक दिन लेखक बन जाना सम्भव हो सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतः आदत से हम अपनी शक्तियों का संचय और वृद्धि कर सकते हैं। पर आदत का दास बन जाने पर व्यक्ति को बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। 'विलियम जेम्स' ने आदत डालने के लिए चार नियमों का उल्लेख किया है—

संकल्पदृढ़ता—आदत डालने में संकल्प की दृढ़ता का बड़ा भारी महत्त्व है। संकल्प करने से व्यक्ति अपने में क्या-क्या आदतें नहीं डाल सकता ? संकल्प कर लेने के बाद यह चेष्टा होनी चाहिए कि अच्छी आदतें डालने का एक भी अवसर हाथ से न जाने पावे। अच्छा होगा यदि बालक को किसी विशिष्ट आदत की जीवन में उपयोगिता समझा दी जाये। इस प्रकार समझाना उपदेश के रूप में नहीं होना चाहिए। यदि इस सम्बन्ध में महापुरुषों के जीवन के दृष्टान्तों का सहारा लिया जाए तो बालकों में अच्छी आदतों के डालने की संकल्प-दृढ़ता आ जाएगी।

कार्यशीलता—सामने आदर्श रख देने के बाद उसके कार्यान्वित करने के लिए बालक को समुचित प्रेरणा देना आवश्यक है। कोरे आदर्शों और सिद्धान्तों से काम नहीं चलता। उनके अनुसार कार्य करना आवश्यक है अन्यथा वांछित आदत न पड़ सकेगी। कभी-कभी देखा जाता है कि कुछ अभिभावक और शिक्षक बालकों के समक्ष लम्बी-लम्बी बातें कर जायेंगे, परन्तु अपने सिद्धान्तों के अनुसार चलने में बड़े असमर्थ दिखलाई पड़ते हैं। ऐसे लोगों से बालक अच्छी आदत के बदले बुरी आदत सीखता है। अतः अच्छी आदत डालने के लिए यह आवश्यक है कि किसी विशिष्ट आदर्श के प्रति अभिभावक स्वतः क्रियाशील रहते हुए बालकों को उसे अपनाने के लिए आवश्यक प्रेरणा दें।

संलग्नता—संलग्नता के बिना आदत का पड़ना बड़ा कठिन है। कार्य आरम्भ कर देने के बाद उसमें संलग्न रहना, तब तक आवश्यक है जब तक आदत पक्की न हो जाये। अरस्तू ने ठीक ही कहा है कि गुण के लिए कभी भी अवकाश नहीं है।

अभ्यास—आदत पड़ जाने पर उसका जारी रखना बड़ा आवश्यक है अन्यथा आदत गायब हो सकती है। यह प्रायः प्रत्येक पाठक का अनुभव होगा कि किसी कार्य का अभ्यास छूट जाने पर तत्सम्बन्धी आदत का लोप हो जाता है। संगीतज्ञ जब अभ्यास छोड़ देता है तो वह राग भूलने लगता है। अभ्यास के अभाव में टाइपिस्ट और स्टेनोग्राफर की गति बड़ी धीमी पड़ जाती है। स्पष्ट है कि आदत को पुष्ट रखने के लिए उसका अभ्यास करते रहना आवश्यक है।

बुरी आदतों से बचाव—मनोविश्लेषकों की खोज से उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर हमें मिलता है। कुछ लोगों में अनायास कुछ बुरी आदतें मिलती हैं। उन्होंने जान-बूझकर उन्हें अपनाने के लिए निरन्तर अभ्यास उस प्रकार नहीं किया है जैसे संगीतज्ञ या टाइपिस्ट करता है। मनोविश्लेषकों का कहना है कि आदतें कुछ ऐसी मानसिक उलझनों के कारण पड़ती हैं, जिनसे व्यक्ति अपनी चेतना में अवगत नहीं रहता। इन मानसिक उलझनों के सुलझाव से ही उन बुरी आदतों से व्यक्ति का छुटकारा हो सकता है। मनोविश्लेषणवाद के अनुसार ऐसी आदतें अभ्यास के आधार पर नहीं, वरन् किसी संवेग के आधार पर पड़ती हैं। किसी बालक में चोरी करने अथवा झूठ बोलने की आदत होती है। ऐसी आदत उसमें किसी विकृत-संवेग के कारण आती है। इसी प्रकार अच्छी आदतें उसमें अच्छे संवेगों के कारण आती हैं। बुरी आदतों को दूर करने के लिए तत्सम्बन्धी विकृत संवेग का पता लगाकर उसे दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए। यदि विकृत संवेग नष्ट हुआ तो मानसिक उलझनें सुलझ जायेंगी। मानसिक उलझनों के दूर होने का तात्पर्य बुरी आदतों का नष्ट होना है। 'हैडफील्डार' के अनुसार "मानसिक उलझनों के हटने पर आदतें वैसे ही भाग जाती हैं जैसे बिजली के प्रकाश से अँधेरा गायब हो जाता है। यदि बुरी आदतें दूर न हुईं तो इसका अर्थ यह हुआ कि मानसिक उलझनों का अभी नाश नहीं हुआ। संवेगात्मक जीवन में वांछित परिवर्तन आने से व्यक्ति का बुरी आदतों से स्वतः उद्धार हो जाता है। मानसिक उलझनों के सुलझाव में कई सप्ताह अथवा महीने लग सकते हैं, पर उनके सुलझाव से आदतें स्वतः भाग जाती हैं।"

चोरी की आदत—कुछ बालकों में साधारण से साधारण वस्तुएँ चुराने की आदत पड़ जाती है। मनोविश्लेषकों का कहना है कि चुराने की आदत काम-मूल-प्रवृत्ति के अवदमन के कारण पड़ती है। चुराने में उसे कामभावना की तृप्ति के संवेग का अनुभव होता है। कुछ बालक अपने मित्रों की वस्तुओं को चुरा लेते हैं। मनोविश्लेषकों के अनुसार यह आदत किसी प्रकार के क्रूर व्यवहार करने की उनकी प्रवृत्ति का द्योतक है। परन्तु प्रश्न यह है कि बालक घर की वस्तुओं को क्यों चुराता है ? पिता के जेब से वह पैसे क्यों चुराता है ? माँ के गहने चुराकर वह क्यों बेच आता है ? वस्तुतः इस प्रकार की चोरी का प्रधान कारण अभिभावकों का अमनोवैज्ञानिक व्यवहार है। अभिभावकगण उपयुक्त अवसर पर बालकों पर समुचित नियन्त्रण रखने में असमर्थ होते हैं। वे कभी बहुत लाड़-प्यार दिखाते हैं और कभी अनायास उन्हें अपने क्रोध का भाजन बनाते हैं। किसी वस्तु के माँगने पर बालक को झिड़क दिया जाता है अथवा झूठी बातें की जाती हैं। उसकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं की जाती। फल यह होता है कि अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए अथवा प्रतिशोध भावनावश अभिभावकों को तंग करने के लिए वे घर की वस्तुएँ चुराया करते हैं। फिर यह आदत दृढ़ होकर अन्य परिस्थितियों में भी बालक को चोरी करने के लिए अभिप्रेरित करती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतः चोरी की आदत छुड़ाने के लिए बालकों की मानसिक उलझनों को समझकर तदनुसार उसकी स्वाभाविक इच्छाओं की पूर्ति करनी चाहिए।

धूम्रपान—बालक धूम्रपान की आदत अपने बड़ों के अनुकरण से अपनाता है। वह समझता है कि धूम्रपान करना बड़े लोगों का चिह्न है। अपने को कुछ बड़ा दिखलाने के लिए भी वह कभी-कभी धूम्रपान का अभ्यस्त हो जाता है। ऐसे भी अशिक्षित अभिभावक हैं जो स्वयं ही स्नेह की अधिकतावश अपने बच्चों से चिलम भराते हैं और पहले उसी से पीने के लिए कहते हैं।

मिल या फैक्ट्रियों में काम करने वाले बालकों में बीड़ी अथवा सिगरेट पीने की आदत पड़ जाती है। यह अनुकरण का परिणाम होता है। बहुतों में धूम्रपान की आदत किशोरावस्था में पड़ती है। मनोविश्लेषकों का कहना है कि यह उनकी वासना-प्रवृत्ति का सांकेतिक चिह्न है। कहना न होगा कि बालकों के सामने यदि धूम्रपान करने का बुरा उदाहरण न रखा जाये तो उनमें यह आदत न आयेगी। उनमें यह आदत आ जाने पर इसके बुरे परिणाम को उन्हें समझाया जाये और उनके सामने स्वयं धूम्रपान की आदत को छोड़ा जाये।

चिढ़ाना—कुछ बालकों में दूसरों को चिढ़ाने अथवा तंग करने की आदत आ जाती है, जिन्हें अपने अभिभावकों अथवा शिक्षकों का प्यार और आदर नहीं मिलता, वे उन लड़कों को तंग करते हैं, जिन्हें दूसरों का प्यार और आदर मिलता है। दूसरों को सम्मानित होते देख उनमें ईर्ष्या-भावना जाग्रत हो जाती है, वे भी चाहते हैं कि लोग उनकी योग्यता को समझें और उन्हें प्यार और आदर दें। परन्तु अपनी इस इच्छा की पूर्ति होते न देखकर वे चिढ़ जाते हैं और ऊधम मचाना या दूसरों को चिढ़ाना प्रारम्भ कर देते हैं। यदि ऐसे बालकों को आत्मप्रकाशन का समुचित अवसर दिया जाय तो उनकी यह बुरी आदत दूर हो सकती है, क्योंकि तब वे समझेंगे कि उन्हें भी आदर और प्यार दिया जा रहा है।

झूठ बोलना—बालक में झूठ बोलने की आदत के कई कारण हो सकते हैं। कभी-कभी यह देखा जाता है कि बालक किसी वस्तु का गलत वर्णन अपनी ऊँची कल्पना की उड़ान में करता है। बालक की धारणा शक्ति प्रबल नहीं होती। किसी वस्तु को देखने के बाद तत्सम्बन्धी बातें उसे अच्छी तरह याद नहीं रहतीं। उस वस्तु के वर्णन में वह झूठ बोलकर गलती करता है। अतः ऐसे अवसर पर बालक पर झूठ बोलने का अपराध नहीं लगाना चाहिए। अच्छा हो यदि सहानुभूतिपूर्वक उसे सारी बातें ठीक-ठीक समझा दी जायें। कभी-कभी बालक दूसरों के अनुकरण से भी झूठ बोलना प्रारम्भ कर देता है और धीरे-धीरे उसकी झूठ बोलने की आदत पड़ जाती है। जिस घर के लोग बातचीत में अपने झूठे सम्मान की रक्षा के लिए झूठ बोला करते हैं, उनके लड़कों में झूठ बोलने की आदत आ ही जाती है। अतः यह आवश्यक है कि बालकों के सामने गलत उदाहरण न रखा जाये।

दण्ड के भय से कुछ बालक झूठ बोलना सीख लेते हैं। जिन बालकों पर बात-बात में अभिभावकों की डाँट या मार पड़ा करती है, वे उससे बचने के लिए झूठ बोल सकते हैं। उदाहरणार्थ, बाजार से कुछ खरीद करके बालक लौटा तो उससे पूछा गया कि अमुक वस्तु क्यों नहीं लाये तो दण्ड के भय से वह झूठ बोल सकता है कि वह वस्तु बाजार में मिली ही नहीं—यद्यपि उसके विषय में दुकानदार से उसने पूछा ही न हो।

बालक कभी-कभी आत्मप्रकाशन के लिए मनगढ़न्त बातें किया करता है। जब साधारणतः उसकी अवहेलना की जाती है और उसे अपेक्षित प्रशंसा नहीं मिलती तो दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए वह झूठी बातें कर सकता है। माता-पिता के कठोर व्यवहार से जब बालक की सामाजिक इच्छाओं का दमन होता है तो वह आत्मप्रकाशन के लिए झूठ बोलने का अभ्यस्त हो सकता है। अतः बालकों की सामाजिक इच्छाओं का अवदमन करना बड़ा हानिकर सिद्ध हो सकता है। इच्छाओं के अवदमन से आत्मप्रकाशन की क्रियाशीलता रुक जाती है। और बालक झूठ की आड़ में आत्मप्रकाशन की चेष्टा करता है। बालक को झूठ की आदत छुड़ाने के लिए उसे दण्ड देना हानिकारक है। दण्ड से झूठ बोलने की आदत प्रायः बढ़ जाती है, क्योंकि दण्ड से उसके आत्मप्रकाशन में और रुकावट पड़ती है। अतः झूठ बोलने की आदत छुड़ाने के लिए आत्म-प्रकाशन का अवसर देना लाभप्रद सिद्ध हो सकता है।

कुछ अभिभावक स्वयं अनजान में बालक में झूठ की आदत डालते हैं। पैसे रहते हुए भी जब वे कहते हैं कि पैसा नहीं है अथवा घर में उपस्थित रहते हुए भी जब वे कहलवा देते हैं कि वे घर पर नहीं हैं तो बालक समझता है कि झूठ बोलना बुरा नहीं है और अपना कार्य निकालने के लिए इसका अवलम्बन किया जा सकता है। फलतः बालक में झूठ बोलने की आदत आ जाती है।

रूसो का कहना है कि यदि बालक की सत्य बात पर भी विश्वास करना छोड़ दिया जाये, तो बालक तंग आकर झूठ बोलना स्वयं छोड़ देगा। किसी अवसर विशेष पर किसी झूठ के लिए दण्ड दिया जा सकता है, परन्तु इसका आधिक्य नहीं होना चाहिए। हमें यह याद रखना है कि बालक के प्रत्येक झूठ में कोई उसकी अतृप्त इच्छा छिपी हुई है। अतः झूठ की आदत निकालने के लिए हमें उस अतृप्त इच्छा को समझना है और उसकी स्वाभाविक पूर्ति के लिए समुचित आयोजन करना है। यदि यह आयोजन हो सका तो झूठ बोलने की आदत बालक से स्वतः दूर हो जायेगी। झूठ न बोलने के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बार-बार उपदेश देने का परिणाम उल्टा हो सकता है। जो स्वयं झूठ बोला करते हैं और बालकों को झूठ न बोलने का उपदेश दिया करते हैं उनके उपदेश का बालक पर उल्टा प्रभाव पड़ता है और बालक से झूठ बोलने की आदत दूर नहीं होती। अतः उपदेश के स्थान पर यदि उनके सामने व्यक्तिगत व्यावहारिक उदाहरण रखे जायें तो अधिक लाभ होगा।

परन्तु हमें यह याद रखना है कि बालकों के जीवन से झूठ को हम एकदम अलग नहीं कर सकते। बालक कहानियों में बड़ी रुचि रखते हैं। परन्तु कहानियों में एक प्रकार से सब झूठ का ही जाल रहता है। ऐसी कहानियों के पढ़ने अथवा सुनने से बालकों में कल्पना शक्ति का विकास होता है। इन कहानियों के झूठे आवरण के अन्तर्गत सत्यता कूट-कूटकर भरी रहती है। इस सत्यता का मानव-जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। तभी तो वह बालकों को बड़ी रुचिकर लगती है और उससे उनकी कल्पना-शक्ति का विकास होता है। अतः इस प्रकार के झूठ की बालकों के जीवन में उपयोगिता है और इसे उसके अनुभव से अलग करना उसके स्वाभाविक विकास में रुकावट डालना होगा।

चरित्र—चरित्र अच्छा और बुरा दोनों होता है। पर नैतिक दृष्टि से चरित्र का तात्पर्य सदा अच्छे ही चरित्र से लिया जाता है। जब यह कहा जाता है कि वह चरित्रवान है तो इसका अर्थ यही होता है कि वह अच्छे चरित्र का है। अतः 'चरित्र' शब्द का प्रयोग यहाँ अच्छे ही चरित्र के अर्थ में किया जा रहा है। चरित्रवान व्यक्ति में संकल्प शक्ति और आत्म-गौरव का स्थायी भाव कूट-कूटकर भरा होता है। ऐसा व्यक्ति सदा अपने एक निश्चित सिद्धान्त के अनुसार कार्य करता है। चरित्रवान व्यक्ति किसी कार्य को अपना कर्त्तव्य समझकर करता है। जो कुछ कम चरित्र के होते हैं, वे किसी कार्य को पुरस्कार, प्रशंसा अथवा दण्ड के भय से कर सकते हैं। जो व्यक्ति पशुवत् होते हैं उनके कार्य बहुधा मूल प्रवृत्तियों द्वारा अभिप्रेरित होते हैं। मूल प्रवृत्तियाँ तो सभी व्यक्तियों में पाई जाती हैं, परन्तु उनकी प्रबलता में वैज्ञानिक भेद पाया जाता है। किसी में एक प्रवृत्ति प्रबल होती है तो दूसरी निर्बल। अपने-अपने विकास के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में विभिन्न मूल प्रवृत्तियों की प्रबलता भिन्न प्रकार की होती है। चरित्र की नींव मूल प्रवृत्तियों में पाई जाती है, क्योंकि मूल प्रवृत्तियों के शोधन से ही व्यक्ति के चरित्र का निर्माण होता है। चरित्र पर हमारे सभी अनुभवों और मूल प्रवृत्तियों का प्रभाव पड़ता है। अतः आदर्श चरित्र के लिए हमें बालकों के मूल प्रवृत्यात्मक प्रकाशन तथा विभिन्न अनुभवों पर कड़ी मनोवैज्ञानिक दृष्टि रखनी होगी।

सच्चरित्र व्यक्ति अपने आदर्शों से अपना आत्मसात कर लेता है। फलतः अपने आदर्शों की रक्षा के लिए वह अपने सब कुछ की बाजी लगा सकता है। मानव व्यवहार कभी-कभी भावों द्वारा भी नियमित होता है, क्योंकि मनुष्य सदा विवेक के अनुसार ही नहीं चल सकता। बड़े-बड़े विवेकी अवसर पर चुप मारकर बैठे रहते हैं। वे क्रियाहीन दिखलाई पड़ते हैं, क्योंकि उनमें अवसरानुसार उपयुक्त भावों का अभाव रहता है। चरित्रवान व्यक्ति का अवसरानुसार क्रियाशील होना आवश्यक है। अतः यह आवश्यक है कि सिद्धान्त वाला व्यक्ति सच्चरित्र होगा। इसीलिए तो कभी-कभी यह देखा जाता है कि बड़े-बड़े सिद्धान्त झाड़ने वाले अवसर पर बगलें झाँकने लगते हैं। सिद्धान्त को कार्यान्वित करने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है और यह शक्ति भाव से ही आती है। अतः स्पष्ट है कि चरित्र और भाव में घनिष्ट सम्बन्ध है।

चरित्र की प्रबलता तो संकल्प-शक्ति की प्रबलता पर ही निर्भर करती है। चरित्रवान व्यक्ति के कार्य में आवेश और हठ नहीं होता। आवेश और हठ तो संकल्प-शक्तिहीनता का परिचायक होता है। अतः बालक को चरित्रवान बनाने के लिए उसमें हमें दृढ़-संकल्पशक्ति डालनी चाहिए। चरित्र के विकास के लिए बालक को ऐसा वातावरण दिया जाये कि वह अपनी संकल्प शक्ति की क्रियाशीलता में किसी प्रकार की बाधा का अनुभव न करे। उसे ठीक पथ को स्वयं खोज निकालने की प्रेरणा देनी चाहिए। इससे उसकी संकल्प-शक्ति का विकास होगा और चरित्रबल बढ़ेगा। उसे कठिनाइयों का प्रसन्नतापूर्वक सामना करना सिखलाना चाहिए। उसके सामने विभिन्न समस्याएँ रखनी चाहिए, जिससे वह उलझन में पड़कर अपने विवेक और तर्क का विकास करते हुए उसका समाधान निकालें। संकल्पशक्ति के विकास के लिए हमें सतत् प्रयत्न करते रहना है। बहुत-से व्यक्ति अपने विवेक का सदुपयोग नहीं कर पाते। वह उनकी संकल्प-शक्ति हीनता होती है। जैसे व्यायाम से शरीर को पुष्ट बनाया जा सकता है उसी प्रकार अभ्यास से संकल्प शक्ति को भी प्रबल बनाया जा सकता है। जैसे—बूँद-बूँद से सागर भरता है, उसी प्रकार साधारण से साधारण बातों को अनावश्यक समझ उनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि छोटी-से-छोटी बातों पर ध्यान देने में चरित्र का विकास होता है। जो छोटी बातों पर ध्यान नहीं दे सकता वह बड़ी बातों पर भी ध्यान नहीं दे सकता। अभिभावकों को यह देखना चाहिए कि संकल्पशक्ति अर्थात् चरित्र के विकास के लिए एक अवसर भी उनके हाथ से न जाने पावे।

मूल प्रवृत्तियों की तरह संकल्प-शक्ति के तीन अंग माने जा सकते हैं—ज्ञानात्मक, संवेगात्मक और क्रियात्मक। अच्छे चरित्र के विकास के लिए हमें प्रत्येक अंग पर समुचित ध्यान देना है। ज्ञानात्मक अंग पर ध्यान देने का तात्पर्य बालक को आवश्यक ज्ञान देना है, जिससे किसी काम में हाथ लगाने के पूर्व उसके परिणाम का वह कुछ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुमान लगा सके, अन्यथा आवेशवश कार्य प्रारम्भ कर देने का परिणाम घातक हो सकता है। आवेश को दबाकर आत्मसंयम से काम लेना आवश्यक है। सच्ची संकल्पशक्ति के अन्तर्गत आत्मसंयम की भावना निहित रहती है।

संकल्पशक्ति के संवेगात्मक अंग पर ठीक से ध्यान देने से व्यक्ति में ऐसी भावुकता आ सकती है कि किसी कार्य के आरम्भ करने में वह हिचक सकता है, तब वह अपने व्यक्तिगत भावों में ही मग्न हो जाता है और वास्तविक कार्य की अवहेलना कर बैठता है। उदाहरणार्थ, देशभक्ति की भावुकतावश व्यक्ति अपने ही भावों में डूबा रह सकता है और देश के लिए कुछ करने में असमर्थ हो सकता है। यही बात प्रेम की भावुकता के विषय में भी कही जा सकती है। स्पष्ट है संवेगात्मक अंग की यह प्रबलता संकल्प-शक्ति के उद्देश्य को नीचे गिरा देती है।

संकल्पशक्ति के क्रियात्मक अंग पर ध्यान देने का तात्पर्य यह है कि बालक को नित्य कुछ ऐसे कार्य देने चाहिए, जिससे वास्तविकता से उसका परिचय होता रहे। इस प्रकार संकल्पशक्ति के ज्ञानात्मक, संवेगात्मक और क्रियात्मक तीनों अंगों के सामंजस्यपूर्ण विकास से ही चरित्र का विकास सम्भव है।

नैतिक शिक्षा का चरित्र-विकास में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। परन्तु नैतिक शिक्षा के स्वरूप का निर्धारण करना बड़ा कठिन है। स्कूल के अन्य विषयों की शिक्षा के आयोजन में विशेष कठिनाई नहीं होती क्योंकि उसके लिए शिक्षक मिल जाते हैं परन्तु नैतिक शिक्षा के सम्बन्ध में यह समस्या बड़ी विकट हो जाती है। इसके लिए योग्य शिक्षकों का पाना अत्यन्त कठिन है। नैतिक उपदेश देने के पूर्व शिक्षकों को उन्हें स्वयं अपने व्यवहार में कार्यान्वित करके दिखलाना चाहिए, अन्यथा उनके उपदेश का उल्टा परिणाम होगा। यह पहले ही कहा जा चुका है कि उपदेश से उदाहरण अच्छा होता है। अतः नैतिक शिक्षा के लिए हमें उनके सामने अच्छे उदाहरणों को रखना है। तभी उनमें चरित्र का अच्छा विकास हो सकता है। उदाहरण के अतिरिक्त बालकों को साहित्य अथवा इतिहास की छोटी-छोटी मनोरंजक और उपदेशात्मक कहानियाँ सुनाई जा सकती हैं। उपदेश को स्वयं शिक्षक का स्पष्ट करना ठीक न होगा। सारी बातें शिक्षक कह दें। उसमें किसी शिक्षा का निकालना और सीखना तो बालक का काम होना चाहिए।

निर्देश की सहायता से चरित्र में भारी परिवर्तन लाया जा सकता है। यदि सदा बालक को यह निर्देश मिलता रहे कि उसे एक दिन बड़ा आदमी होना है और जीवन में उसे कुछ कर दिखाना है, तो निश्चय ही वह एक दिन बड़ा होकर कुछ दिखायेगा। इसके विपरीत निर्देश पाने पर परिणाम एकदम उल्टा होगा और बालक अधोगति के गर्त में गिर जायेगा। अतः अभिभावकों और शिक्षकों को चाहिए कि वे बालकों को अच्छे-अच्छे निर्देश देते रहें। बालकों के लिए स्वस्थकर निर्देश के वातावरण का आयोजन कर देना उनके चरित्र को बहुत ऊँचा उठाना है। इतिहास इसका साक्षी है। कुछ अर्थ में बालक एक पौधे के समान है। जिस प्रकार जरा-सी हवा बहने से छोटा पौधा प्रभावित हो जाता है, उसी प्रकार साधारण-सी बात का भी बालकों पर असर पड़ जाता है। अतः अभिभावकों और शिक्षकों के मुँह से केवल वही बात निकलनी चाहिए, जिससे बालक किसी ऊँचे आदर्श की ओर अग्रसर होकर अपने उच्च चरित्र के निर्माण में सफल हो सके।

बालक बड़ा अनुकरणीय होता है। अपने अभिभावकों और शिक्षकों की बातों को आदर्श मानकर उनके अनुकरण की वह चेष्टा करता है। अतः बालकों के सामने हमें बड़ी सतर्कता से रहना है। उनके सामने कोई ऐसी बात नहीं होनी चाहिए, जिससे कोई अवांछित बात सीख सके। यदि उनके सामने अच्छी ही बातें रखी गईं तो उनके चरित्र में अनुकरण के फलस्वरूप अच्छे ही गुण आयेंगे।

चरित्र विकास में दण्ड का स्थान—सुप्रसिद्ध बाल मनोवैज्ञानिक 'ममफोर्ड' का मत है कि "दण्ड यदि प्रभाव डाल सका तो वह केवल गलत कार्य करने से व्यक्ति को रोक सकता है, परन्तु उचित भावना नहीं उत्पन्न कर सकता।" दण्ड का बालक पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता; क्योंकि इससे उसकी भावनाओं के अनदमित होने का डर रहता है तथापि इतना तो कहना ही पड़ेगा कि दण्ड को एकदम बहिष्कृत नहीं किया जा सकता। कभी-कभी तो दण्ड देने की आवश्यकता मालूम ही पड़ती है। एक मनोवैज्ञानिक का कथन है कि "कभी केवल दण्ड ही ऐसा साधन दिखलाई पड़ता है जिससे कोई अवांछित आचरण रोका जा सकता है। परन्तु दण्ड का प्रयोग तभी करना चाहिए जब अन्य साधन असफल हो जाये।" दण्ड का उद्देश्य बदला लेना न होकर सुधार करना होना चाहिए। यदि आवश्यकता जान पड़े तो चरित्र के निर्माण में दण्ड देना हानिकारक नहीं। ऐसे ही अवसर पर 'पस्तालाजी' दण्ड देने का समर्थन करता है। वह कहता है कि 'यदि स्कूल एक घर है तो उसमें दण्ड दिया जा सकता है, क्योंकि माता-पिता भी तो दण्ड दिया करते हैं। माता-पिता के दण्ड देने पर बालक को ग्लानि नहीं होती, क्योंकि उसे उनके अभिप्रायः में कभी सन्देह नहीं होता। शिक्षक का व्यवहार ऐसा हो कि, दण्ड देने पर बालक उनके अभिप्रायः में सन्देह न कर सके।

लाड़-प्यार का स्थान—बालक के वांछित चरित्र विकास के लिए यह आवश्यक है कि अभिभावक और शिक्षक यह समझें कि उन्हें कब लाड़-प्यार दिया जाये। बालक की प्रत्येक इच्छा की पूर्ति करना बड़ा ही अमनोवैज्ञानिक है। इससे वह हठी हो जाता है और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसका सामाजिक विकास वांछित दिशा की ओर नहीं चल पाता। जिस बालक की प्रत्येक इच्छा की पूर्ति की चेष्टा बिना समझे-बूझे की जाती है वह अपने आगे दूसरे बच्चों को कुछ समझता ही नहीं। इस प्रकार की प्रवृत्ति कुछ समय तक घर में तो चल सकती है, पर बाहर इसका चलना अत्यन्त कठिन होता है, क्योंकि बाहर सब लोग उसे माता-पिता जैसा प्यार नहीं दे सकते। छोटे बच्चों को लाड़-प्यार अवश्य करना चाहिए, क्योंकि इससे उन्हें बड़ा सन्तोष मिलता है और उनकी आत्मप्रकाशन सम्बन्धी मूल प्रवृत्यात्मक इच्छाओं की पूर्ति होती है। समुचित लाड़-प्यार न पाने वाला बालक अपने को अवहेलित समझने लगता है और इसमें आत्महीनता आने लगती है। अतः स्पष्ट है कि चरित्र विकास में लाड़-प्यार का विशेष स्थान है। इस सम्बन्ध में अवसर की उपयुक्तता तथा मनोवैज्ञानिकता अत्यन्त आवश्यक है।

बच्चों में स्वस्थ व मौलिक आदतें डालें

घर-परिवारों में माता-पिता इस बात की अपेक्षाएँ तो बहुत रखते हैं कि बच्चों को क्या करना चाहिए, क्या नहीं, उन्हें कैसे सुसंस्कारवान बनाया जाय, कैसे उनका दिशा-दर्शन किया जाय, परन्तु इन अपेक्षाओं की पूर्ति हेतु अपने कार्य, व्यवहार के उचित आदर्श स्थापित कर अनुकूल वातावरण बनाने के प्रति वे उदासीन ही रहते हैं। बच्चों के पालन-पोषण करने, उन्हें प्रगति पथ पर आगे बढ़ाने की जानकारियाँ भी माँ-बाप को रहती तो हैं परन्तु इन सबका लाभ पूरी तरह अपने बच्चों को नहीं दिला पाते। समूचे प्राप्त ज्ञान व जानकारियों को कार्य रूप में परिणत करने में कई बाधाएँ भी आती हैं, जो उस निर्दिष्ट आदर्श तक पहुँचने के मार्ग में होती हैं। कई बार शुद्ध आदर्शों व मान्यताओं से भरी इतनी बातें उसके मस्तिष्क में आ जाती हैं कि वे मात्र सैद्धान्तिक ही लगती हैं, व्यावहारिक नहीं व कई बातें ऐसी होती हैं जिनको करने के लिए उपयुक्त वातावरण, साधन-सामग्री का अभाव रहता है।

इस दृष्टि से यहाँ एक मध्यमवर्गीय परिवार के लिए उसकी औसत स्थिति व अनुकूलता को ध्यान में रखते हुए एक आचारसंहिता का अभ्यास कराया जाता है जिसके अनुसार सभी घरों के बच्चे यदि पालन करने लगें तो उनकी वर्तमान स्थिति की तुलना में कुछ अधिक प्रगति की सम्भावना परिलक्षित हो सकती है। यह आचार-संहिता इस प्रकार प्रस्तावित है—

(१) दिनचर्या नित्यकर्म—प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व ही बच्चे शैया त्याग कर दें। उठकर अपने बिस्तरों पर ही बच्चे हाथ जोड़कर अथवा बिना हाथ जोड़े मन ही मन भगवान की प्रार्थना करें। यह प्रार्थना अधिकाधिक ५-७ मिनट की हो सकती है। प्रार्थना किसी भी प्रकार की हो सकती है, पर उसका भाव यह रहना चाहिए कि हे परमपिता परमेश्वर ! तूने हमें जन्म दिया है, तू ही हमें ऐसी शक्ति दे कि हम आज अच्छे ही अच्छे काम करें, दुर्बलों एवं अभावग्रस्तों की सहायता करें, किसी को सताएँ नहीं, विद्या व ज्ञान प्राप्त करें व अच्छे संस्कारवान बनें, हम माता-पिता अन्य वृद्धजनों, गुरुजनों व समाज की सेवा करें।

(२) माता-पिता को प्रणाम—प्रार्थना करने के उपरान्त बच्चे अपने माता-पिता व अन्य वृद्धजनों (अपने से बड़ों) को प्रणाम करें।

(३) ऊषापान—बच्चों को मुँह साफ कर नित्य ही ऊषापान करना चाहिए, रात को एक गिलास पानी भरकर रख देना चाहिए—सम्भव हो तो ताँबे के पात्र में रात को पानी भर देना चाहिए, यह पानी पीने से विशेष लाभ होता है, क्योंकि ताँबे में एक प्रकार का विद्युत होता है व इसके सम्पर्क में आने से पिये जाने वाले पानी में भी वह विद्युत आ जाता है, जो शरीर शुद्धि के लिए उपयोगी रहता है।

(४) शौच, सफाई व स्नान—इसके उपरान्त शौच निवृत्ति, दाँत सफाई, मुँह धोना आदि की क्रियाएँ की जानी चाहिए। आधुनिक सभ्यता के प्रसाद स्वरूप बच्चों में दाँतों के ब्रुश से बाजार में मिलने वाले विभिन्न प्रकार के पेस्टों से दाँत साफ करने की आदत हो गई है। प्रथमतः तो यह व्ययसाध्य है द्वितीय यह विशेष लाभप्रद नहीं है। अब विज्ञान के प्रयोगों से यह सिद्ध हो गया है कि इन पेस्टों में जो तत्त्व दाँतों को साफ करता है वह 'क्लोरोफिला' है, यह नीम या बबूल की दतून में भी बहुतायत से होता है। बबूल की दतून करने से एक लाभ यह भी होता है कि उसका रस गले में जाने से बच्चों को सर्दी, खाँसी आदि की बीमारी आसानी से नहीं हो पाती। (दतून से दाँत साफ किये जायें या ब्रुश से अथवा और किसी से—आशय यह है कि नित्य ही दाँतों की सफाई की जाती रहनी चाहिए।) बच्चों को स्नान भी नित्य कराया जाना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो ठण्डे पानी से स्नान कराना चाहिए। ठण्डे पानी के डर से स्नान न करने की तुलना से गर्म पानी से भी नहा लेने में कोई हानि नहीं, परन्तु यथासम्भव ठण्डे पानी से ही नहाने की आदत डालनी चाहिए। यह डर किसी ठोस आधार पर नहीं टिका है कि नित्य ठण्डे पानी के स्नान से बच्चों को सर्दी हो जावेगी। सर्दी स्नान से नहीं होती वरन् शरीर के अन्य विकारों एवं पेट की बीमारी, कब्ज आदि से होती है।

(५) व्यायाम, आसन, प्राणायाम—इसके बाद बच्चों के लिए यह अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए कि वे नित्य ही कुछ न कुछ किसी न किसी प्रकार का व्यायाम अवश्य करें। घूमना, दौड़ना, दण्ड-बैठक,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योगासन, प्राणायाम, सूर्य नमस्कार आदि में से अपनी सुविधा व इच्छानुकूल कोई भी व्यायाम चुना जा सकता है। व्यायाम चाहे थोड़ा-सा ही हो परन्तु उसमें नियमितता व निरन्तरता का ध्यान रखना चाहिए। वैसे सूर्य नमस्कार एक व्यायाम तो है ही, इसे सूर्य की उपासना भी माना गया है।

(६) नाश्ता—इसके बाद बच्चों को नाश्ता देने की (यदि नाश्ता देना घर वाले अनिवार्य ही समझते हों तो) बारी आती है। नाश्ते में बिना तली, बिना मसाले की सुपाच्य चीजें दी जानी चाहिए। वैसे सबसे उत्तम नाश्ता ताजा दूध पिलाना ही होगा। उपासना के बाद नाश्ता की प्रथा डालना इस दृष्टि से उपयोगी रहेगी कि बच्चों में उपासना की आदत पक्की हो जावेगी व यह संस्कार भी पड़ेगा कि बिना भगवान की उपासना किये कुछ भी खाना-पीना अच्छा नहीं रहता।

(७) घर पर अभ्यास—इसके बाद बच्चों को कम से कम एक-डेढ़ घण्टा घर पर अभ्यास अध्ययन करने के लिए अवश्य बैठाना चाहिए।

(८) शाला की तैयारी, भोजन एवं शाला—इसके बाद शाला जाने की तैयारी बच्चे करें, वस्त्र उनके साफ हों, बाल सजे-सँवरे, नाखून कटे रहें, पूरी पुस्तकें व लेखन सामग्री साथ रहे, यह ध्यान में रखना चाहिए। फिर बच्चों का भोजन होगा। भोजन में बच्चों को पुष्टिकर भोजन को पसन्द करने के संस्कार डालना चाहिए। स्वादिष्ट भोजन स्वास्थ्य प्रधान हो न कि स्वाद प्रधान।

(९) सन्ध्या के खेल—बच्चों में यह आदत अवश्य डाली जाय कि वे सन्ध्या समय कम से कम एक घण्टा अवश्य ही मैदान के खेल खेलें। खेल अपने आप में एक व्यायाम भी है व इनसे सामूहिकता का भाव बढ़ता है व बच्चों में सामाजिक सम्बन्ध बनाये रखने की स्वस्थ आदतें बनती हैं।

(१०) वाचनालय-पुस्तकालय—बच्चों में यह संस्कार भी डाला जाना चाहिए कि वे नित्य ही अथवा नित्य सम्भव न हो सके तो अधिकांशतः कम से कम १ घण्टा या आधा घण्टा के लिए पुस्तकालयों, वाचनालयों में अवश्य जावें, वहाँ विभिन्न प्रकार की पत्र-पत्रिकाएँ देखें, पढ़ें (व अपनी रुचि की बातें डायरी में नोट करें।) यह विचार ठीक नहीं कि घरों पर ही ढेर सारी पत्र-पत्रिकाएँ मँगाई जाएँ व उन्हें पढ़ाने के लिए दी जाएँ, घर पर आने वाला साहित्य तो पढ़ा ही जावेगा, पर पुस्तकालय, वाचनालय से विज्ञान क्षेत्र विस्तीर्ण होता है तथा हमें वैविध्य ज्ञान मिलता है।

(११) शयन—रात्रि को जल्दी ही अधिकाधिक १० बजे तक बच्चों को सुला देना चाहिए। बच्चों को जल्दी सोने व जल्दी उठने के लाभ समझाये जाने चाहिए। सोते समय बच्चे हाथ-मुँह साफ कर, घुटनों तक पैर धोकर सोवें। सोते समय बिस्तर पर बच्चे फिर भगवान से इस तरह की प्रार्थना करें कि प्रभु तूने हमें जन्म दिया, आज का दिन हमें जीने को दिया, हमने आज अमुक-अमुक अच्छे या बुरे कार्य किये। बुरे कामों को तू क्षमा करना।

उक्त संहिता एक आदर्श के रूप में प्रस्तावित है इसमें बच्चों की आयु, उनके शैक्षणिक स्तर, घर-परिवार की परिस्थिति, वातावरण आदि को दृष्टिगत रखते हुए आवश्यक परिवर्तन किया जा सकता है। अधिक उपयुक्त तो यह होगा कि माता-पिता अपने बच्चों से इस संहिता पर विचार-विमर्श करें व सब मिल-बैठकर एक सर्वमान्य संहिता निर्धारित कर उसका पालन करने का निश्चय करें। ऐसे बच्चे स्वयं यह भाव रखेंगे कि यह संहिता उनके माता-पिता ने उनकी सहमति से उनके हित में ही बनाई है। अतः इसका पालन करना उनके लिए कल्याणकारी ही होगा।

बच्चों में अच्छी आदतें बढ़ायें, कुटेव छुड़ायें

आदतों का निर्माण बच्चे के जन्म के साथ ही आरम्भ हो जाता है। जन्मतः बच्चा मात्र अपने संस्कारों के साथ अस्तित्व में आता है। ये विशेष संस्कार तथा सामान्य सार्वभौम मानवीय संस्कार जिन्हें आधुनिक शब्दावली में 'इन्स्टिन्क्ट' या मूल प्रवृत्तियाँ कहते हैं, आदतों के स्वरूप को नहीं निर्धारित करते। आदतें तो जन्म के उपरान्त पर्यावरण के प्रति अनुकरणमूलक संवेदना की प्रतिक्रिया होती हैं। इस अनजान जगत के अपरिचित, जटिल एवं नवीन वातावरण से अनुकूलता तथा सामंजस्य स्थापित करने हेतु और अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु बच्चा जो क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ करता है—उनके ही आधार पर उसकी आदतों का स्वरूप ढलने बढ़ने लगता है। जिन क्रियाओं की आवृत्ति अधिकाधिक होती रहती है, वे आदतों का आधार बन जाती हैं।

इस तथ्य को ध्यान में रखने पर चरम स्वच्छन्दतावादियों का यह तर्क भ्रान्त ही नहीं, हानिकर सिद्ध होता है कि बच्चों को कोई भी मार्गदर्शन नहीं देना चाहिए, उन्हें अपने व्यक्तित्व का विकास स्वयं करने देना चाहिए और माता-पिता, अभिभावकों की कुल जिम्मेदारी इतनी है कि वे देखते रहें कि बच्चा किसी खतरनाक हरकत से स्वयं तो क्षति न पहुँचा ले। ऐसा तर्क देने वाले यह तथ्य भूल जाते हैं कि अपने सामाजिक पर्यावरण का निर्माण ईश्वर ने नहीं, मनुष्य ने ही किया है और इस प्रकार एक खास ढंग का सामाजिक वातावरण बनाकर बच्चे के लिए कुछ निश्चित ढाँचे पहले ही बना दिए गये हैं, जिनका उसे अनुकरण करना ही होगा। अब यदि चरम स्वच्छन्दतावादियों का तर्क सही है, तो उन्हें बच्चे को लेकर या तो जंगल में रहना चाहिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जहाँ मुक्त प्रकृति से बच्चे का सीधा साक्षात्कार होगा और वह अन्तःप्रेरणा तथा प्रकृति-प्रेरणा से अपने व्यक्तित्व का विकास करेगा या फिर कोई ऐसा सामाजिक पर्यावरण बनाना चाहिए, जिसमें करोड़ों-अरबों तरह के सामाजिक ढाँचे साथ-साथ मौजूद हों, जो कि एक असम्भव बात है। अतः सामाजिक पर्यावरण का निर्माण कर अभिभावक बच्चों को पहले ही परोक्ष मार्गदर्शन दे चुके हैं, यह तथ्य यदि ध्यान में रखा जाय तो फिर मार्गदर्शन विरोधी तर्क का आधार ही खिसक जाता है।

इसके दूसरे सिरे पर वे लोग हैं जो समझते हैं कि बच्चा सचमुच कोई ऐसी अजूबा चीज है, जैसे उनकी डाँट-डपट, बातों के स्तर पर निर्देश आदि की पग-पग पर जरूरत है और जो उन निर्देशों पर आँख मूँदकर चलता चला जायेगा, मानो उनका क्रीतदास हो। यों क्रीतदास के भी अन्तःकरण में विद्रोह धधकता रह सकता है पर, माता-पिता जो यह चाहते हैं कि बच्चा बिना सोचे-समझे उनके विसंगत निर्देश मानता रहे और इसी में मुदित रहे। यह दूसरी काल्पनिक स्थिति है, जो असम्भव है।

वास्तविक बात यह है कि बच्चे को पग-पग पर मार्गदर्शन आवश्यक है। पर साथ ही यह मार्गदर्शन एक मनुष्य शिशु को दिया जा रहा है, जिसके पास अपनी बुद्धि-शक्ति है, संवेदना है, अन्तर्दृष्टि है, मनोजगत है, रुचि-संस्कार हैं, यह तथ्य भी याद रखना चाहिए। ऐसे में, बच्चे का मार्गदर्शन स्थूल नहीं हो सकता। बच्चा सिर्फ अभिभावक की बात क्यों सुनेगा ? व्यवहार क्यों नहीं देखेगा ? इस सीधे-से तर्क को समझना ही चाहिए। उसके लिए तो हर बात नयी है। अभिभावक का व्यवहार भी और बातें भी। यदि वह ग्रहण करेगा तो दोनों को, अन्यथा नहीं। बातें ग्रहण कर वह बातें करना सीखेगा, व्यवहार को ग्रहण कर वह व्यवहार करना सीखेगा। यदि बच्चा माता-पिता के व्यवहार में समरूपता, सुसंगति देखेगा, तो स्वयं का भी व्यवहार सुसंगत समरूप बनाएगा। यदि वह व्यवहार एवं बातों में पग-पग पर भेद देखेगा, तो स्वयं भी वही आदतें अपनाएगा, जादूगरों के बच्चे बचपन से ही जादू के खेल का अभ्यास करते हैं, मजदूरों के बच्चे सामान्यतः श्रमशीलता प्रधान और साहबों के बच्चे कार चलाने, फोन करने आदि के खेल खेलते देखे जाते हैं। आश्रम के वातावरण में रहने वाले शिशु आश्रम-पद्धति के खेल खेलते हैं और मन्त्र-तन्त्र की बातें सुनने वाले बच्चे भी वैसी ही बातें करते देखे जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि बच्चों के बोलचाल एवं व्यवहार पर अभिभावकों का तथा आसपास के वातावरण का सीधा असर पड़ता है। शालीनता के वातावरण में बच्चे शील सीखते-अपनाते हैं, तो गाली-गलौज के वातावरण में गालियों को सीखते हैं। यद्यपि कोई भी अभिभावक अपने बच्चों को गाली देने की प्रत्यक्ष सीख कभी नहीं देता। इस प्रक्रिया को ध्यान में रखा जा सके तो बच्चे को मार्गदर्शन की पद्धति स्पष्ट हो जाएगी। बच्चों को मार्गदर्शन न देने का विचार जितना भ्रान्तिपूर्ण है, पग-पग पर उपदेश पिलाने को मार्गदर्शन मान बैठना भी उतना ही भ्रान्तिपूर्ण है। बच्चों को जहाँ पग-पग पर मार्गदर्शन की आवश्यकता है, वहीं हर स्तर पर भी है यानी रहन-सहन, व्यवहार, बातचीत, भावनाएँ सभी को बच्चा देखता है, अपने ढंग से समझता है और सीखता है।

अतः बच्चों को स्नेहपूर्वक, सन्तुलनपूर्वक एवं स्वयं के दृष्टान्त द्वारा पथ-प्रदर्शन करना ही माता-पिता का कर्त्तव्य है। पारिवारिक शिष्टाचार, सहकारिता स्वच्छता, श्रमशीलता, सजगता जैसे सद्गुण बच्चा परिवार में विद्यमान होने पर ही सीखता है और धीरे-धीरे उसकी आदतें, उसके स्वभाव का अंग बन जाती हैं।

बच्चे की किसी गलत आदत को बदलने के लिए उससे विरोधी बात की आदत डालने का प्रयास किया जाना उपयोगी सिद्ध होता है। अमरीकी मनोवैज्ञानिक श्री लार्सन ने इस विषय में अनेक प्रयोग कर यह पाया है कि विरोधी आदत डालने के अभ्यास से गलत आदतें सरलता से हट जाती हैं।

उन्होंने हाईस्कूल के छात्रों पर ऐसे प्रयोग किये, जिन्हें छोटी-छोटी गन्दी आदतें पड़ी थीं। उन्हें कहा गया कि जब वे ऐसे काम करें, तब उनके विरोधी काम भी करें। शौक-शौक में बच्चों ने ऐसा शुरू किया और शीघ्र ही वे आदतें, जो गन्दी थीं, उनकी विवशता नहीं रही और उन्हें छोड़ना आसान हो गया। किन्तु सिगरेट पीने जैसी गहराई तक जड़ जमाए हुई आदतें ऐसे अभ्यासों से नहीं छूट पातीं। उसके लिए स्वास्थ्य का महत्त्व, उसके नियम, धूम्रपान के खतरे आदि को विस्तार से समझाना होता है। यानी विचार-प्रक्रिया द्वारा ही गहराई तक जड़ जमाये बैठी आदतों के विरुद्ध गहरा भावनात्मक आक्रोश जगाया जाता है और उन बुरी आदतों का जोर धीरे-धीरे कम करने को कहा जाता है। गन्दी आदतों की विरोधी विचार प्रक्रिया के अभ्यास से कई बार ऐसा भी होता है कि अन्तःकरण से अपनी गन्दी आदत के प्रति अति प्रचण्ड आत्मधिक्कार भाव एवं उतना ही प्रचण्ड संकल्प उस आदत को छोड़ने के प्रति उत्पन्न होता है और वह आदत सहसा छूट जाती है परन्तु सामान्यतः धीरे-धीरे ही गन्दी आदतें छूट पाती हैं।

कुछ छोटी-छोटी गन्दी आदतें, जिन्हें वस्तुतः बच्चों की समस्याएँ कहा जाना चाहिए, किन्हीं कारण विशेषों से सम्बन्धित होती हैं। अतः उन कारणों को समझकर आवश्यक व्यवहार करना लाभकारी होता है।

उदाहरणार्थ, कई बच्चे अपनी माँ का दूध पीना छोड़ने के बाद अँगूठा चूसना आरम्भ कर देते हैं। इसका कारण कोई तीव्र संवेगपीड़न अथवा स्नेह के अभाव की अनुभूति होता है। अतः ऐसे बच्चों को डाँटकर नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भरपूर स्नेह के साथ काम में, खेल-खिलौनों में उलझाए रखना चाहिए तथा हमउम्र मित्रों के साथ खेलने को प्रोत्साहित करना चाहिए। इससे अँगूठा चूसने की आदत स्वतः कम होती जायेगी और छूट जायेगी।

दाँत से नाखून काटने की आदत भी प्रारम्भ में संवेगात्मक तनाव के अनुभव की प्रतिक्रिया होती है। बाद में, वही आदत गहरी हो जाती है, तो अकारण भी बच्चे वैसा करते रहते हैं। ऐसे बच्चों में लापरवाही, मर्यादाओं के प्रति अवज्ञा-भाव आदि गलत प्रवृत्तियाँ घर कर जाती हैं तथा हीनभाव भरता रहता है। अतः ऐसे बच्चों की शिक्षा के लिए विशेष ध्यान देना चाहिए। उन्हें डाँटकर शर्मिन्दा नहीं करना चाहिए अन्यथा हीनभाव अधिक बढ़ेगा। उनके खान-पान व आराम का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए।

कुछ बच्चे शर्मीले, झिझक भरे हो जाते हैं। उन्हें पारिवारिक कार्यों में भाग लेने के लिए अवश्य उत्साहित किया जाय। उन पर जिम्मेदारियाँ सौंपी जाएँ और मार्गदर्शन देते रहा जाय। इस प्रकार करने पर जब वे उस जिम्मेदारी को पूरा कर लें, तो भरपूर प्रशंसा की जाय। इससे उनकी झिझक यानी संकोची वृत्ति दूर होगी। उन्हें सामाजिक प्रसंगों पर, उत्सव आदि पर या पारिवारिक गोष्ठियों में राय देने को कहा जाय व उनकी सराहना की जाय। बातचीत करने के मौके उन्हें अवश्य दिये जायें इस प्रकार झिझक क्रमशः समाप्त हो जाती है।

कंधे उचकाने, पलकें ज्यादा झपकाने आदि की आदतें भी कई बार तनाव के कारण उत्पन्न होती हैं। इस हेतु भी उपर्युक्त व्यवहार ही अपनाया जाना चाहिए। बच्चे की रचनात्मक क्षमता को अभिव्यक्त होने का जितना ही अवसर मिलेगा, उतना ही उसके संवेगात्मक तनाव घटेंगे। कई बार ऐसी आदतें दूसरों की नकल से पड़ जाती हैं। उस समय भी डाँटकर नहीं, समझाकर ही उस आदत को छोड़ने की प्रेरणा उत्पन्न की जा सकती है। समझाने के साथ-साथ बच्चे को कार्यों में, क्रीड़ाओं में उलझाए रखने का भी प्रबन्ध करना आवश्यक होता है। सक्रियता, सामाजिकता, सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति के जितने अधिक अवसर बच्चों को मिलेंगे, कुटेव से वे उतना ही दूर रहेंगे। कई छोटी आदतें समय बीतने पर स्वतः भी दूर हो सकती हैं। अतः इस मामले में अभिभावकों को अधैर्य से काम नहीं लेना चाहिए और न ही कठोर रवैया अपनाना चाहिए।

ध्यान रहे, बच्चों में अच्छी आदतें वातावरण से ही पनप सकती हैं। अतः उन्हें श्रेष्ठ वातावरण प्रदान करने की जिम्मेदारी मुख्यतः अभिभावकों पर और सामान्यतः पूरे समाज पर है। वातावरण ही अच्छी आदतों को बढ़ाने में वस्तुतः मददगार होता है।

बच्चों की अवांछनीय एवं अस्वाभाविक शारीरिक क्रियाएँ

बहुत-से बच्चों में कुछ ऐसी अस्वाभाविक आदतें आ जाती हैं जिन्हें बार-बार समझाने, मना करने और दण्ड देने पर भी वे नहीं छोड़ पाते, जैसे अँगुली चटकाना, भौएँ चढ़ाना, आँखें मिचमिचाना, कन्धे हिलाना, जबड़े खींचना, दाँत भीचना, अँगुली उलझाना, हाथ तानना, मुट्ठी कसना, होठ चलाना आदि।

यद्यपि वे स्वयं इन आदतों को पसन्द नहीं करते तथापि वे इनके इतने आदी हो जाते हैं कि उनका छोड़ सकना उनके लिए कठिन हो जाता है। वे वैसा करने की आवश्यकता महसूस करने लगते हैं और हाजत होने पर जब तक वैसा नहीं कर लेते, उन्हें चैन नहीं पड़ता। यदि किसी प्रतिबन्ध अथवा संकोचवश उन्हें वैसा करने का मौका नहीं मिलता तो उन्हें एक तकलीफ होने लगती है और उनका सारा ध्यान खिंचकर उसी पर केन्द्रित हो जाता है। किसी बात में मन नहीं लगता। थोड़ी देर तो वे किसी प्रकार उस पर नियन्त्रण रख लेते हैं किन्तु कुछ ही देर बाद अनचाहे भी यंत्रवत् वैसा करने लगते हैं।

बहुत-से बाल-विज्ञान के जानकारों का यह कहना है कि बच्चों में ऐसी आदतें आयु परिवर्तन के कारण पैदा हो जाती हैं क्योंकि शरीर के विकास के समय उन स्नायुओं में एक तनाव पैदा होने लगता है, जिसकी प्रतिक्रिया इस प्रकार की अनेक आदतों में परिलक्षित होती है। उनका कहना है कि आगे चलकर जब उनका स्नायुविक तनाव कम हो जाता है तो यह आदतें भी कम हो जाती हैं और धीरे-धीरे स्वयं छूट जाती हैं। अभिभावकों को इसके लिए अधिक चिन्तित न होना चाहिए।

किसी हद तक ऐसा होने पर भी यह बात बिल्कुल ऐसी ही नहीं है क्योंकि यदि आयु परिवर्तन से होने वाला स्नायुविक तनाव ही इसका एकमात्र कारण होता और इनका उदय-अस्त स्नायुविक तनाव के साथ ही होता तो बचपन की यह आदतें बहुत-से प्रौढ़ों में देखने में नहीं आतीं। लेकिन हम बहुत-से बड़ी-बड़ी आयु वाले आदमियों में भी ऐसी बहुत-सी हरकतें देख सकते हैं।

कुछ व्यक्तियों में तो यह आदतें इतनी गहरी और विस्तृत रूप में पैदा हो जाती हैं कि वे उनके व्यक्तित्व का एक अंग बन जाती हैं, लोग उनके आधार पर उनका कुछ परिचय तक देने लगते हैं। बहुतों को ऐसी आदतों के कारण लज्जित तक होना पड़ता है और हानि उठानी पड़ती है। किसी साक्षात्कार में नम्बर कट सकते हैं। दफ्तर में अपने बॉस के कोप-भाजन बन सकते हैं।

अतएव इसके पहले कि इस प्रकार कोई आदतें बच्चे में स्थायित्व पा सकें उसका उपचार होना बहुत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जरूरी है। केवल इस बात की आशा पर निश्चिन्त नहीं रहना चाहिए कि आगे चलकर उसकी यह आदतें स्वयं छूट जायेंगी।

बच्चे की यह आदतें छुड़ाने के लिए सतत् प्रयत्न की आवश्यकता है। उसको एक बार नहीं हजार बार मना करने, समझाने और रोकने में नहीं ऊबना चाहिए किन्तु इसके लिए उसे ताड़ना देना अनुचित है क्योंकि ऐसा करने से उसकी इन आदतों का दौरा तेज हो जायेगा। यह आदतें अपने स्वाभाविक रूप में तो देर-देर बाद उदय होती हैं, किन्तु अस्वाभाविक स्थिति में इनका आक्रमण तीव्र हो जाता है। चाहे वह अस्वाभाविक स्थिति भय, हर्ष, पीड़ा आदि किसी कारण क्यों न उपस्थित हुई हो।

बच्चे को यह आदत छोड़ने के लिए इस ढंग से कहना चाहिए कि उस पर कोई सावेग प्रतिक्रिया न हो। इस हरकत करने के जब भी आसार पता चलें तब उसका ध्यान ऐसी बात में लगाइये कि उसमें व्यवधान पड़ जाये और इस प्रकार एक बार व्यवधान पड़ जाने से दूसरी बार तक के लिए वह बात टल जायेगी। बार-बार ऐसा करने से धीरे-धीरे उनके उदय होने के समय में अन्तर बढ़ता जाने से एक दिन वह आदत स्वयं उसी प्रकार छूट जायेगी जैसे किसी का व्यसन छूट जाता है।

बच्चे की इस प्रकार की कोई आदत छुड़ाने के लिए उसकी नकल करके उसे चिढ़ाना भी ठीक नहीं क्योंकि वैसी ही हरकत दूसरे को करते देखकर उसमें उसका आवेग उत्पन्न होगा और कोई लाभ होने के बजाय हानि ही होगी।

इन आदतों की नकल करके मनोरंजन भी करना ठीक नहीं है, क्योंकि दूसरे बच्चे भी उसे मनोरंजन में शामिल होकर उसकी नकल करते-करते स्वयं भी उसके आदी हो जाते हैं।

परिवार के हर व्यक्ति को बच्चे की अस्वाभाविक आदत छुड़ाने में तत्पर रहना चाहिए जो भी उसे देखे वैसा करने के लिए टोके और बार-बार समझावे किन्तु उससे छोटी आयु वाले बच्चों को उसे नहीं टोकना चाहिए क्योंकि इसको वह अपमान समझेगा और बुरा मानकर गुस्सा करने लगेगा, उस आदत के वेग में वृद्धि होने के साथ-साथ बच्चों में कलह भी हो सकता है।

इस प्रकार निरन्तर प्रयत्न से एक दिन ऐसा आयेगा कि उसका वह स्वभाव छूट जायेगा। बार-बार टोके जाने से वह उसके प्रति सजग रहने लगेगा और उसे छोड़ देने का स्वयं भी प्रयत्न करने लगेगा। यदि वह आदत किसी स्वाभाविक तनाव के कारण भी होगी तब भी अभ्यास से प्राप्त उसकी सहन-शक्ति उसको सन्तुष्ट कर देगी और कुछ समयान्तर में वह उसको बिल्कुल भूल जायेगा और तब उसे न स्नायुविक तनाव का अनुभव होगा और न उसको सन्तुष्ट करने की आवश्यकता।

किन्तु जब इस प्रकार सतत् प्रयत्न से बच्चे की आदत में कमी होती दृष्टिगोचर न हो, तब समझ लेना चाहिए कि इसका अवश्य ही कोई विशेष कारण है और उसके कारण की खोज की जानी चाहिए। वह किस समय अपनी इन हरकतों को करता है। सुबह, शाम या दोपहर कब इनका वेग बढ़ जाता है, कोई काम करते समय, खाली बैठे समय, पढ़ते समय अथवा कुछ सोचते समय अक्सर ऐसी आदतें समय विशेष पर ही अधिक प्रकट होती देखी जाती हैं। समय निश्चित हो जाने पर उसको उस समय समझाने की आवश्यकता है।

इन सब बातों को करते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि उसे कुछ खाने या कोई काम करने से इस प्रकार न रोका जाय कि वह उससे दुःखी हो उठे क्योंकि ऐसा करने से आदत में कमी होने के साथ हठीलापन, चिड़चिड़ापन आदि अन्य बहुत-से बुरे स्वभाव पैदा हो सकते हैं, जो कि इस प्रकार की आदतों से भी बुरे होते हैं। हठीलापन, चिढ़चिढ़ापन आदि स्वभाव मनोवैज्ञानिक होते हैं अर्थात् इनका प्रभाव बच्चे के मन पर पड़ता है, जो मानसिक विकास के लिए बहुत हानिकारक होता है। कई बुरी आदतें शारीरिक होती हैं वे प्रयत्न से सरलतापूर्वक छुड़ाई जा सकती हैं किन्तु मनोवैज्ञानिक आदतें कठिनता से छूटती हैं।

जब अभिभावकों के प्रयत्न से बच्चों की ये बुरी आदतें न छूटें तो उन्हें किसी बच्चों के डाक्टरों को दिखलाना चाहिए क्योंकि तब समझ लेना चाहिए कि बच्चे में अवश्य कोई ऐसी कमी है जिसको पूरा करने के लिए वह ऐसा करता है। अवश्य उसके स्नायुओं में ऐसा तनाव पैदा हो गया है जिनका विधिवत् उपचार आवश्यक है।

अधिकतर यह बातें बच्चे में स्वतः उत्पन्न हो जाती हैं, पर कभी-कभी अपने आस-पास के वातावरण से ग्रहण कर लेता है। इसका एक कारण अनुकरण भी हो सकता है। सम्भव है उसे खिलाते समय अभिभावकों ने उसे हँसाने या प्रसन्न करने के लिए वैसी क्रियाएँ की हों या स्वयं वे इन हरकतों को करने के आदी हो रहे हों जिससे बच्चों की आदतों का विकास हो गया हो।

बहुधा ऐसा होता है कि बच्चों के सामने विविध प्रकार से मुँह बनाने, अंग संचालन करने और मुद्राएँ दिखलाने से वे खुश होते हैं। उनको खुश करने के लिए उसे खिलाने वाले जब तब वैसा करने लगते हैं और बच्चा उनका अनुकरण करता-करता इसका आदी हो जाता है।

बहुत बार बच्चों को खिलाते समय उन्हें खूब हिलाया-डुलाया भी जाता है। उनके अंग-प्रत्यंगों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहलाया और दबाया जाता है, जिससे उन्हें एक सुख मिलता है; किन्तु जब-जब वैसा नहीं किया जाता है, तब उन्हें एक तकलीफ महसूस होती है। अंग दबाना या सहलाना उनकी शारीरिक आवश्यकता बन जाती है, जिसको पूरा करने के लिए वे स्वयं वैसा करने का प्रयत्न करने लगते हैं, किन्तु सुविधापूर्वक या व्यवस्थित रूप से वैसा न करने से कोई न कोई गलत क्रिया करने लगते हैं। वह नहीं जानता कि किस प्रकार से एक हाथ से दूसरे हाथ दबाये या किस प्रकार अपनी पीठ सहलाये इसलिए उसकी आवश्यकता पूरी करने के लिए कभी पैरों को तानेगा, हाथ फैलायेगा, अंग-संचालन करेगा और इस प्रकार बहुत-सी बातों का आदी हो जायेगा।

प्रारम्भ में बच्चों की मालिश की जाती है। वे उसके आदी हो जाते हैं। जब कभी परिस्थितिवश उसकी मालिश नहीं हो पाती तो उसे एक तकलीफ होती है जिसे दूर करने के लिए वह रोता है और हाथ-पैर पटकता है। उसके शरीर में ठीक उसी प्रकार की ऐंठन पड़ने लगती है, जिस प्रकार व्यायाम करने वाले में शरीर के व्यायाम न करने से।

कभी-कभी बच्चों को हँसाने, खिलाने में अतिरेकता हो जाने से उनके विविध अंगों में उद्दीपन पैदा हो जाता है और वे अंग स्वयं कंपित अथवा संचरित होने लगते हैं, जो आगे चलकर उसके स्वभाव के अंग बन जाते हैं।

अनेक बार खेल-खेल में उसकी अँगुलियाँ भी चटकाई जाती हैं, दोनों हाथ ऊपर उठाकर ताली बजवाई जाती है, उसके दोनों हाथ तानकर ऊपर उठाया जाता है। ऐसा बार-बार करने से वह उनका आदी हो जाता है, क्योंकि शरीर का स्वभाव होता है कि उसे जिस प्रकार की हरकतों में अधिक लगाया जाता है, वह बार-बार वैसी हरकतें करने की आवश्यकता महसूस करेगा।

आँखें मिचमिचाना या भवें चढ़ाने आदि की आदतें इसलिए भी हो सकती हैं कि उन्हें जो काजल बगैरह लगाया जाता है, वह कुछ ऐसा हो सकता है कि उसके लगने से वह आँखों में सरसराहट या खुजली महसूस करने लगे, जिसे दूर करने के लिए वह वैसा करने लगता है। होंठों पर दूध अथवा शहद आदि खिलाई जाने वाली चीजें लगी रह सकती हैं, जिनका स्वाद लेने के लिए होंठ चलाते-चलाते वह उनका आदी हो जाता है।

आशय यह है कि यदि गहराई से खोज की जाय तो बच्चों की इन आदतों की पृष्ठभूमि में बहुत-से कारण ऐसे मिलेंगे जिनका सम्बन्ध उससे किये जाने वाले व्यवहार से होगा। अतएव बच्चों के साथ व्यवहार करने में आरम्भ से ही सावधान रहना चाहिए, उन्हें हँसाने, खिलाने आदि की क्रियाओं में ऐसी क्रियाएँ जहाँ तक हो सकें न की जायें जिनसे उनमें कोई बुरी आदत पैदा हो जाय और यदि की भी जाय तो इस हद तक कि वह उनकी शारीरिक आवश्यकता न बन जाये।

बच्चों को मुँह बिगाड़-बिगाड़कर कम हँसाया जाय। उनके शरीर को ज्यादा न हिलाया-डुलाया जाय। जब-तब उनकी अँगुलियाँ आदि न चटकाई जायें और न बिना जरूरत उनके अंग-प्रत्यंगों को दबाया, सहलाया या खुजलाया जाये। उनकी आँखों में अच्छा काजल आदि साफ अँगुलियों से लगाया जाये। उनको इस हद तक न हँसाया, खिलाया जाये जिससे उनकी स्नायुओं में तनाव अथवा स्फुरण पैदा होने लगे।

उनकी मालिश आदि ठीक समय और मात्रा में की जानी चाहिए और आगे चलकर धीरे-धीरे कम करके छोड़ी जानी चाहिए जिससे वे उसकी कमी न महसूस करने लगे।

इस प्रकार शैशवकाल से यदि उनके साथ सावधानी बरती जाये तो बच्चों में उस प्रकार की बुरी आदतें पैदा हो जाने की सम्भावना बहुत कम रहेगी।

बच्चों में अच्छी आदत इस तरह डालें

बच्चे के भविष्य की रूपरेखा बचपन में ही निर्धारित की जाती है। अतः छोटी-छोटी बातों की जानकारी बचपन से ही उसे दी जानी चाहिए। हम जिन्हें छोटी बातें कहकर टाल देते हैं, उनका बच्चों के जीवन में बहुत महत्त्व होता है। हम बच्चों को नासमझ समझते हैं किन्तु बच्चा हमारी हर गतिविधि को समझता है।

बच्चा कुछ करता है, तो माँ उसे डाँट देती है। खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, खेलने की सभी चीजों के लिए बालक हठ करता है। बच्चा यदि कपड़े के सूटकेश के पास जाकर कहता है कि मैं तो वही शर्ट पहनूँगा, तो माँ कह देती है कि वह तो बन्दर ले गया। लेकिन बच्चा जानता है कि वह शर्ट इस सूटकेस के अन्दर ही है। इसलिए वह रोता-चिल्लाता है। माँ उसे डाँटती और मारती है, किन्तु कुछ देर बच्चे को रुलाने-चिल्लाने के बाद वह चीज माँ उसे दे देती है। इसे बच्चा जान लेता है और वह हर चीज के लिए जिद करता है क्योंकि उसे मालूम है कि वह चीज उसे मिल ही जायेगी।

ऐसी बातें अधिकांश घरों में पाई जाती हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि बच्चे के हृदय में अपने माता-पिता के प्रति सम्मान की भावना कम हो जाती है। उन्हें ऐसा लगता है कि ये तो झूठ बोलते हैं। बच्चे समझ जाते हैं कि उनके रोने-चिल्लाने से उनकी चीज उन्हें मिल जायेगी। इसलिए वे हर समय इसी तरह जिद करते हैं और माता-पिता को उनकी बात माननी पड़ती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दो-तीन वर्ष तक के बच्चों की इच्छाएँ सीमित होती हैं किन्तु बालक ज्यों ही ४-५ वर्ष का होता है, तो उसकी इच्छाएँ भी बढ़ जाती हैं। किसी भी वस्तु को देखकर बालक उसे माँगता है। आइसक्रीम वाले को देखकर आइसक्रीम की माँग करेंगे। मोहल्ले के बच्चों को देखकर उनकी चीजों की माँग करेंगे। कभी पैसों की माँग करेंगे। इस तरह हमारे सामने एक समस्या आ जाती है क्योंकि वस्तु बेचने वालों को तो रोक नहीं सकते हैं। जगह पर किसी का बन्धन नहीं है। अतः यदि शान्त मस्तिष्क से विचार किया जाए, तो यही निष्कर्ष निकलता है कि बच्चों को उनकी आयु वृद्धि के साथ ही उन सभी बातों का शिक्षण दिया जाना चाहिए, जो कि उसके जीवन के लिए उपयोगी हैं, अन्यथा आगे चलकर माता-पिता तथा स्वयं बालक के जीवन में कठिनाई होगी क्योंकि वह फिजूलखर्ची बन जायेगा।

कई घरों में बच्चों को पैसे नकद दिये जाते हैं। वे इसलिए कि बच्चा उनका स्वयं के लिए उपयोग कर सके किन्तु होता इसके विपरीत है। पिता जो पैसे बच्चे को देता है, माँ उसे गोलक में रख देती है और गोलक माँ के अधिकार में रहती है। बच्चा यदि पैसों की माँग करता है, तो माँ यह कह देती है कि बेटा ! तुम्हारे पैसों की गोलक भर रही है, जब पूरी भर जायेगी, तब तुम्हें देंगे और जब पैसे पूरे भर जाते हैं, तब माँ उन पैसों को निकालकर स्वयं खर्च कर लेती है। जिन पैसों पर बच्चे का अधिकार था, उन पैसों का उपभोग वह नहीं कर सकता है। यह बच्चे के साथ धोखा है। बच्चे को पैसे इसलिए दिये जाने चाहिए, ताकि वह प्रारम्भ से ही स्वयं खर्च करना सीखे तथा स्वावलम्बी बन सके। उसे प्रारम्भ में ही यह अभ्यास सिखाना चाहिए कि हमारे पास जितनी चीज है, उतने ही में हमें काम करना चाहिए।

बच्चे मीठी-चटपटी चीजें खाने के बहुत शौकीन होते हैं। अतः किसी भी खोमचे वाले को देखकर उन्हें माँगते हैं। खोंमचे वाले को मिठाइयों पर प्रायः मक्खियाँ बैठती हैं, इससे वह मिठाई दूषित तथा विषाक्त हो जाती है। उसमें हैजे के कीटाणु पैदा हो जाते हैं, जिन्हें खाने से मनुष्य के अन्दर हैजे के कीटाणु प्रविष्ट हो जाते हैं तथा व्यक्ति अकाल-मृत्यु का ग्रास बन जाता है। इस तरह से स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती हैं। बच्चों को यह बात बतानी चाहिए कि ये तुम्हारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। सबसे उत्तम तरीका यह है कि बच्चे की मनपसन्द चीज घर में ही माँ बनाकर दे। इससे बच्चे की इच्छापूर्ति भी हो जायेगी और साफ-सुथरी तथा ताजी वस्तु बच्चे को खाने के लिए मिल जायेगी। इस तरह बालक को हानि समझा देने पर बालक समझ जाता है, फिर वह जिद नहीं करता है तथा खोंमचे वाले के पास भी नहीं जाता।

बच्चों को पैसे देते समय यह बता देना चाहिए कि पैसों का उपयोग किस तरह किया जाये ? बच्चों को एक निश्चित योजना समझा देनी चाहिए कि इस बार पैसे इकट्ठे होने पर अमुक वस्तु खरीद लेना तथा अगली बार दूसरी चीज खरीद लेना। इससे बच्चों को प्रसन्नता भी होती है तथा उन्हें प्रोत्साहन भी मिलता है।

प्रारम्भ में बालक में इन आदतों को डालने में परेशानी होती है क्योंकि पड़ौस के बच्चों को जब बालक दिनभर खर्च करते देखता है, तो उसका मन भी होता है कि वह खर्च करे। इसलिए वह माता-पिता के सामने जिद करता है किन्तु इस कठिनाई को आराम से हल किया जा सकता है। उसके लिए हमें बचपन से ही बच्चे को जरा-जरा-सी बातों के बारे में शिक्षण देना चाहिए। इससे आगे चलकर हमें इस कार्य में परेशानी नहीं होगी।

बच्चे बड़े जिज्ञासु प्रकृति के होते हैं। आस-पड़ौस के बच्चे जब एक बालक को इस तरह का कार्य करते देखते हैं तो उन पर भी इन बातों का प्रभाव पड़ता है और वे भी वैसे ही आचरण करने लगते हैं। इस कार्य में महिलाओं से हमें बहुत अधिक सहायता मिल सकती है, क्योंकि उनकी स्वाभाविक आदत होती है कि वे इकट्ठी होकर या तो सास की बुराई करती हैं या फिर बच्चों की शिकायत। यदि वे इस समय को व्यर्थ की बातों में न गँवाकर उस समय का सदुपयोग करें और बच्चों के भविष्य के विषय में एक निश्चित प्रोग्राम बना लें तो इससे उन्हें भी लाभ होगा तथा बच्चे भी उससे खुश रहेंगे और माता-पिता की परेशानी भी हल हो जायेगी।

खाने-पीने सम्बन्धी आदतों के साथ-साथ बच्चों को कपड़े पहनने सम्बन्धी जानकारी देनी चाहिए। उन्हें बताना चाहिए कि कौन-से वस्त्र उन्हें कब पहनने चाहिए ? इनके लिए हमें दो आलमारी ऐसी तैयार करनी चाहिए, जिनमें बच्चों के कपड़े दो प्रकार से रखने चाहिए। एक आलमारी में रोज के पहनने योग्य कपड़े रखने चाहिए तथा दूसरी आलमारी में वे वस्त्र रखने चाहिए, जो किसी विशेष अवसर पर पहने जाते हैं। इसकी जानकारी बालक को भली प्रकार दे देनी चाहिए। इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि आलमारी इतनी ज्यादा ऊँची न होवे कि बच्चे का हाथ उस ऊँचाई तक न पहुँच सके। इससे बच्चे का हाथ वहाँ तक नहीं पहुँचेगा तथा कपड़े निकालने में सारे कपड़े गिरकर बिखर जायेंगे। अतः इन सब बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

बच्चे को सिखलाना चाहिए कि कपड़े किस तरह से रखे जायें ? शुरू-शुरू में बालक ठीक तरह से कार्य नहीं कर पाता है। ऐसे समय में माताएँ बच्चे पर क्रोध करती हैं तथा उन्हें मारती हैं, यह तरीका उचित नहीं है। बल्कि हमें यह करना चाहिए, कि ऐसे समय पर धैर्य से कार्य करें। बच्चे को सिखायें कि किस तरह से काम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

करना चाहिए क्योंकि आखिर वह बालक ही है, इसलिए गलतियाँ होना स्वाभाविक है। बच्चे के छोटे-छोटे हाथों से जितना होता है, उतना कार्य तो वे करते ही हैं। धीरे-धीरे बालक स्वयं ही सारे कार्य करने लगता है। इस तरह से यदि साहस और धैर्यपूर्वक काम लिया जाय तो किसी प्रकार की परेशानी भी नहीं उठानी पड़ेगी तथा बालक सभी कार्य आसानी से सीख जायेगा। अतः हमें इस कार्य में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए।

इसके अलावा भी कई और बातों का शिक्षण बालक को देना आवश्यक होता है जैसे सफाई से रहना, रोज नियत समय पर शौच-स्नान से निवृत्त होकर सिर में तेल डालना तथा कंघी करने की जानकारी भी बच्चे को देनी चाहिए। तेल, कंघी इत्यादि एक स्थान पर सुव्यवस्थित ढंग से रख देनी चाहिए, जहाँ से बालक सुविधापूर्वक उन वस्तुओं को उठा सके।

इस तरह से यदि बालक को उचित आदतों का अभ्यास बचपन से ही करा दिया जाय तो आगे भविष्य में उसे अपने जीवन का समायोजन करने में कोई भी परेशानी महसूस नहीं होती है तथा उसका भविष्य उज्ज्वल तथा प्रकाशमय बन जाता है।

बच्चों की अवांछनीय आदतें कैसे सुधारें ?

मनुष्य अच्छाई और बुराई दोनों का पुतला है। त्रिविधि प्रकृति, त्रिविध स्वभाव, त्रिगुण माया आदि शब्द उसकी इसी विशेषता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। हालांकि महत्त्व अच्छाइयों को दिया जाना चाहिए और उनके विकास को ही प्रोत्साहित करना चाहिए। अपने आस-पास के वातावरण का, आनुवंशिकता का, दूसरों की आदतों का प्रभाव लेकर ही मानव-शिशु अच्छी या बुरी बातें सीखता है और कभी-कभी उसमें कुछ ऐसी अवांछनीय आदतें आ जाती हैं, जिनसे माता-पिता को बड़ी उलझन होती है। जैसे मुँह बनाना, निरर्थक अंग हिलाना-डुलाना, अँगूठा चूसना, मुँह से नाखून काटना, अनावश्यक बात पर गुस्सा करना, जिद पकड़ना जैसी कई आदतें बचपन में पड़ती हैं, जिन पर उसी समय ध्यान दिया जाना चाहिए।

मनोविज्ञानवेत्ता इन अवांछनीय आदतों का कारण बच्चों के मनोग्रन्थिगत समस्याओं को मानते हैं, जिन्हें बच्चे स्वयं नहीं समझते। बच्चे ही क्यों अभिभावक भी प्रायः उन्हें समझने में भूल कर जाते हैं और उन समस्याओं का हल करने की अपेक्षा तीसरे दर्जे के उपाय काम में लाने लगते हैं। उन आदतों को दूर करने के लिए वे धमकाने-डराने से लेकर मार-पीट तक करने लगते हैं। अँगूठा चूसने वाले बच्चों के अँगूठों पर माताएँ मिर्ची लगा देती हैं या दाँत से नाखून काटने वाले बच्चों के दोनों हाथ पीछे बाँध देती हैं। इससे बच्चों का हित नहीं, अहित ही होता है।

बच्चों को डरा-धमकाकर, उन्हें दण्डित कर इन आदतों पर तात्कालिक रोक भले ही लगाई जा सके, पर उन आदतों के जो कारण हैं, वे तो ज्यों के त्यों ही रहते हैं। उन मनोग्रन्थियों का उपचार करने की अपेक्षा बच्चों का दमन करना—उनकी ग्रन्थियों की ओर भी जटिल बना देता है।

मानसिक और भावनात्मक कारणों से पड़ जाने वाली इन आदतों को छुड़ाने के लिए मनोवैज्ञानिक ढंग से ही प्रयास करना चाहिए। ऐसी अवांछनीय आदतों में अँगूठा चूसने की आदत को लिया जाय। हमारे देश में बहुधा माताएँ किन्हीं कामों में व्यस्त रहने से, बच्चों को स्तनपान न करा पाने के कारण खुद ही उनका अँगूठा उनके मुँह में दे देती हैं। इस प्रकार उसे एक काम में फँसाकर वह अपना काम करती रहती हैं। बच्चों को अपना अँगूठा चूसते हुए स्तनपान का आनन्द मिलता है। दूध भले ही न आये पर उसकी समझ में यह बात नहीं आती। सीमित मानसिक क्षमता के कारण वह इसी को स्तनपान के तुल्य समझने लगता है। उस समय तो उसमें कोई मानसिक उलझन नहीं रहती, पर उलझनग्रस्त बच्चे प्रायः चार वर्ष की आयु में अँगूठा चूसना आरम्भ करते हैं। मनोविज्ञानवेत्ता इसका कारण यह बताते हैं कि बच्चा अपने आस-पास के वातावरण से असन्तुष्ट है और वह अपने से ही अपने को तृप्त करने का प्रयत्न कर रहा है।

ऐसी स्थिति में धीरज से काम लेने की आवश्यकता है। बच्चे को उसका महत्त्व बोध कराना चाहिए। किसी प्रकार उसे समझाना चाहिए, यह आदत खराब है और यह क्रिया छोटे बच्चे ही करते हैं। जब उसे अपना महत्त्व बोध होने लगता है, वह समझने लगता है कि मैं स्तनपान की उम्र को पार कर चुका हूँ तो असन्तोष की बनी हुई ग्रन्थि अपने आप खुलने लगती है और वह वातावरण से अपने अनुसार समझौता शुरू कर देता है।

दाँत से नाखून काटने की आदत बड़े लोगों में भी पायी जाती है और बच्चों में भी। लेकिन इसकी जड़ें बचपन में ही प्रस्फुटित होती हैं। आकृति-विज्ञान के ज्ञाता भी यह मानते हैं कि दाँतों से नाखून काटने का स्वभाव व्यक्ति के हिंसक-स्वभाव का परिचायक है। मनोविज्ञानवेत्ताओं का यह मत है कि बच्चे जब अपने-आपको असुरक्षित अनुभव करने लगते हैं तो वे इस आदत के शिकार होते हैं। सुरक्षा की अभावात्मक अनुभूति उन्हें आक्रामक और प्रतिहिंसक बनाती है। लेकिन लज्जा, संकोच और झिझक की विवशता उनकी प्रवृत्ति को इसी प्रकार प्रवृत्त करती है, अभिव्यक्ति देती है।

इसका एक कारण यह भी है कि बड़ों की भाँति बच्चे में भी अपना प्रभुत्व जमाने की महत्त्वाकांक्षा रहती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। शारीरिक, बौद्धिक और स्थितिगत कारण उसकी महत्त्वाकांक्षा पूरी होने में बाधक बनते हैं। किन्हीं-किन्हीं बच्चों में विशेष रूप से प्रभुत्व जमाने की कामना रहती है। खासतौर से उनमें जो सुरक्षा के अभाव से ग्रस्त रहे हों और जब उनकी यह कामना पूरी नहीं होती तो वे खीझकर दाँत से नाखून काटना सीख जाते हैं।

सामान्य दृष्टि से भी देखा जाय तो नेलकटर या चाकू-ब्लेड से नाखून काटने की अपेक्षा दाँत से नाखून काटना क्यों अच्छा लगता है ? सीधा-सा उत्तर है, सहज रास्ता तलाश करना, श्रम से बचना और ये सब प्रयत्न केवल आत्मविश्वास के अभाव में ही किये जाते हैं। आत्म-विश्वास की कमी ही सुरक्षा के अभाव की अनुभूति बन जाती है।

अतः बच्चों की यह आदत छुड़ाने के लिए उन्हें सीधे दाँत से नाखून काटने से रोकने की अपेक्षा उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न करते हुए यह बात समझाई जानी चाहिए। सुरक्षा और आत्मविश्वास के अभाव में बच्चा दूसरों से घृणा भी करने लगता है। यह प्रवृत्ति उनमें तब जन्मती है, जब हम उसकी उपेक्षा करते हुए दूसरे बच्चों को अधिक प्यार करते हैं। आठ-दस साल के बच्चों को एकदम प्रौढ़ या समझदार मानकर उनसे वैसा ही व्यवहार नहीं करना चाहिए, जिसमें वे अपने प्रति घृणा अनुभव करें।

दाँत से नाखून काटने की आदत को रोकने के लिए सावधानी के तौर पर उनके नाखून अधिक बड़े न हो जाएँ, इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए। उन्हें यह भी समझाया जा सकता है कि शरीर के अन्य अंगों को साफ-सुथरा रखने की तरह नाखूनों को भी स्वच्छ रखना चाहिए। दाँत से कटे हुए खुरदरे नाखून कितने भद्दे और कुरूप लगते हैं तथा यह आदत उनकी सुन्दरता को किस बुरी तरह नष्ट कर डालती है। ये सावधानियाँ तभी लाभदायी हो सकती हैं, जब बच्चे की समस्याओं, उलझनों को समझते और उनका निराकरण करते हुए बरती जाएँ।

बहुत-से बच्चों में सोते-सोते पेशाब करने की आदत भी पड़ जाती है। छोटे बच्चे तो इस योग्य होते नहीं कि वे इस बात को समझ सकें और उन पर नियन्त्रण रखा जा सके, पर बड़े बच्चों में कितने ही इस आदत के शिकार बन जाते हैं। इन आदतों के लिए जहाँ मानसिक प्रवृत्तियाँ जिम्मेदार हैं, वहीं शारीरिक कारण भी हैं। जैसे कोई बीमारी होना या रात को सोते समय पेशाब करके न सोना अथवा पेट में कीड़े पड़ जाना।

मानसिक प्रवृत्तियों में ईर्ष्या और भय मुख्य कारण है। बच्चा जब देखता है कि माता-पिता उसके छोटे भाई या बहिन को अधिक प्यार करते हैं और वे भी बिस्तर में पेशाब करते हैं तो वह प्यार पाने के लिए उसी की तरह हरकतें करने लगते हैं या वह यह प्रकट करना चाहता है कि वह भी अधिक प्यार किये जाने वाले छोटे बच्चे से किसी प्रकार कम नहीं है और हूबहू उसी की तरह रह सकता है।

दिन में अधिक डराये-धमकाये जाने, कोई भयानक सपना देखने या चौंक उठने के कारण भी बच्चा बिस्तर गीला कर देता है, पर वह रोज-रोज की बात नहीं है। इस आदत को दूर करने के लिए स्वास्थ्य की जाँच-पड़ताल से लेकर उसकी मानसिक-प्रवृत्तियों के अध्ययन की भी व्यवस्था रखनी चाहिए अन्यथा हम शारीरिक रोग समझते रहें और बच्चा किसी मनोग्रन्थि का शिकार बनता जाय या हम उसके मानसिक उपचार की व्यवस्था बनाने का प्रयत्न करें और बच्चे के शरीर में कोई रोग घर करता जाये।

अब तक तो बच्चों की कुछ विशेष आदतों की चर्चा की गई। पर कई आदतें ऐसी हैं, जो सामान्य रूप से किसी भी बच्चे में उत्पन्न हो सकती हैं या होती हैं। घृणा, ईर्ष्या, भय जैसे मनोविकारों की चिकित्सा तो बड़े वयस्क लोगों की भी नहीं की जा सकती, क्योंकि इन पर स्वयं के अतिरिक्त कोई दूसरा काबू नहीं कर सकता। पर जिद करना, झिझकना, अनावश्यक संकोच करना, लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए गलत-सलत हरकतें करना तथा अशिष्ट व्यवहार करना आम बच्चों की समस्या है। जो बड़े होने पर काफी हानिकारक हो जाती हैं।

इन समस्याओं का हल खोजने से पूर्व पहले यह देख लेना आवश्यक है कि ये कमजोरियाँ कहीं माता-पिता में तो नहीं हैं क्योंकि कमजोरी हो या विशेषता बच्चा अपने अभिभावकों से ही उत्तराधिकार में प्राप्त करता है। यदि ये दोष अभिभावकों में हों तो पहले अपने को सुधारकर बच्चों के सामने आदर्श उपस्थित करना चाहिए और उसके बाद बच्चों में उनका परिष्कार करना चाहिए। लेकिन देखा गया है कि माता-पिता में कोई दोष थोड़ा-सा हो तो बच्चों में वह ज्यादा और भयंकर रूप में भी हो सकता है। यहाँ विवेकपूर्वक नियन्त्रण किया जाना आवश्यक हो जाता है। जैसे किसी बच्चे में बुरी तरह गुस्सा करने की आदत है और वह आदत उसकी माँ या पिता में स्वाभाविक रूप से है तो उन्हें चाहिए कि वे बच्चों के परिष्कार का प्रयास करते हुए उनके सामने कम से कम क्रोध करें।

कई बच्चों में झिझकने या अनावश्यक संकोच करने की प्रवृत्ति भी पायी जाती है। इसका सीधा-सा उपाय है कि उन्हें बालोपयोगी कार्यों में व्यस्त कर दिया जाय। जैसे खेलने में लगाया जाय और कुछ साथी-मित्र बनाने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाय। झिझक या संकोच किन परिस्थितियों में पैदा होता है—यह जानना भी आवश्यक है। बच्चे प्रायः घर के लोगों के सामने नहीं झिझकते, पर किसी नये व्यक्ति या बाहर के आदमी के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आते ही चुप हो जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि वह अपरिचित के सामने ही झिझकता है अर्थात् वह अपने में किसी बात की कमी अनुभव करता है और उन्हें छुपाना चाहता है। अतः उचित है कि उसका परिचय क्षेत्र बढ़ाया जाय और उसमें आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न की जाय।

झिझक की तरह दूसरा दुर्गुण है—आत्मप्रदर्शन। यह आदत अपनी उपस्थिति जताने या बड़ों को प्रभावित करने की अदम्य आकांक्षा के रूप में जन्म लेती है। उन्हें दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करने के उचित-अनुचित उपायों का ज्ञान तो होता नहीं, अतः वे कोई भी उपाय अपनाने लगते हैं। स्वाभाविक चंचलता के कारण ऊधम मचाने या शरारत करना ही उन्हें अधिक रुचिकर लगता है।

इस आदत का शिकार होने से बचाने के लिए बच्चों को कभी भी उपेक्षित अनुभव नहीं होने देना चाहिए। दूसरे रूपों में भी उनकी उपेक्षा कई प्रकार से हानिकारक है। अतः बच्चों को अकेलेपन का अहसास न होने देने के साथ-साथ उनका ध्यान रखते हुए उनकी प्रवृत्तियों को रचनात्मक दिशा देनी चाहिए। आत्म-प्रदर्शन की भावना आत्माभिव्यक्ति के रूप में परिष्कृत ढंग से उभारी जा सके तो वह एक सद्गुण बन सकती है और बच्चे की रुचि को समझकर उसे अपने क्षेत्र में आगे बढ़ने को प्रोत्साहन दिया जाय तो वे सचमुच प्रतिभावान सिद्ध हो सकते हैं, आगे चलकर कुछ करने योग्य बन सकते हैं।

बच्चे परमात्मा के जागतिक उद्यान में मानवी-पुष्प हैं। वे ठीक से खिलें, अपनी सुवास से वातावरण को महकायें, इसका ध्यान रखना अभिभावकों का कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य की पूर्ति में जरा भी ढील या शिथिलता न आने देनी चाहिए और एक सुहृद साथी की तरह उनकी समस्याओं का हल तथा विकास का प्रयत्न करना चाहिए।

बच्चों में भोजन की स्वस्थ आदतें डालें

एक ओर जहाँ बच्चों के रोगों के डाक्टर अक्सर यह शिकायत करते हैं कि बाल रोगों का अधिकांश कारण माँ का अन्धममत्व रहता है, वहीं दूसरी ओर माताएँ अक्सर यही शिकायतें-चर्चाएँ करती रहती हैं कि उनका बच्चा तो कुछ खाता ही नहीं—दुबला होता जा रहा है।

माताओं का यह तो कर्त्तव्य अपने स्थान पर सर्वथा उचित है कि वे अपने बच्चों के विकास व वृद्धि के लिए उन्हें उपयुक्त भोजन उपलब्ध करावें, परन्तु भोजन के प्रति अधिकांश माताओं का दृष्टिकोण व ज्ञान उपयुक्त न होने के कारण एवं बच्चों को अधिकाधिक खिला-खिलाकर उनको पेट में ठूँसते रहने की लालसा के कारण बेचारे बच्चे चाहे प्रारम्भ में दुबले न हों परन्तु अधिक खा जाने के कारण रोगग्रस्त हो अवश्य ही दुबला जाते हैं। डाक्टरों की चिन्ता, माँ की अधिक खिलाने की इच्छा व बच्चे का हठ—इन तीनों के बीच कोई सामंजस्य न रह पाने से बच्चों में भोजन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं बन पाता। उनकी आदतें यदि शुरू में ही नहीं सुधारी जातीं तो वे बालरोग विशेषज्ञों की समस्याएँ बढ़ाते ही रहेंगे। अतः बच्चों के अभिभावकों—माता-पिताओं के लिए यह उपयोगी होगा कि वे भोजन करने-कराने का उद्देश्य व उपयोग समझकर तदनुरूप ही अपने बच्चों में भी स्वस्थ संस्कार डालने का प्रयास करें।

भोजन इसलिए किया जाता है कि इससे शरीर को निरन्तर शक्ति प्राप्त होती रहे, ताकि शारीरिक वृद्धि व विकास के लिए जो अतिरिक्त शक्ति की आवश्यकता रहती है, उसकी पूर्ति होती रहे एवं शरीर द्वारा नित्यप्रति किए जाने वाले कार्यों से होने वाले शक्ति ह्रास की पूर्ति होती रहे। अतः इस दृष्टि से जो पदार्थ उपयोगी हो उन्हें ही हमारे भोजन में सम्मिलित किया जाना चाहिए। जन्म से लेकर ७-८ माह के अन्दर बच्चों के दाँत निकल आते हैं व उनकी हड्डियों का विकास होना प्रारम्भ हो जाता है। प्रारम्भ में बच्चा बड़े वेग से बढ़ता है। उसके शरीर के विभिन्न अवयवों व अस्थियों की वृद्धि होती है। अतः इस अवसर पर बच्चों को अधिक वसायुक्त एवं कैल्सियम वाले पदार्थ दिये जाने चाहिए और बड़े होने पर बच्चे अधिक खेलते-कूदते हैं तथा उन्हें शरीर का अधिक श्रम करना पड़ता है, इससे शारीरिक शक्ति का ह्रास होता है। अतः इसकी क्षतिपूर्ति के लिए भी बच्चों को अधिक पुष्टिकारक भोजन की आवश्यकता रहती है। साधारणतया बच्चों को भोजन में दूध, दूध की बनी चीजें, अन्न (गेहूँ, जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा, चावल आदि) दालें व कुछ फल (सेव, नारंगी, लीची आदि) साग-सब्जी (हरी भाजी कन्द आदि) दिये जाने चाहिए।

दूध बच्चों के लिए आवश्यक भोजन माना गया है, क्योंकि इसमें बच्चों की वृद्धि के लिए आवश्यक सभी तत्त्व विद्यमान रहते हैं। वैसे दूध गाय, भैंस, बकरी किसी का भी अच्छा रहता है परन्तु गाय के दूध में प्रोटीन व लवण अधिक होने से वह अधिक उपयोगी रहता है। दूध एवं हरी सब्जी, दालों एवं अन्नादि के शाकाहारी भोजन में आवश्यक सभी तत्त्व मिल जाते हैं। बच्चों को निश्चित समय पर, निर्धारित मात्रा में यदि शाकाहारी भोजन दिया जाता रहे तो वे स्वस्थ व पुष्ट बने रहते हैं। इस दृष्टि से बच्चों में सदैव ही इस तरह के संस्कार डाले जाने चाहिए कि वे खाने योग्य पदार्थों के सेवन की ही अपनी आदत बनावें। सादा, ताजा, बिना दुर्गन्ध के भोजन को भगवान कृष्ण ने गीता में सात्विक भोजन बताया है। इस तरह का भोजन ही अधिक अच्छा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व उपयोगी है। बच्चों में प्रारम्भ से ही ऐसे संस्कार डाले जाने चाहिए कि वे भोजन शरीर व स्वास्थ्य के लिए करें न कि स्वाद व जीभ के लिए। स्वाद में अच्छे लगने वाले मसालेदार, चटपटे, जायकेदार पदार्थों के सेवन से बच्चों की पाचनशक्ति भी क्षीण होती है व तरह-तरह के रोग इससे हो जाते हैं।

बच्चों में अधिकाधिक खाने खिलाने की समस्या तो बाद में आती है। पहले तो माताओं के समक्ष यह चिन्ता मुख्य रहती है कि वह अपने बच्चे में भोजन के बारे में स्वस्थ आदतें डाले। शैशवावस्था में बच्चा माँ का दूध छोड़ने को प्रथमतः तो तैयार नहीं होता व माताएँ जब स्तन दुग्धपान—छुड़ा भी देती हैं तो वह बोतल का दूध व पेय पदार्थों को ही प्रिय समझे रहता है व ठोस भोज्य पदार्थ ग्रहण नहीं करता। बच्चों के प्रारम्भिक काल में तो माँ का दूध तथा ऊपर का दूध उपयुक्त रहता है परन्तु बाद में जैसे-जैसे वह बढ़ता रहता है, उसके शरीर की वृद्धि एवं उसके समुचित विकास के लिए उसे ठोस भोजन पदार्थ यथा—अन्न, शाक-भाजी, दाल आदि भी दिया जाना चाहिए, कारण कि इनके बिना उसका स्वास्थ्य व समुचित विकास प्रायः असम्भव ही रहता है।

शिशु के बढ़ते शरीर की आवश्यकता को देखते हुए उसे ठोस भोज्य पदार्थों की आवश्यकता पड़ने लगती है व बिना इनके उसका शारीरिक विकास अपेक्षानुरूप नहीं हो पाता। ठोस भोज्य पदार्थ खिलाना प्रारम्भ करना अपने आप में एक बड़ा काम रहता है व इसीलिए शायद बच्चों को प्रथम बार ठोस भोजन खिलाने के कार्य को पर्व के रूप में मनाया जाता है—जिसे 'अन्नप्राशन' के नाम से जाना जाता है।

जब एक बार बच्चा ठोस भोजन पदार्थ ग्रहण करना प्रारम्भ करता है तो फिर माँ-बाप के समक्ष दूसरी समस्या यह आती है कि बच्चा स्वयं के हाथ से भोजन नहीं खाता, इसके लिए बड़े-बूढ़े उसको लाड़-प्यार से खुद खिलाते रहते हैं। यह प्रवृत्ति थोड़े समय के लिए तो ठीक है परन्तु अधिक समय तक लाड़-प्यार बच्चों को बिगाड़ देगा व उसमें भोजन ही क्या हर काम करने के लिए दूसरों पर निर्भर रहने की आदत डाल देगा। अतः जितनी जल्दी सम्भव हो सके अभिभावकों एवं मुख्यतः माँ को यह प्रयास करना चाहिए कि बच्चा अपना भोजन स्वयं ही करें। कई घर-परिवारों में बच्चों को भोजन कराने खिलाने के लिए बड़ी चिरोरियाँ-मिन्नतें की जाती हैं। परन्तु इस तरह बड़ों का शौक व वात्सल्य चाहे पूरा होता-सा उन्हें दीखे परन्तु बच्चों में ढीठता आ जाती है व फिर यह ऐसा संस्कार बन जाता है, जो प्रायः हर काम के लिए खुशामद कराता रहता है। अतः बच्चों को भोजन के लिए आग्रह-प्रस्ताव तो करना चाहिए परन्तु इसके लिए उनकी निरन्तर खुशामद नहीं की जानी चाहिए एवं तनिक कठोरता की भी आवश्यकता हो तो उसका उपयोग कर बच्चों को भोजन की आदतें डालना चाहिए।

कभी-कभी यह भी होता है कि कतिपय परिवारों के बच्चों में दिन में कई बार या यों कहा जाय कि दिन भर खाते रहने की भी जो आदत बन जाती है, यह कोई स्वस्थ आदत नहीं। ऐसे बच्चों को बहुधा पेट की बीमारियाँ हो जाती हैं। अधिक भोजन से बीमारी का उपचार तो किया-कराया जा सकता है। परन्तु शारीरिक बीमारी से अधिक नुकसानदायक बात यह होती है कि उनकी बार-बार खाते रहने की आदत बन जाती है। अतः माँ-बाप अपने बच्चों में ऐसे संस्कार डालें कि बच्चे अपने नियत समय पर ही खाएँ, पिएँ व उसके बाद कभी भी चाहे घर में मेहमान आवें या माँ-बाप के साथ मेहमानी में वे जावें न खाएँ-पीएँ। दूसरे आग्रह भी करें तो नम्रता से मना कर दें। इसके लिए माँ-बाप को चाहिए कि घर में बच्चों की संख्या व अपनी आर्थिक स्थिति को देखते हुए ऐसी व्यवस्था बनावें, जिससे बच्चों को खान-पान का अभाव न रहे तथा अपनी वित्तीय सीमा में रहते हुए सादा भोजन की ही व्यवस्था करने एवं बच्चों को सही ढंग से सस्नेह यदा-कदा न खाते रहने की सीख दें।

बच्चों में यह बात अच्छी तरह जमा दी जानी चाहिए कि भोजन सादा रहे पर पुष्टिकारक व स्वास्थ्यप्रद हो, कारण कि हम भोजन पूरे शरीर की पुष्टि के लिए करते हैं जीभ की तुष्टि के लिए नहीं।

बच्चों को कुसंग से दूर रखने की सतर्कता बरतें

वातावरण और वंशानुक्रम इन दो का ही व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव पड़ता है। दोनों में से किसकी भूमिका निर्णायक होती है, यह विवाद पुराना है, पर अधिक हो या कम, प्रभाव दोनों का ही होता है, यह तो निश्चित ही है। वस्तुतः जिसे वंशानुक्रम कहा जाता है, उस पर भी कई पीढ़ियों के रहन-सहन और विचार-भावनाओं से सम्बन्धित बाह्य तथा आन्तरिक पर्यावरण का असर ही प्रधान रहा करता है। इस प्रकार वातावरण या पर्यावरण का व्यक्तित्व-निर्माण में बहुत हाथ होता है।

विकसित, वयस्क तथा प्रौढ़ लोगों में तो ऐसी सामर्थ्य भी होती है कि वे अपनी आन्तरिक संगति की स्वयं व्यवस्था कर लें—स्वाध्याय, साधना तथा चिन्तन-मनन के रूप में वे ऐसा कर सकते हैं और बाहरी वातावरण के प्रभाव से बड़ी सीमा तक मुक्त रह सकते हैं किन्तु बच्चों में ऐसी सामर्थ्य और समझ नहीं होती। उनके व्यक्तित्व पर तो वातावरण और संगति का ही प्रमुख प्रभाव पड़ता है। इसलिए अपने बच्चे को सुविकसित देखने के आकांक्षी प्रत्येक अभिभावक को बच्चों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्संगति का ध्यान रखना आवश्यक है और उतना ही आवश्यक है—उन्हें कुसंगति से दूर रखने की सतर्कता बरतना।

पौधे खाद और पानी देने से बढ़ते हैं। प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलने से वे पनपती हैं। भली और बुरी दोनों ही प्रकार की प्रवृत्तियाँ बच्चे के भीतर रहती हैं, उनमें से जिन्हें विकसित होने का अवसर मिलता है, वह बढ़ती और फलती-फूलती हैं, जिन्हें ऐसा अवसर नहीं मिलता वह मुरझाई रहती हैं और धीरे-धीरे मृतप्राय: अवस्था में जा पहुँचती हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि जिन प्रवृत्तियों को हम उपयोगी और जरूरी समझते हैं, उनके प्रोत्साहन की व्यवस्था करें।

अच्छी संगति का प्रभाव सर्वविदित है। चन्दन के समीपवर्ती अन्य पौधे भी सुरभि सम्पन्न हो जाते हैं। पुष्प जिस मिट्टी पर झड़कर गिरते हैं, वह मिट्टी भी महकने लगती है। सुसंगति को पारस की उपमा दी गई है। लोहा पारसमणि को छूकर सोना बन जाता है। उसी प्रकार सत्संगति से साधारण व्यक्तित्व में भी विशेषताएँ उभर आती हैं।

आज की एक अत्यन्त विषम समस्या यह है कि हम बुरे लोगों के द्वारा निरन्तर फेंके जाने वाले दुष्प्रभाव से अपने बच्चों की रक्षा कैसे करें ? वयस्क व्यक्ति तो समझदार भी होते हैं, अपना भला-बुरा सोच भी सकते हैं, पर बच्चों में यह बुद्धि भी ठीक तरह विकसित नहीं हो पाती, उनके लिए कुसंग विष की तरह घातक सिद्ध होता है। सभ्य घरानों के अनेक बच्चे कुसंग में बिगड़ते हैं और वे ऐसे बिगड़ते हैं कि अपना और अपने परिवार का सर्वनाश ही कर बैठते हैं। घर से पैसे चुराकर मटरगश्ती के लिए दोस्तों के साथ भाग खड़े होने की अगणित घटनाएँ आये दिन सुनने में आती रहती हैं। घर में छोटी-मोटी कहा-सुनी हो जाने पर भाग खड़े होना तो एक बहाना होता है। वस्तुतः पहले से ही दोस्त लोग स्वेच्छाचार की शिक्षा उन्हें देते रहते हैं और छोटी-मोटी नाराजी का कारण प्रस्तुत होते ही वह शिक्षा सार्थक हो जाती है। कितने ही लड़के घर रहते हुए आवारागर्दी में दिन बिताते हैं। दूसरे आवारा लड़कों का साथ ही इसका प्रमुख कारण होता है। असन्तोष उत्पन्न करने वालों, कलह भड़काने वालों, निराशा एवं खिन्नता उत्पन्न करने वालों के तौर-तरीके ऐसे होते हैं, जिनके कारण बने घर बिगड़ते देखे गये हैं। बिच्छू और साँप से जिस प्रकार सावधान रहा जाता है, उसी प्रकार कुसंग से भी बचाव रखा जाना चाहिए।

किशोरावस्था में तो विशेषकर कुसंगति से ही यौन दुष्प्रवृत्तियों से प्रारम्भ होता है और तब अपराधी स्वभाव का विकास होता ही चला जाता है।

जुआ खेलना, गाली देना, आलस में पड़े रहना, ताश, शतरंज, चौपड़, कैरम आदि में वक्त बर्बाद करना, बढ़-चढ़कर शेखी मारना, फैशन बनाना आदि कितनी ही बातें ऐसी हैं, जो यार-दोस्तों के द्वारा ही उपहार में मिलती हैं। जिनके साथ दोस्ती होती है उनकी आदतों के साथ भी दोस्ती बढ़ने लगती है। उनकी इच्छा, अनुरोध एवं प्रवृत्ति के साथ-साथ चलने में दोस्ती पक्की होती दीखती है। इसलिए सम्पर्क में आने वाले उसके गुण-दोषों को भी सीख लेते हैं।

व्यभिचार आमतौर से ऐसे ही पनपता है। आरम्भिक जीवन में हर कोई सदाचारी होता है। पाप से विशेषतया व्यभिचार सम्बन्धी पाप से हर किसी को बहुत डर लगता है क्योंकि हमारी धार्मिक और सामाजिक मान्यताएँ इसका बहुत विरोध करती हैं। आन्तरिक और सामाजिक दोनों ही प्रकार के भय, संकोच एवं लज्जा के कारण मनोविकार रहते हुए भी इस कुमार्ग पर सहसा कदम उठा सकना कठिन होता है। पर कुसंग में वह झिझक छूट जाती है। प्रारम्भ वार्ता में अश्लील बातों में रस लेने से होता है और अन्त पतन के गहन गर्त में गिरने के साथ होते देखा गया है। कुसंगति में ही यह पतन पनपता है। भोले बच्चे और बच्चियाँ दुष्ट-दुराचारी लोगों के सम्पर्क में आकर अपना भविष्य अन्धकारमय बनाते हैं और छूत की बीमारी की तरह यह लत एक से दूसरे को लगती चली जाती है।

इसीलिए बच्चों को कुसंग से दूर रखने की पूरी सतर्कता बरतनी चाहिए। अच्छी शिक्षण-संस्था में प्रवेश उसका एक छोटा-सा अंश है। अच्छा पास-पड़ौस, घर व मुहल्ले का अच्छा वातावरण, अच्छी रुचियों के अभिवर्द्धन का हर सम्भव प्रयास तथा प्रेरक कथाओं, दृष्टान्तों, जीवन चरित्रों एवं सत्साहित्य द्वारा अच्छाई की समझ विकसित करने का प्रयास किया जाना चाहिए। बच्चा कुसंगति में फँसता दिखे तो उसे बहुत तेज डाँटना-फटकारना नहीं चाहिए, अपितु प्यार से समझाना चाहिए। किशोर बच्चों को तो भ्रमण, सैर-सपाटे, पारिवारिक गोष्ठियों तथा पारिवारिक मनोरंजन के कार्यक्रमों द्वारा यथासम्भव घर में ही व्यस्त रखने की कोशिशें सर्वोत्तम लाभदायक होती हैं।

यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि बच्चा सूनापन नहीं सह सकता। उसे व्यस्तता चाहिए। यदि वह व्यस्तता उसे अभिभावक नहीं दे सके, तो वह स्वयं ही अपनी व्यस्तता के अनेक मार्ग अपने ढंग से ढूँढ़ लेगा। इसलिए मात्र निषेधात्मक वर्जना से बात बनेगी नहीं। बच्चे को यदि सचमुच कुसंगति से बचाना है तो उसे अच्छी संगति सुलभ कराने की विधेयात्मक व्यवस्था भी करनी होगी।

बच्चों को डराया न करें

बच्चों के साथ अपने दैनिक व्यवहार में हम बहुत-सी भूलें कर बैठते हैं और उनका बच्चों के सम्पूर्ण जीवन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। बहुत-से माँ-बाप अपने लाभ के लिए या बच्चों को सुधारने के लिए उन्हें तरह-तरह के भय दिखाया करते हैं। अबोध बच्चों को अक्सर 'हौवा' से डराया जाता है "मुन्ना जल्दी सो जा,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुबक जा, नहीं 'हौवा' आ जायेगा'' ऐसे भय-प्रधान संकेत बच्चों को दिए जाते हैं। अबोध बालक समझने लगता है कि 'हौवा' नाम की कोई भयानक वस्तु है, जो उसे खा जायेगी या पकड़ ले जायेगी।

कुछ बड़ा हो जाने पर वह चलने-फिरने लायक होता है तो कुत्ता, शेर, पकड़ ले जाने वाले साधु बाबा का डर दिखाया जाता है। प्रत्यक्ष डर दिखाने के साथ-साथ ही घर में कहे जाने वाले किस्से, कहानी जिनमें राक्षस, भूत, प्रेत, चुड़ैल आदि की प्रधानता रहती है, बच्चों में कुछ कम भय पैदा नहीं करते। बहुत-से घर वाले तो अमुक स्थान, पीपल का पेड़, मरघट, कब्र आदि पर भूत-प्रेत का निवास कर बच्चों को वहाँ जाने, चौराहा लाँघने से रोकते हैं।

किसी भी रूप में बच्चे को डराने की प्रवृत्ति बहुत ही हानिकारक सिद्ध होती है। इन बातों से बालक के कोमल मन पर भय की भावना इतनी दृढ़ता से जम जाती है कि वह जीवनभर नहीं छूट पाती। वह अँधेरे में, अकेले में डर महसूस करता है। अँधेरे में कोई कपड़ा या वस्तु हवा से हिलती-डुलती देखकर उसकी घिग्गी बँध जाती है। जिन वस्तुओं का नाम लेकर डराया जाता है यथा—कुत्ता, बिल्ली, बन्दर, भालू, साँप, छिपकली इनके सम्पर्क में आते ही बालक होश-हवाश खो बैठता है। भयावनी कहानियाँ उसकी विचारधारा और कल्पनाओं को उसी दिशा में मोड़ देती हैं, जिससे बालक अकारण ही कई भयप्रद कल्पनाओं और विचारों में उलझकर भयभीत होता रहता है।

एक-दूसरे ढंग से भी माँ-बाप बच्चों में भय की भावना पैदा करते हैं। बातचीत में, व्यवहार में, बच्चों के साथ सख्ती से पेश आना, उन्हें झिड़क देना भी बच्चों को दूसरे ढंग से भयभीत बना देता है। ऐसा बालक बात-बात में दूसरों से डरने लगता है। कुछ करने से पूर्व झिझकता है। धीरे-धीरे यह भय इतना बढ़ जाता है कि वह कुछ नहीं कर पाता।

कई बार किसी पराजय अथवा कटु अनुभव होने पर बालक को चिढ़ाना, धिक्कारना, उस पर व्यंग्य कसना भी उसके साहस को कमजोर करना है। कुछ करने से पहले ही असफलता की, हानि की भविष्यवाणी कर देना भी बच्चों में एक प्रकार का भय पैदा करना है जिससे बालक फिर इस तरह के कामों में हाथ डालने पर सहम जाता है और वह अपना बढ़ा हुआ पैर तक पीछे हटा लेता है। दिन भर दिये जाने वाले भयप्रधान संकेत ''देख ऐसा मत करना, अमुक वस्तु को मत छूना, शीशा मत तोड़ देना'' आदि आदेश जो भय दिखाते हुए दिए जाते हैं और भूल हो जाने पर जब बच्चे को डाँट-फटकार सुननी पड़ती है तो बालक निर्भय होकर कुछ नहीं कर पाता। वस्तु के टूट जाने, नुकसान हो जाने के भय से बालक इतना दब जाता है कि बात-बात में बहम करने लगता है—हिचकता है। किसी महत्त्वपूर्ण एवं जोखिम भरे काम में हाथ डालने की उसकी हिम्मत ही नहीं होती और जो व्यक्ति जीवन में कोई जोखिम नहीं उठा सकता, वह कुछ कर भी नहीं सकता।

किसी भी रूप में क्यों न हो बच्चों में भय के संस्कार पैदा कर देना उनके स्वाभाविक जीवन विकास-क्रम में अवरोध पैदा कर देना है। निर्द्वन्द्व, निर्भय, बालक जल्दी प्रगति करता है, बजाय एक भयभीत मनःस्थिति के बच्चे के। जो बालक कुत्ते, बिल्ली, छिपकली, हौवा, भूत, चुड़ैल के नाम से घिघियाते हैं, अँधेरे में, अकेले में रहने से परेशान हो जाते हैं, जो नाना भयप्रद कल्पनाओं में डूबते-उतराते रहते हैं, उनसे क्या आशा की जा सकती है कि वे जीवन में कोई महत्त्वपूर्ण काम कर सकेंगे ?

आवश्यकता इस बात की है कि बच्चों में भय की भावनाओं को पैदा ही नहीं होने देना चाहिए। कदाचित् किसी रूप में भय पैदा हो ही जाय तो माता-पिता का कर्त्तव्य है कि बालक की स्थिति का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करके तुरन्त उसके मन से भय को दूर करें।

यदि अँधेरे में या किसी स्थान विशेष पर बालक जाने से डरे तो उसे प्रेम के साथ अपना पूर्ण संरक्षण प्रदान करें। स्मरण रहे बालक अपने अभिभावकों की गोद में अपने आपको सर्वप्रकार से सुरक्षित समझता है। लेकिन माँ-बाप ही जब हौवा या जूजू, भूत, चुड़ैल आदि का डर बताते हैं तो उसका धैर्य और विश्वास नष्ट हो जाता है। समझदार माँ-बाप को चाहिए कि वे बच्चों को इस तरह के कोई काल्पनिक भय न दिखावें चाहे ऐसा उनके भले के लिए ही किया जाय लेकिन वह सर्वथा गलत है। जिस स्थान पर जाने से बालक डरता हो उसे अपने संरक्षण का पूर्ण विश्वास देकर उस स्थान पर ले जाना चाहिए और उसकी वास्तविकता का खोखलापन विनोद में ही समझा देना चाहिए। कुछ समय वहाँ खेलने-कूदने में बिताने पर उसके मन से भय की भावना दूर हो जायेगी।

कोई नुकसान हो जाय, वस्तु टूट-फूट जाय, बालक को कोई असफलता मिल जाय तो उसे आप कभी न टोकें, न कोई दोष दें, न मीन-मेख ही निकालें। गिरे हुए बालक को कोसने के बजाय उसे उठने, असफल हो जाने पर सफलता के लिए प्रोत्साहित कीजिए, खतरों, दुर्घटनाओं के लिए उसे डाँट-फटकार देने की अपेक्षा उसका हौसला बढ़ाइए। तभी उसका जीवन आने वाली बहुत-सी असफलता, दुर्घटना, कठिनाइयों को झेल सकेगा। बच्चों से जो नुकसान हो गया वह तो पूरा होने का नहीं। व्यर्थ ही उन्हें भयभीत करना, डाँटना-फटकारना, उनके मनोबल को क्षीण कर देना है। अतः बच्चों को उनकी भूलों पर, असफलता पर, असावधानी पर शर्मिन्दा न करें, न कोसें।

बच्चों को भूलकर भी ऐसी कथा, कहानियाँ, प्रसंग न सुनायें जिनमें भूत, प्रेत, चुड़ैल, हौवा जैसी काल्पनिक लेकिन भयानक बातों की प्रधानता हो। इसके स्थान पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन्हें इतिहास के वीरों की, महान पुरुषों की, साहस शौर्य की घटना, कथाओं को सुनाया जाय। पढ़ने के लिए अच्छा साहित्य हो जो उनके मनोबल को महान बनावे।

बच्चों को सहज रूप में खेलन-कूदने देना चाहिए। उनको बात-बात पर टोकना, डिक्टेटर जैसा हुकम चलाना, दण्ड देना अनुपयुक्त है। इससे बालक का मनोबल क्षीण होता है और वह सहमा-सहमा रहने लगता है। झिझकता है। दब्बूपन की भावना उसमें घर कर लेती है। बच्चे को उसकी सहज स्थिति में रहकर विकसित होने देना चाहिए।

एक बात और सबसे महत्त्वपूर्ण है कि माता-पिता, अभिभावकों को भूलकर भी अपने बच्चों के समक्ष कोई भय-प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। वस्तुतः बालक अपने अभिभावकों को सर्वसमर्थ समझता है और इसी विश्वास से वह उनके संरक्षण में रहकर निडर रहता है। लेकिन वे जब भययुक्त आचरण करते हैं तो बालक का विश्वास डगमगा जाता है, साथ ही वह भी भयभीत होने लगता है। जो माँ-बाप स्वयं डरपोक होंगे तो उनके बच्चे साहसी, निडर बन जाएँ ऐसा सम्भव नहीं। माँ-बाप को चाहिए कि अपने बच्चों में निर्भयता, साहस की भावना जगाने के लिए स्वयं इस तरह का आचरण-व्यवहार करें।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बाल्यकाल में बच्चों के कोमल मन में जमी हुई भय की भावना उन्हें जीवन-भर के लिए अकर्मण्य, कायर एवं भीरु बना देती है। उन्हें एक प्रकार की मानसिक गुलामी का जीवन बिताना पड़ता है, क्योंकि संसार में निर्भयी ही महत्त्वपूर्ण स्थान पा सकते हैं। माँ-बाप का कर्त्तव्य है कि वे अपने बच्चों का जीवन भय के कारण नष्ट न होने दें। सर्वप्रथम उनमें भय की भावना पैदा ही न होने दें, फिर यदि हो भी जाय तो उसे दूर करने का पूरा-पूरा प्रयत्न करें।

स्वयं निर्भीक बनें एवं बच्चों को निर्भीक बनाएँ

प्रायः बाल-विकास के कुछ निश्चित नुस्खों की खोज शिक्षित माता-पिता को रहा करती है। लेकिन यह सदैव स्मरण रखा जाना चाहिए कि बच्चा न तो कोई पदार्थ है, न ही सरल जैव-रासायनिक समीकरण। प्रत्येक शिशु में अज्ञात सम्भावनाओं के अनन्त कोष छिपे होते हैं। इसलिए जहाँ एक ओर उनके विकास-व्यवहार की आवश्यक जानकारी तथा उन्हें सँभालने की विधियों का ज्ञान जुटाते रहना उचित है, वहीं यह भी स्मरण रखा जाना चाहिए कि किसी भी व्यवहार-विधि को अटल, अचूक सूत्र मानकर न बैठ जाना चाहिए। अपितु उसके पीछे की भावना को समझा जाना चाहिए।

किसी भी कार्य में मात्रा और अनुपात की सही समझ आवश्यक होती है। व्यंजन बनाते समय यदि घी, तेल, गुड़-शक्कर, नमक-मिर्च आदि की मात्रा और अनुपात की सही समझ न हो तो स्वादिष्ट पदार्थों के ढेर से भी ऐसा आहार तैयार होगा, जिसे एक कौर भी गले के नीचे उतारना सम्भव न होगा। तकनीकी और वैज्ञानिक कार्यों एवं प्रयोगों का तो सारा खेल ही मात्रा-अनुपात की सही जानकारी पर निर्भर है। वृक्षों को खाद-पानी देने का मामला हो या भवन-निर्माण का मसाला तैयार करने का प्रश्न हो, प्रक्रिया और विधि के साथ ही अनुपात तथा मात्रा, भेद का ध्यान रखना होता है, अन्यथा इच्छित परिणाम प्राप्त नहीं हो पाता।

बच्चों का पालन-पोषण तो और भी जटिल तथा नाजुक काम है। इसमें मात्रा, भेद और अनुपात की समझ की अधिक ही जरूरत पड़ती है। इसीलिए बच्चों के पालन-पोषण के दायित्वों में धन-सम्पदा भौतिक सामग्रियाँ और उपकरण जुटा सकने एवं पोषक आहार सुलभ करा सकने की तैयारी तथा क्षमता तो चाहिए ही, संस्कार संवर्द्धन तथा गुण-विकास के योग्य वातावरण तैयार करने और एक-एक बच्चे के लिए पर्याप्त समय निकाल सकने की क्षमताएँ इनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। बच्चे के लिए माता-पिता को जो वस्तु सबसे अधिक देनी चाहिए, वह है समय। पर्याप्त समय देने पर ही उनकी बाल-भावनाएँ समझी जा सकेंगी।

उदाहरण के लिए बच्चों की भय की भावना को लें। सामान्यतः प्रत्येक माँ-बाप यह सुनते रहते हैं कि बच्चों को डराना-धमकाना नहीं चाहिए। परन्तु इस पर अमल करते हुए बिरले ही देखे जाते हैं क्योंकि भय दिखाने से शीघ्र काम निकलता दिखाई पड़ता है और दिन-रात बच्चों के लिए कमाने तथा वस्तुएँ जुटाने की चिन्ता करने वाले माता-पिता को ऐसे कामों में सदा हड़बड़ी मची रहती है, जिनके लिए कि उन्हें पर्याप्त समय देना ही चाहिए। 'हौए' का नाम लिया और बच्चे ने चट दूध पी लिया। कौए का डर दिखाया और बच्चे ने रोटी लेकर आँगन में जाने की जिद छोड़ी। सिपाही या जोगी बाबा के आने का भय दिखाया कि वह सो गया। यह तो हुई भय की बात। झिड़की, क्रोध, उपेक्षा आदि से बच्चे की मनोदशा पर पड़ने वाले प्रभावों की चिन्ता का हमें समय कहाँ ? हम तो उसके लिए चीजें जुटाने की चिन्ता भरपूर करते हैं, यही क्या कम है ?

अपनी तनिक-सी आसानी के लिए हम बच्चे की कितनी बड़ी हानि कर रहे हैं इसकी हमें कल्पना भी नहीं होती। यदि हम यह जानें कि इसमें बच्चे की जो हानि हो रही है, उनकी पूर्ति हजारों खिलौने तथा खाने की विविध वस्तुएँ देने पर भी, होने की नहीं, तो हम ऐसा कदापि न करें।

इस विषय में, अब तक अनेक प्रकार के वैज्ञानिक परीक्षण हो चुके हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो गया है कि ऐसे प्रभाव, जिनसे बच्चे में अनावश्यक भय, उदासी, खीझ, चिड़चिड़ाहट, ईर्ष्या, शोक और क्रोध पैदा होते हैं, अत्यन्त हानिकर होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शल्य-चिकित्सा की तकनीक अत्यधिक उत्पन्न हो जाने के कारण अमरीका में अनेक रोगियों के चिकित्सा क्रम के साथ ही उनके कारणों के निरीक्षण-अवलोकन का भी क्रम चलता रहता है। वहीं देखा गया कि एक किशोर जिसके उदर में घाव हो गया था और जिसका आपरेशन होना था, उसे जब क्रोध दिलाया गया तो उसके आमाशय में रक्त-संचार अति तीव्र हो गया और पूरा आमाशय रक्ताभ हो उठा। स्पष्टतः पाचन-यन्त्र पर इसका प्रतिकूल प्रभाव होता है। इस प्रकार पता चला कि क्रोध से बच्चों का पाचन-तन्त्र दुर्बल होता है।

भय का प्रभाव जानने हेतु किये गये एक अन्य प्रयोग में एक भेड़ के बच्चे को बढ़िया आहार दिया गया। वह भोजन करने लगा, उस समय एक्स-रे प्रयोगों द्वारा देखा गया कि उसके पाचक अङ्ग पूरी गति से क्रियाशील हैं। तभी उसे एक भेड़िया दिखाया गया तो पाचक अंग शिथिल हो गए। यह भय का प्रभाव था।

यह तो पाचन-शक्ति और शरीर-स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों की सांकेतिक चर्चा हुई। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के अध्ययन से यह भी जाना जा चुका है कि भय, क्रोध, शोक आदि की स्थिति में हार्मोन्स के अनियमित और असंतुलित स्राव होने से शरीर तथा मन दोनों पर हानिकर प्रभाव होते हैं।

भय का कुप्रभाव तो बच्चे के मन पर बहुत गहरा होता है। इसलिए बाल मनोवैज्ञानिक सदैव इस बात पर बल देते हैं कि बच्चे के मन में भय कदापि न बैठाया जाये।

बच्चों के मन में भय से असुरक्षा और आत्महीनता की भावना घर करती जाती है। डाक्टर चार्ल्स मिशेल ने अपनी पुस्तक 'द चाइल्डहुड ऑफ एनिमल्स' में यह विश्लेषित किया है कि एक साल से कम आयु के मानव-शिशु भी अन्य पशु-पक्षियों की तरह ही बाहरी वस्तुओं से भयभीत नहीं हुआ करते। हाँ, कुछ रहस्यपूर्ण वस्तुओं के प्रति भय अवश्य बच्चों में जन्मजात होता है। 'साइक्लाजी ऑफ अर्ली चाइल्डहुड' के लेखक विलियम स्टर्न ऐसे भय को सहजात भय मानते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि अन्य प्रवृत्तियों की तरह भय के भी बच्चों में दो पहलू होते हैं। एक तो स्वाभाविक भय। यह भय आत्मरक्षा और सावधानी के लिए आवश्यक है। दूसरे, अस्वाभाविक भय, जो आत्महीनता, शक्तिहीनता, मानसिक दुर्बलता और मिथ्या धारणाओं को बढ़ाता है।

एक प्रश्न सीधे-सीधे यह उभर सकता है कि बच्चे में भय क्यों उत्पन्न होता है ? यह मुख्यतः इन परिस्थितियों में उत्पन्न होता है—

अस्वस्थ तथा मन्दबुद्धि बच्चा शीघ्र भयग्रस्त होता है। ऐसी परिस्थितियाँ बच्चे के सामने आ जायें जो उसे असूझ लगें, तो उसे यह नहीं सूझ पाता कि इस परिस्थिति का सामना वह कैसे करे ? अतः वह भयग्रस्त हो उठता है। यदि बच्चे ने कोई ऐसी परिस्थिति देख ली है जो भय का कारण है, तो भी वह उस स्थिति में डरेगा। जैसे यदि स्कूल में बड़े भाई को पिटते देख लिया तो बच्चा स्वयं के स्कूल जाने की कल्पना से ही डर उठेगा वह स्कूल जाने से इन्कार करेगा।

अनुकरण की स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण बच्चा बड़ों को या दूसरे बालकों को डराता है।

मिथ्या धारणाएँ उत्पन्न करने से, जैसे—अँधेरा, चोर, हौआ, भूत-प्रेत, सिपाही, जोगी बाबा आदि का नाम लेकर भय दिखाने पर भी बच्चा उनसे डरने लगता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि बच्चा डरपोक न बने, इसके लिए उसमें मिथ्या धारणाएँ न पैदा करना, बात-बात में उसे किसी काल्पनिक वस्तु का डर न दिखाना तो आवश्यक है ही, परन्तु मात्र इतना पर्याप्त नहीं। यदि माँ छिपकली, बिल्ली आदि से डरती है, तो बच्चा उनसे अवश्य डरेगा।

बच्चों के अधिकांश डर संसर्गज होते हैं। इसलिए महत्व अकेले बच्चे को नहीं, उसके वातावरण को भी दिया जाना चाहिए। बच्चे को वातावरण एवं परिस्थिति की भलीभाँति जानकारी देना उसे स्वस्थ-सबल बनाये रखना और उसका उचित बौद्धिक विकास होने में सहायता करना ही वे उपाय हैं, जिनसे कि बच्चा निर्भीक बनेगा। यह भी स्मरण रखा जाये कि बार-बार गिर पड़ने, हानि पहुँचने के संकेत तथा ऐसे ही अन्य सावधान करने वाले निर्देश भी बच्चों को बार-बार देने पर वे डरने लग सकते हैं, जैसे कबड्डी से या हाकी से या साइकिल से तुम्हारी हड्डी टूट जायेगी, वहाँ मत जाओ, बीमार पड़ जाओगे आदि संकेत बच्चों के मन में भय की सृष्टि करते हैं। बच्चे को लेकर बहुत अधिक आशंकित-भयभीत रहे आने वाले माता-पिता बच्चे में जाने-अनजाने भय पैदा करते रहते हैं। इसीलिए बच्चे को निडर, निर्भीक, साहसी बनाने के लिए स्वयं वैसा बनना तथा अनावश्यक मोह से बचना आवश्यक है।

कोई भी माता-पिता यह अनुमान नहीं कर पाते कि बच्चे का शारीरिक विकास उसमें अनुचित भय के कारण रुक गया है परन्तु ऐसा होता कई बार है।

भीरु बालक रोगी बन जाता है। उसका आत्मविश्वास समाप्त हो जाता है। उसे व्यर्थ की बातों से भी भय होने लगता है। उसका व्यक्तित्व पंगु होता जाता है। अतः बच्चे के मन में अपने वातावरण के प्रति परिचय और आत्मीयता पैदा करना, उसे कभी भी काल्पनिक भय न दिखाना और न भयोत्पादक संकेत करना, स्वयं भी निर्भीक रहना और निर्भीक बच्चों के बीच ही उसे रखना आवश्यक है। बच्चे मुख्यतः अनुकरणशील होते हैं, अतः निर्भीक परिवार और निर्भीक वातावरण ही बच्चों को निर्भीक बनाने का सर्वोत्तम उपाय है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों को भीरु नहीं, वीर बनाइए

बच्चा जन्म से कायर नहीं होता। उसकी नैसर्गिक प्रकृति इतनी निर्भीक होती है कि वह साँप, चूहे, बिल्ली, बन्दर जो भी पास आये पकड़ने को दौड़ता है। उसे प्रत्येक वस्तु खेल की, विनोद की वस्तु लगती है और सम्भवतः वह इसीलिए बिना हिचक के, प्रत्येक वस्तु की ओर दौड़ पड़ता है। बच्चे के मस्तिष्क में पूर्वारम्भ में भय की भावना न जगायी जाय तो हमारा विश्वास है कि वह कभी कायर नहीं हो सकता। घर का वातावरण और माता-पिता का त्रुटिपूर्ण संरक्षण ही उन्हें भीरु बनाता है। भारतवर्ष की अतीतकालीन परम्पराओं की दृष्टि से यह अभिशाप-सा लगता है कि हमारे बच्चे डरपोक बनें। वीर-प्रसविनी वसुन्धरा के लाड़लों को तो वीर और बाँकुरा ही होना चाहिए।

इस निर्माण में आप बहुत अधिक सहयोग दे सकते हैं। निर्भीक प्रकृति के बालकों में भय की भावना पैदा कर देने का बहुत कुछ उत्तरदायित्व अभिभावकों का है। व्यक्तिगत सावधानी और समीपवर्ती वातावरण को शुद्ध रखकर आप अपने बच्चों को निर्भय प्रकृति का बना सकते हैं।

माता-पिता की अविश्वासी प्रकृति हमारी दृष्टि में मुख्य विकार है। उन्हें अपने बालकों पर विश्वास नहीं होता और वे छोटी-छोटी आशंकाओं को लेकर बालकों की क्रीड़ाओं में हस्तक्षेप करते रहते हैं। इसमें केवल परावलम्बी हो जाने का ही दोष नहीं है, वरन् बच्चे में भी अपनी शक्तियों के प्रति विश्वास उठने लगता है। वह अपने को दीन-दयनीय स्थिति वाला समझने लगता है। कायरता की मुख्य जड़ यही है। बच्चे की कुशलता की देख-रेख तो रखिए पर इतना नहीं कि उसकी अपनी क्रिया-शक्ति परावलम्बी हो जाय। इसमें इतना ही सम्भव है कि बच्चा कहीं फिसलकर गिर पड़े तो मामूली चोट आ जाय या अँगुली में थोड़ा जल जाय। घर में और किसी बड़े खतरे की आशंका नहीं होती, यदि हो भी तो कारण को दूर कर देना चाहिए, पर बच्चे के कार्यों में जितना कम सम्भव हो, हस्तक्षेप करना चाहिए। स्वानुभूतियाँ बालक का नैसर्गिक विकास करती हैं, प्रबुद्ध और निर्भय बनाती हैं।

अज्ञान और असत्यमूलक विश्वास से बच्चों को परिचित करा देना बहुत बड़ी भूल है। मनुष्य का जैसा विश्वास होता है वैसा ही उसके कार्यों का फल भी उसे मिलता है। यदि विश्वास सत्य, ज्ञान और प्रेममूलक होगा तो उससे विकास होगा, इसके विपरीत यदि विश्वास असत्य और अज्ञानपरक हुआ तो वह घृणा और पतन की ओर ले जायेगा।

बच्चों के आगे डरावने दृश्यों का वर्णन या भयोत्पादक कहानियाँ नहीं सुनानी चाहिए। भूत-मसानी के किस्से और रोमांचकारी घटनाओं के चित्रण करना बड़ी भूल होगी। इस प्रकार की बातों से उसके प्रसुप्त मन में भयोत्पादक ग्रन्थियाँ जम जाती हैं, जो बाद में स्वयं अपना कार्य प्रारम्भ कर बच्चे को डरपोक बना देती हैं।

कहीं से आपके बच्चे के मस्तिष्क में इस प्रकार का भय छा गया हो तो उसका हर सम्भव तरीके से निवारण करना चाहिए। इस प्रकार भ्रान्त-धारणा को पूर्व में ही निर्मूल कर दिया जाय तो बच्चे का न केवल भय ही दूर हो जाता है, वरन् भय की निरर्थकता भी मालूम पड़ जाती है।

स्वामी विवेकानन्द जी जब बालक थे तो एक बार उनकी बहिनों ने उन्हें पास के पेड़ में भूत होने की बात सुनाकर डरा दिया। एक रोज बालक विवेकानन्द उसी पेड़ पर जा बैठे और बड़ी देर तक भूत के आने की प्रतीक्षा करते रहे। काफी देर हो जाने पर घर में तलाश हुई। उनकी माताजी उसी पेड़ की ओर गईं तो वे पेड़ पर बैठे मिले। माँ ने वहाँ बैठने का कारण पूछा तो बालक ने बताया कि वह भूत देखने आये थे। माँ ने समझाया बेटा भूत कुछ नहीं होता, न मानो तो और परीक्षा कर लो। बालक के मन से भूत की कल्पना दूर हो गई और उसका भय मिट गया।

प्रत्येक माता-पिता का यह कर्त्तव्य है कि यदि उन्हें ऐसा मालूम पड़े कि किसी बात को लेकर बच्चे के मस्तिष्क में भय पैदा हो रहा है तो उसे तुरन्त दूर कर दिया जाय ताकि वैसी भावना मस्तिष्क में जड़ न जमा ले।

भय केवल डराने, मनगढ़न्त भयोत्पादक कहानियाँ सुनाने से ही नहीं पैदा होता। कई बार लड़ाई-झगड़ों के कारण वातावरण में एक प्रकार का भयोत्पादक कम्पन छा जाता है। इससे बच्चों के कोमल मस्तिष्क में आघात होता है और वे बहुत जल्दी डर जाते हैं। जोर-जोर से चिल्लाकर लड़ने, गालियाँ बकने, चीखने, मारपीट करने से जो डरावना वातावरण बनता है, उससे बच्चों को सदैव दूर रखना चाहिए।

यह सब इसलिए आवश्यक है कि बच्चे के मन में भय न पैदा हो और वह कायर एवं कमजोर न बने। इनसे अधिक बच्चे के रचनात्मक विकास में सहयोग देने का महत्त्व है। बच्चों को प्रारम्भिक अवस्था से ही वीरबाँकुरा बनाना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शकुन्तला का भरत सिंहों के बच्चों के साथ खेला करता था। अब वैसा संकल्प और आत्मबल न हो तो भी साहसपूर्ण कहानियाँ, बाल-निर्माण के रोचक संस्मरण तो उन्हें सुनाये ही जा सकते हैं। छोटे-छोटे बच्चों के वीरतापूर्ण कार्यों की चर्चा करनी चाहिए। ऐसी कहानियाँ काल्पनिक भी हो सकती हैं, ऐतिहासिक भी, जिनसे बच्चे पर अनुकूल प्रभाव पड़े, ऐसी कथाएँ रात को लेटते समय या दिन के किसी भी अवकाश के समय बच्चों को सुनाना चाहिए।

कहानियों की तरह ही काव्य भी बच्चों को प्रिय होता है। उन्हें गाना सुनने, सुनाने का शौक होता है पर लोगों की भूल यह होती है कि वे दोषपूर्ण गीतों के द्वारा बच्चों के मस्तिष्क में विकार उत्पन्न कर देते हैं। यों नहीं, बच्चों को ऐसी रचनाएँ सुनानी और याद करानी चाहिए, जिनसे उनकी भावनाओं में दृढ़ता, वीरता और आदर्श जाग्रत होता हो। बुद्धिमान स्त्रियाँ बच्चों को लोरियाँ गाकर सुलाती हैं। उन लोरियों में भय नहीं, प्रेम, श्रद्धा और वीरता की बातें होती हैं। भूत आदि की अन्धविश्वासमयी बातों से बालक का मन कमजोर नहीं करतीं। ऐसे लोग वीर होते हैं। बालक के मन को भय और विकारजन्य संस्कारों से बचाना नितान्त आवश्यक है।

बच्चों को स्वस्थ रखने की सामान्य जानकारी प्रत्येक अभिभावक को होनी चाहिए। आहार-विहार, खेलकूद के नियमोपनियम तथा सुव्यवस्था की जानकारी खुद न हो तो अपने मित्रों और पड़ोसियों से सीख लेनी चाहिए।

यदि किसी बच्चे का वजन प्रतिमास बढ़ता रहता है, श्वास-प्रश्वास नियमपूर्वक चलते हैं, सोते समय उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता और खूब गहरी नींद आती है, दिन में उसे टट्टी एक या दो बार साफ आती है, तो समझना चाहिए बच्चा स्वस्थ है और उसे कोई शारीरिक बीमारी नहीं है। अस्वस्थ होने पर बच्चे मुरझाये रहते हैं, खेलते नहीं और उनका वजन भी नहीं बढ़ता। ऐसा कोई कारण जान पड़े तो उसका तुरन्त उपचार करना चाहिए।

घर की बैठक के कमरे में शिवाजी, राणाप्रताप, गुरुगोविन्दसिंह, रणजीतसिंह, सुभाष आदि वीरपुरुषों के चित्र रहने चाहिए। अवकाश होने पर बच्चों को उनसे सम्बन्धित ऐतिहासिक वर्णन भी सुनाने चाहिए।

माताएँ और कुछ न करें तो भी केवल अपने संकल्प से बच्चों में वीरतापूर्ण, शौर्य और साहसपूर्ण भावनाओं का जागरण कर सकती हैं। बच्चे को दूध पिलाते समय ऐसी भावना की जाती रहे कि मेरे स्तनों से यह जो मधुर दूध बच्चे के शरीर में पहुँच रहा है, उससे उसका शरीर, मन और आत्मा सभी बलिष्ठ हो रहे हैं। मेरा बच्चा कर्ण, अर्जुन, अभिमन्यु, राम, भरत, गोरा, बादल, फतेहसिंह, जोरावरसिंह, आदि की तरह ही वीर-बाँकुर, और बलशाली बनेगा। वह धर्मनिष्ठ होगा पर दुष्टता एवं अनैतिकता से जूझने में भी पीठ न दिखायेगा। हमारे बच्चे वीर-बाँकुरे बनें यह हमारा उत्तरदायित्व है।

अबोध बालकों को भयभीत न करें

बालक की समझ जैसे-जैसे विकसित होती जाती है, वह अपने आस-पास की प्रत्येक चीज को विस्मित के भाव से देखता है। उसके सम्बन्ध में बच्चे की क्या प्रतिक्रिया होती है, यदि उसका शिक्षण गलत ढंग से हुआ है और उस पर गलत प्रभाव डाले गये हैं, तो वह अपने आसपास की चीजों के प्रति जिज्ञासा का भाव रखने के साथ-साथ अनजानी घटनाओं और वस्तुओं से भयभीत भी होने लगता है। यदि छोटे बच्चों को आरम्भ से ही गलत कल्पनाएँ करना सिखाया गया, उन्हें भूत-प्रेत और चुड़ैल का डर बताया गया तथा दानवों और राक्षसों की कहानियाँ सुनाई गई हैं तो वह अकेला होते ही, एकान्त स्थान में जाने पर अथवा अन्धेरे में, रात के समय झींगुरों की झाँय-झाँय और उल्लू की आवाज सुनकर भूत-प्रेतों की कल्पना करने लगता है तथा डरने लगता है।

यहाँ तक कि चूहे की खटखट भी बच्चे को परेशान करती देखी गई है। एक-दो बार वह अपना डर भी व्यक्त करता है। पर माँ-बाप उसका डर दूर करने के स्थान पर उसकी बातों पर हँसने लगते हैं। तब तो बात आई-गई हो जाती है, पर फिर किसी अवसर पर माँ-बाप उसके भय को पुनः पुष्ट कर देते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि अन्धकार अथवा एकान्त बच्चे के लिए एक समस्या बन जाता है। रात को कमरे में अकेला सोना उसे अच्छा नहीं लगता या सब लोगों के साथ होने पर भी वह अन्धेरे में आँखें फाड़-फाड़कर जागे रहने की चेष्टा करता है। जब सब लोग सोये रहते हैं तो वह जागा हुआ चुपचाप माँ के पलंग पर टकटकी लगाकर देखता रहता है।

यह सब होता है, उन कहानियों के सुनने से, जो बच्चे को मनोरंजन के उद्देश्य से सुनाई जाती हैं अथवा उन उपायों के फलस्वरूप होता है, जो उसे किसी काम-से रोकने के लिए किये जाते हैं। वस्तुतः बच्चों से व्यवहार करते समय बड़ों के साथ बरती जाने वाली व्यवहार-कुशलता से भी अधिक व्यवहार-कुशलता आवश्यक होती है। उपरोक्त बातें बड़ों को भले ही मूर्खतापूर्ण लगें, पर वे बच्चों के लिए वस्तुतः एक समस्या होती हैं और उस समस्या को सुलझाने के लिए स्नेह तथा सहानुभूति आवश्यक होती है। अगर आपका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चा डरता है, तो उसके डर को हँसी में न उड़ाइये, वरन् उसमें सुरक्षा की भावना का विकास करें तथा उसके भय को दूर करें।

इस सम्बन्ध में पहली सतर्कता यह बरती जानी चाहिए कि बच्चे के सामने कोई काल्पनिक भय न खड़ा किया जाय। उसे राक्षसों और भूत-प्रेतों की मनगढ़न्त खौफनाक कहानियाँ न सुनाई जाएँ। वस्तुतः इस तरह के पात्रों का कहीं कोई अस्तित्व तो होता नहीं, वे गढ़े ही मात्र मनोरंजन के लिए जाते हैं। पर बच्चों को ऐसा मनोरंजन महँगा पड़ता है और वे सूने वातावरण में एकान्त स्थान पर, अन्धेरा हो जाने पर उन पात्रों की मौजूदगी की कल्पना करते रहते हैं। उनकी कल्पनाशक्ति विचित्र-विचित्र उड़ानें भरने लगती है और जब मस्तिष्क निश्चेष्ट नहीं हो पाता तो नींद दूर भाग जाती है। अगर थककर नींद आ भी गई तो वही कहानियाँ और वे ही चित्र किसी न किसी रूप में सजीव बनकर सपनों के रूप में दिखाई देने लगते हैं।

बच्चों में डरने की वृत्ति यदि किसी कारण आ भी गई तो उसे सुलझे हुए ढंग से दूर करने के लिए प्रयास करना चाहिए। रात को डरने वाले बच्चों को अपने पास लेकर सोया जाय, इससे उनमें सुरक्षा की भावना बढ़ती है। सोते समय उन्हें कहानियाँ तो सुनाई जाएँ, पर वे भूत-प्रेतों या राक्षस, दानवों की न हों। उन्हें कोई शिक्षाप्रद प्रेरक कहानियाँ सुनाई जाएँ, जिससे वे अच्छी प्रेरणाएँ ग्रहण कर सकें। वीर बालकों, ईमानदार व्यक्तियों, महापुरुषों और सन्त-महात्माओं की कहानियाँ सुनाई जा सकती हैं, जो उन्हें मानवीय आदर्शों के प्रति निष्ठावान बनायें। आत्मविश्वास और सुरक्षा की भावना के लिए बच्चों को वीर बालकों के नाम और सम्बन्धित घटनाएँ भी कण्ठस्थ करायी जा सकती हैं। इस प्रकार करने से बच्चों का ध्यान भय के केन्द्र से हट जायेगा और वीर-बालकों की कहानियाँ याद आने पर वे साहसी बनने की प्रेरणा प्राप्त कर सकेंगे। साथ ही शयन-कक्ष में बिल्कुल अन्धेरा न रखा जाय, थोड़ा-बहुत प्रकाश अवश्य ही रखें।

इन बातों का उस पर इतना बुरा असर पड़ता है कि बड़ा होने पर भी उसमें आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता और साहस के गुणों का अभाव हो जाता है। बहुत बार तो बच्चे के शारीरिक विकास में भी रुकावट आ जाती है! नींद में जब पेशाब की हाजत लगती है तो आँख खुलने पर भी बच्चा डर से उठता नहीं और वहीं पेशाब कर देता है।

बिस्तर में पेशाब करने की गन्दी आदत छुड़ाने के लिए भी माँ-बाप डरावने तरीके ही अपनाते हैं। वे कहते हैं—'आज बिस्तर में पेशाब किया तो चोर पकड़कर ले जायेगा। अब बच्चे पर दोहरी मुसीबत आ जाती है। वे किस प्रकार इस मुसीबत से भाग पायें इसका कोई उपाय ही नहीं सूझता। यह पहले दर्जे की बेवकूफी है। उसे न तो डराया जाय और डर के कारण उससे कोई गलत काम हो जाय तो उसके कारण को समझकर उसे दूर करने का प्रयत्न किया जाय।

अक्सर बच्चे अन्धेरे में जाने से डरते हैं, इस डर को, जो कल्पना में रहता है—अन्धेरे में जाकर निर्मूल प्रमाणित किया जाय। स्वयं भिन्न-भिन्न प्रकार के जानवरों की बोलियों से परिचित कराया जाय। चित्रों वाली किताबें दिखाकर उसे जानवरों तथा कीड़े-मकोड़ों के बारे में बताया जाय, ताकि वे तत्सम्बन्धी अज्ञान के कारण उनसे न डरें। उन्हें यह भी बता दिया जाय कि विषाक्त कीड़े—जैसे साँप, बिच्छू आदि अपने-आप किसी को नहीं काटते। उन्हें सताये जाने पर ही वे आत्मरक्षा के लिए अपना डंक या दाँत गड़ाते हैं।

जानवरों, कीड़ों और अन्धेरी जगह के अतिरिक्त बच्चे कुछ विशेष प्रकार के मनुष्यों से भी डरते हैं। जैसे कोई बच्चा चोर से डरता है तो इस सम्बन्ध में उसका अज्ञान दूर करना चाहिए और बताना चाहिए कि चोर कोई भयानक जीव नहीं है। वरन् प्रत्येक वह मनुष्य, जो किसी की कोई चीज बिना पूछे ले ले या कोई काम छुपाकर करे तो वह चोर है। छोटे अपराधों को माँ-बाप घर में ही जैसे सजा देकर सुधारते हैं, उसी प्रकार बड़े अपराधियों को सरकार थाने में ले जाकर, उन्हें सजा देकर सुधारती है। कुरूप तथा भयानक आकृति वाले व्यक्तियों को देखकर भी बच्चे डर जाते हैं। अच्छा तो यह है कि उन्हें ऐसे व्यक्तियों से दूर ही रखा जाय, पर अचानक सामना हो भी जाय तो—बाद में या अवसर हो तो तत्काल ही उन्हें समझा दें कि कोई रोग या चोट लगने के कारण वह व्यक्ति ऐसा हो गया है और ऐसे मनुष्यों की सहायता करनी चाहिए।

माता-पिता की तरह अध्यापकों को भी चाहिए कि वे बच्चों से ज्यादा मारपीट न करें। डाँट-डपट और मारपीट से बच्चे इस कदर भयभीत हो जाते हैं कि फिर पढ़ने में ही उनका मन नहीं लगता। वस्तुतः बच्चों को पढ़ाते समय धैर्य और सहानुभूति की बड़ी आवश्यकता है। उनकी गलतियों और असफलताओं पर उन्हें धमकाना या सजा देना बड़ी भारी भूल है।

यों बालक स्वभावतः निडर होते हैं। उसके लिए साँप और रस्सी बराबर है, पर हम अपने व्यवहार और चेतावनी द्वारा ही उनके मन में डर तथा अविश्वास जमा देते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि बच्चों को नई जानकारी दी ही न जाय। उन्हें नई जानकारी दी तो जाय, पर जानकारी देने का ढंग ऐसा अपनाया जाय, जिससे वे डरपोक बनने के स्थान पर जिज्ञासु बनें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों में भयपूर्ण संस्कार मत डालिए

बच्चा रो रहा है और माँ उसे कहानियाँ सुनाकर सुला रही है। कहानी सुनते हुए नींद आ जाना बच्चों के लिए स्वाभाविक भी है। परन्तु कहानियाँ किस प्रकार की हैं ? उसका प्रभाव आगे चलकर युवावस्था में, समूचे जीवनभर दिखाई देता है। जिन बालकों को भूत-प्रेतों की कहानियाँ सुनाई जाती हैं, आगे चलकर वे उनके अस्तित्व में भले ही विश्वास न रखें, परन्तु ऐसी शक्तियों से एक अज्ञात भय संस्कार के रूप में उनके मन-मस्तिष्क में बस जाता है। वे कितने ही प्रत्यक्षवादी, यथार्थ विचारों वाले, तत्त्वचिन्तक क्यों न हों अन्धेरी रात में सूने स्थानों पर एकबारगी जाते हुए हृदय काँप उठता है। इसका कारण है वह भय जो बचपन से सुनी कहानियों से जम जाता है।

वस्तुतः बच्चे के साथ किया गया प्रत्येक व्यवहार, उससे की गई हर बात, उसके सामने किसी भी प्रकार की चेष्टा या हरकत अप्रत्यक्ष रूप से कि निश्चित ही उसे प्रभावित करती है। उसके व्यक्तित्व निर्माण में सहायक और आधारशिला बनती है। बालक आगे चलकर क्या बनेगा, किस रूप में समाज के लिए उपयोगी सिद्ध होगा यह इस बात पर निर्भर है कि बाल्यावस्था में उसे किन लोगों का साथ रहा है, किस प्रकार के वातावरण से क्या-क्या प्रेरणाएँ प्राप्त हुई हैं ?

इन सब बातों के अतिरिक्त रात में सोते वक्त नानी, दादी या माता से सुनी हुई कहानियाँ उसे एक सीमा तक ही नहीं, बहुत अधिक रूप से प्रभावित करती हैं। कहानियाँ सच हैं या झूठ इसका तो उसे कोई ज्ञान नहीं, उसके सामने तो जो कुछ भी कहा जायेगा, किया जायेगा उसे सत्य ही लगेगा। भूत-प्रेतों की डरावनी कहानियाँ सुनकर बालक के मन में ऐसी काल्पनिक सत्ताओं के प्रति सहज ही विश्वास जम जाता है। कभी-कभी रात को भी स्वप्न में वह डर जाता है चीख उठता है। इसका कारण है कि वे काल्पनिक मूर्तियाँ उसकी स्मृतियों में अनुभूति के रूप में कौंध जाया करती हैं।

उस समय तो जबकि ये कहानियाँ सुनाई जाती हैं सुनाने वाला कौतुक मात्र समझता है। बच्चे भी सहज स्वभाव से उन्हें सुना करते हैं। सुनाने वाले के मन में तो कोई विचार प्रक्रिया नहीं चलती परन्तु सुनने वाले बालक तो जिन्होंने कभी ऐसी घटनाएँ आँखों देखी नहीं हैं एक गम्भीर चिन्तन के दौर से गुजरते हैं, जो उनके मन में संस्कार जमा देता है। परिणामस्वरूप बालक आगे चलकर भीरु, कायर और बुजदिल बन जाता है।

आवश्यक है बालक के व्यक्तित्व विकास के लिए उन्हें स्वस्थ कहानियाँ और प्रेरक घटनाएँ सुनाई जायँ। इनका आशाजनक परिणाम देखा गया है। वीरता, साहस और उत्साह की प्रेरक कथाएँ सुन-सुनकर ही कई बालकों की अन्तर्निहित प्रतिभाएँ जाग्रत हुई हैं। जिन्होंने आगे चलकर इतिहास बनाये। पौराणिक और ऐतिहासिक साहित्य में इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण भरे पड़े हैं। अभिमन्यु ने प्रेरणा ही नहीं प्रशिक्षण भी इस प्रकार की कहानियाँ सुनकर प्राप्त किया था, वह भी माता के गर्भ में। तब अर्जुन अपनी पत्नी से इस प्रकार की चर्चाएँ किया करते थे। राष्ट्रवीर शिवाजी को उनकी माता जीजाबाई रामायण और महाभारत के प्रेरणाप्रद दृष्टान्त सुनाया करती थीं। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में सेनानियों और योद्धाओं को आदर्श की बलिदान की प्रेरणाएँ ऐसी ही घटनाओं से प्राप्त हुई थीं। महात्मा गाँधी बचपन में अपनी माता से ऐसी ही प्रेरक कथाएँ सुनकर सत्य और अहिंसा के प्रति अपनी आस्थाएँ सुदृढ़ कर पाये थे।

इसलिए बालकों को कहानियाँ मन-बहलाव या मनोरंजन की दृष्टि से ही नहीं कही जानी चाहिए, वरन् यह ध्यान रखना चाहिए कि इनका प्रभाव अपरिहार्य रूप से उसके मन-मस्तिष्क पर पड़ता है और वे संस्कार रूप में जमकर उसके जीवन को दिशा देती हैं।

आप बच्चों को डरपोक तो नहीं बना रहे हैं ?

आत्मरक्षा की दृष्टि से अपने बचाव की खतरों से सुरक्षा की दृष्टि से भय एक आवश्यक गुण है। आत्मरक्षा की भावना हर प्राणी में होती है। सहारा पकड़कर खड़े होने वाले बच्चे को यकायक छोड़ दिया जाय तो वे गिरने से बचने के लिए अपने आस-पास की वस्तुओं को कसकर पकड़कर अपनी सुरक्षा कर लेते हैं। सड़क पर वाहनों से टकराने का भय मनुष्य से ट्रैफिक के नियमों का पालन करा लेता है। ईश्वर के दण्ड का भय मनुष्य को उच्छृंखल बनने से रोकता है और नीति-सदाचार की मर्यादा में बनाये रखता है। अस्तु, सीमित मात्रा में प्रत्येक प्राणी में भय संवेग का होना तो अति आवश्यक है। बालकों के लिए भी वह उपयोगी है। किन्तु यह भय जब अधिक मात्रा में बढ़कर बालक में भीरुता का रूप धारण कर लेता है तो आगे चलकर उसमें आत्मविश्वास की कमी पड़ जाती है। सामान्य-सी प्रतिकूलता आने पर भी वह अपना सन्तुलन नहीं रख पाता। छोटी-छोटी कठिनाइयाँ भी उसे विकराल जान पड़ती हैं।

छोटे बालक का मन बड़ा संवेदनशील और अविकसित होता है। वह देखी या सुनी हुई बातों को अपनी बुद्धि के अनुसार बड़ी शीघ्रता से ग्रहण करता है, जिसका बुरा प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर बड़ा गहरा पड़ता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। यदि बालक का स्वभाव बचपन से ही भीरुता की दिशा में बहने वाला बन गया तो वह उसके भविष्य को अन्धकारमय बना देगा। बच्चे को इस स्थिति से बचाने का उत्तरदायित्व घर के माता-पिता व अन्य वयस्कों पर आता है। बालक को निर्भीक व साहसी बनाने के लिए चतुर माली की तरह अनेकानेक विषम परिस्थितियों में उनकी देखभाल करनी आवश्यक है। बच्चों में अत्यधिक भय किन कारणों से उत्पन्न होता है ? उनका उचित ढंग से निराकरण किस प्रकार किया जा सकता है ? इसका मनोवैज्ञानिक ज्ञान होना बड़ों के लिए अति आवश्यक है।

कुछ समझदार होने पर बच्चों को भयंकर वस्तुओं और परिस्थितियों से बचाने के लिए मनोवैज्ञानिक उपाय ही प्रयोग में लाने चाहिए। अधिकांश बच्चों के पालन-पोषण में अनेकों ऐसी त्रुटियाँ रह जाती हैं, जिनसे बच्चों में भय की प्रवृत्ति जन्म लेती है। ये त्रुटियाँ उतावलेपन और बालमनोविज्ञान की अज्ञानता के ही कारण होती हैं। भयप्रद संस्कार उस पर जड़ जमा लेते हैं। बड़े होने पर जबकि वह उनकी वास्तविकता को समझ भी लेता है फिर भी वे संस्कार उसका पीछा नहीं छोड़ते। दिशाशूल, बिल्ली का रास्ता काटना, छींक आना, छिपकली का गिरना आदि अनजाना भय उसे आजीवन घेरे रहता है।

माताओं को चाहिए कि बालक को उसकी इच्छानुसार सुरक्षा का ध्यान रखते हुए उनके खेलने में अनावश्यक हस्तक्षेप न करें। अपनी इच्छानुसार स्वतन्त्रतापूर्वक खेलने और कार्य करके प्रसन्नचित्त रहने वाले बालकों में आगे चलकर भी साहस और आत्मविश्वास बना रहता है। प्रकृतिवाद शिक्षा प्रणाली के समर्थक दार्शनिक प्लेटो ने तो यहाँ तक कहा है कि ''बालक को स्वतन्त्र छोड़कर उसे प्रकृति से ही शिक्षण लेने देना चाहिए। यदि वह आग में हाथ डालता है तो आग से जलने का उसे एक बार अनुभव होने देना चाहिए। उससे जलने का अनुभव लेकर वह दुबारा आग के पास नहीं जायेगा।'' यह कथन अतिवादी भी हो सकता है पर सामान्य जीवन में बालक को सम्भावित आपत्तियों से सचेत करने के लिए अभिभावकों को उनका पूर्व ज्ञान करा देना चाहिए। लेकिन वह इस ढंग से कराया जाय कि बालक उससे भयभीत न हो।

भीरुता बढ़ने में अभिभावकों द्वारा बच्चे की भर्त्सना करने की प्रवृत्ति भी एक कारण है। जब बच्चा कोई कार्य करने में असफल हो जाता है तो माता-पिता उसे मूर्ख कहकर दुतकारते हैं या किसी अन्य होशियार बच्चे से तुलना करते हैं, जिससे बालक के मन में आत्महीनता के भाव उत्पन्न होते हैं और वह अपने को हर तरह से अयोग्य समझने लगता है। यह अविश्वास उसे मनोबलहीन और दब्बू बना देता है, जिससे वह कोई कार्य करने से पहले हिचकिचाता है। ऐसा बालक आगे चलकर सामान्य-सी परिस्थितियों में भी घबराने वाला, हारा हुआ व भयभीत बना रहता है।

अपरिपक्व बुद्धि व मन-मस्तिष्क वाले बालकों के लालन-पालन में अभिभावकों को पूर्ण सतर्कता रखनी चाहिए। उन्हें स्नेह, सहानुभूतिपूर्वक कष्ट-कठिनाइयों से लड़ने का साहस बँधाना चाहिए। प्रारम्भ से ही उनमें आत्मविश्वास जाग्रत करने के अनेक उपाय काम में लाते रहना चाहिए। अत्यधिक उद्दण्डता दिखाने पर जहाँ एक आँख सुधार की प्रयोग की जाती हो, दूसरी ओर उसकी प्रत्येक अच्छे कार्य पर प्रशंसा की जाती रहे, प्रोत्साहन दिया जाता रहे। इससे उसी बालक में आत्मविश्वास, साहस, स्वावलम्बन जैसे गुण जाग्रत किये जा सकते हैं। परिवार में बालकों में इस प्रकार के गुण उत्पन्न करने का श्रेय प्रमुखतः माताओं को लेना चाहिए। वे ही बच्चों को साहसी, उत्साही और आत्मविश्वासी बनाने में सक्षम हो सकती हैं, क्योंकि बच्चा सबसे अधिक समय तक माँ के पास ही रहता है। इसका अर्थ यह नहीं कि घर के अन्य सदस्यों के ऊपर बच्चों के नव-निर्माण का कोई दायित्व नहीं होता। बालकों के सर्वांगीण विकास में योगदान हर सदस्य का होना चाहिए। भीरुता के मनोवैज्ञानिक कारणों को समझा जा सके और उसके निदान के लिए शिक्षण व्यवस्था बनाई जा सके तो हर बच्चा साहसी, समर्थ और आत्मविश्वास सम्पन्न बन सकता है।

बालक्रीड़ा नहीं क्रीड़ाशील बालक

बालचपलता और उनकी अन्तःस्फूर्त क्रीड़ाएँ इतनी मनोहारी होती हैं कि माता-पिता उन्हें देख-देख गद्-गद् होते रहते हैं। कभी बच्चा गम्भीर हो तो भी वे इस बात का प्रयास करते देखे जाते हैं कि बच्चा क्रीड़ाएँ करे, उसके लिए उन्हें हलराने-दुलराने, छेड़ने आदि की क्रियाएँ भी चलती रहती हैं। इसमें कुछ बुरा भी नहीं है। आमोद-प्रमोद का वातावरण पारिवारिक जीवन का प्राण है जिससे परिजनों में नवचेतना विकसित होती रहती है। स्फूर्ति और उमंग हिलोरें लेती रहती हैं।

किन्तु इस क्रीड़ा के लिए बालक के जीवन का जितना अंश नियत है, उतना ही अच्छा। इसी बीच बालक की उस उमंग को दिशा देने की आवश्यकता माता-पिता पूर्ण न कर लें तो यह लाड़ बालक की सारी रचनात्मक दिशाओं को ही दिक्भ्रान्त बना सकता है। प्रकृति बालक में अन्तःस्फूर्त चपलता के रूप में इस बात का सन्देश दिया करती है कि इस ऊर्जा को समय रहते दिशा दे दी जाये यदि ऐसा न किया गया तो शक्ति विध्वंस की दिशा ले सकती है।

आग एक शक्ति है उसे बायलरों में एकत्र पानी को खौलाकर विशालकाय रेलगाड़ियों को चलाने में भी प्रयुक्त किया जा सकता है और मकान, फसल जायदाद जलाकर खाक कर देने में भी। विकासशील ऊर्जा को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भाप की तरह बालक की रचनात्मक प्रवृत्तियों में बदल दिया जाये तो ऐसा बालक सफलता की दिशा में तेजी से अग्रसर होता चला जा सकता है।

यह कार्य वास्तव में उतना जटिल नहीं जितना लोग सोचते हैं। माता-पिता जागरूक हों अपना दायित्व निबाहने में वे आलस्य और प्रमाद न करते हों तो बच्चों में खेलों के माध्यम से रचनात्मक बुद्धि और रचनात्मक दृष्टिकोण का विकास किया जा सकता है। इस दृष्टि से बालक के जीवन में खेलों का महत्त्व उतना ही है, आमोद-प्रमोद का वही स्थान है, जो पोषण और ज्ञान सम्वर्द्धन का। अनिवार्य आवश्यकताएँ जिम्मेदारी की भावना से सम्पन्न की जाती हैं, जबकि देखा यह जाता है कि बहुत-से माता-पिता उन्हें बाहर जाकर खेलने के लिए धकेलते तो रहते हैं, पर इस दिशा में उन्हें समुचित मार्गदर्शन नहीं देते।

पश्चिमी देशों के निवासी भले ही अध्यात्मवादी न हों पर उनमें जो आत्मविश्वास, साहस की भावना और सक्रियता उपलब्ध है, वह किसी भी आध्यात्मिक गुण से कम नहीं। आलसी और मूर्च्छित जीवन तो कभी अध्यात्मवादी हो ही नहीं सकता। सक्रियता ही अध्यात्म का मूल गुण है। वह न हो तो जीवन में कोई उल्लेखनीय उपलब्धि झाँक भी नहीं सकती। पश्चिम की सफलता का आधार उनकी जाग्रत और जीवन्त दिनचर्या है। उसका विकास उनके घरों से होता है। उनकी बाल्यावस्था से माता-पिता उभारते हैं। यह दुःखद बात है कि इस देश में चारित्रिक विकास को स्थिर करने वाले खेलों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता और इस तरह बच्चों की अत्यन्त उपयोगी अन्तःशक्ति दबकर नष्ट हो जाती है उसे पनपने का अवसर ही नहीं मिलता।

राजनीति के क्षेत्र में, सामाजिक और व्यावसायिक क्षेत्रों में 'खिलाड़ी की भावना' एक सामान्य उक्ति बन गई है। खिलाड़ी की भावना का अर्थ है अपनी समस्त शक्तियों से प्रयत्नशील होना, अच्छे भविष्य और सफलता पर पूरा भरोसा रखना किन्तु पराजय को भी एक अनिवार्य तथ्य के रूप में स्वीकार करना और उस स्थिति में न तो विचलित होना, न ही धैर्य खोना। गीता में इसे ही योगी की स्थिति कहा है, इसी से इस तरह की जीवनपद्धति को सराहा गया है।

इतनी सर्वांगपूर्ण जीवनपद्धति का विकास खेलों से सम्भव है, तभी यह मुहावरा प्रचलित हुआ। खेलों से बच्चों में अनुशासन और आत्मविश्वास की शक्ति जाग्रत होती है। अलग-अलग रहन से स्वाभाविक है कि व्यक्ति का चिन्तन भी अपने तक ही सीमित रह जाये, वह दूसरों की परवाह कम तो करेगा ही जिसे केवल अपनी चिन्ता होगी। ऐसे स्वार्थपरायण व्यक्ति किसी को अच्छे नहीं लगते न ही वे समाज के लिए उपयोगी होते हैं उन्हें पारिवारिक जीवन तक में असफल पाया गया है, जिनमें सामाजिकता, सामुदायिकता और पारस्परिक व्यवहार के गुण नहीं होते। खेलों में बच्चे सफलता का यह पाठ प्रारम्भ से ही पढ़ते हैं, जो धीरे-धीरे परिपक्व होकर उनके जीवन का अंग बन जाते हैं।

खेल में सामूहिक उत्तरदायित्व और आत्म-अभिव्यक्ति का दोहरा सामंजस्य रहता है। इसीलिए खिलाड़ी प्रवृत्ति का व्यक्ति हर किसी को अच्छा लगता है। एक साथ बहुत साथियों के मिलने-जुलने से ज्ञान का आदान-प्रदान होता है, सरसता बढ़ती और आत्मीयता विकसित होती है। बेकार के समय का इस तरह का उपयोग बच्चों में चारित्रिक विकास भी करता है।

सन् १९६७ में मद्रास में इस तरह का एक दिलचस्प सर्वेक्षण उन किशोरों का किया गया जो फैक्ट्रियों में काम करते थे, पढ़ते थे या बेरोजगारी की स्थिति में जीवन बिताते थे। इस अध्ययन से पता चला कि उनमें से जिन बालकों में जुआ खेलने, चोरी छिपे शराब बेचने, सट्टा लगाने तथा दूसरी व्यक्तिगत बुराइयाँ थीं उनका ९० से भी अधिक प्रतिशत वह वर्ग था, जिसे खेलने का अवसर नहीं दिया गया था। 'भारतीय सामाजिक कार्य सम्मेलन' की उक्त शाखा ने अपने निष्कर्षों के बाद यह अपील की है कि मन्दिर, धर्मशालाएँ, प्याऊ आदि लगाने वाले दानी व्यक्ति यदि बाल-बाड़ियों, क्रीड़ा-संस्थानों तथा स्टेडियमों के विस्तार में धन लगायें तो यह देश और समाज का कहीं अधिक उपकार और पुण्य होगा। इन शब्दों में खेल की महान महत्ता छिपी हुई है।

खेलों में शारीरिक स्वास्थ्य का महत्त्व ब्याज की ही तरह है। मुख्य लाभ बच्चे के मानसिक स्वास्थ्य और उसकी चरित्रनिष्ठा व समाजनिष्ठा का है। माता-पिता को चाहिए कि वे अनुशासन और शिष्टाचार का विकास करने के लिए बच्चों को खेलना अवश्य सिखायें। ऐसा उन्हें मात्र आदेश देकर नहीं करना चाहिए, अपितु स्वयं अभिरुचि लेकर, सहयोग देकर तथा सिखाकर इस आवश्यकता को पूरा करना चाहिए।

बच्चों को खेलने दीजिए

क्रीड़ा और मनोरंजन हर प्राणी की एक प्राकृतिक आवश्यकता है। इसके अभाव में कोई भी प्राणी अपने जीवन का सहज स्वरूप में यापन नहीं कर सकता। जिन प्राणियों को किसी कारण से, चाहें वह कारण ही रोग हो, चाहे विवशता अथवा प्रतिबन्ध, क्रीड़ा और मनोरंजन का अवसर नहीं मिलता, उनका जीवन एक दुर्वह-भार बन जाता है, जिसको वे थके-थके से ढोया करते हैं।

जिनको निर्बन्ध, निर्भय और निश्चिन्त केलि-कलाप का अवसर मिलता रहता है, वे स्वस्थ, सबल और सुन्दर बने रहते हैं। उनमें एक आन्तरिक हर्ष हिलोरें लिया करता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आप पशु-पक्षियों को ही देख लीजिए। वे अपनी-अपनी तरह की क्रीड़ा और मनोरंजन करने में कभी नहीं चूकते, कुत्ते दौड़-दौड़कर, एक-दूसरे से लपक-झपटकर खेलते हैं। जमीन पर लोटते-पोटते, उठते-भागते और पीछा करते हैं। बन्दर एक-दूसरे को चिढ़ाते, खेलते, कूदते, फाँदते और लता पर लटकते, चढ़ते और झूला झूलते हैं। गाय, बैल, भेड़, बकरी आदि पालतू जानवर भी खूँटे से खुलते ही चारागाह की ओर दौड़ते-भागते और मैदान में खूब खाते और खेलते हैं, पक्षी आकाश में उड़ते, नीचे गिरते, एक-दूसरे को दौड़ते, पकड़ते और तरह-तरह के शोर करते, खेलते और मनोरंजन करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि सारे प्राणी—क्या पशु, क्या पक्षी और क्या मनुष्य सभी के लिए क्रीड़ा और मनोरंजन उसी प्रकार से आवश्यक है जिस प्रकार खाना, पीना, सोना, जागना आदि। बिना इन सब बातों को किये वह रह ही नहीं सकता और यदि किसी विवशतावश वह इससे वंचित रहता है तो जीवित होते हुए भी निर्जीव जैसा ही है। उसके लिए प्रसन्नता और न जैसी कोई चीज रह ही नहीं जायेगी। न उसे किसी से प्रेम होगा और न किसी बात में रुचि।

खेल और मनोरंजन का इतना महत्त्व होते हुए भी अधिकतर अभिभावक खेलने से बच्चों को मना करते रहते हैं। बच्चों का मनोरंजन उनके खेल में ही सम्मिलित रहता है, जबकि ऐसा कोई अभिभावक नहीं है जो अपने जीवन के बचपन-काल में न खेला हो और अब भी बच्चों और परिवार का उत्तरदायित्व आ जाने से उस स्वच्छन्दता से खेल तो जरूर नहीं पाते किन्तु मनोरंजन और हँसने व प्रसन्न होने का अवसर जरूर निकाल लेते और वे मित्रों से व्यंग्य-विनोद करते ही हैं। व्यापारिक कामों में हँसने और घटनाओं को नहीं जाने देते। नौकरी पर काम करते हुए दस-बीस बार हँसने और प्रसन्न होने का अवसर निकाल लेते हैं। घूमते हैं, बाजार जाते हैं और पुस्तकें पढ़ते हैं और खेल-तमाशे देखते, मित्रों के साथ बैठ शतरंज और चौपड़ खेलते हैं। इस प्रकार जागने से लेकर सोने तक सारा लेखा-जोखा लिया जाये तो शायद ही कोई ऐसा अभिभावक मिले जिसका मनोरंजन, काम अथवा चिन्ता से कम बैठे। तब कोई कारण नहीं कि बच्चों को खेलकर मनोरंजन करने से रोका जाये। किन्तु फिर भी बहुत-से अभिभावक उनको हर समय इसमें बाधा देते रहते हैं और जरा भी इस बात पर ध्यान नहीं देते कि इसका बच्चे के विकास पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

जहाँ बच्चा खा-पीकर उत्साहपूर्वक खेलने के लिए बाहर की ओर चला कि एक कठोर आवाज "किधर" से ठोकर खाकर जहाँ का तहाँ ठिठक गया। इससे उसे ठीक उतनी ही तकलीफ होती है, जितनी पैर में ठोकर लग जाने से। उसका उत्साह इस प्रकार बिखर जाता है जिस प्रकार कोई जलधारा किसी चट्टान से टकराकर फूट जाती है। उस समय यदि कोई ऐसा यन्त्र हो जो उस बच्चे की शारीरिक और मानसिक हानि की माप ले सके, तो पता चल जाये कि अभी खा-पीकर उसने जो सन्तोष पाया था और उन चीजों से उसे आगे चलकर जो लाभ होगा उससे कहीं अधिक हानि हुई है।

वह रोया-रोया-सा, सहमा-सहमा-सा वापिस कमरे में आ जाता है और बहुत देर तक उदास रहता है। उसके मन में एक कसक होती रहती है और वह उस कठोर अनुशासन का मूल्य चुकाता हुआ बन्दी की तरह कमरे में बैठा रहता है या वैसे कुछ पढ़ता-लिखता है। उसे बराबर याद आता रहता है कि उसके साथी कितने मुक्त रूप में खेल-कूद रहे होंगे और आपस में हँस-बोलकर शोरगुल कर रहे होंगे। उसका मन बार-बार बाहर जाने को करता किन्तु विवश बन्दी की तरह बँधा रहता है। उसके सुकुमार हृदय को यह एक बहुत बड़ा दण्ड है, जो हर प्रकार से अनुचित है।

निस्सन्देह बच्चों को खेलने से रोका जा सकता है, मना किया जा सकता है तब, जब उनकी यह इच्छा अपनी उचित सीमा को तोड़ने लगे। यदि वह खेल चुका है और फिर दुबारा पढ़ने अथवा किसी अन्य काम के वक्त खेलने जाना चाहता है, तो उसे अवश्य रोका जाना चाहिए। उस दशा में कोई मानसिक हानि नहीं होगी, बल्कि उल्टा लाभ ही होगा।

जब वह अनुचित रूप में खेलने को जाने लगता है, तब स्वयं उसमें एक चोर रहता है। उसे एक दहसत रहती है कि वह इस समय खेलने जाने में अनधिकार चेष्टा कर रहा है। उसकी बुद्धि बार-बार रोकती है। किन्तु यदि वह फिर भी चला जाता है तो पूरे समय भर जब तक वह खेलेगा, अनौचित्य की दहसत की कसक उसे बराबर होती रहेगी, जिससे उसका मन पूरी तरह खेलने में न लगेगा और वह डरता-डरता घर वापस आयेगा और जब तक उसकी डाँट नहीं पड़ जाती या वह अवस्था नहीं टल जाती, एक डर उसके मन में पैदा रहेगा जिससे उसकी उतनी ही मानसिक हानि होगी जितनी कि बेजा रोकने से होगी। यदि वह अपने उस अनौचित्य से तत्काल रोक दिया जायेगा तो वह इस हानि से बच जायेगा और लज्जित होकर चुपचाप जो काम करना होगा, करना शुरू कर देगा।

यह स्थिति उन बच्चों के सम्बन्ध में है, जो थोड़े सयाने हो जाते हैं और पढ़ने जाने लगते हैं। इनके साथ तो यह किया जा सकता है कि उनके खेल और काम के समय का विभाजन कर दिया जाये और उसके विपरीत करने पर बेशक टोका और रोका जा सकता है। पर सबसे अधिक सावधानी तो उन बच्चों के साथ बरतने की आवश्यकता है, जो अभी अबोध हैं और जिनके कार्य और खेल का कोई विभाजन नहीं दिया गया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो लोग केवल अभी उसी आयु में हैं, जो खाने और खेलमे के लिए ही हैं।

लगभग चार साल से जब वे चलने-फिरने और कुछ बोलने, समझने लगते हैं, ६ साल तक लगभग सभी बच्चों के कुछ खेल प्रायः सामान्य और एक जैसे होते हैं। जैसे मिट्टी खेलना, पानी गिराना और उसमें भीगना, खिलौने या गुड़िया-गुड्डे खेलना, घर बसाना, दुकान लगाना और कचहरी करना।

मिट्टी से बच्चे बहुत तरह से खेलते हैं जैसा उसे समेटना, बिखेरना, उड़ाना, सिर पर डालना, घरौंदे बनाना और मूर्तियाँ अथवा पदार्थ बनाना।

मिट्टी की इन क्रीड़ाओं में से केवल दो क्रीड़ाएँ सिर पर डालना या उड़ाना जरूर ऐसी क्रीड़ाएँ हैं, जिनसे उन्हें ढंग से रोका जा सकता है, क्योंकि इस प्रकार मिट्टी उनकी आँख में पड़ सकती है और वे दुःखने लग सकती हैं, बाकी सारी क्रीड़ाएँ उन्हें करने दीजिए। बच्चों के गन्दे हो जाने के भय से उन्हें मिट्टी में खेलने से मना करना एक ऐसी प्राकृतिक आवश्यकता को रोकना है जो मिट्टी के स्पर्श से पूरी होती है।

मिट्टी समेटने, बिखेरने में उनका अज्ञात चेतन निश्चित रूप से संग्रह तथा त्याग का अभ्यास करता है। उसे यह न करने दिया जायेगा, तो अवश्य ही उसकी इस प्रक्रिया को हानि होगी। यदि किसी बच्चे को घरौंदा बनाने से रोका गया, तो समझ लीजिए कि उसके नक्शा नबीस को रोका गया है। मूर्तियाँ और वस्तुएँ बनाते समय उनको टोकना या उनकी हँसी उड़ाने का मतलब है कि उसके अन्दर के शिल्पकार को हतोत्साहित किया गया है।

इसी प्रकार घरबार खेलते वक्त और बाजार या कचहरी करते वक्त उनको न कभी रोका जाये और न टोका जाय और न बीच में उठाया जाय। इससे उनमें विकसित होते हुए गृहस्थ, व्यवसाय और न्याय के अंकुरों को हानि पहुँचती है।

हर समय यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि कोई बच्चा जिस समय कोई खेल तन्मयता से खेल रहा है, उसे उस समय प्रकृति उसके अर्द्धचेतन को कोई काम सिखा रही है और उसमें तत्सम्बन्धी ज्ञान का विकास हो रहा है। यदि हो सके तो उस ढंग से सहयोग और सहायता की जाये जिससे उसकी उस स्वतः स्वाभाविक शिक्षा में कोई विघ्न अथवा अस्वाभाविकता न आने पाये इसके लिए उसे ऐसे उपादान जुटाइए, जिससे इसकी उस शिक्षा में चढ़ाव आ जाये।

बहुत-से लोगों में यह आदत होती है कि वे या तो उनके खेल में दखलन्दाज होने लगते हैं, समझाने, सिखाने लगते हैं या खड़े होकर देखने लगते हैं। इससे बच्चे शरमा जाते हैं और अपनी शिक्षा की तारतम्यता भूल जाते हैं।

बच्चों की यह क्रीड़ाएँ बड़ी आकर्षक होती हैं और उन्हें देखने और उनमें दखल देने को जी चाहता है किन्तु अपनी इस जिज्ञासा को रोकना चाहिए। नहीं तो उनकी नजर बचाकर देखा जाये और यदि दखल दिया जाये तो उनसे अबोध बनकर। किन्तु प्रायः प्रौढ़ लोग अबोधता का उतना अभिनय नहीं कर सकते, जिससे बच्चों के मन में अन्यथा कोई भाव न और उनकी क्रिया-कलाप में व्यवधान न पड़े, इसलिए यही अच्छा है कि उनकी क्रीड़ा चुपचाप नजर बचाकर ही देखकर सन्तोष कर लिया जाय।

इसके अतिरिक्त अब बच्चों के कुछ और मनोरंजनों की बात आती है जैसे—मेला देखना, झूला झूलना, सैर करना, बाग व मैदान में घूमना, बाजार देखना, चीजें इकट्ठी करना। बच्चे जब इन बातों की इच्छा प्रकट करें तो उन्हें जरूर वैसा करने दिया जाये। उन्हें मेला अपने साथ दिखाइये। अपनी देख-रेख में झूला झुलाइये, बागों में, मैदानों में घूमने और सैर करने का अवसर दीजिए, बाजार ले जाइये और उसे अच्छी चीजें और दुकानें दिखलाइए। जो चीजें वे इकट्ठी करें, चाहे बेकार ही क्यों न हों, कभी मत फेंकिए। इससे बच्चे को एक प्रसन्नता होगी, वह बहुत-सी बातों का परिचय पायेगा, नई चीजें पहचानेगा। नये व्यक्तियों का देखा व्यवहार सीखेगा और बाह्य वातावरण का अभ्यस्त होगा। यह सब बातें ऐसी हैं, जिससे उसमें विविध चेतनाओं का प्रस्फुटन हो उसकी लज्जा, भीरुता और संकोच के बन्धन टूटते हैं, नई बुद्धि के अंकुर फूटते हैं।

पढ़ने-लिखने में कुछ गति हो जाने से उन्हें बच्चों की अच्छी पुस्तकें पढ़ने को दीजिए। उनके साथ हँसिये, बोलिये, खेलिये और मधुर विनोद करिये। आशय यह है कि बच्चों को कभी भूलकर खेलने और मनोरंजन से वंचित न किया जाये। इस प्राकृतिक आवश्यकता से वंचित कर देने से मन ही मन मलीन हो जाते हैं। घर में उन्हें खेलने, शोर करने और धूमधाम मचाने से तब तक मत रोकिये जब तक कि कोई विशेष हर्ज न हो। बहुत-से अभिभावकों का कुछ ऐसा अस्वस्थ स्वभाव होता है कि उन्हें बच्चों का शोरगुल और चीख-पुकार भाती ही नहीं। बात-बात में उन्हें मना करते हुए उनकी हर क्रीड़ा रोकते रहते हैं।

बच्चे तरह-तरह के वेष बनाते रूप रखते और बहुरुपियापन करते, बूढ़ों को चिढ़ाते, उन्हें छेड़ते और परेशान करते हैं। बच्चों की इन सब बातों से अभिभावक चिढ़ते और नाराज होते हैं। यह स्वभाव अच्छा नहीं। बच्चों की यह चंचलताएँ और शरारतें उनका बहुत सुखद मनोरंजन है। वह यही बचपन है, जिसके लिए वे बच्चे कह जाते हैं और जिससे घर में एक हँसी-खुशी का वातावरण रहता है। बच्चों की बाल-क्रीड़ाओं से चिढ़ना ऊबना या परेशान नहीं होना चाहिए, बल्कि रस लेना चाहिए और प्रसन्न होना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो बच्चों के खेलों, मनोरंजनों और चंचलताओं को न समझते और न सहन करते, वे एक प्रकार से असफल अभिभावक होते हैं, उन्हें इस दशा में अपना सुधार करना चाहिए और इस बात को समझने का ठीक-ठीक प्रयास करना चाहिए कि बच्चों की कौन-सी क्रीड़ाएँ मनोरंजन हैं और कौन-सी शैतानियाँ हैं। बच्चे तो बच्चे हैं, उनसे बूढ़ों जैसी गम्भीरता और जिम्मेवारी की अपेक्षा न की जानी चाहिए और यदि ऐसा किया गया, तो वे बचपन से ही बूढ़े हो जायेंगे।

खेलने से बच्चों को मना मत कीजिए

खेल बाल्यजीवन की एक सहज और स्वाभाविक प्रक्रिया है। मनुष्य के बच्चों से लेकर पशु-पक्षियों तक के बच्चों में इस प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। पक्षियों के बच्चे एक-दूसरे को चोंच मारकर खेलते रहते हैं। कुत्ते के पिल्लों को लड़ाई का खेल खेलते और एक-दूसरे पर भौंकते हुए देखा जा सकता है। बिल्ली के बच्चों को गेंद मिल जाये तो वह उसको लुढ़काकर आनन्द लेने लगते हैं।

व्यक्ति बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक किसी न किसी प्रकार के खेल में रुचि रखता है। बच्चे, प्रौढ़ और वृद्ध सभी को खेल समान रूप से आनन्द प्रदान करते हैं, यह अवश्य है कि उसके खेलों का स्वरूप आयु के अनुसार बदलता रहता है। यदि बच्चों के खेलों का सूक्ष्म निरीक्षण किया जाए तो उनके द्वारा निश्छल रूप से अभिव्यक्त कल्पनाओं और मनोभावों को देखकर सामान्य जीवन के अनेक तथ्यों का पता लगाया जा सकता है। इस बात को मनोविज्ञानी फ्रायड ने भी माना है कि खेल के माध्यम से बच्चों की कुण्ठाएँ और संवेग उभरकर ऊपर आ जाते हैं। यदि माता-पिता को बच्चे के जीवन के विविध पहलुओं की जानकारी प्रारम्भ में ही मिल जाये तो वे उसकी बहुमुखी प्रतिभा के विकास हेतु प्रयत्नशील हो सकते हैं।

स्वतन्त्रता खेल की आत्मा है। यह एक स्वतन्त्र क्रिया है। एक ही क्रिया किसी व्यक्ति को काम और दूसरे के लिए खेल हो सकती है। खेल में मनुष्य थककर भी आनन्द और प्रसन्नता अनुभव करता है, जबकि काम की थकावट लाचारी उपस्थित कर देती है। एक दिन कुछ बच्चों को रंगीन पेंसिलें और ड्राइंग कॉपी देकर उसमें बने विविध चित्रों में रंग भरने के लिए कहा गया तो वे उसमें घण्टों उलझे रहे। उनका मन हो रहा था कि आज ही सारी कॉपी के चित्रों में रंग भर दिया जाये। दूसरे दिन उतना ही कार्य एक निश्चित समय में पूर्ण करने के लिए कहा गया तो वे बहुत जल्दी ही थक गये और पहले दिन की अपेक्षा आधा कार्य भी न कर सके। यह घटना स्पष्ट करती है कि जब बालक किसी कार्य को अपनी रुचि से करते हैं तो वह खेल और जब प्रतिबन्धों के भय से किया जाय तो वह काम बन जाता है। इसीलिए विचारक खेल को ही जीवन का पर्याय मानते हैं। यदि जीवन को खेल के तरीके से मानसिक तनावों को छोड़कर सहज रूप में जिया जाये तो स्वस्थ शरीर और स्वच्छ मस्तिष्क की प्राप्ति हो सकती है। ऐसी स्थिति में किये गये कार्य पूर्ण मनोयोग से सम्पन्न होते हैं और उनके आशाजनक परिणाम भी सामने आते हैं।

बच्चों में अनुकरण की प्रवृत्ति होती है, इसलिए उनके खेलों में आस-पास के परिवेश का प्रभाव लक्षित होता है। वह प्रत्येक कार्य अपने परिवार और समुदाय से सीखता है। समुदायों की विभिन्नता के कारण ही बच्चों के खेलों में भिन्नता होती है। ग्रामीण वातावरण में रहने वाले बच्चे सामान्यतः गुल्ली-डण्डा, कबड्डी, कौढ़ी, घरौंदा बनाने तथा लुकने-छिपने के खेल खेलते हैं। शहरी बच्चे प्रारम्भ से ही व्हालीबाल, फुटबाल, क्रिकेट, हॉकी तथा कैरम बोर्ड जैसे खेल खेलते हैं।

खेल में बच्चों को शारीरिक और मानसिक शक्तियों के उपयोग का अवसर मिलता है। उस समय बड़ा हास्यास्पद लगता है, जब बच्चे कभी किसान बनते हैं, कभी डाक्टर, कभी इन्जीनियर, कभी अध्यापक तो कभी पण्डित। बच्चों को इन अनुकरणात्मक खेलों में कभी रोक-टोक न करनी चाहिए, क्योंकि उनके भविष्य की तैयारी के संकेत इन खेलों में ही दिखाई पड़ते हैं। बच्चे स्वयं सोचने-विचारने की चेष्टा करते हैं।

कभी-कभी खेल के सम्बन्ध में बच्चों पर कोई नियन्त्रण नहीं होता। वे रात-दिन खेलते ही रहते हैं इससे उनके भविष्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि उनके माता-पिता खेल का समय निर्धारित कर दें तो उन्हें अन्य भी अनेक बातें सीखने का अवसर मिल सकता है।

परिवेश के साथ बालक की रुचि, मानसिक गठन और स्फूर्ति भी खेल के स्वरूप को निर्धारित करती हैं। छोटी बच्चियाँ गुड़ियों से खेलती हैं साथ ही उनके लिए खाना पकाने और कपड़े का भी अभिनय करती रहती हैं। कुछ बड़ी हो जाने पर गुड़िया का विवाह करने, बारात बुलाने और लड़की की विदा करने का अभिनय करती हैं। रस्सी कूदना, संझा बनाना और गिट्टे खेलना उन्हें प्रिय लगने लगता है।

तीन वर्ष की आयु में जो खेल बालकों को पसन्द थे वह पाँच वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते अप्रिय हो जाते हैं। कभी हम यह भी देखते हैं कि एक ही वातावरण में रहने वाले बच्चों को भिन्न-भिन्न खेल पसन्द होते हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि अभिभावकों और शिक्षकों को बालक की आवश्यकतानुसार खेलों में परिवर्तन करते रहना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

. www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खेल के माध्यम से एक ओर बच्चे नये-नये काम सीखते हैं, वहीं उन्हें अपनी कुप्रवृत्ति को परिष्कृत करने का सुअवसर भी मिलता है। किसी भी खेल की सफलता सामाजिक नियमों के पालन पर आधारित है। अनुशासन के अभाव में तो किसी खेल की कल्पना ही सामने नहीं आती। जब कोई बालक अपने साथियों के साथ खेलता है तो इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखता है कि कहीं उसके द्वारा किसी का अहित तो नहीं हो रहा है। यदि कोई बालक समूह के किसी साथी को गाली देता है या मार-पीट करता है तो समूह के सभी बालक उसकी भर्त्सना करते हैं और अपने खेल से बाहर निकाल देते हैं। एकदम तो वह बालक किसी दूसरे समूह में सम्मिलित हो नहीं पाता। अतः अपनी गलती को मानकर क्षमा-याचना करता है, साथ ही भविष्य में उस ढंग का अपराध न करने का आश्वासन देता है। इस प्रकार खेल में पराजय को खिलाड़ी की भावना से स्वीकार कर अच्छे ढंग से खेलने का प्रयास करता है। आगे चलकर यही सदाचार उसके स्वभाव का अंग बन जाता है। इस प्रकार खेलों द्वारा बच्चों के चरित्र का विकास होता है।

सहयोग तथा आत्मनिर्भरता की भावना का विकास समूहगत खेलों से ही होता है। कबड्डी, फुटबाल और व्हालीबाल जैसे खेलों से बालक का शारीरिक विकास ही नहीं होता वरन् अनेक गुणों में वृद्धि भी होती है। वह आवश्यकता पड़ने पर अपने व्यक्तित्व को समाज-हित के कार्यों में लगाने को तैयार रहता है। कितने ही अवसर ऐसे आते हैं, जब एक समूह के सभी बच्चे समान रूप से अपनी इच्छा की पूर्ति करना चाहते हैं पर समय और साधन की सीमितता धैर्य रखना सिखाती है।

बच्चे का आधा समय समवयस्क साथियों के साथ पढ़ने-लिखने या खेलने-कूदने में जाता है। वह उनके साथ निःसंकोच व्यवहार करता है और आवश्यकता पड़ने पर किसी कार्य का निर्णय लेने की स्थिति में भी रहता है। आगे चलकर निर्णय लेने की क्षमता का इतना अधिक विकास हो जाता है कि वह कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अपनी सूझ-बूझ का परिचय दे सकता है। दूसरे समूह के बच्चों के साथ प्रतियोगिता में भाग लेते समय परस्पर मिल-जुलकर कार्य करना पड़ता है, जिससे सहयोग और सहानुभूति की भावना का विकास होता है और आपस में सौहार्द्र और मधुर सम्बन्ध बने रहते हैं।

इस तरह यह स्पष्ट होता है कि खेल में बच्चे का शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सांवेगिक विकास होता है। समूह के साथ रहकर बच्चे नये-नये कार्य तो सीखते हैं साथ ही महत्वाकांक्षी बच्चों को अपनी नेतृत्व करने की शक्ति को बढ़ाने का भी अवसर मिलता है। बच्चों में आत्मनिर्भरता, अनुशासन, प्रेम और सहयोग जैसे गुण खेल के माध्यम से ही आते हैं। अतः अभिभावकों और शिक्षकों को इस ओर भी ध्यान देना चाहिए।

बच्चों के खेल-खिलौने—बच्चे के मानसिक और शारीरिक विकास के लिए खेल बहुत ही आवश्यक हैं। जो बच्चे खिलाड़ी प्रकृति के होते हैं, वे हमेशा प्रसन्नवदन तथा फुर्तीले होते हैं। आपने देखा होगा कि बच्चे के लिए सबसे बड़ी सजा है, उसे मुँह पर अँगुली रखवाकर एक कोने में खड़ा कर देना। इससे अधिक कड़ी कैद उसकी कल्पना के परे है। खेलने-कूदने में व्यस्त रहने वाले बच्चों की मानसिक स्थिति बहुत स्वस्थ होती है। उनमें स्फूर्ति और प्रसन्नता पाई जाती है, वे भरपेट भोजन करते हैं, पूरी नींद सोते हैं, कुछ करने, सीखने तथा जानने की भावना उन्हें व्यस्त रहने की प्रेरणा देती रहती है। इसके विपरीत जो बच्चा 'खेल-कूद' में भाग नहीं लेता है, उसकी तोड़-फोड़ की प्रवृत्ति जोर करने लगती है। वह दूसरों को सताकर उनका खेल बिगाड़कर अपनी विनाशात्मक वृत्ति को सन्तुष्ट करता है।

बालक के स्वभाव की तीन नैसर्गिक विशेषताएँ हैं—स्वातन्त्र्यप्रियता, गतिशीलता तथा आनन्द-स्फूर्ति। खेल के द्वारा इनसे भी नैसर्गिक मनोवृत्तियों को विकसित व सन्तुष्ट होने का अवसर मिलता है। खेल के द्वारा ही उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास होता है। उसके शारीरिक, बौद्धिक अथवा मानसिक विकास में खेलों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिशु के इस सर्वांगीण विकास में खेल की उपयोगिता निम्न प्रकार से है—

शारीरिक—खेलते समय बालक के सभी शारीरिक अंगों के क्रियान्वित होने से उनका भली-भाँति व्यायाम हो जाता है। अतः उसकी माँसपेशियों में पुष्टता एवं सुडौलता आती है। दौड़ने-भागने आदि से रक्त-संचालन बढ़ता है, श्वास-क्रिया बढ़ती है और इस प्रकार रक्त का शुद्धीकरण होता है। अभिप्राय यह है कि खेल द्वारा बालक का शरीर स्वस्थ एवं पुष्ट होता है।

बौद्धिक—शिशु मुख्यतः खेल द्वारा ही संसार से परिचय प्राप्त करता है। उसके मस्तिष्क की सभी शक्तियों का विकास होता है। उपयुक्त खिलौने की सहायता से ज्ञान-वृद्धि के साथ ही ज्ञानार्जन की रुचि में भी वृद्धि होती है। उसकी विचार एवं विवेकशीलता जाग्रत होने से अनुसन्धान व अन्वेषण करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। बाल्यकाल के उत्तरार्द्ध में रेडियो, मैकेनो व सचित्र पुस्तकें आदि सामग्री बच्चे में सृजनात्मक कौशल का विकास करते हैं।

रेलवे टिकट आदि वस्तुओं का संग्रह करके बालकों के संचय एवं सँभाल करने की क्षमता उत्पन्न होती है।

संवेगात्मक—खेल में बच्चे की कई आन्तरिक प्रवृत्तियों की सन्तुष्टि होती है। अन्य बालकों के साथ खेलने से तथा उसे अपनी अहमन्यता एवं परिस्थितियों की सीमितता होने का भान होने से, उसको दूसरों के मनोभावों का आदर तथा अपने संवेगों पर नियन्त्रण करने की शिक्षा स्वयं ही प्राप्त हो जाती है। फलतः उनमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्रोध, आवेश एवं चिड़चिड़ापन तथा लड़ने-झगड़ने व मारपीट करने की प्रवृत्ति का शमन होना आरम्भ हो जाता है।

सामाजिक व नैतिक—खेल बालक को सामाजिकता की शिक्षा देने का सर्वोत्तम साधन है। अन्य साथियों का साथ पाकर उसमें ऊँच-नीच का भेद हटाकर भ्रातृ-भाव का प्रादुर्भाव होता है। दूसरों में हिस्सा बाँटना, आपसी सहयोग, ईमानदारी तथा नियम पालन व आज्ञा-पालन आदि गुणों का विकास होता है। बालक सीख जाता है कि अपने 'अहं' को परहित के लिए किसी प्रकार भुला देना चाहिए। वह सहनशील एवं दूसरों के अधिकारों व वस्तुओं का आदर करने वाला बन जाता है।

स्वसंगठित खेलों द्वारा बालक की स्वार्थपरता का अवगुण, परोपकार के गुण में परिवर्तित होकर उसे सहानुभूतिपूर्ण बना देता है। उसकी नैतिक शिक्षा इसी काल में होती है। जब वह खेल में सत्यनिष्ठ, ईमानदार, आत्मसंयमी, साहसी, विनम्र, विजयी तथा सफल खिलाड़ी बनकर निकलता है।

महानता का बीजारोपण खेल में ही होता है। खेल, किया गया आपसी व्यवहार बच्चों के जीवन पर अमिट छाप डालता है।

राम का अपने तीनों भाइयों से प्रेम का अटूट नाता खेल के मैदान में ही जुड़ा था। राम के वन-गमन के बाद भरत ने बिलखकर उन गुणों को याद किया था।

''हारे खेल जितावहिं मोही।।''

क्रियाशीलता का विकास—खेलने की वृत्ति ही बच्चे को कुछ करने, जानने और अनुभव करने की प्रेरणा देती है। दो महीने का बच्चा अपने पाँवों के अँगूठे पकड़कर मुँह में ठूँस लेता है। थूक के बुलबुले उड़ाता हुआ वह अपनी ही आवाज से प्रसन्न होता है, कुछ देर बाद उसकी दृष्टि झूले में लटकती हुई चिड़िया, गुब्बारे या भँभीरी पर जाकर टिक जाती है और उनको नाचते-घूमते देखकर वह भी किलकारियाँ भरने लगता है। दो-तीन मास बाद उसकी पकड़ मजबूत हो जाती है, वह आस-पास की चीजों की ओर हाथ बढ़ाता है। बाप की गोद में आकर उनकी नाक से चश्मा, जेब में से फाउन्टेनपेन रूमाल, माँ की गोद में से गले की चैन, बुन्दे या चूड़ियाँ जो वस्तु भी उसे आकर्षित करती है, वह हथियाने की कोशिश करता है। न केवल हाथ से ही, वरन् मुँह में लेकर भी वह उनका स्पर्श अनुभव करता है। धीरे-धीरे उसे कोमल और कठोर, हल्के और भारी आदि का भान होने लगता है। परिणाम जाने बिना कभी-कभी वह कोई कार्य ऐसा कर बैठता है कि उसको चोट लग जाती है। यथा—ऊपर से अचानक नीचे कूद पड़ना, कठोर, तेज या गर्म वस्तु पर जोर से हाथ पटक देना अथवा झुँझलाकर अपने ही बाल खींच लेना या झुँझलाकर अपने ही सिर में मार लेना। खेल में या अपनी हरकतों में भूलकर देने पर बच्चा चिल्लाकर रो पड़ता है। धीरे-धीरे अभ्यास से वह अपनी भूल समझने लगता है।

सालभर के बच्चे की श्रवण शक्ति भी बढ़ जाती है। वह आपके भाव-भंगी से भी प्रभावित होता है। जानवरों की बोलियाँ, संगीत, ताल, लय आदि से उसका मनोरंजन होता है। दो-तीन साल के बच्चे को ऐसे खेल जिनमें गीत गाये जायें, म्यूजीकल ड्रिल करवाई जाये, बहुत भाते हैं, उन्हें ऐसी कहानियाँ जिनमें अभिनय तथा गीत विचित्र-विचित्र प्रकार की ध्वनि की जाये, बहुत पसन्द आती हैं। ढोलक या रेडियो सुनकर वे ताली बजा-बजाकर नाचना शुरू कर देते हैं।

खेल से अनुकरण और पुनरावृत्ति—बच्चों के खेल में अनुकरण वृत्ति बहुत होती है। बच्चा अपने पिताजी को साइकिल पर चढ़ते देखता है, तो वह एक डण्डे को साइकिल या घोड़ा मानकर उस पर चढ़कर मजे में खेलता है। इसी प्रकार बच्ची अपनी माताजी को छोटे बहिन-भाइयों को सँभालते देखती है, तो वह भी अपनी गुड़िया को सीने से लगाकर, अपने सिर पर एक फटा-सा दुपट्टा लपेटकर, गृहिणी का अभिनय करती है। अगर कभी छोटे बच्चों को गुड्डे-गुड़िया खेलते देखें तो आपको पता चलेगा कि वह अपने बड़ों के कार्यों, व्यवहारों तथा सामाजिक रीति-रिवाजों व त्योहारों की हू-बहू नकल करने की चेष्टा करते हैं। बच्चों को सँभालना, झाड़ू देना, भोजन पकाना आदि से लेकर पिताजी की तरह दफ्तर का काम करना, प्रीति-भोज आदि का आयोजन ये सभी काम करने में उन्हें आनन्द आता है। दशहरा, दीपावली तथा मुहर्रम के बाद हर गाँव और शहरों के बच्चों की एक महीने तक इन त्योहारों की नकल करते देखा जाता है। रावण बनता है, राम, लक्ष्मण बनते हैं, धनुष-बाण बनाकर उसे मारने और लंका जलाने का अभिनय करते हैं। मुहर्रम की तरह ढोल लटकाकर पीटने की नकल करेंगे। बड़ों की नकल करना माना उनके लिए एक मनोरंजक खेल है।

अपने तीसरे वर्ष में पहुँचते-पहुँचते बच्चा रंगीन तस्वीरों की ओर आकृष्ट होता है। वह उन्हें गौर से देखता है, उत्सुकतापूर्ण उनकी कहानी सुनता है। कुछ वर्णन उसे याद भी रहता है और जब वह दोबारा उन तस्वीरों को देखता है, तो अपने छोटे-छोटे वाक्यों में अपनी जानकारी प्रकट करता है। इस उम्र में इसीलिए चटख रंग की पुस्तकें बच्चों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होती हैं। तस्वीरों के द्वारा आकृतियों की सदृश्यता तथा भिन्नता समझने में उन्हें आसानी होती है।

बच्चों के खेलों में पुनरावृत्ति अधिक होती है। सभी देशों के बच्चे आँख-मिचौनी, पकड़ने और दौड़ने के खेल आदि खेलते हैं। ये खेल बाल-समाज वर्षों से खेलता आ रहा है और नित्य ही खेलता है। उनकी खेल की भावना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतनी सजीव है, वे अपने खेल में ऐसे लीन होकर खेलते हैं कि उन्हें उसमें कुछ पुरानापन नहीं दीखता। इसी प्रकार कहानी सुनने या गीत सुनने या गीत गाने में भी उन्हें वही पुरानी कहानी या गीत सुनकर, गाकर प्रसन्नता होती है।

खेलों के प्रकार—बालकों के खेलों को विभिन्न वर्गों में बाँटा जा सकता है—

१. **स्वतन्त्र एवं इच्छानुरूप**—यह नियमों व प्रतिबन्धों से मुक्त होता है। बालक अधिकतर अकेले ही स्वतन्त्र रूप से खेलता है, खिलौनों की छानबीन करने के लिए उन्हें तोड़ना-फोड़ना, फेंकना, उठाना आदि खेल विशेष प्रिय होते हैं।

२. **कल्पनात्मक**—तीन वर्ष के बालक के खेल कुछ जटिल रूप धारण कर लेते हैं। वह अपने खेलों में जीवन के रुचिकर अध्यायों के नित्य नवीनतम प्रयोग करता है, जिनकी विधियाँ भी नूतन होती हैं। घर के व्यक्तियों के विविध कार्य-कलाप जैसे दुकान सजाकर क्रय-विक्रय आदि की नकल करना, यातायात के साधनों के खेल इत्यादि इसी वर्ग में आते हैं।

३. **रचनात्मक**—क्रियाशीलता बच्चों का स्वाभाविक गुण है। बच्चे अपने बड़ों की नकल करते हैं। इससे उन्हें बहुत आनन्द मिलता है। मिट्टी, रेत, लकड़ी व ईंटों के विविध सामान व घर इत्यादि भी बनाना इस वर्ग के खेल हैं। पाँच वर्ष की अवस्था के पश्चात् ये खेल एक विशेष उद्देश्य लेकर खेले जाते हैं। क्रमशः उद्देश्य अधिक उच्च तथा खेलों का रूप अधिक जटिल होता जाता है।

४. **संग्रहात्मक**—प्रारम्भ में तीन-चार वर्ष तक साधारण रूप से सभी छोटी-बड़ी वस्तुओं का संग्रह किया जाता है जैसे काँच के टुकड़े, बीज, गोलियाँ, रंगीन चाक, पेंसिल आदि इसके पश्चात् बुद्धि के विकास के साथ संग्रह में रुचि तथा विवेक से काम लेना प्रारम्भ हो जाता है। चित्र-संग्रह, सिक्के व टिकट-संग्रह इसी प्रवृत्ति का विकसित रूप हैं।

५. **मनोरंजनात्मक**—इस प्रकार के खेल भी अवस्था-अनुरूप कई रूप धारण करते हैं। प्रारम्भ में चित्र देखना, फिर कहानी सुनना व धीरे-धीरे कहानी पढ़ना आदि।

६. **संगठित**—इस प्रकार के खेल किशोरावस्था में खेले जाते हैं।

अवस्थानुसार खेलों के रूपों में परिवर्तन—बालक के सर्वांगीण विकास के साथ-साथ ही उसकी रुचि एवं आवश्यकताओं में भिन्नता आ जाती है। अतः उसके खेलों का रूप भी क्रमशः परिवर्तित होता जाता है। जन्म के पश्चात् शिशु की सभी माँसपेशियाँ शिथिल रहती हैं, वह केवल चूसने व बाहें हिलाने में ही सशक्त होता है। शनैः-शनैः धड़ व टाँगों-बाहों की माँसपेशियों में सबलता आने के साथ उसकी गतिशीलता बढ़ती है। अपने हाथ को या अपने हाथों से, पैर के अँगूठे को पकड़कर मुँह में ले जाकर चूसता है। यही इस आयु का विशेष आनन्ददायक खेल है।

कुछ समय के बाद प्रत्येक आकर्षक वस्तु को मुट्ठी में पकड़कर खेल का सुख प्राप्त करना, जैसे रंगीन गुड़िया या झुनझुना। उसके पश्चात् माँसपेशियों में और बल आने पर बच्चा घुटनों के बल चलने लगता है। इस समय घर की जो वस्तु भी हाथ में पकड़ जाती है, उसे उठाना, गिराना, पटक देना, फेंकना यही विशेष रुचिकर खेल हो जाते हैं। टाँगों व बाहों की माँसपेशियों में शक्ति की वृद्धि के साथ ही साथ वस्तुओं को अपनी ओर खींचना व धकेलना प्रारम्भ हो जाता है। उसके बाद सीढ़ियाँ चढ़ना, उतरना, भागना-दौड़ना आदि खेल प्रारम्भ हो जाते हैं। इसी प्रकार बुद्धि एवं ज्ञानेन्द्रियों के विकास के अनुरूप भी शिशु के खेलों के रूप में जटिलता आती है। दो-तीन मास के शिशु के लिए, जब से उसकी दृष्टि-शक्ति एवं स्पर्श-शक्ति जाग्रत हो जाती है, चटकीले रंग के या ध्वन्यात्मक खिलौने-झुनझुने आदि विशेष आनन्दप्रद होते हैं। इनके प्रयोग से छह मास तक उसकी अँगुलियाँ विभिन्न वस्तुओं के स्पर्श-ज्ञान में अभ्यस्त हो जाती हैं। इसके बाद उसके खिलौनों में अन्य आकर्षक सामग्री जिससे शिशु को चोट की सम्भावना न हो, जोड़ी जा सकती है। इस प्रयोजन के लिए साधारण गृह पर तैयार किये खिलौने बाजार से खरीदे खिलौनों से उत्तम होते हैं, जैसे पाउडर के खाली डिब्बे, बड़े-बड़े रंगीन बटनों की माला, बड़े रंगीन मोतियों की माला आदि।

एक वर्ष की अवस्था तक लकड़ी के रंगीन गुटके सभी बच्चे पसन्द करने लगते हैं। रंगीन गुटके बच्चे को विशेष प्रिय होते हैं परन्तु उनके रंग गीले होकर छूटने वाले न होने चाहिए। प्रारम्भ में इन टुकड़ों को केवल ऊपर-नीचे रखना, उठाना ही बच्चों का खेल होता है। बौद्धिक विकास के साथ इन लकड़ी की छोटी ईंटों से घर, रेलगाड़ी आदि बनाने का क्रम प्रारम्भ हो जाता है। इससे कल्पना-शक्ति के साथ ही साथ विवेकशीलता का भी विकास होता है।

एक वर्ष के बालक के लिए प्लास्टिक, रबर व बढ़िया सेल्यूलायड के खिलौने भी उपयुक्त होते हैं। रोंये लगे हुए खिलौने इस काल में अनुपयुक्त होते हैं क्योंकि सम्भव है बच्चा उसे अपने मुँह में डाल लें, जिससे उसका रूँआ मुँह में जा सकता है।

दो-तीन वर्ष की आयु में शिशु को रेत व पानी से खेलने में विशेष आनन्द आने लगता है। किसी गिलास या छोटी बाल्टी में रेत या पानी को बार-बार भरना व खाली करना उसे विशेष प्रिय होता है। यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खेल बच्चे बड़ी तन्मयता के साथ करते हैं। लकड़ी की ईंटों को, एक के ऊपर एक रखना, पहिए वाली लकड़ी की गाड़ी को चलाना (जिसमें ध्वनि भी पैदा हो) शिशु के लिए विशेष मनोरंजन व लाभ देने वाले खेल हैं।

तीन-चार वर्ष के लड़के-लड़कियों के खेलों में विभिन्नता आ जाती है। लड़के भाग-दौड़ वाले खेल अधिक पसन्द करते हैं जैसे—गेंद बल्ला, मिट्टी का घरौंदा बनाना, ईंटों के मकान बनाना, रेत में रेखाओं से चित्र बनाना आदि। लड़कियाँ गुड़ियों के घर का खेल अधिक पसन्द करती हैं।

पाँच वर्ष की आयु से सामूहिक खेल, जिनमें नियम-पालन करना होता है रुचिकर लगते हैं। स्कूल प्रवेश के पश्चात् चित्रमय कहानी व बाल कविता युक्त पुस्तकें पढ़ना, वस्तु संग्रह करना, रेडियो सुनना, सिनेमा देखना व संगीत में रुचि लेना तथा रचनात्मक खेलों में विशेष आनन्द प्राप्त होता है।

खेल के साथी—दो वर्ष तक तो बच्चा अकेले खेलकर खुश होता है, अपनी धुन में रहता है, स्वयं मिट्टी का ढेर लगायेगा, बिगाड़ेगा, गायेगा और गुनगुनायेगा। परन्तु तीन वर्ष की आयु से बच्चे अपने खेल में किसी साथी को शरीक करके खुश होते हैं। इस आयु में बच्चे में सहकारिता का अभाव होता है, वह तो प्रत्येक खेल में अपनी धाँधली करता है, क्योंकि जिस खेल में उसकी प्रधानता न हो, उसे वह रुचिकर नहीं होता। इसीलिए छोटे बच्चों को उनका खेल जमाने के लिए किसी बड़े व्यक्ति का सहयोग आवश्यक है। परन्तु बड़ों का सहयोग ऐसा होना चाहिए कि वह बच्चों की रुचि तथा रफ्तार को समझकर दिया जाय। जिस बात से बच्चों का मनोरंजन हो आप भी उसमें सहयोग दें, उनकी ही रफ्तार से खेलें। मान लीजिए कि बच्चा आपको पकड़ रहा है, अगर आप इतना तेज भागते हैं कि उसके लिए पकड़ना असम्भव है तो वह आपके संग कभी नहीं खेलेगा। बच्चों के संग बच्चा बनकर खेलना पड़ता है। देखते हुए भी न देखना, पकड़ में आने की सम्भावना होते हुए भी न पकड़ना, अचानक चौंककर पकड़ में आ जाना या दौड़ में पिछड़ जाना अथवा धम्म से गिर जाना, बड़ों के इसी प्रकार करने पर बच्चों को उनके साथ खेलने में आनन्द आता है।

बड़ों की दृष्टि में बच्चों का खेल एक खिलवाड़ है परन्तु वास्तव में खेल और खिलौनों के द्वारा बच्चों की स्पर्श-शक्ति, रंग-आकार परखने की योग्यता, स्मरणशक्ति तथा रचना-प्रवृत्ति का विकास होता है। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि बचपन के ये खेल ही उसका कार्य हैं और खिलौने उस कार्य के साधन हैं । आपकी बच्ची जब एक गृहिणी का अभिनय करती है या सुई-धागा लेकर गुड़ियों के कपड़े सींती है या आपका बच्चा एक कील लेकर लकड़ी के घोड़े में ठोंकता है तो सम्भव है कि बच्चों का यही खेल आने वाली युग की निपुण व्यवस्थाप्रिय गृहिणी या एक रचनात्मक इन्जीनियर के कार्यों का आरम्भ हो।

खेलों से बच्चों के सुझाव का पता लगता है—प्रायः देखने में आता है कि डाक्टर के बच्चे डाक्टर या नर्स का, अध्यापक तथा व्याख्यानदाता के बच्चे शिक्षक और उपदेशक का, फौजी अफसर के बच्चे अपने दल के मुखिया का अभिनय करते हैं। असल में वे खेल-खेल में अपनी छिपी हुई प्रवृत्तियाँ तथा आकांक्षाओं को प्रकट करने की चेष्टा करते हैं। कहते हैं नैपोलियन बोनापार्ट जब बालक था, साथियों के अभाव में खाली कुर्सियों को एक लाइन में लगाकर स्वयं एक ऊँचे स्टूल पर खड़ा होकर इस प्रकार से व्याख्यान देता था, मानो जनरल अपने सैनिकों को युद्ध-क्षेत्र पर जाने से पहले प्रेरणा दे रहा हो। उसके बाद अपने स्टूल पर बैठकर वह इस प्रकार उसकी सवारी करता था मानो घोड़े पर चढ़ा हुआ सेना के आगे-आगे भागा जा रहा हो। एक बेंत से स्टूल को पीटता हुआ 'बढ़े आओ, चले आओ, हमला कर दो, जीत लिया, मार दिया, फतह हमारी है' आदि नारे लगाता हुआ वह उत्तेजित हो जाता था। आगे चलकर यही व्यक्ति सारे योरोप का विजेता बना था, युद्ध इसका सर्वप्रिय खेल था।

इसी प्रकार लेडी नाइटिंगेल को नर्स बनने का बचपन से ही शौक था और वह अपने कुत्ते तथा गुड्डे-गुड़ियों को मरीज मानकर नर्स का अभिनय किया करती थी। अपनी बहिन द्वारा खेल-खेल में फेंकी गई गुड़िया को उठाकर बड़े प्रेम से उसके पट्टी बाँधती थी, सेवा-सुश्रूषा करती थी, दुलारती थी और पुचकारती थी। कहते हैं कि भक्त मीराबाई बचपन में ही कृष्ण की भक्ति के गीत गाती थी और भक्ति-अभिनय के खेल खेला करती थी। बचपन के इन संस्कारों और खेलों में बच्चों के भविष्य की झाँकी दीखती है। चतुर माता-पिता को चाहिए कि अपने बच्चे की रुचि का अध्ययन करके उन्हें इस प्रकार के खिलौने ला दें, जिनसे उनकी गति, वृत्ति तथा शक्ति का ठीक-ठीक विकास हो सके। बच्चों के खेल को समय की बरबादी समझना भूल है उल्टा इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि वे खेल-खेल में ही सब कुछ सीख जायें। बच्चे के जीवन विकास के लिए खेल एक आवश्यक क्रिया है, सफलतापूर्वक किसी काम को करने की योग्यता प्राप्त करने का आरम्भिक पाठ है। खिलौने इस पाठ को पढ़ने के लिए एक साधन हैं। बच्चे के खेल की सुविधा जुटाने तथा तदनुकूल वातावरण पैदा करने के लिए माता-पिता को प्रयत्नशील होना चाहिए।

बच्चे आनन्दी हैं, वे दिन भर कुछ न कुछ करते ही रहते हैं, उनकी शक्ति का स्रोत भरपूर है। बड़ों के सदृश उन्हें आलस नहीं घेरता, वे अपने में मस्त प्रकृति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

. www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का संगीत सुनते हुए, खेल में भूले रहते हैं। जब तक उन पर खेल का आकर्षण छाया रहता है, वे थकान अनुभव नहीं करते। जहाँ आपने अपने बच्चे का यह आकर्षण तोड़ने की चेष्टा की, वह बिगड़ जाता है, रोता है, चिड़चिड़ा हो जाता है और अन्त में मनोरंजन के अभाव में वह अस्वस्थ तथा सुस्त हो जाता है।

खेल में माता-पिता का सहयोग—आप जानवरों के बच्चों को देखें, बिल्ली, कुत्ता, शेर, हिरण आदि अपने बच्चे के साथ खेलकर, कलाबाजियाँ करके, उछल-कूद मचाकर उन्हें शिकार के सभी दाँव-पेंच सिखा देते हैं। परन्तु बच्चे की माँ बच्चे के साथ आँख-मिचौनी खेलने का चाव नहीं रखती, न उसके पिता ही पतंग उड़ाने या गेंद-बल्ला खेलने में उसका साथ देते हैं। इसके विपरीत अगर बच्चे खेल में लगे हुए हों और उत्तेजित होकर हल्ला मचा रहे हों तो माता-पिता उन्हें डाँट-डपटकर पढ़ने बिठा देते हैं। उन्हें बच्चों का खिलवाड़ समय की बरबादी और व्यर्थ-सा दीखता है। खिलौनों में पैसा खर्चना वे पसन्द नहीं करते और अगर खर्चते भी हैं, तो बच्चे की आयु, योग्यता तथा पसन्द की उपेक्षा कर देते हैं।

रचनात्मक प्रवृत्ति का विकास—चढ़ने-उतरने में अगर बच्चा कभी गिर जाये तो उसे घबड़ाकर न उठायें। इससे बच्चे का आत्मविश्वास चला जाता है। लुढ़क-पुढ़क कर ही बच्चा ठीक से चलना सीखता है। आरम्भ में डगमग कदम रखते हुए ही वह अभ्यास से जमाकर कदम धरना सीखता है। सभी बच्चों को रेत, मिट्टी तथा पानी से खेलना आता है। माताएँ उनके इस खेल से बड़ी घबड़ाती हैं क्योंकि वह अपने कपड़े खराब कर लेते हैं। ऐसे समय में आप उन्हें पुराने कपड़े पहना दें। छोटी-छोटी डोलचियों में मिट्टी या रेत भरने तथा पानी से क्यारी सींचने में बच्चों को बड़ा आनन्द आता है। रेत के पहाड़ और गुफा तथा मिट्टी के खिलौने बनाकर बच्चे अपनी निर्माण भावना को सन्तुष्ट करते हैं। बच्चा जैसे-जैसे बड़ा हो, उसकी रचनात्मक प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जाये। लकड़ी के गुटके, रीलें, छोटे-बड़े आकार के डण्डे, बड़े-बड़े मोती, सुई-डोरा, रंग-बिरंगे, कागज, कैंची, गोंद, कील-हथौड़ी, डोरी आदि वस्तुओं से बच्चे अपनी समझ तथा आयु के अनुसार कई चीजें बना लेते हैं। माँ-बाप को चाहिए कि बच्चों के इस प्रकार के खेलों में सहयोग देकर उन्हें बढ़ावा दें। इन वस्तुओं से उन्हें उपयोगी वस्तुएँ बनाना सिखायें। उन्हें भिन्न-भिन्न आकारों और रंगों से परिचित करायें, रंगदार गोलियों तथा मोतियों को पिरोकर गिनती तथा जोड़-घटाना सिखावें। इसी प्रकार रंगदार पेंसिल या चाक देकर श्यामपट पर भिन्न-भिन्न आकार बनाने में बड़ा आनन्द आता है। तीन वर्ष के बच्चे की कल्पना-शक्ति का तीव्रता के साथ विकास होने लगता है। वह रंगदार चाक से अपनी कल्पना को साकार रूप देने की चेष्टा करता है। टेढ़ी-सीधी लकीरें खींचकर, टेढ़े-टेढ़े आकारों में चमकते रंग भरकर वह कहता है 'यह गुड़िया है, यह उसका घर के आगे बगीचा है और पीछे आसमान है, यह आसमान में सूरज है, बगीचे में माँ खड़ी है, इस प्रकार भिन्न-भिन्न रंगों और टेढ़ी-मेढ़ी आकृतियों में वह अपनी कल्पना को सजीव देखता है। दूसरी बात इस प्रकार की चित्रकारी द्वारा बच्चे की आँख और हाथ की क्रियाओं में सामंजस्य पैदा होता है। बच्चों की चित्रकारी तथा कहानियों से मनोवैज्ञानिक उनके मानसिक विकास की थाह पा लेते हैं।

बच्चे चित्र बनाते हैं उन्हें फिर मिटाते हैं या पेंसिल से रद्द करके नया चित्र बनाते हैं। मिट्टी के खिलौने या रेत के घरौंदे बनाकर उन्हें तोड़-फोड़कर फिर नये सिरे से बनाना प्रारम्भ करते हैं। इससे उन्हें विशेष उन्नति करने का चाव होता है। दूसरी बात उनकी तोड़-फोड़ की प्रवृत्ति की सन्तुष्टि होती है और बाद में वे अन्य वस्तुओं को नहीं तोड़ते। इसलिए इस आयु में उन्हें प्लास्टीसीन, मिट्टी, कागज, पेंसिल, रबड़ आदि के सामान ही दिये जायें ताकि वे चीजें बनायें और पसन्द न आने पर मिटाकर तोड़-फोड़कर फिर नये सिरे से बना सकें।

गुड्डे-गुड़ियों का खेल—तीन-चार वर्ष की आयु से बच्चों को गुड्डे-गुड़िया खेलना, उनकी गृहस्थी जमानी, भोजन का पकाना, झाड़ू देना आदि बहुत भाता है। न केवल लड़कियों के लिए ही किन्तु लड़कों के लिए भी गुड्डे-गुड़ियों का खेल उपयोगी है। अगर अपनी माँ को आदर्श मानकर गृहिणी का अभिनय करने में बच्ची में मातृत्व का स्वस्थ विकास होता है, तो कोई कारण नहीं बच्चा भी हँसी-खेल में स्वस्थ पितृत्व का विकास नहीं कर पायेगा। उस खेल को खेलते समय बच्चों को बड़ों के सदृश व्यवहार करके एक विशेष सन्तुष्टि होती है। माँ जिस प्रकार बच्ची को डाँटती है, पिता जिस प्रकार बच्चे को धमकाते हैं या उस पर हुक्म चलाते हैं, उसी प्रकार बच्चे अपने गुड्डे-गुड़ियों पर रुआब गाँठने का अभिनय करते हैं। गुड़ियों के कपड़े सीने उनका घर सजाने में बच्चे बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। घर में फटे-पुराने कपड़े, कतरन, पुराने डिब्बे, दियासलाई की डिब्बियाँ, छोटी-सी पिटारी आदि चीजों से बच्चों का खेल जम जाता है।

अभिनयात्मक खेल—पाँच-छह वर्ष की आयु में बच्चों को बड़ों की नकल करने तथा मिलकर गिरोह में खेलने का बड़ा चाव होता है। खेल की सामग्री से अधिक महत्त्व वह खेल के साथी को देने लगते हैं। अगर आठ-दस लड़के मिल गये हैं और उन्हें हाकी खेलने की धुन सवार हुई है तो डण्डों को हॉकी, स्टिक तथा रबड़ की पुरानी गेंद को हॉकी-बाल समझकर वह अपना खेल मजे से जमा लेंगे। इसी प्रकार उनकी अभिनयवृत्ति भी कल्पना का सहारा लेकर असम्भव को सम्भव बना लेती है। फैन्सी ड्रेस तथा चेहरे लगाकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पशु-पक्षी या हनुमान आदि का अभिनय करने में उन्हें विशेष आनन्द आता है। माता-पिता की पुरानी वस्तुएँ तथा फटी ओढ़नी, हैट, जूते, छड़ी, छाता, चश्मा आदि से वे अपने नाटक के पात्रों की वेष-भूषा सँवार लेंगे, एक तख्त पर पुरानी दरी बिछाकर, सामने एक धोती का पर्दा लगाकर वह रंगमंच तैयार कर लेंगे और अभिनय शुरू हो जायेगा। अगर उनके खेल के कहीं आप भी दर्शक हुए, तब तो अभिनय करने में उन्हें ऐसी प्रेरणा मिलेगी कि बस पूछिए मत।

खिलौने बनाना सिखाएँ—एक मनोवैज्ञानिक का सुझाव है कि बच्चों को कल-पुर्जे वाली मोटरगाड़ी आदि देने से यह अधिक अच्छा होगा कि उन्हें कुछ ऐसी वस्तुएँ दी जायें, जिनसे वे स्वयं खिलौनों का निर्माण कर सकें। दो-चार पहिए, एक लकड़ी का डिब्बा, कुछ कीलें तथा रंग देकर उन्हें खुद गाड़ी बनाना सिखायें, चिकनी मिट्टी के सरल खिलौने बनाकर, उन्हें खुद रँगना सिखायें। फटे हुए चिथड़ों से गुड़िया बनाना, कतरन में से टुकड़े छाँटकर उनके कपड़े सीना मोती और गोटा लगाकर गुड़िया को सजाना आदि लड़कियों को बड़े पसन्द हैं। पुट्ठे के डिब्बों पर कागज मढ़कर गोंद और सरेस से चिपकाकर गुड़िया का मकान बनाना, तस्वीरों को काटकर एलबम बनाना, रंगदार कागज के फूल बनाना, टूटे हुए खिलौनों को जोड़ना आदि भी बच्चों को सिखाया जाय। अड़ौस-पड़ौस के बच्चों के स्वनिर्मित खिलौनों की प्रतियोगिता करने से बच्चे शीघ्र ही इस विषय में उन्नति कर जाते हैं। इससे दो लाभ होंगे— पैसों की बचत तथा बच्चों की निर्माण-शक्ति की उन्नति। अपने बनाए हुए खिलौनों को मित्रों के जन्म-दिवस पर उपहार देने में भी उन्हें विशेष गौरव होगा। वे अपने खिलौनों के टूटे हिस्से से नया खिलौना बनाने की कोशिश करेंगे।

खेल के साथी बनकर बच्चों को समझिए—यह तो तभी हो सकता है, जब माता-पिता अपने बच्चों के खेल में भाग लें, उनकी खिलौनों की दुनिया में दिलचस्पी दिखायें। इन्हीं खिलौनों द्वारा उनकी चीजों की सँभाल, सहयोग के साथ काम करना, वस्तुओं का ठीक उपयोग, नियमों का पालन तथा गृहव्यवस्था सिखाई जा सकती है, उनकी शारीरिक और मानसिक उन्नति की जा सकती है, साथ ही उनकी कल्पना, रुचि और निर्माण-शक्ति भी विकसित की जा सकती है। इसी आयु में बच्चे का रुझान तथा शारीरिक और मानसिक शक्तियों की सामर्थ्य का भी सही-सही तभी पता चल सकता है, जबकि आप भी उसके खेल के साथी बनें। अगर आप बच्चे की तोड़-फोड़ प्रवृत्ति को काबू में करना चाहते हैं, उसके ऊधम मचाने में लगी हुई शक्ति को रचनात्मक कार्य की ओर मोड़ना चाहते हैं तो उसके मन में मनोरंजन, खेल-कूद के प्रति चाव पैदा करें। अगर आपने आरम्भ में ही अपने बच्चे की रुचि और झुकाव का अध्ययन करके तदनुरूप उसके लिए खेल-खिलौने जुटाए हैं तो आगे जाकर आपको उसकी छिपी हुई प्रवृत्तियों तथा संस्कारों को सही रास्ते की ओर मोड़ने में बहुत सुविधा होगी और साथ ही आप उसकी योग्यता के सच्चे पारखी होंगे। बड़ा होकर बच्चा चाहे स्वयं को समझने में गलती कर जाय, पर आपके लिए वह हमेशा एक सुलझी हुई पहेली रहेगा। अपने बचपन के खेल के साथी माता-पिता में बड़ा होकर भी वह अपने सच्चे हितैषी और मित्र का रूप ही देखेगा और जिस प्रकार उनके सुझावों से अपना बचपन का खेल अधिक मनोरंजक तथा सफल बनाता रहा, उसी प्रकार उनके सांसारिक अनुभव का लाभ उठाकर अपने जीवन खेल को सफलतापूर्वक खेलने में वह माता-पिता का सहयोग प्राप्त करने में न भूलेगा। ऐसे सहयोगी माता-पिता को अपने खिलाड़ी बच्चों से यह शिकायत नहीं होगी कि बड़े होकर बच्चे हमारी बात नहीं सुनते, उपेक्षा करते हैं, भूलें करके कुल का नाम डुबो रहे हैं या अपनी गलतियों से गृहस्थ जीवन को विफल बना रहे हैं।

सचित्र पुस्तकें—एक वर्ष से अधिक आयु के बच्चों को चित्र देखने का बहुत चाव होता है। कई बार, जब हम समाचार-पत्र या पत्रिका पढ़ रहे हों, बच्चे हमारे पास आ खड़े होते हैं और कहते हैं—"हम चित्र देखेंगे" किन्तु हम उन्हें धमकाकर दूर हटा देते हैं। बाजार में आजकल बच्चों के लिए बहुत प्रकार की सचित्र पुस्तकें उपलब्ध हैं। विभिन्न आयु के बच्चों को जानवरों के चित्र देखने का चाव होता है, किसी में मोटरों, रेलगाड़ियों, हवाईजहाजों आदि को और किसी में वे बच्चों को कई प्रकार के काम करते देखकर खुश होते हैं। इन सब प्रकार के चित्रों की पुस्तकें बाजार में प्राप्य हैं। ऐसी भी बहुत-सी पुस्तकें मिलती हैं, जिनमें कोई कहानी चित्रों में दी हुई होती है। बच्चे मित्रों को देखकर पूरी कहानी समझने का प्रयत्न करते हैं और कहानी समझकर बड़े प्रसन्न होते हैं। इन पुस्तकों से बच्चों की बुद्धि तीव्र होती है। जिन बच्चों को चित्रकारी करने का शौक हो उनके लिए चित्रकारी की बहुत-सी पुस्तकें मिलती हैं। लड़कियों के लिए कसीदाकारी की भी बहुत-सी पुस्तकें मिल सकती हैं।

खिलौनों के साथ-साथ एक बात और है जिसका हमें सदा विशेष ध्यान रखना चाहिए। वह यह कि बच्चे को खेल खेलने में पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। आप यदि उनके किसी खेल को पसन्द न भी करते हों तो भी उन्हें उस खेल को खेलने से मना न करें। बच्चा जिस खेल को खेलना चाहता है, वह उसे ही खेलकर आनन्दित हो सकता है। खेलों के मामले में हमें अपनी पसन्द कभी उन पर नहीं लादनी चाहिए।

खिलौने ऐसे होने चाहिए जिनसे बच्चा कुछ न कुछ सीख सके। साथ ही इस बात का ध्यान रखने की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बड़ी आवश्यकता है कि खिलौने बच्चों की रुचि के अनुकूल हों। प्रगतिशील देशों में प्रत्येक नगर में बच्चों के लिए खिलौनों की अलग दुकानें होती हैं। अब हमारे देश के बड़े-बड़े नगरों में भी इसी प्रकार की दुकानें खुल गई हैं। यदि दुकानदार समझदार हों तो वे आपको बच्चों के लिए उपयुक्त खिलौनों का चुनाव करने में बड़ी सहायता दे सकते हैं।

बच्चों के महत्त्वपूर्ण पाँच वर्ष

(छह वर्ष से ग्यारह वर्ष तक)

छः वर्ष के बच्चों में शारीरिक और मानसिक रूप से कई आकस्मिक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। बच्चा अपने विकास और कार्यों में माता-पिता पर पहले के सदृश्य निर्भर न रहना पसन्द करता ही है और अपनी जिम्मेदारी तथा कार्य-कारण सम्बन्ध को कुछ-कुछ समझने लगता है। बाहरी दुनिया से वह अधिक से अधिक परिचय बढ़ाने को उतावला रहता है। इससे पहले वह अधिकांश बातों में अपने माता-पिता का ही अनुकरण करता था। वे जो कुछ समझा देते थे, उसी से उसकी उत्सुकता शान्त हो जाती थी, परन्तु छह वर्ष का बच्चा अपने अध्यापक तथा संगी-साथियों का अनुकरण करने में चतुराई समझता है। उसमें सहयोग नियमों के प्रति सम्मान, स्वयं पर नियन्त्रण तथा दूसरों के अधिकारों और सम्मान की रक्षा की भावना का विकास होने लगता है।

इन सब बातों से यह स्पष्ट होता है कि बच्चा समाज में अपना स्थान बनाने के चेष्टा कर रहा है। इससे पहले कि वह अपने पूरे आकार को प्राप्त हो, वह चाहता है कि मैं बड़ों के ढंग और तरीके सीख लूँ, उनकी-सी योग्यता और समझदारी प्राप्त कर लूँ ताकि बड़ा होकर मैं भी अपना जीवन सफलतापूर्वक बिता सकूँ।

माता-पिता के प्रति दृष्टिकोण—छह वर्ष का बच्चा अगर अपनी बाहरी दुनिया में अधिक दिलचस्पी लेने लगता है, तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वह अपने माता-पिता के प्रति उदासीन हो जाता है, परन्तु वह अपने प्रेम का अधिक प्रदर्शन नहीं करता सबके सामने माँ के द्वारा चूमे जाने पर वह लजा जाता है अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति में वह गम्भीर रहता है। विशेषकर अपरिचितों के सामने तो बहुत संकोच प्रकट करता है। इस आयु में बच्चा यह अनुभव करने लगता है कि अब मैं बड़ा हो गया हूँ, एक नन्हे-मुन्ने के सदृश्य मुझे सबके सामने रोना, चिल्लाना, नंगे फिरना, माँ से चिपटना शोभा नहीं देता। लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ इस बात को शीघ्र समझने लगती हैं। अगर उसका छोटा भाई किसी के घर जाकर शैतानी करता है या किसी वस्तु की प्राप्ति करने का दुराग्रह करता है, तो उन्हें बहुत संकोच होता है। ऐसे भाई को अपने साथ कहीं ले जाना वे पसन्द नहीं करतीं।

अशिष्ट व्यवहार और गुटबन्दी की प्रवृत्ति—सात-आठ वर्ष की आयु में लड़के तो विशेष रूप से कुछ असभ्य हो जाते हैं। वे संगी-साथियों से किसी प्रकार पीछे रहना नहीं चाहते, अगर उन्हें कोई मारता है तो वे भी उसे दो लगा देते हैं, अगर कोई गाली देकर उसका अपमान करता है तो वे भी उसे एक की दो सुनाते हैं या फिर उसे पीट-पाटकर शिक्षा देते हैं। इस उम्र में बच्चों को एक-दूसरों को मुँह चिढ़ाना, बनाने तथा पीटने-पाटने में विशेष आनन्द आता है। जहाँ संगी-साथियों में झगड़ा शुरू हुआ कि फौरन दो दल शुरू हो जाते हैं और प्रत्येक दल प्रतिरोधी दल को हराने में विशेष रुचि लेता है। अपने प्रति वफादारी तथा सच्चाई प्रकट करने की भावना उन्हें संगठन का बल देती है। अपने प्रतिद्वन्द्वी को हराना, परस्पर इच्छा कर अपने लीडर के नायकत्त्व में काम करने की इच्छा, उन्हें अपने दल की उन्नति करने की प्रेरणा देती है। हम अपना दल अलग बनायें, अपनी अलग क्लब खोलेंगे, अमुक लड़का खराब है, उससे कुट्टी कर देंगे, अपनी योजना तथा गुप्त रहस्य उन्हें क्यों बताएँ, अमुक लड़का चुगलखोर है, वह इधर की उधर लगाता है, उसने हमारा भण्डा-फोड़ कर दिया, हमारा भेद उन्हें बता दिया, उसे जरूर मजा चखाकर रहेंगे—आदि मन्त्रणा करने की प्रवृत्ति बच्चों की होती है।

यह बात नहीं कि केवल लड़के ही ऐसा करते हों, बल्कि लड़कियों में भी गुटबन्दी होती है, वे भी ऐसा सोचती और करती हैं कि 'हम अपनी गुड़िया का ब्याह करेंगे पर राधा को मत बताना। पिछली बार उसने हमारा बना-बनाया खेल बिगाड़ दिया था, अब हमने अपने गुट से उसे निकाल दिया है। बच्चे में गुटबन्दी की यह वृत्ति इस बात की द्योतक है कि बच्चा किसी दल का अंग बनकर उसे सफल बनाना चाहता है और इस प्रकार अपने समाज में स्वयं को उपयोगी और कर्त्तव्यपरायण बनाने की चेष्टा कर रहा है। वह अपने दल का अनुकरण न केवल वेश-भूषा में ही करने की चेष्टा कर रहा है, वरन् उसके तरीके, बातचीत करने का ढंग, लहजा, मुहावरे तथा रुचि पर भी उसके साथियों की छाप पड़ती रहती है।

कई माता-पिता इस आयु में अपने बच्चे में अवांछित परिवर्तन देखकर कहने लगते हैं कि पहले तो यह बड़ा अच्छा था, पर अब तो स्कूल जाकर यह बड़ा असभ्य और उद्दण्ड हो गया है। इसकी आदतें कितनी गन्दी हो गई हैं ? बचपन के संस्कार तो बच्चे में रहते ही हैं। पर अपने संगी-साथियों में बच्चा दबकर रहना नहीं चाहता। वह उनका अनुकरण इसलिए नहीं करता कि यह उन्हीं के गुट का एक सदस्य प्रतीत हो सके।

बच्चों द्वारा शिष्टाचार सम्बन्धी छोटी-मोटी बातों के उल्लंघन से माता-पिता को चिन्तित नहीं होना चाहिए। बच्चों की आयु तथा दिनचर्या में परिवर्तन होने तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिलचस्पी का दायरा बढ़ जाने से ही बच्चा अपने व्यवहार, बातचीत और शिष्टाचार में कुछ स्वछन्द-सा हो जाता है। नियमों को कुछ ढीला करके वह अपना मानसिक सन्तुलन बनाकर रखने की सुविधा प्राप्त करना चाहता है। अगर बच्चे की संगति अच्छी है, उसके स्कूल का वातावरण स्वस्थ है, तो कुछ काल के बाद वह शिष्टाचार और सफाई का स्वयं ही तकाजा करने लगेगा।

एक अनुभवी व्यक्ति का कहना है कि प्रत्येक परिवार में बालक आकर्षण का केन्द्र होता है। कला, साहित्य, विज्ञान आदि की उसकी शिक्षा तो स्कूल में होती है, परन्तु शिष्टाचार जो उसे सभ्य और सुसंस्कृत बना सकता है, परिवार के वातावरण से ही सम्भव है।

आपने देखा ही होगा कि कभी-कभी आपके बच्चे में नहा-धोकर साफ-सुथरा होने की इच्छा प्रबल हो उठती है। वह अपनी छोटी मेज को सँवारता है, अपने सन्दूक में कपड़े बड़े करीने से सजाता है, अपनी पुस्तकों पर कवर चढ़ाता है, अपने होल्डर और दवात धोकर तथा पोतकर तैयार करता है। उसकी सफाई के प्रति यह रुचि चाहे एक-दो दिन ही बनी रहे पर इसका महत्त्व कम नहीं। आप अपने बच्चों को आठवें दिन सफाई करने की विशेष प्रेरणा दें, प्रत्येक रविवार को अपने बस्ते, कमरे, ओढ़ने-बिछाने के कपड़े, जूते, आलमारी आदि की सफाई करने का प्रोत्साहन दें और चेष्टा करने पर उनकी प्रशंसा करें।

रुचि में परिवर्तन—इस आयु में बच्चे की खेल विषयक रुचि में भी परिवर्तन हो जाता है। उसे अटकन-बटकन के खेल अब आकृष्ट नहीं करते। अब उनकी शारीरिक शक्ति बढ़ जाती है, उसके अंगों में चंचलता और लोच है, उसे दौड़-धूप और उछल-कूद के खेल अधिक भाते हैं। आँख-मिचौनी, कबड्डी, गेंद बल्ला, क्रिकेट, फुटबाल, पैंग बढ़ाना आदि खेल उसे अधिक रुचिकर हैं। जिस घर में तले ऊपर के बहिन-भाई होते हैं, वे सब मिलकर ही खेल खेलते हैं। अगर लड़कियों को केवल लड़कियों की संगति ही प्राप्त हो, तो वे गुड़िया, गिट्टे, पऊआ, झूले पर गीत गाते हुए झूलना आदि खेल खेलती हैं।

खेल में नियमों के पालन पर बच्चे अधिक जोर देते हैं और उनके तोड़ने पर उनके हमजोलियों में, लड़ाई तक हो जाती है। इस आयु में बच्चे अपने बहिन-भाइयों और मित्रों से बात-बात में लड़ बैठते हैं। इसमें कुछ हानि नहीं बल्कि इनके मनोवेगों में उबाल आकर निकल जाने का मार्ग मिल जाता है और वह अधिक स्वस्थता का अनुभव करने लगते हैं। इससे उनके प्रेम में कोई अन्तर नहीं आता। जितनी जल्दी उनकी लड़ाई होती है, उतनी जल्दी मेल भी हो जाता है। अपने बचपन के उन संगी-साथियों के प्रति बड़े होकर जो एक सहज प्रेम और ममता होती है, वैसा स्नेह और लगाव प्रौढ़ावस्था के मित्रों के प्रति नहीं होता।

बड़ों को बच्चों की लड़ाई में आवश्यकता से अधिक दखल नहीं देना चाहिए।

बच्चे के अपने संवेगों को प्रकट करने के कई ढंग होते हैं। हल्ला करके, चिल्लाकर, उछल-कूदकर, गीत गाकर अपना आनन्द प्रकट करते हैं, लड़-झगड़कर, बहस करके, हाथ-पाँव पटककर, मुँह चिढ़ाकर वे अपना क्रोध और अनिच्छा प्रकट करते हैं। नृत्य, गान, अभिनय प्रतियोगिता के खेल आदि भी उनके संवेगों को प्रकट करने में सहयोग देते हैं।

बचपन में घर के बाद स्कूल के वातावरण की प्रधानता रहती है। इस आयु में बच्चा अपने संगी-साथियों और गुरु के द्वारा प्रदर्शित स्नेह और प्रशंसा को बहुत महत्त्व देने लगता है। इसलिए उसके शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक विकासों में इनका बड़ा हाथ रहता है। बच्चों को स्कूलों में नकारात्मक नियमों से नहीं अपितु अनुमोदनात्मक नियमों से बाँधना चाहिए। 'जाओ, यह काम कर लो,' 'यह खेल खेल लो,' 'अमुक पुस्तक पढ़ो' आदि। अपनी रुचि के अनुकूल ऐसे आदेश पर बच्चे प्रफुल्लता के साथ मिलकर काम करने को आगे बढ़ते हैं क्योंकि इस आयु में बच्चे 'टीमस्प्रिट' की भावना जाग्रत हो जाती है। अतएव वह अपने दल की विजय में अपनी विजय समझता है, अपने साथियों की सफलता में अपनी सफलता का अनुभव करता है और उसे सहयोग देने में उसे आनन्द प्राप्त होता है। उसके हृदय में अपने सहपाठियों के प्रति प्रेम, करुणा, दया, सहानुभूति आदि मानवीय गुणों का विकास हो जाता है।

कुछ विचित्र आदतें—इस आयु में कई बच्चों में विचित्र-विचित्र आदतें पाई गई हैं जैसे—चलते समय फर्श के प्रत्येक जोड़ को बचाकर पैर रखना, लम्बे बरामदे के प्रत्येक तीसरे खम्भे को छूकर चलना, मुँह में हर समय धागा चबाते रहना, किसी दरवाजे से निकलते समय कुछ शब्द विशेष कहना, अगर इसमें कुछ भूल हो जाये तो लौटकर फिर उसी काम को दोहराते हुए आगे बढ़ना आदि। बच्चों में इन आदतों का मतलब यह है कि इनके मनोवेगों के लिए स्वस्थ मार्ग नहीं मिल रहा है या वे अपने बड़ों के अधिक दबाव के पीछे बेचैन हो रहे हैं। जो व्यक्ति बच्चों पर कठोरता से शासन करता है, तो उसे कुचलने, मारने और उससे बदला लेने के लिए बच्चे का मन कुलबुलाता रहता है। अपने इन मनोवेगों को दबाने के लिए वह अपने ऊपर यह विचित्र बंधेज (Compulsion) लाद लेता है। अगर वह बंधेज साधारण है तथा उसके करने में बच्चों की अधिक शक्ति या समय नहीं लगता तो दस-ग्यारह वर्ष की आयु के बाद बच्चे की वह आदत स्वयं ही छूट जायेगी, पर यदि बच्चा उन्हें एक सनक के रूप में करता है जैसे दिन में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पचास बार हाथ धोना, प्रत्येक ग्रास निगलने के बाद पानी पीना आदि तो वैज्ञानिक ढंग से उसकी यह आदत छुड़ाने की चेष्टा करनी चाहिए।

बच्चों के साथ बातचीत करते समय शिष्टाचार का विशेष ध्यान रखना चाहिए, नहीं तो उनका बातचीत करने का ढंग भी दोषपूर्ण हो जाता है, वे बड़ों के तकिये कलामों का बहुत जल्द अनुकरण करने लगते हैं। इसके अतिरिक्त वे उठने-बैठने, चलने, कपड़े पहनने, हँसने तथा खाने-पीने में भी जिन लोगों के बीच में रहते हैं, उनके ढंगों का प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से अनुभव करते रहते हैं। इस आयु में बच्चों की अनुकरण प्रवृत्ति बड़ी प्रबल होती है। अतएव बड़ों को उस बात की विशेष सावधानी रखनी चाहिए कि बच्चों के आगे अच्छा उदाहरण उपस्थित किया जाए।

बच्चों के खिलौने सस्ते, सुलभ तथा उपयोगी हों

बच्चों के लिए खिलौनों की आवश्यकता तीसरे माह से शुरू होती है। तीन महीने के बच्चे के लिए खिलौने चमकीले रंग के हों जिन्हें धोया जा सके। वे इतने बड़े हों कि बच्चे उन्हें निगल न सकें। खिलौने खुरदरे किनारों वाले न हों। उनसे पैदा होने वाली आवाज कर्कश नहीं, मधुर हो। हाथी-दाँत के छल्ले आदि भी उपयोगी होते हैं। गेंद, गुब्बारे, लट्टू, झुनझुने ही उनके खिलौने होते हैं।

महँगे खेल-खिलौने बच्चों के लिए अधिक उपयोगी नहीं होते। ऊँची कीमत के खिलौने खरीदकर फिर बच्चों से उन्हें छिपाकर रखना, कभी-कभार ही देना, बच्चों को तंग करना है। इससे उनकी मानसिक आवश्यकता पूरी नहीं हो पाती और वे परेशान रहते हैं।

खिलौने बच्चों के लिए हैं, माँ-बाप के लिए नहीं। अतः उनकी तोड़-फोड़ के लिए बच्चों को स्वतन्त्र होना चाहिए। खिलौने नुकीले या अधिक खुरदरे न हों अन्यथा बच्चे को चोट पहुँच सकती है। वे अधिक भारी भी न हों।

जल्दी टूटने वाले खिलौनों से बच्चों में निराशा की भावना पनप सकती है। अतः धातु के बने हल्के खिलौने अधिक उपयोगी होते हैं। मिट्टी के खिलौने जल्दी टूट जाते हैं। खिलौने चटख और पक्के रंगों से रँगे हों।

एक साथ ढेर सारे खिलौने देने से बच्चा उनसे अपना सामंजस्य नहीं बैठा पाता और ऊब जाता है। खिलौने इतने हों, जिनसे वह अपने ढंग से प्रगाढ़ परिचय प्राप्त कर सके और भलीभाँति मन बहला सके। बच्चों के लिए यान्त्रिक खिलौने उपयुक्त नहीं होते। उन्हें ऐसे खिलौने ही अधिक अच्छे लगते हैं, जिन्हें वे मनमाने ढंग से हिला-डुलाकर, बिगाड़कर चित्र-विचित्र रूपाकार भी दे सकें। इससे उनकी कल्पना-शक्ति विकसित होती है।

चित्रकला के लिए भी उन्हें अलग-अलग शेडों के पोस्टर रंग, भिन्न-भिन्न साइज के कुछ मोटे बुश और कागज की शीटें चाहिए। इन्हीं में वे रंगों की ऐसी आकृतियाँ बनायेंगे, जो पहचानी भी न जा सकें। धीरे-धीरे उन आकृतियों में एक खास सुझाव उभरने लगेगा, जिससे बच्चे की आँख और हाथ की क्रियाओं में उत्पन्न सामंजस्य का परिचय तो मिलेगा ही, उनकी मानसिक स्थिति एवं विकास की दिशा का भी इनसे पता चलता है।

ऐसी ही सुगमता से बच्चों को मूर्तियों के बनाने का भी अभ्यास कराया जा सकता है। इसके लिए प्लास्टिक कहीं भी खिलौने की दुकान पर मिल सकती है। घर पर मैदे की लुगदी भी तैयार की जा सकती है, जो सस्ती तो होती ही है, अधिक अच्छी भी होती है। तीन हिस्सा मैदा और एक हिस्सा नमक लें। उसमें पानी और थोड़ा-सा तेल मिलाएँ, लुगदी तैयार। उसे प्रयोग के बाद प्रतिदिन प्लास्टिक के हवा बन्द डिब्बे में रखा जाय। इससे एक सप्ताह तक उसका भलीभाँति इस्तेमाल किया जा सकता है। इस लुगदी से बच्चे को तरह-तरह की मूर्तियाँ बनाना सिखाएँ। वह घण्टों इसी में डूबा रहेगा। मिट्टी के द्वारा भी मूर्ति बनाना बच्चों को सिखाया जा सकता है।

किसी बढ़ई की दुकान से भिन्न-भिन्न आकृतियों के लकड़ी के ठप्पे बनवाये, खरीदे जा सकते हैं। तीन, चार या पाँच इंच की अलग-अलग लम्बाई वाले गत्ते के टुकड़े भी काटे जा सकते हैं। इन्हें आकर्षक रँगों में रँग लिया जाय। इस प्रकार लकड़ी के छकड़े, ट्रक, बैलगाड़ियाँ, गत्ते के पुल, सड़कें, दीवारें आदि को बनाना सिखाया जा सकता है।

प्रारम्भ में बच्चों को खिलौने बनाना सिखाना होता है। धीरे-धीरे वे उसमें स्वयं गहरी रुचि और अभ्यास के कारण निपुण हो जाते हैं। उन्हें दो-चार पहिए, कीलें, लकड़ी का डिब्बा आदि देकर गाड़ी बनाना सिखाएँ। मिट्टी, लुगदी, प्लास्टिक आदि से सरल खिलौने बनाना सिखायें। फटे हुए चिथड़ों से गुड़िया बनाना, कतरनों से कपड़े सीना, गोटा लगाकर गुड़िया को सजाना, लड़कियों को बेहद भाता है। मकान, पुल, दीवार, नाव, जहाज, घर, हाथी, घोड़ा, ऊँट, गाय-बैल आदि बनाना बच्चे बहुत जल्दी सीखते हैं। रंगदार कागज के रंग-बिरंगे फूल बनाकर उन्हें खुश होते देखा जा सकता है। बच्चों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

टूटे खिलौनों को जोड़ना भी सिखाया जाय और उनसे नये खिलौने बनाना भी।

उन्हें प्रेरणा-प्रोत्साहन दिया जाय कि अपने मित्रों के जन्म-दिवस पर वे अपने बनाये खिलौने ही उपहार में दें। परन्तु इस प्रचलन के लिए उदार मानवीय दृष्टि अपनानी होगी। अभी तो बच्चों के जन्म-दिन भी बड़ों की आपसी लेन-देन के हिसाब को निपटाने, आर्थिक हैसियत के आधार पर रिश्ते बनाने और झूठे प्रदर्शन के माध्यम के रूप में ही मनाये जाते हैं। इससे बच्चों में भी यही भावना घर कर जाती है कि जो धनी हैं, हमें अच्छे उपहार दे सकता है, वही अच्छा मित्र है, उसी की और उसी के घर वालों की हमारे घर में अधिक आवभगत होती है। इससे एक ओर वह पैसे को सब कुछ मानने लगता है। दूसरी ओर स्वयं की आर्थिक स्थिति दुर्बल हुई तो हीनभावना का भी शिकार होने लगता है, क्योंकि वह अपने मित्र को उतने महँगे उपहार नहीं दे सकता। इस प्रकार माता-पिता अपनी संकीर्णता को बच्चों पर भी थोपते हैं। बच्चों के जन्म-दिन मुख्यतः बच्चों को उन्हीं के दैनन्दिन साधनों से मनाने दिये जायें, थोड़ी सहायता भर की जाये। उन्हें अपने बनाये खिलौने, उपहार में देने को कहा जाय। इससे बच्चों में रचनात्मकता की होड़ मचेगी, आत्म-गौरव भी होगा। रिश्तों का आधार धन नहीं, सृजनात्मक प्रतिभा, उदारता एवं आत्मीयता की संवेदना बनेगी।

इस प्रकार बच्चों के लिए सदा सस्ते, सुलभ खिलौने ही जुटाये जाएँ और इस बात का ध्यान रखा जाये कि खिलौने उनकी खेलभावना और रचनात्मकता को विकसित करें। उनमें हीन-भावना या झूठी शान अथवा धनपरक होड़ न पैदा कर दें। न ही व्यर्थ का आर्थिक बोझ बन बैठें। इसी में बच्चों का भी हित है, परिवार का भी और समाज का भी।

खेल विधि से शिक्षण

स्टर्न नामक एक विद्वान ने खेल को स्वेच्छानुरूप आत्मसंयम की एक क्रिया बताया है। जिस प्रकार युद्ध कार्य के लिए विविध कौशल की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार स्टर्न ने जीवन के लिए खेल की अनिवार्यता समझी है। दूसरे शब्दों में खेल एक उल्लासपूर्ण स्वेच्छानुरूप और रचनात्मक क्रिया है, जिसके द्वारा मनुष्य को आत्माभिव्यक्ति का पूर्ण अवसर मिलता है। काम में गम्भीरता की कमी होती है, तब वह क्रिया खेल कही जा सकती है।

इसमें सन्देह नहीं कि बच्चों को जो कार्य खेल के सदृश्य सहज और मनोरंजक लगें उसमें उनका मन खूब लगता है। बच्चे ही क्यों बड़ों का भी यही हाल है कि जब तक उन्हें काम में रस आता है, वे उसमें लीन रहते हैं। जो काम अरुचिकर हो उसे करने में मन नहीं लगता और उसे करता हुआ मनुष्य शीघ्र थक भी जाता है। चतुर माता या अध्यापक, अध्यापिका बच्चे को खेल की ओट में सीखने और खेलने की प्रेरणा देती है, वह बच्चे को सोद्देश्य खेल खिलाती है। इस प्रकार खेल के रूप में जो सिखाया जाता है, उसे बच्चा शीघ्र सीख भी जाता है और दूसरे दिन फिर उसी प्रकार के खेलों द्वारा अपने पाठ को दोहराने की रुचि भी बनी रहती है। खेल में सफलता प्राप्त करने के लिए वह पाठ को समझने और याद रखने की भी चेष्टा करता है। इस प्रकार खेल विधि से शिक्षण द्वारा बच्चे की रुचि, उद्देश्य और क्रियाशीलता तीनों का सुन्दर सहयोग होता है।

खेल विधि को अपनाते समय आप इस बात का अवश्य ध्यान रखें कि वह शिक्षण का साधन बने, साध्य नहीं। खेल विधि से भाषा, इतिहास, भूगोल तथा अन्य विषयों को सिखाने के तरीके हैं।

भाषा पढ़ाने में अभिनय द्वारा बड़े रोचक ढंग से बच्चे को भाषा ज्ञान कराया जा सकता है।

अभिनय—मान लें आप बच्चे को 'बन्दर और दो बिल्लियों का झगड़ा' की कहानी सुना रहे हैं। आप चाहते हैं कि इस कहानी का वे अभिनय करें। अभिनय के समय स्टेज आदि के आडम्बर की अधिक जरूरत नहीं है। बच्चों की कल्पना सभी अभावों की पूर्ति कर सकती है। एक डण्डे में ही पेड़ की डाल की कल्पना कर सकते हैं। तराजू के स्थान पर सिगरेट के डिब्बों में छेद करके पैंसिल से बाँध देने से ही काम चल जायेगा। दोनों बिल्लियों की लड़ाई का एक बन्दर ने कैसा लाभ उठाया और रोटी का बँटवारा करते समय वह किस प्रकार थोड़ा-थोड़ा करके सब हड़प गया तथा परस्पर के झगड़े में तीसरे की कैसी बन आई, इसी बात को अभिनय द्वारा विशेष रूप से स्पष्ट करना आपका ध्येय होना चाहिए। बन्दर को अपनी रोटी खाते देख बिल्लियों को अपनी 'म्याऊँ-म्याऊँ' तथा अन्त में बन्दर का 'हप्प' करके रोटी खाकर बिल्लियों को अँगूठा दिखाकर पेड़ पर चढ़ जाना और बिल्लियों का पछताना, घटनाओं को ठीक से अभिनय करने से कहानी का प्रभाव बच्चों पर बहुत अच्छा पड़ता है। परस्पर झगड़े करने से क्या हानि होती है, इसको वे समझ सकेंगे, साथ ही बन्दर के अभिनय से हास्यरस का पुट भी आ जावेगा।

बच्चों के इस नाटक के दर्शक भी बच्चे ही होने चाहिए। इससे यह लाभ है कि स्टेज तथा पोशाक सम्बन्धी बहुत-सी चीजों की कमी बच्चों को अखरती नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। जब बच्चे दर्शक होंगे तो अभिनेता बच्चों का अभिनय बहुत स्वाभाविक होगा। बड़ों के आगे तो नुमायशी ढंग से अभिनय करेंगे। पंचतन्त्र की अधिकांश छोटी-मोटी कहानियाँ अभिनय की जा सकती हैं। अभिनय का आयोजन बच्चों को स्वयं करने दें। आप केवल उच्चारण और भाव-प्रदर्शन का ढंग बता दें। वेश-भूषा के लिए अधिक आडम्बर की जरूरत नहीं है। अगर शेर का पार्ट अदा करना है तो कार्ड-बोर्ड के मुकुट पर शेर का एक चित्र चिपका दिया जाय। अगर यह भी न हो तो एक कार्ड बोर्ड में उस पात्र का नाम लिखकर पिन से बच्चे की कमीज या बाँह पर लगा देने से भी काम चलाया जा सकता है।

उसी प्रकार के स्वास्थ्य, सफाई, प्राकृतिक भूगोल तथा दिन-रात, ऋतुएँ, ऐतिहासिक कहानियाँ आदि पर छोटी-छोटी कहानियाँ रची जा सकती हैं और उन्हें बच्चों को अभिनय करना सिखाया जा सकता है।

पत्रिका—बच्चों को लिखने, पढ़ने, चित्रकारी करने की प्रेरणा पत्रिका द्वारा ही मिलती है। प्रत्येक घर या मोहल्ले अथवा कक्षा या स्कूल के बच्चों की अपनी पत्रिका होनी चाहिए। जिस बालक की कहानी सुलेख में लिखी हो उसे पत्रिका में स्थान देना चाहिए। बाहर से रंग-बिरंगी तस्वीरें काटकर तथा ड्राइंग बनाकर बच्चे अपनी इस पत्रिका को सजा सकते हैं। इसमें महीने भर में स्कूल, मुहल्ले तथा अड़ौस-पड़ौस के बच्चों की कोई विशेष खबर तथा बच्चों की दिलचस्पी की अन्य घटनाओं का भी उल्लेख हो।

इस पत्रिका में कक्षा में सबसे अच्छे निबन्ध, कहानी तथा सुलेख स्थान पायें। पत्रिका से बच्चों को स्वयं कहानी और कविता रचने, चित्र बनाने तथा अपना लेख सुधारने की प्रेरणा मिलेगी। पत्रिका में अपना नाम लिखा देखकर उन्हें बहुत प्रसन्नता होगी। वे उन्नति करेंगे तथा उस पत्रिका को अपनी चीज समझेंगे और उसकी उन्नति के लिए उन्हें यह आवश्यक होगा कि वे स्वयं पढ़ने-लिखने में उन्नति करें।

३. तस्वीर अध्ययन का खेल—एक बड़ी-सी तस्वीर दीवार पर लटका दी जाय और प्रत्येक बच्चे को पूरी पारी से एक-एक वाक्य उस तस्वीर के विषय में कहने को कहें। बड़े बच्चों से उस तस्वीर पर कोई कहानी कहने को भी कहा जा सकता है। छोटे बच्चों को कुछ चुने हुए शब्द देकर उन्हें वाक्यों में प्रयोग करते हुए कहानी को पूर्ण करने की सरल विधि बता सकते हैं। आप तस्वीर के विषय में कुछ पूछें और बच्चे तस्वीर को देखकर उत्तर देते जाएँ।

प्रत्येक घर में महापुरुषों की अच्छी तस्वीरें टँगी होनी चाहिए। सिनेमा-पात्रों आदि की तस्वीरों को तो अपने बच्चों के कल्याण के लिए बायकाट करना ही चाहिए। अवकाश के समय में अपने बच्चे की अँगुली पकड़ लें उसे कमरे में टहलाते हुए एक-एक कर चित्रों को दिखाएँ। उससे सरल प्रश्न करते जायें। यह किसका चित्र है जानते हो ? यदि बच्चा ठीक उत्तर दे ले तो उस पर शाबाशी देते हुए अपनी स्वीकृति और मौहर लगा दें, उससे बच्चे का आत्मविश्वास बढ़ेगा और उसकी रुचि पैदा होगी। यदि न बता सकें तो आप उसे सरल भाषा में प्रेमपूर्वक समझाएँ 'यह अमर महापुरुष का चित्र है। इसमें इतनी वीरता थी कि संसार भर में धाक बैठी हुई थी। यह पवनसुत हनुमानजी का चित्र है। यह अपने स्वामी भगवान राम की आज्ञानुसार लक्ष्मणजी को जिलाने हेतु हिमालय पहाड़ से संजीवनी बूटी लाने गये थे। जब इन्हें बूटी को पहचानने में सन्देह उत्पन्न हुआ तो सारा पहाड़ ही उखाड़कर ले आये।

वीरपूजा की आज देश को आवश्यकता है। राष्ट्र की नस-नस में अहिंसा का विकृत रूप इस प्रकार व्यापक हो गया कि हमारी नाड़ियों में अब गति नहीं है, उनमें उत्साह रूपी रक्त का संचार मन्द पड़ गया है। हम सचमुच अब कायर और भीरु बनते जाते हैं। यह स्थिति किसी राष्ट्र के उत्थान में बाधक और घातक दोनों सिद्ध होती हैं।

हमारी आगामी पीढ़ी को तो साहसी, बलवान, उत्साही एवं संयमी बनना है। सर्वांगीण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसे साहस का परिचय देकर कमाल दिखाना है। इस दृष्टि से वीर पूजा—वीरों, सदाचारियों, पतिव्रताओं और परमार्थी जीवों के जीवन में अपने बच्चे को परिचित कराना है। उनके हृदय-पटल पर उन युग-पुरुषों के महत्त्व की छाप बिठानी है ताकि बचपन से वे उनके प्रति आस्था पैदा कर प्रेरणा प्राप्त करें और अपने जीवन को उन्हीं के अनुरूप ढालने का प्रयत्न करें। इस कार्य में चित्रों द्वारा बच्चों को बड़े सरल ढंग से शिक्षा दी जा सकती है। ऐसा करने से उनका मनोरंजन भी होगा और आप उसी के अध्ययन से बड़ी-बड़ी बातें भी उन्हें बता देने में साथी हो जायेंगे।

४. कार्ड दिखाकर पूछने के खेल—बौद्धिक विकास के लिए यह खेल बड़े उपयोगी हैं। बच्चों को 'क' और 'ख' दो दलों में बाँट दें। प्रत्येक बच्चे के पास एक कार्ड हो, जिस प्रकार उनके पाठ में आया हुआ कोई शब्द हो। प्रत्येक बच्चा अपना-अपना कार्ड इस प्रकार उलटकर पकड़ें कि लिखा हुआ शब्द दिखाई नहीं पड़े। 'क' दल का एक बच्चा 'ख' दल के दूसरे बच्चे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के पास जाकर कुछ क्षण के लिए अपना कार्ड उसे दिखाकर फिर अपने दल में लौट आये।

अब 'क' दल का नेता 'ख' के उस बालक के उस शब्द का अर्थ तथा स्पेलिंग पूछे। अगर वह बता देता है, तब तो 'क' दल का बालक 'ख' दल में शामिल हो जाता है और अगर वह नहीं बता पाता तो 'ख' दल का बालक 'क' दल में आ जायेगा। इस प्रकार अन्त में जिस दल में अधिक बच्चे होते हैं, वह जीता हुआ समझा जाय। बच्चों की आयु और योग्यता के अनुसार इस खेल को बदला भी जा सकता है। शब्द की जगह कविता के पद्य या मुहावरे भी लिखे जा सकते हैं। बाद में कविता का प्रसंग और अर्थ या मुहावरे का अर्थ और उन्हें वाक्यों में प्रयोग करने को कहा जा सकता है।

५. यह क्या है ?—कुछ बच्चे एक घेरा बनाकर बैठ जाते हैं और एक बालक बीच में बैठता है। घेरे का प्रत्येक बच्चा अपनी-अपनी स्लेट पर कुछ शब्द लिखता है और घेरे के अन्दर बच्चे की ओर सब अपनी-अपनी स्लेटें घुमा देते हैं। घेरे का बालक प्रत्येक की स्लेट का अर्थ क्रम से बताता है। जिसका अर्थ वह शीघ्र नहीं बता पाता वह बालक स्वयं अर्थ बताकर घेरे में आकर बैठ जाता है और घेरे वाले बालक को उसकी जगह आकर बैठना पड़ता है। ऐतिहासिक और भौगोलिक स्थानों के नाम भी स्लेट पर लिखकर उनके विषय में कोई विशेष बात भी पूछी जा सकती है। गणित के छोटे-छोटे जोड़ या घटाना, गुणा और भाग की संख्या लिखकर उसका उत्तर भी इस खेल में पूछा जाय तो मुँह-जवानी प्रश्नों को हल करने का अभ्यास शीघ्र हो जायेगा। बच्चे अपनी स्लेटों पर कोई प्रश्न लिखकर उत्तर भी माँग सकते हैं। इस प्रकार बदल-बदलकर इस खेल को खेला जा सकता है।

६. आँख-मिचौनी—इस खेल के लिए जोड़ीदार कार्ड बनाए जा सकते हैं। आधा वाक्य एक कार्ड पर और आधा वाक्य दूसरे कार्ड पर या फिर प्रश्न एक कार्ड पर और उत्तर दूसरे कार्ड पर। बच्चों को दो दलों में बाँट दिया जाता है और दोनों दलों में कार्डों की वह जोड़ी बाँट दी जाती है, जिसमें आधे वाक्य या प्रश्न लिखे होते हैं और वे कार्ड जिनमें शेष वाक्य या प्रश्नों का उत्तर लिखा होता है, मेज पर उल्टे करके बिछा दिया जाता है। प्रत्येक बच्चे के पास एक कार्ड होता है, तब दोनों दलों के बच्चों को कहा जाता है कि अपने-अपने कार्डों का पूरक कार्ड ढूँढ़ो। जिस दल के बच्चे को पहले सफलता मिल जाती है वह जीत जाता है। आँख-मिचौनी का यह खेल इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य रक्षा, नागरिक ज्ञान आदि सभी विषयों पर कार्ड तैयार करके खेला जा सकता है। मेज पर जो कार्ड बिछे हों उनमें से कुछ फालतू कार्ड ऐसे भी हों जो बच्चों को भ्रम में डाल दें।

७. स्पेलिंग मैच—यह भिन्न-भिन्न प्रकार से खेला जा सकता है। दो दलों में बच्चों को बाँट दिया जाय, एक दल दूसरे से शब्द पूछे। यदि वह न बता सके तो पूछने वाला बालक उसके हिज्जे बता देगा और तब विरोधी दल के बालक उस दल में आना पड़ेगा। दूसरी विधि यह है कि बच्चों की दोहरी लाइन बना दी जाय। उसके बाद आप बच्चों से स्वयं स्पेलिंग पूछें, जो बता दे उसे आगे खड़ा करें। जो नहीं बता सकें, उन्हें पीछे खड़ा करें। स्पेलिंग मैच कार्ड पर लिखकर भी खेला जा सकता है।

एक लाइन का एक लड़का कोई शब्द कहे, फिर उसके अन्त में जो अक्षर पड़े उससे प्रारम्भ होने वाला कोई शब्द दूसरी पार्टी का लड़का कहे। यह मनोरंजक खेल कई घण्टों तक चल सकता है, इससे बच्चों का शब्द भण्डार बढ़ेगा और शब्दार्थ भी मालूम होगा।

८. अन्त्याक्षरी—इस खेल में बच्चों को 'क' और 'ख' दो दलों में विभाजित कर दें। 'क' दल का बालक एक चौपाई, दोहा या पद कहें, उस पद के अन्त में जो अक्षर आवे उससे प्रारम्भ होने वाला कोई पद दूसरे दल का बालक कहे। बच्चों को अच्छे-अच्छे दोहे, चौपाइयाँ, श्लोक, सवैया, छन्द आदि कण्ठस्थ हो जायेंगे। स्वर से पदों का कहना भी आयेगा।

९. प्रश्नोत्तर—आप कुछ कार्डों में प्रश्न लिखकर रख लें। प्रत्येक बच्चा एक-एक कार्ड उठा लें और अपने-अपने प्रश्न का उत्तर निश्चित समय के अन्दर लिख दें। इन कार्डों पर व्याकरण के प्रश्न भी लिखे जा सकते हैं तथा कुछ शब्द लिख दें और उनके विरोधी लिंग और वचन पूछें। अशुद्ध वाक्य लिख दिया और उसे सुधारने को कहा। परिभाषा पूछी दो परिभाषाओं का भेद पूछा, रिक्त स्थानों को पूर्ति करवाई इत्यादि।

१०. अपरिचित को ढूँढ़ो—प्रत्येक लाइन में चार-चार शब्द लिखे और इनमें जो अप्रासंगिक हो, उसे बताने को कहें, जैसे—कुत्ता, बिल्ली, तोता, गाय।

मैना, भैंस, कबूतर, मोर। काली, पीला, भारी, हरा।

इस खेल को इतिहास और भूगोल सिखाते समय इस प्रकार भी खेला जा सकता है कि किसी राजा के बेटों या मुख्य दरबारियों की सूची में बाहरी नाम लिख दिया जाय या किसी ऋतु के फलों या किसी देश के प्रसिद्ध चीजों की सूची में एक-दो बाहरी नाम लिख दो फिर उन बाहरी नामों को बच्चों से छाँटने को कहें।

११. तुम बूझो—बच्चों को दो दल में बाँट दिया जाय। पहले दल के बच्चे विरोधी दल के बच्चों से कोई पहेली बुझाते हैं या फिर कोई शब्द (यथा—लकड़हारा) सोच लेते हैं और पहले तो शब्द के प्रथम भाग 'लकड़'

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शब्द को बताने के लिए अभिनय करेंगे, जैसे लकड़ी की चीजों को छूएँगे, कुछ लकड़ियों के टुकड़ों को बण्डल में बाँधेंगे, फिर हारे हुए या थके हुए का अभिनय करेंगे। इस खेल में पूरी कहानी भी मूक अभिनय करके बुझाई जा सकती है। जैसे दूध की मटकी और ग्वालिन की कहानी। किसी नगर या किसी ऐतिहासिक राजा का परिचय भी बूझने को कहा जा सकता है। संकेत रूप में उस नगर या राजा के विषय में तीन बातें बताई जा सकती हैं। जिस दल के बच्चे अधिक पहेलियाँ बूझ सकें वह जीत जाता है।

१२. **तुम छाँटो**—बच्चों को तीन भिन्न-भिन्न प्रकार की तस्वीरें दिखाई जायें और प्रत्येक तस्वीर के उपयुक्त बारह-बारह विशेषण आपके द्वारा दी गई विशेषणों की सूची में छाँटने को कहें। आप भी विशेषणों की सूची इस प्रकार से बनायें कि एक तस्वीर का विशेषण दूसरे के लिए ठीक न प्रतीत हो। कुछ घरेलू वस्तुओं की सूची बना ली जाय और बच्चों से कहा जाय कि कौन-से कमरे में कौन-सी वस्तु होनी चाहिए, यह बाकायदा लिख डालो। कुछ खेलों के शीर्षक बताकर तैयार की हुई शब्दों की सूची में से प्रत्येक खेल के उपयुक्त शब्द छाँटकर उनको वाक्य में प्रयोग करने को कहें। संज्ञा और विशेषण की सूची तैयार करने को कहें तथा वाक्यों की प्रत्येक संज्ञा के उपयुक्त विशेषण छाँटने को कहें। एक प्रश्न के आगे उत्तर लिखें कि उनमें से कौन-सा उत्तर ठीक है, उसके आगे बच्चे लाल पेंसिल से निशान लगा दें। रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए उपयुक्त शब्द बच्चों की दी हुई सूची में से छाँटने को कहें। शब्दों की दो सूची तैयार करें। एक सूची के विरोधी शब्द दूसरी सूची में हों। बच्चों को दोनों सूची में से जोड़ मिलाकर शब्द छाँटने को कहें। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न ढंग से यह खेल खेला जा सकता है।

१३. ऐसे वाक्य जिनके कारक, वचन और लिंग गलत हों, बोर्ड पर लिख दिये जायें और बच्चों को उन्हें सुधारने को कहें या गलत विशेषण और क्रिया-विशेषण के बदले उपयुक्त विशेषण और क्रिया-विशेषण लगाने को कहें।

कई विषय ऐसे हैं कि उन्हें खेल-विधि से सिखाते समय वाक्यों की रचनात्मक वृत्ति का विकास होता है। जैसे गुड़िया का खेल। खेल ही खेल में बच्चों को घर सँभालने, बच्चों की देख-भाल, कपड़े सीने, खाना परोसने आदि की शिक्षा दी जा सकती है। मुझे स्मरण है कि मेरे बचपन में मेरी बड़ी बहिन तथा उनकी सहेलियों ने मिलकर अपने गुड्डे-गुड़ियों का विवाह रचाया था। बड़े धूमधाम का आयोजन था। घर के बड़े-बूढ़ों तक को निमन्त्रण दिए गये थे। पिता, चाचा और घर के सब बड़ों ने उसमें नेवता भी दिया था तथा इन्हीं बहिनों ने मिलकर खाना बनाया और घर भर को खिलाया था। ऐसा लग रहा था मानो सचमुच लड़के-लड़की का विवाह रचा हो। विवाह के पूर्व के सभी कृत, मेरछुआ, रतजगा, तेल आदि विधिवत् सम्पन्न हुये थे।

इसी प्रकार चित्रकारी में ड्राइंग, एलबम सजाने, फुलवारी सँवारने, मिट्टी के खिलौने बनाने और रँगने के खेल भी बच्चों को कुछ करने और सीखने की प्रेरणा देते हैं। आप बड़े-से-बड़े कार्य में बच्चों का सहयोग ले सकते हैं अगर आप उसे करवाने में खेल-विधि अपना लें तो। यदि आप कहें कि देखें गेहूँ कौन पहले बीनता है ? अपना कमरा कौन पहले साफ करता है ? जल्दी से नहाकर कौन तैयार हो जाता है ? तो उन्हें काम करने में बड़ा आनन्द आयेगा।

आयु और योग्यता के अनुरूप प्रत्येक विषय का ज्ञान बच्चों को खेल विधि से दिया जा सकता है। बच्चों को खेल विधि से सिखाते समय इस बात का अवश्य ध्यान रखें कि सभी बच्चे उसमें भाग लें। प्रत्येक बच्चे को आत्म-प्रदर्शन का अवसर मिलना चाहिए। खेल द्वारा बच्चे अपनी मानसिक और शारीरिक स्वस्थता को प्राप्त करते हैं। इस विषय में एक शिक्षा विशारद का कथन है कि बालकों को एक ऐसे बाल समाज में रखा जाय जहाँ उनको कुछ करने के, कुछ आत्म-प्रदर्शन के खेल मिल सकें। खेल-चिकित्सा का भी बड़ा महत्त्व है। इन पर अनेक अन्वेषण किये गये हैं और बच्चों की विभिन्न प्रकार की मानसिक कठिनाइयों में विभिन्न प्रकार के खेल निकाले गये हैं। इस प्रकार लड़कों की वृत्तियों के लिए हम उचित क्षेत्र तैयार करते हैं। उनकी कार्यधारा को हम समाजोपयोगी प्रणालियों में प्रवाहित करते हैं। इसी को शोधन कहते हैं। किस प्रवृत्ति के लिए कौन-कौन से मार्ग दिये जाएँ, यह भी जानने का विषय है।

खेल विधि से शिक्षण का कार्य अध्यापक-अध्यापिकाएँ तो अपना ही सकती हैं साथ ही कुशल माँ या पिता अपने बच्चों के साथ मोहल्ले या पास-पड़ौस के बच्चों की टोलियाँ बनाकर सफलतापूर्वक इन खेलों को खिला सकते हैं।

क्या अच्छा होता यदि इसी प्रकार के दो-एक लोग हर गाँव और नगरों के मोहल्ले में निकल आते जो दलगत राजनीति के कचड़े से बाहर रहकर बच्चों के विकास में अपने खाली समय का कुछ भाग निःस्वार्थ भाव से लगाने का शुभ कार्य करते।

खेल-खेल में बालकों को सद्गुणों का प्रशिक्षण

बाल-मनोविज्ञान के ज्ञाताओं की यह सर्वसम्मत राय है कि बच्चों के व्यक्तित्व विकास में खेलों का स्थान सर्वोपरि है। खेलों से बच्चों के विद्यमान गुण विकसित होते, छिपी सम्भावनाएँ व्यक्त होतीं तथा पनप गईं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ग्रन्थियाँ सुलझ जाती हैं। आज हमारे समाज का जो औसत स्तर है, उसमें अधिकांश बच्चों की अनेक उचित इच्छाएँ भी दबी रह जाना आश्चर्यजनक नहीं। फिर, अनेक तीव्र आवेग होते हैं, जो एक बच्चे और दूसरे बच्चे के बीच टकराहट पैदा करते हैं। इस टकराहट में पराजित शिशु के मन में दमित आकांक्षाएँ ग्रन्थियों का रूप धारण कर सकती हैं। अपनी इच्छा के अनुरूप प्यार न मिल पाने, किसी कारण से कभी अपने समूह द्वारा, तो कभी पालकों-अभिभावकों द्वारा तिरस्कृत होने आदि कारणों से बच्चों में उदासीनता और चिड़चिड़ापन घर कर जाता है। घर या परिवेश के प्रभाव से भी क्रोध, चिड़चिड़ापन, लापरवाही, निषेधात्मकता आदि दोष पनप जाते हैं। सही ढंग के खेल बच्चों के ये दोष दूर कर उनके विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

लेकिन इसके लिए यह जरूरी है कि ये खेल बहुत महँगे गुड्डे-गुड़ियों, वस्तुओं वाले न हों, जिन्हें बच्चे द्वारा तोड़ दिये जाने पर हम खीझ और चिन्ता से भर उठें। ध्यान रखना चाहिए कि खेल हमारे लिए तो सिर्फ खेल हैं, लेकिन उनके लिए तो वह जीवन का अभिन्न अंश है और साथ ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अनुभव है।

वस्तुतः जिसे सृजनात्मक क्रीड़ा कहा जाता है, वही बच्चों को वास्तविक लाभ पहुँचाती है। सृजनात्मक क्रीड़ा सिर्फ उन उपकरणों द्वारा सम्भव है, जो बच्चों को नितान्त सुलभ प्रतीत हों और सिर्फ अपने लिए नहीं, पड़ोसी बच्चों के लिए सुलभ दीखे क्योंकि पड़ोसियों के लिए दुर्लभ खिलौने बच्चे के मन में अपने खिलौनों के प्रति अतिरिक्त सचेतन-भाव भर देते हैं और वह उनसे पूर्णतः उन्मुक्त छेड़छाड़ नहीं कर पाता। गुड्डे-गुड़ियाँ आदि ऐसे खिलौने, जिन्हें बच्चा दिन-रात अपने साथ लिए घूमना-फिरना, उठना-बैठना, सोना-जागना चाहता है, समर्थ अभिभावकों द्वारा अधिक सुन्दर व महँगे खरीद दिये जाएँ, तो उतना हर्ज नहीं, लेकिन वह सब होने पर भी प्रत्येक बच्चा पानी, मिट्टी तथा कागज और कपड़ों के टुकड़ों, बोतलों, लेस के टुकड़े, रिबन, बटन आदि दैनन्दिन उपयोग की सुपरिचित वस्तुओं के साथ ही सृजनात्मक क्रीड़ाएँ करता है। महँगे खिलौने खरीद लाने वाले अभिभावकों को अपने बच्चों को इन चीजों से खेलते देख टोकना उचित नहीं।

गीली मिट्टी से खिलौने और चित्र-विचित्र आकार-प्रकार बनाकर खेलना बच्चों के शिक्षण और अभिव्यक्ति का पथ प्रशस्त करता है। इसी तरह, अधिक ठण्ड या तपती दुपहरी के समय के अतिरिक्त, शेष समय में स्वस्थ बच्चों को पानी के साथ मुक्त रूप से खेलने के लिए छोड़ देना चाहिए। अधिक अच्छा तो यह है कि बच्चे चाहे जैसी गन्दी मिट्टी से खेलें, इसके स्थान पर उन्हें या तो अच्छे स्थान पर खेलने भेजा जाय या फिर घर के आस-पास अथवा आँगन में कहीं अच्छी मिट्टी उन्हें उपलब्ध करा दी जाय। इसी प्रकार पानी से खेलने की सुविधा के लिए बच्चों को स्वच्छ पानी से भरी हुई एक बाल्टी या टब में मनचाहे ढंग से खेलने की छूट दे देनी चाहिए। साथ ही वहाँ कटोरी, गिलास, छोटा-सा साबुन का टुकड़ा, बुलबुले निकालने वाली नली, छोटे-छोटे रबड़ के खिलौने आदि भी रख सकें तो उत्तम। बच्चे को इनके द्वारा पूरी तरह मुक्त होकर खेलने देना चाहिए और उसे इस बात का अलग से ध्यान तो कदापि नहीं दिलाना चाहिए कि उसकी क्रीड़ाओं को बड़े लोग लगातार देख रहे हैं। ऐसे देखने की वैसे भी कतई जरूरत नहीं है। हाँ, पर्याप्त देर पानी से खेल चुकने के बाद बच्चे की गीली पोशाक उतारकर दूसरी सूखी पोशाक जरूर पहना देनी चाहिए। यों, इसी तरह कागज, कार्क, बटन, रिबन आदि से भी बच्चों को मुक्त रूप से खेलने देना चाहिए। परन्तु साथ ही उन्हें इन चीजों का रचनात्मक उपयोग भी सिखाना चाहिए, कागज की नाव बनाना, पतंग बनाना, बटन, रिबन तरह-तरह से सजाना, उनसे फूल-पत्ते, बेल-बूटे आदि बनाने की कोशिश करना सिखाकर, फिर उन्हें टेढ़े-मेढ़े ढंग से वैसे ही अनुकरण या प्रयास करने को छोड़ दिया जाना चाहिए। ऐसे सृजनात्मक खेलों से बच्चों को अनेक लाभ हैं। उनकी कल्पना-शक्ति उर्वर और व्यवस्थित बनती है, साथ ही वे इन सभी वस्तुओं पर अपना एकदम अधिकार अनुभव करते हैं। इससे उनकी आधिपत्य की भावना तुष्ट-पुष्ट होती है।

पानी के साथ खेलने पर बच्चों को कुछ अन्य विशेष लाभ भी होते हैं जैसे कि शान्ति की अनुभूति। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अशान्त शिशु को पानी से स्वच्छन्द क्रीड़ा के बाद गहरी सन्तुष्टि प्राप्त होती है।

कई बच्चों में तिरस्कार और अपमान या लताड़ व उपेक्षा की छोटी-छोटी बातों की आवृत्ति से समाज के प्रति उदासीनता की प्रवृत्ति बढ़ रही होती है। मिट्टी-पानी आदि से खेलने पर ऐसे बच्चों को सुख, आनन्द और सहभागिता का अनुभव होता है और उनमें उदासीनता वाली ग्रन्थि नहीं पनप पाती। कई बार अपने स्वभाव के ही कारण कुछ बच्चे क्रोधी होते हैं, तो कुछ अन्य बच्चे घर में विषम व्यवहार, किसी अन्य भाई-बहिन के प्रति अधिक ध्यान दिये जाने या माता-पिता की अपनी कलह देख-देखकर क्रोधी और चिड़चिड़े हो जाते हैं। पानी से खुलकर खेलने पर, बच्चे की क्रोध की भावना, खेल के बीच ही अभिव्यक्त हो जाती है—कभी वह तेजी से पानी को मुट्ठी में बाँधने की कोशिश करता है तो कभी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मुँह-दाँत भींचता है। पानी से इस प्रकार खेलकर या मिट्टी आदि के खिलौने तोड़-फोड़कर वह क्रोध की भावना अभिव्यक्त कर चुकता है तथा इसके बाद बड़े नाटकीय ढंग से वह सहज मनःस्थिति में आ जाता है। पानी और मिट्टी से खेलते समय या गुड्डे-गुड़ियों के साथ खेलते हुए बच्चे बात करते हैं, इससे उन्हें सन्तोष का अनुभव होता है। पानी से खेलते समय बच्चा अपने ही शरीर से तरह-तरह से खेलने की भी इच्छा की पूर्ति कर लेते हैं और इसी के द्वारा उन्हें अपने अंगों की लोच तथा सामर्थ्य और सीमाओं का भी ज्ञान हो जाता है।

बच्चे जिन खिलौनों से खेलते हैं, वे यदि उनके ही सामने घरेलू उपयोग की चीजों से बनाये जाएँ तो उन्हें यह सब देखकर बहुत अधिक आनन्द आता है। रंग-बिरंगे कपड़ों की कतरनों से जब घर में घोड़े, कुत्ते, खरगोश, बारहसिंघे, ऊँट, जिर्राफ, शेर, चूहा, बिल्ली, नेवला आदि ही नहीं, गुलाब, चम्पा आदि के फूलों की भी अनुकृति बनाई जाती है, तो शिशु चरम उल्लास का अनुभव करते हैं। रंग-बिरंगी गेंदें, पतंगें, नाव आदि भी इसी प्रकार बनाई जा सकती हैं। शिशु जहाँ इन्हें खुद भी बनाने की कोशिश कर प्रमुदित होते और रचनात्मकता का विकास करते हैं, वहीं अपनी सुपरिचित वस्तुओं के इन अनूठे संयोजनों से खेलने का आनन्द ही भिन्न है।

इस प्रकार सहज-सरल और सस्ते-सुलभ साधनों तथा विधियों से शिशु को उन्मुक्त क्रीड़ा का अवसर देकर हम उनमें सृजनशीलता, अनुभव क्षमता, मुक्त मानसिकता, अधिकार भावना, ताजगी, उल्लास, सामाजिक समायोजन, सहयोग, कोमलता, व्यावहारिक दक्षता आदि अनमोल गुणों का विकास करते हैं और क्रोध, खीझ, उदासीनता, कुण्ठा आदि की ग्रन्थियों से मुक्त होने में उनकी मदद करते हैं।

खेलों द्वारा पराक्रम उभारा जाय

साहस, शौर्य, पराक्रम बढ़ाने तथा मनोबल को उभारने की पुरातन परम्परा आखेट की थी। तब राजतन्त्र का, सामन्तवाद का युग था। वन क्षेत्रों का बाहुल्य होने से पशु-पक्षियों की अधिकता थी। प्रायः शिकार हिंसक जीवों का ही किया जाता था। मल्ल युद्धों का, शस्त्र युद्धों का आयोजन भी इसी प्रयोजन के लिए होता था ताकि उपरोक्त लक्ष्य पूरा होता चले। शरीर की बलिष्ठता बढ़ाने के लिए आसन व्यायाम आदि की परम्परा चिरप्राचीन है। आखेटों, शस्त्र संचालन प्रतिस्पर्धाओं में शरीर को मजबूत बनाने लाभ तो मिलता ही था सबसे बड़ा लाभ मनोबल के विकास का प्राप्त होता था।

सभ्यता की उस अर्द्ध-विकसित स्थिति में शरीरबल बढ़ाने तथा मनोबल निखारने के आज जैसे स्वस्थ माध्यम उपलब्ध नहीं थे। खेलों का स्वरूप व्यवस्थित न था। सीमित क्षेत्र की छुटपुट प्रतिस्पर्धाओं में सीमित व्यक्ति ही भाग लेते थे। व्यापक-राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खेल प्रतियोगिताओं का आरम्भ पन्द्रहवीं शताब्दी के बाद हुआ।

उन्नीसवीं सदी के उपरान्त औद्योगिक एवं वैज्ञानिक क्षेत्रों में असाधारण प्रगति हुई। संचार एवं यातायात के सुविकसित साधन उपलब्ध हो जाने से विश्व का दायरा भी सिकुड़कर एक मुहल्ले जैसा हो गया। सुव्यवस्थित अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धाएँ आयोजित करने की परम्परा भी चल पड़ी। खेलों की अनेकानेक धाराओं का विकास भी इस प्रकार सभ्यता के विकास के साथ होता चला गया।

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में वे समस्त साधन मौजूद हैं जिनसे न केवल शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों का विकास कर सकना सम्भव है, वरन् आरोग्य, सन्तुलन, उत्साह, उमंग एवं प्रसन्नता से युक्त मनःस्थिति को प्राप्त करना भी शक्य है। आदिमयुग के आखेट एवं युद्धों से शरीर एवं मन की बलिष्ठता तो बढ़ती थी पर मनुष्य की बर्बरता भी उसी अनुपात में बढ़ती जाती थी। इस दृष्टि से वे माध्यम सभ्य एवं सुसंस्कृत मनुष्य के अनुकूल नहीं हैं। पर खेलों ने उस समस्या का निदान प्रस्तुत किया है। हिंसा जैसी इनमें कोई बात नहीं है, जबकि इनके माध्यम से शौर्य, पराक्रम, मनोबल, शारीरिक बलिष्ठता अर्जित करने के वे सभी प्रयोजन पूरे हो सकते हैं, जो कभी आखेटों तथा बर्बर युद्धों से पूरे होते थे।

शारीरिक योग्यता एवं मानसिक दक्षता प्राप्ति में आहार-विहार, खेल-कूद, व्यायामादि शिक्षण आदि का भी महत्त्व है। व्यक्तिगत स्तर पर इन्हें उपलब्ध करने के लिए प्रयास भी किये जाते हैं। यहाँ उन व्यक्तिगत प्रयत्नों की महत्ता कम नहीं की जा रही है, वरन् यह कहा जा रहा है कि समस्त मानव समुदाय एवं जाति का विकास अभीष्ट हो तो अन्यान्य प्रयत्नों के साथ-साथ खेलों को भी उतना ही महत्त्व देना होगा। किसी जाति अथवा समाज का भविष्य जानना हो तो वर्तमान में उसके जीवनक्रम में यह देखना चाहिए कि उत्साह उमंग की मात्रा कितनी है ? विशेषकर शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर उस जाति अथवा समुदाय के भविष्य का उद्घोष तो किया ही जा सकता है। स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन, सभ्य और प्रगतिशील समाज की संरचना के भी अन्ततः कारण बनते हैं।

मनःशास्त्रियों ने तो खेलों को मन के विकास का एक सुगम और सर्वोत्तम माध्यम माना है। मनोवैज्ञानिक खेलों को स्वेच्छापूर्वक आत्मसंयम एवं आत्मानुशासन की एक प्रक्रिया मानते और कहते हैं कि वह एक ऐसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

उल्लासपूर्ण रचनात्मक प्रक्रिया है, जिससे मनुष्य को आत्माभिमुख होने का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है। आत्माभिमुख वृत्ति का अभाव ही अनेकों प्रकार की मानसिक ग्रन्थियों को जन्म देता तथा अनेक मनोरोगों का कारण बनता है। खेलों में प्रायः किसी प्रकार का बाह्य दबाव नहीं होता। हर व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार खेलता है। श्रम युक्त काम सामान्यतया बोझिल मन से किया जाता है। श्रम करने वाला मनोवैज्ञानिक दबाव भी अनुभव करता है। खेल मनोरंजन तथा आन्तरिक प्रसन्नता के लिए खेले जाते हैं। शारीरिक श्रम तो उनमें भी करना पड़ता है पर उनका स्वरूप भिन्न स्तर का होता है। किसी प्रकार का मानसिक दबाव न होने तथा सदा उत्साह उमंग से भरे होने से वह श्रम थकान नहीं, विकास का माध्यम बन जाता है।

श्री स्पेन्सर के अनुसार अतिरिक्त शक्ति हर बालक किशोर तथा युवक के भीतर भरी होती है, खेलों द्वारा उसे उभरने का अवसर मिलता है। स्टैनली हाल का कहना है कि प्रायः किशोरावस्था में शारीरिक एवं मानसिक आवेग अत्यन्त प्रबल होते हैं। दिशा न मिलने पर वे अवांछनीय दिशा में बह चलते हैं। फलस्वरूप भटकाव शुरू हो जाता है। संवेगों, आवेशों को रचनात्मक दिशा में नियोजित रखने में खेल महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इससे मनोवृत्तियों पर अंकुश रखने तथा उनके परिष्कार का सुअवसर मिलता है।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य के भीतर पशु-प्रवृत्तियाँ कूट-कूटकर भरी हैं। उनकी बुराइयों से छुटकारा पाना कठिन पड़ता है। खेल के द्वारा उनके परिमार्जन एवं सुनियोजन का लक्ष्य पूरा होता है। साथ ही मनुष्य के भीतर आत्म-प्रदर्शन की प्रसुप्त भावना विकृति के रूप में पायी जाती है, जो विकृत होकर अहंकार, द्वेष, ईर्ष्या आदि का रूप ले लेती है। यही अन्ततः सामाजिक कलह एवं विघटन का कारण बनती है। खेलों में आत्म-प्रदर्शन की खुली छूट रहती है। फलतः उन दुर्गुणों को पनपने का अवसर नहीं मिलता। खेल में प्रदर्शन से जो आत्मसन्तुष्टि होती है, उससे मानसिक विकास में भी सहयोग मिलता है।

खेलों की महत्ता एवं असाधारण लाभों को देखते हुए उन्हें प्राइमरी एवं माध्यमिक कक्षाओं में अनिवार्य रूप से सम्मिलित तो किया गया है पर उनमें प्रायः उतनी रुचि बालकों एवं किशोरों की नहीं दिखाई पड़ती, जितनी कि अन्य देशों की नयी पीढ़ी में है। इस सत्य का प्रमाण प्रायः अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाली प्रतिस्पर्धाओं में मिलता है। छोटे-छोटे अल्पविकसित राष्ट्र प्रदर्शन में बाजी मार ले जाते हैं, जबकि भारत का प्रदर्शन कुछ खेलों को छोड़कर अत्यन्त निराशाजनक रहता है। पिछले दिनों हुए एशियाई खेलों के परिणाम सभी के सामने हैं। यह उन देशों की खेलों में गहरी अभिरुचि समुचित प्रारम्भिक स्तर पर शिक्षण प्रक्रिया का ही परिणाम है कि प्रतिस्पर्धाओं में सिरमौर बने रहे, जबकि भारत का प्रदर्शन अपेक्षाकृत निराशाजनक एवं घटिया स्तर का रहा।

पदकों की बात छोड़ दें, तो भी उस उपेक्षा की मनोवृत्ति का परिचय मिलता ही है, जिसके कारण समुचित प्रवीणता हासिल न हो सकी और असफलता हाथ लगी। साथ ही इस बात की भी जानकारी मिलती है कि देश की युवा पीढ़ी में भी उस स्तर के उत्साह एवं उमंग की कमी है। इसे दूर करने के लिए शैक्षणिक एवं सामाजिक दोनों ही स्तरों पर प्रयास करने होंगे। शारीरिक बलिष्ठता एवं मानसिक प्रखरता के बिना भौतिक क्षेत्र में भी प्रगति सम्भव नहीं है। उपरोक्त लक्ष्य की प्राप्ति में एक छोटा-सा शुभारम्भ नयी पीढ़ी में खेलों के प्रति अभिरुचि जाग्रत करने तथा प्रशिक्षण की सही ढंग से विधि-व्यवस्था बनाने के रूप में हो सकता है।

बच्चों को पंगु मत बनाइए

युवक जो किसी भी नये स्थान पर जाने में परेशानी महसूस करते हैं, बचपन का लाड़-प्यार और तज्जनित आरामतलबी की आदत ही उसका कारण है। लाड़-प्यार बाल-विकास के लिए अनिवार्य भी है परन्तु वह विवेकपूर्ण होना चाहिए। प्रायः देखा जाता है कि बढ़ती उम्र के साथ कार्य करने का उत्साह जब कोई बालक दिखाता है तो बड़े और वयस्क सदस्य यह कहकर उसे रोकते हैं—''रहने दें लल्लू तू तो खेल। यह काम हो जायेगा।'' नहाने के बाद कोई बालक अपनी अण्डरवियर भी धोने लगता है तो माता-पिता उसे मना कर देते हैं।

सोचा जाता है काम तो जिन्दगी भर करना है। खेलने, खाने-पीने और मौज-मजा करने का समय बचपन ही तो है। इस उम्र में भी बच्चों को काम में क्यों जोता जाय ? इस धारणा से बच्चों की कार्यक्षमता में अवरोध उत्पन्न होता है। आगे चलकर इस स्थिति में रहने वाले बालक हाथ-पैर होते हुए भी पंगु बन जाते हैं। हालांकि यह सच है कि बचपन खेलने, खाने की उमर है, मौज-मजे और मस्ती की जो सम्भावनाएँ तथा सुविधाएँ बाल्यावस्था में रहती हैं आगे चलकर वे नहीं मिल पातीं। परन्तु इसका मतलब यह तो नहीं कि बच्चों को निष्क्रिय, परमुखापेक्षी तथा दब्बू बना दिया जाय।

बड़े-बड़े वयस्क पुरुष अपने कपड़े भी ठीक से साफ नहीं कर पाते। सभ्यता और शिष्टता से परिपूर्ण कई महिलाएँ अच्छी तरह खाना भी नहीं बना सकतीं। ऐसे लोगों को, जब बचपन में उनके माता-पिता ने कोई भी काम करने से रोका होगा—उसका कारण लाड़-प्यार ही हो सकता है—क्या उन्हें पंगु नहीं बनाया ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों को प्रायः स्कूल भेजा जाता है। उनका अधिकांश समय शिक्षा-दीक्षा और अध्ययन में बीतता है। बाकी समय खेल-कूद, खाने-पीने में बीतता है। उसके बाद भी शेष जो समय बचता है, वह प्रायः आराम करने में व्यतीत होता है। ऐसी स्थिति में उनमें कोई काम करने के लिए कहते वक्त माता-पिता सोचते हैं कि हम ज्यादती कर रहे हैं।

जिन बच्चों को काम करने से रोका जाता है उनमें बहुत-सी अनर्थकारी प्रतिक्रियाएँ होने लगती हैं। वे समझते हैं साधारण काम करना निम्नस्तर का या हेय आदत है जिसके परिणामस्वरूप आगे चलकर उनकी यह आदत स्वभाव का अंग बन जाती है। वे पानी का एक गिलास भी भरकर नहीं पी सकते। बैठे-बैठे पत्नी या नौकर से पानी मँगवा लेते हैं और पी लेते हैं। यह तो उदाहरण मात्र है। ऐसी अनेकों बातें उन्हें बेकार और काम चोर बना देती हैं। किन्हीं-किन्हीं बालकों के मन में आत्महीनता भी घर करने लगती है। वे सोचते हैं कि शायद हम ठीक प्रकार से काम नहीं कर पाते हैं। इसी प्रकार माँ-बाप बड़े प्यार से उन्हें मना करते हैं।

कुछ बच्चे यह सोचने लगते हैं कि काम करना कोई बुरी बात है। साथियों से मार-पीट करते समय या स्कूल न जाने पर माँ-बाप उसी लाड़-दुलार और प्यार से मना करते हैं जैसे कि काम करते वक्त। फलस्वरूप वे काम के प्रति गलत धारणा बना लेते हैं। जो आगे चलकर नौकरों की आवश्यकता और परावलम्बिता की ओर प्रवृत्त करती है।

इसलिए आवश्यक है कि बच्चों को काम करने से रोकने की अपेक्षा कार्यों में भी उनमें सहयोग लेना चाहिए। ऐसे बच्चे आगे-आगे चलकर स्वावलम्बी और किसी पर आश्रित न रहने वाले बनते हैं। इसलिए घर के कामकाज में बच्चों से सहयोग लेते रहा जाय। यह आदत उनके भविष्य के लिए बहुत अच्छी है।

माता-पिता अपने बालक की मनोभूमि तथा स्थिति का ज्ञान तो रखें किन्तु यह न भूलें कि उन्हें भावी सभ्य, सुसंस्कृत, उत्तरदायी नागरिक भी बनाना है। वे सदा बच्चे बनकर नहीं रहते। उन पर व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक व मानवीय कर्त्तव्यों का भार भी पड़ने वाला है। उनमें उसे वहन करने की सामर्थ्य आये, ऐसे क्रमबद्ध प्रयास करते रहना चाहिए।

चाहे जो हो पर बालक आलसी न हो

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक आर. एफ. थामसन ने बालकों की प्रवृत्तियों का लम्बे समय तक बहुत सूक्ष्म अध्ययन किया। 'फाउण्डेशन ऑफ फिजियोलॉजिकल साइकोलॉजी' में उक्त अध्ययन के सार लिखते हुए उन्होंने बताया—बालक में आगे चलकर जितनी भी बुराइयाँ पनपती हैं उनका प्रारम्भ आलस्य से होता है, यदि इस आलस्य की जड़ प्रारम्भ में ही काट दी जाये तो भले ही बालक अशिक्षित रह जाये, पर जीवन में कभी असफल नहीं रह सकता।

जीवन और सक्रियता वस्तुतः एक-दूसरे के पर्याय या यों कहें कि एक ही वस्तु के दो पहलू मात्र होते हैं, उसी तरह आलस्य और अन्धकार भी समानार्थी शब्द हैं, असफलता अन्धकार और दुर्गुणों का भवन आलस्य की नींव पर खड़ा होता है। इससे कुशल माता-पिता इस बात पर अधिक ध्यान रखते हैं कि उसकी सक्रियता नष्ट न होने पावे।

प्रकृति ने बालक को स्वभावतः ऐसा बनाया है कि वह कभी एक क्षण चुप और निष्क्रिय रह ही नहीं सकता। आग को छूना कष्टदायक है, पर उसे इससे क्या मतलब, वह स्पर्श किये बिना मानेगा नहीं, फर्श में पानी भरा है, शीत है, बच्चा पानी में खेलता है तो इसका अर्थ है उसे सर्दी लगे बिना मानेगी नहीं, पर वह भी बिना पानी में छप-छप किये मानेगा नहीं। अपनी इस चंचल प्रकृति के कारण वह बार-बार गिरता है, चोट खाता है, अखाद्य भक्षण करता है, तोड़-फोड़ करता है, सब कुछ करता है, पर वह चुप नहीं बैठ सकता। फिर उसके आलसी हो जाने की आशंका क्यों जन्मी ?

इसका उत्तर 'फाल्ट्स ऑफ चाइल्ड हुड एण्ड यूथ' पुस्तक में उसके लेखक अमरीका के प्रो. एम. वी. ओशिया ने यों दिया है—"बच्चों को आलसी बनाने का काम माता-पिता करते हैं, कुछ अभिभावक बच्चे की सक्रियता में बाधा उत्पन्न करना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनुचित मानते हैं। इसलिए वे यह समझते हैं कि बच्चा जो कर रहा है, उसे करने की पूरी छूट रहनी चाहिए। अपनी इसी मान्यता के कारण वे उसे कुछ भी करने देते रहते हैं, उदाहरण के लिए, वह आग की ओर बढ़ रहा है, उसे न रोकने से भी बच्चा जलेगा और रोकने से भी वह मानेगा नहीं, पर यदि रोका नहीं गया तो उसका साहस नष्ट होगा और भय की भावना पैदा होगी। फिर वह चाहे जो कुछ करने से हिचकिचायेगा, आलस्य की आत्महीनता का यही उद्गम है।

यदि बच्चे को रोकने की समझदारी की गई और बच्चा फिर भी न माना तो वह जलने के बाद भयभीत होने की अपेक्षा अपनी भूल अनुभव करेगा और माता-पिता के आदेशों को अधिक व्यावहारिक मानने का संस्कार विकसित करेगा। इसलिए उसे गलत कार्यों से रोका ही जाना चाहिए अन्यथा भय और अनुशासनविहीनता के विकार उगेंगे, जबकि मना करने से वह अनुशासित होगा, माता-पिता की भावनाओं के पास आयेगा। इससे उसका विकास रचनात्मक दिशा में तेजी से किया जा सकेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरे प्रकार के अभिभावक वे होते हैं जो समझाने, सिखाने और भूल सुधारने की अपेक्षा बच्चे को निरन्तर कोसने और धमकाने में विश्वास करते हैं। इससे भी बालक में निष्क्रियता की ग्रन्थियाँ जड़ पकड़ने लगती हैं। दोनों ही परिस्थितियों में अभिभावकों का मानसिक सन्तुलन और उनकी निरीक्षण बुद्धि का स्थिर रहना आवश्यक है। बच्चों को कुछ भी कहें पर चिल्लाकर न कहें अपितु हितैषी और मित्र के रूप में समझाएँ।

बच्चा अपनी बौद्धिक क्षमताओं और मान्यताओं का विकास भावनाओं के माध्यम से करता है, क्योंकि वह प्रारम्भ में बुद्धि को पकड़ने में जितना असमर्थ होता है उतना ही भावनाओं की दृष्टि से कुशल और संवेदनशील। अपनी भौंयें चढ़ायें तो बालक में निराशा के हाव-भाव झलकने लगेंगे। फिर जब मुस्करा दें बालक के होंठ खिल पड़ेंगे। यह इस बात की साक्षी है कि उसकी प्रकृति भावनाओं की परख में प्रारम्भ से ही सक्षम होती है, यदि भावनाओं पर प्रहार किया गया तो उससे उसकी बौद्धिक क्षमताओं का नष्ट होना स्वाभाविक है। निष्क्रियता यहीं से पनपती है, यहीं से उसमें स्नायविक दुर्बलता के संस्कार जन्म लेते हैं, अतएव बालक को शिष्टाचार सिखाने से लेकर उसकी वर्जना तक में गहरी आत्मीयता का भाव प्रच्छन्न रहे, उभरा हुआ रहे, सीख, आदेश और आज्ञाएँ अनुवर्ती अर्थात् जो भी समझाया, सिखाया जाये उसे आगे बढ़ाने की शक्ति भावनाएँ हों, जो बच्चे में स्नेह, ममता और कल्याण का संचार करती हों।

प्रो. ओशियो के अनुसार इसका रचनात्मक उपाय यह है कि बच्चे में प्रारम्भ से ही छोटी-छोटी महत्त्वाकांक्षाएँ जाग्रत की जायें। जैसे—खिलौने क्रम से रखना, कुर्सी, मेजें क्रम से रखना, उसके कपड़े क्रम से सजाकर रखना इससे उसमें सुरुचि की महत्त्वाकांक्षा जगेगी। उसे बगीचे में ले जायें स्वयं क्यारी की गोड़ाई करें और बच्चे को कहें वह पास रखी पौध उठा दे। इस बीच उसमें पौधों में लगने वाले फूलों की सुन्दरता के प्रति जिज्ञासा भरें, उनका गुणगान करें उससे घर की सुन्दरता और सजावट का स्मरण करायें।

पुस्तकों को अच्छी तरह रखना, वेष-विन्यास व्यवस्थित रखना इनसे बच्चे की रचनात्मक सक्रियता विकसित होती है। इसे आगे चलकर दूसरी भौतिक उन्नति की दिशाओं की ओर अग्रेषित किया जाये। ऐसे बालकों की आलसी प्रवृत्ति अपने आप समाप्त हो जायेगी।

कई बार बालक बार-बार सिखाने और समझाने से भी नहीं मानता तो इसका अर्थ उसका बालहठ न माना जाये। प्रकृति संवेदनशील ही नहीं, सरल भी होती है, बच्चों की सरलता तो अभी रोने, अभी हँस देने जैसी विलक्षण होती है उसके 'हठ' को चरम स्थिति की संज्ञा देना मनोवैज्ञानिक त्रुटि या रूढ़िमात्र है। बच्चा हठ दो ही परिस्थितियों में करता है, एक तो तब जब उसे कुछ कष्ट हो और उसे दी जा रही शिक्षा या दिशा उससे विपरीत हो। यह समय अपने लिए सबसे बड़ी परीक्षा का होता है, क्योंकि प्रायः अभिभावक यहीं फिसलकर उसे दण्ड दे बैठते हैं, जो क्रमशः भय और निष्क्रियता का साधक हो जाता है।

कई बार बालक के संस्कार उसके बिल्कुल ही अनुरूप नहीं होते। कई बच्चों को केले बहुत पसन्द होते हैं, कई को बिल्कुल नापसन्द। ऐसी स्थिति में बालक को हठी होने का दोष दे सकते हैं तो क्या यह अपना भी हठ न होगा कि हम उसे जबर्दस्ती वही चीज दें। ऐसी परिस्थिति में बालक की मनोभूमि के अनुरूप सहयोग प्रदान करना उचित रहता है। बच्चा डाक्टर ही बने इस पूर्वाग्रह की अपेक्षा यदि उसमें सैनिक के गुण हैं तो उसे उस तरह की परिस्थितियाँ देने में कंजूसी नहीं की जानी चाहिए। जब अभिभावक यही दिशा देने में पूर्वाग्रह दिखाते हैं, तभी बच्चे में निष्क्रियता की ग्रन्थि पनपती है। अतएव दोनों ही प्रकार से बच्चे को दबाव मुक्त रखकर सक्रियता जगायी जाये, यही उचित है, यही व्यावहारिक।

बच्चों को अनुशासन कैसे सिखाएँ?

अनुशासन में रहने का अर्थ है—मर्यादाओं में रहते हुए आगे बढ़ने का प्रयत्न करना। मर्यादाएँ इसलिए निर्धारित की जाती हैं कि मनुष्य अपनी शक्तियों का उपयोग दूसरों को हानि पहुँचाये बिना अपने लाभ के लिए करता रहे। नदी जब तक मर्यादा में रहती है, तब तक उसका सौन्दर्य दर्शनीय बना रहता है और प्रवाह भी लोगों को प्रेरणा देता है और जब नदी अपनी मर्यादा को तोड़कर मनमाने ढंग से आगे बढ़ती है तो उसका प्रवाह विध्वंस उत्पन्न करता है तथा उसकी सुन्दरता भी जाती रहती है। नदी के प्रवाह को मर्यादाओं में बाँधकर लाखों एकड़ जमीन सींच ली जाती है और मर्यादाओं को तोड़ता हुआ नदी का प्रवाह प्रलय की-सी स्थिति बना देता है। अनुशासन की, मर्यादाओं की आवश्यकता जीवन में इसीलिए पड़ती है कि अपने व्यक्तित्व को प्रवाहपूर्ण, प्रगतिगामी और दूसरों के हितों को अनाघाती बनाये रखा जा सके।

स्वयं ही जो अनुशासित रहते हैं, अपनी मर्यादाओं में बँधे रहकर जीवन व्यतीत करने का महत्त्व समझते हैं और आत्मानुशासन की कला जानते हैं वे दूसरों के भी श्रद्धा-पात्र बनते हैं तथा स्वयं भी अबोध रूप से प्रगति करते रहते हैं, और जो अनुशासन में नहीं रहते, उन्हें समाज दण्ड तथा दमन द्वारा दूसरों के हितों पर चोट करने से रोकता है। आत्मानुशासन जहाँ आदर्श है वहीं दूसरों के द्वारा किया गया, अनुशासन उतना सम्मानजनक नहीं है। मर्यादाओं में रहने और अनुशासनपूर्वक जीवन व्यतीत करने की कला बचपन से ही सिखानी चाहिए। माता-पिता बच्चों को योग्य बनाने के लिए हर सम्भव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयत्न करते हैं, चाहते भी हैं कि उनके बच्चों का व्यक्तित्व विकसित और प्रगतिगामी बनें, पर उन्हें अनुशासन में रहने की कला सिखाने का दायित्व कुछ ही अभिभावक पूरा करते हैं।

बच्चों को अनुशासन न सिखा पाने के कारण उद्दण्डता, उच्छृंखलता, ढीठपन और अनगढ़ता जैसी विकृतियाँ पनपने लगती हैं। दूसरे तो ऐसे बच्चों की शिकायत करते ही हैं, माँ-बाप भी उनकी हरकतों के कारण दुःखी रहा करते हैं। अतः यह उचित है कि बच्चों को आरम्भ से ही अनुशासन में रहना सिखाया जाये और इस ढंग से सिखाया जाये कि वे आत्मानुशासन की योग्यता अर्जित कर लें। इस तरह बच्चों को आत्मानुशासन में रहना सिखाने के लिए बच्चों के साथ बच्चों के स्तर का व्यवहार करना बहुत जरूरी है। इसका अर्थ यह है कि हमारा प्रयोजन भी पूरा हो जाय और बच्चों के चित्त पर उसकी गलत प्रतिक्रिया भी न हो।

उन्हें अनुशासन में रखने की प्रचलित पद्धति यह है कि या तो उन्हें आज्ञाकारी बनाने की चेष्टा की जाती है या फिर एकदम आवारा और उच्छृंखल बन जाने के लिए छोड़ दिया जाता है। महज आज्ञाकारी बनाने के ही प्रयत्न बच्चों को अनुशासन में रहना नहीं सिखाते, वरन् उन्हें पराधीन बनाने का कारण ही अधिक बनते हैं। अबोध और नासमझ बच्चों से हम यह आशा करें कि वह हमारी आज्ञाओं का अक्षरशः पालन करें और इस दिशा में हमारे प्रयत्न सफल भी हो जाएँ तो बच्चे आज्ञाकारी बन जायेंगे लेकिन उनमें स्वतन्त्र बुद्धि का विकास अवरुद्ध हो जायेगा। जो जीवन भर एक अभिशाप की तरह उसके पीछे लगा रहेगा। ऐसे कई क्षण आते हैं जब स्वतन्त्र निर्णय लेने की आवश्यकता पड़ती है। केवल आज्ञाओं का ही पालन करते रहे तो बच्चे बड़े होकर ऐसे अवसरों पर अपने मित्रों तथा शुभचिन्तकों के मोहताज बन जायेंगे। उनके परामर्श से ही कोई कदम उठाएँगे अन्यथा जहाँ के तहाँ ही पड़े रहेंगे।

बच्चों को अवज्ञाकारी और उद्दण्ड तो नहीं बनाया जाय पर मात्र आज्ञाकारी बनाये रखकर स्वतन्त्र निर्णय लेने की क्षमता को भी पंगु न बना दिया जाय। अक्सर लोग अपने बच्चों को आज्ञाकारी और सही राह पर लाने के लिए एक ही तरीका अपनाते हैं और वह तरीका है मारने, पीटने, डाँटने-डपटने तथा सजा देने और दण्डित करने का, मार-पीट और डाँट-डपटकर बच्चों को किसी काम से रोकने या किसी काम में लगाने का तरीका आम प्रचलित है। लेकिन यह तरीका अव्यावहारिक है और बच्चों में ढीठता उत्पन्न कर देता है। मार के डर से बच्चा शुरू-शुरू में लगाये गये बन्धनों और दिये गये निर्देशों का पालन करता है, पर जैसे-जैसे वह समझदार होता जाता है, वह गलती कर उसे छुपा लेने का रास्ता ढूँढ़ लेता है या गलती करने पर पिटते-पिटते मार खाने का अभ्यस्त हो जाता है। फिर उसे पिटाई का भी कोई डर नहीं रहता। वह सोचता है, माँ-बाप थोड़ा-बहुत मार लेंगे, इससे ज्यादा कुछ होगा तो नहीं। प्रतिबन्धित काम को करने का। मजा इस रोज के क्रम से डरकर क्यों छोड़ा जाय ? मार-पीटकर या सजा देकर बच्चों को सुधारने, उन्हें अनुशासनप्रिय बनाने का नियम पुराना भी पड़ गया है और अव्यावहारिक भी सिद्ध हुआ है, क्योंकि इस तरह सुधारने के प्रयत्नों से बच्चों में सुधार तो आता नहीं, दूसरी कई बुराइयाँ आ जाती हैं और उसका व्यक्तित्व संकुचित तथा अविकसित रह जाता है सो अलग।

बाल-मनोविज्ञान का यह एक सुनिश्चित सिद्धान्त है कि बच्चा किसी भी बात को स्थायी रूप से तभी ग्रहण कर पाता है, जब वह उसके सम्बन्ध में सोचता है और इस निर्णय पर पहुँचता है कि ऐसा करना अच्छा है। उदाहरण के लिए, घर का कोई बच्चा आवारा घूमता है तो घर के लोग लाख मना करें पर वह मानता नहीं। खीझकर उसकी पिटाई भी हो जाती है, माँ चिल्लाती है, पर वह आवारा घूमना बन्द करने की अपेक्षा और बढ़ा देता है। न उसका घर में मन लगता है और न पढ़ने में जी लगता है। मारपीट से भयभीत होकर वह कुछ समय के लिए ऐसा करना छोड़ भी दे तो पिटाई की बात भूलते ही पुनः वह क्रम शुरू कर देता है। अर्थात् मार-पीट का उस पर कोई असर नहीं होता। इसके विपरीत उसके ध्यान में यह बात उतारी जाय कि ऐसा करना गलत है, आवारा घूमना खराब है, माँ का कहना न मानना बुरा है और वह इस बात को समझ ले तो तुरन्त उस पर अमल करना शुरू कर देता है। मार-पीट के द्वारा बच्चे की किसी भी बुरी प्रवृत्ति को स्थायी रूप से रोक पाना सम्भव नहीं है।

अतः बच्चे को अनुशासन में रखने के लिए यह आवश्यक है कि उसके साथ मार-पीट न की जाय और न ही उसे डाँटा-फटकारा जाय, बल्कि उसे जिस दिशा में लगाना है और जिस काम में प्रवृत्त करना है, उसकी उपयोगिता और महत्ता समझायी जाय। जब बालक किसी काम या आदत के सम्बन्ध में भली-भाँति समझ लेता है और उसके महत्त्व या हानिकारकता को जान लेता है, तो उसी के अनुसार उस दिशा में प्रवृत्त अथवा निवृत्त हो जाता है।

बालक को अनुशासन सिखाने के लिए यही सिद्धान्त आधार बनाकर चलना होगा। अगर हम चाहते हैं कि बच्चा हमारा आज्ञाकारी बने, जो बात हम कहें वह उसकी उपयोगिता को समझे, स्वीकार करे तथा उसी के अनुसार आचरण करे तो हमें पहले उसका श्रद्धास्पद बनना होगा। जोर-जबर्दस्ती से बच्चे आपके आदेश को मान लेंगे, उस समय वैसा आचरण भी कर लेंगे, पर जोर-जबर्दस्ती का जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एहसास उन्हें रहेगा वह उसके मन में आपके प्रति विद्रोह के बीज बोयेगा। यह विद्रोह आगे चलकर बड़ा होने पर फूटेगा। यही कारण है कि बचपन में कठोर नियन्त्रण में रखे गये बच्चे जवान होने पर सबसे अधिक उपेक्षा और अवज्ञा अपने माता-पिता की ही करते हैं।

बालकों के लिए श्रद्धेय बनने का एकमात्र उपाय है—मधुर स्नेह की अभिव्यक्ति। प्रश्न उठता है कि कौन माता-पिता अपने बच्चों से घृणा करते हैं और उनका बुरा सोचते हैं ? सवाल इस बात का नहीं है। सवाल तो यह है कि बच्चा आपके स्नेह और शुभचिन्तन को अनुभव भी करते हैं या नहीं। बच्चों के प्रति हृदय में स्नेह रखते हुए बाहर से यदि कठोर ही बना जाय तो उसकी कोई अच्छी प्रतिक्रिया नहीं होती; पर अधिकांश माता-पिता इसकी परवाह किये बिना साधना-स्तर के इस मार्ग के झंझट में न पड़कर सजा देकर बच्चों को सबक सिखाने और सुधारने के प्रयत्न को सीधा और सरल मार्ग समझते हैं। इससे बच्चों में कोई सुधार तो होता नहीं, माता-पिता अपने प्रति बच्चों की श्रद्धा भी खो बैठते हैं।

प्रायः बच्चों को लेकर यह शिकायत की जाती है कि वे समय पर नहीं उठते, न समय पर पढ़ते हैं, अस्त-व्यस्त और फूहड़पन से रहते हैं। इन बातों को लेकर भी बच्चों से कठोर व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए। बच्चों के लिए दिनभर का एक कार्यक्रम निश्चित कर उस पर चलने का अभ्यास कराया जाना चाहिए। इससे उनके जीवन में नियमितता और निश्चितता आती है। जब बच्चा थोड़ा-बहुत समझने लग जाय तो उसकी मोटी-सी दिनचर्या बनाकर तदनुसार ऐसे अपना दिन व्यतीत करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। लेकिन स्मरण रहे दिनचर्या के इस निर्धारण में बालक को भी महत्त्व दिया जाय, उसकी राय ली जाय। इस प्रकार उन्हें अपने ही बनाये नियमों का पालन करने में और भी उत्साह का अनुभव होगा।

समझ और ज्ञान का अभाव सभी बच्चों में होता है। इससे वे गलतियाँ भी कर बैठते हैं। कई लोग यह सोचकर इस ओर ध्यान नहीं देते कि बच्चे ही तो हैं, आज नहीं तो कल सीख जायेंगे। यह नीति खतरनाक है। तुरन्त बालक की भूल को सुधार देना आवश्यक है, अन्यथा बच्चा अपनी गलती को कभी नहीं समझेगा और उसे बार-बार दुहराता रहेगा। अभ्यास पड़ जाने पर ऐसी त्रुटियों को सुधार पाना बड़ा कठिन और कष्ट-साध्य हो जाता है। अतः बालक जब पहली बार कोई गलती कर रहा हो या जब भी आपके ध्यान में उसकी गलती आ गयी है, तुरन्त उसके लिए प्रेमपूर्वक समझाना चाहिए। जैसे बच्चा माचिस से खेल रहा हो और उसे जलाने की चेष्टा कर रहा हो तो उसे तुरन्त समझाना चाहिए कि— "बेटा इससे आग लग जाती है। इससे नहीं खेलना चाहिए। खेलने के लिए तो खिलौने हैं। तुम खिलौने से खेला करो।" इसके बाद उसे खिलौने से खेलने में लगाकर अलग हो जाना चाहिए। बच्चे ने माचिस से खेलने के परिणाम से अवगत होकर एक नयी जानकारी हासिल की तथा उसने अपनी एक गलती को भी सुधार लिया।

जिन वस्तुओं से बच्चों को खतरा है या बेकीमती हैं और उनसे खेलते हुए बच्चा उनका नुकसान कर सकता है, तो उन्हें बच्चों की निगाह चुकाकर ऐसे स्थान पर रख देना चाहिए, जहाँ उसकी निगाह न पहुँचे। एकदम सीधे-सीधे मना करने पर बच्चा मानता नहीं है। अतः वह चीज छुपाकर रखने से पहले बच्चे का ध्यान खिलौनों से खेलने या अन्य कार्यों में लगा देना चाहिए। वस्तुतः नकारात्मक आदेश बच्चे मान भी नहीं सकते। बड़े तक तो निषिद्ध स्थानों पर जाने के लिए ललक उठते हैं, मना करने पर उस विषय के सम्बन्ध में जिज्ञासा करने लगते हैं, तो बच्चे तो फिर बच्चे ही हैं, उन्हें कैसे रोका जा सकता है ? इसलिए मना करने की नौबत आये इससे पहले ही उन कारणों को दूर कर देना चाहिए, जिनसे प्रेरित होकर बच्चा उस ओर प्रेरित होता है। बार-बार बात-बात में मना करने पर बालक की एकाग्रता और मनोयोग में बाधा आती है। उसका जीवन निराशाजनक विचारों से घिरने लगता है। अतः उस समय तक जब तक कि बच्चे से 'न' कहने के अलावा कोई चारा नहीं रहता, उसे मना नहीं करना चाहिए। हाँ, समझा-बुझाकर रोका जा सकता है।

बच्चों को अनुशासन सिखाने के लिए काफी सूझ-बूझ से काम लेना पड़ता है। लोग मिट्टी के बर्तन बनाने से लेकर उन्हें उठाने-धरने तक में बड़ी सावधानी बरतते हैं। पर यह आश्चर्यजनक है कि जीते-जागते व्यक्तित्वों का निर्माण करते समय, उतनी भी सावधानी की जरूरत महसूस नहीं करते और उन्हें ऊट-पटांग ढंग से नियन्त्रित करते तथा स्वच्छन्दतापूर्वक बनने-बिगड़ने के लिए छोड़ देते हैं। बच्चों को क्रोध, खीझ, झुँझलाहट और चिढ़कर भी कुछ नहीं सिखाया जा सकता, तो अपने आप सीखने के लिए छोड़कर भी उसके व्यक्तित्व की हत्या ही की जाती है। स्वयं अनुशासन में रहते हुए बच्चों को अनुशासन में रहना सिखाया जाय तो उनका व्यक्तित्व निर्मित करने में पूर्णतया सफल हुआ जा सकता है। इससे कोई दो मत नहीं हैं।

बच्चे सेवाभावी कैसे बनें ?

जिन बच्चों में प्रारम्भ से ही सेवा-भावना के विकास की ओर ध्यान दिया जाता है, वे आगे चलकर अपनी सेवा-भावना और सत्कार्यों द्वारा समाज में प्रतिष्ठा और लोगों का स्नेह अर्जित करते हैं। सेवा एक ऐसी वृत्ति है, जिसकी आवश्यकता हर किसी को जीवन में कभी न कभी पड़ती रहती है। बिना किसी का सहयोग प्राप्त किये जीवन में एक भी कदम आगे नहीं बढ़ाया जा सकता,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर उस सहयोग का कुछ न कुछ प्रतिदान अवश्य चुका दिया जाता है। सेवा एक ऐसा सहयोग है, जिसके लिए न तो प्रतिदान की आवश्यकता पड़ती है और न उसमें सेव्य से कृतज्ञता व्यक्त करने, ऋणी मानने अथवा उसका कोई मूल्य चुकाने की आशा की जा सकती है।

किसी वृद्ध व्यक्ति को सड़क पार करवा देना, अपरिचित और अनजान आदमी को उसके गन्तव्य स्थान पर पहुँचा देना, गिरे हुओं को उठाना और चोट खाये को सहलाना ये ऐसे छोटे-छोटे काम हैं, जिनके लिए किन्हीं साधनों की आवश्यकता नहीं पड़ती। उच्चस्तर पर व्यापक रूप से सेवा कार्य अपनाकर हजारों लोग महानता के शिखर पर पहुँचे हैं। इस प्रकार महानता के शिखर पर पहुँचने वाले व्यक्तियों में ऐसे महामानवों की संख्या बहुत बड़ी है, जिनके पास साधन या सुविधा नाम की कोई वस्तु नहीं थी, वे शिक्षित और सम्पन्न परिवार के भी नहीं थे फिर भी उन्होंने सेवा और केवल सेवा द्वारा लोगों के हृदय में अपना स्थान बनाया।

महान बनने का लक्ष्य न भी रखा जाय तो भी सेवा का अपना महत्त्व और वह सामान्य जीवन में आश्चर्यजनक परिणाम प्रस्तुत करती है तथा सहयोगी परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं। तन, मन और वाणी द्वारा हर किसी को सेवा के लिए प्रस्तुत रहना अपने आप में एक इतना बड़ा साधन है कि उसके होते हुए अन्य किसी दूसरे साधन की आवश्यकता नहीं रहती। साथ ही अन्य दूसरे साधन सेवा के अनुगामी बन जाते हैं। सेवा का महत्त्व समझ लेने के बाद वह जान-लेना आवश्यक है कि सेवा का स्वरूप है क्या ?

सामान्यतः सेवा के दो स्वरूप हैं—एक तो यह कि अपनी सुख, सुविधा और आराम के लिए बच्चों से सेवा ली जाय। जैसे लेटकर थकान दूर करने या नींद लेने के लिए हाथ-पैर दबाना, शरीर की मालिश करवाना, घरेलू कामों में बच्चों की मदद लेना। बच्चों से इस तरह की सेवा लेने का अधिकार माता-पिता को है, पर अभिभावकों को उनकी सेवा अधिकार समझकर नहीं लेनी चाहिए, वरन् इस उद्देश्य से उनको सेवा के लिए प्रेरित करना चाहिए कि उनमें परोपकार की भावना जाग्रत हो सके।

इसका प्रारम्भ घर की व्यवस्था ठीक करते समय उनसे छोटी-मोटी चीजें उठवाने, छोटे भाई-बहिनों को पढ़ना-लिखना सिखाने, उन्हें स्कूल ले जाने के लिए सहयोग देने जैसे कामों से कराया जा सकता है। इस तरह के प्रारम्भ से बच्चों में सेवा की भावना का विकास तो होता ही है उनका प्रशिक्षण भी हो जाता है।

दूसरे प्रकार की सेवा में विपत्ति के समय सहायता करने, किसी काम में सहयोग देने और दुःख बँटाने के रूप में की गई सेवा आती है। असामान्य दुःखद घटनाओं में दौड़ पड़ने, ब्याह-शादी जैसे उत्सवों में हाथ बँटाने, रोगादि कष्ट के समय औषधि उपचार का ध्यान रखने और कष्टप्रद प्रसंगों के आने पर शान्ति रखने तथा धीरज बँधाने के लिए किये गये प्रयास भी सेवा की श्रेणी में आ जाते हैं। स्वतः इस तरह का आचरण कर और यथासम्भव बच्चों को अपने साथ रखकर उन्हें सहयोग, सहानुभूति का क्रियात्मक प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

इस प्रकार के प्रशिक्षण और अभ्यास कराने में बच्चों को उस तरह की प्रेरणा भी देनी चाहिए, जिससे वे परोपकार और सेवा का महत्त्व समझ सकें। इस तरह का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक प्रशिक्षण कथा-कहानियाँ सुनाकर, महापुरुषों के जीवन की घटनाएँ सुनाकर भी किया जा सकता है। खोजने पर ऐसी सैकड़ों कहानियाँ और संस्मरण मिल सकते हैं; जिनके द्वारा बच्चों को सेवा, परोपकार की प्रेरणाएँ दी जा सकती हों। ऐसी पत्र-पत्रिकाएँ लाकर भी पढ़ाई जा सकती हैं, जो बच्चों के लिए निकलती हैं उनसे उनका पर्याप्त शिक्षण होता है। यूँ तो बच्चों को स्कूल में अध्यापकों तथा पाठ्य-पुस्तकों द्वारा सेवा, परोपकार की शिक्षा दी जाती है, पर उस शिक्षा का यथार्थ लाभ इसलिए नहीं मिल पाता कि वे नितान्त औपचारिक और रस्मी उपदेश भर होते हैं। उनके साथ हार्दिकता का पुट न होने के कारण वह बच्चों को ठीक ढंग से प्रभावित नहीं कर पाती। बच्चों को चरित्रवान और परोपकारी बनाने के लिए अभिभावकों को अपना दायित्व अनुभव करना चाहिए क्योंकि भावनात्मक रूप से वे ही बच्चों के अधिक निकट होते हैं।

कई अभिभावक बच्चों को प्रलोभन देकर उनसे अपना काम करवाने की नीति अपनाते हैं। जैसे वे कहते हैं—'तुम एक घण्टे तक मेरे पैर दबाओ, मैं तुम्हें पच्चीस पैसे दूँगा।' या 'मेरा अमुक काम कर दो, तो तुम्हें वह चीज लाकर दूँगा।' इस प्रकार प्रलोभन देकर काम कराने से बच्चों में स्वार्थ की भावना बढ़ती है और वे आगे चलकर किसी संकटग्रस्त की सहायता करते समय पहले अपना फायदा सोचते हैं। यद्यपि अभिभावकों में इस तरह की भावना नहीं होती कि वे बच्चों को स्वार्थी बनायें। इस तरह का प्रस्ताव करते समय वे यही सोचते हैं हम बच्चों के प्रति अपना स्नेह व्यक्त कर रहे हैं, पर उनकी प्रतिक्रिया होती उल्टी है और वे हर जगह, हर व्यक्ति से अपनी सेवा का मूल्य प्राप्त करने की अपेक्षा रखने लगते हैं।

बच्चों में हर तरह के संस्कार होते हैं, सामाजिक प्राणी होने के नाते उनमें सेवा और सहयोग के संस्कार भी सहज ही होते हैं। किन्तु उन्हें जाग्रत करने के लिए अभीष्ट प्रयास नहीं होते इसलिए वे दबे ही पड़े रहते हैं। अभिभावक यदि चाहें तो बच्चों में सेवा-भावना का अच्छी तरह विकास कर सकते हैं। इसलिए कि माता-पिता की बातों को बच्चा प्रामाणिक समझता है और उनका विश्वास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करता है। बच्चा यह भी सोचता और मानता है कि हमारे माता-पिता जो भी कुछ कर रहे हैं, उसमें हमारा हित ही निहित है। यहाँ माता-पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चों में निःस्वार्थ भावना का विकास ही करें।

पुरस्कार या प्रोत्साहन स्वरूप कुछ दिया तो जा सकता है, पर वह प्रलोभन या मूल्य देने की तरह न हो। यदि पहले से देने की शर्त रखी जाती है तो बच्चा प्रलोभनवश सेवा करता है और नियमित रूप से कुछ दिया जाता है तो वह समझने लगता है कि बदले में कुछ न कुछ जरूर मिलता है। इसलिए उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए कभी प्रशंसा, कभी शाबाशी और कभी पुरस्कार देकर उन्हें प्रोत्साहित किया जा सकता है।

कोई पुरस्कार या मूल्य न चाहने वाले बच्चे सबको प्यारे लगते हैं। यह समझाते हुए बच्चों को बताना चाहिए कि हर घड़ी सेवा के लिए तत्पर रहने वाले बच्चों के प्रति सभी के हृदय में आशीर्वाद तथा स्नेह उमड़ता है। ज्यों-ज्यों सेवाकार्य का क्षेत्र बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उसी अनुपात से सेवा द्वारा लाभान्वित होने वाले व्यक्तियों की सद्भावनाएँ बढ़ने लगती हैं। ये बातें शुद्ध सिद्धान्त की अपेक्षा कथा-कहानियों द्वारा ही अच्छी तरह समझी जा सकती हैं।

बच्चों का सेवा-भावी बनने का प्रशिक्षण देने के साथ-साथ उनमें निःस्वार्थ भावना के संस्कार भी डाले जाने चाहिए। इस तरह सेवा करने से बच्चों का दिनोंदिन उत्साह बढ़ता है। पूर्वोक्त प्रकार से प्रलोभन या मूल्यदान देने पर बच्चों में स्वार्थ की भावना बढ़ती है और आगे चलकर जब उनकी सेवा का मूल्य प्राप्त नहीं होता तो वह सेवा उनके लिए बोझ बन जाती है।

'सेवा' जैसे पवित्र गुण सभी के लिए आवश्यक एक दिव्य विशेषता है। क्या ही अच्छा हो यदि बच्चों में यह विशेषता विकसित करने के लिए आरम्भ से ही प्रयास किये जाएँ।

आज्ञाकारी ही नहीं, बच्चों को आत्म-विश्वासी बनाएँ

माता-पिता अपनी सन्तान से यह अपेक्षा करते हैं कि वह उनकी आज्ञाओं का पालन करें। आज्ञाकारी सन्तान की अपेक्षा सभी अभिभावक रखते हैं और बच्चे भी सहज श्रद्धावश अपने माता-पिता का कहना मानते हैं। बच्चों के लिए इस संसार के लगभग सभी अनुभव नये और पहले ही होते हैं। उनके कारण बच्चों को कोई हानि न हो, उसमें कोई ऐसे दोष-दुर्गुण न आ जाएँ जिनके कारण वह कुमार्गगामी बन जाय। इसके लिए अभिभावकों द्वारा बच्चों का मार्गदर्शन भी किया जाना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में यदि कतिपय सावधानियों और सतर्कताओं का ध्यान रखा जाय तो बच्चे में आज्ञाकारिता के साथ-साथ अनुशासननिष्ठा, मर्यादा, परायणता और बड़ों के प्रति सम्मान की भावनाएँ विकसित होती हैं, किन्तु कई मर्तबा अभिभावक अपने बच्चों को बात-बात में आज्ञाएँ देकर उनके व्यक्तित्व को स्वतन्त्र रूप से विकसित होने में स्कूल के किसी कार्यक्रम में भाग लेना हो अथवा खेलकूद में प्रतियोगी बनकर हिस्सा लेना हो, तब भी वे अपने माता-पिता की अनुमति से ही कोई निर्णय ले पाते हैं। देखने-सुनने में यह एक छोटी-सी बात है, पर स्वतन्त्र निर्णय लेने की क्षमता का अभाव उनके व्यक्तित्व में एक कमजोरी बनकर पैठ चुका होता है और यह कमजोरी अभिभावकों द्वारा उन पर किये कठोर नियन्त्रण, कठोर शासन के फलस्वरूप ही आती है।

बच्चे उद्दण्ड तो न बनें, नहीं ऐसा कोई कार्य उनसे हो जिसको देखकर यह लगता हो कि वे बड़ों की अवहेलना करते हैं, उनके अनुभवों या परामर्शों से कुछ सीखना नहीं चाहते। परन्तु उन्हें बड़ों पर इतने ज्यादा आश्रित भी नहीं रहना चाहिए कि उनका कोई व्यक्तित्व ही न बन सके। स्पष्ट है कि बच्चों से इतनी समझदारी की अपेक्षा तो नहीं की जा सकती।

आज्ञाकारिता एक अच्छा गुण है। इसीलिए परिवार में उन्हीं बच्चों का सर्वाधिक लाड़-लड़ाया जाता है जो अपने से बड़ों की हर बात मान लेता है और उनके आदेशों की अवहेलना नहीं करता किन्तु यह अधिक लाड़-प्यार कई बार बच्चे को दब्बू भी बना देता है। ऐसे बच्चे लाड़-प्यार या उपहार के प्रलोभन में आकर हर काम माँ से पूछकर करने लगते हैं, उसी के पास बैठा रहता है, वह जो कपड़े पहनने को देती है, उन्हें ही पहनता और जो खाना वह खिलाती है, वही खा लेता है। कहने का अर्थ यह है कि बालसुलभ चपलताओं को छोड़कर इस प्रकार प्रलोभनों से आज्ञाकारी बनाये बच्चे अपने माता-पिता पर ही अवलम्बित रहने लगते हैं।

प्रलोभन के अतिरिक्त बच्चों को मार-पीटकर उन्हें डरा-धमकाकर भी आज्ञाकारी बनाया जाता है। स्वभाव में दब्बूपन इस कारण भी आ जाता है और ऐसे बच्चे की अपनी स्वतन्त्र बुद्धि विकसित नहीं हो पाती। कहा जा चुका है कि आज्ञाकारिता एक अच्छा गुण है, किन्तु उसमें अच्छाई तभी तक है जब तक कि उससे बच्चे का विकास होने में सहायता मिलती रहती हो, उनकी इच्छा और आवश्यकता को नजर-अन्दाज करते हुए जब उन्हें बात-बात में आदेश दिये जाने लगते हैं, तो उन पर शासन किया जाने लगता है, डाँट, फटकार या लाड़-प्यार से डरा-धमकाकर अथवा लालच देकर उन्हें अपने इच्छानुवर्ती बनाया जाने लगता है तो उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व विकसित होना बन्द कर देता है।

ऐसे कई युवक और कई किशोर हैं, जो उन विषयों में भी कोई निर्णय नहीं ले पाते, जिनके लिए वे स्वयं अच्छी तरह सोच-समझ सकते हैं और किसी निर्णय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर पहुँच सकते हैं। कई बार तो ऐसे किशोरों को अपने साथियों के बीच में हास्यास्पद स्थिति का भी सामना करना पड़ता है। इसका कारण है, उन पर आवश्यकता और औचित्य की सीमा से बाहर का नियन्त्रण। बच्चों के व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए आवश्यक है कि अभिभावकों का मार्गदर्शन मिलता रहे, परन्तु यह होना चाहिए परामर्शपूर्ण। जिससे कि बच्चा केवल माता-पिता का कहना मानना ही पर्याप्त न समझने लगे वरन् किसी भी विषय के प्रत्येक पक्ष को अच्छी तरह समझने भी लगे। जिम्मेदारी की भावना उत्पन्न करने के लिए बच्चों से छोटे-मोटे काम भी कराते रहा जा सकता है। प्रायः अभिभावक बच्चों से वह काम कराने की आशा भी करते हैं, जिन्हें करना उनके वश की बात नहीं है, उस समय बच्चों को आज्ञाकारी बनाने, उनमें जिम्मेदारी की भावना उत्पन्न करने के स्थान पर यही भावना रहती है कि हम बच्चों का शासन करें।

आयु, स्थिति में छोटा होने पर बच्चों को अपना शासित समझना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं हो सकता है, यदि अभिभावक उनका भविष्य बनाना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। बचपन में जो शिक्षा दी जाती है, बच्चों में जो संस्कार डाल दिये जाते हैं, वे सारे जीवन की धरोहर बनकर उन्हें प्रभावित करते हैं। केवल शासित, यन्त्र अथवा कठपुतली बनकर ही नहीं, उनमें कई और तरह से भी व्यक्तित्व की कमजोरियाँ उत्पन्न होती हैं।

उदाहरण के लिए, कई व्यक्ति हीनता की ग्रन्थि से जीवन भर मुक्त नहीं हो पाते। वह हीनता आर्थिक स्थिति को लेकर हो अथवा कुल और विद्या की स्थिति को लेकर हो। निम्न एवं मध्यवर्ग के माता-पिता प्रायः अपने बच्चों के सामने ही घर की आर्थिक स्थितियों का रोना रोते रहते हैं या घर पर आते ही दुकान अथवा दफ्तर की खीझ उतारते रहते हैं। कई बार तो पिता बाहर की ऊब या खीझ बच्चों पर भी उतारते हैं, जिसका प्रभाव बच्चों पर यह पड़ता है कि वे अपने घर की आर्थिक स्थिति को दुर्भाग्य, समाधान न की जा सकने वाली समस्या मानने लगते हैं। उस समय पड़े प्रभाव से वे जीवनभर मुक्त नहीं हो पाते।

बच्चे बड़ों की बातें बहुत ध्यान से सुनते हैं। उन बातों को तो विशेष रूप से जो कि उनके बारे में की जाती हैं। इसीलिए बच्चे के सामने न कभी निराशापूर्ण बातें करनी चाहिए और न ही उन्हें अनावश्यक रूप से डाँटना-फटकारना चाहिए। उनमें सुधार के उद्देश्य से कुछ सख्ती अवश्य की जाय, पर इस बात का ध्यान रखा जाय कि वह सख्ती बच्चे पर निषेधात्मक प्रभाव न डाले अर्थात् उसमें आत्महीनता, कमजोरी या अपने प्रति अविश्वास की भावना उत्पन्न न होने पाये। इस तरह की कमियाँ बच्चों की गलतियों को उनकी अयोग्यता या मूर्खता बताकर कोसने और दूसरे बच्चों से उनकी तुलना करने के कारण आती हो, परिणाम यह होता है कि बच्चे में ऐसी कमजोरी आ जाती है, जिससे वे जीवनभर मुक्त नहीं हो पाते। मकान की दीवारों को कितने ही अच्छे ढंग से क्यों न चिना गया हो, यदि नींव कमजोर हो तो मजबूत दीवारें भी कमजोर हो जाती हैं। बच्चों से किया जाने वाला व्यवहार उनके भविष्य की नींव रखता है और उनसे किये जाने वाले व्यवहार में हुई असावधानियाँ उनके सारे जीवन को प्रभावित करती हैं। इसके लिए बच्चों को केवल आज्ञाकारी बनाने पर ही ध्यान केन्द्रित नहीं रखना चाहिए, वरन् उनमें स्वयं इतनी सूझ-बूझ उत्पन्न करनी चाहिए कि वे आत्मविश्वासपूर्वक कोई निर्णय कर सकें और न ही उनसे ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि उनमें किसी प्रकार की हीनता का भाव आये।

आत्म-विश्वास का उद्गम—स्वावलम्बन

भावी जीवन को प्रगति के पथ पर अग्रसर करते रहने में आत्मविश्वास का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। आत्मविश्वास की दृढ़ता और उत्कृष्टता जीवन के हर क्षेत्र में सफलता के लिए पथ-प्रशस्त करती है। जीवन का संघर्षमय पथ काफी कंटकाकीर्ण और अन्धकारमय होने के कारण इसमें अनेक व्यक्ति असफल होकर जैसे-तैसे जीवन के दिन काटते रहते हैं। पर अनेकों ऐसे भी व्यक्तित्व होते हैं जो सफलता के शिखर पर जा पहुँचते हैं। असफल होने वाले और सफलता प्राप्त करने वालों में केवल एक ही अन्तर होता है कि "अपनी मानव सुलभ शक्तियों एवं सम्पदाओं पर विश्वास होना या न होना।" जिसने भी इन शक्तियों पर विश्वास किया परिस्थितियाँ उसके मार्ग में बाधक नहीं बन सकीं। इस आत्मविश्वास का परिपोषण जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में ही हो जाता है। बाल्यावस्था में बच्चों के आत्मविश्वास के गुणों को सम्वर्द्धन करने का उचित प्रयास नहीं किया गया तो इसका दुष्परिणाम जीवनभर उसे भुगतना पड़ता है परावलम्बन के रूप में।

विचारणीय बात यह है कि क्या कारण है कि बच्चों में आत्मविश्वास का विकास नहीं हो पाता। सभी अभिभावक चाहते तो यही हैं कि उनका बच्चा जीवन में विकास करे, किन्तु ऐसा होता बहुत कम है। बल्कि इसके विपरीत बच्चे भार बन जाते हैं। इसका कारण है—बच्चों में आत्मविश्वास और स्वावलम्बन के गुणों का विकास स्वाभाविक क्रम से न होने देना। अभिभावक अन्धमोह के कारण बच्चों का सारा काम स्वयं अपने हाथों से करके तैयार करते तो हैं। जगाना, नहलाना, कपड़े पहनना, खिलाना, स्कूल जाने की तैयारी कर देना आदि ऐसे ही काम हैं किन्तु यह प्रेम का उत्कृष्ट रूप नहीं है, विकृत रूप है। इससे बच्चे उन छोटे-छोटे कामों को भी नहीं सीख पाते जो उसे बड़ा होने पर स्वयं करना ही पड़ता है। हमेशा ही बच्चों का काम करते रहने पर वे स्वयं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने आपको अयोग्य-अक्षम ही समझते रहते हैं। इससे बच्चों में हीनता की भावना का विकास हो जाता है।

हीन भावों के आने से बच्चे अपने आप के प्रति उदासीन रहने लगते हैं। इस विकृति का समावेश उनकी प्रकृति में हो जाने से बच्चे हमेशा ही इसी तरह आशा लगाये बैठे रहते हैं कि उनका सारा काम दूसरों के द्वारा ही होता रहे। तैयार काम मिलते रहने से बच्चे आलसी, कामचोर, बहानेबाज बन जाते हैं। उचित है कि बच्चे ज्यों-ज्यों बड़े होते जायें, उन्हें अपना काम स्वयं करने को प्रोत्साहित करते रहा जाय। यदि उनके द्वारा किये काम में कहीं गलती हो जाती है या कोई कमी रह जाती है तो सहायता देकर उसमें सुधार कर देने से अपनी गलती सुधार कर लेते हैं। इससे अपना काम स्वयं करने की आदत विकसित हो जाती है। इस प्रवृत्ति को विकसित कर देना ही बच्चों का सही और सच्चा प्यार है अन्यथा बच्चों के भावी जीवन के साथ खिलवाड़ करना है।

जब बच्चे कोई काम करने की इच्छा प्रगट करते हैं तब उन्हें रोकना या डाँटना बड़ा घातक होता है। ऐसे काम जिनसे संकट हो सकता है जैसे आग के काम, चाकू आदि हथियारों के उपयोग वाले काम, बच्चों को नहीं करने देना चाहिए। खतरनाक कामों को करने से रोकने का कारण स्पष्ट रूप से बच्चों को समझा देने से उससे होने वाली हानियों से परिचित भी हो जाते हैं। किन्तु प्रत्येक काम करने से रोकते रहने से बच्चों की जिज्ञासा और रचनात्मक प्रवृत्ति का दमन हो जाता है। इससे आत्मविश्वास दृढ़ नहीं हो पाता। एकदम बड़े काम बच्चों को सौंप देने से बच्चे कर नहीं पाते। स्वाभाविक है कि उन्हें असफलता मिलेगी। इससे उन पर उल्टा प्रभाव पड़ता है, वे अपने आपको अक्षम और अयोग्य समझने लगते हैं। बार-बार असफलता मिलते रहने से बच्चों का व्यक्तित्व संकुचित होने लगता है, फिर बच्चे सदा ही दूसरों का सहारा पाने की इच्छा रखते हैं तथा परावलम्बन के शिकार हो जाते हैं।

किसी कार्य में असफलता मिलने पर बच्चों के अभिभावक उन्हें डाँटते या मारते हैं तथा हतोत्साहित भी करते हैं। इस मार-पीट और हतोत्साह से बच्चों में भीरुता की भावना आ जाती है, वे भविष्य में किसी भी काम को हाथ में लेने के लिए डरते रहते हैं। उससे बचने के लिए बहाने करने का उन्हें एक अच्छा अवसर मिल जाता है। इसी तरह का क्रम चलाते रहने से बच्चे कोई काम सीख नहीं पाते। कार्यों की अनुभवहीनता के कारण छोटे-छोटे कार्यों को करने के लिए भी दूसरों का सहारा देखते रहते हैं। अपने कर्त्तव्यों का उन्हें ज्ञान नहीं हो पाता। वे कर्त्तव्यहीन होकर नकल करने की प्रवृत्ति वाले हो जाते हैं। अपनी जिम्मेदारी न समझकर लापरवाही करने लगते हैं।

ऐसे बच्चे सदा ही माता-पिता, बड़े भाई-बहिन या नौकरों से काम कराते रहने में ही आनन्द का अनुभव करते हैं। काम न बन सकने का बहाना कर इसी तरह बेगार में काम निकालते रहने में उन्हें मजा आता है। यही प्रवृत्ति भविष्य में शोषण तथा बेगार कराते रहने की हिंसावृत्ति में पनप जाती है। ऐसे समय में जब बच्चे किसी काम को करने में असफल होते हैं तो उन्हें डाँटना नहीं, प्रेम से समझाना चाहिए। जितना कुछ उन्होंने किया है उसी की सराहना कर बच्चों को सम्मान दिया जाना बच्चों के आत्मविश्वास को दृढ़ बनाने का सहज सरल तरीका है।

आत्मविश्वास की कमी के कारण बालक केवल अपने ही कार्यों को करने की रुचि लेने लगता है सामाजिक तथा दूसरों के कार्यों को करने में गलती हो जाने के डर से सहयोग देने में हिचकिचाता है। इस प्रवृत्ति से बच्चों में सामाजिकता का विकास नहीं हो पाता। आत्मकेन्द्रित होकर बच्चे स्वार्थी बन जाते हैं। ऐसे स्वार्थी तथा परावलम्बी बच्चों से भविष्य में सामाजिक हित तथा उसके स्वयं के विकास की आशा नहीं रहती। अतः बच्चों को आरम्भ से ही दूसरों के कार्यों में सहयोग देते रहने के लिए प्रोत्साहन करते रहना चाहिए।

घर के कार्यों में बच्चों की राय लेते रहना तथा उचित होने पर उसके अनुसार कार्य करना बच्चों के प्रोत्साहन के लिए उत्तम है। उनकी राय में कोई कमी रह जाय या वह गलत हो तो उसका सुधार करके बच्चों की राय के अनुसार कुछ कामों को कर लेने से उनमें आत्मविश्वास का विकास होता है। इससे भविष्य की योजना बनाने के लिए सोचने-समझने की उनमें क्षमता का विकास होता है। घर की सफाई, व्यवस्था आदि में बच्चों की राय लेना एवं उन्हीं के सहयोग से कार्य करना अति उत्तम तरीका है। इससे काम भी जल्दी होता है, बच्चे इसे भार भी नहीं समझते। कोई नये कामों को करने के लिए बच्चों को आज्ञा या निर्देश देकर ही नहीं सहयोग देकर प्रेमपूर्वक समझाएँ तथा प्रेरणा दें। इससे उनका अनुभव बढ़ता है। बच्चों के उचित निर्माण के लिए उचित वातावरण तथा शिक्षा का प्रबन्ध होना भी आवश्यक है। ऐसे आत्मविश्वासी बच्चे ही जीवन में कठिनाइयों का सामना करते हुए विकास के पथ पर बढ़ते जाते हैं। परावलम्बी, डरपोक तो जीवन का भार ढोते रहते हैं।

बच्चे को स्वावलम्बन और सन्तुलन की शिक्षा दें

शिक्षा विकास का आधार है किन्तु स्वयं विकास का स्वरूप क्या हो ? यह भी स्पष्ट रहना चाहिए।

विकास का चरम लक्ष्य है मुक्ति। इसका प्रारम्भ होता है—स्वावलम्बन और सन्तुलन की क्षमता की वृद्धि से। सन्तुलन के बिना तो अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है और विकास यदि स्वयं द्वारा न किया जाय, वरन्

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरों के द्वारा थोपा जाय, तो इसे विकास मानने को ही बुद्धिमान लोग तैयार नहीं होंगे। इसलिए स्वावलम्बन तथा सन्तुलन ये दोनों ही विकास की प्राथमिक एवं आधारभूत शर्तें हैं। बच्चे को इन दोनों की शिक्षा देना—प्रत्येक अभिभावक का दायित्व है। मनोवैज्ञानिक बैंजामिन ब्लूम के अनुसार एक प्रौढ़ व्यक्ति में जितनी बुद्धि होती है उसका ५० फीसदी भाग चार वर्ष की उम्र तक और इसके बाद का ३० प्रतिशत भाग आठ वर्ष की उम्र तक विकसित हो जाता है। डा. एपियोका के अनुसार बच्चा जीवन के प्रारम्भिक ५ वर्षों में जो कुछ बन जाता है, अधिकांशतः वैसा ही बना रहता है। अतः एक सन्तुलित एवं स्वावलम्बी समाज के निर्माण के लिए बच्चों को ऐसी शिक्षा दी जानी आवश्यक है, जो उनमें ये दोनों गुण निखारे।

दुर्भाग्यवश, हमारी परम्परा में जो विकृति आ गई है, वह प्रधानतः असन्तुलन और परावलम्बन को ही बढ़ाती है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद की हमारी प्रवृत्तियाँ भी इस विकृति को समाप्त करने वाली नहीं बढ़ाने वाली ही रही हैं।

जब भारत को स्वतन्त्रता मिली तब वह न केवल अपनी दासता की स्थिति से ही मुक्त हुआ, बल्कि उसने सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक परिवर्तनों से भरे एक विश्व में प्रवेश किया। व्यापक परिणामों वाले ये परिवर्तन मुख्यतः द्वितीय महायुद्ध द्वारा उद्घाटित हुए। यह स्थिति नवीन दृष्टिकोण, नवीन मूल्यों की, चीजों को एक नये नजरिये से देखने की माँग करती थी। विकास, लक्ष्य, शैक्षणिक नीतियाँ, सामाजिक परिस्थितियाँ सभी के नये सिरें से परीक्षण की आवश्यकता थी। यदि भारत ने अपनी स्वतन्त्रता एक लम्बे और कटु संघर्ष के माध्यम से प्राप्त की होती तो संघर्ष की द्वन्द्वात्मकता स्वयं ऐसे गुणों को पैदा करती और दृष्टिकोणों में एक परिवर्तन लाती, जिनकी स्वातन्त्रत्तर भारत में बेहद जरूरत थी। लेकिन यह नहीं हो पाया था। सत्ता ने हाथ बदले, लेकिन पुराने मूल्यों से चिपके पूर्वाग्रह और विकारोत्पादक संस्थाएँ असल में अक्षत एवं अछूती बनी रहीं। ये पूर्वाग्रह थे श्रम से अरुचि, परजीवीपन को गौरवपूर्ण समझना, बातों के जमा खर्च के प्रति आकर्षण, किसी भी कीमत पर रोटी और पैसा पा लेने की होड़ तथा मुक्ति की बड़ी-बड़ी बातें करते हुए भी, किसी भी तरह का साहस सँजो पाने में भय की प्रवृत्ति। विकारोत्पादक संस्थाएँ थीं, प्रतीक पूजन को आकाश-पाताल जैसा महत्त्व देने वाली सामाजिक धार्मिक व्यवस्थाएँ और प्रचलन।

जब तक यह वातावरण नहीं बदला जाता, तब तक बच्चों में सत्प्रवृत्तियों का संवर्द्धन सम्भव नहीं और तब तक स्वस्थ समाज का निर्माण भी असम्भव है। अतः बच्चों के व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास के लिए वातावरण में नई ऊष्मा, नये प्राणों का संचार किया जाना आवश्यक है।

शिशु विकास में सर्वोपरि महत्त्व उस शिक्षा का है, जो उसे वातावरण से प्रतिपल प्राप्त होती है। यही शिक्षा शिशु की नैतिक आस्था, सामाजिक मान्यता तथा व्यक्तिगत आदतों का स्वरूप सुदृढ़ करती है। वातावरण शिशु का प्रथम और महानतम शिक्षक है। यह वातावरण माँ की कोख से प्रारम्भ होकर समाज के क्षेत्र तक विस्तृत है।

शिशु अनगढ़ धातु है। वातावरण की ताप से बच्चे के संस्कारों, स्वभाव को उसी तरह चलाया, पिघलाया, मोड़ा, ठोस किया और मनोवांछित अलंकार के रूप में ढाला जा सकता है, जिस तरह सुनार आग की भट्टी में सोना को गलाता, तपाता और आभूषण बनाता है। महासती मदालसा महामानवी अनुसूइया, शैव्या, शकुन्तला और जीजाबाई के उदाहरण हमारे सामने हैं। अभिमन्यु के पूर्ववर्ती संस्कार क्या थे ? सुभद्रा ने तपपरायण सुव्यवस्थित जीवन के आधार पर यह पता ही नहीं लगने दिया और उसे राजकुल परम्परा के सर्वथा अनुकूल ढाँचे में ढाल दिया। महारथी अर्जुन और साध्वी सुभद्रा के प्रयत्नों का यह पुण्य-फल का जो चौदह वर्षीय राजकुमार अभिमन्यु में साहस, शौर्य और युद्ध विद्या में, वयोवृद्ध नरेशों के से गुण विद्यमान थे। माता-पिता बालक के कुटुम्बीजन बस इतनी-सी परिधि भी यदि बच्चे को उपयुक्त मिल जाये तो वह श्रेष्ठ आचरण वाला संस्कारवान नागरिक बन सकता है।

अतः प्रबुद्ध माता-पिताओं को सर्वप्रथम तो घर का वातावरण ही स्वावलम्बन और सन्तुलन की शिक्षा देने वाला बनाना चाहिए। इतना वे कर सकें, तो स्वयं को भी एक सुयोग्य सन्तान प्राप्त होगी और समाज को भी एक उत्तम नागरिक मिल जाएगा। निस्सन्देह शिशु रूपी पौधे के विकास में समाजरूपी भूमि की भी संरचना, आधार में रहती है, तो भी अभिभावकरूपी मालियों की भूमिका कुछ कम नहीं होती।

माली पौधों को अधिक उपयोगी बनाने के लिए उनमें अच्छी प्रकार खाद-पानी तथा काट-छाँट करता रहता है। किसान खेत में बीज-बोने से लेकर फसल के बढ़ने तथा पकने तक की अवधि में देख-रेख में जितनी सतर्कता दिखाता है, इसी के अनुपात में फसल प्राप्त करता है। देख-रेख के अभाव में मूल्यवान पौधे भी सूख जाते हैं अथवा अविकसित रह जाते हैं। उनमें अच्छे फलों और फसलों की आशा नहीं की जा सकती। इसी प्रकार बच्चों के पालन-पोषण में समुचित देख-रेख की जाय, उनकी आदतों क्रिया-कलापों एवं शिक्षा पर समुचित ध्यान रखा जाय, तो सामान्य परिस्थितियों में पलने वाले बच्चे भी महान व्यक्ति बन सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

अतः प्रत्येक अभिभावक को माली तथा किसान की-सी तत्परता, कर्त्तव्यनिष्ठा और जागरूकता का परिचय शिशु-निर्माण में देना चाहिए। बच्चे के लिए, समाज की स्थापित संस्थाओं के द्वार खोल देने तथा सुविधाएँ जुटा देने को जितना महत्त्व दिया जाता है, उतना ही महत्त्व उसमें स्वावलम्बन और सन्तुलन की क्षमता के विकास को भी दिया जाना जरूरी है।

बच्चों की और सम्पूर्ण समाज की, सर्वांगीण रूप से समृद्ध देखने चाहने वाले लोगों को साधना-सम्पन्नता के साथ ही, संस्कार सम्पन्नता का यह महत्त्व भली-भाँति समझना ही चाहिए। हममें से हर एक को यह भूलना नहीं चाहिए कि अपने परिवार की सम्पन्नता बढ़ा लेना एक बात है, सुसंस्कारिता बढ़ाना दूसरी। इसके लिए सम्पर्क समुदाय को भी सुधारना आवश्यक है, अन्यथा उनकी कुसंस्कारिता छूत की बीमारी की तरह अपनी स्वच्छता का घेरा तोड़कर आक्रमण करेगी और किया कराया चौपट करके रख देंगी। अपने घर के लोगों को प्रभावित, प्रोत्साहित करने का एक तरीका यह भी है कि समीपवर्ती क्षेत्र में सुधार की एक लहर उत्पन्न की जाय। जिसका अनुकरण करने के लिए अपने लोगों में भी सहज उत्साह उभरे और किये जा रहे सुधार-प्रयत्नों को अनायास ही बल मिले। इस प्रकार वातावरण के निर्माण के उभयमुखी प्रयास साथ-साथ चलने चाहिए। परिवार के स्तर पर भी और सामाजिक परिवेश के स्तर पर भी। दोनों ही स्तरों पर इस तथ्य को समझा जाना आवश्यक है कि टिकाऊ प्रसन्नता तथा शान्ति एक स्वावलम्बी एवं संतुलित समाज में ही उपलब्ध हो सकती है। इस तथ्य को हृदयंगम करके, प्रत्येक अभिभावक को ऐसी शिक्षा देने की पहल करने के लिए आगे आना चाहिए, जो उनमें ये दोनों गुण अवश्य उत्पन्न करे। वातावरण में इन गुण-प्रवृत्तियों का उभार लाना प्रत्येक माता-पिता को अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए।

बच्चों को आत्मनिर्भर बनने दें

संसार में बच्चे का जन्म सीखने और कुछ कर गुजरने की भावनाओं के साथ होता है। जिस प्रकार एक नन्हें-से पौधे में फलने-फूलने की समस्त सम्भावनाएँ छिपी रहती हैं, ठीक उसी तरह बच्चे में भी सभी मानवी गुण मूलरूप में समाविष्ट रहते हैं। घर में अनुकूल वातावरण मिलने पर उसकी सृजनात्मक प्रवृत्ति, स्वावलम्बी बनने की प्रबल आकांक्षा और स्वयं को उपयोगी सिद्ध करने की प्रयत्नशीलता सुविकसित होती और सक्रियता बढ़ती है। किन्तु माता-पिता द्वारा वैसी सतर्कता न बरतने और बच्चों की माँग के अनुरूप, सुविधा जुटाने तथा भरपूर सहयोग, सुरक्षा प्रदान करने की रीति-नीति यदि न अपनायी जाय तो बच्चों का आलसी और परावलम्बी होना सहज स्वाभाविक है। किसी भी राष्ट्र को समृद्ध, सम्पन्न और उन्नतशील बनाने की कल्पना को साकार तभी किया जा सकता है, जब वहाँ के बालकों को, जो देश की भावी नागरिक हैं, आरम्भ से ही आत्मनिर्भरता का पाठ पढ़ाया जाय। बच्चों का स्वावलम्बी और सुसंस्कारी बनाना देश की भावी, आर्थिक एवं नैतिक व्यवस्था को सुदृढ़-सशक्त करना है।

विश्वप्रसिद्ध मनोविज्ञानी वाट्सन के अनुसार 'अभिप्रेरण का सिद्धान्त' इस तथ्य को उजागर करता है कि व्यक्ति के लिए जीवन के प्रथम पाँच वर्ष बड़े ही महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं, क्योंकि मनुष्य को जो कुछ बनाना होता है प्रायः उसकी आधारशिला इसी समयावधि में रख जाती है, इसके उपरान्त तो विकासक्रम को बल मिलता रहता है। नींव कमजोर रहेगी तो इमारतें भी जल्दी ही खण्डहरों में परिवर्तित होती चली जायेंगी। यदि बालक को इन्हीं दिनों में आत्मनिर्भरता का अभ्यास करा दिया जाय तो उसका भविष्य सब प्रकार से सुन्दर और उज्ज्वल बन सकता है।

प्रायः देखा जाता है कि बच्चे को किसी खिलौने से खेलने की आवश्यकता होती है तो उसे लाने के लिए दूसरे कमरे में जाना नितान्त आवश्यक है। ऐसी स्थिति में वह अपनी माँ को पुकारने और खिलौना ले आने का आग्रह करने लगता है। माँ उसकी आकर्षक आवाज में फँसकर उसकी माँग को पूरा कर देती है। यहीं से बालक के अन्तर्मन में एक ग्रन्थि बन जाती है और वह अपना हर काम माता-पिता पर टालने की कोशिश में लग जाता है। यही मनोग्रन्थि जब आदत में शुमार हो जाती है तो बच्चा बड़ा होकर भी अपने छोटे-मोटे कार्य के लिए माता-पिता पर ही अवलम्बित रहने लगता है। परनिर्भरता उनके स्वभाव का अंग बन जाती है। फलतः ऐसे बच्चे क्रोध और चिड़चिड़ेपन के शिकार होते हैं और दूसरों के आश्रित रहकर अपनी सक्रियता खोते चले जाते हैं।

माता-पिता पर अत्यधिक निर्भर रहने वाले बच्चे प्रायः आलसी स्वभाव के बनते और अपने ऊपर सौंपे गये उत्तरदायित्वों से मुख मोड़ने लगते हैं। कुछ काम करेंगे भी तो विवशता अथवा हानि की आशंका को देखते हुए ही अन्यथा काम से बचने के लिए अनेकानेक तरह के बहाने गढ़ेंगे। अभिभावक भी बच्चों की इस कामचोर प्रवृत्ति को देखकर बड़े बेचैन होते और अपने दुर्भाग्य को कोसते रहते हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि न तो उन्होंने बालविकास की जिम्मेदारी को निभाया और न बच्चों में स्वावलम्बन का गुण ही उत्पन्न कर सके।

वस्तुतः आत्मनिर्भरता की वृत्ति ऐसी है, जिसके फलस्वरूप छोटे-से बच्चे में नया उत्साह और उमंग भर देती है। उसकी मुखमुद्रा पर सदैव प्रसन्नता और प्रफुल्लता की ज्योति ही प्रकाशित होती रहती है। इतना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही नहीं वह दूसरे बच्चों के सम्मुख अपनी गौरव-गरिमा भी अनुभव करने लगता है। ऐसे बच्चे जीवन में हमेशा हँसमुख, फुर्तीले और सक्रिय बने रहते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि बालकों में आत्मनिर्भरता का बीजारोपण कैसे किया जाय ? अभिभावक और माता-पिता उक्त प्रयोजन की आपूर्ति में बड़ी सराहनीय भूमिका निभाते हैं, क्योंकि जन्मदाता होने के कारण उसका प्रथम सम्पर्क उन्हीं से होता है। उन्हें इस तथ्य से भली-भाँति परिचित होना चाहिए कि बच्चे की सेवा-सहायता करना और दिशा-निर्देश देना एक बात है किन्तु बनना जैसा कर देना सर्वथा दूसरी। बच्चों से काम कराने और सहयोग लेने की कला का ज्ञान भी उन्हें होना चाहिए। सुगृहिणी की सुव्यवस्था का उपक्रम भी इसी आधार पर बैठता है। बच्चों का मनोबल बढ़ता और घर का काम सँभालने की वृत्ति का विकास भी होता है। सही, सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित तरीके से काम करने वाले बालक की सराहना करने, प्यार, दुलार भरे प्रोत्साहन देने, उपहार देने से उसका साहस और भी अधिक बढ़ जाता है। बच्चे में सहयोग-सहकार की प्रवृत्ति का विकास होता है। उसका व्यक्तित्व एक उद्यमी के रूप में ढलता जाता है। जिम्मेदारी और अनुशासन का भाव उत्पन्न होने से गम्भीरता आती और किसी भी काम को छोटा-बड़ा समझे बिना पूरा करने में मनोयोग और तत्परता का परिचय सतत् देता रहता है।

स्मरण रहे, बच्चों को मारने-पीटने, धमकाने से नहीं वरन् सहानुभूतिपूर्वक सहयोग-सहायता की अपेक्षा करके उन्हें कामकाजी और आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। उनसे कौन-सा और कैसा काम कराया जाय ? इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम तो घर के कामों की एक सूची तैयार कर लेनी चाहिए। घरेलू कार्यों की लिस्ट बनाते समय बच्चों की सलाह-परामर्श लेना ही आवश्यक है, जिससे उनमें काम को खोजने-ढूँढ़ने की बुद्धि का विकास होता है। कार्यों का विभाजन दैनिक, साप्ताहिक और मासिक व्यवस्था के अनुरूप किया जा सकता है। किसी कार्य को बाँटते समय लड़के-लड़की का भेद वाला दृष्टिकोण न अपनाया जाय। लड़की-लड़के दोनों से सभी तरह के कार्यों में हाथ बँटाने की अपेक्षा करनी चाहिए। कोई भी कार्य जब चुनौती के रूप में सौंपा जाता है तो बच्चे उसे बड़ी अभिरुचि के साथ खेलते-कूदते पूरा कर डालते हैं। इससे उनमें कर्त्तव्य भाव का उदय होने लगता है। उनके कामों में त्रुटियाँ भी हो सकती हैं, पर सुयोग्य माता-पिता का कर्त्तव्य है कि उसमें किसी भी प्रकार की मीन-मेख न निकालकर उसे सही कर दें। इससे बच्चों को सीखने का अवसर मिलता है।

बच्चों को उनकी अभिरुचि और क्षमता के अनुरूप ही कार्य सौंपा जाना चाहिए, हो सकता है कि बच्चों के स्वतन्त्र रूप से कार्य करने में कुछ हानि भी हो जाय। उनके साथ माता-पिता मिलकर काम करें तो काम करने का सही सार्थक तरीका सहज ही समझ में आता है। बच्चे यदि किसी काम को जल्दी और सही ढंग से निपटा लेते हैं तो उन्हें पुरस्कृत किये जाने का प्रावधान तो अवश्य रखा जाय, पर लोभ, लालच और प्रलोभन को प्रोत्साहित करने जैसा वातावरण न बनायें अन्यथा बच्चे में ऐसी बुरी आदत भी पड़ सकती है कि अगली बार काम करने से पूर्व ही अनौचित्यपूर्ण माँग करने लगे।

किसी बच्चे से काम करवाने का एक तरीका यह भी है कि उसे जिम्मेदारी सौंपी जाय और समय-समय पर उसे याद दिलाते रहा जाय। साथ मिलकर काम करने से वे और भी अच्छी तरह सीख जाते हैं।

बच्चों को अर्थ अनुशासन की शिक्षा दीजिए

आज के घोर आर्थिक युग में प्रायः यह देखने में आता है कि जिस प्रकार हर बात का मापदण्ड पैसा बन गया है, उसी प्रकार बच्चों के लाड़-प्यार का मापदण्ड भी पैसा बन गया है। जो व्यक्ति अपने बच्चों पर जितना अधिक खर्च करता है और जितना अधिक खर्च करने को देता है, मानो वह उन्हें उतना ही प्यार करता है।

जहाँ माता-पिता बच्चों के प्रति अपने प्यार को इस प्रकार आँकते और अँकवाते हैं, वहाँ बच्चों ने भी अपने माता-पिता के प्यार का मापदण्ड पैसा बना लिया है। बहुधा देखा जाता है कि जितने माता-पिता अपने बच्चों पर जिस अनुपात से खर्च करते हैं और उनको खर्च करने को देते हैं, बच्चे उसी अनुपात से उनकी ओर आकर्षित रहते हैं और दोनों पक्ष इस स्वार्थजन्य आकर्षण को प्यार समझने के भ्रम में भूले रहते हैं।

स्कूलों और कॉलिजों के लड़के अपने माता-पिता को अच्छाई-बुराई की विवेचना अधिकतर आर्थिक आधार पर करते पाये जाते हैं। जो लड़के अच्छे-अच्छे कपड़े पहनते और ज्यादा से ज्यादा पैसा खर्च करने को पाते हैं, वे तो बढ़-चढ़कर अपने माता-पिता की तारीफ करते हैं और जो बेचारे इससे वंचित रहते हैं, वे वास्तविक रूप से अच्छे होने पर भी अपने माता-पिता की प्रशंसा करने में शर्म महसूस करते हैं।

आज अर्थ-जन्य प्यार का इतना बोलबाला हो गया है कि वे माता-पिता अपने बच्चों की सहज श्रद्धा से भी वंचित रहने लगे हैं, जिनके पास एक अच्छा आर्थिक आधार नहीं होता, अपितु कभी-कभी उन्हें अपनी सन्तानों की तुरसी और तिरस्कार का पात्र बनना पड़ता है।

धनाढ्य माता-पिता आत्म-अध्ययन के अनुभव पर अपने आर्थिक आधार को जीवनभर बड़ी दृढ़ता से पकड़े हुए, आर्थिक-लोभ से उत्पन्न बच्चों की प्रतिस्पर्धा, श्रद्धा को बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं। यहाँ तक कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

बसीयत करते समय ''जब तक जिऊँ,'' ''मेरे मरने के बाद'' वाक्यों की व्यवस्था बड़ी सावधानी से करा लेते हैं। उन्हें सन्तानों से अधिक अपने पैसे पर भरोसा रहता है। यह सब अर्थ के प्रति बच्चों का गलत दृष्टिकोण विकसित कर देने का ही फल है।

बच्चों के जरा रोने, रूठने अथवा नाराज होने पर तुरन्त पैसा देकर मनाने का अभ्यास उनके भविष्य के लिए एक भयानक भूमिका है। इस प्रकार वे पैसे के लोभी बन जाते हैं और बेबात पर रूठकर माँ-बाप का आर्थिक शोषण करने के आदी हो जाते हैं, जो आगे चलकर परिस्थितिवश उनके बीच नापसन्दगी का कारण बन सकता है।

जो माँ-बाप अपने बच्चों को बिना समझे-बूझे मनमाना पैसा खर्च करने को देते हैं, वे न केवल उनके जीवन के साथ खिलवाड़ करते हैं, वरन् परोक्ष रूप से समाज में फैली बुराइयों को भी बढ़ावा देते हैं।

बच्चों को भोजन, वस्त्र, नाश्ता, पुस्तकें फीस आदि की प्रायः सारी आवश्यकताएँ जब घर पर ही पूरी हो जाती हैं, तब उन्हें अलग से पैसा देने की आवश्यकता समझ में नहीं आती। यह निश्चित है कि अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने के बाद जो धन उन्हें अलग से खर्च करने के लिए दिया जायेगा, उसको वे अनावश्यक चीजों पर ही खर्च करके अपनी आदत बिगाड़ लेंगे। वे उस पैसे से चाट खायेंगे, पतंग उड़ायेंगे, सिनेमा देखेंगे, पान, सिगरेट का प्रयोग करेंगे और होटल व रेस्टोरेन्टों में यार-दास्तों के साथ बैठकर चीजें खायेंगे, चाय पियेंगे और गप्प मारते हुए समय गँवायेंगे और न जाने इस प्रकार की कितनी बुरी बातों के आदी बन जायेंगे ?

हाथ में अनावश्यक पैसा होने से उनकी वृत्तियाँ चंचल हो उठेंगी और उनका मन पढ़ने-लिखने के बजाय घूमने-फिरने और सैर-सपाटे की ओर दौड़ेगा। अपने स्वार्थी मित्रों से घिरे रहने के कारण दुर्व्यसनी बन जावेंगे, जो आगे चलकर उनकी दुःखपूर्ण आर्थिक अस्त-व्यस्तता का कारण बनेगा।

किन्तु इसका यह मतलब कदापि नहीं है कि मनुष्य के बच्चों की आवश्यकताएँ भी उतनी ही सीमित आवश्यकताएँ हैं जितनी कि एक गाय के बच्चे की—कि आवश्यकता भर दाना-पानी और रात को एक झूल बस।

आज के समय में जिस प्रकार विविध वस्तुओं की बढ़ती हो गई है, उसी प्रकार सबकी आवश्यकताएँ भी बढ़ गई हैं। बच्चा खेलने के लिए गेंद-बल्ला चाह सकता है, स्कूल की प्रदर्शिनी में लगे बाजार में क्रय-विक्रय करने की इच्छा रख सकता है। किसी आयोजित पिकनिक में जाते समय जेब में पैसा होना जरूरी हो सकता है, मेले में कोई सुन्दर वस्तु खरीदने के लिए लालायित हो सकता है। कभी-कभी सिनेमा को जी कर सकता है। विद्यार्थी संघों अथवा समितियों में चन्दे की जरूरत पड़ सकती है। ऐसी बहुत-सी चीजें खाने की इच्छा कर सकता है, जो घर पर अच्छी प्रकार अथवा सुविधापूर्वक नहीं बनाई जा सकतीं। कोई अच्छी पुस्तक अथवा पत्रिका पढ़ने को मन हो सकता है अथवा जेब में पैसा रहने के सुखद-सन्तोष की कामना कर सकता है, इत्यादि बच्चे की ऐसी बहुत-सी अतिरिक्त एवं सामायिक आवश्यकताएँ हो सकती हैं।

बच्चे को पैसे के दर्शन न कराना अथवा सामयिक एवं अतिरिक्त आवश्यकताओं के लिए पैसा न देना भी उसके साथ अन्याय करना होगा। बच्चे को पैसे की बुराई से बचाने के लिए आर्थिक पाश को इतना न कसिये कि वह कसमसाकर दरिद्र भावना का शिकार हो जाये, पैसे-पैसे को तरस जाये और इस प्रकार तो वह अनुचित ढंग से पैसा पाने का प्रयत्न करने लगेगा।

आज बच्चे को पैसा दीजिए किन्तु एक निश्चित सीमा तक जिम्मेदारी के साथ। उसे ''हर बात पर पैसा हर बात पर पैसा''—का आदी न बनाइये और न उसके बार-बार माँगने पर पैसा देकर पीछा छुड़ाने की कोशिश कीजिए और यह बात अपने मस्तिष्क से बिल्कुल ही निकाल दीजिए कि बच्चे को बहुत शान-शौकत से रखना अथवा खर्च के लिए अधिक से अधिक धन देना कोई आर्थिक गौरव या प्रतिष्ठा की बात है।

बच्चे की अतिरिक्त आवश्यकता के औचित्य, अनौचित्य का पता इस ढंग से लगाइये कि वह यह न समझने पावे कि उसकी माँग पर सन्देह किया जा रहा है अथवा उसकी जासूसी की जा रही है। बच्चा जब पैसा माँगे तब प्यार से उसकी जरूरत की बावत पूछिये, यदि उसकी आवश्यकता अनुचित होगी तो वह खुद अचकचा जायेगा, तब उसे न तो झिड़किये और न शर्मिन्दा कीजिए, वरन् प्यार से कहिये कि देखो तुम, जिस काम के लिए पैसा चाहते हो, उसको स्वयं बुरा समझते हो। बच्चे पर इसकी स्वस्थ प्रतिक्रिया होगी और शरमाकर फिर कभी दुरुपयोग के लिए पैसे की माँग नहीं करेगा और यदि आप देखें कि उसकी माँग उचित है तो अवश्य उसे पूरा करने का भरसक प्रयत्न कीजिए।

बच्चे को अपने साथ बाजार ले जाइये। कोई वस्तु खरीदने में इस ढंग से उसकी राय लीजिए कि उसकी राय आपकी राय से साम्य खा जाये और यदि कोई विशेष अड़चन न हो तो अपनी देख-रेख में पैसे उससे गिनाकर दिखाइये। इससे बच्चे में आर्थिक लेन-देन की चेतना का विकास होगा और वह अपने अन्दर एक जिम्मेदारी महसूस करेगा। कोई भी वस्तु जिसे आप अधिक मूल्य के कारण खरीदना न चाहें उसमें बच्चे की अस्वीकृति शामिल कीजिए। इससे उसमें मितव्ययता का भाव बढ़ेगा और पैसे का महत्त्व समझेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चे को पैसा दीजिए और माँ के पास जमा कराने की आदत डालिये। कभी-कभी अपने पास पैसे की कमी बतलाकर उससे उधार माँगिये और उसकी बचत की सराहना करते हुए कहिए—"वाह भाई ! तुम्हारी बचत ने हमारा अटकाव दूर कर दिया।" इस प्रकार उसमें आकस्मिक आवश्यकता के लिए बचत करने का उत्साह बढ़ेगा।

उसकी बचत से उसे स्थायी शोभा, स्थायी उपयोगिता अथवा स्थायी अभिरुचि की चीजें खरीदवाइये, जिससे उसमें उपयोगिता तथा सौन्दर्य के प्रति अभिरुचि उत्पन्न होगी।

अधिकतर बच्चे के अतिरिक्त व्यय की मात्रा निश्चित धनराशि में रखिए और उसको घर का आय-व्यय बनाते समय पास बिठाइये, इस प्रकार उसमें अपने व्यय का बजट बनाने की अभिरुचि उत्पन्न होगी, जिससे वह पैसे के उपयोग की कला सीखेगा।

जहाँ तक हो सके उसे अतिरिक्त व्यय किसी ऐसे काम के लिए दीजिए, जिसे वह कर सके और उसके विकास के लिए उपयोगी भी हो। इस प्रकार उसमें श्रम की आदत तो पड़ेगी ही, साथ ही वह धनोपार्जन की कठिनता को भी समझने लगेगा।

इस प्रकार यदि बच्चे में आर्थिक अनुशासन की प्रवृत्तियाँ बाल्यकाल से ही विकसित कर दी जाती हैं तो वे आगे चलकर उसके जीवन के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध होती हैं। यदि बच्चे में आपने अर्थ-नियन्त्रण की क्षमता का विकास कर दिया तो समझिए आपने उसके आगामी जीवन की बहुत-सी कठिनाइयाँ प्रारम्भ में ही दूर कर दीं।

किन्तु इसके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि माता-पिता इस विषय में स्वयं भी पूर्णतया अनुशासित रहें। किसी क्षेत्र में पैसे का अपव्यय तो ही करें, अपितु, कोई ऐसी वस्तु भी न खरीदें जो एकमात्र उनकी एकाकी अभिरुचि की हो और यदि उसे खरीदते ही बने तो उसमें घुमा-फिराकर बच्चे की रुचि शामिल कर लीजिए।

किसी हद तक ठीक होने पर भी इस भावना से कदापि प्रेरित न होइये—"कि जो कुछ है या जो कुछ कमाते हैं, है तो सब बच्चों के लिए ही, खाने-उड़ाने दो।" आपकी यह असंस्कृत उदारता बच्चों के लिए हानिकारक सिद्ध होगी। वैसे तो समाज में जिसके पास जो कुछ है उसके कुछ न कुछ अंश पर, धर्म, देश, समाज एवं परोपकार का नैतिक अधिकार है, फिर भी यदि आप अपने प्रत्येक पैसे पर केवल अपने बच्चों का ही अधिकार मानते हैं, तो भी उसे खाने-उड़ाने की स्वतन्त्रता देकर उनकी आर्थिक वहबूदी को कमजोर करते हैं।

अन्य दुर्व्यसनों की भाँति आर्थिक अपव्ययिता भी एक ऐसा व्यसन है, जो बचपन से लग जाने पर आजीवन पीछा नहीं छोड़ता। अतएव, अपने बच्चों को अर्थ-अनुशासन की स्वस्थ शिक्षा देकर उनका हित कीजिए। उन्हें न तो पैसे का दुश्मन ही बनाइये और न दास ही, अपितु एक सच्चा मित्र बनाकर अभिभावक का ठीक-ठीक कर्त्तव्यपालन कीजिए।

बच्चों को जेबखर्च दें—
सुधार के लिए, बिगाड़ के लिए नहीं

अर्थ का सम्बन्ध जीवनयापन से लेकर अन्यान्य क्षेत्रों में प्रगति व उन्नति के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा है। पैसा प्राप्त करना या कमाना जितना श्रमसाध्य है, उससे अधिक कहीं उसका व्यय भी विवेकसाध्य है। विवेकहीन, अदूरदर्शितापूर्ण व्यय भविष्य में कष्टदायक ही सिद्ध होता है। परिवार की आवश्यकताओं को ध्यान रखे बिना अनैतिक कार्यों और विलासिता में खर्च करते रहना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं माना गया है। ऐसे व्यक्ति स्वार्थी या अनैतिक ही हो सकते हैं। उनकी अपनी दृष्टि में भले ही वे अच्छे हों। पारिवारिक, सामाजिक आदर्शों की दृष्टि से नहीं। पैसे की कीमत आर्थिक तंगी के समय ही जानी जा सकती है किन्तु प्रारम्भ से ही जिसने पैसे की कमी अनुभव नहीं की तब वह कैसे जान पायेगा कि पैसा भी इतना मूल्यवान होता है, जिसके बिना जीवन की गाड़ी लड़खड़ाने लगती है। बचपन से माता-पिता, बच्चों को खुले हाथ से खर्च करने की आदत सिखा देते हैं, बाद में उसका सुधार हो पाना सरल नहीं होता। शुरू से ही इस आदत को परिष्कृत दिशा में उभारा जाय।

बच्चों की कुछ अपनी इच्छाएँ एवं रुचि होती हैं। यदि उनकी पूर्ति न की जाय तो उनके मानसिक विकास पर व्याघात पहुँचता है। इनकी पूर्ति के लिए उनको पैसों की आवश्यकता होती है। आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पैसे देना अच्छा है, किन्तु सम्पूर्ण इच्छाओं की पूर्ति करते रहने से हानियाँ भी अपेक्षित हैं। उद्देश्यहीन खर्च को बढ़ावा देते रहने से घर की आर्थिक व्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ता है। बच्चों की आदत भी खर्चीली बन जाती है। अभिभावक को चाहिए कि बच्चे के स्वभाव पर ध्यान रखें। इसकी उपेक्षा भविष्य में कष्टदायक हो सकती है। पारिवारिक बजट बनाते समय बच्चों की सलाह लेने से पारिवारिक खर्च का ज्ञान हो जाता है। बच्चे, सबके लिए पैसों की आवश्यकता समझने लगते हैं। तब वे केवल अपनी ही इच्छापूर्ति करने की हठ नहीं करते, वरन्

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

सबका ध्यान रखते हैं। दैनिक जीवन की आवश्यकताओं का महत्त्व खेल-कूद की चीजों से अधिक पाने लगते हैं और इनकी खरीद करने के लिए अधिक अपव्यय नहीं करते। बजट पर विचार किये बिना ही बच्चों को खर्च के लिए मनमाने पैसे देते रहना भी बच्चों की इच्छाओं को विकृत करता है और पारिवारिक व्यवस्था को खराब भी। दिन-प्रतिदिन बच्चे नई-नई इच्छाएँ लेकर आते हैं। माँ प्रेमवश बच्चे को पैसे दे देती है। इससे बच्चे पर कुसंस्कार पड़ते हैं, उसकी इच्छाओं की पूर्ति करते रहने से सहकारिता और पारिवारिकता की भावना कुण्ठित होकर स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित हो जाती है। भविष्य में ऐसे बच्चों से किसी प्रकार के सहयोग और सेवा की कल्पना नहीं की जा सकती। ऐसे बच्चे परिवार और समाज के लिए कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं निभा सकते। बच्चों की इच्छापूर्ति के लिए दिया जाने वाला जेबखर्च उसके स्वभाव को न बिगाड़े यह ध्यान रखें, फिर पारिवारिक आय तो परिवार के समस्त सदस्यों के लिए होती है एक के लिए नहीं।

प्रायः बच्चों के अभिभावक विशेषकर माँ, ममता, मोह का प्रदर्शन बच्चों के अधिक जेबखर्च देने में करती है। उसका विकृत मोह बच्चों को इतना बिगाड़ देता है कि वे अनुशासनहीन होने लगते हैं। प्रारम्भ से ऐसे वातावरण में पले बच्चे भविष्य में अभिभावकों के लिए भी परेशानी के कारण बन जाते हैं। अभिभावकों की शिकायत बढ़ती ही रहती है चूँकि बड़े होने पर बालक का खर्च भी बढ़ जाता है और उद्दण्डता भी। आवश्यकता के अनुसार ही बच्चों को पैसा दिया जाना सर्वथा उचित है इससे मोह-ममत्व का कोई विकृत रूप न हो।

किसी काम को कराने के लिए लोग दिखाकर काम निकालना अभिभावक और बच्चे दोनों के लिए हानिकारक हैं। बच्चे की आदत बन जाती है कि पैसा मिलने पर ही कोई काम करे। पैसे न मिलने पर वह काम नहीं करता और पैसा देने हेतु अभिभावकों को बाध्य करता है। इससे कामचोर और आलसी स्वभाव बनता है। भविष्य में बड़े होने पर बच्चे कोई काम नहीं करते। माता-पिता की कमाई पर ही मौज उड़ाते रहते हैं और माता-पिता झींकते रहते हैं। काम के बदले रिश्वत के रूप में पैसे मिलते रहने के कारण बच्चे भ्रष्ट बन जाते हैं। प्रारम्भ के खर्चीले हाथ एकदम खींचे नहीं जा सकते। बाद में इसकी पूर्ति के लिए अनैतिक व्यवहारों का आश्रय लेना पड़ता है। पिता की जेब से पैसे चुरा लेना बक्स का ताला तोड़कर रुपये आदि चुरा लेना, किसी से उधार माँगना या उधारी खाता लगा लेना आदि ऐसे ही काम हैं। इससे अभिभावकों को कर्जदार बनना पड़ता है। तिरस्कृत होना पड़ता है सो अलग। बच्चों को श्रम की महत्ता समझाकर काम कराया जाना चाहिए, रिश्वत देकर नहीं।

कोई आदमी गरीबी या कंजूसी के कारण अपने बच्चों को पैसा नहीं दे पाते। किन्तु बच्चे जब दूसरे बच्चों को पैसे द्वारा लेन-देन करते देखते हैं, तो उनमें हीनता की भावना पैदा होती है या फिर उन्हीं के समान लेन-देन करने के लिए चोरी आदि करके पैसा प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। ऐसी परिस्थिति में पाठकों को चाहिए कि बच्चों को खरीददारी की स्वस्थ आदत सिखायें। इसके लिए वे स्वयं अपने साथ बच्चों को ले आयें और लेन-देन का व्यावहारिक ज्ञान सिखायें। बाद में उसे स्वयं ही सामान खरीदने की जिम्मेदारियाँ सौंपें और यह देखें कि उसमें जिम्मेदारी की भावना आती है या नहीं।

पहले से ही बच्चों को पैसा कमाने की जानकारी दे देना और श्रम के प्रति निष्ठा जाग्रत करनी चाहिए। इससे बच्चों को परिश्रम और धन की कीमत समझ आ जाती है। वह पसीने की कमाई को अनावश्यक व्यर्थ के खेल-तमाशों की चीजों को खरीदने का दुराग्रह नहीं करता।

जेबखर्च देते समय बच्चों को बचत के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। बचत का महत्त्व तथा भावी जीवन में उसकी उपयोगिता बता देने से बच्चों को पैसों का दुरुपयोग करने से बचाया जा सकता है। भविष्य में संकट के समय इस बचत राशि के उपयोग से आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेना कितना लाभदायक होता है। इस बात को समझ लेने पर बचत के प्रति बच्चों का अपनत्व का बोध होने पर वे व्यर्थ में खर्च नहीं करते तथा जेबखर्च की भी कटौती कर राशि बचत करते हैं।

बच्चों को जेबखर्च की राशि देने और उसका समय निश्चित कर देना भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इससे बच्चे मिली हुई राशि को अग्रिम किस्त तक थोड़ी-थोड़ी खर्च करते हैं। किन्तु इसकी अनिश्चितता होने पर प्राप्त राशि को एक-दो ही दिनों में खर्च करके पुनः दूसरी किस्त माँगने लगते हैं। पुनः पैसे मिल जाने पर वे अधिक खर्चीले बन जाते हैं। अतः इस नियम का कठोरता से पालन किया जाना चाहिए। शीघ्र ही पैसे खर्च कर लेने का दण्ड बच्चों को भुगतने देना चाहिए ताकि वे पैसे का महत्त्व और खर्च का तरीका जान जायें।

बच्चों को जेबखर्च के लिए पैसे देना उनकी व्यावहारिकता को उभारने, क्रय-विक्रय करने की क्षमता का विकास करने, किसी वस्तु की उपयोगिता और आवश्यकतानुसार उसको महत्त्व देकर खरीदने, पैसे के महत्त्व को समझने आदि बातों का व्यावहारिक प्रशिक्षण के लिए दिया गया पैसा भविष्य के लिए लाभदायक होता है। व्यावहारिक ज्ञान के अभाव में जीवन में अनेकों बार ठगे जा सकने की सम्भावना रहती है। ऐसी सम्भावना से बचने के लिए इन सब बातों का प्रशिक्षण अभिभावकों द्वारा देना चाहिए। किसी विकृत दृष्टि से दिया गया जेबखर्च लाभ की जगह हानि करता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चे क्यों झगड़ालू हो जाते हैं ?

जो माताएँ गर्भावस्था में खान-पान और आचार-विचार पर नियन्त्रण नहीं रखतीं अर्थात् चरपरे, कडुवे, खट्टे, गरिष्ठ व गर्म आदि, तामसी वस्तुएँ खाती-पीती और लड़ती-झगड़ती रहती हैं, उनके बच्चे बहुधा क्रोधी, चिढ़चिढ़े और झगड़ालू होते हैं क्योंकि उनके रक्त और स्वभाव का, बच्चे के निर्माण पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

बहुधा माताएँ उस दशा में अपनी स्थिति, सामान्य स्थिति की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण और अधिकार पूर्ण समझने लगती हैं। ठीक होते हुए भी, इसकी अभिव्यक्ति कभी-कभी कलह का कारण बन जाती है, क्योंकि परिवार के लोग उसे, उनका अभिमान समझकर, असहयोग को स्थान देने लगते हैं। उनको ज्ञान ही नहीं रहता, इस प्रकार के व्यवहार से आगामी सन्तान के स्वभाव पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

प्रायः गर्भावस्था में, माताएँ कुछ अलसाई और थकी-थकी-सी रहने के साथ, ऐसी मनोदशा के आश्रित हो जाती हैं, जो बड़ी चंचल और चटोर होती हैं। अपनी उस चंचलता की पूर्ति न होने से, उनके मन में एक कुढ़न, झल्लाहट और नाराजगी रहने लगती है, जिससे वे बात-बात पर लड़ने-झगड़ने और कलह करने लगती हैं, जिससे बच्चे के संस्कारों पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता।

गर्भावस्था में माताओं को कैसे रहना चाहिए और उन्हें किस प्रकार रखना चाहिए, इस पर विचार करके व्यवहार करने की आवश्यकता तो एक प्रकार से भारतीय समाज से लोप हो गई है। बहुत शिक्षित परिवारों और माता-पिताओं की बात तो कही नहीं जा सकती, सामान्य परिवारों में तो इस बात पर विचार करने के भाव का जन्म ही नहीं होता। निदान ऐसे परिवारों में, जिनकी कि संख्या भी अधिक है, अधिकतर बच्चे जिद्दी और झगड़ालू होते हैं। जो आगे चलकर, क्या परिवार और क्या समाज सभी के लिए एक समस्या बन जाते हैं ?

गर्भावस्था की बात ही नहीं, बच्चे के जन्म के बाद भी उन बातों का ध्यान नहीं रखा जाता है, जिनसे उस पर अवांछनीय प्रभाव पड़ता है। सौरकाल में माताएँ, कुछ समय के लिए एक स्थान पर बँधकर रहने को विवश होती हैं। एक स्थान पर उनकी आवश्यकताओं की और इच्छाओं की पूर्ति करने के कर्त्तव्य और कुछ अपने अनुभवजन्य निर्देशन के अधिकार से, सौरगृह की सहायिकाएँ, बड़ी बूढ़ियाँ, माता को शान्तचित्त और प्रसन्न नहीं रहने देती, जिसका फल यह होता है कि सौरसमय में भी कभी-कभी कलह और कहा-सुनी हो जाती है, जिससे उस शिशु का चेतन अबोध अवस्था में भी अदृश्य रूप से वातावरण का प्रभाव ग्रहण करने लगता है।

पथ्यपूर्वक खान-पान के अभाव में दूध के माध्यम से जो तामस तत्त्व बच्चे के रक्त में संचित होते रहते हैं वे आगे चलकर उसके बुरे स्वभाव के रूप में प्रकट होते हैं। इसलिए गर्भ से लेकर पयपानपर्यन्त माता को स्वयं और समस्त घर वालों को ऐसे आहार-विहार एवं आचार-विचार की व्यवस्था रखने का प्रयत्न करना चाहिए, जिससे बच्चे के निर्माणोन्मुख संस्कार, तामसिक विकारों से सुरक्षित रहें।

बच्चे को कुछ पाने-पीने और हँसने-बोलने के समय से लेकर, जब तक वह स्वयं समझ की अवस्था में न पहुँच जाये, तब तक उससे जो व्यवहार किया जाता है, उसका प्रभाव पूर्वापेक्षा कुछ अधिक शीघ्र और स्थायी पड़ता है। अस्तु, उस काल में खूब समझ-बूझकर व्यवहार करने की आवश्यकता है।

जो माता-पिता हर तरह की अच्छी-बुरी चीजें हर समय प्रेमवश खाते रहने की छूट दे देते हैं, उनके बच्चों का मन और मस्तिष्क स्वस्थ रूप से विकसित नहीं होता और न उनका शारीरिक स्वास्थ्य ही ठीक रहने पाता है, जिससे उनके अन्दर, एक क्षोभ और क्रोध स्थायी रूप से घर कर लेता है, जो बात-बात पर लड़ने-झगड़ने और दुराग्रह के रूप में सामने आता है।

छोटे-बच्चों के सामने, परिवार में बड़ों के बीच कलह होने से, उसके कीटाणु उनके मस्तिष्क में भी प्रवेश कर जाते हैं क्योंकि क्रोध और कलह का प्रभाव रोग की तरह ही संक्रामक होता है। साथ ही बच्चों को कलहपूर्ण वातावरण पसन्द नहीं होता। उसमें उन्हें एक परेशानी और तकलीफ होती है। उसे रोक सकने में विवश होने के कारण, वे मजबूरन सहन करते हैं। जिसकी घुटन से उनमें एक आक्रोश-भावना उत्पन्न हो जाती है, जो कभी-कभी उनके रो पड़ने के रूप में प्रकट होती है। नित्यप्रति ऐसा वातावरण रहने से उसे सहन करते-करते वे अन्दर ही अन्दर और कर्कश हो जाते हैं, जो उनके झगड़ालू बनने में सहायक होता है।

इस प्रकार जो बच्चे शैशवकाल में ऐसे संस्कार लेकर बाल्यकाल में प्रवेश करते हैं, उनकी झगड़ालूवृत्ति जिद और दुराग्रह के रूप में माता-पिता एवं भाई-बहिनों के साथ धीरे-धीरे उलझाव के रूप में मूर्त होने लगती है, जिससे एक प्रकार से स्थूल झगड़ों का सूत्रपात हो जाता है, जो आगे चलकर बड़ी खराब स्थिति प्राप्त कर लेता है।

बच्चों का हठी होना भी अच्छा नहीं होता, क्योंकि तीन हठों में बाल-हठ भी बहुत विकट होता है। इसलिए सदैव ही बच्चे का हठी स्वभाव ही सारे झगड़ों की जड़ होता है।

बच्चों के हठी बनने के प्रमुख कारण होते हैं—एक तो उनका लाड़-प्यार। तामसी स्वभाव के कारणों का संक्षिप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अब रही लाड़-प्यार की बात। वैसे तो सभी माता-पिता अपने बच्चों को प्यार करते ही हैं किन्तु कुछ उनकी अनुचित जिद को पूरा करना प्यार मानते हैं। कदाचित् वे सोचते होंगे कि उचित बात तो उचित है ही उसका मानना क्या ? बात तो तब है, जब बच्चे की अनुचित बात भी मान ली जावे। इसका फल यह होता है कि वे जीवन भर के लिए दुराग्रही बन जाते हैं। अपनी गलत बात को मनवाने का प्रयत्न और दूसरे की सही बात को भी न मानना उनके मस्तिष्क की एक विशेषता बन जाती है, जिससे सामाजिक व्यवहार में हर समय विग्रह होने की आशंका रहती है।

बहुत-से अभिभावक एक बच्चे से दूसरे बच्चे को पिटवाते हैं, जिससे वह मार-पीट करने का आदी हो जाता है और बाहर अपने साथियों से झगड़ा करने लगता है। अनेक अभिभावक मनोरंजन के लिए एक बच्चे को दूसरे बच्चे से भिड़न्त कराते हैं जिससे उनकी झगड़ालू प्रवृत्तियों को उत्साह मिलता है।

प्रायः अभिभावक बच्चों की उपस्थिति में पास-पड़ोसियों से विवाद करने लगते हैं, जिससे रक्त के सम्बन्ध में उन्हें भी जोश आने लगता है और वे अवसर पाकर आपस में लड़ पड़ते हैं।

बहुत-से अभिभावकों की यह इच्छा रहती है कि उनके बच्चे अन्य बच्चों पर शेर होकर रहें। इसके लिए या तो वे उन्हें घुमा-फिराकर शिक्षा देते हैं या झगड़ा होने पर उनका अनुचित पक्षपात कर साहस बढ़ाते हैं।

कुछ अभिभावक बच्चे से यह शिकायत पाते ही, कि "अमुक बच्चे ने उसे मारा है या कुछ कहा है।" तत्काल उसके अभिभावक पर चढ़ दौड़ते हैं और बिना तथ्य तक पहुँचे ही विवाद करने लगते हैं। इसमें बच्चों को बड़ा मजा आता है और वे बार-बार ऐसी परिस्थिति पैदा करने का प्रयत्न करते हैं जिससे बड़े-बड़े झगड़े पैदा हो जाते हैं।

अनेक अभिभावक अवश्य यह चाहते हैं कि जिनसे उनका विवाद हो गया है, उनसे उनके बच्चे भी बुराई मानें और जहाँ तक हो सके उनके बच्चों को तंग करें। बहुत-से तो पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपनी शत्रुता की थाती देकर बच्चों को सौंप जाते हैं। कहना असत्य न होगा कि अभिभावकों की यह मनोवृत्ति, समाज के लिए एक बहुत बड़ा अभिशाप है, जिससे समाज में बड़े-बड़े अपराधों की परम्परा-सी पड़ जाती है।

कुछ अभिभावक स्वयं भी बड़े हठी होते हैं। जब-तब अकारण ही छोटी-छोटी बातों में बच्चों के आड़े आ जाते हैं। जैसे, वे प्रायः बच्चों को खेलने और घूमने से यों तो मना ही नहीं करते, किन्तु कभी यदि वे विशेषतौर पर ऐसा करना चाहते हैं, तो उन्हें न करने देने के लिए अड़ जाते हैं और किसी प्रकार अपने हठ का जवाब हठ से देने लगते हैं।

कुछ अभिभावकों का अजीब उल्टा स्वभाव होता है। वे "अब तो ऐसा नहीं करेगा" के स्थान पर "ऐसा और करेगा" पर ज्यादा जोर देते हैं, जिससे बच्चों के मस्तिष्क में उल्टे उत्तरों की प्रतिक्रिया होती है।

बहुत-से अभिभावक किसी बात को लेकर इतने अधिक सवाल-जवाब करते हैं कि विवाद जैसा वातावरण पैदा हो जाता है। कभी-कभी तो वे दोनों ओर के सवाल-जवाब स्वयं कर लेते हैं। जैसे—"आप वहाँ क्यों गये ?" "कहो न कि मैं आपकी कोई बात नहीं मानना चाहता," "आपको मेरा डर तो बिल्कुल है ही नहीं।" "है न यही बात।" "कहते क्यों नहीं कि हाँ, यही बात है।" और यदि वह इसके विपरीत उत्तर देता है—"कि नहीं मैं आपकी बात मानना चाहता हूँ" तो उसे यह कहकर पीटते हैं—कि "आप झूठ बोलते हैं, न आप मेरी बात मानना चाहते हैं और न मुझसे डरते हैं।" और जब तक उससे उल्टी बात का समर्थन नहीं करा लेते तब तक पीछा नहीं छोड़ते। इससे बच्चे में उनकी बात न मानने और न डरने की प्रवृत्ति जाग उठती है, जिससे वे उच्छृंखल और निरंकुश हो जाते हैं।

बहुत-से अभिभावक बच्चे को अपने सामने झगड़ते हुए देखकर भी आँख बचा जाते हैं और जब उनका बच्चा निर्बल पड़ता है तो झट दौड़कर दूसरे बच्चे को झटक देते हैं। इससे बच्चा झगड़ा करने के लिए शह पाता है।

कुछ अभिभावक बच्चे को खूब खाने-पीने को उत्साहित करते हुए कहा करते हैं—"जो चाहो खूब खाओ-पिओ मगर यह खाया-पिया को लजा मत देना"—इससे बच्चा खाये-पिये की शक्ति आजमायी के लिए जब-तब साथियों से भिड़ा करता है।

कुछ अभिभावक अपने बच्चे के बल-विक्रम की प्रशंसा उसके मुँह पर ही करने लगते हैं, जिससे वह उसे चरितार्थ करने का अवसर खोजा करता है।

कभी-कभी अभिभावक बच्चे को साहसी और निर्भीक बनाने के लिए ऐसी उत्तेजक उपाधियों से विभूषित करते हैं, जिनसे स्वभावतः उसके मन पर झगड़े की प्रतिक्रिया होती है। सामान्यतः इस प्रकार के उद्बोधक वाक्य जैसे "बड़ा शेर है, बड़ा दबंग है" अथवा "किसी से दबना तो जानता ही नहीं" बच्चे को झगड़े की ओर अग्रसर करते हैं।

बच्चे की, झगड़ा करने की शिकायत आने पर कोई-कोई अभिभावक या तो शिकायत करने वाले की बात ही नहीं लगने देते अथवा उस समय बच्चे को यों ही डाँट-फटकार देते हैं और बाद में उससे कह देते हैं कि मैंने तो यों ही उसे दिखाने के लिए डाँट दिया था, उसका लड़का खुद बहुत लड़ाका है। इससे बच्चे के मन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से शिकायत का भय भी निकल जाता है और कभी-कभी वास्तविक डाँट को भी दिखावा समझ लेता है।

इस प्रकार बहुत-सी ऐसी बातें हैं जो देखने में तो बड़ी साधारण-सी लगती हैं किन्तु बच्चे पर उनका दूषित प्रभाव बहुत दूर तक पड़ता है। इसलिए अभिभावकों को चाहिए कि सूत्रपात से लेकर बच्चों के बाल्य-काल तक उनके सम्बन्ध में जो भी व्यवहार करें, सावधानी के साथ करें। यदि उन्होंने इस अवधि में बच्चों को इस प्रकार के दोषों से बचा लिया तो मानो उन्होंने बच्चे का, अपना स्वयं और समाज, तीनों का बड़ा हित किया, अन्यथा उनके बच्चे उत्तरोत्तर झगड़ालू होकर असाध्य हो जाते हैं जिससे फिर वे उनसे जीवन भर दुःखी ही रहते हैं।

बच्चों की लड़ाई में आप न उलझें

टाल्स्टाय ने एक कहानी लिखी है—द क्वाटेल। कहानी दो छोटी बच्चियों की है, जो खेलते-खेलते आपस में झगड़ पड़ती हैं और मार-पीट भी कर बैठती हैं। दोनों एक-दूसरे की शिकायत लेकर अपने माता-पिता के पास जाती हैं। उनके अभिभावकों को यह बात बुरी लगती है कि उनकी बच्ची को दूसरी बच्ची ने पीटा क्यों ? इस बात को लेकर दोनों बच्चियों के अभिभावक एक-दूसरे से शिकायत करते हैं। शिकायत से बढ़कर एक-दूसरे के प्रति अभद्र और अपशब्दों का भी व्यवहार होने लगता है। तू-तू, मैं-मैं से लेकर बात मार-पीट तक पहुँच जाती है। बच्चियों की आपसी लड़ाई को लेकर उत्पन्न हुआ यह विवाद मार-पीट और लट्ठबाजी तक पहुँच जाता है। इस लड़ाई में चोटें खाकर जब दोनों परिवार के बड़े सदस्य थक जाते हैं तो वे देखते क्या हैं कि दोनों बच्चियाँ वापस एक साथ खेल रही हैं।

कहानी क्या है एक तमाचा है उन अभिभावकों के गाल पर, जो बच्चों के कारण एक-दूसरे से बैर गाँठ लेते हैं और लड़ाई-झगड़े, मार-पीट, मुकदमेबाजी तथा बैर-प्रतिशोध में अपनी शान्ति, सौहार्द और स्वरूप को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। आये दिनों ऐसी घटनाएँ घटती रहती हैं, जब माता-पिता बच्चों की लड़ाई में स्वयं उलझकर भारी मुसीबतें मोल लेते हैं। कई स्थानों पर इन छोटी-सी बातों को लेकर हत्या और हिंसा की नृशंस घटनाएँ भी घट जाती हैं। एक-दूसरे की चोट आ जाना और मुकदमेबाजी में समय व धन बर्बाद करते रहना तो सामान्य बातें हैं।

बच्चों की लड़ाई को लेकर जब बड़े भी आपस में झगड़ने लगते हैं तो देखने वाले उन्हें झगड़ते देखकर हँसते ही हैं। लेकिन वैसी ही स्थिति हँसने वालों के सामने आती है तो वे भी बाँह चढ़ाने से बाज नहीं आते। 'क्या कारण है कि बच्चों की लड़ाई में स्वयं उलझ गये अभिभावकों को देखकर हँसने वाले लोग भी वैसी स्थिति आने पर स्वयं ही उसी तरह बरतने लगते हैं। ऐसे व्यक्तियों को लगता है जिस बात को लेकर दूसरे लोग झगड़ रहे थे और हम हँस रहे थे वह घटना सामान्य थी, जबकि हमारे सम्बन्ध में कारण भिन्न है और गम्भीर भी है। हो सकता है यह भी एक तथ्य हो, परन्तु निष्पक्षता से विचार करने पर यही प्रतीत होगा कि बच्चों की लड़ाई के कारण अभिभावकों द्वारा एक-दूसरे के प्रति मन में बैर की गाँठ बाँध लेना अनुचित है, गलत और अनावश्यक भी।

आपस में खेलते हुए बच्चे किसी भी बात को लेकर आपस में झगड़ भी उठते हैं, परन्तु उनका यह झगड़ना भी खेल का ही एक अंग होता है क्योंकि इससे न उनके मन में अपने साथी के प्रति बैर-भाव आता है और न प्रतिशोध ही। आठ-दस साल से अधिक आयु के बच्चे जो थोड़े समझदार होने लगते हैं बैर रखना और प्रतिशोध लेना सीख भी जाते हैं, परन्तु गाँठ उनके मन में भी नहीं रहती। इससे छोटी उम्र के बच्चे तो लड़ने के क्षण भर बाद ही फिर खेलने लगते हैं। यानी कि जिस तरह उनमें विवाद पैदा हुआ था, वह अपने आप ही सुलझ जाता है। जैसे खेलते-खेलते बच्चे आपस में लड़ लेते हैं वैसे ही स्वयं मित्रता भी कर लेते हैं और अपने स्तर पर ही विवाद को सुलझा लेते हैं।

ऐसी स्थिति में वयस्क व्यक्तियों का आपस में उलझना कहाँ तक उचित कहा जा सकता है ? यह भी सम्भव है कि बच्चों की लड़ाई में हस्तक्षेप करते समय अभिभावकों के मन में यह बात रही हो कि बच्चे लड़ते-लड़ते एक-दूसरे को गम्भीर चोटें न पहुँचा दें। यह सोचकर बच्चों के विवाद में हस्तक्षेप करना सही भी लगता है परन्तु दूसरा पक्ष इस दृष्टिकोण को नहीं समझ पाता और साधारण विवाद से उत्पन्न होकर झगड़ा बड़ों के बीच मारपीट तक पहुँचा देता है।

एक-दूसरे को गम्भीर हानि पहुँचाने की आशंका से बच्चों की लड़ाई में हस्तक्षेप करना एक सीमा तक ही उचित रहता है, आमतौर पर छोटे बच्चों की लड़ाई हल्की मार-पीट तक ही सीमित रहती है। आठ-दस वर्ष से अधिक उम्र के बच्चे ही एक-दूसरे को ज्यादा चोट पहुँचा सकते हैं। इतनी बड़ी उम्र के बच्चे की लड़ाई में हस्तक्षेप करना उचित हो सकता है। लेकिन औचित्य का प्रश्न भी 'किस प्रकार' के उत्तर के साथ जुड़ा रहता है।

सामान्यतः अभिभावकों को अपने उद्दण्ड और शरारती बच्चे निर्दोष और सीधे-सादे ही लगते हैं तथा उनके दोष भी गुण लगते हैं। जैसे बच्चा हर किसी से तू-तड़ाक करने लगता है तो माँ-बाप समझते हैं हमारा बेटा बहादुर है। इस तरह के और भी दोषों को गुण दृष्टि से देखा जाता है और अपना बच्चा जब गुणवान है तो वह गलत कैसे हो सकता है ? इस आत्यन्तिक मोह के कारण अभिभावक बच्चों को झगड़ते देखकर पहले से ही यह मान लेते हैं कि दोषी दूसरा बच्चा है। ऐसी स्थिति में दूसरे बच्चे की ज्यादा कड़ाई के साथ डाँट दिया जाता है या एकाध थप्पड़ लगा दिया जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

बच्चे के प्रति यह आत्यन्तिक मोह और पूर्वाग्रह दृष्टिकोण शरारती बच्चे को शह देने का कारण बनता है तथा लड़ाई-झगड़े की जड़ भी यहीं से पैदा हो जाती है।

लड़ाई-झगड़ा न भी हो तो भी बच्चे की उद्दण्डता को शह मिल जाती है तथा वह और ज्यादा उद्दण्ड बनता जाता है। अपराधी, डाकू, लुटेरे, हत्यारे और असामाजिक तत्त्वों में जितने भी व्यक्ति आते हैं लगभग सभी का प्रारम्भिक जीवन इसी प्रकार का रहा है। खेल-खेल में लड़ाई हो जाना तो बच्चों के लिए स्वाभाविक है परन्तु अभिभावकों का जब उन्हें समर्थन मिल जाता है तो वे समझ लेते हैं कि अवश्य ही हमने यह प्रशंसनीय कार्य किया है। उचित-अनुचित का विवेक तो उनमें रहता नहीं और जब उचित-अनुचित का विवेक आता है, तब तक बात इतनी आगे बढ़ चुकी होती है कि वहाँ से पीछे लौट पाना सम्भव नहीं रहता।

बच्चों को लड़ते देखकर इस प्रकार का पक्षपातपूर्ण रवैया नहीं ही अपनाना चाहिए। कई बार वस्तुतः ऐसा भी होता है कि एक बच्चा स्वभाव से ही सीधा-सादा रहता है और बाहर दूसरे बच्चों से पिट जाने पर भी कुछ नहीं कर पाता। माता-पिता ऐसे बच्चों का विशेष ध्यान रखते हैं और उसकी ओर से दूसरे बच्चे को डाँटने पहुँच जाते हैं। बच्चों की ओर इस प्रकार बड़ों द्वारा पैरवी करने पर बच्चा तत्काल भले ही यह समझ ले कि उसका कोई संरक्षक है परन्तु इस अनावश्यक संरक्षण के कारण बच्चे में दुर्बलता, हीनता की भावना तथा भीरुता आने लगती है। अभिभावक कोई चौबीस घण्टे तो बच्चों के साथ नहीं रह सकते। ऐसी स्थिति में बच्चा अपने आपको नितान्त असहाय और असुरक्षित समझने लगता है। असुरक्षा, भीरुता और दुर्बलता की यह भावना उसके व्यक्तित्व में इस तरह जड़ें जमा लेती हैं कि वह जीवन भर उनसे भी छुटकारा नहीं पा सकता और उसके जीवन में साहस, जीवटता तथा परिस्थितियों से संघर्ष करने की क्षमता अविकसित ही रह जाती है।

अब तक के प्रतिपादन का यह अर्थ नहीं है कि बच्चों की लड़ाई में अभिभावक किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप ही न करें। बच्चों की लड़ाई को तटस्थ बनकर भी नहीं देखते रहना चाहिए। उनके लड़ाई-झगड़े में स्वयं न उलझने का अर्थ यह तो है ही कि उनकी लड़ाई को अभिभावकों के स्तर पर न पहुँचने दिया जाय। इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि उनके विवादों का निपटारा समाधान के ढंग से किया जाय।

यद्यपि बच्चे बहुत छोटी-छोटी बातों पर झगड़ लेते हैं और स्वयं ही अपने झगड़ों को सुलझा भी लेते हैं। अधिकांश मामलों में अभिभावकों तक पहुँचते भी नहीं, फिर भी उन कारणों को समझ लेना चाहिए कि बच्चे किन कारणों से झगड़ पड़ते हैं ? बच्चों के झगड़े प्रायः खेल-खेल में हुआ करते हैं। खेलते समय विजय प्राप्त करने की आकांक्षा स्वाभाविक ही है। इससे स्वाभिमान बढ़ता है और आत्मविश्वास की भावना का उदय होता है। इसलिए जीतने की इच्छा दोनों ही पक्षों में रहती है यह स्वभाविक भी है और यह भी स्वाभाविक है कि दो बच्चे खेल रहे हैं तो एक उसमें जीतेगा और एक हारने वाला बच्चा अपनी आशा-आकांक्षा पूरी न होते देखकर खिसिया जाता है और कोई न कोई ऐसी हरकत कर बैठता है, जिससे लड़ाई पैदा हो जाती है।

अभिभावकों को जब यह पता चले कि लड़ाई खेल में हार-जीत के कारण हो गई है, तो वहाँ अपने-पराये का भेद भूलकर बच्चों को समझाना चाहिए कि खेल-कूद में हार-जीत, कोई बहुत बड़ा महत्त्व नहीं रखती है। जीतने वाला प्रशंसा का पात्र है, परन्तु इसी कारण हारने वाला छोटा नहीं हो जाता, बल्कि उसे और अधिक मेहनत करनी चाहिए और अधिक श्रम करना चाहिए तथा अगली बार खेल में जीतने का लक्ष्य रखकर अभ्यास करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

कुछ बच्चों में एक-दूसरे को छेड़ने, परेशान करने की भी आदत होती है। उनकी शिकायतें जब घर पर पहुँचती हैं तो अभिभावकों को उस ओर से उदासीन नहीं रहना चाहिए। दूसरे पक्ष को सन्तुष्ट रखने के लिए तत्काल तो उसे थोड़ा धमका दिया जाय, परन्तु देखना यह चाहिए कि बच्चे में यह प्रवृत्ति क्यों बढ़ रही है ? दूसरों को परेशान करने का एकमात्र कारण है—स्वयं की कोई कमजोरी तथा दूसरे से ईर्ष्या। कई बच्चे ऐसे होते हैं जो अपने घर से जरूरत की चीजें नहीं लाते और दूसरों की उठा लेते हैं अथवा दूसरों से माँग लेते हैं। उठाने की बात पता चल जाने या माँगने से न मिलने पर भी अक्सर मनमुटाव हो जाता है और लड़ाई-झगड़ा होने लगता है। इसके अतिरिक्त पढ़ाई-लिखाई में कमजोर बच्चे भी अपने से निपुण बच्चों के साथ लड़ने-झगड़ने लगते हैं।

इन दोनों की बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए, बच्चों को स्कूल जाने से पूर्व अपना सारा सामान ठीक से सँभालने की आदत सिखा दी जाय, ताकि उसे स्कूल में किसी चीज की कमी महसूस न हो। बच्चे की शिक्षा पर भी इसी प्रकार ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि वे कक्षा में पिछड़ न जायें।

कभी-कभी बच्चे दूसरे बच्चों द्वारा उकसाने पर भी लड़ बैठते हैं। परिवार में सदैव बना रहने वाला क्लेश भी उन्हें कलहप्रिय बना देता है। इसलिए परिवार का वातावरण शान्त-सन्तुलित और स्नेहपूर्ण तो रखना ही चाहिए। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि बच्चे सहिष्णु और शान्त स्वभाव के बनें। छोटी-छोटी बातों पर उत्तेजित होने से वे स्वयं को बचा सकें। स्वयं अपने माध्यम से इस प्रकार के संस्कार देने के अलावा बच्चों को यह शिक्षा कहानियों, घटनाओं और अन्यान्य विवरणों को सुनाकर भी दी जा सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वैसी स्थिति में जब बच्चे आपस में लड़ रहे हों और अभिभावक घटना-स्थल पर पहुँच जाएँ तब क्या किया जाना चाहिए ? यदि बच्चों की लड़ाई के दौरान माता-पिता भी घटना-स्थल पर पहुँच जाएँ तो सबसे पहले उन्हें लड़ते हुए बच्चों को तुरन्त अलग करना चाहिए और इसके बाद लड़ाई का कारण जानना चाहिए। यदि अपने बच्चे का दोष दिखाई दे तो उसे डाँट देने में कोई हर्ज नहीं है, साथ ही उसकी गलती का अहसास कराकर आगे से ऐसा न करने का वचन दिलाया जाये। यदि दूसरा बच्चा दोषी है, तो उसे भी स्नेहपूर्ण डाँट देने के साथ उसके माता-पिता से शिकायत करने की धमकी दी जा सकती है। यदि उसका दोष अधिक और उद्दण्डतापूर्ण है तो उसके माता-पिता से शिकायत की भी जा सकती है, परन्तु ऐसी स्थिति में कभी भी उत्तेजित नहीं होना चाहिए। बच्चों को लड़ाई में दूसरे के बच्चों के दोषी होने पर भी पीटें नहीं क्योंकि प्रायः इसी कारण लड़ाई पैदा होती तथा बढ़ती है।

इस प्रकार कुछ सावधानियाँ बरतने पर बच्चों के विवाद भी सुलझाये जा सकते हैं और स्वयं उनमें उलझने के दुष्परिणामों से भी बचा जा सकता है।

बालकों का पोषण करें, उत्पीड़न नहीं

व्यक्ति के चरित्र निर्माण में माता-पिता, अध्यापक, मित्र, परिवार, वातावरण एवं समाज सभी का उत्तरदायित्व रहता है। पर इन सबमें माँ की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण, अहम् और दायित्वशील होती है।

भारत एक ऐसा राष्ट्र है जहाँ दुनिया की सबसे अधिक बाल आबादी अर्थात् पच्चीस करोड़ से भी अधिक बच्चे निवास करते हैं। प्रतिवर्ष करोड़ों की संख्या में नवजात शिशु इस बाल मण्डली में आ जुड़ते हैं। जिनका विकास, स्वास्थ्य, शैक्षणिक, चारित्रिक, नैतिक, बौद्धिक भविष्य, पारिवारिक वातावरण माता-पिताओं पर निर्भर करता है। सामाजिक परिकर से भी बालक बहुत कुछ सीखते हैं।

बालमनोविज्ञान अनुकरण प्रधान होता है। अपने से बड़ों को जो कुछ करते हुए देखते हैं, उसी का अनुकरण वे करने लग जाते हैं एवं उसी राह पर चलते हैं। बचपन की छोटी-मोटी सीखी हुई बातों से ही आगे चलकर उनका चरित्र विनिर्मित होता है।

चरित्र शब्द 'चर' धातु से बना है। **''चर्यते अनेक इति चारितम्''** अर्थात् चलना। इसके साथ ही प्रश्न उठता है कि किधर चलना ? इसकी पुष्टि करते हुए महावीर स्वामी ने कहा है कि—अशुभ कर्मों से निवृत्त होना ही चरित्र कहलाता है। मानव जीवन को समुन्नत, सुसंस्कृत बनाने में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

गर्भावस्था से ही बालक माँ के आचरणों, संस्कारों को ओज आहार रूप में अर्जन करता है और जन्म के बाद भी काफी समय तक उसी के आश्रित रहता, गोद में खेलता, पयपान करता एवं विकास की ओर अग्रसर होता है। इसलिए माँ को सजग रहना चाहिए। वह वात्सल्य, ममता एवं स्नेह की देवी है। उसके इन दैवी अनुदानों, जादुई शक्ति की तुलना दुनिया की किसी भी वस्तु से नहीं की जा सकती। प्राचीनकाल में जब महिलाएँ पढ़ी-लिखी नहीं होती थीं फिर भी वे अपने बच्चों को गीता, रामायण, महाभारत, पुराणों की प्रेरणाप्रद कथा-कहानियाँ सुनाकर उनमें सुसंस्कारों का बीजारोपण करती थीं; जिनके परिणामस्वरूप उनकी संतति वीर, धीर और कर्त्तव्यपरायण एवं सुसंस्कारित होती थी।

परन्तु सभ्यता की इस आधुनिक अंधी दौड़ में अब बहुत-सी माताएँ बच्चे को जन्म देकर ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेती हैं। जिन बच्चों का लालन-पालन आया, नौकर करते हैं, वे संस्कारी नहीं बन पाते क्योंकि बच्चों की भी कुछ भावनाएँ होती हैं। उस समय उनके चित्त की एकाग्रता नैसर्गिक होने के कारण उनमें अमिट संस्कार पड़ते हैं। यदि इसी समय बीजारोपण हो गया तो समय पाकर वह अवश्य पुष्पित, पल्लवित होते देखा जा सकेगा। वह कार्य केवल 'माँ' ही कर सकती है।

जिस तरह शिल्पकारों, कुम्भकारों द्वारा पत्थर और कच्ची मिट्टी को मनचाहा आकार देकर खिलौना, मूर्ति एवं नाना भाँति के बर्तन गढ़े जा सकते हैं, ठीक उसी तरह माता-पिता शिशु को शूरमा, कायर एवं महामानव बना सकते हैं। अब तक जितने भी ऐतिहासिक महापुरुष हुए हैं उन सभी को श्रेष्ठ बनाने का श्रेय उनकी माताओं को जाता है। मदालसा ने अपने बच्चों को ब्रह्मज्ञानी बनाया। महाभारत का प्रसिद्ध 'विदुलोपाख्यान' सर्वविदित है, जिसमें रानी विदुला ने युद्ध से भागे अपने बेटे संजय को प्रेरणा देकर विजयी बनाया।

एक कहावत है कि चोर को नहीं, चोर की माँ को सजा दो। इससे उस कहानी का स्मरण हो आता है जिसमें एक डकैत को फाँसी की सजा हुई। जब उससे एक उसकी अन्तिम इच्छा पूछी गयी, तो उसने अपनी माँ से मिलना चाहा। माँ को बुलाया गया। उसने कान में बात कहने को कहा। माँ का कान पास आते ही उसने कान काट लिया और कहा—''यदि तू बचपन में ही मुझे चोरी करने पर प्रोत्साहन न देकर प्रताड़ना देती तो आज ये नौबत न आती।''

विगत दिनों एक मूर्धन्य मनोवैज्ञानिक ने दावे के साथ कहा कि पैदा होने के कुछ दिन बाद कोई भी बच्चा मुझे दे दीजिए। आप उस बच्चे को इन्जीनियर, वकील, डॉक्टर, अभिनेता, राजनेता, चोर-उच्चका जो भी कुछ बनाना चाहें मैं उसे वही बना दूँगा।

वस्तुतः माँ की कोख से ही बच्चे का चरित्र निर्माण शुरू हो जाता है। बच्चा ही ममता का वह निर्माण है, जिससे माँ को परिवार, समाज और राष्ट्र में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रेय और सम्मान प्राप्त होता है। माँ उसकी बाल-क्रीड़ाओं को देखकर गौरवान्वित होती है, किन्तु यदि ये बच्चे उच्छृंखल बन गये तो उसका गौरव, ममत्व सभी समाप्त हो जाता है शेष रह जाती है केवल खीझ। अतः बच्चे को उतना ही दुलारें जिससे वह जिद्दी एवं अहंकारी न बन पाये।

बच्चे को बचपन से ही मिल-बाँटकर खाने की प्रेरणा दें। अकेले या छुपकर खाने, कार्य करवाने की शिक्षा उन्हें चोरी करना ही सिखाती है। जहाँ तक बने बच्चे को सच बोलना ही सिखायें, टिप्पणी करने से उनमें अहंभाव पनपता है। अपने बच्चे की हर अच्छी-बुरी आदत की प्रशंसा करना और दूसरे बच्चों की अच्छी से अच्छी बात को नजरन्दाज करना अपने अन्तर्मन में छिपी हीनता का ही द्योतक है। ये बातें शुरू में तो अच्छी लगती हैं, पर इनसे बाल-मस्तिष्क में अहंभावना जन्मने से वह सदैव दूसरों को नीचा दिखाने का प्रयत्न करेगा।

घर के पूज्यनीय बड़े-बूढ़ों परिजनों का यदि अभिभावक स्वयं सम्मान करते हैं तो बच्चे स्वतः ही उनसे प्रेरणा ग्रहण कर लेते हैं। अपने पूज्यनीयों को प्रणाम करने, उनका सम्मान करने से ही उसकी शिष्टाचार की पुस्तक का अध्याय शुरू होता है। अपने बच्चों को शिष्टाचार से विमुख न करें।

बच्चे का भविष्य बनाना, बिगाड़ना अभिभावकों के हाथ में है। इसमें थोड़ी सावधानी बरतें ताकि उसका भविष्य उज्ज्वल बन सके। वह आदर्श भारतीय नागरिक की श्रेणी में आ सके।

सद्गुणों की सच्ची विरासत का चमत्कार

बाम्बे आर्ट सोसायटी १९३५ में बम्बई में कला प्रदर्शनी का आयोजन करती है। एक इक्कीस वर्ष का अनचिह्ना युवा कलाकार भी अपने मित्रों के आग्रह पर उसके लिए तस्वीर देने जाता है। चित्र की विषय-वस्तु धार्मिक है, भगवान कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित। उसे विश्वास है कि इस प्रदर्शनी में सफलता मिलेगी।

आज उसने बैंक की ड्यूटी से छुट्टी ली है। सबेरे जल्दी उठकर सबसे पहले म्युनिसिपेल्टी के नल से पानी भर लाया है। नित्य की तरह नहा-धोकर उसने कुछ अधिक देर तक भगवान की तस्वीर के आगे बैठ उपासना की है। सफलता देने के लिए प्रार्थना की है। बड़ी आशाओं के साथ उसने तस्वीर मढ़वायी, उस पर कपड़ा चढ़वाया। सवा सेर पेड़े, हार, अगरबत्ती आदि श्रद्धा के पत्र पुष्प, अपने कामना वृत्त में लपेटकर वह मन्दिर में चढ़ा आया है। उस दिन उसने उपवास भी रखा है। अपने घर से आठ मील दूर टाउन हाल तक तस्वीर देने वह पैदल ही गया है। वहाँ उसकी तस्वीर लेते समय बताया गया है—"सेलेक्शन हो जाने पर आपके पते पर सूचना भेज दी जायेगी। 'रिजेक्ट' हो जाने पर प्रदर्शनी समाप्त होने पर गोदाम से तस्वीर ले जाना।"

इतनी तैयारी, उपवास, मनौती के बाद भी उसका चित्र प्रदर्शन योग्य नहीं समझा जाता। प्रदर्शनी की समाप्ति पर वह भारी मन से तस्वीर लेने जाता है। उसे तस्वीर लौटा दी जाती है। तस्वीर की हालत देखकर उसकी जी भर आता है। इतनी सहेजकर रखी हुई उसकी वह पेंटिंग वहाँ लावारिस-सी फेंकी पड़ी थी। उसका कपड़ा ही गायब था, फ्रेम भी खुरच गयी थी। उसका उत्साह मर-सा जाता है। हो गयी पेंटिंग जिन्दगी भर 'क्लीनर' ही बने रहना भाग्य में लिखा है तो फिर ऐसे सपने देखने से क्या लाभ ? वह भारी कदमों से अपनी खोली पर लौट आता है और कमान हुई-सी खटिया पर गिर पड़ता है।

घोर निराशा और अवसाद के क्षणों में उसे लगता है कोई अदृश्य-सी अँगुलियाँ उसके उत्तप्त मस्तिष्क को सहला रही हैं। वह अपनी आयु से पन्द्रह वर्ष छोटा हो गया है। उसकी स्नेहमयी माँ उसे अन्तिम सीख दे रही है—"बेटा सच्चाई और ईमानदारी को कभी बिसारना मत, सदा बड़ा आदमी नहीं, भला आदमी बनने की कोशिश करना। परिश्रम में बहुत बड़ी शक्ति है। इसी को तप कहते हैं। जो तप कर सकता है, उसे कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होती। बस ! यही अनुभवों की सम्पदा मेरे पास है जो तुम्हें दिये जा रही हूँ। भगवान तेरा कल्याण करे।" बस यह सीख देकर उसकी माँ सदा के लिए उसे अकेला छोड़कर चल देती है, किसी ऐसे लोक में जहाँ से वापस नहीं होता।

जब भी वह हारने लगता है उसकी माँ के ये शब्द जैसे जीवन साकार होकर उसे अपने स्नेहपाश में बाँध उसकी सारी निराशा को धो देते हैं। पिछले इक्कीस वर्षों में उसे ये शब्द सहारा देते आये हैं। आज भी उसकी अवसाद धीरे-धीरे घुलने लगता है। नैराश्य का अन्धकार तिरोहित होने लगता है, वहाँ आशा का बाल रवि मुस्कुराकर कह उठता है—"पगले सवा रुपये के पेड़े, अगरबत्ती, पत्र-पुष्प और उपवास, उपासना से ही तू सफलता पाने चला था। तप कर, तप ही तो सफलता का उद्गम है। इसी तप के बल पर यह युवा चित्रकार भारत में ही नहीं विदेशों में भी विख्यात होता है। अपनी इस सफलता का श्रेय वह अपनी माँ की उस विरासत को ही मानता है, जो पाँच वर्ष की आयु में वे सहारा छोड़ते समय उसकी माँ दे गयी थी और नानी जब तक जीवित रही उन शब्दों को दोहराती रही जो आगे चलकर उसके मार्गदर्शक ही हो गये। यह चित्रकार है—कृष्ण हवला जी आरा। उनकी इस सफलता उस सत्य का परिचायक है कि माता-पिता अपने बालकों के लिए विरासत में धन-सम्पदा, जमीन-जायदाद आदि छोड़ जाने की अपेक्षा उन्हें वसीयत के रूप में सद्गुणों की सम्पदा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दे जायें तो भी वे अपने पाँवों पर खड़े होकर सफल जीवन जी सकने में पूर्ण समर्थ हो सकते हैं।

श्रीकृष्ण हवला जी आरा जिन परिस्थितियों से गुजरते हुए सफलता के शिखर पर चढ़े वे बड़ी ही विकट थीं। १९१४ में आन्ध्र प्रदेश के सिकंदराबाद के उप-नगर बोलारम में जन्मे किशन (उनके घर का नाम) को कृष्ण हवला जी आरा बनने के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ा। माँ पाँच वर्ष का छोड़कर मरी। पिता पेशे से ड्राइवर थे, बम्बई में किशन सौतेली माँ के पास रहते थे। सगी माँ नानी के पास रहती थी। नानी भी नदी किनारे का पका पेड़ था उसे कब तक संरक्षण दे पाती। दस का होते-होते वह भी उसे अनाथ छोड़ गयी। पिता सौतेली माँ के कहने में थे, वे उसे अपने पास नहीं रख सके किन्तु किशन के पास बहुत सम्पदा थी अपनी माँ के वे अन्तिम शब्द जिन्होंने उसे अपने आप प्रगति करने का धैर्य, साहस व मार्गदर्शन दिया।

भोजन और आश्रय के लिए वह लोगों के घर काम करते हुए बोलारम में ही वह पाँच जमात हिन्दी, दो उर्दू और दो अँग्रेजी के पढ़ता है। स्कूल के अध्यापक महादेवसिंह उसकी इस लगन और पात्रता को देखकर अपने दो पुत्रों के साथ तीसरा उसे मान घर रख लेते हैं। उन्हीं की बजह से स्कूल में फीस भी माफ होती है और उन्हीं से चित्रकला का शौक भी जागता है।

फिर वह बम्बई आता है। पिता उसे अपने पास नहीं रख सकते, वह भी बम्बई में ही रहने की कसम खाकर आया है। पिता के पास कर्नल यंग की नजर उस पर पड़ती है और वे उसे अपने पास रखते हैं। घर का काम करना और पढ़ने जाना यही उसका काम है। यंग दम्पत्ति पैसे देते हैं तो वह नहीं लेता। मेहमान उसके काम और उसकी व्यवहारकुशलता पर रीझकर उसे कुछ देते ही रहते हैं। वह ये सब उपहारादि श्रीमती यंग को सौंप देता है। तीन वर्ष बाद वे लोग इंग्लैण्ड लौटने को होते हैं, तब तक श्रीमती यंग उसे बेटे की तरह चाहने लगती है। वह उसके समस्त उपहार व टीन के तीन डिब्बे भर पैसों के साथ अपनी तरफ से बहुत कुछ देकर उसे अपने बूढ़े नौकर के संरक्षण में छोड़ जाती है।

किशन की ईमानदारी व सच्चाई पर प्रसन्न हो यंग दम्पत्ति उसे जो प्रमाण-पत्र दे जाते हैं, उसे देखते ही कर्नल ग्वालीलैण्ड उसे अपने यहाँ बारह रुपये महीना पर रख लेते हैं। बच्चों को खिलाने-घुमाने के लिए। उसकी ड्राइंग में रुचि देखकर वे केतकर इन्स्टीट्यूट में पढ़ने भेजते हैं, जहाँ से वह इण्टरमीडियेट करता है।

अँग्रेज परिवारों में रहता हुआ भी वह भारतीय संस्कृति, स्वदेश प्रेम और अपनी माँ की सीख नहीं भूलता। उसका नियमित उपासनादि क्रम यथावत् चलता रहता है। दुनिया की सब बुराइयों से वह सदा दूर रहता है और अच्छे कामों में सदा आगे। यह उसकी माँ की अन्तिम सीख का परिणाम है कि वह बड़ा नहीं भला आदमी बनना चाहता है। अपने मालिक की नजर बचाकर वह १९२८ के स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेता है। १९३० में वह मात्र १५ रुपये नगद व दो जोड़ी कपड़े लेकर काँग्रेस हाउस आ जाता है, अपनी नौकरी छोड़कर क्योंकि अब वह स्वयंसेवकों का कप्तान बन गया है। गरीब व अनाथ होते हुए भी वह पैसों का मोह नहीं रखता तभी तो अपने रुपये-पैसे व सामान कर्नल के घर ही छोड़ आता है।

सत्याग्रह में भाग लेने के कारण उसे पाँच माह की जेल होती है। जेल से छूटकर आने पर उसका जोरदार स्वागत होता है। फूल-मालाएँ पहनायी जाती हैं, स्वागत समारोह होता है किन्तु इन सबकी समाप्ति पर वह अकेला रह जाता है क्योंकि उसका अपना घर नहीं, परिवार नहीं। घर-परिवार है भी तो उसमें उसके लिए स्थान नहीं। लगता है अकेलेपन का यह अहसास उसके समूचे अस्तित्व को निगल जायेगा किन्तु उसी समय पन्द्रह वर्ष पहले अवतरित हुए वे अशरीरी शब्द उस पर जननी का स्नेह-दुलार और आशीष बरसा जाते हैं। उस अमृतवर्षा से उसकी सूखती जीवन लता पुनः लहलहा उठती है। वह जापानी बैंक 'याकोहामा बैंक' के अपने पिता के मित्र ड्राइवर की मदद से वहाँ 'क्लीनर' बन जाता है। दस वर्ष तक वह नौकरी और कला-साधना साथ-साथ करता रहता है।

सबेरे पाँच बजे उठकर तीनों गाड़ियों को चमाचम धोना, फिर नहाना, पूजा करना और जापानी बॉस के दफ्तर चले जाने पर खाना बनाकर खाना और फिर चित्र बनाना। अठारह रुपये वेतन में दस रुपये फीस के देता और आठ में घर खर्च चलाता। यह दस वर्षों की तपस्या उसे बहुत कुछ बना जाती है। १९३५ की बाम्बे आर्ट सोसायटी की प्रदर्शनी में उसका चित्र 'रिजेक्ट' हो जाने पर भी वह उसी वर्ष 'आर्ट सोसायटी ऑफ इण्डिया' की कला प्रदर्शनी में पाँच तस्वीरें भिजवा देता है। उसमें किशन को सिल्वर मेडल और अन्य पुरस्कार मिले हैं। प्रदर्शनी देखने की लालसा उसके मन में भी है किन्तु टिकिट के रुपये नहीं हैं। बॉस उसे बधाई देते हैं, पूछते हैं—"देखने गये।"

"नहीं"

"भाई जाना चाहिए, तुम्हें पुरस्कार मिला है।"

"टिकिट के पैसे नहीं हैं।" वह सकुचाते हुए अपनी विवशता प्रकट करता है। तब जापानी बॉस उसे पाँच रुपये देता है। दो रुपये टिकिट के और तीन अपनी तरफ से इनाम के। वह खुशी-खुशी प्रदर्शनी देखता है। उसके पाँचों चित्र 'सेलेक्ट' हुए हैं। पुरस्कार भी घोषित हुआ है। अपने चित्रों में उसे अपनी दिवंगत माँ झाँकती हुई लगती है मानो कह रही हो—"बेटा सफलता का राजमार्ग वही है जो मैंने तुम्हें बताया था।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

अब वह क्लीनर 'किशन' से चित्रकार कृष्ण हवला जी आरा हो गया है किन्तु गर्व उसे नहीं छू पाता। वहीं नौकरी करते हुए वह और भी चित्र बनाता है—प्रेरक घटनाओं के, इतिहास के, इतिहास प्रसिद्ध महापुरुषों के, देवताओं के, ईश्वर के। १९३९ में 'बाम्बे आर्ट सोसायटी' का पुरस्कार भी उन्हें मिलता है। उन्हें प्रसन्नता है कि जहाँ भी वे रहे सम्मानित रहे और उच्चादर्शों के कारण, जहाँ भी जो कुछ अच्छा लगा उसे अपनाया। १९४० में जापान के दूसरे विश्व युद्ध में मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध लड़ने के कारण जापानी बैंक बन्द हो गया और आरा बेकार। वे लैंग हेमर के पास बाण गंगा चले जाते हैं, वहाँ उनके चित्रकला विषयक मार्गदर्शन में कला साधना करते हैं। १९४४ में उन्हें 'मराठा बेटिल' नामक बड़े चित्र पर गवर्नर का पुरस्कार मिलता है, फिर तो वे 'वन-मेन-शो' की स्थिति तक पहुँच जाते हैं।

एक दिन जो अनाथ था। जिसके पास न रहने को घर था न खाने को रोटी वही व्यक्ति अब बम्बई जैसे महानगर के मलाबार हिल जैसे प्रसिद्ध स्थान पर अपने 'शीतल बाग' नामक सुन्दर से बंगले में रहकर कला साधना करता है। १९५२ में 'जहाँगीर आर्ट गेलेरी' के उद्घाटन के अवसर पर आयोजित चित्र प्रतियोगिता में स्वर्णपदक और दो हजार रुपये का नगद पुरस्कार मिलता है। अपना 'प्रगतिशील कलाकार संघ' बनाकर वह अपने साथियों सहित चित्रकला जगत में नाम कमाता है। विदेश यात्रा के प्रसंग भी बनते हैं। प्रशंसा और पुरस्कारों का अम्बार लगता है। इस सबका श्रेय उसी विरासत का चमत्कार है, जो उन्हें उपनी माँ से मिली थी। विवेकशील माता-पिता अपनी सन्तान को वैसी ही विरासत देना क्यों न चाहेंगे ?

उत्तराधिकार में बालकों को पाँच रत्न दीजिए

धन-दौलत, खेती, जमीन-जायदाद, सोना-चाँदी, रुपया, व्यापार आदि अनेक माँ-बाप अपने बच्चों को उत्तराधिकार में देकर जाते हैं। इससे उनका कुछ काम भी चलता है पर व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से यह सभी चीजें अपर्याप्त हैं। निम्न श्रेणी का व्यक्तित्व होने पर आलस्य और प्रमाद से ग्रसित व्यक्ति उत्तराधिकार में प्राप्त हुई सम्पदाओं को भी सुरक्षित नहीं रख सकता। वह दुर्गुणों के कारण इन चीजों को बर्बाद कर देता है या उसे अज्ञानी और अव्यवस्थित पाकर लक्ष्मी स्वयं ही छोड़कर चली जाती है। बड़े परिश्रम और लगन के साथ संचय करके माँ-बाप अपने बच्चों के लिए कुछ इसलिए छोड़ते हैं कि हमारे पीछे भी बच्चे सुखपूर्वक रहेंगे, पर वे यह भूल जाते हैं कि सद्गुणों के अभाव में किसी की भी, कितनी भी सम्पत्ति देर तक नहीं ठहर सकती। यदि उनमें सद्गुणों का समुचित विकास नहीं हुआ है तो उत्तराधिकार की सम्पत्ति उन्हें लाभ पहुँचाना तो दूर उल्टे अनेक दुर्गुणों को बढ़ावा देने वाली सिद्ध होगी। गरीब बच्चे उतने नहीं बिगड़ते जितने अमीरों के। गरीब को रोज कमाना और रोज खाना पड़ता है। फालतू कामों के लिए उनके पास पैसा भी नहीं आता। इसलिए ये ऐय्याशी, विलासिता, व्यसन और बदमाशी के फेर में पड़ने से सहज ही बच जाते हैं, पर जिनके घर में सुविधा है, उनमें दुर्गुणों को पनपने में भी सुविधा रहती है। वे दुःखदायक परिस्थितियों में आसानी से कुछ ही दिनों में फँस जाते हैं।

अभिभावकों का कर्त्तव्य है कि अपने बच्चों के लालन-पालन का, खिलाने-पिलाने का, लाड़-चाव का, सुख-सुविधा का, पढ़ाई-लिखाई का, ब्याह-शादी का और आजीविका से लगाने का समुचित ध्यान रखें। पर इतने तक ही सीमित हो जाने से उनका कर्त्तव्य पूर्ण नहीं हो जाता। इन सब बातों से अधिक उत्तरदायित्व उन पर इस बात का है कि अपने बच्चों को सभ्य और सद्गुणी बनाकर जावें। शारीरिक, बौद्धिक और आर्थिक विकास को महत्त्वपूर्ण माना जाता है सो ठीक है, पर यह न भूलना चाहिए कि यदि बालकों में अच्छी आदतों का, सत्प्रवृत्तियों का, सद्भावनाओं का समुचित विकास नहीं किया गया है तो वह बलवान, विद्वान, धनवान कुछ भी क्यों न रहे मानसिक दृष्टि से सदा दुःखी ही रहेगा। सुख-सुविधा जुटा लेने से ही कोई व्यक्ति सुखी नहीं बन सकता है। साधनों के आधार पर सुविधा बढ़ सकती है पर शान्ति और सन्तोष तो अच्छी मनोवृत्तियों के ही प्रतिफल हैं। कुसंस्कारी व्यक्ति कभी भी सुखी नहीं रह सकते, जीवन में कभी उन्हें शान्ति नहीं मिल सकती। वैभव के कारण दूसरों में अपने सुखी होने का भ्रम पैदा किया जा सकता है पर वस्तुस्थिति सदा यही रहती है कि जिसका दृष्टिकोण ऊँचा है, सच्चा सुख केवल उन्हीं तक सीमित रहेगा।

जो अभिभावक अपने बच्चों को सचमुच सुखी बनाना चाहते हों, उनके भविष्य को उज्ज्वल बनाना चाहते हों, उनके लिए उचित है कि सद्गुणों की दैवी सम्पदा अपनी संतति को अधिकाधिक मात्रा में देने का प्रयत्न करें। पर यह दे सकना उन्हीं के लिए सम्भव है, जिनके पास स्वतः कुछ हो। धनी व्यक्ति ही अपने बच्चों के लिए धन छोड़ सकते हैं। सद्गुणी व्यक्ति ही उत्तराधिकार में अपनी संतति को निखरा हुआ व्यक्तित्व प्रदान कर सकते हैं। बच्चों को कुछ देने या छोड़ जाने की प्रसन्नता प्राप्त करने से पूर्व अभिभावकों को पहले कठोर श्रम करके स्वयं कमाई करनी पड़ती है, तब उस संग्रह को किसी के लिए दे सकना सम्भव होता है। सद्गुणों की पूँजी पहले हमें अपने स्वभाव में संचित करनी पड़ेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसके बिना बच्चों को अच्छा बनाने की बात सोचना व्यर्थ है। ढपोलशंख की कथा है कि वह कहता बहुत था और करता कुछ नहीं था। हम बालकों को सज्जन बनने की शिक्षा दें और स्वयं दुर्जन बनें, तो अभीष्ट उद्देश्य किसी भी प्रकार पूरा न हो सकेगा। बच्चों को सुधारने से पूर्व हमें अपने आपको सुधारना होगा। बालकों की समझ अविकसित होती है, वे उपदेशों को अच्छी तरह समझ नहीं पाते। पर उनकी अनुकरण शक्ति प्रबल रहती है, जो कुछ देखते हैं, उसे आसानी से सीख लेते हैं, उसकी नकल तुरन्त करने लगते हैं।

१. श्रमशीलता की शिक्षा—यदि हम चाहते हैं कि हमारे बालक आलसी और अकर्मण्य न बनें तो हमें उनके सामने श्रमशीलता एवं कार्यसंलग्नता का उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए और अपनी ही भाँति उन्हें भी किसी न किसी उपयुक्त कार्यक्रम में लगे रहने की दिनचर्या बना देनी चाहिए। व्यवस्था ऐसी करनी चाहिए कि बालक खिन्न होकर नहीं वरन् मनोरंजन समझकर बताये हुए कार्यों में लगा रहे। उसका मन न लगता हो तो किसी दूसरे प्रकार से हेर-फेर कर देना चाहिए। खेलना भी एक काम है, यदि वह नियत समय और उचित वातावरण में सम्पन्न किया जाय। खेलों में जहाँ मनोरंजन के लिए स्थान रहे, वहाँ बुद्धि-विकास एवं सामाजिक प्रवृत्तियों की भी गुंजायश रहनी चाहिए। घर के कई उपयोगी कामों में बच्चों को लगाये रहने और साथ ही उनका मनोरंजन होते रहने की अपनी परिस्थितियों के अनुरूप व्यवस्था कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति आसानी से बना सकता है। पुरस्कार और प्रशंसा के द्वारा भी बच्चों को उपयोगी कामों में लगे रहने की प्रेरणा दी जा सकती है। समय को व्यर्थ न जाने देना और उसे किसी न किसी उपयोगी कार्य में निरन्तर लगाये रहने की आदत मानव-जीवन की सबसे बड़ी श्रेष्ठता एवं विशेषता है, जिसने अपने बच्चों को यह आदत सिखा दी उसने उनके लिए अपार सम्पत्ति उत्तराधिकार में छोड़ने की अपेक्षा कहीं अधिक उपकार किया है यह मानना चाहिए।

२. उदारता एक दिव्य गुण—उदारता दूसरा गुण है। बच्चे अपने भाई-बहिनों से अक्सर लड़ते-झगड़ते रहते हैं। खाने-पीने की वस्तुओं के लिए, खिलौनों के लिए या और किन्हीं वस्तुओं के लिए आपस में छीना-झपटी करते रहते हैं। इस आदत को जरा भी प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए, वरन् उन्हें यह सिखाना चाहिए कि मिठाई आदि कोई स्वादिष्ट चीज पहले अपने दूसरे बहिन-भाइयों को बाँटें तब खुद खावें। जो बच्चा अधिक स्वार्थी हो उसी से यह बँटवारे का काम कराना चाहिए और उसे उचित बँटवारा करने पर, स्वयं सबसे पीछे और कम लेने की सज्जनता पर जी खोलकर बधाई देनी चाहिए तथा इस कार्य की उपयोगिता भी समझनी चाहिए। ईर्ष्यावश दूसरे बच्चों की चीजों को तोड़ने-फोड़ने या खराब करने की आदत किसी बच्चे में पढ़ने लगी हो तो उसे इसकी बुराई समझानी चाहिए और उपकार एवं स्नेह-बुद्धि जगाकर दूसरों की वस्तुओं को सँभालकर रखने एवं सहायता करने की प्रवृत्ति पैदा करनी चाहिए। एक-दूसरे के कटु व्यवहार को सहना, भिन्नता में भी समन्वय उत्पन्न करना, भूलने और क्षमा करने की नीति रखना, अपने कर्त्तव्य को स्मरण रखना और अधिकार को भूल जाना जहाँ भी स्वीकार किया जायेगा वहाँ की शान्ति और प्रेम-भावना को कोई भी कारण नष्ट न कर सकेगा। उदारता परिवार-शान्ति की सबसे बड़ी गारण्टी है।

३. सफाई और सादगी—सफाई तीसरा गुण है, जो बच्चों में आरम्भ से ही उत्पन्न करना चाहिए। सफाई से प्रेम होने का अर्थ, मैल से घृणा। धोबी के धुले कपड़े चटपट पहन लेना और पुराने कपड़े उतारकर फेंक देना सफाई नहीं है, यह तो सौन्दर्य के प्रति आकर्षण मात्र है। शरीर के किसी अंग पर मैल जमा न होने देना, रगड़-रगड़कर भली प्रकार स्नान करना, दाँत और जीभ ठीक तरह साफ करना, धुले कपड़े पहनना, अपने उपयोग की सभी चीजें ठीक रखना, यह सभी आदतें आवश्यक हैं। पर सबसे बड़ी बात यह है कि अपनी कोई वस्तु अव्यवस्थित पड़ी न रहने दी जाय। कपड़े, जूते, बर्तन, पुस्तकें, कलम आदि वस्तुओं को बच्चे जहाँ-तहाँ पटककर दूसरे काम में लग जाते हैं। उन्हें सिखाया जाना चाहिए कि एक काम पूरा करके तब दूसरा आरम्भ करना चाहिए और गन्दगी से घृणा करनी चाहिए। गन्दगी के उत्पन्न होते ही साफ करना चाहिए। हर वस्तु स्वच्छ और सलीके से रखनी चाहिए। गन्दगी से घृणा न होना, उसे सहन करना, मानव स्वभाव का एक बहुत बड़ा दूषण है।

तड़क-भड़क, शौकीनी, फैशनपरस्ती सफाई जैसी दीखते हुए भी उससे सर्वथा भिन्न है। सादगी ही सज्जनता की पोशाक है। जो लोग फैशन बनाकर अपने आपको गुड्डे-गुड़ियों जैसा सजाते हैं, वे मानसिक दृष्टि से ओछे ही कहे जा सकते हैं। शालीनता का प्रधान चिह्न सादगी ही माना गया है और सभी सम्भ्रान्त व्यक्ति उसी को महत्त्व देते हैं। चीजों को व्यवस्थित एवं सुसज्जित रूप से रखने की आदत आरम्भ में छोटी ही क्यों न लगती हो, आगे चलकर व्यक्ति को एक सुयोग्य व्यवस्थापक एवं सुरुचिसम्पन्न व्यक्ति बना देती है। इसलिए बच्चों को बार-बार टोकते रहकर, उन्हें बराबर समझाते रहकर सँभालने और साफ रखने की आदत का अभ्यासी बनाना चाहिए। एक काम को पूरा करके दूसरे को हाथ लगाया जाय। यह आदत धैर्य और व्यवस्था का पूर्ण रूप है। कपड़े, पुस्तकें, बर्तन, जूते आदि यथास्थान रखे बिना वे आगे का काम न करें, यह आदत डाली जा सके तो एक काम अधूरा छोड़कर दूसरे में लगने की, दूसरा छोड़कर तीसरे में संलग्न हो जाने की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बालबुद्धि से बचा जा सकता है और बच्चा आगे चलकर इस आदत के कारण ही जीवन के हर क्षेत्र में सफलता का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। पूरा मन लगाकर जो भी काम किया जायेगा उसमें जादू जैसी विशेषता होती है और हमारे अधूरे मन से किये हुए काम आमतौर से फूहड़पन लिए होते हैं।

४. समय का सदुपयोग—समय का पालन, नियत दिनचर्या के आधार पर यथासमय अपने सब काम करने की आदतें मानव-जीवन के सदुपयोग का महत्त्वपूर्ण गुण हैं। अधिकांश व्यक्ति समय का मूल्य नहीं समझते। ईश्वर ने सम्पत्ति के रूप में मानव-प्राणी को यही सबसे बड़ी, सबसे मूल्यवान वस्तु दी है। वह जो कुछ भी विभूति चाहे अपने समय का पूरा उपयोग करके उससे प्राप्त कर सकता है। समय के सदुपयोग का नाम ही पुरुषार्थ है। नियमित रूप से व्यवस्थित गति से चलती रहने वाली चींटी भी योजनों लम्बी मंजिल पार कर लेती है, पर निठल्ला बैठने वाला गरुड़ भी जहाँ का तहाँ रहता है। फुरसत न मिलने की शिकायत तो हर आदमी करता है और अपने को कार्य-व्यस्त भी मानता है पर सच बात यह है कि कोई बिरला ही अपने आधे समय का भी ठीक उपयोग कर पाता है। धीरे-धीरे अधूरे, अव्यवस्थित प्रकार से, आवश्यकता से अधिक समय मामूली बातों में लगाकर अनुपयोगी कामों में लगे रहकर आमतौर से लोग अपनी आधी जिन्दगी नष्ट कर लेते हैं। लिखित दिनचर्या बनाये बिना यह पता ही नहीं लगता कि आवश्यक और अनावश्यक कार्य कौन-कौन-से हैं और कब कौन-सा कार्य, कितने समय में करना है ? इसलिए बच्चों को समय का महत्त्व समझाना चाहिए, व्यस्तता का महत्त्व बताना चाहिए और समय की बर्बादी की हानि से उन्हें परिचित रखना चाहिए। जल्दी सोना और जल्दी उठना किसी भी प्रगतिशील जीवन में रुचि रखने वाले के लिए नितान्त आवश्यक है। जिसके सामने कोई अनिवार्य कारण न हों उन्हें सूर्य अस्त होने के तीन घण्टे के बाद तक अवश्य सो जाना चाहिए और प्रातःकाल सूर्य उदय होने से दो घण्टे पहले उठ-बैठना चाहिए। यह सोने और उठने की आदत जिन्होंने ठीक कर ली वे बच्चे निश्चित रूप से पढ़ाई में अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होते रहेंगे। इस आदत के कारण प्रतिदिन कई महत्त्वपूर्ण घण्टे अधिक कार्य करने के लिए मिल जाते हैं और उसको जिस भी कार्य में लगाया जाय उसी में मनुष्य आशाजनक उन्नति कर सकता है। जिसने अपने समय का मूल्य समझ लिया और उसके सदुपयोग की ठान ठान ली, समझना चाहिए कि उसने अपने जीवन को सफल बनाने की आधी मंजिल पार कर ली।

५. शिष्टाचार और सज्जनता—पाँचवाँ गुण जो बच्चों को सिखाया जाना चाहिए वह है—नम्रता। सज्जनता, शिष्टाचार, मुधर भाषण, भलमनसाहत—यही तो वह विशेषताएँ हैं, जिनसे आकर्षित होकर दूसरे लोग अपने ऊपर अनुकंपा करते, प्रशंसक बनते और समीपता में प्रसन्नता अनुभव करते हैं। पराये को अपना बनाने का गुण केवल मात्र सज्जनता के व्यवहार में ही सन्निहित है। अनुदार, रूखे, कर्कश, अशिष्ट, कटुभाषी व्यक्ति अपनों को भी पराया बना देते हैं और मित्रों से शत्रुता उत्पन्न कर लेते हैं। उसके विपरीत जिनकी वाणी में प्रेरणा घुली रहती है, आदर के साथ बोलते हैं और नम्रता और सज्जनता का परिचय देते हैं, उनके शत्रु भी देर तक शत्रु नहीं रह सकते, उन्हें प्रतिकूलता छोड़कर अनुकूल बनने के लिए विवश होना पड़ता है।

परिवार के विद्यालय में सज्जनता एवं मधुरता का अभ्यास छोटी आयु से ही बालकों को कराया जाना चाहिए। बड़े-छोटों के साथ आप या तुम कहते हुए सम्मानसूचक शब्दों में ही बात करें। प्रताड़ना एवं भर्त्सना भरी बात भी कोई गलती करने पर कही जा सकती है पर वह होनी नम्र और शिष्ट शब्दों में ही चाहिए। गाली-गलौज भरे, मर्मभेदी, व्यंग्यात्मक, तिरस्कारपूर्ण कटु शब्द हर किसी को बुरे लगते हैं। छोटों पर भी उसका बुरा प्रभाव पड़ता है। जिह्वा पर इतना काबू होना चाहिए कि वह आवेश भरे दुष्ट शब्दों को बोलने न पाये। दुष्ट शब्दों की प्रतिक्रिया दुष्टतापूर्ण ही होती है, उससे केवल द्वेष बढ़ता है। कभी इन्कार का अवसर आवे तो उसमें भी अपनी असमर्थता नम्र शब्दों में प्रकट करनी चाहिए। कटु शब्दों में इन्कार करने से सामने वाले पर दुहरा प्रहार होता है, और वह भी तिलमिलाकर दुहरी दुष्टता धारण कर लेता है। विवाद, इन्कारी एवं प्रतिद्वन्द्विता में भी शिष्ट भाषा और सामने वाले के सम्मान का ध्यान रखा जाना चाहिए।

चरण-स्पर्शपूर्वक अभिवंदन

घर का प्रत्येक व्यक्ति अपने से बड़ों का विशेषतया माता-पिता एवं वयोवृद्धों का नित्य चरण-स्पर्श के साथ अभिवादन किया करें। यह परम्परा हमारे हर घर में आरम्भ की जानी चाहिए। इसका प्रभाव परिवार के स्नेह-सम्बन्धों पर बहुत अधिक पड़ता है। कोई कटुता उत्पन्न होती है तो इस प्रक्रिया के द्वारा उसका बहुत कुछ समाधान नित्य ही होता रहता है। छोटे बच्चे अपने बड़े भाई-बहिनों को तथा बुजुर्गों को प्रातःकाल उठते ही प्रणाम किया करें। बड़े अपने बड़ों को प्रणाम करें और सबसे बड़े अपने स्वर्गीय पूर्वजों के चित्र अथवा चरण-प्रतीक का अभिवंदन किया करें। स्वर्गीय पूर्वजों के चित्र अथवा चरण-प्रतीक हर घर में रहने चाहिए और उनके अभिवंदन की धर्म-प्रक्रिया परिवार के प्रत्येक सदस्य को नित्यकर्म की तरह पूर्ण करनी चाहिए। बहुएँ अपने पति के, सास-ससुर के, बड़ी ननद के, जेठ-जिठानी के तथा घर में जो और वयोवृद्ध हों उनका चरण-स्पर्श

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभिवंदन किया करें। सज्जनता, नम्रता और धार्मिकता की यह पुनीत परिपाटी जिन घरों में चल पड़ेगी वहाँ पारिवारिक-कलह का एक बहुत बड़ा भाग स्वयंमेव समाप्त हो जायेगा। आरम्भ में संकोचवश, इस नई प्रथा को अपनाने में घर के सदस्य आना-कानी कर सकते हैं, पर यदि साहसपूर्वक एक-दो व्यक्ति भी इसे अपना लें तो कुछ दिन में और सब लोग भी इस श्रेष्ठ परम्परा को अवश्य अपना लेंगे।

परिवार के सत्शिक्षण के लिए यह अत्यन्त सरल कार्यक्रम है, पर इसकी महत्ता अत्यधिक है—(१) श्रमशीलता, (२) उदारता, (३) सफाई, (४) समय का सदुपयोग, (५) शिष्टाचार के पाँच नियम जिस परिवार में जड़ जमा लेंगे वहाँ स्वर्ग के लक्षण कुछ ही दिन में प्रत्यक्ष दिखाई देने लगेंगे। यह पाँचों गुण छोटों को सिखाने से पूर्व बड़ों को पहले अपने में उत्पन्न करने चाहिए और वाणी से ही नहीं, क्रिया से भी छोटों को इनकी शिक्षा देनी चाहिए। यों सद्गुण अनेक हैं पर इन पाँच की महत्ता सर्वोपरि है। गृहपति का तथा परिवार के प्रत्येक उत्तरदायी व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि इन्हें अपने स्वभाव का अंग बनावें। यह गुण जितने-जितने अंशों में बढ़ेंगे, परिवार में पारस्परिक सम्बन्ध मधुर होने के साथ-साथ आर्थिक तथा अन्य प्रकार की प्रगति के साधन जुटने लगेंगे, जिन्हें अपना परिवार देव-परिवार के रूप में देखने की इच्छा हो वे इन पाँच गुणों का प्रवेश परिजनों में कराते रहने के लिए कटिबद्ध हों और देखें कि उनका वृहत् परिवार-शरीर कितना स्वस्थ, समर्थ एवं सुविकसित बनता चला जाता है।

बच्चों की जिज्ञासा

बच्चे किस प्रकार के प्रश्न किसी अवस्था में पूछते हैं, इससे यह पता चलता है कि उनमें विचारों का विकास कैसे होता है ? प्रायः तीसरे वर्ष की अवस्था से ही बच्चे अपने निकट की वस्तुओं और घटनाओं के सम्बन्ध में भाँति-भाँति के प्रश्न पूछने लगते हैं। कुछ प्रश्न तो बच्चे अपनी ओर केवल दूसरों के ध्यान को आकर्षित करने के लिए करते हैं। उनके कुछ प्रश्न सच्ची जिज्ञासा को शान्त करने के लिए होते हैं, जिससे वे अपने अनुभवों के अर्थ को ठीक-ठीक समझ सकें। जब तक इन प्रश्नों द्वारा उसकी जिज्ञासा शान्त न होगी, तब तक वह विभिन्न प्रश्नों को पूछता रहेगा। 'हरलाक' कहता है कि प्रश्न करने का काल तीसरे वर्ष से प्रारम्भ होकर प्रायः छठे वर्ष तक चलता है।

बच्चों के भाषा-विकास के अध्ययन से उनके प्रश्नों के स्वरूप अथवा प्रत्यय का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। 'रग' ने अपने अध्ययन में देखा कि किण्डर गार्टन के बच्चों की बातों का दस प्रतिशत प्रश्न थे। 'फिशर' ने नर्सरी स्कूल के बच्चों के अपने अध्ययन में देखा कि १॥ से २ वर्ष के लगभग उनकी बातों में दो प्रतिशत प्रश्न थे, परन्तु तीसरे वर्ष की अवस्था पर उनका प्रतिशत १५ हो गया।

मनोवैज्ञानिकों के लिए अभी तक यह जानना सम्भव नहीं हो सका है कि विभिन्न विकासावस्था पर बच्चों को किन-किन साधारण बातों का ज्ञान रहता है। अतः किसी भी उम्र के लिए अभी तक इस सम्बन्ध में कोई प्रतिमान नहीं निश्चित किया जा सका है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि बच्चे विभिन्न वातावरण से आते हैं और उनके अनुभवों में बड़ा अन्तर होता है।

दिशा और दूरी का ज्ञान बच्चे अपने आप नहीं सीख पाते। किसी दूरी का अनुमान करने के लिए वह उसकी उस परिचित वस्तु और व्यक्ति से तुलना करते हैं जिसे बहुधा तय किया करते हैं। स्थान, दिशा और दूरी के अनुमान के लिए वे दृष्टि सम्बन्धी तथा गति सम्बन्धी संवेदनाओं का सहारा लेते हैं। जब बच्चा रेंगना प्रारम्भ करता है, तभी से वह इन संवेदनाओं का अनुभव करने लगता है। जब वह गाड़ी, तीन पहिये की साइकिल तथा गेंद इत्यादि से खेलना प्रारम्भ कर देता है तो दूरी और दिशा का उसका ज्ञान कुछ शुद्धतर होने लगता है। जिस लम्बी दूरी को बालक तय नहीं कर सकता उसके सम्बन्ध में वह अन्धकार में ही रहता है। स्कूल में स्केल, गज, फीट और इंच से दूरी और बाँट से तौल नापने से उसे स्थान और दूरी को समझने में अथवा प्रत्यय पाने में बड़ी सहायता मिलती है।

बच्चे ज्यों ही बातचीत करने की कुछ योग्यता प्राप्त कर लेते हैं, वे कुछ संख्याओं को भी गिनने लगते हैं। यह ठीक-ठीक कहना कठिन है कि संख्या के प्रयोग की योग्यता उनमें कब प्रारम्भ होती है, परन्तु दूसरे या तीसरे वर्ष से वे कुछ संख्याओं के नाम अवश्य लेते हैं। किण्डर गार्टन के साढ़े चार वर्ष की अवस्था के बच्चों के अध्ययन से 'इगलस' को ज्ञात हुआ कि उनमें कुछ में संख्याओं के प्रयोग करने की योग्यता है। एक कार्ड पर कुछ बिन्दुओं को बनाकर उनसे उनकी संख्या पूछी गई। यह देखा गया कि इस उम्र से बच्चों का १ और २ का ठीक-ठीक ज्ञान है, ३ का ज्ञान बहुत अच्छा नहीं है, ४ का ज्ञान कामचलाऊ है और ५ से १० तक की संख्या का उनका ज्ञान बहुत ही अस्पष्ट था। बड़े बच्चे बड़ी संख्याओं का प्रयोग अधिक कुशलता से करते थे और छोटों को इसमें कुछ कठिनाई होती थी। इगलस ने निष्कर्ष निकाला है कि बच्चों का संख्या प्रत्यय उनकी उम्र तथा शिक्षण के अनुसार बढ़ता है।

छोटे बच्चों में समय की अवधि को समझने की योग्यता बड़े ही धीरे-धीरे विकसित होती है। यदि वह कुछ काम करता है तो उसके लिए यह कहना बड़ा ही कठिन होता है कि वह कितने समय तक काम करता रहा। जब किसी काम को वह बड़े मन से करता है तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे जान पड़ता है कि समय बड़ी जल्दी बीत गया और जब बेकार रहता है, तो समय जल्दी बीतते नहीं जान पड़ता। स्कूल में पहुँचने में देर करना तथा किसी पूर्व निश्चय के अनुसार किसी स्थान पर ठीक समय से न पहुँचना उसके समय की अवधि को समझने की असमर्थता का द्योतक है। सुबह की क्रियाशीलताएँ शाम से भिन्न होती हैं। दिन में कुछ और काम किया जाता है और रात को कुछ और ही, इसलिये लगभग २॥ या ३ वर्ष का बच्चा सुबह और शाम अथवा दिन और रात के भेद को समझ सकता है। चार वर्ष के बच्चे प्रायः यह बतला सकते हैं कि आज मंगल है या बुधवार परन्तु महीने या ऋतु का ज्ञान उन्हें एक साल बाद ही आता है।

बच्चों को आकार और स्वरूप का ज्ञान जल्दी होता है क्योंकि सन्दूक खिलौना, बिस्तर, मेज तथा कुर्सी इत्यादि वस्तुओं के अन्तर को समझने में उन्हें देर नहीं लगती। तीसरे वर्ष की उम्र में बच्चे इन सबके अन्तर को समझने लगते हैं। विभिन्न परीक्षणों से यह स्पष्ट है कि उम्र और अनुभव के बढ़ने के साथ आकार और स्वरूप को समझ सकने की योग्यता बच्चों में बढ़ती रहती है।

दूसरों को समझने के पूर्व बच्चा अपने को कुछ समझ लेता है। अपने विषय में जो वह प्रत्यय बनाता है उसी के अनुसार वह दूसरों को समझने का प्रयत्न करता है। दर्पण में देखने तथा अपने हाथ से विभिन्न अंगों को छूने से वह अपने शरीर के विभिन्न अंगों को समझता है। उसकी यह क्रिया चौथे या पाँचवें महीने से ही प्रारम्भ हो जाती है।

बच्चे को अपने में बड़ी रुचि होती है। इसलिए अपने विषय में उसके प्रत्यय का विकास बड़े शीघ्र आरम्भ हो जाता है।

बच्चे प्रायः अपने आत्मप्रत्यय के विकास में दो प्रकार के प्रत्ययों का विकास करते हैं। एक प्रकार का प्रत्यय तो बाह्य व्यक्तियों के सम्पर्क के प्रभावस्वरूप विकसित होता है। जब बालक स्कूल जाना प्रारम्भ करता है तो उसके 'आत्म' का दूसरा स्वरूप विकसित होता है। यह स्वरूप उसके विचारों, भावनाओं और संवेगात्मक अनुभवों पर आधारित रहता है। इन दोनों प्रकार के 'आत्म' का वह एकीकरण नहीं कर पाता। अतः वह अपने को बहुधा दो व्यक्तित्व वाला व्यक्ति समझता है। किशोर अवस्था में पहुँचने में उसके 'आत्म' के ये दोनों स्वरूप आपस में मिल जाते हैं। तब बच्चा एक समन्वित व्यक्ति की तरह व्यवहार दिखलाने में समर्थ होते हैं।

दूसरों के व्यवहार तथा संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं के निरीक्षण से व्यक्ति में सामाजिक प्रत्यय आता है। ध्वनि का प्रत्यय बच्चा बहुत पहले ही कर लेता है। आवाज से ही वह परिचित अथवा अपरिचित अथवा प्रेम भरी आवाज की पहचान वह एक वर्ष की उम्र में प्रायः करने लगता है।

अन्वेषणों के आधार पर 'व्यूहलर' का कहना है कि तीन महीने की उम्र में बच्चे को क्रोध अथवा प्रेम भरे शब्दों की पहचान नहीं रहती। वह दोनों को समान समझता है। पाँच महीने की अवस्था पर वह क्रोध के भाव को समझने लगता है। जब कोई व्यक्ति उससे क्रोध दिखलाता है तो वह रोने लगता है। उसकी धारणा है कि आठवें महीने पर बच्चा दूसरों के चेहरे के भाव को समझने में अमसर्थ होता है।

अच्छे वातावरण के बच्चों का साधारण वातावरण के बच्चों की अपेक्षा सामाजिक प्रत्यय अच्छा होता है। व्यक्ति के सौन्दर्य की भावना उसके विभिन्न सम्बन्धों पर निर्भर करती है। सुखद भावना के पाने पर वह सोचता है कि सम्बन्धित व्यक्ति या वस्तुएँ सुन्दर हैं और दुःखद भावना पाने पर उन्हें वह असुन्दर मानता है। वस्तुतः न कोई वस्तु अपने में सुन्दर है और न असुन्दर, उसे सुन्दर अथवा असुन्दर मानना तो अनुभव करने वाले व्यक्ति के तात्कालिक भाव पर निर्भर करता है। बच्चे जिसे पसन्द करता है, उसे वह सुन्दर मानता है और जिसे वह पसन्द नहीं करता उसे वह असुन्दर कहता है। जिन व्यक्तियों को वह चाहता है, उसे वह सुन्दर ही समझता है, चाहे वह दूसरों की दृष्टि में असुन्दर ही क्यों न हों। इस बात की पुष्टि 'हरमन' द्वारा निर्धारित प्रश्नावली से होती है। जब पाँच वर्ष के बच्चे को कुछ स्त्रियों के चित्र दिखलाये गये तो उन्होंने सुन्दरतम के स्थान पर सबसे भद्दे चित्रों को पसन्द किया। पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया कि ये चित्र उसकी 'दादी' की तरह लगते हैं अथवा 'आया' के समान हैं।

गहरे रंग के चित्र जिनमें व्यक्तियों अथवा मशीन की गतियों का चित्रण रहता है, बच्चों को अच्छे लगते हैं। कोई चित्र जिसमें लोग कुछ काम करते हुए चित्रित रहते हैं, बच्चों को बड़े ही अच्छे लगते हैं। प्राकृतिक दृश्य बच्चों को तब तक अच्छे नहीं लगते जब तक उनमें कुछ क्रियाशील व्यक्तियों का अथवा पशुओं का चित्रण न हो।

बच्चा किस वस्तु को सुन्दर मानेगा और किसे असुन्दर यह उसके सांस्कृतिक वातावरण पर भी कुछ हद तक निर्भर करता है। प्रौढ़ व्यक्तियों के साथ रहने के कारण बच्चे प्रायः सौन्दर्य सम्बन्धी उन्हीं की भावनाओं को अपना लेते हैं। अपने लिए अच्छा न समझते हुए ऐसी स्थिति में बालक उन वस्तुओं को सुन्दर मान बैठता है, जिन्हें प्रौढ़ लोग सुन्दर मानते हैं। जिसे माता-पिता या शिक्षक सुन्दर मानते हैं, उन्हें बच्चे भी सुन्दर मान बैठते हैं। ज्यों-ज्यों बच्चे बड़े होते हैं वे प्रौढ़ों के सौन्दर्य सम्बन्धी मापदण्ड को स्वीकार करने लगते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रायः यह सबका अनुभव है कि एक छोटा शिशु भी संगीत को पसन्द करता है। जब धीरे-धीरे गाया या गुनगुनाया जाता है तो उसे नींद आ जाती है। एक वर्ष की अवस्था के पूर्व संगीत सुनने की रुचि बच्चों में स्पष्टतः देखी जाती है। यदि बच्चे को कहीं कुछ कष्ट हो रहा है तो संगीत की ध्वनि से उसे कुछ शान्त किया जा सकता है। बच्चे को लय बड़ी अच्छी लगती है और वातावरण के अनुसार उसमें एक विशिष्ट प्रकार के स्वर के लिए रुचि भी उत्पन्न हो जाती है। तीन वर्ष की अवस्था पर बच्चा प्रायः यह कह देता है कि वह कौन-सा गाना या ग्रामोफोन का रिकार्ड सुनना पसन्द करेगा। अपने प्रिय गाने को बच्चा जितनी बार सुनता है वह गाना उसके लिए उतना ही प्रिय हो जाता है। संगीत की रसानुभूति के लिए उसके अर्थ को भी समझना आवश्यक है। छह या सात वर्ष की अवस्था में बच्चे स्वर की गहनता और ऊँचाई को कुछ-कुछ समझ सकते हैं। दूसरों के स्वर को सुनने से उनकी गहनता और ऊँचाई का वे कुछ हद तक अनुकरण भी करते हैं।

बच्चों की जिज्ञासा का विकास हो

भूख बुझाने के लिए आहार की और ऋतु प्रभावों से बचने के लिए कपड़ों की आवश्यकता पड़ती है। यह हमें रोज नये सिरे से बनाने या धोने-साफ करने पड़ते हैं। बासी-बुसी रोटियों और मैले-कुचैले कपड़ों से काम नहीं चल सकता। उनमें नवीनता लानी आवश्यक है। छोटे बच्चे को नया खिलौना लाकर दिया जाय तो वह उसमें एक-दो दिन ही रुचि लेगा, इसके बाद नये की माँग करेगा। यह बाल प्रवृत्ति है, यह सोचकर उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

बड़ों को भी एक ही तरह की दाल सदा खाने के लिए दी जाती रहे तो खाने वाले का जी भर जाता है और नयी वस्तु की माँग करने लगता है। घर में कपड़े होने पर भी शादी-बारात में जाते समय नये कपड़े पहनने की इच्छा होती है। छोटे तो क्या काम-काजी और व्यवसायी भी पर्यटन, पिकनिक के लिए मन चलाने लगते हैं और काम में हर्ज करके भी उसके लिए जाने का सरंजाम जुटाने लगते हैं।

ज्ञान के सम्बन्ध में भी यही बात है। पाठ्य पुस्तकों के बारे में आवश्यक नहीं कि उनका एक-एक पन्ना ही रोज पढ़ा जाय। जब नई पुस्तकें खरीदकर बाजार से लायी जाती हैं तो बच्चों में इतनी उतावली होती है कि वे दो-चार दिन में ही सबको सरसरी निगाह से पढ़ जाते हैं। जब स्कूल के पाठ्यक्रम में पढ़ी-पढ़ाई बातों को रटने के लिए कहा जाता है, तो उनका मन नहीं लगता। भार वहन करने की दृष्टि से उन्हें पढ़ते रहें तो बात दूसरी है। पाठ्य-पुस्तकों को रट लेना एक बात है और उनमें दिलचस्पी लेना दूसरी। मस्तिष्क में कोई बात बैठती तब है जब उसकी बारीकियाँ उसे समझायी जायें और यह प्रतीत हो कि इस आधार पर उसकी विशेषज्ञता में क्या वृद्धि हुई।

इसके लिए स्कूली पाठ्यक्रम को भार समझकर उसे बच्चे पर नहीं लादना चाहिए कि उन्हें किसी प्रकार अपना कोर्स पूरा करना है। अच्छे नम्बर से पास होना है, इतना भर हो जाय तो बहुत। यह मान्यता आंशिक रूप से सही भी हो तो सार्थक नहीं है। बच्चा कक्षा में अच्छे नम्बरों से पास हो जाये तो उसका मनोबल बढ़ता है, यह सही, पर यह उससे भी ज्यादा सही है कि यदि बच्चे के बौद्धिक व्यक्तित्व का विकास नहीं हुआ तो वह तोता रटन्त भर में प्रवीणता प्राप्त कर लेगा, जहाँ तक उसकी बौद्धिकता प्रखरता का सम्बन्ध है, वहाँ तक वह एक प्रकार से पिछड़ा ही बना रहेगा।

बच्चों को स्कूल भेजते समय अभिभावकों का दृष्टिकोण यही नहीं होना चाहिए कि वे घर में दंगल मचाते हैं इसलिए उनके कोलाहल से पीछा छुड़ाने के लिए उन्हें किसी बाड़े में बन्द कर दिया जाय। यदि यही दृष्टिकोण हो तो स्कूल से लौटते ही उनके लिए एक ट्यूटर रखा जा सकता है। जैसे कि ग्वाला बदल लेने पर भेड़ों की रखवाली का प्रयोजन पूरा होता रहता है। बहुत अधिक रटने पर बच्चा किसी प्रकार पास तो हो ही जायेगा। दिन भर पिंजड़े में बैठे तोते को सीताराम रटाते रहा जाय तो वह भी उन शब्दों को दुहराने लगता है और बिना परीक्षा की बात कहे ही जब चाहो तभी वह उन शब्दों की पुनरावृत्ति करने लगता है। इस तरह पास करा लेने से उस अवधि का सदुपयोग नहीं होता जो उसके समूचे जीवन में सबसे बहुमूल्य है और उसी में जिज्ञासा और प्रतिभा निखारी जा सकती है।

प्रश्न मन में से उपजना और उसका सही समाधान मिलना-ज्ञान वृद्धि का यह सबसे अच्छा तरीका है। पाठ्य-पुस्तकों में से निर्धारित विषय के अन्तर्गत जो जानकारियाँ समाई हुई हैं या समा सकती हैं, उन्हें बच्चे से पूछकर उत्तर माँगना चाहिए और यदि वह न बता सके तो उसे स्वयं बताना चाहिए। इस प्रकार उसकी जिज्ञासा भी बढ़ेगी और उसमें समाधान खोजने या पूछने की जिज्ञासा बढ़ेगी। मस्तिष्कीय तीक्ष्णता इसी आधार पर विकसित होती है।

इसके लिए यह आवश्यक है कि बच्चे को कोई ऐसा समझदार साथी मिले, जिसकी प्रकृति में नया कुछ पूछने और बताने की स्वविकसित बुद्धि हो, पर कठिनाई यह है कि न इस प्रकार की आशा अध्यापकों से की जा सकती है और न ट्यूटरों से। वे स्वयं तोतारटंत की विद्या अपनाकर उत्तीर्ण हुए हैं और इसी आधार पर बच्चों को पास होने की स्थिति तक पहुँचाते रहे हैं। लीक से हटकर वे चले ही नहीं तो दूसरों को चलावें कैसे ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

शिक्षा का उद्देश्य बालक को जिज्ञासु प्रकृति का बनाना है और इतना तार्किक बनाना है कि सही बात समझाये जाने का अनुमान लगा सकें। अक्सर बड़े लोग बच्चों से मजाक करने में रस लेते रहते हैं और ऐसे उत्तर देकर पीछा छुड़ाते हैं, जिसे समझाने में भी देर न लगे और बच्चे के साथ सिरफोड़ी का भी पीछा छूट जाय। होना यह चाहिए कि बच्चे को बहुज्ञ बनाया जाय। इसके लिए एक ही तरीका है वह 'बहुश्रुति' हो।

यह कार्य अभिभावकों का है, जो अपने निजी विनोद के लिए बच्चों के साथ खेलना पसन्द करें और इसके लिए उनकी जिज्ञासाओं को उभारना तथा उनका समाधान करना अच्छा मनोरंजन समझें।

प्रश्नोत्तरी की प्रकृति ऐसी होनी चाहिए जो संसार के सामान्य ज्ञान की वृद्धि करने के साथ-साथ निज के जीवन में सतर्कता बरतने की जानकारी भी दें। बच्चे के मन में ऐसे प्रश्न स्वयं न उठें तो उनसे पूछकर वह चर्चा आरम्भ करनी चाहिए, जो जीवनोपयोगी एवं सांसारिक जानकारियों से मिश्रित हों।

आठ-दस वर्ष की आयु तक के बच्चों को निजी जानकारी कम होती है। उन्हें वे बातें बतानी चाहिए जो उसकी छोटी परिधि में काम आती हों और देखने को मिलती हों। भोजन, वस्त्र, खिलौने, सफाई व्यवस्था आदि में रहने वाली भूलों की हानियाँ और सतर्कता न बरतने की हानियाँ हल्की-फुल्की प्रश्नोत्तरी से समझाई जा सकती हैं। शिष्टाचार के सही-गलत होने की बात, उपयोग में आने वाली वस्तुओं की टूट-फूट समय की पाबन्दी आदि से सम्बन्धित कितने ही प्रश्न पूछे और उनके उत्तर पूछे-बताये जा सकते हैं। इसी प्रकार पुस्तकों में आने वाले प्रसंगों से सम्बन्धित जानकारियों की चर्चा का विषय बनाया जा सकता है। इसी प्रकार किन्हीं इतिहासों में नैतिक दृष्टि से जो उचित या अनुचित हुआ हो, उसका विश्लेषण उनसे कराना चाहिए या स्वयं करना चाहिए।

दस से अठारह वर्ष की आयु ऐसी होती है, जिसमें दृष्टिकोण निखरता है और स्वभाव बनता है। इस आयु में यदि बुरे बच्चे की संगति और बुरी चर्चाओं का सिलसिला चल पड़े तो उनके कोमल स्वभाव पर ऐसी छाप पड़ती है जो युवावस्था या प्रौढ़ावस्था तक बनी रहती है। इसलिए यह समय सबसे अधिक सतर्कता का है। अच्छा हो यह अवधि अभिभावक अपने साथ व्यतीत करने का सुयोग्य बनायें या ऐसे व्यक्ति चुनें, जो सामान्य ज्ञान के अतिरिक्त चरित्र निर्माण की शिक्षा देने में भी समर्थ हों।

बाल जिज्ञासाओं का समाधान सृजनात्मक हो

अधिक जानने की इच्छा मनुष्य में बचपन से लेकर मरणकाल तक बनी रहती है। इच्छा की तरह जिज्ञासा भी है जो मनुष्य को सम्पन्न एवं बुद्धिमान बनाती है। बचपन में जिज्ञासा का बाहुल्य इसलिए होता है कि वह अपने चारों ओर जो फैला हुआ देखता है, उसके सम्बन्ध में अधिक जानना चाहता है ताकि उसका उपयोग कर सके या बच सके। यह स्वाभाविक, मानसिक आवश्यकता है जिसकी तुलना शारीरिक भूख-प्यास से की जा सकती है।

शैशवकाल में वह वाणी की असमर्थता के कारण प्रश्न तो नहीं कर सकता, पर अभिभावकों के आचरण की नकल करके वह शिक्षा की आवश्यकता एक सीमा तक पूरी करता है। जिह्वा विकसित होने से पूर्व भी वह बहुत-सी जानकारियाँ प्राप्त कर चुका होता है। पूछने पर वह शरीर के अंगों के नाम अँगुली रखकर बता देता है। इसी प्रकार वस्तुओं, जीव-जन्तुओं, सम्बन्धियों को भी पूछने पर वह बता देता है। यद्यपि वाणी का विकास न होने के कारण वह उच्चारणपूर्वक उनका परिचय नहीं दे पाता। बोलना आरम्भ करने से पूर्व वह मस्तिष्क में अनेक पहचानें जमा लेता है। इसी आधार पर वह एक वर्ष का होने के उपरान्त मातृभाषा के कितने ही शब्द जान लेता है और समयानुसार उन्हें बोलने, समझने भी लगता है। जिज्ञासाओं के समाधान में उसे कम बुद्धि नहीं लड़ानी पड़ती, यद्यपि दूसरों द्वारा भी इसकी पूर्ति में सहायता मिलती रहती है।

तीन वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते बालक की जिज्ञासाएँ भी अधिक जग जाती हैं और वह सम्बद्ध क्षेत्रों में पाये जाने वाले पदार्थों के सम्बन्ध में उनके नाम जान लेने भर से सन्तुष्ट नहीं होता वरन् अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहता है। बुद्धिमान अभिभावक उसकी इस बौद्धिक आवश्यकता को समझते हैं और उसे यथार्थता समझाने का प्रयत्न करते हैं। यद्यपि कल्पनाशक्ति की दुर्बलता होने से उसे बातों को प्रतीक रूप में ही समझना पड़ता है। स्कूल प्रवेश में उससे सम्बद्ध वस्तुओं तक ही सीमित रहने से काम नहीं चलता वरन् और भी बहुत कुछ जानने का नया क्षेत्र पुस्तकों के साथ ही आरम्भ होता है। वर्णमाला और गिनती सीखते समय अक्षरों के साथ कुछ प्रतीक चित्र प्रस्तुत करने पड़ते हैं। ऐसे चित्र जिन्हें या तो उसने देखा हो या कल्पना के आधार पर उनका अनुमान लग सकता हो, छोटी आयु के बच्चों की शिक्षा में जितना उच्चारण या स्मरण का सम्बन्ध होता है, उतना ही चित्रों का भी। चित्रों की एक शाखा रंग भी है। इस भेद को समझने पर वह दृश्य जगत् के एक और रहस्य को समझने लगता है। यह सिलसिला बराबर चलता रहता है। दस वर्ष की आयु तक वह इतना अधिक, इतनी तीव्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गति से सीखता है कि इस आयु तक संग्रह किये ज्ञान के आधार पर उसके व्यक्तित्व का ढाँचा ही बन जाता है। ज्ञान-सम्पदा की दृष्टि से जितनी गति अपनाई होती है उतनी कदाचित् ही जीवन भर में बना पाता है। बड़ों की दृष्टि में छोटे बच्चे अनेक विषयों में अनजान या अल्पज्ञ ही समझे जाते हैं तो भी जन्मकाल से लेकर दस वर्ष का होते-होते वह इतना अधिक जान लेता है कि उसे शैशव की तुलना में ज्ञानवृद्ध कहा जा सके।

जिज्ञासाओं का उभार इसके बाद न तो समाप्त होता है और न शिथिल पड़ता है वरन् वह समीपवर्ती वस्तुओं से कहीं आगे बढ़कर वनस्पति-जगत प्राणिजगत शरीर-विज्ञान, पदार्थ-ज्ञान आदि के क्षेत्र में हाथ-पैर मारता रहता है।

लिखने-बाँचने जितना ज्ञान बच्चे आमतौर से ६-७ वर्ष का होने तक प्राप्त कर लेते हैं। इससे ज्ञान का एक नया द्वार खुलता है। जब तक बच्चा अभिभावकों पर आश्रित रहता है, तब तक उन्हें हँसाने, खिलाने या खिलौने के द्वारा कुछ जानकारी बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है। कुछ समझदार होने पर वे उससे पीछा छुड़ाना चाहते हैं ताकि अपने निजी अन्य काम कर सकें। बड़े लोग पब्लिक स्कूलों में भेज देते हैं। उनमें खर्च तो बहुत पड़ता है पर वह उनकी वहन शक्ति से बाहर नहीं होता। न भेजें तो भी उनके सहचरों का काम पुस्तकें देती हैं, गम्भीर विषय तो वे समझ नहीं पाते पर कहानियों के रूप में यह आवश्यकता पूरी होने लगती है। बच्चे चावपूर्वक पुस्तकें पढ़ने लगते हैं। पर वे होनी चाहिए सचित्र तथा कथानक ढंग से लिखी हुई। बालकों की कहानीप्रियता की अभिरुचि इससे भी विदित होती है कि घर में जो कोई कहानी सुनाता है, उन्हीं के पीछे वे लगे रहते हैं। नानी, दादी प्रायः बेकार रहती हैं, उन्हें कहानियाँ भी बहुत याद होती हैं। ऐसी दशा में दोनों की पटरी ठीक बैठ जाती है। वक्ता, स्रोता दोनों का ही समय कटता और मनोरंजन होता है। अध्यापक स्कूलों में रूखे विषय पढ़ाते हैं। उनकी पढ़ाने की शैली में भी रस नहीं होता। घर पर मौखिक कहानियाँ सुनने पर भी जिज्ञासा का समाधान नहीं होता। ऐसी दशा में उन्हें सचित्र कहानी की पुस्तकों का ही सहारा लेना पड़ता है। खिलौने के स्थान पर बच्चों की प्रिय पुस्तकें खरीद देना अभिभावकों को भी कठिन नहीं पड़ता।

प्रश्नों की झड़ी लगाना

लगभग तीन वर्ष की आयु तक बच्चा भली प्रकार बोलना सीख जाता है। संसार के विषय में उसको जो अनुभव होता है, उससे उसके मन में कौतूहल जाग्रत होता है। फलस्वरूप उसकी जिज्ञासा प्रवृत्ति प्रबल हो उठती है, वह हर चीज के बारे में जानना चाहता है, फिर अपने लोगों से वह प्रश्नों की झड़ी लगा देता है। ऐसा कब हुआ ? कैसे हुआ ? कहाँ हुआ ? तब क्यों नहीं था, अब क्यों है ? फिर क्या होगा ? ऐसे अनेक प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर देना माता-पिता अथवा अन्य व्यक्तियों के लिए एक समस्या हो जाती है। अगर माँ बच्चे के प्रश्नों के उत्तर ठीक से नहीं देती, तो वह इधर-उधर से सुनकर, कुछ देखकर और अपनी कल्पना के सहारे एक असन्तोषजनक ढंग से उनको हल करने की चेष्टा करते हैं। अगर बच्चे का हल भयानक या विकृत होगा तो सम्भव है, उनके मन में डर या निराशा छा जाय, जिसका उस पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

बच्चे के प्रश्नों का उचित उत्तर दें—बच्चे ने कोई मुर्दा जाते देखा। यह भी सुना कि अमुक व्यक्ति मर गया है, अब उसे जलाने ले जा रहे हैं। मृत्यु के पश्चात् आग में जला देते हैं, यह बात उसे बहुत भयानक और कठोर लगी। वह उलझन में पड़ा हुआ माँ से पूछता है "माँ, लोग कैसे मर जाते हैं ?"

बच्चे की आँखों में एक उलझन और भय का भाव देख बुद्धिमती माँ बड़ी चतुराई से कहती है—"बेटे संसार में सभी प्राणी लम्बी उमर पाकर आते हैं। बचपन में वह खाते-पीते, खेलते और खुश रहते हैं। बड़े होकर विद्या पढ़ते हैं, बड़े-बड़े काम करके नाम करते हैं। फिर बुढ़ापे में जब काम करते-करते वह थक जाते हैं, भगवान उन्हें अपने पास बुला लेते हैं। जब थककर कोई आँखें बन्द करके हमेशा के लिए सो जाता है, तभी लोग कहते हैं कि वह मर गया।

तुमने देखा है, कि जब नई मोटर बहुत मील चलकर पुरानी हो जाती है, तब हम उसे बेकार समझकर छुट्टी दे देते हैं। इसी प्रकार मनुष्य का शरीर भी बेकार होकर छुट्टी पा लेता है।

बच्चा—"मरे हुए को जलाते क्यों हैं ? उसे तकलीफ नहीं होती ?"

माँ—"जब वह हमेशा के लिए सो जाता है, उसे तकलीफ मालूम नहीं होती, आग की लपटों में छिपकर वह भगवान के पास चला जाता है।"

घर में जब छोटे भाई-बहिन का जन्म होता है, अधिकांश माता बच्चे को कुछ इसी प्रकार कहकर बहका देती हैं कि उसे मैंने पड़ा पाया था। सूप में लेटा, नदी में बहता आ रहा था, मन्दिर में गई थी तो भगवान जी ने दिया, कमल के फूल में लेटा था इत्यादि। इन बातों पर वह कुछ दिन तो विश्वास कर लेता है, बाद में सुनकर, देखकर और समझकर कि गाय, भैंस आदि पशुओं के तो पेट में बच्चा रहता है, हमारे भाई-बहिन इधर-उधर क्यों पड़े हुए मिलते हैं ? बच्चा एक दिन माँ से कह ही देता है, माँ तुम झूठ बोलती हो, बच्चा तो पेट में होता है। माँ बच्चे की बात सुनकर दुविधा में पड़ जाती है। उसे यह पता लगने पर कि बच्चा ऐसा भोला

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

नहीं है जैसा मैं समझती हूँ, भगवान ने उसे भी बुद्धि दी है, वह हैरान रह जाती है। प्रत्येक ऐसी माता अपने बच्चे की दृष्टि में इसी प्रकार झूठी प्रमाणित होती हैं। बच्चों में अश्लीलता की भावना या झूठी लज्जा नहीं होती। एक मनोवैज्ञानिक माता ने अपने बच्चे के प्रश्नों का देखिये कैसा सुन्दर उत्तर दिया ?

बच्चा—"माँ जब तुम्हारा विवाह हुआ था हम सब भाई-बहिन कहाँ थे ?"

माँ—"भगवान के यहाँ ?"

बच्चा—"फिर तुम मुझे कैसे लाईं, मैं कैसे पैदा हुआ ?"

माँ—"बेटा, मैं और तुम्हारे पिता दोनों ने मिलकर घर जमाया। हम आपस में बड़े प्यार से रहते थे, भगवान ने प्रसन्न होकर हमें तुम्हारा माँ और पिता बनाया।"

बच्चा—"माँ, पेट में बच्चा कहाँ रहता है और वहाँ से कैसे बाहर आता है ?"

माँ—"जैसे हमारे सबके पेट में भोजन की थैली है, उसी प्रकार माँ के पेट में बच्चे की थैली भी होती है। उसी में एक बीज के रूप में बच्चा होता है। धीरे-धीरे वह वहाँ बढ़ता है, जब तक बच्चे के हाथ-पाँव पूरे नहीं बनते, वह माँ के पेट में पलता है, फिर भगवान उसे एक विशेष रास्ते से बाहर निकाल देते हैं।"

बच्चा—"माँ के पेट में ही बच्चा रहता है, बाप के पेट में क्यों नहीं रहता ?"

माँ—"बाप के पास बच्चे को पिलाने के लिए दूध नहीं है।" बच्चे ने यह सुना और एक प्यार भरी दृष्टि से माँ की ओर दुलार से माँ के वक्षस्थल पर हाथ फेरा और हँसता हुआ तुरन्त बाहर खेलने दौड़ गया। बुद्धिमती माँ के इन उत्तरों से बच्चे का भली प्रकार समाधान हो गया। उसने फिर कभी किसी से इन बातों को पूछने की चेष्टा नहीं की। अपनी आयु के साथ जब उसकी जानकारी बढ़ती गई तब भी उसे अपनी माँ की बात झूठी प्रतीत नहीं हुई।

छोटे बच्चों के लिए लिंग-भेद भी एक समस्या है। अतएव उन्हें समझाना चाहिए कि लड़के और लड़कियों के शारीरिक बनावट में फर्क होता है। लड़के अपने पिता, चाचा, मामू तथा भाई के सदृश्य होते हैं। बड़े होकर उनके भी दाढ़ी-मूँछ निकल आती है; वह ऊँचे, लम्बे और मजबूत होते हैं जबकि कन्याएँ अपनी माँ, मौसी, चाची तथा बहिनों के सदृश्य होती हैं। बड़ी होकर वह भी लड़की से स्त्री बन जाती है।

बच्चे के प्रश्न को समझकर, संक्षेप में उतना ही उत्तर देना चाहिए जिससे वह समझ सके। उदाहरण द्वारा बच्चा शीघ्र बात समझ जाता है। बच्चे जब परस्पर मिलते और खेलते हैं, उनके विचार बहुत स्वस्थ रहते हैं। अनावश्यक कौतूहल उनमें नहीं होता। अगर उनको जताकर कोई बात विशेष रूप से न छिपाई गई हो तो वह उस विषय को शीघ्र ही भूल भी जाते हैं। इसलिए जब बच्चा किसी बात के विषय में कुछ पूछें, तो उसे डाँटकर चुप न करायें। बेहतर यह है कि आप स्वयं ही उसका समाधान कर दें। फिर वह मौका पाकर नौकर अथवा अपने बड़े साथियों से खोद-खोदकर प्रश्न नहीं करेगा।

कभी-कभी छोटे लड़के अपनी मूत्रेन्द्रिय को बार-बार पकड़ते या खुजाते हैं। 'तू बीमार हो जायेगा या यह गिर जायेगा' इस प्रकार डराकर उसे छूने से वर्जित न करें। जिस प्रकार मुँह में अँगुली डालने पर आप उसे 'यह हानिकारक गन्दी आदत है' कहकर उसका हाथ हटा देते हैं अथवा कोई काम देकर उसका ध्यान बँटा देती हैं उसी ढंग से मूत्रेन्द्रिय को छूने से रोकें।

शनैः-शनैः जब बच्चे बड़े होते हैं और शरीर विज्ञान के विषय में पढ़ते हैं, तब उन्हें भिन्न-भिन्न इन्द्रियों के कार्यों का पता चल जाता है।

मनोवैज्ञानिक ढंग से पाले हुए बच्चे अपने बड़प्पन के इस ज्ञान को बचपन में प्राप्त ज्ञान की प्रथम कड़ी के साथ जोड़ लेते हैं। उनको यह कहने का कभी अवसर नहीं आता कि हमारे माँ-बाप झूठ बोलते थे। इसके विपरीत अपने बचपन की जानकारी में सुन्दर सत्य का अस्तित्व पाकर अपने माता-पिता की बुद्धि की सराहना करते हैं। बच्चों के सामने बड़ों को कोई ऐसा व्यवहार या चर्चा नहीं करनी चाहिए कि अगर उसका मतलब पूछे तो बताने में हिचक हो। स्त्रियाँ अपनी सखी-सहेलियों से अनेक ऐसी गोपनीय बातें तथा निर्लज्ज मजाक करने लगती हैं कि पास बैठे बच्चे इतना तो समझ ही जाते हैं कि कोई गन्दी बात की चर्चा हो रही है। बाद में अपने संगी-साथियों में जाकर जब अपनी उत्सुकता निवारण के लिए वह उस बात का जिक्र करते हैं तो वहाँ उन्हें जो जानकारी प्राप्त होती है, उससे वह बड़ों को निर्लज्ज समझने लगता है। उसका उनके चरित्र पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। वे बड़ों के उपदेश और व्यवहार में समता नहीं पाते। उनकी बाल-बुद्धि में यह बात समझ में नहीं आती कि कोई कार्य या स्वतन्त्रता बड़ों के लिए तो ठीक है, बच्चों के लिए ठीक क्यों नहीं है ? उन्हें तो बस एक ही बात सरल लगती है, जैसा माता-पिता करें वैसा हम भी करें।

जिज्ञासावृत्ति स्वाभाविक है—बच्चा जैसे-जैसे बड़ा होता है, उसको आस-पास की वस्तु आकृष्ट करती हैं। उनके विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए उसकी इच्छा बलवती हो उठती है। 'यह सुन्दर इन्द्र-धनुष कहाँ से निकलता है ?' यह नीला आकाश किसने बनाया है ? 'सूरज गर्म क्यों है ?' चाँद शीतल क्यों है ? दिन-रात कैसे होते हैं ? इन घरों में कौन रहता है ? इत्यादि प्रश्नों के रूप में उनकी उत्सुकता जाग्रत होती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकृति के रहस्य को समझाते समय उन्हें उसके रचने वाले परमात्मा की महत्ता भी समझाई जा सकती है। इन वस्तुओं को रचने वाला ईश्वर है। जब इनकी समझ में यह बात आ जाती है तब वे पूछते हैं 'ईश्वर कहाँ हैं ?' ध्रुव और प्रहलाद को वह दिखाई दे गया था, तो हमें क्यों नहीं दिखाई देता ? माता-पिता उन्हें समझाते हैं 'जब तुम पढ़-लिखकर ज्ञान वाले बन जाओगे, अच्छे कर्म करोगे तब भगवान तुम्हें भी दिखाई देगा।' यह सुनकर उनका दूसरा प्रश्न होता है 'तो क्या आपको दिखाई देता है ?' हँसकर माँ कहती है 'बेटा ईश्वर शरीर धरकर सामने नहीं आता, उसके दर्शन तो मन में होते हैं, जो कोई भी सच्चे मन से उनकी भक्ति करता है, उसे अन्दर से एक प्रकाश दिखाई देता है।'

प्रेम से बच्चे की आँखों में आँसू आ जाते हैं और एक प्रकार की शान्ति मिलती है, वह अच्छे काम करने का निश्चय करता है, उसका मन अच्छी बातों में लगता है।

भूखों को भोजन कराने पर, किसी निर्बल की सहायता करने पर, किसी घायल पक्षी या जानवर की रक्षा करने पर, बच्चे का हृदय आनन्द से गद्‌गद् हो जाता है, उसके मुख पर सन्तोष झलकने लगता है। माँ तुम दुलार से उसके सिर पर हाथ फेरकर शाबाशी देती है। वह कहती है 'बेटा जब हम कोई काम करते हैं अगर वह अच्छा काम होता है तो हमारी आत्मा को प्रसन्नता होती है, अगर कोई बुरा काम करते हैं तो हमारी आत्मा चेतावनी देती है, ऐसा मत करो यह बुरा काम है, इससे दूसरों को तथा तुमको नुकसान होगा। जो समझदार बच्चे हैं, वह इस आवाज को सुनकर बुरे काम से बरी हो जाते हैं। जो बुरे होते हैं वह इसे अनुसुनी कर देते हैं।

माँ का यह उत्तर सुनकर बच्चा इसे अपने अनुभवों पर तौलता है और उसे याद आता है कि जब मैं अन्य लड़कों के साथ चिड़ियों का घोंसला उजाड़ने या बगीचे में आम चुराने जाने लगा था तो अन्दर से ऐसी ही आवाज मुझे भी सुनाई पड़ी थी कि यह बुरा काम है और मैं आधे रास्ते से ही लौट आया था। माँ ठीक कहती हैं कि अन्दर से ऐसी आवाज आती है।

समझदार माता-पिता अपनी सन्तान की जिज्ञासा-वृत्ति को प्रोत्साहन देते हुए उनकी बुद्धि और चरित्र का विकास करते हैं। जो माता-पिता बच्चों की कौतूहलता का दमन करना चाहते हैं, वह उनके बुद्धि विकास में बाधा डालते हैं।

बच्चे अधिक काल्पनिक होते हैं। वह अपनी कल्पना की दुनिया में मस्त रहता है। शीतल मन्द पवन, आँधी, वर्षा, गर्मी, सर्दी सभी में बच्चे मस्त रहते हैं। ऋतुओं का परिवर्तन, चिड़ियों का चहकना, फूलों का खिलना, इन्द्र-धनुष, चाँद-सूरज, आकाश में शरद ऋतु के हल्के-फुल्के सफेद बादल आदि वस्तुएँ उन्हें आकृष्ट करती हैं। वे उमंग में नाचने लगते हैं। वर्षा ऋतु में घोर वर्षा होते समय अपने मुहल्ले या गाँव के बच्चों की प्रसन्नता देखिये। एकदम खिल उठेंगे। सारे पानी में इधर से उधर, उधर से इधर, छप-छप करते, किलकारियाँ भरते दौड़ेंगे। पानी क्या बरस रहा है मानो उन्हें कोई निधि मिल गई है। हजार मना करो, मगर मानने वाले नहीं। सायंकाल इन्द्र-धनुष देखकर तो वे उछल पड़ते हैं। आह ! कितना सुन्दर ! वह देखो इन्द्र-धनुष निकला है ! उसकी रंगीनियों पर कूद-कूदकर आश्चर्य प्रकट करेंगे। फिर प्रश्नों की झड़ी लग जायेगी। यह क्या है ? कैसे निकला है ? क्या इन्द्रदेव का धनुष इतना बड़ा है ? वह इसे कैसे उठाते होंगे ? फिर उनका शरीर तो बहुत बड़ा होगा ?

बच्चों के प्रश्नों का उत्तर देना कोई सरल कार्य नहीं है और न सबके बस की बात है। वे तो टेढ़े-मेढ़े और हर विषय के प्रश्न करते हैं। अतः वही माता-पिता बच्चों की जिज्ञासा प्रवृत्ति को उचित मार्ग पर लगा सकते हैं कि जिनमें यह क्षमता हो। इसीलिए तो कहा गया है कि बच्चा अपने पालक का प्रतिबिम्ब होता है। अच्छे और शिक्षित माता-पिता ही अच्छी सन्तान पैदा करने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं।

बच्चों के प्रश्नों का उत्तर देते समय उनकी सुन्दर कल्पना को तोड़ने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। हमारे उत्तर ऐसे हों जो उन्हें आगे विचारने, कुछ करने तथा अपने अनुभव परखने का प्रोत्साहन दें, ऐसे उत्तर न हों जो उनकी कल्पना को झकझोर दें।

विचित्र-विचित्र बातों की कल्पना करके बच्चों को बड़ा आनन्द आता है। जैसे 'अगर हमारे पंख हों, तो हम क्या करेंगे ?' 'अगर मेरे पास भी एक जादू का डण्डा हो तो मैं क्या कर दिखाऊँ ?' 'मैं जब बड़ा होऊँगा और कमाऊँगा तब कैसी शान से रहूँगा ?' इत्यादि बातें सोचने में बच्चों को एक प्रकार का सुख होता है।

जब वे अपने माता-पिता से उनके बचपन की घटनाएँ सुनते हैं तो उनके हृदय में यह जानकर कि वे भी हमारे सदृश्य व्यवहार करते थे, बहुत सन्तोष होता है। वे खोद-खोदकर पूछते हैं 'अच्छा माँ तुम्हारी माँ कैसी थीं ? क्या तुम्हें प्यार करती थीं ? पिताजी भी क्या बचपन में शैतान थे ? क्या वे भी अपने पिता से कभी पिटे थे ? बच्चों को उत्सुक देखकर, जब माता-पिता अपने बचपन की कहानियाँ विस्तारपूर्वक बताने लगते हैं, तो बच्चे बड़ी उत्सुकता से उनकी बातें सुनते हैं, उनके साहस, परिश्रम, प्रतियोगिता और अभावों से संघर्ष आदि की कहानियों को सुनकर उनके प्रति बच्चों की श्रद्धा और भी बढ़ जाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतएव बच्चे जब प्रश्न करें तो उचित उत्तर दें। 'मेरा तो सिर चाट गया, हर दम कुछ न कुछ उल्टी-सीधी बातें करता रहता है, तेरी बकवास ही नहीं बन्द होती है, ऐसा कहकर उन्हें चुप कराना उचित नहीं है। आप उनकी बातचीत में दिलचस्पी अवश्य लें। उनके दृष्टिकोण को समझने की चेष्टा करें। वे बच्चे हैं, अबोध हैं, इसलिए उनकी बात में कुछ सार नहीं, आपका ऐसा सोचना ठीक नहीं।

बच्चों की बातचीत बड़ी मनोरंजक और कल्पना से भरपूर होती हैं। वह तर्कसंगत चाहे न हो, पर सजीव और स्वाभाविक अधिक होती है।

बच्चों को सुसंस्कारी इस प्रकार बनाएँ

मानवीय शिशु के संस्कार क्षेत्र मुख्यतः तीन होते हैं—व्यक्ति के रूप में माँ। माँ का गर्भ और माता-पिता की गोद, दोनों ही संस्कार-निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दूसरा संस्कार-निर्माण केन्द्र है, उसका क्रीड़ास्थल, जिसमें परिवार एवं समाज दोनों ही आ जाते हैं और तीसरा है गुरुकुल या विद्यालय।

माता-पिता की गोद में शिशु सचमुच बहुत कुछ सीखता व प्रभाव ग्रहण करता है। माता-पिता व परिजनों के आचरण का अनुकरण शिशु बहुत सूक्ष्मता से करता है। वे बच्चे के लिए दर्पण का काम करते हैं, आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण-निरीक्षणों से यह स्पष्ट हो गया है कि व्यक्तित्व के मूल ढाँचे का अधिकांश प्रारम्भिक तीन वर्षों में तैयार हो जाता है, शेष जीवन में प्रधानतः उसी का विकास होता रहता है।

गर्भ व गोद के बाद अगला संस्कार सृजन-क्षेत्र है—क्रीड़ास्थल। कहा जाता है कि बच्चा खेल के मैदान में जो कुछ सीखता है, वह उसके चित्त-पटल में अमिट रूप से अंकित हो जाता है। छोटे बच्चे घर से बाहर जो कुछ भी क्रियाएँ करते हैं, वे वस्तुतः उनके लिए खेल का ही अंग होती हैं। अतः इस खेल-प्रक्रिया में उनके साथी-संगाती किस प्रकार के हैं, वे खेल में किन नियमों का पालन करते हैं, नीति-अनीति, पक्षपात, निष्पक्षता, धूर्तता, निश्छलता, कुटिलता, सहजता, क्रूरता, संवेदनशीलता आदि गुण युग्मों में से किन गुणों की प्रधानता रहती है तथा खेल के अतिरिक्त उन साथियों की निजी आदतें क्या हैं, इसका बच्चे पर गहरा असर अवश्यम्भावी है। घर में आस्तिकता, धार्मिकता एवं शालीनता का वातावरण है किन्तु क्रीड़ास्थल में छल-प्रपंच, नास्तिकता-नीतिविहीनता, चालाकी, कुटिलता का ही वर्चस्व है तो बच्चा कुछ ही समय में घर वालों को मूढ़ और भ्रान्त मान बैठेगा और क्रीड़ास्थल के संगियों की प्रवृत्तियों का अनुसरण करने लगेगा, यह सुनिश्चित-सा ही रहता है। अतः बच्चा किन लोगों के साथ खेलता है या उठता-बैठता है बातचीत करता है इसका ध्यान रखा जाना अत्यावश्यक है। संस्कारों का स्वरूप इन्हीं गतिविधियों के मध्य बनता, सँवरता, बिगड़ता, मिटता रहता है।

संस्कार-निर्माण का तीसरा क्षेत्र है—गुरुकुल या विद्यालय। यह संस्कार निर्माण की अन्तिम कार्यस्थली ही समझी जा सकती है। शिक्षा व्यक्ति-चित्त में चेतन एवं अचेतन सभी स्तरों पर प्रभाव डालती है। वह सृष्टि सम्बन्धी, वातावरण सम्बन्धी तथा स्वयं मानव जीवन के स्वरूप, उसकी प्रक्रिया एवं उद्देश्य सम्बन्धी दृष्टि का निर्माण और परिष्कार करती है। जीवन एवं जगत के प्रति मनुष्य का दृष्टिकोण उसकी शिक्षा के स्वरूप पर निर्भर है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि किताबों के स्वरूप पर निर्भर है। अपितु इन किताबों को किस प्रकार पढ़ाया-समझाया जाता है, उसमें लिखी बातों को शिक्षक तथा अन्य शिक्षार्थी वस्तुतः किस रूप में ग्रहण करते हैं ? इसका प्रभाव ही नये शिक्षार्थी पर पड़ता है। किताबों में कितना भी ऊँचा ज्ञान भरा पड़ा हो किन्तु विद्यालय या गुरुकुल में उस ज्ञान के प्रति सजग न रहने, नकल कर पास होने या मात्र याद कर विद्वता झाड़ने अथवा अन्य किसी प्रकार की अवहेलना का भाव है तो उन ज्ञान ग्रन्थों को पढ़ने से शिक्षार्थी के भीतर वास्तविक ज्ञान-स्तर का निर्माण नहीं होने का। इसीलिए पुस्तकें नहीं अपितु गुरुकुल या विद्यालय ही संस्कार-निर्माण के क्षेत्र कहे जाते हैं अपने यहाँ इसीलिए पहले आचार्य परम्परा विद्यमान थी। आचार्य का अर्थ ही है—जो आचरण की प्रत्यक्ष शिक्षा-प्रेरणा दे और आचरण पर प्रभाव डाले। **''आचार्य कस्मात् आचरं ग्राहयति''** अर्थात्—आचार्य क्यों कहे जाते हैं ? क्योंकि वे आचरण उत्पन्न कराते हैं। आचरण के स्तर पर ग्रहणशीलता उत्पन्न करते हैं। इसीलिए प्राचीनकाल में अपने यहाँ आचार्यकुल होते थे, जो आचरण के सम्पूर्ण ढाँचे पर ही प्रभाव डालते थे, वहाँ पढ़ने वाले विद्यार्थी को आहार-विहार, जीवन दृष्टि एवं कार्यशैली, सभा, समितियों सम्बन्धी व्यवहार-शिष्टाचार जीवन के विविध संस्कारों का अभिप्राय एवं अनुष्ठान परिवार समाज सम्बन्धी नियम तथा मर्यादाएँ, सभी के सम्बन्ध में विस्तार से शिक्षण दिया जाता था और अभ्यास कराया जाता था, इसके साथ ही विविध विषयों का सामान्य ज्ञान और विद्यार्थी की रुचि एवं क्षमता तथा सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप उसे किसी एक या कुछेक विषयों का अति विशिष्ट ज्ञान प्रदान किया जाता था ताकि वह ज्ञान निपुण एवं कर्म-निपुण श्रेष्ठ नागरिक बनकर गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करें बारह वर्ष तक विद्यार्थी आचार्य कुल में विद्याध्ययन के लिए रहते थे।

''स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विंशतिवर्षः।
सर्वान्वेदानधीत्य महामना एयाय॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छन्दोग्योपनिषद में यह श्वेतकेतु का वर्णन है कि वह बारह वर्ष की अवस्था में उपनयन कराकर आचार्यकुल जाकर बारह वर्ष रहा और २४ वर्ष का होने पर वेदाध्ययनादि कर घर लौटा। ऐसे भी लोग होते थे, जो एक-दो विषयों की ऐसी विशेषता प्राप्त कर गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करने पर आजीवन अध्ययन, मनन, तपःपूत आचरण में ही निरत रहना चाहते थे, वे कहीं आजीवन रहते थे। इन्हें ही नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा जाता था।

वहाँ के नियमों की दृढ़ता से तथा अपनी उच्छृंखलता की विवशता से डरने वाले भी कुछ किशोर होते थे, जो आचार्य कुल में जाने से डरते थे। महर्षि पातंजलि ने गुरुकुल में जाकर पढ़ने वालों को जहाँ स्वाध्यायी कहा है, वहाँ ऐसे अध्ययनभीरु लोगों को 'पर्याध्यायी' कहा है, इसी प्रकार जो छात्र अपनी चंचलता के कारण इस आचार्यकुल से उस आचार्यकुल में आते-जाते बार-बार गुरुकुल बदलते रहते थे, उन्हें तीर्थकाक कहा जाता था तथा तीर्थकाकों और पर्याध्यायियों के प्रति समाज में तिरस्कार का भाव था, क्योंकि वे लोग अपनी इन स्वभाव सम्बन्धी दुर्बलताओं के कारण आचार सम्बन्धी प्रशिक्षण नहीं प्राप्त कर पाते थे और सुसंस्कारी नहीं हो पाते थे।

इस प्रकार संस्कार निर्माण के इन तीनों ही केन्द्रों—(१) गर्भ व गोद, (२) क्रीड़ास्थल, (३) विद्यास्थल या आचार्य कुल यानी गुरुकुल। इन तीनों के प्रति प्राचीन भारतीय मनीषी जागरूक थे। ये तीनों ही श्रेष्ठ संस्कार देने वाले केन्द्र बनें, इस हेतु सजग, क्रियाशील रहते थे। अपनी उन्नति चाहने वाले किसी भी समाज को शिशु-संस्कारों के इन तीन निर्माण-केन्द्रों की सुव्यवस्था करनी ही होगी।

बच्चों के व्यक्तित्व-निर्माण में माता-पिता

वैज्ञानिकों का मत है कि व्यक्ति के विकास के लिए उत्तम भोजन, सुन्दर वस्त्र और सुविधापूर्ण आवास ही पर्याप्त नहीं। उसे अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए श्रेष्ठ वातावरण की आवश्यकता होती है। मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण वातावरण पर निर्भर होता है। जैसा वातावरण होता है। वह वैसा ही हो जाता है। चोर-दुराचारी जुआरी, व्यसनी, लोगों के सम्पर्क में व्यक्ति उनके दुर्गुणों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। ठीक उसी प्रकार श्रेष्ठ, संयमी, सदाचारी, निर्व्यसनी, स्वाध्यायशील, श्रमशील, सेवा-परायण व्यक्ति के सम्पर्क में उनके उत्तम गुणों की छाप पड़ना सुनिश्चित है।

बालक तो कोमल हृदय, भावनाशील होते हैं। उनके सुकोमल मन वातावरण से तुरन्त प्रभावित होते हैं। स्नेह, वात्सल्य, प्रोत्साहन, सहकार और उपेक्षा, ईर्ष्या-द्वेष, दुर्भावना, भय, चिन्ता, वैमनस्य आदि के पृथक्-पृथक् प्रभाव उन पर कभी भी देखे जा सकते हैं।

बालकों के व्यक्तित्व के निर्माण में माता-पिता, मुख्य माध्यम हैं। माता-पिता का पर्याप्त स्नेह बालकों को स्वस्थ, प्रफुल्लित और उत्साही बनाने में सहायक होता है, उनका व्यक्तित्व स्वस्थ और स्नेहपूर्ण बनता है। शैशवकाल से यदि माता-पिता, अत्यधिक स्नेह का प्रदर्शन करते हैं तो शिशु उद्दण्डता, पराश्रयता की भावनाओं से ग्रसित हो जाते हैं और वयस्क होने पर भी इन्हीं भावनों से प्रभावित रहता है। बालक यदि माता या पिता की ओर से उपेक्षित रहे, दो में से किसी एक का या दोनों का स्नेह न पा सके, तो उदास, हीनभावना का, निराश, अकर्मण्य और उत्साहहीन हो जाता है। बड़ा होने पर भी किसी प्रकार की उन्नति नहीं कर सकता। प्रत्येक समय, स्थान और कार्य में उसकी हीनता की भावना उसे उठने नहीं देती।

ऐसी अवहेलना और उदासीनता ऐसे माता-पिता के घरों में अधिकतर देखने को मिलती है, जो नौकरी में लगे हों। बच्चों के उठते, तैयार होते नौकरी का समय हो जाता है। जब बालक चाहता है कि माँ उसके पास बैठे प्रेम से बात करे, स्नेहपूर्वक उसे भोजन कराये, उसकी परिचर्या करें। उस समय माता-पिता को अपने काम पर जाने की शीघ्रता होती है। बहुत किया तो माँ ने आदेश दे दिया, कपड़े बदल लेना, भोजन कर लेना और ठीक समय पर पाठशाला जाना आदि। बस, माता इतने से अपने कर्त्तव्य को पूरा कर लेती है। शाम को भी बच्चा पाठशाला से जल्दी आ जाता है और माताजी, पिताजी को आते-आते शाम हो जाती है। जिस प्रकार सबेरे मन मारकर स्वयं या नौकर के द्वारा कपड़े बदलकर, भोजन करके पाठशाला चला जाता है, उसी प्रकार पाठशाला से लौटकर उदास, हल्के मन बस्ता पटककर इधर-उधर मन बहलाने का प्रयत्न करता है।

माँ, सन्ध्या होते घर में आती है, तो उसे घर के काम-काज, भोजन आदि की व्यवस्था करनी पड़ती है, उसमें तत्परता से लगना है। अतः इस बीच भी यदि बच्चे ने माँ के प्यार पाने की दृष्टि से कोई हलचल की तो प्यार के स्थान पर उल्टी डाँट-फटकार, झिड़की या अधिक किया तो मार-पीट ही पल्ले पड़ती है। ऐसे ऊबे हुए, उदासीन और अवहेलना, उपेक्षापूर्ण वातावरण में बालक के व्यक्तित्व का विकास न होकर कुण्ठित होना प्रारम्भ हो जाता है। स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, मस्तिष्क कमजोर पड़ जाता है, उत्साह गिर जाता है और बालक के गुलाबी खिलते चेहरे की रौनक जाने कहाँ चली जाती है ?

ऊपर तो रही काम-काज वाली, नौकरी-चाकरी वाली माता की बात, बहुत-से घरों में माता को बच्चों के लिए समय निकालने की आवश्यकता समझ में नहीं आती। वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों को समुचित प्यार नहीं देतीं। काम में व्यस्त रहती हैं। जब काम से निवृत्त हो जाती हैं, तब अड़ौस-पड़ौस की महिलाओं से गप-शप लड़ाने लगती हैं। काम-धन्धे के समय तो बच्चों को प्यार देने, उन्हें दुलारने का अवसर ही नहीं होता यदि गप-शप के समय भी माँ के पास आकर बैठना, बात करना और अपनी इच्छा व्यक्त करना चाहते हैं तो उन्हें वहाँ भी चिल्लाहट ही मिलती है। ऐसी महिलाओं को बच्चों से प्यार करने, उन्हें स्नेह करने, उनकी बात सुनकर उन्हें सन्तुष्ट करने की अपेक्षा गप-शप करना महत्त्वपूर्ण लगता है।

बहुत बड़े परिवारों में सहकुटम्बों में भी कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं, जब बच्चे की माँ को दिन भर काम में व्यस्त रहना पड़ता है, उसे बच्चे को सँभालने, प्यार करने और उसकी सुनने का समय कम मिलता है। बच्चे को माता का स्नेह कम मिल पाता है।

बहुत-से रूढ़िवादी, परम्परावादी, अन्धविश्वासी और पिछड़ी मान्यताओं के परिवार होते हैं, जिनमें बुजुर्गों, बड़े-बूढ़ों के सामने बच्चे को लेना, प्यार करना और बहलाना परम्परा के विरुद्ध माना जाता है। ऐसा करने से बड़े-बूढ़े रुष्ट होते हैं, ताने मारते हैं, इस कारण माँ-बाप बच्चों को प्यार नहीं कर पाते, उन्हें स्नेह दे पाने से वंचित रहते हैं। परिणामस्वरूप उपेक्षा और अवहेलना के वातावरण में उनके व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता।

बहुत-से माता-पिता का विश्वास होता है कि लाड़-प्यार से बच्चे बिगड़ जाते हैं। अतः उन्हें ताड़ना देकर, डाँट-डपटकर अनुशासन में रखना चाहिए।

जो पति-पत्नी नौकरी करते हैं, उन्हें चाहिए कि जब पत्नी काम में लगी हो तब पति बच्चों को बहलायें, उन्हें उचित प्यार देकर इस प्रकार का प्रयास करें कि बच्चे साथ-साथ उठें, साथ-साथ तैयार हों, साथ-साथ घूमने जायें, खायें-पियें और पाठशाला जायें। इस प्रकार साथ में रहने से जहाँ बच्चों को प्रसन्नता होगी, उत्साह मिलेगा, उनकी जिज्ञासाएँ पूरी होंगी, उनका शिक्षण और व्यावहारिक अभ्यास भी होता रहेगा। माता-पिता का भी मन प्रसन्न रहेगा। बच्चों के द्वारा होने वाले मन-बहलाव से काम का तनाव कम पड़ेगा। अपने साथ लेकर यदि सम्भव हो तो पाठशाला में भी छोड़कर कार्यालय जाया जा सकता है। कार्यालय से लौटने के पूर्व बच्चे जब घर आ जाते हैं उस समय के लिए उनके मन-बहलाव के लिए बच्चों के योग्य पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें या कुछ खेलने के उपकरण उनके पास छोड़ें। कार्यालय से लौटते ही बच्चों से प्यार से मिलें, उन्हें साथ में बैठकर चाय-नाश्ता लें, फिर घर के काम-काज, भोजन-व्यवस्था में लग जायें। इस प्रकार बच्चे के मन में उदासीनता और उपेक्षा के भाव कभी जाग्रत नहीं हो सकते। वे सदैव प्रसन्न रहेंगे और उनके व्यक्तित्व का सम्यक् विकास हो सकेगा।

जो माताएँ घर के काम में व्यस्त रहती हैं और बच्चों को समुचित प्यार देकर उन्हें नहीं सँभाल पातीं, उन्हें काम से अवकाश मिलने पर बच्चों को स्नेहपूर्वक बातचीत करने, मिलने और बैठने आदि का अवसर देना चाहिए। होना तो यह चाहिए, काम करते-करते ही बच्चों की देख-रेख साज-सँभाल भी बीच-बीच में करते रहना चाहिए, इससे जहाँ बच्चे बहलेंगे, वहाँ माता को भी काम करने में हल्कापन अनुभव होगा। तनाव कम पड़ेगा। समय का सदुपयोग करना बहुत बड़ी समझदारी है। अतः यदि अवकाश ऐसे समय मिलता हो, जब बच्चे घर में नहीं रहते, तो अवकाश के समय में बच्चों के लिए कपड़े-लत्ते तैयार करने, उनके खाने के लिए कुछ विशेष वस्तु बनाने, उनके बस्ते स्कूल को वस्तुओं के लिए कुछ नई वस्तु देने के लिए प्रयत्न करना चाहिए और जब बच्चे घर लौटें तो बड़े प्यार और स्नेह से उनकी अगवानी की जाय।

माता-पिता का सन्तुलित स्नेह और उचित देखभाल बच्चे के व्यक्तित्व के विकास में बड़े सहयोगी सिद्ध होते हैं। जो भी बालक भविष्य में महान बने हैं उनके पीछे, उनके माता-पिता का स्नेह, प्रोत्साहन ही मुख्य था। बच्चे के व्यक्तित्व विकास में सुविधाएँ तो माध्यम मात्र होती हैं। मूल माता-पिता का स्नेह ही है। अतः व्यस्तता कितनी ही हो, पद, महानता, योग्यता, स्तर आदि को गौण मानकर अपने बच्चों पर अवश्य ध्यान दिया जाये। उन्हें उचित स्नेह और प्रोत्साहन मिले। यही उनके उज्ज्वल भविष्य की कुंजी होगी।

बच्चों को सद्गुणी कैसे बनायें ?

बच्चों को शैशवकाल से ही चरित्र-निर्माण का शिक्षण मिलना चाहिए। पापपूर्ण वयस्कों के जीवन को उतना शुद्ध और निर्मल नहीं बनाया जा सकता। इसी से तो भारतीय मनीषी शैशवकाल में ही बच्चों को चारित्रिक शुद्धता का पाठ पढ़ाकर, उन्हें भविष्य में तेजस्वी, मनस्वी, बलवान, बुद्धिमान तथा आत्मसम्पदा से पूर्ण कर देते थे। आजकल उनकी उपेक्षा होती है, जिससे उनमें नैतिक अपराध बढ़ रहा है। इसमें बच्चे का दोष नहीं। परिवार, मुहल्ला और समाज को देखकर बच्चे उनका अनुकरण करते हैं। वर्तमान परिस्थिति में सुधार लाना आवश्यक है।

बच्चों की प्रारम्भिक पाठशाला घर है और उनके सच्चे शिक्षक माता-पिता हैं। विद्यालय में साक्षरता सिखाई जाती है। अध्यापक मौखिक ज्ञान के सहारे बौद्धिक विकास करते हैं पर बालक के चरित्र, स्वभाव और व्यक्तित्व का निर्माण घर में होता है। घर का जैसा वातावरण होगा उसी के अनुरूप बच्चा ढलेगा। विद्यालय में शिक्षा देने वाले अध्यापक थोड़े समय के लिए साथ रहते हैं। बच्चे बाह्य वातावरण से सीखते हैं पर इसका अस्थायी प्रभाव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ता है। किन्तु माता-पिता और परिवार के वातावरण का बच्चों पर स्थाई प्रभाव पड़ता है। माता-पिता बच्चों के निर्माण की नींव डालने वाले हैं। कौटुम्बिक जीवन के सुधार से अच्छे व्यक्तियों का निर्माण होगा और तब समाज-निर्माण का कार्य सफल हो पायेगा।

प्राचीनकाल में बच्चों को ऋषियों के गुरुकुलों में भेजा जाता था, जहाँ वे शिक्षा के साथ दीक्षा ग्रहण करते थे। जीवन जीने के व्यावहारिक ज्ञान के साथ अध्यात्म का शिक्षण मिलता था। आजकल विद्यालयों में किताबी ज्ञान दिया जाता है पर श्रेष्ठ जीवन की कला नहीं सिखाई जाती।

चरित्र की शिक्षा पुस्तक से नहीं बल्कि आचरण से सम्भव है और यह काम परिवार के माध्यम से ही हो सकता है। बच्चे माता-पिता तथा अन्य परिजनों के संस्कार ढलते हैं।

गृहस्थ जीवन बहुत उपयोगी है। गृहस्थाश्रम ही चारों आश्रमों में धन्य है क्योंकि इसमें व्यक्ति निर्माण का कार्य होता है। परिवार निर्माण रक्त परम्पराओं के आधार पर होता है। परिवार में आत्मीयता रहती है, इसमें दण्ड-कानून का विधान नहीं होता। पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-बहिन सभी स्नेह, सहयोग और सद्भावना के सूत्र में बँधे रहते हैं। जहाँ इस सम्बन्ध में कोई दोष आया तो परिवार विश्रृंखलित हो जाता है। पारिवारिक जीवन को शुद्ध रखने के लिए नियमोपनियम, प्रतिबन्ध और मर्यादाओं का प्रतिपादन किया जाता है, जिससे सभी आत्मानुशासन में बँधे रहें। बच्चों पर इसका बहुत असर पड़ता है।

अभिभावक को शिक्षक का ही काम करना है। बच्चों का स्वभाव उपदेश से नहीं अनुकरण से बनता है। माता-पिता के कार्य ऐसे हों कि बच्चे उनका अनुकरण कर चरित्रवान बनें अन्यथा माता-पिता को गन्दे काम करते देख बच्चे स्वतः उनको सीख जाते हैं। पारिवारिक जीवन की बुराइयों के कारण ही धूम्रपान आदि दुर्गुण आते हैं। व्यसन में रत रहने वाले माता-पिता के बच्चे प्रायः व्यसनी हो जाते हैं। माता-पिता अपनी क्रियाओं और आदतों को बच्चों में डालते हैं। शिशु-निर्माण का कार्य सदाचारपूर्वक सावधानी और संयम से करना चाहिए।

प्रायः अभिभावक बच्चों के चरित्र-निर्माण के कार्य छोड़कर धन जुटाने और साधन पैदा करने में लगे रहते हैं। बढ़ने पर बच्चे अर्जित धन को फूँक देते और कुटेवों के शिकार हो जाते। अतः बच्चों को प्रारम्भ में संस्कारवान बनाना चाहिए।

वयस्क व्यक्ति अपने बुजुर्गों के साथ जैसा व्यवहार करेंगे उनके बच्चे भी भविष्य में उनके साथ वही व्यवहार करेंगे, जो व्यक्ति अपने वृद्ध पिता के साथ अशोभनीय बर्ताव करते हैं। एक दिन उन्हें भी अपने बच्चों से यही वापस मिलता है। एक कंजूस आदमी ने दूसरों से नाजायज ब्याज लेकर बहुत धन इकट्ठा किया, पर वृद्धावस्था में उसके पुत्र ने उस धन का उपयोग उसे करने नहीं दिया। उस कंजूस को तड़प-तड़पकर मरना पड़ा। नाजायज संग्रह त्याज्य ही है।

छोटे बच्चों में अधिक संवेदनशीलता रहती है। ऐसा वैज्ञानिक परीक्षण से पता चला है। इसी से भारतीय संस्कृति में गर्भाधान के समय से ही बच्चों में संकल्प के द्वारा शुभ संस्कार पैदा किये जाते थे। अभिमन्यु ने गर्भ में ही चक्रव्यूह-भेदन की विद्या सीखी थी, सती मदालसा ने गर्भ में ही ब्रह्मनिष्ठा और राज्य-संचालन की शिक्षा बच्चों को दी।

चरित्र-निर्माण सिर्फ पारलौकिक कल्याण के लिए ही आवश्यक नहीं है। जिस तरह अनुकूल जलवायु, मिट्टी एवं योग्य माली की देख-रेख में छोटा-सा पौधा बढ़कर फूलने-फलने लगता है, उसी तरह घर के उपयुक्त वातावरण में, कुशल माता-पिता के सान्निध्य में बच्चों का व्यक्तित्व और चरित्र उत्कृष्ट बन जाता है। माता-पिता के साथ परिवार के अन्य सदस्यों का भी बच्चों पर प्रभाव पड़ता है। जिस परिवार का वातावरण सौम्य, शान्त और सौहार्दपूर्ण है, वहाँ बच्चों के मानसिक विकास में योग मिलता है। जहाँ बच्चों के साथ कठोर व्यवहार होता है, वहाँ मानसिक क्षमता, बौद्धिक प्रतिभा, व्यक्तित्व सब कुण्ठित हो जाता।

पारिवारिक जीवन उत्कृष्ट हो इसके लिए आवश्यक है कि परिवार में कलह न हो। अगर ऐसी नौबत आ भी जाय तो बच्चों से इसको छिपाया जाय। बच्चों को कभी भूत-प्रेत-हौआ आदि से डराना नहीं चाहिए। ऐसा करने से बच्चों का आत्मबल गिर जाता है। बच्चों को न तो डाँटना चाहिए और न उनको दबाकर रखना चाहिए। इससे उनके स्वाभाविक विकास पर चोट लगती है। बच्चों की शिकायत सुनकर सामर्थ्य के अनुसार उसे दूर किया जाय। बच्चों की उपेक्षा कतई न हो। परिवार में कुछ ऐसे भी कार्य होते हैं, जिन्हें गोपनीय रखना आवश्यक होता है।

बच्चों के समुचित विकास के लिए परिवार में पाँच बातों पर ध्यान दिया जाय, सर्वप्रथम सच्चाई का पाठ पढ़ाया जाय। ईमानदारी के द्वारा उपार्जित धन से परिवार का भरण-पोषण हो। शिष्टाचार का पालन होना चाहिए तथा बड़े और छोटे का व्यवहार शिष्टतापूर्ण हो।

श्रमशीलता का पाठ बहुत महत्त्वपूर्ण है। जिस परिवार के सदस्य श्रमनिष्ठ होंगे, मेहनत से जी नहीं चुरायेंगे वहाँ के बच्चे स्वतः परिश्रमी और उद्यमी हो जायेंगे।

परिवार के सदस्य सहिष्णु बनें। हर तरफ की सहिष्णुता की आवश्यकता है। परिस्थितिवश एक-दूसरे की बातों को सुनकर सहिष्णु हों। स्वच्छता और सफाई का काम कभी-कभी सामूहिक रूप से किया जाय। बच्चे उसमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भाग लेंगे और स्वच्छता के प्रति उनमें निष्ठा जगेगी। प्रायः बच्चों को धनी माता-पिता प्रारम्भ से ही ठाट-वाट सिखा देते हैं। इससे बच्चों का जीवन कृत्रिम हो जाता है। आगे चलकर ऐसे बच्चों को जीवन गुजारने के लिए बहुत धन की जरूरत रहती है। बच्चों के निर्माण के लिए आदर्श परिवार का निर्माण बहुत ही आवश्यक है, जिसमें सेवा, सत्कार, परोपकारिता, सच्चाई, श्रमनिष्ठा आदि सद्गुणों का व्यावहारिक रूप मिलता हो।

बालकों का चरित्र-निर्माण कैसे हो?

बालक में काम, क्रोध, ईर्ष्या और प्रवृत्तियों के साथ-साथ सहानुभूति, प्रेम और दया की प्रवृत्तियाँ गुप्त रूप से विद्यमान रहती हैं। इनको वह अपने माता-पिता से परम्परा से प्राप्त करता है और उसका चरित्र इसी पर बहुत कुछ अवलम्बित रहता है। उसकी इन प्रवृत्तियों का विकास उसके सहवास के अनुसार हुआ करता है। कामी, क्रोधी और द्रोही मनुष्यों के सहवास में आने से वह स्वयं भी वैसा ही बन जाता है क्योंकि ऐसे लोगों के मध्य में रहने से उसकी काम, क्रोध तथा ईर्ष्या की प्रवृत्तियाँ प्रबल हो जाती हैं, किन्तु इसके विपरीत यदि उसका सहवास ऐसे मनुष्यों से हो, जो दयालु तथा सहानुभूतिपूर्ण हों तो उसकी दया, प्रेम और सहानुभूति की प्रवृत्तियाँ प्रबल हो जाती हैं। बालक, सम्पर्क में आने वाले पुरुषों के भावों, विचारों तथा कार्यों का अनुकरण किया करता है और जैसे आदर्श उसके समक्ष उपस्थित होते हैं उनके अनुसार उसकी प्रवृत्तियों का विकास हो जाता है। केवल उन प्रवृत्तियों पर सहवास का अधिक प्रभाव नहीं पड़ता जो बालकों में जन्म से ही बहुत प्रबल होती हैं। अतः सबसे आवश्यक बात यह है कि बालक के माता-पिता का चरित्र निर्दोष होना चाहिए।

यदि माता-पिता का चरित्र निर्दोष न हों तो उनके सन्तान के सच्चरित्र होने की बहुत कम सम्भावना बनी होती है, क्योंकि जन्मसिद्ध प्रवृत्तियों को दूर करना अत्यन्त कठिन कार्य है। इसीलिए यह उक्ति प्रचलित है कि "बालक की नैतिक शिक्षा उसके जन्म से पूर्व ही आरम्भ हो जाती है।" इस हेतु अपनी सन्तान को सच्चरित्र बनाने की अभिलाषा रखने वाले माता-पिता का यह कर्त्तव्य है कि वे बालक के जन्म से ही उन गुणों को स्वयं प्राप्त करने का प्रयत्न करें जिन गुणों को वे अपनी सन्तान में होना आवश्यक समझते हैं। इस ओर ध्यान देने से चरित्र गठन सम्बन्धी कई कठिनाइयाँ स्वयमेव ही हल हो जाती हैं।

जिन बालकों के माता-पिता ने इस ओर उचित ध्यान नहीं दिया उनकी प्रवृत्तियों का भी अच्छी परिस्थिति की सहायता से बहुत कुछ सुधार किया जा सकता है। भले साथियों के सहवास से बुरी प्रवृत्तियों का दमन तथा अच्छी प्रवृत्तियों को उत्तेजित किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में बालकों के माता-पिता तथा अध्यापकों का यह कर्त्तव्य है कि वे जिन नियमों का बालकों से पालन कराना चाहते हैं, उनका स्वयं पालन करें। घर पर तथा पाठशाला में प्रत्येक कार्य नियत समय पर किया जावे, प्रत्येक वस्तु के लिए निश्चित स्थान हो, प्रत्येक कार्य को करने में स्वच्छता तथा सुन्दरता की ओर ध्यान दिया जावे, प्रत्येक व्यवहार में शिष्टता तथा कर्त्तव्य-परायणता विद्यमान हो और भिन्न-भिन्न नियमों का यथोचित रीति से पालन किया जावे। इस प्रकार की आदर्श परिस्थिति में उपर्युक्त बातें सरलता से ही बालकों के स्वभाव का अंग बन जाती हैं और वे अनायास ही सच्चरित्र बन जाते हैं जोकि मनुष्यता का प्रधान लक्षण है।

चरित्र निर्माण के लिए तीसरी आवश्यक बात 'आचारिक शिक्षा' है। यदि परम्परा तथा बालक का सहवास उत्तम हो तो शिक्षा सोने में सुगन्ध का काम करती है। परम्परा तथा सहवास द्वारा प्राप्त कुप्रवृत्तियों का सुधार कुछ अंशों में आचारिक शिक्षा द्वारा हो सकता है, परन्तु इस प्रकार की शिक्षा देने में निम्नलिखित तीन बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक है—

(१) कुछ सीमा के अन्दर बालकों को थोड़ी-बहुत स्वतन्त्रता अवश्यमेव देनी चाहिए। उनकी प्रवृत्तियों का व्यर्थ दमन करने तथा हर समय उनको सख्त कैद में रखने से बहुत हानि की आशंका रहती है। इस प्रकार बालक डरपोक बन जाते हैं और उनमें आत्मविश्वास, स्वावलम्बन, दृढ़ निश्चय, उद्योगशीलता तथा मौलिकता आदि गुणों का विकास नहीं होने पाता। अतः बालकों को स्वतन्त्र रीति से कार्य करने का अधिक से अधिक अवसर देना चाहिए, जिससे कि उनके व्यक्तित्व और चरित्र का उचित रूप से विकास हो सके।

(२) बालकों में आत्मसंयम का भाव उत्पन्न किया जावे तथा उनकी बुरी प्रवृत्तियों को रोका जावे। यह विशेषकर उन बालकों के लिए बहुत आवश्यक है, जिनकी परम्परा तथा बाल्यकाल का सहवास अच्छा नहीं होता। इस प्रकार के बालकों को उसी समय दृढ़तापूर्वक रोकने की आवश्यकता होती है, जबकि वे सीमा का उल्लंघन करने को उद्यत होते हैं। ऐसी अवस्था में यदि अन्य साधनों से सफलता प्राप्त न होवे तो दण्ड का भी प्रयोग किया जा सकता है, जिससे कि बालक की कुप्रवृत्तियों का दमन होकर उसमें संयम का भाव उत्पन्न हो सके।

(३) बालकों के गुणों, नियमों, आदर्शों तथा कर्त्तव्यों से परिचित कर देना चाहिए, जिनके आधार पर उनके चरित्र का निर्माण करना है, जिससे उनको यह भली-भाँति विदित हो जावे कि कौन-सी बातें उनके लिए हितकर हैं, कौन-सी अहितकर, कौन-सी बातें उचित हैं और कौन-सी अनुचित तथा उनको किस आदर्श के अनुसार कार्य करना है ? शिक्षाप्रद नाटकों, रोचक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कथाओं, उत्तम-उत्तम कविताओं, आदर्श पुरुषों के जीवन-चरित्रों से बालक के आचरण सम्बन्धी ज्ञान की वृद्धि तथा पुष्टि करें। बालकों को सुन्दर-सुन्दर कविताएँ, गीत, पद तथा श्लोक भी कण्ठाग्र करा देनी चाहिए, क्योंकि इनके द्वारा उचित निर्णयों पर पहुँचने और भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में उचित रीति से व्यवहार करने में बहुत सहायता मिलती है।

(४) बालकों को निषेधात्मक कार्य की अपेक्षा विधेयात्मक कार्यों का स्मरण दिलाना अधिक श्रेयस्कर है। यदि बालक को किसी कार्य को करने का निषेध किया जाता है, तो उस कार्य को करने के लिए वह अधिक लालायित हो जाता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि केवल शाब्दिक रीति से अच्छी आदतों का बोध देकर ही शिक्षक तथा माता-पिता को सन्तुष्ट न होना चाहिए। उनके मन में उन आदतों के प्रति श्रद्धा तथा उनको अपने जीवन में चरितार्थ करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न की जानी चाहिए। इस प्रकार की दृढ़ इच्छा उत्पन्न हो जाने पर भिन्न-भिन्न गुणों, कर्त्तव्यों तथा सिद्धान्तों के सम्बन्ध में बालकों के मन में स्थायीभाव (सेन्टीमेन्टस) उत्पन्न हो जाते हैं। इस भाव के उत्पन्न हो जाने से वे उन कार्यों को अपने जीवन में चरितार्थ करने का प्रयत्न करते हैं।

(५). ऐसे भावों को बालकों के मन में अवश्य उत्पन्न करना चाहिए, जिनको उसके समाज में विशेष महत्त्व दिया जाता है। इसके साथ-साथ कुछ ऐसे गुणों के प्रति भी उसके मन में स्थायी भाव उत्पन्न कर देना आवश्यक है, जिनका होना मनुष्यता का सूचक है और सभ्य समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए वांछनीय है, जैसे—आत्मसम्मान, सभ्यता, ईमानदारी, सत्यता, स्वच्छता, स्वास्थ्य रक्षा, साहस, निर्भीकता, न्यायशीलता, दया, परोपकार, सहनशीलता, आस्तिकता, कर्त्तव्यपालन, संयम, नियम पालन आदि। इसमें सबसे आवश्यक आत्मसम्मान का स्थायीभाव है। बालकों के चरित्र गठन में इससे सबसे अधिक सहायता मिलती है। जिस बालक में यह भाव उत्पन्न हो जाता है, वह कोई अनुचित कार्य कर ही नहीं सकता, क्योंकि इस भाँति के व्यवहार से उसके आत्मसम्मान में धब्बा लग जाने, उसके यश के कलंकित हो जाने और अन्य लोगों की दृष्टि में उसके गिर जाने की उसको सदा आशंका रहती है। इस भाव का विकास शनैः-शनैः होता है। इसको पूर्ण रूप से जाग्रत करने के लिए बालक पर विश्वास करना चाहिए और उसके उत्तरदायित्व के भाव को जाग्रत करना चाहिए।

(६) किसी अनुचित कार्य को करने पर उसे भला-बुरा नहीं कहना चाहिए, बल्कि ऐसा कहकर कि "इस प्रकार का व्यवहार तुम्हारे योग्य नहीं है। यह कार्य तुम्हें शोभा नहीं देता। तुमसे कदापि ऐसी आशा न थी इत्यादि-इत्यादि . . . . ।" उसके आत्मसम्मान के भाव को जाग्रत करना चाहिए, जिससे भविष्य में वह कोई भी कार्य अनुचित ढंग से न करें, ऐसे अवसर पर भला-बुरा कहने से बालक का उत्साह सदा के लिए भंग हो जाता है और दिन-प्रतिदिन उसकी अवनति होने लगती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुन्दर स्थायी भावों की हमारे जीवन में कितनी महत्ता है ? जिन लोगों में बुद्धि की वृद्धि अधिक हो जाती है किन्तु जिनके मन में सुन्दर स्थायी भाव नहीं बन पाते, वे एक ओर बुद्धिमान होते हुए भी दूसरी ओर दुराचारी हो सकते हैं। उनका विवेक उन्हें दुराचार से रोकने में समर्थ नहीं होता। कितने ही बड़े-बड़े बुद्धिमान दुराचरण करते हुए दिखाई देते हैं, परन्तु बहुत-से अपढ़ लोग भी सदाचारी होते हैं, क्योंकि अपढ़ होते हुए भी उनमें सुन्दर 'स्थायी भाव' होते हैं। अतः सदाचार के लिए सुन्दर स्थायी भावों का होना अनिवार्य है। किसी आदर्श के प्रति स्थायी भाव उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि बालकों के मन में उसका स्पष्ट चित्र खिंच गया हो तथा उसके सम्बन्ध में उचित अन्तःक्षोभ का संगठन कर दिया गया हो। इसके लिए अभीष्ट गुणों तथा आदर्शों की महत्ता प्रभावशाली शब्दों में प्रकट करनी चाहिए तथा उसके विपरीत गुणों पर घृणा दर्शानी चाहिए। इन गुणों से सम्बन्ध रखने वाले कार्य भी बालकों से बार-बार कराने चाहिए। चरित्र-सुधार के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि निरन्तर अभ्यास द्वारा बालकों में कुछ अच्छे स्वभाव डलवा दिये जावें।

चरित्र-गठन के लिए बालकों से दृढ़ संकल्पशक्ति का होना भी आवश्यक है, जिससे कि विघ्न-बाधाओं तथा शारीरिक कष्टों का सामना करते हुए अपने निर्णयों को कार्य रूप में परिणत कर सकें। इस दृढ़ता को उत्पन्न करना भी बालक के माता-पिता एवं गुरुजनों का आवश्यक कर्त्तव्य है।

संस्कारों को समुचित दिशा भी तो मिले

यह ठीक है कि जन्म लेने वाला प्रत्येक बालक अपनी तरह के संस्कार लेकर आता है अपनी अधिकांश जीवन-यात्रा उन्हीं के सहारे प्रारम्भ करता है, पर इन संस्कारों को भाग्य निर्माण की कुञ्जी बताना बच्चों के साथ—भावी पीढ़ी के साथ विश्वासघात करने के बराबर है। संस्कारों को 'कच्चा पदार्थ' तो मान सकते हैं, पर उन्हें नई दिशा देकर उपयोगी और परिपक्व बनाने का उत्तरदायित्व उस बालक का नहीं, माता-पिता, परिवार और समाज का होता है। बच्चे तो तभी भटकते हैं जब उन्हें समुचित दिशा नहीं मिलती।

स्नेह, प्यार, दुलार बच्चे के विकास के अनिवार्य तत्त्व हैं। इनके सहारे ही उसमें नैतिक आचरण और सद्गुणों का विकास होता है, पर वह अभिभावक जो लाड़-प्यार और प्यार के मध्य बच्चे के अध्ययन और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुधार की बुद्धि नहीं रखते और कोई हो या न हो, पर वह तो उसके शत्रु के समान ही हैं। अनियन्त्रित लाड़ का एक ही अर्थ है—बच्चे को कंटकाकीर्ण बियावान जंगल में अनाश्रित छोड़ देना। उस स्थिति में उसका भटकना ही निश्चित है।

बालक का हृदय कोरी सिलेट और स्वच्छ वस्त्र के समान होता है। कोरी सिलेट में जो चाहे लिखा और धबल वस्त्र में कैसा भी रंग चढ़ाया जा सकता है ? संस्कारों के अतिरिक्त कुछ और भी आवश्यक गुण होते हैं, जिनसे बालक की पहचान होती है। वह हैं—(१) अनवरत् सक्रियता या चंचलता, (२) तीव्र जिज्ञासा अर्थात् हर नई वस्तु के अन्तरंग ज्ञान और मेल-मिलाप की आकांक्षा, (३) सरलता और निश्चिन्तता। इन जन्मजात गुणों को, संस्कारों को शक्ति प्रदान करने वाला तत्त्व कह सकते हैं। इन्हीं के सहारे जो भी दिशा मिलती है बालक के संस्कार तेजी से गतिशील हो जाते हैं और उसे अच्छी या बुरी किसी भी दिशा में ले जाते हैं।

कच्चे लोहे को पिघलाकर इस्पात ढालने की अपनी विद्या होती है। पेट्रोलियम से कीमती मोबीआइल निकालते हैं। बच्चे के संस्कार वे चाहे कितने ही जन्मों से जड़ पकड़े हुए हों, उन्हें सुधारा और सँवारा जाना बिल्कुल आसान बात है यदि हम बच्चे को वैसी दिशा और वातावरण दे सकें।

बच्चे में गीत गाने के संस्कार हैं तो उसे प्रेरणाप्रद गीत सिखाने की कहानियाँ, नाटक और प्रेरणाप्रद दृष्टान्त सिखाने की जिम्मेदारी आपकी, बच्चे के माता-पिता की और सम्बन्धियों की होती है। चाहने भर से काम नहीं चलता—इच्छा और प्रयत्नों का चोली दामन का साथ है। यदि माता-पिता न सिखायें और बच्चा सिनेमा के गीत गाने लगे तो उसका क्या दोष ?

उसके तोड़-फोड़ के स्वभाव को कोई रोकना भी चाहे तो रोका जाना सम्भव नहीं, उससे हानि तो होती ही है, खीझ और लड़ाई-झगड़े भी होते रहते हैं, यदि प्रारम्भ में बच्चे को कागज की नाव बनाना, कागज की टोपी और गुब्बारा बनाना, खिलौने बनाना, फूल-पौधे लगाने जैसे बिना खर्च के काम सिखा दिये जायें तो निरर्थक दिखाई देने वाली यह आदतें उसमें विलक्षण सृजनात्मक प्रतिभा जाग्रत कर सकती हैं। बच्चों में झगड़े की प्रवृत्ति इस बात की द्योतक है कि उसकी उभरती शक्ति को समुचित दिशा नहीं दी जा रही—उसकी उमंगों को दबाया गया है; उसकी सक्रियता, जिज्ञासा और सरलता को भटकने के लिए छोड़ दिया गया है। इसीलिए वह अपना भी सिर तोड़ता है औरों का भी, किन्तु यदि उस शक्ति को साहित्य, कला, रचना, गणित, विज्ञान आदि किसी दिशा में लगा दिया जाये तो ऐसा बालक कभी भी पराश्रित नहीं मिलेगा, वह कभी जीवन में हताश, निराश या उद्विग्न भी नहीं होगा।

अधिकांश माता-पिता को समय न मिलने की शिकायत रहती है। यदि ऐसा है तो फिर यह जिम्मेदारी ही क्यों ली जाये ? यह जानने योग्य बात है—बल्कि यों कहना चाहिए कि विवाह से पूर्व उम्मीदवारों को इस बात का पूरी तरह बोध करा दिया जाना चाहिए कि एक बालक दस हाथियों से कम की देखभाल नहीं चाहता। खुराक भले ही कम हो, पर देख-रेख के लिए समय, श्रम, सावधानियाँ इतनी अधिक अपेक्षित हैं जितनी किसी फैक्ट्री का खड़ा करना। तभी फैक्ट्री उपयोगी हो सकती है, तभी बालक सुसंस्कृत हो सकते हैं।

मार्कट्वेन ने इस सम्बन्ध में गम्भीर अध्ययन और चिन्तन के जो निष्कर्ष दिये हैं, वह इसी तथ्य का प्रतिपादन करते हैं। उन्होंने अपराधी बालकों के एक गिरोह के चार बच्चों के पारिवारिक जीवन का अध्ययन किया। यह सभी बालक सम्पन्न घरों के थे। एक दिन उन्होंने नील गाय पकड़ ली। उसे मारा और उसकी खाल एक दुकानदार को बेच दी। दुकानदार ने खाल भीतर रख दी और बाहर आकर फिर काम करने में लग गया। लड़कों ने इतने ही क्षणों में पिछवाड़े की खिड़की ताड़ ली। वे पीछे गये और एक के ऊपर एक चढ़कर भीतर घुस गये और फिर वही खाल निकालकर उसी दुकानदार को बेच दिया। दुकानदार सस्ती खालें मिलने से प्रसन्न था और बच्चों की आमदनी बढ़ रही थी। एक ही खाल इन लड़कों ने चार बार बेची। इस बार दुकानदार अन्दर गया तो हिसाब लगाने के लिए जब खालें गिनने को उद्यत हुआ तो एक ही खाल देखकर सन्न रह गया।

मार्कट्वेन ने इन बच्चों की घरेलू परिस्थितियाँ उनके स्कूली जीवन की आज से तुलना की तो पाया कि यह बच्चे अपने स्कूल में तीक्ष्ण बुद्धि माने गये हैं, पर घर में उनके माता, पिता में से किसी ने उन्हें शायद ही किसी दिन १०-१५ मिनट देकर उनकी परिस्थितियाँ पूछी हों। संरक्षण और मार्ग-दर्शन के इस अभाव ने इन बच्चों के साहस और बुद्धिमत्ता को यहाँ तक ला दिया जबकि उनकी परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि वे इन्जीनियर और डाक्टर बन सकते थे। इन वारिसों ने मार्कट्वेन के परामर्श को स्वीकार कर अपने किशोरों को प्रतिदिन नियमित समय देना प्रारम्भ किया और एक दिन वह बालक हवाई सर्विस का कुशल डिजाइन इन्जीनियर बना।

कई लोग कठोर नियन्त्रण और बच्चों को भयभीत रखकर उनके सुधार की उपेक्षाएँ किया करते हैं, वे दोहरी भूल करते हैं, दोपहर की रेत से अधिक से अधिक पैर जल सकते हैं, पर ज्वालामुखी तो सर्वस्व नाश करता है ऐसे बालक तो और भी भयंकर अपराधी और दुष्ट प्रकृति के हो जाते हैं। अतएव दबाव डालने की नीति को बिल्कुल अव्यावहारिक है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुशल माता-पिता बच्चे के संवेदनशील हृदय के साथ हृदय और मस्तिष्क के साथ अपनी बौद्धिक उर्वरता जोड़ दें, उसके जन्मजात संस्कार यदि खराब भी हैं, तो भी उन्हें चोर की वीरता को सिपाही के शौर्य में बदल देने की तरह सुधारा और सजाया जा सकता है। यह रचनात्मक दृष्टिकोण हर माता-पिता में विकसित हों तभी भावी पीढ़ी की सुसंस्कृत रचना साकार हो सकती है।

बच्चों को सच्चरित्र बनाया जाय

बच्चे किसी भी देश या जाति की आधारशिला हैं। बड़े होकर वही उनका निर्माण करते हैं। जिस प्रकार मकान बनाते समय उसकी नींव को बहुत मजबूत बनाया जाता है, उसी प्रकार किसी राष्ट्र की नींव, बच्चों पर भी पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए। यदि वह पतन के मार्ग पर चल पड़े तो सारे राष्ट्र को इसी ओर घसीट ले जायेंगे। इसके विपरीत यदि उनके विचार सुलझे हुए हों तो वह उसे उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचाने में कोई कसर उठा न रखेंगे। प्लेटो ने कहा है कि किसी देश का इससे बड़ा क्या सौभाग्य हो सकता है कि उसके बालक सच्चरित्र और सदाचरण करने वाले हों। वास्तव में चरित्र ही वह वस्तु है जो किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को ऊँचा उठाती है, इसी शक्ति के द्वारा समाज में उसका यश व कीर्ति बढ़ती है, यही उसे क्षुद्र से महान बनाता है, इसीलिए हमारे शास्त्र घोषणा करते हैं कि समाज का नेतृत्व सदाचारी और चरित्रवान् व्यक्तियों के हाथ में ही देना चाहिए।

हमारे ऋषि इस परम तथ्य को भलीप्रकार से जानते थे कि बालक कच्ची मिट्टी के समान है, इस अवस्था में उसका जैसा भी आकार बनाया जाय, वह सरलता से बन जायेगा। इसलिए आरम्भ से ही उसकी शिक्षा-दीक्षा का इस प्रकार से प्रबन्ध रखते थे कि उसे संसार में दुर्गुणों का भान ही न हो, इस प्रकार के स्वच्छ वातावरण में उसका पोषण होता था कि उसमें किसी भी बुरी आदत का पनपना असम्भव-सा जान पड़ता था। शुरू से ही ऐसे संस्कार डाले जाते थे कि उसकी विचारधारा का प्रवाह उसी ओर प्रवाहित हो। यज्ञोपवीत संस्कार का यही अभिप्रायः होता था कि वह मनुष्य जीवन के महत्त्व को भलीप्रकार समझकर मानवोचित कर्मों को करने का व्रत ले। इस समय उन्हें सद्बुद्धि रूपी गायत्री को अपने जीवन में ओत-प्रोत करने के लिए उपदेश किया जाता था। जिसके अन्तःकरण में विवेकशक्ति की झंकार बचपन से ही बजा दी गई हो वह आगे चलकर पथभ्रष्ट कैसे हो सकता है ?

आज बिल्कुल विपरीत दशा है। संस्कारों का लोप हो गया है। यज्ञोपवीत कोई पहिनता नहीं। गुरु-शिष्य के सम्बन्ध पहले जैसे पवित्र नहीं हैं। सत्य तो यह है कि आजकल अध्यापकों का आचरण भी ऐसा आदर्श नहीं है कि विद्यार्थी उसका अनुकरण कर सकें। उपदेश से अधिक आचरण का प्रभाव पड़ता है। सदाचार द्वारा तो हम दूसरों पर अपनी छाप डाल सकते हैं। बालक का चरित्र-गठन माता-पिता के चरित्र पर बहुत कुछ निर्भर करता है। यदि पिता सिगरेट पीता है और बालक को उसके पीने से रोकता है और उसके न छोड़ने पर दण्ड देता है, भय दिखाता है तो यह तरीका कुछ उचित नहीं प्रतीत होता। चरित्रहीन व्यक्ति का किसी को चरित्रवान् बनने का उपदेश करना उपहासास्पद है। पिता को ऐसा करने पर बालक को उसके प्रति भय और द्वेष उत्पन्न हो जाते हैं, जो कालान्तर में भावना ग्रन्थि बनकर अव्यक्त मन में निवास कर लेते हैं, जिससे बालक का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, उसका उत्साह मन्द पड़ जाता है और भविष्य दुःखमय बन जाता है। किसी भी व्यक्ति को उसके दोषों को बताकर सुधारा नहीं जा सकता। उसका उचित मार्ग यह है कि वह उसे कहे कि देखो भाई ! जो कार्य तुम करते हो वह ठीक ही है, परन्तु इसके बुरे-भले परिणाम पर विचार कर लो, फिर उसको प्रसन्नतापूर्वक करो।

बालक में विचारशक्ति का अभाव होता है, वह ज्ञान की बातें सुनना पसन्द नहीं करता। भैंस के आगे बीन बजाया भी जाय तो उससे क्या लाभ ? बन्दर तो अदरक का स्वाद न जानकर उसे फेंक ही देगा। इसलिए उसके सामने अनुकूल ही सामग्री उपस्थित करनी चाहिए। उसकी भावनाओं को कथा-कहानियों द्वारा उत्तेजित करना चाहिए। जो बुरी आदत उसमें देखें उसके सुधार के लिए वैसी ही मनोरंजक कथा सुनानी चाहिए। स्वभाव परिवर्तन के लिए उसके अनुकूल कहनी चाहिए। बालक उस कथा-कहानी को अधिक पसन्द करते हैं, जिसमें कुछ चमत्कार दिखाया गया हो या जिसमें कुछ नवीनता हो। बालक की मनोदशा को मोड़ने का कथा एक अच्छा माध्यम है। किशोरावस्था में वीर-पुरुषों, सन्त-महात्माओं की कथाएँ उपयोगी रहती हैं। छत्रपति शिवाजी की वीरता का श्रेय उसकी माता जीजाबाई द्वारा सुनाई हुई कथाओं को ही है। राम, कृष्ण, भीष्म, हरिश्चन्द्र, शिवाजी, महाराणा प्रताप, गुरुगोविन्दसिंह, बन्दावैरागी, रन्तिदेव, दयानन्द, शंकराचार्य आदि की कथाओं को सुनकर वैसे ही महान बनने की भावनाएँ उदीप्त होती हैं, क्योंकि जो भावनाएँ बालक के हृदय में उठती हैं, वह उसके अव्यक्त मन में बैठ जाती हैं और उसके जीवन-प्रवाह को उसी दशा में मोड़ ले जाती हैं।

आजकल सिनेमा का बहुत प्रचार हो गया है। छोटे-बड़े जिसको देखो, वही उसका मतवाला बना हुआ है। जिस प्रकार पानी का स्वभाव नीचे की ओर बहने का है उसी तरह से मनुष्य पर भी यदि नियन्त्रण न लगाये जाएँ तो वह भी पतन की ओर जाने लगता है। सिनेमा काम प्रवृत्ति को बढ़ाते हैं, जिसका दुष्परिणाम आजकल सर्वत्र देखने में आ रहा है। विद्यार्थियों से सम्बन्धित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

अनेकों घटनाएँ समाचार-पत्रों में पढ़ने को मिलती हैं, वह इसी पिशाच की देन हैं। इसके अतिरिक्त यह हमें चोरी व दगाबाजी सिखाते हैं। बुराइयों की ओर प्रवृत्त करते हैं, फैशनपरस्त बनाते हैं। चूँकि उसे एक मनोरंजन का साधन समझा जाता है। इसीलिए घर के सब लोग इसका आनन्द लेते हैं। जिस कार्य को माता-पिता करते हों, उसे वह अपने बालक को कैसे मना कर सकते हैं। जो बालक इस बुरी लत में पड़ गये हैं, उनके माता-पिता को चाहिए कि वे स्वयं जाना बन्द कर दें तभी वह बालकों को रोकने की स्थिति में रहेंगे।

बालकों के चरित्र-विकास के लिए यह आवश्यक है कि उसकी स्वाभाविक इच्छाओं की यथायोग्य पूर्ति करते रहना चाहिए, नहीं तो वही विचार-भावनाग्रन्थि बनकर भविष्य में दुःख देते हैं। मिठाई खाने, खेल-कूद, सैर को जाने या अच्छे कपड़े पहनने आदि की इच्छाएँ यदि अमर्यादित भी हो जायें तो भी उसे समय तो उनकी पूर्ति कर देनी चाहिए, बाद में उचित ढंग से कथावार्ता द्वारा उन्हें समझाना चाहिए। यदि ऐसा न किया जाये तो उनके मन में एक कुढ़न-सी उत्पन्न हो जाती है, जिसका प्रभाव उसके शरीर और मन पर बुरा पड़ता है। दूसरे इससे वह अपनी स्वतन्त्रता में बाधा मानते लगता है। ग्लेडस्टन इंग्लैण्ड का प्रधानमन्त्री था। वह सदाचारी व परोपकारी था, परन्तु कभी-कभी वह छोटी-छोटी वस्तुएँ चुरा लिया करता था। यह शैशवावस्था में इच्छाओं को उचित ढंग से पूरा न करने का ही परिणाम है।

किसी व्यक्ति के दोषों का वर्णन करके उसके दोषों को हटाया जाना कठिन है। इसके विपरीत उसके दोषों को न गिनकर उसकी अच्छाइयों की जी भरकर प्रशंसा करनी चाहिए। इससे उसके चरित्र का विकास होना सम्भव है। कोई भी व्यक्ति अपनी बुराई को सुनना नहीं चाहता। प्रशंसा से वह फूला नहीं समाता। सुधार के अतिरिक्त किसी व्यक्ति को अपना बनाने का भी यह अच्छा हथियार है। अध्यापक यदि किसी विद्यार्थी के अच्छे कार्यों की प्रशंसा करता है तो दूसरे विद्यार्थी उसकी स्पर्धा करते हैं, वह चाहते हैं कि उनकी भी अच्छी बातों का वर्णन किया जाये। इस प्रकार उनका मोड़ सहयोग की ओर बढ़ता है।

जिस तरह शिशुकाल में कथाओं व व्यवहार द्वारा चरित्र का विकास किया जाता है, उसी तरह बड़ा होने पर ज्ञान-बुद्धि की आवश्यकता पड़ती है। गीता में भगवान ने कहा है कि ज्ञान से पवित्र कोई भी वस्तु नहीं है। यह इसलिए कि ज्ञान प्रकाश का दूसरा नाम है। इसके आने से अन्धकार की मृत्यु हो जाती है। अज्ञान ही दोष-दुर्गुणों का कारण है, इसके हट जाने से विवेक की वह पवित्र शक्ति प्राप्त होती है, जिसे पाकर वह पृथ्वी पर ही स्वर्ग का आनन्द अनुभव करने लगता है। इसलिए सुकरात ने कहा है कि "ज्ञान का ही दूसरा रूप सदाचार है। बालक को सदाचारी बनाने के लिए, उसकी अशुभ वासनाओं को दूर करने के लिए शुभ वासनाओं को दृढ़ करना चाहिए।"

चरित्र गठन के लिए उपरोक्त उपाय तो आवश्यक हैं ही, परन्तु इनसे भी मूल्यवान उपाय आत्मा को बलवान बनाना है और वह अध्यात्म ज्ञान व अभ्यास के द्वारा हो सकता है। आत्मबलसम्पन्न मनुष्य कभी भी पथ भ्रष्ट नहीं होता, बड़े-से-बड़ा प्रलोभन आने पर भी उनके चंगुल में नहीं फँसता, विवेकशक्ति द्वारा वह सबको छिन्न-भिन्न कर देता है। इस शक्ति द्वारा वह अपने आपको बहुत ऊँचा उठा सकता है ? नर से नारायण बन सकता है। इसलिए बच्चों की शारीरिक व मानसिक शक्तियों के विकास के साथ-साथ आत्मिक शक्तियों के विकास की ओर भी ध्यान देना चाहिए।

बालकों के स्वभाव परिष्कार की पृष्ठभूमि

प्रख्यात् बाल-मनोवैज्ञानिक डा. होमरलेन ने अपने सुधारालय में अपराधी बालकों के आचरण सम्बन्धी अनेक प्रयोग किये। उन प्रयोगों का निष्कर्ष यह रहा कि अपराधी बच्चों की अपराधी-प्रवृत्ति का मूलोच्छेदन इस विधि से किया जा सकता है—

१. बच्चों को प्रेम एवं मैत्री के वातावरण में रखकर। २. व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक बच्चे को स्नेहपूर्ण सम्पर्क बनाकर उसका आत्मविश्वास बढ़ाते हुए। ३. उन्हें रचनात्मक कार्यों में प्रवृत्त रखकर।

शैशव के दर्पण में ही व्यक्ति के भावी व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक मिल जाती है। सुसंस्कृत, श्रमशील, अनुशासित और धुन के बच्चे ही महापुरुष बनते देखे गये हैं। इसके विपरीत, विश्व के समस्त कुख्यात अपराधियों के जीवन के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि उनके शैशवकाल का वातावरण कुण्ठाओं को बढ़ाने वाला तथा उच्छृंखलता को पनपाने वाला रहा है।

संस्कारों की मूल प्रेरणा शिशु को माँ और परिवार से ही मिलने के कारण किसी बच्चे में गलत प्रवृत्तियाँ पनपी देख-पाकर जरूरत स्वयं अपने ही आत्म-निरीक्षण की होती है। बच्चे पर झुँझलाने, उसे प्रताड़ना देने से सुधार सम्भव नहीं हो सकता।

वस्तुतः बच्चे के मन में प्रेम पाने की प्यास प्रबल रहती है। बच्चा ही क्यों, यह प्यास तो मनुष्य और प्राणिमात्र में तथा चराचर सम्पूर्ण जगत में प्रधान है। बच्चों के निश्छल अथवा अपेक्षाकृत सरल आचरण में उसकी अधिक स्पष्ट झाँकी मिल जाती है।

उद्दण्ड-उच्छृंखल बालक के व्यवहार के विश्लेषण से यही जानकारियाँ मिलती हैं कि स्नेह के अभाव से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसकी सहज प्रवृत्तियाँ मुरझा गई हैं। किसी बालक की दुर्बलता का उपहास उसे उद्दण्ड बना देने का ही उपक्रम है।

बालक के मनोविश्लेषण के लिए किसी सुदीर्घ श्रमसाध्य निरीक्षण की आवश्यकता नहीं होती। उसके लिए सर्वोपरि आवश्यक बात है—बच्चे के प्रति अभिभावक का निराश न होना, उसके मन की बातों को ध्यानपूर्वक सुनना, उसे आत्मप्रकाशन का अवसर देना तथा सच्चा स्नेह देना।

स्नेह के वातावरण में बालक अपने आपको अनजाने ही खोलता जाता है। डा. विलियम ब्राउन ने अपने प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात किया है कि प्रेमपूर्ण वातावरण में बालक अनायास ही वे सब बातें कह डालता है, जो सामान्यतः वह छिपाए रहता तथा अकेले में अन्य जटिल बालकों के बीच ही कहता-करता है। जब बच्चा अपने आपको खोलता है, उस समय उसकी विकृत आदतें देख-जानकर उन पर रोष-क्षोभ व्यक्त करना हानिप्रद ही होगा। प्रत्येक उद्दण्ड बालक सहानुभूति से उसकी बात सुन सकने वाले व्यक्ति की खोज में रहता है। अपने मन को खोल देने पर उसका मानसिक शिथिलीकरण हो जाता है। फिर प्रेमपूर्वक उसे समझाने पर तथा उसके आत्मविश्वास को जाग्रत करने पर, वह अपनी विकृतियों से मुक्त हो जाता है।

इसके साथ ही बालक को प्रोत्साहित करते हुए रचनात्मक कार्य में प्रवृत्त किये रखने की आवश्यकता होती है। रचनात्मक कार्य बालक के बाल्य-विश्वास को उभारते हैं। उद्दण्डता, उच्छृंखलता, ध्वंसात्मक प्रवृत्तियाँ हैं। मानसिक, शारीरिक श्रम एवं शक्ति उनमें भी बहुत लगती है। यही शक्ति जब रचनात्मक प्रवृत्तियों में लगाई जाने लगती है, तो उसका स्वाद और आनन्द अधिक उच्चकोटि का होने से बालक की सहज बुद्धि उन्हीं में रमने लगती है और ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों के प्रति उसे जुगुप्सा होने लगती है।

बालक को सीधे-सीधे नैतिक-शिक्षा देने पर उस पर प्रभाव की सम्भावना अत्यल्प है। बालक की बात-बात में आलोचना करने पर उसका आत्मविश्वास क्षीणतर हो जाता है। अनेक सुशिक्षित कहे जाने वाले माता-पिता अपने बालकों के दुर्गुणों के प्रति ऐसी सतर्कता दिखाते हैं कि वे बालकों को मात्र उन्हीं दुर्गुणों, दुर्बलताओं का स्मरण कराते रहते हैं। इस प्रकार बालक के समय, श्रम व मानसिक शक्ति को वे अधिकाधिक समय दुर्गुणों के ही स्मरण-मनन में खर्च कराते रहते हैं। इसका परिणाम निश्चित है कि जो बोया जायेगा, वही काटा जायेगा, बालक की मृदु, उर्वरक, प्राणवान, ऊष्मा से भरी भाव-भूमि में जब दुर्गुणों, दुर्बलताओं के स्मरण के ही बीज बोए जायेंगे, तो भावी फसल का स्वरूप स्वयं सिद्ध है।

कभी-कभी संयमी-सदाचारी व्यक्तियों की सन्तति दुराचारी, दुर्व्यसनी तथा मेधावी व्यक्तियों की सन्तान मूर्ख होती देखी गई हैं। पिछले जन्मों के संस्कार बीज तो इसके कारण होते ही हैं, किन्तु कई बार कारण यह होता है कि इन लोगों का स्वयं का श्रेष्ठ आचरण तो इनकी अपनी निष्ठा और उत्कट इच्छा का परिणाम होता है, किन्तु सन्तति पर वे उसी उत्कृष्ट आचरण को हठात् आरोपित करना चाहते हैं। यह उनका मोह और मानव-मन सम्बन्धी उनकी अनभिज्ञता ही होती है। वे इस सामान्य तथ्य को भी भुला बैठते हैं कि उनका स्वयं का उत्कृष्ट आचरण उनके अपने विवेक का परिणाम है। अपने अन्तःकरण के आह्वान पर ही उन्होंने अपने आचरण को अधिकाधिक उत्कृष्ट बनाने का प्रयास किया। अब अपने बच्चे पर वही आदर्श एकदम से थोपने का प्रयास सफल न हो सकेगा। बालक हों या वयस्क, उनमें किसी भी योग्यता का विकास धीरे-धीरे ही होता है। नैतिक-चारित्रिक योग्यता का भी विकास क्रमशः ही होता है।

स्नेह-प्रेम द्वारा व्यक्ति की प्रकृति में भारी परिवर्तन भी सम्भव है, किन्तु आरोपित नैतिकता द्वारा यह सम्भव न हो सकेगा।

जो माता-पिता अपने मोह एवं अज्ञानवश बालक में रातोंरात आमूल परिवर्तन की इच्छा करते हैं, वे बच्चों पर ऐसा असह्य दबाव डालते हैं, जो वे सह ही नहीं सकते और विद्रोह-स्वरूप उच्छृंखल हो जाते हैं, किन्तु सुसंस्कृत माता-पिता द्वारा ऐसी नादानी कभी-कभी ही होती है। वह उन माता-पिता में शेष रह गई मूढ़ता-कठोरता ही कही जा सकती है। सामान्यतः सुसंस्कृत-संवेदनशील माता-पिता बच्चों के कोमल मन के प्रति उदार और उनकी तीव्र ग्रहणशीलता के प्रति जागरूक ही रहते हैं। ऐसे वातावरण में पले-पनपे शिशु का सही दिशा में विकास सुनिश्चित ही होता है।

बच्चों के दोषों के प्रति हठ, दुराग्रह, कठोरता अधिकांशतः वे ही माता-पिता बरतते हैं, जो स्वयं वैसे ही दोष-दुर्गुणों से भरे-पूरे रहते हैं। स्पष्ट है कि उनका यह प्रयास हास्यास्पद होता है और उसकी विफलता अनिवार्य होती है। बच्चे अपने से बड़ों के प्रति सम्मान-शिष्टाचार बरतें, इसके लिए परिवार में वैसा वातावरण आवश्यक है। सादगी, संयम और मितव्ययिता बच्चों को कथनी से नहीं, करनी द्वारा ही सिखाई जा सकती है।

'अति सर्वत्र वर्जयेत्' का सिद्धान्त बच्चों के साथ भी पूरी तरह लागू होता है। अतिशय सतर्कता तो आवश्यक है, पर बच्चे की छोटी-से-छोटी भूल को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर देखना भी हानिकर है। बच्चा अत्यन्त सम्भावनाओं का भण्डार होता है। अतः कालान्तर में उसकी अभी की दुर्बलताएँ प्रयासपूर्वक निर्मूल की जा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकती है, यह विश्वास रखना चाहिए, किन्तु उसकी उपेक्षा कदापि न करनी चाहिए।

यहाँ यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि मात्र परिवार को सुसंस्कृत बना लेने पर बालक का सुसंस्कृत हो जाना अनिवार्य नहीं है। मनोवैज्ञानिक गिलिन ने अमेरिका के अपराधों का विश्लेषण करते हुए बताया है कि इससे सामाजिक-शैक्षणिक सुधार-उत्कर्ष तो अपेक्षित है ही, किन्तु मूल बात यहाँ भी परिवार पर ही आकर टिकती है। शैशवावस्था में श्रेष्ठ महापुरुषों की जीवनियाँ, धार्मिक मूल्यों के सार-सन्दर्भ तथा स्वयं अपने उत्कृष्ट आचरण के सौन्दर्य की छाप जो माता-पिता अपने बच्चों पर अंकित कर देते हैं, उन बच्चों के मन में सही 'वीर-जीवन' के संस्कार, संवेदनाएँ और संकल्प इतने सघन हो जाते हैं कि फ़िर वे विद्यालय और समाज में भी अपने जैसे बालकों के प्रति ही आकर्षित होते हैं, कदाचारी बालकों के प्रति उनके आकर्षण की कल्पना भी नहीं की जा सकती। प्रचुर-प्रेम और स्नेह के अमृत का सुख-स्वाद चख लेने वाले बच्चों में सामाजिक सड़न के प्रति आक्रोश और जुगुप्सा ही प्रबल होती है, उस नरककुण्ड के प्रति उनमें आकर्षण उत्पन्न ही नहीं हो सकता।

संतति को सुयोग्य और समुन्नत बनाने की समस्या

भावी संतति का स्तर कैसा होगा यह इस बात पर निर्भर है कि उसके जनक-जननी का व्यक्तित्व किस स्तर का रहा और आरम्भिक दिनों में उसे किस प्रकार के वातावरण से प्रभाव ग्रहण करना पड़ा ? इन तीनों प्रमुख कारणों पर ध्यान न देकर, मात्र अच्छे भोजन-वस्त्र का प्रबन्ध कर देने से किसी को सुयोग्य और समुन्नत स्तर की सन्तान का श्रेय नहीं मिल सकता है। पढ़ाई के लिए अच्छे अध्यापक एवं स्कूल की सुविधा से मस्तिष्कीय विकास में सुविधा मिल सकती है, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे बालक का दृष्टिकोण एवं व्यक्तित्व विकसित करने में अधिक सहायक सिद्ध हो सकेंगे। कारण कि वे बालक के अन्तराल का स्पर्श नहीं कर पाते। मात्र बाहरी रूप से ही सहायक सिद्ध होते हैं।

कभी गुरुकुल पद्धति का प्रचलन था। वे न केवल प्राकृतिक स्वास्थ्यप्रद वातावरण में बने होते थे, वरन् उस कुसंस्कारी समुदाय से भी पृथक् रहते थे, जिनकी संगति से बालकों के कोमल मन पर दुर्गुणों को प्रोत्साहित करने वाला प्रभाव पड़ता है। इन गुरुकुलों का अपना विशिष्ट वातावरण था। गुरुमाताएँ बच्चों की भावनात्मक आवश्यकता का ध्यान रखती थीं और उन्हें वैसा ही स्नेह-दुलार प्रदान करती थीं जैसा कि जन्मदात्री माता से मिलना चाहिए। अध्यापक उपाध्याय मात्र शिक्षण ही नहीं देते थे, साथ-साथ घुमाने ले जाते, कथाएँ कहकर मनोरंजन करते और दैनिक कार्यक्रमों में व्यवहार एवं आदर्श के सभी पक्षों का समावेश रखते थे। उन्हें ध्यान रहता था कि आगे चलकर इन नन्हें पुत्रों को कर्त्तव्यपरायण, प्रतिभासम्पन्न एवं समाजनिष्ठ बनाना है। इसलिए उस प्रकार का बीजारोपण करने में किसी प्रकार की कमी न रहने दी जाय। इस प्रकार पिता की आवश्यकता उपाध्याय से, माता की गुरु माता से और वातावरण की आश्रमवासियों से समुचित आवश्यकता की पूर्ति होती थी। यही कारण था कि उन खदानों से नर-रत्न निकलते थे।

अब ऐसे गुरुकुलों की परम्परा ही उठ गई जिनमें छात्र के व्यक्तित्व के समग्र विकास का ध्यान रखा जाता था। महँगे पब्लिक स्कूलों में भी ठाट-वाट भरा रहता है। डिग्रीधारी अध्यापक होने से भी यह आशा नहीं की जा सकती कि उनके निजी व्यक्तित्व इतने उच्चस्तरीय होंगे जो सम्बद्ध छात्रों को अपने ढाँचे में ढाल सकें। फिर अब बच्चों को हर घड़ी अध्यापक से चिपटे रहने का भी अवसर कहाँ मिलता है ? वे अच्छे अध्यापक तो हो भी सकते हैं पर अभिभावकों की भूमिका निभा सकें और भावनात्मक पोषण दे सकें, इसे अत्यन्त कठिन ही समझना चाहिए।

वर्तमान परिस्थितियों में यह उत्तरदायित्व अभिभावकों को ही उठाना चाहिए कि वे अपने को प्रजनन से पूर्व ही इस स्तर का बनायें। जिनके साँचे में ढलकर संतति को समुन्नत व्यक्तित्व की विरासत मिल सके। घर का वातावरण भी उन्हीं को बनाना होगा। परिवार भले ही छोटा हो, पर हो ऐसा जिसमें रहकर बच्चों पर कुसंस्कार न जमने लगें। बात इतने से भी नहीं बनती। साथ में खेलना और पढ़ना जहाँ होता है, वहाँ की गतिविधियाँ कैसी चलती हैं ? इसका भी ध्यान रखना होगा, इतना किये बिना निर्वाह और सज्जापरक सुविधा जुटा देने पर भी यह आशा नहीं की जा सकती कि वे सुयोग्य नागरिक बन सकेंगे। अपनी तथा समाज की उन्नति में कुछ कहने लायक योगदान दे सकेंगे।

इन दिनों बाल अपराधों की भरमार है। बड़ी आयु के लोग कुकर्म करें, अनाचार बरतें, तो इसमें उनकी आवश्यकता, परिस्थिति, विवशता जैसा भी कुछ बताया जा सकता है, पर उन बालकों के लिए क्या कहा जाय, जिनके कंधों पर कोई भारी उत्तरदायित्व नहीं आये हैं और जो परिवार के बीच रहकर अपनी सामान्य आवश्यकताएँ पूरी कर लेते हैं। बढ़ते बाल-अपराधों से चिन्तित मूर्धन्य समाजविज्ञानियों और मनोविज्ञानियों द्वारा कारणों की गहराई तक पहुँचने के प्रयास से पता चला कि इन अस्त-व्यस्तों को कुमार्ग अपनाने की प्रेरणा पारिवारिक वातावरण में मिली होती है। पिता का संरक्षण पोषण उन्हें वैसा नहीं मिला, जिसमें वे भविष्य का सही स्वप्न देख पाते और उसके लिए उपयुक्त दिशा अपना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकते। इसी प्रकार माता का वैसा स्नेह भी नहीं मिला, जिसे धात्री से ऊँचे स्तर का भावनात्मक परिपोषण देने वाला कहा जा सके।

यों पलने को तो बच्चे अनाथालयों में भी पलते हैं। वहाँ की रोटी खाते, कपड़े पहनते और पढ़ते-लिखते भी हैं, किन्तु अभिभावकों की सघन आत्मीयता और उनकी स्तरीय वरिष्ठता का परिपोषण न मिलने से अन्तराल की कली खिल नहीं पाती और डरे, सहमे किसी प्रकार दिन काटते रहते हैं। मनुष्य के लिए अन्न-वस्त्र ही सब कुछ नहीं है। उसे सुसंस्कार भरा वातावरण और सघन आत्मीयता का अनुदान भी चाहिए। यह न मिलने पर असन्तुष्ट-अशान्त, उद्विग्न रहने वाला बाल-जीवन अवांछनीय मार्ग अपनाता है और संयोग बैठते चलने पर वह अपराधी प्रवृत्ति का बनने लगता है। बात अनाथालयों की नहीं उस वातावरण की हो रही है, जिसमें उपेक्षा, अस्त-व्यस्तता की कुरूप निस्तब्धता छाई रहती है और अन्ततः उस क्षेत्र में पलने वालों को कुसंस्कारी बनाकर रहती है। कुसंस्कारों की परिणत ही अपराधों के रूप में देखी जाती है।

विचारकों ने समाज को भी बाल-अपराधों की रोकथाम के लिए अनेक उपाय सुझाये हैं और इस सन्दर्भ में शासन को क्या प्रबन्ध करना चाहिए, इसके लिए भी कई दबाव डाले हैं पर साथ ही यह भी कहा है कि उत्पादनकर्त्ता अभिभावक अपनी सामर्थ्य से अधिक संख्या में बच्चे जनेंगे और उनके लिए समुचित स्नेह-संरक्षण देने में असमर्थ रहेंगे, तो इसकी परिणत बच्चों में कुसंस्कारिता ही बढ़ाती रहेगी और उनके व्यक्तित्व को हीनता से बचाया न जा सकेगा। समाज और सरकार द्वारा रोकथाम, दण्डविधान और सुधार प्रयास किये जाने से ही बात बनेगी नहीं। काम तब चलेगा जब उत्पादनकर्त्ता अपनी कृतियों को सही ढाँचे में ढालें और बीजांकुर बोने, उगाने के साथ-साथ पौधे को खाद-पानी देने और रखवाली करने की भी जिम्मेदारी उठायें। वह कार्य प्रधानतया जनक-जननी का है। इन दोनों में भी विशेष दायित्व माता के कंधों पर आता है, क्योंकि भ्रूण को पेट में पकाने से लेकर दूध पिलाने, साथ सुलाने, गोदी खिलाने, निरन्तर सामने रखने के कारण वही अपना अधिकाधिक प्रभाव संतान पर छोड़ती है। पिता का प्रायः उपयुक्त साधन जुटाने और वातावरण बनाने में ही हाथ रहता है, क्योंकि उसका कार्य-क्षेत्र अर्थोपार्जन की दृष्टि से दिन में घर से बाहर रहने जैसा ही होता है। अच्छा तो यही था कि ऐसी स्थिति में सन्तानोत्पादन का संयम बरता जाता अथवा उनकी संख्या न्यूनतम रखी जाती।

इन दिनों शिक्षित स्तर की महिलाएँ आमोद-प्रमोद पर अधिक ध्यान देने लगी हैं। उपार्जन के लिए नौकरी करने में उनका ध्यान रहता है। घर से बाहर रहने और कई सामाजिक प्रवृत्तियों में भाग लेने मनोरंजक आयोजनों में भी सम्मिलित होने की इच्छा होती है। इन सब कार्यों में बच्चों को साथ लेकर चल सकना असुविधाजनक होता है। ऐसी दशा में उन्हें नौकरों के ऊपर छोड़ना पड़ता है। संयुक्त परिवार बिखर जाने से अब वह सुविधा भी नहीं रही कि परिवार के बीच बच्चे हँसते-खेलते रहें और माता के सान्निध्य से वंचित रहने पर असन्तोष, आक्रोश व्यक्त न करें। इन परिस्थितियों में भी बच्चे अपने को उपेक्षित अनुभव करते हैं। यह असन्तोष कई बार रोष बनकर पनपता है और अपराधी प्रवृत्तियाँ अपनाने की दिशा में बढ़ता है। मातृविहीन बालकों को कभी अभागा कहा जाता था। तब मातृविहीन उन्हीं को कहा जाता था, जिनकी माता का देहावसान हो गया हो। अब स्थिति बदल गई है और व्यस्त माताओं के बालक भी एक प्रकार से मातृविहीन स्थिति में रहकर दिन गुजारते और भावनात्मक दृष्टि से अभावग्रस्त स्थिति में निराश, उद्विग्न रहते हैं। अब यह एक नया कारण और उभरा है, जिसने बालकों को उपेक्षा सहने एवं अपराधी बनने की दिशा में धकेला है। अच्छा होता व्यस्त महिलाएँ मातृत्व का बोझ उठाने से बची रहती हैं या फिर किसी प्रकार गृह-व्यवस्था के क्षेत्र में रहकर ही काम चलातीं और मन मारतीं।

यदि एक बालक अपनी माता के स्नेह एवं सान्निध्य से वंचित रखा जाता है तो उसके विकास के मार्ग में बाधाएँ प्रचुर रूप से आती हैं। यह धारणा डा. जान वाडल्वी ने १९५२ में मैटरनल केयर और मेन्टल हेल्थ के माध्यम से दी कि माता की गोद से वंचित होने में बालक का उचित विकास संदिग्ध ही है।

एस. ग्लुएक के परीक्षणों के आधार पर अपराधी बच्चों की देशव्यापी संख्या २५ प्रतिशत तक पहुँच गई है। इस अनुपात की पुष्टि जान बाडल्वी के ४४ अपराधियों पर किये गये शोध-कार्य से भी होती है, जिसमें ११ अपराधी अपने बाल्यावस्था में अपनी माता से त्यक्त पाये गये।

सी. बर्ट की पुस्तक 'यंग डेलिक्वेन्ट' द्वारा प्रतिपादित तथ्य की भी उपेक्षा नहीं जी जा सकती, जिसमें अपराधी व्यक्ति विनिर्मित होने में एकाध नहीं, अनेकानेक तत्त्वों को उत्तरदायी ठहराया गया है। इन तत्त्वों की ओर टिन वर्जेन, लोरेन्ज, हारलो और केसेन जैसे बाल-विकास क्षेत्र के दिग्गज अन्वेषकों ने भी इंगित किया है।

'मदर चाइल्ड सेपरेशन एण्ड डेलिन्क्वेन्सी' पुस्तक में एस. ब्लेक ने अपने प्रयोगों को वर्णित करते हुए पथभ्रष्ट बालकों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार अपराधी बालकों में अधिकांश को मातृ-स्नेह से वंचित रहना पड़ा था। डा. हिल्डा लेविस ने भी ५०० बालकों के अध्ययन के दौरान मातृहीनों की तरह ही माता द्वारा उपेक्षित बालकों में भी अनेक चारित्रिक त्रुटियाँ पायीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

'मदरिंग एज-एन इन्फ्लूएन्स ऑन अर्ली डेवलपमेण्ट' में ज्वाइस राबर्टसन ने २५ शिशुओं के ऊपर अध्ययन किया जो शुरू से ही एक शिशु स्वास्थ्यशाला में रखे गये थे। शाला के अभिलेखों के अनुसार अविकसित बालकों को मातृ-स्नेह एवं सान्निध्य से वंचित रहने के कारण यह अभिशाप भोगना पड़ा।

एच. डेलगाडो ने बन्दरों के शावक को मादा से अलग रखकर इस तथ्य को प्रतिपादित किया कि वे बन्दर जिन्होंने जन्म से ही मातृबिलगाव के कष्ट झेले, वे प्रौढ़ होने पर सेक्स सम्बन्धी व्यवहारों में असफल या अतिवादी रहे थे।

मातृ बिलगाव में एक बड़ा कारण बढ़ते हुए तलाक भी हैं। विवाह-विच्छेद होने पर माताएँ या तो पुनर्विवाह करती हैं या फिर आजीविका उपार्जन के लिए घर से बाहर रहती हैं। दोनों ही परिस्थितियों में बालकों को ऐसे शिशु-गृहों में समय गुजारना पड़ता है, जिन्हें सुविधा-सम्पन्न होते हुए भी भावनात्मक दृष्टि से अनाथालय स्तर का ही ठहराया जायेगा।

माताओं का प्रभाव बच्चों पर पिता की अपेक्षा अधिक पड़ने की बात सिद्धान्ततः सर्वथा सच होने पर भी बाल-विकास में त्रुटि रहने के लिए सर्वथा उन्हीं को दोषी ठहराया जा सकता, क्योंकि उनमें से अधिकांश को पतियों का समुचित सहयोग न मिलने के कारण स्वावलम्बी होने की बात सोचनी पड़ी और बालकों पर उतना ध्यान न दे सकीं, जितना कि दाम्पत्य-जीवन में समुचित सहकार रहने पर वे दे सकती थीं। बालकों को पिछड़ेपन, दुर्गुणग्रस्त एवं अपराधी बनने में वे पिता भी कम दोषी नहीं, जो यौनाचार की लिप्सा को तो देखते हैं, पर यह नहीं सोचते कि इसकी परिणति में जिन बच्चों का उत्तरदायित्व सिर पर चढ़ेगा, उसका निर्वाह किस प्रकार कर सकेंगे ?

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बालकों के सर्वांगीण विकास में अभिभावकों का योगदान

सही ढंग से समग्र लालन-पालन

बच्चों के लिए खान-पान की, रहन-सहन की और क्रीड़ा-विनोद की साधन-सामग्री पर्याप्त मात्रा में जुटा देने के बाद अभिभावक प्रायः यह समझ लेते हैं कि उन्होंने अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया। कई माता-पिता तो स्नेह और ममत्व की कसौटी ही यह मानते हैं कि वे अपनी सन्तान के लिए कितने मुक्तहस्त से धन खर्च कर सकते हैं। बच्चों को किसी प्रकार का अभाव महसूस न होने देना माता-पिता का कर्त्तव्य है, यह तो ठीक है। यह भी ठीक है कि जब तक कोई दम्पति सन्तान का समुचित पालन-पोषण करने में समर्थ न हो जाय तब तक उन्हें माता-पिता बनने की इच्छा नहीं रखना चाहिए, क्योंकि बच्चों को जन्म देने के साथ उनके लिए पौष्टिक भोजन, पर्याप्त वस्त्र, अच्छी शिक्षा और स्वास्थ्य, मनोरंजन सम्बन्धी आवश्यकताओं की व्यवस्था जुटाने का भी दायित्व आ जाता है।

इस दायित्व को पूरा करने योग्य स्थिति हो तो ही कोई दम्पत्ति सही अर्थों में माता-पिता बनने के अधिकारी होते हैं। अतः बच्चों के लिए पर्याप्त साधन व्यवस्था जुटाना कोई अनुचित नहीं है। अनुचित है तो यह कि इस दायित्व को ही सर्वप्रधान और अन्तिम मान लेना तथा उनके व्यक्तित्व को ढालने की ओर से निश्चिन्त हो जाना। बच्चों को सुख-सुविधा देने, परिवार के लिए सम्पन्नता और ऐश्वर्य जुटाने में कई व्यक्ति इतने व्यस्त हो जाते हैं कि उन्हें दूसरे दायित्वों का अनुभव ही नहीं होता।

अच्छी साधन व्यवस्था जुटाने से भी महत्त्वपूर्ण दायित्व है अभिभावकों का कि वे बच्चों के व्यक्तित्व का भी ध्यान रखें। दूसरे शब्दों में इसे सही ढंग से समग्र लालन-पालन भी कहा जा सकता है। जिसमें सन्तान के प्रति उसकी निर्वाह सम्बन्धी आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाता है। इस प्रकार सही ढंग से समग्र लालन-पालन अभिभावकों के लिए एक चुनौती भरा उत्तरदायित्व है, जो बच्चे के जन्म के साथ ही आपके सामने आ प्रस्तुत होता है। इस दायित्व को जो लोग भली-भाँति पूरा करते हैं वे जीवन भर अपनी सन्तान की ओर से निश्चिन्त तथा सुखी रह सकते हैं। जो लोग इस ओर से तनिक भी अनुत्तरदायीपूर्ण रीति-नीति अपनाते हैं, उन्हें अपनी सन्तान की उच्छृंखलताओं से परेशानी, दूसरे लोगों की ओर से उलाहना, तिरस्कार व समाज में लज्जित होने जैसी दुःखद स्थितियों का सामना करना पड़ता है।

बच्चों का सही ढंग से समग्र लालन-पालन करने के लिए निर्वाह व्यवस्था बनाने और साधन जुटाने के अतिरिक्त तीन बातें विशेष रूप से आवश्यक हैं—प्रेम, अनुशासन और स्वतन्त्रता। यह तीनों विशेषताएँ बच्चों के हृदय, चरित्र और व्यक्तित्व को अभिसिंचित करती हैं तथा उन्हें सही दिशा देकर एक सही और अच्छा नागरिक बनाने में सहायक सिद्ध होती हैं।

कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में, अपने व्यक्तित्व के तीन पक्षों के साथ प्रविष्ट होता है—भावनाएँ, चरित्र और क्षमता या मौलिक योग्यता। ये तीनों पक्ष यदि समुचित, विकसित व सन्तुलित रहें तो वह एक योग्य नागरिक सिद्ध होता है अन्यथा असन्तुलित भावनाएँ, दुश्चरित्रता और अयोग्यता न व्यक्ति को चैन लेने देती है, न उसके निकटवर्ती लोगों को सुख-शान्ति से जीने देती है। अपनी भावनाओं, आचरणों और कमियों के कारण वह स्वयं भी अतृप्त, अशान्त जीवन जीता है और इन कारणों से अपने निकटवर्ती लोगों को भी क्षुब्ध करता व हानि पहुँचाता रहता है।

यह स्थिति किसी भी अभिभावक के लिए जीते जी असन्तोष और विक्षोभ का कारण बन सकती है। अतएव पोषण के लिए स्थूल साधन व्यवस्था जुटाने के साथ-साथ व्यक्तित्व को विकसित और सुयोग्य बनाने के लिए प्रेम, अनुशासन तथा स्वतन्त्रता की सन्तुलित रीति-नीति अपनानी चाहिए। भोजन, वस्त्र और आवास की बाहरी आवश्यकताओं की तरह ये तीनों आवश्यकताएँ आभ्यान्तरिक व्यक्तित्व सम्बन्धी आवश्यकताएँ कही जा सकती हैं। इनका महत्त्व व मूल्य कम नहीं, निर्वाह आवश्यकताओं से अधिक ही आँका जाना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रश्न उठता है कि इन आवश्यकताओं को किस प्रकार पूरा किया जाय ? निर्वाह आवश्यकताओं के सम्बन्ध में तो प्रायः सभी को समझ होती है कि बच्चों को क्या दिया जाना चाहिए और क्या नहीं ? उन्हें क्या चाहिए और क्या नहीं चाहिए ? इसका ज्ञान भी हर पढ़े-लिखे से लेकर अशिक्षित अभिभावकों तक को होता है, क्योंकि इस सम्बन्ध में बच्चा तत्काल अपनी प्रतिक्रिया करता है, आवश्यकताएँ भी दिखाई देती हैं और उनकी पूर्ति में होने वाली त्रुटियाँ भी तज्जनित परिणामों के कारण तुरन्त समझ में आ जाती हैं परन्तु व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाली इन आवश्यकताओं का कोई बाहरी स्वरूप नहीं होता। न उनके कारण होने वाली प्रतिक्रियाओं का तुरन्त विश्लेषण कर समझ पाना सरल है तथा न ही तत्काल कोई परिणाम ही होते दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए, कोई अभिभावक अपने बच्चे को हर समय, हर काम के लिए डाँटता-धमकाता रहता है, ऊधम मचाने पर फटकार भी देता है तो तत्काल इसका प्रभाव बच्चे के शान्त हो जाने के रूप में दिखाई देगा परन्तु इस रवैये का दूरगामी परिणाम बच्चे को या तो जीवन भर के लिए दब्बू बना देगा अथवा उच्छृंखल, दुष्ट, विद्रोही और असामाजिक।

ऐसी स्थिति में विवेक और अनुभव ही यह निश्चित करने में सहायक हो सकते हैं कि बच्चों को कब दुलारना चाहिए, उन्हें कब रोकना और मना करना चाहिए तथा किस प्रकार रोका व मना करना उस पर अनुकूल प्रभाव उत्पन्न करेगा तथा यह भी कि बच्चों को किन बातों में स्वतन्त्रता देनी चाहिए या कि उन्हें अपने विवेक के अनुसार कार्य करने की छूट दी जा सकती है।

प्रेम, अनुशासन और स्वतन्त्रता की व्यक्तिगत आवश्यकताओं पर विचार करने से पूर्व यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि मुख्य बात इन्हें व्यवहार में उतारने की पद्धति है अन्यथा कौन होगा जो अपने बच्चों से प्रेम नहीं करता, कौन है जो उन्हें अनुशासन में नहीं देखना चाहता और कौन अपने बच्चों को परमुखापेक्षी बनाना पसन्द करता है ? मूल रूप से ये तीनों भावनाएँ, अपेक्षाएँ प्रत्येक अभिभावक के वात्सल्यपूर्ण हृदय की सम्पदा है। सवाल यह है कि सम्पदा का किस ढंग से उपयोग किया जाय, ताकि उसके अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकें।

प्रेम को ही लें। प्रत्येक अभिभावक अपनी सन्तान से अगाध स्नेह रखता है। सम्भवतः माता-पिता को सन्तान से बढ़कर और कोई दूसरी वस्तु प्रिय ही नहीं होती पर उस प्रेम की अभिव्यक्ति प्रायः इस ढंग की हो जाती है कि बच्चे या तो लाड़-प्यार में बिगड़ जाते हैं अथवा अत्यधिक लाड़-प्यार के कारण आत्मविश्वास की पूँजी ही एकत्रित नहीं कर पाते। आवश्यकता इस बात की है कि बच्चे को प्रेम करने, लाड़-लड़ाने के साथ विवेक का भी उपयोग किया जाय।

बहुधा अभिभावक अपने बच्चों के प्रति इतना लाड़-दुलार रखते हैं कि उन्हें बच्चों की कमजोरियाँ, गलतियाँ, कमजोरी, गलती की तरह लगती ही नहीं। लगती भी हैं तो वे उसे स्वाभाविक मानकर क्षम्य समझ लेते हैं। उचित यह है कि बच्चे पर स्नेह, ममत्व उड़ेलने के साथ उनकी त्रुटियों पर भी ध्यान दिया जाय।

कई लोग अपने बच्चों से कोई गलती न होने देने के लिए इतने सजग, सतर्क रहते हैं कि इन्हें हमेशा टोकते रहते हैं, बच्चों की त्रुटियों पर ध्यान देने के लिए सजग रहना उचित भी है और आवश्यक भी, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि बच्चा हर घड़ी अपने को अपराधी समझता रहे। गलतियाँ सभी से होती हैं, बच्चों से गलती होने की सम्भावना तो और भी ज्यादा रहती है। उन भूलों के कारण बच्चे को ही दोषी न करार दिया जाय।

यदि बच्चे से कोई गलती होती है अथवा उसमें कोई बुराई दिखाई देती है, तो उस चीज की बुराई की जाय बच्चे की नहीं। उस आदत या वस्तु की बुराई से बच्चे में उसके प्रति वितृष्णा उत्पन्न कर देना ही बच्चों को बुराई से रोकने का उपाय है। यदि किसी गलती के कारण बच्चे को दण्ड दिया जाता है तो दण्ड देने के बाद बच्चों को उसका कारण भी समझा देना चाहिए और उसे यह अनुभव कराना चाहिए कि उसे कोई गलत काम करने के कारण यह दण्ड मिला है, न कि उसे दुःखी करने अथवा पीड़ा देने के लिए।

अनुशासन और प्रेम का यह सन्तुलित प्रयोग बच्चों में बुराइयों के प्रति घृणा तथा अच्छाइयों के प्रति लगाव उत्पन्न करता है। अच्छाइयों के प्रति लगाव उत्पन्न करने के लिए बच्चे को प्रेमपूर्ण ढंग से प्रोत्साहित करना चाहिए। यह प्रोत्साहन इस ढंग से हो कि बच्चा उसमें प्रेम का अनुभव करे, न कि उसे की गयी प्रशंसा किसी रिश्वत की तरह लगे। अक्सर देखा गया है कि बच्चे परीक्षा में पास हो जाते हैं अथवा कोई अच्छा काम करते हैं तो माँ-बाप उसके साथ इस तरह व्यवहार करने लगते हैं जैसे वह काम महत्त्वपूर्ण है, बच्चा नहीं। होना यह चाहिए उस अच्छाई के लिए बच्चे को सराहा जाय, जैसे वह बच्चे के लिए स्वाभाविक बात हो। इस बारीकी को ध्यान में रखने से वह अच्छाई बच्चे के स्वभाव का अंग बनने लगती है।

अनुशासन का शिक्षण किसी समय-विशेष या परिस्थिति-विशेष में किया जाने वाला उपक्रम नहीं है, वरन् वह लगातार चलता रहना चाहिए। रुक-रुककर समय-असमय चलने वाली पढ़ाई से कोई विशेष लाभ नहीं होता बल्कि वह नियमित और निरन्तर चलती रहे तभी समुचित लाभ होता है। इसी प्रकार अनुशासन की भावना भी नियमित और अनवरत् रूप से विकसित करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का ध्यान रखना चाहिए। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि एक बार जिस बात का सम्बन्ध अनुशासन से हो वह सम्बन्ध हमेशा वैसा ही रहना चाहिए। उदाहरण के लिए, बच्चों को सफाई से रहने के लिए समझाया जाता है। हाथ-पैर गन्दे कर लेने या मिट्टी से सान लेने पर बच्चों को उससे रोका जाता है। अब इस तरह समझाने का क्रम हमेशा चलना चाहिए, ऐसा नहीं किया जाना चाहिए कि एक बार तो बच्चे को मुँह गन्दा करने के लिए डाँट दिया जाय और फिर कभी वह मुँह खराब कर ले तो उस पर ठठाकर हँसा जाये। इससे बच्चा असमंजस में पड़ सकता है। वह यह नहीं समझ पाता कि क्या उचित है और क्या अनुचित है ?

प्रेम और अनुशासन की तरह स्वतन्त्रता भी उनके व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए आवश्यक है। इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि प्रत्येक बच्चे में मनुष्य की सन्तान होने के नाते मौलिक विशेषताएँ, निजी सम्भावनाएँ होती हैं। इन विशेषताओं और क्षमताओं को उभरने का अवसर स्वतन्त्रता में ही मिलता है। अतः उनको नये काम करने, उनकी गतिविधियों को मुखर होने तथा विशेषताओं को उभरने के लिए सतत् निरीक्षण और मार्ग-दर्शन करते रहना चाहिए। यह भी नहीं कि बच्चों को हमेशा अपनी मनमानी करने के लिए आजाद छोड़ दिया जाय और फिर वे जो भी करें उससे हानि हो या लाभ, उधर से सर्वथा विरत ही रहा जाय। यदि यह लगता है कि बच्चे की किसी हरकत से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक है तो उससे रोकना ही श्रेयस्कर है। निरापद कार्यों में स्वतन्त्रता देने और अपनी बुद्धि-विवेक से काम करने देना ही उनके व्यक्तित्व में आत्मनिर्भरता की नींव रखना है।

स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में इतना ही जानना पर्याप्त होगा कि बच्चों को छोटे-से-छोटे कार्यों से रोकना, टोकना व डाँटना, फटकारना उनके व्यक्तित्व की सम्भावनाओं को क्षीण करने जैसा है। उचित यही है कि आवश्यक मामलों में ही बच्चों को सीधे रोका-टोका जाय, जिनसे हानि होने की सम्भावना रहती है। जिन मामलों में हानि होने का कोई खतरा नहीं है, उनमें बच्चों को अपनी बुद्धि का प्रयोग करने देना चाहिए। ताकि उनमें आत्मविश्वास की भावना सुदृढ़ हो सके, वे अपने कार्यों को स्वयं निबटाने में समर्थ हो सकें और अपनी बुद्धि व मानसिक क्षमता का प्रयोग करना सीख सकें।

इन बातों का ध्यान रखते हुए बच्चों के व्यक्तित्व विकास सम्बन्धी उत्तरदायित्वों को पूरा करते हुए ही कोई अभिभावक अपने बच्चों के सच्चे हितैषी सिद्ध हो सकते हैं। माता-पिता का कर्तव्य केवल बच्चों के लिए खान-पान, रहन-सहन और वस्त्रादि आवश्यकताओं की पूर्ति करना भर नहीं है, अपितु उन पर राष्ट्र को सुयोग्य नागरिक देने की जिम्मेदारी भी है। इस जिम्मेदारी को बच्चों का पथ-प्रदर्शन, मार्ग-दर्शन, प्रशिक्षण व उनके व्यक्तित्व का सिंचन करते हुए ही पूरा किया जा सकता है।

बच्चों का बहुमुखी विकास कैसे हो ?

मानवी व्यक्तित्व के विकास में जन्मदाताओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। माता-पिता का यह प्रमुख दायित्व है कि शिशु के जन्म के पूर्व ही अपने ऊपर आने वाले दायित्वों को समझें और उसके लिए नैतिक, आर्थिक, शारीरिक व मानसिक रूप से तैयार हो जायें। बच्चे के जन्म से लेकर किशोरावस्था तक पालकों को विशेष रूप से सतर्क रहने की आवश्यकता पड़ती है। प्रायः देखा जाता है कि माता-पिता अपने बच्चों से उच्च आकांक्षाएँ रखते हैं, किन्तु वे भूल जाते हैं कि उनकी कोमल भावनाएँ उन सबको ग्रहण करने के लिए तैयार भी हैं या नहीं ?

इस सन्दर्भ में माण्ट्रियल के माइकल गिल विश्वविद्यालय के मूर्धन्य वैज्ञानिक डा. ईगल पेडर्सन ने अपने सहयोगियों के साथ गहन अनुसन्धान किया है। निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए उन्होंने बताया है कि जिन बच्चों के साथ उनके अभिभावकों एवं शिक्षकों का व्यवहार उदारतापूर्ण, प्रेम व करुणामय वात्सल्यता से परिपूरित था, उनकी शारीरिक, मानसिक विकास दरें बढ़ी-चढ़ी रहीं। वे सभी परीक्षाओं में उत्तम अंक प्राप्त कर सके। इसके विपरीत जिन बच्चों के साथ कठोर व निर्ममतापूर्ण व्यवहार किया गया, वे प्रायः इसके अभ्यस्त बन गये और अपनी नैसर्गिक क्षमता खो बैठे। मेधावी एवं प्रतिभाशील होते हुए भी वे कम अंक ही प्राप्त कर सके। खोजने पर पाया गया कि अच्छे अंक प्राप्त करने वाले प्रायः सभी बच्चों को एक ही प्रकार का सुखद, संस्कारित एवं उदार वातावरण मिला था। शिक्षक एवं अभिभावक उनके प्रति करुणा व वात्सल्य का भाव रखते और आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते थे।

'ट्रूबुल्ड टीचर्स' नामक ग्रन्थ में सुप्रसिद्ध शिक्षा मनोविज्ञानी रोलो ने कहा है कि बच्चों का गुणी होना एवं शिक्षा के प्रति अभिरुचि होना उतना आवश्यक नहीं जितना कि जन्मदाताओं तथा शिक्षकों का स्वयं गुणवान होना, अपने कर्त्तव्यों के प्रति उनका जागरूक होना। उनके अनुसार जिस प्रकार कोई भी रोग असाध्य नहीं, उसी प्रकार कोई भी बच्चा शिक्षा ग्रहण करने में असमर्थ नहीं होता। जब हिंस्र वन्य प्राणियों, पशु-पक्षियों को प्रशिक्षित किया जा सकता है, तो कोई कारण नहीं कि ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव शिशु को वांछित दिशा में उच्चस्तरीय प्रशिक्षण न दिया जा सके। आवश्यकता मात्र उन्हें उचित मार्ग-दर्शन देने एवं उस दिशा में बढ़ चलने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए प्रोत्साहित करने की है। यह बन पड़ना तभी सम्भव है, जब अध्यापक एवं अभिभावक अपने को साँचा समझें और तदनुरूप अपनी कमजोरियों को दूर कर पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर एक समग्र व्यक्तित्व के रूप में स्वयं उनके समक्ष एक नमूना बनें।

प्रायः देखा जाता है कि असन्तुलित मनःस्थिति या दुराग्रही स्वभाव वालों की सन्तानें भी उसी ढाँचे में ढल जाती हैं। दिनचर्या व आहार-विहार का प्रभाव भी बच्चों के कोमल मस्तिष्क पर पड़े बिना नहीं रहता। जन्मदाता चाहें तो आध्यात्मिक उपचारों एवं सन्तुलित जीवनचर्या को अपनाकर जहाँ एक ओर अपना सुधार कर सकते हैं, वहीं दूसरी ओर बच्चों पर भी उसका अमिट प्रभाव डाल सकते हैं। तब बिना किसी प्रशिक्षण के वे उस मनःस्थिति में स्वयं ढलते चले जायेंगे।

कनाडा के 'ओन्टारियो इन्स्टीट्यूट फॉर स्टडीज' के बाल-मनोविज्ञान विशेषज्ञ रीगन कालवे ने अपने शोध निष्कर्ष में बताया है कि बच्चों के मानवोचित गुणों के विकास में स्नेहपूर्ण वात्सल्ययुक्त वातावरण का गहरा प्रभाव पड़ता है। आत्मीयतापूर्ण वातावरण में प्रशिक्षण देने से बच्चों के ज्ञान-विज्ञान के केन्द्र—केन्द्रीय मस्तिष्क का विकास सरलतापूर्वक होता है। प्रयोग-परीक्षणों में पाया गया है कि जिन बच्चों को सुसंस्कारयुक्त एवं आत्मीयतापूर्ण वातावरण प्रदान किया गया, वे साधन-सुविधाओं से रहित होते हुए भी शीघ्र ही पढ़ना-लिखना सीख गये और मेधावी-प्रतिभाशाली छात्रों की श्रेणी में गिने जाने लगे। इसके विपरीत सुविधा-सम्पन्न परिस्थितियों के रहते हुए भी जिन्हें समस्यामूलक समझा और तदनुरूप ही व्यवहार किया गया वे मन्द-बुद्धि भी पाये गये और उद्दण्ड स्वभाव वाले भी।

संस्कारों के बीजारोपण हेतु बाल्यकाल का जितना महत्त्व है, उतना बड़ी आयु का नहीं, इस तथ्य को भली-भाँति समझा जाना चाहिए। प्रत्येक शिशु गीली, कच्ची मिट्टी का बना होता है। उसे चाहे जैसा रूप प्रदान किया जा सकता है। आवश्यकता मात्र इतनी है कि पालक या शिक्षक उसे जिस प्रकार की शिक्षा की अपेक्षा रखते हैं, सर्वप्रथम उसे अपने आचरण में उतारें और उनके समक्ष प्रस्तुत करें, तो ही बच्चों के बहुमुखी विकास में कुछ कहने लायक सहयोग मिलेगा।

कुपोषणजन्य अकाल मृत्यु का उपचार

रेल लड़ने, नाव डूबने, बस टकराने, बाढ़ आदि की किसी दुर्घटना में सौ दो सौ व्यक्तियों की मृत्यु के समाचार पढ़कर सुनने वाले व्याकुल हो उठते हैं और उनकी सहायता के लिए सेवाभावी संस्थाओं से लेकर सरकारी सहायता विभाग तक पीड़ितों की मदद के लिए दौड़ पड़ते हैं और उपाय करते हैं कि ऐसी दुर्घटना फिर से न होने पाये, किन्तु कितने व्यक्ति कुपोषण के शिकार होकर बेमौत मरते हैं, इसकी कोई खोज-खबर नहीं लेता। समाचार पढ़कर खेद व्यक्त करने के अतिरिक्त ऐसा कोई उपाय नहीं करते कि इस आधार पर होने वाली अकाल मृत्यु की रोकथाम हो।

उपलब्ध सूचनाओं के अनुसार निर्धन देशों के लोगों में एक वर्ष में प्रायः डेढ़ करोड़ बच्चे कुपोषण के शिकार मिले। सारे संसार में ४० हजार बच्चे प्रतिदिन इस व्यथा के शिकार होते हैं। तंजानिया के एक सर्वे के अनुसार पाँच साल से कम उम्र वाले बालकों में से ३० प्रतिशत इसी कारण मरते हैं। इसे वहाँ की कुल आबादी का १८ प्रतिशत माना गया है। किसी महामारी से १८ प्रतिशत आबादी हर साल मौत के मुँह में जाने लगे, तो उस देश को रहने के अयोग्य माना जायेगा और उसे छोड़ने की भगदड़ मचेगी। किन्तु बच्चे हैं जिनका मूल्य नहीं समझा जाता और चूँकि वे कमाऊ नहीं होते इसलिए उनकी मौत पर ध्यान नहीं दिया जाता। वे एक साथ, एक जगह मरे होते तो भी देखने-सुनने वालों का ध्यान उनकी ओर गया होता पर वे जहाँ-तहाँ अलग-अलग जगह, अलग-अलग दिन मरते हैं इसलिए उनकी उपेक्षा कर दी जाती है, जो भी हो, यह भी जनहानि तो है ही और उसका किसी देश की समूची आबादी पर असर तो पड़ता ही है।

कुपोषण का तात्पर्य है—शरीर को दिन भर के कामों के लिए जितनी शक्ति चाहिए उसका न जुट पाना। बच्चा हो या बड़ा कुछ न कुछ काम दिन भर में करता ही है। उसे करने के लिए खुराक चाहिए। खुराक का तात्पर्य पेट भरने वाले कूड़े-कचरे से नहीं, वरन् उस पुष्टाई से है जो शरीर के उन सब कामों के लिए आवश्यक पोषण प्रदान करे। इतना ही नहीं बच्चे तेजी से बढ़ते भी हैं। उस बढ़ोत्तरी के लिए भी आवश्यक पोषण चाहिए। यह ठीक तरह जुटता रहे तो शरीर में फुर्ती और सुन्दरता, कोमलता, नीरोगता बनी रहती है। कमी पड़ने पर बच्चों के शरीर की वृद्धि रुक सकती है और जवानों को बहुत जल्दी थकान आती है। इस थकान का सिलसिला लगातार जारी रहे तो वह आवश्यकता शरीर के रक्त, माँस, हड्डियाँ आदि को चूँसकर पूरी होती है। ऐसी दशा में दुर्बलताजन्य कई बीमारियाँ उठ खड़ी होती हैं। अंग टेढ़े हो जाते हैं। आयु के हिसाब से शक्ति का कोष पूरा न होने से अपचजन्य कई प्रकार की बीमारियाँ खड़ी होती हैं। बीमारी की व्यथा, उपयुक्त चिकित्सा का अभाव, निःसार खुराक का भार वहन, दैनिक परिश्रम के उपयुक्त शक्ति का न मिलना, यह सभी बातें मिल-जुलकर अकाल-मृत्यु का सहज कारण बनती हैं। घर के लोग उसे भाग्यहीन, मौत का शिकार पहले से ही मान बैठते हैं और फिर उसके बचने की वैसी चिन्ता भी नहीं करते जैसी कि करनी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गरीबी होते हुए भी बच्चों की भरमार करते जाना कुपोषण का बहुत बड़ा कारण है। अच्छी खुराक में पैसा भी अधिक लगता है और खान-पान सम्बन्धी ध्यान तथा सतर्कता भी चाहता है। गरीबी की स्थिति में यह सभी बातें कठिन पड़ती हैं। फलतः बच्चे तो अकाल मृत्यु से मरते ही हैं, साथ ही माता को भी चपेट में ले लेते हैं। उसके शरीर से एक बच्चे के लायक दूध तो पूरी तरह निकलता नहीं, इतने में नया बच्चा पेट में आ जाता है। अब उसे दूध पिलाने में भी अधिक खुराक चाहिए। माता की गरीबी दो बच्चों का भार एक साथ उठाने की स्थिति में नहीं होती। साथ ही गोद का एक या कई बच्चों का समूह जब दुर्बल-बीमार रहता है, तो उसकी परिचर्या में पूरी नींद ले सकना भी उसके लिए सम्भव नहीं होता। इस प्रकार बच्चे ही नहीं, माता भी इस कुचक्र में फँसकर बीमार, दुर्बल रहने लगती है और अनाथ बच्चों को विलखता छोड़कर परलोक चली जाती है। स्पष्ट है कि पिता काम-धन्धा करते हुए इन छोटे बच्चों का लालन-पालन करने में समर्थ नहीं होता। फलतः पूरे परिवार की दुर्गति होती है।

पेट भरकर खुराक मिलना ही पर्याप्त नहीं है। जो खाया गया है, वह पौष्टिक भी होना चाहिए। पेट न भरने का नाम ही भुखमरी नहीं है, वरन् जो खाया गया है उसमें जीवन-तत्त्वों का अभाव भी भुखमरी है। इस कसौटी पर कसने पर हममें से अधिकांश व्यक्ति भुखमरी के शिकार माने जा सकते हैं। ऐसे लोग अपने हिस्से का काम पूरा कर सकेंगे इसकी आशा नहीं की जा सकती। जिस शरीर को मेहनत तो करनी पड़े पर उसको उपयुक्त पोषण न मिले तो वह दुर्बलता, बीमारी और अकाल मृत्यु से ग्रस्त होगा ही।

अच्छा हो दरिद्र परिवार कम बच्चे उत्पन्न करें। एक से दूसरे को जन्म देने के बीच चार-पाँच वर्ष का फासला रखें ताकि माता उन्हें उपयुक्त खुराक दे सकें और साज-सँभाल कर सकें।

बच्चों को उतना ही खाना दिया जाय जितना वे हजम कर सकें। खेलने आदि की सुविधा न होने पर वे कुछ न कुछ खाते रहने की आदत डाल लेते हैं। पेट की क्षमता से अधिक खाया हुआ भोजन अपच उत्पन्न करता है। पतले दस्त होने लगते हैं। बदहजमी और भी कई प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न करती है। इस प्रकार कम भोजन करना ही नहीं जरूरत से ज्यादा खाना भी जान का ग्राहक बनता है।

पौष्टिक भोजन में सन्तुलित भोजन चाहिए। फल, मेवे, दूध, तरकारी यह सभी वस्तुएँ सन्तुलित भोजन बनाती हैं पर यदि दरिद्रता के कारण वे महँगी चीजें खरीदना न बन पड़ें तो हरी तरकारियाँ उबालकर देने से भी काम चल सकता है। दूध की आवश्यकता तिल या मूँगफली को पानी में पीसकर पूरी की जा सकती है। सस्ते शाक-भाजी गरीब भी खरीद सकते हैं। घर के आस-पास थोड़ी खाली जगह आम लोगों के पास होती है। थोड़ी मेहनत की जाय और सावधानी बरती जाय तो उतनी फालतू जगह में शाक-भाजी बोये-उगाये जा सकते हैं।

पकाने में गलती करना अच्छे-खासे भोजन को बर्बाद कर देने के बराबर है। जितना भूना-तला जाएगा उतना ही आहार निःसत्व होता जायेगा। इसलिए अन्न से लेकर शाक-भाजी तक जितने कम भूने-तले जाएँ उतना ही अच्छा है। साधारणतया उबालकर ही काम चलाना चाहिए। अन्न को अंकुरित करना लाभदायक है।

कुपोषणग्रस्त बच्चे आमतौर से दुर्बल और बीमार रहते हैं। ऐसी दशा में वे श्रम या व्यायाम नहीं कर सकते। बैठे रहते हैं। चलने की उम्र होने पर भी चलते-फिरते नहीं। ऐसी दशा में तेल-मालिश से उसकी पूर्ति करनी चाहिये। बच्चों की मालिश इतने हल्के हाथ से करनी चाहिए कि शरीर के सभी अंग-अवयवों पर उचित दबाव पड़े।

शिशु-पोषण एक बड़ी कला है। अभिभावकों को उसे ठीक प्रकार जानना चाहिए। कुपोषणग्रस्त बच्चों का आहार सुधार ही नहीं, उनके पालन-पोषण सम्बन्धी अन्य नियमों को समझना और निर्वाह करना भी आवश्यक है।

बाल-स्वास्थ्य पर समुचित ध्यान दिया जाय

लखनऊ में एक राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की गयी, जिसका विषय था—बच्चों और महिलाओं में पोषण की समस्या। देशभर के लगभग २०० विद्वानों, चिकित्साशास्त्रियों तथा वैज्ञानिकों ने इसमें भाग लिया। पुणे के प्रो. एम. आर. चक्रवर्त्ती ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि भारत में जन्म लेने वाले एक-तिहाई बच्चों का वजन कम होता है। विकसित राष्ट्रों की तुलना में यहाँ के बच्चों की मृत्यु-दर भी दस गुना अधिक होती है। देहातों में बालकों की मृत्यु-दर १३५ तथा शहरों में ८५ प्रति हजार की आँकी गयी है। इसका मुख्य कारण उन्होंने कुपोषण को ही बताया है। प्रो. चक्रवर्त्ती ने २७००० आदिवासियों के स्वास्थ्य की जाँच-पड़ताल करने के उपरान्त बताया कि ३ वर्ष से कम उम्र के ४० प्रतिशत बच्चों में प्रोटीन की विशेष कमी थी। इनमें से २० प्रतिशत रक्ताल्पता (एनेमिक) के शिकार होते देखे गये। ४० प्रतिशत बच्चे तो ऐसे निकले जिन्हें विटामिन 'ए' की भरपूर मात्रा उपलब्ध नहीं हो पाती। निरन्तर रुग्णता में बने रहने वाले बच्चे ८ प्रतिशत थे। संक्रामक रोग के फैलने का मुख्य कारण स्वच्छ पेय जल की अनुपलब्धता भी है। देश की कुल जनसंख्या का ४० प्रतिशत भाग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों का है। अतः राष्ट्र में स्वस्थ नागरिक पैदा करने के लिए इस समस्या का समाधान खोजना ही होगा।

शरीर में तेजी से बढ़ रही रक्ताल्पता के दुष्परिणामों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय पोषाहार संस्थान के विशेषज्ञों ने इस बात पर बल दिया है कि आहार में लौहयुक्त नमक का इस्तेमाल किया जाय। भारत में ५० प्रतिशत गर्भवती महिलाएँ और ४० प्रतिशत बच्चे रक्ताल्पता के पूरी तरह शिकार बन चुके हैं। इससे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता का तो ह्रास होता ही है, साथ ही अनेकानेक तरह की बीमारियों को भी प्रवेश पाने का अवसर मिलता है। वस्तुतः यह समस्या अविकसित राष्ट्रों की है, जहाँ पर आहार में पोषक तत्त्वों की पर्याप्त मात्रा नहीं होती।

घेंघा नामक रोग को भी आयोडीन युक्त नमक के प्रयोग से रोका जा सकता है। इसमें लौह तत्त्व की मात्रा अधिक रहती है। राष्ट्र को चाहिए कि लौह युक्त नमक का उत्पादन बड़े पैमाने पर करे। गरीब राष्ट्रों के लिए यह उपचार व्यवस्था अत्यधिक उपयुक्त समझी गयी है और सस्ती भी। राष्ट्रीय पोषक आहार-संस्थान के निदेशक डा. नरसिंह राव के अनुसार सामान्य नमक की उत्पादन लागत में ही १० पैसे प्रति किलोग्राम अतिरिक्त नियोजित कर दिया जाय तो उक्त प्रयोजन की पूर्ति सुगमतापूर्वक की जा सकती है। रक्ताल्पता और घेंघा रोग के उन्मूलन में यह योजना बड़ी उपयोगी और प्रभावकारी सिद्ध हो सकती है।

बच्चों के आहार में पोषक तत्त्वों के अभाव के परिणामस्वरूप बड़े होकर उन्हें मानसिक कमजोरी, असामाजिक आचरण तथा मन्द-बुद्धि का शिकार बनना पड़ता है। आस्ट्रेलिया में मोनाश विश्वविद्यालय के डॉ. आर्नाड क्रेन ने इस प्रकार के अनुसंधान पशु-पक्षियों के बच्चों पर किये हैं। तथ्य प्रकट करते हुए उन्होंने बताया है कि कुपोषण के कारण उनकी सम्पर्क कोशिकाओं की संख्या में ४० प्रतिशत की कमी अचानक ही हो गयी। उनकी जानकारी, चतुरता और परस्पर व्यवहार में विशेष अन्तर दिखाई देने लगा। मर्यादाओं के विपरीत क्रिया-कलाप करने पर उतारू हो गये। आज विश्व में ३० करोड़ बच्चों के भोजन में पोषक तत्त्वों का अभाव है, जिसके कारण उनकी मस्तिष्कीय क्षमता दिन-प्रतिदिन घटती चली जा रही है। इनके पोषण की समुचित व्यवस्था करनी ही होगी।

शरीर को सुगठित एवं क्रियाशील बनाये रखने के लिए सन्तुलित भोजन की आवश्यकता को भी भुलाया नहीं जा सकता। सामान्यतः मनुष्य के दैनिक आहार में ३००० कैलोरी ऊर्जा, ९० ग्राम प्रोटीन, ४५० ग्राम कार्बोहाइड्रेट तथा ९० ग्राम वसा की आवश्यकता होती है। बड़ी उम्र के लोग तो प्रोटीन की आपूर्ति अनाजों, दालों से कर लेते हैं लेकिन बालकों की पूर्ति इससे नहीं होती।

'संयुक्त राष्ट्र बाल सहायता कोष' तथा 'संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन' के स्वास्थ्य विशेषज्ञ गरीब देशों की भूख और कुपोषण की समस्याओं को हल करने में तत्पर हैं। उनका कथन है कि उत्तम प्रोटीन की मात्रा शाकाहार से प्राप्त की जा सकती है। मूँगफली, बिनौला तथा सोयाबीन जैसे तिलहनों में सायमीन नामक अमीनो अम्ल की मात्रा विद्यमान रहती है। शरीर के लिए यह उत्तम किस्म का प्रोटीन है। दक्षिणी अमेरिका में कुपोषण से संत्रस्त लोगों को बिनौले का आटा, ज्वार या मक्का के आटे के साथ मिलाकर दिया जाता है।

भोजन न केवल क्षुधापूर्ति ही करता है, वरन् शरीर की आवश्यकता के अनुरूप पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा प्रदान करने की क्षमता भी इसमें होनी चाहिए। शरीर को क्रियाशील तथा स्वास्थ्य को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए भी आहार की आवश्यकता अनुभव होती है। शरीर की वृद्धि और विकास के लिए सन्तुलित भोजन ही अधिक उपयुक्त बैठता है। भोजन का अर्थ खूब पेट भर खाना नहीं वरन् समुचित ऊर्जा प्रदान करना होता है। महँगे खाद्य पदार्थों से ही पोषक तत्त्व मिलते हों ऐसी बात नहीं है। शरीर की आवश्यकतानुसार कार्बोज, वसा, खनिज लवणों और विटामिनों को कम कीमत वाले शाकाहार से भी प्राप्त किया जा सकता है। दूध की यदि कमी पड़ती है तो हरी पत्ती वाली सब्जियों से इस प्रयोजन की पूर्ति हो सकती है। अच्छा हो परिवार संस्था में गृहिणियाँ इसका ध्यान रखें तो बच्चों को कुपोषण से बचाया जा सकता है।

आहार विद्या के निष्णातों ने सन्तुलित भोजन की महत्ता को अंगीकार किया है। उनका कथन है कि शाकाहार से इसकी पूर्ति आसानी से की जा सकती है। कैल्शियम जैसे खनिज और विटामिन शरीर के संरक्षण में काम आते हैं, जिन्हें दूध और दालों से प्राप्त किया जा सकता है। फलाहार, पालक, पत्ता गोभी तथा हरे पत्ते वाली सब्जियों में लोहा और कैल्शियम प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जो अस्थि और रुधिर में मजबूती पैदा करता है। शरीर की रोग निरोधक क्षमता को बढ़ाने के लिए इनमें विटामिन 'ए' तथा 'बी' भी विद्यमान रहते हैं। गेहूँ, चावल, मक्का तथा आलू से कार्बोहाइड्रेट की मात्रा प्राप्त करके शरीर के ऊर्जा भण्डार में प्रत्याशित वृद्धि की जा सकती है। वसा के लिए घी और तिलहनों को खाद्य पदार्थों में सम्मिलित किया जा सकता है।

बच्चों के अभिभावकों को पोषण की कला से भली-भाँति परिचित होना चाहिए। दरिद्र परिवार अत्यधिक सन्तानोत्पादन के अनावश्यक भार से बचे रहें तो अच्छा है। एक बच्चे से दूसरे बच्चे को जन्म देने के मध्य कम से कम पाँच वर्ष का अन्तर रखें। उन्हें सन्तुलित आहार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के साथ-साथ पालन-पोषण के अन्य नियमों की जानकारी भी कराते रहें। हर समय खाते रहने की आदत पर अंकुश लगाना चाहिए। नित्य-प्रति व्यायाम करने की आदत बच्चे में विकसित करें। समय-समय पर मालिश करते रहने से भी बच्चे के अंग-अवयवों को क्रियाशील बनाया जा सकता है।

दुःखदायी बाल-मृत्यु—अकाल-मृत्यु

यूनिसेफ सर्वेक्षण की रिपोर्ट के अनुसार संसार में प्रति सप्ताह ५ वर्ष से कम आयु के बच्चे दो लाख अस्सी हजार की संख्या में मर जाते हैं। अकेले भारत में प्रति सप्ताह ३७ हजार बच्चे मरते हैं।

प्रतिवर्ष संसार में १ करोड़ ४० लाख बच्चे ऐसे मरते हैं, जिनकी यदि उचित चिकित्सा और परिचर्या सम्भव हुई होती तो उन्हें मरने से बचाया जा सकता था।

संसार में प्रति घण्टे ५ बच्चे अन्धे हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्य कारणों से अपंग हो जाने वाले बच्चों की संख्या प्रति घण्टा २० है। मरने वालों में १ वर्ष से कम आयु के बच्चों की संख्या सबसे अधिक है। इससे आगे जी सकने के पश्चात् ही यह आशा बँधती है कि वे कदाचित् बचपन में आने वाली मौत और अपंगता से जूझ सकें।

न केवल बाल-मृत्यु ही वरन् उनकी उत्पत्ति भी अपने देश में बढ़ी-चढ़ी है। जिन देशों के पास भूमि पर्याप्त है, जिनमें कृषि-क्षेत्र बढ़ाने, आवास के लिए नये मकान बनाने के लिए स्थान हैं। वे तो किसी प्रकार बढ़ती आबादी का भार वहन कर भी सकते हैं, पर अपना देश अब इतना घिच-पिच हो चुका है, इसमें अधिक जनसंख्या ठूँसे जाने और उनके लिए आहार-निवास, शिक्षा, चिकित्सा आदि के साधन जुटाने की अतिरिक्त व्यवस्था नहीं बन सकती। गुंजाइश न होने पर ठूँस-ठाँस करने का परिणाम फटना ही हो सकता है। बोरी में सीमा से अधिक वस्तुएँ भरी जाएँ तो उस दबाव का परिणाम फटने के रूप में ही सामने आ सकता है। बढ़ी हुई जनसंख्या यदि अपने लिए आवश्यक साधन उपलब्ध न कर सकेगी, जीवनयापन के साधनों से वंचित रहेगी तो उसे कुपोषण का शिकार रहना पड़ेगा। जीवनीशक्ति की न्यूनता रहने से ऋतु प्रभाव या घिच-पिचजन्य गन्दगी के कारण रोगों का शिकार बनना पड़ेगा। विस्तार के अनुरूप व्यवस्था जुटाने के लिए नये साधन खड़े करने की जरूरत पड़ेगी। इस हेतु नये कर लगाने पड़ते हैं। इससे महँगाई भी बढ़ती है और गरीबी भी। इस दयनीय स्थिति में हर स्तर का पिछड़ापन ही बढ़ सकता है। पिछड़े हुए नागरिकों की संख्या किसी देश की प्रगति में सहायक नहीं होती, वरन् समस्याएँ एवं कठिनाइयाँ ही बढ़ती हैं।

अशिक्षित और लकीर के फकीर रूढ़िवादियों को यह समझाना कठिन तो है कि प्रजनन की दर बढ़ाना हर दृष्टि से, हर किसी के लिए हानिकारक है। जन्मदात्री महिला का स्वास्थ्य बिगड़ता है। जल्दी-जल्दी प्रसव करने में उसकी जीवनीशक्ति चुक जाती है। समय से पूर्व बुढ़ापा आ घेरता है और आये दिन किसी न किसी बीमारी का शिकार रहना पड़ता है। जन्मे हुए बच्चे को वे पूरी मात्रा में दूध पिला सकने की स्थिति में भी नहीं रहती हैं। पशुओं का दूध पीने या जल्दी अन्न खाने लगने पर वे अपच के शिकार होते हैं। फलतः छोटी-मोटी बीमारियाँ ही इन दुर्बलों को अपने टोकरे में समेट लेती हैं। जल्दी-जल्दी बच्चे मरते रहने पर गर्भ धारण भी जल्दी होता है। भ्रूण माता के शरीर से ही बनता है। जिनके शरीरों में अपना गुजारा ठीक से करने की क्षमता नहीं है, वे भी जल्दी-जल्दी गर्भधारण करती रहें तो स्वयं तो दिन-दिन कमजोर होंगी ही, साथ ही जन्मे बच्चे भी कमजोर रहेंगे। जीवनीशक्ति पर्याप्त मात्रा में न होने से उनका जीवन संग्राम में देर तक खड़े रह सकना सम्भव न होगा। फलतः वे जल्दी मरेंगे ही।

बड़े नगरों में जहाँ स्त्री-शिक्षा की व्यवस्था है, वहाँ की लड़कियाँ तो पढ़ने-लिखने में लगी रहती हैं। इस सन्दर्भ में उनके विवाह भी देर से होते हैं। बीस वर्ष की आयु हो जाने के उपरान्त यदि प्रजनन का भार पड़े तो उसे सहन भी किया जा सकता है और बच्चे भी इतने समर्थ हो सकते हैं कि अकाल मृत्यु का सामना कर सकें पर देहातों में कन्या शिक्षा की व्यवस्था बड़ी आयु तक चलते रहने की सुविधा नहीं होती, इसलिए उन्हें घर पर खाली ही बैठना पड़ता है। माता के घरेलू काम-काज में हाथ बँटाने के अतिरिक्त और कुछ कर नहीं पाती। इसी दशा में पुरातनपंथी, रूढ़िवादिता यही तकाजा करती है कि लड़की का विवाह करके उस भार को सिर पर से उतारा जाय। प्रचलन भी उसी प्रकार का होता है। पड़ोसियों, सम्बन्धियों के यहाँ छोटी आयु में लड़कियों के विवाह होते रहते हैं। फलतः देखा-देखी भी वैसा करने के लिए अभिभावकों का मन होता है। यदि वे थोड़ी शिथिलता बरतें, तो मित्र-सम्बन्धी बाधित करते हैं कि लड़की सयानी होती जाती है, उसे कब तक घर में बिठाये रखोगे। यह ताने भी जल्दी विवाह के लिए उकसाते हैं। किन्हीं-किन्हीं समुदाय में दुधमुँही बालिकाओं तक के विवाह कर देने का रिवाज है। उनके लिए वर भी समान आयु के ही होते हैं। विवाह के उपरान्त यौनाचार चल पड़ता है और किशोरावस्था में ही गर्भधारण करने का, पिता बनने का सिलसिला चल पड़ता है। जिन माता-पिताओं की आयु अभी किशोरावस्था की परिधि में ही चल रही है, जिनके अंग-अवयव परिपुष्ट नहीं हो पाये, उनके द्वारा जन्म दिए गए बालक स्वभावतः अविकसित होंगे। उनका कद, वजन सभी कम होगा। साथ ही वे जन्मजात ऐसी कमजोरियाँ भी लिए हुए होंगे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिनके कारण उनके लिए देर तक स्वस्थ रहना एवं दीर्घजीवी बनना कठिन हो जाता है।

बाल-विवाह का प्रचलन जल्दी-जल्दी अपरिपक्व बालकों को जन्मने का जान-बूझकर किया गया अनर्थ है। उसके कारण जननी के ऊपर तो विपत्ति के पहाड़ टूटते ही हैं जन्मे हुए बच्चे भी जीवन और मृत्यु के बीच अधर में लटके हुए होने की स्थिति में रहते हैं। ऐसों की अकाल मृत्यु यदि जन्मने के कुछ दिन बाद ही हो जाय, तो क्या आश्चर्य ? इसे दैवीय विपत्ति नहीं, वरन् जान-बूझकर की गयी बाल-हत्या की तैयारी ही कहा जा सकता है।

बच्चों के पौष्टिक आहार की, खेलने की, सुसंस्कारी प्रशिक्षण की, स्वच्छता की बढ़ी-चढ़ी आवश्यकता रहती है। वे स्वयं तो यह प्रबन्ध कर नहीं सकते। अभिभावकों को ही यह सब साधन जुटाने पड़ते हैं पर यदि वे गरीबी तथा नासमझी के कारण वैसा कुछ कर नहीं पाते। इस अभाव के प्रतिफल नवजात बालकों को भुगतने पड़ते हैं। समय से पहले ही अकाल मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं।

इन दुःखद परिस्थितियों में जन्म देने वाली महिलाओं को जहाँ सन्तान बिछोह का दुख सहना पड़ता है, वहाँ वे अपना स्वास्थ्य, मनोबल, उत्साह, सौन्दर्य आदि विशेषताओं को भी गँवाती जाती हैं। प्रसव काल भी एक बड़ा आपरेशन है। उसमें असावधानी होने पर न केवल नवजात बालक, वरन् उन्हें जन्म देने वाली माताएँ भी अपने जीवन से हाथ धो बैठती हैं।

बच्चे का विकास और परिपोषण माँ पर निर्भर

समाज व्यक्तियों के ऐसे समूह का नाम है जिनमें पारस्परिक समरसता, आत्मीयता का बोध हो। व्यक्तित्वों के निर्माण का प्राथमिक चरण परिवार रूपी पाठशाला में ही सम्पन्न होता है, इसके पहले तो व्यक्ति प्रकृति की इस पाठशाला में कुछ मूलभूत संस्कारों एवं प्रवृत्तियों के साथ उत्पन्न होता है। उन संस्कारों, प्रवृत्तियों का विकास-विस्तार परिवार से प्रारम्भ होता है। परिवार में भी माँ ही शिशु के व्यक्तित्व की प्रथम निर्मात्री होती है। अतः समाज के लिए आवश्यक आधारभूत शक्ति, इकाई यानी व्यक्ति वस्तुतः माँ द्वारा ही समाज को दी जाने वाली भेंट है।

माँ द्वारा बच्चे का सर्वांगीण पोषण होता है। यों बच्चों को मिलने वाला स्थूल आहार तो उस परिवार एवं समाज की स्थिति पर निर्भर होता है, जिसका कि वह सदस्य है।

परिवार-इकाइयों में विषमता की मात्रा किसी समाज के गठन पर निर्भर है। क्रूर, पतनशील समाज में थोड़े-से परिवारों में सुख-सुविधा के ढेरों सरंजाम रहते हैं, जबकि शेष परिवार दयनीय विपन्नता से जर्जर रहते हैं। अतः किसी परिवार की आर्थिक स्थिति की जिम्मेदारी तो उस परिवार के सदस्यों तथा जिस समाज की इकाई वह परिवार है, उसके व्यवस्थापकों की रीति-नीति पर निर्भर है। किन्तु इसके अतिरिक्त निजीतौर पर माँ शिशु का मुख्यतः तीन प्रकार से पोषण करती है—(१) देखभाल द्वारा व्यक्तित्व को सँवारना, (२) अपने स्वभाव की छाप डालना, (३) अपने आचरण की छाप डालना।

शिशु की दिनचर्या पूरी तरह माँ के हाथ में रहती है। कब सोना, कब जगना, दिन कैसे बिताना, शौच, स्नान, भोजन के किन नियमों का पालन करना, खेल में कैसे और कितना समय देना, स्कूल की तैयारी तथा घर पर पढ़ाई, बोल-चाल, व्यवहार, शिष्टाचार आदि सभी के नियन्त्रण सूत्र मुख्यतः माँ के हाथ में होते हैं। माँ ही शिशु की प्रथम शिक्षिका कही जाती है। मुँह, हाथ-पैर धोने, कपड़े, किताबें, खिलौने रखने, सहेजने या स्नान करने, उठने-बैठने, लेटने, खड़े रहने आदि के नियम बच्चा माँ से ही सीखता है और प्रारम्भ में इन सब बातों की जैसी सीख मिलती है उसकी जीवन पर सबसे अधिक छाप पड़ती है। अतः अपनी देखभाल में एक सुन्दर, सुयोग्य, श्रेष्ठ, स्वस्थ, संवेदनशील, शिष्ट एवं सज्जन नागरिक का निर्माण प्रथमतः माँ ही करती है। इसलिए सुशिक्षित, सुसंस्कृत, सुरुचिसम्पन्न माताएँ ही किसी भी समाज की वस्तुतः सर्वोपरि शक्ति होती हैं। माताओं को मनोविज्ञान की जानकारी प्रदान करना प्रत्येक समाज का कर्त्तव्य है। यह सही है कि प्रत्येक माँ में बच्चे के मनोभावों को तोड़ने की अन्तर्दृष्टि रहती है, पर यह कतई पर्याप्त नहीं। मनोवैज्ञानिक रीतियों का परिचय प्रत्येक माँ को होना ही चाहिए, भले ही उन्हें यह जानकारी औपचारिक शिक्षा द्वारा नहीं अनौपचारिक शिक्षण प्रक्रियाओं द्वारा दी जाये क्योंकि इसके बिना वे अपने निश्चल प्रगाढ़ वात्सल्य का अनुपम अनुदान शिशु को सही ढंग से नहीं दे पातीं और इसीलिए शिशु को भी सही लाभ नहीं प्राप्त हो पाता। कोई भी माँ अपने बच्चे को तनिक भी कम प्यार नहीं करती, पर इस प्यार से बच्चा ठीक-ठीक लाभान्वित हो, इसके लिए माँ की भावना मात्र पर्याप्त नहीं होती। उसे शिशु की देख-रेख, साज-सँभाल, व्यक्तित्व निर्माण की कार्यविधियों का ज्ञान होना चाहिए।

माँ द्वारा देखभाल की विधि से भी अधिक महत्त्वपूर्ण जो विशेषता बच्चे पर प्रभाव डालती है, वह होती है माँ का स्वभाव। माता के स्वभाव की बच्चे पर गहरी छाप पड़ती है। माँ का स्वभाव न सिर्फ उसके दूध के साथ ही बच्चे में घुलने-मिलने लगता है, वरन्

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गर्भावस्था में भी जननी के स्वभाव का शिशु पर प्रभाव पड़ता है। माँ की मानसिक भावनाएँ एवं विचारणाएँ गर्भस्थ शिशु पर सुनिश्चित छाप छोड़ती हैं। प्रसवोपरान्त भी शिशु पर माँ के स्वभाव का सूक्ष्म असर पड़ता रहता हैं। सौम्य, मृदु, मधुर शिष्ट, शालीन, गम्भीर, प्रसन्न, सहनशील, प्राणवान, प्रखर, जागरूक, तेजस्विनी माताएँ बच्चे पर अनजाने ही वैसे ही श्रेष्ठ प्रभाव डालती रहती है। जबकि चिड़चिड़ी, क्रोधी, झगड़ालू, स्वार्थी, छलपूर्ण स्वभाव वाली माताओं के शिशु इन्हीं गुणों को अपनाते हैं। अतः माँ के स्वभाव का भावी नागरिक के व्यक्तित्व के निर्माण में विशेष हाथ होता है।

माँ के रहन-सहन, आचरण का ही शिशु आरम्भिक अनुकरण करता है और मानव-शिशु मुख्यतः अनुकरण से ही सीखता है। माँ की संगति वह अनिवार्य संगति है जो प्रत्येक शिशु को करनी ही होती है। अतः शिशु के प्रत्येक क्रिया-कलाप, रीति-नीति, तौर-तरीके पर माँ के आचरण की छाप अनिवार्य है। शिशु माँ के उपदेशों पर नहीं, क्रिया-कलापों पर ही ध्यान रखता है। वह देखता है कि माँ क्या और कैसे करती है ? माँ शिशु के लिए आकर्षण, जिज्ञासा एवं अनुकरण का आदि केन्द्र है। उसे माँ की हर गतिविधि में गम्भीर अर्थवेत्ताओं की अनुभूति होती है। शिशु माँ के आचरण को अत्यधिक बारीकी से देखता, गहराई से समझता और तीव्रता से सीखता है। उसके उठने-बैठने, देखने, चलने-फिरने और लेटने-सोने का ढंग, हाव-भाव, मुखमुद्रा, बोले जाने वाले शब्द एवं स्वर का उतार-चढ़ाव, खाने-पीने, भोजन चबाने आदि के ढंग, नहाने की विधि, कपड़ों की पसन्द, घर-द्वार, वस्तुओं की सफाई, रख-रखाव व सजावट सभी कुछ को बच्चे अपनी सूक्ष्म ग्रहण-शक्ति के साथ सावधानी से देखते हुए आँकते और याद करते रहते हैं। यदि माँ स्वयं ठीक से न नहाती हो, यों ही शरीर धो-पोंछ लेती हो और बच्चे को ठीक से नहाने का उपदेश देती रहे तो बच्चे में ठीक से नहाने के प्रति चिढ़ पैदा हो जाएगी। यदि माँ बच्चे को सच बोलने का उपदेश देती नहीं अघाती पर स्वयं बेहिचक झूठ बोलती है तो बच्चा निश्चित ही झूठ बोलना सीखेगा। हाँ साथ ही वह सत्य भाषण का उपदेश देना भी सीख सकता है। यदि माँ अश्लील शब्द बोलती, गालियाँ देती अथवा चीखकर बोलती है तो बच्चे में भी ये आदतें विकसित होंगी। सिनेमा और नाच-गाने की शौकीन माताएँ अपने बच्चों को उससे चाहे जितना बचाना चाहें, बच्चे का बच पाना अति कठिन है। खाने-पीने का ढंग और खाने-पीने की पसन्द तो बच्चों में घर के अनुसार विकसित होती ही है।

ऐसा नहीं कि बच्चे पर मात्र माँ का प्रभाव पड़ता है। पिता, भाई, बहिन, मित्र, पास-पड़ौस के बच्चे, बड़े, सभी के रहन-सहन, तौर-तरीके और व्यवहार बच्चों पर छाप डालते हैं। सम्पूर्ण वातावरण का शिशु पर प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है किन्तु इस वातावरण का प्रथम परिचय शिशु को माँ के माध्यम से ही होता है। वह सर्वप्रथम माँ को तथा उसके आस-पास के क्षेत्र को ही देखता है। इसीलिए माँ की देखभाल, माँ का स्वभाव एवं माँ का आचरण ये तीन ही शिशु के व्यक्तित्व निर्माण के प्राथमिक आधार बनते हैं। जो माताएँ शिशु में अपने व्यक्तित्व के इन तीनों ही तत्त्वों का समुचित पोषण करती हैं, वे समाज को एक उत्कृष्ट नागरिक सौंपकर स्वयं धन्य होती और परिवार-समाज को धन्य बनाती हैं।

देखभाल द्वारा माँ बच्चे के स्थूल शरीर एवं स्थूल व्यक्तित्व को सँवारने और पुष्ट करने में सहायक बनती हैं। अपने स्वभाव एवं आस्थाओं से प्रेरित आचरण के द्वारा वह उसके सूक्ष्म एवं कारण शरीरों पर प्रभाव छोड़ती है। बच्चे द्वारा दुनिया को देखने की दृष्टि क्या होगी ? यानी उसका दृष्टिकोण क्या होगा ? यह बहुत कुछ उसके आस्था-जगत पर निर्भर है और उस क्षेत्र पर माँ के आचरण के मूल में सन्निहित आस्थाओं का प्रमुखतः प्रभाव पड़ता रहता है। जबकि आदतों की प्राप्त विरासत बच्चे के जीवन में हर क्षण अपना रंग दिखलाती है। अपनी देखभाल द्वारा माता बच्चे के बहिरंग व्यक्तित्व का और अपने स्वभाव, विचार एवं आचरण द्वारा उसके अन्तरंग व्यक्तित्व का निर्माण करती है क्योंकि बच्चा माँ के आचरण की ऊपरी क्रियाएँ ही नहीं देखता वह उन क्रियाओं की प्रेरक आस्थाओं को भी ग्रहण करता है। झूठ बोलने वाली माँ के शब्द नहीं, झूठ बोलने की वृत्ति वह ग्रहण करता है। शब्द तो उसके अपने द्वारा सीखे हुए होते हैं पर वह उनका झूठ के लिए प्रयोग करता है। इसी प्रकार साहस एवं शौर्य की वृत्ति सीखा हुआ बच्चा अवसर के अनुकूल उस वृत्ति का प्रदर्शन करता है। मदालसा के ब्रह्मज्ञानी पुत्रों अलर्क आदि ने उसके **"शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि"** आदि गीतों में अभिव्यक्त आस्था को आत्मसात किया, न कि बाह्य क्रिया मात्र को अन्यथा वे भी बच्चे पैदाकर फिर उन्हें ऐसे ही गीत सुनाने की प्रवृत्ति रखते हैं। अतः स्पष्ट है कि शिशु जननी के आचरण से उनमें सन्निहित मूल आस्थाएँ ही ग्रहण करता है और इस प्रकार माँ के आचरण का असर बच्चे के अन्तःकरण-क्षेत्र पर पड़ता है। इस प्रकार सुसंस्कृत जननी शिशु के शरीर, मन, विचार एवं भाव क्षेत्र को पुष्ट करती है और त्रिविधि पोषण द्वारा विकसित सुयोग्य नागरिक समाज को सौंपती है। समाज पर सुयोग्य माताओं का बहुत ऋण रहता है।

प्रबुद्ध माताओं को अपनी यह भूमिका भली-भाँति समझ लेनी चाहिए और शिशु की देख-भाल में जितनी सजगता वे आवश्यक समझती हैं, उतनी ही सजगता से स्वयं के आचरण एवं स्वभाव को, अपने विचार तथा भावक्षेत्र को भी देखकर उसे श्रेष्ठ बनाना चाहिए, ताकि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उस श्रेष्ठता की छाप शिशु पर भी पड़े और समाज को एक श्रेष्ठ नागरिक प्राप्त हो।

बच्चों के विकास पर समुचित ध्यान दें

माली पौधों को अधिक उपयोगी बनाने के लिए उनमें अच्छी प्रकार खाद-पानी तथा काट-छाँट करता रहता है। किसान खेत में बीज बोने से लेकर फसल के बढ़ने तथा पकने तक की अवधि में देख-रेख में जितनी सतर्कता दिखाता है, उसी के अनुपात से फसल प्राप्त करता है। उपेक्षा तथा देख-रेख के अभाव में मूल्यवान पौधे भी सूख जाते हैं अथवा अविकसित रह जाते हैं। उनसे अच्छे फलों की आशा नहीं की जा सकती। इसी प्रकार बच्चों के पालन-पोषण में समुचित देख-रेख की जाय, उनकी आदतों, क्रिया-कलापों एवं शिक्षा पर समुचित ध्यान रखा जाय तो सामान्य परिस्थितियों में पैदा होने वाले बच्चे भी महान् व्यक्ति बन सकते हैं। इसके विपरीत बच्चों के पालन-पोषण एवं देख-रेख में उपेक्षा की प्रवृत्ति अपनायी गयी, तो प्रतिभाशाली बच्चों का भी विकास रुक जाता है।

बचपन गीली मिट्टी के समान होता है। उस आयु में जिसे जैसा चाहें ढाला, मोड़ा जा सकता है। बाल्यकाल में जिन आदतों की नींव पड़ जाती है, वे ही संस्कार का रूप ले लेती हैं तथा सारे जीवन अपना प्रभाव दिखाती रहती हैं। बचपन में पड़े संस्कार एवं भावनाएँ ही बच्चे का व्यक्तित्व विनिर्मित करती हैं। यह अवस्था ही सम्पूर्ण जीवन की नींव है। बच्चों की कोमल मनोभूमि पर पड़े हुए विभिन्न प्रकार के प्रभाव ही उसके मानस-पटल पर सारे जीवन अंकित रहते हैं। उस अवधि में अच्छा एवं बुरा जैसा भी प्रभाव बच्चे पर पड़ता है, वैसे ही वे बन भी जाते हैं। महापुरुषों के श्रेष्ठ व्यक्तित्व के पीछे बाल्यावस्था में उनके माता-पिता द्वारा समुचित ध्यान देना ही प्रमुख कारण रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि बच्चों के समक्ष प्रेरणास्पद वातावरण उपस्थित किया जाय, उन्हें ऐसी प्रेरणा दी जाय जिससे अच्छाइयाँ अपनाने की प्रेरणा मिले।

प्रत्येक बच्चे में अपनी एक जन्मजात विशेषता होती है। उसकी इस मूलभूत प्रवृत्ति पर यदि समुचित ध्यान दिया जाय तथा उसी के अनुरूप दिशा में उसे बढ़ाया जाय तो वह एक दिन असाधारण स्थिति में पहुँच सकता है। पाश्चात्य देशों की शिक्षा-प्रणाली में इस तथ्य पर विशेष ध्यान दिया जाता है, परिणामस्वरूप वे बच्चे अधिक प्रतिभाशाली बनते हैं।

माता-पिता के लिए आवश्यक है कि वे बच्चों की प्रवृत्तियों का पूरी सतर्कता के साथ अध्ययन करें। यदि स्वयं असमर्थ हों तो किसी विचारशील व्यक्ति से सलाह लें तथा उसी के अनुरूप उनके विकास के लिए दिशा, साधन एवं सुविधाएँ जुटाएँ। माता-पिता द्वारा यह सोचना कि हमारे सोचने के अनुरूप ही बच्चे का भविष्य विनिर्मित हो, एक बड़ी भूल है। इंजीनियर का लड़का इंजीनियर, कलाकार का कलाकार बने यह आवश्यक नहीं है, न ही ऐसा प्रकृति का नियम है। रुचि, प्रतिभा एवं प्रवृत्तियों से अभिभावक एवं बच्चे में असमानता रहना आश्चर्यजनक नहीं। संगीत प्रतिभायुक्त बच्चे को कलई बनाना, चिन्तनशील, दार्शनिक बच्चे से बनिए का काम लेना बड़ी भूल है, जिसके परिणामस्वरूप उनकी प्रवृत्तियों के अनुरूप उनका विकास नहीं हो पाता तथा सामान्य जीवनयापन करते हैं। जो बच्चे सही दिशा एवं प्रेरणा के कारण असाधारण हो सकते थे, वही प्रोत्साहन के अभाव में उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना से वंचित रह जाते हैं।

देखा यह जाता है कि अभिभावक बच्चों को उनके बालसाथियों के साथ खेलने, मिलने-जुलने से रोकते हैं इससे उनके विकास में अवरोध पैदा होता है। दूसरे बच्चों से मिलने से ही उनके अन्दर सामूहिकता, सामाजिकता जैसे तत्त्वों का विकास होता है। इस सम्पर्क से ही एक-दूसरे के प्रति आत्मीयता पैदा होती है। इसके विपरीत बच्चों को बिगड़ जाने के भय से मिलने न देना ठीक नहीं है। ऐसे बच्चे आगे चलकर एकाकी, असामाजिक प्रकृति के बन जाते हैं। वे दूसरों से बात-चीत करने तक में संकोच अनुभव करते हैं।

यह बात ध्यान रखने योग्य अवश्य है कि बच्चा जिन साथियों के साथ रहता है, वे सभ्य एवं संस्कारी हों। कुसंस्कारी एवं आवारा बालकों के संग से तो बचाये रखना ही उचित है।

शिक्षा के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए अभिभावक को हर सम्भव प्रयास करना चाहिए। बच्चों को जीवन में शिक्षा का महत्त्व बताया जाना चाहिए। मेधावी छात्रों एवं महापुरुषों के दृष्टान्त उनके समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए। इन व्यक्तियों ने अध्ययन में गहरी रुचि लेकर अपने जीवन को श्रेष्ठ एवं समुन्नत किस प्रकार बनाया ? यह बताये जाने से बच्चों में शिक्षा के प्रति आकर्षण स्वतः उत्पन्न होने लगता है। समय-समय पर उनको प्रोत्साहित किए जाने पर शिक्षा के प्रति रुचि बनी रहती है। अच्छे कार्य किए जाने पर अथवा अपना विषय तैयार करने पर बच्चों को छोटे-छोटे उपहारों से पुरस्कृत करने से उनका उत्साहवर्द्धन होता है तथा आत्मविश्वास जाग्रत होता है।

बच्चों के परिपूर्ण विकास एवं सफलता के लिए उनके अन्दर स्पर्धा, प्रोत्साहन एवं प्रेरणा भरी बातों का कहते रहना आवश्यक है। उनकी गलतियों, भूलों से पनपने वाली हीन-भावनाओं को भी दूर करते रहना चाहिये, इससे उनके अन्दर आत्मविश्वास की अभिवृद्धि एवं मानसिक दृढ़ता प्राप्त होती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जन्म देने से लेकर पालन-पोषण करने, साज-सँभाल का दायित्व माँ के ऊपर होता है, किन्तु बच्चों की शिक्षा-दीक्षा, मानसिक विकास से श्रेष्ठ व्यक्तित्व के निर्माण का उत्तरदायित्व पिता के ऊपर होता है। विद्यालय में तो वह पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करता है, परन्तु जीवन के आन्तरिक एवं बाह्य ढाँचे का निर्माण पिता द्वारा ही किया जाता है। इसके लिए पिता द्वारा बच्चे के जीवन के प्रति, उनकी गतिविधियों पर गहरी दिलचस्पी का होना आवश्यक है। आज के भौतिक प्रवाह में मनुष्य का जीवन इतना संघर्षमय हो गया है, जिससे प्रत्येक अभिभावक इतना व्यस्त है कि बच्चों के लिए समय नहीं दे पाते। इसे एक दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि बच्चों पर पैसा तो खर्च किया जाय पर उन्हें समय न दिया जाय।

मानसिक तुष्टि की अपेक्षा बच्चों को माता-पिता से होती है। इसके अभाव में उनका उचित विकास नहीं हो पाता। वे निराश एवं उदासीन रहते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ऐसे बच्चे जिन्हें अभिभावकों का उचित सम्पर्क नहीं मिला, वे अधिकांशतः अयोग्य एवं अविकसित निकलते हैं। अभिभावकों का यह नैतिक दायित्व होता है कि व्यस्तता के बावजूद भी बच्चों के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करते रहें तभी उनका समुचित विकास सम्भव है।

बौद्धिक विकास की धुरी— माता-पिता का स्नेह-दुलार

इन दिनों अभिभावकों की प्रायः एक ही शिकायत सुनने में आती है कि उनके बच्चे पढ़ने में कमजोर हैं, स्मरण शक्ति का उनमें अभाव है, बुद्धिलब्धि कम है, पर वस्तुस्थिति की गहराई में जाने पर ज्ञात होता है कि उनकी उक्त मान्यता बिल्कुल सही नहीं है। बुद्धि को प्रयासपूर्वक ही बढ़ाना पड़ता है। जिन्हें इसकी अनुकूल परिस्थितियाँ उपलब्ध नहीं हो पातीं अथवा प्रयास में कमी रहती है, उनमें ही मन्द बौद्धिकता के लक्षण उभरकर सामने आते हैं।

देखा गया है कि जब बालक को बोध से पूर्व किसी ऐसे स्थान पर छोड़ दिया जाता, जहाँ उसका सीधा सम्पर्क मनुष्य एवं उसकी बौद्धिक विशेषता से नहीं हो पाता, तो बड़ा होने पर भी वह बुद्धि की दृष्टि से अत्यन्त अविकसित स्थिति में पाया जाता है। जंगली जन्तुओं के बीच पलने वाले रामू भेड़िये के साथ यही हुआ। बोलने, पहनने, खाने-पीने की बात तो दूर, उठने-बैठने, चलने-फिरने की मूलभूत मानवी प्रवृत्ति (बायपेडल लोकोमोशन) के उसमें निहित रहने के बावजूद प्रशिक्षण के अभाव में वह वैसा न कर सका और चलने के लिए दो पाँवों के साथ दोनों हाथों का प्रयोग करते देखा गया। इसके विपरीत सर्वथा हिंस्र एवं जंगली कहलाने वाले जन्तुओं की स्थिति में यह देखा जाता है कि यदि उन्हें कुछ समय तक नियमित रूप से प्रशिक्षित किया जाय, तो अपनी जाति से कई गुना बढ़-चढ़कर तथा कई मामलों में मनुष्य के समकक्ष बुद्धि-कौशल का प्रमाण-परिचय प्रस्तुत करने लगते हैं। आये दिन देखे जाने वाले इन उदाहरणों के आधार पर यही कहना पड़ेगा कि आरम्भ में मानवी बुद्धि प्रायः अपरिष्कृत स्थिति में रहती है, जिसे शनैः-शनैः प्रयास-अभ्यास द्वारा परिमार्जित करके प्रतिभा के रूप में विकसित किया जाता है। यदि प्रस्तुत निष्कर्ष सही है, तो यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि इन दिनों की जाने वाली मन्दबुद्धि सम्बन्धी अधिकांश शिकायतों के पीछे ऐसे ही हेतु कारणभूत हैं। लगभग ऐसा ही मन्तव्य प्रकट करते हुए इंग्लैण्ड के मूर्धन्य जीववैज्ञानी ए. एच. हेल्सी अपने एक निबन्ध 'जेनेटिक्स, सोशल स्ट्रक्चर एण्ड इंटेलीजेन्स' (ब्रिटिश जनरल, सोशियोलॉजी, खण्ड ९, सं. १) में कहते हैं कि इसमें दो मत नहीं कि बुद्धि में जन्मजात अन्तर नहीं होते, पर यह सम्भव है कि किसी तीक्ष्ण-बुद्धि बालक को आरम्भ में अविकसितों के बीच रहना पड़े, तो उसका विकास उन्हीं के समकक्ष होकर रह जाय। दूसरी ओर इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि सामाजिक वर्ग के जन्म के समय यह अन्तर समान रूप से वितरित हों, किन्तु उसके पश्चात् पालन-पोषण, विचार-व्यवहार की परिस्थितियों के कारण बुद्धिलब्धि में अन्तर हो जाता हो।

इस प्रकार हेल्सी ने बौद्धिक कमी के दो प्रमुख संभाव्य कारण बताये हैं। प्रथम प्रशिक्षण का अभाव एवं द्वितीय आचार-व्यवहार में भावात्मकता व रागात्मकता की कमी। इसमें प्रथम के बारे में हेल्सी का मत है कि प्रशिक्षण के अभाव में मानवी बुद्धि का विकास कदापि सम्भव नहीं। यह प्रत्येक के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है। दूसरे कारक के बारे में उनका कहना है कि कई बार घर का प्रतिकूल वातावरण भी बुद्धि को प्रभावित कर जाता है, जिस पर यदि ध्यान नहीं दिया गया, तो बड़े होने पर भी उसकी बौद्धिक क्षमता वैसी ही रह जाती है। कई मनोवैज्ञानिकों ने इसी को 'प्रभविष्णु योग्यता' के नाम से पुकारा है। यह वह योग्यता है, जिसे यदि कोई बाधक तत्त्व न हो, तो पूर्ण रूप से विकसित किया जा सकता है। आगे लिखते हैं कि यदि मन्द-बुद्धि बालक के घर के वातावरण ने बुद्धि विकास सम्बन्धी उक्त अनुबन्ध को पूरा नहीं किया, तो यही समझना चाहिए कि उसको अपनी प्रभविष्णु योग्यता के विकास का पूर्ण अवसर न मिला, पर उन्हें मन्दबुद्धि बालक कहना उचित नहीं। उनका कहना है कि इन दिनों अभिभावक यही गलती करते देखे जाते हैं। पालन-पोषण, प्यार-प्रेम सम्बन्धी अपनी त्रुटि की उपेक्षा कर बुद्धि-विकास किन्हीं अन्य साधनों में ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं, जबकि होना यह चाहिए कि पहले वे अपने व्यवहार की समीक्षा स्वयं करें, फिर बौद्धिक विकास के दूसरे अवलम्बनों को अपनायें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एलिजाबेथ फ्रेजर भी अपने दीर्घकालीन अध्ययन, अनुसन्धान के उपरान्त ऐसे ही निष्कर्ष पर पहुँची हैं। वह अपनी पुस्तक 'होम एनवायरनमेण्ट एण्ड दि स्कूल' में लिखती हैं कि बुद्धि की बात यदि कुछ अंश तक छोड़ भी दी जाय, तो भी घर के वातावरण का बच्चे की शिक्षा पर प्रभाव सर्वथा असंदिग्ध देखा गया है। वे लिखती हैं कि अनुकूल वातावरण का उनके स्कूली शिक्षा की सफलता पर अच्छा असर देखा गया, जबकि प्रतिकूल वातावरण से प्रगति प्रभावित हुई। शोध के दौरान उन्होंने जिन दो गृही कारणों को सफलता-विफलता के लिए सबसे प्रमुख पाया, वे थे—अभिप्रेरणात्मक व भावात्मक कारण। उन्होंने देखा कि भावात्मक दृष्टि से क्षुब्ध पारिवारिक पृष्ठभूमि वाले कुशाग्र बुद्धि बच्चों की शिक्षा भी इससे अप्रभावित नहीं रहती। वे सर्वेक्षण में असफल नहीं, तो बहुत सफल भी होते नहीं देखे गये। अध्ययन में एक अन्य कारण जो उभरकर सामने आता है, वह था—बड़ा परिवार। फ्रेजर के अनुसार अधिक बच्चों वाला बड़ा परिवार भी बालकों की प्रगति व शिक्षा को प्रभावित करता है।

बालकों की बौद्धिक प्रगति को किस प्रकार बड़ा परिवार अवरुद्ध करता है, इसे जॉन निस्वत के प्रसिद्ध सिद्धान्त द्वारा जाना जा सकता है। वे इसका प्रतिपादन 'फेमिली एनवायरनमेण्ट एण्ड इंटेलीजेन्स' (यूजीनिक्स रिव्यू) नामक निबन्ध में करते हुए लिखते हैं कि परिवार के आकार एवं बुद्धि में परस्पर प्रतिलोमी सम्बन्ध है, अर्थात् वे एक-दूसरे के व्युत्क्रमानुपाती हैं। तात्पर्य यह कि परिवार का आकार बढ़ने से बुद्धि घटती है और परिवार का आकार घटने से बुद्धि बढ़ती है। ऐसा क्यों होता है ? इसके कारण की चर्चा करते हुए वे लिखते हैं कि इसका एक मुख्य कारण यह है कि बड़ा परिवार होने से बढ़े-चढ़े उत्तरदायित्वों के कारण वयस्कों का बच्चों से सम्पर्क कम हो जाता है, जिससे वे उनकी बौद्धिक प्रगति में अपनी जिम्मेदारी का भली-भाँति निर्वाह नहीं कर पाते, किन्तु जब परिवार सीमित होता है, तो घर की स्वल्प आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद माता-पिता बच्चों के विकास के सम्बन्ध में अधिकाधिक समय व ध्यान दे पाने में समर्थ होते हैं। प्रायः इसी कारण से बड़े परिवार वाले श्रमिकों की बुद्धिलब्धि कम देखी जाती है। यद्यपि यहाँ धनोपार्जन की समस्या प्रमुख होती है। वे बच्चों की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाते। यहाँ निर्धनता को बुद्धि-विकास में अवरोधक नहीं माना जाना चाहिए, क्योंकि अध्ययन निष्कर्षों से यही ज्ञात होता है इसमें भी बच्चों को पर्याप्त समय न दे पाना ही प्रमुख कारक है न कि अर्थाभाव। जीन फ्लाउड अपने निबन्ध—'सोशल क्लास फैक्टर इन एजुकेशनल अचीवमेण्ट' में विशेष रूप से ऐसे श्रमिक व विपन्न परिवारों के बालकों का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि जब यह अध्ययन साउथ वेस्ट हर्टफोर्डशायर (इंग्लैण्ड) के श्रमिक परिवारों में किया गया, तो देखा यही गया कि आर्थिक विपन्नता के बावजूद भी इनके बच्चे पूर्ण सफल और विकसित बुद्धि वाले बालकों की श्रेणी में आये। शोधकर्त्ता कहते हैं कि बच्चों की इस सफलता के पीछे माता-पिता का स्नेह-प्यार और उनके लिए आवश्यक समय निकाला जाना ही प्रमुख कारक थे।

स्पष्ट है यदि माँ-बाप बालकों के लिए थोड़ा समय निकाल सकें, उन्हें स्नेह-प्यार दे सकें, तो कोई कारण नहीं कि उनके बच्चे तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय न दे सकें। उत्तम हो, इस सम्बन्ध में 'एक आँख प्यार की दूसरी सुधार की' वाली नीति अपनायी जाय, ताकि अतिशय लाड़ के कारण बच्चों के बिगड़ने के खतरे से बचा जा सके एवं उस कलंक से भी बचा जा सके, जिसके लिए समय न दे पाने के कारण अविकसित बुद्धि का दोष माता-पिता के सिर लगे।

बौद्धिक विकास के स्वर्णिम सूत्र

'नूतन देह और पुरातन (पूर्व जन्मों के) संस्कार'—भारतीय संस्कृति में बालक की यह परिभाषा निस्सार नहीं है; किन्तु मिथ्या यह भी नहीं है—वातावरण और परिस्थितियाँ भी संस्कार और स्वभाव गढ़ती हैं। भारतीय संस्कृति में यदि क्षमा के लिए कोई स्थान रहा है तो वह इसी दृष्टि से कि कई बार वातावरण और परिस्थितियों के दबाव में पड़कर हठात् भी लोगों को अपराध प्रवृत्त होना पड़ जाता है। इस दृष्टि से बाह्य वातावरण और सहज-सुलभ साधनों एवं सुविधाओं का अत्यधिक महत्त्व रहा है, आगे भी रहेगा। इस सत्य को दृष्टि में रखा जाये तो बालक के विकास का चिन्तन उसके पूर्व जन्मों के संस्कारों के आश्रित ही नहीं छोड़ना पड़ेगा, अपितु संगति, वातावरण और परिस्थितियों का आविर्भाव भी करना पड़ेगा, जिससे पुरातन संस्कारों को पीछे धकेलकर बच्चे के जीवन में स्वच्छ स्वभाव का समावेश हो सके।

वातावरण की ताप से बच्चे के संस्कारों, स्वभाव को उसी तरह लचाया, पिघलाया, मोड़ा, ठोस किया और मनोवांछित अलंकार के रूप में ढाला जा सकता है, जिस तरह सुनार आग की भट्टी में सोने को गलाता, तपाता और आभूषण बनाता है। हमारे आचार्यों ने उसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए लिखा है—

पूर्णशक्ति विकासार्थं मनोमस्तिष्क कर्मणाम्।
सुस्थिति साधनादीनि प्रदेयान्यभिभावकैः।।

अर्थात् बालक के मन-मस्तिष्क और उसके आचरण के विकास के लिए अभिभावक उसे उत्तम परिस्थितियाँ और अच्छे साधन अवश्य उपलब्ध करायें। इसके अभाव में, बच्चे कहीं भी भटक सकते हैं और स्वयं अपने व समाज दोनों के ही लिए समस्या बन सकते हैं। वे न केवल नीति, सदाचार तथा मर्यादाओं का उल्लंघन करते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं, अपितु सामाजिक जीवन में दुराचार और कुत्साएँ भी पैदा करते हैं। ऐसे बालक जहाँ भी होंगे न चाहते हुए भी उनके अभिभावकों को कलह, कटुता और अपमान की भट्टी में जलना पड़ेगा। उनके लिए परिवार जाग्रत नरक के समान हो जाता है, जिनके बच्चे उपद्रवी होते हैं, इसमें दोष बच्चों का नहीं स्वयं अभिभावकों का ही है।

सर्वांगीण विकास का निर्धारण करते समय बालक की प्रसन्नता और उसके आन्तरिक उल्लास के विकास का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। आचार्यों का अभिमत है—

सर्वांगीण विकासाय प्रदद्यात्सुविधां सदा।

चानुकूलां विनोदाय क्रीड़ा ज्ञानस्य प्राप्तये।।

अर्थात्—"बच्चे के विकास के लिए दूसरी अपेक्षाओं की पूर्ति के साथ-साथ उसके मनोविनोद, क्रीड़ा तथा ज्ञानप्राप्ति की सुविधाओं का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए।" न केवल शारीरिक विकास अपितु मानसिक आरोग्य के लिए भी बच्चे का विनोदी, खेल प्रिय होना आवश्यक है। खेलकूद से केवल शरीर का ही स्वेद नहीं निकलता, अपितु मन का भी मैल धुल जाता है। अतएव किसी भी रूप में बच्चे को खेल की सुविधाएँ अवश्य मिलें यह ध्यान रखा जाना चाहिए।

कुछ लोगों का मत यह है कि बच्चे की शिक्षा का दायित्व विद्यालयों का है, उनका कर्तव्य फीस चुकाने तक है। यह भूल है। देखा गया है कि जो बच्चे प्रारम्भ से ही विद्यालय भेजे गये, वे दब्बू और भयभीत प्रकार के हुए, जिन अभिभावकों ने बच्चों को एक-दो वर्ष घर में पढ़ाकर पीछे पाठशाला भेजा वे न केवल शैक्षणिक दृष्टि से अपितु बौद्धिक, मानसिक और व्यावहारिक दृष्टि से सफल व्यक्ति हुए। प्रारम्भ से ही पाठशाला भेजना बच्चे को ज्ञानप्राप्ति के प्रति अनुत्साहित करना है, जबकि बच्चे में ज्ञान के प्रति जिज्ञासा जाग्रत कर दी जाये तो उनका यह क्रम आजीवन चलता रहता है और इससे उनका जीवन आत्मिक प्रगति की दिशा में निरन्तर अग्रसर बना रहता है।

घर की शिक्षा दीक्षापरक रखी जानी नितान्त आवश्यक है। शिक्षा का अर्थ बच्चे के सामान्य ज्ञान का विकास करना होता है, जबकि दीक्षा का अर्थ श्रेष्ठ शिक्षण को आचरण में ढालना होता है। शिक्षा के साथ दीक्षा का समावेश न रहे तो कोई भी व्यक्ति भौतिक दृष्टि से समर्थ होकर भी विद्रूप पैदा करने वाला ही होगा। दीक्षा का अर्थ बालक में साहस, सहयोग, पराक्रम, वीरत्व, सत्यनिष्ठा, संवेदनशीलता आदि मानवीय सद्गुणों को विकसित करना होता है। यह बातें बच्चे को उपदेश देकर नहीं सिखाई जा सकती, क्योंकि बालक की संरचना इस तरह की, की है कि वह हर उल्लेखनीय कार्य की ओर सहज स्वभाव प्रवृत्त होता है किन्तु जिस बात में प्रशंसा भी न मिले ऐसे अच्छे कार्य से भी वह दूर ही भागेगा। शास्त्रकार का इस सम्बन्ध में परामर्श है कि—

महतां नर रत्नानां वलैश्वर्य प्रपूरितायै।

श्रणुपात कीर्त्तयेन्नित्यं चरितं हर्षवर्धनम्।।

अर्थात् बच्चों को इस तरह के गुणों की महिमा दर्शाने वाले कथानक, घटनाएँ, पुराण और इतिहास नियमित रूप से सुनाये जाते रहा करें तो यह बच्चे ही आगे चलकर साहसी, स्वावलम्बी और पराक्रमी हो सकते हैं।

इस तरह की सुविधाएँ जुटाने की असमर्थता का अर्थ होता है—पिता बनने के उत्तरदायित्व का अभाव। ऐसा करके राष्ट्र के भावी नागरिकों के साथ खिलवाड़ नहीं करनी चाहिए। यह समझने में कतई भूल न की जाये कि बच्चा गीली मिट्टी की तरह होता है। यदि उसे यों ही खुला छोड़ दिया जाये तो वह अनुपयोगी मिट्टी की मिट्टी ही रहेगा। किन्तु यदि ऐसे तराशने, चमकाने का मन हो तो माता-पिता के कर्त्तव्यों की कभी भी उपेक्षा न की जाये।

बच्चों के मानसिक विकास की समस्या

पिछड़े हुए बालक घर में अभिभावक तथा पाठशाला में शिक्षकों के द्वारा उपेक्षित किये जाते हैं। फलस्वरूप ऐसे बच्चों का भविष्य सामान्य नागरिकों की अपेक्षा अन्धकारपूर्ण हो जाता है और वे केवल परिवार ही नहीं समाज में भी समस्या का कारण बन जाते हैं। यदि प्रारम्भ से ही ऐसे पिछड़े बालकों पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया जाय एवं उनके विकास का प्रयास किया जाय तो काफी हद तक परिवार और समाज की इस समस्या को सुलझाया जा सकता है।

सुधारात्मक प्रयास प्रारम्भ करने के पूर्व ऐसे बालकों की उन समस्याओं को पहले जानना आवश्यक है, जिनके कारण बालक पिछड़ जाता है। वैसे मानसिक विकास रुके रहने का कारण व्यक्तिपरक है, फिर भी यह व्यक्तिपरक होते हुए भी सामाजिक बन जाता है। चूँकि व्यक्तियों के समूह का नाम ही समाज है किन्तु यह कहना ही सर्वथा सत्य नहीं है कि पिछड़े बालकों का मानसिक पिछड़ेपन का दायित्व केवल उनका स्वयं का ही है। इसके अन्य कारण भी हो सकते हैं। इसके कारणों का ज्ञान हुए बिना सम्बन्धित सुधार के प्रयास सम्भव नहीं हो सकेंगे। कारणों को जाने बिना सुधार हेतु प्रयास किया जाना, वृक्ष को हरा रखने के लिए पत्तों पर पानी सींचने के समान होगा। परिस्थिति के अनुसार बच्चों के मानसिक विकास के लिए कुछ व्यावहारिक उपाय हमारी दृष्टि में करते रहने चाहिए।

वंश परम्परा के अनुसार ही कुछ गुण या अवगुण बच्चे को प्राप्त होते हैं। इस कारण से यदि बालक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

मानसिक रूप से पिछड़ा हो तो बालक के विकास के लिए वातावरण में सुधार कर काफी हद तक इस समस्या को सुलझाया जा सकता है। ऐसे बच्चों की जाँच विशेषज्ञ चिकित्सक से कराकर उसकी सलाहानुसार उचित इलाज करने से मानसिक पिछड़ेपन के विकासद्वार खुलने लगते हैं।

बच्चों की मानसिक स्थिति पर अन्य कारणों का प्रभाव भी पड़ता है। उदाहरण के लिए, बच्चों के मानसिक विकास पर भोजन का प्रभाव भी पड़ता है। कुपोषण के कारण मानसिक विकास सहज स्वाभाविक गति से नहीं हो पाता। शारीरिक विकास की अपेक्षा मानसिक विकास के लिए अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है। इस शक्ति की पूर्ति भोजन के द्वारा होती है। अतः आहार सम्बन्धी सावधानियाँ बरतकर उनके लिए सन्तुलित पौष्टिक भोजन की व्यवस्था कर उसके मानसिक पिछड़ेपन की समस्या को काफी अंशों में हल किया जा सकता है।

अभिभावकों के पक्षपातपूर्ण व्यवहार और उपेक्षावृत्ति से बच्चे ईर्ष्यालु और कुण्ठित हो जाते हैं। इसका प्रभाव मानसिक संवेगों पर पड़े बिना नहीं रहता। बच्चे अपनी उपेक्षा किये जाने पर उपद्रवी बन जाते हैं। उपद्रव करते रहने पर अभिभावक मारते, पीटते हैं और बात-बात पर झिड़कते हैं। इन व्यवहारों से बालक में हीन भाव पैदा होते हैं। अभिभावकों का स्नेह तथा उनके द्वारा प्रशंसा मिलते रहने पर बच्चे प्रसन्न रहते हैं। उनकी मानसिक शान्ति बनी रहती है। उदासी एवं निराशा से मुक्त रहने के कारण मानसिक विकास क्रमिक-क्रम प्रारम्भ रहता है। सदा से ही अभिभावकों का यह प्रयास रहना चाहिए कि अपनी सभी सन्तान के साथ समानता का व्यवहार करें। किसी की उपेक्षा न करें। स्नेह और प्यार सभी को समान रूप से देते रहें।

शिक्षकों के व्यवहार का प्रभाव भी विद्यार्थियों पर पड़ता है। कोई शिक्षक बहुत मारने-पीटने वाले, क्रोधी तथा गाली-गलौज करने वाले होते हैं। विद्यार्थी प्रायः ऐसे शिक्षकों से डरते हैं। कोई विषय समझ न आने पर भी डर के कारण बालक इस बात को बता नहीं पाते। यही क्रम चलते रहने पर आगे की पढ़ाई पिछड़ ही जाती है। पढ़ाई में पिछड़े रहने पर मार पड़ती है, तब विद्यार्थी या तो पढ़ना छोड़ देते हैं या फिर उस शिक्षक के विषय के समय कक्षा से बाहर भाग जाते हैं। कभी किसी कठिन विषय में बच्चों का मन नहीं लगता या उस विषय को समझ नहीं पाते। पढ़ाई में पिछड़ने के कारण कक्षा के अन्य बालक उसे चिढ़ाते और उपेक्षा करते हैं। इन सबका प्रभाव यह होता है कि बच्चे हीन प्रवृत्ति से ग्रसित हो जाते हैं। साधारण-सी बात कहने में संकोच करते हैं। ऐसे बच्चे को ग्लानि होने लगती है। इन कारणों से प्रभावित बच्चों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए, जो बालक उन्हें चिढ़ाते हैं, शिक्षक का कर्त्तव्य है कि उनको ऐसा करने से रोकें। कमजोर बालकों पर अन्यों की अपेक्षा अधिक ध्यान देकर किसी सामूहिक कार्यों या उत्सवों के समय उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपकर उन्हें प्रोत्साहित करते रहें। इससे आत्मदर्शन का समय मिलता है और संकोच तथा हीनवृत्ति नष्ट होने लगती है। चिढ़ाने वाले बालक भी उसका आदर करने लगते हैं।

शारीरिक दोष भी पिछड़ेपन का एक कारण है। शारीरिक दोषों के कारण शिक्षा ग्रहण करने में कठिनाई होती है। कम सुनना, दृष्टि दोष, हकलाना आदि ऐसे कारण हैं जिससे शिक्षण कार्य ऐसे बच्चों को समझ नहीं आता। सामान्य बालकों के स्तर से उनका स्तर नीचा रह जाता है। शिक्षक को चाहिए कि शिक्षण करते समय वह ऐसे बच्चों पर ध्यान दें तथा बीच-बीच में उनका निरीक्षण स्वयं करते रहें और प्रश्न पूछते रहें। कक्षा में सामने बैठकर शिक्षण में सुविधा दी जानी चाहिए।

कुछ बच्चों का मानसिक विकास इसलिए भी नहीं हो पाता कि उनकी शिक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं हो पाता। शिक्षा सम्बन्धी कमी रहने पर अभिभावक का कर्त्तव्य हो जाता है कि बच्चों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध करें। दोषपूर्ण शिक्षा-पद्धति भी मानसिक विकास क्रम को प्रभावित करती है। प्रायोगिक कार्यों के हीन सैद्धान्तिक शिक्षण के कारण अल्पविकसित बच्चे उसे ठीक तरह से नहीं समझ पाते। क्रमशः वे इस क्षेत्र में पिछड़ जाते हैं, ऐसे समय में बच्चों को सैद्धान्तिक शिक्षा के साथ क्रियात्मक, प्रयोगात्मक शिक्षा दें। बच्चों में देखकर सीखने की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। इससे शिक्षा के प्रति उनका आकर्षण बना रहता है। मन्दबुद्धि वाले बालकों का मन यदि मानसिक कार्यों की ओर आकृष्ट हो जाये, तो उनके मानसिक विकास का आधा कार्य पूरा हो जाता है।

मानसिक रूप से पिछड़े बालकों पर व्यक्तिगत रूप से विशेष ध्यान देना अभिभावक एवं शिक्षक का कर्त्तव्य हो जाता है। उसकी कमजोरी का सही कारण जानकर तदनुरूप व्यवहार करने से उनके प्रति सहानुभूति दर्शायी जाय। कुछ सफलता करने पर उनकी प्रशंसा करना नहीं चूकना चाहिए। प्रशंसा एवं आदर मिलते रहने पर कमजोर बालक आत्मगौरव अनुभव करते हैं। इस प्रोत्साहन एवं प्रशंसा से बालकों का मन विकास की दिशा में अग्रसर होने लगता है। अन्य सामान्य बालकों की अपेक्षा ऐसे बालकों पर विशेष ध्यान की आवश्यकता होती है। पिछड़े बालकों की उपेक्षा नहीं सुधार का प्रयास ही उसके विकास का विकल्प हो सकता है। उपेक्षा से तो यह दिन-प्रतिदिन बिगड़ता ही जायेगा, जो बाद में परिवार और समाज के लिए समस्या बन सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभिभावकों द्वारा बच्चों का भावनात्मक विकास

माली अपनी फुलवारी में फूलों से लदी झाड़ियाँ देखना चाहता है और अपने बगीचे में फलों से लदे हृष्ट-पुष्ट पेड़। इसी में उसका आवश्यक स्वार्थ भी सधता है और परमार्थ का दायित्व भी। इन्हीं में दृष्टिगोचर होती है माली की परिश्रमशीलता और निपुणता। हर माता-पिता इस विश्वउद्यान की इकाइयों का माली है। हर बच्चे में एक ऊर्द्धगामी चेतना का बीज होता है, जिसकी यदि प्रामाणिक रूप से देखभाल की जा सके तो वह समाज को, मानवता को सन्त, शहीद और सुधारक के रूप में विकसित कर सकता है और यदि चूक हो जाती है, दिशा बहक जाती है तो क्रूर और दुराचारी संतति को भी जन्म दे सकता है।

बच्चों के मस्तिष्क में कोशों की, न्यूरॉन्स की वह पूरी संख्या होती है, जो किसी भी ज्ञानवान, विकसित प्रौढ़ में होती है। हर स्वस्थ बच्चे का मस्तिष्क सर्वश्रेष्ठ बीज है और सर्वश्रेष्ठ जमीन भी, पर खाद और पानी की व्यवस्था ही उसका स्तर निर्धारित करती है। उसका हर मस्तिष्क कोश बहुत ही ग्रहणशील और संवेदनशील होता है। बच्चे में न केवल हाथ-पैर और वार्तालाप की चपलता ही होती है, वरन् ग्राह्यता, संवेदनशीलता भी बढ़ी-चढ़ी रहती है।

एक बार एक माँ ने अपने दस वर्षीय बालक को फीस के लिए पच्चीस रुपये दिए। पिता ने कहा, "बच्चे के हाथ में इतने रुपये न दो।" माँ ने कहा, "मुझे विश्वास है बेटा पैसा सँभाल सकेगा।" विद्यालय में जब प्रार्थना की घण्टी बजी, सुनील बस्ते में पैसा छोड़कर भागा। किसी ने बस्ते से पैसे निकाल लिए। सुनील रोने लगा। मास्टर साहब ने समझाया, "हम आपके पिताजी को पत्र लिख देंगे, वे तुम्हें डाँटेंगे नहीं। रोओ मत।" बच्चा बोला, "नहीं ! मास्टर जी, पैसे तो पिताजी फिर दे देंगे, पर जीवन भर माँ के उस विश्वास को न पा सकूँगा, जिसके साथ मैं पैसा देकर भेजा गया था।" मास्टर साहब प्रभावित हुए। उन्होंने स्काउट मास्टर को बुलावा भेजा और समस्या उनको सौंपी। सहपाठी चोर दस रुपये का नोट आधी छुट्टी में आइस्क्रीम खाने के लिए तुड़ाता पाया गया। मास्टर साहब ने सुनील के पिताजी को एक पत्र लिखा, "बधाई है आपके विश्वास को और उसकी शक्ति को, जिसके साथ सुनील के हाथ फीस भेजी थी, और उन्होंने लिख दिया वह घटनाक्रम। यह है विश्वास का प्रभाव। एक समझदार माँ ने विश्वास का बीज बोया, जो अंकुरित और फलित हुआ। वस्तुतः यह विश्वास ही बच्चों को ऊपर उठाने की एक सशक्त सीढ़ी है।

बच्चे एक बहुत बड़ी कम्पनी की दान की मशीन हैं, जिसका हर पुर्जा चेतन है। उसके उपयोग के आधार पर ही जीवन की श्रेष्ठता और प्रामाणिकता निर्भर रहती है।

हर बच्चा हमारे घर भगवान का भेजा हुआ मेहमान है, जो पूर्ण निश्छल और सरल है। वह वायु, चक्रवात् और जलभँवर की तरह चारों ओर के तत्त्व यानी अच्छाई-बुराई, प्रभाव-अभ्यास और गुणों को ग्रहण करता है।

विनोबा जी की माताजी खाना परोस रही थीं। एक तीर्थ में गए पड़ोसी का बच्चा उन दिनों उनके घर रह रहा था। माँ उस बच्चे को घी की चुपड़ी और विनोबा को रूखी रोटी दे रही थीं। बच्चे विनोबा ने पक्षपात बताते हुए आपत्ति की, तो माँ ने कहा, "पड़ौस का बच्चा मेहमान है, यानि भगवान है और तू मेरा प्यारा बेटा !" माँ का यह उद्‌गार ही तो आगे चलकर बच्चे को सन्त विनोबा बना सका।

बच्चों को शिक्षा तथा दीक्षा, उनसे प्यार उनके प्रति संवेदनशीलता तथा स्वाभिमान का ध्यान रखने से आरम्भ होती है और उनके अपने प्राप्त ज्ञान की श्रृंखला में आगे जुड़ती चली जाती है। उपदेश और नियम इतने न बनाये जाएँ कि बालक उनका अनुकरण ही न कर सके।

जतीनदास बारह वर्ष के थे। बाहर एक कुत्ता उन पर लपक पड़ा। जतीन बेहाल—भागे जा रहे थे। माँ ने देखा और चिल्लायी—"बेटा, डर मत !" जतीन रुका, हिम्मत के साथ, कुत्ता भी रुका—फिर लौट गया पर आगे चलकर, जतीन बन गया 'बाघा जतीन,' जिसने स्वतन्त्रता संग्राम में झकझोर दिया ब्रिटिश सरकार को।

बच्चों को सदाचार और सद्व्यवहार की शिक्षा मौखिक कम—माता-पिता अपने क्रिया-कलापों से ठीक वैसे ही देते हैं जैसे साँचे अपनी शक्ल उनमें पड़े हुए पदार्थ को देते हैं।

बच्चों की अपनी बात तथा अनुभव घटना और प्रतिक्रिया पहले सुना जाना आवश्यक है और फिर क्रम से उनकी इच्छा का मिलान करते हुए सीख जोड़ी जानी चाहिए। बच्चों में पहले सघन आत्मीयता और अपनापन उत्पन्न करना चाहिए अन्यथा जब तक वे पूरी तरह जुड़ेंगे नहीं, सीखेंगे नहीं।

जब बच्चे मित्र बन जाएँ, तब उनमें मानवोचित गुणों के समावेश के लिए कहानियों का सम्पुट लगाते हुए उन्हीं गुणों का होने जैसा अनुभव कराने से बच्चा अपने में एक आत्मगौरव का होना अनुभव करता है। यह आत्मगौरव की भावना ही दुःख, दर्द और लोभ को चीरती हुई एक सशक्त आदर्श व्यक्तित्व का गठन करने में समर्थ होती है।

बच्चे संगी-साथियों के अच्छे-बुरे दोनों गुण समान रूप से ग्रहण करते हैं। उस पर गहराई से ध्यान बनाये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

रखना चाहिए। संवेदनशील स्थिति में प्यार और स्नेह से लिपटा कुछ ऐसा अच्छा सिखाया जा सकता है जैसा कि इस वाक्य में निहित है—''तुम्हारे जैसे शानदार बच्चों के लिए यही उचित है।''

छोटे-छोटे झूठ और मखौल-मजाक का स्थायी प्रभाव बच्चों के चरित्र पर पड़ता है। बच्चे भी चेतन बीज हैं, जिसका हर कण ग्रहणशील और विकासशील भी है। बच्चों की सूक्ष्म दृष्टि हर क्रिया और व्यवहार को आत्मसात कर लेती है। पौधे में लगायी गई कलम की तरह नित्य-नवीन, मनमोहक फल-फूल देती है। वाशिंगटन के पिताजी को बागवानी का शौक था। उन्हें एक हरे गुलाब का पेड़ बहुत प्रिय था। एक दिन उन्होंने उस पेड़ को कटा पाया। उन्होंने नाराजी से बच्चे से पूछा—''यह कैसे हुआ ?'' बच्चे ने कहा—''यह मैंने किया।'' पिताजी ने कहा—''यदि यह पेड़ सोने का होता और इसके फूल चाँदी के—तो भी तेरे सत्य के आगे मेरा क्रोध पिघल ही जाता।'' सत्य की यह सहज अभिव्यक्ति भय से रहित थी। इस सच के बीज ने खाद-पानी पाया और ऐसे ही अन्य गुण जुड़ते चले गए तथा वाशिंगटन बन गया—'जार्ज वाशिंगटन अमेरिका का राष्ट्राध्यक्ष।'

बच्चे को पहला वातावरण अपने घर में माता-पिता, भाई और बहन का मिलता है। माता का सही दुलार, पिता का प्यार, भाई का सहयोग और बहिन का स्नेह उसे इन्हीं गुणों का गुलदस्ता बना देगा जो सारे वातावरण को महका देगा, जिसमें वह विचरा है।

बच्चे के दिनभर के घटनाक्रम को सुनने से चरित्र-गठन की दिशाधारा जानी जा सकती है और उसके अनुरूप उचित मोड़ भी दिया जा सकता है। बच्चों में नकल करने का सहज स्वभाव और उत्सुकता होती है। इस कारण अभिभावकों के लिए यह विशेष ध्यान का विषय है, इसका पूर्ण सदुपयोग किया जाना चाहिए। बच्चों के सामने को भी अवांछित क्रिया-कलाप, वार्ता या व्यवहार प्रत्यक्ष या परोक्ष में नहीं किया जाय।

अच्छे बच्चों के लिए अच्छे माता-पिता बनें। केवल पौष्टिक खाद्य पदार्थ या मानसिक मशक्कत ही नहीं, बच्चों को चाहिए प्रिय साथ और व्यावहारिक जीवन में आदर्श क्रिया-कलाप का साहस, जो कि अभिभावक ही दे सकते हैं।

बच्चों के शासक नहीं, सहायक बनें

बाल-मस्तिष्क अपरिपक्व होता है। प्रत्येक बच्चा जन्मकाल से ही निरन्तर उत्कर्ष और परिपक्वता की दिशा में अग्रसर रहता है। अपने बच्चे का विकास प्रत्येक माता-पिता चाहते हैं। लेकिन यह आकांक्षा उस समय हानिकारक हो उठती है, जब वे बच्चे के विकास की प्रक्रिया के समझदार दर्शक न रहकर, अधीर हो उठते हैं और बच्चे को शीघ्र से शीघ्र समझदार बना डालने के लिए बेचैन होकर, सीख के नाम पर उस पर शासन करने लगते हैं। इसका परिणाम विपरीत ही होता है। बच्चे का मस्तिष्क माता-पिता के निर्देशों का अर्थ नहीं समझ पाता और गलत अर्थ लगा लेता है। इससे शिशु के मानसिक विकास को क्षति पहुँचती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि बच्चे के मस्तिष्कीय विकास में हम सहायक बनें। बच्चे को आत्मनिर्भर बनने दें। उसे समझदार बनाने के फेर में परावलम्बी न बना डालें। आवश्यकता से अधिक निर्देश देने पर बच्चा सदैव माता-पिता की इच्छा ही भाँपता-ताकता रहता है, क्योंकि वह समझता है कि प्रशंसा और पुरस्कार प्राप्ति का यही एक मार्ग है। ऐसे में उसकी स्वतन्त्र निर्णय शक्ति कुन्द होने लगती है।

बालक की सामर्थ्य स्वतः ही विकासशील होती है। आवश्यकता मात्र इस बात की होती है कि उसकी विकास के प्रति जागरूक रहा जाए और सहायता की जाए। उदाहरण के लिए एक वर्ष का बच्चा जब खड़े होने का प्रयास करता है, तो उसे इतनी बुद्धि नहीं होती कि वह पहले यह अनुमान लगाये कि उसमें खड़े होने की सामर्थ्य आ भी गई है या नहीं ? वह तो माता-पिता की तरह या बड़े भाई-बहिनों की तरह स्वयं भी अपने पाँवों पर खड़ा होना चाहता है। इसके लिए वह सीधे खड़े होने की कोशिश करता है। इस प्रयास में वह बार-बार गिरेगा, किन्तु यदि माता-पिता उसके इस प्रयास को देखकर उसे गिरने न देने की चिन्ता से गोदी में उठा लें, तो यह बच्चे के प्रति अन्याय होगा। उसका स्वाभाविक विकास रुक जायेगा। यही बात बच्चों के सीढ़ियाँ चढ़ने पर भी लागू होती है। गेंद आदि खेल रहा बच्चा किसी कुएँ के बिल्कुल पास न पहुँच जाये या सड़क पर न चला जाये, इतनी भर ही सावधानी पर्याप्त है। उसके दौड़ने, गिरने, पड़ने से बहुत परेशान होना अनावश्यक है।

यहाँ दोनों पक्षों का स्मरण आवश्यक है, जहाँ बालक को पग-पग पर निर्देश हानिकर है, वहीं उसमें यह बोध भी बने रहने देना जरूरी है कि किसी भी आवश्यक क्षण में उसे माता-पिता का सहज सहयोग उपलब्ध होगा, क्योंकि यदि बच्चे को मन में यह आश्वासन न रहे, तो उसे एक तरह की अपंगता और हीनता का अनुभव होगा तथा उसके विकास में व्यवधान आयेगा। उसे हानिकर चेष्टाओं से विरत रखने के लिए भी अभिभावक की उपस्थिति एवं सतर्कता आवश्यक है।

एक ओर जहाँ अकारण झिड़कना अनुचित है, वहीं अनावश्यक सहयोग भी हानिकर है। पाठशाला जाने वाले बच्चे का गृह-कार्य (होम-वर्क) प्रारम्भ में स्वयं ही कर देने वाले माता-पिता या भाई-बहिन बच्चे का अनिष्ट ही करते हैं। यदि शुरूआत ही इस तरह की हो गई, तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चा और बड़ा होने पर भी ऐसी ही अपेक्षा पाले रहेगा और परमुखापेक्षी तथा कातर बना रहेगा।

दूसरी ओर उसकी कठिनाई को न समझने पर तथा डाँट देने पर बालक के मन में उदासीनता घर कर जाएगी। यदि विद्यालय में सीखी बात ठीक से न समझ पाने के कारण बच्चा 'होम-वर्क' नहीं कर पा रहा है, तो उसे यह कहकर झिड़क देने पर कि 'स्कूल में क्या सोते रहते हो ?' उसके मन में कुण्ठा उत्पन्न हो जायेगी, वह 'होमवर्क' को बोझ मान लेगा, पढ़ाई के प्रति उदासीन होने लगेगा और फिर सचमुच स्कूल में सोने लगेगा। उदासीनता की प्रवृत्ति का विकास बच्चे के व्यक्तित्व को अत्यधिक क्षति पहुँचाता है तथा उसे अधिकाधिक आत्म-केन्द्रित बनाता है। ऐसे ही शिशु आगे चलकर अपराधी या असामाजिक तत्त्वों के हस्तक बन जाते हैं। अतः बालक को निष्क्रिय एवं आत्मकेन्द्रित कभी भी नहीं बनने देना चाहिए। उसकी शक्ति सदैव क्रियाशील तथा रचनात्मक बनी रहे, इसका ध्यान रखना आवश्यक होता है।

उल्लास बच्चे में भरपूर होता है। उस उल्लास को कभी भी दबाना नहीं चाहिए। उसका सही उपयोग करना चाहिए। इस सबका यह अर्थ कदापि नहीं कि बच्चे को अनुशासन न सिखाया जाए। यदि बच्चे को खेलने की अनुमति देते समय आपने बाद में पढ़ने को कहा है तो इस बात का ध्यान रखें कि वह खेल के बाद पढ़ने बैठता है या नहीं ? यदि वह खेल के दौरान पढ़ाई वाली बात भूल गया है, तो उसे इसका स्मरण दिला देना चाहिए। यदि इस पर भी वह टालमटोल करता है, तो अनुशासन की पद्धति निस्संकोच अपनानी चाहिए।

शिशु के दैहिक विकास की ही भाँति, उसका व्यक्तित्व विकास भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। उस ओर समुचित ध्यान देना अति आवश्यक है। बच्चे अतिशय संवेदनशील होते हैं और प्रत्येक घटना का उन पर प्रभाव पड़ता है। अतः उनमें विध्वंसात्मक प्रवृत्तियाँ विकसित न हों, इसकी चौकसी जरूरी है। ईर्ष्या-द्वेष, तोड़-फोड़ की भावनाएँ बचपन में ही जड़ जमा बैठती हैं और बड़े होने पर उनका विकराल रूप सामने आता है, किन्तु इन प्रवृत्तियों को भी मात्र दण्ड द्वारा नहीं सुधारा जा सकता। दमन के स्थान पर मार्गान्तरण का सहारा लेना ही लाभकर होता है। बच्चे को रचनात्मक प्रवृत्तियों के विकास का अधिकाधिक अवसर देने से उसकी विध्वंसात्मक प्रवृत्तियाँ परिमार्जित हो जाती हैं।

बच्चे सरल-निश्छल होते हैं। उनकी एक सामान्य रुचि तो होती है, पर विशेष रुचियाँ अभ्यास से ही जगती हैं। जिस प्रवृत्ति का अभ्यास उन्हें होता जाता है, उसी ओर रुचि जगती जाती है। इसीलिए बालक के प्रत्येक अभ्यास का और उस अभ्यास के प्रति प्रत्येक प्रतिक्रिया का महत्त्व है। गलत आदतें डाँट-फटकार और शासन से नहीं, समझाने-बुझाने से ही छूटती हैं। बच्चे के लिए प्रत्येक बात नयी होती है। इसलिए हमारे आदेश-उपदेश सुनते ही वह उनका पालन करने लगेगा, ऐसी अपेक्षा कदापि नहीं करनी चाहिए। उस निर्देश के पालन में उसे मानसिक-कठिनाई का अनुभव हो सकता है। उस कठिनाई को सुलझाने में सहयोग देना अभिभावक का कर्त्तव्य है।

सारांश यह है कि बालक निरन्तर ध्यान दिये जाने की अपेक्षा रखता है। उसे निर्देश देकर छुट्टी नहीं पाई जा सकती, अपितु प्यार और प्रत्यक्ष व्यवहार के साथ उसे कार्यविधि सिखानी होती है। इसीलए तो प्रजनन एक गम्भीर दायित्व है।

सम्मिलित परिवार-प्रथा में वयोवृद्ध बाबा-दादी अनुभव-पक्व भी होते हैं और समय भी उनके पास होता है। बालक की चेष्टाएँ देखना उन्हें समय बिताने का सुन्दर उपाय प्रतीत होता है। इसलिए वे हड़बड़ी में नहीं होते। दुनिया देख चुकने के कारण वे छोटी-छोटी बात में अधीर भी नहीं हो उठते। यदि वे सुसंस्कृत हों तो उनमें अन्धा मोह भी नहीं होता। अतः वे बालक को समय भी भरपूर देते हैं, उसे खेल ही खेल में सीख भी देते रहते हैं तथा शिशु को शासित बनाने की व्यग्रता भी उन्हें नहीं होती। ऐसे में शिशु का अधिक स्वस्थ विकास होता है। बच्चे को जन्म देने से कई गुनी अधिक जिम्मेदारी उसके व्यक्तित्व विकास में सहायक बनने की होती है। उसके क्रमशः परिपक्व होने में यथेष्ट सहयोग देने की क्षमता होने पर ही नये प्राणी के आगमन की इच्छा करनी चाहिए। बिना समुचित सहयोग के बालक का व्यक्तित्व सही ढंग से विकसित नहीं हो सकता और तब वह एक समस्याग्रस्त बालक बनता जाता है। आवश्यकता उसकी कठिनाइयों को समझने तथा उनके समाधान में सहयोग देने की होती है।

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि बच्चों की देखभाल, पालन-पोषण में जिस चातुर्य तथा योग्यता की आवश्यकता पड़ती है, वह वयस्क-परिपक्व व्यक्ति में ही होती है। इसलिए छोटे बच्चों की देखभाल के लिए अल्पविकसित अपरिपक्व बच्चों को जिम्मेदारी सौंप देना सदैव हानिकर होता है। बच्चे को प्रारम्भ में सहानुभूतिपूर्ण समझदारी की जरूरत होती है, कोई अनुभवी व्यक्ति ही ऐसा समझदारी भरा व्यवहार कर सकने में समर्थ होता है। मनोवैज्ञानिक हरलाक का कहना है कि बच्चे का प्रश्न-काल तीसरे वर्ष से छठवें वर्ष तक पूरे जोर पर होता है। अपने प्रश्नों के उत्तरों के आधार पर बच्चा स्वयं अपने बारे में प्रत्यय बनाता है, उसी प्रत्यय के अनुसार वह दूसरों को समझने का प्रयत्न करता है। साथ ही, इन्हीं उत्तरों के आधार पर ही बच्चा दृश्यमान वस्तुओं के आकार तथा स्वरूप के संवेदनात्मक बिम्ब ग्रहण करता है। बच्चे की प्रतिक्रियाएँ इन संवेदना-बिम्बों के आधार पर ही होती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतः व्यक्तित्व-निर्माण के इस महत्त्वपूर्ण कालखण्ड में उसके सहयोग अभिभावक की भी विशेष भूमिका रहती है। अपरिपक्व-मस्तिष्क बच्चे को ऐसा सहयोग देना प्रत्येक अभिभावक का कर्त्तव्य है।

शारीरिक श्रम के साथ बच्चों का बौद्धिक विकास भी जरूरी

बच्चों में श्रम के प्रति सम्मान और रुचि पैदा करना एक बात है, लेकिन व्यक्तिगत लाभ को ध्यान में रखते हुए शोषण की नीति अपनाना सर्वथा दूसरी। राष्ट्र के लिए भविष्य में उत्तम श्रमिकों का निर्माण तो एक सत्प्रवृत्ति है, पर कष्ट तब होता है, जब छोटे किलकारी मारते हुए भावी कर्णधारों को स्कूल से हटाकर उनकी कोमलता का, शिक्षण का स्नेह एवं प्यार का ध्यान न रखते हुए उनकी सामर्थ्य से अधिक काम कौड़ी मूल्य पर कराया जाता है, जिससे उनका शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक स्वास्थ्य गिर जाता है। अब समय आ गया है, जब इस शोषण को रोका जाय और बाल मजदूरों को सभ्य, सुसंस्कृत, शीलवान, गुणवान एवं अधिकारों से परिपूर्ण नागरिक बनने का अवसर दिया जाय।

जापान जैसे देश में जहाँ श्रम को ही भौतिक जगत का देवता माना जाता है, जिसके बल पर वह सीमित वर्षों में ही प्रगति के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित हो गया, चाहे वह किसी देवता को माने या न माने पर श्रम के प्रति वहाँ पूर्ण निष्ठा है। यह संस्कार अपने कर्णधारों में कम उम्र से ही भरना प्रारम्भ कर देता है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास में कोई बाधा उत्पन्न करती हो। श्रमशीलता के साथ इसकी समग्र प्रगति हो रही है या नहीं, जापान में यह भी ध्यान में रखा जाता है कि श्रम के भार से बालक कहीं शारीरिक दृष्टि से कमजोर, अशक्त, बीमार एवं मानसिक दृष्टि से अपरिपक्व तो नहीं हो रहा है। बच्चों को वे राष्ट्र की धरोहर मानते हैं, क्योंकि छोटे बच्चों में वे सभी गुण होते हैं, जो उपयुक्त अवसर मिलने पर अंकुरित हो जाते हैं और एक समग्र वृक्ष का निर्माण करते हैं। खाद-पानी तथा उपयुक्त वातावरण का अभाव एवं प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण गिरावट एक समग्र व्यक्तित्व की गिरावट है। इसे वे हीरे, मोती जैसे बहुमूल्य रत्नों की तरह सँजोकर रखते हैं। उनकी दृष्टि में भावी पीढ़ी का मूल्य इन बहुमूल्य रत्नों से कहीं अधिक है। यही उनके विकसित होने का मूल मन्त्र है, जिसके कारण वहाँ का एक छोटा-सा बालक बाल्यावस्था से ही समग्र प्रगति करता हुआ देश की समृद्धि और सम्पन्नता बढ़ाने में प्रारम्भ से ही सहयोग करने के लिए तत्पर रहता है। साथ ही एक सफल, सुसंस्कारी एवं श्रम का समुचित सम्मान करने वाला नागरिक बन जाता है।

इसके ठीक विपरीत इतिहास के पन्ने उलटने पर यह स्पष्ट होता है कि बाल श्रमिकों की परम्परा १६वीं सदी में इंग्लैण्ड और अमेरिका से प्रारम्भ हुई। परिणामस्वरूप अमेरिका जैसे सम्पन्न एवं समृद्ध राष्ट्र में १६ वर्ष से कम उम्र के आठ लाख बच्चों को स्कूली पढ़ाई छोड़कर कठोर श्रम में लगना पड़ता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार विकासशील देशों में ८ से १५ वर्ष की आयु के ७ करोड़ ५० लाख बच्चे मेहनत-मजूरी करके ही अपना जीवनयापन करते हैं। इस परिस्थिति में वहाँ की सम्पन्नता, प्रगति बाह्य दृष्टिकोण से भले ही अच्छी प्रतीत होती हो, किन्तु इसके दुष्परिणामों पर दृष्टिपात किया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि उसके पीछे अनेकानेक वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय समस्याएँ भी उपजती हैं। अमेरिका जैसे सम्पन्न देश के अतिरिक्त इंग्लैण्ड, आस्ट्रेलिया, कोलम्बिया, थाईलैण्ड, श्रीलंका एवं भारत में भी इन बाल श्रमिकों की संख्या में असाधारण वृद्धि होती जा रही है। उचित वातावरण एवं माता-पिता के स्नेह के अभाव में ऐसे बच्चे भटक जाते हैं और विलासी एवं नशाखोरों के हाथ लगते हैं। अवांछनीय तत्त्वों के साथ इनका सम्पर्क बढ़ने से परिवार में परेशानी, समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करते हैं। ये नौनिहाल खाने-खेलने की उम्र में नशेबाजी, चोरी, डकैती जैसी कितने ही प्रकार की गन्दी लतों के आदी बन जाते हैं।

इस तरह जिस नन्हें परमाणु से कोई उपयोगी कार्य हो सकता था, वह भयानक स्वरूप में समाज की सुख-शान्ति को तहस-नहस करने में लग जाता है। परमाणु जब बम की शक्ल ग्रहण कर लेता है, तो उससे ऐसे ही परिणाम की अपेक्षा की जा सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार अनाचारी तत्त्व अधिकांश बाल श्रमिकों से ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि उन्हें सही वातावरण नहीं मिल पाता, जो उन्हें सही मार्गदर्शन दे।

इसके साथ एक और विडम्बना जुड़ जाती है कि माता-पिता भी इनका विरोध नहीं करते और मूक-दर्शक बने देखते रहते हैं। कई बार तो ऐसी दुःखद परिस्थितियाँ देखने को मिलती हैं कि माता-पिता अपने ऋण से मुक्ति पाने के लिए स्वयं इस ओर अपने बच्चों को कम उम्र में प्रेरित ही नहीं करते, वरन् दबाव भी देते हैं। ऐसे अभिभावकों की ललक-लिप्सा बच्चों को विकलांग बनाकर छोड़ती है। जो भिखारी के रूप में धनी और सम्पन्न लोगों की सहानुभूति एवं करुणा का पात्र बनें और उनके लिए मुफ्त में धन बटोर सकें। इसीलिए भारतीय संविधान की धारा ४५ के अनुसार १४ वर्ष से कम उम्र के बच्चों को किसी कारखाने, खानों और किसी जोखिम भरे काम में लगाना अपराध माना गया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कम उम्र में भारी काम करने का बुरा प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़ता है। जहरीले रसायन, विषाक्त धुएँ और गैसों के बीच ही इन बच्चों को साँस लेनी पड़ती है, जो स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिप्रद है। उपयुक्त मजदूरी के अभाव में वे अपनी दैनिक आवश्यकताओं तक की पूर्ति नहीं कर पाते। फलतः उन्हें विभिन्न प्रकार की आधि-व्याधियों का शिकार बनकर अपने मौत के दिन पूरे करने होते हैं। कम उम्र में भारी काम करने वाले की रीढ़ टेढ़ी हो जाती है, जिसकी क्षतिपूर्ति जीवनपर्यन्त नहीं हो पाती। यही कारण है कि कारखानों में देर-सबेर तक लगे रहने वाले अधिकांश बच्चों के हाथ-पैर विकृत होते हैं। ऐसे बच्चे समय से पूर्व ही दम तोड़ देते हैं।

श्रम करना बुरा नहीं है। श्रमशीलता को मानव जीवन का अनिवार्य अंग माना गया है, किन्तु 'अति सर्वत्र वर्ज्यते' की उक्ति यहाँ प्रमाणित होती है। श्रम की अति यदि शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास के मूल में ही कुठाराघात करने लगे, तो उसका नियमन करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी हो जाता है।

यही कारण है कि प्राचीनकाल के गुरुकुल शिक्षण परम्परा में बालकों के समग्र विकास की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। उस पर अतिरिक्त दबाव भी न पड़े और अधिक लाड़-प्यार में आलसी भी न हो जाय। श्रम बिल्कुल न करने से उसकी भावी प्रगति रुक जाती है, वह अकर्मण्य जैसा बन जाता है, यही दुर्गुण उम्र बढ़ने के साथ बालक के व्यक्तित्व पर कुठाराघात करता है। ऐसा बालक परिवार से बाहर रहने में परेशान हो जाता है। माता-पिता के संरक्षण में ही रहना पसन्द करता है। इसके विपरीत अधिक श्रम करवाने पर बालकों का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं भावनात्मक विकास नहीं हो पाता, जो आज बाल मजदूरों के साथ हो रहा है।

पैतृक व्यवसाय में हाथ बँटाना, पढ़ाई एवं खेल के अतिरिक्त समय में कुछ उपार्जन कर लेना स्वावलम्बी होने का गुण है। इससे श्रम के प्रति अभिरुचि जगने का संस्कार विकसित होता है, लेकिन बाल्यावस्था से ही कठोर श्रम की ओर प्रेरित करना, दबाव देना, मात्र एक बालक की ही हानि नहीं है, बल्कि देश के भावी कर्णधार को हानि पहुँचाना है। देश को एक सभ्य, सुसंस्कृत, विद्वान, मनीषी स्तर की प्रतिभा से वंचित करना है। इस ओर माता-पिता एवं शिक्षक के साथ-साथ प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य हो जाता है कि इन्हें सही मार्गदर्शन एवं संरक्षण प्रदान करें।

एक आँख दुलार की, दूसरी सुधार की

पहलवान बनने वालों के लिए दूध, घी आदि पौष्टिक, गरिष्ठ खुराक की व्यवस्था होती है, पर साथ ही दण्ड-बैठक, कुश्ती, मालिश आदि कड़े परिश्रम करना भी उतना ही आवश्यक होता है। यह इसलिए कि वह भारी प्रकृति की और अधिक मात्रा में ली हुई खुराक ठीक तरह हजम हो सके। कोई व्यक्ति खुराक तो वैसी ही रखे, पर कसरत के कष्ट और झंझट से अपने को बचाना चाहे, तो वह घाटे का सौदा रहेगा। अपचजन्य कई बीमारियाँ हो जायेंगी। मुटापा चढ़ दौड़ेगा और स्थिति ऐसी बन जायेगी, जो सस्ती-हल्की खुराक खाने वालों से भी बुरी पड़ेगी। पौष्टिक आहार लेना है, तो उसे पचाने के लिए कड़ी मेहनत करनी ही चाहिए।

प्यार पौष्टिक भोजन की तरह है। उसकी उपयोगिता तथा क्षमता के सम्बन्ध में दो राय नहीं हो सकती, पर इस खतरे को भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि अपच होने पर उल्टी प्रतिक्रिया होगी। ऐसी दशा में अमृत भी विष बन जाता है।

धन, बल, पद, रूप, सौन्दर्य आदि कितनी ही सम्पदाएँ मनुष्यों में से कितनों को ही प्राप्त होती हैं, पर उनमें से वे भाग्यवान थोड़े ही हैं, जो उन्हें पचा पाते हैं और अपनी नम्रता, शालीनता में किसी प्रकार की कमी नहीं आने देते। आमतौर से छोटी बुद्धि या प्रकृति वालों को सम्पदाओं का अपच होता है और वे उद्धत हो उठते हैं। यह उद्धतता, श्रृंगारिकता, साज-सज्जा, विलासिता, अहमन्यता, दर्प, अपव्यय, झगड़ा-झंझट आदि के रूप में दृष्टिगोचर होता है। विनम्रता और कृतज्ञता से रहित उद्दण्ड व्यक्ति अन्ततः घाटे में रहता है। उसके व्यक्तित्व का मूल्य हर किसी की दृष्टि में घटता जाता है। भले ही वह उद्धत, अहंवादी अपने सम्बन्ध में कुछ भी सोचता रहे।

यहाँ प्रसंग स्नेह-दुलार का चल रहा है। जिन्हें वह मिलता है वे बड़े भाग्यवान हैं। संसार में सबसे अधिक मीठी, आकर्षक और बलप्रद प्रेम भावना ही है। उससे मनुष्य तो क्या भगवान को भी आकर्षित किया और अपना बनाया जा सकता है। हिंस्र पशु भी साथी-स्नेही बनाये जा सकते हैं। ईश्वर की उपलब्धियों में बार-बार भक्तिभाव का वर्णन किया जाता है। लोग इसे कर्मकाण्डात्मक उपचार समझ बैठे हैं, जबकि वास्तविक अर्थ सघन आत्मीयता, अद्वैत अनुभूति और समर्पण भावना है। शक्ति का अर्थ याचना तो किसी भी प्रकार नहीं हो सकता। भिखमंगा जो पाता है उसके पूर्व अपनी गरिमा गँवा बैठा होता है और दीन-हीन बन चुका होता है। ऐसों को किसी का अनुग्रह भले ही मिल जाय। वह नहीं मिल सकता, जिसे सच्चे प्रेम का सच्चा प्रतिदान कहना चाहिए।

आमतौर से बड़ों से छोटे प्रेम, अनुग्रह, दुलार, वात्सल्य चाहते हैं। बदले में छोटों को प्रसन्न, विकसित होते देखकर, कृतज्ञता की अनुभूति छलकते देखकर संतोष हो जाता है। बच्चे बड़ों के अनुदान का प्रतिदान तो कहाँ चुका पाते हैं ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

प्रेम देते समय भी दाता को बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। ऐसा न हो कि उससे अपचजन्य दुर्गुण उत्पन्न होने लगे। चिकित्सक औषधि की सीमित मात्रा देता है। ऐसा नहीं करता कि रोगी अपना स्वजन-सम्बन्धी है, तो मोहवश दूनी-चौगुनी मात्रा में औषधि खिलाने लगे। साथ ही पथ्य ठीक चल रहा है या नहीं, इसकी भी कड़ी पूछताछ करता रहे। अपना सम्बन्धी होने के कारण रोगी को माँगी हुई अपथ्य की खुराक की भी छूट दे दी जाय, ऐसा कोई बुद्धिमान चिकित्सक नहीं करता।

प्रेम के सत्परिणामों की जिन्होंने प्रशंसा सुनी है। दुलार को उत्साहवर्द्धक जिन्होंने माना है, साथ ही यह बात भी ध्यान रखने की है कि यह प्रसंग बड़ी सावधानी का है और दूरदर्शितापूर्वक यह जाँचते रहने का है कि इसका परिणाम अब या भविष्य में क्या होगा ? स्मरण रहने लायक तथ्य है कि जिस प्रक्रिया में जितने हित साधन की क्षमता होती है, उसका दुरुपयोग बन पड़ने पर उतनी ही हानि होती है। दिवाली के दिनों में आतिशबाजी जलाते हुए उनके रंग-बिरंगे दृश्यों से सभी दर्शकों को प्रसन्नता होती है, पर यह बात भी भूलने की नहीं है कि इसमें असावधानी बरते जाने के कारण हर साल कितने ही बुरी तरह जल जाते हैं। अस्पतालों में भीड़ लगती है। कितने ही अपंग हो जाते हैं, कितने ही जान गँवाकर स्वजन-सम्बन्धियों को रोता-बिलखता छोड़कर विदा होते हैं। सरकारी आँकड़ों से विदित होता है कि महालक्ष्मी का पूजन जहाँ धन-दौलत मिलने की आशा बँधाता है, वहाँ जान-माल की तिलमिलाने वाली हानि भी खड़ी करता है। इसमें न दोष लक्ष्मी का है, न आतिशबाजी का। दोष उस असावधानी का है, जो चलाते समय बरती गयी। चाकू का गलत उपयोग तक अपनी अँगुली काट देता है। प्रेम के सम्बन्ध में भी यही बात है। उससे उत्साह बढ़ता है और अपने सहायकों-सम्बन्धियों की स्थिति का आभास होते ही गर्व भी बढ़ता है। यह बढ़ा हुआ उत्साह, हर्ष और गर्व आदि नियन्त्रण में न रखा गया, तो परिणति दुर्गुणों की अभिवृद्धि के रूप में होती है। नासमझी भरे दुलार ने जितनों को बिगाड़ा है, जितनों का भविष्य अन्धकारमय बनाया है, उसे देखते हुए संदेह होता है कि प्रेम में भी कहीं अमृत के साथ विष तो नहीं भरा हुआ है।

तत्त्वज्ञानी मनीषियों का कथन है कि 'एक आँख प्यार की दूसरी सुधार की।' रखी जाय। घोड़े को एड़ लगाकर बढ़ाते हैं, पर यदि उसकी चाल बेकाबू होने लगे तो लगाम लगाकर रोकते भी हैं।

सद्गुणों और दुर्गुणों का विकास छोटी आयु में और अनियन्त्रित दुलार के वातावरण में होता है। यह समय अतीव सावधानी का है। इसे बरतने की जिम्मेदारी छोटों पर नहीं छोड़ी जा सकती। बड़ों को भी वस्तुस्थिति समझनी चाहिए कि उनके दुलार ने उत्साह प्रदान किया, मनमाने साधन दिये। इस बीच ऐसा तो नहीं हो रहा है कि दुष्प्रवृत्ति चुपके-चुपके उस खाद-पानी को पाकर पनपने लगे और पता तब चले जब सुधार कठिन हो जाय या बहुत विग्रह खड़ा करने पर परिस्थिति काबू में न लाई जा सके।

किशोर लड़के और लड़कियाँ प्रेम शब्द के मायाजाल में दुष्ट-दुराचारियों द्वारा फँसाये जाते हैं और उनकी जिन्दगी बर्बाद-बदनाम कर दी जाती है। इस प्रसंग में प्रेम-पत्रों का आदान-प्रदान, वैसी एकान्त-वार्ता का ऐसा क्षेत्र बना लेते हैं, जिसके लिए बच्चों को, उनके अभिभावकों को सिर धुनकर पछताना पड़ता है। ऐसे दुर्भाग्यग्रस्तों में अधिकांश वे होते हैं, जिन्हें आरम्भ में ही अभिभावकों का बुद्धिहीन दुलार मिला। अवांछनीय श्रृंगारों की सुविधा दी गयी। आये दिन सिनेमा दिखाये गये। भले ही इसके पीछे अभिभावकों का विशुद्ध दुलार और बच्चों की इच्छापूर्ति भर का मन रहा हो, पर देर-सबेर यह बात वे भी समझ जाते हैं कि दुलार, पैसा, श्रृंगार साधन, यार-दोस्तों में आने-जाने की छूट जैसे कारण आरम्भ में भले ही निर्दोष लगते रहे हों, पर पीछे वे मूर्तिमान दुर्भाग्य और आजीवन पश्चात्ताप का कारण बनते हैं। आजकल मुँह से पवित्र रिश्ता बताना और व्यवहार में चुपके-चुपके दुष्टता भरे सम्बन्ध पनपाना एक प्रकार का फैशन जैसा बन गया है। बच्चों को दुलार देते समय अभिभावकों को इतनी विवेक-बुद्धि भी रखनी चाहिए कि स्नेह-सौजन्य की आड़ में कहीं कोई अनर्थ न पक रहा हो। इसके लिए सुधार दृष्टि का उपयोग भी उसी स्तर का समानान्तर किया जाना चाहिए, जितना कि दुलार की उमंगों को चरितार्थ करते समय किया गया था।

यह बाल-बच्चे और अभिभावकों तक सीमित नहीं हैं। मित्र-मित्र के बीच भी इसी नीति का अवलम्बन किया जाना चाहिए। आजकल नशेबाजी, व्यभिचार, आवारागर्दी, सिनेमा आदि की आदतें मित्रता के नाम पर ही सीखी-सिखाई जाती हैं। मित्रता साथी के लिए कोमल भावनाएँ उगाती है। आपस में एक-दूसरे की इच्छा पूरी करने का मन रहता है। इन्कार करने में साथी का दिल दुःखता प्रतीत होता है। मैत्री के साथ संकोचशीलता जो जुड़ी होती है, इससे स्पष्ट और कड़ा विरोध भी नहीं बनता। इस प्रसंग में मित्रों में से जो पतनोन्मुख होता है, वह भलेमानस स्तर वाले के पीछे लगे रहने पर उसे गिराकर ही छोड़ता है, जबकि होना ठीक उल्टा चाहिए।

रामायण में मैत्री के साथ ईमानदारी जुड़ी होने की परख एक संक्षिप्त सूत्र में बताई गयी है—

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा।

अभिभावकों और बच्चों के बीच चलने वाले स्नेह-दुलार के उपरान्त आयु बढ़ते-बढ़ते किशोरावस्था की देहरी पर पैर रखते हुए समान आयु वालों के साथ मैत्री

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पनपने का नया अध्याय खुलता है। वह जितना उत्साहवर्द्धक है, उतना ही खतरों से भरा हुआ भी। आवारा किस्म के लड़के अपने दुर्व्यसनों से आग के लिए ईंधन की तरह भोली प्रकृति के बच्चों पर घात लगाते हैं। इस घात का प्रत्यक्ष स्वरूप मैत्री ही होता है। इसका आरम्भ प्रायः वैसा ही होता है जैसा कि चिड़ीमार और मछलीमार छोटे प्रलोभन देकर शिकार को फँसाते रहते हैं। इस सन्दर्भ में बच्चे अपना हित अथवा अनहित कम समझते हैं। इसलिए अभिभावकों या सच्चे हितैषी सम्बन्धी की जिम्मेदारी इस क्षेत्र में विकसित होती है कि वे मैत्री के साथ औचित्य जुड़े होने की बात सूक्ष्म बुद्धि और सतर्कतापूर्वक परखते रहें और रोकथाम करने का अवसर हो तो उस संकोच को आड़े न आने देना चाहिए, जो सत्परामर्श देते ही नहीं उनके सम्बन्ध में कड़ाई बरतते हुए व्यवहार में लाने होते हैं।

दुलार के लिए एक नहीं अनेक द्वार होते हैं। समयानुकूल रिश्तों के नाम बदलते रहते हैं पर मूल तथ्य जहाँ का तहाँ रहता है। यह पूरी तरह आशंका है कि प्रेम विशुद्ध होते हुए भी उसके साथ-साथ अनौचित्य का आग्रह भी घुस पड़े और वह मित्रता के दबाव में सूझ तक न पड़े। पति-पत्नी के बीच स्वाभाविक प्रेम होता है। इतने पर भी किसी पक्ष के आग्रह ऐसे हो सकते हैं, जो अदूरदर्शितापूर्ण एवं अनुचित हों। उन्हें रोकने की सच्ची मित्रता का पालन करते हुए पूरी-पूरी गुंजाइश है। पत्नी का कर्त्तव्य है कि पति की नशेबाजी जैसी कुटेवों को रोकते हुए अपने सच्चे प्रेम का निर्वाह करती रहे। इसी प्रकार पत्नी सम्मिलित कुटुम्ब के प्रति सिर पर आये हुए उत्तरदायित्वों से इन्कार करती है तो उसकी हाँ में हाँ मिलाने की अपेक्षा कर्त्तव्य और औचित्य का उसे पक्षधर बनाना चाहिए। भाइयों, सम्बन्धियों, कुटुम्बियों में भी दुलार के साथ सुधार का सिलसिला चलता रहे तो ही उसे आदर्श एवं उद्देश्यमय कहा जा सकता है।

छोटों की ओर से बड़ों के प्रति भी प्यार होता है। उसे श्रद्धा, सम्मान या आचार, अनुशासन कहते हैं। यह भी यथावत् चलना चाहिए किन्तु स्मरण रखने योग्य यह भी है कि उसके पीछे अनीतिपोषक दुराग्रह न हो। देखा गया है कि बड़े-बूढ़ों द्वारा नई पीढ़ी में कुरीतियों को अपनाने के लिए दबाव डाला जाता है। बाल-विवाह, दहेज, शादी की धूमधाम, मृतक भोज, तीर्थ परिभ्रमण, पर्दा प्रथा, बलात् वैधव्य का निर्वाह, जाति-पाँति की कठोरता जैसे विवादहीन कुप्रचलनों में वयोवृद्धों की बड़ी आस्था होती है और वे इन बातों के लिए नयी पीढ़ी को, छोटों को, शिष्यों को अपने बड़प्पन की दुहाई देकर दबाते देखे गये हैं। ऐसे अवसरों में उनका लौकिक शिष्टाचार सम्मान बनाये रहना ही पर्याप्त है। आवश्यक नहीं कि उनकी आज्ञा ही मानी जाय और जैसा वे कहें, वैसा ही किया जाये। कर्कश शब्दों में नहीं, नम्रता भरी शब्दावली में उनके आदेश का स्पष्ट इन्कार किया जा सकता है। रिश्ते बड़े नहीं हैं, सत्य और तथ्य बड़ा है। उनके निर्वाह हेतु अपनें से, विरानों से झंझट मोल लिया जाता है तो अर्जुन की तरह उस असमंजस को भी गले उतारना चाहिए।

'एक आँख दुलार की, दूसरी सुधार की' रखकर ही हमें अपने व्यवहार का स्वरूप निर्धारित करना चाहिए। वही उचित है और वही आवश्यक भी।

बालकों के विकास सम्बन्धी समस्याएँ

यों तो एक वर्ष के बच्चे में बुद्धि का विकास मनोवेगों के प्रदर्शन द्वारा स्पष्ट होने लगता है, पर दो-ढाई वर्ष का होने पर बालक में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। परिवार के मुखिया को चाहिए कि. बच्चे की परिपक्व होती हुई मानसिक शक्तियों के विकास में सहायता प्रदान करे। तीन वर्ष तक गुप्त मन अपनी विशेष सेवाएँ अर्पित करता है। अतः प्रारम्भिक काल में बच्चों को डाँटने-डपटने, मारने-पीटने, अत्याचार करने या कठोर नियन्त्रण में रखने से गुप्त मन में जटिल मानसिक ग्रन्थियाँ उत्पन्न होती जाती हैं। इस काल में प्यार, सहानुभूति तथा दुलार से ही उसमें उत्साह भरना चाहिए। तनिक-सी वृद्धि या अच्छाई उत्पन्न होते ही प्रशंसा दिल खोलकर करना, बच्चों को छोटे-छोटे उपहार, चटकीले खिलौने, कुत्ते-बिल्ली के बच्चे या अन्य सामान देना उत्तम है।

३ से ६ वर्ष में बालक का विकास—

बालक की ३ से ६ वर्ष की अवस्था में मन अपना कार्य प्रारम्भ कर देता है। प्रारम्भ में उसे जो मानसिक संवेदनाएँ, विचार या अनुभव प्राप्त हुए हैं, वे अब स्पष्ट होने लगते हैं। बालक पर परिस्थिति की छाप तो नहीं लगती, वह परिस्थिति को समझने लगता है। उसका व्यक्तित्व स्थापित होने लगता है और वह स्वयं स्फुटित होने लगता है। उस काल में बालक हाथ-पाँव से भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति करना चाहता है और इसी के द्वारा ज्ञान ग्रहण करता है। पालने वालों की गरीबी, योग्य शिक्षक का अभाव, अनुकूल व्यवस्था की कमी होने पर बच्चे का मानसिक विकास रुक जाता है।

मैडम पौटेसरी नामक बालमनोविज्ञान विशेषज्ञा का कथन है कि ३ से ६ वर्ष की आयु में बालक शिक्षा ग्रहण करने के लिए तैयार हो जाता है, किन्तु शिक्षण का संस्कार बालक की स्वयं प्रवृत्ति पर ही सध सकता है। अर्थात् उसके स्व-प्रयत्न पर निर्भर होता है। उत्साह द्वारा उसे स्वयं प्रयत्न करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। साधन द्वारा वह संस्कार ग्रहण करने में समर्थ होता है। इसके अतिरिक्त बच्चा चरित्र के विकास के लिए भी योग्य बन जाता है, पर इस आयु में बालक अपने द्वारा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही विकास की बातों को ग्रहण कर सकता है। ये तत्त्व उस पर लादे नहीं जा सकते। चरित्र विकास के लिए परिवार के प्रत्येक सदस्य को बालक के सामने आदर्श रखना चाहिए। वह आदर्शों का अनुकरण करके सब सीखेगा। आज्ञा द्वारा भी नीति की कई बातें सीख सकता है। इस आयु में बालक अधिक से अधिक शब्द माँगता है। इन शब्दों के उच्चारण में उसे एक अजीब रस प्रतीत होता है। उसे नये-नये फलों, तरकारियों, व्यक्तियों के नाम भी देने चाहिए। घर की वस्तुओं, पोशाक, मोहल्ले, गाय, भैंस, बकरी इत्यादि में उसे विवेक प्रारम्भ हो जाता है। ३ से ६ वर्ष की आयु में प्रत्यक्ष वस्तुओं द्वारा नाम सिखाये जाएँ तो बालक उन्हें कठिन और लम्बे होने पर भी ग्रहण कर लेता है।

इस समय बालक की कल्पनाशक्ति भी विकसित हो उठती है। अतः वे परियों, साँपों, जादू की कहानियों, अद्भुत वस्तुओं की बात-चीत में विशेष रस लेते हैं। ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती है, इसी कल्पना द्वारा बालक अपने ज्ञान की वृद्धि करता है। परिस्थिति से अनुभव लेकर उन पर कल्पना करता है। नवीन बातों की जानकारी के लिए उसकी जिज्ञासा जाग्रत होती है। वह माता-पिता तथा परिवार वालों से नाना प्रकार के प्रश्न करेगा। सावधान ! ये प्रश्न दबा न दिये जाएँ, वरन् कुछ न कुछ उत्तर अवश्य दिए जाएँ। उत्तर देने वालों को बालक की ग्रहण शक्ति का समुचित ध्यान रखना चाहिए। उत्तर देते समय तीन तत्त्वों की ओर विशेष ध्यान रखिए—

१. बाल मानस का ज्ञान। २. परिस्थिति की जानकारी। ३. विषय को सरल बनाकर समझाने की कला।

बालक में किसी प्रकार की शंकाएँ न रह जाएँ, विरोध खड़ा न हो। बातें उलझी व अधसमझी हुई न रहें, प्रत्युत वह सन्तुष्ट हो जाय।

६ से १० वर्ष तक का विकास—

बच्चे का विकास और होता है वह ६ से १० वर्ष तक का हो जाता है। उस काल में वह पढ़ने-लिखने में खूब दिलचस्पी लेता है। हमें चाहिए कि निम्न रीतियों से उसके विकास में सहायता प्रदान करें—

१. उत्तम पुस्तकें, जिनमें साहसिक कहानियाँ हों, ये पूर्ण पवित्र चरित्र का निर्माण करने वाली हों, २. बच्चों द्वारा छोटे-छोटे एकांकी-नाटकों के अभिनय कराये जाएँ। पौराणिक या ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर बच्चों के लिए अच्छे नाटक तैयार कराये जा सकते हैं, ३. वैराइटी शो—यह मन्दबुद्धि के बच्चों के लिए बड़ा उत्तम शिक्षा का साधन है। इससे गाने, अभिनय और हाव-भावों का प्रदर्शन होता है, ४. वाद्य यन्त्रों पर संगीत, भजन और कीर्तन इत्यादि, ५. बच्चों को सैर के लिए ले जाया जाय और उन्हें भाँति-भाँति के जीव, पक्षी, चिड़ियाँ, कीड़े-मकोड़े दिखाये जाएँ, ६. भिन्न-भिन्न देश के बालकों के वर्णन, ७. चित्रकारी के लिए अभिरुचि उत्पन्न की जाय। अच्छे-अच्छे चित्र, खुदाई के काम, खिलौनों का बनाना बालक की छिपी हुई प्रवृत्तियों का विकास करेगा। बच्चों के शौकों का विकास करना चाहिए।

बच्चों के कुछ शौक इस प्रकार हैं—१. टिकट एकत्रित करना, २. बड़े आदमियों के हस्ताक्षर, चित्र, दियासलाई के लेबिल, फोटोग्राफ, पत्तियाँ-पुष्प एकत्रित करना, ३. सुन्दर मासिक-पत्रों तथा पुस्तकों का संग्रह, ४. भाँति-भाँति के खेलों के साधन जुटाना, ५. तितलियाँ, कीड़े-मकोड़े, बिल्ली-कुत्ते के बच्चे, पंछी पालना, ६. देश-विदेश के बालकों के पत्र-व्यवहार। यह सब ज्ञानवर्द्धन का बड़ा अच्छा साधन है, ७. स्थानीय पहाड़, पड़ौस, अपने प्रदेश की सैर। ऐसे पर्यटन बालक के मन में विभिन्न प्रान्तों के मध्य एकदेशीय सांस्कृतिक एकता के भाव दृढ़ करते हैं।

प्रौढ़ अवस्था में विकास—

बड़े होने पर बच्चों को एक मित्र की हैसियत से रखना चाहिए। चौदह वर्ष की आयु में बच्चे में एक बहुत बड़ा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होता है। कौमार्य समाप्त होकर यौवन का प्रवेश होता है और विपरीत लिंग के व्यक्तियों में भारी आकर्षण प्रतीत होने लगता है। माता-पिता को बड़ी सावधानी से इस आयु में बच्चे के मानसिक और शारीरिक परिवर्तन आने में सहायता करनी चाहिए। ब्रह्मचर्य की पुस्तकें, कामोत्तेजक स्थानों, दृश्यों, गन्दी पुस्तकों से बचाना चाहिए। प्रेममय पथ-प्रदर्शन से बहुत काम निकल सकता है। तीव्र आलोचना या सीधा हस्तक्षेप शोचनीय होगा। यदि समलिंगी अथवा भिन्नलिंगी मित्र अत्यधिक स्वत्व जताने वाली हो तो ऐसा सम्बन्ध दुर्भाग्यपूर्ण है और परिवार के मुखिया को इसकी निगरानी करनी चाहिए। यदि ऐसे गर्हित सम्बन्ध की अविवेकशीलता समझा दी जाय, तो काम निकल सकता है। कामशिक्षा की आवश्यकता से कौन इन्कार कर सकता है ? पवित्र ढंग से किसी विश्वासपात्र व्यक्ति के द्वारा जवान बालक को शिक्षा मिलनी चाहिए।

परिवार वास्तविक रूप से घर होना चाहिए न कि होटल। जहाँ माता-पिता और युवा पुत्र-पुत्रियों में परस्पर मित्रता और सहानुभूति का सम्बन्ध हो, वही प्रेममय स्थान घर कहा जाता है। ऐसे प्रेम और सरस वातावरण में बालक का सन्तुलित विकास होता है। माता-पिता अपने बच्चे के दोस्तों को भोजन, खेल और बात-चीत के लिए घर बुलायें, तो श्रेष्ठ है। इससे बच्चे का घर में विश्वास बढ़ता है।

जहाँ तक हो सके बालकों को अपने इष्ट-मित्रों के चुनाव का अवसर प्रदान करना चाहिए। उसमें थोड़े-से पथ-निर्देश से काम चल सकता है। स्मरण रखिये, यदि आप बालक के मित्रों की अवहेलना करेंगे, तो उसे अपना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विरोधी ही बना लेंगे। उनके मित्र के साथ शिष्टता एवं कोमलता का व्यवहार हो। इसे आपका पुत्र-पुत्री पसन्द करेगी।

माता-पिता को सदा समय के अनुसार चलना चाहिए। आपका मुख्य ध्येय अनुशासन नहीं, डाँट-फटकार जुर्माना नहीं, प्रत्युत प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण मित्रता का सम्बन्ध होना चाहिए। आपका पुत्र भी मित्र सदृश्य ही है। एक सहानुभूतिपूर्ण माता-पिता के समान कौन अच्छा मित्र हो सकता है ?

सीधे हस्तक्षेप न कर, परोक्ष तरीकों से, अर्थात् ऐसे उपायों से उनकी गलतियाँ बतलानी चाहिए कि वे बुरा न मान बैठें। उनके 'अहं' की रक्षा, गर्व की रक्षा का ध्यान रखें। यदि वे बालक की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अपहरण न करें, तो माता-पिता तथा बालक के मध्य किसी प्रकार का संघर्ष उत्पन्न नहीं होगा।

मनोवैज्ञानिकों ने स्पष्टतः निर्देश किया है कि घर तथा परिवार के सदस्य ही बालक के जीवन के विकास के साधन हैं। अनुकरण, परिस्थितियाँ, आपके भले-बुरे निर्देश, सामाजिक स्थिति, सभी इसके चरित्र पर अपना-अपना प्रभाव डालने वाले हैं। बात यह है कि व्यक्ति की शक्तियों, योग्यताओं, भावनाओं और प्रकृतियों का विकास एक प्रकार का सम्पूर्ण वातावरण स्थायित्व, सुरक्षा तथा शक्ति माँगता है। यह सब आपके परिवार में जितनी सच्चाई और पूर्णता से मिल जाता है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। बालक के विकास के लिए हमें सुखद, प्रेममय, मोदकारी वातावरण प्रस्तुत करना चाहिए।

बाल-विकास में घातक अवरोध —विघटित परिवार

नवविवाहित दम्पत्तियों में किन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर अपने परिवार से अलग होने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। अनुभव की कमी और स्वच्छन्द जीवनयापन की भावना के कारण उठाया गया यह कदम इन दम्पत्तियों को बहुत महँगा पड़ता है। जब परिवार बनता है, बच्चों का जन्म होता है, उनके पालन-पोषण और व्यक्तित्व के विकास का समय आता है, तब एक नहीं अनेकों प्रश्न उठ खड़े होते हैं एवं वस्तुतः जिस स्वर्गीय सुख की कामना से संयुक्त परिवार टूटा था, वह निरा स्वप्न सिद्ध होता है। भावावेश में उठाया गया यह कदम भी गलत सिद्ध होता है।

पारिवारिक विघटन का सबसे ज्यादा प्रभाव बालकों के विकास पर होता है। संयुक्त परिवार में बच्चे को दादी का, दादा का, चाचा का, ताऊ का आदि अनेक परिजनों का स्नेह-ममत्व मिलता है। बालक प्रेम और आत्मीयता भरे इस वातावरण में पुलकित हो उठते हैं। सब ओर से मिलने वाला प्रेम इस बालक के व्यक्तित्व का समुचित विकास करने में सहायक होता है।

जबकि विघटित परिवार में माता और पिता ही होते हैं। इनके अतिरिक्त और किन्हीं बड़े आत्मीयजनों का स्नेह नहीं मिल पाता। बालक कोई गलती करता है तो माता-पिता चीख उठते हैं ? बच्चों को अनावश्यक रूप से डाँट-डपट देते हैं। जिसका बहुत बुरा प्रभाव बच्चे के मन पर होता है, माता-पिता के प्रति एक भय मिश्रित भाव घर कर जाता है। फलतः बालक का विकास कुण्ठित होने लगता है।

घर में बाह्य जगत में दीख पड़ने वाली वस्तुओं के प्रति बच्चों के मन में जिज्ञासा जागती रहती है। संयुक्त परिवारों में माँ-बाप से सहमा हुआ बालक दादी-दादा या चाचा-चाची की छाती से जा चिपटता है। विघटित परिवार में माँ-बाप से डरे हुए बच्चे अपनी प्रतिक्षण उठती रहने वाली ज्ञान की पिपासा सहज रूप से व्यक्त नहीं कर पाते। वे मन ही मन कोई अटकल लगा लेते हैं या उसे ज्यों की त्यों छोड़ देते हैं। समाधान न करने से बच्चों के मस्तिष्क में जिज्ञासुवृत्ति ही लुप्त होने लगती है और धीरे-धीरे समाप्त-सी हो जाती है। परिणामस्वरूप वह बालक या तो कूप-मण्डूक ही रह जाते हैं अथवा उल्टी धारणा जमा लेते हैं। संयुक्त परिवार में ज्ञानार्जन के लिए अधिक उपयुक्त साधन रहते हैं। बच्चा माँ-बाप से सहमा हुआ है, तो चाचा-चाची से जा पूछेगा। उन्होंने अनभिज्ञता प्रकट कर दी तो ताऊ-ताई से पूछ लेगा। घर में कोई न कोई समाधान करने वाला तो मिल ही जाएगा।

अपनी जिज्ञासा का उपयुक्त हल उसके मन में दूसरी वस्तुओं के सम्बन्ध में एक आकर्षण-भाव पैदा करता है। उसके मन में तरह-तरह की नई जानकारियाँ प्राप्त करने की लालसा जागती है और वह ज्ञानार्जन के क्षेत्र में अधिक आगे बढ़ जाता है।

ज्ञान के बाद आचार शिक्षा का क्रम है। वेद-शास्त्रों तथा विद्वानों ने आचार को पहला धर्म माना है। आचार की शिक्षा संयुक्त परिवार में जितनी सुगमता से मिल सकती है, विघटित परिवार में कम सम्भावना रहती है। घर में पिता को ही पूज्य मान लिया जाता है। समूची श्रद्धा और आदर-भाव का केन्द्र पिता ही बन जाता है। माता के प्रति अधिक आत्म-भाव होने से सामान्य शिष्टाचार का प्रायः बहुत कम निर्वाह होता है। संयुक्त परिवार में सभी बड़े लोगों के रहने से आदर और शिष्टता की आदत स्वाभाविक रूप से विकसित होती जाती है।

परिवार की आन्तरिक व्यवस्था प्रधानतया स्त्रियाँ ही सँभालती हैं। संयुक्त परिवार में मिल-जुलकर आसानी से सब काम निबट जाता है। काम में तो कोई कमी नहीं आती। सम्मिलित परिवार में जहाँ मिल-जुलकर सब काम पूरा होता था विघटित परिवार में उतनी ही मात्रा का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

काम अकेली एक स्त्री को करना पड़ता है। परिणाम यह होता है कि बच्चों की देख-रेख समुचित रूप से नहीं हो पाती। माँ-बच्चे की ओर ध्यान दे तो दूसरे कामों में अड़चन हो और दूसरे कामों की ओर ध्यान दे तो बालक की उपेक्षा से बड़ी समस्या उत्पन्न हो जाती है। सामान्यतौर पर प्रकटतः तो कोई अव्यवस्था नहीं आती। परेशानी बच्चे के बीमार होने पर अथवा प्रसव के समय होती है। संयुक्त परिवार में माता के प्रसव-काल में बच्चों की सार-सँभाल अन्य कुटुम्बी स्त्रियाँ कर लेती हैं और घर की व्यवस्था में भी कोई अन्तर नहीं आ पाता। विघटित परिवार में पति बाहर रहता है, माँ प्रसूतावस्था में रहती है। बच्चों की स्थिति अनाथ जैसी हो जाती है। घर की आन्तरिक व्यवस्था भी सोचनीय बन जाती है।

दम्पत्ति अधिक सुविधाओं की कल्पना लेकर अलग होते हैं पर मोटेतौर पर वह कल्पना मूर्त्तरूप नहीं ले पाती है। उसको मकान किराया, अलग चूल्हा, चौका, बर्तन, सफाई आदि सभी आवश्यकताओं की अलग से व्यवस्था संयुक्त परिवार की अपेक्षा लगभग महँगी ही पड़ती है। आर्थिक तंगियाँ मनुष्य को कुण्ठित कर देती हैं। अपने स्वप्नों के पूरा न होने पर पति-पत्नी और भी अधिक खीझ उठते हैं। फलस्वरूप दम्पत्तियों के बीच तनाव कायम रहने लगता है। संयुक्त परिवारों में किसी कारण से तनाव उत्पन्न होता भी है, तो वृद्ध और समझदार परिजनों के हस्तक्षेप तथा समझाने से शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। विघटित परिवार में ऐसी कोई सम्भावना न रहने से दिन-रात परस्पर आक्रोश बना रहता है। बच्चे यह सब देखते हैं तो समझते हैं यह कोई अच्छी बात है। अगर इससे वे डर जाते हैं तो पारिवारिक जीवन के प्रति अलगाव की भावना जम जाती है। प्रकारान्तर से असामाजिक बनने की सूक्ष्म प्रेरणा उन्हें यहीं से मिलती है।

संयुक्त परिवारों का गठन और संचालन सहकारिता के आधार पर होता है। समय और श्रम की बचत से बालकों पर ध्यान देने और देख-रेख करने के लिए पर्याप्त समय बचता है। ज्ञानार्जन, आचार शिक्षा तथा समुचित देख-रेख की जितनी सुविधा संयुक्त परिवार में मिल सकती है, उतनी एकाकी विघटित परिवारों में नहीं मिलती।

दम्पत्ति अक्सर संकीर्ण भावना से ग्रस्त होकर पारिवारिक विघटन के लिए प्रेरित होते हैं। परिवार में बड़ा भाई ज्यादा कमाता है और छोटा भाई कम, तो बड़े भाई और उसकी पत्नी के मन में एक ईर्ष्या भाव जन्म ले लेता है। 'दूसरे लोग कम उपार्जन करते हुए भी हमारे समान सुविधाएँ और सुखों का उपभोग करते हैं, जबकि हम ज्यादा कमाते हैं, तो हमारी कमाई का अधिकांश उपयोग हमारे लिए ही होना चाहिए।'—यह विचार दिनोंदिन परिपक्व होता जाता है और अलगाव की भावना बलवती होती जाती है। स्वकेन्द्रित-वृत्ति के अधिक बढ़ जाने से संयुक्त परिवार टूट जाता है और इस वृत्ति का प्रभाव बालकों पर भी पड़ता है। इस वृत्ति के कारण स्वार्थ और संकीर्ण भावनाएँ बालकों में भी धीरे-धीरे बढ़ती जाती हैं। परिणामस्वरूप अपने हितों के आगे औरों का हित गौण होने लगता है। सामाजिक सुव्यवस्था के बिगड़ने में स्वार्थ भाव ही मूल कारण होता है। संयुक्त परिवारों का विघटन इस प्रकार बच्चों को समाजघाती भी बनाता है।

बालकों के परिष्कृत व्यक्तित्व का विकास विघटित परिवारों की अपेक्षा सम्मिलित परिवार में ज्यादा सहज रहता है। माँ-बाप सन्तान को ही चौबीसों घण्टे प्यार-दुलार दे नहीं पाते। अन्य क्रिया-कलापों में समय देना होता है। फलस्वरूप बच्चे दूसरे आवारा और गन्दी आदतों वाले बच्चों के संसर्ग में आकर पथ-भ्रष्ट होने लगते हैं।

परिवार, समाज और राष्ट्र की आधारभूत संस्था है। बाल-अपराधों की रोकथाम करने वाली समिति के सर्वेक्षण से पता चला है कि परिवार के असंगठन अथवा असंस्कृत वातावरण में ही बालकों में अपराधवृत्ति जन्म लेती है। इस कारण राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए संयुक्त परिवारों का विघटन रोका जाना आवश्यक है।

बच्चे आपके सच्चे मित्र

मित्र, सच्चा, सरल और निष्कपट मित्र ! ऐसे मित्र की तलाश संसार में किसे न होगी, जिससे अपनी प्रत्येक गुप्त से गुप्त बात प्रकट कर सकें तो भी ऐसी आशंका न रहे कि वह बात कहीं अन्यत्र फैल जायेगी। जो इतना सरल हो कि अपनी प्रत्येक त्रुटि को उदारतापूर्वक क्षमा कर सके, जो हर कार्य में सच्चा सहयोगी सिद्ध हो सके। अभिन्न हृदय, अभिन्न आत्मा, न कोई छल, न कपट। ऐसा मित्र मिल जाय तो पूर्वजन्म का कोई पुण्य, कोई सुकृत ही समझना चाहिए।

पर ऐसी मित्रता इस जगत में अपवाद ही हो सकती है। प्रायः मित्रता किसी लाभ या स्वार्थ की दृष्टि से कायम होती है और जब उन परिस्थितियों में ढीलापन आने लगता है, तो आत्मीयता के बन्धन भी समाप्त होने लगते हैं। अनेक बार यह सम्बन्ध इतने कटु हो जाते हैं कि जिगरी दोस्त भी जानी-दुश्मन बन जाते हैं, मित्रता शत्रुता में बदल जाती है।

हमारी दृष्टि में अपने बच्चों की मित्रता अधिक निश्चित उपयोगी हो सकती है। मित्र में जो गुण होने चाहिए, वे बच्चों में मौलिक रूप में देखे जा सकते हैं। बच्चों के साथ आत्मीयता का विस्तार किया जाय तो वे सबसे प्रिय संगी, स्नेही और सहयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर कहा करते थे—"परमात्मा की पवित्रता और निश्छलता यदि कहीं है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो उसे मैंने बच्चों में पाया। बालकों को मैं अपने जीवन का प्रेरणास्रोत मानता हूँ।'' पं. जवाहरलाल जी की बालकों के साथ घनिष्टता विश्व-विख्यात है, उन्होंने एक बार कहा था—''मैं इस संसार में अपने मित्रों के कारण बहुत सुखी हूँ, यह जो भोले-भाले बच्चे हैं, यही हमारे प्रिय सखा हैं।''

पारिवारिक सौमनस और बालकों के जीवन-निर्माण की दृष्टि से भी अपने बच्चों की मैत्री बहुमूल्य होती है। इसके लिए बालक सदैव इच्छुक दिखाई देंगे, किन्तु घरों में बच्चों को अल्प-बुद्धि समझकर प्रायः उनकी उपेक्षा की जाती रहती है। उनकी सूझ-बूझ कई बार इतनी महत्त्वपूर्ण होती है कि वयस्कों को आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। सच तो यह है कि बालकों में सही निर्णय की क्षमता दूसरों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है, किन्तु उन्हें ऐसा करने के लिए अवसर नहीं दिया जाता, यह दुःख की बात है।

घर का बजट या किसी काम-काज की योजना बनाते समय लोग बच्चों को यह कहकर भगा देते हैं कि जाओ, खेलो—यहाँ तुम्हारे मतलब की कोई बात नहीं, पर ऐसा करते हुए अभिभावक वह भूल जाते हैं कि ऐसा करने से न केवल बालक की रचनात्मक बुद्धि को आघात पहुँचता है, वरन् वे एक महत्त्वपूर्ण सहयोग से वंचित रह जाते हैं। बजट बनाते समय बच्चे कई इतनी उपयोगी बातें बता देते हैं, जहाँ हमारी कल्पना भी नहीं पहुँचती। यह तो साधारण बात हुई। बालकों से बड़े व्यक्तियों को कई बार ऐसे सुझाव मिले हैं कि यदि वे न मिलते तो उनके कार्यों या कृतियों में अनेक दोष रह जाते।

जार्ज बर्नार्डशा के एक नाटक में किसी पात्र के मुँह से ऐसी बात कहलाई गई थी, जो उसे न कहनी चाहिए थी। उसे एक बालक ने ठीक किया था। ''पिताजी, मनुष्य को उद्देश्यहीन उत्सवों में नहीं शामिल होना चाहिए।'' यह उपदेश बालक नैपोलियन ने अपने पिता को दिया था। सुभाषचन्द्र बोस अपने घर में नजरबन्द थे, तो वहाँ से मौलवी के वेश में निकल जाने की योजना उनकी छोटी भतीजी ने ही बनाई थी। बच्चों में दरअसल असाधारण सूझ-बूझ होती है, उसे यदि ठुकराया न जाय तो वे ऐसी सुघड़ सलाह देते हैं, जैसी कोई मित्र भी नहीं दे सकता।

बच्चे में पूर्वजन्म की प्रतिभा छिपी होती है। किन्हीं-किन्हीं में तो यह मात्रा वयस्कों से भी अधिक होती है। सुयोग्य सहयोग के लिए हर माता-पिता को उस प्रतिभा का लाभ भी लेना चाहिए और उसको विकसित करने का प्रयत्न भी करना चाहिए।

मित्रों से एक अपेक्षा यह की जाती है कि वे सुख-दुःख में सच्चे आत्मीय की तरह हमारे साथ रहें। हम नहीं कह सकते, इस नियम का व्यवहार में कितना पालन होता है, पर बच्चों से अधिक संवेदनशीलता बड़ों में नहीं होती। माता-पिता को दुःखी देखकर बच्चों के चेहरे पहले मुरझा जाते हैं। प्रसन्नता के समय घर को उल्लास से भर देते हैं, इन दोनों समय में बच्चों की आत्मीयता प्राप्त कर सच्चे आत्मसन्तोष का अनुभव किया जा सकता है। दुःख के समय बालकों के ममत्व से दुःख कटता है, सुख में उन पर हल्का उत्तरदायित्व छोड़ने से उनका स्वाभिमान, आत्मीयता की भावना और उदारता की वृत्ति का परिष्कार होता है। इन दोनों अवसरों पर अपनी मानसिक स्थिति को बच्चों के सामने खुली हुई रखनी चाहिए।

कभी-कभी मित्रों के गुण-सौन्दर्य बहुत प्रभावित करते हैं। किसी में आत्मीयता अधिक होती है, किसी से मनोविनोद होता है, कोई प्राणवान होते हैं, कोई कर्त्तव्यपालन और व्यवहारकुशलता में श्रेष्ठ होते हैं। बच्चों में इस प्रकार के अनेक सद्गुणों और सद्भावों का सम्मिलित एकीकरण देखा जा सकता है, पर उसे कृपया पुत्र होने की अधिकार भावना से न देखकर मैत्रीपूर्ण भावनाओं से देखिए। एक-दूसरे पर समान अधिकार का आश्वासन देकर ही एक-दूसरे के गुणों का लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

सरलता बालकों का स्वाभाविक गुण है। यदि उनके साथ कोई जोर-जबर्दस्ती न की जाय या अनावश्यक दबाव न डाला जाय तो उनमें प्रतिक्षण सरलता के भाव देखे जाते हैं। वे प्रतिदिन ऐसे मनमोहक दृश्य उपस्थित करते रहते हैं। कभी बच्चा कपड़ों और देह में मिट्टी लपेटकर आपके समक्ष आ खड़ा होगा, ठीक बाल-शिव की तरह। उसे देखकर आप मुस्कराये बिना न रहेंगे, उसे कपड़े पहनने के लिए कहेंगे तो उल्टी कमीज पहनकर आ जायेगा, आपकी किताबों को सारे कमरे में बिखेर देगा, उन्हें इस तरह खोलेगा मानो किसी विशेष सन्दर्भ की तलाश हो। बड़ों को हाथ-मुँह धोता देखकर वह भी वैसा ही अनुकरण करता है, पर हाथ में लिया हुआ पानी कभी एक गाल के लिए ही पर्याप्त होगा, कभी मुँह में अँगुली डालकर दाँत साफ करने की-सी क्रिया करेगा। यह सब वह अपनी बाल सरलता से करता है। गलत सही का उसे जरा भी अन्दाज नहीं होता। आपको भी उसकी इन क्रियाओं से मनोविनोद करना चाहिए, पर यदि उसे इन कौतुकों के फलस्वरूप आपकी डाँट-डपट, मार-झिड़क मिली तो कुछ ही दिनों में उसकी सारी सरलता-कठोरता में बदलने लगेगी। यदि आप इन आदतों में से किसी को सुधारना ही चाहते हैं, तो उसका सही नमूना बार-बार उसके आगे प्रदर्शित कीजिए, बच्चा अपने-आप उसका अनुसरण कर लेगा। समझायें भी तो हँसते हुए कुछ कहें तो आत्मीयता के साथ। ''नहीं, मुन्ने ऐसे नहीं, कंघा यों पकड़ना चाहिए और ऐसे बाल ठीक करना चाहिए।'' इस प्रकार कहते हुए आप कोई बात

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

उसे समझाइये। चिल्लाकर, चौंकाकर कोई बात कहेंगे, बच्चा डर जायेगा और आपके प्रति उसकी भावनाओं में कठोरता आने लगेगी। यह दबाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कुटिल परिणाम उपस्थित करने वाला होता है।

बच्चे बड़े निष्कपट होते हैं, पर गलत उदाहरण देकर ही उनकी निष्कपटता नष्ट कर दी जाती है। घर में कुछ आता है, आप उसे छुपाते हैं, झूठ बोलते हैं, एक-सा व्यवहार नहीं करते। इन तमाम बातों को आधार मानकर बच्चा भी उन्हें आवश्यक समझने लगता है और खुद भी उसी तरह का छलपूर्ण व्यवहार सीखने लगता है। कोई वस्तु घर में आये तो भले ही वह बच्चे के उपयोग की वस्तु न हो, पर उसे दिखाइये अवश्य। सो रहा हो या विद्यालय गया हो तो उसके घर आते ही आप इन सारी वस्तुओं को बाहर निकालिये और उसे बताइये कि अमुक वस्तु अमुक के लिए है, यह इतने पैसे में आई, वहाँ से खरीदी गई। उसे यथासम्भव सारी बातें बता दीजिए, ताकि उसके मन में किसी प्रकार की गलतफहमी पैदा न हो।

आपके बच्चों की सारी जिम्मेदारियाँ आप पर हैं, उन को पूरा करने में निःसन्देह कठिनाइयाँ भी बहुत अधिक आती हैं, पर इससे बालक पर स्वामित्व या अधिकार की भावना प्रकट करना उचित नहीं। आपके घर वह परमात्मा का मेहमान बनकर आता है। आत्मा की दृष्टि से आप में और बच्चे में कोई असमानता नहीं होती। जिम्मेदारियाँ अधिक होने से आप बड़े अवश्य हैं, पर तमाम कर्त्तव्यों का भली-भाँति निर्वाह आप बच्चों के साथ मित्रवत् व्यवहार करके ही पूरा कर सकते हैं। आप उन्हें इस दृष्टि से देखा करें तो निःसन्देह उनका बड़ा भला कर सकते हैं और स्वयं भी आत्म-लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

अभिभावकों की महती जिम्मेदारी

मनुष्य जीवन का शुभारम्भ उस दिन से होता है जिस दिन कि वह भ्रूण रूप में माता के उदर में आता है। उन दिनों बालक की समस्त आवश्यकता माता पूरी करती और जिम्मेदारियाँ उठाती है। इस सन्दर्भ में प्रथम नियम यह है कि माता स्वस्थ और प्रौढ़-परिपक्व हो। पिता को भी ऐसा ही होना चाहिए। दोनों में से कोई अवयस्क, दुर्बल, रुग्ण या अविकसित है, तो उन्हें गर्भाधान से सर्वथा दूर रहना चाहिए अन्यथा उन्हें भी दुर्बल बालक का भार वहन करना पड़ेगा। अविकसित माता-पिता द्वारा जना गया बालक स्वयं तो शारीरिक, मानसिक दृष्टि से असमर्थ होता ही है, कृशकाय माता को भी त्रास देता है। प्रसवकाल में पीड़ा सहता और देता है। यदि पिता ने इस सम्बन्ध में पहल की है, दबाव डाला या फुसलाया है, तो समझना चाहिए कि उसने पत्नी और सन्तान दोनों के साथ अनीति बरती है। अत्याचारी कृत्य किया है। इसका दुष्परिणाम जननी और सन्तान को तो तत्काल भुगतना पड़ता है। आगे चलकर पिता भी उन दोनों की दुर्दशा करके पाप का दण्ड भुगतता है। दो दुःखियारे उसे कोसते हैं और उपचार का तकाजा करते हैं।

बालक गर्भकाल से ही बनना, विकसित होना आरम्भ कर देता है। वह अपना शरीर और मन माता की स्थिति में से ही हिस्सा बँटाता है। गर्भिणी को अपनी स्थिति भी सँभालनी पड़ती है और बच्चे की संरचना भी करनी पड़ती है। इस दुहरे कार्य की पूर्ति के लिए उसे उपयुक्त आहार, विहार, विश्राम, उत्साह, सन्तोष, सन्तुलन उपलब्ध होना चाहिए। पिता का विशेष रूप से और परिवार का साधारण रूप से यह दायित्व है कि ऐसे साधन जुटाएँ। ऐसा वातावरण बनाएँ जिसमें गर्भिणी शारीरिक और मानसिक दृष्टि से सुखी, स्वस्थ, सन्तुलित और प्रसन्न रहे। इन साधनों को उपलब्ध करने वाली गर्भवती ही सुविकसित बालक को जन्म देती है। सतर्कता का, सुव्यवस्था का प्रथम चरण वही है। भ्रूण स्थिति के बालक को समुन्नत बनाने के लिए उस धारणकर्त्री को ही अच्छी स्थिति में रहने देना चाहिए, क्योंकि बालक का शरीर माता के शरीर और मन का ही एक भाग होता है।

प्रसव के उपरान्त भी बालक प्रायः माता से ही चिपका रहता है। वही उसे स्तनपान कराती है, सर्दी-गर्मी बचाती, स्वच्छ रखती तथा अपने शरीर की विद्युतशक्ति से उसकी जीवन-शक्ति बढ़ाती है। इस स्थिति में भी उसे अपनी साज-सँभाल वैसी ही रखनी चाहिए जैसी कि भ्रूण को पोसते समय रखती थी। शिशु बड़े संवेदनशील होते हैं। वे माता की स्थिति का महत्त्वपूर्ण अंश सोखते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए माता को स्वयं अपने को अच्छी स्थिति में रखना चाहिए और पति समेत समूचे परिवार को यह ध्यान रखना चाहिए कि जन्मदात्री के माध्यम से बच्चे की शारीरिक और भावनात्मक आवश्यकताएँ पूरी होती रहें। कुपथ्य और आक्रोश बच्चे को प्रभावित करता है। उसे इस प्रकार पोसा जाना चाहिए, जिसमें न अतिवाद हो, न उपेक्षा। समय पर हर काम करने और कराने की आदत का यहीं से आरम्भ होना चाहिए। कुशल माताएँ इन दिनों निभाई जाने वाली जिम्मेदारियों के सम्बन्ध में समय रहते आवश्यक जानकारियाँ उपलब्ध कर लेती हैं और उन्हें कार्यान्वित भी करती हैं। बाल विकास का यह दूसरा चरण है। बच्चा इस अवधि में प्रत्यक्ष रूप से तो चतुर नहीं होता पर परोक्ष रूप में उसकी अदृश्य क्षमता असाधारण रूप से तीव्र होती है। इसलिए उसे अनजान समझकर समीपवर्ती वातावरण ऐसा नहीं बनने देना चाहिए जो कोमल किन्तु संवेदनशील बालक पर बुरा प्रभाव डाले।

बालक के बढ़ने के साथ-साथ उसकी आहार-विहार की, विनोद, खेल-कूद की ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जो उसे समग्र रूप से विकसित होने में सहायक सिद्ध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो। जब तक वह पाँच वर्ष का न हो जाय तब तक नये गर्भाधान की तैयारी नहीं करनी चाहिए अन्यथा प्रथम बालक को मिलने वाला स्नेह-सहयोग कटकर दो हिस्सों में बँट जाता है। गर्भिणी प्रायः अस्वस्थ रहने लगती है। बालक उस उदासी, कठिनाई से मन ही मन खिन्न रहने लगता है। इन दिनों की यह खिन्नता आगे चलकर उसमें कई कमियाँ उत्पन्न कर देती है। बच्चों के भविष्य के साथ खिलवाड़ करके ही नया बालक बुलाने में जल्दबाजी की जा सकती है।

माता से थोड़ा हटने लगने पर बच्चा परिवार वालों के साथ रमने लगता है। यह समुदाय भी अनगढ़, उजड्ड, असभ्य नहीं होना चाहिए अन्यथा उनसे चलना, बोलना, खेलना आदि सीखने के साथ-साथ ही भले-बुरे गुणों का भी हस्तान्तरण होने लगता है। स्कूल जाने लगने पर साथी बच्चों के साथ तो आदान-प्रदान चलता ही है। अध्यापक सबका अधिपति होने, परिपक्व रहने के कारण हर बालक को ज्ञान के साथ-साथ चरित्र भी उपलब्ध कराता है। हेय स्तर के अध्यापक पुस्तकीय शिक्षा भले ही प्राप्त करा दें पर अपने छात्रों को चरित्रवान, सुसंस्कारी नहीं बना सकते। इसलिए देखना यह भी चाहिए कि जहाँ बालक पूर्वजन्मों के संस्कार तो साथ लाता ही है, पर इसके अतिरिक्त अभिभावकों, परिवारियों, सम्बन्धियों, अध्यापकों का भी प्रभाव उस पर पड़ता है। दस वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते वह बहुत कुछ बन और ढल चुका होता है। सतर्कता बरते जाने की यही अवधि है।

दस वर्ष से अधिक आयु होती चलती है तो बालक सम्बद्ध समाज से प्रेरणा लेने लगता है। जैसे आचरण-व्यवहार उसे देखने को मिलते हैं, उसकी नकल बनाने में अधिक उत्साह उभरता है। चौदह-पन्द्रह वर्ष के उपरान्त किशोरावस्था आरम्भ होती है। इस समय में व्यक्तित्व उभरने लगता है। महत्त्वाकांक्षाएँ जगने लगती हैं। उमंगें उठती हैं और विपरीत लिंगी के प्रति कामुक आकर्षण बढ़ने की शुरूआत हो जाती है। यदि कड़ी निगरानी न रखी गयी तो आवारा साथी उसे कुमार्ग पर घसीट ले जाते हैं। जिन्दगी के बनने-बिगड़ने का यही मोड़ है।

सम्पन्न घरों के लोग अपने बच्चों को महँगे पब्लिक स्कूलों में इसलिए पढ़ाते हैं कि वहाँ अच्छी शिक्षा-सुविधा एवं विशिष्ट लोगों की मण्डली मिलेगी। यह होते हुए भी दो हानियाँ ऐसी होती हैं, जिनके कारण वह कदम निरर्थक हो जाता है। एक बात यह है कि वे अपने अभिभावकों से बिछुड़ जाते हैं। उन्हें समुचित स्नेह नहीं मिल पाता। दूसरा यह कि बड़े लोगों वाले यह भाव नहीं रह पाते जो रहने चाहिए। माता-पिता, भाई-बहिन, चाचा-ताऊ, चाची-मम्मी आदि सभी अनजाने-विराने जैसे हो जाते हैं। भावनात्मक सम्बन्ध टूट जाने पर मात्र परिचितों जैसी मनःस्थिति हो जाती है। परिवार के प्रति विरानेपन की मान्यता बन जाती है। यह बीजांकुर बड़े होने पर इस प्रकार पनपते हैं कि पारिवारिक उन्नति-अवनति में उनकी विशेष रुचि नहीं रहती। अपने को अलग इकाई मानकर व्यक्तिगत लाभ-हानि की ही बात सोचने लगते हैं। परिवार को तो अपना निर्वाह भेजते रहने का स्रोत भर मानते हैं। दूसरी हानि यह है कि इन पब्लिक स्कूलों में बड़े आदमियों के लड़के पढ़ते हैं। खर्चीली व्यवस्था का अभ्यास उन्हें पड़ जाता है। अपने को बड़ा आदमी मानते हैं। अपनी एक अलग विरादरी ही बना लेते हैं। अहंकार भी उसी स्तर का हो जाता है। छोटे लोगों के प्रति उपेक्षा और तिरस्कार की वृत्ति पनपती है। आगे चलकर यह एकता और समता का वातावरण बनाने में उसमें घुल-मिल जाने की प्रवृत्ति को पनपने देने में व्यवधान बनती है।

अच्छा तो यह है कि अभिभावक अपनी व्यावसायिक व्यस्तता में कटौती करें और खेल-मनोरंजन में उन्हें सहभागी बनाने के लिए अपने को बच्चों जैसी मनःस्थिति में उतने समय के लिए रख लिया करें। स्कूली पढ़ाई में जो कमी रह जाती है, उसकी पूर्ति में उनके साथ रहकर अभ्यास करावें। साथ ही चरित्रनिष्ठा और व्यवहार-कुशलता के हर पक्ष पर प्रश्नोत्तर करते हुए उनका कर्त्तव्य भाव बढ़ायें, इससे कम में अभिभावक का उत्तरदायित्व निभता नहीं है। बच्चों के व्यक्तित्व विकास को भी इतना ही जरूरी समझा जाय जितना कि व्यवसाय को एवं निजी मनोरंजन को समझा जाता है।

जो हर काम को दूसरों से कराते हैं। जिन्हें नौकर रखने की सुविधा है। वे मात्र स्कूली पढ़ाई पूरी करने के लिए मात्र ट्यूटर ही न रखें वरन् ऐसे सुयोग्य व्यक्तियों की तलाश करें जो गार्जियन की भूमिका भी निभा सकें। अभिभावकों को जिस प्रकार बच्चे साथ रखकर हँसने, खेलने, सीखने-सिखाने का क्रम चलाना चाहिए, वैसे ही वे भी कर सकें। स्कूली फीस, पुस्तकें तथा कापी-कलम आदि जुटाने के लिए जिस प्रकार खर्च का प्रबन्ध किया जाता है, उसी प्रकार एक छोटी बाल मण्डली के पीछे संरक्षक भी रखा जाय, जो स्कूल से बचे समय का इस प्रकार उपयोग करायें कि जिसमें उन्हें भार या बन्धन तो प्रतीत न हो पर बातों ही बातों में—खेल ही खेल में उतनी जानकारी मिलती रहे, जो सामान्य ज्ञान की अभिवृद्धि का भी प्रयोजन पूरा कर सके और साथ ही स्कूली पाठ्यक्रम में जो कमी रह जाय उसकी पूर्ति होती चले। घर के अभिभावक—स्कूल के अध्यापक जिस प्रकार हर कहीं होते हैं, इसी प्रकार एक तीसरे मध्यवर्ती संरक्षक की भी आवश्यकता है। कुछ कर्त्तव्यपालन अध्यापकों से छूट जाता है, कुछ अभिभावकों से। दोनों ही की कमियाँ इस संरक्षक को पूरा करनी हैं। साथ ही सहचर-सहयोगी जैसी मित्रता का निर्वाह भी करना है। बच्चे का सारा समय तो खप जाय पर उसे यह प्रतीत न हो कि उन्हें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

सारे दिन बन्धन में जकड़े रहने की स्वतन्त्रता छीन लेने की दुरभिसंधि की गयी है। संरक्षण के योग्य वह है जो हँसने, खिलाने और पढ़ाने, बनाने की सभी आवश्यकताएँ पूरी करता रहे। समय को देखते हुए ऐसी संस्कार पद्धति विकसित की जानी चाहिए। इसे अलग-अलग न करके सामूहिक रूप से किया जाय। शान्तिकुञ्ज की बाल संस्कारशाला योजना इसी निमित्त है। इसका महत्त्व समझा जाना चाहिए और कार्यान्वित करने में यदि ढूँढ़-खोज की व्यवस्था बनाने की, अर्थभार अतिरिक्त रूप से सहने की आवश्यकता पड़े तो उसे बाल विकास के भावी सत्परिणामों को सोचते हुए करना ही चाहिए। घर के विचारशील और सेवानिवृत्त सदस्य यदि उस कार्य को अपने जिम्मे ले सकें। घर के बालकों के अतिरिक्त इस मण्डली में पड़ोसियों के बालक भी सम्मिलित कर सकें तो और भी अच्छा।

यदि उपरोक्त रचनात्मक कार्य न बन पड़ें तो कम से कम इतना तो ध्यान रखना ही चाहिए कि बच्चा सुसंस्कारी परिवार के साथ ही मित्रता करे। उसकी आवारा लड़कों के साथ साँठ-गाँठ न होने पाये। उठती आयु का कुसंग उसको दुष्प्रवृत्तियों का अभ्यासी बना देता है एवं भविष्य को अन्धकार के गर्त में धकेल देता है। इस स्थिति में पड़ने देने से बचाव करने में परिवारीजनों की सुधार की-तीखी दृष्टि होनी चाहिए।

राष्ट्र की आत्मा—बच्चे, उपेक्षित न रहें

बच्चे राष्ट्र की आत्मा कहे जा सकते हैं। जिसकी आत्मा जीवन्त, प्रखर, पुष्ट, सक्रिय होगी, उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकसित, उन्नत, गतिशील होगा। आत्मा मूर्छित हुई, तो स्वास्थ्य, धन, स्मरण-शक्ति, मानसिक-दक्षता सभी धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार जिस राष्ट्र में बच्चों को स्वस्थ, सुशिक्षित, सुसंस्कृत, उन्नत चरित्र बनाये जाने का ध्यान रखा जायेगा, वह राष्ट्र कुछ ही समय में प्रगति के शिखर पर दिखाई देगा। जहाँ बच्चे कुपोषण, कुशिक्षा, भेदभाव, अनीति, उपेक्षा और अनुचित व्यवहार के शिकार होंगे, उस समाज में दुर्बलता, विकृति, विषमता, दुराचरण, पतन और अराजकता की वृद्धि अवश्यम्भावी है।

इस दृष्टि से देखें, तो आज राष्ट्र की आत्मा हमारे बच्चे उपेक्षा और कुशिक्षा के गर्त में दबे पड़े हैं। बच्चों को न तो परिवारों में सही मार्गदर्शन सुलभ है, न ही क्रीड़ास्थलों में और न ही शैक्षणिक संस्थाओं में।

आज शायद ही कोई परिवार ऐसा हो, जहाँ इस बात पर विचार किया जाता हो कि वस्तुतः हमें अपने बच्चों में किस प्रकार के संस्कार विकसित करने हैं। माता-पिता बच्चों से परस्पर विरोधी अपेक्षाएँ रखते हैं। वे चाहते हैं कि बच्चा उनसे सच-सच बातें, पर पास-पड़ौस में झूठ बोले, चालाकी करे। बगल के बच्चे से यदि उसकी लड़ाई हो तो वह झूठे ढंग से अपना पक्ष रखे और दूसरे बच्चे का दोष बढ़ा-चढ़ाकर बताए। बच्चा जब सिनेमा के सस्ते गानों की टूटी-फटी पंक्तियाँ गायेगा, तब माँ-बाप हँसेंगे। वही उत्साहित बच्चा जब किसी सिनेमा के गाने की अधिक अश्लील पंक्ति गा उठेगा, तो उसे डाँटेंगे-धमकायेंगे।

बच्चा स्कूल जायेगा, तो उसे यही सुनने को मिलेगा कि अमुक बच्चा अमुक बड़े आदमी का लड़का है, इसलिए वह अध्यापक का चहेता है। परीक्षा के समय वह कुछ लड़कों को नकल करते या खुद अध्यापक द्वारा नकल कराते देखेगा। चारों ओर बच्चा ऐसे शिक्षक और ऐसा वातावरण देखता है, जहाँ धनी होना सर्वोपरि गुण है, पक्षपात जहाँ का सामान्य प्रचलन है और किताबों में जो नैतिक पाठ सिखाये जाते हैं, उसके सर्वथा विपरीत आचरण चारों ओर होते देखता है। वह देखता है कि शिक्षक या तो धन को महत्त्व देते हैं या पशु-बल को, गुण्डागर्दी को। विद्यालय खुलेआम खरीद-बिक्री और छीना-झपटी के केन्द्र बन चले हैं। विद्या और ज्ञान का मापदण्ड अध्ययन, मेधा, चिन्तन, सामर्थ्य, चरित्र, व्यवहार तथा जीवन नहीं है, कागजों पर छपे उपाधि-पत्र ही उसके मापदण्ड हैं और वे उपाधि-पत्र मुख्यतः धन-बल या पशु-बल से प्राप्त होते हैं। हाँ, भारतीय संस्कृति धर्म, नैतिकता, सत्य, अहिंसा आदि की बड़ी-बड़ी बातें अवश्य हर एक शिक्षा-संस्था में बढ़-चढ़कर होती हैं।

माता-पिता, पास-पड़ोसी आये दिन सिनेमा देखने दौड़ते हैं, सिनेमा के किस्से-कहानियों, उसमें काम करने वाले नर-नारियों के हाव-भावों, वेश-विन्यासों, तौर-तरीकों, संवादों-विवादों पर घण्टों चर्चा करते हैं। इसके बाद, वे ही रोते फिरते हैं कि देखो, आजकल के बच्चों के आदर्श सिनेमा-स्टार हैं। बच्चों के सामने श्रेष्ठ आदर्श उपस्थित करने, उन्हें संस्कृति का सही स्वरूप समझाने में घोर उपेक्षा बरतने वाले लोग बच्चों की आदतों की किस मुँह से शिकायत करते हैं ?

आये दिन आँकड़े अखबारों में छपते हैं कि इस वर्ष इतने स्नातक और इतने प्राथमिक या माध्यमिक शिक्षा प्राप्त बच्चे निकले। इस प्रकार संख्या-बल ही शिक्षा की सार्थकता की कसौटी बन गया है। गुणात्मकता उपेक्षित है। इसके बाद बच्चों में गुण-विकास की कामना किस आधार पर की जाती है ?

अतः सर्वप्रथम हमें स्वयं निर्णय लेना चाहिए कि हम अपने बच्चों को और साथ ही अपने समाज व देश को किस रूप में देखना चाहते हैं। उन्नति एवं श्रेष्ठता की हमारी कल्पना क्या है ? भारत है क्या ? भारतीय सभ्यता एवं भारतीय संस्कृति है क्या ? उसकी आन्तरिक शक्ति और अक्षय प्रेरणा को जानें-पहचानें तथा अपनाएँ। आज के विश्व में उसकी किन मूल प्रेरणाओं को सुरक्षित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रखा जा सकता है तथा किस रूप में, यह सोचें ? उस भूमिका के अनुरूप स्वयं को ढालें और बच्चों का भी जीवन गढ़ें। यदि हम स्वयं विजातीय गुण-धर्म को अपना आदर्श मानते हैं, तो बच्चों को विदेशी रंग में रँगते चले जाने की शिकायत व्यर्थ है।

आज जिज्ञासा मात्र बच्चों में ही जाग्रत है। शिशु तो जिज्ञासा का साकार रूप है। उसकी वाणी बाद में फूटती है, जिज्ञासा पहले जाग्रत होती है किन्तु बड़ों में जिज्ञासा जैसे दब गई है। वे सम्मोहित भाव से प्रवाहित होकर पतन-पथ पर बढ़े चले जा रहे हैं। अपना सब कुछ विदेशी रंग में रँगते चले जा रहे हैं।

जिज्ञासा के मूल तत्त्व तीन हैं— (१) क्या, (२) क्यों, (३) कैसे ? इसलिए हममें से भी हर एक को स्वयं को पूछना चाहिए कि वह क्या चाहता है ? क्यों चाहता है ? और जो चाहता है, वह कैसे प्राप्त हो सकता है ? यदि हमें भारतीय संस्कृति पसन्द है तो हम विचार करें कि भारतीय संस्कृति क्या है ? वह क्योंकर टिकी रही और क्योंकर आज उसके धूमिल होते चले जाने की स्थिति बनी ? वह कैसे पुनः जीवन्त हो सकती है ? इसी प्रकार यह भी जानना चाहिए कि आज हम बच्चों को क्या सिखाना चाहते हैं ? और क्या सिखा रहे हैं ? बच्चों में आज जो प्रवृत्तियाँ दिखलाई पड़ती हैं, वे क्यों और उनमें श्रेष्ठ प्रवृत्तियों का विकास कैसे सम्भव है ? इस कसौटी पर न केवल विद्यालयों को कसा जाना जरूरी है वरन् स्वयं का व्यवहार और घर का वातावरण भी ऐसा ही ढाला जाना चाहिए कि वह बच्चों में सत्प्रवृत्तियाँ जगाए। उन्हें प्रेम से श्रेय की ओर जाने की प्रेरणा दे, संकल्प दे एवं प्रकाश दे। उनके भीतर विकसित संवेदना एवं उन्नत संस्कारों की आकांक्षा जगाने वाला पारिवारिक वातावरण निर्माण करना हमारे अपने बस में है। बच्चों को सुसंस्कारित बनाना हमारा दायित्व है। उस दायित्व की उपेक्षा हमारा अपराध है, जब तक हम इस अपराध से मुक्त नहीं होते, बच्चों के पारिवारिक शिक्षण के प्रति व्याप्त उपेक्षाभाव को समाप्त नहीं करते और उन्हें सुसंस्कारित, उन्नत बनाने के लिए साधन-प्रयास नहीं करते तब तक राष्ट्र की आत्मा ऐसे ही उपेक्षित रहेगी। निस्संदेह हर माता-पिता अपनी शक्ति पर अपने बच्चों के रहन-सहन और खान-पान की सर्वोत्तम व्यवस्था करना चाहता है। बच्चे को अच्छा खाना मिले, साफ-सुन्दर कपड़े मिलें यह प्रयास प्रत्येक अभिभावक का होता है किन्तु बच्चे में संस्कार पल्लवित हो, उसका चरित्र उन्नत तथा व्यक्तित्व श्रेष्ठ बने, इसकी सजगता बरतने वाले अभिभावक बहुत थोड़े होते हैं। यह सजगता भी प्रत्येक अभिभावक का अनिवार्य कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य की अवहेलना नहीं की जानी चाहिए और प्रत्येक प्रबुद्ध नागरिक को घर-परिवार, पास-पड़ौस तथा विद्यालय-समाज का वातावरण परिष्कृत करने के प्रयास में भरपूर उत्साह से जुटना चाहिए। तभी बच्चों को उपयुक्त वातावरण मिलेगा और सत्प्रेरणाएँ उन्हें समर्थ बनाएँगी। जाग्रत बच्चे ही राष्ट्र की जाग्रत आत्मा बन सकते हैं। बच्चों में प्रसुप्त दिव्यता को जाग्रत करना हममें से हर एक का कर्त्तव्य है।

आचार्य, अभिभावक और बच्चे

बच्चों को स्कूल में भर्ती करा देने के उपरान्त उनकी प्रगति के सम्बन्ध में निश्चिन्त हो जाना अभिभावकों की भूल है। वहाँ उस स्तर की पढ़ाई नहीं होती जिसके ऊपर पूर्णतया निश्चिन्त रहा जा सके कि प्रगति का द्वार खुल गया और जिन दोष-दुर्गुणों की चढ़ती उम्र में आशंका रहती है, उनसे छुटकारा मिल गया। इस सम्बन्ध में अभिभावकों में से जो अधिक सुयोग्य हों, उन्हें अधिक ध्यान देना चाहिए।

बच्चों के अधिकांश काम घरवालों को ही करने होते हैं। भोजन की, कपड़ों की, पुस्तकों की, फीस की, चिकित्सा की व्यवस्था वे ही करते हैं। मैले कपड़ों को धुलाने और तेल-साबुन आदि दैनिक आवश्यकता भी उन्हीं को जुटानी पड़ती हैं। इन सब कामों से अधिक बढ़-चढ़कर महत्त्व का काम बाल-विकास के हर पक्ष पर ध्यान देना है।

वे दिन चले गये जब गुरुकुलों में गुरु माताएँ—जननी का और आचार्य—अभिभावक का कर्त्तव्य पूरा किया करते थे। वहाँ न केवल पाठ्यक्रम की पूर्ति होती थी वरन् यह भी सिखाया जाता था कि जीवन में शालीनता और प्रखरता का समावेश कैसे हो ? यह प्रशिक्षण पाठ्य-पुस्तकों की रटाई से पूरा नहीं हो सकता, वरन् यह दायित्व भी उन्हीं को निभाना पड़ता है, जिनका बच्चों का भविष्य बनाने और बिगाड़ने से सीधा सम्बन्ध है। इसलिए कितनी ही व्यस्तता क्यों न हो, बच्चों के भविष्य निर्माण से सम्बन्धित शिक्षा देने की जिम्मेदारी अभिभावकों को ही निवाहनी चाहिए।

यह नया भार लादने या थकान बढ़ाने वाली बात नहीं है, वरन् एक अच्छा-खासा मनोरंजन है, जिससे बच्चों को प्रसन्न रखा जा सकता है और उनको प्रसन्न होते देखकर अपनी प्रसन्नता को बढ़ाया जा सकता है। इस विनोद-प्रमोद के बीच उनकी वह शिक्षण-प्रक्रिया भी चलती रह सकती है, जिसकी पूर्ति स्कूलों में प्रायः नहीं ही हो सकती।

अध्यापकों की अपनी कठिनाई है। उनके लिए ढर्रे का काम पूरा करना, परीक्षा उत्तीर्ण करने में सहायता करना, उनका प्रमुख कार्य है। वे इसी में अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। एक गधे का बोझ बनकर बच्चों की पीठ और खोपड़ी पर लदी रहने वाली पुस्तकों का भार ही इतना होता है, जिसका परिवहन करते हुए छात्र को परीक्षा के डरावने जंगल में से पार निकालना,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

वैतरणी पार कराने जैसा कठिन पड़ता है। फिर खेल-कूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि आते रहते हैं, उनकी चिह्न-पूजा कराने में भी समय लगता और ध्यान बँटता है। ऐसी दशा में छात्रों और अध्यापकों के बीच वह घनिष्टता कैसे उपजे, जिससे जी खोलकर बात करना और निजी जीवन का स्पर्श, उत्कर्ष, परिशोधन कर सकना सम्भव हो। अध्यापकों में बहुत को तो अपने सभी छात्रों के नाम तक याद नहीं रहते फिर वे उनकी मनःस्थिति और परिस्थिति को समझते हुए आवश्यकता और अड़चन का पता लगाते हुए उनका उपयुक्त मार्गदर्शन कैसे कर सकते हैं ? ऐसी दशा में बच्चों के निजी व्यक्तित्व में आने वाले उतार-चढ़ावों के सम्बन्ध में सचेष्ट रहने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं।

छात्रावासों सहित या पब्लिक स्कूल स्तर के विद्यालयों में भर्ती कर देने से अभिभावकों को बच्चों के साथ आये दिन निपटने का झंझट तो छूट जाता है, पर वहाँ भी यह व्यवस्था नहीं होती कि संरक्षक हर छात्र की मनोदशा एवं अड़चन को समझते हुए तद्नुरूप मार्गदर्शन कर सके। छात्रावासों का अधिक व्यय-भार उठाने पर भी यहाँ कठिनाई बढ़ जाती है कि बालकों को जीवन कला सम्बन्धी दूरगामी निर्देशन की आवश्यकता रहती है, वह वहाँ मिल सके। जब तक घनिष्ट आत्मीयता न हो तब तक मन को खोलने और पढ़ने की उलझनों को सुलझाने की स्थिति बनती भी नहीं। यह कार्य परिवार वालों का विशेषतया अभिभावकों का है, जिसका दायित्व उन्हें समझना ही नहीं निबाहना भी चाहिए।

घर से दूर रहने वाले बच्चों को आरम्भ में स्वजनों के बिछोह की व्यथा सताती है और उन्हें प्राकृतिक अन्तरंग स्नेह से वंचित रहकर अपने को एक प्रकार से अनाथ समझने की अनुभूति होती है। समयानुसार वे घरवालों को विशेषतया उनकी आत्मीयता को भूलने लगते हैं और नये वातावरण में ढल जाते हैं। पर इससे यह कठिनाई तो बढ़ती ही है कि परिवार के प्रति लगाव घट जाता है। उनका हाथ बँटाने तथा सुख-दुःख में भागीदार रहने सम्बन्धी सेवा-सहानुभूति का भाव विदा होता चला जाता है।

जहाँ तक पूरी विवशता सामने न हो, वहाँ अभिभावकों को अपना दायित्व सिर पर उठाना चाहिए। 'बन्दर की बला तबेले के सिर' नहीं डालनी चाहिए। समझा जाना चाहिए कि कक्षाएँ उत्तीर्ण करने का जितना महत्त्व है, उससे कहीं अधिक इस बात का है कि उनका व्यक्तित्व निखरे, दृष्टिकोण सुधरे, आदतों का ऐसा निर्माण हो जिसे सज्जनोचित कहा जा सके। यह बात अमुक पुस्तक पढ़ा देने या लेक्चर सुनाने से पूरी नहीं हो सकती। इसके लिए उपयुक्त वातावरण चाहिए। संरक्षकों की पैनी दृष्टि रहनी चाहिए। क्रिया के साथ जो ज्ञान कार्यान्वित होता है, वही स्वभाव के रूप में परिणत हो सकता है। घरेलू कामों में उपयुक्तता का समावेश रखने और उसमें बच्चों को भागीदार बनाये रहने से ही उनका स्वभाव इस ढाँचे में ढलता है, जिसे प्रगतिशील कहा जा सके। ऐसा अवसर गृह कार्यों में भागीदार बनकर ही सीखा जा सकता है। इस-प्रयोजन की पूर्ति अभिभावक ही कर सकते हैं।

किशोरों में जागरूकता की कमी रहती है इसलिए उनका सोचना या चाहना प्रायः ऐसा होता है, जिसे निरंकुश भी कहा जा सकता है। ऐसी परिस्थितियों में यह सरल् पड़ता है कि वातावरण में भरी हुई विषाक्तता और प्रचलन की देखा-देखी बहुत-सी ऐसी बातें अनुभवहीन छात्रों पर लद पड़ें, जिससे उन्हें बदनाम, शर्मिन्दा एवं भर्त्सना, प्रताड़ना का भाजन बनना पड़े। इस परिणति की दुहरी प्रतिक्रिया होती देखी गयी है। दबाव में खिंचकर वह सुधर भी सकता है और ऐसा ढीठ, उद्दण्ड भी हो सकता है, जो बगावत पर उतर आये और भयानक कृत्य करने लगे। ऐसी परिस्थितियों की आज कमी नहीं। यौनाचार और नशेबाजी की लत नवयुवकों में छूत की बीमारी की तरह लगती है और उसका प्रोत्साहन-प्रशिक्षण बिगड़े हुए सहपाठियों से मिलता है। अनोखापन स्वभावतः आकर्षण का विषय होता है। ऐसी दशा में उन्हें बिगड़ते देर नहीं लगती। इस बिगाड़ का दुष्परिणाम आगे चलकर न केवल बच्चों को वरन् उनके हितैषी कहे जाने वाले अभिभावकों को भी भुगतना पड़ता है।

बच्चों की इच्छाएँ परिवेश से प्रभावित होती हैं

एक ओर जहाँ प्रत्येक बच्चे की जन्मजात विलक्षणता उसके स्वयं के संस्कार, समूहों और उसकी अपनी आन्तरिक संरचना पर निर्भर है, वहीं उसकी इच्छाओं का स्वरूप उसके परिवेश से प्रभावित होता है। बच्चे जो देखते-सुनते हैं, उसी के अनुरूप उनका मानस, उनकी महत्त्वाकांक्षा और उनका कल्पना जगत बनता-ढलता है।

यह बात गतवर्ष जापानी संस्था 'कावासाकी किसेन कइशा' द्वारा दुनिया के बारह देशों के सात सौ विद्यालयों के बच्चों की राय का सर्वेक्षण करने पर सामने आयी। इस सर्वेक्षण में ६ से १२ वर्ष की वय के शिशुओं से उनकी महत्त्वाकांक्षा, पसन्द, नापसन्द प्रिय खेल और माता-पिता से उनकी प्रधान उपेक्षा के बारे में पूछा गया था। इन पाँचों ही प्रश्न वर्गों के प्राप्त उत्तरों से यह स्पष्ट हो गया कि बच्चों के ऊपर परिवेश का कितना प्रभाव-दबाव पड़ता है ?

''बड़ा होकर क्या बनने की महत्त्वाकांक्षा है ?'' इस प्रश्न का उत्तर बच्चों के देश-समाज और घर-परिवार की परिस्थिति एवं वातावरण के प्रतिबिम्ब थे। अमरीकी बच्चों में से अनेक अन्तरिक्ष यात्री बनना चाहते और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाँद, मंगल तथा शुक्र पर जाना चाहते थे। जबकि जापान के अनेक बच्चों ने फोटोग्राफर, डाक्टर अथवा वैज्ञानिक बनने की रुचि प्रदर्शित की। यह दोनों ही विकसित देश हैं और वहाँ के बच्चे यह जानते हैं कि कुछ बनना है। इसी प्रकार जापान की लड़कियाँ गायिकाएँ एवं विमान परिचायिकाएँ बनने की आकांक्षिणी थीं। उधर थाईलैण्ड के साधारण स्कूल के एक सामान्य बच्चे ने जबाव दिया—"मैं तो बड़ा होकर घड़ी पहनूँगा।" प्रश्नकर्त्ताओं ने समझाना चाहा—"बेटे, घड़ी तो पहनोगे, पर काम क्या करोगे ?" बच्चे ने फिर जोर देकर कहा—"धन्धा कुछ भी करूँ, मैं अपने हाथ में घड़ी जरूर पहनना चाहूँगा।" इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि कम विकसित देशों के बच्चों में अमूर्त आकांक्षाएँ हैं, जो ललक के रूप में हैं क्योंकि वहाँ के जनजीवन में अभी इतनी जागरूकता और आत्मविश्वास नहीं विकसित हुआ कि छोटे बच्चे भी अपने बारे में स्पष्ट कल्पनाएँ कर सकें।

प्रत्येक बच्चा विकसित होना और बड़ा होना चाहता है। साथ ही प्रत्येक मानव-शिशु में ज्ञान की एक स्वाभाविक भूख होती है—यह तथ्य इससे भी स्पष्ट होता है कि सभी देशों के साधारण स्कूलों के बच्चों ने आगे जाकर स्वयं भी मास्टर या अध्यापक बनने की आकांक्षा अभिव्यक्त की, क्योंकि उनकी दृष्टि में उनका अध्यापक ज्ञान का अथाह स्रोत है और साथ ही इतना समर्थ है कि वह उन्हें चाहे जब डाँट-डपट सकता है और उसकी आज्ञा मानने को वे सब बाध्य हैं।

जब बच्चों से यह पूछा जाता था कि "अगर तुम्हें तीन मनचाहे वरदान मिल जाएँ, तो तुम क्या माँगोगे ?" तो वे खिल उठते थे। इससे स्पष्ट होता है कि बच्चे सपने पालते हैं और दूसरों से अपेक्षाएँ रखते हैं। किसी बच्चे ने कहा कि मुझे ऐसी दवा चाहिए, जिसे पीकर मैं होशियार बन जाऊँ। तो किसी ने उत्तर दिया कि मैं स्वर्ग की सैर कर आऊँ। पर अधिकांश बच्चों ने, बल्कि प्रायः सभी बच्चों ने तीन में से एक वरदान यह अवश्य माँगा कि मैं खूब धनी बन जाऊँ। इससे स्पष्ट है कि वर्तमान समाज में सर्वोपरि मान्यता धन को ही प्राप्त है, यह सत्य बच्चों की पैनी बुद्धि की पकड़ में सीधे आ जाता है और वे स्वयं भी धनी बनकर सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहते हैं। जापान और अमरीका की धनी बस्तियों में शोर-शराबे के बीच जीने वाले बच्चों ने एक वरदान यह भी माँगा कि हमें शान्त इलाके में एक खूब बड़ा मकान मिले, जहाँ आस-पास खेलने के लिए मैदान और बगीचे हों।

"वह कौन-सी वस्तु है ? जिसे तुम इस दुनिया में बिल्कुल भी पसन्द नहीं करते और चाहते हो कि वह खत्म हो जाये ?" इस प्रश्न के उत्तर भी दिलचस्प थे। कुछ बच्चों ने तो कहा कि स्कूल दुनिया में कहीं न रहें, तो कुछ ने कहा कि वार्षिक परीक्षाएँ न हुआ करें। गरीब बच्चों ने कहा कि इस दुनिया से दो चीजें पूरी तरह गायब हो जानी चाहिए—डाँट और मार। जबकि इन्हीं देशों के ऊँचे-महँगे स्कूलों में पढ़ने वाले लड़कों ने इच्छा व्यक्त की कि 'गरीबी' और 'भूख' इस दुनिया से गायब होनी चाहिए। स्पष्ट है कि गरीब बच्चे यह कल्पना भी नहीं कर पाते कि गरीबी और भूख, कभी खत्म भी नहीं हो सकते हैं। उनके लिए गरीबी और भूख उतनी ही स्थायी वस्तुएँ हैं, जितना वे स्वयं। वे तो किसी प्रकार डाँट-मार भर खत्म देखना चाहते हैं। उधर अमरीका और जापान के बच्चे 'प्रदूषण' के प्रति जागरूक पाये गये और उन्होंने दुनिया से प्रदूषण गायब करा देना चाहा। जापान की राजधानी टोकियो में आये दिन सड़क दुर्घटनाएँ होती रहती हैं। वहाँ के बच्चों ने यह इच्छा व्यक्त की कि सड़क दुर्घटनाएँ दुनिया से गायब हो जायें। इसके साथ ही अनेक बच्चों ने दुनिया से 'बुरे लोग' और 'गन्दे काम' खत्म हो जाने की कामना की।

माता-पिता से क्या चाहते हैं ? इसका उत्तर जापान और अमरीका के अधिकांश बच्चों ने दिया—"और अधिक जेब खर्च।" जबकि दूसरे बच्चों ने बतलाया कि वे माता-पिता से अधिक उदारता की अपेक्षा रखते हैं। जिन बच्चों को मारा-पीटा जाता है, उन्होंने यही अपेक्षा व्यक्त की कि माता-पिता मार-पीट न करें, जबकि जहाँ माता-पिता दोनों काम पर चले जाते हैं, वहाँ के बच्चों ने यह आग्रह किया कि "मेरी माँ दफ्तर जाना बन्द कर दें और मेरे साथ घर पर रहें।" या "मैं जब स्कूल से लौटकर आऊँ, तो माँ घर पर मिलें और मेरे साथ खेलें।" इससे स्पष्ट होता है कि बच्चे साधन-सुविधाओं से भी अधिक माँ का सान्निध्य एवं स्नेह चाहते हैं और बच्चों के सन्तुलित विकास के लिए वह उनकी आन्तरिक आवश्यकता है। एक विशेष बात जो इन जवाबों से उभरकर सामने आती है, वह भी ध्यान देने योग्य है। वह यह कि "माता-पिता से क्या चाहते हैं ?" के उत्तर में बच्चों ने शिकायतें ही कीं और आरोप भी लगाये। इससे माता-पिता की यह मान्यता कि वे बच्चे को बेहद प्यार करते हैं और उनका बहुत ख्याल रखते हैं गलत सिद्ध हो जाती है। स्पष्ट है कि माता-पिता बच्चों के स्वयं के व्यक्तित्व सन्तुलन तथा उनकी भीतरी इच्छाओं का समुचित ध्यान नहीं रखते और अपनी ही रुचि-अरुचि तथा पूर्वाग्रह उन पर लादते रहते हैं। वे उन पर अपनी सत्ता जमाते रहते हैं और अतिशय लाड़-प्यार भी जतलाते हैं किन्तु खुद बच्चों की स्वाभाविक इच्छाओं और जरूरतों की उपेक्षा करते हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि बच्चों के व्यक्तित्व की माँगों का ध्यान रखा जाय।

इन प्रश्नों-सर्वेक्षणों से यह तथ्य भी उभरकर आता है कि बच्चों की इच्छाएँ-आकांक्षाएँ और सपने क्या होंगे, यह उनके परिवेश पर निर्भर है, न कि उन्हें दिये जाने वाले उपदेश पर। अतः सुसभ्य-सुसंस्कृत नई पीढ़ी के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्माण के लिए वैसे श्रेष्ठ, सुसंस्कृत परिवेश का निर्माण आवश्यक है। प्रत्येक प्रबुद्ध माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे ऐसे परिवेश के निर्माण में योगदान दें।

अभिभावकों पर निर्भर है, बच्चों का विकास

सामान्यतः हर बालक जन्म से नीरोग एवं निर्दोष प्रकृति का होता है। उसमें किसी भी तरह की शारीरिक एवं मानसिक रुग्णता देखने को नहीं मिलती। यदि माता-पिता सुयोग्य एवं सुशिक्षित स्तर के हैं, बाल-विकास की समस्त संभावनाओं से भली-भाँति परिचित हैं, तो विकास-क्रम के अनुरूप सामान्य परिस्थितियों और स्वस्थ वातावरण विनिर्मित करके बालकों का सहज-स्वाभाविक विकास करने में सक्षम हो सकते हैं। इसके विपरीत जो अभिभावक मानसिक दृष्टि से स्वयं अस्वस्थ एवं असंतुलित बने रहते और घर में कलह, कटुता और परस्पर लड़ने-झगड़ने की मानसिकता गढ़ लेते हैं, अपनी संतति को भी चिन्तन और चरित्र की दृष्टि से असामान्य और असंस्कृत बनाकर छोड़ते हैं। शारीरिक दृष्टि से भले ही उनका परिपोषण अच्छी तरह होता रहे, पर मानसिक दृष्टि से वे जीवनभर उदास और अस्वस्थ ही बने रहेंगे।

जीवन में आहार-विहार का उपक्रम ठीक से न बैठने पर शरीर को अनेकानेक तरह की बीमारियों का शिकार बनना पड़ता है, उसी तरह परिवार के गलत वातावरण और दुर्व्यवहार से बच्चों में कई तरह की मनोविकृतियाँ घर करने लगती हैं। आँकड़े बताते हैं कि इस समय अपने देश में लगभग दो करोड़ बच्चे ऐसे हैं, जिन्हें मानसिक दृष्टि से अक्षम एवं अस्वस्थ माना जा सकता है। अकेले दिल्ली शहर में ६ से १६ वर्ष तक की आयु के २२ हजार बच्चे बुरी तरह मानसिक रूप से पीड़ित होकर अपनी जिन्दगी के दिन किसी तरह गुजार रहे हैं। जर्मनी के कोलोन मनोविज्ञान संस्थान के अध्यक्ष तथा विश्व प्रसिद्ध बालमनोविज्ञानी प्रो. विचरमैन का कहना है कि माता-पिता की हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ इस कदर बढ़ती जा रही हैं, जिन्हें समय रहते नियन्त्रित नहीं किया जा सका तो बाल-विकास की सम्भावनाएँ संदिग्ध ही बनी रहेंगी। आज कम उम्र में विवाहित और अनुभवहीन माताएँ अपने जीवन से असन्तुष्ट रहकर न जाने कितने अनचाहे बच्चों को जन्म देती जा रही हैं ? जिनकी कुण्ठाओं का शिकार बच्चों को मानसिक विक्षिप्तता के रूप में सहन करना पड़ रहा है।

माता-पिता के बीच यदि किसी भी तरह मतभेद अथवा मनोमालिन्य उत्पन्न होने लगता है तो बच्चे के कोमल मस्तिष्क पर इसका सीधा बुरा प्रभाव पड़ता है। आश्चर्य की बात तो यह है कि जन्मदाता तो परस्पर लड़-झगड़कर सुलह कर लेते हैं और शान्तिपूर्ण जीवन बिताने लग जाते हैं लेकिन सुकोमल बच्चे भय, आशंका और अनिश्चितता के माहौल से बुरी तरह बेचैन हो उठते हैं। ऐसी स्थिति में वे संकोची स्वभाव के बनते और सामाजिक जीवन से अलग-थलग होकर निरर्थक जीवनचर्या अपनाने के लिए विवश हो जाते हैं।

ख्यातिलब्ध मनोचिकित्सक डॉ. विलियम ई. होमन ने अपनी पुस्तक 'चाइल्ड सेंस' में स्पष्टतः लिखा है कि माता-पिता द्वारा उत्पन्न वाद-विवाद अथवा झगड़े-झंझट के एक-दो मामले प्रकाश में आने का बच्चे के अन्तर्मन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है और बच्चा जीवन की एक सहज-स्वाभाविक क्रिया मानकर संतोष कर बैठता है, पर यदि इन्हीं की पुनरावृत्ति समय-समय पर होती रही तो बच्चों में अविश्वास की भावना का उदय होने लगता है और उनकी शंका अपनी चरम-सीमा तक जा पहुँचती है जिससे उसके मानस-पटल पर एक ही मान्यता बन जाती है कि अब उनके स्नेह, सद्भाव और सहानुभूति की त्रिवेणी संगम का स्रोत सदा-सर्वदा के लिए सूखता चला जा रहा है। ऐसी जीवन विरोधी परिस्थितियों को देखकर बालकों की मनःस्थिति का असन्तुलित, असंयमित और अस्वस्थ होना सुनिश्चित ही है।

प्रायः देखने में आता है कि दिल की धड़कन बढ़ना, पेट में दर्द होना और मूर्च्छित हो जाना शारीरिक रोग का प्रतीक चिह्न ही मान लिया जाता है और उनकी उत्पत्ति का मूल कारण भी खान-पान की अनियमितता और असंयमता को मानकर संतोष कर लिया जाता है जबकि वास्तविकता वैसी नहीं है। इन शारीरिक रोगों का मुख्य कारण मनोवैज्ञानिक ही अधिक होता है, जिन्हें आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में 'साइकोसोमेटिक' के नाम से सम्बोधित किया जाता रहा है। सिडनी की बाल और परिवार मनोविज्ञानी डॉ. ऐनीबेजिंग ने बालक, परिवार और दाम्पत्य जीवन की गतिविधियों का लम्बे समय तक अध्ययन-अनुसन्धान किया है। तदुपरान्त वे इस निष्कर्ष पर पहुँची हैं कि बच्चे की मानसिक उलझनें तब अधिक बढ़ जाती हैं, जब वह अपने माता-पिता के झगड़े में यह निर्णय नहीं कर पाता कि इस विवाद को बल देने वाला कौन हो सकता है ? किस पक्ष का समर्थन करें किसका नहीं ? इस मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के शिकन्जे में फँसकर भी उसके व्यवहार में असामान्यता आ जाती है। अतः माता-पिता को चाहिए कि अपने असामान्य व्यवहार वाले मनोरोगी बच्चे को भूत-प्रेत और दैवी प्रकोप बताने वाले, झाड़-फूँक करने वाले ओझा के पास न ले जाकर किसी सुयोग्य चिकित्सक के पास ले जाएँ अथवा स्वयं भी अपने व्यवहार में स्नेह-सहानुभूति का सद्भाव विकसित करके उक्त प्रयोजन की पूर्ति आसानी से कर सकते हैं।

भोजन, वस्त्र जैसी शारीरिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त बच्चों की कुछ मानसिक आवश्यकताएँ भी हुआ करती हैं। हर बालक के अन्तर्मन में स्नेह, अपनत्व,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वतन्त्रता, सफलता और प्रशंसा पाने की इच्छा-आकांक्षाएँ हिलोरें लेती रहती हैं, जिन्हें पूरा करने की अपेक्षा भी रखता है। मनोविज्ञान विशेषज्ञों का कहना है कि यदि बच्चों की मनोवृत्ति को सही दिशाधारा में मोड़ा नहीं गया तो मानसिक विकृति की, वंश-परम्परा की यह समस्या और भी विकराल स्वरूप ग्रहण कर लेगी। यह एक सत्य है कि बच्चों के रोगोपचार में जितने सहायक माता-पिता हो सकते हैं, उतना और कोई नहीं हो सकता।

बालकों के साथ बड़े कैसा व्यवहार करें ?

मनुष्य-मात्र आनन्द प्राप्त करना चाहता है। हर एक मनुष्य की भरसक यह कोशिश होती है कि उसे आनन्द प्राप्त हो। मनुष्य के अनेक-विधि आनन्दों में उसका बालक भी उसके अपने परम आनन्द का साधन होता है। जिसके घर में बालक नहीं, उसके घर में आनन्द नहीं। आनन्द का ऐसा यथेच्छ उपयोग करने के लिए मनुष्य आकाश-पाताल एक करता है। हमारे समाज में भी बाँझपन अपशकुन और अभाग्य का कारण माना जाता है। बाँझपन का कलंक टालने के लिए स्त्री-पुरुष अपने बस भर कोई बात उठा नहीं रखते। घर में पालना बँध जाने से जो आनन्द प्राप्त हो सकता है, उसकी तुलना दूसरे किसी आनन्द से नहीं की जा सकती। यह आनन्द देह और देही दोनों का है। इस परम आनन्द ने ही संसार की सततता को बनाये रखा है और मनुष्य की शुभवृत्तियों को हमेशा ऊपर चढ़ाया है—ऊर्ध्वगामी बनाया है। बालक मनुष्य के आनन्द का जनक है।

जब ऐसे आध्यात्मिक आनन्द का देने वाला कोई पात्र परिवार में जन्म लेता है तो वह न केवल अपने माता-पिता के, बल्कि सब किसी के आनन्द का साधन बन जाता है। उसे देखकर सब आनन्दमग्न हो जाते हैं, उसे गोद में लेकर सब कोई तृप्ति का अनुभव करते हैं। उसके कारण सारा परिवार आनन्द से परिप्लावित रहता है। बालक के आनन्द में माता-पिता का सच्चा आनन्द समाया हुआ है। जब बालक का आनन्द लुप्त होता है, तो माता-पिता का आनन्द भी बिदा हो जाता है। बालक समूचे कुटुम्ब के आनन्द का केन्द्र बन जाता है। कुटुम्ब के परिचित लोग भी बालक को देखकर खुश होते हैं और एक प्रकार के गहरे आनन्द का अनुभव करते हैं।

किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे इस आनन्द की कक्षा और इसका प्रवाह बदलता रहता है। सब किसी के आनन्द का कारण बनने वाला बालक धीरे-धीरे सबके आनन्द का स्थूल और स्वार्थी साधन बनने लगता है। माता-पिता और बड़े-बूढ़े समझते नहीं कि बालक का भी अपना आनन्द होता है। जन्म के बाद तुरन्त ही जो बालक अपनी रक्षा और अपने पोषण की अपेक्षा रखता है और अपने ढंग से अपना विकास करने लगता है, वह धीरे-धीरे समझदार और सशक्त भी बनता जाता है। बालक के अपने कामों से माता-पिता को जो आनन्द मिलता है, उससे बालक को भी खुशी होती है, घर के बड़े-बूढ़ों द्वारा जो काम या आयोजन बच्चों के लिए, बच्चों के आनन्द का पोषण करने की दृष्टि से किए जाते हैं, उनसे उन्हें हमेशा आनन्द मिलता ही है, यह सोचना ठीक नहीं। जब बालक अपने आनन्द में लीन होते हैं, तब माता-पिता और घर के बड़े उनसे यह अपेक्षा रखते हैं कि वे अपने किसी व्यवहार या कार्य द्वारा उन्हें आनन्द पहुँचायें। बालक के आनन्द से आनन्दित होने वाले बड़े-बूढ़े अब दूसरी दृष्टि से सोचने लगते हैं। उनके मन में यह विचार प्रमुख बनने लगता है कि बालक भी उन्हें आनन्द पहुँचाने का यत्न करे। जब कोई छोटा बालक अपने खेल में डूबा और उसमें पूरा रस ले रहा होता है, तभी माता-पिता और बड़े-बूढ़े यह चाहते हैं कि बालक अपने खेल छोड़कर उनके पास आयें और उनका मनोरंजन करे। जो माता-पिता और बड़े-बूढ़े बच्चे के साथ खेलकर और उसे अपने मन-बहलाव का साधन बनाकर खुश होना चाहते हैं, वे बच्चे के भय और उसकी अरुचि या उकताहट की परवाह नहीं करते और जब बालक माता-पिता के ऐसे किसी व्यवहार का विरोध करता है, तो उन्हें यह पसन्द नहीं आता और बालक की खीझ या चिढ़ की परवाह किये बिना वे अपने आनन्द-उत्सव में मग्न रहते हैं। एक समय था जब बच्चों का और बड़ों का आनन्द अभिन्न था। धीरे-धीरे ऐसा समय भी आता है, जब कभी तो उनका आनन्द अभिन्न होता है और कभी भिन्न भी। यदि ऐसी परिस्थिति में ध्यानपूर्वक और ज्ञानपूर्वक बालक को समझने की कोशिश न की जाय तो फिर भी एक समय आ जाता है, जब बालक के और बड़ों के आनन्द-क्षेम और आनन्द-कार्य बिल्कुल ही भिन्न बन जाते हैं और आनन्द-विषयक दोनों की व्याख्याएँ बदल जाती हैं।

हममें से हर एक को यह समझना चाहिए कि छोटा बच्चा एक प्राणवान प्राणी है और उसका अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी है। ज्यों-ज्यों व्यक्तित्व का विकास होता जाता है, त्यों-त्यों वह अपनी प्रतिभा अनेक प्रकार से प्रकट करता जाता है। ऐसे बालक को उच्चकोटि का आनन्द रुचता है और ऐसे आनन्द की प्राप्ति के लिए वह उच्चकोटि के कार्य भी पसन्द करता है। चूँकि समाज को बालक के चित्त की धाराओं का कोई व्यवस्थित ज्ञान नहीं होता, इसलिए बालक से बड़े प्रायः सभी उसके बारे में गलत ख्याल बना लेते हैं और यों बालक के साथ अन्याय करते हैं। जिस तरह बड़ी उम्र के लोगों को आनन्द रुचता है और अपनी रुचि का आनन्ददायी काम अच्छा लगता है, उसी प्रकार बालक भी आनन्दप्रिय है और उसे भी रुचिकर व आनन्दप्रेरित काम अच्छे लगते हैं। चूँकि हम इस सच्चाई की तरफ ध्यान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

नहीं देते, इसलिए अक्सर बच्चों के आनन्द-विनोद में और उनकी रुचि के कार्यों में बड़ेपन के बल पर बाधा डाला करते। जब बालक खेलना-कूदना चाहता है, तो हम उसे चुपचाप बैठने को कहते हैं। जब बालक कुछ करना धरना चाहता है, तो हम उसके उत्साह पर ठण्डा पानी डाल देते हैं। इस प्रकार हम बड़े-बूढ़े, बालकों को रुचिकर लगने वाले हर तरह के आनन्ददायक कार्यों का जाने-अनजाने विरोध करने लगते हैं। बालक समझ नहीं पाते कि क्यों घर के बड़े-बूढ़े उनके आनन्द में बाधक बनते हैं ? फलतः वे अपनी शक्ति के अनुसार अपना विरोध प्रदर्शित करते रहते हैं। दुर्भाग्यवश घर के बड़े इस विरोध का उल्टा अर्थ लेते हैं और अपने ढंग से जीने की कोशिश करने वाले को शरारती और जिद्दी समझकर उसके साथ दूसरी तरह का बर्ताव करने लगते हैं। यों, बच्चों और बड़ों के बीच इस तरह की गलतफहमियाँ जिस प्रमाण में बढ़ती जाती हैं, उसी प्रमाण में बालक का आनन्द लुटता जाता है। और परिवार के आनन्द में कमी होती जाती है। फलतः माता-पिता को समूचे परिवार को आनन्द प्रदान करने वाला बालक अप्रिय बनने लगता है और सबका आपसी आनन्द दुःख और कलह में बदल जाता है यह सब इसलिए होता है कि माँ-बाप और घर के बड़े-बूढ़ों का बालक के बारे में सही ज्ञान नहीं होता है। यदि हम यह समझ जाएँ कि बालक के आनन्द में सारी दुनिया का आनन्द है और यह समझकर बालक को आनन्दमग्न रहने दें तथा उसके आनन्द से स्वयं आनन्दी बनें, तो आज की दुःखी दुनिया की कायापलट हो जाय और वह सुखी बन जाय।

बाल-विकास में अभिभावकों का उत्तरदायित्व

सामान्यतया औसत बालक दबावों से जूझने की आदत बनाने एवं उसका अभ्यस्त बनने का प्रयास करता है। बच्चा सामाजिक प्रभावों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया किस प्रकार प्रकट करता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसके परिवार और सामाजिक संस्कृति का विकास मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के अनुरूप हुआ है या नहीं।

अल्फ्रेड एडलर ने उक्त सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्त सुझाये हैं। उनका मत है मानव शिशु की एक लम्बी, बिल्कुल असहाय और पराश्रित जिन्दगी होने के कारण उस शिशु में हीनता की भावना उत्पन्न करती है जो कि धीरे-धीरे क्रम से घटनाओं के साथ मिटती जाती है। शिशु वयस्कों की दया का पात्र बनकर क्रम से अपना विकास करता है, साथ ही वह विभिन्न परिस्थितियों में जीवन के संघर्षमय वातावरण में अनेक प्रकार की व्यूह रचना से भी अवगत होता चलता है, जिन वयस्कों को वह शक्तिशाली मानता है उनके सम्पर्क में रहकर वह अपनी हीन भावनाओं को मिटाता जाता है। वह अपने भावी जीवन की पद्धति, आचार, व्यवहार की शैली को भी अपनाता जाता है, जिससे कि वयस्क होने पर उसका चरित्र और व्यक्तित्व एक शक्तिशाली आधार पर खड़ा हो सके। बच्चों में ज्ञानबोध और आत्मप्रेरणा का होना आवश्यक है। पृथ्वी पर लगभग बीस लाख प्रकार के जीव-जन्तु निवास करते हैं किन्तु आत्मज्ञान जैसी अनूठी उपलब्धि केवल मानव को मिली है। मानव की अन्य विलक्षण प्रवृत्तियों में उसका सौन्दर्य के प्रति आकर्षण और कुरूपता-घिनौनेपन को टालना भी है। मानव आपस में मेल-जोल, भाई-चारे का और प्यार पाने का इच्छुक है। बालक भी अपना स्वाभिमान प्राप्त करके उसे स्थायी रखना चाहता है। मनुष्य अपने सम्मान और स्वाभिमान को पाने के लिए यदि आवश्यक हुआ तो अपने सुख और वैभव का भी त्याग कर सकता है, यह प्रक्रिया बचपन से ही आरम्भ हो जाती है।

बालक की व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति कर उसके साथ प्यार के सम्बन्ध बढ़ाकर उससे अच्छा सामञ्जस्य बिठाया जा सकता है। बालक माँ का प्यार पाने के लिए उसे अपनी ओर से प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है। इसमें वह कई प्रकार की लुभावनी मुद्रा बनाता है, जैसी कि उसकी माँ को प्रिय होती है। वह आज्ञाकारी बनने का प्रयास करता है क्योंकि वह प्रायः सुनता है कि "तुम अच्छे लड़के हो, इसीलिए तुम्हारी माँ तुम्हें प्यार करती है।"

मार्गरिट मीड और कई अनेक मानवशास्त्रियों का कथन है कि प्राचीनकाल से ही समाज की यह माँग रही है कि उसका प्रत्येक सदस्य पारस्परिक अनुशासन एवं सहयोग की भावना रखे। इसके लिए नियम बनाने की परम्परा पहले भी थी और आज भी विद्यमान है। इन नियमों को न मानने से अराजकता पनप सकती है। सामाजिक नियमों को पालन करने की माँग न्यायोचित है। ये नियम परम्परा भी हो सकते हैं, विधिबद्ध भी हो सकते हैं और अन्तर्राष्ट्रीय भी हो सकते हैं। इन्हीं पर समाज का विकास निर्भर होता है। लगभग यही नियम परिवार संस्था के विकास के लिए भी उत्तरदायी है।

बालमनोवैज्ञानिकों का मत है कि कुछ बालक प्रलोभनों का दूसरे अन्य बालकों की अपेक्षा प्रतिरोध करने में सफल होते हैं। इसी प्रकार कुछ माता-पिता अपने बच्चों के अन्तःकरण में प्रभावपूर्ण युक्ति से सद्विवेक स्थापित करने में सफल होते हैं, जबकि कुछ लोग बिल्कुल ही नहीं कर पाते। इसका मुख्य कारण है माता-पिता और उनके बच्चों के बीच एक शक्तिशाली प्रेम का बन्धन और उस बन्धन के अन्तर्गत माता-पिता की अपने बच्चों से सदाचरण की माँग करना। इसमें एक और क्रियाशैली भी अपनाई जाती है जिसके अन्तर्गत कुछ पुरस्कार देना और आवश्यक हुआ तो दण्ड प्रक्रिया को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी अपनाया जाता है किन्तु यह दण्ड शारीरिक न होकर मनोवैज्ञानिक होता है, जिसके अन्तर्गत बहुधा भविष्य में प्यार न करने की बात कही जाती है। बच्चे में सद्विचार को प्रभावशाली ढंग से स्थापित करने के लिए यह बात माताओं को याद रखनी चाहिए कि वे उन्हें प्यार का प्रलोभन देकर और उचित रीति से कोई क्रिया न करने पर भविष्य में प्यार न करने की बात कहकर, धमकाकर उनको इच्छित दिशा में मोड़ भी दे सकती हैं।

कई माताएँ अपने बच्चों से बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाये रहती हैं। बच्चों को अपनी उच्च महत्त्वाकांक्षा के अनुरूप न विकसित होता पाकर बड़ी ही निराश हो जाती हैं और अपने बच्चे पर कई प्रकार के निषेधात्मक प्रतिबन्ध लगाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप उस बच्चे में कई प्रकार की रचनात्मक शक्तियों का विकास ही नहीं होने पाता। जबकि मधुर प्रेम के आकर्षण से उसे अनुशासन में बाँधकर अपेक्षाकृत आज्ञाकारी बनाया जा सकता है।

सुप्रसिद्ध स्वीडन के मनोवैज्ञानिक जीन पिआगेट का मत है कि जैसे-जैसे आयु में वृद्धि होती जाती है। वैसे-वैसे बालक में सद्भावना का भी विकास आवश्यक रूप से होता जाता है। दस वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात् बच्चे में सहकारिता और सह-अस्तित्व की भावना पनपने लगती है। बालक समझने लगता है कि सामाजिक नियमों का गठन समाज ने अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप किया है। पाठशाला में भी बालक को नियमों के पालन पर जोर दिया जाता है वस्तुतः बालक को सामाजीकरण की दिशा में मोड़ने के लिए उसे प्रामाणिकता और मूढ़-मान्यताओं के बीच के अन्तर से अवगत कराया जाना चाहिए, जिससे वह श्रेष्ठ व्यवहार करने की शैली को जो कि समाज द्वारा मान्य है, अपना सके।

बालक गीली मिट्टी की तरह है। उसे जिस साँचे में ढालना चाहें, उसके संरक्षक-अभिभावक सरलतापूर्वक ढाल सकते हैं। इसके लिए थोड़ा ध्यान देने और समुचित मार्गदर्शन करते रहने भर से काम चल जाता है। बालक जन्मजात रूप से अनगढ़ होते हैं। वे सम्पर्क वाले व्यक्तियों से सीखते हैं। उनके व्यवहार से प्रभावित होते हैं। अपने को बदलते, सुधारते और बनाते हैं।

यह कथन एक सीमा तक ही सही है कि वंशानुक्रम और पूर्व जन्मों के संचित संस्कारों से जिसे जैसा बनना होता है बनता है। जन्मजात संस्कारों की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता पर साथ ही यह भी गलत नहीं है कि शिक्षण मार्गदर्शन एवं वातावरण का प्रभाव उससे भी अधिक होता है। इसलिए अभिभावकों का कर्त्तव्य है कि उन्हें सुसंस्कारी बनाने के लिए बाल-मनोविज्ञान समझने और सन्तान को उपर्युक्त ढाँचे में ढालने के लिए क्या करना होता है ? वह समझने का प्रयत्न करें।

डा. एरिक एरिक्सन का मत है कि शैशव काल में ही बालक इस बात का ज्ञान प्राप्त कर लेता है कि यह दुनिया अच्छी है और रहने के लिए सन्तोषप्रद स्थान है अथवा यह दुःखदायक है, निराशामय अनिश्चित वातावरण का स्थान है।

कुछ बालमनोविज्ञानियों का विश्वास है कि बालक की ५ से ७ वर्ष की आयु की अवधि बड़ी ही महत्त्वपूर्ण है। इस अवधि में अपने अनुभवों के आधार पर यह पता लगाया जा सकता है कि बालक का भावी जीवन कैसा होगा ? इस विषय में कुछ विशेषज्ञों का मत है कि यह समय उनके भावी जीवन की नींव से सम्बन्धित है, इस पर वातावरण का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है।

बालक में अविश्वास और असुरक्षा का होना एक भावनात्मक समस्या बन जाती है। यह बालक की प्राथमिक आवश्यकताओं को प्रारम्भिक दिनों में नकारने से उत्पन्न होती है। यदि माता-पिता का रवैया बालक के प्रति उपेक्षापूर्ण रहा तो बालक इस दुनिया को असुरक्षित और धमकी भरी समझने लगेगा।

शोधकर्त्ताओं के अध्ययन से पता लगता है कि जीवन के प्रारम्भिक अति संवेदनशील दिनों में बालक की रुचि सीखने की ओर अधिक होती है और यहीं से उसके जीवन की आधारशिला एक स्थायी रूप लेने लगती है। इसके बाद क्रमशः कई चरणों में विकास होता जाता है और प्रत्येक नया चरण उसके पूर्व के चरण की स्थिति पर निर्भर रहता है।

डॉ. प्रॉवेन्स और डॉ. लिप्टन नामक मनोवैज्ञानिकों ने तुलनात्मक सर्वेक्षण से ज्ञात किया है, कि जिन बालकों को बाहर रखकर संस्थागत शिक्षण दिलाया जाता है, वे उन बालकों की अपेक्षा जिनको घर पर ही प्रारम्भिक समय में शिक्षण दिया जाता है, कम सतर्क, कम मिलनसार, कम जिज्ञासु, कम रुचि वाले, कम प्रतिक्रियाशील और कम प्रगतिशील पाये गये।

बड़े होने पर बच्चों को अनेक सुविधा-साधन प्रदान करने, उच्च शिक्षा दिलाने, धूमधाम से शादी करने, अच्छी आजीविका का रास्ता बनाने, जैसी कल्पना करने योजना बनाने में हर्ज नहीं, पर सबसे प्रथम जो हर किसी के लिए सम्भव है—यह किया जाना चाहिए कि बालकपन के दिनों में ही उन्हें सुसंस्कारिता प्रदान करें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

और उसके लिए घर का वातावरण ऐसा बनायें जिसमें रहकर उसे व्यक्तित्व विकसित करने और सद्गुणों की सम्पदा संचित करने का अवसर मिल सके। वस्तुतः बच्चों का हित-साधन और भविष्य निर्माण इसी आधार पर होता है। साधन-सुविधा प्रदान कर सकना परिस्थितियों पर निर्भर है, किन्तु सुसंस्कार बनाने का कार्य ऐसा है, जिसे हर स्थिति के अभिभावक अपनी जिम्मेदारी अनुभव करने और सतर्कता बरतने पर निश्चित रूप से कर सकते हैं।

कई बार माता-पिता आजीविका उपार्जन में इतने अधिक व्यस्त रहते हैं कि बच्चों को साथ नहीं रख पाते। थके हुए लौटते हैं, तो भी उन्हें एक झंझट मानकर नौकरों के सुपुर्द कर देते हैं। इसी तरह कई बार तलाक के कारण बच्चों पर बहुत बड़ा मानसिक प्रभाव पड़ता है। माता के मन में पिता के प्रति जो शिकायत बनी रहती है, वह बच्चों के मन में निराशा एवं प्रतिशोध बनकर जमती है और कई प्रकार के दोष-दुर्गुण उत्पन्न करती है।

इस सन्दर्भ में न्यूयार्क के प्रख्यात शिशु रोग विशेषज्ञ डॉ. गार्डनर ने गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया है और पाया है कि अभिभावकों के प्यार के अभाव में बालकों का विकास अवरुद्ध हो जाता है। माता-पिता का ममता भरा भरपूर स्नेह जिन बच्चों को नहीं मिल पाता वे मस्तिष्क शून्य बन जाते हैं। वाल्टीमोर के अनाथालय में पलने वाले बच्चों का लम्बे समय तक अध्ययन करने के पश्चात् उन्होंने निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए बताया है कि इनमें से आधे से अधिक बच्चे माँ के प्यार के अभाव में दम तोड़ जाते हैं। चिकित्सालयों में भर्ती करने पर भी अधिकांश बच्चे इसीलिए ठीक नहीं हो पाते कि उन्हें अपने जन्मदाताओं का प्यार नहीं मिल पाता। उनका कहना है कि माता के प्यार के अभाव में जो बच्चे नहीं सो पाते, उनके मस्तिष्क का हाइपोथैलमस भाग एवं पिट्यूटरी नामक अन्तःस्रावी ग्रन्थि भी अविकसित रह जाती है और विकास के हेतु जिस हारमोन रसायन की आवश्यकता होती है, उसका स्राव भी नहीं होता। इस कमी के कारण बच्चे का विकास रुक जाता है और वह शारीरिक एवं मानसिक रूप से रुग्ण रहने लगता है।

मूर्धन्य मनोचिकित्साविज्ञानी डॉ. जान बोल्बी का कहना है कि बच्चों की भावनाओं के विकास का केन्द्र उसकी जन्मदात्री माँ होती है। अपने अनुसन्धान निष्कर्ष में उन्होंने बताया है कि जो बच्चे अपने माता-पिता से अलग रहते हैं, उनमें से ५० प्रतिशत की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति उन बच्चों की अपेक्षा गिरी हुई होती है जो सदैव अपने अभिभावकों के संरक्षण में रहते हैं। शिशुओं के सन्तुलित विकास में जितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका दुलार एवं आहार की होती है, उससे भी कहीं अधिक पारिवारिक परिवेश की होती है। सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक वातावरण का स्वच्छ एवं सुसंस्कृत होना भी नितान्त आवश्यक है।

'द साइकोजैनिक डिसीजेज इन इनफैन्सी' नामक अपनी कृति में आर. स्पिट ने अपना अभिमत प्रकट करते हुए बताया है कि बचपन में यदि बच्चों को स्नेहपूर्ण वातावरण न मिले तो वे अनेकानेक मनोदैहिक रोगों से ग्रसित होते चले जाते हैं, जिसका निदान बढ़ी हुई उम्र में भी नहीं हो पाता। उनका कहना है कि बच्चों पर अभिभावकों के वात्सल्य भरे दुलार का विशेष प्रभाव पड़ता है। शैशव-काल में यदि उन्हें दो-तीन माह के अल्पसमय के लिए भी अपने माता-पिता से अलग रहना पड़े तो उनका भावनात्मक विकास मन्द पड़ने लगता है। छः महीने से अधिक दिनों तक यदि वियोग की स्थिति में शिशु को रहना पड़े, तब तो वह अवसादग्रस्त हो जायेगा, साथ ही सूखा रोग, आन्त्र विकार आदि का शिकार बन जायेगा। चिकित्साविज्ञान में इसे 'माइस्कड डेप्रीवेशन' के नाम से जाना जाता है।

भ्रूण का माता के पेट में नियत अवधि तक रहना ही पर्याप्त नहीं। इसके बाद भी माता और बच्चे का सम्पर्क बना रहना चाहिए। व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से यह आवश्यक है। किसी कारण दोनों के बीच बिछोह की स्थिति बने तो वह बच्चे के हित में नहीं होगी। अभिभावकों द्वारा नौनिहालों को दिया गया समुचित भावनात्मक पोषण ही उनके उज्ज्वल भविष्य के गठन में सहायक सिद्ध होता है, सन्तान पैदा करने से पूर्व इस तथ्य को भली प्रकार समझ लेना चाहिए और यदि अवकाश या ज्ञान, अनुभव नहीं है तो सन्तान पैदा ही नहीं करनी चाहिए। यदि कर ली है तो उसके प्रति अपनी जिम्मेदारी भी निभानी चाहिए।

मनोवैज्ञानिक अभिभावकों से पूछते हैं कि "क्या कभी उन्होंने अपने बच्चों की पाठशाला में होने वाली गतिविधियों के बारे में जानने का प्रयत्न किया ? उनके बच्चे क्या कभी पाठशाला की दिनचर्या अथवा कोई विशेष घटना के बारे में उन्हें बताते हैं।" कुछ माता-पिता केवल बच्चों के भरण-पोषण तक ही सीमित रहते हैं और शिक्षा का भार शिक्षकों पर ही छोड़कर चैन की साँस लेते हैं किन्तु आज के युग में सबसे सक्रिय भूमिका शिक्षा के क्षेत्र में माता-पिता की ही होनी आवश्यक हो गई है।

सबसे महत्त्वपूर्ण और स्मरण रखने योग्य एक ही तथ्य है कि जिसकी अवहेलना नहीं करना चाहिए वह है माता-पिता की अपने बच्चों की शिक्षा में रुचि लेना। यह काम किसी भी रूप में पैसे, पद, यश और ज्ञानार्जन से कम महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए बाल मनोवैज्ञानिक डा. कुर्ट जिगर्सन कहते हैं कि यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि आप (अभिभावक) अपने बच्चे के शिक्षक को और वह शिक्षक आपको और आपके बच्चे की समस्या को, (यदि कोई हो तो) पहिचानने का प्रयास करे। शिक्षक बालक को यथोचित रूप से आगे बढ़ाने में तब कठिनाई अनुभव करता है, जबकि वह उस बालक की पारिवारिक पृष्ठभूमि के बारे में अनजान होता है। यदि घर पर कोई विशेष घटना के कारण बालक अशान्त हो गया है अथवा गड़बड़ा गया है तो उसके शिक्षक को बतला दीजिए ताकि वह उसके प्रति सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करे। याद रखें शिक्षक को आपके बच्चों के समान तीस अन्य बच्चों का भी उत्तरदायित्व सँभालना पड़ता है। इसलिए धैर्य आपको भी रखना पड़ेगा। आगे वे कहते हैं, ''कुछ शिक्षक शिक्षा की एक परम पुनीत कर्त्तव्य मानकर निष्ठापूर्वक शिक्षण कार्य करते हैं किन्तु कुछ शिक्षक इससे भिन्न स्तर के भी होते हैं। फिर भी अभिभावक की रुचि तो अपने बच्चे की शिक्षा में है। अतः उसे शिक्षक से सम्पर्क बनाये रखने का ही प्रयत्न करते रहना चाहिए। आपको बच्चे की पाठशाला में भी जाकर वहाँ के वातावरण से यदा-कदा सम्पर्क बनाना चाहिए। हो सकता है कि आपके जाने से कोई रुकी हुई समस्या का समाधान हो सके। बच्चे के स्कूली जीवन का प्रभाव उसके भावी जीवन पर अनिवार्य रूप से पड़ता है। आप उस प्रभाव को एक प्रभावी मोड़ दे सकते हैं। प्रश्न है आप इस कार्य में कितनी रुचि लेते हैं ?''

बालकों को प्यार तो करें, पर सुधार का भी ध्यान रखें

कुछ वर्षों पूर्व ही विद्वान हक्सले ने लिखा था—''हमें अच्छी माताएँ दीजिए और हम आपको एक अपेक्षाकृत उत्तम संसार दे देंगे।'' 'सिद्धान्त का विलोम पक्ष भी सत्य के उतने ही सन्निकट है' ''हमें एक अपेक्षाकृत उत्तम संसार दे दें, हम आपको अच्छी माताएँ दे देंगे।''

पारस्परिक निर्भरता मानव की मूल प्रवृत्ति है। शिशु के जन्म होने के पश्चात् वह पहले अपनी माँ पर निर्भर रहता है, फिर ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है, वह परिवार पर फिर समाज पर निर्भर रहने लगता है। वयस्क होने पर वह कई लोगों को सहयोग देता है और जो उस पर निर्भर रहते हैं, उनकी देखभाल करना अपना कर्त्तव्य मानता है। बच्चा यदि अपनी माँ पर आश्रित रहना चाहता है तो यह कोई समस्या नहीं है, वरन् उसकी जीवन रक्षा के लिए यह आवश्यक है। अन्य जीवों की तुलना में मानव शिशु अपनी देखभाल न कर सकने वाला एक असहाय जीव है। उसका यह पराश्रित जीवन, तब समाप्त होता है, जब वह इतना अच्छी तरह से समझ लेता है कि उसे अपने माता-पिता की सम्मति, स्वीकृति और समर्थन पर आश्रित रहना अनावश्यक है। यदि विकसित होने के लिए आवश्यक विश्वास प्राप्त करने के अनुभवों से उसे वंचित रखा गया तो सम्भव है कि वह भविष्य में भी आत्मनिर्भर न बन सकेगा।

एक माँ अपनी दस वर्ष की बालिका को लेकर एक बाल मनोवैज्ञानिक के पास गयी और बताया कि यह बालिका प्रायः उदास और चिन्तित रहती है और अपनी माता से दूर रह ही नहीं सकती। उसकी माता को उसे अपने साथ जहाँ भी वह जावे उस बालिका को भी ले जाना आवश्यक होता है। वह पाठशाला भी नहीं जाती, न खेलना पसन्द करती है और न अपने मित्रों में रुचि रखती है। पूछने पर मनोवैज्ञानिक को यह भी मालूम हुआ कि उसके पिता क्रोधी स्वभाव के हैं और वह बालिका उनसे बहुत डरती है। उसमें स्वावलम्बन की प्रवृत्ति बिल्कुल ही नहीं है और पूरी तरह से वह अपनी माँ पर ही आश्रित रहती है, केवल वह अपने वस्त्र स्वयं पहन लेती है। वास्तव में १० वर्ष की आयु वाली बालिका का यह व्यवहार अनपेक्षित है। इस प्रकार के व्यवहार के कई कारण हैं, जिसके लिए उनके माता-पिता स्वयं ही उत्तरदायी होते हैं।

कुछ माता-पिता अपने बच्चों के दैनिक जीवन में किसी भी प्रकार का निराशापूर्ण व अरुचिकर वातावरण का सम्पर्क टालते रहते हैं। वे चाहते हैं कि उनका बच्चा सदैव चिन्तारहित, आनन्दित बना रहे और दुःख व क्लेश उसको छू न सके। इसके लिए वे सदैव जागरूक रहते हैं और इस प्रयास में वे स्वयं अपने आमोद-प्रमोद को भी तिलांजलि दे देते हैं। केवल अविकसित बच्चे और भावनात्मक रूप से अविकसित वयस्क ही इस प्रकार की आशा करके एक सदाबहार गुलाबी, सुखी और आनन्दपूर्ण मनोराज्य में विचरण करने की कल्पना सँजोया करते हैं।

जो व्यक्ति स्थायी सुख की प्राप्ति के लिए बड़े कठिन प्रयत्न करते हैं, वे भ्रान्तिपूर्ण जीवन जीते हैं और अन्त में दुःखी होते हैं यदि बच्चों को सुव्यवस्थित जीवन जीने के लिए तैयार करना है, तो उन्हें जीवन की कटु वास्तविकताओं का ज्ञान-बोध करवा देना आवश्यक है। उन पर पर्दा डालकर उनसे उसे छुपाना एक भूल होगी।

बालक का भावी सामाजिक व्यवहार उसका और उसकी माता के बचपन के भावनात्मक सम्बन्धों पर निर्भर रहता है, क्योंकि बालक के लिए माँ केवल आनन्द, प्यार और संरक्षण ही प्रदान नहीं करती वह कभी-कभी दुःखदायी और निष्ठुर भी बन जाती है। यह माता की द्विविधा बालक की द्विविधा बन जाती है। बालक का माँ से लिपटना और माँ का उसको अस्वीकार करके हटाना इन विरोधी प्रवृत्तियों का सन्तुलन अथवा असन्तुलन के परिणामस्वरूप बालक एक सफल भावी जीवन के लिए आदान-प्रदान के गुणों को अपनाना सीखता है अथवा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

सीखने में असफल रहता है। यदि आदान-प्रदान की प्रवृत्ति का समुचित विकास नहीं किया गया तो बालक अपने भावी जीवन और समाज में असफल ही सिद्ध होगा। इस प्रकार के बालक के विचारों में प्रौढ़ता नहीं आ पावेगी और वह भावनात्मक रूप से अपरिपक्व ही बना रहेगा।

जब बालक में पराश्रित रहने की प्रवृत्ति पनपने लगती है तो वह आवश्यक न होने पर भी वह किसी वयस्क की सहायता की अपेक्षा करेगा चाहे भले ही काम वह स्वयं बिना किसी कष्ट के पूरा करने में समर्थ ही क्यों न हो। इसके अतिरिक्त वह सदैव अपनी माँ से शारीरिक सम्पर्क बनाये रखने का प्रयास करता रहेगा। वह उसकी गोद में बैठेगा या उसके शरीर के आस-पास घूमेगा। इससे वह माँ का ध्यान अपनी ओर बनाये रखने का प्रयत्न करता रहेगा। उसकी इच्छा रहती है कि माँ और अन्य वयस्क उसके करतवों को देखते रहे, उससे बातें करते रहे। इस प्रकार के व्यवहार में उसको समर्थन मिलने पर बालक आवश्यकता से अधिक परावलम्बी होता जावेगा। वह अपने आप पर निर्भर रहने की आदत डालने का अभ्यास ही नहीं करेगा।

जैसे-जैसे शिशु में सहायता प्राप्त करने की प्रवृत्ति पनपती है, ठीक उसी समय वह बिना सहायता के भी अपना काम चला लेने का प्रयास करता है। जो बच्चे अपना काम स्वयं कर लेने की पात्रता विकसित कर लेते हैं, वे आत्मगौरव का अनुभव करते हैं। विकासवादी मनोवैज्ञानिक डॉ. रिनगोल्ड व डा. इकरमन के मतानुसार जैसे ही शिशु हिलने-डुलने लगता है, वह अपनी माँ से अलग होने का प्रयास करता है। पहले वह अपने पेट के बल लुढ़कता है फिर रेंगने लगता है और फिर चलकर अपनी माँ से दूर जाता है। वह कमरे से बाहर और कभी दूसरे कमरे में भी पहुँचने लगता है। फिर वह आँगन में खेलता है, घर के बाहर भी जाता है और जैसे-जैसे समय बीतता जाता है वह फिर स्कूल जाने लगता है।

जो बच्चे परिस्थितियों का सामना करने में निपुण होते हैं, उन्हें प्रायः इस योग्य बनाया जाता है। उन्हें कठिनाइयों में संरक्षण यदि मिलता रहा तो वे भीरु ही बने रहेंगे। यदि उन्हें विपरीत परिस्थितियों से निपट लेने का अभ्यास नहीं कराया वह चाहे अकर्मण्यतावश अथवा आवश्यकता से अधिक संरक्षण की भावनावश ही क्यों न हो वे अपने को असुरक्षित समझते रहेंगे और आत्मनिर्भरता प्राप्त कर सकेंगे। कठिन परिस्थितियों में टिकने वाले कठोर नहीं लचीले होते हैं। पराश्रित नहीं आत्मावलम्बी होते हैं, वे न तो आक्रमणशील अथवा डरपोक होते हैं, वरन् विवेकपूर्ण निश्चयी होते हैं। वे शीघ्र ही निरुत्साहित न होकर प्रयत्नशील बने रहते हैं।

बालक के भावनात्मक विकास को परखने के लिए, उसकी माता से अलग होने पर उसकी प्रतिक्रिया बालक पर किस प्रकार की होती है ? यह जान लेना आवश्यक है। इरिक इरिक्सन ने बताया है कि बालक की प्रथम सामाजिक उपलब्धि उसका अपनी माँ को अपनी आँखों से दूर जाने पर विशेष चिन्तित न होना ही है, क्योंकि माँ में बालक आन्तरिक निश्चिन्तता और अपने भावी आनन्द का दर्शन करता है। विकासवादी मनोवैज्ञानिक रिनगोल्ड और इकरमेन का मत है कि शिशु का माँ से पृथक् होना एक निर्णय कारक मनोवैज्ञानिक महत्त्व रखता है, क्योंकि इसीसे उसकी वातावरण से सम्बन्धित होने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। शिशु माँ से स्वतन्त्र होकर ही विश्व की छानबीन कर सकता है और उसके विषय में कुछ जान सकता है।

बच्चों के पालन-पोषण पर अनुसन्धान करने से कुछ तथ्य प्रकाश में आये हैं, जिससे अत्यधिक अनुमतिबोधक और नियन्त्रणबोधक दोनों ही प्रकार की प्रवृत्तियों में जोखिम हैं। अतः सन्तुलन बनाये रखने की राय दी गई है। मनोविज्ञानिक डिआना बौमरिड का मत है कि प्रामाणिक माता शारीरिक निकटता के स्थान पर मौखिक आदान-प्रदान को अधिक महत्त्व देती है। इससे बालक में अभिव्यक्ति की मनोवृत्ति पनपती है और वह कुछ काम करने का साहस करने लगता है। माँ उसके स्वच्छन्द खेल को, उसके विचारों को और अनुशासनात्मक रवैये को प्रोत्साहित करती है। वह विशेष रूप से आवश्यक होने पर ही नियन्त्रण की विधि अपनाती है।

बालक के व्यक्तित्व का निर्धारण उसके माता-पिता के आचार-व्यवहार पर निर्भर होता है। बालक पर अधिक नियन्त्रण करने से बालक का आज्ञाकारी, डरपोक और पराश्रित रूप ही विकसित होता है। प्रायः बच्चे अपने क्रियाकलापों में अपनी माँ का समर्थन प्राप्त करने के इच्छुक होते हैं और वे उनके आनन्दपूर्ण वातावरण में हस्तक्षेप को कम पसन्द करते हैं। इसे युक्तियुक्त विधि से परखने की आवश्यकता है। अनावश्यक नियन्त्रण विकास की धारा को अनुचित मोड़ पर ले जाता है।

शिशु की प्रत्येक माँग की पूर्ति प्रायः उसकी माँ के द्वारा कर दी जाती है, जिससे वह अपने को एक निरंकुश, सर्वशक्तिमान व्यक्ति समझने लगता है। इसमें माता-पिता अपने व्यवहार द्वारा उसकी आयु वृद्धि के साथ इस विचारधारा को समुचित मोड़ दे सकते हैं, जिससे उनकी भावना को ठेस न पहुँचाते हुए, उन्हें वस्तुस्थिति से अवगत करा दिया जावे। बालक की आयु में जैसे-जैसे वृद्धि होती जाती है, उसकी केवल माँग करने की प्रवृत्ति में कमी होकर उसमें आज्ञापालन की मनोवृत्ति और जुड़ जाती है। बालक का स्वावलम्बी होना उसके माता-पिता पर तो निर्भर होता ही है किन्तु यह उस समाज पर भी निर्भर होता है जिसमें कि वह रहता है। विचारशील लोगों के बालक इसी कारण शीघ्र ही आत्मनिर्भर बन जाते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सन्तान के प्रति पिता के उत्तरदायित्व

माता के बाद सन्तान पर सर्वाधिक प्रभाव पिता का पड़ता है। माता के प्रेम को ममत्व और पिता के प्रेम को स्नेह कहा जा सकता है। स्नेह, प्रेम और विवेक का समन्वय कहा जा सकता है। इसलिए पिता को कभी-कभी कठोर भी होना पड़ता है। प्रायः देखा गया है कि जिन बालकों को पिता की छत्रछाया नहीं मिलती वे उच्छृंखल प्रकृति के हो जाते हैं। माता का प्यार बालक की व्यक्तित्व सरिता का वह स्रोत है, जहाँ से उसमें नीर प्रवाह निकलता है तो पिता का स्नेह वह बाँध है, जो उसे कल्याणकारी प्रवृत्ति में नियोजित करता है।

पिता का स्थान अपने प्रकार से अद्वितीय कहा जा सकता है। उसका जीवन एक खुली पुस्तक के समान है, जिसका प्रत्येक पृष्ठ खुला रहता है। पुत्र पर उसके व्यक्तित्व, विचार, आदत और स्वभाव की अनिवार्य रूप से छाप पड़ती है। जो आध्यात्मिक भाषा में संस्कार तथा वैज्ञानिक भाषा में मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है। इस सिद्धान्त के बहुत कम अपवाद मिलते हैं, जब पुत्र पिता की लीक से हटकर चला हो। सामान्यतः सन्तान अपने पिता की ही अनुकृति सिद्ध होती है।

पूर्व जन्म के संस्कारी एवं विशिष्ट प्रतिभासम्पन्न बालक ही अपने दुर्गुणी पिता से अप्रभावित रह सकते हैं, अन्यथा एक शराबी के बेटे को मद्य का चस्का आमतौर पर अवश्य ही लगता है। पिता की धर्मनिष्ठा सन्तान को आध्यात्मिक जीवन की ओर अवश्य प्रेरित करेगी।

यद्यपि सन्तान माता के अधिक निकटतम है। माता के संस्कारों और आदतों का प्रभाव तो पड़ेगा ही फिर भी पिता के प्रभाव को टाला नहीं जा सकता। एक चुम्बकीय शक्ति की तरह सन्तान पिता की ओर खिंचती तथा उन गुणों को विकसित करती रहती है। एक विद्वान साहित्यकार ने अपने अनुभव लिखते हुए बताया है—"मैं जब अपने प्रारम्भिक जीवन का स्मरण करता हूँ तो पिता के गुणों को ही अपने में विकसित हुआ पाता हूँ। तीस वर्ष पूर्व जब मैं एक अबोध बालक था, जमींदार पिता के साथ अपने गाँव के जंगलों में जाया करता। उन्हीं के साथ सोता, प्रातः उठता, भजन, पूजा, दौड़, व्यायाम, अध्ययन आदि सभी क्रियाओं में उनका मार्गदर्शन रहता। प्रकृति के अंचल में पिता के स्नेह की अनुभूतियाँ आज भी मेरे दिल-दिमाग में हैं। मैं आज बौद्धिक और नैतिक चिन्तन के क्षेत्र में जहाँ तक पहुँचा हूँ, उन्हीं के पद-चिह्नों पर चलकर। उनकी आदतें और विश्वास हमारे प्रत्येक परिवार के सदस्य में प्रविष्ट हो गये हैं।"

पिता के संरक्षण में पुत्र निरन्तर कुछ न कुछ सीखता है। इसलिए पिता के ऊपर कुछ विशेष उत्तरदायित्व आ जाते हैं जिनका ध्यान रखा जाना चाहिए। इन उत्तरदायित्वों की उपेक्षा सन्तान के लिए भी और स्वयं पिता के लिए भी कभी-कभी घातक सिद्ध हो सकती है। आज के युग में पिता-पुत्रों के सम्बन्धों में जो कटुता उत्पन्न होती जा रही है, उनका एक बड़ा कारण यह भी है। पिता अपने सन्तान के प्रति कर्त्तव्यों का पालन समुचित रूप से कर नहीं पाता। बालक का कोमल मन ऐसी स्थिति में विपरीत प्रभाव ग्रहण करता है और पिता का स्थान उसकी दृष्टि में गिर जाता है।

सन्तान दुर्गुणी है तो उसका दोषी अधिकांश रूप से पिता है। बालक को गीली मिट्टी कहा गया है, जिसे मनचाहा आकार दिया जा सकता है। एक कुम्हार के परिवार की तरह माता-पिता मिट्टी रोंधने वाली स्त्री तथा चाक पर खिलौने तैयार करने वाले पुरुष की भूमिका निभाते हैं। अपने ममत्व और प्रेम के रस से माता बालक के व्यक्तित्व को गीला करती है और पिता कुम्हार की तरह उसे मनचाहा रूप दे देता है। बर्तन या खिलौना भौंडा और खराब बना तो दोष कुम्हार का ही है।

जो पिता काम-काज और जीविका उपार्जित करने में लगे रहने के कारण अपने बच्चों की ओर ध्यान नहीं दे पाते, उनकी सन्तानों के बिगड़े की सम्भावना अधिक रहती है। जब स्थिति काबू से बाहर हो जाती है तो पिता, माता को ही उलाहना देता है—"औलाद पर तुम्हीं काबू नहीं रख सकीं।" परन्तु सच्चाई यह है कि पिता की उपेक्षा ने बालक का अधिक नुकसान किया है।

कितना भी व्यस्त रहा जाय परन्तु सन्तान के प्रति कर्त्तव्यों की उपेक्षा भूलकर भी नहीं की जानी चाहिए। भारतीय और अन्य देशों के पितृसत्तात्मक परिवारों में पुरुष घर का अधिष्ठाता, संरक्षक और मुखिया है। अपने अधीनस्थों का मार्गदर्शन करना मुखिया का कर्त्तव्य है। कितने दुःख की बात है बाहरी जीवन में पथ-प्रदर्शन की लालसा, मुखिया बनने की होड़ लगा देती है, परन्तु सामाजिक व्यवस्था ने जिस क्षेत्र में पुरुष को प्रधान बनाया है, वह उसे ही उपेक्षणीय समझ लेता है। अपने परिवार का कुशल प्रशासन न कर सकने वाला व्यक्ति कभी कोई कार्य व्यवस्थित ढंग से नहीं कर सकता। एक छोटी-सी इकाई का संचालन व्यवस्था सँभालने की ही योग्यता जिसके पास नहीं है, बड़ी व्यवस्था सँभालने की सामर्थ्य उसमें कहाँ से आयेगी ?

संरक्षण और निर्वाह से ज्यादा महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व पथ-प्रदर्शन का है। परिवार के अन्य वयस्क सदस्यों की अपेक्षा बालकों को अधिक मार्गदर्शन की आवश्यकता है। पिता-पुत्र के स्नेह-सम्बन्धों के प्रारम्भ से लेकर विकास तक की सम्भावना इसी उत्तरदायित्व के कुशल निर्वाह से जुड़ी हुई है। निःसंकोच सामान्य से सामान्य बातों में पथ-प्रदर्शन एवं जिज्ञासाओं का समाधान देने वाला पिता अपनी सन्तान के व्यक्तित्व को कुशल बागवान की तरह अंकुरित करता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

सन्तान के अति निकट रहने से पिता पुत्र का प्रेरणा-स्रोत बन जाता है। एक पाश्चात्य विद्वान मार्कट्वेन ने अपने अनुभव में इस प्रकार लिखा है—मैं प्रायः औरों के साथ की लम्बी सैर छोड़कर अपने पिता के साथ बगीचे की चहार-दीवारी के किनारे टहलने जाता। यह मुझे बहुत अच्छा लगता था। टहलते-टहलते वे मुझसे बातें करते जाते; हँसते-हँसते उस समय मुझे अपूर्व आनन्द मिलता था। मैं उनके इतना हिलमिल गया था कि थोड़ी-सी भी कठिनाई आने पर उनके पास जाता और निःसंकोच अपनी समस्या कह देता। वे मुक्त हृदय से मेरी बातों को सुनते और उनका समाधान देते। मैं उस समय नयी प्रेरणाओं से भर उठता था।

कुछ लोगों का विचार है कि सन्तान से ज्यादा हिलने-मिलने पर उनकी दृष्टि में पिता महत्त्वहीन हो जाता है। वे न तो उसे सम्मान दे पाते हैं न उसे पूछते हैं। वस्तुतः यह एक भ्रान्ति है। उच्छृंखलता और उद्दण्डता की स्थिति इसी धारणा को व्यवहृत करने से पैदा होती है। बाल-मनोविज्ञानशास्त्रियों का मत है कि बालक ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है, उसमें स्वतन्त्र विचार की क्षमता उत्पन्न होती जाती है। ऐसी स्थिति में पिता-पुत्र के सम्बन्ध अच्छे बने रहें, इसके लिए उचित यह है कि उस पर अनुशासन कम किया जाय। ज्यों-ज्यों पुत्र बड़ा होता जाय त्यों-त्यों पिता मित्र बनता जाय। अभिभावक, अनुशास्ता कम और सलाहकार, मित्र ज्यादा बनने का उपक्रम ही पिता-पुत्र के मधुर सम्बन्धों का सर्वोत्तम गुर है।

पुत्र के प्रति पिता को विश्वास अधिक व्यक्त करना चाहिए। मधुर सम्बन्धों के लिए यह भी आवश्यक है। पुत्र यदि गलत राह पर भटकता भी है तो पिता उसे अपने विश्वास से सही मार्ग पर ला सकता है। एक दुकानदार पिता का पुत्र अपने साथियों की संगति में पड़कर दुकान से पैसे चुरा लिया करता था। पिता को इस बात की खबर लगी परन्तु उसने समझदारी से काम लिया। कुछ पड़ोसी दुकानदारों ने पुत्र के सामने ही पिता से शिकायत की तो उसका जो उत्तर था, वह बुद्धिमत्ता और सूझ-बूझ भरा था। पिता ने कहा "चोरी दूसरों की चीज की होती है। दुकान मेरी है तो मेरे बेटे का भी उसमें हक है। यदि वह मुझसे बिना पूछे पैसा खर्च करता है, तो उसमें हर्ज क्या है ? आखिर पैसा उसका भी तो है।" इस आत्मीयता और विश्वास का परिणाम यह हुआ कि लड़के के मन में पिता की सम्पत्ति के प्रति ममत्व जाग गया। अब वह पैसे का दुरुपयोग नहीं करता, शौक-मौज के लिए खर्च करना बन्द कर दिया। पुत्र जब पूर्णतया वयस्क हो जाये तो उस पर अनुशासन लादने की अपेक्षा प्रेमपूर्ण सलाह का तरीका अपनाया जाना चाहिए। क्या मजाल कि पुत्र का बिगड़ना बन्द न हो ?

पिता को सन्तान के प्रति अपना उत्तरदायित्व समझना चाहिए। उनका समुचित निर्वाह करना चाहिए। पारिवारिक जीवन में स्वर्ग का अवतरण इसी आधार पर हो सकता है।

सन्तान पालन की शिक्षा भी चाहिए

मानव-जीवन के अनेक कर्त्तव्यों में सन्तान उत्पन्न करने और उसे यथायोग्य पालने का कार्य भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि यह एक प्राकृतिक नियम है। इसलिए अनेक व्यक्ति इसके विषय में अधिक सोच-विचार करना आवश्यक नहीं समझते पर यह उनकी बड़ी भूल है। मनुष्य इस समय प्रकृति के नियमानुकूल नहीं रहता, वरन् उसने अपनी बुद्धि से अनेक नये नियमों का आविष्कार किया है और उसका रहन-सहन प्राकृतिक के बजाय कृत्रिम ही अधिक कहा जा सकता है। इसलिए सन्तानोत्पत्ति और सन्तान-पालन को प्राकृतिक कार्य समझकर उपेक्षा करना किसी प्रकार उचित नहीं कहा जा सकता। संसार के जीवन-क्षेत्र में जो दृढ़ता के साथ स्थिर रह सके और सफलता प्राप्त कर सके ऐसी सन्तान समाज को देना हमारा बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है।

पर आज अवस्था इसके प्रायः विपरीत दिखाई पड़ रही है। लोग सबसे अधिक महत्त्व खाने-कमाने की समस्या को देते हैं, इसके पश्चात् तरह-तरह के शौकों को पूरा करने, समाज में प्रतिष्ठा और ऊँचा पद प्राप्त करने, भविष्य के लिए कुछ धन-सम्पत्ति जोड़ने आदि बातों की तरफ ध्यान जाता है। पर सन्तान पालन, जो समाज की प्रगति और उत्कर्ष का प्रधान साधन है, उस पर कोई ध्यान नहीं देता। छोटे और साधारण श्रेणी के लोगों में ही नहीं, बड़े-बड़े शिक्षित और बुद्धिमान लोगों में भी यही वृत्ति देखी जाती है। इसी को लक्ष्य करके इंग्लैण्ड के एक बहुत बड़े ज्ञानी व्यक्ति श्री हर्बर्ट स्पेन्सर ने अपने 'शिक्षा' नामक ग्रन्थ में कहा है—

"वास्तव में बच्चों के पालन-पोषण के तरीके पर ही उनका जीना-मरना और उनका नैतिक उत्थान या पतन निर्भर करता है, पर उन लोगों को जो कुछ समय बाद माता-पिता बनने वाले हैं, इस विषय का एक शब्द भी नहीं सिखाया जाता। क्या यह एक बड़ी भयंकर बात नहीं है कि एक नई पीढ़ी का भाग्य बुद्धिहीन प्रथाओं, रुचि, विचार आदि के भरोसे छोड़ दिया जाय या उसके सम्बन्ध में मूर्ख दाइयों या पुरानी बुढ़ियाओं की सलाहों पर ही भरोसा कर लिया जाय। अगर कोई व्यापारी बिना हिसाब-किताब सीखे व्यापार करना शुरू कर दे तो हम उसकी मूर्खता पर आश्चर्य करते हैं और शीघ्र उसका दिवाला निकलने का अनुमान लगाने लग जाते हैं। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति शरीरशास्त्र का अध्ययन किये बिना ही डाक्टरी शुरू कर दे तो हम उसकी धृष्टता पर आश्चर्य करेंगे और उसके मरीजों पर तरस खायेंगे। पर माता-पिता सन्तान पालन की किसी प्रकार की शारीरिक,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नैतिक और बौद्धिक शिक्षा प्राप्त किये बिना ही सन्तानोत्पादन के महत्त्वपूर्ण कार्य का भार उठा लेते हैं, तो इसमें किसी को आश्चर्य नहीं जान पड़ता।''

इस महान् दार्शनिक ने जो बातें अब से काफी समय पहले लिखी थीं, वे आज हमारे देश पर पूरी तरह लागू हो रही हैं। यहाँ के अधिकांश माता-पिता सन्तान-पालन के विषय में सर्वथा अनभिज्ञ होते हैं और फिर भी छोटी अवस्था से एक सन्तान पर दूसरी सन्तान उत्पन्न करते चले जाते हैं। उनको न सन्तानोत्पत्ति के पूर्व की जाने वाली तैयारी का कुछ पता होता है और न वे जरा भी उसके पालन-पोषण की ठीक विधि को जानते हैं। इस प्रकार वहाँ के ९५ प्रतिशत बच्चों का निर्माण संयोग पर निर्भर रहता है। अधिकांश माताएँ आरम्भ से बच्चों की नियमित आदतें डालने का प्रयत्न नहीं करतीं और नतीजा यह होता है कि थोड़े समय बाद ही बच्चा बार-बार रोने और समय-कुसमय खाने को माँगने लग जाता है। माता भी बिना यह विचार किये कि यह भूख से रो रहा है या प्यास से या किसी प्रकार की शारीरिक अस्वस्थता के कारण, झट से उसके मुँह में स्तन या दूध की शीशी दे देती है। इससे बच्चे का उस समय का रोना तो बन्द हो जाता है, पर आगे चलकर यह आदत और भी बढ़ने लगती है।

इसी प्रकार जिस बच्चे को बचपन में मुँह ढककर सुलाया जाता है और खुली हवा से सदैव पृथक् रखा जाता है, उसे आगे चलकर खाँसी, दमा आदि दुःखदायी रोगों को सहन करना पड़ता है। ऐसे अभागे बालक अपने घर वालों के लिये ही भारस्वरूप नहीं बन जाते पर निःसत्व और शक्तिहीन बनकर वे बड़े होने पर समाज और देश के प्रति भी अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं कर सकते। इस प्रकार अज्ञानी माता-पिता अपने लिए तरह-तरह के कष्टों की जड़ जमाकर देश और जाति के प्रति भी शत्रुता का आचरण करते हैं।

भारतीय स्त्रियाँ सन्तान पालन में जो सफल नहीं हो पातीं, उसका एक कारण यह भी है कि यहाँ बालिकाओं का विवाह प्रायः अपरिपक्व अवस्था में ही कर दिया जाता है और उस स्थिति में सन्तानोत्पत्ति होने से उनको जननेन्द्रिय सम्बन्धी अनेक शिकायतें उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे उनका स्वास्थ्य गिर जाता है, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है और वे कोई परिश्रमसाध्य कार्य करने के अयोग्य हो जाती हैं। फिर उनकी सन्तान भी प्रायः चिर रोगी ही बनी रहती है।

बड़े खेद का विषय है कि हमारी स्त्रियों को नये-नये फैशनों और विदेशी श्रृंगार-सामग्री की रुचि तो शीघ्र ही लग जाती है, उनके पति भी मेमों की तरह स्वतन्त्रतापूर्वक संग घुमाने में गौरव और प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, पर सन्तानपालन जैसी गृहस्थी को सफल बनाने वाली बात का ज्ञान भी उसे प्राप्त कराया जाय, इसका किसी को स्वप्न में भी विचार नहीं आता। यह बात नहीं कि उनको अपने बच्चों से प्रेम नहीं होता अथवा वे उनके लिए हर तरह का स्वार्थ त्याग नहीं करते, पर अज्ञानवश वे मोह के नाम पर स्वयं अपने बच्चों का अहित करने वाले बन जाते हैं। इसलिए हमारे देश की शिक्षा में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि लड़के-लड़कियों को आरम्भ से ही इस आवश्यक विषय का महत्त्व प्रतीत होने लगे और विवाह होने के पहले तो उनको निजी तौर पर या तत्सम्बन्धी ग्रन्थों द्वारा इसका ठीक ज्ञान करा ही देना चाहिए। यह राष्ट्र के उत्थान-पतन से सम्बन्ध रखने वाली बात है और इसकी अवहेलना स्वयं अपना ही अनिष्ट करना कहा जायेगा।

बच्चों की आदतों की जिम्मेदारी—अभिभावकों पर

बच्चों में आलस्य, उच्छृंखलता, अनुशासनहीनता, स्वेच्छाचार आदि की जिम्मेदारी अधिकांश माता-पिता या तो बच्चे के साथियों पर डाल देते हैं या फिर पड़ोसियों और वातावरण पर। किन्तु तथ्य यह है कि इनमें से अधिकांश बुराइयों के लिए माता-पिता और अभिभावक ही उत्तरदायी होते हैं।

बच्चों में अनुशासन और आज्ञापालन की प्रवृत्ति के विकास को उत्सुक माता-पिता जब अनुशासन सम्बन्धी आदेश-निर्देश रौब दिखाकर या दबाव डालते हुए देते हैं, उस समय उन्हें स्मरण करना चाहिए कि यह व्यवहार बच्चे में विरोध-विद्रोह की भावना जगायेगा या द्वेष-बुद्धि उभारेगा। यदि प्रारम्भिक उपेक्षा के क्रम में बच्चे ने अनसुनी कर दी, तब तो उत्तेजित माता-पिता मारपीट या चीख-चिल्लाहट पर ही उतर आते हैं। इसकी प्रतिक्रिया बच्चे में बहुत तीव्र होती है और उनमें अनुशासनहीनता के बीज अंकुरित हो उठते हैं।

बच्चे की सुकुमारता और संवेदनशीलता को मात्र तीव्रता से प्यार करते समय ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण व्यवहार के समय याद रखना चाहिए। कोई भी आदेश देते समय यह जरूर देखा जाना चाहिए कि उस समय बच्चा कर क्या रहा है ? और उसकी मनःस्थिति क्या है ? उदाहरणार्थ, बच्चा किसी रुचिकर खेल में लगा है या एकाग्रता के साथ पढ़ रहा है या किसी हानिरहित चेष्टा में मस्त है, किसी अभिनय या अनुकरण की गतिविधि में विभोर है, तो उस समय उसे कभी कोई आज्ञा नहीं देनी चाहिए। छोटे बच्चों को खेल आदि से विरत कराने के लिए उसे कभी सीधी निषेधात्मक आज्ञा नहीं देनी चाहिए। उनके साथ खेल में कुछ देर स्वयं भी लगकर फिर प्रस्ताव या सुझाव रूप में अपनी बात रखनी चाहिए।

बच्चे को आदेश देने का सर्वोत्तम समय वह होता है, जब वह माँ के पास शान्त, स्वस्थ मनःस्थिति में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

होता है। आदेश मुख्यतः विधेयात्मक होने चाहिए, निषेधात्मक नहीं। 'यह मत करो,' 'वहाँ मत जाना' जैसे नकारात्मक आदेश बच्चों में वैसा ही करने का कौतूहल पैदा कर देते हैं और वे उन्हें ही करने लगते हैं, जिनके लिए मना किया जाता है। ऐसी आज्ञाओं के स्थान पर उन्हें आकर्षक और प्रशंसापूर्ण भाव से आदेश देना चाहिए—'हमारा मुन्ना या मुन्नी अमुक काम करेगा या करेगी', 'अमुक वस्तु लायेगा या लायेगी' आदि। आज्ञा देने से पूर्व बच्चे से यह न पूछें कि 'क्या तुम यह काम करोगे या करोगी ?' क्योंकि ऐसे पूछने पर 'ना' की ही अधिक सम्भावना है और ना कर देने पर फिर उससे जोर-जबर्दस्ती से काम लेने पर प्रतिकूल प्रभाव ही पड़ेगा। आकर्षक, रचनात्मक शैली में दिये गये आदेश बच्चे की कौतूहल और मनोरंजन की भावना को प्रेरित तथा तृप्त करते हैं।

बच्चे को अनावश्यक रूप में बार-बार टोकना अच्छा नहीं, क्योंकि एक तो बच्चे स्वभावतः चंचल होते हैं, किसी काम पर अधिक नहीं टिकते, फिर टोकाटाकी से तो उनकी उस थोड़ी-बहुत एकाग्रता, तन्मयता में भी विक्षेप पड़ता है। फिर बच्चे के मन पर यदि इस टोकने से उखड़ जाने वाले संस्कार अंकित हो गये, तो उनकी एकाग्रता की शक्ति पर इसका प्रभाव पड़ता है और आगे चलकर वे किसी भी काम पर तन्मय-एकाग्र नहीं हो पायेंगे। अपने सामने उपस्थित काम पर न जम पाने की प्रवृत्ति असफलताओं की ओर ही ले जाती है।

बहुत-से माँ-बाप बच्चों के लिए नियमित, व्यवस्थित जीवन बिताने के लिए बड़े ही सख्त और रूखे नियम बना देते हैं किन्तु इससे अनुकूल परिणाम प्राप्त नहीं होते। बहुत-से बच्चे उन नियमों के अनुसार चलेंगे नहीं या जो थोड़ा-बहुत नियम पालन करेंगे उनकी मौलिकता, आत्मविश्वास की शक्ति कुन्द हो जायेगी। अतः बच्चों पर नियम लादे नहीं जाने चाहिए वरन् स्वयं उन्हीं की राय को महत्त्व, प्रोत्साहन देकर बच्चों के खाने-पीने, सोने, पढ़ने, खेलने आदि का समय निश्चित कर देना चाहिए। यदि किन्हीं नियमों के कारण बच्चों को किसी तरह की कठिनाई हो तो उन्हें सरल भी बना देना चाहिए। बच्चों को नियमानुवर्ती बनाने से पूर्व स्वयं माँ-बाप को भी नियमित और बँधा हुआ जीवन बिताना आवश्यक है। जो माँ-बाप स्वयं अनियमित जीवन बिताकर बच्चों को नियमानुवर्ती बनाना चाहते हैं वे भूल करते हैं। यदि बच्चे अभ्यासवश नियम पालन में कोई गड़बड़ी अथवा भूल करें तो उन्हें एकदम धमकाना नहीं चाहिए। बहुत बार एक-सी भूल करने पर कह देना चाहिए।

केवल नियमादि बनाकर बच्चों पर कर्त्तव्य एवं जिम्मेदारी डालने से काम नहीं चलता। समय-समय पर बच्चों के साथ विचारविमर्श करना, उनकी बात पूछना, उनके कार्यक्रम, जीवनक्रम आदि के बारे में दिलचस्पी प्रकट करना अपनी सूझबूझ से बच्चों को नवीन तथ्यों का ज्ञान देना भी आवश्यक है।

बच्चों को महत्त्वहीन समझकर उनसे व्यवहार करने से वे स्वयं को अनुपयोगी-उपेक्षणीय मान बैठते हैं। इससे आगे चलकर उनमें आत्मविश्वास की कमी हो जाती है। अतः किसी कार्य को न कर पाने अथवा काम बिगड़ जाने पर उनकी खिल्ली नहीं उड़ानी चाहिए। ऐसा करने पर वे चिड़चिड़े और उद्दण्ड होने लगते हैं।

किसी मामले पर बच्चे द्वारा राय देने पर उसे झिड़कें नहीं, भले ही उस राय का कोई अर्थ और महत्त्व न हो। झिड़कने से उनकी हिम्मत टूटने लगती है और वे सही बात कहने में भी हिचकने लगते हैं। "अजी तुम चुप रहो, अभी बच्चे हो।" बात-बात पर दुहराने से भी बच्चे में कुण्ठा उत्पन्न हो जाती है।

यह सदैव ध्यान में रखा जाय कि बच्चा आखिर मनुष्य ही है और उसकी कुछ अपनी अक्ल भी है। गिरने के डर से किसी बच्चे को चलने से नहीं रोका जा सकता। इसी प्रकार बौद्धिक गलतियाँ करके बच्चा अपनी बुद्धि को विकसित ही करता है।

बच्चे को डाँटने और सजा देने की भी जरूरत पड़ सकती है, पर इस बात का ध्यान रखना आवश्यक होता है कि बच्चा कब कसूर करे, उसी समय उसे डाँटा जाना चाहिए। गलती के एक-दो दिन बाद डाँटने, सजा देने पर बच्चे पर वैसा कसूर न करने का प्रभाव नहीं अंकित हो पाता। अपितु वह ऐसी असमय की डाँट या सजा से चिढ़-सा जाता है। साथ ही, बच्चे की गलती पर ऐसी परेशानी का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए, जिससे उसे यह आभास हो जाये कि अच्छा, इन्हें ऐसा करके परेशान किया जा सकता है क्योंकि तब वह ऐसा करने में ही अपना महत्त्व बढ़ने का अनुभव करने लगता है। यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि बच्चे की जिस हरकत को शरारत समझा जा रहा है, वह उसके अनजान होने के परिणामस्वरूप हो रही हो। आखिर उन्हें हर बात में सही-गलत की जानकारी तो होती नहीं। अतः अनजाने में की गई भूलों को सुधारकर ठीक बात समझाने की आवश्यकता होती है, डाँट-डपट की नहीं।

जिस घर में समानान्तर सरकारें चल रही होंगी, वहाँ बच्चों में अराजकता का ही विकास होगा अर्थात् जहाँ बाप कुछ हुक्म दे, माँ उसकी बात को काटकर दूसरा अथवा माँ का आदेश काटकर बाप दूसरा आदेश दे, वहाँ उच्छृंखलता की प्रवृत्ति ही पनपेगी और बच्चों में चुगलखोरी, चापलूसी तथा फुसलाने की आदत भी बढ़ेगी। वे जान जायेंगे कि माँ को खुश करने के लिए बाप का अमुक कहना न मानने की बात बताना लाभकारी है और आज्ञाकारिता की सौदेबाजी कर माँ-बाप से मन-पसन्द वस्तुएँ ऐंठी जा सकती हैं। जो माँ-बाप अमुक काम कर डालने पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अमुक माँग पूरी कर देने की लत बच्चों को लगा देते हैं, वे निश्चय ही उनमें इन दुर्गुणों के विकास के दोषी हैं।

बच्चे में यदि आलस्य की वृत्ति बढ़ती दिखे, तो उसे उस हेतु डाँटना नहीं चाहिए क्योंकि बच्चे स्वभाव से उत्साही, चपल और क्रियाशील होते हैं। अतः आलस्य किसी शारीरिक-विकार का परिणाम हो सकता है। उसकी जाँच कराई जानी चाहिए।

यदि बालक खेल-कूद में उत्साह रखता हो, किन्तु पढ़ने या कार्य करने से जी चुराता हो, तब यही मानना चाहिए कि इसका कारण शारीरिक दोष न होकर पढ़ाई या कार्य में अभिरुचि न होना है। ऐसे बच्चों की रचनात्मक क्षमता उनके अनुकूल कार्य-क्षेत्र मिलते ही प्रकट हो जाती है। अतः जरूरत इस बात की होती है कि बच्चे के व्यवहार का सूक्ष्म निरीक्षण कर उसकी स्वाभाविक अभिरुचियों का पता लगाया जाये। यहाँ वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन का प्रसंग स्मरणीय है। डार्विन बाल्यावस्था में पाठशाला से बहुत जी चुराता था। उसे कक्षा में कैद होने से चिढ़ थी। इसके स्थान पर जंगलों, पहाड़ों में घूमने निकल जाना उसे भाता। पिता परेशान थे। वे अपने लड़के को डाक्टर बनाना चाहते थे। जब लड़का सुधरता न दिखा तो उन्होंने उसे एक दूसरी पाठशाला में डाल दिया। वह एक मनोवैज्ञानिक प्राध्यापक थे। उन्होंने डार्बिन की रुचि का पता लगा लिया और उसके पिता से भी बता दिया कि तुम्हारा लड़का डाक्टर तो नहीं बन सकता, पर बहुत बड़ा प्रकृति विशेषज्ञ अवश्य बन सकता है। पिता ने अनुमति दे दी और डार्विन अपनी रुचि का विषय पाकर तेजी से आगे बढ़ने लगा तथा विश्वविख्यात् वैज्ञानिक बना, विकासवाद का सिद्धान्त दुनिया के सामने प्रस्तुत किया।

वस्तुतः बच्चे की आदतों की पूरी जिम्मेदारी माँ-बाप की है। माता ही बच्चे की प्रथम गुरु है। पाँच वर्ष की उम्र तक ही बच्चा योग्य माँ से इतना सीख सकता है, जितना अगले चार वर्ष तक भी स्कूल में न सीख सकेगा। कहानी-किस्से के रूप में बच्चे में डाले गये संस्कार उसके व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। माता जीजाबाई ने अपने पुत्र शिवाजी को बचपन में ही रामायण और महाभारत की वीर-गाथाएँ सुनाकर उनमें शौर्य, साहस, संकल्प और आदर्शवादिता के बीज बो दिये थे। यदि बच्चे को श्रेष्ठ संस्कार डाल सकने वाली कहानियाँ सुनायी जायें, तो उन पर उन कहानियों का निश्चित प्रभाव पड़ता है। बच्चों में कहानियाँ सुनने की तीव्र ललक होती है, उसे माँ-बाप नहीं पूरा करें तो वह इधर-उधर पास-पड़ौस में सुनेंगे। अतः बच्चों को कहानियाँ सुनाने के लिए समय, हर माँ-बाप को निकालना ही चाहिए तथा भय या निराशा उत्पन्न करने वाली, भूत-चुड़ैल की या किसी राजकुमारी की हत्या आदि की कहानियाँ उन्हें नहीं सुनानी चाहिए। भयावनी कहानियाँ बच्चे की विचारधारा और कल्पना-प्रवाह को भय की ही दिशा में मोड़ देती हैं और भयप्रद विचारों तथा कल्पनाओं में उलझा बच्चा अकारण ही भयभीत होने लगता है। भय का ही एक दूसरा रूप है—अतिशय झिझक। जो माँ-बाप बच्चों को बात-बात में झिड़कते रहते हैं, वे अपने बच्चों में ऐसी झिझक की भावना पैदा कर देते हैं। उनके बच्चे दूसरों से भी बात करने में झिझकते हैं। यह झिझक गहरी आत्महीनता का कारण बनती है और इस आत्महीनता की प्रतिक्रिया में कई बार बच्चे आगे चलकर उद्दण्ड या अपराधी भी हो जाते हैं। अधिकांश उद्दण्ड किशोर भीतर से बहुत डरपोक होते हैं। अतः बच्चों में भय और झिझक की भावनाएँ पैदा ही नहीं होने देना चाहिए और यदि किसी कारण पैदा हो जायें तो मनोवैज्ञानिक ढंग से उसके भय को दूर करने के उपाय तत्काल किये जाने चाहिए। वस्तुतः बच्चे के प्रति माँ-बाप को निरन्तर सतर्क रहना ही होता है। बच्चे के पालन-पोषण का यह अर्थ नहीं है कि उसे रोटी खिला दी जाये, कपड़े बनवा दिये जायें, पुस्तकें-खिलौने आदि ला दिये जायें और पैसे दे दिये जायें। बच्चों के व्यक्तित्व-निर्माण की जिम्मेदारी भी उन्हीं की है। स्कूल खदेड़कर वहाँ किसी मशीन में बच्चे के व्यक्तित्व के ढलकर सुघड़ हो जाने की आशा भी हास्यास्पद है। व्यक्तित्व-निर्माण का प्राथमिक दायित्व माता-पिता का ही है, अतः उस हेतु उन्हें ही प्रयास करने होंगे।

बच्चों की कोमलता को ध्यान में रखने का यह अर्थ भी नहीं है कि उनकी अनुचित माँगों को स्वीकार किया जाये। ऐसा करने से बालक का ही अहित होगा। बच्चे की उचित-अनुचित सभी माँगों को स्वीकार करते जाने का अर्थ है, उसे हठी-दुराग्रही बनाना। साथ ही ऐसे बच्चे की अनुचित इच्छाएँ भी बढ़ती जाती हैं और उनकी पूर्ति के लिए उनमें निगाह बचाकर चोरी करने जैसी बुरी आदतें पैदा हो जाती हैं। अतः बच्चे की अनुचित माँगें कदापि पूरी नहीं करनी चाहिए। इस विषय में पर्याप्त दृढ़ता बरती जानी चाहिये। विशेषकर माताओं को इस दिशा में अधिक सजग रहने की आवश्यकता है। उनका कोमल हृदय बच्चे के रोने-मचलने से विचलित हो उठता है किन्तु उन्हें बच्चे के हित की दूरगामी दृष्टि रखकर अपनी इस कोमलता को कमजोरी नहीं बनने देना चाहिए।

छोटी उम्र से ही बच्चों में कोमल भावनाओं का विकास करना चाहिए। बच्चों में सह-भावना सबके हित का ध्यान रखने की वृत्ति पैदा करना माँ-बाप के ऊपर ही है। जो माँ-बाप दूसरों तथा अपने बच्चों के बीच व्यवहार करते समय कोई भेदभाव नहीं रखते और न किसी तरह का दुराव, छिपाव ही रखते हैं, वे बच्चे अपना ही नहीं सबके अस्तित्व का एक साथ ध्यान रखते हैं। उनमें भेदभाव करने की भावना नहीं रहती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

बच्चों में अनुकरण करने की महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति होती है। माँ-बाप अभिभावकों का जीवन उसके लिए निकटतम और आत्मभाव से भरा हुआ प्रतीक, आदर्शों का केन्द्र होता है। इस तरह माँ-बाप के ऊपर ही बच्चों के निर्माण का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। माँ-बाप अपने इस उत्तरदायित्व को समझें और प्रयत्न करें तो इन खिलते हुए कुसुमों में सद्गुण, सद्भावों, अच्छी आदतें, सदाचार, शील, पुरुषार्थ, साहस आदि का सौन्दर्य और सुगन्धि भर जाय तो सामान्य से बच्चों में ही अनेकों महापुरुष निकल सकते हैं। प्रकृति शरीर देती है, किन्तु मनुष्य उसे व्यक्तित्व, मनुष्यता देता है।

बच्चे के हठी, आलसी, चिड़चिड़े, उच्छृंखल, स्वेच्छाचारी, अनुशासनहीन, डरपोक और विपथगामी होने की प्रमुख जबावदारी माता-पिता पर होती है। दूसरों पर दोष डालकर वे इससे बचे नहीं सकते। बच्चे के पालन-पोषण का अर्थ उसके व्यक्तित्व-विकास की ओर सदा ध्यान दिये रहना भी होता है। जो माता-पिता ऐसा नहीं कर पाते, वे बच्चे के प्रति अपनी जिम्मेदारी नहीं पूरी करते।

बालकों के विकास के प्रति सावधानी बरतें

शिशु ईश्वर के इस उद्यान का सुरभित पुष्प होता है। उसमें अनेक गुण एवं शक्तियाँ जन्मकाल से ही विद्यमान रहती हैं, लेकिन उनका योजनाबद्ध विकास माता-पिता के विवेक और उनकी सूझ-बूझ पर निर्भर करता है।

अभिभावकों को चाहिए कि उनका बच्चा आत्मविश्वासी, निडर, साहसी, परिश्रमी, कर्मशील एवं सहिष्णु बने, इसके लिए उन्हें सतत् सावधानीपूर्वक वैसा प्रयत्न करना चाहिए। बच्चे को सदैव यह करो, वह मत करो, अमुक जगह जाओ, वहाँ मत जाओ आदि आदेशात्मक और प्रतिबन्धात्मक वाक्य नहीं कहते रहना चाहिए।

बच्चे के व्यक्तित्व के विकास में घर का वातावरण भी एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व होता है। सुखद, शान्त, आनन्द एवं उल्लासप्रद वातावरण में बच्चे का मानसिक और नैतिक विकास भी श्रेयस्कर ढंग से होता है। बच्चों में अनुकरण एवं जिज्ञासा की प्रवृत्ति स्वभावतः होती है। अतः उनके समक्ष उच्च आदर्श ही प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि आगे चलकर वह देश, समाज तथा संस्कृति के लिए महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण कर सकें।

छोटे बच्चों का मानसिक संस्थान कोमल और सहजग्राही होता है। बचपन में जो संस्कार, स्वभाव वह ग्रहण करता है, प्रायः वह जीवनपर्यन्त किसी न किसी रूप में बना रहता है। इसीलिए मनीषियों ने छोटी आयु में ही अच्छी आदतों और सदाचरण के अभ्यास डालने पर विशेष जोर दिया है। इस आयु के संगृहीत संस्कार ही युवा और प्रौढ़ावस्था के विचारों की बुनियाद होते हैं। अतः माता-पिता और अभिभावकों को बच्चों के निर्माण में सतर्कता बरतना बच्चे जन्म देने से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।

हमारे देश में प्रबुद्ध और शिक्षित वर्ग भी अपने बच्चों के प्रारम्भिक निर्माण में उपेक्षा बरतते हैं। परिणामस्वरूप अनेक बच्चों में हानिकारक मानसिक ग्रन्थियाँ निर्मित हो जाती हैं, जो उनके जीवन में अनेक समस्याओं की जननी होती हैं। अतः बालकों के चरित्र-निर्माण और उसके विकास पर ध्यान देना प्रत्येक अभिभावक का महत् दायित्व है।

.अगर बच्चों में अच्छे बनने की प्रतिस्पर्धा की चेतना विकसित की जा सके तो उससे बहुत लाभ होते देखा गया है। परिवार के प्रारम्भ के एक या दो बच्चों में अच्छे संस्कार डाले जा सके तो बाद के बच्चे स्वयंमेव अच्छी आदतें अनुकरण के द्वारा सीखते जाते हैं। परिणामस्वरूप परिवार सुख-शान्तिमय बनता जाता है।

मान लीजिए एक परिवार में दो बच्चे हैं। दोनों को एक-सी पोशाक एक साथ दी जाये और उन्हें कहा जाये कि देखें किसकी पोशाक अधिक समय तक चलती है। चूँकि दोनों बच्चों में अधिक दिनों तक पोशाक को टिकाऊ बनाने की प्रतिस्पर्धा होगी, इसलिए वे उसके उपयोग और रख-रखाव पर अधिक सतर्कता बरतेंगे, फलतः उनकी पोशाक भी अधिक दिनों तक चलेगी। इसी तरह उनकी पुस्तकें, लेखन सामग्री, जूते, किफायतसारी आदि में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा की भावना देकर सदाचरण की ओर उन्मुख किया जा सकता है। बच्चों को इस तरह स्वावलम्बन का पाठ सिखाने के पूर्व अभिभावकों में उन आदर्शों और गुणों का पाया जाना अति आवश्यक है। ऐसा न होने पर कोरा उपदेश बच्चों के सम्वेदनशील मस्तिष्क पर विशेष प्रभाव नहीं डाल सकेगा।

मिट्टी के घरौंदे बनाना, कागज के फूल बनाना, स्लेट पट्टी पर चित्र बनाना, विभिन्न प्रकार के खेल सिखाना आदि के द्वारा बच्चों को निष्क्रियता से बचाया जा सकता है। इससे उसकी प्रवृत्ति बुरी आदतों की ओर बिल्कुल नहीं जा पायेगी।

अभिभावकों को चाहिए कि वे अपने बच्चों के साथियों का भी अध्ययन किया करें। सदैव यह प्रयास करना चाहिए—बच्चे शिष्ट और सदाचारी बालकों के साथ खेलें, शाला जायें और घर में उनके साथ ही पढ़ने-लिखने का अभ्यास करें।

इस दृष्टि से विभिन्न परिवारों के बच्चों से मेल-जोल बढ़ाने देना चाहिये। सदैव गुण ग्राहकता की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देना चाहिये। यदि उसके साथी चोर प्रकृति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के हैं तो उससे अलग करने के लिये किसी अच्छे बालक का साथ कराना अधिक श्रेयस्कर होता है।

बच्चे बाहर से दूसरे की वस्तुएँ घर तो नहीं लाते हैं, इसका पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। इतना लाड़-प्यार भी नहीं देना चाहिए कि वह दूसरे के खिलौने या अन्य छोटी-छोटी वस्तुएँ चुपचाप ले आयें। सर्वप्रथम तीन वर्ष की अवस्था से ही बच्चे को यह समझाते रहना चाहिए कि अपनी और पराई वस्तु में क्या अन्तर है तथा दूसरों की चीजें क्यों नहीं लानी चाहिए ? चोरी करना क्या है तथा इसका कितना बुरा परिणाम होता है आदि बातें सरल शब्दों में समझा देना चाहिए।

बच्चे की निजी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अभिभावकों का जेब-खर्च देना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि उसमें पैसे के उपयोग की योग्यता उत्पन्न करना। यदि बालक का दृष्टिकोण पैसे के प्रति स्वस्थ है तो वह जीवनपर्यन्त धन से अधिकतम आनन्द प्राप्त कर सकेगा।

बालकों में धन सम्बन्धी स्वस्थ दृष्टिकोण भरने के लिए निम्नांकित बातों की जानकारी होनी चाहिए—

१. धन का महत्त्व अनुभव करना। २. बुद्धिमत्तापूर्वक खर्च करना सीखना। ३. बचत का महत्त्व समझना।

जब पारिवारिक बजट बनाया जाय तब परिवार के सभी छोटे-बड़े सदस्यों के साथ विचारविमर्श किया जाना चाहिये। प्रत्येक सदस्य की राय से अवगत होने के पश्चात् एक सन्तुलित आय-व्यय बनाना चाहिए, जिसमें सभी सदस्यों को परिवार की आय किस तरह व्यय हो जाती है, उससे तसल्ली तथा सन्तोष हो। बच्चों की आवश्यकताएँ पूरी करने की मदें भी उसमें रखी जानी चाहिए।

भले ही परिवार को बच्चे द्वारा आय प्राप्त करने की आवश्यकता न हो तथापि उसे पैसे का मूल्य सिखाने के लिए परिश्रम के द्वारा पैसे पैदा करने देना चाहिए। बालक छोटा हो तो उसे घर का ही काम करने दें और उसका पारिश्रमिक दें। बड़े होने पर वह समाज का कोई काम कर सकेगा।

धन व्यय करने के पश्चात् यह देखना चाहिए कि जिन वस्तुओं, मदों पर व्यय किया गया है, वह सही है या नहीं। बच्चों के जेब खर्च पर भी निरन्तर ध्यान रखना चाहिए कि वे किस-किस मद में खर्च करते हैं ? यदि वे अनावश्यक वस्तुओं पर व्यय करते हैं तो उनके जेब-खर्च में कटौती कर देना चाहिए।

बच्चों को कोई भी वस्तु उधार मत दिलवाइये। यदि वे सही कार्यों में अपना जेब-खर्च समय से पूर्व कर डालते हैं तो उन्हें कुछ रकम पेशगी देनी चाहिए जिसे अगले माह काट लेनी चाहिए।

आवश्यकता और इच्छा का अन्तर भली-भाँति समझकर बच्चों के लिए व्यय करना चाहिए। मान लीजिए वह बाजार जाता है और कीमती खिलौने, अधिक मूल्य के कपड़े और मिठाइयाँ लेने की जिद करता है तो उसे उसकी सीमित आवश्यकताओं को पूरी कर देने और अनावश्यक वस्तुएँ क्यों नहीं खरीदना चाहिए, का ज्ञान कराना चाहिए।

कभी उसने कोई गलती कर ली तो उसके मूल कारण को जानने का प्रयत्न करें। प्रत्येक माता-पिता को यह जानना चाहिए कि बच्चे को कब पुरस्कार, प्रशंसा और कब दण्ड देना—उसके चरित्र-निर्माण में सहायक हो सकता है।

समाज का इन निरपराध बच्चों के प्रति अन्याय क्यों ?

परित्यक्त बच्चे ! माँ, जिनका परित्याग कर देती है, पिता जिन्हें भाग्य भरोसे छोड़ देता है, समाज जिन्हें दर-दर की ठोकरें खिलाता है। ये बच्चे जिनमें से न जाने कितने जवाहर, कितने लालबहादुर और न जाने कितने गाँधी निकलते ? इन बच्चों में से अधिकांश को तो जन्म ग्रहण करते ही स्वर्गवासी बना दिया जाता है और जो बच जाते हैं, उन्हें रात्रि के गहन अन्धकार में गलियों के मोड़ों, अनाथालयों के दरवाजों पर फेंक दिया जाता है, जिनकी करुण आवाज अनाथालयों की चहारदीवारी के अन्दर भी कोई सुनने वाला नहीं होता। जो प्यार और स्नेहिल छत्रछाया इन्हें अपने माता-पिता की मिलनी चाहिए थी, वो उन्हें नहीं मिल पाती।

वे सुकुमार पुष्प जिनकी सुरभि सारे देश में फैलनी थी, वे मुरझा जाते हैं, जो होश सँभालते ही अपने को अनाथालयों, धार्मिक संस्थाओं के दरवाजों पर पड़ा पाते हैं, उन्हें न अपनी माता का पता होता है न पिता का। ऐसे बच्चे अक्सर अविवाहित माताओं या युवा विधवाओं के होते हैं, जो समाज के अत्याचारों का शिकार हो जाती हैं या स्वयं अपनी नासमझी और असंयम की। इन बच्चों की प्रतिभाएँ उचित संरक्षण के अभाव में कुण्ठित हो जाती हैं।

कुछ विवाहित माताएँ भी अपने नवजात शिशुओं को त्याग देती हैं क्योंकि वे उनका उचित पालन-पोषण करने में अपने को असमर्थ पाती हैं। ऐसे बच्चों का पालन उक्त संस्थाओं में होता है। वहाँ ये बच्चे पलकर बड़े होते या फिर बचपन में ही ऐसे बच्चों को गोद ले लिया जाता है, जिनके कोई सन्तान नहीं होती। परित्यक्त शिशुओं को सँभालने, पालने आदि का कार्य देश में मुख्य रूप से ईसाई मिशनरियों द्वारा खोले गये पोषण-गृह अथवा 'फाउण्डलिंग होम' करते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

इन बच्चों को समाज किस दृष्टि से देखता है और बड़ा होने पर समाज में इन बच्चों को क्या स्थान मिलता है, यह विचारणीय विषय है। परन्तु इससे भी गम्भीर समस्या इन परित्यक्त बच्चों की बढ़ती हुई संख्या है। पोषण-गृहों में प्रत्येक रात्रि को एक बच्चा अवश्य ही यहाँ का सदस्य हो जाता है, कभी-कभी इससे अधिक भी। जहाँ इन बच्चों को माता-पिता का प्यार नहीं मिल पाता।

ऐसा अनाचार हमारी उन्नति का द्योतक नहीं हमारे पतन का चिह्न है। यह भारतीय समाज पर एक गहरा कलंक है। आज के प्रगतिशील युग में हम नारी को शिक्षा और पुरुषों के बराबर अधिकार तथा परिवार और समाज में सम्मान देने का दावा करते हैं, तब क्या समाज में बढ़ते हुए इस दुराचार को रोकना हमारा कर्त्तव्य नहीं ? जिन्हें दुर्भाग्य की देन मानकर स्वयं जिनके जन्मदाता हमेशा-हमेशा के लिए जिनसे मुँह मोड़ लेते हैं बिना यह सोचे-समझे कि उनका भविष्य क्या होगा ?

समाज-कल्याण और बाल-कल्याण कार्य से सम्बद्ध व्यक्ति और कार्यकर्त्ता इस तथ्य से अनिश्चित नहीं कि परित्यक्त बच्चों की समस्या कितना जटिल है, इसका समाधान आवश्यक है, परन्तु इससे पूर्व इन कारणों को जानना भी आवश्यक है जिनसे ऐसे बच्चे पैदा हो रहे हैं या अविवाहित माता बनने की नौबत आ रही है।

इस दोषपूर्ण स्थिति के सबसे मुख्य कारण दहेज की समस्या, बड़ों की अपने बच्चों पर अनुशासन में ढिलाई, आत्मसंयम की कमी आदि है। इन सबमें दहेज की समस्या सर्वोपरि है।

आज दहेज-विरोधी कानून पास हो चुका है अर्थात् दहेज लेना और देना दोनों कानूनी तौर पर अपराध माने जाते हैं, फिर भी समाज में दहेज खुलेआम दिया और लिया जा रहा है। इससे पैसे वाले लोग तो अपनी कन्याओं का अच्छे वर से सम्बन्ध कर देते हैं क्योंकि वे दहेज के रूप में अच्छी कीमत अदा करके लड़के को खरीद लेते हैं, परन्तु जो इसे पूरा करने में समर्थ नहीं हैं, उनकी लड़कियाँ बड़ी उम्र तक कुँवारी रह जाती हैं या फिर आजीवन अविवाहित रह जाती हैं, क्योंकि उनके पिता दहेज के रूप में मोटी रकम, सोना, स्कूटर, रेडियो, फ्रिज, मकान आदि नहीं दे सकते। कितनी ही ऐसी गुणी लड़कियाँ हैं, जो दहेज के अभाव में बहुधा ब्याही नहीं जातीं।

दूसरा कारण हमारे वयस्कों में व्यावहारिक ज्ञान का अभाव है। अब परम्परागत अन्धविश्वासों तथा खोखली नैतिकता को छोड़कर बच्चों को स्कूल स्तर पर ही सैक्स के बारे में शिक्षा देकर आरम्भ से ही सजगता भरनी होगी, ताकि वे किसी कुचक्र में पड़ने से पूर्व उसकी हानियों को जान सकें।

तीसरा कारण यह है कि हमारे युवा वर्ग में आत्मसंयम की कमी आती जा रही है। आज जबकि लड़के-लड़कियाँ और प्रौढ़ स्त्री-पुरुष मिलकर काम करने, कंधे-से-कंधा मिलाकर कार्य करने और आगे बढ़ने के सुअवसर आते हैं, ऐसे स्थलों पर आत्मसंयम की कितनी आवश्यकता है, यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है। उन्नति अच्छी चीज है, परन्तु जहाँ ऐसे अवरोध आ जायें, वहाँ समाज अवनति के गर्त में ही गिरेगा।

अगला कारण बड़ों में स्वयं अनुशासनहीनता तथा बच्चों पर निगरानी रखने में शिथिलता। इसके भी कई कारण हैं। एक आज आजीविका कमाने में संघर्ष करना पड़ता है कि माता-पिता को, विशेषकर पिता को, यदि माता को भी नौकरी के सिलसिले में घर से बाहर रहना पड़ता हो और उनको अधिकांश समय घर से बाहर व्यतीत करना हो तो स्वभावतः बच्चों पर निगरानी कम हो जाती है।

दूसरे हमारे शिक्षक वर्ग के नैतिक स्तर में भी कमी आ गई है। जिससे वे अपने संरक्षण आये बच्चों को चरित्रवान् बनाने में अपना आदर्श उपस्थित नहीं कर पाते। यह एक कटु सत्य है, जिसे आज का अध्यापक वर्ग सहज नहीं कर सकता।

इन परित्यक्त बच्चों, नवजात शिशुओं को समाज में स्थान दिलाने के लिए, इन्हें समाज में पुनः अपनी स्थिति कायम रखने के लिए कानूनी संरक्षण प्राप्त होना बहुत जरूरी है। इन बच्चों के लिए धर्म माता-पिता, धर्म परिवार ढूँढे जायें, जहाँ ये बच्चे पोषण गृहों, अनाथालयों आदि से मुक्ति पाकर भली-भाँति पोषण पा सकें। अपने जीवन को समुज्ज्वल बना सकें।

ये मासूम बच्चे निराश्रित और निरपराध हैं, आखिर इन्हें समाज किस अपराध की सजा देता है ? इनको आज माता-पिता का प्यार और स्नेहिल छत्रछाया चाहिए, जो इन्हें विकास का उचित अवसर दे सके। नहीं तो ये सुकोमल पुष्प बालअपराधी बनेंगे, चोरी करेंगे, आवारागर्दी करेंगे, भीख माँगेंगे, जुआरी बनेंगे, शराब पीयेंगे और समाज के लिए कण्टक और सिरदर्द बन जायेंगे।

जब अविवाहित माँ अपने शिशु को छोड़ जाती है, फेंक जाती है, तो उस पर उसका कोई अधिकार नहीं रह जाता। तब बच्चा अनाथालयों में भटकता-फिरता है, जहाँ से निःसन्तान माता-पिता उसे गोद ले लेते हैं। उसे संरक्षक तो मिल जाते हैं, किन्तु इस प्रकार के बच्चों को कानूनी रूप से वैध नहीं माना जाता। समाज में भी वे हीन दृष्टि से देखे जाते हैं और आयुपर्यन्त अवैध सन्तान कहलाने की आत्मग्लानि में उन्हें जलना पड़ता है।

ये परित्यक्त बच्चे समाज के हैं और समाज तथा सरकार दोनों का इनके प्रति भारी उत्तरदायित्व है। इससे हम कभी भी मुक्त नहीं हो सकते। स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तथा मानव-कल्याण के इस आधुनिक युग में, जबकि हम प्रत्येक प्राणी के जीने के अधिकार और हितों के तथ्यों को स्वीकार करते हैं, ऐसे बच्चों की अवहेलना अवांछनीय ही नहीं, सामाजिक अपराध भी है। इस अपराध से मुक्ति पानी ही चाहिए।

बच्चों का समुचित विकास कीजिए

समुचित विकास का अर्थ है बच्चे की शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक वृद्धि। जब तक उसमें इन तीनों शक्तियों का सन्तुलित विकास नहीं होता उसका व्यक्तित्व अपनी चरम सीमा पर नहीं पहुँचता और जब तक व्यक्तित्व की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं होती, मनुष्य जीवन की महान उपलब्धियों को प्राप्त नहीं कर पाता। समाज उसको या तो समझ ही नहीं पाता या समझने में भूल करता है। जिसका जितना ही उज्ज्वल चित्र समाज के सामने रहता है, वह उतना ठीक पहचाना जाता है।

समुचित विकास के लिए बच्चे को प्रेरणा देने से पहले यह आवश्यक है कि शारीरिक विकास, मानसिक विकास और बौद्धिक विकास का क्या अर्थ है ? यह समझ लेना चाहिए।

शारीरिक विकास का अर्थ है—शरीर का सुन्दर, स्वस्थ और सशक्त होना। मानसिक विकास का अर्थ है मन का प्रसन्न, प्रफुल्ल, निर्भीक, साहसिक, विश्वस्त और स्थिर होना। बौद्धिक विकास का अर्थ है—किसी बात के ठीक-ठीक समझने-समझाने और निर्णय में बुद्धि का सक्षम होना और समुचित विकास का अर्थ है—इन तीनों बातों का साथ-साथ समान रूप से वृद्धि पाना।

सबसे पहले बच्चे का शारीरिक विकास प्रारम्भ होता है। उसके बाद बौद्धिक और तत्पश्चात् मानसिक। इस क्रम से विकास होने के कारण शारीरिक विकास अन्य दोनों विकासों की आधारभूमि मानी जाती है। अतएव अभिभावकों का पहला कर्त्तव्य है बच्चे के शारीरिक विकास पर समुचित ध्यान देना।

बच्चे को उसकी आयु के अनुरूप शुद्ध और सुपाच्य वस्तुएँ खिलानी चाहिए, क्योंकि प्रौढ़ों की पाचन शक्ति और बच्चों की पाचन शक्ति में अन्तर होता है। अधिकतर सभी घरों में सबको एक ही समान भोजन दिया जाता है। क्या बच्चे, क्या प्रौढ़ एक ही प्रकार की बनी रसोई खाते हैं ? न किसी के अलग भोजन की व्यवस्था होती है और न इसकी आवश्यकता अथवा महत्त्व समझा जाता है।

प्रायः सभी अभिभावक वही चीजें बच्चों को भी खिलाते हैं जो उन्हें पसन्द होती हैं। बच्चा यदि अपनी प्रकृति अथवा आयु के प्रतिकूल यदि कोई चीज नापसन्द भी करता है तब भी उसे थोड़ी-थोड़ी और बार-बार खिलाकर उन चीजों का अभ्यास कराते हैं। वे सदैव यह चाहते रहते हैं कि बच्चा ठीक उनके ही अनुसार हर बात का अभ्यस्त होकर ठीक-ठीक उनका ही प्रतिरूप बने। समान भोजन का अभ्यस्त बना लेने में उन्हें एक सबसे बड़ी सुविधा यह दीखती है कि बच्चे के लिए अलग से भिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनाने का झंझट नहीं करना पड़ता। वे इसमें श्रम, समय और पैसे की बचत की सुविधा देखते हैं, बच्चे के स्वास्थ्य को नहीं देखते। मिर्च-मसालों वाला भोजन भी बच्चे को खिलाने में संकोच नहीं करते। यद्यपि वह मिर्च आदि मुँह में लगते ही रोने-बिलबिलाने लगता है तथापि उनको यह विचार नहीं आता कि यह चीज उसके प्रतिकूल है, नहीं खिलानी चाहिए। इसके विपरीत बहुतों का यह विश्वास होता है कि मिर्च-मसालों से बच्चों की पाचनक्रिया को शक्ति मिलती है और उसकी जुबान खुलती है। यह भूल है। मिर्च-मसाले बच्चे की पाचनक्रिया खराब कर देते हैं और उसके स्वस्थ बनने में बाधक होते हैं।

जब बच्चे का शारीरिक विकास समुचित रूप से होता चलेगा तो अन्य दो विकास भी ठीक-ठीक होंगे। भोजन का प्रभाव मन और मस्तिष्क पर भी पड़ता है। जिस प्रकार का भोजन बच्चे को दिया जायेगा उसी प्रकार का उसका मन और मस्तिष्क बनेगा। ''स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन और मस्तिष्क होता है।'' इस सिद्धान्त के अनुसार उसे केवल वे ही चीजें खिलाई जानी चाहिए जो उसके शरीर, मन और मस्तिष्क के अनुकूल हों, जिससे शरीर स्वस्थ, मन सबल और बुद्धि प्रखर बने।

बौद्धिक विकास के लिए उसे ऐसे वातावरण में रखना चाहिए जो उसके अनुकूल हो। उससे बुद्धिवर्द्धक बातें की जानी चाहिए और ऐसे खिलाया जाना चाहिए जिससे उसे थोड़ी-बहुत बुद्धि का प्रयोग करना पड़े। व्यावहारिक बातों में, क्या कैसे होता है ? ऐसा क्यों है ? ऐसा क्यों नहीं होना चाहिए आदि तर्क-पद्धति से सोचने और समझने का अभ्यस्त बनाना चाहिए। इससे उसमें विचार-शक्ति का उदय होगा और वह हर बात पर विचार करने लगेगा। बुद्धि का अधिक से अधिक उपयोग ही बौद्धिक विकास का सबसे अच्छा साधन है।

उसे सामान्य रूप से उपयोग और प्रयोग में आने वाली चीजों का प्रारम्भिक ज्ञान कराया जा सकता है। जैसे दूध कैसे प्राप्त होता है ? उसकी क्या उपयोगिता है ? वह कब हानि और कब लाभ करता है ? अच्छे और खराब दूध की क्या पहचान है ? अन्न कैसे उत्पन्न होता है, कौन-सा अन्न कैसा होता है और उसकी क्या पहचान है ? सब्जियाँ कैसे उगाई जाती हैं ? कपड़ा कैसे बनता है ? कापी, कागज, किताबें आदि किस प्रकार इस रूप में आती हैं आदि ? तात्पर्य यह है कि नित्य-प्रति प्रयोग में आने वाली चीजों के माध्यम से उसमें ज्ञानोपार्जन की एक प्रकृति का जागरण किया जा सकता है, जिससे आगे चलकर उसमें अधिकाधिक ज्ञान की जिज्ञासा उत्पन्न हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

जायेगी और वह अध्ययनशील एवं अन्वेषणशील बन जायेगा, जिससे उसके बौद्धिक विकास को पर्याप्त लाभ होगा।

पाठशाला में भेजने से पूर्व बच्चे को साल दो साल घर पर पढ़ा लेना चाहिए, जिससे कि शिक्षा के अनुकूल उसका बौद्धिक धरातल तैयार हो जाये। घर पर शिक्षा देने से इस बात का भी पता लग जायेगा कि किन विषयों में उसकी विशेष रुचि है और कौन-से विषय उसे कठिन पड़ते हैं ? इसका पता लग जाने से शिक्षकों को उससे अवगत कराया जा सकता है जिससे शिक्षक को उसे समझने और पढ़ाने में सुविधा रहेगी। साथ ही जब कोई बच्चा कुछ अपनी योग्यता लेकर घर से पाठशाला जायेगा तो पढ़ना उसके लिए एकदम कोई नई वस्तु न होगी और वह कक्षा में ठीक से चल सकेगा। अधिकतर बच्चे ६, ७ वर्ष की आयु पर पाटी पुजाकर पाठशाला की ओर हाँक दिये जाते हैं, जिससे वह नये काम और नई जगह के कारण घबड़ाता है, रोता है और बचना चाहता है। नित्य-प्रति पाठशाला जाने के समय अनुरोध का झंझट पैदा होता है, जिससे अभिभावक को झल्लाहट और बच्चे की अरुचि पैदा होती है और कभी-कभी तो माता-पिता परेशान होकर उसे शिक्षा के अयोग्य समझकर इस ओर से उदासीन हो जाते हैं और यह धारणा बनाकर पढ़ने से बिठाल लेते हैं कि इसके भाग्य में विद्या है ही नहीं। अस्तु, पाठशाला भेजने से पहले यदि उसके अनुकूल उसका बौद्धिक धरातल घर पर ही तैयार कर दिया जाये तो इस प्रकार की सम्भावनाओं का अवसर ही न आये।

शिक्षा के विषय में केवल शिक्षालयों तथा शिक्षा पर ही निर्भर न रहना चाहिए। स्वयं भी देखना चाहिए कि उनका बच्चा पढ़ाई-लिखाई में क्या प्रगति कर रहा है ? कमजोर बच्चों को अभिभावकों को स्वयं पढ़ाई में कुछ न कुछ सहायता करनी चाहिए। साल बचाने के लिए एक कक्षा से दूसरी कक्षा में पहुँचाने के लिए व्यर्थ प्रयत्न न करना चाहिए। शिक्षा को योग्यता के मापदण्ड से नापना चाहिए न कि कक्षा की श्रेणी से। आशय यह है कि बच्चे के लिए शिक्षा की ऐसी अवस्थाओं और व्यवस्थाओं का प्रबन्ध करना चाहिए जिससे कि वे दिनोंदिन योग्य बन सकें।

मानसिक विकास के लिए उन्हें अधिक से अधिक प्रसन्न एवं विशुद्ध वातावरण में रखने का प्रयत्न करना चाहिए न उन पर इतना नियन्त्रण करना चाहिए कि वे मुरदा-मन हो जायें और न इतनी छूट देना चाहिए कि वे उच्छृंखल हो जायें। इन्हें भय से मुक्त करने के लिए साहस की कथाएँ सुनाई जानी चाहिए और उदाहरण देने चाहिए। उन्हें किसी बात से सावधान तो करना चाहिए किन्तु भयभीत नहीं। धीरे-धीरे कठिन कामों का अभ्यस्त बनाना चाहिए। काम बिगड़ जाने पर उनका उपहास न करके उसके सुधार की शिक्षा देनी चाहिए और समुचित सराहना से प्रोत्साहित करना चाहिए। उनके सामने क्रोध, लोभ, स्वार्थ अथवा असद्भावनाओं की परिस्थितियाँ न आने देना चाहिए। उन्हें अच्छी बातों के लिए प्रोत्साहित और बुरी बातों के लिए हतोत्साहित करना चाहिए। उनके सामने कभी भी ऐसी बातें न की जानी चाहिए जिससे उनके मन पर कोई बुरा प्रभाव पड़े। अभिभावकों को अपने व्यसनों की तुष्टि उनकी नजर बचाकर करनी चाहिए, क्योंकि ऐसा न करने से वे भी व्यसनी बन सकते हैं और तब उन पर समझाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

बाल-विकास कक्षाओं में नैतिक शिक्षा

सामान्य-ज्ञान और व्यवहार-कौशल इन दो विषयों की स्कूली पाठ्यक्रम में भरमार रहती है। परिस्थितियाँ, घटनाएँ, जानकारियाँ अधिक मात्रा में उपलब्ध कराना उनका मुख्य विषय है। शिक्षित व्यक्ति अधिक जानकार होता है, जबकि अशिक्षित को सम्पर्क क्षेत्र द्वारा मिलने वाले सीमित ज्ञान पर ही निर्भर रहकर अपनी गाड़ी धकेलनी पड़ती है। अस्तु, यह उचित समझा जाता है कि उठती आयु में जब तक शारीरिक और मानसिक स्थिति कुछ पराक्रम-उपार्जन करने जैसी नहीं होती, तब तक उन्हें स्कूलों में पढ़ने दिया जाय। घर में पढ़ने की अपेक्षा स्कूलों में जन-सम्पर्क अधिक रहता है, इस कारण भी उसे उपयुक्त समझा जाता है फिर घर पर पढ़ाने के लिए स्थान और धन-साधन की भी तो उतनी सुविधा हर किसी के पास नहीं होती। इन्हीं कारणों से स्कूली शिक्षा का औचित्य समझा गया और प्रचलन भी चल पड़ा।

इतने पर भी उसमें कुछ भौतिक कमियाँ हैं, जिनकी पूर्ति के लिए हमें अन्य उपचार अपनाने होंगे। कमियों में एक यह है कि छात्रों में शालीनता, सुसंस्कारिता विकसित करने, व्यक्तित्व उभरने पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। उसके लिए कोई विशेष कार्यक्रम नहीं रखा गया है जबकि छात्रावस्था ही इसके लिए उपयुक्त समय है। बच्चों को गीली मिट्टी के समान समझा जाता है। इस अवधि में वे किसी भी साँचे में ढल सकते हैं किसी भी भली-बुरी दिशा में मुड़ सकते हैं। ज्ञान-वृद्धि आवश्यक तो है पर व्यक्तित्व निर्माण से अधिक उसकी उपयोगिता नहीं मानी जा सकती। गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से यदि कोई परिष्कृत स्तर का नहीं तो फिर ज्ञानवान एवं सम्पत्तिवान होने पर भी सुखी, समुन्नत रह सकना सम्भव नहीं। अब पुरातनकालीन—गुरुकुलों जैसी परिस्थितियाँ न परिवारों में हैं न स्कूलों में। अस्तु, छात्रों के व्यक्तित्व उस स्तर के नहीं बन पाते जिससे उनका निजी भविष्य उज्ज्वल बने एवं सामाजिक प्रगति में योगदान मिले। इस कमी को पूरा करने के लिए इन दिनों यही उपाय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपयुक्त प्रतीत होता है कि ऐसी समानान्तर शिक्षा-व्यवस्था बनायी जाय जो पुरातनकाल के गुरुकुलों की आंशिक आवश्यकता पूरी कर सकें। इसके लिए उचित समझा गया है कि स्कूली पढ़ाई पूरी करने के अतिरिक्त गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से भी छात्रों को समुन्नत करती चले। उनकी सत्प्रवृत्तियों को उभारने का भरसक प्रयत्न करती रहे।

स्कूली शिक्षा में दूसरी कमी है—अर्थ उपार्जन का, स्वावलम्बन का रास्ता न दीख पाना। कोई समय था जब हर पढ़े-लिखे को आसानी से नौकरी मिल जाती थी। सस्तेपन का समय रहने से सामान्य वेतन में भी गुजारा चल जाता था। अब वह स्थिति रही नहीं। नौकरी का मिलना तो दूर ऊँचे स्कूली, महत्त्वपूर्ण विषयों की पढ़ाई के लिए स्थान प्राप्त कर सकना भी सम्भव नहीं। शिक्षित बेकारों की पलटन, दिन-दूनी रात चौगुनी गति से बढ़ती जाती है। नौकरी के अतिरिक्त और कुछ सूझता नहीं, जो सूझता है वह मिलता नहीं। माँ-बाप की जेबें खाली हो गईं। योग्यता वैसी बनी नहीं, जिसमें कोई उद्योग-व्यवस्था अपनाई जा सके। ऐसी दशा में जब युवकों में निराशा और खीझ बढ़ती है तो वे अवांछनीयता की ओर भटकते हैं।

इसके लिए सोचा गया कि अफसर बनने के दिवास्वप्न से छात्रों को विरत किया जाय और अर्थ स्वावलम्बन के लिए सहकारी उद्योग अपनाने के लिए छात्रों और अभिभावकों की तदनुरूप मनोवृत्ति विकसित करने की व्यवस्था की जाय। इसके लिए कुटीर उद्योगों का सिलसिला आरम्भ किया जाय। भले ही वह घरेलू शाकवाटिका जैसा प्रतीक श्रीगणेश ही क्यों न हो ? दिशा सही होने पर मार्ग मिलता है और लक्ष्य तक पहुँच सकना भी बन पड़ता है।

प्रज्ञापीठों की स्थापना लोकमानस का परिष्कार और सत्प्रवृत्ति-सम्वर्द्धन का महान लक्ष्य सामने रखकर हुई है। उन्हें जन-जाग्रति का केन्द्र बनना है साथ ही अन्य देवालयों के सम्मुख आदर्श भी उपस्थित करना है कि उन्हें लोकमंगल में निरत रहकर अपनी उपयोगिता सिद्ध भी करनी है। धर्म-धारणा का अभिवर्द्धन मात्र पूजा से सम्भव नहीं होता इसके साथ सेवा-साधना का जुड़ा रहना भी अनिवार्य रूप से आवश्यक है। इन लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए सभी प्रज्ञापीठें भवन-निर्माण और प्रतिमास्थापन का पूर्वार्द्ध पूरा करते ही मूल लक्ष्य की प्राप्ति के लिए रचनात्मक प्रयासों का उत्तरार्द्ध अपना रही हैं। इसके लिए बाल-विकास कक्षाएँ चलाने का प्रथम कदम उठाया गया है। इन कक्षाओं में स्कूली पाठ्यक्रम को पूरा कराने के अतिरिक्त स्वास्थ्य-संरक्षण, हरीतिमा-सम्वर्धन का कार्यक्रम भी सम्मिलित रखा गया है। प्रभावित अभिभावकों के सहयोग से, सामूहिक श्रमदान से स्वच्छता अभियान चलाने का प्रावधान भी इसी योजना में सम्मिलित रखा गया है।

उपरोक्त शिक्षण-व्यवस्था भले ही सर्वांगपूर्ण न हो। उसका प्रत्यक्ष महत्त्व कोई बहुत बड़ा प्रतीत न हो पर उसके पीछे जिस दिशाधारा का समावेश है, उसमें वे सभी सम्भावनाएँ विद्यमान हैं, जिसके आधार पर स्कूली शिक्षा में रहने वाली दोनों कमियों की पूर्ति के लिए ध्यान मुड़े, प्रयास चले। प्रकाश उगे और मार्ग मिले। इन कार्यक्रमों का प्रत्यक्ष लाभ तो स्पष्ट ही है कि वे सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन की मौलिक प्रगति एवं सुव्यवस्था की पृष्ठभूमि तो बनाती ही हैं।

प्रज्ञापीठों में पढ़ने वाले छात्रों से तो मिशन के कार्यकर्त्ताओं का सीधा सम्बन्ध रहेगा ही उनके अभिभावकों के साथ भी यदि प्रयत्न किया जाय तो घनिष्टता का रिश्ता जुड़ता है। पढ़ने वाले बच्चों के स्वास्थ्य, स्वभाव आदि के सम्बन्ध में परामर्श करते रहने का सिलसिला चल पड़े तो माता-पिता के समान ही शिक्षकों को भी बच्चों का हितचिन्तक माना जाने लगेगा और यह त्रिगुण तीन देवालयों की तरह बच्चों के भविष्य निर्माण में सर्वतोमुखी योगदान प्रस्तुत कर सकेगा। फिर बच्चों के अतिरिक्त उनके परिवारों, अभिभावकों में भी मिशन के आलोक को प्रवेश करने के लिए नया द्वार खुलता है। न केवल बच्चों में, वरन् उनके परिवारों में भी युगचेतना के अनुरूप आदर्शवादिता के संस्थापन, अभिवर्धन का सुयोग बनता है। सेवा क्षेत्र-विस्तार की दृष्टि से इस माध्यम से दूसरा प्रयोजन सिद्ध होता है। बच्चों की तरह अभिभावक भी उनसे प्रभावित होते हैं।

इन दिनों स्कूलों में नैतिक शिक्षा न मिलने की चर्चा आमतौर से होती रहती है। जहाँ कहीं इस सन्दर्भ में छुटपुट प्रयास हुए हैं, वहाँ इतना ही बन पड़ा है कि नीति दर्शन के आधारभूत सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने वाली कुछ पुस्तिकाएँ छपी हैं और उन्हें पढ़ने-पढ़ाने के भी कुछ प्रयास होने लगे हैं। जहाँ तक सिद्धान्तों का सवाल है वहाँ तक उनकी जानकारी सभी को मोटे रूप से होती है। कोई ऐसा नहीं होता जिसने सच्चाई, ईमानदारी आदि की प्रशंसा न सुनी हो और पूछने पर उनके महत्त्व के सम्बन्ध में कुछ न बता सके। जहाँ-तहाँ ऐसे कथन प्रतिपादित होते ही रहते हैं। कथा-सत्संगों में से प्रायः ऐसा ही कुछ पढ़ने-सुनने को सहज मिल जाता है। ऐसी दशा में नैतिक शिक्षा का दर्शन बताने वाली एकाध पुस्तक और भी जोड़ दी जाय तो उतने भर से कोई नई बात नहीं बनती। नया अध्याय नहीं खुलता।

होना यह चाहिए कि नैतिकता को व्यापक अर्थ में लिया जाय। इसमें नागरिक कर्त्तव्यों के निर्वाह और सामाजिक उत्तरदायित्व के परिपालन करने से मिलने वाले लाभों का सुविस्तृत विवरण इस प्रकार समझाया जाय कि उसे पुण्य-परमार्थ भर न मानकर निजी प्रगति की दृष्टि से भी सुनिश्चित लाभदायक राजमार्ग माना जा सके। प्रचलन में इन दिनों धूर्तता को कुशलता का पर्यायवाचक और लाभकर माना जाने लगा है। इस अदूरदर्शिता के आधार पर तत्काल लाभ उठा लेने वाला अन्ततः कितना घाटा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उठाते हैं, इसे सिद्ध करना और समझना प्रज्ञापीठ के अध्यापकों का काम है। इसके लिए उन्हें आवश्यक सामग्री प्रज्ञासाहित्य के फोल्डरों से मिल सकती है। नोट करें और छात्रों के गले उतारने का प्रबन्ध करें।

जानकारी देनी एक बात है और आदर्शों को स्वभाव, अभ्यास में उतरना दूसरी। प्रस्तुत कक्षाओं में छात्रों की शालीनता की मर्यादाओं को समझने और उन पर आचरण करने के लिए आग्रह करना चाहिए। इन निर्धारणों को अनुशासन कहा जाय और उनके परिपालन हेतु उत्साहित ही नहीं बाधित भी किया जाय। जो इस सन्दर्भ में अधिक प्रगति करें उन्हें प्रशंसा प्रदान करने की दृष्टि से पुरस्कृत भी किया जाय। इसके लिए प्रश्नोत्तरों का क्रम चलता रहे। आचरण, अभ्यास और अनुभव के सम्बन्ध में पूछताछ होती रहे और प्रगति को उजागर किया जाता रहे।

प्रज्ञापीठ के हर छात्र को अनुशासन का पाठ पढ़ाया जाय। समय पर कक्षा में आने का ही नहीं घर पर सोने, उठने, खाने, पढ़ने आदि का समय निर्धारण करके और उस दिनचर्या को जागरूकतापूर्वक निभाने पर बल दिया जाय। समयगत अनुशासन सिखाना बड़ी बात है। इससे आलस्य-प्रमाद में होने वाली बर्बादी से बचा जा सकता है।

हर क्षेत्र में परस्पर शिष्टाचार बरतने, मधुर शब्दों में वार्तालाप करने की शिक्षा दी जाय। नम्रता अपनाने और दूसरों को मान देने में सज्जनता है। कोई उत्तेजित न हो, अपशब्द न कहे, असुरता न बरते। 'अपनी बारी की प्रतीक्षा करे।' बायें हाथ पर पंक्तिबद्ध होकर चलें, लाइन में बैठें। शिष्टता के व्यतिरेक होने का स्मरण आते ही बिना झिझक माफी माँगें।

अपनी सुविधा से अधिक साथियों की सुविधा का ध्यान रखें। कर्त्तव्यपालन पर अधिक और अधिकार पाने पर कम जोर दें। सम्पदा, पद सफलता पाने से भी अधिक ध्यान मानवी गरिमा अपनाने को अधिक महत्त्व दें।

सादा जीवन उच्च विचार के सिद्धान्त का निरन्तर अभ्यास करें। सादगी और स्वच्छता को श्रेष्ठता का पर्यायवाचक मानें। न गन्दगी को पास फटकने दें और न उद्धत प्रदर्शन का बचकाना ठाठ-वाट ओढ़ें, बनायें। शरीर बन्धन, समाजगत अनुशासन और निवास को स्वच्छ एवं सुव्यवस्थित करें। इसे कलाकारिता समझें और उसे अपनाने में गौरव अनुभव करें।

कामुकता को भड़काने वाले साहित्य, चित्र एवं कुसंग से बचें। वैसे चिन्तन का मन पर आधिपत्य न जमने पावें, इसका ध्यान रखें। ब्रह्मचर्य का महत्त्व समझें और प्रौढ़ता आने से पूर्व कामुक छेड़छाड़ से दूर रहें।

परिवार में सभी के साथ शिष्टता बरतें। बड़ों का प्रातः चरणस्पर्श पूर्वक अभिवादन भारतीय शिष्टाचार का अविच्छिन्न अंग है। स्वभाव में मुसकराहट और विनम्रता का पुट लगाये रहें।

नीति शिक्षा के उपरोक्त संकेत हैं जिनमें स्वभाव, व्यवहार एवं अभ्यास की शालीनता से ओत-प्रोत रखने पर जोर दिया गया है। उन्हें पढ़ने वालों में से कौन कितनी मात्रा में अपना रहा है ? किसी की आनाकानी का क्या कारण है ? इन बातों पर ध्यान रखा जाय। भूल करने वालों को प्यार के साथ समझाया और अनुशासन अपनाने के लिए सहमत किया जाय। जो व्यक्तित्व के परिष्कार में रस लेने लगें उन्हें बताया जाय कि इन सत्प्रवृत्तियों को विकसित एवं परिपक्व करने के लिए उन्हें भविष्य में क्या सोचते, क्या पढ़ते, क्या करते रहना चाहिए ?

प्रज्ञापीठों की नैतिक शिक्षा मात्र बौद्धिक नहीं व्यावहारिक होनी चाहिए और उसे छात्रों के व्यक्तित्व में समाविष्ट करने के लिए जो किया जा सकता है उसे प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए।

बाल-विकास केन्द्रों की स्थापना हो

स्कूली पढ़ाई बड़ी आयु में भी चलती रह सकती है। उस क्रम को आजीवन भी चलाया जा सकता है। स्वाध्याय भी एक प्रकार का अध्ययन ही है, जिसे ज्ञान-प्राप्ति में अमोघ माध्यम माना जाता है। शरीर को नित्य आहार की आवश्यकता पड़ती है। उसी प्रकार मस्तिष्क उपयोगी ज्ञान-सम्वर्धन के लिए लालायित रहता है। इस क्षुधा को न बुझा पाने पर चिन्तन क्षेत्र में अनेकानेक विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। वे अनैतिकताओं, मूढ़-मान्यताओं, सनकों, आवेगों आदि मनोविकारों के रूप में उभरती हैं एवं चेतना-तन्त्र पर आक्रमण करके वे उसे खोखला बना देती हैं। भोजन न मिलने पर शरीर दिन-दिन दुर्बल होकर विकृत होता जाता है और मौत के मुँह में जा पड़ता है। इसी प्रकार जीवन की समस्याओं का समाधान करने वाला स्वाध्याय-सत्संग न मिलने पर चेतना तन्त्र जीर्ण-शीर्ण होने लगता है और उसे गई-गुजरी, दीन-दयनीय स्थिति से घिरना पड़ता है। इसलिए साधना, स्वाध्याय, संयम और सत्संग का अवलम्बन करते हुए स्वयं ही आगे बढ़ना और ऊँचे उठना पड़ता है।

पर यह स्थिति बचपन में नहीं रहती। उसमें अभिभावकों की सहायता अपेक्षित होती है। बालक अपने निर्वाह के साधन नहीं जुटा सकता और न शिक्षा-व्यवसाय के लिए सफलतापूर्वक एकाकी कदम बढ़ा सकता है। उसे पग-पग पर संरक्षकों की सहायता अपेक्षित होती है। किशोरावस्था और भी अधिक विकट है। उसमें रक्त का उबाल जोश तो भर देता है, पर होश विकसित नहीं होता, जो उपयुक्त सम्पर्क एवं दिशा-दर्शन पर निर्भर है। अभिभावक बालकों के लिए अर्थभार वहन करते हुए सुविधा-साधन जुटाते रहते हैं। अध्यापक स्कूली पाठ्यक्रम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पूरा कराते रहते हैं। नित्य कर्म और अध्ययन के उपरान्त भी बालकों के पास ढेरों समय बच जाता है। इसे वे स्वच्छन्दतापूर्वक बिताते हैं। साथी ढूँढ़ते और उनके साथ रहकर घूमने-फिरने या दूसरे प्रकार से मनोरंजन करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रयास में उन्हें प्रायः ऐसे साथी मिल जाते हैं, जो आवारागर्दी में फिरते और दुर्व्यसनों में फँसे होते हैं। वे ही प्रायः साथी तलाशते और अपने जाल-जंजाल में फँसाते रहते हैं। यदि इस कुचक्र से बालकों को न बचाया जा सका तो वे पढ़ाई में पिछड़ जाते हैं, स्वेच्छाचार अपनाते और साथियों जैसे दुर्व्यसनों में जा फँसते हैं। बचपन से लेकर किशोरावस्था के अन्त तक का समय ऐसा होता है, जिसमें अत्यधिक साज-सँभाल की आवश्यकता पड़ती है। यदि उसे स्वच्छन्द छोड़ दिया जाय, तो उच्छृंखलता के साथ जुड़ी हुई अनेकानेक दुष्प्रवृत्तियाँ भड़क सकती हैं और उस अनगढ़ का ही नहीं, सम्बद्ध लोगों का भी भविष्य अन्धकारमय बन सकता है। वे अनेकों उलझनों में उलझ सकते हैं।

प्राचीनकाल में गुरुकुल प्रणाली की शिक्षा-पद्धति थी। बच्चे उनमें पढ़ने के साथ-साथ सुनियन्त्रित वातावरण के शिकंजे में भी कसे रहते थे। उनकी समूची दिनचर्या ऐसे शिकंजे में कसी रहती थी, जिसमें मनोविनोद के साथ जुड़ा रचनात्मक क्रिया-कलाप भी मिला रहता था। किशोरावस्था का खतरनाक समय इसी प्रकार बीत जाता था और जीवन विज्ञान के हर पक्ष को समझ लेने के पश्चात् युवावस्था के आरम्भ में वे घर लौटते थे और गृहस्थ जीवन की अनेकानेक जिम्मेदारियों में जुट जाते थे। अवांछनीयता अपनाने के लिए कहीं कोई गुंजाइश ही नहीं रहती थी, पर अब तो वह प्रणाली उठा ली गयी है। जहाँ-तहाँ उस परिपाटी के खण्डहर भर आकर्षक साइनबोर्डों से सजे दीखते हैं। विद्यालयों के साथ जुड़े हुए बोर्डिंगों में निवास, भोजन जैसी सुविधाएँ तो हैं, पर ऐसा नियन्त्रण, वातावरण, मार्गदर्शन नहीं है, जो वहाँ रहने वाले छात्रों को उत्कृष्टता के ढाँचे में ढाल सके।

यह आवश्यक व्यवस्था आज की परिस्थिति में कैसे बने ? निर्धन लोग भी उसका लाभ लेने में कैसे समर्थ हों ? इसका एक ही उपाय है कि हर जगह बाल-विकास केन्द्र स्थापित किए जाएँ। नित्य-कर्म, भोजन-शयन, स्कूली पाठ्यक्रम के अतिरिक्त जो समय बचे उसे इसी केन्द्र में रहते हुए बिताने का प्रचलन किया जाय।

बाल-विकास केन्द्रों का प्रथम कार्य ही स्कूली पढ़ाई को परिपक्व बनाना है। आज शिकायत है कि अध्यापक लोग अपने पौन-पौन घण्टे के लेक्चरों में जो बताते-सुनाते हैं, उसे लड़के गम्भीरता से नहीं लेते। उस पर ध्यान नहीं देते। ज्यों-त्यों करके निर्धारित घण्टे काटते हैं। अध्यापक भी उतनी तन्मयता और गम्भीरता के साथ नहीं पढ़ाते हैं, जो विद्यार्थी के मस्तिष्क में कील की तरह बैठती चली जाय। ऐसी दशा में पढ़ने-पढ़ाने की चिह्न-पूजा चलती रहती है। उतने भर से ठीक तरह उत्तीर्ण होना और डिवीजन लाना कठिन पड़ता है। जिनके लिए ट्यूशन का प्रबन्ध हो जाता है, उन्हीं की नाव पार लगती है अन्यथा वह मँझधार में डूबती है। ट्यूशन की दरें भी बहुत महँगी हो गयी हैं। उनका भार उठा सकना धनी परिवारों के लिए ही सम्भव होता है। गरीबों के लिए ऐसा प्रबन्ध कर पाना असम्भव जैसा है। इन्हीं बिडम्बनाओं में फँसे हुए छात्र अधिकतर विद्रोही बनते हैं। नकल करने के लिए निरीक्षक-परीक्षकों को डराते-धमकाते हैं या प्रलोभन का प्रबन्ध करते हैं।

इस स्थिति से बचने-बचाने का सरल उपाय यही है कि बाल-विकास केन्द्र हर कक्षा के छात्रों के लिए ट्यूशन स्तर की पढ़ाई का निःशुल्क प्रबन्ध करें। केन्द्र के खुलने का समय वह रखें जो स्कूली पढ़ाई एवं शरीर व्यवस्था के अतिरिक्त बचता है। गर्मी-सर्दियों में स्कूलों के समय अदलते-बदलते रहते हैं। उसी आधार पर इन केन्द्रों का समय भी बदल दिया जाया करे। निःशुल्क ट्यूशन का लाभ प्राप्त करने के लिए हर समझदार विद्यार्थी और विवेकशील अभिभावक उस व्यवस्था से लाभान्वित होने का कष्ट करेंगे। छात्रों की संख्या सहज ही पर्याप्त हो जायेगी। स्कूल से घर पर करने के लिए भी कुछ काम मिलता है, उसे भी केन्द्र में बैठकर अध्यापकों की सहायता से अच्छी तरह पूरा किया जा सकता है। विषयों के मूल सिद्धान्तों को अधिक अच्छी तरह समझा और हृदयंगम किया जा सकता है। बचपन में इस प्रकार की दुहरी शिक्षा व्यवस्था बन पड़ने से सम्मिलित छात्रों की मेधा-प्रखरता विकसित होना स्वाभाविक है। इस कमाई के आधार पर भविष्य की उच्च शिक्षा के लिए नींव पक्की हो जाती है। प्रतिस्पर्द्धाओं में सफलता प्राप्त करने के लिए यह आरम्भिक तैयारी बहुत कम आती है। इस आधार पर मिली सफलताओं से बालक का भविष्य उज्ज्वल बनता है। उन्हें महत्त्वपूर्ण प्रगति कर सकने, सम्मानप्रद स्थान मिलने में उत्साहवर्द्धक सफलता मिलती है।

प्रान्तों में पढ़ाई का वर्ष भिन्न-भिन्न तरीकों से आरम्भ होता है। कहीं जनवरी, से कहीं मार्च से तो कहीं जुलाई से। उसी आधार पर बाल-विकास केन्द्रों का प्रवेश भी उचित होगा।

जहाँ-जहाँ यह पुनीत कार्य आरम्भ किया जा रहा है, वहाँ चाहिए कि परीक्षा तिथि आने से पूर्व ही वर्ष की पूरी पढ़ाई का सर्वेक्षण करें और देखें कि बच्चे की कच्चाई, कमजोरी कहाँ है ? और उसे किस प्रकार पूरा किया जा सकता है ? जो हो, प्रथम ध्यान इस बात पर दिया जाय कि निर्धारित पाठ्यक्रम को अधिक-से-अधिक परिपक्व किया जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

नैतिक शिक्षा सम्बन्धी कुछ स्वतन्त्र पुस्तकें प्रकाशित होने जा रही हैं। उनमें नीति, सदाचार, शिष्टाचार आदि सभी बातों का समावेश होगा और समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, बहादुरी के सभी तत्त्वों का समावेश रहेगा। साथ ही स्वास्थ्य-संरक्षण के लिए आवश्यक जानकारियाँ तथा खेल, व्यायाम आदि का प्रशिक्षण भी रहेगा। साथ ही समाज सेवा के सन्दर्भ में भी बहुत-सी बातों की अति महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ दी जायेंगी।

किन्तु अभी तो कार्यक्रम का आरम्भ भर हुआ है। उसे अच्छी तरह समझना चाहिए और उसी के अनुरूप आद्योपान्त सभी विषयों की पुनरावृत्ति इस प्रकार कराई जानी चाहिए कि जिसमें जो कच्चाई हो, उसे पूरी कराया जा सके।

नैतिक शिक्षा का पाठ्यक्रम कक्षाओं के अनुरूप बन रहा है। आयु का हिसाब भी उसमें जोड़कर रखा गया है और वातावरण का भी। पर वे पुस्तकें इतनी जल्दी तैयार न हो सकेंगी। इसलिए इतना ही पर्याप्त है कि इस कार्यक्रम में सम्मिलित होने वाला छात्र, चाहे वह किसी कक्षा का क्यों न हो, उसे परिस्थितियों के अनुरूप सफाई, शिष्टाचार, मृदुभाषण जैसे सद्गुणों का विशेष रूप से अभ्यास कराया जाय। श्रमशीलता, मितव्ययिता, सहकारिता, शिष्टता जैसे सद्गुणों के परिणामों से अवगत कराया जाय और यह तथ्य हृदयंगम करने दिया जाय कि नीति-निष्ठा, सज्जनता, की व्याख्या प्राचीन पुस्तकों में भले ही किसी प्रकार की गयी हो, किन्तु आज की परिस्थितियों में समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, बहादुरी के चार गुण ऐसे हैं, जिन्हें अपना लिया जाय, तो व्यक्तित्व को समग्र रूप से विकसित हुआ कहा जा सकता है। इन चारों सद्गुणों के जो दूरगामी परिणाम हो सकते हैं, उन सबको ऐतिहासिक घटनाओं, संस्मरणों के आधार पर समझाया जाय।

इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी बात यह है कि छात्रों को सेवाधर्म की प्रक्रियाओं और उपलब्धियों को भी उदाहरणों सहित इस प्रकार बताया जाय, जिसे वे न केवल समझें, वरन् उन्हें व्यावहारिक जीवन में किसी-न-किसी प्रकार कार्यान्वित भी करते रहें। सेवाविहीन अनुदार, स्वार्थी, निष्ठुर जीवन एक प्रकार से पशु जीवन है। मानवी गरिमा के साथ वह तथ्य जुड़ा हुआ है कि पवित्रता और प्रखरता को, प्रामाणिकता और सेवा-भावना को वह चरितार्थ करता रहे।

इन विषयों की आवश्यक विवेचना प्रज्ञा साहित्य से पढ़कर समझी जा सकती है और बाल संस्कारशालाओं (बाल-विकास-केन्द्रों) के शिक्षार्थियों को मौखिक रूप से हृदयंगम कराई जा सकती है।

इस प्रकार बाल-विकास केन्द्र की स्थापना, सम्मिलित होने वाले छात्रों का हर दृष्टि से भविष्य उज्ज्वल बनाती है। उन्हें कुसंग में बर्बादी मोल लेने की गुंजाइश नहीं छोड़ती।

विकास केन्द्र के खुलने का आधा समय स्कूली पढ़ाई की पूर्ति के लिए सुरक्षित रखा जाय। शेष आधे को भिन्न प्रकार के विनोद, खेलकूद में लगाने के लिए सुरक्षित रखा जाय। इस मनोरंजन में भी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ जुड़ी रहें। विनोबा के शब्दों में बागवानी अपने ढंग का सर्वोत्तम व्यायाम है। उसमें शारीरिक श्रम, मानसिक मनोयोग का समान रूप से उपयोग होता है। साथ ही रचनात्मक प्रकृति विकसित करने का अतिरिक्त लाभ मिलता है। बागवानी से, शाकवाटिका से, पुष्पोद्यान से कुछ आर्थिक लाभ भी होता है। वह भले ही छात्र को व्यक्तिगत रूप से मिले या केन्द्र को सामूहिक प्रवृत्तियों को बढ़ाने के लिए काम आये।

खेल-कूदों से शारीरिक और मानसिक स्तर का व्यायाम होता है और दोनों क्षेत्रों को परिपुष्ट होने का अवसर भी मिलता है। स्काउटिंग स्तर की प्रवृत्तियाँ साथ में जोड़ देने, फर्स्टएड जैसी कुशलताओं का समावेश रखने से मनोरंजन तो होता ही है, साथ ही सहकारिता उभरती है। पारस्परिक सहयोग की भावना बढ़ती है। मिल-जुलकर काम करने में उत्साहवर्द्धक लाभ का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। फौजी कवायद स्तर की ट्रेनिंग स्वभाव में अनुशासन की स्थापना करती है जो अनुशासन का महत्त्व समझेगा, वही व्यवस्थित दिनचर्या बनाकर उसका परिपालन करेगा। उसे उच्छृंखलता अपनाकर प्रामाणिकता गँवा बैठने के खतरे की भी जानकारी रहेगी, फलतः वह उस दुर्गति से सावधान रहेगा और बचेगा।

यही समय है कि जिसमें हँसते-हँसाते जीवन-विज्ञान के तथ्यों और सिद्धान्तों को भी कुशल अध्यापक अपने शिक्षार्थियों को अवगत-अभ्यस्त करा सकते हैं। धर्मोपदेशकों की तरह नीति शिक्षा देने में कइयों को अनख भी लगता है और उसे सुनने में अपना अपमान जैसा होता लगने लगता है। अहंकारिता के इस दौर में सभी अपने को सर्वथा पूर्ण समझते हैं। दूसरों के द्वारा दिये गये दार्शनिक उपदेशों को सुन लिया जाय तो भी पीछे व्यंग्य, उपहास का दौर चल पड़ता है। अस्तु, समय को समझते हुए आदर्शवादी शिक्षण सीधे न देकर प्रकारान्तर से ही देने चाहिए।

सुसंस्कारी परिवारों में अभी भी रात होते बच्चों को कथा-कहानियाँ सुनाते हैं और बड़े भी उसमें रस लेते हैं, भले ही वे बच्चों के साथ न बैठकर अन्य कामों में लगे रहें, पर ध्यान उनका कही जा रही कहानियों की ओर ही रहता है। यह परोक्ष धर्मोपदेश की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं मनोरंजनपरक हृदयग्राही पद्धति है। इसी आधार पर प्रज्ञा-पुराण की कथाएँ भी लाखों परिवारों में कही-सुनी जाती हैं। वे बोये गये उत्कृष्टता के बीज समयानुसार श्रवणकर्त्ताओं के चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में उभरते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस आधार पर सुसंस्कारिता पनपाने का उद्देश्य जितनी सरलतापूर्वक पूरा होता है उतना और किसी प्रकार नहीं। प्राचीनकाल में कथा-पुराणों का कथन श्रवण एक धर्मकृत्य माना जाता था और उतने भर से पुण्य लाभ मिलने का माहात्म्य बताया जाता था। अब उसे नीतिशास्त्र, मनोविज्ञान एवं विनोद का सम्मिलित स्वरूप समझा जा सकता है। बाल-विकास केन्द्र के संचालक इस पद्धति को भी अपनायें और उपस्थिति छात्रों में शिष्टता, सज्जनता, नागरिकता, समाज शिक्षा जैसी सत्प्रवृत्तियाँ पनपायें। यदि यह प्रक्रिया जड़ पकड़ ले और सुविस्तृत हो चले तो यह भी हो सकता है कि इस समग्र शिक्षा को संजीवनी विद्या का नाम दिया जाय और उसकी परीक्षाएँ लेने, प्रमाण-पत्र देने का क्रम अपनाकर उत्साहवर्द्धक का एक नया स्रोत खोला जाय।

बाल-विकास केन्द्रों (बाल-संस्कारशालाओं) की स्थापना की वही कार्य-पद्धति है जो प्रौढ़ पाठशालाएँ स्थापित करने के लिए अपनायी जाती है। अध्यापकों की आवश्यकता उदारचेता शिक्षितों से विद्या ऋण चुकाने के लिए समय-दान माँगकर पूरी की जानी चाहिए। अनेक धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक प्रवृत्तियाँ चन्दा माँगकर सम्पन्न की जाती हैं। शिक्षा-सम्वर्धन आन्दोलनों को अग्रगामी बनाने के लिए यों धन की आवश्यकता भी किसी न किसी रूप में रहेगी ही, पर अधिक आग्रह शिक्षितों से समयदान का किया जाना चाहिए। स्थान की आवश्यकता भी माँगकर पूरी की जा सकती है। हर स्थान पर ऐसे नर-नारी मिल सकते हैं, जिन्हें निजी काम करने के उपरान्त भी खाली समय रहता है। यदि वे उसे आलस्य-प्रमाद में, विनोद-व्यसन में खर्च न करके बाल-विकास केन्द्र जैसे उच्चकोटि के परामर्श में लगाने लगें, तो जहाँ योजना का सर्वोपरि पक्ष पूरा होगा, वहाँ समयदानी भी सच्चे श्रेय का अधिकारी बनेगा।

रिटायर्ड शिक्षितों के लिए अपने खाली समय का सर्वश्रेष्ठ उपयोग यही है कि मिल-जुलकर इस प्रकार का संगठन बनावें कि हर बच्चों तथा किशोरों के खाली समय की जरा भी बर्बादी न होने पाये। वे इस प्रशिक्षण को एक प्रकार से मनोरंजन क्लब समझने लगें। सभी उसमें स्वेच्छापूर्वक उत्साह के साथ आने लगें तो समय के सदुपयोग के साथ-साथ वह परमार्थ भी सध जाता है। समय ऐसा ईश्वरीय वरदान है कि यदि उसे सत्प्रयोजनों में लगाया जाय तो पारस पत्थर का काम देता है और मनुष्य को विचारशील, सद्गुणी एवं प्रगतिशील बना देता है। ऐसे ही लोग संसार में महत्त्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त कर सकते हैं। इसके ठीक विपरीत जिन्होंने अपना समय आवारागर्दी में, कुसंग में, अनुपयुक्त वातावरण में रहकर बिताया, समझना चाहिए, उन्होंने अपने व्यक्तित्व को पतन के गर्त में गिरा दिया और भविष्य को अन्धकारमय बना लिया। इसलिए सेवा-धर्म में जिन्हें अभिरुचि है, उन्हें व्यक्तित्व को सुयोग्य बनाने के कार्य को ही अपने हाथ में लेना चाहिए। दीन-दुःखियों की सेवा करना भी एक काम है पर उसे साधन-सम्पन्न लोग ही कर सकते हैं। बालकों के लिए तो इतना ही संकेत है कि वे अपने को उत्कृष्ट स्तर का बनायें, जिससे जो भी अपने सम्पर्क में आये वह सद्गुणी और प्रगतिशील बने। ऐसा वे तभी कर सकते हैं जब उनका निज का चिन्तन, चरित्र और व्यवहार उच्चकोटि का हो।

यह शिक्षाएँ स्कूलों में नहीं हैं। उन्हें पढ़ने और पढ़ाने का प्रबन्ध हमें अलग से करना चाहिए। इस कार्य में कई ओर से प्रयत्न किये जाने की आवश्यकता है। अभिभावकों को चाहिए कि वे अपने बालकों को और किशोरों को बाल-संस्कारशाला में भर्ती कराने के लिए सिखावन दें और जोर डालें। इसी प्रकार विचारशील लोगों को चाहिए कि वे बालकों की मीटिंग करके या उनसे अलग-अलग सम्पर्क साधकर यह प्रयत्न करें कि वे इस प्रशिक्षण में सम्मिलित होकर मनोरंजन के साथ-साथ सत्प्रवृत्तियाँ उभारने का दुहरा लाभ प्राप्त करें। इस पढ़ाई की महत्ता पूरा जोर देकर उसके लाभ बताते हुए समझानी चाहिए ताकि विद्यार्थी उसे अपने लिए एक बन्धन न मानें वरन् उत्साहपूर्वक इसके लिए तैयार हों। तीसरा पक्ष अध्यापकों का है। रिटायर स्तर के लोग तो ठाली रहते ही हैं। वे बाल-कल्याण में संलग्न होकर अपना मनोरंजन और समयक्षेप तो कर ही सकते हैं साथ ही बाल-निर्माण से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण परमार्थ कार्य भी करते रह सकते हैं। दूसरे, उनकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी और प्रशंसा होगी।

जहाँ बूढ़े लोग इसके लिए पूरे उत्साहपूर्वक तैयार न हों, वहाँ युवक एवं प्रौढ़ भी इस कार्य के लिए समयदान देते रह सकते हैं, काम-धन्धे से तो अधिकांश लोग दिन छिपने से पहले ही निवृत्त हो जाते हैं। इसके बाद समय खाली ही रहता है। देखा गया है कि उसे अधिकांश व्यक्ति, ताश, शतरंज, टी. वी. रेडियो आदि की अनावश्यक बातों में गँवा देते हैं। उस समय में कटौती करके यदि बाल-प्रशिक्षण में लगाना शुरू कर दें तो उससे सुयोग्य नागरिक बनाने का एक महत्त्वपूर्ण कार्य वे करते रह सकते हैं।

जीवन में सेवा के लिए भी कुछ स्थान होना चाहिए। लोभ, मोह, अहंकार में सोते-जागते सारा समय लोग लगा देते हैं और वे यह भूल जाते हैं कि मानवता के प्रति, राष्ट्र के प्रति कुछ काम भी हमारे हैं। उन जिम्मेदारियों से इन्कार करना एक प्रकार से अपने धर्म कर्त्तव्य से इन्कार करना ही है। समाज तभी उठ सकता है जब सब व्यक्ति दूसरों को उठाने का प्रयत्न करें। इसमें बड़ों का कर्त्तव्य छोटों के लिए अधिक बैठता है। युवक एवं किशोर छोटे बच्चों को सुयोग्य, सद्गुणी बनावें। युवक और प्रौढ़, किशोरों की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लें। बूढ़े प्रौढ़ों को कर्त्तव्यों का उद्बोधन करायें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और उनका व्यक्तित्व ऊँचा उठायें तो समझना चाहिए कि एक बहुत बड़ा काम चल पड़ा। जो कार्य लाखों-करोड़ों रुपया खर्च करके भी देश की इतनी भलाई का काम नहीं हो सकता, जितना कि बाल-संस्कारशाला की योजना बनाने और उसे उत्साहपूर्वक चलाने से हो सकता है।

उपरोक्त कामों में ही एक काम पौधे लगाने का है। अपने घरों में घरेलू शाक-वाटिका लगाने का शौक बालकों को लगा दिया जाय तो जहाँ उनका ज्ञान, उत्साह बढ़ेगा वहाँ वे घरभर के लिए शाकभाजी उगाकर अपनी योग्यता एवं विशेषता का परिचय भी दे सकते हैं।

हर ऋतु में कोई न कोई शाक-भाजी उगायी जा सकती है। उसके बीज भी बाजार में अथवा नर्सरियों में मिल सकते हैं। जिनके पास थोड़ी भी खाली जगह है, वे उतनी में ही मेहनत करके अपने सारे घर के लिए साग उगा सकते हैं। वे आँगन में छप्परों पर और छतों पर भी बोई-उगाई जा सकती हैं। थोड़े उत्साह की, दिलचस्पी की, मेहनत की आवश्यकता पड़ती है। बालकों में इस कार्य के सहारे उन गुणों का बीजारोपण एवं अभिवर्द्धन किया जा सकता है। यह कार्य अभिभावक बच्चों को साथ लेकर करा सकते हैं। संस्कारशाला के अध्यापक बच्चों के घरों में जाकर उपयुक्त मार्गदर्शन कर सकते हैं। यह एक ऐसा घरेलू उद्योग है, जिसमें कोई बड़ी पूँजी नहीं लगानी पड़ती। यदि जमीन न हो तो गमले, टूटे घड़े, पुरानी पेटियाँ आदि इसमें काम आ सकती हैं। साप्ताहिक छुट्टी के दिन अथवा त्योहारों की छुट्टी में बच्चे खाली रहते हैं। उस दिन के लिए इस प्रकार के काम सुरक्षित रखे जा सकते हैं तथा उनके दैनिक कार्य निर्धारण में भी। बच्चों को नए कामों में उत्साह भी होता है। फिर जब उन्हें यह प्रतीत होगा कि उन्होंने परिश्रम से कुछ कमाया भी और उसका लाभ घर के दूसरे लोगों को मिला तो उन्हें और भी अधिक प्रसन्नता होती है। मनोबल और कौशल बढ़ाने के लाभ ऐसे हैं, शाक-सब्जी की कीमत की तुलना में जिनका दूरगामी प्रतिफल और भी अधिक है।

इस प्रकार यदि विद्यालय पुराना हो जाय और लड़के कुछ क्रिया-कुशल दीखने लगें तो टूट-फूट की मरम्मत के कितने ही काम ऐसे हैं, जो सप्ताह में एक या दो दिन अतिरिक्त रूप से सिखाये जा सकते हैं। घर की लालटेन, स्टोव, बक्से, ताले, कुन्दे जैसी छोटी-मोटी चीजें घर में टूटती-फूटती हैं। मरम्मत के लिए दुकानें ढूँढ़ते फिरने की अपेक्षा अक्सर उन्हें लोग फेंक देते हैं और नयी खरीद लेते हैं। यदि टूट-फूट की मरम्मत का अभ्यास हो तो अपने घरों की वस्तुएँ लड़के विद्यालय में ठीक करा ने जा सकते हैं। पुरानी चीज नयी हो जाती है, अपने को नये कौशल सीखने को मिलते हैं। साथ ही इस मरम्मत को होते देखकर साथी बच्चों को अभ्यास भी हो जाता है कि वे घर में ऐसे अवसर आने पर उनकी मरम्मत कैसे कर सकते हैं, कीमती कपड़ों को कभी-कभी कीड़े खा जाते हैं और उनमें छेद करके बेकार कर देते हैं। यदि रफू करने का अभ्यास सीख लिया जाय तो कीमती कपड़े नये सिरे से ठीक कराये जा सकते हैं। इस प्रकार के निर्माण कार्यों से मात्र पैसे की बचत ही नहीं होती, व्यक्तिगत कुशलता, हाथ का अभ्यास और दिमाग का स्तर बढ़ता है। ज्ञान मात्र पुस्तकों से ही नहीं बढ़ता। हस्तकला से भी जो कुशलता प्राप्त होती है, वह अपने स्तर की एक विशेषता लिए हुए होती है। उसे पुस्तकीय ज्ञान से कम महत्त्व का नहीं समझा जा सकता। बाल-संस्कारशाला में जहाँ घर की पढ़ाई को परिपक्व कराया जाय, खेल-कूद व्यायाम से उनका स्वास्थ्य सुधारा जाय वहाँ यदि अवसर मिलता हो तो ऐसे हस्तकौशल भी सीखने का प्रबन्ध करना चाहिए, जो पैसे ही नहीं बचायें वरन् प्रतिभा-कुशलता भी बढ़ाएँ।

इतने प्रकार के मनोरंजन कार्य करते रहने से बच्चों का सर्वतोमुखी विकास होता है। अपने यहाँ यही एक बड़ी कमी है कि पुस्तकों के सहारे सामान्य ज्ञान की जानकारी तो बता दी जाती है किन्तु वह शिक्षण नहीं दिया जाता, जिससे व्यक्ति हस्त-कौशल में शिल्प में प्रवीणता बढ़ा सके और मस्तिष्क की बहुमुखी विशेषताओं में से अन्यान्यों को भी समुन्नत बनाने में सहायक सिद्ध हो सके। इस कमी की पूर्ति हम बाल-संस्कारशालाओं के माध्यम से कर सकते हैं।

दूसरों की चीजें या मेहनत का लाभ खुद उठाने की अनुचित प्रक्रिया एक प्रकार की चोरी है। यह दुर्गुण किसी भी बच्चे में पैदा नहीं होने देना चाहिए। बच्चों को अपने-पराये का भान नहीं होता। सो जिस वस्तु को भी ललचाने वाली देखते हैं, उसे लेने का प्रयत्न करते हैं। खरीदने को पैसे नहीं होते, माँगने पर मिलने की आशा नहीं होती तो वे उसे चुराने लगते हैं। छोटे बच्चों में यह दोष अकारण आरम्भ हो जाता है। आदत पड़ने पर पेंसिल कापी आदि वस्तुएँ साथियों की चुराने लगते हैं। खाने-पीने की कोई मिठाई जैसी वस्तु घर आई हो और बाँटने पर दूसरे भाई-बहिन के हिस्से की अलग रखी होती है तो मौका पाकर उसमें से चुरा लेते हैं। इस आयु में उन्हें नैतिकता-अनैतिकता का ज्ञान नहीं होता। यह भूल उन्हें छोटी उम्र में ही समझा देनी चाहिए कि दूसरों के हक या अधिकार की वस्तु को प्राप्त करने की कोशिश नहीं की जानी चाहिए। माँगने में अपनी मान-हानि होती है, भिखारी स्तर का समझा जाता है और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बिना पूछे ले लेना चोरी है। चोरी अपराध है। समाज में चोर का अपमान भी होता है और उसे दण्ड भी मिलता है। इसलिए जिस चीज के लिए मन चले उसी को प्राप्त करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। अपना मन रोकना चाहिए। यदि वस्तु जरूरी है तो माँ या पिताजी से आग्रह करके उसे खरीदने या प्राप्त करने का अनुरोध करना चाहिए। यह लत पड़ जाने पर मनुष्य बड़ा होकर बड़ी चोरी करने लगता है और अपना विश्वास खो बैठता है। दण्ड भी पाता है। उस पर से विश्वास उठ जाता है। इतना सतत् समझाए जाने पर क्रमशः सुसंस्कार जमने लगते हैं।

इसी प्रकार बचपन में दूसरा दोष झूठ बोलने का पड़ने लगता है। कोई गलत काम करने पर उसका दण्ड मिलने के भय से झूठ बोलते हैं। बच्चों को आरम्भ से ही शिक्षा देनी चाहिए कि वे परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लोभ से किसी की नकल न करें और किसी की फुसलाहट में आकर अपनी शेखी न बघारें। अक्सर छोटे बच्चों में चोरी और झूठ की आदत पड़ जाती है। इन दोनों के कारण कितना अपमान होता है, कितना विश्वास उठ जाता है और कितना दण्ड मिलता है, यह बातें सभी को समझा देनी चाहिए। कोई बच्चा गलती कर बैठा हो तो वस्तु को वापस करने और गलती के लिए माफी माँगने का दण्ड पता चलते ही दे देना चाहिए ताकि वह भविष्य में वैसा न करे। बड़े होने पर दूसरी बुरी आदतें भी पड़ती हैं। गलत बहाना बनाकर या चोरी करके घर से पैसे ले जाते हैं और उन्हें बेकार कामों में खर्च कर देते हैं। कभी-कभी गन्दे लड़कों की देखा-देखी गाली-गलौज देने की आदत सीख जाते हैं। इन कुटेवों का पता चलने पर उन्हें प्यारपूर्वक यह समझाना चाहिए कि यह आदतें बढ़ जाने पर मनुष्य का कितना तिरस्कार करती हैं और लोगों की दृष्टि में घृणास्पद बनाती हैं।

यह बातें किस्से-कहानियों के माध्यम से भी समझाई जा सकती हैं कि किन बुराइयों के बदले पछताना पड़ता है और किस प्रकार व्यक्ति का मान और विश्वास गिर जाता है। बड़ों का बचपन जैसी पुस्तकें बार-बार पढ़ानी व सुनानी चाहिए ताकि वे समझ सकें कि बड़े होने पर महानता प्राप्त करने के लिए छोटेपन से ही अच्छी आदतों का अभ्यास करना कितना आवश्यक है ?

किशोर लड़कों के चाल-चलन पर और भी कड़ी नजर रखनी चाहिए, क्योंकि वे बुरे लड़कों के कुसंग में और भी कितनी तरह की बुराइयाँ सीख लेते हैं और बुद्धि का विकास होने से वे ऐसी चतुरता बरतते हैं कि गलती पकड़ में न आवे। उन्हें विशेष रूप से कुसंग से बचाना चाहिए और सम्पर्क ऐसे लोगों के साथ रखने का प्रोत्साहन देना चाहिए जिनके साथ रहकर सभ्य व्यवहार, सद्गुण, सभ्यता, सुसंस्कारिता की आदतें सीखें।

स्कूल में हर समय बँधे नहीं रह सकते। घर आने पर इतनी कड़ी नजर रखी नहीं जा सकती कि वे किन्हीं अनगढ़ कामों में तो नहीं लग रहे। खेल-कूद से भी रोका नहीं जा सकता। पेड़ों पर चढ़ना, गुल्ली-डण्डा खेलना आदि वैसे ही ऐसे काम हो सकते हैं, जिससे आँख आदि को कोई बड़ी चोट लग जाने का भय हो। ऐसी दशा में यही उपाय सर्वोत्तम रहता है कि बाल-संस्कारशाला का प्रबन्ध अपने या दूसरों के बच्चों का हित-साधन करने की दृष्टि से प्रबन्ध किया जाय। इसमें बच्चों का हित तो है, ही जिनके पास फालतू समय है वे ऐसे रचनात्मक कामों में अपना समय लगाकर समाज का हित भी कर सकते हैं और अपने आप को परामर्श कार्यों में लगाये रह सकते हैं।

पुराने समय में यह प्रथा थी कि अपने दैनिक जीवन में सेवा कार्यों के लिए कुछ समय सुरक्षित रखते थे। समयदान को ऊँचे दर्जे का पुण्य मानते थे। इसे मानवी धर्म-कर्त्तव्य का अविच्छिन्न अंग मानते थे। पर अब तो समय की परम्परा ही उल्टी हो गई है। व्यक्ति स्वार्थ में ही चौबीसों घण्टे डूबा रहता है। परमार्थ की बात तो सोचता ही नहीं। इस प्रचलन को उलटने की आवश्यकता है।

आधी आयु पर गृहस्थी के लिए आधी आयु परमार्थ के लिए लगाने की नीति वानप्रस्थ परम्परा कहलाती थी और उसे सभी लोग निष्ठापूर्वक पालन करते थे। अब फिर उस देव संस्कृति से सम्बन्धित प्रथा को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। जिनमें कर्त्तव्य-धर्म की भावना है, उन्हें सबसे सरल विधि बाल-संस्कारशाला चलाने की अपनानी चाहिए। हर गाँव पीछे एक शाला एक प्रकार की तो होनी ही चाहिए। कई लोकसेवी हों और बच्चे अधिक हों तो उसकी कई शाखाएँ बना लेनी चाहिए ताकि अधिक बच्चों को पढ़ाने के लिए अधिक अध्यापकों की आवश्यकता पूरी हो सके।

जहाँ सुविधा हो वहाँ तीन वर्ष के बच्चों में भी यह पाठशालाएँ कक्षाओं के हिसाब से आरम्भ की जा सकती हैं, क्योंकि घरों का वातावरण ऐसा नहीं रहा जिससे छोटे बच्चे भी सुसंस्कार सीख सकें। घर में घिरे रहने पर कुछ न कुछ उपद्रव करते रहते हैं। उनके लिए किण्डर गार्डन, शिशु शिक्षण की छोटी पाठशाला बनाई जा सकती है। इससे बच्चे घरेलू कुसंस्कारों से बचेंगे और अभिभावकों को हर समय उनकी चौकीदारी न करनी पड़ेगी। साथ ही कुछ न कुछ बुद्धिवर्द्धक सुसंस्कारिता की शिक्षा भी प्राप्त करेंगे।

बाल-संस्कारशालाएँ आजकी महती आवश्यकता है। इसके लिए ऐसे सेवा भावी सुशिक्षितों की आवश्यकता है जो अपना बहुमूल्य समय इस पुनीत कार्य में लगा सकें। सेवाभावी न मिलें तो ऐसे लोग ढूँढ़ने चाहिए जो थोड़ा पारिश्रमिक लेकर इस पुनीत कार्य में लग सकें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

मात्र सरकारी स्कूलों के सहारे यह महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न नहीं कराये जा सकते, क्योंकि वहाँ किसी प्रकार पाठ्यक्रम पूरा कराने की ही बात सिर पर सवार रहती हौ संस्कारों का वे महत्त्व ही नहीं समझते। ऐसे अध्यापकों की आवश्यकता तभी पूरी हो सकती थी जब प्राचीन काल जैसी गुरुकुल पद्धति का प्रचलन रहा होता। अब इस पद्धति के अभाव की पूर्ति हमें बाल-संस्कारशालाएँ जनस्तर पर विनिर्मित करके ही पूरी करनी चाहिए।

प्रज्ञासंस्थान कोई भी ऐसा न रहे, जहाँ ऐसी पाठशालाएँ न चलती हों। हर शाखा स्वाध्याय-मण्डल में ऐसी संस्कारशालाएँ चल पड़नी चाहिए।

बाल-विकास हेतु परिवारों की महती भूमिका

मनुष्य जन्म से कोरे कागज की तरह उत्पन्न होता है। सम्बद्ध परिकर से ही वह प्रभाव ग्रहण करता और आयु के साथ-साथ तदनुरूप ढाँचे में ढलता है। बालक उसी मातृभाषा को अपनाते हैं, जो उनके घर-परिवार में बोली जाती है। आहार-विहार में अभिरुचि भी तदनुरूप ही विनिर्मित होती है। सोचने का स्तर और स्वभाव आचरण के निर्माण में भी सम्पर्क क्षेत्र की ही प्रधान भूमिका रहती है। अभिभावक और परिवार के सदस्य परस्पर जैसा कुछ बरतते हैं, उसी का अनुकरण बच्चे करते हैं और अपने को अधिकतर उसी ढाँचे में ढाल लेते हैं।

किशोरावस्था में स्कूल के वातावरण का प्रभाव पड़ता है। वहाँ जैसा कुछ अधिकांश साथियों द्वारा आचरण किया जाता है, उसी को उदीयमान छात्र अपनाने लगते हैं। वहाँ बड़प्पन अध्यापकों के साथ रहता है इसलिए उनका स्तर भी छात्रों को प्रभावित किये बिना नहीं रहता। शैशव में मात्र परिवार ही नवोदितों का मार्गदर्शन करता है। थोड़ा बड़ा होने पर किशोरावस्था में प्रायः विद्यालय ही चरित्र निर्माण में सहायक होते हैं।

इससे आगे जन-सम्पर्क बढ़ता है। घटनाएँ प्रभावित करती हैं। पारस्परिक आदान-प्रदान से बहुत कुछ सीखा समझा जाता है। यात्राएँ भी अन्यान्य क्षेत्र में जो चलता है उसका अनुमान कराती हैं। इस स्तर की बौद्धिकता विकसित कर देती है कि अपनी मनमर्जी के प्रभाव को स्वीकार या अस्वीकार किया जाने लगे। इन्हीं सब उतार-चढ़ावों के बीच व्यक्तित्व ढलते हैं और वे अपने तथा दूसरों के लिए उपयोगी अनुपयोगी बनते हैं। स्वाध्याय-सत्संग और मनन-चिन्तन की प्रेरणाएँ भी इस शर्त पर प्रभावित करती हैं कि वे प्रामाणिक हों, तर्कों, तथ्यों, प्रमाणों, उदाहरणों की कसौटी पर खरी उतरती हों। अप्रामाणिक, अवास्तविक और पतनोन्मुख साहित्य और संगति प्रभावित तो करते हैं पर उसका हेय पक्ष सामान्यजनों के पल्ले बँधता है। उत्कृष्टता उत्पन्न करने के लिए प्रामाणिक व्यक्तियों का सान्निध्य, परामर्श, अनुशासन एवं साहित्य ही उच्चस्तरीय प्रेरणाएँ दे सकने में समर्थ होता है।

अतएव व्यक्तित्व के विकास में आदर्शवादी प्रतिभाओं के मार्ग-दर्शन से ही उपयुक्त प्रयोजन की सिद्धि होती है। इसलिए नई पीढ़ी को सुयोग्य, सुसंस्कारी बनाने के लिए आवश्यक है कि उनके लिए उपयुक्त माध्यमों के साथ जुड़ने का प्रबन्ध किया जाये जो अभीष्ट प्रयोजन की पूर्ति में वस्तुतः सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

बात अभिभावकों और परिजनों से प्रारम्भ होती है। उस परिकर में नवोदित प्राणी के सम्मिलित कराने के साथ-साथ उसके उच्चस्तरीय निर्माण का दायित्व भी अनुभव करना चाहिए। इसके लिए मौखिक शिक्षण पर्याप्त नहीं। अपना आचरण, व्यवहार, सम्भाषण ही ऐसा वातावरण बनाते हैं कि उसका उठती आयु वाले अनुकरण कर सकें। साँचे के अनुरूप ही खिलौने ढलते हैं। अभिभावकों की बालकों से घनिष्टता रहती है इसलिए उनके आचरण और चिन्तन का प्रभाव भी विशेष रूप से उन्हीं का पड़ता है। इसके साथ ही संयुक्त परिवार में साथ रहने वाले अन्य व्यक्ति जहाँ आपस में उपयुक्त ताल-मेल बिठाकर घर का वातावरण सराहनीय बनाते हैं, वहाँ नवोदित पीढ़ी को भी कम प्रभावित नहीं करते। इस क्षेत्र में बनावट नहीं चलती। बाहर के लोगों को कुछ का कुछ भी समझाया जा सकता है पर निकटवर्ती लोगों पर भला-बुरा प्रभाव डालने का एक ही तरीका है अपनी गतिविधियों एवं आदतों को इस स्तर का बनाना कि उनका प्रभाव, सम्पर्क क्षेत्र के विशेषतया परिवार के कम आयु वालों पर पड़ सके।

प्राचीनकाल में सतयुगी वातावरण तब बन सका था, जब हर छात्र को ऋषि सान्निध्य-गुरुकुल स्तर की शिक्षा मिलती थी और हर दृष्टि से समर्थ बनाने वाली कष्टसाध्य जीवनचर्या अपनाने की शिक्षा मिलती थी। नवरत्न उन्हीं खदानों में से निकलते थे। अब वह प्रचलन नहीं रहा तो परिवारों पर वह दायित्व आया है कि वे घर का वातावरण ऐसा बनायें, जिसमें समान और छोटी आयु वाले भावी जीवनयापन के लिए उन्मुक्त मार्ग-दर्शन प्राप्त कर सकें। यह एक अनिवार्य आवश्यकता है जिसे अपनाकर वर्तमान परिवार और भावी सन्तान का स्तर एवं भविष्य विनिर्मित किया जा सकता है, जो निजी समस्याएँ हल कर सकते हैं, उन्हीं के लिए यह सम्भव है कि एक कदम आगे बढ़ते हुए समाज समुदाय का हित साधन कर सके। घरों में प्रेरणाप्रद कथा-कहानियाँ नित्य नियमित रूप से कही-सुनी जाती रहें, यह भी आवश्यक है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अच्छा होता स्कूलों का वातावरण भी ऐसा बन सका होता कि उनमें गुरुकुल जैसी प्रक्रिया पूर्णरूपेण न सही आंशिक रूप से तो अपनाई ही जा सकती थी। अध्यापक ऐसे ही होते, जो छात्रों को अपनी सन्तानें मानकर पाठ्यक्रम पूरा कराना भर नहीं वरन् गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से भी उन्हें सुसंस्कृत बनाने की कला में अभ्यस्त होते। अच्छा होता पाठ्यपुस्तकों में ऐसी बातें कम की जातीं जो व्यावहारिक जीवन में कभी भी काम नहीं आतीं। इनके स्थान पर पढ़ाई उन विशेषताओं के अभिवर्द्धन की चर्चा से भरी रहती, जिनके आधार पर पढ़ने वालों को नीतिनिष्ठा और समाजनिष्ठा अपनाने का व्यावहारिक मार्गदर्शन मिलता। स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन और सभ्य समाज की संरचना के लिए जो पाठ्यक्रम नितान्त आवश्यक था, उन्हीं का बाहुल्य पाठ्यपुस्तकों में रहा होता।

प्रस्तुत शिक्षा नीति से एकदम क्रान्तिकारी परिवर्तन होने की सहज सम्भावना बनती दिखाई नहीं पड़ती। गुरुकुल पद्धति के पुनः वापस आने की तरह शिक्षा नीति समग्र व्यक्तित्व विकास पर आधारित हो सकेगी, ऐसा भी कुछ योग फिलहाल है नहीं। ऐसी दशा में परिवारों पर ही उन दोनों आवश्यकताओं को पूरा करने की जिम्मेदारी आती है। वे उसकी उपेक्षा करेंगे तो अनगढ़ पीढ़ियों से समाज को भर देने और वातावरण को विषाक्त बनाने के कलंक से न बच सकेंगे। तब प्रजनन कृत्य प्रसन्नता का बोधक नहीं रहेगा, वरन् मात्र अभिशाप बनकर रहेगा।

परिवारों को संस्कार पाठशालाओं के रूप में विकसित होना चाहिए। भोजन, निवास, विनोद, व्यवस्था, सज्जा आदि के जो उपक्रम घरों में चलते रहते हैं, उन्हीं में काँट-छाँट करके ऐसा ताल-मेल बिठाया जाना चाहिए कि व्यक्तित्व विकास की व्यावहारिक शिक्षा व्यवस्था को उसमें समुचित स्थान मिल सके। घर सराय मात्र न रहे उन्हें ऐसा भी बनना चाहिए कि अपने ही आँगन में स्वर्गीय सम्भावनाएँ किलकारियाँ भरती दीख पड़ें। इसी क्षेत्र में पलने-बढ़ने वाले यह आभास दे सकें कि वे अगले दिन नर-वानर नहीं, देवमानव बनने के स्वप्न साकार कर सकेंगे।

लोकसेवी संस्थाओं को अपने सेवा-कार्यों में इस योजना को प्रमुखता देनी चाहिए कि स्कूली समय में बची हुई अवधि में बाल-संस्कारशाला नियोजित करें। स्कूली पाठ्यक्रम को पक्का कराने के अतिरिक्त ऐसा प्रबन्ध करें कि सम्मिलित होने वाले छात्रों को श्रमशीलता, शिष्टता, सुव्यवस्था, मितव्ययता, सहकारिता जैसे सद्गुणों का बौद्धिक और क्रियात्मक शिक्षण मिलता रहे।

जिनके पास प्रचार साधन हैं, उनका भी विशेष दायित्व बनता है कि वे लोक-शिक्षण के लिए ऐसा आधार खड़ा करें, जिससे लोकरुचि में सद्गुणों के प्रति, आदर्शों के प्रति निष्ठा का अभिवर्द्धन हो। समाचार-पत्र और मासिक पत्रों का तन्त्र इस दिशा में महती भूमिका निभा सकता है।

टेपरिकार्डरों, लाउडस्पीकरों का समन्वय भी विचारशील वक्ताओं और सद्भावनाओं को उभारने वाले गायकों की आवश्यकता पूरी करते हुए लोकसेवियों के लिए अच्छे प्रचार माध्यम बन सकते हैं। आधुनिक समारोह-सम्मेलन आदि भी इस स्तर के आयोजित होते रह सकते हैं, जो उत्कृष्ट व्यक्तित्वों के उत्पादन-अभिवर्धन में अपने स्तर पर उपयुक्त भूमिका निभा सकें।

हर परिवार में एक ऐसा निजी पुस्तकालय होना चाहिए, जिसमें जीवन को समुन्नत, सुसंस्कृत बनाने के लिए अभीष्ट मार्ग-दर्शन विद्यमान हो। जो इस विद्या में स्वयं प्रवीण रहे हों, ऐसे ही लेखकों के प्रतिपादन दूसरों को प्रेरित-प्रभावित करने में सफल होते हैं। नगर के हर मुहल्लों में इस स्तर के पुस्तकालयों की स्थापना और सुविधा रहनी चाहिए।

प्रेम का स्वरूप और विस्तार विवरण

प्रेम को परमेश्वर कहते हैं। परमेश्वर इन्द्रियातीत है, उसे नेत्र आदि इन्द्रियों से या बुद्धि कल्पना से नहीं जाना जा सकता। भाव संवेदनाएँ ही उसे अनुभव में उतारती हैं। प्रेम निकटवर्ती से होता या निकटवर्ती से प्रेम हो जाता है। हम शरीर को प्यार करते हैं। उसे सुखी बनाने के लिए अधिक से अधिक प्रयास और त्याग करते हैं। यहाँ तक कि वासना-विलासिता के लिए पतन पराभव तक स्वीकार कर लेते हैं। नरक, भव-बन्धन, अपयश, दुर्गति तक स्वीकार करते हैं पर अपने प्रेमी को सुखी-सन्तुष्ट बनाने के लिए उचित-अनुचित तक का विचार छोड़कर प्रेयसी काया के इच्छानुवर्ती बनते हैं। प्रेम में प्रेमी के लिए बहुत सब कुछ करना पड़ता है। सेवा-सहायता करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी जाती।

माता और बच्चे के बीच जो वात्सल्य चलता है उसे प्रेम का सांसारिक उदाहरण समझा जा सकता है। बच्चा अनजान होने के कारण अनेक प्रकार की गड़बड़ियाँ ही उत्पन्न करता रहता है, पर माता उस पर क्षोभ किये बिना सब कुछ सहन करती रहती है। अपना लाल लहू सफेद दूध के रूप में परिणत करके बालक को पिलाती है पर प्रतिदान की बात कभी सोचती तक नहीं। कृतज्ञता व्यक्त किये जाने की भी आशा नहीं करती है। उसकी आवश्यकताएँ पूरी करने में कुछ उठा नहीं रखती। दूसरे सभी के बच्चों से अपना बालक कहीं अधिक सुन्दर लगता है। उसे आँखों का तारा समझती रहती है। हँसता देखकर प्रमुदित हो उठती है और उदास देखकर चिन्ता में डूब जाती है। प्रेम तो प्रेम जो ठहरा। उसके साथ अनन्य आत्मीयता घुली रहती है। चिड़िया के घोंसले में से जब बाज झपट्टा मारकर अण्डा या बच्चा उठा ले जाता है, तो चिड़िया उसे छुड़ाने के लिए बाज के पीछे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

दौड़ती और आक्रमण करती है। तब उसे यह भय नहीं होता कि समर्थ बाज उलटकर उसका भी कचूमर निकाल सकता है। चिड़िया का रौद्र रूप देखकर बाज को भी भागते ही बनता है। प्रेम के आवेश में प्रेमी जो भी त्यागकर बैठे कम है। लैला-मजनू, शीरी-फरियाद, हीर-राँझा आदि कथानकों में इसी तथ्य को प्रकट किया गया है कि प्रेम अपने प्रेम पात्र के लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी कर सकता है।

प्रेम की यथार्थता और गहराई इस कसौटी पर कसकर जानी जा सकती है कि प्रेम-पात्र के प्रति कितनी सघन आत्मीयता है ? उसकी सेवा, सहायता तथा प्रगति के लिए कितना सोचा और कितना किया गया ? जहाँ इस प्रकार की भाव-संवेदना का अभाव हो, समझना चाहिए कि वहाँ प्रेम नाम की कोई वस्तु नहीं।

माता बच्चे के प्यार में असलियत होनी चाहिए। भेदभाव का विष उसमें नहीं घुलना चाहिए। लड़की की उपेक्षा और लड़के को दुलारना ऐसे भेदभाव का प्रतीक है, जिससे प्रेम शब्द कलंकित होता है। लड़की को हेटी समझना भौतिकवादी अर्थशास्त्र का प्रतिपादन है। लड़की पराये घर जाती है। साथ में विवाह के साथ कुछ दहेज सौगात भी ले जाती है। इसके विपरीत लड़का दासी जैसी बहू लाता है। कमाई से घर की समृद्धि बढ़ाता है। बुढ़ापे का सहारा बनता है आदि विचारणाएँ ऐसी ही हैं जैसी पशुओं का मोलभाव उनकी उत्पादन शक्ति के आधार पर किया जाता है।

बच्चों के बारे में हमारा दृष्टिकोण मानवीय होना चाहिए। सृष्टि के दोनों घटक गाड़ी के दो पहिये के समान हैं। दोनों के मिलने से ही परिवार बनता है। परिवार की छत्रछाया में उसके सभी सदस्य आश्रय प्राप्त करते हैं। निर्वाह और विकास की प्रक्रिया उसी कल्पवृक्ष उद्यान में बनती है। पुरुष आदि प्रत्यक्ष व्यवसाय चलाता है और रुपयों के रूप में कमाई घर लाता है, तो नारी अपने ढंग से उस संस्थान को सुसम्पन्न करने में कम योगदान नहीं करती। चौबीस घण्टे के नौकर बाजार में कदाचित् ही कभी किसी को मिल पाते हैं। पर गृहिणी उस भूमिका को निभाती है। चौबीस घण्टे की चौकीदारिन बनकर रहती है। दोनों वक्त की रसोई बनाना उसी के जिम्मे रहता है। बीच-बीच में चाय, स्वागत आतिथ्य के लिए उसी को कुछ न कुछ बनाना पड़ता है। कपड़े धोना उसी के जिम्मे रहता है। चौकीदारिन, रसोईदारिन, धोबिन के रूप में उसका बाजार भाव आँका जाय तो वह उतना ही जा पहुँचता है, जितना पुरुष दुकान पर कमाई करके लाता है। इसके अतिरिक्त उसकी वफादारी असंदिग्ध रहती है। विश्वास के आदमी, प्रामाणिक मित्र किसे मिलते हैं ? जिसके हाथ घर की सारी पूँजी सौंपी जा सके। ऐसा सहचर पाकर मनुष्य अनुभव करता है कि उसने कोई दैवी अनुदान प्राप्त कर लिया है। लड़की जिस घर में जाती है, उसमें प्रेम भाव का, संवेदना का झरना बहा देती है। पति को इतने उच्चकोटि की प्रणय संवेदनाएँ मिलती हैं, जिन्हें पाकर वह अपनी अपूर्णता को पूर्णता में विकसित हुआ अनुभव करता है। घर के अन्य सदस्य भी उनका अभिनव आतिथ्य, सत्कार, सम्मान पाकर सोचते हैं कि उनके मुरझाये जीवन में बसन्ती माहौल ने प्रवेश किया है। इन सब संवेदनाओं का मूल्यांकन भौतिक धन सम्पदा के रूप में नहीं किया जा सकता है। यह आत्मिक अनुदान है, जिसकी तुलना कल्पवृक्ष से ही की जा सकती है। ऐसी महत्त्वपूर्ण सन्तान उत्पन्न करने के उपलक्ष्य में माता को पिता को समूचे परिवार को असाधारण आनन्द अनुभव करना चाहिए, पर दुर्भाग्य यह है कि उसका उलटा मूल्यांकन किया जाता है। इतना श्रेय सम्पादित करने वाली, दूसरे के घर में गृहलक्ष्मी बनकर प्रवेश करने वाली लड़की की क्यों उपेक्षित किया जाय ? क्यों तिरस्कृत? क्यों उसका मूल्य गिराकर आँका जाय ?

अपनी लड़की दूसरे के घर जाती है तो दूसरे की लड़की अपने घर भी तो आती है। कन्या के रूप में एक हाथ विवाह के समय उसे विदा करते हैं तो दूसरे हाथ से किसी दूसरे के घर से उसे वधू के रूप में प्राप्त भी तो कर लेते हैं। यह मात्र अदला-बदली हुई। यह कहाँ हुआ कि अपना उत्पादन चला ही गया हो और उसके बदले कुछ न मिला हो। यदि कन्याओं का उत्पादन घट जाय या समाप्त हो जाये तो वंश वृद्धि के लिए जो लालसा व्यक्त की जाती है, उसका जड़-मूल ही नष्ट हो जाये। वंश चलाने का कठिन कार्य एकमात्र वधू को ही वहन करना पड़ता है। पुरुष का तो उसमें क्रीड़ा-कौतुक जैसा योगदान होता है। गर्भधारण, प्रसव, स्तनपान, संरक्षण, भरण-पोषण तो जननी के जिम्मे ही रहता है। पुरुष तो इस सब में दूरवर्ती भागीदार होता है। ऐसी दशा में पुत्र की कामना करने वाले, वंश चलाने की, बुढ़ापे की लकड़ी खोजने वालों की भी इस मनोकामना की पूर्ति के लिए मन्शा पूर्ण करने वाली मंसा देवी नारी का ही अनुग्रह प्राप्त करना पड़ता है। सन्तान चाहे लड़की हो या लड़का, नारी के शरीर और अन्तराल में से निकला अनुदान ही है। ऐसे अमृत फल देने वाली को हेय, उपेक्षित समझा जाय और उसकी अवज्ञा की जाय, यह चिन्तन अदूरदर्शिता से भरा हुआ एकपक्षीय ही कहा जा सकता है।

घरों में जब कन्या का जन्म होता है तो उदासी छा जाती है और जब लड़के का जन्म होता है तो खुशियाँ मनायी जाती हैं। बधाई बाँटी जाती है। दैनिक व्यवहार में भी कन्या के भोजन, वस्त्र, दुलार, शिक्षा, चिकित्सा आदि में भी कमी की जाती है। बच्चे वस्तु स्थिति को समझते हैं। विशेषतया भावनाओं का अन्तर तो उनकी समझ में और भी जल्दी आ जाता है। अबोध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझी जाने वाली बच्चियाँ भी ताड़ जाती हैं कि उन्हें घटिया माना जा रहा है और भार समझकर पाला जा रहा है। इसकी प्रतिक्रिया उनके मनोबल को गिराती है। आत्महीनता का बीजांकुर जमाती है। वे अपने को भाग्यहीन और अन्धेरे भविष्य वाली मानने लगती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनका व्यक्तित्व जिस स्तर तक उभर सकता था उतना उभर नहीं पाता। वे आजीवन दबी, पिसी, पिछड़ी, गई-गुजरी मनोभूमि की बनी रहती हैं। जिस घर में जाती हैं उस परिवार की भी उतनी सेवा-सहायता नहीं कर सकतीं जितनी कि वे विकसित व्यक्तित्व साथ लेकर जाने पर कर सकती थीं। शरीर से अपंग व्यक्ति की आधी शक्ति मारी जाती है। उसी प्रकार दबे-कुचले मन वाला व्यक्ति भी अपनी स्वाभाविक प्रतिभा का एक बहुत बड़ा अंश गँवा बैठता है। यह वैसी ही निर्दयता है जैसे कि कुछ निष्ठुर भिखारी अपने बच्चे के अंग तोड़-मरोड़कर इस लायक बना देते हैं कि वे आजीवन भीख माँगें। उनके विकास के लिए उन्हें कोई जिम्मेदारी न उठानी पड़े। रोते-कलपते भाग्य को दोष देते, वे भी अपने दिन काटें और हो सके तो अभिभावकों की आरम्भ से ही कुछ सहायता करें। लड़की के भरण-पोषण, शिक्षा-दीक्षा में की गई कटौती इसी प्रकार की बचत मानी जाती है।

नारी का अवमूल्यन समूची मनुष्य जाति का अवमूल्यन है, उसकी प्रतिभा, विशिष्टता एवं समृद्धि प्रसन्नता में प्रत्यक्ष कमी करना है। लड़की का व्यक्तित्व यदि घटिया रहने दिया गया तो वह जिस भी परिवार में जायेगी, जिस भी लड़के के साथ रहेगी उसकी उतनी सहायता न कर सकेगी जितनी कि विकसित होने की दशा में कर सकती थी। घटिया मनःस्थिति रहने पर विचार-पद्धति घटिया रहती है और क्रिया-कलाप भी गये-गुजरे बन पड़ते हैं। ऐसी दशा में बाप के घर उपेक्षित रही लड़की ससुराल में जाकर भी न महत्त्वपूर्ण हो सकती है न यशस्वी। उसे पाकर ससुराल वाले भी उतने प्रमुदित नहीं होते जितना कि वधू के प्रतिभावान होने पर हो सकते हैं। जिसके द्वारा अपेक्षा से कम लाभ मिलता है उसका मान, मूल्यांकन भी कम होता है। पिता के घर मिली उपेक्षा ससुराल में भी साथ जाती है और जैसा अपमान पिता के घर सहना पड़ा था वैसा ही ससुराल में भी सहना पड़ता है। फसल बोने, उगाने, सींचने, बड़ा करने की जिम्मेदारी तो अभिभावकों के घर पूरी हो जाती है। ससुराल वाले तो फसल काटने आते हैं। यदि बुवाई, निराई-सिंचाई, रखवाली में उपेक्षा बरती गयी है तो उस फसल का समुचित लाभ काटने, बटोरने वालों को भी कैसे मिल सकता है और अपने भाग्य को कैसे सहारा जा सकता है ? बच्चों के नामकरण घर वाले ही करते हैं, जो नाम अभिभावकों ने रखा है, उसी से बाहर वाले भी पुकारते हैं। यदि माता-पिता कन्या के अवतरण को भाग्यहीनता का चिह्न मानते रहे हैं तो पड़ोसी, सम्बन्धी, ससुराल वाले ही क्यों उसे भाग्यवान समझने लगे और क्यों सम्मान देने लगें ? इस प्रकार अपनी कन्या का भविष्य अन्धकारमय, गया-गुजरा बनाने की जिम्मेदारी प्रकारान्तर से उन अभिभावकों की ही पड़ती है जिन्होंने उसे दुर्भाग्यसूचक माना और लड़के की तुलना में अपेक्षाकृत गया-गुजरा व्यवहार किया।

माता के लिए तो इस प्रकार की मान्यता और पक्षपात भरी नीति अपनाना और भी बुरा है। वह स्वयं भी तो नारी है। किसी नारी के ही पेट से पैदा हुई है। यह उसकी अपनी बिरादरी है। देखा गया है कि समान गुण स्वभाव वाले अधिक जल्दी हिल-मिल जाते हैं और एक-दूसरे के साथ प्रसन्नता अनुभव करते, सहायक बनते हैं। इस परम्परा के अनुसार महिला बिरादरी को तो कन्या जन्म पर अधिक प्रसन्नता व्यक्त करनी चाहिए क्योंकि उन्हीं की बिरादरी में संख्या वृद्धि हुई है। पर देखा उलटा जाता है। पुरुष भले ही इस बात को अधिक महत्त्व न दें पर स्त्रियाँ सिर आसमान उठा लेती हैं। दादी, चाची, ताई, बुआ आदि सबके मुँह पर उदासी छा जाती है। जननी को कोसती, लांछन लगाती भी देखी जाती हैं। उन्हीं का अनुकरण पड़ोसी-सम्बन्धी भी करते हैं। इस प्रकार उस जननी को उल्टा लांछित होना पड़ता है, जिसने इतना कष्ट सहकर उस बालक को जन्म दिया। जान जोखिम उठाई। शरीर को निःस्वत्व बनाया। ऐसे लांछन को सरासर अत्याचार ही कहना चाहिए।

कुछ समय पहले किन्हीं विशेष वर्गों में कन्या को जन्मते ही मार देने का रिवाज था। अँग्रेज सरकार ने इसके विरुद्ध कानून बनाया था। अब नया रिवाज चला है। नयी मशीनें ऐसी आयी हैं, जो गर्भकाल में ही लड़के-लड़की का पता लगा लेती हैं। इसका परीक्षण कराने वालों में से कितने ही ऐसे निष्ठुर अभिभावक होते हैं जो कन्या का पता चलने पर उसका गर्भपात करा देते हैं। यह भी एक प्रकार का कन्यावध ही हुआ। अल्प आयु में विवाह करके अपने कूड़े को पराये आँगन में पटक देने जैसा हुआ। इससे अभिभावक सोचते हैं कि उनकी रोटी-कपड़े की बचत हुई। ससुराल वाले सोचते हैं कि बालकपन से ही काम में जुटेगी तो उसी ढाँचे में ढल जायेगी, बड़ी होने पर आना-कानी न करेगी। पढ़ने-पढ़ाने का झंझट भी न रहेगा, जिससे कुछ कह सकने या कर सकने की बात न सोच पायेगी और सिर न उठा पायेगी।

पालतू कबूतरों के पैर पंगु कर दिये जाते हैं। वे उड़ नहीं सकते। आँगन में या पिंजड़े में ही घूमते-फिरते रहते हैं, काबू से बाहर नहीं हो पाते। पालने वाले उनका चाहे जब चाहे जैसा उपयोग कर सकते हैं। उड़ जाने, हाथ से निकल जाने का कोई खतरा नहीं रहता। ओछी बुद्धि यही सोचती है कि स्त्रियों के स्वावलम्बी, शिक्षित एवं सुयोग्य बनने में उनसे खतरा है। वे किसी सीमा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

तक स्वतन्त्रता की माँग कर सकती हैं। स्वावलम्बी होने की सामर्थ्य संचय कर सकती हैं, इसलिए उन्हें कई तरह के बन्धनों में आरम्भ से ही बाँध दिया जाय। उन्हें पढ़ने-लिखने की सुविधा न दी जाय। घूँघट पर्दे में, घर के पिंजड़े में कैद रहने का आदी बना दिया जाय। छोटी उम्र में जननी बना दिया जाय और बच्चों का भार लाद दिया जाय। ऐसी दशा में उनकी पराधीनता पूरी तरह पक्की हो जाती है। जिस भी स्थिति में रखा जाय, जैसे भी रहना पड़े उसी में उन्हें बिना सिर हिलाये रहना पड़ता है। यह स्थिति इसलिए भी पैदा की जाती है कि नारी, नर की तुलना में सुन्दर होती है। अनेक मनचले उनकी ओर दृष्टि डालते हैं। बहकाते, फुसलाते हैं। इस फेर में नारी का मन बदलने न लगे इस आशंका को ध्यान में रखते हुए उसे हर दृष्टि से पराधीन, दुर्बल, असमर्थ, अपंग स्तर की बना दिया जाता है ताकि वह विपत्ति में फँसी रहने पर भी रोने-कलपने के अतिरिक्त और कुछ सोच या कर न सके।

यह है अभिभावकों का कन्या के प्रति अत्याचार जिसे पाशविक कहा जा सकता है। पशु-पक्षी बच्चों को जन्म देने के बाद कुछ ही दिन सँभालते हैं। अपने पैरों चलने-फिरने योग्य होने पर अपनी जिन्दगी जीने और अपनी मौत मरने के लिए स्वतन्त्र छोड़ देते हैं। ऐसा व्यवहार लड़कों के साथ नहीं पर लड़कियों के साथ अवश्य किया जाता है। इसमें दोषी पुरुष भी हैं, जो वैसा करने से रोकते नहीं, पर अधिक दोषी घर की समर्थ महिलाएँ हैं। वे स्वयं जिस प्रकार का प्रताड़ित जीवन जीती रही हैं, उसी भड़ास को नवागन्तुक, लड़कियों या वधुओं पर निकालना चाहती हैं। जो बच्चे स्कूल में मास्टरों से अधिक पिटते रहते हैं वे ही बड़े होने पर जब मास्टर बनते हैं तो अपने छात्रों को पीटते हैं। इसमें उनके बचपन के संस्कार जो दबे हुए थे उभरते हैं और पीटने वाले मास्टर से बदला न ले पाने पर छात्रों को सताकर पुरानी रंजिश निकालते हैं। इसी प्रकार बड़ी आयु की महिलाएँ अपने बचपन में जो सहती रही हैं, उसी का बदला अबोध बालिकाओं से चुकाती हैं।

इस कुचक्र को तोड़ा जाना चाहिए। महिलाएँ अपना आत्म-गौरव स्मरण करें। कर्त्तव्य मानें कि बच्चों में लड़की-लड़के का फर्क न करें। दोनों को समान महत्त्व का, समान उपयोगी और समान स्नेहभाजन समझें। दोनों के विकास एवं दुलार में पूरी-पूरी दिलचस्पी एवं भाव संवेदना रखें। प्यार का विस्तार शरीर और परिवार की तरह बालकों में भी होना चाहिए। अपनी निष्कपटता के कारण सचमुच वे ही सच्चे प्यार के अधिकारी हैं।

भावना और व्यवहार का विवेकयुक्त समन्वय

भावना जीवन वृक्ष की जड़ है और उसके द्वारा खींचा जाने वाला पोषक पदार्थ व्यवहार। दोनों के समन्वय से ही परिवार को उपयुक्त परिपोषण मिलता है। जमीन में उर्वरता और नमी न हो, तो जड़ें खुराक कहाँ से खींचें, इसी प्रकार पोषक-तत्त्वों का जमीन में बाहुल्य होते हुए भी यदि जड़ें सड़ी-गली हों तो पौधे को आहार पाने और बढ़ने का अवसर कैसे मिले ? एकांगी स्थिति अपर्याप्त है। दिन-रात, नर-नारी, ताना-बाना, ऋण-धन मिलकर जिस तरह की संयुक्त शक्ति बनते और गाड़ी के दो पहियों की तरह गतिशील बनते हैं, ठीक उसी तरह परिवार में सर्वतोमुखी प्रगति का वातावरण बनाने के लिए भावना और व्यवहार के दोनों ही पक्षों को उच्चस्तरीय होना चाहिए।

भावना में आत्मीयता की सघनता होती है। उससे दूसरों को लाभ पहुँचाते समय उल्लास और उनका दुःख बँटाते समय सन्तोष की अनुभूति होती है। परिस्थितियाँ दोनों ही प्रकार की आती हैं। निपटना तदनुकूल पड़ता है, पर भावनाशील को घाटा कहीं भी नहीं पड़ता। उतार और चढ़ाव में उसे तृप्ति मिलती ही रहती है, कभी खट्टी, कभी मीठी। मैत्री का स्थायित्व आत्मीयता पर अवलम्बित है। वह दूसरी ओर से समुचित प्रक्रिया न होने पर भी एकपक्षीय चलता ही नहीं, बढ़ता भी रहता है। मूर्तिपूजा उसका उदाहरण है। प्रतिमा न कोई उत्तर देती है न कोई प्रतिक्रिया व्यक्त करती है। इतने पर भी भावना उसका आश्रय लेकर अपने बलबूते बढ़ती और परिपक्व होती रहती है। मीरा के कृष्ण, एकलव्य के द्रोण और रामकृष्ण परमहंस की काली ने जिस समर्थता का परिचय दिया उसे भक्त की भावना का चमत्कार ही कह सकते हैं। देवता की अनुकम्पा नहीं, भावना अपने आप में आत्मा की तरह ही पूर्ण है, पर उसको भी तो व्यवहार का शरीर चाहिए। शरीर के बिना आत्मा का अस्तित्व कैसे प्रकट हो ? व्यवहार का आश्रय पाये बिना भावना की बेल ऊँची कैसे चढ़े ?

परिवार निर्माण में उस आचार-संहिता को भी महत्त्व और प्रश्रय देना होगा जो भावनाओं के अनाचार को रोकती है। रेलगाड़ी की सामर्थ्य कितनी ही बड़ी क्यों न हो पटरी की मर्यादा में उसे अनुशासित न रखा जाय तो वह कहीं से कहीं बहकेगी और अन्ततः अपना तथा दूसरों का विनाश करेगी। भावुक अक्सर ठगे जाते हैं इसका कारण यह नहीं कि भावना की श्रेष्ठता में कोई सन्देह है वरन् यह है कि व्यवहार और मर्यादाओं का नियन्त्रण न रहने से उस दिव्य-संवेदना का दुरुपयोग होता है। धूर्तों को इस कला में प्रवीणता प्राप्त होती है कि वे भावुकता भड़काकर किस प्रकार उस संवेदनशील मनोभूमि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का लाभ उठाये, विपत्ति की सम्भावना बताकर ज्योतिषी और चिकित्सक किस प्रकार उनके स्वजन, परिजनों का अनुचित दोहन करते हैं, इसके प्रमाण-उदाहरण हर जगह उपलब्ध हो सकते हैं। शिशु वात्सल्य की अतृप्त भावना को पूर्ण करने के लिए पराये बच्चे दत्तक लिये जाते हैं। इस दुर्बलता को वे बच्चे थोड़ी-सी समझ आते ही भाँप लेते हैं और अपने परिपालकों का बुरी तरह शोषण ही नहीं करते त्रास भी देते हैं।

युवक-युवतियों के प्रेम-प्रसंगों में भावुकता की उड़ानें ही आकाश में पतंगों की तरह उड़ती दीखती हैं। सन्ध्या काल की रंगीनी आकाश के पश्चिम भाग में कितनी मनोहर लगती है, पर उसका न तो कोई अस्तित्व होता है और न आधार। ऐसा ही उन्माद इन तथाकथित प्रेम-प्रसंगों के मूल में रहता है। न औचित्य समझ में आता है और न यथार्थ। नशे पर नियन्त्रण कौन करे ? सपनों की सीमा कैसे बाँधे ? प्रेमोन्माद भी लगभग ऐसा ही होता है। बेल मगरे तो चढ़ती नहीं, चढ़ती है तो एक ही झौंके में लुढ़ककर छितराती और अस्त-व्यस्त दीखती है। इस उभार में उन बालकों को निन्दित तिरस्कृत बनना पड़ता है। अप्रामाणिकता का कलंक सिर पर बँधता है और उस क्षति की पूर्ति कदाचित् ही कभी हो पाती है। इन प्रेमोन्मादी बालकों के परिवारों पर क्या बीतती है और उन्हें कितने प्रकार की कितनी हानि सहनी पड़ती है ? इसका अनुमान लगा सकना यदि उस उन्माद के दिनों किसी प्रकार सम्भव रहा होता तो वे अपनों की दृष्टि से इतने न गिरते और इतनी क्षति एवं व्यथा न सहते जितनी कि ऐसे कुछ प्रसंगों में अन्ततः उन्हें सहनी पड़ती है। आमतौर से भावुक लड़कियाँ ही इस प्रकार के शोषण का शिकार बनाती हैं। धूर्त उन्हें ललचाते और अन्ततः उन्हें भारी विपत्ति में धकेलकर छोड़ते हैं।

मैत्री के नाम पर कितना शोषण होता है, इसका अपना एक अलग ही क्षेत्र है। पुराने जमाने में शत्रु आमना-सामना करते लड़ाई लड़ते और हानि पहुँचाते थे। आज के जमाने का आधुनिकतम आविष्कार यह है कि मित्रता गाँठी जाय, बफादारी का प्रमाण दिया जाय और रंगीन सपने दिखाकर अथवा अपनी कठिनाई जताकर मित्र का शोषण आरम्भ कर दिया जाय। दाव लगते ही उसे चित्त-पट्ट करके रफूचक्कर बना जाय। भावुकता की ऐसी-ऐसी शतरंजें जहाँ-तहाँ बिछी देखी जाती हैं। हिरन और साँप को पकड़ने वाले बहेलिया बीन बजाया करते हैं। मछली को आटा और पक्षी को दाना दिखाकर पकड़ा जाता है। मित्रता की नशीली चाट खिलाते और बेहोशी आते ही जेब काट लेने वाले धूर्तों की कहीं कमी नहीं है। यह सब भावुकता के सहारे चलने और पनपने वाले अनाचार हैं, जो अपने दुःखदायी दुष्परिणाम हर क्षेत्र में उत्पन्न करते रहते हैं।

परिवार के क्षेत्र में भावुकता की प्रौढ़ता रहना स्वाभाविक भी है और आवश्यक भी। उसके औचित्य एवं महत्त्व से कोई इन्कार नहीं कर सकता, पर देखना यह भी होगा कि कहीं उसका व्यतिक्रम तो नहीं हो रहा है और सदाशयता की आड़ में कोई विष वृक्ष तो नहीं पनप रहा है। इस जागरूकता के समर्थन में ही दूरदर्शी सदा यह कहते रहे हैं कि 'एक आँख दुलार की और दूसरी सुधार की' रखी जाय तभी प्रेम की सार्थकता है अन्यथा अमृत की भी अनावश्यक मात्रा विष का काम करती देखी गई है।

पति-पत्नी की द्विधासत्ता को एकत्व में परिणत कर देने का प्रधान कारण आत्मीयता की सघन भावुकता ही है। यही पतिव्रत और पत्नीव्रत की उच्च सच्चरित्रता के रूप में परिलक्षित होती है। एक-दूसरे के प्रति परिपूर्ण बफादारी का आधार यही है। एक-दूसरे को बहुत कुछ सब कुछ देने की उमंगें इस सन्दर्भ में उठती भी हैं और उठनी भी चाहिए किन्तु यदि यह उभार औचित्य की मर्यादा लाँघने लगे तो समझना चाहिए कि अर्थ का अनर्थ होने जा रहा है। सम्पन्न लोग पत्नी को कुछ भी शारीरिक श्रम न करने देने के लिए, नौकरों की व्यवस्था करते हैं। शृंगार और विनोद के अनेकानेक साधन जुटाते हैं। इसके प्रबन्ध के पीछे उनका उद्देश्य पत्नी पर भारी स्नेह होने का परिचय देना भर होता है। इस एकांगी चिन्तन में अन्ततः पत्नी की स्वस्थता, समर्थता, प्रखरता और प्रतिभा को बुरी तरह क्षति पहुँचती है और वह अन्ततः किसी कृषक, मजदूरों की श्रमजीवी पत्नी से भी अधिक घाटे में रहती है। गुड़िया बने रहने में उसने क्या खोया और क्या पाया ?

पति के प्रसन्न करने के लिए उसे कामुकता की मनमानी छूट देना न तो पतिभक्ति है और न भाव समर्पण है। जिसमें दोनों की ही शारीरिक और मानसिक क्षति होती है। उसके लिए परिपूर्ण सद्भावना के साथ समझाने-बुझाने से लेकर असहयोग, विरोध करने तक का उपक्रम चल सकता है। नशेबाजी, जुआ, यारबाशी, अवारागर्दी जैसे कुटेबों में फँसे हुए पति को उसकी मनमर्जी करते रहने देना, रोकथाम न करना, देखने में पतिभक्ति, स्वामिभक्ति जैसी बात भले प्रतीत होती हो वस्तुतः वैसी है नहीं। प्यार में जहाँ हित कामना, शुभेच्छा सहकारिता आदि अनेक अनुकूलताओं का समावेश है।। वहाँ अनौचित्य को बदलने, सुधारने का तथ्य भी पूरी तरह संयुक्त है। इसे हटा देने पर तो आधी भावुकता ही शेष रह जायेगी और उसमें निरन्तर ठोकरें लगने का खतरा बना रहेगा।

कितने ही घरों में नववधुएँ संयुक्त परिवार से पृथक् रहने का आग्रह अपने पतियों से इसलिए करती हैं कि उन्हें पति की स्वामिनी बनने और कमाई का लाभ उठाने का अवसर मिलेगा। संयुक्त परिवार में तो यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपलब्धियाँ प्रत्यक्षतः बँट ही जाती हैं। भले ही बाद में उसके सत्परिणाम अनेक गुने होकर मिलते रहें। भावुकता-वश पति भी उनके आग्रह को मानते हैं और उत्तरदायित्वों से विमुख होते देखे गये हैं। मोटी दृष्टि से यह पति-पत्नी का एक-दूसरे के साथ दूध पानी हो जाने जैसा हुआ, किन्तु दूरदर्शिता के आधार पर देखा जाय तो उस आग्रह और स्वीकृति के पीछे अनीति ही काम करती दिखाई पड़ेगी। जिस परिवार ने अपनी समृद्धि और सद्भावना का एक बड़ा अंश लड़के की शिक्षा-दीक्षा पर कमाऊ बनाने की स्थिति तक पहुँचाने पर लगाया है। उसे प्रतिफल के समय ऐसी बेरुखी का सामना करना पड़े तो इसे दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जायेगा। इसमें सारे परिवार का अर्थ-सन्तुलन एवं भविष्य बिगड़ता है। दाम्पत्य प्रेम का परिचय देने की भावुकता और समूचे परिवार की सुव्यवस्था में से क्या चुनना चाहिए, इसका निर्णय करने में यदि पत्नी का आग्रह अस्वीकार करना पड़े तो भी विवेक की कसौटी यही नहीं कहेगी कि दाम्पत्य प्रेम के साथ जुड़े कर्त्तव्य की अवहेलना की गई।

छोटों का अधिक काम करना बड़ों को अधिक आराम देना सहज शिष्टाचार है। छोटों का कर्त्तव्य है कि वे बड़ों से ऐसा कहें भी और उसके लिए प्रयत्न भी करें, किन्तु यह शिष्टाचार पूर्णतया व्यवहार ही बन जाये यह आवश्यक नहीं। बड़े कुछ भी न करें तो उनका शरीर और मन अपनी गतिशीलता निरन्तर खोता चला जायेगा और वे कुछ ही दिनों में कूड़ा-करकट जैसे निरर्थक बन जायेंगे। इस बेकारी में वे अपना समय तो गवाँयेंगे ही, किसी और साथी को तलाशकर उसे भी गप्पबाजी या ताश, शतरंज जैसे शुगल में फँसा देंगे। बड़ों को आराम देने का अर्थ उन्हें आलसी और दुर्व्यसनी बना देना है तो उससे कहीं अच्छा यह है कि उन्हें व्यवस्था, शिक्षा एवं लोकसेवा जैसे किसी उपयोगी काम में जुटाये रखने का ताना-बाना बुना जाय। देखने में यह बड़ों के प्रति अनुदारता बरतने जैसा प्रतीत होता है, किन्तु दूरदर्शिता यही कहेगी कि सद्भावना और सुव्यवस्था का समावेश हर दृष्टि से उचित है।

मोहवश बच्चों को दूर पढ़ने भेजने से अभिभावकों को विशेषतया माताओं को कतराते देखा गया है। बच्चा प्यारा है। इसलिए उसे आँखों के सामने ही रहना चाहिए। यह भावुकता का तकाजा है, विवेक का नहीं। प्राचीनकाल में बालकों को सुदूर गुरुकुलों में पढ़ने के लिए खुशी-खुशी भेज दिया जाता था। इसका अर्थ यह नहीं कि उनके अभिभावक प्यार नहीं करते थे। इसका अर्थ इतना ही है कि हित-चिन्तन को प्रथम और मोह-ममता को द्वितीय स्थान दिया जाता था। इसमें बालकों को भी अभिभावकों की ही तरह विछोह-कष्ट होता होगा, पर अन्ततः भावुकता ही तो सब कुछ नहीं है। यदि औचित्य और कर्त्तव्य की उपेक्षा की जाने लगे तो फिर सेना में भर्ती होने के लिए न तो कोई व्यक्ति स्वयं ही तैयार होगा और न उसके घर वाले ही ऐसे जोखिम भरे दुस्साहस के लिए सहमति देंगे। यदि ऐसे ही प्रचलन चल पड़ें तो फिर वानप्रस्थ परम्परा का अन्त ही हुआ समझना चाहिए। परिवार से छूटने व छोड़ने की असुविधा सर्वविदित है। मोह की प्रधानता रहते ऐसी व्यवस्था बन ही नहीं पड़ेगी ऐसी दशा में व्यक्ति और समाज को ऐसी क्षति उठानी पड़ेगी, जिसकी पूर्ति और किसी प्रकार हो ही नहीं सकती। जन्म से लेकर मरणपर्यन्त परिवारी लोगों के साथ ही रहना, उन्हीं के लिए मरना-खपना यह दिखाता है कि परिवार प्रेम की कितनी सघनता थी, फिर भी उस भावुकता के पीछे विवेक व्यवहार का समावेश न रहने से सराहना नहीं, भर्त्सना होगी।

जो कमाया जाय उसका उत्तराधिकार सन्तान को ही मिले, यह प्रचलन हर दृष्टि से निन्दनीय है। इसमें सन्तान को मुफ्तखोरी की लानत उठानी पड़ती है और संचयकर्त्ताओं को मोहग्रस्त कहा जायेगा। औचित्य इतना ही है कि अभिभावक अपनी सन्तान को समर्थ, सुसंस्कृत बनाने के साथ अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझें और सन्तान भी अपने पूर्वजों से इससे अधिक की आशा न करें। असमर्थ आश्रितों को ही पूर्वजों की कमाई पर गुजारा करने का अधिकार रहना चाहिए, पर जो अपने बाहुबल से कमाने में समर्थ हैं, उन्हें स्वावलम्बनपूर्वक निर्वाह क्यों करना चाहिए ? बिना परिश्रम की कमाई चाहे वह चोरी में, लाटरी में या उत्तराधिकार में या किसी दूसरे रास्ते मिली हो, तथ्यतः अनैतिक है। जो कमाएँ सो खायें, यही सिद्धान्त सही है। इसमें इतना ही परिशिष्ट जोड़ा जा सकता है कि असमर्थ, आश्रित अपने पूर्ववर्ती की सम्पदा से निर्वाह प्राप्त करें। समर्थों को मिला उत्तराधिकार उनके लिए मुफ्त का माल होने से बेरहमी के साथ खर्च होगा। दूसरे ऐसे धन पर स्वभावतः लोक-मंगल का जो अधिकार है उससे उस क्षेत्र को वंचित रहना पड़ेगा और असंख्यों सत्प्रवृत्तियों को जो उस पोषण के सहारे पनपने का लाभ मिल सकता था उससे उन्हें वंचित रहना पड़ेगा।

मोहग्रस्त अभिभावक, भावुकतावश अपनी संचित कमाई का उत्तराधिकार अपने वंशजों के लिए छोड़ते हैं तो प्रचलन के अनुसार इसे स्वाभाविक ही कहा जायेगा किन्तु जहाँ तक विवेक एवं औचित्य का प्रश्न है, इस हस्तान्तरण का कोई औचित्य नहीं है। कृषि, उद्योग आदि के तन्त्र पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते और रहें, उनके सहारे परिवार को काम मिलता रहे यह व्यवस्था अलग है, इसका समर्थन भी हो सकता है, किन्तु जहाँ ऐसा कुछ नहीं बाप की कमाई बेटों को बँटनी भर है, वहाँ निश्चित रूप से भावुकता का अनुचित उपयोग ही है। इसमें देने वाले और लेने वाले दोनों पर ही औचित्य की भावुकता के दुरुपयोग का कलंक लदता है। ऐसा धन विशुद्ध रूप से सार्वजनिक उपयोग के लिए प्रयुक्त होना चाहिए। भले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही उसे मृत्यु टैक्स के रूप में सरकार वसूल करे अथवा प्राचीनकाल की श्राद्ध व्यवस्था के अनुसार उसे स्वेच्छापूर्वक धर्म प्रयोजन के लिए वितरित कर दिया जाय।

इन दिनों भी परिवारों में भावना का अस्तित्व किसी न किसी रूप में विद्यमान है। भाव संवेदनाएँ घटती तो जा रही हैं, पर वे आधी भी समाप्त नहीं हुई हैं। जो विद्यमान हैं वह बताता है कि मनुष्य ही मूल प्रवृत्ति का अस्तित्व इस गई-गुजरी स्थिति में भी अपनी सत्ता बचाये हुए है, अब जो करने योग्य है वह यह है कि उस दैवी तत्त्व का उपयोग विवेकपूर्वक होने दिया जाय। पारिवारिकता अपने सही स्वरूप में पनपे, उसे मोहग्रस्तता की विकृत स्थिति में न रहना पड़े। भावना और व्यवहार में यदि उत्कृष्टता का समावेश बना रहे, तो सच्चे अर्थों से पारिवारिकता पनपेगी और उस आधार पर सर्वतोमुखी प्रगति एवं समृद्धि का पथ-प्रशस्त होगा।

समानता का भ्रान्त अर्थ न लें

लड़के-लड़की दोनों ही समान हैं, दोनों में कोई किसी से हीन या उत्कृष्ट नहीं, यह मान्यता पूरी तरह सत्य है किन्तु जब समानता के इस सिद्धान्त का भ्रान्त अर्थ ग्रहण कर लिया जाता है, तो फिर वास्तविकता से दूरी बढ़ती जाती है। दोनों की प्रकृतिगत भिन्नताओं को भुलाना ही समानता का ऐसा भ्रान्त अर्थ करता है। इन दिनों ऐसी ही भ्रान्ति के कारण लड़के-लड़कियों का ऊपरी भेद पूरी तरह मिटा डालने की प्रतिस्पर्धा चली हुई है और समझा यह जाता है कि यदि दोनों को एक-सी शिक्षा दी जाय, एक से वातावरण में, एक-से रहन-सहन में ढालकर रखा जाय, तो दोनों के बीच का अन्तर पूरी तरह मिट जायेगा। इस मान्यता के अनुसार लड़के और लड़की का भेद पर्यावरण तथा व्यवहार में बरते जाने वाले भेद का परिणाम है। आन्तरिक दृष्टि से दोनों में कोई भेद नहीं और दोनों की कार्य-क्षमता, संवेदन-क्षमता बिल्कुल एक-सी हो सकती है।

मनोविज्ञानी रिचर्ड एम. रेस्टक ने अमरीका में बच्चों की मस्तिष्कीय क्षमता पर किये गये अनुसन्धानों से प्राप्त निष्कर्षों को प्रस्तुत करते हुए इन मौलिक भिन्नताओं पर भलीभाँति प्रकाश डाला है। ये अनुसन्धान वैज्ञानिकों और मनोवैज्ञानिकों के कई समूहों द्वारा किये गये।

इन अनुसन्धानों से पता चला है कि लड़कों के सोचने और महसूस करने का ढंग ही लड़कियों से भिन्न होता है।

लड़के और लड़कियों के बीच की भिन्न-भिन्न विशेषताएँ नवजात शिशुओं में ही विद्यमान होती हैं। बच्ची ध्वनि-सम्बन्धी संवेदनाओं के प्रति बच्चे की तुलना में बहुत अधिक जागरूक होती हैं। विशेषकर अपनी माँ की आवाज को एक बच्ची बहुत बारीकी से पहचान लेती है, जबकि बच्चा ऐसा नहीं कर पाता। इसके विपरीत बच्चे की कल्पनाशक्ति अधिक विकसित पायी गयी। इसी प्रकार बच्चे में स्वच्छन्दता और ऊटपटांगपन की प्रवृत्ति अधिक पायी गयी, जबकि बच्चियों में सुव्यवस्था की प्रवृत्ति आश्चर्यजनक रूप से विकसित पायी गयी। देखा गया कि एक नन्हीं बच्ची जहाँ अपनी माँ की आवाज को सुनकर उसके प्रति तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करेगी और थोड़ी देर को खेलना बन्द कर देगी, वहीं नन्हा बच्चा यदि रंगीन लट्टू से खेलने में मग्न हो, तो वह माँ की आवाज की अवहेलना कर देगा। इसी प्रकार, बच्चा दानों-गुरियों को पंक्ति में सजाने के स्थान पर उन्हें बिगाड़ने में ज्यादा रुचि लेगा, जबकि छोटी-सी बच्ची भी उन्हें सिलसिले से जमाने-सजाने में तन्मय हो जायेगी।

आगे चलकर भी, बच्चे कल्पना में अधिक डूबना पसन्द करते हैं, जबकि बच्चियाँ व्यावहारिक अधिक होती हैं। चेहरे और आवाज की विशेषता, बोलने की शैली, इनको लड़कियाँ बहुत बारीकी से समझतीं और संवेदनात्मक प्रतिक्रिया करती हैं। यह प्रवृत्ति उनमें आजीवन अधिक विकसित रही आती है। बच्चों की तुलना में वे एक निश्चित लय में गुनगुनाना बहुत जल्दी शुरू कर देती हैं। बोलना भी लड़कियाँ लड़कों से कम उम्र में शुरू कर देती हैं। उनकी शब्द-शक्ति लड़कों से अधिक विकसित होती है और वे अधिक शुद्ध बोलती हैं। हकलाहट, प्रायः लड़कों में ही अधिक पायी जाती है। लड़के, लड़कियों की तुलना में अधिक अशुद्ध ढंग से बोलते देखे गये। लड़कियाँ भाषिक दक्षता में अधिक प्रवीण होती हैं। वे विदेशी भाषाएँ लड़कों से अधिक जल्दी सीखती हैं। भाषा और ध्वनि सम्बन्धी यह विशेषता लड़कियों में आजीवन बढ़ी-चढ़ी रहती है और वे पुरुषों की तुलना में बहरी भी कम होती हैं तथा देर से वृद्धा होती हैं। इससे प्रकट है कि ध्वनियों, शब्दों को ग्रहण करने की उनकी क्षमता लड़कों-पुरुषों से अधिक विकसित, अधिक सशक्त होती है।

लड़के कल्पनात्मक उड़ानों, तार्किक ऊहापोहों में लड़कियों से बहुत विकसित होते हैं। इसी प्रकार, सम्पूर्ण शरीर को संचालित करने और धमाचौकड़ी मचाने में वे बढ़े-चढ़े होते हैं। खेल के मैदान में बच्चियाँ बताये गये तरीकों से ही खेलना पसन्द करेंगी, जबकि लड़के मनमानी करना। पाँच साल के लड़के-लड़कियों का समूह यदि एकत्र है और उन्हें एक-से वातावरण में पाला गया है तो वहाँ बाल पकड़कर खींचने, कागज बगैरह फेंककर मारने या दूसरे पर दाग-धब्बा लगा देने में लड़के ही अधिक प्रवृत्त पाये जायेंगे। मनोविज्ञानिकों के अनुसार इसका कारण यह नहीं है कि लड़कियाँ कम 'एक्टिव', कम चुस्त या संकोची होती हैं या झिझकती हैं, वरन् उनकी प्रवृत्ति ही भिन्न होती है। वे उसी समय व्यवस्था में या दूसरी चीजों में अधिक रुचि ले रही होती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

दोनों के ध्यान को आकर्षित करने वाली प्रवृत्तियाँ, गतिविधियाँ ही भिन्न होती हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार लड़के-लड़कियों के व्यवहार की यह भिन्नता वातावरण या प्रशिक्षण का परिणाम नहीं, उनके सोचने और अनुभव करने के ढंग में ही भिन्नता का परिणाम है। इसीलिए अब पश्चिमी देशों में यह माँग जोर पकड़ चुकी है कि व्यक्तित्व एवं बुद्धिलब्धि परीक्षाएँ (आई. क्यू. टेस्ट्स) तथा बौद्धिक-क्षमता की परीक्षाएँ (इण्टेलिजेन्स टेस्ट्स) लड़के और लड़कियों की भिन्न-भिन्न हों, क्योंकि दोनों की बौद्धिक योग्यता का मूल स्वरूप ही भिन्न-भिन्न होता है। सबसे बड़ा अन्तर तो तीव्र बुद्धि लड़कों और तीव्र बुद्धि लड़कियों के परीक्षण के उपरान्त पाया गया। अब तक के सभी परीक्षणों में मनोवैज्ञानिकों ने यही पाया है कि सर्वाधिक बौद्धिक क्षमता वाली लड़कियाँ बेझिझक, अधिक चपल, अधिक हलचल करने वाली और कुछ बेफिक्र-सी होती हैं। जबकि लड़कों में जो कम विकसित बुद्धि के, कम मेधावी होते हैं, उनमें ही ये विशेषताएँ पाई जाती हैं, जो उन्हें वातावरण की सुविधा के कारण उद्धत-उद्दण्ड तक बना देती हैं। विशिष्ट प्रतिभासम्पन्न, मेधावी लड़कों में ये विशेषताएँ कतई नहीं होतीं और वे सदैव अधिक शान्त, कुछ-कुछ संकोची, अनाक्रामक और विचारों में डूबे-डूबे से होते हैं। इसलिए यदि व्यवहार की बाहरी प्रवृत्तियों को आधार बनाकर एक-सी बुद्धिमापक परीक्षाएँ ली गईं, तो मेधावी लड़कियों और कम विकसित बुद्धि के लड़के एक ही श्रेणी में आयेंगे तथा मेधावी लड़कों और कम विकसित बुद्धि वाली लड़कियों में बहुत कुछ साम्य प्रतीत होगा। अतः दोनों की जैविक, मानसिक संरचनाओं तथा 'ब्रेन बिहेवियर' को ध्यान में रखकर ही बौद्धिक परीक्षाओं का अलग-अलग स्वरूप तय किया जाना चाहिए।

मनोवैज्ञानिक गवेषणाएँ अभी निरन्तर जारी हैं और जो तथ्य आज सामने आए हैं, उनमें विस्तार एवं विकास की बहुत अधिक सम्भावनाएँ हैं। अतः इन तथ्यों को अन्तिम या निर्विवाद नहीं मान लेना चाहिए। लेकिन यह तो निर्विवाद रूप से मानना ही होगा कि लड़के और लड़कियों की मस्तिष्कीय विशेषताएँ ही भिन्न-भिन्न होती हैं तथा दोनों के बीच बाहरी दृष्टि से समानता लाने या समान कसौटी निर्धारित करने पर दोनों में से एक वर्ग के साथ अवश्य अन्याय होगा और इस प्रकार ऊपर से जो समानता दिखती है, वह वस्तुतः विषमतापूर्वक अनुचित व्यवहार-प्रणाली सिद्ध होगी। दोनों की भिन्न-भिन्न विशेषताओं को समझते हुए, उन विशेषताओं के अनुरूप विकास के समान अवसर देना ही सच्ची समानता सिद्ध होगी। समानता का भ्रान्त अर्थ तो अनर्थ ही करेगा।

किन्तु यहाँ, यह भी स्मरण रखना चाहिए कि नर-नारी के बीच जो अन्तर इन दिनों समझे जाते हैं, उनमें से अधिकांश रूढ़, सतही और अवास्तविक हैं तथा उनका कारण सांस्कृतिक परिवेश में विद्यमान विषमता ही है। इस विषमता को समाप्त करना ही चाहिए। विशेषकर, दोनों में से किसी एक वर्ग को अधिक श्रेष्ठ, दूसरे को कम श्रेष्ठ या घटिया बताना पूरी तरह गलत है। ऐसी मान्यताएँ सांस्कृतिक विघटन और अनीति का परिणाम हैं किन्तु जो आधारभूत प्रवृत्तिगत भिन्नताएँ, विशेषताएँ हैं, उन्हें अनदेखा करना भी अनर्थकारी सिद्ध होगा। उन भिन्न-भिन्न विशेषताओं को समझकर, उनके विकास के समान अवसर तथा समान महत्त्व देना ही सच्ची समानता है।

क्या पुत्र-जन्म वास्तव में सौभाग्य है ?

भविष्य जानना आमतौर से अहितकर ही सिद्ध होता है। वस्तुतः भवितव्यता का कोई निश्चय नहीं। वह अनुमान पर आधारित होती है। विधि का विधान ही सब कुछ नहीं है। मनुष्य के अपने स्वभाव और कर्म ही भली-बुरी परिस्थितियों का निर्माण करते हैं। यदि प्रवाह को बदल दिया जाय तो जिस सम्भावना के लक्षण दीख पड़ रहे थे, उनमें आश्चर्यजनक परिवर्तन होने लगता है।

आलसी, अपव्ययी, व्यसनी, दुर्गुणी का भविष्य सहज बुद्धि के आधार पर दुःख भरा समझा जा सकता है। मित्र सम्बन्धी वैसा ही अनुमान लगाते हैं, पर यदि दृष्टिकोण, स्वभाव एवं कार्यक्रम में उपयोगी परिवर्तन कर लिया जाय तो स्थिति उलटने में भी देर नहीं लगती। इसी प्रकार सज्जन समझे जाने वालों का भविष्य उत्तम माना जाता है, पर यदि वे किसी कुचक्र में फँसकर कुमार्गगामी गतिविधियाँ अपना लें, तो भविष्य सम्बन्धी पूर्वमान्यता में अप्रत्याशित परिवर्तन हो सकता है।

वाल्मीकि, अजामिल, गणिका, अंगुलिमाल, विल्वमंगल आदि अपने कुख्यात क्रिया-कलाप को बदलकर सन्त और ऋषि जैसा जीवन बिताने लगे। दूसरी ओर विश्वामित्र, दुर्वासा ऋषि अपनी भूलों के कारण बदनाम हुए। मनुष्य को अपने भाग्य का निर्माता आप माना गया है क्योंकि वह चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में यथोचित परिवर्तन करने में समर्थ है। भाग्य कर्म की ही परिणति है। उस कर्म का प्रवाह यदि बदला जा सके तो भवितव्यता में भी अन्तर आ सकता है।

जो प्रत्यक्ष नहीं है उसकी पूर्व सम्भावना का किसी भी आधार पर अनुमान लगाया जाय, उसका शत-प्रतिशत सुनिश्चित होना सम्भव नहीं, फिर भी अनुमान के आधार पर कुएँ खोदे जाते हैं। आरम्भ करते समय आशा की जाती है कि यहाँ जल स्रोत निकलेंगे, पर कितनी ही बार ऐसा भी होता है जो चाहा गया वह पूरा नहीं होता। खोदे गये गड्ढे सूखे ही पड़े रहते हैं। वर्षा ऋतु सूखी निकल जाती है और कभी-कभी असमय में ही भारी वर्षा का संयोग बन जाता है। पूर्व अनुमानों में से सभी सही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निकलते हों ऐसा कहाँ होता है ? यदि किसी के जन्म-मरण की बात निश्चित हो तो उससे न तो बचने की आवश्यकता समझी जाय, न सफलता के लिये प्रयत्न के लिये प्रयत्न किया जाय और न संकट का निवारण ही सम्भव हो सके। जो अकाट्य है, उसे कैसे काटा जाय ? पर ऐसा होता नहीं। प्रकृति प्रवाह भी बदलते रहते हैं और संचित कर्मों का भी आकस्मिक उदय-अस्त होता रहता है। भाग्य पत्थर की लकीर नहीं है फिर यदि हो भी तो मनुष्य को न तो उसका पूर्व परिचय ही होता है और न नियति को बदलने के लिए उसके पास कोई सुनिश्चित साधन ही रहता है। इसलिए विज्ञजनों ने सदा यही परामर्श दिया है कि भविष्य की चिन्ता न करें, भूत को याद करते रहने के फेर में न पड़ें, मात्र वर्तमान पर ही ध्यान केन्द्रित करें और जो सामने है उसी से निपटें।

आकांक्षाओं में से अनेकों ऐसी होती हैं जो परिस्थितिवश, पुरुषार्थ या सहयोग के अभाव में चाहते हुए भी पूरा नहीं हो पातीं। ऐसी दशा में यही अच्छा है कि आकांक्षाओं को संयम में रखें। उन्हें अत्यधिक न उभरने-मचलने दिया जाय। अच्छी से अच्छी आशा जरूर करें पर बुरी से बुरी सम्भावनाओं के लिए भी तैयार रहें।

यहाँ यह प्रसंग है कि बच्चे उत्पन्न हों और उनमें भी मात्र पुत्र की उपलब्धि हो। लोकमान्यता इसी प्रकार की है। हर व्यक्ति यह चाहता है कि उसकी पत्नी पुत्र ही जने। कन्या उत्पन्न होने पर दुर्भाग्य समझा और दुःख मनाया जाता है किन्तु प्रकृति के क्रम विधान को क्या किया जाय जो वंश परम्परा चलते रहने के प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए बच्चों में से आधे नर और आधे मादा वर्ग के जनती हैं। यदि ऐसा न हो तो नर-मादा के जोड़े न मिलें। एक वर्ग की अधिकता और दूसरे की कमी पड़ जाने पर परिवार बसना और व्यवस्था का चलना ही सम्भव न हो। विग्रह खड़े हों और छीन-झपट का सिलसिला चल पड़े। फिर अगली पीढ़ियों का सन्तुलन बिगड़े। नारी पक्ष अधिक हो और नर की संख्या कम होने पर भी जनसंख्या असन्तुलित रूप से बढ़ती रहेगी। इसी प्रकार नरों का बाहुल्य हो नारी कम पड़े तो प्रजनन क्रम उस अनुपात में न रह सकेगा, जिससे उचित मात्रा में नर-नारी सन्तुलन बना रहे। ऐसे ही अनेक कारण हैं जिन्हें ध्यान में रखते हुए प्रकृति ने ऐसा संविधान बनाया है कि दोनों पक्षों का उत्पादन समान रूप से बना रहे। यदि इस व्यवस्था को झुठलाकर लोग चाहें कि उसके पुत्र ही हों तो उस मनोकामना का प्रतिफल समूची मानव जाति के लिए अहितकर ही होगा। सभी लड़के जन्मने लगें तो उन्हें अविवाहित रहना पड़ेगा। ऐसी दशा में उसी पीढ़ी में मानवी अस्तित्व समाप्त हो जायेगा।

पुत्र की इच्छा को बढ़ी-चढ़ी उत्कण्ठा के स्तर तक पहुँचाये रहने वाले यह भूल जाते हैं कि उनकी माता भी नारी थी और पत्नी भी नारी है। यदि वे न रही होतीं तो न उनका जन्म सम्भव था और न गृहस्थ बनना। नारी ही है जो वंश-परम्परा चलाये रहती और नर-रत्नों के उत्पादन में महती भूमिका निभाती है। फिर पुत्री के रूप में यदि वह घर में अवतरित, होती है तो इसमें अनख मानने की क्या आवश्यकता है।

पुत्र कमाऊ होते हैं। वंश चलाते हैं। बुढ़ापे का सहारा बनते हैं। उनका दिया हुआ पिण्डदान मृत पूर्वजों को पहुँचता है। इन मूढ़-मान्यताओं में तथ्यतः कोई दम नहीं है। लड़कियों को भी लड़कों की तरह यदि सुशिक्षित, सुयोग्य, समर्थ और सुसंस्कृत बनाया जाय तो वे अपनी स्वतन्त्र प्रतिभा का, वरिष्ठता का परिचय दे सकती हैं। इतना ही नहीं, अभिभावकों को भी कृत-कृत्य बना सकती हैं। सीता, शकुन्तला, जीजाबाई, लक्ष्मीबाई आदि पुरातन नाम इस गरिमा का स्मरण दिलाते हैं। चिर-पुरातन काल में सावित्री, सुकन्या, अनुसूया, अरुन्धती, शतरूपा, कौशल्या आदि का नाम मूर्तिमान होकर सामने आ खड़ा होता है। इन दिनों भी इन्दिरा गाँधी, सरोजनी नायडू, महादेवी वर्मा, मदर टैरेसा, थैचर, गोल्डामेयर, भण्डार-नायके, ऐक्वीनो आदि के नाम यह स्मरण दिलाते हैं कि अवसर मिले तो वह सुयोग्यतम नरों से भी अधिक अग्रगामी भूमिका निभा सकती हैं। देवताओं के युग्मों में नारी की ही प्रधानता रही है। लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम, राधा-कृष्ण आदि में नारी को प्रथम और नर को द्वितीय स्थान मिला है। नर कमाता जरूर अधिक है पर बचत, व्यवस्था और कला-सुसंस्कारिता जैसे अति महत्त्वपूर्ण पक्ष नारी के ही हाथ में हैं।

सामन्तकाल की कुरीतियों में मनचले गुण्डे सुन्दर कन्याओं का अपहरण कर ले जाते थे। साथ ही उस परिवार में लूटपाट भी करते थे। इसलिए कन्याओं को मुसीबत समझा जाता था और उन्हें जन्मते ही कुछ समुदायों में गला घोंटकर मार दिया जाता था। स्थिति की भयंकरता को देखते हुए अँग्रेज सरकार ने कन्यावध के विरुद्ध कानून बनाया था। समाज सुधारकों ने इस अनर्थ के विरुद्ध जनमत भी जाग्रत किया था।

लगता है कि वह अनाचार नये रूप में फिर वापस लौट रहा है। ऐसी मशीनें बनी हैं जो जन्म से पूर्व ही भ्रूण के सम्बन्ध में यह बता देती हैं कि पेट में लड़की है या लड़का। लड़की की जानकारी मिलने पर उससे पीछा छुड़ाने के लिए प्रसव से पूर्व ही बहुतेरे गर्भपात करा देते हैं। यदि इस प्रचलन ने जोर पकड़ा तो स्थिति ऐसी बन जायेगी जिसके लिए समूची मनुष्य जाति को पश्चाताप करना पड़ेगा।

पुत्र और पुत्री में अन्तर क्यों ?

दिन और रात के मिलने से समय का चक्र घूमता है। सुख और दुःख के तानों-बानों से जीवन का निर्माण होता है। ईंट और गारे के सम्मिश्रण से एक आलीशान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इमारत निर्मित होती है। यही स्थिति हमारे समाज की भी है। इसमें अच्छाइयाँ-बुराइयाँ दोनों हैं, जब कभी अच्छाइयों की वृद्धि होती है तो समाज का वातावरण स्वर्गोपम बन जाता है और प्रत्येक मनुष्य में देवत्व की झाँकी दृष्टिगोचर होती है। इसके विपरीत जब बुराइयों का आधिपत्य स्थापित हो जाता है तो यही स्वर्गतुल्य समाज नरक के सदृश बन जाता है। देवता कहलाने वाले मनुष्य राक्षसी प्रवृत्तियाँ अपना लेते हैं। चारों ओर दुःख, क्षोभ, विषमता की घटाएँ छाने लगती हैं।

ऐसी विषम स्थिति में श्रेष्ठ पुरुष, महामानव समाज का सन्तुलन बनाने के लिए आगे आते हैं और सर्वस्व की बाजी लगाकर समाजोद्धार एवं राष्ट्रोत्थान का कार्य पूर्ण करते हैं। जब भी ऐसा समय आया—नारियाँ पीछे नहीं रहीं वरन् पुरुषों के समकक्ष होकर प्रत्येक कार्य में अपना योगदान देती रही हैं। चाहे वह पारिवारिक, सामाजिक, लोकसेवा या अन्य कोई भी क्षेत्र क्यों न हो।

दुर्गा शक्ति के अवतरण की कथा सर्वविदित है। असुरों और देवताओं के युद्ध में जब देवताओं की पराजय होने लगी तो उन सबकी विशेषताओं के संयोग से दुर्गा का अवतरण हुआ। उस महाशक्ति के सम्मुख राक्षसों की दाल न गली और वे नष्ट हो गये। नारी में अद्भुत सामर्थ्य है। देवी अनुसूइया का जीवन-चरित्र इसका प्रमाण है। एक बार महर्षि अत्रि ने चित्रकूट को अपना प्रयोग स्थल बनाया। वहाँ पानी की कठिनाई थी। अनुसूइया ने उस कठिनाई का हल निकालने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया और भगीरथ की तरह तप करके 'मन्दाकिनी' नामक नदी को इस क्षेत्र में प्रवाहित कर दिखाया।

इसी प्रकार ज्ञान और विवेक, शौर्य और साहस के क्षेत्र में भी नारी के अपने अनोखे कीर्तिमान हैं। लेकिन आज इससे ठीक उल्टी स्थिति दिखाई देती है। कहाँ तो भारत की वह गौरवमयी परम्परा जब नारी तप, ज्ञान आदि से लेकर युद्ध क्षेत्र तक में अपने चमत्कार दिखलाती थी और कहाँ आज की यह स्थिति कि वह कुण्ठित एवं अविकसित होने के कारण दैनिक जीवन की साधारण-सी समस्याओं का समाधान भी नहीं निकाल पाती। कहने को भारतीय नारी जीवित अवश्य है पर वह बुरी तरह मनोमृत हो चुकी है। आज नारी समाज का मूल्य और महत्त्व बहुत गिर चुका है।

नारी वर्ग की वर्तमान दुर्दशा पर विचार करने से ज्ञात होता है कि मुँह से चाहे जैसे भी नारी की गरिमा का बखान किया जाता है और शास्त्रों में उनके सम्बन्ध में चाहे कैसी भी उच्च बातें लिखीं हों पर व्यवहार में उनको वास्तव में हीन समझा जाता है। इसका प्रमाण कन्या का जन्म होते ही मिल जाता है। जब किसी घर में लड़की पैदा हो जाती है तो वहाँ का वातावरण एकदम उत्साहरहित और नीरस बन जाता है। ऐसा लगता है मानो उनके ऊपर कन्या रूप में कोई भारी तथा बेकार का बोझ आ पड़ा है। यदि पुत्र का जन्म होता है तो बधाइयाँ दी जाती हैं, बड़ा उत्सव मनाया जाता है, घर का प्रत्येक सदस्य फूला नहीं समाता।

आज हमारे हिन्दू समाज में बहुत कम व्यक्ति ही ऐसे होंगे जो पुत्री का जन्म होने पर भी पुत्र के जन्म की भाँति ही प्रसन्नता का अनुभव करें। अधिकांश व्यक्ति तो पुत्री के जन्म को एक अभिशाप मानते हैं। इतना ही नहीं कन्या को एक बड़ी डिक्री की उपमा दे दी जाती है और उसे पराये घर का कूड़ा मानकर उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है।

जैसे-जैसे लड़की बड़ी होती है वैसे-वैसे यह भेदभाव भी अधिक प्रत्यक्ष होता जाता है। लड़के-लड़की के पालन-पोषण, खेलने-कूदने, शिक्षा-दीक्षा में सर्वत्र लड़के को ही प्रधानता दी जाती है। यहाँ तक कि खाने के मामले में भी बेटे का विशेष ध्यान रखा जाता है। इस असन्तुलन की सीमा इतनी बढ़ जाती है कि बेटा तो खूब अच्छी-अच्छी वस्तुएँ खाता रहता है और बेटी ललचाई आँखों से देखती व तरसती रहती है या फिर उसे बचे-खुचे पर ही सन्तोष करना पड़ता है।

इस प्रकार की भेद-भाव की ओछी बातों को, पुरानी निरर्थक मूढ़-मान्यताओं को मानने वाली महिलाएँ और भी बढ़ावा देती हैं। वे कन्या को छोटेपन से ही तरह-तरह के ताने सुनाया करती हैं। साधारण-सी बातचीत में भी उसे अनेक अपमानजनक कटुशब्द कहकर तिरस्कृत करती रहती हैं। वे अपने व्यवहार से यह प्रकट करती हैं कि वह परिवार पर एक भारस्वरूप है। हँसने-हँसाने के अवसर पर भी उसे हँसाने का मौका न देकर कुलीनता का उलाहना देते हुए चुप रहने के लिए मजबूर किया जाता है। इन सब बातों का प्रभाव कन्या के भावुक तथा कोमल मन पर ऐसा पड़ता है कि वह अपने आप को सदा के लिए दीन-हीन, कमजोर और पराश्रित समझने लगती है। उसकी यह भावना कायरता का रूप धारण कर प्रगति का मार्ग अवरुद्ध कर देती है।

हमारे समाज में जिन कुप्रथाओं और जिन कुरीतियों ने अपनी जड़ें जमा ली हैं, उनके कारण जनमानस में यह मान्यता प्रबल हो गयी है कि कन्या जन्म से लेकर मरण तक खर्च ही कराती रहती है और बेटा सारी उम्र कमाई खिलाता तथा वंश चलाता है। केवल इतना ही नहीं, बुढ़ापे में सेवा करता है और मरणोपरान्त दान देकर स्वयं का अधिकारी बनाता है, जबकि यथार्थता इससे बिलकुल भिन्न है। कुछ ही पुत्र ऐसे होते होंगे जो अपने प्रति माता-पिता की भावनाओं को तथा माता-पिता के प्रति अपने कर्त्तव्यों को समझकर उन्हें पूरा करते हों। अधिकांश की मान्यता तो यही रहती है कि माता-पिता ने यदि हमारे लिए कुछ किया तो इसमें एहसान की क्या बात है ? यह तो उनका कर्त्तव्य था क्योंकि उन्होंने हमें जन्म दिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ ऐसे होते हैं जो समझते तो हैं किन्तु यह कहकर टाल देते हैं कि "उनके प्रति केवल हमारे ही नहीं बड़े अथवा छोटे भाइयों के भी दायित्व हैं।" पुत्रों के ऐसे क्रिया-कलाप माता-पिता की काँच जैसी उज्ज्वल भावनाओं और आशाओं को चकनाचूर कर डालते हैं, जबकि बेटी कहीं भी किसी भी स्थिति में क्यों न हो, अपने माता-पिता एवं आत्मीयजनों के दुःख-कष्टों की बात जानकर विह्वल हो उठती हैं। उनके कष्टों को दूर करने के लिए वह हर सम्भव प्रयास करती है और स्वयं की सुख-सुविधाओं को क्षणभर में तिलांजलि दे देती है।

यह सब समझते हुए भी हर एक माता-पिता के मन में यही ललक लगी रहती है कि बेटा अवश्य होना चाहिए। बेटे के बिना तो सब कुछ व्यर्थ है। पढ़े-लिखे और समझदार कहे जाने वाले लोग भी दीवाने से बने ओझाओं-ज्योतिषियों के दरवाजे की धूल फाँकते, देवी-देवताओं की मूर्तियों, मन्दिरों के सम्मुख नाक रगड़ते और मनौतियाँ मनाते देखे जाते हैं। उन समझदारों की इस नासमझी को मन की संकीर्णता के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ?

प्रत्येक माता-पिता को लड़की के प्रति पराई का भाव और उपेक्षा का व्यवहार रखने की मूढ़ता से मुक्त होना चाहिए। लड़की परिवार और समाज के लिए एक अभिशाप है—इस मान्यता को त्यागकर यह समझना चाहिए कि लड़का अथवा लड़की जिसकी भी आन्तरिक वृत्तियाँ नीच प्रकृति की होंगी, जो भी अयोग्य और खराब स्वभाव का होगा वही समाज का अहित करेगा तथा उसके प्रसन्न प्रवाह में क्लेश, कलह, कटुता का विष बीज बोयेगा। फिर लड़की का अविकसित और अयोग्य होना तो और भी हानिकारक है, क्योंकि वही तो समाज की भावी पीढ़ी का निर्माण एवं विकास, सुचारु-सन्तोषजनक रीति से कर सकने में समर्थ होती है। एक लड़की दो कुलों से सम्बन्धित होती है। यदि उसे आरम्भ से ही बोझ न समझकर सद्व्यवहार करने वाली, सद्गुण सम्पन्न बनाने की ओर ध्यान दिया जाय, अपने कर्त्तव्यों का बोध कराया जाय तो वह दोनों परिवारों की उन्नति तथा कल्याण में सहायक सिद्ध हो सकती है।

कन्या शिक्षा पर भी ध्यान दिया जाय

सभ्यता का प्रकाश और ज्ञान का आलोक जैसे-जैसे फैलता जा रहा है वैसे-वैसे लोग शिक्षा की आवश्यकता अनुभव करने लगे हैं। अनपढ़, अशिक्षित माता-पिता भी अपने बच्चों को सभ्य, शिक्षित और सुसंस्कृत देखना चाहते हैं। जहाँ ज्ञान की एक किरण भी नहीं पहुँच पायी है वहाँ की बात और है अन्यथा कोई भी अभिभावक अपने बच्चे को असभ्य, अशिक्षित और असंस्कृत देखना पसन्द नहीं करते। यह जानकर सन्तोष किया जा सकता है कि लोग शिक्षा की आवश्यकता अनुभव करने में लगे हैं। गरीबी और अभाव के कारण जो लोग अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेज पाते, पढ़ने जाते दूसरे बच्चों को देखकर कसक तो उनमें भी उठती ही है।

मध्यम वर्ग के लोग तो अपने बच्चों की शिक्षा पर अवश्यमेव ध्यान देते हैं, लेकिन ये सभी सन्तोषजनक पक्ष लड़कों से ही सम्बन्धित हैं। लड़कियों की स्थिति आज भी जहाँ की तहाँ है। मध्यम वर्ग के परिवारों में भी उनकी शिक्षा पर नहीं के बराबर ध्यान दिया जाता है। यह खेदजनक ही है कि हम एक ही माँ की कोख से जन्मे पुत्र व कन्या से भेद बरतें। लड़के की शिक्षा को तो इतना आवश्यक समझ लें कि उसके लिए यदि हमें अपना पेट भी काटना पड़े तो नागवार नहीं लगे और लड़की को स्कूल भेजने का अर्थ धन के अपव्यय से लगायें।

क्या लड़की को शिक्षा की आवश्यकता नहीं है ? क्या उसके लिए शिक्षा की कोई उपयोगिता नहीं है ? आदि ऐसे प्रश्न हैं जो कन्या के लिए शिक्षा की उपेक्षा करते समय उठने चाहिए लेकिन आमतौर पर माता-पिता अपनी कन्या की उपयोगिता एक ऐसी गृहिणी से अधिक नहीं आँकते हैं, जिसके जिम्मे केवल खाना खाने और चौका-चूल्हा सँभालने का ही कार्य है। इन कार्यों की परिधि से हटकर उसका कोई दूसरा क्षेत्र ही नहीं है।

लड़की की पढ़ाई की उपेक्षा इसलिए भी की जाती है कि अभिभावक सोचते हैं कि आखिर लड़की को पढ़ा-लिखाकर कोई नौकरी तो करानी नहीं है और नौकरी करेगी भी तो क्या हम उसकी कमाई का लाभ उठा सकेंगे। उसकी कमाई तो उसी परिवार में चली जायेगी जिसमें कि वह बहू बनकर रहेगी। यह संकीर्ण दृष्टिकोण ही कन्या शिक्षा की उपेक्षा का कारण बन जाता है।

शिक्षा व्यक्ति की अन्तर्निहित क्षमताओं के विकास का अभ्यास है। एक सुशिक्षित व्यक्ति और अपनी योग्यता के बल पर जिस कार्य को सुथरे और सुन्दर ढंग से सम्पन्न कर सकता है उतने अच्छे ढंग से अशिक्षित और फूहड़ व्यक्ति नहीं कर सकता क्योंकि शिक्षा कोई भी कार्य सुन्दर और कलात्मक ढंग से सम्पन्न करने की योग्यता विकसित करती है। शिक्षित गृहिणियों और अशिक्षित गृहिणियों के घर मकान से लेकर उनके रहन-सहन और बच्चों तक में अन्तर देखा जा सकता है।

बेटी को यदि हम अपने ही शरीर का एक अंग, अपनी ही आत्मा समझते हैं, उसमें कोई फर्क नहीं करते तो उसके विकास पर ध्यान क्यों नहीं देते ? स्वच्छताप्रिय व्यक्ति कभी अपने हाथ-पैर के उस भाग को गन्दा-गलीज नहीं रखता जिन पर कि वस्त्र पहने रहते हैं। हालांकि वे भाग किसी के दीखने में नहीं आते। कन्या भी परिवार शरीर का एक हिस्सा है, उसे अशिक्षित, फूहड़ और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

गँवार रखना वैसा ही बन जाता है जैसा कि छाती कौन देखता है कि उस पर मैल है। अतः उसे वैसा ही रहने दिया जाय यह सोचने वाला इस दृष्टि से तो शायद ही कोई सोचता है, पर कन्या के सम्बन्ध में वैसा व्यवहार करने वाले बहुतेरे हैं। कन्या पढ़ी-लिखी है या नहीं यह कौन पूछने जाता है ? वह जैसी भी है उसका लाभ या हानि तो ससुराल वाले ही उठायेंगे।

लाभ ससुराल वाले उठायें और प्रयत्न तथा परिश्रम हम करें—यह सोचना भी गलत है। बेटी अपनी है तो उसे योग्य और कुशल बनाने का फर्ज हमारा है, तभी तो सही अर्थों में कन्यादान हो सकेगा। विवाह के समय कन्या का दान किया जाता है और स्मरणीय है दान हमेशा पवित्र तथा पूर्ण वस्तुओं का किया जाता है। अपूर्ण, भंग और खण्डित वस्तुओं का दान, पुण्य नहीं पाप बताया गया है, क्योंकि उस प्रकार दाता उन खण्डित वस्तुओं से मुक्त होने तथा दान का पुण्य भी लूटने की दोहरी चालाकी करता है और धर्म तथा पुण्य के क्षेत्र में चालाकियों से काम नहीं चलता, वे उल्टे परिणाम उपस्थित करती हैं। कन्यादान भी करना है, तो उसे योग्य और सुशिक्षित बनाकर ही करना चाहिए।

लड़की की शिक्षा का लाभ दूसरे लोग उठायें तो पढ़ाना क्या जरूरी है—यह संकीर्ण दृष्टिकोण शिक्षा के प्रति हमारी गलत मान्यताओं के कारण ही जन्म लेता है। शिक्षा को व्यक्तित्व के विकास का माध्यम समझने वाले लोग नहीं के बराबर हैं। अधिकांश तो यही समझते हैं कि शिक्षा की उपयोगिता केवल नौकरी मिल जाना ही है। जिन लोगों ने शिक्षा के महत्त्व को समझा है, उनमें से अधिकांश की दृष्टि शिक्षा को जीविका मिलने का एक माध्यम भर देखती हैं और इसी कारण अधिकांश अभिभावक अपने बच्चों को केवल नौकरी के उद्देश्य से पढ़ाते हैं। जो लोग अपने बच्चों को पैतृक व्यवसाय में लगाने का ध्येय रखते हैं, वे अपने बच्चों को सामान्य कक्षाओं तक पढ़ा कर ही रुक जाते हैं।

शिक्षा को रोजगार का माध्यम समझने के कई दुष्परिणाम है। एक तो शिक्षित व्यक्ति केवल नौकरी के आश्रित ही रह जाता है, दूसरे व्यवसाय में खप सकने की उसमें न योग्यता होती है और न ही वह आवश्यक समझता है, क्योंकि पन्द्रह-सोलह वर्ष तक जो युवक शिक्षा को दुधारू गाय समझकर उसे दुहने की घड़ी की प्रतीक्षा करता रहा वह अन्य कार्य में क्यों लगना चाहेगा। चूँकि लड़की को पढ़ा-लिखा कर नौकरी नहीं करवानी है तो उसे पढ़ाने की आवश्यकता भी व्यर्थ लगती है।

इस मान्यता को बदलने के साथ-साथ कन्या शिक्षा की उपेक्षा के अन्य दुष्परिणामों को भी समझाना चाहिए, प्रायः समझा जाता है कि लड़की एम. ए. पास हो या प्राइमरी अथवा एकदम अनपढ़, तो भी वह जिस घर में शिक्षा के कारण न तो उसका स्थान ऊँचा उठ जाता है, और न ही नीचा रह जाता है। यहाँ यह भी देखना चाहिए कि लड़की जितनी पढ़ी-लिखी होगी, उसी स्तर के परिवार में उसका ब्याह होगा। सुशिक्षित और सभ्य लोग अनपढ़ या अल्पशिक्षित लड़कियों के सम्बन्ध स्वीकार नहीं करते। पढ़ा-लिखा लड़का अपने बराबर भी न सही तो श्रेणी कम शिक्षित लड़की से ही विवाह करना पसन्द करेगा। यह नहीं कि वह एकदम अनपढ़ लड़की से विवाह करने को राजी हो जाय। अर्थात् परिवार और पति का चुनाव उसके बराबर या समकक्ष कक्षा तक शिक्षित वर्ग में से ही होता है।

कदाचित् पैसे, पद या प्रतिष्ठा के बल पर कम पढ़ी-लिखी लड़की का उच्चशिक्षित युवक से विवाह कर भी दिया जाय तो दोनों की पटरी नहीं बैठती। गाड़ी का एक छोटा पहिया और एक पहिया बड़ा हो तो गाड़ी गड्ढे में गिरेगी ही, सवार को भी ले बैठेगी। समझ-बूझ कर एक-दूसरे का निर्वाह करने वाले दाम्पत्य संख्या में कम हैं। अतः प्रेम के बल पर ही दाम्पत्य जीवन चलते रहने की सम्भावना भी क्षीण हो जाती है।

अशिक्षित माता अपने बच्चों का पालन-पोषण और देख-रेख कर लेती है पर उनका निर्माण करने में असमर्थ रहती है, क्योंकि बालकों के निर्माण में सूझ-बूझ और समझ-विवेक की आवश्यकता है, वह अशिक्षित माताओं में प्रायः अनुपस्थित रहती है, अतः लड़कियों को शिक्षा और भी अधिक आवश्यक है इसलिये कहा गया है कि एक लड़का पढ़ लिख गया तो उसका लाभ केवल उसे ही मिलेगा। पर एक माँ यदि शिक्षित और समझदार हो तो समझना चाहिए कि सारे परिवार के लिए हीं सुशिक्षा का आधार बन गया।

कन्या शिक्षा की उपेक्षा कराने वाला संकीर्ण दृष्टिकोण यथासम्भव शीघ्र ही बदलना चाहिए और नारी आवश्यकता को समझना चाहिए। पिता, पति और भाई सबको इसी दिशा में चेष्ट हो जाना आवश्यक है। पिता अपनी लड़कियों की शिक्षा के मामले में उपेक्षा न करे, पत्नी अनपढ़ हो तो उसे पति पढ़ाये और भाई अपनी बहिन की शिक्षा पहल करें। सुयोग्य पुरुष और सुयोग्य स्त्री दोनों मिलकर ही इस प्रकार समाज में सुखद परिस्थितियाँ बना सकेंगे।

छात्राओं का अनुकरणीय उदाहरण

लड़कियों के बारे में यह मान्यता बन गई है कि वे आत्म-रक्षा व अनैतिकता के प्रतिरोध में कुछ नहीं कर सकतीं। मध्य युग में सामाजिक व्यवस्था कुछ रही भी ऐसी कि नारी जाति के किसी भी गुण के विकास पर ध्यान नहीं दिया गया। उसके फलस्वरूप उनमें हीनता की कठिन ग्रन्थि पड़ गई। इसी के कारण उनमें स्वयं कुछ करने का प्रयास तो दूर विचार भी आने बन्द से हो गये। आज स्त्री समाज को थोड़ा बढ़ाया दिया जाने का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयास किया जा रहा है—फिर भी उसमें पर्याप्त मात्रा में आत्मनिर्भरता की भावना का समावेश नहीं हो सका है। इसी दुर्बलता का लाभ उठाकर मनचले, बदमाश, गुण्डे अपनी हरकतें महिलाओं के बीच में करने में जरा भी भय नहीं खाते हैं किन्तु वे थोड़ा भी प्रयास करें तो बदमाशों के कारनामे बहुत अंशों तक रुक सकते हैं। इसका एक उदाहरण बम्बई विश्वविद्यालय की छात्राओं ने दिया।

कुमारी नीलम बी. नाइक नामक विश्वविद्यालय की छात्रा सोने की एक जंजीर पहने थी। एक बदमाश की निगाह उस पर पड़ी। हाथ की सफाई से जेब के पैसे या पहने हुए आभूषण निकालने में एक वर्ग पर्याप्त कुशल है किन्तु उस बदमाश को इस प्रकार सतर्कतापूर्ण तरीके की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। आस-पास मनुष्य थे नहीं और लड़कियों को भला क्या गिनती ? वह तो थोड़ा भय दिखाने से चीखना भी भूल जाती है, विरोध तो दूर की बात है। बस यह विचार करके उसने एक ओर साइकिल टिकाई तथा सामान्य रूप से टहलता हुआ उक्त छात्रा के पास पहुँचा। छात्रा प्रश्न भरी दृष्टि से उसके प्रयोजन को समझने का प्रयास करने लगी। जब तक वह कुछ पूछे शेख निजार नामक उस बदमाश ने हाथ बढ़ाकर एक झटके से उसकी जंजीर तोड़ ली। इशारे से चुप रहने की धमकी देकर लपककर अपनी साइकिल उठा ली।

कुमारी नीलम ने स्थिति समझ ली। एक क्षण की देरी होते ही बदमाश का निकल भागना निश्चित था। थोड़ी ही दूर उसकी तीन और सहेलियाँ थीं। उन्हें सहायता के लिए पुकारते हुए उसने झपटकर साइकिल पर चढ़ते हुए बदमाश की साइकिल पीछे से पकड़ ली। बदमाश को इसकी आशा नहीं थी। उसने एक हाथ से साइकिल सँभालते हुए एक हाथ से कु. नीलम की पकड़ छुड़ाने का प्रयास किया, किन्तु कु. नीलम कोई छुई-मुई तो थी नहीं जो इशारे से ही सिमिटकर रह जाती। एक हाथ के प्रयास, लाल-लाल आँखों तथा मार डालने की धमकी का भी उस पर कोई प्रभाव न हुआ। खीझकर शेख ने साइकिल का हैण्डिल छोड़कर घूमकर सीट को अपने शरीर का सहारा देते हुए जोर का प्रहार अपने हाथ से छात्रा की कलाई को लक्ष्य करके किया। बदमाश का हाथ कलाई पर चोट कर सके इसके पूर्व ही छात्रा ने फुर्ती से हाथ खींच लिया। बार खाली जाने से हाथ में झटका खाकर बदमाश सँभले तब तक साइकिल आगे खिंच गई। कु. नीलम की सहेलियों ने उसका हाथ छूटते ही आगे से हैण्डिल पकड़कर साइकिल को उसके अधिकार से ले लिया था।

शेख को अपनी चतुराई महँगी पड़ रही थी। देर होने का अर्थ था पकड़े जाना। वह एकदम आक्रमक हो उठा किन्तु उधर भी छात्राएँ चार थीं—वह भी संघर्ष के लिए तत्पर। वह न तो साइकिल छुड़ा सका और न उसे छोड़कर ही भाग सका। संयोग से तब तक और व्यक्ति उधर पहुँच गये तथा बदमाश पर पूरी तरह काबू पा लिया गया। उसे पकड़कर चारों सहेलियाँ सहायक व्यक्ति के साथ थाने ले गईं तथा अपनी चेन बरामद कर ली। उक्त रिपोर्ट भी दर्ज करने का आग्रह किया।

यहाँ घटना ने एक ओर नया मोड़ लिया। शेख निजार एक सिपाही का लड़का निकला। पुलिस ने उसे बचाने का प्रयास किया। छात्राओं को सलाह दी कि माल मिल ही गया। अब उस मामले को अधिक न बढ़ाना ही उचित है। मामला बढ़ने से कोर्ट आदि के हजारों झंझट खड़े हो जावेंगे। छात्राओं ने वहाँ प्रतिवाद करना उचित न समझा। अपराधी उन्हीं के सामने डाँट-फटकार के बाद छोड़ दिया गया।

ऐसी स्थिति में अपराधी को दण्डित कराने की बात की उपेक्षा बड़े-बड़े समझदार व्यक्ति कर जाते। भला पुलिस से बुराई कौन मोल ले ? किन्तु ऐसा सोचने वाले यह भूल जाते हैं कि पुलिस की सीमा बड़ी है तथा उसमें कर्त्तव्यपरायण अधिकारी भी कम नहीं हैं। छात्राओं ने उक्त काण्ड की सूचना समाचार-पत्रों को दी। समाचार-पत्रों में घटना छपी तो उच्च अधिकारियों का ध्यान उस ओर स्वतः खिंचा। घटना की जाँच हुई तथा अभियुक्त पुनः पकड़ लिया गया। मजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित किया जाकर दण्डित भी हुआ। पुलिस कमिश्नर ने उक्त अधिकारी, जिसने रिपोर्ट दर्ज करने में हीला-हवाला करके अपराधी को बचाया था, को भी नहीं छोड़ा। अपराधों को बढ़ावा देने तथा कर्त्तव्य की उपेक्षा का अभियोग लगाकर उस पर विभागीय कार्यवाही की गई।

छात्राओं के साहस तथा सूझ-बूझ से अपराधी पकड़ा गया तथा दण्डित किया जा सका। ऐसी वृत्तियों को बढ़ावा मिलना ही चाहिए। बढ़ावा मिलने से सत्कार्य करने वाले का उत्साह बढ़ता है तथा अन्यों को वैसा करने की प्रेरणा मिलती है। बम्बई की पुलिस ने सिटी कॉलेज की उक्त छात्राओं के सम्मान में एक स्वागत समारोह सामान्य स्तर पर किया। समारोह में कुमारी नीलम बी. नाइक तथा उसकी सहेलियों की बहादुरी और समझदारी की सराहना की गई। विभाग की ओर से हर छात्रा को २५ रुपया नगद पुरस्कार तथा एक-एक प्रमाण-पत्र देकर सम्मानित किया गया। यदि इसी प्रकार से हमारी बच्चियाँ अनीति के प्रतिरोध हेतु कटिबद्ध हो जावें तो उन्हें बकरी जैसी निरीह समझकर अनाचार करने वालों को अच्छी सीख मिले और अपराधों की संख्या में कमी के साथ समाज व्यवस्था में वृद्धि हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुत्र और पुत्री के बीच विषमता

पुत्र जन्मा तो बहार आ गई, हँसी-खुशी राग-रंग बधाइयाँ, भोज, दावतें और न जाने क्या-क्या ? पुत्री जन्मी तो पतझर, दुःख, निराशा और भाग्यहीनता के उच्छवास। हमारी भारतीय संस्कृति में नारी की दयनीय दशा की करुण कहानी यहीं से प्रारम्भ होती है और अन्त तक दुःखान्त ही चली जाती है। यह गाथा उस देश, धर्म और संस्कृति से सम्बन्ध रखती है, जिसमें पुरुष परमेश्वर और नारी परमेश्वरी, पुरुष शिव और नारी शक्ति की संज्ञा से विभूषित है।

पुत्र का नामकरण संस्कार किया जाता है, अन्न-प्राशन संस्कार कराया जाता है, विद्यारम्भ और यज्ञोपवीत आदि संस्कार धूमधाम से कराये जाते हैं और कल्पना की जाती है कि यह संस्कार बालक के जीवन में शक्ति, शुचिता और तेजस्विता का अभिवर्धन करेंगे किन्तु कन्या को इस संस्कारों से वंचित रखा जाता है। तात्पर्य यह है कि अपने आदर्श शास्त्रीय मान्यताओं तक ही सीमित हैं व्यवहार में कन्या के उज्ज्वल पक्ष की बात भी सोचना भारतीय परम्परा के विपरीत हो गया है। नर और नारी दोनों आत्मिक परिपूर्णता का समान उद्देश्य लेकर ही मनुष्य शरीर प्राप्त करते हैं। एक को मार्ग-दर्शन मिले, प्रकाश मिले, संबल मिले और दूसरे को प्रेरणा व प्रोत्साहन तो दूर मानवीय जीवन की गरिमा ही समझने न दी जाये यह कहाँ का न्याय और कैसी सभ्यता है ?

बेटे का पालन-पोषण, लाड़-प्यार इस तरह किया जाता है जैसे उसे अगले दिनों राजगद्दी मिलने वाली हो, कन्या को तो जीवन निर्वाह की सुविधाएँ प्रदान कर दी जाती हैं यही क्या कम उपकार है उसके लिये ?

शहरों की बात दूसरी है जहाँ सामाजिक जीवन अब नई करवट लेता जा रहा है, पर गाँवों में आज भी स्थिति यह है कि यदि किसी ने बच्ची को पढ़ाने-लिखाने का साहस दिखाया तो कक्षा ७-८ या अधिक से अधिक सुविधा वाले क्षेत्रों में कक्षा १० तक पढ़ा दिया और इस पढ़ाई तक पहुँचने से पूर्व ही उसके लिए साँकल तलाश दी। बेचारी ने जरा साँस ली कि गले में विवाह का बन्धन डाल दिया। लड़के आवारागर्दी करें तो भी माँ-बाप की यही इच्छा रहती है कि बेटा पढ़-लिखकर कुछ हो जाये। उधर कन्या पढ़ने-लिखने की हार्दिक अभिलाषा को कुचलकर मन मसोस रह जाती है। फिर वह चाहे कितनी ही बौद्धिक क्षमता सम्पन्न क्यों न हो ?

छोटे भाइयों की, भाइयों के बच्चों को, चाचा-ताऊ के बच्चों को पढ़ाने का अधिकांश भार बेचारी यह कन्याएँ ही उठाती हैं। चौके-चूल्हे का बोझ इन कोमल कलियों पर डालकर भी माँ-बाप का फतवा होता है 'अजी, घर में नहीं सीखेगी तो क्या ससुराल में सीखेगी ?' घर वालों की नाक न कटे इस अपयश के भय से किशोरी कन्याएँ मन में आत्महीनता की भावनाएँ लिए घर में अपमान भरा जीवन जीती और वहाँ से यथा शीघ्र निकाले जाने की प्रतीक्षा करती रहती हैं। यह है अपनी सुसंस्कृत कही जाने वाली जाति की सुघड़ व्यवस्था और परम्परा जिसे हम लम्बे समय से लादे हुए चले आ रहे हैं।

समाज इस दयनीय दुर्दशा का हर्जाना भी उसके माँ-बाप से खूब अच्छी तरह वसूल करता है। कन्या को स्वस्थ और प्रकाशपूर्ण वातावरण में रखा गया होता उसे शिक्षित, स्वावलम्बी और स्वाभिमानी बनाया गया होता तो लड़के वाले नाक रगड़ते और लड़की वालों के दरवाजे पर हाथ जोड़े खड़े रहते हैं कि यह कन्या हमें मिल जाये तो सुनसान घर में रोशनी आ जाये। कूड़े-कचरे को उठाने के लिए तो मुआवजा चाहिए, सो लड़के वाले अच्छी तरह से वसूल करते हैं और कन्या को दयनीय स्थिति में रखने का पाप उसके माँ-बाप भी अच्छी तरह भुगतते हैं नहीं तो एक बार यही करके देख लिया जाये कि शिक्षित कन्याएँ यह प्रतिज्ञा कर लें कि वे दहेज लेने वालों या कन्याओं को द्वितीय श्रेणी का नागरिक समझने वालों के घर नहीं जायेंगी चाहे अविवाहित ही क्यों न रहना पड़े तो दहेज चुटकी बजाते बन्द होता है या नहीं ?

पर यहाँ तो सब कुछ उल्टा है। कन्या विदा होती है तो माँ-बाप इसलिए दुःखी नहीं होते कि घर से घर की शोभा, घर का विनोद, घर की चहल-पहल जा रही है अपितु इसलिए कि अब बच्चों को कौन खिलायेगा ? घर कौन साफ करेगा या चूल्हे में मुँह कौन फूँकेगा ?

कन्या के अभिभावक तो छोटी लड़कियों पर आर्थिक दृष्टि से कुछ खर्च ही अधिक करते हैं और श्रम का लाभ कम उठाते हैं पर ससुराल में तो वैसी स्थिति नहीं है। वहाँ सयानी कन्या दिन-रात कोल्हू के बैल की तरह जुतती है और रोटी-कपड़े की कीमत पर कठोर श्रम करती है। इस लाभ के बदले कम से कम वहाँ उसे थोड़ा सम्मान तो मिलना ही चाहिए था पर देखा जाता है कि वहाँ इसमें पूरी कृपणता बरती जाती है। सास-ननद से लेकर पति देवता तक उस पर गरजते-बरसते ही रहते हैं। इसी नीरस जीवनक्रम में बन्दिनी की तरह उसे अपनी साँसें किसी प्रकार रोते-झींकते पूरी करनी पड़ती हैं। यही है भारतीय नारी की करुण कहानी।

यह दयनीय स्थिति तब तक सुधरेगी नहीं जब तक कन्या को भी पुत्र की ही तरह स्नेह, सम्मान एवं शिक्षण के समान सुविधा प्राप्त नहीं होती। जब तक प्रचलित विषमता हटेगी नहीं तब तक जातीय जीवन की उन्नति और सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास की कल्पना करना व्यर्थ है। आधे शरीर को पक्षाघात मार जाये तो आधा शरीर भी सुखी कैसे रह सकता है ? सुख-समुन्नति का आधार तो उभयपक्षीय सन्तुलन है। एक की उपेक्षा करके दूसरे की प्रगति न आज तक कभी हुई और न आगे होने वाली है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों के मूल्यांकन का आधार गुणवत्ता हो, रूप नहीं

सुन्दरता एक वरदान है, वह सभी को प्रिय है। किसी बच्चे का सौन्दर्य हमें सहज आकर्षित करता है। उसकी भोली, सौम्य चितवन से झाँकती मोहकता से, उसके सुडौल, स्वस्थ अंग-अंग से फूटते लावण्य से प्रभावित हो हम उस बालक को गोद में उठाकर प्यार करने लगते हैं, यह स्वाभाविक है।

इसके विपरीत उसी स्थान पर दूसरा बालक उतना सुन्दर न हो तो कोई उसे उस ललक और प्यार से स्पर्श न करेगा, जिससे उस सुन्दर बालक के प्रति सहज द्रवित हो अपना वात्सल्य उड़ेला था। बहुधा माता-पिता भी सुन्दर बालक के प्रति अज्ञात रूप में पक्षपात करते हैं। यदि कहीं दोनों बालकों में लड़ाई होती है और सुन्दर बच्चा कुरूप बच्चे को मार देता है तो वह रोता हुआ माँ के पास शिकायत लेकर आता है तो माँ को क्रोध तो बड़ा आयेगा, आवेश में भड़क उठेगी, लेकिन जब सुन्दर बच्चा उतरा चेहरा लेकर, अपनी रोनी सूरत में माँ के सामने आकर खड़ा होता है तो उसकी मोहक आकृति पर सहज पिघल जाती है और भीतर से उसका मन सजा न देने को कहता है। वह सोचती है कि यदि इसे दण्ड दिया जायेगा तो इसका गुलाब-सा चेहरा मुरझा जायेगा, वह भाव जागते ही वह उसे बाहर क्रोध दिखाकर भी, उसके प्रति उदार हो जाती है और उसे तनिक-सी डाँट बताकर छोड़ देती है, आगे ऐसा काम न करने की हिदायत देकर अपना काम समाप्त करती है।

माता-पिता का जाग्रत विवेक ही सुन्दर और कुरूप बालकों के बीच पनपते वैमनस्य को मोड़ दे सकता है। माता-पिता का पहला दायित्व है कि वे अपने बच्चों के बीच ऐसा कोई भेदभावपूर्ण व्यवहार न करें, जिससे उनकी सन्तान में वैर-विद्वेष के बीज पड़ें।

मनोवैज्ञानिकों का ऐसा अनुभव है कि अधिकांश सुन्दर बालक योग्यता तथा कर्त्तव्य-परायणता में साधारण बच्चों से कम होते हैं, पढ़ाई-लिखाई, गाना-बजाना तथा अन्य कलाओं में साधारण रूप वाले लड़के और लड़कियाँ ही विशेष निपुण पाये जाते हैं।

ऐसे बच्चे ही सुखी जीवन आदर्श गृहस्थ का उदाहरण रखते हैं। रूपवान बालक अधिकतर असहनशील और बेपरवाह होते हैं, उनकी प्रकृति में मधुरता, नियमपालन की लगन का अभाव होता है। बिना सुन्दर स्वभाव के रूप फीका प्रतीत होता है।

अनेक घरों में बालकों के प्रति पक्षपात अनजाने ही प्रारम्भ हो जाता है। लोग दावत, प्रीतिभोज, विवाह आदि में सुन्दर बालकों को ही साथ ले जाते हैं, विद्यालयों में भी उन्हीं को अभिनय, वाक् प्रतियोगिता और खेल-कूद में आगे रखा जाता है। घर में जो मित्र या परिजन आते हैं वह सुन्दर बालकों को मिठाई, खिलौने आदि वस्तुओं को देकर उन्हीं पर प्यार दिखाते हैं, ऐसे अवसरों पर माता-पिता भी कुरूप बच्चों को सबके सामने कम ही निकालते हैं।

लेकिन रूप के मद में पले गर्वीले स्वभाव का परिणाम दुःखदायी होता है। रूप में जादू करने की अद्भुत क्षमता है, वह थोड़ी-सी सजावट और साज-सँवार से सुन्दर लगता है। सौन्दर्य के प्रभाव से समाज में प्रशंसा और सहानुभूति सहज ही मिल जाती है। जीवन-यात्रा में सहयोग और सहकारिता सहज ही सर्वत्र प्राप्त होते हैं, परन्तु देखा यह जाता है कि माँ-बाप भी अपने रूपवान बच्चे को सही मार्ग पर ले जाने में असफल ही रहते हैं। वे बच्चे के प्रति मोहाविष्ट हो जाते हैं, बच्चा उद्दण्ड हो जाता है। यह प्रभाव उसे आगे के जीवन में असफल बना देता है।

ऐसे बालकों का चरित्र प्रायः खराब हो जाता है, वे कुमार्गगामी हो जाते हैं। जब तक यौवन का नशा और नये रक्त का लावण्य उसके चेहरे पर खेलता है, तब तक तो उल्टे-सीधे कार्य करने पर उसका निर्वाह, मौज और मजे से होता है परन्तु जैसे ही उसका यौवन ढलता है और बाह्य आकर्षण क्षीण होता है, तब ऐसे रूप प्रताड़ित आत्म-प्रशंसा प्रिय बालक मर्यादा का उल्लंघन करने लगते हैं, उनकी आत्म-प्रशंसा सुनने की कामना भड़कती रहती है, जबकि उसकी शक्ल भयावह दिखाई देती है। ऐसे रूप पीड़ित घमण्डी बालकों का अन्त बड़ा दुःखद होता है।

एक सज्जन के दो पुत्रियाँ हैं, एक पिता के समान सुन्दर और दूसरी माता के समान बिल्कुल सामान्य। रूपवती कन्या माता-पिता दोनों की लाड़ली थी। उसने पढ़ने-लिखने और गृहकार्य में कोई व्यावहारिक ज्ञान नहीं प्राप्त किया। इसके विपरीत जो देखने में साधारण है, वह अपनी कक्षा में सदैव प्रथम, घर के कार्यों में सदैव सक्रिय रहकर, स्वभाव और व्यवहार में मधुर रहकर अपनी परिश्रमी वृत्ति से आज लेडी डाक्टर बनी हुई है, उसका गृहस्थ जीवन सुखी और आदर्श है।

परन्तु दूसरी जो रूप के प्रदर्शन और फैशन की होड़ में आगे रही, वह शिक्षा में तो आगे बढ़ ही नहीं सकी, वह साधारण व्यवहार में अधकचरी और नाजुक मिजाज में सबसे आगे है, जिसका फल है—नवयुवक उससे विवाह करने को तैयार नहीं होते, उसे चहकती चिड़िया, बुलबुल और इन्द्रपरी की उपाधि मिली हुई है। अधिकांश युवकों का मत है, वह एक अच्छी गृहिणी बनने की सामर्थ्य खो चुकी है, माँ-बाप भी परेशान हैं। वे पछताते हैं कि बचपन में पक्षपात न किया होता और इस प्रकार उसके मस्तिष्क को सातवें आसमान पर न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चढ़ने दिया होता तो वह अपने सुखी जीवन के साथ एक रूपवती, कर्त्तव्य-परायण, सुगृहिणी बन सकी होती।

लोगों को, विशेषतः नारियों को अपने रूप की प्रशंसा सुनने की हमेशा चाह रहती है, रूप की प्रशंसा से वे कभी तृप्त नहीं होतीं। एक महिला के विषय में पता है कि उसे अपने बचपन से ही अपने रूप की प्रशंसा सुनने की आदत पड़ी हुई है, अतएव वह बड़ी होकर रूपगर्विता बन गई है। उसके परिचित उसकी इस कमजोरी को जानते हैं, उन्हें जब भी कोई काम निकालना होता है, उसके रूप की प्रशंसा किसी न किसी बहाने करने लगते हैं, जो लोग उसकी इस दुर्बलता से अवगत नहीं हैं, वे कभी भी उसके घर से आदर-सम्मान नहीं पाते।

सुन्दर बालकों के माता-पिता को नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना चाहिए। उन पर अमल करने पर बच्चों के चरित्र बन सकेंगे—

१. बालकों में रूप-रंग के कारण कोई भेदभाव और पक्षपात न किया जाय। २. बच्चों की परस्पर तुलना किये बिना प्रोत्साहन दें। बच्चे की योग्यता, क्षमता तथा गुण और रुचि और दृष्टि में रखकर मार्गदर्शन हो। ३ सुन्दर बच्चों को ऐसे कार्य दें जहाँ वे अपने रूप और व्यक्तित्व का चमत्कार दिखा सकें। ४. उन्हें सादगी और स्वच्छता की ओर मोड़ देकर प्रभावशाली बनने की प्रेरणा दी जाय। ५. उन्हें अन्य साधारण बच्चों के गुणों को परखने तथा उनके प्रति सम्मान भावना का व्यवहार करना सिखायें। ६. रूप का घमण्ड और आत्म-प्रशंसा से बचाया जाये, जिससे बड़े होकर ऐसे बच्चे दूसरों की अवहेलना और ईर्ष्या न करें। ७. अधिक सुन्दरता जीवन को शापित बनाती है, इतिहास-पुराण इसके साक्षी हैं। सुन्दर बच्चा अधिकांश में ईर्ष्या का पात्र बन जाता है, क्योंकि उसके कारण अन्य बच्चों की उपेक्षा होती है।

प्रायः देखा जाता है जो बच्चा बचपन में सुन्दर और भोला लगता है, रूप का अहंकार उसे प्रौढ़ होने पर आकर्षणविहीन बना देता है। ऐसी दशा में वह अपनी आकर्षण क्षीणता का अनुमान तो लगा नहीं पाता वरन् आडम्बरी जीवन में फँसकर नाज-नखरे दिखाता है और उपहास का पात्र बनता है, जबकि साधारण रूप वाला बालक अपने सुन्दर, शील-स्वभाव के कारण बड़ी आयु में भी शोभाशील और आकर्षक प्रभाव बनाये रहता है। परिवार, विद्यालय, मित्र परिकर सभी ओर अन्तः की सुन्दरता को बढ़ाने के प्रयास होने चाहिए। मूल्यांकन गुणवत्ता, प्रतिभा के आधार पर किया जाना चाहिए, न कि बाह्य सौन्दर्य के आधार पर।

कन्या की गरिमा पुत्र से कम नहीं

लड़का बुढ़ापे का सहारा होता है, उससे वंश चलता है, पिण्डदान मिलता है आदि तर्क प्रस्तुत करते हुए यह आशा की जाती है कि घर में जब भी प्रसव हो, तब लड़का ही जन्मे। ऐसी अभिलाषा प्रकृति परम्परा के विपरीत है। प्रत्येक प्राणी नर और मादा समान अनुपात में जन्म लेते हैं। इससे साथी बनने में सहायता मिलती है। यदि लड़का ही होने की अभिलाषा पूरी होती रहे, तो एक ही पीढ़ी में यह सारा संसार समाप्त हो जायेगा। मात्र नर ही जन्में तो भावी सन्तानोत्पादन की व्यवस्था कैसे बने ?

लड़की का लड़के से कम महत्त्व नहीं। किसी के घर की लड़की अपने यहाँ वधू बनकर आती है, तो अपनी लड़की किसी और का घर बसाती है। इस प्रकार सन्तुलन बना रहता है। न कोई घर खाली होता है और न भरता ही चला जाता है।

वंश चलने वाली बात को लड़के के साथ जोड़ना व्यर्थ है। प्रसव तो नारी करती है। पेट में गर्भ को वही रखती है। दूध पिलाकर पाल-पोसकर बड़ा भी वही करती है। इसलिए सन्तान पर शत-प्रतिशत उसी का अधिकार है। बच्चों को सुयोग्य बनाने में भी माता का योगदान पिता से अधिक रहता है। राजा जनक की पुत्री जानकी कहलाई। उनकी जो भूमिका रही वह किसी लड़के से कम नहीं थी। इसलिए शास्त्रकारों ने कहा है—

''दश पुत्र समा कन्या, यास्यात् शीलवती सुता।'' अर्थात् यदि कन्या शीलवान हो तो वह दस पुत्रों से बढ़कर है। उदाहरण के लिए इन्दिरागाँधी, गोल्डा मायर, भण्डारनायके, थैचर, एक्विनो आदि की राजनैतिक प्रशस्ति से सभी परिचित हैं। झाँसी की रानी किसी योद्धा से कम न थी। सरोजनी नायडू, विजय लक्ष्मी पण्डित, कमला चट्टोपाध्याय, महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि की महत्ता इसलिए कम नहीं हुई कि वे लड़का नहीं थी।

जीवनयापन के आधारों में सबसे बड़ा है परिवार। उसमें रहकर ही छोटे-से लेकर बड़े तक का भरण-पोषण एवं निर्वाह होता है। परिवार को सुव्यवस्थित रीति से चलाने में नारी की ही प्रधान भूमिका रहती है। परिवार का वातावरण यदि समुन्नत रहे तो उसे 'नर-रत्नों की खदान' कहा जा सकता है। पुरुष तो खरादता भर है जहाँ से रत्न निकलते हैं उसे नारी ही कहना चाहिए।

नर परिश्रमी और चतुर हो सकता है। इस आधार पर वह लड़ सकता है और कमा सकता है किन्तु स्नेह, सहयोग, श्रद्धा, समर्पण, वात्सल्य जैसे उच्चस्तरीय गुणों से नारी ही भरी-पूरी होती है। यह विभूतियाँ उसे जन्मजात रूप से मिली हुई हुआ करती हैं। स्पष्ट है कि इन आध्यात्मिक विभूतियों का रसास्वादन किए बिना जीवन नीरस, असन्तुष्ट, अतृप्त एवं अशान्त ही बना रहता है। इस आवश्यकता की पूर्ति नारी जननी, भगिनी, पुत्री एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धर्मपत्नी के रूप में करती है। इस माधुर्य के अभाव में मनुष्य की स्थिति कर्कश जैसी ही बनी रहती है। पत्नी की आवश्यकता पति को जितनी रहती है उससे कहीं अधिक बालक को माता की रहती है। मातृहीन बालक भावना की दृष्टि से अविकसित ही रहते देखे गये हैं।

नारी को प्रतिबन्धित एवं सम्मोहित स्थिति में रखा जाता है। इसलिए उसकी प्रतिभा का विकास नहीं हो पाता। यदि नर जैसी सुविधा एवं स्वतन्त्रता नारी को मिले तो वह अपेक्षाकृत कहीं अधिक विकसित एवं सफल सिद्ध हो सकती है। परीक्षाओं में लड़कियाँ जितने अच्छे नम्बर लाती हैं, उतने लड़के नहीं।

सेवा-भावना में भी लड़के की अपेक्षा लड़कियाँ, वधुएँ ही बड़े-बूढ़ों की अधिक सेवा-सहायता करती देखी गयी हैं। लड़के तो व्यस्त और मस्त रहते हुए उपेक्षा ही बरतते हैं।

यदि दायित्व सौंपे जाएँ और समुन्नत बनाने की दृष्टि रहे। उसके लिए वातावरण, कार्यक्रम बनाया जाय, अनुरूप प्रशिक्षण और अवसर दिया जाय तो कोई कारण नहीं कि वह ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा का परिचय देकर नर के अधूरेपन को दूर न कर सके। उसे शिशु-पालन का ही कौशल नहीं आता, अवसर मिले तो वह अपने परिवार-पड़ौस को—सम्बन्धी और परिचितों को भी शालीनता की शिक्षा देकर उसे मानवी गरिमा का संवाहक बना सकती है।

चिरकाल से पुरुष के अहंकार और औद्धत्य को परिपोषण मिलता रहा है। इसलिए उसने व्यक्तित्व की गरिमा बढ़ाने के स्थान पर दर्प और दमन का परिचय दिया। इसी कुचक्र में उसकी शक्तियाँ नियोजित रहीं। उसने कलह बीज बोये और आनन्दवादी क्रिया-कलाप अपनाये व युद्ध खड़े किये।

इतिहासवेत्ताओं ने अनुमान लगाया है कि ईसा पूर्व ३६०० वर्षों से लेकर अद्यावधि तक छोटे-बड़े १४,५९३ युद्ध लड़े गये। इनमें सब मिलाकर प्रायः ३ अरब व्यक्तियों को किन्हीं की सनकों को पूरा करने के लिए अपने प्राण गँवाने पड़े। इन युवाओं के धरती पर से उठ जाने पर उनके आश्रितों-सम्बन्धियों को कितना त्रास सहना पड़ा, इसका अनुमान लगायें, यदि उन कत्ल होने वालों को अपने-अपने समय में समाज को समुन्नत बनाने वाले कार्यों में जुटाने का अवसर दिया गया होता, तो आज की स्थिति कितनी समुन्नत स्तर की रही होती। इसकी कल्पना से सिहरन होती है।

अपराधी प्रवृत्तियों में पुरुष ही आगे रहता है। सौ पुरुष अपराधियों के पीछे एक महिला को उस मार्ग पर चलते देखा गया है। कारण ढूँढ़ने पर उस एक प्रतिशत में भी मजबूरियों का दबाव ही वैसा करने के लिए विवश करता पाया गया है। स्वभावतः नारी सहिष्णु, संवेदनशील और निश्छल है। उसके हाथ में समाज की बागडोर रहे तो अनीति भरी अहंता को कार्यरूप में परिणत होने का अवसर ही न मिले।

नारी की उपेक्षा होती रही है, तो भी वह सहिष्णुता सन्तुलन और सद्भावना के क्षेत्र में अभी भी पुरुषों से बढ़कर रही है। यही कारण है कि जटिल शारीरिक मानसिक रोगों से ग्रसित होने में उसे अपेक्षाकृत कहीं कम त्रास सहना पड़ता है। आहार-विहार में भी पुरुष की तुलना में उसके साथ उपेक्षापूर्ण बर्ताव ही होता रहता है, फिर भी विश्व की औसत आयु में नर की तुलना में नारी दो वर्ष अधिक जीवित रहती पाई गयी है। बालकों में लड़कों की मृत्यु-दर कहीं अधिक होती है और लड़कियों की उनकी तुलना में कहीं कम। युवतियों को बार-बार 'मेजर आपेरशन' जैसे प्रसव कष्ट सहने पड़ते हैं। मासिक स्राव और स्तनपान में भी उनकी स्वास्थ्य सम्पदा घटती है। इस पर भी प्रकृति उन्हें घाटे में नहीं रहने देती। क्षति की जल्दी भरपाई कर देती है। नियति का ऐसा भाव भरा अनुदान पुरुषों को कदाचित् ही मिल पाता है।

अगले दिनों युद्ध और प्रपंच नहीं होंगे। तब शान्ति और प्रगति के निमित्त ही कौशल का नियोजन होगा। इस निमित्त नर की तुलना में नारी का व्यक्तित्व ही अधिक उपयुक्त एवं सफल सिद्ध हो सकता है। उनकी वरीयता भूतकाल में भी इसी धरती पर स्वर्ग की संरचना करती रही है। अगले दिनों उन्हीं के बलबूते भावी सृजन और उत्कर्ष की बात सोची जा रही है। साथ ही यह भी सोचना होगा कि नारी को पिछड़ी पंक्ति से बदलकर अग्रिम मोर्चे की कमान उसे सौंपी जाय। पुत्र की तुलना में कन्या को किसी भी प्रकार हेय न समझा जाय।

"दश पुत्रा समा कन्या....."

बच्चे जितने कम और जितनी देर में हों, उतने ही अच्छे, पर यदि कुछ प्रजनन होने वाला ही हो तो ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि पुत्र न होकर पुत्री ही जन्मे। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। नारी का दर्जा नर की तुलना में हजार गुना ऊँचा है। उसकी सहायता के बिना नर हजार गुना अधूरा है। शिवजी तक सहचरी के बिना गुजारा न कर सके। सभी ऋषियों और देवताओं की पत्नियाँ थीं। पत्नियाँ ही नहीं माताएँ, भगिनियाँ और पुत्रियाँ भी। सीताराम, राधेश्याम, लक्ष्मीनारायण, उमामहेश आदि युग्मों में नारी साथ जुड़ी हुई है और प्रथमतम है।

शास्त्रकारों का कथन है—"**दश पुत्र समा कन्या यस्य शीलवती सुता**" अर्थात् शीलवती पुत्री का होना दस पुत्रों के समान है। लड़कियों को शीलवती आसानी से बनाया जा सकता है। स्वभावतः वे होती भी वैसी ही हैं। जबकि लड़कों को कठिनाई से ठोक-पीटकर गुरुकुलों में वनवास का दण्ड देकर काबू में लाना पड़ता था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

प्रचलन में पुत्र को अधिक महत्त्व मिलता है और उसके जन्म पर खुशियाँ मनायी जाती हैं, बधाइयाँ बाँटी जाती हैं, जबकि कन्या के जन्म पर मुँह लटका लिया जाता है, मानो किसी विपत्ति ने घर में प्रवेश किया है। यह मान्यता उस जमाने की है, जब जंगल काटकर खेत बनाने पड़ते थे और घर के पुरुष सदस्यों की कड़ी मेहनत से उत्पादन के साधन जुटते थे। वनों में शाकाहारी और माँसाहारी पशु रहते थे। उनके आक्रमण से खेत नष्ट होते थे और व्याघ्र पालतू पशुओं और मनुष्यों पर टूट पड़ते थे। उन्हें भगाना पड़ता था। इसमें पुरुष की शरीरगत बलिष्ठता अधिक कारगर सिद्ध होती थी। दस्युओं और सामन्तों के आक्रमण भी सद्गृहस्थों पर होते रहते थे, उनसे निपटने के लिए लड़ाकू स्वभाव और कौशल की आवश्यकता होती थी। इस दृष्टि से पुत्र की, पुरुष की आवश्यकता अधिक थी। संयुक्त परिवार प्रणाली से ही कृषि पालन, सुरक्षा प्रबन्ध हो सकता था। उस पद्धति में पुरुष प्रधानता ही कारगर थी।

पर अब परिस्थितियाँ बदल गई हैं। संयुक्त परिवार प्रणाली पश्चिम में पूरी तरह टूट गयी है। भारत जैसे कृषि प्रधान देशों में वह किसी प्रकार लँगड़ा-लँगड़ाकर चल रही है। शिक्षित नौकरी करते हैं, तबादले पर जाते हैं, पत्नी-बच्चे साथ रहते हैं। ऐसी दशा में संयुक्त परिवार कहाँ रहा ? भाइयों तक का होना इसलिए अखरता है कि वे कठिनाई के समय उनसे सहायता की माँग करते हैं। सास-बहू में पटती नहीं। ऐसी दशा में देर-सबेर में यूरोप यहाँ भी बनेगा और संयुक्त परिवार 'लार्जर फैमिली' के रूप में ही किसी प्रकार जीवित रहेगा। उसमें नर और नारी की उपयोगिता एवं स्थिति समान रहेगी।

पुराने समय में पैतृक सम्पत्ति केवल लड़कों को ही मिलती थी। वे ही बहिन, भानजों के लिए कुछ सहायता करते रहते थे और घर का दीपक वंश परम्परा का प्रवाह चलता रहता था। अब लड़कियाँ भी पिता की सम्पत्ति में हिस्सेदार हो गयी हैं। तब बहिन-भाइयों में ठनने लगी है। ऐसे ही अब पत्नी और बच्चों तक ही परिवार रह गया है। बहिन-बेटियों की सहायता भाई या चाचा, ताऊ करेंगे, उनसे मधुर सम्बन्ध रखेंगे, ऐसी आशा नहीं की जाती।

पिता-माता के लिए आज के लड़के बुढ़ापे की लकड़ी बिल्कुल नहीं हो सकते हैं। कमाई करना बन्द होते ही यह आशा की जाती है कि वे लोग जल्दी विदा हों। न सहायता करने का भाव है, न सेवा का। घर में जगह घेरना भी अखरता है और मन में यही चाहना रहती है कि यह बला यमपुरी जितनी जल्दी चली जाय, उतना ही अच्छा है। यूरोप में बूढ़ों के लिए अनाथालय बने हुए हैं और वे वही शासकीय अनुदान के सहारे अनाथों की तरह दिन गुजारते हैं। यहाँ भी वही स्थिति होने वाली है। सरकार समर्थ नहीं इसलिए विवशता और लोकलाज के हिसाब से ही कोई-कोई बूढ़ों के प्रति जिम्मेदारी निभाते हैं। आँख से ओझल रहता हो तो उसकी आशा भी नहीं की जा सकती। माँ-बाप से मरते समय तक कुछ बचा-खुचा हो तो झपट लेने की ललक रहती है। सेवा तो अस्पताल के मेहतर घर वालों से कहीं अच्छी कर देते हैं। अब श्रवणकुमारों और राम-भरत की चर्चा ही शेष है। वैसे उदाहरण खोजना बेकार है। यह स्थिति सुधरनी तो क्या बिगड़ेगी ही। स्थिति को देखते हुए बूढ़े भी सोचने लगे हैं कि बुढ़ापे के लिए कुछ बचाकर रखना चाहिए अन्यथा उस असहाय स्थिति में लड़कों की उपेक्षा बेतरह खटकेगी।

अब परलोक में पिण्डदान बेटे के हाथ का दिया हुआ ही मिलता है, इस मान्यता पर भरोसा करने वालों की संख्या दिन-दिन घटती जा रही है। इसी प्रकार वंश डूब जाने से पितरों की दुर्गति होगी इस बात पर भी कोई बिरला ही विश्वास करता है। अपनी करनी ही साथ जाती है, इस प्रतिपादन को ही लोग अधिक सही मानते हैं।

कन्या वस्तुतः वैसी निरर्थक नहीं है जैसी मानी जाती है। इसकी गरिमा निश्चय ही पुत्र की तुलना में कहीं अधिक है। विवाह न करे तो शिक्षित कन्या पिता के समस्त आश्रितों का पालन कर सकती है, जबकि बेटे अपने बढ़े हुए परिवार की चिन्ता ही में मरते-खपते रहते हैं।

लड़की को पराये घर का कूड़ा इसलिये समझा जाता है कि उसके विवाह में न जाने कितनों के सामने नाक रगड़नी पड़ती है। यह चिन्ता जन्म के दिन से ही अभिभावक को सताने लगती है और बेटी का जन्म दुर्भाग्य लगता है किन्तु आज जो कठिनाई है वह अधिक दिन टिकने वाली नहीं है। इस संकट का एक-मात्र कारण है अपनी छोटी जातियों और उपजातियों के दायरे में ही लड़का तलाश करना।

समय के परिवर्तन से जातिवाद की संकीर्णता मिट रही है। विशेषतया उपजातियों के घेरे से तो सभी समझदार इन्कार कर रहे हैं। ब्राह्मण के ब्राह्मण में, बनिये के बनिये में, कायस्थ के कायस्थ मात्र में विवाह होने लगे हैं। इसका औचित्य दिन-दिन अधिक अच्छी तरह समझा जायेगा, जाति बन्धन पूरी तरह टूटने में भले ही कुछ देर लगे। उपजातियों की सीमा-संकीर्णता के तो जल्दी ही बन्धन टूटने वाले हैं। ऐसी दशा में लड़कों की तलाश में नाक नहीं रगड़नी पड़ेगी और न दहेज के लिए बर्तन बेचने पड़ेंगे। सुधार कितना तेजी से हो रहा है, परिवर्तन कितनी तेजी से आ रहा है, जो इसे देख पा रहे हैं वे जानते हैं कि कन्या विवाह अब समस्या बनकर नहीं रहेगा। अनेक जातियों में लड़के वाले अभी भी लड़की माँगते हैं और अनुनय-विनय करते हैं। वह स्थिति पूरे समाज में आकर रहेगी। जो दिन जा रहे हैं वे ही बोझिल हैं। अगली पीढ़ी में लोग लड़की को महत्त्व देंगे, उसे शिक्षित एवं सुयोग्य बनायेंगे। उसे स्वावलम्बी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनने देंगे। ऐसी दशा में किसी घर में उसे दासी के रूप में धकेलना न पड़ेगा। वह जहाँ जायेगी मानपूर्वक जायेगी और गृहस्वामिनी, गृहलक्ष्मी बनकर रहेगी। ऐसे समय का आगमन एक प्रकार से निश्चित ही है।

नारी मानसरोवर है, नर हंस। नारी खदान है, नर कुदाल। इसलिए पाठकों में से प्रत्येक को यह आशा करनी चाहिए कि उसके घर में कोई इन्दिरा गाँधी, अहिल्या, सरोजिनी नायडू जन्मेंगी और विद्योत्तमा की तरह पढ़कर कालिदास को सुयोग्य बना देने के उदाहरण प्रस्तुत करेगी।

अब सृजन का, प्यार का, सहयोग का युग आ रहा है। यह विशेषताएँ जन्मजात रूप से नारी में ही प्रकृति ने दी हैं। वह श्रद्धा है, मेधा है, प्रज्ञा है, सीता है, दुर्गा है और वह जिसकी आज की स्थिति में तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते। हमें पुत्रियों को पुत्र से कम नहीं, अधिक ही मान देना चाहिए। हमारी माता, हमारी पत्नी आखिर किसी की बेटी ही थी, जिसने दूसरे के घर आकर उसमें नव-जीवन संचार की सफल साधना कर दिखाई।

लड़की जन्मे या लड़का ?

कुछ समय में यह प्रश्न उठना या उठाना निरर्थक हो जायेगा कि घर में लड़की जन्मे या लड़का। लड़के को अनावश्यक महत्त्व मिलना इस बात पर निर्भर है कि वह कमाकर घर भरेगा और विवाह में बहू ही नहीं, दहेज भी लेकर आवेगा। वह आर्थिक दृष्टि से लाभदायक समझा जाता है और लड़की के बारे में सोचा जाता है कि उसे पाल-पोसकर बड़ी करने में खर्चा तो उठाना ही पड़ेगा। साथ ही विवाह का कमर-तोड़ बोझ भी उठाना पड़ेगा। लड़की को बुलाना-चलाना, नेग-जोग, उसके बच्चे होने पर खर्च उठाने जैसे अनेकों झंझट पीछे भी लगे रहते हैं। वे उन लोगों के लिए विशेष रूप में भारी पड़ते हैं, जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है।

ऐसे ही कुछ कारण हैं, जिनसे लड़के का जन्म खुशी का विषय माना जाता है और लड़की जन्मने पर उदासी छाती है।

यह हमारे प्रचलनों और परम्पराओं का दोष है। वे बनी रहें, तो एक न सही दूसरी तरह की कठिनाई बनी रहेगी। पिछड़े वर्गों में आदिवासियों में लड़की के बदले लड़के वालों से रकम वसूल की जाती है। चीन और मध्य पूर्व के देशों में भी लड़कियाँ बिकती हैं, लड़के नहीं। ऐसी दशा में परेशान लोग देर-सबेर में इस समस्या का हल करेंगे, क्योंकि सभी के घर में लड़के भी होते हैं और लड़कियाँ भी। इसलिए नफा-नुकसान हर किसी को अपने-अपने समय में उठाना पड़ता है।

उपयोगिता की दृष्टि से नारी का महत्त्व नर की अपेक्षा कहीं अधिक उच्चस्तरीय है। सौन्दर्य, स्नेह, कला, सहिष्णुता, स्फूर्ति आदि गुणों में नारी, नर से कहीं आगे है। उसका बुद्धि-कौशल भी निश्चित रूप से अधिक है। प्रजनन का, शिशु पालन का, परिवार व्यवस्था का भार नारी ही उठाती है। प्रकृति ने उसी को बहुमत भी दिया है। इसलिए वोटों की दृष्टि से वह पुरुष को पछाड़कर शासन-सत्ता अपने हाथ में ले सकती है। नर तो आतंकवादियों की तरह उस पर हावी रहता है। आर्थिक स्रोत अपने हाथ में रखकर भी वह नारी को पराधीन बनाता और शोषित करता है, पर यह अंधेर अधिक समय चलने वाला नहीं है। न अब दासियाँ बिकती हैं, न बहुत विवाह होते हैं और न बन्धन में जकड़े रहने के लिए कानून साथ देता है। ऐसी दशा में नर का दर्जा नीचा नहीं तो अधिक से अधिक नारी के समान ही रह सकता है। यह भी ऐच्छिक रहेगा कि नारी, नर के घर रहे या नर, नारी के। बर्मा आदि देशों में कई आदिवासी कबीलों में नर को ही नारी के पितृगृह में बंधुआ मजदूर की तरह रहना पड़ता है। निकट भविष्य में परिस्थितियाँ इस प्रकार बदलने जा रही हैं कि लड़के या लड़की में से दोनों का ही आर्थिक एवं सामाजिक महत्त्व एक जैसा हो जायेगा। न किसी को दुर्भाग्य माना जायेगा और न सौभाग्य। माता-पिता प्रजनन पर संयम बरतेंगे। यदि कुछ पल्ले बँधा, तो उसी पर सन्तोष करेंगे। किसी के जन्म-दिवस पर न बतासे बँटेंगे और न किसी के लिए आँसू बहाये जायेंगे।

आज बच्चा न होने का दोष नारी को ही दिया जाता है। न हो तो भी वही दोषी और लड़कियाँ ही होती चलें तो भी वही दोषी, किन्तु परीक्षणों से दूसरी ही बात सिद्ध होती है। दुर्बलता पुरुष में ही अधिक होती है। शुक्राणु यदि दुर्बल हों अथवा न्यून मात्रा में हों, तो नारी के स्वस्थ-समर्थ होते हुए भी गर्भ स्थापित न हो सकेगा। ऐसी दशा में पुरुष को नहीं, सन्तानोत्पादन के इच्छुकों में से नारी को ही छूट होनी चाहिए कि वह दूसरा विवाह कर ले। यदि ऐसा न करना हो तो भी दोषारोपण नारी के पल्ले नहीं बँधना चाहिए। न वह बन्ध्यत्व की दोषी होती है और न लड़कियाँ जनने में उसका कोई कसूर रहता है।

सच्चाई यह है कि बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए समझदारों में से कोई विरले ही प्रजनन का जोखिम अपने सिर उठाना चाहेंगे। इस कुचक्र में नारी अपने स्वास्थ्य से हाथ धो बैठती है। प्रसव की मरणासन्न कर देने वाली असाध्य वेदना में से ज्यों-त्यों करके उबरती है। पुरुष को भी इससे क्या लाभ मिलता है ? नारी को अशक्त बनाकर वह उसके बदले का काम करता है। इसके अतिरिक्त एक कोमल नये मेहमान के नियमित अतिथि सत्कार का आर्थिक बोझ तो बढ़ता ही है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

लड़की को कनिष्ठ और लड़के को वरिष्ठ जिस तराजू पर ठहराया गया था, उसे अब बदला जायेगा। न्याय की तौल धर्मकाँटे पर होगी। औचित्य और विवेक को तिलांजलि देकर मनमानी बरतने का दौर पिछले दिनों रहा होगा। विधवाओं की तरह विधुरों को भी एकाकी रहना पड़ेगा या फिर दोनों को ही ऐच्छिक स्वतन्त्रता मिलेगी।

सन्तान न होने के दोषी पुरुष होते हैं। इसके लिए इतिहास साक्षी है। दशरथ ने तीन विवाह किये, पर वे एक से भी इच्छित सफलता प्राप्त कर न सके। दिलीप भी निःसन्तान थे। उन्हें अपना उपचार वशिष्ठ के आश्रम में जाकर उसी प्रकार करना पड़ा, जिस प्रकार कि शृंगी ऋषि की कृपा से पुत्रेष्टि यज्ञ द्वारा दशरथ का मुख उज्ज्वल हुआ था। नारियों में एक प्रतिशत ही बन्ध्याएँ पाई गई हैं। हतवीर्य तो पुरुषों में ही अधिक होते हैं।

प्रजनन के वैज्ञानिक कारणों में गुणसूत्रों को आधार माना गया है। उनके 'एक्स' और 'बाई' जोड़े गुँथे होते हैं। इन्हीं की न्यूनाधिकता पुत्र-पुत्री का अन्तर करती रहती है। यह प्रयत्न अभी चल ही रहा है कि जैव चुम्बक से प्रभावित करके एक को सबल और एक को मूर्च्छित कर दिया जाय। यदि यह परीक्षण सफल हुआ, तो यह सम्भव हो सकेगा कि इच्छित लिंग की सन्तान उत्पन्न की जा सके, पर अभी तो इसी पर सन्तोष करना पड़ेगा कि दैव योग से जो भी जन्मे उसे सम्मानपूर्वक शिरोधार्य किया जाय और समता को प्रश्रय देते हुए उनके पालन में कोई अन्तर न होने दिया जाय।

अधिकांश दम्पत्ति पुत्र प्राप्त करने के लिए इच्छुक या उत्सुक रहते हैं। यदि यह कामना फलवती होने लगे, तो लड़कों का अनुपात बढ़ जायेगा और फिर विवाह का सौभाग्य किन्हीं विरले ही लड़कों को मिल सकेगा। वंश वृद्धि रुक जायेगी और मानवी विवेक फिर इस दिशा में वापस लौटेगा कि वृद्धि कन्याओं की ही होनी चाहिए, लड़के कम संख्या में रहें, ताकि परिवार संस्था यथावत् बनी रहे अन्यथा बढ़ते हुए पुरुष सरायों में ठहरते, खाते और सोते पाये जायेंगे। घर का आनन्द गृह लक्ष्मी के ही हाथ में है, वही छोटे से घरौंदे में स्वर्ग का वातावरण विनिर्मित करती है। इसलिए उसे हर दृष्टि से प्राथमिकता और वरिष्ठता दी जानी चाहिए।

कुमारी कन्याओं की आध्यात्मिक गरिमा

साधु और ब्राह्मण की गरिमा इसलिए बताई गई है कि उन्होंने सात्विकता की मात्रा अपने भीतर सर्वसाधारण की अपेक्षा अधिक धारण की होती है। असल में साधु-ब्राह्मण की गरिमा किसी वंश या वेश की नहीं वरन् साधनात्मक प्रयत्नों द्वारा उनके बढ़े हुए सतोगुण की ही है।

यही गरिमा स्वभावतः कन्याओं में होती है। नर की अपेक्षा नारी में सात्विकता की मात्रा अधिक होना सर्वविदित है। वह मात्रा ब्रह्मचारिणी, अविवाहिता कन्याओं में और भी अधिक होती है। इसलिए कन्याओं को स्वभावतः वह स्थिति प्राप्त है, जो ब्राह्मण और साधुओं को बहुत प्रयत्न एवं साधन करने के उपरान्त प्राप्त होती है।

नवरात्रि की साधना के उपरान्त कन्या-भोज का प्रचलन है। ब्रह्मभोज के समान ही कन्या-भोज है। आज की परिस्थिति में तो कन्या का महत्त्व ब्राह्मण से भी अधिक है। कारण कि ब्रह्मचर्य पालन, बालसुलभ निर्मलता एवं कन्या-तत्त्व की स्वाभाविक विशेषता के कारण वे आज के नाम-मात्र के ब्राह्मणों की अपेक्षा कहीं आगे हैं। इसलिए विवेकशील लोग आवश्यकता पड़ने पर ब्राह्मण भोजन की अपेक्षा कन्या भोजन को अधिक उपयुक्त मानते हैं।

साधना विज्ञान में कुमारी को भगवती दुर्गा का ही स्वरूप माना गया है और इसी नाम से उसकी प्रतिमा स्थापित करके पूजा-विधान बनाया गया है। बाल-गोपाल को भगवान कृष्ण का सर्वोत्तम प्रतीक माना जाता है। युवावस्था के उभार उतने सात्विक नहीं रहते जितने बालकपन के होते हैं। इसलिए सतोगुणी निष्ठा वाले भक्त साधक सदा भगवान के बाल रूप को ही अपनी ध्यान प्रतिमा में स्थापित करते हैं और उसी रूप की प्रतिमा बनाते हैं।

युवावस्था की देवियों की अपेक्षा 'कुमारी' पूजन को इसलिए शक्ति-साधना में प्रमुख स्थान है कि उसमें विकारों का उद्भव न होने से सात्विकता की मात्रा अधिक रहती है। जहाँ अन्य देवियाँ विवाहित होने के कारण रजोगुणी क्षेत्र में प्रवेश कर चुकी हैं, वहाँ 'कुमारी' का ब्रह्मचर्य एवं शैशव उसकी गरिमा को सहज ही बढ़ा देता है। शक्ति उपासना क्षेत्र में कुमारी पूजन को प्राथमिकता इसलिए दी गई है।

कुमारी कन्याओं में सात्विकता का अंश अधिक रहने से उन्हें उपासना क्षेत्र में प्राथमिकता दी गई है तो यह उचित, तर्कसंगत एवं तथ्यपूर्ण ही है। जप, अनुष्ठान, पाठ, पूजन आदि में कन्याएँ जितनी अधिक सफलता प्राप्त करती हैं, उतनी अन्य किसी आयु में सम्भव नहीं होती।

शान्तिकुन्ज (हरिद्वार) में कुमारी कन्याओं द्वारा अखण्ड दीपक पर अखण्ड गायत्री जप कराया गया है। २४ लक्ष के २४ पुरश्चरण ६ वर्षों में पूरे हुए। यह अनुष्ठान ब्राह्मणों की अपेक्षा कन्याओं द्वारा इसलिए कराया गया कि कुमारिकाओं की सात्विकता अभीष्ट परिणाम में अधिक सुनिश्चित रूप से सफल होंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुमारी कन्याओं की सतोगुणी विशेषताओं के कारण शास्त्र में उन्हें पूजा के योग्य ठहराया गया है—

महाराज प्रयत्नेन सर्वसिद्धिफलप्रदम्।
सर्वयज्ञोत्तम भूप कुमारीपूजनं शृणु।।
कृते यस्मिन्महालक्ष्मीरचिरेण प्रसीदति।
आमन्त्रयेद्दिने पूर्वे कुमारीं भक्तिपूर्वकम्।।
पूजादिने समाहूय कुमारीमाद्यदेवताम्।
कुमारीपूजनं कृत्वा महालक्ष्मी प्रसीदति।।

—वृहज्ज्योतिषार्णक धर्मस्कन्ध

कुमारिकाओं का पूजन बिना जाति भेद के करे। जो उनमें जाति भेद का विचार करता है तो वह भूल करता है।

कुमारी पूज्यते यत्र स देशः क्षितिपावनः।
महापुण्यतमो भूयात्समन्तात्क्रोशपंचकम्।।

—योगिनी तन्त्र

जहाँ कन्या की पूजा होती है वह स्थान पवित्र हो जाता है। पाँच क्रोस तक उस स्थान की पवित्रता बिखरी रहती है।

अन्ते च प्राप्यते तेन परं निर्वाणमुत्तमम्।
कुमारीपूजने काले साधकः शिवतां व्रजेत्।।

—योगिनी तन्त्र

कन्या पूजन करने वाले को शिवत्व की प्राप्ति होती है और वह निर्वाण पद का अधिकारी बनता है।

कुमारीपूजनफलं वक्तुं नार्हामि सुन्दरि।
जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि।।
तस्माच्च पूजयेद्बालां सर्वजातिसमुद्भवाम्।
जातिभेदो न कर्त्तव्यः कुमारी पूजनेशिवे।।

अर्थ—भगवती गायत्री देवी की उपासना में कुमारी कन्याओं के पूजन का महान् फल होता है। भगवान शंकर स्वयं मुख से कहते हैं—हे सुन्दरि ! मैं तो कुमारी के पूजन का फल सहस्र करोड़ जिह्वा तथा शत कोटि मुखों से भी नहीं कह सकता हूँ। इसलिए सभी जातियों की कन्याओं का पूजन करे। हे शिवे ! कुमारी कन्या के पूजन में जाति के भेद का तो ध्यान कभी करना ही नहीं चाहिए।

जातिभेदान्महेशानि नरकान्न निवर्त्तते।
विचिकित्सा परो मन्त्रा ध्रुवञ्च पातकी भवेत्।।
देवी बुद्ध्या महाभक्तया तस्मन्तां परिपूजयेत्।
सर्वविद्यास्वरूपा हि कुमारी नात्र संशयः।।
एकाहि पूजिता बाला सर्वं हि पूजितं भवेत्।

अर्थ—कुमारी कन्या के पूजन में जाति-भेद का विचार करने पर घोर नरक में जाकर गिरता है और वहाँ से कभी भी वापस नहीं लौटता है। मन्त्रवान मनुष्य यदि संदिग्ध होकर कर्म किया करता है तो महापातकी हो जाता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। अतएव परमोत्कृष्ट भक्ति की भावना से कुमारी कन्या को साक्षात् देवी सावित्री का ही स्वरूप समझकर उसकी सांगोपांग अर्चना करनी चाहिए। कुमारी कन्या सर्वविद्या स्वरूपिणी होती है—इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है।

पृथ्वी पर शयन करे और नित्य कुमारी कन्याओं का पूजन करे। क्रमशः एक पूजन के लिए कन्या नौ दिन तक बढ़ाता जाय।

कुमारी पूजन से दुःख-दारिद्रय का और शत्रुओं का नाश होता है तथा धन आयु और बल की वृद्धि होती है। देव तत्त्व का स्वजन करने वाली इन कुमारियों की देवी रूप से पूजा करे। कन्याओं को वस्त्र, अलंकार, माला, गन्ध एवं मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए। कुमारी कन्याओं के पूजन सहित यह नवरात्रि का व्रत सब प्रकार श्रेयस्कर है।

असुरों का संहार करने वाली उस कुमारी रूप देवी की सभी ने पूजा की, देवताओं ने फूल बरसाये। तब से कुमारी पूजा चल पड़ी।

कुमारी पूजा करने वालों की काया कंचन जैसी हो जाती है और वह भैरव की तरह प्रसन्न रहता है।

लड़के और लड़की में भेदभाव मत कीजिए

पुराने लोगों का आज भी यह ख्याल है कि औरतों की कोई आजादी नहीं हो सकती, न वे अकेली कहीं जा सकती हैं, न घूम-फिर सकती हैं लेकिन आज का नौजवान इसे मानने से इन्कार करता है। हमारे लड़के अब कॉलेजों में पढ़ने लगे हैं और वे चाहते हैं कि उनके साथ उनकी औरतों को भी आगे बढ़ना चाहिए। इस मामले में माँ-बाप की दस्तन्दजी लड़कों को अखरती है। आज के नौजवान अपने लिए अपनी ही तरह पढ़ी-लिखी पत्नियाँ चाहते हैं और सुखी और सन्तोषी जीवन के लिए यत्नशील हैं।

कोई कितना ही धनवान और ऐश्वर्यवान् क्यों न हो, दिनभर की मेहनत के बाद घर आने पर वह थोड़े सुख की कामना जरूर करता है लेकिन अगर घर में गृहिणी अनपढ़ और अनाड़ी है, तो वह कभी सुखी हो नहीं सकता। ऐसा गृहिणी के बुरे संस्कार बच्चों पर भी असर डालते हैं और इस तरह हमारी भावी प्रजा का भविष्य धुँधला हो जाता है। जिस घर की यह हालत हो,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

वहाँ अकेला पैसा क्या कर सकता है ? बड़े-बड़े महलों और वस्त्राभूषणों का क्या मूल्य रह जाता है ?

मकान में जो महत्त्व दीवालों का है, समाज में वही महत्त्व लड़कों की शिक्षा का है, लेकिन लड़कियों की शिक्षा तो मौलिक चीज है और उसका सम्बन्ध जड़ से है—बुनियाद से है। कॉलेजों की शिक्षा भी जीवन को सँवारने-सँजोने के लिए ही है। इसलिए लड़कियों की शिक्षा पर ही ज्यादा से ज्यादा जोर दिया जाना चाहिए।

हमारे समाज में माता-पिता लड़के और लड़की के बीच बड़ा भेदभाव रखते हैं। पक्षपात की हद हो जाती है। उनका ख्याल होता है कि लड़की पराये घर जाने वाली है। उसे कौन-सी पुस्तकें पढ़नी हैं और कचहरी जाना है ? इसीलिए पढ़ाने में भी माँ-बाप भेद करते हैं। खिलाने-पिलाने और पहनाने-उढ़ाने में भी यह भेद अपना काम करता है। लड़कों को अच्छा खिलाया जाता है, अच्छी से अच्छी शिक्षा दिलायी जाती है, जब लड़कियों को घरों में बन्द रखा जाता है। यह निरा अन्याय है। भगवान ने तो लड़कों और लड़कियों में एक-सी ताकत रखी है। दो आँखों में कोई भेद कैसे कर सकता है ? पुराने जमाने में लोगों ने न जाने कैसे इसको शुरू किया और सह लिया ? लड़की बेचारी को दो पैसे की वसीयत भी नहीं मिलती और लड़के अकेले लाखों की दौलत उड़ाते हैं। एक को बैठे बिठाये लाखों मिल जाते हैं, जबकि दूसरी पर हजार-पाँच सौ का खर्च करके, उसे पराये घर भेज दिया जाता है, अगर इसे इस नजर से भी देखें तो यह जरूरी मालूम होता है कि चूँकि लड़की माँ-बाप के घर कुछ ही साल रहती है, इसलिए उसका पालन-पोषण ज्यादा अच्छा होना चाहिए।

लड़कियों की शिक्षा में केवल उनकी पढ़ाई-लिखाई का ही सवाल नहीं आता, बल्कि और बातें भी आती हैं। जरूरी है कि हर एक कन्या पाठशाला के आहाते में कन्याओं के लिए खेल-कूद और कसरत के साधन प्रस्तुत किये जाएँ। मैं समझता हूँ कि हर मदरसे में लड़कियों के दौड़ने के लिए लम्बे-चौड़े मैदान, झूलने के लिए झूले और खेल-कूद के काफी सामान होने चाहिए। आजकल हमारे औरतों की तन्दुरुस्ती दिन-दिन गिरती जा रही है। सुबह-शाम चूल्हा फूँककर और धूल-धुएँ में रहकर वे काफी दुर्बल हो रही हैं। उनकी गिरती हुई तन्दुरुस्ती को मजबूत बनाने के लिए कन्याशालाओं में शुरू से खेल-कूद और कसरत के साधनों का होना आवश्यक है। पुराने लोगों का कहना है कि हमारी सन्तान दिन-दिन कमजोर होती जा रही हैं। पुराने समय में स्त्रियाँ घर में और बाहर काफी मेहनत कर लेती थीं। घर-गृहस्थी के और खेती-बारी के कई काम मेहनत तलब होते थे और इन सब कामों में वे पूरा-पूरा हाथ बँटाती थीं। लेकिन अब ये बातें नहीं रहीं, नये-नये परिवर्तन हो रहे हैं। इसलिए अब ये सुधार आवश्यक हो गये हैं।

यह हो सकता है कि लड़कियाँ कन्या पाठशालाओं में इतिहास-भूगोल वगैरा न सीखें लेकिन यह मुनासिब नहीं कि वे कमजोर रहें और अपंग हो जायें। सच पूछा जाय, तो आवश्यकता मन-मस्तिष्क और हृदय तीनों की शिक्षा की है। आज हमारे स्त्री-समाज में मस्तिष्क की शिक्षा का कोसों पता नहीं है। यही कारण है कि हमारे महिला जगत् का जितना विश्वास भूत-प्रेत, झाड़-फूँक और जन्तर-मन्तर में है, उतना वैज्ञानिक उपचार में नहीं। घर में किसी बालक या बड़े के बीमार पड़ते ही डाक्टर और वैद्य के बदले ओझी और पण्डित को बुलाया जाता है और झाड़-फूँक या गण्डे-डोरों से रोग को मिटाने की कोशिश की जाती है। इसका मतलब यही है कि बुद्धि की शिक्षा का अभाव है।

जब लड़कियों के मदरसे में संगीत सिखाने या कसरत कराने की बात चलती है, तो अल्पबुद्धि लोग आज भी नाक-भौं सिकोड़ते हैं। मैं पूछना चाहता हूँ कि वह कैसी बात है कि हमारे लड़के तो गा भी सकते हैं और कसरत भी कर सकते हैं लेकिन लड़कियाँ इनके पास तक नहीं फटक सकतीं ? आखिर संगीत में और कसरत में नुकसान क्या है ? भगवान ने जिन्हें सुन्दर कण्ठ दिया है, वे सब गा सकते हैं। लड़कियों को इन्कार तभी किया जा सकता है, जब लड़कों को भी इनसे वंचित रखा जाय अन्यथा यह कैसा विचित्र न्याय होगा कि लड़के सब कुछ कर सकें और लड़कियाँ कुछ न कर सकें ?

परमात्मा ने भेदभाव के लिए ये लाल नहीं दिये हैं। हम तो परमेश्वर की तरफ से अपने इन नौनिहालों के ट्रस्टी हैं और ट्रस्टी के नाते हमारा कर्तव्य हो जाता है कि जो चीज हमें सौंपी गयी है, हम उसकी पूरी-पूरी चिन्ता रखें।

लाख, दस लाख रुपयों की वसीयत छोड़ जाने की अपेक्षा यह कहीं आवश्यक और अच्छा है कि अपने बच्चों को सच्ची और अच्छी शिक्षा देकर उन्हें उत्तम नागरिक बनाया जाय।

लड़कों और लड़कियों के साथ माँ-बाप को एक-सा बर्ताव करना चाहिए। खाने-पीने पहनने-ओढ़ने, घूमने-फिरने और लिखने का सारा प्रबन्ध लड़कियों के लिए भी हो। लड़कों और लड़कियों, दोनों को एक-सी शक्ति और आत्मा दी है। अतः उन्हें विकास का समान अवसर देना चाहिए। कहा जाता है कि लड़कियाँ लक्ष्मी की अवतार हैं। यदि उन्हें घरों में और मदरसों में अच्छी शिक्षा मिली तो वे इस संसार में स्वर्ग का निर्माण कर सकेंगी।

कन्या पर विशेष ध्यान दें

गीली मिट्टी से क्या बने, यह निर्णय करना कुम्हार का काम है। वही उसकी कल्पना करता है और निर्माण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए हाथों को सक्रिय करता है। कच्चे बर्तनों को पक्के बनाने के लिए अवाँ लगाने की व्यवस्था भी उसी को करनी पड़ती है। इतना करने के बाद ही बर्तन वैसा बनता है, जैसा कि चाहा गया था।

यह बात बच्चों के सम्बन्ध में भी लागू होती है। वे कोरे कागज की तरह साफ होते हैं। उन पर किस स्याही से क्या लिखा जाय, इसकी पूरी जिम्मेदारी लेखक के हाथ में होती है। बच्चे का व्यक्तित्व कैसा बने, इसकी योजना यदि पूर्व निर्धारित हो, तदनुकूल साधन जुटाया जाय, वातावरण बनाया जाय तो उसे कल्पना के अनुरूप निर्धारित ढाँचे में ढाला जा सकता है। यह कार्य प्रधानतया अध्यापकों, अभिभावकों का है। परिवार के अन्य सदस्य भी इस पुण्य-प्रयोजन में अपने-अपने ढंग से अपनी-अपनी भूमिका निभा सकते हैं। बात मात्र बालकों की ही नहीं है। महिलाओं के सम्बन्ध में भी यह बात पूरी तरह लागू होती है। छोटी आयु में वह पितृगृह से न केवल पोषण प्राप्त करती है, वरन् स्वभाव-संस्कार का ढाँचा भी बहुत कुछ इसी अवधि में ढल जाता है। बच्चों से भी अधिक सतर्कता बच्चियों के बारे में बरते जाने की आवश्यकता है। कारण कि उन्हें ससुराल में जाकर अपना व्यक्तित्व गृहलक्ष्मी जैसा प्रस्तुत करना पड़ता है। परायों को अपना बनाना पड़ता है। पराये घर पर अपना प्रभुत्व अधिकार जमाना पड़ता है। यह बड़ा टेढ़ा काम है। इसके लिए अभीष्ट प्रतिभा का बड़ा भाग पितृगृह में ही अर्जित करना पड़ता है। यदि यह योग्यता अभिभावक अपनी बालिकाओं में उत्पन्न न कर सकें तो उनका भरण-पोषण एक प्रकार से अधूरा रहा यही समझा जा सकता है।

आमतौर से लड़कियों को लाड़-चाव से गुड़िया बनाने, सजाने का प्रयत्न किया जाता है। जहाँ उन्हें कूड़ा-करकट माना जाता है, वहाँ ये उपेक्षा के कचरे में पड़ी रहती हैं। लड़कों को उच्च शिक्षा की, बड़ा अफसर बनाने की बात सोची जाती है, किन्तु लड़कियों को परिपक्व होने से पहले विवाह कर देने की बात सोची जाती है। ताकि उनके पालन-पोषण में आने वाले खर्चे से जल्दी छुटकारा पाया जा सके। सयानी लड़की के लिए अच्छे लड़के खोजने में परेशानी होती है। उससे बचने के लिए सस्ते बाल-विवाह को अपना लिया जाता है और उसे ससुराल धकेल दिया जाता है। जहाँ उसे अपरिचित विधि-व्यवस्था का सामना करना पड़ता है। यह स्थिति भावुकता बढ़ी-चढ़ी होने पर बहुत विषम हो जाती है। उन्हें वहाँ बन्दीगृह जैसा अनुभव होता है। कच्ची आयु में यह कठिनाई और भी अधिक बढ़ जाती है। अनुभव का अभाव और नई विधि-व्यवस्था से अपरिचित होने के कारण सौंपे गये कार्य भी ठीक तरह नहीं बन पाते। ऐसी दशा में उन्हें उलाहने-ताने सहने पड़ते हैं, जिनके कारण मन और भी अधिक टूट जाता है। प्रेम, प्यार, प्रयास की गलियों में से गुजरने की कोई रूपरेखा ही मन में नहीं उठी। ऐसी दशा में पति का हृदय जीत सकना भी उनके लिए कठिन पड़ता है। उस अजनबी घर में वे नौकरानी, बेगारिन जैसी बनकर रहती हैं और अन्य कोई चारा न होने से जिस भी परिस्थिति में रहना पड़े उसी में मन मारकर रहना पड़ता है।

यदि पितृगृह में वर्तमान और भावी जीवन की भिन्नता का आभास कराया जाता रहे, उसके लिए संकेत रूप में प्रशिक्षण किया जाता रहे तो उस शिक्षा का लाभ आजीवन मिलता रहेगा।

लड़के प्रायः बड़ी उम्र तक घर में ही रहते हैं और बचपन तथा यौवन के अन्तर को समझने, तदनुरूप ढलने में परिवार के वयस्कों का मार्गदर्शन प्राप्त करते रहते हैं। भूल करते रहने पर भी वे परिवार द्वारा निभा लिये जाते हैं। कारण कि वे उपार्जन में योगदान देने लगते हैं। कमाऊ होने के कारण उनके सौ गुनाह माफ होते हैं, किन्तु घर की महिलाओं की स्थिति इससे भिन्न होती है। वे अपने श्रम से घर खर्च को आधा-चौथाई भले ही कर देती हों, पर नकदी के रूप में बाहर से लाकर घर में जमा करने जैसा वे कुछ भी नहीं करतीं। दहेज ही उनकी आजीविका का एकमात्र स्रोत होता है। वह विवाह के दिनों कुछ समय तक खुला रहता है, पर जब वे घर-गृहस्थी वाली हो जाती हैं, तो पितृपक्ष हलकी रिश्तेदारी भर बनकर रह जाता है। बुलाते-चलाते रहना अलग बात है, पर वहाँ से सदा कोई इतनी बड़ी राशि जल्दी-जल्दी मिलती रहे, जिससे ससुराल वाले प्रसन्न रह सकें, यह सम्भव नहीं। ऐसी दशा में औसत नारी पैसे की दृष्टि से पराधीन रहती है, बच्चे जनते रहने के कारण वह शरीर से खोखली और आये दिन बीमारियों की शिकार बनकर भी रहती है। पग-पग पर दबोची और तिरस्कृत होती रहने के कारण उसका मनोबल भी टूट जाता है। ऐसी दशा में कोल्हू के बैल की तरह किसी प्रकार मौत के दिन पूरे करने में ही उसका समय पूरा हो जाता है। इस दयनीय स्थिति से उबारने का एक ही उपाय है कि लड़कियों को स्वावलम्बी बन सकने जितनी शिक्षा-दीक्षा का अनुदान दिया जाय। मात्र पढ़ाया ही नहीं, उन्हें गुनाया भी जाय। गुनाने का अर्थ है—गुण वाली, अनुभवी बनाना। यह कार्य प्रधानतया पितृगृह का ही है कि वे लड़कियों में इस प्रकार की रुचि उत्पन्न करें कि वे मनोरंजन, वेश-विन्यास की अपेक्षा अपने ज्ञानवर्द्धन और स्वावलम्बन को इतना परिपक्व बनायें कि वह उन्हें आश्रयदाता की तरह आजीवन समर्थ और सम्मानित बनाये रह सकें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

कम ही भाग्यवान लड़कियाँ ऐसी होती हैं, जिन्हें ससुराल में गृहलक्ष्मी की भूमिका निभाने का अवसर मिलता है। जिन्हें सम्मान और सहयोग की कमी नहीं रहती, जो परिवार की वरिष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण इकाई बनकर रहती हैं। आमतौर से तो उन्हें भारवाहक की जिन्दगी गुजारनी पड़ती है। शेष में से ९० प्रतिशत को गया-गुजरा जीवन बिताना पड़ता है।

बच्चों से कई बार माताओं को लम्बी-चौड़ी आशाएँ उनके बचपन से रहती हैं, पर जब वे बड़े होने लगते हैं, तो समुचित वातावरण और मार्गदर्शन के अभाव में वे उजड्ड स्तर के बनते जाते हैं। कितने ही दोष-दुर्गुण उनमें पनप जाते हैं। ऐसी दशा में वे अपना भविष्य तो बिगाड़ते ही हैं, अभिभावकों के लिए विशेष रूप से सिर-दर्द बनते हैं। इनमें भी माता की स्नेहरिक्तता और दुर्बलता का वे विशेष रूप से लाभ उठाते हैं। उसे ही अतिरिक्त रूप में हैरान करते हैं। ऐसी दशा में पुत्र-जन्म से लेकर कई वर्ष तक जो आशाएँ सँजोई जाती हैं, निराशा ही हाथ लगती है। वयस्क लड़के कर्त्तव्यों को भूल जाते हैं और अधिकारों की लड़ाई आपस में ही नहीं अभिभावकों के साथ भी लड़ते हैं। घर द्वन्द्वयुद्ध का अखाड़ा बन जाता है। पति से तिरस्कृत-उपेक्षित रहने पर जो मनोव्यथा होती थी, उस पर मरहम लगने की बात बच्चों के बड़े होने पर सम्भव होती दीख पड़ती थी, पर समय आने पर वह डाली भी झुक जाती है, जिसका सहारा लेने, जिनकी छाया में बैठने के सपने सँजोये गये थे। विवाह के बाद आमतौर से पति संयुक्त परिवार की घिच-पिच और नियन्त्रण के बीच नहीं रहना चाहते। वधू के साथ स्वच्छन्दता का आनन्द लेने और अपनी कमाई का लाभ दो तक ही सीमित रखने के मूड में होते हैं। वे अलग घर बसाते अथवा नौकर होने की दशा में अन्यत्र बदली करा लेते हैं। ऐसी दशा में माता-पिता की वही हालत होती है जैसे मानो पाले हुए तोते हाथ से उड़ गये हों। लड़कों को विशेष रूप से दिया गया दुलार, उठाया गया खर्च और सँजोया गया स्वप्न सभी कुछ बेकार हो जाता है कि लड़की-लड़के के बीच किया गया अन्तर सर्वथा व्यर्थ रहा। लड़कियाँ दहेज में थोड़ा-बहुत पाकर अपने घर चली जाती हैं, पर लड़के तो जिन्दगी भर दोहन करते और अपमानित, उपेक्षित करने में कमी नहीं रहने देते।

अच्छा यही है कि लड़की-लड़कों को समान दृष्टि से देखा जाय। इससे भी अच्छा यह है कि लड़की को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व दिया जाय, क्योंकि उससे अपना, अपने परिवार का, साथी का, सम्पत्ति का विविध-विधि निर्माण करना है। साथ ही वह अबला होने के कारण पितृगृह से इतनी समर्थता पाने की हकदार रहे, जिससे आड़े समय में अपनी नाव खेकर स्वयं पार लगा सके। यों पैतृक सम्पत्ति में उसे अधिकार पाने का हक है, पर व्यवहारतः यही देखा जाता है कि घर की सम्पदा पर भाई ही कब्जा जमा लेते हैं और बहिन को कुछ भी देने की उदारता नहीं दिखाते। उसे तो विवाह से पूर्व जो कुछ मिल चुका वस्तुतः वही उसका हक हिस्सा है, पीछे तो यदा-कदा कभी कुछ भेंट-उपहार ही उसके हिस्से में आते हैं।

कभी-कभी तो ऐसी दुर्घटना घटित हो जाती है कि अधेड़ आयु में पति चल बसता है और असहाय पत्नी के कन्धों पर चार-पाँच बच्चों को भार सौंप जाता है। उस दशा में मैके और ससुराल वालों का व्यवहार बड़े विचित्र स्तर का बन जाता है। दोनों पक्षों में से कोई भी उसे आश्रय देने को तैयार नहीं होता। उनके अपने बच्चों और परिजनों की जिम्मेदारियाँ भी तो बढ़ी-चढ़ी होती हैं। स्थान भी इतना नहीं होता। फिर सहानुभूति की तो और भी कमी रहती है। जो कुछ उसका विधवा के पास बचा-खुचा था उसे सुरक्षा के नाम पर अपने पास रख लेते हैं और फिर जरूरत पड़ने पर भी कभी वापस नहीं लौटाते। इन परिस्थितियों में उस असहाय अबला पर क्या बीतती है ? इसे कोई भुक्तभोगी ही बता सकता है। उसे पग-पग पर अपमानित होना पड़ता है और बच्चों का भविष्य अन्धकारमय बन जाता है।

इस सम्भावित विपत्ति से पूर्व सुरक्षा कर लेना बुद्धिमत्ता है। उन उपायों में एक तो यह है कि लड़की को इतना पढ़ाया जाय कि वह आड़े वक्त में अपनी विद्या के सहारे आजीविका कमा सके। कोई छोटे शिल्प उद्योग भी ऐसे हो सकते हैं कि आजीविका का साधन घर में रहते हुए ही जुट सके।

दूसरा यह है कि जो कुछ दहेज में देना हो, जो उत्तराधिकार में देने की इच्छा हो, उसे लड़की के नाम लम्बे फिक्स डिपाजिट में किसी बैंक के हवाले कर दिया जाय और उसमें शर्त लगा दी जाय कि दस वर्ष तक कोई उसे निकाल न सकेगा। इतने दिनों में घर की स्थिति कुछ उभरकर ऊपर आ जाती है। दाम्पत्य-जीवन सफल रहा या असफल ? ससुराल वालों के साथ तालमेल बैठा या नहीं। आजीविका की दृष्टि से गुजारे का क्रम ढर्रे पर आया या नहीं। इन सब बातों का तुरन्त तो पता लगता नहीं, पर दस वर्ष जैसी मध्यम दूरी की अवधि बीत जाने पर पता चलता है कि उसे नये परिवार ने आत्मसात् किया या नहीं। यदि नहीं तो क्या उसके लिए आत्मनिर्भरता का द्वार खुला हुआ है अथवा बन्द हो गया है, ऐसी दशा में लड़की अपनी उस स्वावलम्बन क्षमता का भी उपयोग कर सकती है, जो उसे पितृगृह से बुद्धिमान अभिभावकों द्वारा उपलब्ध करायी गयी थी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतना तो बेटियाँ भी किया करें

स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों का कार्य-क्षेत्र कुछ अधिक दुरूह, जटिल और कठिनाइयों से पूर्ण होता है। अकेले श्रम की ही बात होती तो सम्भवतः उतनी जटिलताएँ पुरुष वर्ग के सामने न होतीं किन्तु लोक-व्यवहार, लेन-देन, गृहस्थी के लिए आपा-धापी, धन-जुटाना, कचहरी-मुकदमे आदि करना, इनमें उसे बार-बार निराशा का सामना करना होता है। कितनी ही जगह उसे लताड़ें मिलती हैं, कई जगह अपमान होता है। कहीं थकावट, कहीं पीड़ा, दिनभर तमाम मुसीबतों, कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इतनी सारी परेशानियों का बोझ सिर पर उठाकर चलना निःसन्देह पुरुष का ही काम है। सचमुच उसे अधिक कष्ट उठाने पड़ते हैं।

दिनभर का हारा-थका आदमी अपनी पत्नी तथा बच्चों से स्नेह और आत्मीयता की आशा रखकर घर पहुँचता है। सोचता है—घर पहुँचते ही पत्नी उसका स्वागत करेगी, कुछ ममत्व प्रकट करेगी, अपने दुःख को सुनकर कुछ प्रबोध देगी, धीरज बँधायेगी तो कुछ सान्त्वना मिलेगी। थके हुए आदमी को एक लोटा जल मिल जाता तो उसका सारा श्रम दूर हो जाता है। पत्नी के इतना पूछ लेने से "आज आपका मुख उदास क्यों है, कुछ कष्ट तो नहीं है।" मनुष्य की सारी बेचैनी दूर हो जाती है। अपना जीवन-साथी, चिर-सहचर होने का यही अर्थ तो है कि एक के दुःख-दर्द को दूसरा बँटाये, आपत्ति में कुछ धैर्य दे और उसकी पीड़ा को अपनी पीड़ा समझकर कुछ सेवा-सुश्रूषा करे।

इतना करना तो दूर रहा यदि स्त्रियाँ अपने पुरुषों से ठीक तरह बात भी न करें, उन्हें बात-बात पर ताने, झिड़कियाँ देती रहें तो उस मनुष्य को कितनी पीड़ा, कितनी व्यथा होती होगी यह वह बेवस भुक्तभोगी ही समझता होगा। ऐसी दशा में क्या कभी दाम्पत्य-जीवन सुखी रह सकता है ? क्या कभी स्त्रियाँ यह कल्पना कर सकती हैं कि उन्हें पुरुष का प्यार मिलेगा ? ऐसे परिवारों में कभी सौजन्यता रहती होगी यह सोचा भी नहीं जा सकता।

मानते हैं स्त्रियों के अपने भी कुछ अधिकार हैं। उन्हें भी अपनी भावनाएँ व्यक्त करने के लिए आवश्यक वस्तुएँ चाहिए। उन्हें भी काम करना पड़ता है, उनके लिए मान-सम्मान का भी एक क्षेत्र है किन्तु अपनी परिस्थितियों को भी तो देखना, समझना ही चाहिए। अपनी आमदनी यदि सिर्फ इतनी है कि कठिनाई से बाल-बच्चों का पेट-पालन हो सके, किन्तु स्त्री अधिक अच्छे कपड़े, जेवर-गहनों की माँग करे तो फिर कर्ज ही तो लेना होगा। यह नहीं तो कहीं चोरी-झपटी करनी पड़ेगी। इन अशुभ कृत्यों के दण्ड से क्या सारे परिवार का वातावरण दुःखमय, बोझयुक्त और मलिन नहीं बनता ? इस तरह की माँगें कभी भी उचित नहीं कही जा सकतीं। स्त्रियाँ अपने लिए उतनी ही अपेक्षा कर सकती हैं, जितना सम्भव है। नाजायज की कल्पना करना बेजा है। इसमें सम्पूर्ण गृहस्थी चौपट होने का भय रहता है।

चिन्ताओं से घिरा हुआ मनुष्य कभी ठीक तरह से सोच भी नहीं सकता। उसकी कार्यक्षमता दिन-प्रतिदिन घटती जाती है। शरीर गिर जाता है। कई व्यक्ति तो हार मानकर घर छोड़कर भाग जाते हैं, कई आत्म-हत्याएँ कर डालते हैं। कितने ही अपने शरीर को सुखा-सुखाकर अकाल मौत के घाट उतर जाते हैं, स्त्रियों को पुरुषों के मस्तिष्क में इस प्रकार की चिन्ताएँ पैदा करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

इतना तो कम शिक्षित क्या अनपढ़ स्त्रियाँ भी समझती हैं कि जैसी भी कुछ परिस्थिति है, जैसा भी कुछ रूप-कुरूप आदमी है, है तो अपना ही। अपनों के साथ भी यदि प्रेमपूर्ण व्यवहार न किया जाय तो गृहस्थ-जीवन में सरसता कैसे आयेगी ? हर व्यक्ति अपनी पत्नी-बच्चों से अपेक्षाकृत अधिक मधुर तथा सहृदय व्यवहार की आशा रखता है। यदि वह प्यार और आत्मीयता उसे न मिले तो मनुष्य गृहस्थी के मामलों में भी पूरी लगन से दिलचस्पी न लेगा। वह परिवार सदा डाँवाडोल परिस्थिति में ही पड़ा रहेगा।

क्या हमारी बेटियों की अवस्था सती शांडिली से भी गई-बीती होगी। अपने कोढ़ी पति को सम्पूर्ण प्यार उत्सर्ग कर देने वाली इस सती-कन्या से बढ़कर विपरीत परिस्थिति आज तक शायद ही किसी नारी को मिली होगी। सहज स्नेह, स्वाभाविक निश्छलता और मधुर व्यवहार स्त्रियों के आभूषण हैं। नम्रता, विनयशीलता तथा मधुर शब्दों से वह अपने दुष्ट से भी दुष्ट पतियों के हृदय जीत सकती हैं। उनकी महानता पुरुष को पुरुष बनाने में है, न कि उन्हें शैतान। यह उत्तरदायित्व बहुत कुछ स्त्रियों पर भी है। उन्हीं के गौरव से आज भी भारत का गौरव है। उन्हीं की शक्ति और तपश्चर्या के प्रभाव से भारतीय संस्कृति आज भी जीवित है और युगान्तरों तक अमर रहेगी।

किन्तु इन दिनों परिस्थिति विपरीत होती जा रही है। अशिक्षा और रूढ़िवादी अन्धपरम्पराओं के फलस्वरूप अब स्त्रियों में भी वह कर्त्तव्यभावना घट रही है। पुरुष स्वभाव से कुछ अधिक स्वाभिमानी होते हैं। थोड़ा-सा भी यदि मान-सम्मान उन्हें अपनी पत्नियों से मिलता रहे तो दाम्पत्य-जीवन के अधिकांश कलह दूर हो सकते हैं।

दाम्पत्य-जीवन का सच्चा सार है—पारस्परिक प्रेम, सहानुभूति और आत्मीयता। उन्हें यह दृढ़ प्रतिज्ञा लेनी चाहिए कि हम प्रत्येक स्थिति में प्रेम, सहानुभूति, त्याग, शील, आदान-प्रदान, आशा, विश्वास, सहिष्णुता आदि का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

परित्याग नहीं करेंगे और इसका सजगता के साथ निर्वाह करना चाहिए।

भावना की दृष्टि से स्त्रियाँ अधिक कोमल होती हैं, किन्तु पुरुषों में कार्य-क्षेत्र की जटिलता के कारण कठोरता कुछ अधिक होती है। अतः गृहस्थ को सुखी रखने की अधिकांश जिम्मेदारी स्त्रियों पर आती है। उन्हें अपेक्षाकृत अधिक सहिष्णु, मधुर-भाषी तथा व्यवहारकुशल होना चाहिए। स्त्री को अनन्य भावना से पति में लीन हो जाने में ही सुख मानना चाहिए। समर्पण नारी का बड़प्पन है, इससे उसे सम्मान भी मिलता है, प्रेम भी। सारा परिवार जो सुख से भरा-पूरा रहता है, वह इस तरह के स्त्री-पुरुषों के आध्यात्मिक सम्मिलन से ही होता है।

जीवन-संघर्ष में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का सम्पर्क अधिक होता है। पुरुषों का क्षेत्र रोजगार तथा कमाई-धन्धे तक ही सीमित है, किन्तु स्त्रियाँ समाज का निर्माण करती हैं। अतः उनके शिक्षित होने का महत्त्व अधिक है। उनके लिए कल्पनामूलक शिक्षा की उतनी आवश्यकता नहीं है। घर में तथा समाज के यथायोग्य निर्माण का काम नारी को करना पड़ता है, इसलिए उसे कर्त्तव्यमूलक शिक्षा की आवश्यकता होती है। इसके लिए यह जरूरी है कि उन्हें स्कूली शिक्षा के साथ रचनात्मक व्यवहार की भी शिक्षा मिलनी चाहिए।

हमारे धर्म-ग्रन्थों और विज्ञजनों का यह कथन पूर्णतया सत्य है कि गृहस्थ जीवन का और इस दृष्टि से मनुष्य समाज का सुचारु रूप से संचालन, सद्गुणी पत्नियों पर ही आधार रखता है। इसलिए स्त्रियों को सुयोग्य गृहिणी का पद प्राप्त करने की सदैव चेष्टा करनी चाहिए। बालकों के निर्माण और इस दृष्टि से सम्पूर्ण राष्ट्र के निर्माण का उत्तरदायित्व स्त्रियों पर आता है। यह जिम्मेदारी सचमुच बहुत बड़ी है। इसका निर्वाह पूर्ण समझदारी के साथ ही किया जा सकता है।

आज सम्पूर्ण नारी जाति का कर्त्तव्य है कि निन्दनीय वातावरण छोड़कर आगे बढ़ें और समाज-सुधार, नैतिक, उत्थान तथा धार्मिक पुनर्जागरण का सन्देश मानवता को दें। उन्हें इस ढंग से कार्य करना होगा कि पुरुषों को बल मिले, उनकी खोई हुई शक्तियाँ जागें। इसके लिए उन्हें पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर आगे बढ़ना होगा। अपने कार्य-क्षेत्र का सफलतापूर्वक निर्वाह किये बिना विकास की गति को स्त्रियाँ प्रवाहमान नहीं रख सकतीं। उन्हें सारे उत्तरदायित्व समझदारी से निभाने पड़ेंगे।

यह शिक्षा हमारी बच्चियों को प्रारम्भ से ही मिलनी चाहिए। सुशील, सुन्दर, आचरणयुक्त एवं मधुर-भाषिणी स्त्रियाँ जहाँ भी जाती हैं, वहीं स्वर्ग उतर आता है। विपरीत परिस्थितियों, गरीबी और अभाव में भी विनम्र पत्नियाँ घरेलू वातावरण को खुशहाल तथा उल्लासमय बना सकती हैं। हमारी बेटियाँ सत्य, शिव और सौन्दर्य गुणों को धारण करें तो हमारा देश पुनः वही प्राचीन गौरव प्राप्त कर सकता है।

कन्या की उपेक्षा-तिरस्कार न हो

लड़की और लड़के दोनों ही भगवान के दो हाथों से दिये गये उपहार हैं। दोनों की गरिमा और महत्ता समान है। सच पूछा जाय तो इन दोनों में लड़की की महत्ता अधिक है, क्योंकि वह यदि सुयोग्य बनाई जा सके तो सीताजी की तरह दो परिवारों को यशस्वी बना सकती है।

लड़कियों में कोमलता, भावुकता और स्नेह-भावना की मात्रा कहीं अधिक होती है। इसलिए उसे गोदी में लेते हुए, खेलते-खिलाते हुए अपेक्षाकृत अधिक ही आनन्द आता है कम नहीं।

लड़कियाँ पराये घर का कूड़ा होती हैं। यह कहने वाले सोचें कि यदि उनकी माता न होती तो उनका जन्म ही न हुआ होता। यदि उनकी पत्नी न होती तो घर भूतों का-सा डेरा होता। अपनी माता और पत्नी भी तो आखिर किसी की लड़की ही हैं। उन्हें पाकर जब पोषण, स्नेह और सहयोग पाकर यदि हम धन्य होते हैं, तो यह क्यों सोचें कि उनका घर में आगमन संकट या दुर्भाग्य है। वे भी बड़ी होकर जब किसी की जननी या पत्नी बनकर उस परिवार को हरा-भरा, फलता-फूलता उद्यान बनावेंगी तो समाज का कितना हित-साधन होगा ? इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए शास्त्रकारों ने कन्यादान को उच्चकोटि का पुण्य-परमार्थ कहा है।

आत्म-कल्याण की दृष्टि से तो कन्या देवी की साक्षात् मूर्ति है। उसके नाम के साथ 'देवी' शब्द को जोड़ा भी जाता है। यह इसलिए कि उसकी शिक्षा-दीक्षा, भरण-पोषण, विवाह-शादी में जो समय, श्रम, मनोयोग, पैसा खर्च होता है, वह दान स्वरूप दूसरे के घर जाता है, इस प्रकार यह प्रत्यक्ष पुण्य हुआ। इससे विपरीत लड़के के सम्बन्ध में दृष्टिकोण सर्वथा दूसरा रहता है। वह अपना वंश चलायेगा, पिण्डदान देगा और कमाई ला-लाकर हाथ पर रखेगा आदि मान्यताओं के साथ विशुद्ध स्वार्थ जुड़ा हुआ है। उसके लिए जो कुछ समय, श्रम, स्नेह, धन खर्च किया गया वह एक प्रकार से लाभदायक व्यवसाय में लगाने जैसी बात हुई। लेकिन वह व्यवसाय भी तो नहीं रहता। जुआ, लाटरी जैसा सिद्ध होता है। सैकड़ों-हजारों के पीछे एकाध का मनोरथ पूरा होता है। अन्यथा कलयुगी लड़कों की कथा-गाथा सर्वविदित है कि वयस्क होने तक पढ़ाई और शौक-मौज में घर का सारा पैसा खर्च करा लेते हैं, जब कमाने योग्य होते हैं तो पत्नी के आते ही छुटककर अलग हो जाते हैं और भाई-बहिनों की सहायता करने के नाम पर अँगूठा दिखाते हैं। नजर पसारकर यह दृश्य सर्वत्र चरितार्थ होते हुए देखा जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आर्थिक दृष्टि से लड़का महँगा पड़ता है। जन्मोत्सव, मुंडन, यज्ञोपवीत और विवाह में बार-बार उत्सव-आयोजन करने पड़ते हैं या किसी तीर्थ विशेष में इन कृत्यों के लिए जाना पड़ता है। इन सभी आयोजनों में खर्च ही खर्च हैं। विवाह में बेटे वाले को बदनामी के सिवाय और कुछ नहीं मिलता। गाजे-बाजे, धूमधाम, बारात को खिलाना और दूसरे की छाती पर ले जाने में मार्ग व्यय आदि का खर्चा बेटे वाले को ही उठना पड़ता है। वधू के लिए कीमती कपड़े और जेवर बनवाने पड़ते हैं। दहेज में जो मिलता है उसमें कपड़े, मिठाई, फर्नीचर आदि तो ऐसे ही घर-गृहस्थी के काम आ जाते या बँट जाते हैं। नकदी के रूप में जो मिलता है, उससे धूमधाम, प्रीतिभोज का खर्च भी पूरा नहीं पड़ता उल्टा घर से लगाना पड़ता है। शोषक और डाकू आदि के रूप में निन्दा होती है सो अलग।

जीवन भर की कमाई बेटे-पोतों के लिए उत्तराधिकार में छोड़नी पड़ती है। ऊँची पढ़ाई कराने और नौकरी लगवाने में जो खर्च पड़ता है, उसका ब्याज भी लड़के से मुश्किल में मिलता है। उसमें भी नई बहू के साथ शौक-मौज का खर्चा ही चल पाता है। परिवार की सहायता कर सकने की स्थिति किन्हीं बिरलों की ही होती है। यह सब घाटा ही घाटा तो रहा।

बेटी की शिक्षा में उतना खर्च नहीं पड़ता। फिर अब नया युग आने में देर नहीं। बिना दहेज और बिना जेवर की शादियों का प्रचलन होने में अब ज्यादा देर नहीं। इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से भी लड़की सस्ती पड़ती है और जो उसके निमित्त लगा है सो पुण्य-परमार्थ में गिना जाता है। इसके विपरीत लड़के के लिए जो कुछ किया जाता है, उसके पीछे विशुद्ध स्वार्थ ही जुड़ा रहता है। यह भाग्य की बात है कि वह प्रतिफल न मिले। ऐसे तो किसान के खेतों को भी पाला मार जाता है और भाग्य खोटा समझकर सन्तोष ही करना पड़ता है, पर उस कार्य में जो लगा सो व्यवसाय ही कहा जायेगा। उस व्यवसाय में से भी पाँच प्रतिशत ही कुछ पल्ले पड़ता है अन्यथा उसे अपना अधिकार समझकर हथिया लेते हैं और बाप को निराश ही करते हैं। बड़े लड़कों के लिए सब कुछ खर्च कर डालने पर छोटे बच्चे-बच्चियों की शिक्षा, शादी तथा अपनी शेष जिन्दगी काटने की चिन्ता बुढ़ापे में स्वयं ही करनी पड़ती है। तब पता चलता है कि बेटा बुढ़ापे का सहारा होता है या नहीं।

देश का भविष्य कन्याएँ ही बनायेंगी। वे यदि संस्कारवान हैं तो अपने सद्गुणों को सन्तान में स्थानान्तरित करके उन्हें सुयोग्य नागरिक बनाते हुए मातृभूमि के चरणों में कहने लायक श्रद्धांजलि प्रस्तुत करेंगी। इस कार्य में माता की भूमिका ही प्रधान होती है। बाप पैसा खर्च कर सकता है, पर समय के अभाव में तथा इतनी घनिष्टता न रहने के कारण वह बच्चों को आदर्शवादिता की ओर अग्रसर नहीं कर सकता। यह उद्देश्य माताएँ ही पूरा करती हैं।

लड़की को सुयोग्य, स्वावलम्बी न बनाया जाय, उसे उपेक्षित-तिरस्कृत रखा जाय, छोटी उम्र में विवाह करके कूड़े के घूरे पर डाला जाय तो बात दूसरी है अन्यथा गुणवती कन्या अपने जीवन की नाव खेती है और उसमें बिठाकर ससुराल के परिवार को पार करती है। आवश्यकतानुसार छोटे भाई-बहिनों की सेवा-सहायता करके पिता की चिन्ताओं को हल्का करती है।

देश का पिछड़ापन नारी का पिछड़ा होने के कारण है। अशिक्षित, असमर्थ स्थिति में ही उसे घर के पिंजड़े में कैद रहना पड़ता है और प्रताड़नाएँ सहते हुए रोना-सिसकना पड़ता है। यदि पिता लड़की के विवाह में खर्च होने वाली राशि उसकी योग्यता बढ़ाने में लगा दें तो समझना चाहिए कि दो परिवारों की ही नहीं राष्ट्रीय प्रगति में भी असाधारण सहायता की। कम्युनिष्ट देशों की महिलाएँ पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करती हैं। शिक्षा, चिकित्सा आदि के काम पूरी तरह से सँभालती हैं। इससे इन देशों में प्रगति कहीं से कहीं पहुँची है।

लड़की का तिरस्कार और उपेक्षा करने पर जब वह असहाय, अशक्त और अयोग्य रह जाती है, तब वह अपने लिए, पिता के लिए, ससुराल के लिए, देश के लिए दुर्भाग्य एवं चिन्ता का विषय बनती है। अच्छा ही है कि हम कन्या का सम्मान करें, उसे सच्चे अर्थों में देवी बनाने का प्रयत्न करें। यह पितृपक्ष और ससुराल दोनों का ही समान रूप से कर्त्तव्य है। उसके सम्मान में रत्तीभर भी कमी न आने देनी चाहिए।

बच्चियों को सच्चे अर्थों में देवी बनाया जाय

नारी को नर से विशिष्ट और वरिष्ठ माना गया है। भगवान मनु ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कहा है कि जिस घर में नारी की पूजा होती है उस घर में देवता निवास करते हैं।

ऐसी नारी जिसे देवी कहा जा सके, प्रयत्नपूर्वक सुसंस्कारिता के ढाँचे में ढाली जाती है। जन्म से तो सभी नर-नारी अपने साथ अनगढ़पन-अल्हड़पन साथ लेकर आते हैं। शिक्षण और वातावरण के आधार पर उनमें परिवर्तन होता है।

नारी को प्रकृति ने सुन्दरता, आकर्षण और सद्भावना दी है। इस शक्ति के आधार पर वह पति की ही नहीं समूचे परिवार की प्रिय बन सकती है। इसके लिए एक वस्तु बाहरी भी चाहिए और वह है—सुसंस्कारिता। वह जन्म के साथ नहीं आती, वरन् प्रयत्नपूर्वक उत्पन्न की जाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

बड़प्पन का निखार गरिमा के अनुरूप आचरण करने से ही होता है। यह अनायास ही किसी के मन में से कदाचित् ही उभरता है। इसके लिए भाव भरे प्रयास करने पड़ते हैं। अन्य बातें सिखाने के लिए अपने विषय के निष्णात् व्यक्ति भी सफल हो जाते हैं, पर सुसंस्कारों की शिक्षा में आत्मीयता भरे सद्भावों की आवश्यकता होती है।

लड़कियों को देवी मानते हुए पितृ परिवार में आरम्भ से ही श्रेष्ठ सद्गुणों के विकास का प्रयास चलते रहना चाहिए। लड़की को ढालने के लिए भी इसी उपाय की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए आवश्यक है कि परिवार का विचार, व्यवहारस्वरूप और प्रचलन ऐसा हो जिसका अनुकरण बच्चे कर सकें। जिन परिवारों में दुर्गुण और दुर्व्यसन भरे रहते हैं, उनमें जन्मे एवं पले बालक संस्कारवान सद्गुणी हो सकेंगे, ऐसी आशा नहीं की जा सकती।

दुर्गुणी परिवारों को बच्चे उत्पन्न नहीं करने चाहिए। यदि बच्चे उत्पन्न करने हों तो दुर्गुण छोड़ देने चाहिए। परिवार के वातावरण में बच्चों को भला-बुरा ढालने की सामर्थ्य होती है। साँचे के अनुरूप ही खिलौने ढलते हैं। माता-पिता ही नहीं संयुक्त परिवार का समूचा ढाँचा ही एक प्रकार का साँचा होता है। नयी पीढ़ियाँ उसी में ढलती हैं।

नर-नारी के दो पक्षों में जहाँ तक पीढ़ियों के ढालने और बच्चों को सुसंस्कारी बनाने का प्रश्न है। उसमें नारी को भूमिका अपेक्षाकृत अधिक बढ़ी-चढ़ी है। जब तक बच्चे घर के वातावरण में अधिक समय बिताते हैं, तब तक वे महिलाओं, साथी बच्चों के सम्पर्क में ही अधिक रहते हैं। यह कच्ची आयु ही स्वभाव और संस्कार ढालने की दृष्टि से सबसे अधिक संवेदनशील है। परिवार में रहने और उसका स्वरूप ढालने की कला, दायित्व सँभालने वाले उस समुदाय के सभी सदस्यों को आनी चाहिए विशेषकर महिलाओं को। पुरुष अपने प्रभाव से बड़ी आयु वालों को समझाने या डाँटने में सफल हो सकते हैं पर जहाँ तक छोटे बच्चों का सम्बन्ध है, वहाँ तक महिलाओं को ही प्रमुखता दी जा सकती है।

दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि इतना सारा साहित्य छपता है पर उसमें परिवार निर्माण के विषय पर जिसे उपयुक्त कहा जा सके नहीं के बराबर दृष्टिगोचर होता है। फिर ऐसे अध्यापक या उपदेशक भी नहीं हैं, जो परिवार को समुन्नत बनाने का व्यावहारिक मार्गदर्शन कर सकें।

जो हो जहाँ तक बच्चियों का सम्बन्ध है वह तो विशेषतया महिलाओं को ही सँभालना और सुधारना चाहिए। इसमें पितृपक्ष का गौरव है और ससुराल का आनन्द और उनके द्वारा विनिर्मित पीढ़ियों द्वारा समूचे समाज का अभ्युदय।

भाई-बहिन के सम्बन्धों की गरिमा

नर और नारी के अनेक रिश्ते होते हैं। माँ-बेटा, पिता-पुत्री, पति-पत्नी, देवर-भाभी, ससुर-बहू, दादी-पोती, नाना-नातिन, नानी-नाती आदि जितने भी सम्बन्ध हैं, उनमें भाई-बहिन का रिश्ता हर दृष्टि से बेजोड़ और अनुपम है। भाई-बहिन का सम्बन्ध सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक कहा जा सकता है। इस सम्बन्ध में जो प्रेम एवं सम्मान है वह अन्यत्र सहज सुलभ नहीं। एक ही माँ के पेट से जन्मे या एक ही कुटुम्ब में पले बच्चे-बच्चियाँ ही इस प्रेमल और आदृत सम्बन्धों में आबद्ध होते हों, ऐसा नहीं है। यह सम्बन्ध जाति एवं धर्म से परे भी कहा जा सकता है। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि यह सम्बन्ध कितना निर्मल और कितना असीम है, जिसमें जाति, वर्ग तथा समुदाय भी आड़े नहीं आते, इतिहास की धारा को मोड़ने वाली ऐसी अनेक घटनाएँ हैं, जिनमें विधवा क्षत्राणी रानियों द्वारा मुगल सम्राट को रक्षाबन्धन प्रेषित किया और वे सम्राट इस प्रस्ताव से इतने अभिभूत हुए कि उन्होंने मुँहबोली बहिन को भ्रातोचित सहायता प्रदान की।

हमारे अनेक धर्म जो सद्भावना एवं सदाशयता की प्रगाढ़ता को सुदृढ़ करने के लिए भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में गढ़े गये हैं, उसमें अनेक ऐसे पर्वोत्सव हैं जो मात्र भाई एवं बहिन के सम्बन्ध सूत्रों को प्रगाढ़ बनाये रखने के लिए चिरकाल से आज तक अबाधगति से उल्लासपूर्वक मनाये जाते हैं, जिसमें रक्षाबन्धन और भाईदौज ऐसे पर्व हैं, जो वर्ष में दो बार मनाये जाते हैं और इसमें मात्र भाई एवं बहिन परस्पर निकट से निकटतर एवं निकटतम होते चले जाते हैं। रक्षासूत्र का दर्शन वस्तुतः भाई का बहिन के प्रति नैतिक संरक्षण प्रदान करता है।

अनेक पौराणिक आख्यानों में इस पवित्र सम्बन्ध की महत्ता तथा उपादेयता पर अनेक तरह से बल दिया गया है। आचरण और व्यवहार में भी यह देखा जा सकता है। हमारा दृष्टिकोण यदि दूषित नहीं है तो दो भाई-बहिनों के पारस्परिक विनोद, संलाप तथा वार्तालाप से सहज ही अन्दाजा लगाया जा सकता है कि ये भाई-बहिन हैं, जो अपने माता-पिता की इकलौती सन्तान नहीं हैं अथवा जिन्हें भाई-बहिन के सम्बन्धों की निर्मल स्नेह और पवित्र प्रेमपूर्ण विशेषताओं का ज्ञान है, वे समझते हैं कि परिवार के जिस आश्रय-स्थल में यह पवित्र सम्बन्ध अंकुरित होता है, वह किस प्रकार निरन्तर पल्लवित तथा पुष्पित होता रहता है ?

बचपन में छोटे भाई तथा छोटी बहिन खिलौनों से खेलते हैं, किन्तु उस समय भी भाई में बहिन के प्रति इतना अधिक स्नेह उपज चुका होता है कि क्या मजाल जो कोई अन्य व्यक्ति भाई के समक्ष बहिन को संत्रस्त कर दे। जिन्हें बहिनें न हों, हो सकता है वे इस अनुभव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से शून्य हों किन्तु जिस परिवार में बहिन और भाई रहते हैं वहाँ का वातावरण निःसन्देह कठोर हृदय को भी कोमलता में परिणत कर देने में सक्षम होता है।

किन्तु इस तरह के वातावरण की सृष्टि में माता-पिता का योगदान ही प्रमुख रहता है क्योंकि माता-पिता ही परिवार-संस्था के संस्थापक, संचालक और व्यवस्थापक होते हैं। यदि उनके द्वारा पुत्र और पुत्री के बीच जरा भी वैषम्य भाव बँटता गया तो भाई-बहिनों के सम्बन्ध में दरार पड़ते देर नहीं लगती और वह निरन्तर चौड़ी ही होती जाती है। इस भेदभाव के कारण बहिन में हीनता और अलगाव की प्रवृत्ति भी उत्पन्न होने लगती है। इसके विपरीत यदि माता-पिता समान रूप से पुत्र-पुत्री को प्यार करें, दुलार दें, समान-सुविधाएँ दें और उनके लिए दिशा विकास तथा प्रोन्नति की समुचित व्यवस्था करें तो भाई-बहिन के सम्बन्ध प्रगाढ़ से प्रगाढ़तर होते चलते हैं।

भाई-बहिन के सम्बन्ध जहाँ इतने सौहार्दपूर्ण होंगे, आत्मीयता से ओत-प्रोत रहेंगे, वहाँ भाई-बहिन के परिवार में यदि किसी नूतन सदस्य की अभिवृद्धि होती है, भाई की पत्नी अर्थात् बहिन की भावज आती है तो वह भी परिवार के वातावरण में व्याप्त सौम्यता और सहृदयता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगी। इस वातावरण को आत्मसात् करने में या स्वयं को परिवार में खपा देने में वह भी सुख और शान्ति की अनुभूति करती है। जिस प्रकार आत्मज को आत्म से, स्वयं से उत्पन्न हुआ माना जाता है, उसी प्रकार भावज का सम्बन्ध भावजन्य है, उसे परिवार के एक ऐसे रूप में जाना जा सकता है, जो कल तक तो भिन्न और अपरिचित था किन्तु अब भाव संवेदना की स्थापना से अभिन्न और आत्मीय बन गया है। इस प्रकार की भाव-संवेदना जहाँ अनुभव होगी, वहाँ सहज ही नवागत सदस्य सुख-शान्ति का अनुभव करेगा और इस अनुभूति में, आचार-व्यवहार की इस मधुरता में भाई-बहिन के पवित्र सम्बन्धों का प्रतिबिम्ब प्रतिबिम्बित होगा। दूसरी ओर भाई-बहिन के सम्बन्धों में यदि किसी भी प्रकार की ग्रन्थि होगी तो परिवार में आने वाले नये सदस्य का उस पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहेगा और तानेबाजी, छींटाकशी की जो घटनाएँ आरम्भ में कोई महत्त्व न रखें बाद में पारिवारिक विघटन का कारण बनाने वाली स्थिति तक जा पहुँचती हैं।

भाई-बहिन के सम्बन्धों का एक सामाजिक पक्ष भी है। परिवार में रहकर ही भाई-बहिन वह प्रशिक्षण पाते हैं। जो शनैः-शनैः विस्तृत होता जाता है। इसी आधार पर समस्त संसार में वसुधैव कुटुम्बकम् का आदर्श चारितार्थ होने की कल्पना की जाय तो यह अस्वाभाविक नहीं होगा। जैसे-जैसे भाई-बहिन की आयु में वृद्धि होती जाती है, उनका विकास होता चलता है, उनके कार्य व उत्तरदायित्व अलग-अलग होते जाते हैं। वैसे उनमें बालसुलभ चपलता और चुहलबाजी वाले गुण तो सीमित होते जाते हैं पर सौहार्द, सद्भाव एवं प्रेम का प्रवाह बढ़ता ही चलता है आयु बढ़ जाने, व्यक्तित्व का परिपक्व विकास हो जाने और उत्तरदायित्व तथा कार्य बँट जाने से स्थितियाँ भले ही भिन्न हो जाएँ, परन्तु उससे सम्बन्धों के निर्वाह में भावनाओं और संवेदनाओं का अविरल प्रवाह बहता और बढ़ता ही चलता है। बाह्य रूप से भले ही कोई भेद दिखाई दे, परन्तु उनमें आन्तरिक रूप से कोई अन्तर नहीं पड़ता।

इस तरह यदि समझदारी से काम लिया जाए तो भाई-बहिन के सम्बन्धों में कदाचित् ही कोई बिगाड़ उत्पन्न हो पाता है। कई बार ऐसा भी होता है कि बहिन का सम्बन्ध जब किसी सम्पन्न परिवार में हो जाता है तो 'प्रभुता पाई काहि पद नाहि' वाली उक्ति चरितार्थ होने लगती है। उस स्थिति में बहिन, भाई के प्रति विवाह से पूर्व वाला सद्भाव व्यक्त करने में असफल हो जाती हैं। इसी प्रकार बहिन यदि सम्पन्न परिवार से विपन्न परिवार में विवाहित होती है तो उस स्थिति में भी भाई द्वारा बड़प्पन का प्रदर्शन बहिन के प्रति उपेक्षा का प्रदर्शन करता है। उथली मनोभूमि में ऐसी विसंगतियाँ उत्पन्न हो ही जाती और उसे भी उथली मनोभूमि का परिचायक ही कहा जायेगा कि भाई-बहिन के सम्बन्ध को लेम-देन एवं उपहारों के आदान-प्रदान से तौला जाता है।

लेन-देन एवं उपहारों के आदान-प्रदान की अपेक्षा भाई, बहिन को अपना निश्छल, निष्कपट प्रेम बनाये और बढ़ाते रहने पर ही ध्यान रखना चाहिए। बहिन का एक ही अभीष्ट रहे कि भाई सुखी एवं प्रसन्न रहे तो इससे बड़ा सद्भाव एवं सम्पदा कुछ और हो ही नहीं सकती। स्मरण रखा जाना चाहिए कि सम्बन्धों में वस्तुओं का विनिमय करने की वृत्ति की अलगावोन्मुख प्रवृत्ति का कारण बनती है। भाई-बहिन का सम्बन्ध मात्र स्नेहाभिव्यक्ति का ही प्रतीक नहीं है वरन् आत्मा के सम्बन्धों की दुहाई है जिसमें एकरूपता, एकानुभूति तथा सामंजस्य एवं सहानुभूति के स्वर निनादित होते रहते हैं।

भाई-बहिन का रिश्ता कितना पवित्र ?

स्वामी विवेकानन्द को अमेरिका में हो रहे विश्व धर्म सम्मेलन में हिन्दू धर्म पर बोलने को कहा गया तो उन्होंने सभा को सम्बोधित 'सिस्टर्स एण्ड ब्रदर्स !' अर्थात् ''बहिनो और भाइयो !'' कहकर किया। फिर क्या था, इन्हीं शब्दों पर तालियों की गड़गड़ाहट से सारा हॉल गूँज उठा। अमेरिकावासी 'लेडीज एण्ड जेण्टलमेन' को सुनने के आदी थे, उन्होंने पहली बार एक भारतीय प्रवक्ता के मुँह से सुना ''भाइयो और बहिनो !'' कितना सम्मान, कितना प्यार और कितनी पवित्रता भाई और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

बहिन के बीच भरी पड़ी है, उपरोक्त घटना से ही प्रतिपादन हो जाता है। इस भाई-बहिन के रिश्ते ने इतिहास को मोड़ा है तथा दो विभिन्न संस्कृतियों को हिन्दू और यवनों को निकट लाने का प्रयत्न किया है।

इस रिश्ते का पोषण परिवार में होता है। परिवार में भाई-बहिन के आते ही चहचहाट-सी मच जाती है। इनके रहने से माता-पिता के प्रतिनिधित्व का अनुभव होता है। घर में एक नवीन पवित्र रिश्ते के आ जाने से घर में प्रेममय वातावरण की स्थापना हो जाती है। छोटे-छोटे भाई-बहिन घर के घरौंदे में निश्छल भाव से पलते-पोषते रहते हैं। छोटी उम्र में भाई-बहन का रिश्ता अधिक निकट आता रहता है। कहना चाहिए यहीं से सामाजिक प्रेम सीखने की ओर मानव प्रवृत्त होने लगता है। परिवार ही तो वह पाठशाला है, जहाँ मनुष्य हर बात सीखता है। समाज में तो वह प्रयोग करता है।

जैसे-जैसे भाई-बहिन की उम्र बढ़ती है। उनके अध्ययन, उनके कार्य व उनके उत्तरदायित्व अलग विभाजित हो जाते हैं। इस कारण प्रेम की अन्तरधारा के प्रवाह में तो कहीं रुकावट नहीं होती, पर समय के अभाव और आयु के दबाव में वह चुहुलबाजी कम हो जाती है। इस समय यदि माता-पिता के मन में लड़के और लड़की के प्रति भेदभाव रहा तो लड़की के मन में विपरीत ग्रन्थि इनमें लग जाती है। जैसा कि परिवारों में लड़की के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार देखा जाता है। इससे भाई अपने आपको बहिन से श्रेष्ठ समझने लगता है। इस ऊँच-नीच की भावना से जन्म के भाई-बहिन के प्रेम में थोड़ा-अन्तर आने लगता है। लेकिन यह भेद भीतर ही भीतर रहता है, बाहर तो बहुत कम अवसरों पर उभर कर आता है। इन क्षणों में माता-पिता को लड़के-लड़की के प्रति समान व्यवहार करने में पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए।

सम्बन्धों का निर्वाह सम्वेदनों और भावनाओं के सहारे होता है। इनका अविरल प्रवाह बने रहने से सम्बन्धों के बीच कंकड़, पत्थर आ जाने पर भी वे भीतर दब जाते हैं, बाहर तो प्रवाह आगे ही बढ़ता रहता है, किन्तु जब कहीं ऊँची चट्टान आ जावें या बाँध, बाँध दिया जावे तो प्रवाह की गति में अवरोध उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। कभी-कभी ऐसी परिस्थिति भाई-बहिन के रिश्ते में आ जाती है। वहीं से रिश्ते के प्रेम में विपरीत भाव जाग्रत होने लगते हैं। यदि भाई, बहिन से बड़ा हुआ तो उसका विवाह पहले हो जाता है। बहिन को बड़ी खुशी होती है कि उसके एक भाभी अर्थात् हम सहेली घर में आई। भाभी के मन में लगभग ऐसा ही भाव गुदगुदाता रहता है, किन्तु धीरे-धीरे भाई अपनी पत्नी की ओर खिंचता रहता है और उसके सन्तान हो जाती है। इससे उसका प्रेम पत्नी और सन्तान की ओर बँट जाता है तो स्वाभाविक ही है, इससे घर के अन्य सदस्यों के प्रति प्रेम में थोड़ी कमी होगी। इसका अर्थ कभी-कभी बहिन लगा लेती है कि अब भाई अपनी बहिन से प्रेम सम्पर्क क्यों रखें ? इस परिस्थिति में भाई निर्दोष भी हो सकता है, क्योंकि उत्तरदायित्व बढ़ जाने से सबको समान प्रेम नहीं भी दे पाता हो। ऐसे समय में बहिन को सहृदयतापूर्वक भाई के साथ व्यवहार करना चाहिए और भाई को भी ध्यान रखना चाहिए कि कहीं बहिन उसे रूखा न समझ ले। यहाँ तक तो ठीक है, पर भाभी के स्वभाव में धीरे-धीरे अन्तर होने लगता है। इसका कारण तो ननद का अधिकार भरा स्वभाव जैसा कि परिवारों में ननद व्यवहार करती हैं या ननद के प्रति घर में अधिक प्यार भरा वातावरण देखकर भाई के हृदय में ईर्ष्या जाग्रत होने लगती है। ऐसे क्षणों में भाई को बड़ी बारीकी से प्रेम को बनाये रखने में सहायता करनी चाहिए, किन्तु घर में भाई हर क्षण नहीं रहता है, काम तो भाभी से ही पड़ता है। फिर छोटी-छोटी बातों में भाई से शिकायत करना भी परिवार की शिष्टता के विपरीत ही है। आये दिन घरों में यह भी देखा जाता है कि भाई अपनी पत्नी की ओर से दहेज आदि अच्छा मिल गया, पत्नी पढ़ी-लिखी मिल गई और उधर नौकरी ऊँची मिल गई। इससे उसमें अहंकार आ जाता है। यह अहंकार ही बहिन से क्या, माता-पिता से भी दूर कर देता है। इस अवसर पर भाई-बहिन के रिश्ते का निर्वाह बहिन एक तरफा प्यार देकर भी पूरा करने का प्रयत्न करे तो किसी दिन भाई के अहंकार पर प्रेम की चोट अवश्य पड़ेगी। भाई-बहिन तालमेल मिलाते हुए, परस्पर के प्रेम के स्रोत को सूखने नहीं देवे तो अन्य परिस्थितियाँ उनके प्रेम में व्यवधान उत्पन्न नहीं कर सकती हैं।

अब बहिन का विवाह हो जाता है। वह अपने माता-पिता तथा भाई-बहिन से विदा ले लेती है। बहिन का उत्तरदायित्व भी नये घर में जाकर बँट जाता है। भारतीय परिवार में बहिन को माता-पिता के परिवार का प्रमुख सदस्य मृत्यु-पर्यन्त समझा गया है। ऐसी परिस्थिति में रक्षाबन्धन आदि त्योहारों पर उसे बुलावा भेजा जाता है। यदि सौभाग्यवश बहिन अमीर खानदान में चली जाती है तो ऐसी दशा में दो परिणाम सामने आते हैं या तो बहिन अपने इस अनायास बड़प्पन को पाकर विनम्र हो जाती है या उसमें थोड़ा अहंकार बढ़ जाता है। विनम्रता आने पर भाई-बहिन के रिश्ते में कहीं रुकावट का प्रश्न नहीं आता है। लेकिन जब उसमें अमीरी का अहंकार उफनने लगता है तो भाई-बहिन के प्रेम पर आँच आ जाना स्वाभाविक है। यदि भाई की स्थिति समकक्ष हुई तो ठीक, अन्यथा अपने ही भाई के प्रति बहिन का प्रेम कम हो जाता है। वह अपने भाई के घर जाना तक पसन्द नहीं करती है। यदि गई भी तो वह अपनी अमीरी का प्रदर्शन इस ढंग से करती है कि भाई को कभी-कभी नीचा देखना पड़ता है। वह अपने नाज-नखरे ऐसे करती है कि भाई के घर में व्यर्थ का तनाव उपस्थित हो जाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, जबकि ऐसे समय में तो अमीर बहिन को अपने पूर्व के दिनों को याद बनाये रखना चाहिए। उसी के अनुसार समय-समय पर भाई भाभी के साथ विनम्रतापूर्वक तथा प्रदर्शनरहित प्रेम बनाये रखना चाहिए। सम्भव हो तो बहन किसी न किसी रूप में अपने भाई के परिवार को सहायता भी पहुँचा सकती है। यदि भाभी का स्वभाव या बहिन के पति का स्वभाव प्रतिकूल हो तो सहायता नहीं, तो दुःख-दर्द में काम आकर भाई-बहिन के सम्बन्ध का निर्वाह करने का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि बहिन नारी है, वह भावना की प्रतिमा होती है और उसमें प्रेम की धारा अविरल बहती रहती है। इन गुणों के कारण बहिन को हर दशा में भाई के प्रेम को सूखने नहीं देना चाहिए।

दूसरी ओर भाई अमीर और बहिन गरीब खानदान में दी गई तो भी भाई-बहिन के सम्बन्ध को निभाने में बड़ी सावधानी रखी जानी चाहिए। कहीं-कहीं परिवारों में भाई-भाभी और उनके बच्चों को अपनी अमीरी का इतना अहंकार होता है, जिसके सामने बहिन का प्रेम टिक नहीं पाता है। बहिन का भाई के यहाँ आना-जाना तो जैसे-तैसे बना रहता है, किन्तु वही अमीरी का प्रदर्शन देख-देख बहिन के मन में हीन ग्रन्थि बनने लगती है। यदि अधिक ऐसा प्रदर्शन चलता रहा तो बहिन का आना-जाना केवल खास अवसरों पर औपचारिक मात्र रह जाता है। ऐसा भी हो सकता है कि बहिन की ओर से भी व्यर्थ ही अपने ननदपने का दिखावा होता हो जबकि भाई-भाभी अमीर होते हुए भी बहिन के साथ सहयोग और सद्भावपूर्ण व्यवहार करते हैं। कहना चाहिए, ऐसे अवसरों पर भाई को अपना प्रेम का हाथ बहन के लिए बढ़ाये रखना चाहिए। बहिन के बच्चों को लाड़-प्यार और सहायता देवें। कभी-कभी बहिन का पति बुरे स्वभाव का हुआ तो भाई के मन में चोट पहुँचती है, पर फिर भी बहिन की ओर देखकर अपने प्रेम का निर्वाह करते रहने से भाई-बहिन का सम्बन्ध बना रहता है।

वर्तमान समय में बहिनें लेन-देन को प्रेम मान बैठी हैं। जो भाई देता-लेता है, उससे प्रेम भाव बनाये रखना और जो अपनी आर्थिक स्थिति के कारण न दे पावे तो उससे प्रेमभाव में कमी कर देना। इस प्रकार का प्रेम भाई-बहिन के बीच संवेदनपूर्ण नहीं है, वह तो एक व्यापार हो गया है। बहिन को तो लेन-देन को प्रधानता नहीं देनी चाहिए। यह तो एक ही आकांक्षा रखें कि मेरा भाई सुखी रहे और समय-समय पर एक-दूसरे से मिलते-जुलते रहें। इससे भाई का हृदय बहिन की ओर बढ़ा हुआ रहता है।

ऐसे अवसर भी घरों में आते हैं और सुनने को भी मिलते हैं, कि गरीब भाई यदि अमीर बहिन के लिए शक्ति के अनुसार कोई वस्तु लाकर देता है। वह वस्तु उसके लिए तो कोई मूल्य की नहीं रहती है। ऐसा समझ, वह उस वस्तु की नुक्ताचीनी करेगी। ऐसा करने से भाई-भाभी का हृदय काँच के समान टूट जाता है। भला, ऐसे समय में तो बहिन को कहना चाहिए कि भाई क्या आवश्यकता है इस वस्तु की ? फिर कभी किसी अवसर पर ले लूँगी। यदि अधिक आग्रह ही देखे तो बड़े आदर के साथ उसे स्वीकार करें और कहें कि भइया, तुमने हमने तो ऐसी ही गरीब परिस्थिति में समय निकाला है। इतना भर कह देने से भाई का हृदय गद्‌गद् हो जाता है।

भाई-बहिन का सम्बन्ध लेन-देन, वस्तु, अर्थ, अमीरी-गरीबी आदि पर नहीं टिका हुआ है। यह सम्बन्ध तो इतना पवित्र है कि जिसकी जड़ें भाई-बहिन के परस्पर संवेदन और प्रेम की गहराइयों में हैं। यदि ऐसा समझकर भाई-बहिन इस रिश्ते की पावनता को बनाये रखें, जिससे इसका महत्त्व अक्षुण्ण बना रहे। उधर भाभी अपने मन में यह भाव बनाये रखे कि वह भी किसी भाई की बहिन है। यदि उसमें भी भगिनीत्व जाग्रत रहा तो वह कभी भी भाई और बहिन के रिश्ते में कटुता को उपस्थित नहीं होने देगी, बल्कि ऐसे अवसर आने पर दोनों को जोड़ने का ही काम करेगी।

बहिन यह समझती है रहे कि उसका कच्चा धागा उसके भाई को सदैव प्रेम के सूत्र में जोड़े रहेगा और उसकी रक्षा करता रहेगा तो भाई समझता रहे कि वह इस कच्चे धागे में बँधे प्रेम को टूटने नहीं देगा। वह अपनी बहिन की रक्षा में हर क्षण तत्पर रहेगा। उसे सहयोग देने के लिए अधीर रहेगा और सद्भावना देने के लिए अपने हृदय में अपनी प्यारी बहिन को बिठा लेगा।

बाप-बेटी के रिश्ते की सूखती संवेदनाएँ

बाप और बेटी का परिवार में सम्बन्ध बाप-बेटे के सम्बन्ध से भिन्न होता है। इस भिन्नता का कटुतापूर्ण प्रारम्भ यद्यपि स्वयं माता-पिता द्वारा बाल्यावस्था से ही कर दिया जाता है, किन्तु यदि माँ-बाप इस दृष्टि-वैषम्य का परिचय न भी दें और समान भाव से ही पुत्र-पुत्री का पालन-पोषण करें, तो भी पुत्र एवं पुत्री के सम्बन्धों का आन्तरिक स्वरूप भिन्न रहेगा ही। पुत्र को पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनना है, जबकि पुत्री को पराया घर बसाना है। यह अन्तर कुछ कम नहीं।

पिता परिवार का अधिष्ठाता एवं संरक्षक होता है। बच्चों में उनके प्रति आदर-युक्त आकर्षण का भाव रहता है। मनोविज्ञान की भाषा में इसे ही 'फादर इमेज' कहते हैं। प्रत्येक बच्चे के स्वस्थ विकास के लिए उसके मन की यह 'पिता-प्रतिमा' भी आवश्यक है, क्योंकि इससे बालक के मन में निर्भयता तथा अनुशासन का समन्वित भाव विकसित होता है। एक ओर तो बच्चा पिता को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सर्वसमर्थ मानकर निर्भय बनता है, अपने समर्थ संरक्षण की भावना उसे प्रखर एवं उन्मुक्त बनाती है। दूसरी ओर अनुचित कार्य करने पर पिता के रुष्ट होने एवं उनके द्वारा दण्डित किये जाने की सम्भावना का बच्चे को स्मरण रहता है, जो उसे अनुशासित बनाता है। यही प्रवृत्ति धीरे-धीरे आत्मानुशासन का रूप ले लेती है। देहातों में इस आशय की लोकोक्तियाँ प्रायः कही जाती हैं कि ''पिताहीन सन्तान निरंकुश बन जाती है।''

पिता बच्चे का शुभचिन्तक, मित्र, मार्गदर्शक, जीवनरक्षक तथा हितैषी होता है। उसकी करुणा, उदारता, संगठन, कुशलता तथा वात्सल्य-भावना से सन्तान को पोषक रस मिलता है।

पुत्री के मन में पिता के प्रति आदर का भाव पुत्र की तुलना में अधिक ही होता है। अपनी स्वाभाविक विनम्रता तथा शील-संकोच के प्रशिक्षण के कारण पुत्री, पिता से कभी भी उद्धत व्यवहार नहीं करती, जबकि पुत्र ऐसा करते देखे भी जाते हैं। प्रत्येक पुत्री के मन में पिता के प्रति बड़ी कोमल और मधुर भावनाएँ होती हैं, जिन्हें वह अधिक व्यक्त भी नहीं करती। अपितु अमूल्य थाती की तरह सँजोए रहती है तो भी 'बाप का घर' उसके मन में अनेकों भावभरी संवेदनाओं का केन्द्र होता है। ससुराल में आकस्मिक विपत्ति, अप्रत्याशित अपमान या असह्य यन्त्रणाओं की स्थिति में बेटी को बाप का ही घर याद आता है। वही आश्रय-स्थल प्रतीत होता है। अपने पिता की तथा पिता के घर की बुराई कोई भी लड़की नहीं सह सकती। अति सहिष्णु नारी में भी बाप का उलाहना देते ही आक्रोश आ जाता है। उद्दण्ड-असभ्य ससुराल-पक्ष वाले भी जब बहू को डाँटते-फटकारते हैं तो यही कहते हैं कि ''क्या यह तुम्हारे बाप का घर है।'' इस अशिष्टता में भी यह संकेत तो छिपा ही है कि बाप का घर बेटी के लिए सर्वाधिक सुरक्षित-निरापद स्थान है। ससुराल की आदर्श स्थिति वही मानी जायेगी, जहाँ कि वह घर भी बहू के लिए बाप के घर जैसा ही हो जाय।

विवाह-संस्कार के समय कन्यादान की प्रथा है। आज तो उसका अर्थ ही भुला दिया गया है, वस्तुतः कन्या-दान का अर्थ किसी वस्तु की तरह कन्या को वर को सौंप देना नहीं है। कन्या-दान के समय जो मन्त्र कहे जाते हैं, उनका आशय समझें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि पिता वर-पक्ष को यह थाती इस विश्वास के साथ सौंपता है कि उनकी बेटी की भावनाओं एवं व्यक्तित्व का वैसा ही ध्यान रखा जाय, जैसा अब तक पितृ-गृह में रखा जाता रहा है। इस प्रकार कन्यादान की प्रक्रिया मूल रूप में पुत्री की गरिमा की प्रतिष्ठा की प्रक्रिया है।

संयुक्त-परिवारों में अभी भी यह स्थिति विद्यमान है कि यदि किन्हीं कारणों से लड़की को परित्यक्ता का जीवन जीना पड़े, या कि दैव-संयोग से वह विधवा हो जाये, तो वह अपने बच्चों समेत मायके में ही रहती है और आर्थिक संकट का अकेले समाधान करने की विपत्ति से बच जाती है। इस प्रकार पिता और पिता का घर लड़की के जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। भावनाशील नारी इस महत्त्व को अपने अन्तःकरण में भली-भाँति समझती है, स्मरण रखती है कि पिता उसकी कोमल संवेदनाओं का एक केन्द्र होता है।

किन्तु प्रायः पिता में इन दिनों इसके अनुरूप उच्चाशयता की बहुत कमी देखी जाती है। कमाऊ पूत के प्रति पक्षपात की भावना माताओं में भी होती है। लोक-रूढ़ि से मुक्त वे भी नहीं रह पातीं। पोषण के मामले में तो पुत्र-पुत्री के बीच पक्षपात मुख्यतः माताएँ ही करती हैं, किन्तु लड़की के ससुराल जाने पर कलेजे के उस एक टुकड़े की स्थिति के प्रति कभी भी उदासीन नहीं हो पाती। उसके दुःख-सुख की वह बराबर उसी संवेदना से खोज करती रहती है।

किन्तु प्रायः पिता विवाह के बाद पुत्री के प्रति बड़ी सीमा तक उदासीन हो जाते हैं। ''सिर का बोझ टला, चिन्ता दूर हुई''—ऐसे भावों के साथ वे पुत्री के प्रति अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री मान बैठते हैं। यह संवेदन शून्यता ही तो है।

बेटे के लिए बाप जीवनभर खटता है। मजदूरी करता है, खेतों में जी-तोड़ मेहनत करता है, नौकरी करता है। पुत्र के भावी जीवन की सुख-सुविधा के लिए वह स्वयं कष्ट सहकर बचत करता है। सम्पत्ति जुटाता-बढ़ाता है, पर बेटी के लिए वह क्या करता है ? बेटी न तो जायदाद में हिस्सा बँटाने वाली है, न ही शादी के बाद पिता के प्रति कठोर हो जाने वाली है, तो भी बेटी की शिक्षा एवं सुविधा में होने वाला 'खर्च' पिता को अखरता ही रहता है, जबकि तटस्थ ढंग से देखा जाय तो यह सिर्फ दृष्टि-भेद का परिणाम है, स्वयं की भावनाओं का खेल है। बेटे से ही पिता को क्या मिल जाता है ? पाल-पोसकर बड़ा कर दिया। शिक्षा-दीक्षा दिलाई, विवाह में धूमधाम की, धन्धे-नौकरी के लिए दौड़-धूप की। बेटा समर्थ बन गया। उसकी पत्नी की आकांक्षाएँ बढ़ीं। उसके अपने बेटे हो गये। अब वह बस बहानों की तलाश करने लगा और कोई न कोई बहाना हाथ लगते ही बाप से अलग हो गया। जायदाद बँटा ली। उसमें तो समान हिस्से की माँग करने लगा, ऊपर से इस ताक में भी रहने लगा कि बाप अपने हिस्से की सम्पत्ति अधिक न खर्च कर पाये। उसके मरने की बाट जोहने लगा और मरते ही उस शेष सम्पत्ति पर भी कब्जा कर लिया। त्याग, बलिदान, कर्त्तव्य-धर्म में समानता की आकांक्षा किसी-किसी बेटे में ही उठती है। अपनी भोग लिप्सा के लिए आवश्यक सुविधा-उपकरणों के जुटाने के लिए तो सम्पत्ति में हिस्सेदारी का स्मरण सबको रहता है। पितृ-ऋण चुकाने, अपने ऊपर पिता के त्याग-बलिदान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का जो भार चढ़ा है, उसे उतारने, कर्त्तव्य-पालन में हिस्सा बँटाने की याद कितने लोग कर पाते हैं ?

विचार कर देखा जाय तो इस कृतघ्नता के बीज उस समय ही बो दिये जाते हैं, जब पिता पुत्र-पुत्री के बीच विषमतारूपी विकृति को ही संस्कृति का अंग मान बैठता है। अपने प्रत्येक व्यवहार तथा शब्दों से पिता प्रायः यह स्मरण दिलाता रहता है कि बेटी तो पराया धन है, इसके बोझ से तो जैसे-तैसे मुक्त होना है। उधर बेटे को यह बोध कराया जाता रहता है कि जो कुछ है, सब उसी का है। वही इस सारी सम्पत्ति का हकदार है। वही घर की ज्योति है। माँ-बाप के भाग्य का सितारा है। इस विषम चिन्तन तथा आचरण से बेटे का दम्भ प्रतिपल फलता-बढ़ता रहता है। वह उन सब पर अपना स्वाभाविक अधिकार समझने लगता है। इतने अधिक सुविधा-साधनों को जुटाने वालों के प्रति वह कृतज्ञता की कोई अनुभूति नहीं कर पाता, क्योंकि उसे यही सिखाया गया है कि यह उसका है ही।

इस दूषित दृष्टिकोण का परिणाम पिता-माता को तो वृद्धावस्था में भोगना पड़ता ही है। लेकिन पुत्री को प्रारम्भ में ही यह मंद विष खिला-खिलाकर उसे कमजोर किया जाता रहता है। उसके मुक्त उल्लास और स्वतन्त्र विकास पर हीन भावना की काली परछाई प्रतिपल डाली जाती रहती है। इससे उसका व्यक्तित्व बहुत कुछ पंगु बनता जाता है। आत्महीनता की ग्रन्थि उसकी सम्भावनाओं को सीमित करती रहती है। उसके व्यक्तित्व को जकड़ती-दबोचती रहती है।

इसके विपरीत जो लोग स्वस्थ दृष्टि वाले होते हैं, पुत्री के व्यक्तित्व-विकास की भी वैसी ही व्यवस्था करते हैं, जैसी पुत्र की। उन्हें पुत्रों से रखी जाने वाली सारी अपेक्षाएँ तो पुत्री से मिलती ही हैं, साथ ही कोमलता एवं निर्मल स्नेह के वे अनुपम उपहार भी प्राप्त होते हैं, जो नारी होने के कारण पुत्री की स्वाभाविक विशेषता होते हैं। समर्थ पुत्रियाँ पिता का नाम तो प्रसिद्ध करती ही हैं, असमर्थता की स्थिति में उनकी सहायता के लिए भी सदा ही आगे आती हैं। स्नेह, संवेदना और सौम्य व्यवहार से वह पिता-माता के चित्त को वृद्धावस्था में शीतल, प्रफुल्ल बनाती हैं। उनकी अनुभूतियों, आकांक्षाओं को वह बारीकी से समझती हैं। पति-गृह में रहने पर भी कोई पुत्री पिता-माता से उदासीन तो नहीं ही रहती। समर्थ पुत्री तो अपनी संवेदना को मूर्त रूप भी दे सकती हैं। आड़े वक्त में वह हर प्रकार की मदद कर सकती है। सेवा-सुश्रूषा, सौहार्द-सद्भाव से वह विपत्तिग्रस्त माता-पिता को सुरक्षा एवं सुख देती है।

यों, सारी विषमताओं के बीच भी पिता-पुत्री के बीच निर्मल स्नेह की धारा तो बहती ही रहती है, किन्तु पिता के रूक्ष या उपेक्षापूर्ण व्यवहार का ताप उसे अत्यन्त क्षीण बनाता चला जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि उन बहुमूल्य संवेदनाओं का प्रवाह सूखने तो नहीं दिया जाय। उनका महत्त्व समझकर, उन्हें विस्तृत, गतिशील एवं अधिकाधिक मधुर बनाया जाय। इससे स्वयं पुत्री को तो मानसिक तुष्टि प्राप्त होगी ही, पिता भी बेटे में ही केन्द्रित संवेदनाओं की संकीर्णता के दुष्परिणामों से बचेगा और समतापूर्ण स्वस्थ दृष्टि से अन्तःकरण में स्वाभाविक रूप से उमड़ने वाले उल्लास के साथ ही पुत्री की भावप्रवणता, स्नेहपूर्णता एवं सौजन्यशीलता से जीवन में सरसता का अनुभव करेगा। अभी जैसे तनाव, शुष्कता एवं एकाकीपन जो बेटों के रूखे व्यवहार से उन्हें डसते चले जाते हैं, फिर उन्हें न घेर पायेंगे।

कन्या और वधू को भी लड़के जितना दुलार मिले

माता और बच्चे के बीच जो वात्सल्य होता है, उसे मनुष्य-मनुष्य के बीच पाये जाने वाले प्यार में सर्वोत्तम स्तर का कहा जा सकता है। यह एकाकी होता है। बच्चा तो प्रेम का स्वरूप, महत्त्व तक नहीं जानता। प्रतिदान की तो सम्भावना ही कहाँ रहती है ? माता को अकेले ही अपना प्रेमपक्ष चरितार्थ करना पड़ता है। वही अपनी आत्मीयता का आरोपण बालक के ऊपर करती है और उसके सुख-दुःख में साझीदार रहती है। अपने अन्तराल से निकला प्रेम, बालक से टकराकर वापस लौट आता है। इसे अपनी ही आत्मा की प्रतिध्वनि, प्रतिच्छाया भी कह सकते हैं।

मनुष्य के एक सिरे पर दिव्य सम्भावनाओं से भरा-पूरा मस्तिष्क है तो दूसरे पर मल-मूत्र के दुर्गन्ध भरे छिद्र भी। एक पक्ष में देवता का निवास तो दूसरे में शैतान भी रहता है। माँ बच्चे के प्रति वात्सल्य प्रकट करती है, तब वह देवता होती है, किन्तु जब कन्या पुत्र का अन्तर करके एक को दुलार, दूसरे को तिरस्कार देने लगती है तो उसका शैतान पक्ष उभर आता है। बालक ईश्वर की प्रतिमूर्ति है। छल-छिद्र से, दोष-दुर्गुण से रहित हृदय सन्त-साधुओं का होता है। उन्हीं में भगवान की झाँकी मिलती है। ईसा के शिष्यों ने जब भगवान के दर्शन कराने का आग्रह किया तो उन्होंने एक छोटे बालक को गोदी में उठाया और कन्धे पर बिठाकर सबको दिखाया कि मनुष्य आकृति में यही भगवान है। उसका कथन सच था। निर्मल अन्तःकरण वाला शिशु भगवान ही हो सकता है। इस विशेषता में कन्या लड़के की अपेक्षा कहीं उत्कृष्ट होती है। ऐसी ही भावनाओं के कारण नर की तुलना में नारी को अपेक्षाकृत अधिक सहिष्णु, विनम्र, संयमी, सेवाभावी बताया है। वे बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता की दृष्टि से भी कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी होती हैं। अपराधों की गणना में नारी को दस प्रतिशत और पुरुष को नब्बे प्रतिशत अनाचारों में लिप्त पाया गया है। छोटी कन्याओं में तो मृदुलता, सुषमा और भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिक बढ़ी-चढ़ी होती है। इसलिए दुलार-संरक्षण, उन्नयन न्यायानुसार उन्हीं का अधिक होना चाहिए, पर होता ठीक इससे उल्टा है। पिता के अतिरिक्त परिवार के अन्य पुरुष भी लड़की के जन्म को दुर्भाग्य मानते हैं, क्योंकि वह पालने-पोसने के बाद दूसरे घर की हो जाती है और साथ ही कुछ दान-दहेज भी साथ ले जाती है। इस अर्थ-प्रधान दुनिया में लड़की के प्रति एक समय उपेक्षा भाव समझ में आता है, पर दूसरी ओर जब दृष्टि दौड़ाई जाती है कि किसी दूसरे की पाली-पोसी लड़की वधू के रूप में अपने घर में आई है और वह कितनी उपयोगी सिद्ध हो रही है। तब यह समझा जा सकता है कि किसी के घर कन्या न जन्मी हो तो अपने घर में वधू कहाँ से आ जाती है। अपनी कन्या दूसरों के घर जाती है तो दूसरे की लड़की अपने घर आती भी तो है। यह तो आदान-प्रदान मात्र हुआ। इसमें घाटा कहाँ ? लाभ कहाँ ? अदूरदर्शिता ही ऐसी दृष्टि उत्पन्न करती है, जिसमें लड़की घटिया प्रतीत होती है और लड़का बढ़कर। वस्तुतः हर दृष्टि से लड़की का दर्जा ही बड़ा है। लड़के शिक्षा, शादी और व्यवसाय उत्तराधिकार में घर खाली करा लेते हैं और जैसे ही कुछ कमाने योग्य होते हैं, पत्नी को लेकर अलग रहने लगते हैं। छोटे भाई-बहिनों की शिक्षा, शादी में कदाचित् ही परिवार को कुछ सहायता देते हैं। जवानी में ही बूढ़े-बाप का कारोबार हथिया लेते हैं और उन्हें एक-एक पैसे के मुहताज बना देते हैं। अधिकांश परिवारों में यही उपक्रम अपनाया गया दीखता है। सतयुगी श्रवणकुमार लड़के तो कदाचित् ही किसी भाग्यवान के घर में उत्पन्न होते दिखाई देते हैं। तिरस्कृत, उपेक्षित, असमर्थ माता-पिताओं की सेवा समर्थ लड़कियाँ भी कर सकती हैं। यह रिवाज तो मनुष्यों ने उस दृष्टि से बनाया है, जब वे ससुराल वाले होते हैं और चाहते हैं कि कन्या के घर से सदा मिलता ही मिलता रहे। ऐसी नौबत न आवे कि कन्या पक्ष के मुसीबत मे फँस जाने पर उनकी कहीं सहायता न करनी पड़े। वस्तुतः ऐसी कुछ बात नहीं है। बेटी और बेटे में कोई अन्तर नहीं। असमर्थ माता-पिता की लड़कियाँ भी उसी प्रकार सेवा-सहायता कर सकती हैं जैसे कि लड़के करते हैं। इसमें कुछ भी ऐसा नहीं है, जिसे अनुचित कहा जा सके।

विपन्न परिस्थितियों में कितनी ही जगह ऐसा भी होता है कि पिता के न रहने पर कमाई का स्रोत बन्द हो जाता है, तब बड़ी आयु की लड़कियाँ नौकरी करके अपने छोटे-भाई बहिनों का निर्वाह तथा शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करती हैं। अपनी आयु ऐसी ही कुमारी अवस्था में बिता देती हैं। इन आदर्शों को देखते हुए यह मानना पड़ता है कि लौकिक दृष्टि से भी कन्या का महत्त्व लड़कों से किसी भी प्रकार कम नहीं है।

आश्चर्य तो तब होता है जब घर की महिलाएँ भी कन्या जन्म पर बुरा मानती हैं। वे यह भूल जाती हैं कि वे स्वयं भी किसी की लड़की हैं। किसी महिला के पेट से ही जन्मी हैं। जब वे अपने अस्तित्व को सही मानती हैं तो नई जन्मी कन्या को ही क्यों असह्य ठहराती हैं ? होना यह चाहिए कि पुरुषों द्वारा उपेक्षित और तिरस्कृत नारी को उसकी बिरादरी द्वारा तो समर्थन मिले ही, हिमायत और सिफारिश के लिए उनका वर्ग तो आगे आये ही, पर होता उल्टा है। विवाह-शादी के समय लड़कों के लिए अधिक सुन्दर और अधिक मालदार लड़की तलाशने में महिलाएँ ही सबसे अधिक नुक्ताचीनी करती हैं। वे यह भूल जाती हैं कि यदि उनकी लड़की असुन्दर रही होती, यदि वे दहेज की लम्बी रकम देने में असमर्थ होते तो उन पर क्या बीतती ? दहेज कम मिलने पर, बहू के असुन्दर आने पर तानाकशी सास ननदें ही अधिक करती हैं। उस समय उन्हें अपनी बेटी की स्थिति ध्यान में नहीं रहती। घरेलू लड़ाई-झगड़ा में भी सास-बहू के बीच ही खटकती रहती है। इसमें दोष सास का अधिक और बहू का कम होता है। सास द्वारा यदि बेटी जैसा दुलार देकर गलतियों को प्यार से समझाने और हल्के-फुल्के सुधारने, सिखाते रहने की नीति अपनाई जाये, तो वधू अल्हड़ होने पर भी कुछ दिनों में सुधर जाती है, पर यदि बात का बतंगड़ बनाया जाय, अपमानित और लांछित किया जाये, तो बात बढ़ने और स्थिति खटकने जैसी हो जाती है।

इन सबके पीछे उस मूल मान्यता का ही हाथ है, जो महत्त्वपूर्ण प्रसंग की तरह अन्तराल में घर कर गई होती है और जिसके अन्तर्गत लड़की को कनिष्ठ और लड़के को वरिष्ठ, एक को अयोग्य एवं दूसरे को सुयोग्य मानने का पूर्वाग्रह निहित होता है। यदि इस भेदभाव से ऊपर उठकर दोनों को समान रूप से स्नेह और सहयोग लड़के जितना दिया जा सके, तो कोई कारण नहीं कि वे अपनी प्रतिभा और क्षमता का परिचय न दे सकें।

उठती उम्र में सतर्कता बरती जाय

सज्जन और दुर्जन बनने की नींव उठती उम्र में पड़ती है। बड़े होने पर तो मनुष्य आदतों का गुलाम हो जाता है, स्वभाव का अभ्यासी। फिर उसका बदलना, सुधरना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है।

यों मनुष्य स्वयं चाहे तो अपनी संकल्प-शक्ति के सहारे अपने को कभी भी सुधार की दशा में अग्रसर कर सकता है, अनगढ़ स्थिति से उबरकर सज्जन, सभ्य एवं सुसंस्कृत बन सकता है, पर इसके लिए निजी मान्यता, भावना के परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है। दूसरे लोग सिखा-समझाकर बदलना चाहें तो बड़ी आयु के व्यक्ति पर उसका प्रभाव कम पड़ता ही देखा गया है। गीली

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लकड़ी को आसानी से मोड़ा जा सकता है, पर उसके पक जाने पर परिवर्तन का प्रयत्न किया जाय तो उसमें कठिनाई से ही थोड़ी-बहुत सफलता मिलेगी। उपयुक्त समय उठती उम्र ही है। माली अपनी पौधों की काट-छाँट आरम्भिक दिनों में ही करता है। बड़े वृक्ष बन जाने पर उनके स्वरूप में सुधार थोड़ा-बहुत ही हो पाता है। किसी पेड़ से कलम काटकर किसी में लगाई जाय तो वह कार्य तभी तक ठीक तरह पूरा हो पाता है, जब तक कि वे पौधे नये हैं। बड़े वृक्षों में कलम कहाँ लगती है ?

रहन-सहन, दिनचर्या, परम्परा, व्यवहार, भाषा, पहचान आदि के लिए दस वर्ष की आयु में ही सुधार-परिवर्तन होते हैं। इसमें घर के वातावरण का ही प्रधान प्रभाव रहता है। अभिभावकों की सतर्कता उन्हीं दिनों पूरी तरह काम करती है। इसके बाद बच्चा स्कूल जाने लगता है। अध्यापकों के प्रभाव से प्रभावित होता है। साथियों की भली-बुरी आदतों को भी वह अपनाने लगता है। इसे सामाजिक जीवन का आरम्भ कह सकते हैं। समाज में भले लोग कम और बुरे अधिक हैं। बच्चों में भी वैसी ही आदतें पारिवारिक वातावरण में तथा पारस्परिक मेल-जोल से प्राप्त होती देखी गई हैं। यही समय है जब उन्हें बुराइयों से बचाया और अच्छाइयों के प्रति आस्थावान-अभ्यस्त बनाया जा सकता है।

आमतौर से सभी को अपने बच्चे प्यारे लगते हैं। जो प्रिय होता है, उसमें गुण ही दिखाई देते हैं। दोष या तो दीखते नहीं या फिर दर-गुजर होते रहते हैं। इस उपेक्षा का प्रतिफल यह होता है कि दोषों का आक्रमण जो होने लगा था उसकी न तो जानकारी मिल पाती है, न समीक्षा होती है और सुधार की चेष्टा तो ऐसी स्थिति में चल ही नहीं पाती। रोग इसी प्रकार पलते और पनपते हैं। आरम्भ उनका बहुत छोटे रूप में होता है, पर उपचार न होने पर वे जड़ें जमाते रहते हैं और प्रकट तब होते हैं, जब उनका विकराल रूप सामने आता है। यही बात दुर्गुणों के सम्बन्ध में भी है। वे साधारण होने पर हँसी-खेल जैसे लगते हैं, पर उनकी जड़ें जब आदतों के रूप में पकने-पनपने लगती हैं, तब स्थिति ऐसी बन जाती है कि उपचार-सुधार अतिशय कठिन बन गया होता है।

बड़ी आयु में जो दुष्ट, दुरात्मा, कुकर्मी, असभ्य अपराधी के रूप में सामने आता है, वे दुर्गुण उनमें यकायक प्रकट नहीं होते, वरन् बहुत पहले से ही धीरे-धीरे उनकी जड़ें स्वभाव का अंग बनने लगती हैं। तब वे छोटी होने के कारण समझ भी नहीं पड़तीं और भयंकर भी नहीं लगतीं, पर समय के साथ-साथ उनका जब विकास-विस्तार और परिपाक होने लगता है तो स्थिति ऐसी बन जाती है कि सुधार परिवर्तन में असाधारण कठिनाई का सामना करना पड़े। जैसे-जैसे समझदारी बढ़ती चले, वैसे-वैसे ही बच्चों के प्रति अभिभावकों को, अध्यापकों को, परिवार वालों को अधिक सतर्कता बरतनी चाहिए और जहाँ कहीं अवांछनीयता पनपती दिखाई पड़े उसकी रोकथाम के लिए सचेष्ट होना चाहिए।

बालकों में समझ कम होती है। वे भलाई-बुराई का अन्तर ठीक तरह कर नहीं पाते। अनुकरण में उत्साह अधिक होता है। जिन्हें भी अपने से वरिष्ठ देखते हैं, उनकी चाल-ढाल को अपनाने लगते हैं। यह उनकी सहज प्रवृत्ति होती है। गुण-दोष का विश्लेषण करना उन्हें नहीं आता। परिणामों का अनुमान भी वे नहीं लगा पाते। ऐसी दशा में किसी दोष पर उनकी प्रताड़ना करने से भी कुछ काम नहीं बनता। वे प्रताड़ना का कारण, उद्देश्य समझ नहीं पाते, मात्र अपने तिरस्कार को, कष्ट मिलने की बात को ध्यान में रखते हैं और धीरे-धीरे प्रताड़ना देने वालों के प्रति दुर्भाव बनाने लगते हैं। बच्चों और अभिभावकों के बीच प्रेम सम्बन्ध ही वह शृंखला है जिसके आधार पर उनका मनोबल बढ़ता है और उत्साह स्थिर रहता है। प्रताड़ना उस मर्मस्थान पर चोट पहुँचाती है, फलतः वे अपने को एकाकी उपेक्षित अनुभव करने लगते हैं। इस मनःस्थिति में उसमें कई प्रकार की अन्य कुण्ठाएँ पनपने लगती हैं, जो विकृत दुर्गुणों से कम भयंकर नहीं होती हैं। ऐसी दशा में सुधार प्रयत्न करने वालों की दुहरी जिम्मेदारी बढ़ जाती है।

बच्चों का मन ही सब कुछ होता है, उनकी बुद्धि सीमित होती है। न वे व्यवस्था बना पाते हैं और न विकृतियों को सुधारने में ही अपने बलबूते समर्थ हो पाते हैं। इसके लिए उन्हें दूसरों की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। छोटे बच्चे तो मल-मूत्र तक की सफाई नहीं कर पाते। थोड़े बड़े होने तक उनके कपड़ों को धोना, पुस्तकों, जूतों को, बालों को सँभालना भी प्रायः बड़ों के जिम्मे ही होता है। सफाई एवं व्यवस्था की अन्य जिम्मेदारियों को भी प्रायः घर वाले ही सँभालते हैं। इसी प्रकार एक और दायित्व भी घर वालों को ही उठाना चाहिए कि वे बच्चों में पाई जाने वाली बुरी आदतों को सुधारें। अच्छी आदतें सिखाने के लिए सचेष्ट रहें। दोनों के बीच रहने वाले अन्तर की परिणति, प्रतिक्रिया समझावें। यह कार्य भी अक्षर ज्ञान सिखाने और शिष्टता के आरम्भिक चरण में प्रवेश कराने की तरह ही आवश्यक है। इस प्रकार की सतर्कता न बरती जाने पर वैसा उपक्रम न चलने पर प्रायः बालक उजड्ड, अनगढ़ रह जाते हैं और यही असभ्यता धीरे-धीरे पलती रहने पर बड़े होने पर ऐसी बन जाती है कि उसे सुधारना कठिन हो जाता है। उनका स्वभाव बेतुका बन जाता है। शालीनता से दूर हटते जाते हैं और सम्पर्क रखने वालों के लिए सिर-दर्द बनते जाते हैं। तिरस्कार सहते और असहयोग के भाजन बनते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह सब होता इसलिए है कि संरक्षकों ने दुलार तो दिया, पर उनके सुधार की आवश्यकता पर ध्यान नहीं दिया। अभिभावक यदि बच्चों की सफाई पर ध्यान न दें, उन्हें सुन्दर, सुसंस्कृत बनाने के लिए प्रयत्नशील न रहें तो हर बालक गन्दा दिखाई देगा। यही बात स्वभाव के सम्बन्ध में भी है। यदि उसे आरम्भ से ही सँभाला नहीं गया है तो वह बड़ा होने पर बुराइयों का गट्ठर बन जायेगा। अपने भविष्य को अन्धकारमय बना लेगा। दूसरों का स्नेह, सम्मान, सहयोग प्राप्त न कर सकेगा। यही अनगढ़ स्थिति आगे चलकर दुर्व्यसनों, अनाचरणों की ओर मुड़ सकती है और किसी समय में भोला-भाला बालक दुष्प्रवृत्तियों से ग्रस्त हो सकता है। अपराधों की दिशा में अग्रसर हो सकता है। असभ्य, असामाजिक, अनैतिक बन सकता है।

जन्म दे देना कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं है, वरन् अनेकानेक उत्तरदायित्वों को सँभालने का शुभारम्भ है। इसके लिए अभिभावकों को पहले से ही तैयारी करनी चाहिए। बच्चे को सद्गुणी-सुसंस्कृत बनाने के लिए क्या-क्या करना पड़ेगा ? इसकी रूपरेखा पहले से ही बनानी चाहिए अन्यथा उन्हें अन्न-वस्त्र देने, ठाली समय में खेल-खिलवाड़ करते रहने के अतिरिक्त और कुछ न तो सूझ पड़ेगा और न कुछ करते-धरते। यह मुसीबत तब और भी अधिक बढ़ जाती है। जब बच्चों की संख्या बढ़ जाती है और वे जल्दी-जल्दी पैदा होने लगते हैं। उनकी शारीरिक आवश्यकताएँ पूरी करते रहने में ही सारा ध्यान और समय लगा रहता है। पनपने वाली बुराइयों की ओर ध्यान ही नहीं होता फिर उनके सुधार का उपाय भी समझ में नहीं आता। गाली-गलौज करने, कोसने, मारने-पीटने से बच्चे सहम या डर तो जाते हैं, पर यह समझ नहीं पाते कि उनसे क्या भूल हुई और उसे सुधारने के लिए उन्हें क्या करना चाहिए ? मारपीट से बच्चे ढीठ और बागी हो जाते हैं, जो मर्जी होती है उसे इस प्रकार छुपकर करते हैं कि घरवालों को उन हरकतों का पता न चलने पाये। यह एक और नई मुसीबत की बात है। जब तक वे सीधे-सरल रहते हैं, तब तक उनकी गलतियाँ आसानी से देखी-समझी जा सकती हैं, पर जब वे छिपकर अनौचित्य बरतने की ओर बढ़ते हैं, तो उनमें चोरी की, धूर्तता की नयी कुटेबें आरम्भ होती हैं। ऐसी दशा में सुधार और भी अधिक कठिन देखा गया है। इन्हीं परिस्थितियों में बच्चे अक्सर घर छोड़कर बाहर निकल जाते हैं और दुष्टों के चंगुल में फँसकर जो नहीं सीखा था, वह भी सीख लेते हैं। प्रायः ऐसी ही आवारागर्दी में पले और बढ़े हुए लड़के बड़े होकर अपराधी प्रकृति के बन जाते हैं।

अपराधों की दो धाराएँ हैं—एक चोरी-ठगी और दूसरी आवारागर्दी, गुण्डागर्दी। साहस के अभाव में चोरी-ठगी ही बन पड़ती है, पर जो उद्दण्ड प्रकृति के होते हैं, वे सीनाजोरी करने लगते हैं। लूट, आक्रमण, अपहरण, आतंक, हत्या, षड्यन्त्र, गिरोहबन्दी के कुचक्र रच लेते हैं। आदत जब परिपक्व हो गई तो उन्हें समझाने-बुझाने से भी नहीं बदला जा सकता है। धर्मोपदेश बेकार होते हैं। नीति, सदाचार, सज्जनता का सिखावन और महत्त्व उनके गले ही नहीं उतरता। इसे वे कायरता का चिह्न मान बैठते हैं। समझ लेते हैं कि यह आक्रमण के लिए उपयुक्त शिकार है। जंगलों के हिंसक जन्तु प्रायः दुबले और भोले प्राणियों पर ही आक्रमण करते हैं। सज्जनता की दुहाई देने वालों को उद्दण्ड व्यक्ति प्रायः इसी दृष्टि से देखते हैं। विनय करने को वे गिड़गिड़ाना मानते हैं और उन्हें लम्बे समय तक शिकार करते रहने की सुरक्षित पूँजी समझ लेते हैं, जिन्हें कभी भी धमकाया और कभी भी दुहा जा सकता है। इस प्रकार गुण्डों के सम्मुख सज्जन अधिक घाटे में रहते हैं। उनकी तुलना में वे कम हानि उठाते हैं, जो गुर्राते और सीना तानकर चलते हैं। झुकने का अर्थ आतंकवादियों की दृष्टि से सवारी करने के लिए पीठ झुकाना माना जाता है।

इन परिस्थितियों में प्रतिकार के उपाय ही कारगर होते हैं। यह दूसरी बात है कि उसके लिए किस प्रकार की रणनीति, किन परिस्थितियों में किस, प्रकार अपनाई जाय ?

यह संघर्ष का प्रसंग हुआ। अच्छा यह है कि समय से पूर्व चेता जाय। दुष्टता की विषवेल उगने, पनपने और फैलने से पहले ही उसके उन्मूलन का प्रयत्न किया जाय। इसके लिए सर्वसुलभ उपाय यह है कि किशोरावस्था में प्रवेश करते ही हर अभिभावक अपने बालकों की समीक्षा करना सीखें। इस तथ्य का ध्यान रखें कि उनमें दुष्प्रवृत्तियाँ तो नहीं पनप रही हैं। यदि ऐसा कुछ चल रहा है तो गम्भीरतापूर्वक समझाने, कड़ी नजर रखने, अनौचित्य को रोकने से काम चल जाता है। उगते अंकुरों को उखाड़ देना सरल है, पर जब पेड़ की जड़ें गहरी धँस जाती हैं और तना मजबूत हो जाता है, तो फिर उसे उखाड़ना सरल नहीं रहता।

इस रोकथाम का अच्छा तरीका यह है कि कुसंग में पड़ने का अवसर ही न आने दिया जाय। इसका उपयुक्त उपाय यह है कि उनके लिए अच्छी संगति में रहने, अच्छे वातावरण में समय गुजारने की व्यवस्था बनाई जाय। उस प्रकार का अवसर उपलब्ध कराया जाय। किशोरों के सम्बन्ध में यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है, क्योंकि यही आयु ऐसी होती है, जिसमें व्यक्तित्व तेजी से विनिर्मित होता है। इन्हीं दिनों उसके पकने की फसल होती है। यदि यह आयु सँभल सकी तो समझना चाहिए कि अवांछनीयता अपनाने और भविष्य को अन्धकारमय बनाने की आशंका टल गई।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किशोरावस्था भटकाव में न पड़े

दूध में जब उफान आता है तब उस समय उसकी पूरी देखभाल करने की आवश्यकता होती है अन्यथा बर्तन का दूध चूल्हे में गिरकर आग बुझा सकता है, स्वयं बर्बाद हो सकता है। चासनी बनने के समय भी ऐसी ही सतर्कता अपेक्षित है अन्यथा वह कच्ची रहने पर या जल जाने पर उस पकवान का मजा ही बिगाड़ देती है, जिसके लिए पकाया गया है। खेत की बुवाई में अवधि निकल जाये तो मौसम बदल जाता है और आगे-पीछे बोने पर पैदावार कम होती है। बगीचे में फल जिन दिनों पकते हैं, उन दिनों उनकी पक्षियों से रखवाली पूरी सावधानी के साथ अपेक्षित होती है अन्यथा एक भी फल साबुत नहीं बच सकता। लगाने वाले को खाली हाथ रहना और हाथ मलते रह जाना पड़ता है।

ठीक यही उक्ति किशोरावस्था के सम्बन्ध में कही जा सकती है। उठती हुई आयु, बढ़ता आवेश नये रक्त का अनुदान है। इन दिनों व्यक्ति भावुक भी रहता है और उत्तेजित भी। बढ़ोत्तरी के दिनों में साहस भी बढ़ना स्वाभाविक है और महत्त्वाकांक्षा का दौर भी। यह सब उपलब्धियाँ उत्साहवर्द्धक हैं। बढ़ोत्तरी के दिनों में ऐसा होना उचित भी है। स्थिरता और समझदारी परिपक्वता आने पर ही उभरती है। किशोरावस्था में भी जोश अधिक, होश कम होता है। इसलिए इन दिनों इस आयु के बालकों का विशेष रूप से संरक्षण, मार्गदर्शन एवं नियन्त्रण आवश्यक होता है। यदि स्वेच्छाचारिता बरती जाने लगे तो उसमें किशोरकाल की अनुभवहीनता के कारण सर्वनाश होता है। उनके स्वजन-सम्बन्धी भी मुसीबत में फँसते हैं।

छोटे बच्चे जब घुटनों के बल चलते और पेट के बल रेंगने लगते हैं, तब उनमें एक नई आदत उभरती है कि जो कुछ चमकदार आकर्षक वस्तु दीखे उसे पकड़ने का प्रयत्न करे। साथ ही जो छोटी चीज पड़ी दीखे उसे खाने की वस्तु समझकर मुँह में डालने का प्रयत्न करें। देखा गया है कि वे पकड़ने खींचने के कौतुक में कई बार बहुमूल्य वस्तुओं को भी गिरा देते हैं। खाने की ललक में चीटे, कीड़े, तिनके, कील, काँटे आदि भी मुँह में रख लेते हैं, यदि उस आयु में बच्चों पर कड़ाई के साथ निगरानी न रखी जाये तो कुछ भी अनर्थ कर सकते हैं। सीढ़ियों से उतरने का प्रयास करते हुए लुढ़ककर नीचे गिर सकते हैं। ऐसी दुर्घटना होने पर दोष बच्चों को नहीं दिया जाता, वरन् संरक्षक को ही बुरा-भला कहा जाता है कि उन्होंने क्यों कड़ी निगरानी नहीं रखी ? अनुचित कदम उठाते समय उन्हें रोका क्यों नहीं ?

किशोरावस्था भी ऐसी ही असमंजसभरी वय है। भूतकाल का कोई अनुभव इतिहास होता नहीं। भविष्य में होने वाले परिणाम का सही निष्कर्ष निकाल सकने योग्य उनकी समझदारी होती नहीं। वर्तमान का उत्साह देखते ही बन पड़ता है। उत्साह में सक्रियता तो होती है साथ ही उसमें आत्मगौरव का भी आभास होता है। जोखिम ओढ़ने का कुछ कर दिखाने और स्वेच्छाचार बरतने का मन होता है। नियन्त्रण उन्हें अत्याचार जैसा प्रतीत होता है। इसमें उन्हें अपनी हेटी लगती है। अनुशासन को वे ऐसा समझते हैं जैसे किन्हीं अवांछनीय बन्धनों से कसा जा रहा है। यही वह मनःस्थिति है जिसमें दूरदर्शी परामर्श देने वाले स्वजन-सम्बन्धी भी रोकथाम करने पर शत्रुवत प्रतीत होने लगते हैं। उनकी अवज्ञा, उपेक्षा करते भी उन्हें डर नहीं लगता। ऐसी विचित्र मनःस्थिति हो जाती है किशोरावस्था की खुमारी का दौर चढ़ने पर।

तेरह-चौदह से लेकर बीस वर्ष तक की आयु प्रायः ऐसे ही उतार-चढ़ावों की बीच बीतती है। इसका उचित उपयोग अध्ययन में संलग्न रहकर जीवन को उज्ज्वल बनाने वाले सपने देखते हुए किया जाना उचित है। स्कूल में खेलकूदों का, स्काउटिंग का, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी प्रावधान रहता है। उनमें उन्हें मनोरंजन और प्रोत्साहन भी मिल जाता है और अवांछनीयता की दिशा में भटकने का अवसर कम रह जाता है। जहाँ छात्र कल के उत्तरदायित्वों को ठीक से समझ जाता है, वहाँ शारीरिक सुदृढ़ता, मानसिक प्रबुद्धता और गुण, स्वभाव की शालीनता का अर्जन ठीक रीते से चलाता रहता है। इस स्तर के अनुशासन में अध्यापकों, अभिभावकों के सतर्क मनोयोग की आवश्यकता है। उन्हें न केवल स्कूल भेजने या निर्धारित पाठ्यक्रम का स्वरूप समझाना होता है, तथा यह भी देखना होता है कि किशोर की निजी चेष्टाएँ, किस दिशा में अग्रसर हो रही हैं, उनमें जितना औचित्य जुड़ा हुआ हो उसे प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, किन्तु ध्यान में यह भी रखना चाहिए कि कोई अवांछनीयता तो उनके चिन्तन और चरित्र में प्रवेश नहीं कर रही। कारण कि इन दिनों समझदारी की अपेक्षा नासमझी का दौर अधिक बढ़ा-चढ़ा होता है। उत्साह का आवेश के रूप में परिणत हो जाने का खतरा अधिक रहता है।

किशोरों का घर के वातावरण में लगाव घटता जाता है। दस-बारह वर्ष तक उन्हें प्रायः उसी चहारदीवारी और छोटे समुदाय के बीच रहना पड़ता है। इससे ऊब और नीरसता लगने लगती है। स्कूल जाने के साथ-साथ घर से बाहर निकलने और नये-नये दृश्य देखने का अवसर मिलता है। पढ़ाई के साथ-साथ कक्षा के छात्रों से परिचय बढ़ता है और भावुकता के माहौल में जल्दी ही मित्रता के रूप में बदल जाता है, कई मित्र बन जाते हैं और न केवल स्कूल में, वरन् उसके बाहर भी खेलने सैर करने का मन चलता है। इस आधार पर घर और स्कूल के बीच का कुछ समय दोस्तों के साथ बीतने लगता है। इस समय में मौजमस्ती ही नहीं कभी-कभी तो आवारागर्दी भी जुड़ जाती है। वह साधारण, स्वाभाविक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

निर्दोष हो तो कोई हर्ज भी नहीं पर देखा यह जाता है कि इसी बीच कुसंग पनपता है और लड़कों से मैत्री अनेक प्रकार की बुराइयों का बीजारोपण भी कर देती है।

इन दिनों का वातावरण विचित्र है। उन पर बड़ों से लेकर छोटों तक के कुप्रभावों से प्रभावित करने वाली हवा का प्रभाव बहुत जल्दी ही नहीं, असाधारण रूप से पड़ता है। प्रचलन में नीतिमत्ता कम और अनीति का बाहुल्य देखा जाता है। दुष्प्रवृत्तियों का प्रचलन ऐसा है कि अनुचित और उचित का भेद ही एक प्रकार से मिटता जाता है। ऐसे वातावरण में रहकर नई आयु के बच्चों का उस प्रचलन को ही परम्परा समझकर अपना लेना कोई आश्चर्य नहीं माना जा सकता है। बुराइयाँ छूत की तरह बढ़ती हैं। विशेषतया उठती उम्र के बालकों को वे प्रबल वेग से अपनी चपेट में लेती हैं। इस माहौल में किशोरों में वे दुष्प्रवृत्तियाँ अधिक तेजी से उभरकर आती हैं, जो उन्होंने अपने परिवार में तथा साथियों में घटित होती देखी हैं।

मित्रता अच्छा गुण है। अवांछनीय वातावरण में बच्चे भी उससे अछूते नहीं रहते, मित्रता के माध्यम तब और भी अधिक विषम हो जाते हैं, जब कुछ बिगड़ैल लड़के अपनी छूत किन्हीं के मित्र बनकर उनके सघन, घनिष्ट बनते और सर्पदंश की तरह उनमें अपना विष प्रवेश कर देते हैं। लड़कों में आवारागर्दी की छूत इसी माध्यम से प्रायः लगती है। पता चलता नहीं। घर वाले इसारवश विश्वास करते रहते हैं और भीतर ही भीतर सर्वनाश का सरंजाम जुटता रहता है। पता तब चलता है जब किशोर अनेक कुटेवों का शिकार होकर अपना सर्वनाश कर चुके होते हैं।

इन दिनों अति आवश्यक यह है कि अभिभावकों और अध्यापकों के बीच तालमेल रहे और दोनों ही अपनी कड़ी दृष्टि से यह देखभाल करते रहें कि कहीं अनौचित्य तो नहीं पनप रहा है। स्थिति पर समय रहते काबू पा लिया जाये तो उसी में सब प्रकार की भलाई है।

अच्छे स्वभाव वालों की मित्रता एक-दूसरे को प्रोत्साहन देती और मनोबल तथा अनुभव बढ़ाती है। जहाँ ऐसे अवसर हों वहाँ रोकथाम करने की आवश्यकता नहीं है। उसे तो प्रोत्साहन ही मिलना चाहिए, पर अधिक अच्छा यही है कि अभिभावक अपने परिवार के किशोरों में सत्प्रवृत्तियाँ उभारने के लिए स्वयं प्रयत्नशील रहें। परिवार का वातावरण ऐसा बनाएँ, जिससे बालकों पर अच्छी छाप पड़े। कन्याएँ तो प्रायः कुसंग में नहीं पड़तीं, पर किशोरों पर भी यह ध्यान रखना चाहिए कि लड़कियों के साथ उनकी घनिष्टता न बढ़ने लगे। इसी में सबकी भलाई है।

एकाकीपन में किशोर दोष-दुर्गुण सीखते हैं

किशोरों की सभी मानसिक विकृतियों का उद्भव केन्द्र कुसंग होता है। अतः उनकी संगति का ध्यान रखा जाना अत्यावश्यक है।

किशोरों के सन्दर्भ में दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए एक तो यह कि किशोर के अन्दर नई शक्ति की अभिवृद्धि हुआ करती है। वह नूतन शक्ति-स्फूर्ति हर समय उनके अंग-प्रत्यंगों में हिलोरती रहती है। वे हर समय कुछ न कुछ करते रहना चाहते हैं। खाली बैठ सकना उनके लिए सबसे कठिन होता है।

दूसरे यह कि इस आयु में उनका कार्य-क्षेत्र घर से अधिक बाहर हो जाता है। वह समानवय के अधिकाधिक लोगों से मैत्री एवं प्रेम के सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। विपरीत लिंगी समवयस्कों के प्रति भी उसमें तीव्र आकर्षण पैदा होता है। सौन्दर्य, श्रेष्ठता, अग्रगामिता के प्रति वह तेजी से खिंचाव महसूस करता है। इन क्षेत्रों में उसे जो लोग बढ़े-चढ़े दीखते हैं, उनसे वह व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करना चाहता है।

यदि समाज का वातावरण उत्कृष्ट की प्रधानता वाला हो और समाज में सचमुच श्रेष्ठ लोगों की ही प्रतिष्ठा हो तब तो किशोरों के लिए अधिक चिन्ता की आवश्यकता अभिभावकों को न पड़े। वे स्वयं श्रेष्ठता की प्रतिस्पर्धा में जुट जायें, किन्तु अभी तो स्थिति सर्वथा भिन्न है। अपराधियों, गुण्डों, चरित्रहीनों की भी धन, पद, आतंक आदि के बल पर प्रतिष्ठा है। उनके लड़कों के प्रति सर्वत्र पक्षपात दिखाई पड़ता है। महँगे कपड़े निष्क्रियता एवं प्रसाधन-सामग्री की अधिकता से पला-पुसा शरीर, विलासी रहन-सहन, अनुचित सुविधाएँ पाने वाली स्थितियाँ, इन सबके प्रति अभिभावकों, अध्यापकों, युवकों, समवयस्कों में खिंचाव तथा प्रशंसा का भाव हर पग पर देखता है। अतः उसको यही सब मनुष्य ही वास्तविक विभूतियाँ प्रतीत होने लगती हैं। वह वैसे ही जीवनक्रम को अपनाने में शौर्य और शान समझ बैठता है। सत्संग का वातावरण तो कहीं है नहीं। अकेला और खाली वह रह नहीं सकता।

ऐसी स्थिति में अभिभावकों का कर्त्तव्य हो जाता है कि वे किशोर के प्रति तनिक भी उपेक्षा न बरतें। उनकी व्यस्तता एवं विकास दोनों का ध्यान रखें।

व्यस्तता के लिए उन्हें खेलकूद, व्यायाम और अन्य सामूहिक गतिविधियों में अधिकाधिक भाग लेने की प्रेरणा दी जाये। सामूहिक खेलों एवं अन्य सामूहिक कार्यक्रमों में अच्छाइयाँ ही होती हैं। उनसे सदा कुछ न कुछ सत्प्रेरणा एवं सत्प्रशिक्षण ही प्राप्त होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दोष-दुर्गुणों को कोई भी खुलकर नहीं सिखाता। अपराधी-दुष्कर्मी भी सबके सामने अच्छी बातें ही करते हैं। गलत प्रवृत्तियाँ अकेले में सीखी-सिखायी जाती हैं। जब दो-चार गलत प्रवृत्तियों वाले किशोर और युवक एकत्र होते हैं और वह भी अकेली, सुनसान जगह में तभी गन्दी बातों की चर्चाएँ होती हैं और व्यवहार भी सिखाया जाता है।

अतः एक ओर जहाँ कुसंग के डर से किशोरों का घर से बाहर निकलना ही न बन्द कर दिया जाये, वहीं उन्हें इस तरह की एकाकी संगति का भी मौका न दिया जाय। प्रयास यह रहे कि सामूहिक गतिविधियों में तो वह खुलकर भाग लें, किन्तु व्यक्तिगत घनिष्टता वह लोगों से अधिक न बढ़ा सकें। इस हेतु घर का वातावरण ऐसा होना चाहिए कि उसका एकाकीपन वहाँ दूर हो। घर में उसकी रुचि एवं योग्यता के ऐसे काम दिये जाएँ, जिनसे उसकी शक्ति का उपयोग हो, उसमें सत्संस्कार पड़ें, उसके मनोवेगों को सही दिशा मिले और उसका मनोरंजन भी हो। घर में ही कई तरह के सुगम खेलों की व्यवस्था हो। घर के लोग मिलकर खेलें—'इनडोर' और 'आउटडोर' दोनों तरह के खेलों की घर में ही व्यवस्था अधिक कठिन नहीं। जहाँ कबड्डी, बालीबाल आदि के लिए मैदान घर के पास न हों, वहाँ बैडमिण्टन, टेबिल टेनिस, खो-खो जैसे कई खेल घर के ही एक बड़े कमरे में खेले जा सकते हैं। कैरम, शतरंज भी घर में मनोविनोद का साधन बन सकते हैं, किन्तु इस बात का भी ध्यान रहे कि घर के सदस्यों में इन खेलों का नशा न हो। जो पिता या भाई-बहिन शतरंज-कैरम खेलने में तल्लीन होकर खाना-पीना या आवश्यक काम निपटाना ही भुला बैठते हैं, वे किशोरों की इनमें वैसी अतिरेकी रुचि जगने से उन्हें रोक नहीं सकते, जिसके कारण अध्ययन एवं नियमित दिनचर्या पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

अनेक देशी खेल हैं जो घर में मिल-जुलकर आसानी से खेले जा सकते हैं। बागवानी, सिलाई-कढ़ाई, अन्य विविध गृह-शिल्प, नाटक-एकांकी, प्रहसन-अभिनय एवं अध्ययन-वाचन के अभ्यास की भी घर में व्यवस्था जुटाई जा सकती है—बिना अधिक खर्च के। जहाँ जैसी सुविधा-साधन हो, वहाँ वैसी व्यवस्था की जाये, किन्तु किशोरों को न तो खाली, बेकार रहने दिया जाय, न ही मनमाने तौर पर घूमने दिया जाय।

यदि लड़का किसी धनी या बड़े पद वाले व्यक्ति के बेटे से समीपता बढ़ाता है, तो माता-पिता को न तो प्रसन्न होना चाहिए, न ही निश्चिन्त। संगति में पिता का पद नहीं, उस पुत्र की प्रकृति देखनी चाहिए, जिससे अपने बेटे की घनिष्टता बढ़ रही है। धनवान या अफसर के बेटे-बेटियों की संगति अच्छी हो यह आवश्यक नहीं। उल्टे, ऐसे घरों के लाड़ली-लाड़लों में प्रायः अनेक दुर्गुणों की भरमार रहती है। अतः लड़के की प्रकृति देखी जाय, उसकी पैतृक सम्पन्नता नहीं।

सत्संग का ध्यान रखने के साथ ही किशोरों की अन्तरंग आवश्यकताओं का भी स्मरण रखना चाहिए। इस आयु में किशोर-किशोरियों के भीतर विशेष रासायनिक परिवर्तन होते हैं, मौन-भावना का विकास होता है। यौनांगों में भी परिवर्तन होता है। अतः उन्हें यौन-स्थानों की स्वच्छता की जानकारी दी जाय अन्यथा वहाँ गन्दगी से गरमी और उत्तेजना पैदा होती है।

यौनांगों की स्वच्छता की जानकारी देने के साथ ही उन्हें उनसे सम्बन्धित सामान्य जानकारियाँ भी दे दी जाएँ। यदा-कदा मौन-उत्तेजना की स्वाभाविकता बताई जाये। इसके प्रकृतिगत कारण समझा दिये जायें। उन्हें बताया जाय कि शरीर के भीतर पैदा होने वाले नये हारमोन्स ही इस आवेग के आधार हैं। इनमें बहुत अधिक शक्ति होती है। इस शक्ति को बचाकर रखने से धृति, स्मृति, बल, विवेक की वृद्धि के लिए आवश्यक ऊर्जा संचित-संगृहीत होती है। उन्हें इस शक्ति का सदुपयोग करने वाले महापुरुषों के बारे में बताया जाय। किशोर-किशोरी में जो प्रवृत्ति प्रधान हो, उस प्रवृत्ति के विकसित स्वामी महापुरुषों के बारे में अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से बताया जाय। इससे सम्बन्धित अच्छा साहित्य पढ़ने को दिया जाय। यौन-शक्ति के दुरुपयोग से होने वाली हानियाँ भी विस्तार से समझाई जायें। स्वास्थ्य-नाश, मन का बिखराव, बुद्धि की दुर्बलता, ओजहीनता से जीवन में उत्पन्न होने वाले हर प्रकार के अभावों और आपदाओं तथा हताशा-कुण्ठाओं का वर्णन किया जाये। किशोर-किशोरियों में यौन-वृत्तियों का उभार तो होना ही है, अतः उससे सम्बन्धित लाभ-हानि की जानकारी उन्हें देनी जरूरी है।

कन्याओं को तो इसके बारे में और अधिक जानकारी देनी चाहिए। लड़के-लड़कियों दोनों को समझाया जाय कि इस वयःसन्धि में अकेलेपन से बचना आवश्यक है। उन्हें बता दिया जाय कि अकेलेपन का आग्रह उनके प्रति किसी अविश्वास का द्योतक नहीं है, अपितु उनके हित चिन्तन और शरीर-मन के अनिवार्य आवेगों के सन्दर्भ में ही, यह परामर्श दिया जा रहा है, क्योंकि अकेले में यदि भीतर कसमसा रही शक्ति को किसी कारण से उत्तेजना मिल ही गई, तो उसे सँभालना कठिन हो जाता है। अतः एकाकीपन से सदा बचें। जब कभी उत्तेजना उत्पन्न हो, तो बाहर निकल पड़ें, भीड़ में या समूह में पहुँच जायें, टहलने लगें, ठण्डे जल से स्नान कर लें, कोई अच्छी पुस्तक पढ़ने लगें या किसी महापुरुष आदर्श पुरुष के बारे में विचार करने लगें, उनका ध्यान करें।

अकेले तो सगे रिश्तेदारों के साथ भी नहीं रहने देना चाहिए। प्रायः परिवार के विकृत-चित्र चाचा, ताऊ, बड़े लड़कों को यौन-दुर्गुण सिखाते हैं। नौकर-नौकरानियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के साथ तो अकेले घूमने देना उन्हें सर्वनाश के गड्ढे में धकेलना है। कच्ची उम्र, भोलापन और अबाध स्फूर्ति उन्हीं गड्ढों की ओर उन्हें बहा ले जाती है, जिधर जाने की लालच भरी प्रेरणा दी जाती है।

लड़कियों को तो एकान्त में किसी के साथ कदापि न रहने दिया जाय, अन्यथा कभी भी खतरनाक और भयंकर दुर्घटना घट सकती है। ताऊ, चाचा, भतीजे, भाई आदि रिश्ते तक इस मामले में पूर्णतः अविश्वस्त माने जाने चाहिए। एकाकीपन तो बाप तक के साथ खतरनाक मानना चाहिए। जिनके परिवार में ही अकेलापन है, माँ नहीं हैं बाप भर हैं, तो कोई बात ही नहीं, किन्तु यदि छोटे भाई-बहिन हैं तो सबके साथ ही वह रहे, सोये, घूमे।

भाई-बहिन के नकली रिश्ते कभी भी लड़कियों को कायम करने हेतु उत्साहित न किया जाये। ऐसे रिश्ते हो भी जायें तो भी अकेले उन दोनों को कदापि न रहने घूमने दिया जाय। ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जब राखी बँधवाने के बाद भी ऐसे नकली भाइयों ने बहिनों के साथ अनुचित सम्बन्ध स्थापित किये एवं दुराचरण किया। ऐसी घटनाओं और वस्तुस्थितियों की स्पष्ट जानकारी दी जाये तथा एकाकी संग को वर्जित करार दिया जाये।

प्रेम-पत्र के खतरे भी लड़कियों को ठीक से समझा दिये जायें। एक तो, स्वयं के शील की रक्षा के लिए सौजन्य एवं सौम्यता बनाये रखने पर निरन्तर बल दिया जाय। पर, साथ ही यह भी बताना आवश्यक है कि यदि कभी अध्ययन, पुस्तकों के आदान-प्रदान आदि सम्बन्धी भी कोई चर्चा करनी हो तो मुँह से ही की जाय। लिखकर एक शब्द भी किसी को कभी न दें, अन्यथा भ्रष्ट, लम्पट, गुण्डे विवाह के बाद आजीवन ब्लैकमेल करेंगे, रिश्वत माँगेंगे और जीवन को नरक बना डालेंगे। नवीन उत्साह में लड़कियाँ सामान्य पत्र-व्यवहार को मामूली समझ बैठती हैं और फिर जन्म भर पछताती हैं। इन सारी बातों की जानकारी देकर, आवश्यक सतर्कता एवं निगरानी बरतते हुए किशोरों के व्यक्तित्व के ठीक से विकसित होने में मदद करनी चाहिए।

किशोरावस्था को खतरों से बचायें

दस वर्ष की आयु तक के बच्चे प्रायः अपने घर-परिवार वालो से ही लिपटे रहते हैं। उसी परिधि में खेलते, कूदते, बोलते, व्यवहार करते हैं। अपनी इच्छा, आवश्यकता की वस्तुएँ माँगते हैं एवं प्राप्त करते हैं।

प्रायः पाँच वर्ष से स्कूली पढ़ाई आरम्भ हो जाती है। इसके साथ ही वे अपनी कक्षा के कुछ को मित्र, घनिष्ट बना लेते हैं और उनके साथ भी मैत्रीपरक व्यवहार करने लगते हैं, जिन्हें पाँच वर्ष से कम आयु में बाल सेवा-सदनों में भर्ती होने का अवसर मिल जाता है, उन्हें वहाँ भी ज्ञानवर्द्धक कार्यों में समय बिताने का मनोरंजक अवसर मिल जाता है। इस प्रकार दस वर्ष की आयु अभिभावकों, अध्यापकों के सहकार पर अवलम्बित रहती है। कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायेः ऐसा ही देखने में आया है। इसके उपरान्त धीरे-धीरे उनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास होने लगता है। निज की इच्छाएँ भी जगने लगती हैं और वातावरण के अनुरूप अनुकरण के आधार पर आदतें भी पकने लगती हैं। यही है वह अवसर जिसे पौधे का पल्लवित होना कह सकते हैं। इससे पहले की आयु एवं स्थिति का अंकुर उगने के समतुल्य समझा जा सकता है।

अंकुर के पल्लवित होने की आयु शैशव कहलाती है। जन्म से दो-तीन वर्ष तक के बच्चे तो अपने शरीर की आवश्यकताएँ पूरी कराने के फेर में ही रहते हैं उनकी इच्छा, आवश्यकता तो प्रकट होती हैं पर न तो स्वतन्त्र व्यक्तित्वों का विकास होता है और न उचित-अनुचित का बोध। वे अपना हित-अनहित भी नहीं समझते। इसलिए प्रायः ऐसी हरकतें करते रहते हैं, जो उनके लिए तो कुछ करने की उमंग में उत्पन्न हुई हलचलें ही कही जा सकती हैं, पर उनमें तोड़-फोड़ होने लगती है। इस प्रसंग में बच्चों को शारीरिक क्षति भी पहुँचती है। उनके काम आने वाली वस्तुएँ भी टूटती-फूटती हैं। घर वालों को भी इस तोड़-फोड़ में हानि उठानी पड़ती है। इस कठिनाई को ध्यान में रखते हुए अभिभावक जहाँ उन्हें दुलार देते हैं, वहाँ इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि उनका सहज उत्साह विपत्ति का कारण न बने। सजाने, सँभालने, दुलारने के अतिरिक्त उनकी हर बात का भी ध्यान रखा जाता है।

आयु बढ़ने के साथ जीवनक्रम में नया मोड़ आता है। दस से बीस वर्ष तक की आयु ऐसी है, जिसमें नये रक्त का उफान अधिक रहने के कारण जोश बहुत रहता है, पर अनुभव के अभाव में अपनी शारीरिक, मानसिक शक्तियों का कब, क्या, किस प्रकार उपयोग किया जाय, इसका सुनियोजन नहीं होता। सम्पर्क में जो व्यक्ति आता है, वैसी घटनाएँ घटित होती दीखती हैं, जिस स्तर के वातावरण में रहना पड़ता है, उसका चमकीला पक्ष उन्हें आकर्षित कर लेता है। हवा के रुख में उड़ने वाले पत्तों की तरह वे भी उसी प्रवाह में बह चलते हैं। इस प्रकार वे अपना व्यक्तित्व एवं भविष्य स्वयं नहीं बनाते वरन् परिस्थितियाँ उन्हें इधर-उधर घसीट ले जाती हैं।

इन दिनों बहुसंख्यक लोग विकृत चरित्र-चिन्तन वाले होते हैं। उनकी आदतें, क्रियाएँ भी ऐसी होती हैं, जिन्हें शालीन, सज्जनोचित नहीं कहा जा सकता है। इसी प्रकार जो घटनाएँ घटित होती रहती हैं, वे भी ऐसी नहीं होतीं कि अच्छा प्रभाव छोड़ें। विशेषतया नवोदित किशोरों का उपयोगी मार्गदर्शन करें। किशोरों में कई आवारागर्दी के अभ्यस्त होते हैं। वे शिक्षा में, स्वास्थ्य-सम्वर्द्धन में, गृह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कार्यों में हाथ बँटाने में अपना समय न लगाकर ऐसे कृत्यों में रुचि लेते हैं, जिनमें अनौचित्य का आकर्षक पक्ष उभरा रहता है। ऐसे कार्यों का मनोरंजन तब बनता है जब उनके जैसे साथियों की मण्डली न बनें। उनका प्रयास यह भी रहता है कि भोले किन्तु उत्साही लड़कों से दोस्ती गाँठें, उन्हें साथी बनायें और घर से पैसे चुरा लाने की सलाह देने से लेकर अपने साथ दुर्व्यसनों में सम्मिलित करते हैं। इस कुसंग में अनेक नवोदित किशोरों को कुटेवों का शिकार बनना पड़ता है और उस कारण उनके व्यक्तित्व की बुरी तरह बर्बादी होती है।

अभिभावक उन पर पूरा ध्यान दे नहीं पाते। उन्हें इसके लिए समय का अभाव ही रहता है फिर यह भी सोचते हैं कि बच्चा समझदार हो गया तो अपना भला-बुरा भी सोचता होगा। दुलार के कारण अविश्वास भी करते नहीं बन पड़ता। चुपके-चुपके उन्हें कुसंग का घुन खोखला करता रहता है। पता तब चलता है, जब शिकायतों के ढेर सामने आ खड़े होते हैं। उनके स्वभाव में बोये हुए कुसंस्कार बढ़कर विष वृक्ष के रूप में फलित होते हैं।

किशोरों में उच्छृंखलता भी पाई जाती है। वे अपनी इच्छा, रुचि एवं आदत कार्य-पद्धति को ही सब कुछ मानते हैं। समझाने, रोकने पर अपमान समझते और प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर विग्रह खड़ा करते हैं। इसी कहने-सुनने में कई बार तो घर से भाग जाने, पढ़ाई छोड़ बैठने जैसे विनाशकारी कदम उठा लेते हैं। उनके लिए समूचे परिवार को कष्ट होता है। बदनामी का कारण बनना पड़ता है तथा आर्थिक दृष्टि से हानि उठानी पड़ती है। समय बीतने पर तो वे लड़के भी अपनी भूल के कारण बिगड़े भविष्य को समझते हैं। साथ ही साथ पछताते भी हैं। पर तब तक अवसर निकल चुका होता है। बुरी आदतें उन्हें इस तरह जकड़ चुकी होती हैं कि उनसे पीछा छुड़ा सकना भी सम्भव नहीं रहता।

सभी किशोर तो ऐसे कुचक्र में नहीं फँसते, पर सम्भावना हर किसी के शिकार हो जाने की रहती है। उनके दोस्त ही प्रकारान्तर से दुश्मन बन जाते हैं और भविष्य बिगाड़ने के निमित्त कारण बनते हैं।

अच्छा हो कि सभी अभिभावक, अध्यापक, संरक्षक इस सन्दर्भ में सतर्क रहें। उनकी निगरानी रखें और रोक-टोक करते रहने की अपेक्षा यह अच्छा है कि इस आयु में खाली रहने वाले समय और कुछ करने के उत्साह को उपयुक्त दिशा दी जाय। उन्हें ऐसे कामों में लगने का अवसर दिया जाय, जो सद्गुणों को विकसित करते हों, सत्प्रवृत्तियाँ उभारते हों। इससे उनका उत्साह, श्रम एवं समय ऐसे कार्यों में लग सके जो सन्तोष एवं श्रेय प्रदान करें।

स्थानीय किशोर समुदाय के बालचर, स्काउट, सेवादल जैसे संगठन बनने चाहिए और उनमें आयु विभाजन के हिसाब से वर्ग बनने चाहिए ताकि उनकी क्षमता के अनुरूप बहुत कुछ ऐसा सीखने को मिलता रहे, जो उनकी निजी प्रगति में सहायक हो और सेवा-भावना को भी विकसित करे। समाज सेवा के कार्यों में रुचि लेने लगने पर चिन्तन की दिशा मिलती है। चरित्र में सद्गुणों की स्थापना होती है। इसके अतिरिक्त मनोरंजन के लिए भी काफी अवसर मिलता है। खेल-कूदों से स्वास्थ्य, सुदृढ़ होता है। 'कैम्प फायर' जैसे आयोजनों से व्यावहारिक ज्ञान तथा कौशल निखरता है।

ऐसे सेवादल संगठन कुछ समय पूर्व बड़े उत्साह से बने और कार्यरत हुए थे, पर अब इस सम्बन्ध में उपेक्षा बरती जाने लगी है। एक समय था जब स्काउटिंग स्कूलों में ऐच्छिक विषय होते हुए भी अध्यापकों एवं अभिभावकों के समर्थन से अनिवार्य जैसा बन गया था। साथियों को उसमें सम्मिलित होते देखकर जिनके मन अनुत्सुक थे, उनमें भी चेतना आती, सक्रियता उभरती थी। जो स्काउटिंग में सम्मिलित नहीं होते थे, उनका उपहास, तिरस्कार होता था। इस दबाव से उत्साही, अनुत्साही सभी उन संगठनों में सम्मिलित होते थे।

उपयोगिता की दृष्टि से ये स्थापनाएँ अभी भी उतनी ही उपयोगी हैं। इससे किशोरावस्था को खतरों से बचाकर प्रगति पथ पर अग्रसर करने में भारी सहायता मिल सकती है।

किशोरों के विकास में अधिक सतर्कता की आवश्यकता

मनुष्य की मानसिक विकास की दृष्टि से चार अवस्थाएँ होती हैं—(१) बाल्यावस्था, (२) मध्यावस्था, (३) किशोरावस्था, (४) प्रौढ़ावस्था।

बाल्यावस्था सामान्यतः पाँच वर्ष तक रहती है। इसके उपरान्त बारह वर्ष तक की आयु मध्यावस्था कहलाती है। १२ से १८ वर्ष तक की आयु किशोरावस्था और १८ से ऊपर प्रौढ़ावस्था प्रारम्भ होती है।

१२ से १८ वर्ष की किशोरावस्था ऐसी आयु है जिसमें न तो वह छोटा बच्चा माना जाता है न बड़ा प्रौढ़, समझदार ही। वास्तव में यह ऐसा संधिकाल है जबकि बालक के मानसिक, शारीरिक और वैचारिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन दृष्टिगोचर दिखाई देते हैं। मध्यावस्था तक जो बालक घर की परिधि तक सीमित रहा था, अब उसके ज्ञान और अनुभव में विकास होने से बाह्य क्षेत्र की रुचि जाग्रत होने लगती है। इसीलिए उसकी इच्छा घूमने-फिरने, नये वातावरण से परिचय करने, नवीन वस्तुएँ देखने, पहनने, खाने की होने लगती है।

किशोरवय में शारीरिक परिवर्तन स्पष्ट रूप से उभरते दिखाई देने लगते हैं। इन्हीं परिवर्तनों के कारण बालक-बालिकाओं के व्यवहार बदल जाते हैं। उनके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

दाढ़ी-मूँछ और उरोजों में उभार दिखाई देने लगता है। कूल्हे फैलने लगते हैं। इसी वय में हारमोन्स उत्पादक ग्रन्थियाँ विशेष सक्रिय दिखाई देती हैं। इसी कारण बालक-बालिकाओं के कद बढ़ते दिखाई देते हैं। आवाज में भारीपन आ जाता है। बालकपन समाप्त होने लगता है। ऐसे में अभिभावकों का दायित्व हो जाता है कि बालक के इन परिवर्तनों की ओर विशेष ध्यान दिया जाय और किशोर-किशोरियों को शरीर धर्म एवं उसके निर्वाह, स्वास्थ्य के नियम एवं साज-सज्जा, सफाई आदि के विषय में ठीक से समझायें। हल्के-फुल्के, व्यायाम, आसन जो शरीर की स्फूर्ति बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं, बच्चों को अवश्य बतलाए जाने चाहिए। यही वह अपरिपक्व, अनुभवों की अवस्था है, जब किशोर-किशोरियाँ भटक जाते हैं। उनकी कोमल भावनाएँ दिवा-स्वप्न देखने लगती हैं। अतः बड़े प्यार-दुलार से मार्गदर्शन दिये जाने की आवश्यकता है।

संवेगों की दृष्टि से किशोरों का मन अस्थिर, चंचल, चलायमान रहता है। उनको अनुकरण के लिए कोई न कोई चाहिए। कितनी बार किशोरों की रुचि स्वास्थ्य निर्माण की होती है तो दारासिंह, गामा, किंगकाँग के चित्र अपने कमरों में सजाकर उनके जैसे हाव-भाव बनाने लगते हैं और यदि कभी फिल्मों की ओर उनकी रुचि मुड़ती है तो सिनेमा के पात्रों की तरह वेश-भूषा, साज-सज्जा अपनाकर उसी भाव-भंगिमा में बातचीत करने लगते हैं। ऐसा इसलिए भी होता है कि वे इस समय भावनाओं और कल्पनाओं के संसार में खोये रहते हैं। सुनहरे सपने देखते-देखते दिशाहीन कोई भी बात पकड़कर किसी का भी अनुकरण करने लगते हैं। लाभ-हानि, वर्तमान, भविष्य का उन्हें ज्ञान नहीं रह जाता। ऐसी दशा में उनके माता-पिता, अभिभावकों का दायित्व और बढ़ जाता है कि वे उनकी गतिविधियों, संगी-साथियों की देखभाल बारीकी से करते रहें, अन्यथा कितनी बार सुनहरे सपने उन्हें इतना निराश कर देते हैं कि वे भविष्य को ही चौपट कर लेते हैं।

किशोरावस्था की शक्ति का सदुपयोग करने के लिए विदेशों में प्रयास किए गए हैं। उन्हें उनकी रुचि के अनुसार, संगीत, नृत्य, गायन, वादन, चित्रकारी आदि के कला-सौन्दर्य से सम्बन्धित कार्य कराये जाते हैं। उनके भ्रमण-पर्यटन के लिए मनोरम दृश्यावली वाले उद्यान, सरोवर, नदी, पहाड़ों की सैर—स्वास्थ्यवर्द्धक, मनोरंजक खेल आदि में व्यस्त रखा जाता है, जिससे किशोर इतना संलग्न रहे कि उसे अपना स्वयं का ध्यान ही न रहे, अन्यथा उसका मस्तिष्क कल्पनाओं में खोजने अथवा बे-पैर की बातें करने पर उतारू हो जाएगा। ऐसे समय में थोड़े-बहुत रचनात्मक सुझाव उसके गले उतर सकते हैं। पाबन्दियाँ और उपदेशों से उल्टे खीझ होती है अथवा उनके विपरीत कार्य करके प्रयोग करने लग जाते हैं। यदि किशोरों का मनोविज्ञान जिन्हें नहीं आता उनके लिए सम्भव भी नहीं कि उन्हें दिशा दे सकें या उनके समय का सदुपयोग करा सकें, सेठ, व्यापारी, किसान यदि चाहें कि उनका बालक उनके काम में हाथ बँटा लेगा तो असम्भव दिखाई देता है।

इसके लिए किशोरों को डराने, धमकाने से भी उन्हें सही रास्ते पर ले आने में सफलता मिलेगी। यह भी कम सम्भव लगता है। वरन् उनसे घनिष्टता, आत्मीयता, सद्व्यवहार अपनाकर ही उन पर विजय प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए उनसे स्कूल की घटनाएँ, अध्यापकों का व्यवहार, मित्रों की जानकारी, छुट्टियों की सूचना, भोजन व नाश्ते की रुचि एवं शिकायत या व्यवधान, रास्ते की परेशानी आदि पूछकर बालकों का भय, झिझक समाप्त कर देना चाहिए। फिर बालक धीरे-धीरे पिता से न सही अपनी माँ से खुलकर बातें करने लगता है और कोई बात छिपाता भी नहीं अन्यथा भय के कारण कितने ही बालक माता-पिता से बातें छिपाकर उल्टे-सीधे कार्य करते रहते हैं अथवा झगड़े मोल ले लेते हैं।

यही वय ऐसी है जब किशोर-किशोरियों में काम कोशिकाएँ विकसित होती हैं, उनमें यौवन के चिह्न प्रकट होते हैं। स्वभावतः भिन्न लिंग की ओर आकर्षित होने लगते हैं। इनके सभी गुण-दोषों पर खाते-पीते, सोते-जागते नेक-सलाह, उचित मार्ग-दर्शन, हानि-लाभ पर प्रकाश डालने का पूर्ण दायित्व अभिभावकों का है। किशोरों का भटक जाना स्वाभाविक है। इसके लिए उन्हें ही दोषी ठहराकर अपनी जिम्मेदारी की इतिश्री मान बैठने वाले समझदार अभिभावक नहीं कहे जाते। वरन् समझदार वे हैं जो अपनी तरह बालकों के विकास की प्रक्रिया को समझते हैं।

लड़कों को इस समय अपने कारोबार के काम-काज में हाथ-बँटाने की आदत डालनी चाहिए और बाजार से छोटी-मोटी वस्तु खरीदने का अभ्यास कराना चाहिए। लड़कियों को घर के काम-काज में, सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, सफाई, साज-सज्जा में माँ का सहयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। समझदार अभिभावक अपने किशोर-किशोरियों की ऐसी व्यस्त दिनचर्या बनाकर रखते हैं कि जिसमें रचनात्मक कार्यों से लेकर अध्ययन, व्यायाम और खेल-मनोरंजन आदि की व्यवस्था रहती है। वार्त्तालाप के लिए सिनेमा के सभी नियमों की जानकारी उन्हें घरेलू वातावरण से मिलती है, किन्तु सुझाव के तौर पर अथवा सत्साहित्य के माध्यम से भी उन्हें जानकारी दी जानी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किशोरावस्था में प्रेम, क्रोध, साहस, ईर्ष्या आदि का संवेग प्रबल होता है। उसके परिणाम-दुष्परिणाम, क्रिया-प्रतिक्रिया को देखने-समझने की बुद्धि का अभाव किशोरों में होता है। आयु बढ़ने पर इनमें स्वयमेव नियन्त्रण होने लगता है। जो बच्चे बचपन में ऊधमी, जिद्दी, हठीले स्वभाव के दिखाई देते थे वे किशोरवय में आते-आते सौम्य एवं शान्त प्रकृति के बन जाते हैं। किशोरवय में झूठ बोलने, चोरी करने, बहाना बनाने, कामचोरी की प्रवृत्ति यदि पनप रही होती है और अभिभावकों ने इस पर नियन्त्रण नहीं किया तो यह कुसंस्कार स्थाई बन जाने की सम्भावना बनी रहती है। जो किशोरों और उनके परिवारों के लिए दुःखदायी साबित होती है। उन्हें प्रारम्भ से ही समझाना चाहिए कि अमुक गुण, कर्म, स्वभाव के कारण उन्हें परिवार, समाज में सम्मान, स्नेह मिलेगा और बुरी आदत और बुरे स्वभाव से तिरस्कार, अपमान मिलेगा तो वे कुसंग और बुराई से बचे रहेंगे।

बालकों की मनोवृत्ति से भिन्न प्रकार की मनोवृत्ति किशोरवय में हो जाती है। बचपन में वे किसी वस्तु को पाने के लिए रोते थे, जिद करते, मचलते थे, किन्तु किशोरवय में वस्तु न मिलने या इन्कार कर दिये जाने पर उदास होकर, मुँह लटकाकर खिन्न बने रहकर, खाना न खाकर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। कितनी बार हठी, किशोर-किशोरियाँ विद्रोह प्रकट करने के लिए अपनी जिद पर अटल बने रहकर घर में भाग खड़े होते हैं अथवा कोई कीमती वस्तु की तोड़-फोड़कर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है, स्वभाव में गम्भीरता विचारों में स्थिरता, समझदारी विकसित होती जाती है। उनकी प्रौढ़ावस्था की गम्भीरता, स्थिरता को देखकर अनुमान लगाना कठिन हो जाता है कि किशोरावस्था की चंचलता इस प्रकार की समझदारी में परिवर्तित हो सकती है।

सामाजिक, मानसिक विकास के लिए किशोरों को दूसरों के आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज, वेष-भूषा आदि की जानकारी के साथ विभिन्न देशों के इतिहास, भूगोल, समाज-व्यवस्था सामान्य ज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें अध्ययन के लिए दी जानी चाहिए। अपना देश बहुत अधिक गरीब है अन्यथा विदेश-भ्रमण अन्य देशों की रीति-रिवाज, विकास-क्रम परम्पराएँ आदि समझने का मौका भी उन्हें दिया जाना चाहिए। इससे उनमें मिलने-जुलने एक-दूसरे को समझने, सहिष्णुता, उदारता, आत्मीयता का दृष्टिकोण विकसित होगा।

किशोर-किशोरियों की १८ वर्ष की आयु पार होते-होते उन्हें भावी गृहस्थ जीवन के योग्य कुछ आवश्यक बातों के संकेत समझदार अभिभावक बताना प्रारम्भ कर देते हैं। जिससे वे आगत भविष्य की जिम्मेदारी को वहन करने में सक्षम बन सकें, अन्यथा दाम्पत्य कला के अभाव में जैसे-तैसे ले-देकर जीवन काटते हैं और अभिभावकों को उनसे, उनको अभिभावकों से बराबर शिकायत बनी रहती है, जबकि भविष्य के संकेत देने में अभिभावकों ने कोताही बरती थी। किशोरावस्था की सफलता अच्छे और सफल दाम्पत्य जीवन का संकेत है। सफल वैवाहिक जीवन के लिए घनिष्ट मित्रता, परस्पर सहानुभूति प्रेम और सहिष्णुता आवश्यक है। वैवाहिक जीवन उन्हीं का सफल रहता है, जो मानसिक और शारीरिक तौर पर सुखी हैं, जो अपने कर्त्तव्यों के प्रति सचेष्ट और सजग हैं। गृह कार्य में चतुर और व्यवहारकुशल, गृहिणियों के दाम्पत्य जीवन सुखी रहते हैं। यह शुभारम्भ किशोर अवस्था में करते रहने पर अभ्यास ढलता है।

इस आयु में जोश अधिक रहता है और होश कम। अनुभव के अभाव में उठते हुए उत्साह का दिग्भ्रान्त होना स्वाभाविक है। इसलिए इन दिनों अभिभावकों के कन्धों पर अधिक जिम्मेदारी आती है कि वे उठती आयु के बालकों पर विशेष रूप से ध्यान रखें, उनकी गतिविधियों पर परोक्ष रूप से ध्यान रखें। अधिक या प्रत्यक्ष पूछताछ करने पर तो उसे अपने प्रति अविश्वास मानकर अपमान जैसा भी अनुभव कर सकते हैं और क्रुद्ध तथा खिन्न भी हो सकते हैं। इसलिए उनके विषय में जानकारियाँ प्राप्त करने में सहज वार्त्ता का ही आश्रय लेना चाहिए और हँसते-हँसाते अन्यान्य प्रसंगों के सन्दर्भ में यह पता लगाना चाहिए कि वे अवांछनीय गतिविधियों के शिकार तो नहीं हो रहे हैं। इस सन्दर्भ में आवारा साथियों की संगति सबसे अधिक खतरनाक होती है। भले ही बालक अपने अध्ययन घरेलू काम या दूसरी उपयोगी प्रवृत्तियों में लगे रहते हैं, किन्तु आवारा लड़के सदा कुछ न कुछ खुराफात सोचने तथा करने में लगे रहते हैं। उन्हें समय काटने तथा पैसा खर्च कराने के लिए कोई शिकार चाहिए। मित्र बनकर वे भोले भावुक लड़कों को चंगुल में फँसाते और तरह-तरह के दुर्व्यसन लगाकर उनका जीवन खराब करते हैं। हर अभिभावक को अपने किशोर बालकों को ऐसी आवारागर्दी और कुसंगति से बचाना चाहिए, अन्यथा उज्ज्वल भविष्य अन्धकारमय बनकर रहेगा।

किशोरों को स्वास्थ्य, शिक्षा और शील का महत्त्व समझाएँ

किशोरावस्था की आयु में बच्चों का अभिभावकों द्वारा समुचित शिक्षण एवं मार्ग-दर्शन आवश्यक है, क्योंकि शक्तियों के संचय और संग्रह की यही आयु है। इस समय यदि वे चूक गये तो उस चूक का प्रभाव सम्पूर्ण जीवन पर पड़ता है। किशोरावस्था की लापरवाही का परिणाम जीवन भर भोगना होता है। अतः शरीर, मन और बुद्धि सम्बन्धी सभी आवश्यक जानकारियाँ उन्हें इस आयु में समझा देनी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आहार-विहार की नियमितता तथा स्वास्थ्य-सम्वर्द्धन के नियम उन्हें बताये जाने चाहिए। भोजन के बारे में उनका सही दृष्टिकोण विकसित कर दिया जाय। पेट में हवा और पानी की जगह रखते हुए भोजन किया जाय, समय से भोजन किया जाय और ठीक से चबाकर किया जाय। जायके का लालच हर तरह से हानिकर है। यह सब उन्हें भली-भाँति समझा दिया जाय। समय पर सोने, सुबह जल्दी उठके स्वच्छता, रखने आदि के नियम तथा उठने-बैठने के कायदे सिखा दिये जायें।

किशोरों की खेलकूद की स्वाभाविक रुचि को प्रोत्साहित किया जाय और उस हेतु आवश्यक व्यवस्था जुटाई जाये, जो किशोर किन्हीं कारणों से खेल-कूद से विरत रहते हों, उनकी उस प्रवृत्ति का कारण ढूँढ़कर उसे समाप्त किया जाय। झिझक, संकोचहीनता या अन्य किसी मानसिक कुण्ठा के कारण ही किशोरों में खेल-कूद के प्रति उत्साह शिथिल हो सकता है। उनकी स्थिति को समझकर प्रेमपूर्वक खेल-कूद में उनकी रुचि पुनर्जागृति करना आवश्यक है, अन्यथा उनकी यह कुण्ठा उनके व्यक्तित्व को ठीक से विकसित न होने देगी। व्यायाम में उनकी रुचि स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। उन्हें बताया जाय कि स्वास्थ्य और स्वभाव दोनों के निर्माण का यही समय है। अतः वे व्यायाम, खेल-कूद, अध्ययन एवं संयम, शालीनता के अभ्यास में इस समय पूरी रुचि लें।

स्वास्थ्य इस समय कमजोर होता गया या लापरवाही, प्रमाद के कारण उसकी जड़ों पर आघात पहुँचाया गया तो जीवन में कोई भी उपलब्धि सम्भव न होगी। न तो उत्साह, आनन्द टिक सकेगा, न ही उपार्जन सम्भव होगा और न ही किसी भी कार्य-क्षेत्र में प्रगति हो सकेगी।

स्वास्थ्य से भी अधिक गरिमा है स्वभाव की। स्वास्थ्य की दुर्बलता तो स्वयं को ही तंग करेगी, औरों की स्वास्थ्यहीनता के प्रति सहानुभूति या उपेक्षा की ही प्रतिक्रिया हो सकती है, किन्तु स्वभाव के दोष तो स्वयं का मन-मस्तिष्क भी कड़ुआ, विषैला बनायेंगे और चारों ओर ऐसी गन्दगी फैलायेंगे, जिसकी प्रतिक्रिया दूसरों द्वारा क्रोध, प्रहार, प्रतिशोध और घृणा के भयंकर रूपों में सामने आ सकती है। उस स्थिति में जी पाना ही कठिन हो सकता है। वाणी का तीखापन, आवेश, जल्दबाजी आदि किशोरावस्था में स्वभाव में उभरते हैं। शक्ति के उमड़ते प्रवाह की वे असंस्कृत अभिव्यक्ति होते हैं। उन्हें संयमित-सुसंस्कृत रूप देने का, अभ्यास करने का भी यही समय है, अन्यथा यह स्वभाव का अनगढ़पन व्यक्तित्व का ही अंग बन जायेगा और सम्पर्क में आने वाले हर व्यक्ति को पीड़ा देगा।

अध्ययनशीलता का स्वभाव में समावेश कराने की भी यही आयु है। उन्हें शिक्षा का महत्त्व समझाकर उसके सम्वर्द्धन की प्रेरणा दी जाये। पढ़ाई में पिछड़ते हुए किशोर की मनःस्थिति ठीक से समझी जाय। इसकी बुद्धि ही कमजोर है—ऐसा सोचकर शान्त न बैठा जाय न ही उदासीनता, बरती जाय। बहुत मेधावी होना अलग बात है, किन्तु शिक्षा में सामान्य निपुणता की सामर्थ्य हर किशोर में होती है। उनका सक्रिय मस्तिष्क अत्यधिक ग्रहणशील होता है। फर्क यह है कि यह ग्रहणशीलता उन विषयों के प्रति होती है, जिन्हें उसका किशोर-मन महत्त्वपूर्ण समझता है। जब उसे घर में समुचित स्नेह नहीं मिलता है, पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता है, झिड़कियों और आलोचनात्मक टिप्पणियों से उसकी भूलों का निषेध तो किया जाता है, किन्तु सकारात्मक, विधेयात्मक पक्ष की प्रेमपूर्वक जानकारी नहीं दी जाती, तो उसका जिज्ञासु मस्तिष्क असन्तुष्ट बना रहता है।

आवश्यकता इस बात की है कि उसे शिक्षा का महत्त्व समझा दिया जाय। उसे बताया जाय कि जानकारियों के सही स्रोत श्रेष्ठ पुस्तकें और शिक्षा ही है। भ्रान्त जानकारियों से असीमित हानि होती है कि इस समय शिक्षा में बरती लापरवाही से न तो नौकरी पाने की पात्रता आ सकेगी, न शादी-ब्याह की और न ही सम्मान-प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकेगी। उपार्जन न करने वाले के मित्र भी नहीं बनते-टिकते। चारों ओर अपने प्रति असम्मान का भाव आ जाने पर लोगों का सहयोग भी नहीं मिलेगा। इस प्रकार जो लोग आज तुम्हारे आगे-पीछे घूमते हैं, वे ही तुमसे किनाराकशी करने लगेंगे।

ये सभी बातें उन्हें डाँट-डपटकर नहीं, स्नेह-प्यार के साथ समझाई जायें। शिक्षा, स्वास्थ्य और शील के लाभों को विस्तार से निरन्तर बताया जाये, ताकि वे इनके द्वारा हो सकने वाली उपलब्धियों को ठीक से हृदयंगम कर सकें। इनकी उपेक्षा से होने वाली हानियों की भयंकरता समझ सकें। पास-पड़ौस के उदाहरणों से उन्हें समझाया जाय। हमेशा उन्हें सीधे सम्बोधित करना आवश्यक नहीं। कई बार, जब पारिवारिक गोष्ठी जुड़ें, उस समय ऐसे प्रसंग छेड़े जायें। जिन लोगों ने स्वास्थ्य, शिक्षा एवं सुशील स्वभाव का महत्त्व समझकर अपना विकास किया है, उनकी प्रशंसा की जाय। यह प्रशंसा उन गुणों और क्रियाओं की हो, जिनके कारण विकास हुआ। हवाई प्रशंसा न की जाये, जैसे—यह कि अमुक आदमी कितना अच्छा है, कितना बड़ा है आदि। वह अच्छा, बड़ा कैसे बना ? यह बताया-समझाया जाय अन्यथा प्रशंसा का अपेक्षित प्रभाव न पड़ेगा।

कहानियों द्वारा शिक्षण भी किशोरों के लिए उपयोगी होता है। कहानियाँ ऐसी हों, जो गुणों पर प्रकाश डालें, उनके लाभ तथा दोषों की भयंकरता समझाएँ।

स्वभाव में सुव्यवस्था और शालीनता सिखाते समय यह ध्यान रखा जाय कि यह उम्र हड़बड़ी और आवेश की होती है। हड़बड़ी से अव्यवस्था तथा आवेश से अशिष्टता का जन्म होता है। ये दोनों प्रवृत्तियाँ भी घर के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वातावरण के अनुसार घटती-बढ़ती हैं। किशोर उपदेश से नहीं आचरण से सीखता है। व्यवस्था उसे प्रत्यक्ष रूप में दिखलाई जाय। प्रेम से स्वयं वस्तुओं को सुव्यवस्थित करके उन्हें समझाएँ। अपने कपड़े, जूते, बस्ते वे नियत स्थान पर ही रखें, टाँगें। यह सिर्फ कहें नहीं, बल्कि बाहर से घर आने पर जब वे इन वस्तुओं का हड़बड़ी में इधर-उधर फेंक दें, तब उन्हें अभिभावक खुद सहेज कर रखें और तब समझाएँ।

ध्यान रखना चाहिए कि किसी बात को समझ लेना एक बात है, उसे अभ्यास में उतारना बिल्कुल दूसरी बात है। कह देने भर से किशोर किसी बात को समझ तो जाते हैं, पर उनका वैसा अभ्यास नहीं हो पाता। अभ्यास धीरे-धीरे ही हो पाता है। यह भी ध्यान रखा जाय कि किशोर जैसा भी अभ्यास सीखते हैं, अपनी तीव्र ग्रहणशीलता के कारण वे उसकी बार-बार आवृत्ति करते हुए उसे गहरा बना लेते हैं। अतः वह अभ्यास यदि गलत हुआ, तो भी एकदम से नहीं छूट पाता। पूर्व-अभ्यास को बदलने और नया अभ्यास ठीक से सीखने में समय लगता है। उसे हेतु अपेक्षित धैर्य अभिभावकों में आवश्यक है।

किशोरों द्वारा सीखने के क्रम में एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे किसी भी नये व्यवहार का क्रम ठीक से नहीं बैठा पाते। यह उनकी आवेशमूलक प्रकृति की विवशता होती है। अतः उन्हें प्रेमपूर्वक क्रमबद्धता सिखाएँ। उनकी क्रम-विहीनता पर झल्लाएँ नहीं।

शालीनता के बारे में भी वही बात लागू होती है; जो सुव्यवस्था के बारे में। घर का वातावरण शालीनता का हुआ, माँ-बाप, भाई-बहिनों के आपसी व्यवहार में सुसंस्कारिता रही, तो किशोर के मन पर उसका प्रभाव अवश्यम्भावी है। बाहरी प्रभाव से उनमें कभी अशिष्टता, तुनुकमिजाजी आदि बढ़ते दिखें तो उन्हें तेजी से झिड़कने का कोई प्रश्न ही नहीं, क्योंकि झिड़की के इस व्यवहार को भी वे उसी पैनेपन के साथ हृदयंगम कर लेंगे। अतः शिष्टता, शालीनता भी उन्हें सौम्यतापूर्वक ही सिखाई जानी चाहिए।

किशोरों में अपने को बड़ा और उत्तरदायी समझने की भावना आ जाती है। कठोर नियन्त्रण और झिड़की भरे निर्देशों का उन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वे हर अच्छी-बुरी बात को अपने दृष्टिकोण से देखते और अपनी इच्छा के अनुसार पसन्द, नापसन्द करते हैं। अतः उन्हें कोई भी बात उदाहरणों, प्रमाणों और कहानियों के आधार पर ही समझाई जा सकती है। समझाते समय भाषा और भाव गूढ़ न हों, सरल हों अन्यथा यह गूढ़ता उनके लिए एक नई समस्या बन जायेगी। उनमें हीनताजन्य कुण्ठा घर कर जायेगी।

किशोरों की आत्मगौरव की भावना को पुष्ट करते हुए, उन्हें स्वास्थ्य, शिक्षा और स्वभाव की उत्कृष्टता का महत्त्व समझा दिया जाये तो उनका जीवन शुद्धता एवं श्रेष्ठता की दिशा में ही गतिशील रहकर धन्य बनता है। किशोरावस्था में त्रुटियों, भूलों और कल्मषों का क्रम रूढ़ होता गया तो फिर गहन पश्चात्ताप के बाद भी वैसी स्वाभाविक निर्मलता कठिनाई से ही आ पाती है। अतः किशोरावस्था में इन बातों की ओर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

किशोरों के निर्माण में सावधानी बरती जाय

आज की तरुण पीढ़ी अपराध एवं अनुशासनहीनता की ओर वेग से बढ़ती जा रही है। यह दुष्प्रवृत्ति न केवल वर्तमान के लिए ही भयप्रद है बल्कि भविष्य के लिए भी भयानक है। जो आज बिगड़ गया है वह कल आने वाले के लिए बुराई का उदाहरण बन जायेगा। वर्तमान को देखकर आने वाला भविष्य भी अनुकरण करता हुआ वैसा बन जायेगा। इस प्रकार समाज में बुरी प्रवृत्तियों की एक परम्परा लग जायेगी। इस प्रकार बढ़ती हुई अपराध, अनुशासनहीनता, अशिष्टता एवं अश्लीलता की दूषित प्रवृत्तियाँ ठीक नहीं। इन्हें रोकने का यथासम्भव प्रयत्न किया ही जाना चाहिए।

हर नागरिक किसी न किसी की सन्तान हुआ करता है। यदि अभिभावक प्रारम्भ से ही अपने बच्चों में शुभसंस्कारों के बीज बो दें तो आगे चलकर वे अच्छे नागरिक ही बनें। अच्छे नागरिक अपने बच्चों को अच्छा बनायेंगे ही। इस प्रकार एक-दो पीढ़ी बाद समाज से बुरी प्रवृत्तियों का उन्मूलन हो जायेगा। इस दिशा में अभिभावक अपना कर्त्तव्य समझें और उसे पूरा करने का भरसक प्रयत्न करें। किशोर की बुद्धि परिपक्व नहीं होती। इसलिए वह अपना भला-बुरा स्वयं ठीक से नहीं समझ पाता। इस समय किशोर को यदि पूरी तरह उसी पर छोड़ दिया जाता है, तो उसके बहककर विपथगामी हो जाने का ही डर रहता है और फिर आज तो चारों ओर का वातावरण विपथगमन को ही प्रोत्साहित करने वाला हो गया है। इस अवस्था में एक बार बहक जाने पर किशोर अपने स्वास्थ्य एवं चरित्र को चौपट किये बिना नहीं मानेगा। वह कुछ ही दिनों में दुर्गुणों एवं दोषों का भण्डार बनकर अपना होनहार जीवन अभिशाप बना लेगा और आगे चलकर अपने पाप से समाज में विकृतियों की वृद्धि करेगा। उसका आचरण तथा व्यवहार परिवार और समाज दोनों के लिए ही अहितकर बन जायेगा।

ऐसी स्थिति होने पर भी किशोरों को उनकी अपनी जिम्मेदारी पर पूरी तरह छोड़ा नहीं जा सकता। अभिभावकों को उनके, परिवार के, समाज के तथा राष्ट्र के हित में उन पर नजर रखनी होगी। उनके निर्माण में हाथ देना ही होगा। ऐसा करने में उनका मार्ग डॉट-डपट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

अथवा मारपीट का न होकर प्रेम, परामर्श तथा व्यवहार-संस्कार का हो सकता है।

अभिभावकों को चाहिए कि वे किशोरावस्था प्रारम्भ होने से पूर्व ही अपने बच्चों पर शुभ-संस्कार डालने प्रारम्भ कर दें, जिससे कि निरंकुशताप्रिय किशोरावस्था में उन्हें अभिभावकों का परामर्श एवं व्यवहार अस्वाभाविक न अनुभव हो। बाल्यकाल से बने हुए मार्ग पर वे बिना किसी द्वन्द्व के आसानी से चलते चले जायेंगे। बाल्यकाल से ही उनके मन-बुद्धि को जो दिशा दे दी जायेगी किशोरावस्था में भी उनकी गति उसी दिशा में बनी रहेगी। मनुष्य के मन और बुद्धि गहराई से पाये हुए मार्ग से सामान्यतया विचलित नहीं हो पाते। इसलिए बालकों पर उच्च संस्कारों का सृजन बाल्यकाल से करना अभिभावकों के लिए सरल भी होगा और उपयुक्त भी।

किशोरों में शुभ-संस्कार सृजन के लिए घर का वातावरण अनुकूल होना बहुत आवश्यक है। उपयुक्त वातावरण के अभाव में उपदेश, शिक्षा तथा परामर्श का कोई भी वांछित प्रभाव उन पर नहीं पड़ेगा। वाणी की अपेक्षा वातावरण का प्रभाव मनुष्य के मन-मस्तिष्क पर अधिक गहराई से पड़ता है। उपयुक्त वातावरण के बीच शुभाचार-विचार की शिक्षा किशोरों के मानसों में द्विगुण रूप से फलवती होती है। घर का वातावरण उत्तम होने से किशोर का मन-मस्तिष्क तथा शारीरिक स्वास्थ्य भी उत्तम होगा। उसका चित्त शुद्ध एवं प्रसन्न रहेगा। ऐसी दशा में साधारण भोजन भी पौष्टिक पदार्थों की तरह ही गुणकारी होगा। शरीर में शुद्ध रक्त का निर्माण होगा जिससे बलवीर्य की वृद्धि के फलस्वरूप उसकी स्मृति बलवती होकर शीघ्र ही शुभ-संस्कारों को ग्रहण कर स्वभाव में परिवर्तित कर देगी।

जिन घरों में दिन-रात हाय-हाय और किच-किच बनी रहती है, उन घरों के बच्चे बहुत कम स्वस्थ, सुशील तथा सभ्य बन पाते हैं। कितना ही बचाव क्यों न किया जाय वे वातावरण के अशुभ संस्कार ग्रहण किये बिना न मानेंगे। लड़ाई-झगड़े, द्वेष-डाह के अनुपयुक्त वातावरण में बालक, स्वस्थ, सुन्दर, सुशील एवं दीर्घजीवी न बन सकेंगे, जबकि उन्हें वास्तव में बनना ऐसा ही चाहिए। उनके अंगों का विकास रुक जायेगा। प्रसन्नता के अभाव में उनकी पाचन-क्रिया बिगड़ जायेगी। पुष्टिकारक धातुओं का निर्माण रुक जायेगा। उनकी कार्यक्षमता का ह्रास होगा। वृत्तियाँ कठोर एवं कर्कश हो जायेंगी, जिससे कि वे दया, उदारता, सहानुभूति, सहायता, सहयोग तथा संवेदना के मानवीय गुणों से वंचित रहकर अनुपयुक्त नागरिक ही बनेंगे। बच्चों के निर्माण में घर के वातावरण का बहुत महत्त्व है। अभिभावकों को चाहिए कि वे बच्चों के हित में घर का वातावरण हर मूल्य एवं प्रयत्न से उपयुक्त बनाए रखें।

किशोरों के निर्माण में शिक्षा-दीक्षा का अपरिहार्य महत्त्व है। सभ्य और सुशील होने पर भी बालक मृगछौने जैसे भोले होने पर भी अबोध पशु ही रह जायेंगे। अशिक्षित, विनम्र भी पूरी तरह सभ्य नहीं कहा जा सकता। शिक्षा-सभ्यता तथा नागरिकता की आधारशिला है। इसलिए बच्चों का पढ़ाया जाना भी बहुत आवश्यक है। विद्याध्ययन के विषय में किशोरावस्था में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इस अवस्था में यदि उन्हें विद्या के प्रति उदासीनता से विमुख कर शिक्षा की ओर विशेष तौर पर उन्मुख कर दिया जाता है तो वे स्कूली शिक्षा समाप्त करने के बाद भी अध्ययनशील बने रहते हैं। बाल्यकाल से लेकर किशोरावस्था ही शिक्षा के संस्कार डालने के लिए सबसे उपयुक्त आयु है। इस समय बालकों की बुद्धि बड़ी ही कोमल तथा ग्रहणशील होती है। इस समय के थोड़े-से ही अभ्यास से वे बहुत कुछ ग्रहण कर लेते हैं। आगे चलकर उनकी बुद्धि विकसित होने के कारण साथ-साथ प्रौढ़ भी हो जाती है, जिससे जल्दी पाठ ग्रहण नहीं कर पाते। सयाने हो जाने पर उन्हें पढ़ने में कुछ शर्म भी आती है और उनका उद्दण्ड मन पढ़ने में लगता भी नहीं। इसलिए बाल्यकाल से लेकर किशोरावस्था तक बच्चों की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

प्रचुर सम्पत्ति का स्वामी होने पर भी शिक्षाशून्य मनुष्य समाज में अधिक आदर नहीं पाता, उसका क्षेत्र अपने जैसे अशिक्षित व्यक्तियों तक ही सीमित हो जाता है। वह समाज के बुद्धिवादी लोगों के बीच घुल-मिल नहीं सकता। उसका परिचय संसार की गतिविधियों से नहीं हो पाता। वह अपने व्यापार-व्यवसाय तक ही कूप-मण्डूक बना रहता है। कूप-मण्डूकता से स्वार्थ एवं संकीर्णता का प्रादुर्भाव होता है। तब ऐसी दशा में किसी से अच्छे नागरिक बनने की आशा करना उचित नहीं कहा जा सकता। अशिक्षित धनवान अपने धन का उचित उपयोग नहीं कर पाता। या तो वह बहुधा कृपण हो जाता है अथवा अपव्ययी। यह दोनों अवस्थाएँ किसी अच्छे नागरिक के उपयुक्त नहीं कही जा सकतीं ! अच्छा नागरिक बनकर अपने अधिकार तथा कर्त्तव्यों को ठीक से समझने तथा उपयोग करने के लिए शिक्षा की बहुत बड़ी आवश्यकता है। किसी भी अभिभावक को अपने बालकों को अशिक्षित नहीं रखना चाहिए। उन्हें हर अवस्था, हर दशा तथा हर परिस्थिति में शिक्षा दिलानी ही चाहिए।

धार्मिक शिक्षा के अन्तर्गत बालकों को शिष्टता, उदारता, श्रमशीलता, सदयता, स्वच्छता आदि के नियमों का अभ्यास करा देना तथा सत्य, शिष्ट, विनय मधुर एवं प्रसन्न व्यवहार का अभ्यस्त बना देना ही आवश्यक होगा। प्रातः जागरण, भ्रमण, व्यायाम, शुद्ध सात्विक भोजन, स्नान, संयम, निवास, वास तथा वसनों की सादगी, स्वच्छता तथा मनोयोग से अध्ययन की प्रवृत्ति पैदा कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देना बच्चों को धार्मिक शिक्षा दिया जाना है। प्रवृत्ति से प्रेम और ईश्वर पर आस्था उनके लिये ब्रह्मविद्या की तरह ही लाभकारी होगा। माता-पिता, भाई-बहिनों, गुरुजनों, साथियों, सम्पर्कों तथा अन्य सर्वसाधारण से उन्हें किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए, इसका ज्ञान करा देने का अर्थ होगा कि आपने इन्हें मानो योग साधना की शिक्षा दे दी।

किशोरों के लिए घर का वातावरण, शिक्षा तथा धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था करने वाले अभिभावक अवश्य ही समाज को सभ्य एवं सुशील नागरिक प्रदान कर श्रेय सौभाग्य के भागी बनेंगे।

किशोरों को स्नेहपूर्ण मार्गदर्शन दिया जाय

जिस प्रकार बच्चों को दुलार के नाम पर उन्हें अपने मनोविनोद का साधन बना डालने से प्यार नहीं, अहित सिद्ध होता है, उसी प्रकार किशोरों की वास्तविक आवश्यकताओं की उपेक्षा करने से तथा उन्हें मार्गदर्शन न दिये जाने से, उनका भी सम्यक् विकास नहीं हो पाता।

माता-पिता सोचते हैं कि अब तो बच्चा बड़ा हो गया। अब उसको सिखाने लायक जो कुछ है, वह सब स्कूल में ही सिखाया जायेगा। वे स्कूल भेज देते हैं, फीस देते हैं, पुस्तकें खरीदते हैं, आवश्यक उपकरण एवं वस्तुओं की व्यवस्था कर देते हैं, अब समय अलग से कहाँ से निकालें ? इतनी सारी व्यवस्था करने के लिए ही तो वे कमाते हैं, दौड़-धूप करते हैं।

काश ! अभिभावक यह समझ सकते कि सुविधाओं का सम्वर्द्धन मात्र व्यक्तित्व विकास के लिए पर्याप्त सहायक नहीं हो पाता। सुविधाओं की ऐसी भरमार, जो किशोर को अपनी शक्ति के उपयोग के अवसर तक सीमित कर दे, उन्हें लाभ के स्थान पर हानि पहुँचाती है। बहुत अधिक सुविधाएँ उपलब्ध कराना, प्यार नहीं, दुलार की विकृति है। सच्चा प्यार वह है, जिसमें किशोर की शारीरिक, मानसिक आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए उसे क्रियाशीलता के अधिकाधिक अवसर उपलब्ध कराये जायें तथा साथ ही सक्रियता की दिशा भी दिखाई जाय।

किशोरावस्था उत्साह जोश-खरोश की एक अनोखी ही उम्र होती है। शक्ति के नये-नये स्रोत भीतर से उमड़ते हैं। समझदारी का दायरा नित्यप्रति बढ़ता है। अब सिर्फ खिलौनों से और माता-पिता के लाड़-प्यार से मन नहीं बहलता। अपने समकालीन संसार को जानने-पहचानने की प्रचण्ड जिज्ञासा प्रतिदिन विस्तृत होती जाती है। यौन-उभार का भी यही समय है। उससे किशोर के पूरे शरीर में एक नयी ही हलचल भरी उमंग उफान लेती है। मस्तिष्क अपरिपक्व रहता है। न तो इन उमंगों का स्वरूप ज्ञात होता, न ही सदुपयोग की दिशा। अतः यह स्थिति प्यार भरे मार्गदर्शन की अपेक्षा करती है। मात्र सुविधा-सरंजामों को जुटा देने से किशोर की समस्या हल नहीं होती उल्टे और उलझन ही बढ़ती है।

माता-पिता का यह दायित्व है कि वे अपनी व्यस्तता में से समय निकालें। सुविधा-साधनों के उपार्जन में थोड़ी कमी भी करना पड़े, तो हर्ज नहीं। किशोर की वास्तविक आवश्यकता की उपेक्षा अधिक महँगी पड़ेगी। इस समय उसे सामान्य जानकारियों की अधिकाधिक शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है। सामाजिकता के शिक्षण की यही उम्र है। यह शिक्षण सर्वोत्तम रीति से माँ-बाप के ही द्वारा दिया जा सकता है। इस हेतु उन्हें समय भी निकालना चाहिए और अपने भावों की अभिव्यक्ति भी इस प्रकार करनी चाहिए, जिसे किशोर उन्हें ठीक से समझ सकें, सीख सकें और अनुकरण कर सकें।

प्रत्येक माँ-बाप को इस उम्र में बच्चे से वार्तालाप के लिए नियमित समय निकालना चाहिए। उसके साथ गम्भीर चर्चा भी करनी चाहिए और विनोद भी। चर्चा, वार्तालाप के जरिये उसे शिष्टाचार के अनेक नियमों-कायदों की जानकारी दी जाये, सामान्य ज्ञान की जानकारी दी जाये, ताकि वह सामाजिक व्यवहार में दक्ष हो। डाक-तार, रेल-बस, सभा-सोसायटी, परिवार-रिश्तेदार, मित्र-परिचित आदि से सम्बन्धित दैनन्दिन व्यवहार की आवश्यक जानकारियाँ दी जायें। बाजार से चीजें खरीदते समय अपेक्षित जानकारियाँ व सावधानियाँ बताई जायें। घर में ऐसी उपयोगी, ज्ञानवर्द्धक, सुरुचिपूर्ण पत्र-पत्रिकाएँ मँगाई जायें, जिनसे किशोर का सामान्य ज्ञान बढ़े।

उनके प्रश्नों के उत्तर उत्साहपूर्वक दिये जायें। साथ ही उनके साथ मिलकर काम किया जाय और उनके खेलों में भी रुचि ली जाये ताकि वे माँ-पिता से अधिक घुल-मिल सकें। घुलने-मिलने पर ही इस उम्र में बच्चे माँ-बाप की सिखाई बातें सीख सकते हैं अन्यथा वे उनकी उपेक्षा कर अपने समवयस्कों द्वारा प्रदत्त सीख को ही ग्रहण करते हैं।

किशोरों के क्रिया-कलापों में पूरा रस लिया जाय। उनके साथ काम किया जाय। कपड़े धोने, लोहा करने, सामान की व्यवस्था करने, स्नान, स्वच्छता के नियमों का पालन करने, किताबें, बस्ते सहेजकर रखने, चप्पलें-जूते, कपड़े, खेल के उपकरण आदि सब ठीक से रखने व इनकी साज-सँभाल करने तथा हर काम में क्रमबद्धता एवं सुव्यवस्था का ध्यान रखने का भली-भाँति प्रशिक्षण उनके साथ काम करते हुए ही दिया जा सकता है। नौकरों द्वारा यह तब सीखने के लिए नहीं छोड़ देना चाहिए। न ही साथी-सहपाठियों के अनाड़ीपन से भरे व्यवहार का ही अनुकरण करने को छोड़ना चाहिए। स्वयं साथ-साथ काम कर उन्हें सिखाया जाय। सिर्फ डाँट-डपट, उपदेश-प्रवचन से उन पर उचित प्रभाव नहीं पड़ेगा, अपितु उल्टी प्रतिक्रिया ही होगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किशोरों के प्रति माँ-बाप द्वारा समयजन्य उपेक्षा तो होती ही है, भावजन्य उपेक्षा भी होती है। मन में भले ही स्नेह-प्यार भरा हो, किन्तु यदि मुखाकृति हमेशा गम्भीर बनी रहे, भावभंगिमा से रूखापन टपके तो किशोर मन उस स्नेह को नहीं समझ पाता। वह यही रूखापन देखता है और उसका मन दूर भागता है।

संयुक्त परिवारों में दादी-बाबा के सामने पिता लड़के को गोदी में न ले, खिलाये न, ऐसी परम्परा रहती आई है। यदि बड़ों के सामने बच्चे को गोदी में ले लिया जाय, तो इसे बड़ों के प्रति अवज्ञासूचक माना जाता है, किन्तु यह परम्परा अच्छी नहीं। जब दादी-बाबा बच्चे को खिला रहे हों, उससे बात कर रहे हों, तब तो यही ठीक है कि उसे वहीं रहने दिया जाय। पर शेष समय उसके प्रति स्नेहपूर्ण भावों का प्रदर्शन उचित एवं आवश्यक है, अनुचित नहीं। किशोरों को प्रेमपूर्वक समझाना, उनके साथ हिल-मिलकर बातें करना, बताना, सिखाना बेहिचक किया जाना चाहिए। समय और भाव, दोनों में से एक की भी कमी से किशोर का समुचित शिक्षण नहीं हो पायेगा। उपेक्षा चाहे समयजन्य हो, चाहे भावजन्य, उस पर हानिकर असर डालेगी। अतः पर्याप्त समय देकर किशोरों के भावों के अनुरूप उन्हें शिक्षण देना चाहिए।

परीक्षा में उत्तीर्ण कैसे हों ?

परीक्षा के दिनों में विद्यार्थियों को पास होने की चिन्ता बढ़ती है और वे अपनी शक्ति-सामर्थ्य से अधिक परिश्रम करने लगते हैं। उन दिनों उन्हें घबराहट भी बहुत रहती है। अधिक मस्तिष्क भ्रम और घबराहट का बच्चों के मानसिक संस्थान पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए हम अभिभावकों का कर्त्तव्य है कि हम अपने बालकों को परीक्षा में उत्तीर्ण होने की कला सिखावें। यदि बच्चे इस विधि-विधान को ठीक तरह जान लें तो न तो उनके स्वास्थ्य पर अनावश्यक दबाव पड़ेगा और न मस्तिष्क पर, वह सहज ही उत्तीर्ण हो सकेगा। इस सम्बन्ध में हम उपयोगी निर्देश परीक्षार्थियों के लाभ हेतु नीचे लिखते हैं। इन्हें वयस्क बालकों को पढ़ा या सुना देने से उनका बहुत हित साधन हो सकता है।

१. आत्म-विश्वास—प्रत्येक कार्य में सफलता तो उसके अन्तिम चरण में देखने को मिलती है लेकिन कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व अपनी आत्मा में एक धारणा बनानी पड़ती है कि परिश्रम के बाद हमें सफलता अवश्य मिलेगी। यह विश्वास ऐसा तत्त्व है, जिसकी मात्रा पर विश्वासी की सफलता, असफलता निर्भर करती है। डावाँडोल स्थिति वाले, दुविधापूर्ण बातें करने वाले अधिकांशतः हर कामों में असफल देखे जाते हैं

नन्हा-सा बच्चा जब पाठशाला में पढ़ने के लिए बैठाया जाता है तो उसके पिता, अध्यापक, उसे विश्वास दिलाते हैं कि पढ़कर वह बहुत बड़ा अफसर, धनिक, व्यापारी, सेनापति आदि बन जायेगा। यद्यपि सभी विद्यार्थी ऐसे नहीं हो पाते। कोई बिरले ही उच्च पदों पर पहुँच पाते हैं, परन्तु उन्हें उस लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए वैसी धारणा बनानी अवश्य होती है।

जिन लड़कों ने पूरे वर्ष परिश्रम किया है, अपनी पाठ्य-पुस्तकों को भली प्रकार पढ़कर समझने का प्रयत्न करते रहे हैं, उनकी आत्मा स्वयं बलवती होने लगती है।

आत्मा को उसकी उचित मात्रा में उपासना, पूजा, कर्त्तव्य पालन रूपी खुराक पहुँचा देने पर वह बलवती हो जाती है। बलवती आत्मा से आप जो काम, जब कभी चाहें, ले सकते हैं।

मैंने बहुत-से विद्यार्थियों में से परीक्षा के पहले बातें की हैं और उनके परिणामों को भी देखा है। जो नियमित रूप से सन्ध्या, उपासना, पूजा, नमाज पूरा करते हैं। उनकी बातों से यह पक्का विश्वास हो गया कि उपासना द्वारा विद्यार्थियों को अपूर्व लाभ होता है। अपने सोने या मनोरंजन करने के समय में जो विद्यार्थी ५, १० मिनट का समय उपासना के लिए निकाल देते हैं, उसके कई घण्टे पुस्तक पढ़ने से कम लाभकारी नहीं होता। ऐसा करने वाले कई विद्यार्थियों ने बताया कि उन्हें पक्का विश्वास है कि ईश्वर उनकी सहायता करेगा।

महात्मा गाँधी ने एक स्थान पर कहा है कि आत्म-विश्वास का अर्थ है—ईश्वर की अनन्त शक्ति में विश्वास। हमारी आत्मा परमात्मा का संक्षिप्त स्वरूप है और प्रार्थना करने का तात्पर्य है आत्मा का परमात्मा से अनन्य संयोग।

विद्यार्थियों को परीक्षा भवन में जाते समय ईश्वर की सत्ता, दयालुता, सर्वव्यापकता और अपना एकमात्र सहारा मानकर अपने में पूर्ण विश्वास की भावना भरनी चाहिए। असफलता की चिन्ता करना ही व्यर्थ है। कभी भूलकर भी यह न सोचना चाहिए कि मैं असफल हो सकता हूँ।

ऐसा करने से आपके अन्दर अद्भुत आत्मिक-शक्ति का विकास होगा, जो आप को पहाड़ जैसी लगने वाली परीक्षा को तिनके जैसी हल्की बना देगा।

२. प्रश्नों को सावधानी से पढ़िए—पूर्ण आत्म-विश्वास से सफलता के लिए आशान्वित होकर प्रसन्नचित्त व स्थिर मुद्रा में आप परीक्षा भवन में प्रवेश करें।

प्रश्न-पत्र पाते ही सर्वप्रथम ऊपर से लेकर नीचे तक सभी प्रश्नों को पढ़ें। हर विषय के प्रश्न-पत्रों में ऊपर कुछ नोट लिखे होते हैं। इस नोट में आवश्यक निर्देश होता है कि कितने प्रश्नों का उत्तर देना है और उनमें से कौन-सा प्रश्न सभी विद्यार्थियों को करना अनिवार्य है। अतः इस नोट को अवश्य पढ़कर दिये हुए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यक निर्देश को समझ लेना चाहिए। प्रायः विद्यार्थी लापरवाही, शीघ्रता व सरसरी निगाह से प्रश्न पढ़ने के कारण ही यह नहीं समझ पाते हैं कि प्रश्न में क्या लिखने को कहा गया है ? अपनी रटी हुई जानकारी को बिना कुछ सोचे-समझे लिखकर कापी भर देते हैं। परिणाम यह होता है कि वे परीक्षा भवन के बाहर तो बड़ी प्रसन्नता से निकलते हैं और कहते हैं कि अमुक प्रश्न का उत्तर हमने तीन पन्नों में लिखा, अमुक का चार पन्नों में, परन्तु जाँच के समय शून्य या तो तीन अंक ही पाते हैं।

इसलिए प्रश्न-पत्र पाते ही १५ मिनट तक प्रश्नों को खूब पढ़ना चाहिए। इसके दो भाग हैं—(१) नोट, (२) प्रश्न।

नोट को पढ़कर जो प्रश्न अनिवार्य रूप से करना है, उसके ऊपर टिक मार्क लगा देना चाहिए। नोट के न पढ़ने से कभी-कभी बड़ी हानि उठानी पड़ जाती है।

इसके बाद शेष प्रश्नों में से जितने प्रश्न करने हों, उन पर टिक मार्क लगा देना चाहिए। हर प्रश्न को पढ़कर यह समझ लेना बहुत जरूरी होता है कि उसमें क्या लिखने को कहा गया है ? अपनी जानकारी में से किन विशेष अंगों पर उत्तर देना है ? यह सभी कार्य स्थिर बुद्धि और खुले हृदय से करने से १५ मिनट में समाप्त हो जाते हैं।

प्रायः परीक्षक लोग प्रश्नों को घुमा-फिराकर पूछते हैं। उनके शब्द विषय को कुछ इस प्रकार तोड़-मरोड़ देते हैं कि प्रश्न भिन्न-सा प्रतीत होता है, परन्तु शान्तचित्त से ध्यान देने पर पता चलता है कि उसका उत्तर वही है, जिसे वे जानते थे। नीचे लिखे प्रश्नों को पढ़कर समझिए।

प्रश्न १. भौगोलिक परिस्थितियों का मनुष्य जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है ? 'बद्दू' और 'ऐस्कीमो' के जीवन से स्पष्ट कीजिए।

इसी प्रश्न को घुमा-फिराकर दूसरे वर्ष के प्रश्न-पत्र में इस प्रकार पूछा जा सकता है—

प्रश्न २. 'मनुष्य अपनी भौगोलिक परिस्थितियों का दास है' ऐस्कीमो' तथा 'पिगमी' लोगों के रहन-सहन का उदाहरण देते हुए स्पष्ट कीजिए।

फिर इसी बात को अन्य प्रश्न द्वारा यों पूछा जा सकता है—

प्रश्न ३. भौगोलिक परिस्थितियाँ मानव जीवन पर अपना व्यापक प्रभाव डालती हैं। 'खिरगीज' और 'ऐस्कीमो' लोगों के रहन-सहन से इस बात की पुष्टि कीजिए।

उपर्युक्त तीनों प्रश्नों में कोई मौलिक मतभेद नहीं है। केवल शब्दावली का अन्तर है, भाव का नहीं। भौगोलिक परिस्थितियों का मानव जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है ? ऐस्कीमो, बद्दू, खिरगीज या पिगमी के जीवन का उदाहरण देकर समझाना है।

इसी प्रकार इतिहास के कुछ प्रश्न द्रष्टव्य हैं—

प्रश्न १. 'मुहम्मद तुगलक' को कुछ इतिहासकारों ने 'पागल बादशाह' कहा है। आपकी सम्मति में क्या ऐसा कहना उचित है ? यदि हाँ, तो क्यों ? समझाइए।

प्रश्न २. 'मुहम्मद तुगलक' को 'पागल बादशाह' क्यों कहा जाता है ? उसकी योजनाओं के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?

इसी बात को बिल्कुल सीधे-साधे ढंग से निम्न प्रकार से पूछा जा सकता है—

प्रश्न ३. मुहम्मद तुगलक के शासन काल में कौन-कौन-सी घटनाएँ हुईं ?

ऊपर के प्रश्नों को तुलनात्मक ढंग से पढ़ने से कोई विशेष अन्तर नहीं दीख पड़ेगा।

रेखागणित के भी कुछ उदाहरण ध्यातव्य हैं—

प्रश्न १. त्रिभुज किन-किन दशाओं में अनुरूप होते हैं ? किसी एक दशा को सिद्ध करके अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए।

प्रश्न २. यदि दो त्रिभुजों में दो भुजाएँ और बीच का कोण आपस में बराबर हों, तो दोनों त्रिभुज अनुरूप होंगे ?

प्रश्न ३. अ. ब. स. और द. य. र. दो त्रिभुज हैं, जिनमें भुजा अ. ब. = द. य., अ. स. = द. र. तथा कोण अ ब स = य द र के, तो सिद्ध करो कि दोनों त्रिभुज अनुरूप होंगे।

इसी प्रकार प्रायः हर विषय के प्रश्न-पत्रों में होता है। अब तो एक चलन-सा हो गया है कि सीधी-साधी बात को घुमा-फिराकर विद्यार्थियों की बुद्धि-चातुर्य की परीक्षा ली जाये। ऐसी स्थिति में सावधानी और सतर्कतापूर्वक जब आप प्रश्न-पत्र को पढ़ेंगे, तो आपकी अधिकांश कठिनाइयाँ हल हो जायेंगी और प्रतीत होगा कि प्रश्न-पत्र के उत्तर में आप कुछ-न-कुछ लिखने की क्षमता रखते हैं, जो परीक्षक की दृष्टि में सन्तोषजनक सिद्ध हो सके।

३. समय विभाजन—प्रश्न-पत्रों को सावधानीपूर्वक पढ़ लेने के बाद प्रश्नों के उत्तर लिखने के पूर्व हर विद्यार्थी के लिए आवश्यक है कि समय-विभाजन कर ले। निचली कक्षाओं से लेकर एम. ए. की उच्च कक्षाओं तक की परीक्षाओं में एक प्रश्न-पत्र के उत्तर के लिए तीन घण्टे का समय निर्धारित होता है। इस अवधि में पाँच प्रश्नों के उत्तर लिखने होते हैं। किसी-किसी परीक्षा में इसी अवधि में ६ प्रश्न भी करने पड़ सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रथम १५ मिनट प्रश्नों को पढ़ने व अन्तिम १५ मिनट लिखे हुए प्रश्न-पत्रों को दोहराने के लिए छोड़कर शेष ढाई घण्टे बचते हैं। यदि पाँच प्रश्न करने हैं, तो हर प्रश्न के लिए तीस मिनट का समय निर्धारित करना चाहिए। ६ प्रश्न की स्थिति में हर प्रश्न के लिए २५ मिनट समय निर्धारित करना चाहिए। यदि कोई प्रश्न कुछ अधिक अंकों का है, तो उसके लिए दो-चार मिनट अधिक दिये जा सकते हैं और अन्य प्रश्नों में से वह कमी पूरी कर लेनी चाहिए।

निचली कक्षाओं के विद्यार्थियों का विषय-ज्ञान सीमित होता है। उन्हें ३० मिनट में अपनी विद्वत्ता को प्रकट करने का काफी अवसर मिल सकता है, यदि वे उसका सदुपयोग करें, परन्तु हाईस्कूल से ऊपर की कक्षाओं में सबसे बड़ी समस्या समय की कमी की होती है। विषय-ज्ञान तो प्रायः सबका इतना होता है जो ३० मिनट तक लिख सकें, परन्तु अधिक ज्ञान को कम समय में सुन्दरतापूर्वक प्रकट कर देने की कला जानने वाले बिरले ही मिलते हैं। गागर में सागर भर देने की कहावत यहीं चरितार्थ होती है। जिन विद्यार्थियों की लिखने की गति अच्छी होती है, वे तो सभी प्रश्नों के उत्तर लिख डालते हैं, परन्तु मन्दगति वाले विद्यार्थियों के बहुत-से प्रश्न इसीलिए छूट जाते हैं कि वे निर्धारित समय में लिख नहीं सके। उनके अनुत्तीर्ण होने का प्रायः यही कारण होता है। इसलिए ऊँची कक्षाओं में समय-विभाजन करके उसके अनुसार चलना और भी बड़ा महत्त्व रखता है।

अपने सामने घड़ी रख लेनी चाहिए और हर प्रश्न का उत्तर समाप्त करने के बाद समय देख लेना चाहिए कि औसत से अधिक समय तो नहीं लग रहा है। यदि घड़ी न हो, तो जो घण्टे परीक्षा भवन में ६० मिनट के बाद बजाये जाते हैं, उससे अपने को अनुकूल कर लेना चाहिए।

सदैव सीधी-सादी आम बोल-चाल की भाषा में प्रश्नों के उत्तर लिखने चाहिए, जो सबकी समझ में आ जायें।

हर प्रश्न के उत्तर दो-चार मिनट का हेर-फेर हो सकता है, परन्तु अधिक देरी न करनी चाहिए।

समय-विभाजन करके लिखने से हर प्रश्नों को लिखने का समान अवसर मिल जाता है। जब कापी में पाँच प्रश्न के उत्तर लिखे हों, तो परीक्षक को दया दिखाने का अवसर भी मिल सकता है। मान लीजिए कि प्रश्नों के उत्तर बहुत अच्छे नहीं लिखे जा सके हैं, परन्तु यदि २० अंक के हर प्रश्न में उसे केवल ६, ७ ही प्राप्त हो गये तो भी योग ३३, ३४ से अधिक हो जायेगा। इसके विपरीत यदि उसने दो प्रश्नों के उत्तर तो बहुत सुन्दर ढंग से लिखे, शेष तीन के औसत से कम स्तर के रहे तो उसे पहले २ प्रश्नों में अधिक से अधिक ५० प्रतिशत अंक अर्थात् २० अंक मिले। शेष में ३, ३ अंक मिले। योग २९ ही रहा।

एक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी ऐसी कापियों का परीक्षक पर पड़ता है। जाँचते समय जब प्रथम दो प्रश्नों के उत्तर उसे ऊँचे स्तर के मिलते हैं, तब परीक्षक उस परीक्षार्थी के बारे में एक धारणा बना लेता है, परन्तु सहसा अगले प्रश्नों का उत्तर जब औसत से बहुत कम स्तर तथा कम पन्नों में लिखे मिलते हैं, तब उसका पारा एकदम चढ़ जाता है और वह उस परीक्षार्थी को सनकी समझकर बहुत कम अंक देने लगता है। इसलिए आपको समान स्तर, समान पन्ने, समान लेख कायम रखने का प्रयत्न करना चाहिए।

४. सरल से कठिन की ओर—समझने अथवा समझाने के लिए चार मौलिक तरीके बताये गये हैं—(१) सरल से कठिन की ओर, (२) ज्ञात से अज्ञात की ओर, (३) स्थूल से सूक्ष्म की ओर, (४) एक से अनेक की ओर।

परीक्षा में सफलता प्राप्त करने के लिए इनमें से पहला नियम लागू होता है।

करने योग्य प्रश्नों पर टिकमार्क लगा दें और समय-विभाजन करके लिखना प्रारम्भ करें, तो सर्वप्रथम आप उस प्रश्न का उत्तर लिखें, जो आपको सबसे अधिक याद हो।

पाँच प्रश्नों में सभी प्रश्न आपके समान रूप से न तैयार होंगे। कुछ प्रश्न ऐसे होंगे, जिनका उत्तर आप बहुत सुन्दर और सन्तोषजनक लिख सकेंगे और कुछ प्रश्न ऐसे भी हो सकते हैं, जिनका उत्तर पहले जैसा अच्छा न लिख सकें। आपकी कापी जो परीक्षक देखते हैं, उनमें भी आप जैसी मानवीय भावनाएँ व दुर्बलताएँ हो सकती हैं। किसी व्यक्ति से प्रथम मिलन में आपकी जो अच्छी-बुरी धारणा उसके बारे में बन जाती है वह स्थायी होती है। यदि किसी अवसर पर उस व्यक्ति को प्रतिकूल आचरण करते देखें, तब भी शीघ्र विश्वास समाप्त नहीं होता है।

ठीक यही बात आपकी उत्तर-पुस्तिका के सम्बन्ध में भी है। शुरू-शुरू में जब परीक्षक आपकी कापी खोलकर जाँचना प्रारम्भ करता है, तो पहले प्रश्न का उत्तर आप जिस प्रकार लिखते हैं, उसी के आधार पर परीक्षक एक साधारण धारणा आपकी योग्यता के प्रति बना लेता है। प्रथम लिखे गये उत्तर से यदि आप परीक्षक के ऊपर अच्छा प्रभाव डालने में समर्थ हो गये, तो वह उस उत्तर पर अच्छे अंक देगा, साथ ही दूसरे प्रश्नों को भी सरसरी निगाह से देखकर उनमें भी अच्छे ही अंक देने का प्रयत्न करेगा।

साधारणतया परीक्षक लोग कापी के प्रथम ४, ६ पन्ने बड़ी सावधानी से देखते हैं। उनकी हर त्रुटि पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लाल पैंसिल से निशान कर देते हैं। फिर उन्हें जल्दी सूझती है। बीच के पन्नों में ऊपर-नीचे की कुछ पंक्तियों को सरसरी दृष्टि से देखते हुए पन्ने उलटते चले जाते हैं। जहाँ प्रश्न समाप्त होता है, वहाँ अंक देते जाते हैं, फिर अन्तिम चार-छह पन्नों को पुनः सावधानी से देखते हैं। उसमें दिये गये अंक वास्तविकता पर अधिक आधारित रहते हैं। इस तरह प्रथम दो प्रश्न व अन्तिम एक प्रश्न की मार्किंग वास्तविकता की तुलना में बनी हुई धारणा पर की जाती है।

लिखते समय इस मनोवैज्ञानिक स्थिति का लाभ परीक्षार्थी को उठाना चाहिए। पहले तो उन प्रश्नों के उत्तर लिखने चाहिए जो उसे बहुत अच्छी तरह तैयार हों फिर बीच में कम या औसत तैयार प्रश्नों को लिखकर अन्त में फिर एक अच्छी प्रकार से तैयार प्रश्न को लिखना चाहिए।

इस ढंग से जहाँ एक लाभ यह होता है कि परीक्षक पर अच्छा प्रभाव पड़े, वहाँ दूसरी ओर विद्यार्थी में आत्म-विश्वास भी आ जाता है। अच्छे प्रकार का प्रारम्भ आधी सफलता मानी जाती है। आरम्भ के प्रश्न जब विद्यार्थी अच्छे ढंग से कर लेता है, तब उसका साहस बढ़ जाता है और वह अन्य प्रश्नों को भी सरलतापूर्वक करता है।

उपर्युक्त बातें वर्णनात्मक विषयों इतिहास, भूगोल, भाषा व कला आदि के बारे में कही गई हैं।

गणित के विषय में सर्वप्रथम उस प्रश्न को हल करना चाहिए, जो सबसे सरल प्रतीत हो, फिर क्रमशः उससे कठिन और सबसे कठिन प्रतीत होने वाले प्रश्न को सबसे अन्त में करना चाहिए। ऐसा करने से विद्यार्थी अधिकांशतः सफल होते हैं, परन्तु जो विद्यार्थी सबसे पहले कठिन प्रश्नों को हल करने की चेष्टा करते हैं, उनका अधिक समय उस प्रश्न पर व्यय तो हो ही जाता है, साथ ही प्रश्न के न आने पर विद्यार्थी हताश हो जाता है। ऐसी मनोदशा में जो प्रश्न वह हल कर सकता था, उन्हें भी भूल जाता है। गणित में सरल से कठिन की ओर जाने की पद्धति बहुत उपयोगी है।

५. नकल करना अपने लिए ही हानिप्रद—परीक्षा विषयक सबसे बड़ी समस्या नकल की है। मार्च, अप्रैल मास में सभी अध्यापकों और लड़कों में यह भगवान की माया की तरह व्याप्त होकर उनकी चर्चा और परेशानी का विषय बन जाती है। परीक्षार्थियों के बैठने की व्यवस्था इसी आधार पर की जाती है कि समान योग्यता के लड़के निकट न बैठ सकें, क्योंकि डर है कि कहीं नकल न कर लें। हर कमरे में दो-दो परीक्षक देखभाल के लिए होते हैं, परीक्षा इन्चार्ज महोदय गुप्त रूप से घूमकर सन्देहयुक्त लड़कों की तलाशी लेते हैं, उनके जेब, कमर व कपड़ों में परचा खोजते हैं।

सम्भावित प्रश्नों के उत्तर नोट रूप में तैयार करके पेंडू में दबाकर परीक्षा भवन में ले जाना, अपने हाथ में लिख लेना, पड़ोसी विद्यार्थी की कापी से नकल करना आदि तो छोटी बातें हैं। कुछ साहसी विद्यार्थी ऐसे भी होते हैं, जो किताबें छिपाकर नकल के लिए ले जाते हैं।

विचारणीय प्रश्न यही है कि नकल करके पास होने की जो मान्यता अधिकांश विद्यार्थी बना लेते हैं, क्या वह सही है ?

एक अध्यापक अथवा संरक्षक की हैसियत से नहीं, वरन् एक विद्यार्थी की हैसियत मे विचार करके और परीक्षा करके देखा जाय तो इस मान्यता को पौने सोलह आना निराधार पाया जायेगा।

अध्यापक को स्कूल में पढ़ाते-पढ़ाते अपनी कक्षा में विद्यार्थियों के बौद्धिक स्तर का ज्ञान हो जाना स्वाभाविक है। एक बार एक प्रधानाचार्य ने यह परीक्षण करना चाहा कि परीक्षा में नकल करने की पूरी छूट देकर देखूँ क्या परिणाम होता है ? बच्चों की बिना जानकारी से अध्यापकों को प्रयोग का उद्देश्य समझाकर यह नकली परीक्षा आरम्भ कराई गई। परीक्षा भवन में जब विद्यार्थी बैठे, कापियाँ बँटी, तो निरीक्षण की व्यवस्था ढीली कर दी गई। परीक्षक स्वयं भी एक स्थान पर बैठकर लिखने-पढ़ने का काम करने लगे। विद्यार्थी कुछ समय के बाद यह विश्वास कर बैठे कि 'पूर्ण स्वतन्त्रता मिल गई' मनमानी रूप से नकल करो। वैसा ही बहुतों ने किया भी, पर परिणाम वही रहा कि जो विद्यार्थी कमजोर थे, वे ही अनुत्तीर्ण रहे और कक्षा में अच्छे प्रतीत होने वाले ही अच्छे अंक प्राप्त कर सके।

नकल का मनोवैज्ञानिक प्रभाव—मनोवैज्ञानिकों ने परीक्षण करके यह सिद्ध कर दिया है कि जब व्यक्ति किसी बात विशेष पर सोचने लगता है, अपना ध्यान एक केन्द्र-बिन्दु पर केन्द्रित कर देने से चेतन और अचेतन मन में जितनी भी जानकारी उस सम्बन्ध की होती है, वह सब क्रमशः मस्तिष्क में आनी शुरू हो जाती है। योगी ध्यानावस्थित होकर जब परमात्मा में अपने को लीन कर देता है, तो परमात्मा की सारी दृश्य व अदृश्य शक्तियाँ उसके सामने नाचने लगती हैं। व्यापारी, नेता, व्यवसायी, कर्मचारी भी अपने विषय पर चिन्तन करके बहुत कुछ नई बातें जान लेते हैं। चिन्तन और मनन की इसीलिए बड़ी महिमा है।

विद्यार्थी भी जब एकाग्र होकर प्रश्न विशेष के बारे में सोचने लगता है, तब पहले चाहे वह उस विषय में कुछ न जानता हो, परन्तु चिन्तन करने से कामचलाऊ ज्ञान उसे हो जाता है।

नकल पर विश्वास रखने वाले लड़के चिन्तन के इस मनोवैज्ञानिक रहस्य को समझने में असमर्थ रहते हैं। वे तो अगल-बगल की कापियों में अपने मन को लुभाते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

हैं और अपनी आन्तरिक शक्तियों पर बल नहीं देते, परिणाम यह होता है कि पास-पड़ौस से तो कोई लाभ उठा नहीं पाते और अपनी शक्ति से भी वंचित रह जाते हैं। फलतः दुविधा में पड़कर फेल हो जाते हैं।

बाह्य शक्ति से आन्तरिक शक्ति अधिक होती है इसलिए विद्यार्थी को उसी पर अधिक भरोसा करना चाहिए। प्रश्न-पत्र पाते ही इधर-उधर से नकल करने के बजाय स्वयं सोच-विचार कर उत्तर लिखने की आदत डालें। इस अभ्यास को जारी रखने से थोड़े समय में ही अभूतपूर्व सफलता मिल सकती है।

नकल से हानियाँ—नकल करने से कितने प्रकार की हानियाँ होती हैं, इसे सभी भुक्तभोगी समझते होंगे, परन्तु उन्हें भी अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिए, जो अभी किसी प्रकार की क्षति नहीं उठा पाने से बचे हुए हैं।

नकल से होने वाली हानियों को निम्न शीर्षकों में बाँटा जा सकता है—(अ) नैतिक हानि, (ब) आर्थिक हानि, (स) सामाजिक हानि।

नकल एक प्रकार की चोरी है। दूसरों की धन-सम्पत्ति वस्तुएँ चुराने वाले समाज में 'चोर' नाम से पुकारे जाते हैं। पकड़ जाने पर पुलिस उनकी उच्छी मरम्मत करती है। कारागार में रस्सियाँ बँटने और चक्की पीसने की सजा ऊपर से भुगतनी पड़ती है। चोर का नैतिक स्तर गिर जाता है। बिरादरी, मित्र-मण्डली, सभा-सम्मेलन में ऐसे व्यक्ति साहस के साथ कोई बात कह नहीं सकते। उनकी ओर लोग उपेक्षा की दृष्टि रखते हैं। वे एक कोने में दुबके बैठे रहते, दस आदमियों के बीच में सबसे पीछे आँखें बचाकर खड़े होते, सामने ताक नहीं सकते, निगाहें नीची किए रहते हैं।

नकल करने वाले विद्यार्थी की भी यही दशा होती है। उसके नैतिक स्तर का पतन हो जाता है। अपने सहपाठियों के सामने वह आत्मविश्वास के साथ सिर ऊँचा करके बातें नहीं कर सकता। जिन अध्यापकों ने उसे नकल करते देखा या पकड़ा है, उन्हें देखकर उसे रास्ता काटकर निकल जाने में ही भलाई दीख पड़ती है। प्रधानाचार्य के विचार उस विद्यार्थी के बारे में बदल जाते हैं। उसे वे अच्छा 'चरित्र प्रमाण-पत्र' नहीं देते। भावी जीवन में विद्यालय के प्रधानाचार्य के 'चरित्र प्रमाण-पत्र' का बड़ा मूल्य होता है। इस दृष्टि से नकल करने वाला विद्यार्थी अपनी बड़ी हानि करता है। एक कहावत है कि 'पहाड़ों से गिरा हुआ मनुष्य बच सकता है, परन्तु निगाहों से गिरा हुआ व्यक्ति बच नहीं सकता।' बचपन से जिन विद्यार्थियों का नैतिक स्तर बिगड़ जाता है, वे समाज में अच्छे नागरिक नहीं बन पाते। एक पैंसिल की चोरी से उत्साहित होकर सुलताना बहुत बड़ा डाकू बना था, जिसने समाज को कितनी पीड़ा पहुँचाई, यह आप भली प्रकार जानते हैं।

नकल करने से होने वाली आर्थिक हानि की क्षति कभी पूरी नहीं हो सकती। नकल में पकड़ जाने पर विद्यार्थी निकाल दिया जाता है। उसका वर्ष भर का परिश्रम नष्ट हो जाता है। माता-पिता ने अपनी गाढ़ी कमाई से उसे पुस्तकें दीं, शुल्क चुकाते, स्वयं भूखे-नंगे रहकर उनकी सुख-सुविधा, विश्राम और सम्मान का ख्याल रखते हैं। नकल में पकड़े जाने पर विद्यार्थी क्षण भर में इस सारी मेहनत पर और धन पर पानी फेर देता है। इस प्रकार हुई क्षति का वह पैसा न तो कभी पूरा होता है न समय ही।

जहाँ नकल से नैतिक और आर्थिक क्षति होती है, वहाँ सामाजिक अपमान भी कम नहीं होता। नकल के अभ्यासी लड़के अपने बड़े-बूढ़ों की निगाहों से गिर जाते हैं। उनके अन्दर सामाजिकहीनता की भावना घर कर जाती है। वे स्वयं अपने को अन्यों से नीचा सोचने लगते हैं। ऐसा भी देखा गया है कि इस प्रकार के नकल के अभ्यासी लड़के अपने बड़े-बूढ़ों की निगाहों से गिर जाते हैं। उनके अन्दर सामाजिकहीनता की भावना घर कर जाती है। वे स्वयं अपने को अन्यों से नीचा सोचने लगते हैं। ऐसा भी देखा गया है कि इस प्रकार की नकल के अभ्यासी लड़के स्कूल-कॉलेजों में रचनात्मक सभा सोसायटी, डिबेटिंग क्लब आदि में कोई महत्त्वपूर्ण भाग लेने से असमर्थ रहते हैं।

उपरोक्त वर्णित तीनों प्रकार की हानियाँ अन्ततोगत्वा विद्यार्थी के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालती हैं। वह ज्यों-ज्यों बुरा सोचता है, समाज द्वारा निरादृत होता है, त्यों-त्यों उसे नाना प्रकार के रोग जकड़ लेते हैं।

बहुत विचार करने पर भी कोई ठोस लाभ नहीं दीखता, केवल इतना ही कहा जा सकता है कि नकल करने से कहीं हजार में एक विद्यार्थी कभी-कभी परीक्षा में पास होता है, परन्तु उसकी कमजोरी बनी रहती है, इसलिए आगे की कक्षा में पहुँचने पर वह फेल हो जाता है। प्राप्त लाभ पुनः हानि में बदल जाता है।

नकल करना एक प्रकार का धोखा है, प्रवंचना है, जो अपने को बर्बाद करने के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं करता।

६. दोहराना आवश्यक—कुछ बिरले ही ऐसे होते हैं कि जिनके बिना दोहराये हुए लेखों में कोई भूल न निकले। परीक्षा में तो ऐसी भूलें हो जाने की अधिकांश सम्भावना होती है, क्योंकि कम समय में अधिक प्रश्नों के उत्तर लिखने के कारण शीघ्रता बरतनी पड़ती है, परन्तु ये छोटी-छोटी अशुद्धियाँ जब कापी जाँचते समय परीक्षक की निगाहों से गुजरती हैं, तो इसका बड़ा बुरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। अपने तीन घण्टे के समय का विभाजन करते समय अन्त के १५ मिनट दोहराने के लिए रख छोड़ना चाहिए। परीक्षा बोर्ड

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की ओर से भी ऐसी व्यवस्था है कि समय समाप्त होने से १५ मिनट पूर्व एक घण्टा लग जाता है। उस समय तक विद्यार्थी को अपने सब उत्तर लिख चुके होने चाहिए।

रोकथाम भी और प्रतिरोध भी

किशोरावस्था तेरह-चौदह वर्ष से आरम्भ होती है, पर वह चलती है पच्चीस-छब्बीस वर्ष तक। बिना मूँछ वाले ही नहीं, मूँछ वाले तरुण भी किशोरों में ही गिने जाते हैं, कारण कि उनमें जोश तो असाधारण रहता है, पर होश की कमी पाई जाती है। होश का अर्थ है—दूरदर्शी विवेकशीलता। यह अनुभवजन्य होती है। अनेकों के साथ हुई अनेकों प्रकार की भली-बुरी घटनाएँ बताती हैं कि किसी क्रिया का क्या परिणाम होता है ? किस प्रवाह में बहने लगने पर कहाँ पहुँचा जाता है ? यह बहुज्ञता से सम्बन्धित है। इसे बाह्य क्षेत्र में घटित होने वाली घटनाओं के द्वारा प्रस्तुत हुए परिणामों को देखकर अधिक सरलतापूर्वक जाना जा सकता है, पर यह कोई लक्ष्मण रेखा नहीं है। कितने ही विचारशील ऐसे भी होते हैं, जो चिन्तन, मनन और कल्पना-शक्ति के आधार पर भी उचित-अनुचित का निष्कर्ष निकाल लेते हैं। उनका पूर्व संचित ज्ञान और सज्जनों के साथ विचार-विनिमय भी बहुत कुछ सिखा देता है। सत्साहित्य का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने पर भी मनीषियों के निर्धारणों-प्रतिपादनों से भी ऐसा बहुत कुछ सीखा जा सकता है, जो बड़ी आयु के विचारशील ही बहुधा प्राप्त कर पाते हैं।

सही मार्ग पर चलते हुए प्रगति के उच्च शिखर पर पहुँचना और उल्टी दिशा में चल पड़ने पर अनेकानेक संकटों का सामना करना ऐसा तथ्य है, जिसे जितनी जल्दी समझ लिया जाय, उतना ही उत्तम है। इस सन्दर्भ में जहाँ जितनी कमी पाई जाती है, वहाँ उतनी ही कच्ची-पक्की किशोरावस्था का अनुमान लगाया जा सकता है। यही वह अवधि है, जिसे किसानों के बीज बोने वाली अवधि कहते हैं। मौसम के कुछ ही दिन ऐसे होते हैं, जिनमें बीज बोने पर समुचित रीति से फसल उगती है। यदि यह समय चूक जाय, तो समझना चाहिए कि फसल की बहुत बड़ी सम्भावना तिरोहित हो गई। इस तथ्य को समझते हुए समझदार किसान बीज बोने की अवधि का विशेष रूप से ध्यान रखते हैं और उसे हाथ से नहीं जाने देते। किशोरावस्था को भी ठीक ऐसा ही अवसर माना जाना चाहिए। उसमें स्कूली शिक्षण ही नहीं साथ-साथ यह प्रयत्न भी चलना चाहिए कि सभ्यता, सुसंस्कारिता पनपे और नागरिकता-सामाजिकता की मर्यादाओं का स्वभाव में समुचित समावेश चल पड़े।

उठती आयु के किशोर प्रायः स्कूल से चलकर घर तक और घर से चलकर स्कूल तक ही आते-जाते हैं। खेल-कूद की आवश्यकता वे पास-पड़ौस में ही पूरी कर लेते हैं। अभिभावकों की नजर भी उन पर रहती है, पर आयु अठारह से ऊपर निकल जाने और पच्चीस के लगभग पहुँचने तक स्थिति में भारी अन्तर आ जाता है। पढ़ना है, तो कॉलेज जाना पड़ता है, जो घर से दूर होता है, जाने-आने में समय लगता है। सांस्कृतिक कार्यक्रम, स्काउटिंग, खेल-कूद आदि अन्यान्य प्रसंगों का भी समावेश होता है। इनमें भी समय लगता है। फिर पढ़ाई के सम्बन्ध में अन्य साथियों के घर पूछताछ करने की भी उपयोगिता समझी जाती है। ऐसे ही अनेक प्रसंगों को जोड़कर घर से बाहर रहने का वास्तविक या अवास्तविक कारण गिना देने पर अवसर रहता है। इसी बचे हुए समय में यदि नवयुवक चाहें, तो कुसंग में पड़ने के लिए अधिक समय निकाल सकते हैं। छोटे बच्चों का तो किसी दिशा में रुझान ही होता है, पर बड़ी आयु के किशोर तो उसे चरितार्थ भी कर सकते हैं। पढ़ाई के लिए, जीवनचर्या के लिए कुछ पैसा भी उनके पास रहता है। उसे वे चाहें, तो गलत कामों में खर्च भी करते रह सकते हैं। अभिभावकों से वस्तुस्थिति को छिपाये रहने में भी अपनी विकसित बुद्धि के सहारे आसानी से सफल हो सकते हैं। नशेबाजी इन्हीं दिनों कुसंग के कारण आरम्भ होती है। सिनेमा देखने का चस्का भी इसी खाली समय में लगता है। अश्लील हरकतों से लेकर आवारागर्दी तक के अनेक दुर्व्यसन पल्ले बँध जाते हैं। यदि किन्हीं को सुयोग मिला, तो वे शालीनता के वातावरण एवं समुदाय के साथ भी अपनी घनिष्टता बना लेते हैं। इन्हीं दिनों अपने चिन्तन को किसी भली-बुरी दिशा के साथ जोड़ा जाता है। जड़ जमने की यही अवधि है। बाद में तो व्यक्ति कमाने-धमाने के फेर में लग जाता है और जो स्वभाव आरम्भिक दिनों में बन गया है, उसी के अनुरूप आचरण करता रहता है।

चूँकि सज्जनता का वातावरण एवं अवसर कम है। सब ओर दुस्वभाव, कुप्रचलन एवं अनाचार का ही बोलबाला है। ऐसी दशा में बहुमत का दबाव और अनाचारों का आकर्षण युवकों को अधिक प्रभावित करता है। उनमें से अधिकांश उसी कुचक्र में फँस जाते हैं। मानवी मर्यादाओं का उल्लंघन करने की, उच्छृंखलता अपनाने की आदत उन्हें यहीं से पड़ जाती है। यह आरोपण आगे चलकर विष वृक्ष के रूप में परिवर्तित होता है।

उठती आयु के किशोरों की अपेक्षा बढ़ती और पकती आयु के युवक कुविचारों को अनाचार के रूप में क्रियान्वित करने में अधिक सफल होते देखे गये हैं। इन दिनों विशेष देखभाल की जरूरत है। संकटों से बचने का ठीक यही समय है। इसके लिए सतर्कता, जाँच-पड़ताल, रोकथाम की तो आवश्यकता है ही, साथ ही यह प्रयत्न भी होना चाहिए कि उन्हें सुसंगति भी मिले। समय का कार्यक्रम ऐसा बने, जिसमें उपयोगी कार्यों की व्यस्तता ही छाई रहे। अच्छी प्रकृति वाले सज्जनों के साथ ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

बैठना-उठना बन पड़े। अच्छा हो दोस्तों का चुनाव लड़कों के ऊपर न छोड़ा जाय, पर उनकी टोली बनाने में अध्यापक एवं अभिभावक भी रुचि लें, साथ ही उनके साथ वार्तालाप करते रहने का भी उपक्रम चलायें। देखा यह गया है कि आयु बढ़ने के साथ-साथ अभिभावकों और किशोरों के बीच अनावश्यक संकोचशीलता पनपने लगती है। इससे विचारों के आदान-प्रदान की, वस्तुस्थिति को समझने और समझाने की व्यवस्था में अड़चन खड़ी हो जाती है, फलतः सुधार, परिवर्तन की सम्भावनाएँ भी घट जाती हैं। अच्छा हो यह स्थिति कहीं भी न बने। जिस प्रकार छोटे बालकों और अभिभावकों के बीच प्यार-दुलार का, हँसने-हँसाने का उपक्रम चलता रहता है, उसी प्रकार उसमें थोड़ा सुधार करके आयु के अनुरूप स्तर का विचार-विनिमय चलता रहे और रोकथाम से लेकर आवश्यक सुझाव पूछने या देने का सिलसिला चलता रहे।

जिन्होंने पढ़ाई आरम्भ ही नहीं की या थोड़ा पढ़कर स्कूल से नाम कटा लिया, उनकी समस्या और भी अधिक जटिल है। वे पूरे मन से, पूरी शक्ति से, पूरे समय घर का काम तो करते नहीं। घर वाले भी उन पर वैसा दबाव नहीं देते। उपेक्षा की मनःस्थिति में किया काम भी अस्त-व्यस्त ही रहता है। ऐसी दशा में परिवार वाले खीजते रहते हैं और रुष्ट होकर असहयोग जैसी स्थिति बना लेते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि युवक आवारागर्दी में जहाँ-तहाँ घूमने लगते हैं। पढ़ने वाले छात्रों की अपेक्षा इन अधकचरे अस्त-व्यस्त युवकों की समस्या और भी अधिक जटिल है। आकांक्षा और अनगढ़ स्थिति उन्हें एक प्रकार से और भी अधिक जटिल बना देती है। उन्हें समझाने की दिशा में और भी कठिनाई होती है, जबकि परिवार वाले स्वयं अशिक्षित और समस्याओं से निपटने में अपने पिछड़ेपन के कारण अक्षम होते हैं।

युवकों को एक उपयोगी मोड़ देने की योजना यह है कि उनके लिए सर्वत्र व्यायामशालाएँ स्थापित की जाएँ, उनमें सम्मिलित होने के लिए हर उठती उम्र वाले को सहमत किया जाय। स्वास्थ्य-रक्षा में, व्यायाम के योगदान से विस्तारपूर्वक अवगत कराया जाय। यह दिलचस्प विषय ऐसा है, जिससे यदि नई पीढ़ी को जोड़ा जा सके, तो वे अपने शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य को भी सुधार सकते हैं। अपना भविष्य बिगड़ने से बचा सकते हैं और प्रगति के मार्ग पर चल पड़ने का एक नया आधार प्राप्त कर सकते हैं।

पिछले दिनों व्यायामशालाएँ मात्र कसरत तक सीमित थीं। उनमें दण्ड, बैठक, कुश्ती आदि का अभ्यास कराया और पहलवान बनाया जाता था, पर अब इस समग्रता के युग में उनके साथ स्वास्थ्य संरक्षण और सम्वर्धन के अनेकानेक पक्ष जुड़ गये हैं। इस आधार पर दुर्बलता और रुग्णता से भी छुटकारा पाया जा सकता है तथा सामान्य स्वास्थ्य, असामान्य बलिष्ठता में विकसित किया जा सकता है। पाठशालाओं की तरह व्यायामशालाओं का भी महत्त्व समझा जाना चाहिए। उन्हें हर जगह स्थापित ही नहीं, सक्रिय एवं सक्षम भी बनाया जाना चाहिए। उनमें चरित्रनिष्ठा एवं अनौचित्य के अवरोध का प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए।

लाठी चलाने की शिक्षा को व्यायामशालाओं का एक महत्त्वपूर्ण अंग निर्धारित किया जाना चाहिए। इसमें शारीरिक कसरत भी हो ही जाती है। बड़ी बात यह है कि मनोबल भी बढ़ता है। डरपोकपन छूटता है और अवांछनीयता के विरुद्ध प्रतिरोध करने का साहस भी उभरता है।

समर्थता उभरते देखकर अवांछनीय तत्त्वों की हिम्मत टूटती है। आक्रमणकारियों के इरादे बदलते हैं। जिन्होंने आक्रमण नीति अपनाई हुई है, उन्हें भी अपने पैर पीछे हटाने में ही भलाई दीखती है। बिना चोट पहुँचाये वह प्रयोजन सिद्ध होता है, जो दाँत खट्टे कर देने की स्थिति में ही बन पड़ता है। शक्ति का प्रदर्शन भी शक्ति के प्रयोग को रोकता है। फटा बाँस फटकारते रहने पर खेत उजाड़ने वाले जंगली जानवर भाग खड़े होते हैं। किसान खेतों में 'बिजुका' बनाकर खड़ा कर देते हैं, उसे देखकर चिड़ियाँ नहीं उतरतीं और लोमड़ी, खरगोश जैसे छोटे जानवर भी खेत में प्रवेश करने से कतराते हैं। व्यायामशालाओं में कसरत करने वालों और लाठी चलाना सीखने वालों को देखकर अनाचारियों की हिम्मत पस्त होती है। साहस का दीखना भी बल प्रयोग जितना काम कर जाता है। नवयुवकों की व्यायामशालाएँ और समर्थ नागरिकों का सेवादल जैसा संगठन बनाना भी गुण्डा तत्त्वों की रोकथाम का एक कारगर एवं सस्ता उपाय है। प्रसिद्ध है कि चोर के पैर नहीं होते। वह घर वालों के जाग जाने और रोने-चिल्लाने की आवाज भर सुनकर भाग खड़ा होता है। यही बात उन अनाचारियों के सम्बन्ध में भी लागू होती है, जो कमजोर, असंगठित वर्ग को ही आमतौर से अपना शिकार बनाते हैं। जहाँ उन्हें विश्वास होता है कि प्रतिरोध की आशंका नहीं है, वहीं वे शिकंजा कसने का प्रयत्न करते हैं। जब उन्हें प्रतीत होता है कि यहाँ तो दाँत खट्टे कर देने वाली प्रतिरोधक शक्ति मौजूद है, वहाँ से वे सहज ही किनारा काट लेते हैं और अपनी जान बचाते हैं। इस तथ्य से सर्वसाधारण को, विशेषतया उत्पीड़नग्रस्तों को बचाया जाना चाहिए। यदि इतना भर जनसाधारण को सिखा दिया जाय, तो मनोबल बढ़ने भर से आधी मात्रा में गुण्डागर्दी का समापन हो सकता है।

साँप जब तक अपनी आत्मरक्षा के लिए आवश्यक नहीं समझता, तब तक काटता नहीं। खतरों को अपने से दूर रखने के लिए वह गरदन उठाकर फुसकारता ही रहता है। इस फुसकार के पीछे यह तथ्य भी सम्मिलित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहता है कि वह जरूरत पड़ने पर काट भी सकता है। असामाजिक तत्त्वों से सचेत रहने के लिए कभी-कभी हमें ऐसी भूमिका भी निभानी पड़ सकती है जिसमें हमें नकली फुसकार का सहारा भी लेना पड़े। शठे शाठ्यम की नीति अपनी जगह सही है। वहाँ यह भी ठीक है कि अनीति के प्रति कड़ा रुख समूह द्वारा अपनाया जाय। गुण्डा तत्त्व उच्छृंखल भी होता है, जब-जब भी अनीति किसी रूप में होती दिखे तो उसे अनदेखा न कर सभी सामूहिक रूप से प्रतिरोध को आगे आयें तो फिर उसे दुम दबाकर भागना ही पड़ता है। इसीलिए ऐसी नीति अपनाई जानी आवश्यक है। विशेषतः किशोर युवा वर्ग से तो सभी को यह अपेक्षा आज की प्रतिकूल परिस्थितियों में है।

हमारा तरुण वर्ग और उसकी कुण्ठाएँ

आज समाज के सामने युवक वर्ग की समस्या बड़ा भयानक रूप धारण करती जा रही है। युवकों की बढ़ती हुई उच्छृंखलता, उद्दण्डता तथा अनुशासनहीनता ने हर विवेकशील व्यक्ति की चिन्ता बढ़ा दी है। समाज की यह शक्ति यदि इसी प्रकार अनियन्त्रित होती चली गई और इसकी कोई रोकथाम की योजना जल्दी ही कार्यान्वित न की गई तो कौन-कौन-से दुष्परिणाम समाज एवं राष्ट्र के सम्मुख आ सकते हैं, इसके विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। युवक वर्ग की इस अनुपयुक्तता के कारण खोजने और उनको दूर करने के उपायों पर विचार करना ही होगा।

युवकों के उच्छृंखल तथा अनुशासनहीन होते जाने के कारणों को खोजने पर एक कारण तो घर का वातावरण मालूम होता है। आज समाज में पारिवारिक जीवन का कोई उद्देश्य नहीं रह गया है। लोग खाने-पीने, रहने-सहने से अधिक इसका कोई अर्थ ही नहीं समझते। प्रमुख कुछ कमा लाया। माँ ने भोजन बना दिया, सबने खा-पी लिया और अपने-अपने रास्ते लग लिये। पढ़ने योग्य बच्चों को स्कूल भेज दिया गया, आवश्यक कपड़े बनवा दिये गये और अन्य सामग्री ख़रीद दी गई—बस पारिवारिक जीवन के सारे कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व समाप्त हो गये। सोचना चाहिए कि भोजन, निद्रा और आराम तो पशुओं में चलता रहता है और यदि उनमें चेतना और प्रथा होती तो शायद वे तन भी ढकते और शिक्षा का भी प्रबन्ध करते, किन्तु यह उनका दुर्भाग्य है कि शील तथा शिक्षा की चेतना उन्हें परमात्मा ने नहीं दी, न पारिवारिक अथवा सामाजिक भावना ही दी। यह विशेषता केवल मनुष्यों को मिली है। इसलिए कि वे व्यवस्थापूर्वक रहें, उन्हें भौतिक तथा आध्यात्मिक विकास की सुविधा हो सके, उनके जीवन में अनुरूप सुख-शान्ति का समावेश हो सके, किन्तु क्या वह इस विशेषता को चरितार्थ कर रहा है ? और महानताएँ तो दूर वह आज पशुओं जैसा भी तो सुख-शान्तिपूर्वक नहीं रह पा रहा है।

इसका मुख्य कारण यही समझ पड़ता है कि लोग परिवार तो बसाते चले जाते हैं, बच्चों की परम्परा भी लगाते हैं, किन्तु उनके मानवोचित निर्माण की ओर ध्यान नहीं देते। वे प्रकृत रूप से अनियमित गति से चलने वाले चक्र पर चढ़े यों ही चक्कर लगाते चले जाते हैं। कुछ दिन खा-पहनकर उल्टा-सीधा जी लिये और उल्टी-सीधी जनसंख्या बढ़ाकर संसार से चलते बने। न तो यह पारिवारिक जीवन है और न मानवीय जीवन। मानवीय जीवन तो तब हो जब एक सुव्यवस्थित, सुचारु तथा सुयोग्य जिन्दगी को जिया जाये। परिवार तथा समाज को कुछ अधिक आगे बढ़ाया जाये और अपने पीछे ऐसे ढले हुए प्रतिनिधि छोड़े जायें जो समाज के लिए वरदानतुल्य सिद्ध हों। जिनका जीवन अपने में तो अनुशासित तथा आनन्दमय हो ही, दूसरों के लिए उसी दिशा में सहायक तथा सहयोगी बने। लेकिन इसके विपरीत होता यह है कि अपने शत्रु तो आप बने ही हैं, दूसरों के लिए अभिशाप बने हुए हैं।

आज समाज का तरुण वर्ग, जो देश की शक्ति, राष्ट्र का गौरव और परिवार के धुरीधारक होते हैं, उसके लिए कष्ट तथा चिन्ता के विषय बन गये हैं। जो देश, जाति के अभिमान और उसकी गौरव-पताका को ऊँचा उठाने वाले होने चाहिए, देश की अवनति के कारण बन रहे हैं। यह शोक की ही नहीं लज्जा की बात भी है।

इस अवांछनीयता के दोषी तरुण हैं तो, किन्तु इससे अधिक दोषी वे अभिभावक हैं, जो उनको अस्तित्व में तो लाते हैं, किन्तु उनका सावधानीपूर्वक न तो विकास करते हैं और न निर्माण। ऐसे असावधान अभिभावकों को कोई अधिकार नहीं कि वे निरर्थक की जनसंख्या बढ़ाकर समाज के कष्टों में निरन्तरता की वृद्धि करें। बच्चे राष्ट्र के भावी नागरिक होते हैं, उन पर देश का भविष्य तथा सभ्यता, संस्कृति का गौरव निर्भर रहता है। यदि उनको उसके अनुरूप विकसित नहीं किया जाता तो बच्चे पैदा करना एक राष्ट्रीय अपराध है और अभिभावक उसके लिए लांछन के पात्र हैं।

भारतीय संस्कृति के अनुसार हमारे युवकों को स्वस्थ, सुन्दर, सुशील, अनुशासित, विनम्र, विद्वान तथा चरित्रवान होना चाहिए। उन्हें अपने को मानवता का अलंकार प्रमाणित करना चाहिए, किन्तु ऐसे कितने युवक देखने में आते हैं, जो तन-मन से स्वस्थ सरल तथा सुन्दर हों। जिनकी छोटी-छोटी-सी गतिविधि से देश का गौरव और राष्ट्र का स्वाभिमान झलकने के साथ-साथ भारतीय संस्कृति का गौरव परिलक्षित होता हो। शायद ही कतिपय युवक ऐसे देखने में आ जायें जिनके मुखमण्डल संयम एवं आचरण के ओज-तेज से दीप्तमान दीखते हों। जिनके हृदयों में देश, जाति के प्रति उत्तरदायित्व तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसके मानापमान का भाव विद्यमान रहता हो और उसके जीवन की हर गतिविधि उससे नियन्त्रित एवं परिचालित होती हो, ऐसे युवक आज कहीं तो देखने में नहीं आते। ऐसे तेजस्वी तरुण आज कहाँ हैं, जिन्हें यह स्वस्थ स्पर्धा प्रेरणा देती हो कि यदि रूस, अमेरिका, इंग्लैण्ड, चन्द्रलोक पर अभियान कर सकते हैं, तो हमारा देश क्यों नहीं कर सकता ? यदि किसी देश के तरुण अन्तरिक्ष को भेदकर बाह्य आकाश में पहुँच सकते हैं तो हम क्यों नहीं ? ऐसे कितने हैं जो भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान के जिज्ञासु बने जीवन की शक्तियाँ नियोजित करने की सोच रहे हैं। आज भारत की देव सन्तानें और त्रिकालदर्शी ऋषि-मुनियों के वंशधर मालवीय सन्तानों से जो उन्नति एवं विकास में पिछड़ रहे हैं उसका कुछ मूलभूत कारण है।

जहाँ कभी विवाह करने से पूर्व पूर्ण तैयारी कर ली जाती थी और उपरान्त सन्तान के गर्भस्थ होते ही उसके विकास तथा निर्माण की योजना चल पड़ती थी और कम से कम पच्चीस वर्ष तक जब तक कि वह पूर्ण एवं परिपूर्ण न हो जाता था जिम्मेदारी के साथ चलती रहती थी। वहाँ आज पशुओं की तरह काम-सन्तानें पैदा करने के सिवाय किसी को कुछ याद ही नहीं रहा। ऐसी सन्तानों से देश का गौरव और समाज की शक्ति बनने की आशा करना अपना उपहास कराने से ज्यादा कुछ नहीं। जहाँ प्राचीनतम राष्ट्र की यह दशा है, वहाँ हाल ही के सभ्य हुए देश विवाह तब ही करते हैं, जब उस योग्य पूरी योग्यता प्राप्त कर लेते हैं। तन-मन-धन तीनों से परिपूर्णतया परिपुष्ट होने के बाद ही वह उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेते हैं। उन्हें विवाह करने और उसका सुख लूटने की कोई जल्दी नहीं रहती, क्योंकि विवाह उनके लिए भोग का अवसर नहीं उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ एक उत्तरदायित्व होता है। उनके सन्तान पैदा नहीं हो जाती। सन्तान उनकी आत्मइच्छा तथा आवश्यकता पर निर्भर सावधान सृजन होता है। उनकी एक रचना होती है जो आगे चलकर देश-जाति की शोभा तथा गौरव बना करती है। वे संतान को पूरी तैयारी के साथ गर्भ में लाते और भूमि पर आते ही उसे शिक्षित करने लगते। उन्हें राष्ट्र-देश तथा समाज की शिक्षा देते उन्हें देश-देशान्तर की घटनाओं से अवगत कराते और नक्शे पर अँगुली रखकर और ग्लोब घुमाकर भूमि का ज्ञान कराते। वैज्ञानिक आविष्कारों की कहानियाँ सुनाते, चित्र दिखाते और उसके लिए उत्सुक बनाते। उन्हें समुद्रों, मल्लाहों तथा अन्तरिक्ष यात्रियों के विवरण बतलाते और उनका प्रेरणाप्रद यश सुनाते। उनकी शिक्षा में खुद पूरी तरह से रुचि लेते, प्रगति देखते और घर का वातावरण बिल्कुल वैसा ही रखते जैसा कि नागरिक वे समाज को देना चाहते। जब वहाँ का कोई प्रबुद्ध नागरिक सन्तान पैदा करता है, तो उसका जीवन लक्ष्य उसका समुचित निर्माण करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता। उसकी सारी शक्ति, सारे साधन तथा सारा समय उसके निर्माण में ही लगता, क्योंकि एक सुयोग्य नागरिक दे सकना, वे देश राष्ट्र की सबसे बड़ी सेवा समझते हैं। साथ ही यदि अपनी स्थिति सन्तान, निर्माण के योग्य नहीं समझते, तब या तो विवाह ही नहीं करते अथवा दम्पत्ति निःसन्तान रहकर स्वयं ही अपने आप राष्ट्र अथवा समाज की सेवा करते और सन्तान के स्थान पर कोई आविष्कार, अन्वेषण अथवा कला, विज्ञान, साहित्य, विचार तकनीकी के क्षेत्र की कोई अमर रचना प्रदान करते। वे सन्तान का न होना दुर्भाग्य नहीं मानते, दुर्भाग्य मानते हैं उसका अयोग्य होना। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पाश्चात्य, भारत और भारत, न जाने क्या हो गया है ? प्राचीनतमता का नवीनता से इतना पिछड़ जाना खेद का ही नहीं लज्जा का विषय है। अभिभावक सोचें-समझें और देश व समाज के प्रति उनका जो कर्त्तव्य है, वह सन्तान निर्माण के माध्यम से पूरा करें अथवा निरर्थक एवं निकम्मी जनसंख्या बढ़ाने का पाप बन्द कर दें। इसी में उनका तथा समाज का हित है।

भारतीय तरुणों की वर्तमान अस्त-व्यस्तता में प्रमुख भूल अभिभावकों की मानकर भी यह नहीं माना जा सकता कि परिवार के बाहर समाजीय वातावरण का अथवा युवकों का अपना कोई दोष नहीं है। यह दोनों भी दोषी हैं। जैसे सबसे पहले यह ले लीजिए कि समाज में अधिकतर लोग अब भी उन सब बातों से प्रभावित होते हैं जिनसे अँग्रेजों की गुलामी के समय होते थे। जो कोट, पैण्ट पहनता है, अँग्रेजी की टाँग तोड़ता है, वह अधिक सभ्य तथा शिक्षित माना जाता है। जो ऐसा नहीं करता अथवा नहीं कर पाता वह पुराना, दकियानूसी और अर्धसभ्य समझा जाता है। रेलों, बसों, बाजारों किन्हीं भी सार्वजनिक स्थानों में यह विषमता स्पष्ट दिखाई देती है। कोट-पैण्ट वाले युवकों का रौब, पुलिस तथा अधिकारी वर्ग भी मानता है, जबकि सीधी-सादी पोशाक और अपनी मातृभाषा बोलने वालों को चपरासी तक नहीं पूछता। जब ऐसा है तो समाज में रौब डालने के लिए क्यों नहीं कोई तरुण विदेशी वेशभूषा में रहना पसन्द करेगा और क्यों नहीं अँग्रेजी बोलने का प्रयत्न करेगा। जैसी वेशभूषा और भाषा वैसी चित्त-वृत्तियाँ निदान उनमें भारतीय संस्कृति के प्रति विरक्ति होती जाती है। साथ ही पूरे अँग्रेज न हो सकने से उनका यह अवमिश्रित व्यक्तित्व अवांछित गतिविधियों की अभिव्यक्ति करता है।

सिनेमा ले लीजिए। इसने तो भारतीय तरुणों को भीतर-बाहर दोनों प्रकार से बर्बाद कर दिया है। फैशन ही नहीं भोंड़े फैशन इसी की देन है, बाजारू रोमांस और कॉलेजी विवाह इसी की कृपा है। माता-पिता के प्रति अवज्ञा, प्रेम के नाम पर अपराध यह सिखा रहा है। शील, संकोच और नैतिक मर्यादाओं का हनन यह सिखा रहा है और भारतीयता को वैदिकता तथा प्राचीनता को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असुशील नवीनता में बदलने का पाप यह कर रहा है। राह चलते प्रेम करना, लड़कियों को देखते ही अभिनय भंगिमाएँ दिखलाना इसकी दी हुई शिक्षा है। भारतीय दृष्टि से अनैतिकता तथा आचरणहीनता का जितना विष आज भारतीय तरुणों में दिखलाई दे रहा है, वह सब निरुद्देश्य, निरर्थक तथा निकम्मी फिल्मों की देन है। विचार स्वातन्त्र्य और नई रोशनी के नाम पर गुरुजनों के साथ अनावश्यक मुँहजोरी करना तो सिखाया, किन्तु मातृ-पितृ भक्ति, परिश्रम पुरुषार्थ, राष्ट्र-निर्माण तथा चरित्र-निर्माण के नाम पर इसकी सारी कला को काठ मारे रहता है। आज के भारतीय फिल्म पचास प्रतिशत से अधिक भारतीय युवकों को बिगाड़ने की अपराधी हैं।

शिक्षा-पद्धति भी इस माने में कम दोषी नहीं है। आज किण्डर गार्डन, बाल मन्दिर और न जाने कितने प्रकार के प्रयोग तो शिक्षा सुधार में किये जाते हैं, किन्तु जानी-मानी और प्रारम्भिक गुरुकुल पद्धति से शिक्षाशास्त्रियों को न जाने क्यों विरक्ति है ? पहले जैसे वन और अरण्यों में भले ही वे न चलाये जायें, आज इसकी न तो आवश्यकता है और न वे सम्भव ही हैं। यही विद्यालय भवन उस प्रकार की शिक्षा तथा दीक्षा की प्रधानता से प्राचीन गुरुकुलों का उद्देश्य पूरा कर सकते हैं। महत्त्व स्थान तथा भवन का नहीं है महत्त्व इस बात का है कि छात्रों को क्या, कैसे और किस उद्देश्य से पढ़ाया जाता है ? आज की शिक्षा-पद्धति, थोड़ा विषय ज्ञान देने के अतिरिक्त क्या कुछ भी चरित्र-निर्माण की शिक्षा देती है उत्तर होगा नहीं। जब नहीं है तो फिर युवकों के बिगड़ने पर रोष, क्षोभ ही बेकार है।

युवकों को परिश्रम, पुरुषार्थ तथा खेती जैसे परिश्रम पूर्ण कार्यों की न तो महत्ता बताई जाती है और न आवश्यकता। उन्हें तो आराम की जिन्दगी बिताने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है, यह सामाजिक तथा व्यक्तिगत त्रुटियाँ आज के भारतीय युवकों को पथ-भ्रान्त किये हुए हैं जल्दी से जल्दी जितनी त्रुटियाँ दूर होती जायेंगी अपना युवक वर्ग भी उतना सँभलता और बदलता जायेगा।

युवकों को सत्संस्कारों से भरी सहायता दी जाये

२० से २५ वर्ष की युवावस्था की आयु में अभिभावकों के सहयोग का स्वरूप बाल्यावस्था और किशोरावस्था से बिल्कुल भिन्न होता है तो भी युवकों के स्वावलम्बी एवं गृहस्थ बनने तक अभिभावकों का उनके प्रति सहयोग, मार्ग-दर्शन का कर्त्तव्य अनिवार्य ही बना रहता है। बाद में अभिभावकों से सहयोग सुझाव लेना, न लेना समर्थ युवक पर निर्भर करता है। वयस्क हो चले पुत्रों के प्रति पिता की भूमिका तत्त्व-चिंतक, पथ-प्रदर्शक एवं मित्र की ही हो सकती है। युवकों में अहं भावना का अधिक विकास हो जाता है। वे अपने सम्मान की अपेक्षा करते हैं। अतः इस आयु में उन पर अनुशासन पहले से कम होना चाहिए। उन्हें ऐसा लगे कि उनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व का भी सम्मान किया जाता है। उनसे 'तू' कहकर नहीं, तुम कहकर बोलें। आदेशपरक वाक्य बहुत कम बोलें। जो कहना हो सुझावपरक ढंग से कहें, जैसे—'मेरी राय में अमुक काम अमुक ढंग से करना अधिक अच्छा एवं उपयोगी होता है।' 'यह करने से यह लाभ होता है।' 'वैसा करने से हानि होती है।' 'तुम ऐसा कर सको, तो अधिक अच्छा रहेगा।' 'यह करके देखो। मेरे अनुसार इससे यह लाभ मिलता है।' आदि। ऐसे सुझावपरक संवाद में शब्द तो अधिक बोलने पड़ते हैं, किन्तु उसका प्रभाव समुचित होता है।

अहं भावना का युवकों में विकास समय की माँग है। उसे समझते हुए व्यवहार में तालमेल न बैठाया गया, तो अवज्ञा, मुँहजोरी, अवहेलना का सामना करना पड़ सकता है।

इस आयु में रहन-सहन की कुछ स्वतन्त्रता देनी चाहिए। उसमें कठोर आग्रह नहीं रखा जाय। पिता धोती-कुर्ता पहनता है, तो बेटे से भी वैसी ही पोशाक का आग्रह न करे। वह पाजामा, फुलपेंट, शर्ट, बुशशर्ट पहन रहा है, इसमें आपत्तिजनक कुछ भी नहीं। पिता पूजा-पाठ में समय लगाता है, लड़का उस ओर एक क्षण भी ध्यान नहीं देता, तो भी ऐसी बातों को लेकर कलह नहीं किया जाना चाहिए। सिर्फ सुझावपरक ढंग से ही कुछ कहना चाहिए। उसे नास्तिक या इसी तरह के अन्य कठोर शब्द तो कभी भी न कहें, क्योंकि इसका परिणाम उल्टा ही होगा। केश-विन्यास, वेशभूषा आदि में विचार स्वातन्त्र्य एवं आचरण-स्वातन्त्र्य दिया जाय। पर इतना नहीं कि भोंड़े, फूहड़, हेय फैशन तक स्थिति जा पहुँचे। जब स्वतन्त्रता फूहड़पन तक पहुँचने लगे, तो समझाएँ कि यह फैशन, इसी तरह के दोस्त भले सराहें, पर सामान्य धारणा इनके प्रति अच्छी नहीं। इससे तुम्हारी बदनामी ही होगी। लोग आवारा, बदचलन समझेंगे या बाप का माल उड़ाने-फूँकने वाला कहेंगे।

सिगरेटबाजी, नशेबाजी जैसे दुर्व्यसनों की प्रवृत्ति देखने पर तो स्पष्ट रूप से टोकना-रोकना चाहिए। कड़ा रुख अपनाना चाहिए। विचार-स्वातन्त्र्य वस्त्र-वेश तक ही मर्यादित रूप में दिया जाये।

लड़का बिगड़ रहा है, विवाह-शादी के बाद जिम्मेदारी समझकर सँभल जायेगा—ऐसा सोचकर ब्याह-शादी की हड़बड़ी नहीं की जानी चाहिए। जब तक वह स्वावलम्बी न हो जाये, विवाह करना हर प्रकार से अनुचित एवं हानिकर है। इससे उसका दिमाग ही खराब होगा और भविष्य चौपट हो जायेगा।

युवावस्था में प्रवेश करते ही लड़के के साथ व्यवहार एवं वर्तालाप मे जहाँ इस बात का ध्यान रखा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाय कि उसके स्वाभिमान एवं अहं-भावना को अनुचित ठेस न पहुँचाई जाये, वहीं उन पर यह प्रभाव भी डाला जाये कि उन्हें परिवार एवं समाज का ऋण चुकाना है। वे यह न समझें कि पैतृक सम्पत्ति तो उनके ही 'बाप का माल' है, जिसे मुफ्त में उड़ाया जा सकता है। पैतृक सम्पत्ति पूरे परिवार के लिए है उस पर ऐकान्तिक हक किसी का नहीं। वह तो पूरे परिवार की व्यवस्था को संचालित, गतिशील रखने वाली पूँजी है। उससे जो अंश अपने लिये खर्च किया जाये, वह ब्याज सहित लौटाना कर्त्तव्य है।

महर्षि कर्वे ने जो व्यवहार अपने बेटों के साथ किया, वह एक सुयोग्य पिता का वयस्क पुत्र के साथ न्यायसंगत व्यवहार है। उन्होंने अपने बेटों के वयस्क हो जाने पर उन्हें उच्चस्तरीय शिक्षा के लिए आवश्यक आर्थिक सहायता तो निस्संकोच दी, किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया कि यह रकम तुम लोगों के लिए मुफ्त की नहीं। इसे उधार मानकर लो और समर्थ होने पर लौटाओ। उन पुत्रों ने ऐसा ही किया। वह धन महर्षि कर्वे ने समाज के उत्कर्ष के प्रयोजनों में लगाया। ऐसी ही शिक्षा प्रत्येक वयस्क पुत्र को दी जाय तो वे स्वावलम्बी भी बनेंगे, उदार भी।

परिवार की सम्मिलित सम्पत्ति के उपयोग का आधार यह बनना चाहिए कि वह पूरे परिवार के समान विकास के लिए सहायक पूँजी है। जिस प्रकार सामाजिक समता के लिए पिछड़ों को विशेष अवसर देकर उन्हें आगे बढ़ने में मदद देना आवश्यक है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यह माँग की जा रही है कि विकसित, सम्पन्न देश पिछड़े एवं विकास हेतु प्रयासरत देशों को अधिकाधिक मदद दें और उसे एहसान नहीं, कर्त्तव्य समझें। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना इसी उद्देश्य से की गई है। उसी प्रकार पारिवारिक सम्पत्ति का लाभ उन्हें मिले, जो पिछड़े हैं, अभी समर्थ नहीं हुए हैं, जिन्हें मदद चाहिए। जो पहले से ही आगे बढ़े हुए हैं, वे ही पारिवारिक धन का जैसा चाहें, वैसा उपयोग करें, यह तो न्यायपूर्ण व्यवस्था न होगी। उसके समान बँटवारे की बात तो तभी उचित ठहराई जा सकती है, जब किसी परिवार में माता-पिता हों और जितनी भी सन्तानें हों, सब एक-सी स्थिति में हों, वय, क्षमता एवं आवश्यकता की दृष्टि से। यह स्थिति मात्र काल्पनिक ही हो सकती है। कभी भी कहीं भी ऐसा कोई परिवार नहीं हो सकता, जहाँ परिवार के सभी सदस्यों का स्तर एक-सा हो, आवश्यकता एक-सी हो। ऐसी स्थिति में पारिवारिक सम्पत्ति पर सबका एक-सा हक कैसे माना जा सकता है ? जिसकी भी परिवार में विशेष स्थिति है, जो समर्थ-सक्षम है, पढ़-लिखकर दक्षता-कौशल सीख चुका है और अब उसके द्वारा कमाई कर रहा है, वह पारिवारिक सम्पत्ति के अपने अंश के उपयोग से ही इस स्थिति में पहुँचा है। इतना ही नहीं, अपितु ऐसा भी होता है कि दूसरों का हिस्सा उसकी समर्थता बनने में लग चुका होता है। क्या इसके बाद भी परिवार के धन में उस समर्थ व्यक्ति का ही हिस्सा बाकी रहा ? ऐसी बराबरी को क्या सामाजिक एवं प्राकृतिक न्याय-व्यवस्था के अनुरूप माना जायेगा ? स्पष्ट है कि ऐसे समर्थ और आगे बढ़े लोगों को अपने पर हुए व्यय का ऋण चुकाना चाहिए, प्रतिदान देना चाहिए।

अभी तो स्थिति बिल्कुल उल्टी है। घर के कमाऊ लोग परिवार के धन पर अपना एकछत्र अधिकार मानते हैं। उसका अपनी विलासिता एवं फिजूलखर्ची के लिए उपयोग करने में हिचकते नहीं। इसी प्रकार पढ़े-लिखे वयस्क युवक पारिवारिक धन को अपने जेब खर्च के लिए ही एकत्र पूँजी मान बैठते हैं। यह सारा क्रम पूर्णतः अनुचित है।

परिवार की पूँजी से बच्चों-किशोरों, वृद्धों, असहायों, अपंगों तथा पिछड़ी स्थिति वालों को ही सहायता दी जानी चाहिए। छात्रवृत्तियों तथा अनुदानों जैसा उपयोग ही इस धन का किया जाना चाहिए। प्रत्येक को यह ध्यान रहे कि उसे समर्थ होते ही परिवार का ऋण चुकाना है। पारिवारिक जिम्मेदारी की भावना के बिना पारिवारिक हक की भावना एकांगी और अनुचित है। वह अधिक दिनों टिक भी नहीं सकती। इसलिए पारिवारिक उत्तरदायित्व की भावना प्रत्येक वयस्क सदस्य में बद्धमूल की जानी चाहिए।

कानूनी स्थिति अभी भिन्न है, किन्तु पारिवारिक न्याय यही है कि जो परिवार में पल-बढ़कर अधिक उपार्जन की सामर्थ्य अर्जित कर चुका है, उसे पारिवारिक सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं। उसमें अभिवृद्धि करना ही उसका कर्त्तव्य है। उसमें से अभी और हिस्से की माँग करना अनधिकार चेष्टा है। भले ही कानून से इन दिनों उसे वैसा अधिकार प्राप्त है। पैतृक धन पर न्यायोचित हक तो उनका है, जो अविकसित, पिछड़े असमर्थ हैं। यदि किसी परिवार की कोई लड़की ससुराल में विपन्न स्थिति में है और उसके बेटे-बेटियों का पालन-पोषण कठिन हो रहा है तो परिवार की सम्पत्ति से उसे सहायता दी जानी अधिक उचित है, बजाय उसके कमाऊ भाई के, क्योंकि इन दिनों तो लड़कियों को स्त्रीधन भी नहीं दिया जाता। ऐसी स्थिति में अपनी असहाय अवस्था में उन्हें उसी परिवार का सहारा न मिलना जिसकी वे जन्मतः सदस्य हैं, अनुचित है। संकटकाल में काम आ सकने के लिए ही तो पहले स्त्री-धन दिया जाता था। जिस पर सिर्फ उस महिला का ही अधिकार होता था। यही बात किशोरों, बच्चों एवं अन्य असमर्थ सदस्यों के लिए लागू होती है। वयस्क बेटे को यह बात भलीभाँति समझा दी जाय कि पारिवारिक न्याय यह है तथा परिवार के प्रति तुम्हारे कर्त्तव्य ये हैं। इन कर्त्तव्यों को निबाहने और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिदान के लिए तत्पर होने पर ही तुम आगे सहायता के अधिकारी हो।

विवाह-योग्य हो गये बेटे को यह भी समझाया जाय कि अपने भावी जीवन के लिए उसकी दिशा एवं स्वरूप का भली-भाँति विचार करने के साथ ही जीवन-साथी की भूमिका का भी समुचित विचार कर लेना चाहिए। सिर्फ चेहरा और शक्ल-सूरत देखकर पसन्द करना तो माँसलता की पसन्दगी मात्र है। आधुनिकता के नाम पर माँसलता को चुनाव का आधार मानने के परिणाम भी समझ लिये जायें। इस भ्रम में न रहा जाये कि पाश्चात्य जगत में जीवन-साथी का चुनाव इसी प्रकार होता है। यह आधारहीन और पूर्णतः काल्पनिक अनुमान मात्र है। पश्चिम में तो लम्बे समय तक साथ रहते हैं, 'डेटिंग' करते हैं, स्वभाव-व्यवहार की परख करते हैं, तब साथी चुनते हैं और सो भी, सिर्फ लड़का नहीं चुनता, लड़की-लड़के दोनों की सहमति से निर्णय होता है। यहाँ तो चुनेगा सिर्फ लड़का और वह भी देखेगा सिर्फ माँसल-गठन, देहयष्टि, मानसिक-गठन, व्यवहार की कुशलता, प्रतिभा, जीवन के सम्बन्ध में दृष्टिकोण आदि कुछ नहीं। मात्र शरीर की चमड़ी का रंग-रूप और ऊपरी उतार-चढ़ाव। इनसे अच्छे तो पश्चिम वाले ही ठहरे जो रुचि, व्यवहार, आकांक्षा, प्रकृति सभी पर विचार करते हैं और नर-नारी दोनों ही करते हैं।

जिसे हम प्रधानता देते हैं, उसे हमारा साथी भी प्रधानता देने लगे, यह स्वाभाविक ही है। अतः पत्नी की माँसलता, देह के बाहरी उभार को ही प्रधानता देने वाले को यह भी सोच लेना चाहिए कि यदि ब्याह के बाद पत्नी ने भी माँसल-सौष्ठव को ही पसन्द करना स्वाभाविक एवं उचित मान लिया तो उसकी पति-निष्ठा कैसे टिक सकेगी ? उस स्थिति में दोष किसका माना जायेगा ? जब सहधर्मिणी की पसन्दगी का आधार ही बाहरी रूप और चेहरा है, उसकी मान्यता ही उस गुण के कारण है, तब वह क्यों न इसी सर्वश्रेष्ठ मान्यता को स्वयं भी अपना केन्द्र-बिन्दु माने ?

इस प्रकार युवावस्था में प्रवेश करने वाले पुत्र को माता-पिता सत्संस्कारों से भरी सहायता दें। उसे जीवन के एवं जगत के प्रति एक स्वस्थ, रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाने में मदद करें। भविष्य के बारे में विचार करते समय किन बातों का ध्यान रखा जाय, कैसे विचारों एवं व्यवहार के क्या परिणाम हो सकते हैं ? परिवार के प्रति उनकी क्या जिम्मेदारी एवं कर्त्तव्य हैं ? परिवार पर उनके अधिकार का वास्तविक स्वरूप क्या है ? यह ठीक से समझाया जाये। पिता की कमाई के वे हमेशा के लिए हकदार नहीं है, यह तथ्य स्पष्ट रूप से मन में बिठा दिया जाय। उस कमाई पर परिवार के उन सदस्यों का अधिक अधिकार समझा जाय, जिन्हें सहायता की अधिक आवश्यकता है। तब उस पर समाज का हक भी उसे समझ में आ जायेगा और वानप्रस्थ परम्परा की पृष्ठभूमि भी विदित हो सकेगी। उत्तरदायित्व की भावना के विकास से ही वानप्रस्थ परम्परा चल सकती है।

नवयुवक सज्जनता और शालीनता सीखें

जीवन-निर्माण का महत्त्वपूर्ण समय १२ से लेकर २० वर्ष तक की आयु तक रहने वाली किशोर अवस्था है। इस अवधि में मनुष्य गीली मिट्टी और हरी लकड़ी की तरह रहता है, जिसे चाहे जिधर ढाला और मोड़ा जा सकता है। पीछे तो वह पक्की मिट्टी और सूखी लकड़ी की तरह जैसा उठती उम्र में बन गया प्रायः वैसा ही अन्त तक बना रहता है। जो बूढ़े हो चले उन ढलती आयु के लोगों के दिन करीब हैं, उनके दोष-दुर्गुणों को सहन भी किया जा सकता है और उपेक्षा भी की जा सकती है पर नई पीढ़ी के विकासवान बालकों की उपेक्षा नहीं हो सकती। अगले दिनों महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ उन्हें ही सम्पादित करनी है। नेतृत्व उन्हीं के कन्धों पर आने वाला है। वे जैसे भी कुछ भले-बुरे होंगे उसी के अनुरूप समाज की भावी सम्भावनाएँ बनेंगी। यदि हम निकट भविष्य में अपने समाज को समुचित, सुसंस्कृत देखना चाहते हैं तो सारा ध्यान अपनी होनहार उदीयमान पीढ़ी पर केन्द्रित करना पड़ेगा।

कहना न होगा कि समस्त श्री, समृद्धि, प्रगति और शान्ति का उद्भव मनुष्य के सद्गुणों पर अवलम्बित है। दुर्गुणी व्यक्ति हाथ में आई हुई, उत्तराधिकार में मिली हुई समृद्धियों को गँवा बैठते हैं और सद्गुणी गई-गुजरी परिस्थितियों में रहते हुए भी प्रगति के हजार मार्ग प्राप्त कर लेते हैं। सद्गुणों की विभूतियाँ ही व्यक्तित्व को प्रतिभावान बनाती हैं और प्रखर व्यक्तित्व ही हर क्षेत्र में सफलताएँ वरण करते चले जाते हैं। विद्या, धन और स्वास्थ्य के आधार पर उन्नति करने की बात कही जाती है पर उनसे भी बढ़कर प्रगति के आधार सद्गुण हैं, उन्हीं के आधार पर विद्या, धन और स्वास्थ्य की शोभा है और उन्हीं के द्वारा प्रयत्नों के सत्परिणाम प्राप्त होते हैं। दुर्गुणी व्यक्ति अपने कौशल के आधार पर कुछ उपलब्धियाँ प्राप्त कर भी लें तो उन्हें सुरक्षित नहीं रख सकता। इतना ही नहीं उनके घमण्ड में उद्धत आचरण करके अपनी तथा दूसरों की शान्ति नष्ट करता है। अपने को तथा अपने समीपवर्ती समाज को संकट में डालता है।

उठती आयु में सबसे अधिक उपार्जन सद्गुणो का ही किया जाना चाहिए। विद्या पढ़ी जाय सो ठीक है, खेल-कूद, व्यायाम आदि के द्वारा स्वास्थ्य बढ़ाया जाय, सो भी अच्छी बात है, विभिन्न कला-कौशल और चातुर्य सीखे जाएँ, यह भी सन्तोष की बात है पर सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि इस आयु में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जितनी अधिक सतर्कता और तत्परतापूर्वक सद्गुणों का अभ्यास किया जा सके, करना चाहिए। एक तराजू में एक ओर विद्या, बल, बुद्धि, धन आदि की सम्पत्तियाँ रखी जायँ और दूसरे पलड़े में सद्गुण तो निश्चय ही यह दूसरा पलड़ा अधिक भारी और अधिक श्रेयस्कर सिद्ध होगा। दुर्गुणी व्यक्ति साक्षात् संकट स्वरूप है। वह अपने लिए पग-पग पर काँटे खड़े करेगा, अपने परिवार को त्रास देगा और समाज में अगणित उलझनें पैदा करेगा। उसका उपार्जन चाहे कितना ही बढ़ा-चढ़ा क्यों न हो, कुकर्म बढ़ाने और विक्षोभ उत्पन्न करने वाले मार्ग में ही खर्च होगा। ऐसे मनुष्य अपयश, घृणा, द्वेष, निन्दा और भर्त्सना से तिरस्कृत होते हुए अन्ततः नारकीय यन्त्रणाएँ सहते हैं।

अभिभावकों को केवल इतना ही नहीं सोचना चाहिए कि उनके बच्चे कमाऊ, चतुर और कोई पदाधिकारी बन जाएँ, वरन् अधिक ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि बच्चे सच्चरित्र, सद्गुणी, सज्जन एवं संस्कारवान बनें। यही उपलब्धि उनके जीवन की सबसे बड़ी लाभदायक सम्पदा सिद्ध होगी। इसी के आधार पर वे अपना जीवन सुखी एवं समुन्नत बना सकेंगे। सच्चा प्यार इसी को कहते हैं। वे अभिभावक ही अपने कर्त्तव्य पालन में सफल कहे जायेंगे, जिन्होंने अपने बच्चों को सद्गुणी बनाने में कुछ उठा नहीं रखा। सच्चे अध्यापक वे हैं, जो केवल, गणित, भूगोल, इतिहास आदि किताबी ज्ञान देकर निवृत्त नहीं हो जाते वरन् छात्रों की गतिविधियों में निरन्तर सद्गुणों की मात्रा बढ़ाने में संलग्न रहते हैं।

आज कुछ ऐसी गन्दी हवा चली है, जिसने नई पीढ़ी में उद्धत एवं उच्छृंखल बनाने की विभीषिका खड़ी कर दी है। हमारे होनहार बच्चों में से अधिकांश में उच्छृंखलता, अवज्ञा, उद्दण्डता, अनुशासनहीनता की मात्रा बहुत बढ़ती चली जाती है, यह चिन्ता की बात है। इसमें देश के दुर्भाग्य का खतरा छिपा हुआ है। परस्पर छुरेबाजी, अध्यापकों की अवज्ञा, परीक्षा में नकल, बिना टिकट यात्रा, लड़कियों को छेड़ना, सिनेमा की शौकीनी, शृंगार, सजावट की फिजूलखर्ची, उद्धत आचरण एवं वार्तालाप में विनय एवं शिष्टता का अभाव आदि कितने ही दुर्गुण अपने होनहार बालकों में देखते हैं तो भारी चिन्ता होती है कि इतने उथले व्यक्तित्व को लेकर वे किस प्रकार अपने भविष्य को उज्ज्वल और प्रकाशवान बना सकेंगे और अगले दिनों जो जिम्मेदारी उनके कन्धों पर आने वाली है, उसका निर्वाह किस प्रकार कर पायेंगे ?

जो नवयुवक अपना भला-बुरा समझने की स्थिति में है, उन्हें गिरह बाँध लेनी चाहिए कि सभ्य समाज के जिम्मेदार नागरिक हमेशा अपने व्यक्तित्व को तेजस्वी बनाने के लिए सद्गुणों को अपने स्वभाव में निरन्तर सम्मिलित करते रहते हैं। शिष्टता ही लोकप्रिय बनाती है। अनुशासनप्रिय व्यक्ति के अनुशासन में ही दूसरे लोग रहते हैं। सज्जनों को ही श्रद्धा मिलती है। सद्गुणी दूसरों का हृदय जीतते हैं और दसों-दिशाओं में उन पर स्नेह, सहयोग बरसता है। इस राज-मार्ग को जिसने अपनाया उसे ही मनस्वी, तेजस्वी और यशस्वी बनने का अवसर मिला है और जो दुष्टता के दुर्गुणों में ग्रस्त हो गये, वे थोड़े समय औरों को आतंकित करके, क्षणिक रौब-दौब जमा सकते हैं और डरा-धमकाकर कुछ उल्लू सीधा भी किया जा सकता है, पर यह तनिक-सी सफलता अन्ततः बहुत महँगी और भारी पड़ती है। लोगों की निगाह में जब व्यक्तित्व गिर गया और गुण्डा-उपद्रवी माना जाने लगा तो समझना चाहिए कि सम्मान और सहयोग की स्थिति समाप्त हो गई। जीवन में प्रगति और शान्ति के लिए दूसरों की सद्भावना और सहायता की जरूरत पड़ती है। पर यह दोनों ही अनुदान केवल सज्जनों को मिलते हैं। आतंकवादी और उद्धत व्यक्ति किसी हृदय में अपने लिए स्थान न बना सकेंगे, उनके लिए सबके भीतर घृणा और अविश्वास भरा रहता है। ऐसे व्यक्ति अपने जीवन में कोई ऊँचा स्थान प्राप्त नहीं कर सकते और न उन्हें कोई बड़ी सफलता ही मिलती है।

हमारे नवयुवकों को समझना चाहिए कि ध्वंसात्मक दुष्प्रवृत्तियों को—अशिष्टता एवं उच्छृंखलता को अपना लेना अति सरल है। छछोरे साथियों अथवा उद्धत अगुआ लोग उठती आयु के बालकों को आसानी से गुमराह कर सकते हैं पर शालीनता और सज्जनता का अभ्यास बनाना उनके बस की बात नहीं। इसलिए हेय व्यक्तित्व के जोशीले और उच्छृंखल लोगों को अपने ऊपर हावी ही नहीं होने देना चाहिए, उनके प्रभाव और सान्निध्य से दूर रहना चाहिए। अन्यथा उनकी मैत्री अपने को भी उच्छृंखल बना देगी और वह स्थिति पैदा कर देगी, जिसमें अपनी निज की और दूसरों की आँखों में अपना व्यक्तित्व गया-गुजरा, ओछा, कमीना और निकृष्ट स्तर का बन जाय। इस स्थिति में जो पड़ा उसके सौभाग्य का सूर्य एवं उज्ज्वल भविष्य अस्त हो गया ही समझना चाहिए।

सभ्य, समुन्नत देशों के नवयुवक अपने राष्ट्रों की स्थिरता एवं प्रगति में भारी योगदान दे रहे हैं। उनकी प्रवृत्तियाँ रचनात्मक दिशा में लगी हैं। अध्ययन में गम्भीर रुचि लेकर वे अपनी योग्यता बढ़ाते हैं, ताकि अवसर आने पर अपनी प्रतिभा को किसी भी कसौटी पर खरी सिद्ध कर सकें।

एक हम हैं कि जिनके बच्चे हर कहीं सिर-दर्द सिद्ध होते हैं। अभिभावक रुष्ट, अध्यापक दुःखी, साथी क्षुब्ध, स्वयं उद्विग्न। इस सबका एक ही कारण है—दुर्गुणों की मात्रा का बढ़ जाना। बुखार चढ़ने की तरह मर्यादाओं का उल्लंघन करने की प्रवृत्ति का बढ़ना भी खतरनाक है। अपने बालकों के उद्धत आचरण देखकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हम दुःख, पश्चात्ताप और दुर्भाग्य की कल्पना करें यह स्थिति हम सबके लिए लज्जास्पद है।

जो भी हो, हमें बच्चों को समझाने और सिखाने का हर मीठा-कड़ुआ उपाय करना चाहिए कि वे सज्जन, शालीन, परिश्रमी और सत्पथगामी बनें, इसी में उनका और हम सबका कल्याण है।

सुसंस्कृत युवा पीढ़ी कैसे बने ?

बच्चों, विद्यार्थियों में वातावरण की विषाक्तता के कारण शालीनता, सभ्यता, विनम्रता जैसे मानवोचित गुणों का दिन-दिन ह्रास होता जा रहा है। समय रहते समाज विरोधी उद्दण्ड एवं उच्छृंखल गतिविधियों को रोका न जा सका तो इसके भावी परिणाम देश, समाज और उनके स्वयं के लिए हानिकारक ही सिद्ध होंगे।

स्वीडन के ख्यातिलब्ध मनोविज्ञानी डॉ. डाल ओल्यू ने अपने देश के स्कूल-कॉलेजों के उद्दण्ड एवं दुस्साहसी छात्रों की मनोवृत्ति का अध्ययन बड़ी गहनता से किया है। इसके लिए उन्होंने बच्चों के माता-पिता, अभिभावक और अध्यापकों से भी सम्पर्क किया है। अपने शोध निष्कर्षों को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने बताया है कि सर्वप्रथम संस्कारों का बीजारोपण बच्चों में पारिवारिक वातावरण के बीच माता-पिता, अभिभावकों के द्वारा सम्पन्न होता है। वे जैसे चाहें उन्हें गीली मिट्टी के सदृश उन्हें ढाल सकते हैं। प्रायः उसमें भली-बुरी प्रवृत्तियों का बीज बहुत कुछ उसके गर्भस्थ जीवन में ही जम जाता है। पैदा होने के बाद घर वालों के व्यवहार पर बच्चों का जीवन बहुत कुछ निर्भर करता है। कई बार वे अपने अभिभावक, अध्यापक आदि के कठोर व्यवहार के कारण अपराधी तक बन जाते हैं। ऐसी स्थिति में दूसरों को तंग करने में, परेशान करने में उन्हें प्रसन्नता होने लगती है। अपने से छोटों के प्रति उद्दण्डतापूर्ण व्यवहार करके, उनकी इच्छा के विरुद्ध आचरण करके उन्हें तंग करने में गर्व अनुभव करना धीरे-धीरे उनके स्वभाव का एक अविच्छिन्न अंग बन जाता है, जिसके दूरगामी दुष्परिणामों से बचा नहीं जा सकता। स्कूल-कॉलेजों में 'रैगिंग' के अभद्र एवं अशोभनीय स्वरूप को देखकर इस तथ्य की पुष्टि शीघ्र ही हो जाती है। डॉ. ओल्यू का कहना है कि बचपन से ही जिन लड़कों को शरारत, मारपीट तथा बड़ों की आज्ञा का उल्लंघन करने की आदत पड़ जाती है, उनमें से ४० प्रतिशत बच्चे २४ वर्ष की परिपक्व आयु तक पहुँच कर कम से कम तीन अपराधों के लिए न्यायालय द्वारा दण्डित हो चुके होते हैं।

इसी तरह की मान्यता इलिनोय विश्वविद्यालय के मनोविज्ञानी डॉ. लियोनार्ड डी इरोन की है। इस हेतु उन्होंने विशेष अध्ययन परियोजना का शुभारम्भ किया, जिसके अन्तर्गत ८ से ३० वर्ष तक की अवधि के ८७५ छात्रों की जीवनचर्या का आकलन बड़ी गहनता से किया गया। निष्कर्ष एक ही निकला है कि जो बच्चे बचपन से ही अधिक उग्र, उद्दण्ड, उच्छृंखल और झगड़ालू प्रवृत्ति के रहे होते हैं, वे १९ वर्ष की आयु तक स्कूल छोड़कर अपराधी प्रवृत्ति का शिकार बन जाते हैं और ३० वर्ष पार करके ऐसे बच्चों के जनक बन चुके होते हैं, जो कि उन्हीं की तरह उग्र मनोवृत्ति के होते हैं। इस प्रकार सामाजिक बुराई का एक विषम चक्र सामने आता है।

शरारतपूर्ण दुर्व्यवहार करने वाले तो अपने जीवन को भारभूत बनाते ही हैं, तरह-तरह के त्रास भी भुगतते रहते हैं। इस उत्पीड़न के शिकार बच्चों की कोमल मानसिकता पर भी समान रूप से कुप्रभाव पड़ता है, जिसके फलस्वरूप वे अपने जीवन को अभिशप्त बना बैठते और आत्महत्या का प्रयत्न करते देखे गये हैं। उद्दण्ड साथियों द्वारा सताये जाने के कारण कितने छात्रों को अपनी जीवन लीला समाप्त करनी पड़ती है, इसका अनुमान समाचार-पत्रों को पढ़कर आसानी से लगाया जा सकता है।

जिन राष्ट्रों में बच्चों की इन उग्र प्रवृत्तियों को न पनपने देने और सज्जनता को, सद्व्यवहार को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न चल पड़ा है, वहाँ पर कुछ सुधार के आसार भी नजर आने लगे हैं। डॉ. ओल्यू का कहना है कि यह कार्य सरकारी स्तर पर सम्भव नहीं हो सकता, वरन् बच्चों के अभिभावक और अध्यापकगणों की मानसिकता को उस दिशा में मोड़ना होगा। उक्त उद्देश्य को पूरा करने के लिए प्रचार-प्रसार पर अधिक बल दिया है। इस समस्या से जूझने के लिए अभिभावक और अध्यापकगण क्या भूमिका निभा सकते हैं ? शरारती उच्छृंखल बच्चों को कैसे नियन्त्रित किया जा सकता है ? और उनमें शालीनता के तत्त्वों को कैसे विकसित किया जा सकता है ? आदि बातों का उपयुक्त मार्गदर्शन करते हुए डॉ. ओल्यू ने एक पुस्तक लिखी है जिसे 'परपीड़क बच्चे तथा उनके शिकार बनने वालों की समस्याएँ' के नाम से प्रकाशित किया है, जिसमें कुछ सूत्र संप्रेषित किए गये हैं, जिनका परिपालन करने से समस्या का समाधान सरलतापूर्वक हो सकता है।

उनके अनुसार सुधार का उपाय-उपचार घर-परिवार के वातावरण से आरम्भ होना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि एक आचार-संहिता बने, जिसके नियम और अनुशासन को बच्चे भली प्रकार समझ सकें। नियम के अनुरूप चलने वाले बच्चों की प्रशंसा करने में अभिभावकों को कोताही नहीं बरतनी चाहिए। लेकिन नियमों का उल्लंघन करने वाले के साथ मारपीट का माहौल तो न बनाया जाय, पर कोई अधिकार छीनने अथवा जेब खर्च में कटौती करने जैसा उपक्रम तो अवश्य बिठाया जा सकता है। बच्चों को पढ़ाई-लिखाई पूरा करने के बाद खाली समय भी बचता है, जिसमें बच्चों के साथ किन्हीं रचनात्मक गतिविधियों अथवा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खेल-कूदों में समान रूप से भाग लिया जा सकता है, जिसके फलस्वरूप बच्चों को अचिन्त्य चिन्तन का मौका ही नहीं मिले। दूसरे अच्छे बच्चों के साथ सहयोग-सहकार की प्रवृत्तियों को विकसित करने कुसंग से बचाने का प्रयत्न ऐसा है, जो आगे चलकर भविष्य निर्माण में महती भूमिका निभाता है।

समर्थ और समुन्नत नई पीढ़ी का निर्माण

अच्छी फसल उगाने के लिए जितना महत्त्व अच्छी भूमि और अच्छे बीज का है उतना ही इस बात का भी कि उपज को उदरस्थ कर जाने वाले खरपतवार को बढ़ने न दिया जाय। बीजारोपण से पूर्व भूमि की जुताई इसीलिए की जाती है कि खेत की उर्वरता को आरोपित पौधों के पोषण में लग सकने का सुरक्षात्मक प्रबन्ध पहले से ही कर लिया जाय। सुयोग्य पीढ़ियों के उत्पादन का दूसरा पक्ष यह है कि अयोग्य उत्पादन की रोकथाम भी साथ-साथ की जाय, अन्यथा जिन साधनों का उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए किया जाना है, उनका अधिकांश आवेगों के निर्वाह तथा उनके द्वारा उत्पन्न की गई विकृतियों के निराकरण में ही खर्च होता रहेगा। खेत में खरपतवार को निर्बाध गति से बढ़ने की छूट दी जाती रहे तो समझना चाहिए कि उपयुक्त फसल के पकने की सम्भावना समाप्त हो गई।

सन्तान को सुयोग्य बनाने में माता-पिता की प्रजनन प्रक्रिया ही सब कुछ नहीं होती। वे तो श्री गणेश-बाजीरोपण मात्र करते हैं। अगला सारा काम तो समूचे परिवार या समाज को करना होता है। बीज उपयुक्त खेत में पड़कर अंकुरित होता और किसान के प्राथमिक पुरुषार्थ की सफलता व्यक्त करता है, पर इतने से ही तो काम नहीं चल जाता। उसके लिए खाद कहीं से लाना पड़ता है। पानी का प्रबन्ध कहीं से होता है। निराई-गुड़ाई में किसी का पसीना बहता है। पशु-पक्षियों से रखवाली और कृमि-कीटकों को निरस्त करने की जिम्मेदारी किसी को उठानी पड़ती है। इस प्रबन्ध में अनेकों की भागीदार रहती है और अनेक साधन जुटते हैं। सुयोग्य पीढ़ियों के निर्माण में न केवल गर्भस्थापन एवं गर्भ-धारण से उत्तरदायित्व सम्पन्न होता है, वरन् उस अनुष्ठान में समूचे समाज को प्रकारान्तर से योगदान करना पड़ता है। ऐसी दशा में उत्पादकों का ही नहीं समाज के कर्णधारों का भी यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे सुयोग्यता-सम्वर्धन के आवश्यक वातावरण बनाने, साधन जुटाने की तरह इस बात का भी ध्यान रखें कि कहीं हेय सृजन का दौर तो नहीं चल रहा है। सज्जन और चोर साथ-साथ बढ़ते रहे तो सज्जनता के लाभ से लाभान्वित होने का स्वप्न साकार न हो सकेगा। उठने के लिए सीढ़ी बनाने और गिरने के लिए खाई खोदने का उपक्रम साथ-साथ चले तो बात कैसे बनेगी ?

सुसंतति का शुभारम्भ जनक-जननी को गर्भाधान क्रिया के साथ आरम्भ होता है। उन दोनों की शारीरिक, मानसिक स्थिति तो वंशानुक्रम के रूप में सन्तति को सुंस्कारिता एवं दक्षता प्रदान करने के लिए उपयुक्त होनी चाहिए। इसमें कमी पड़ेगी तो सड़े-घुने बीज से उत्पन्न हुए अंकुर पूर्णता तक पहुँच नहीं सकेंगे, वरन् उल्टी खीज पैदा करेंगे। जो बोने की क्रिया सम्पन्न करें वे ही उगने से लेकर पकने तक की अवधि में अभीष्ट आवश्यकताएँ जुटाने का भी प्रबन्ध करें। इसके लिए उनकी पूर्व तैयारी होनी चाहिए। तात्पर्य यह है प्रजनन कृत्य में संलग्न होने वालों की आर्थिक स्थिति भी इस योग्य होनी चाहिए कि वे अपने उत्पादन को समुचित खाद-पानी देने तथा सुरक्षा जुटाने में व्यतिरेक उत्पन्न न हो सके। जिसके पास ऐसे साधन नहीं हैं वे बोने का साहस ही न करें। इसमें जुताई, बुआई का श्रम निरर्थक जाता है। साधनों के अभाव में जब अंकुर सूखते हैं तो दुःख भी होता है और अपयश भी लदता है। इस अक्षम विकृति सृष्टि का यदि समाज को भार वहन करना पड़े तो यह भी विश्व मानव की कुसेवा है। उत्पादित सन्तान का भविष्य न बना सकने की क्षमता न होते हुए भी उस वजन को उठाकर अपनी गर्दन तोड़ लेना और भार की गठरी को जमीन पर गिराकर चूरचूर कर देना कहाँ की बुद्धिमानी है।

सुप्रजनन की आवश्यकता और उसकी पूर्ति के लिए विज्ञजनों में उपयुक्त वातावरण, प्रशिक्षण एवं सुविधा-साधन जुटाने के लिए समूचे समाज को प्रोत्साहित किया है। इससे पहले उनका कथन यह भी है कि यह कार्य मात्र उन्हें ही करने दिया जाय जो हर दृष्टि से इसके लिए उपयुक्त होने की कसौटी पर कस लिये जाएँ। जिस प्रकार डॉक्टर, इन्जीनियर, सैनिक विद्यालयों में भर्ती होने से पूर्व छात्रों को प्राथमिक योग्यता जाँच ली जाती है, उसी प्रकार बालकों के उत्पादन की आज्ञा भी समूचे समाज की ओर से मिलनी चाहिए। ताकि कुपात्र उस कार्य में हाथ डालकर मानवी बिरादरी का अहित न करने लगे। नागरिक अधिकारों की गणना में यदि यौन कर्म आता हो तो भी उसके पीछे इतना नियन्त्रण तो रहना ही चाहिए कि वह शरीर-क्रीड़ा तक सीमित रहे और समाज संकट उत्पन्न करने का कारण न बने। सन्तानोत्पादन समाज को प्रभावित करने वाला कृत्य है। इसलिए उस पर यदि समाज या शासन की ओर से अंकुश लगता है तो इसे अनुचित नहीं कहा जा सकता। नागरिक अधिकारों की स्वतन्त्रता तभी तक उचित ठहरती है, जब तक कि उसका प्रभाव समाज पर नहीं पड़ता। इसके आगे कदम बढ़ते ही समाज को अधिकार क्षेत्र बनता है कि वह स्वतन्त्रता का व्यतिरेक न करें। अपनी मर्यादा में सीमित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहे। शरीर-क्रीड़ा तक ही नागरिक अधिकारों की परिधि समाप्त हो जाती है। प्रजनन कर्म स्पष्टतः समाज को लाभ या हानि पहुँचाने वाला कृत्य है। ऐसी दशा में उसका अधिकार होना चाहिए कि सुप्रजनन के लिए प्रोत्साहन प्रदान करें और उपयुक्त जोड़ों को यह उत्तरदायित्व निभाने के लिए अनुरोधपूर्वक आवश्यक सुविधा प्रदान करे। प्राचीनकाल में इसके लिए 'नियोग' प्रचलन था अब उसके लिए वीर्य बैंक स्थापित किये जा रहे हैं।

यह व्यवस्था जुटाना अगला काम है। प्रथम चरण कुप्रजनन को रोकना है, जिसके कारण इन दिनों त्राहि-त्राहि मची हुई है और अगले दिनों विपत्ति बरसाने वाली घटा घिरती आ रही है। इस रोकथाम की ओर विश्व विचारकों का ध्यान गया है और उन्होंने व्यक्ति तथा समाज से समान आग्रह किया है कि वह अवांछनीय प्रजनन की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाने वाले कदम उठायें अन्यथा भविष्य को अन्धकारमय बनाने वाले विभीषिकाओं में अनुपयुक्त सन्तानों की भरमार से जो संकट उभरेगा उसका समाधान कर सकना किसी के हाथ में नहीं रहेगा। टिड्डी दल से होने वाली हानियों को जो जानते हैं, जिन्हें मूषकों की, मच्छरों की अभिवृद्धि के दुष्परिणाम का पता है, उन्हें यह भी जानना चाहिए कि आज का कुप्रजनन अगले कल किस प्रकार समूचे वातावरण को विषाक्त करेगा और अनेकानेक समस्याओं का कारण बनेगा।

फ्रांस के व्यक्तित्व विशेषज्ञ अल्फेडविने ने मेधावी और मन्दगति लोगों की इस मौलिक विशेषता का आधारभूत कारण उनके जन्मदाताओं की जीन्स सम्पदा को बताया है और कहा है मेधावी सन्तानों का जन्म वे ही लोग दे सकते हैं, जिनका व्यक्तित्व इसके लिए हर दृष्टि से परिष्कृत हो। पुरातन जीन्स वैभव में आज के व्यक्तित्व का सबसे अधिक प्रभाव रहता है।

विने ने अपने ग्रन्थ 'दि ट्रेनिंग ऑफ इन्टेलिजेन्स' में इस बात पर अधिक जोर दिया है कि किसी को बुद्धिमत्ता विकसित करनी हो तो यह कार्य उसके जनक-जननी को अपनी शारीरिक, मानसिक दक्षता तद्नुरूप बनाने के साथ आरम्भ करना चाहिए। अनुपयुक्त वंश परम्परा लेकर जन्मे बालकों में प्रतिभावान बालकों का उत्पादन बहुत प्रयत्न करने पर भी एक छोटी सीमा तक ही सम्भव हो सकेगा।

अमेरिका में इस सम्बन्ध की खोजबीन करने और किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए कई महामनीषियों ने असाधारण प्रयत्न किये हैं। इनमें से स्टैनफोर्ड के डॉ. लीवस टर्मान, न्यूजर्सी के प्रो. हेनरी गोडर्ड और हारवर्ड विश्वविद्यालय के रावर्ट यर्कीज प्रमुख हैं। इन तीनों ने सन्तानोत्पादक दक्षता के सम्बन्ध में एक विशेष पर्यवेक्षण पद्धति का आविष्कार किया है। उसका नाम दिया है—'स्टैन फोर्ड विने टैस्ट' वे कहते हैं, जो इस परीक्षण में खरे उतरे मात्र उन्हीं को सन्तानोत्पादन का लाइसेन्स मिलना चाहिए। शेष को इनके लिए अयोग्य घोषित कर देना चाहिए।

यूनेजिम्स रिसर्च ऐसोसिएशन को 'कमेटी ऑन इन हरिटेंस ऑफ मेण्टल टेस्ट' के सम्मुख प्रो. गोडार्ड ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था कि ऐसे लोगों को बलपूर्वक 'वधिया' बना दिया जाये जो यौन कर्म में तो रत रहते हैं, किन्तु सुयोग्य उत्पादन की दृष्टि से अक्षम।

इस प्रतिवेदन से प्रभावित होकर मूढ़ता की रोकथाम, प्रयोजन के लिए कई देशों ने कानून भी बनाये और अंकुश भी लगाये। ऐसे अनुबन्धों में पैसिलवानिया, इण्डियाना, न्यूजर्सी और इओवा में हल्के-फुल्के कानून भी बने। प्रजातन्त्र में बहुमत का विरोध देखकर भी ऐसे सुधार करते समय फूँक-फूँककर कदम उठाने होते हैं। इन कानूनों में शराबी, अफीमची, अपराधी, आक्रामक, असन्तुलित, विक्षिप्त, सनकी, दुर्बल, रोगी लोगों को सन्तानोत्पादन के अयोग्य घोषित किया गया और अनुबन्ध के उल्लेख कर कड़े दण्ड का प्रावधान रखा गया।

सरकारी महत्त्वपूर्ण पदों पर भर्ती करने के सम्बन्ध में उपयुक्त व्यक्तित्व तलाश करने की दृष्टि से उपयुक्तों का परीक्षण करने में अमेरिकी साइकोलाजी ऐसोसिएशन की भी भागीदारी थी। उसके अध्यक्ष मेजर यर्कीज ने जिन्हें प्रतिभावान पाया उनमें से अधिकांश वह विशेषता अपनी वंश परम्परा से साथ लेकर आये थे।

भविष्य-निर्माण के लिए जहाँ अन्यान्य साधन जुटाने की आवश्यकता है, वहाँ भावी पीढ़ी में मनस्वी एवं व्यक्तित्व सम्पन्न होने की बात को भी महत्त्व मिलना चाहिए। इसके लिए सुप्रजनन को प्रोत्साहित और पात्रता को निरुत्साहित प्रतिबन्धित करने की भी आवश्यकता है।

यों वंशानुक्रम में प्रधानतया जनक-जननी के संस्कारों का ही बाहुल्य रहता है, तो भी माता और पिता की पिछली पीढ़ियों के उत्तराधिकार भी किसी मात्रा से हस्तान्तरित होते रहते हैं भले ही वे अपेक्षाकृत स्वल्प मात्रा में ही क्यों न हों। यह विरासत आगे-आगे बढ़ती चलती है और अनेक पीढ़ियों तक अपने प्रभाव किसी न किसी रूप में छोड़ती जाती है।

इस सन्दर्भ में सबसे बड़ी जिम्मेदारी जनक और जननी की आती है कि उन्होंने अपने उत्तराधिकारियों को देने के लिए क्या कुछ सँजोया है ? इन दोनों में भी पिता की जिम्मेदारी अधिक है, क्योंकि भ्रूण पर वर्चस्व उसी के पक्ष का रहता है। प्रतिभा जितनी पिता की सन्तान को हस्तान्तरित होती है, उसकी तुलना में माता का योगदान अपेक्षाकृत कम ही रहता है। वंशानुक्रम में पिता की विशेषता रहने पर माता का उत्तरदायित्व हल्का नहीं होता वह उस कमी को ऊपर से गर्भ धारण के समय अपनी सुसंस्कारिता हस्तान्तरित पूरा करके सम्पन्न करती है। जबकि यह कार्य पिता को लम्बी अवधि तक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधनारत रहकर पूरा करना पड़ता है। सुप्रजनन की दृष्टि से उपयुक्त पिताओं को तलाश करना और उन्हें अपना महान उत्तरदायित्व सँभाल सकने के लिए लम्बे समय तक आत्म-निर्माण साधना के लिए सहमत किया जाना चाहिए। उनके व्यक्तित्व का ही अगली पीढ़ी से हस्तान्तरण जो होना है। इसका अर्थ यह नहीं कि माता की अपेक्षा की जाय। उनमें से अधिकांश में भावनात्मक वरिष्ठता प्रकृति प्रदत्त परम्परागत रूप से पाई जाती है। तो भी उन्हें गर्भधारण के समय की तथा पालन-पोषण के दिनों की उत्कृष्टता तथा सतर्कता जानने तथा अभ्यस्त करने का प्रयत्न समय रहते किया जाना चाहिए।

बढ़ती हुई जनसंख्या की रोकथाम अपने स्थान पर उचित एवं आवश्यक है। इस प्रयास में उन्हें अग्रणी रहना चाहिए जिनकी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक एवं पारिवारिक क्षमता सुसन्तति निर्माण के लिए उपयुक्त नहीं है। जो इस स्थिति में है कि भावी पीढ़ी के लिए संस्कारवान, प्रतिभावान नागरिक प्रदान कर सकते हैं, उन्हें इसे भी एक पारमार्थिक देशभक्ति पूर्ण कार्य समझकर सम्पन्न करना चाहिए। इसके लिए मेधावी और प्रतिभावानों युग्मों के अग्रिम पंक्ति में खड़ा होना चाहिए।

भावी पीढ़ी का स्तर उठाने की समस्या

संसार की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है, पर पीढ़ियों का स्तर शारीरिक, मानसिक और नैतिक तीनों ही दृष्टियों से गिरता चला जा रहा है। इस गिरावट का कहाँ जाकर अन्त होगा, यह चिन्ताजनक प्रश्न है। विज्ञान, शिक्षा और सम्पत्ति की दृष्टि से हम कितनी ही प्रगति क्यों न करते जायें ? वंश परम्परा का क्रम यदि पतनोन्मुख दिशा में ही बढ़ता चला गया तो इन सम्पदाओं का उपयोग कौन करेगा, जिनके निर्माण में आज हम अहर्निशि सर्वतोभावेन लगे हुए हैं ? शरीर और मन से दुर्बल और रुग्ण बना मनुष्य अपने आपके लिए भार रहेगा और अपने समाज के लिए अभिशाप सिद्ध होगा, भले ही उसके पास सुविधा साधन कितने ही बढ़े-चढ़े क्यों न हों ?

प्रगति की बात सोचते हुए संसार के बुद्धिमान मनुष्य यह विचार गम्भीरतापूर्वक कर रहे हैं कि भावी पीढ़ियों का स्तर किस प्रकार समुन्नत बनाया जाय, नस्ल के भयंकर पतन का वर्तमान क्रम किस प्रकार रोका जाय ? वैज्ञानिक आविष्कारों की घुड़दौड़ और सुविधा-साधनों का उपार्जन होते रहने से ही समुन्नत भविष्य की कल्पना सार्थक न हो सकेगी। इसके लिए शारीरिक, मानसिक और नैतिक दृष्टि से समुन्नत स्तर की पीढ़ियाँ भी चाहिए। विचारशील वर्ग ने अधिक तत्परतापूर्वक इस दिशा में विचार करना आरम्भ किया है कि संसार को श्रेष्ठ नागरिकों और महामानवों से भरा-पूरा कैसे रखा जाय ?

नोबेल पुरस्कार से पुरस्कृत विश्व के मूर्धन्य विज्ञानी डॉ. हरमन जे. मुलर ने अपने 'आउट ऑफ द नाइट' प्रतिवेदन में इस आवश्यकता पर बहुत बल दिया था कि विश्व को—विशिष्ट व्यक्तियों को सर्वथा नष्ट होने की विपत्ति से बचाया जाय। उनका अभिप्राय यह था कि वर्तमान पीढ़ी के मूर्धन्य व्यक्तियों का जीवन-रस संग्रहीत करके रखा जाय ताकि उन जैसे विशिष्ट व्यक्तियों को भविष्य में फिर कभी भी आवश्यकतानुसार उत्पन्न कर सकना सम्भव हो सके।

जीवविज्ञानी गाल्टन यूजेनिक्स (सृजननिकी) विद्या का सूत्रपात करते हुए यह आशा व्यक्त की थी कि हम इस दिशा में शोध कार्य करते हुए अभीष्ट गुण सम्पन्न मनुष्यों का उत्पादन कर सकने में एक दिन सफल होकर रहेंगे। विद्वान फ्रांसिस गाल्टन ने इस बात पर बहुत जोर दिया था कि प्रगति की अन्य धाराओं को ही महत्त्व न दिया जाय, वंश सुधार पर भी ध्यान दिया जाय। पतनोन्मुख वंश परम्परा की दुर्गति यदि रोकी न गई तो दुर्बल और रुग्ण व्यक्ति समस्त प्रकार की उपलब्धियाँ प्राप्त कर लेने पर भी सुखी न रह सकेगा।

इस सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ व्यक्त की गई हैं, एक यह कि सुयोग्य नर-नारियों को सन्तानोत्पादन के लिए प्रोत्साहित किया जाय, दूसरा यह कि यदि उनका विवाह सम्भव न हो तो फिर कृत्रिम गर्भाधान का प्रयोग चलाया जाय।

शरीर की दृष्टि से परिपुष्ट युवक और युवती विवाह करें और गर्भरक्षा तथा शिशु-पोषण का समुचित प्रबन्ध रहे तो उसका परिणाम इतना ही हो सकता है कि मजबूत शरीर वाले बालक पैदा हों। बौद्धिक एवं भावनात्मक विकास यदि इस जोड़े का नहीं हुआ है तो वह बलिष्ठ सन्तान बुद्धू अथवा अनैतिक भी हो सकती है। फिर वंश परम्परा की कई विकृतियाँ भी इस जोड़े में ऐसी जुड़ी हो सकती हैं कि बड़ा होने पर वह मजबूत बालक किसी ऐसी विकृति में फँसा पाया जाय, जिससे परिपुष्ट शरीर वाले युवक-युवतियों के विवाह वाली बात ही निरर्थक सिद्ध हो जाय।

शरीर से अधिक महत्त्व बुद्धिमत्ता और प्रतिभा का है। उस तत्त्व का विकास अधेड़ आयु के उपरान्त होता है। इससे पूर्व पता नहीं चलता कि कौन बुद्धिमान या प्रतिभावान सिद्ध होगा ? फिर उतनी आयु तक वे लोग अविवाहित ही बैठे रहें, यह सम्भव नहीं। प्रतिभाशाली लोग तलाक देकर नये जोड़े चुने यह और भी अधिक झंझट भरा कार्य होगा।

भौतिकविज्ञानी नीति-अनीति के झंझट में नहीं पड़ते। उन्हें गुणकारी औषधि बनाने के लिए प्रचुर जीव हिंसा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करनी पड़े तो आपत्ति नहीं। इसी दृष्टि से वे उत्तम सन्तान प्राप्त करने का उद्देश्य पूर्ण करने के लिए दाम्पत्य-जीवन की, पवित्रता की उपेक्षा करने को तैयार हैं। वे कहते हैं विवाह एक सामाजिक साझेदारी है और सन्तानोत्पादन राष्ट्रीय कर्त्तव्य, मानवी समस्या। दोनों को एक-दूसरे से जोड़ा न जाये। पति-पत्नी को अन्य नर-नारियों के सम्पर्क से सुप्रजा उत्पन्न करने की छूट रहे, तभी भावी पीढ़ियों को समुन्नत बनाने की समस्या हल होगी। इसके लिए कृत्रिम गर्भाधान निरापद समझा गया है, उसमें व्यभिचार की वर्तमान बुराई भी सिर नहीं बँधती और एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य भी पूरा हो जाता है। इसके प्रमाण में हनुमान पुत्र मकरध्वज का उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है।

बुद्धिवादी वर्ग के गले यह दलील उतर गई है और विकसित देशों में कृत्रिम गर्भाधान के लिए अत्युत्साह फूट पड़ा है, किन्तु उससे कई कानूनी तथा भावनात्मक समस्याएँ सामने आई हैं।

अमेरिका में इन दिनों प्रायः २५ हजार माताएँ कृत्रिम गर्भाधान से सन्तानोत्पादन का लाभ उठाती हैं। इन उत्पन्न बालकों का असली पिता कौन है ? यह सर्वथा अविज्ञात रहता है। स्थापित शुक्र के अनुदाता का नाम सर्वथा गुप्त रखा जाता है अन्यथा भावनात्मक एवं आर्थिक उत्तराधिकार सम्बन्धी अनेक झंझट उठ खड़े होंगे और उनका सुलझाना एक नया सिर-दर्द बन जायेगा। आज के अभिभावकों और सन्तान के बीच जो कानूनी एवं भावनात्मक स्थिति है, वह बदल जाय तो फिर यह आज का दुराव भी आवश्यक न रहेगा।

प्रो. जोनास साल्क ने विश्व के कानून क्षेत्र को इस सम्भावना की आगाही दी है कि निकट भविष्य में मनुष्य प्रयोगशालाओं में उत्पन्न किये जायेंगे, जिनका रज-वीर्य उस प्रयोजन के लिए लिया गया है, उनका उस उत्पन्न हुई सन्तान पर कितना अधिकार होगा अथवा वे बच्चे अपने जन्मदाताओं से उत्तराधिकार की क्या उपेक्षा करेंगे, इसका निर्धारण किया जाना चाहिए। वर्तमान रतिक्रिया प्रधान उत्पादन को आधार मानकर बनाये गये उत्तराधिकार कानून अगले दिनों की जटिलताओं का समाधान न कर सकेंगे।

नर के शुक्राणु चिरकाल तक सुरक्षित रखना और उसे प्रजनन योग्य बनाये रहना यह सफलता बहुत पहले ही मिल चुकी है। अब आवश्यक नहीं रहा कि नर-नारी को रतिक्रिया करनी ही पड़े अथवा पिता जीवित ही हो। मृतक घोषित किया गया नर भी सन्तानोत्पादन करता रह सकता है। सुदूर देशवासी नर-नारी व्यस्तता के कारण परस्पर मिल न सकें तो भी उनका प्रजनन-कर्म व्यवस्थापूर्वक चलता रह सकता है। शुक्राणुओं को सुरक्षित रखने की विधि बहुत समय पहले लिटिलराक अर्कासास के डॉ. एच. शर्मन ने खोज निकाली थी। शुक्र को ग्लिसरोल में मिलाकर द्रव नाइट्रोजन की सहायता से बनाये गये। १९६ सेन्टीग्रेड में नीचे शीत तापमान में रख दिया जाता है। इस प्रकार पशुओं का शुक्र १० साल तक और मनुष्यों का ५ साल तक सुरक्षित रखा जा सकता है। उपयुक्त शुक्र की सहायता से उपयुक्त बच्चे उत्पन्न करने की इच्छुक महिलाओं ने इस विधि से अकेले अमेरिका में ही लगभग डेढ़ लाख बच्चे पिछले दिनों उत्पन्न किये हैं। अन्य देशों में भी यह प्रचलन बढ़ रहा है।

वैज्ञानिक सोचते हैं कि प्रजनन क्रिया पर विज्ञान का नियन्त्रण हो जाने से अभीष्ट स्तर की पीढ़ियाँ उत्पन्न कर सकना सम्भव हो जायेगा, जिस प्रकार पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान के सहारे नस्ल सुधार का प्रयास सफलतापूर्वक चल पड़ा है, उसी प्रकार मनुष्यों में भी क्यों नहीं चलाया जा सकता है। वे सोचते हैं संसार के मूर्धन्य महामानवों को विश्व प्रजनन संस्था के लिए वीर्यदान देना चाहिए और उसका उपयोग परिष्कृत स्तर की महिलाओं की सहायता से उसी स्तर की सन्तान उत्पन्न करने के लिए किया जाना चाहिए। सोचा गया है कि इस पद्धति से एक आइन्स्टीन से अनेकों आइन्स्टीन पैदा करने में सफलता मिलेगी और इससे विश्व मानव की नस्ल सम्पदा को ऊँचा उठाने में महत्त्वपूर्ण योगदान मिलेगा।

इस क्षेत्र में मूर्धन्य पुरुषों को ही तुल्य त्याग नहीं करना पड़ेगा, वरन् नारियों को भी कष्ट सहने के लिए तैयार रहना होगा। एकपक्षीय श्रेष्ठता कुछ बहुत बड़ा प्रयोजन सिद्ध न कर सकेगी।

विश्वविख्यात साहित्यकार जार्ज वर्नार्ड शा अपनी विनोदी प्रकृति के लिए प्रख्यात थे। वे उन दिनों वृद्ध भी थे और कुरूप तो पहले से ही थे। एक सुन्दर युवती उनके पास यह प्रस्ताव लेकर पहुँची कि वे उसके साथ विवाह कर लें ताकि उसे 'शा' जैसी बुद्धिमान और उस जैसी सुन्दर सन्तान प्राप्त हो सके।

'शा' ने उत्तर दिया आवश्यक नहीं वह मुझ जैसी बुद्धिमान और आप जैसी सुन्दर ही सन्तान हो, इसका ठीक उल्टा भी हो सकता है—यह मुझ जैसी कुरूप और आप जैसी मूर्ख भी उत्पन्न हो सकती है।

यह मात्र विनोद ही नहीं था। इसके पीछे एक सच्चाई भी है कि केवल नर-पक्ष को ही पीढ़ी निर्माण का सारा श्रेय नहीं मिल सकता; इसके लिए माता का स्तर भी अनुकूल होना चाहिए। शुक्राणुओं के साथ तो श्रेष्ठ परम्पराएँ जुड़ी हुई हों, किन्तु डिम्बाणु अवांछनीय स्तर की विशेषताओं से भरे हो तो इच्छित परिणाम न हो सकेगा। माता और पिता की संयुक्त खेती ही तो शिशुओं की फसल देती है, इसलिए सुधार प्रयास, मात्र नर-पक्ष के लिए पर्याप्त नहीं, उसके लिए उतना ही प्रयत्न नारी-पक्ष के गुण-सूत्रों के सुधार को भी करना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

पड़ेगा। वंश परम्परा में पितृपक्ष और मातृपक्ष की भूमिका न्यूनाधिक मात्रा में प्रायः समान ही रहती है।

भीम का पुत्र घटोत्कच अपने पिता के समान बलवान तो था, पर माता हिडम्बा वनवासी भील थी इसलिए बच्चे की आकृति-प्रकृति माता के समान ही बन सकी। मदालसा ने अपनी सभी सन्तानें मनचाहे स्तर की उत्पन्न की थीं, इसमें उसके पति का स्तर तो साधारण था, पर उसने अपनी शारीरिक, मानसिक स्थिति में सुधार कर अभीष्ट गुण, कर्म, स्वभाव के बच्चे उत्पन्न किये। यह एकांगी प्रयास के उदाहरण हैं। यदि भीम की पत्नी कोई परिष्कृत स्तर की होती तो घटोत्कच की अपेक्षा अधिक समुन्नत बालक उत्पन्न होता। इसी प्रकार मदालसा का पति भी यदि सुविकसित रहा होता तो अभीष्ट उत्पादन और भी अधिक ऊँचे स्तर का सम्भव हुआ होता।

कहा जाता है कि प्राचीनकाल में यह प्रचलन भी था कि गृह-व्यवस्था के लिए दाम्पत्य-जीवन का एक क्रम बना रहे और श्रेष्ठ सन्तानोत्पादन के लिए नर-नारी उपयुक्त आधार तलाश कर सकें। कुन्ती का उदाहरण ऐसा ही है। वह पाण्डु की पत्नी थी और आजीवन उसी रूप में रही। बिना तलाक दिये अथवा न पतिव्रत धर्म भंग किये उन्होंने मनचाहे स्तर की सन्तान उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त की। उनके पाँच पुत्र, पाँच पाण्डव, पाँच देवताओं की सन्तानें थीं। इतना ही नहीं विवाह से पूर्व भी उन्होंने कर्ण को जन्म दिया था। उनका यह प्रयोग असफल नहीं रहा। प्रचलित सामाजिक परम्पराओं के अनुसार लोकापवाद हुआ या नहीं, यह एक पृथक् प्रश्न है।

नियोग प्रथा का शास्त्र में उल्लेख भी है और आदेश भी। पति-पत्नी में से किसी की असमर्थता अथवा अनुपस्थिति में अन्य नर-नारी की सहायता से सन्तानोत्पादन करना और उसे उत्तराधिकारी मानना हिन्दू धर्म की शास्त्रीय परम्पराओं के अनुरूप ही माना जाता था।

हिटलर के वे प्रयोग सर्वविदित हैं जिनमें उसने जर्मन जाति की उत्कृष्ट नस्ल पैदा करने की दृष्टि से एक योजना चलाई थी, जिसके अन्तर्गत चुनी हुई नारियों को चुने हुए नरों के द्वारा सन्तानोत्पादन के लिए बाध्य किया गया था। इस प्रयोग की उन दिनों धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में घोर निन्दा की गई थी, पर हिटलर यही कहता रहा—जर्मन जाति को विश्वविजयी नस्ल की आवश्यकता है। उसकी पूर्ति के लिए जो प्रयोग किये जा रहे हैं। उनमें सन्निहित उद्देश्य किसी भी प्रकार निन्दनीय नहीं हो सकता।

इन सब दलीलों और प्रमाणों के रहते हुए भी यह प्रश्न बना ही रहेगा कि दाम्पत्य-जीवन की गरिमा को घटाकर ही कृत्रिम गर्भाधान का प्रचलन मानवी समाज में हो सकता है। इससे परम्परागत भावनाओं को चोट लगेगी और छुट-पुट प्रयोगों के अतिरिक्त बड़े पैमाने पर यह प्रयोग सफल न हो सकेगा।

कृत्रिम गर्भाधान के समर्थन में कितनी ही गहरी दलीलें क्यों न दी जाएँ, वह बड़े पैमाने पर सफल न हो सकेगा। पति-पत्नी के बीच स्नेह, सम्बन्धों और मिलन आवेश का जो भावनात्मक प्रवाह बहता है, उसका कृत्रिम प्रक्रिया में कैसे समावेश किया जायेगा ? शिशुओं के प्रति आत्मीयता का सहज वात्सल्य पिता के मन में किस प्रकार उत्पन्न होगा ? इतनी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों से वंचित शिशु को भावनात्मक दृष्टि से बहुत दूर तक अभावग्रस्त ही रहना पड़ेगा। अस्तु, इस वैज्ञानिक प्रक्रिया से इतनी ही आशा की जा सकती है कि वे शारीरिक और बौद्धिक दृष्टि से सुविकसित होंगे। उनमें स्थूल स्तर की विशेषताएँ भी वंश परम्परा के आधार पर भी हो सकती हैं, किन्तु भावनात्मक अभाव तो अकेला ही इतना बड़ा है कि उसे छोड़ देने पर समग्र मानव की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

शिशुओं में भावनात्मक विकास के लिए पति-पत्नी के बीच अगाध आत्मीयता और उद्दीप्त भावुकता का होना आवश्यक है। ऐसी दशा में भावी पीढ़ियों को सुसंस्कृत बनाने का लक्ष्य हर दृष्टि से आवश्यक और महत्त्वपूर्ण होते हुए भी उसकी पूर्ति के लिए हमें आध्यात्मिक मूल्यों का भी ध्यान रखना होगा। इस समस्या का समाधान हमें भावनात्मक आदर्शों को साथ लेकर ही करना चाहिए। पति-पत्नी की प्रजनन श्रेष्ठता बढ़ाकर ही इस प्रयोजन की पूर्ति की जा सकेगी।

सर्वतोमुखी प्रगति की आधारशिला—चरित्र-निर्माण

बात के पक्के, आचरण के सच्चे और चिन्तन के ऊँचे मनुष्य भले ही सामान्य स्तर का जीवनयापन करते हों, पर लोगों की दृष्टि में उनका असाधारण सम्मान होता है। जिन गुणों के कारण मनुष्य को 'देवता' कहा जाता है उनमें ईमानदारी प्रमुख है। जो ईमानदार है वह अपने भीतर अन्य दैवी गुणों की स्थापना एवं अभिवृद्धि करता चलता है। बेईमानी वह कदम है, जिसके बढ़ने पर पतन का सर्वनाशी गर्त दिन-दिन निकट आता चला जाता है।

यह नासमझी का चिह्न है कि तात्कालिक थोड़े-से लाभ के लिए दूरगामी दुष्परिणामों को आँख से ओझल कर दिया जाय। मछली आटे की गोली के लोभ से काँटा निगलती है और मछुए के हाथों में पड़कर अपनी जान गँवा बैठती है। चिड़ीमार द्वारा फैलाये हुए दाने पर जो चिड़ियाँ आँखें बन्द करके टूटती हैं, वे जाल में फँसती हैं और सतर्कता की उपेक्षा का परिणाम मृत्युदण्ड

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के रूप में भुगतती है। इन्द्रिय असंयम का क्या परिणाम होता है यह किसी से छिपा नहीं है। चटोरी जीभ पेट खराब करती है और अपचजन्य विष के प्रभाव से सारा शरीर अनेक रोगों से ग्रसित हो जाता है। ब्रह्मचर्य के प्रति असावधानी बरतने पर आदमी भरी जवानी में बुढ़ापे को आमन्त्रित करता है और अशक्तता ग्रसित होकर मुर्दनी भरी खोखली जिन्दगी जीता है। अपव्ययी व्यक्ति अपनी पूँजी गँवाकर दरिद्र बनते, ऋणी रहते और अपमान सहते हैं। आलसी श्रम से बचकर समय गँवाते और हर बात में असफल रहते हैं। खेत में बोये जाने वाले बीज को बेचकर मेला तमाशा देखने में खर्च कर डालने वाला किसान तात्कालिक मौज पर प्रसन्न होता है पर उसे फसल के नाम पर खाली हाथ रहना ही पड़ता है।

ऊपर की पंक्तियों में उन अदूरदर्शियों की चर्चा है, जो तत्काल के क्षणिक लाभ पर अन्धे होकर टूटते हैं और यह विवेक खो बैठते हैं कि इस अदूरदर्शिता के फलस्वरूप उन्हें कितना कुछ भुगतना पड़ेगा, यह क्षणिक लाभ कितना महँगा पड़ेगा ? बेईमानी का लाभ दिन दूना इसी प्रकार का है।

कोई व्यक्ति बेईमानी तभी कर सकता है जब पहले दूसरे को विश्वास में ले लें। अविश्वासी के प्रति तो मनुष्य सदा सावधान रहता है। उसे इतना निकट ही नहीं आने देता कि किसी प्रकार की चालाकी की गुंजाइश रहे। उसी का प्रथम चरण यही है कि जिसे ठगना है उसे इतना विश्वास में लिया जाय कि दुरभिसंधि की सम्भावना सोचने में ही न आये। दूसरों को निश्चिन्त विश्वसनीयता की स्थिति में देखकर बेईमानी के अस्त्र का प्रहार किया जाता है। इसे प्रत्यक्षतः विश्वासघात ही कह सकते हैं। दूसरा अपने ऊपर विश्वास करता है और अपनी ओर से उस पर आक्रमण कर दिया गया, यह सोते को कत्ल कर देने की ही बात है। धन की कितनी मात्रा का अपहरण किया गया वह बात गौण है। नैतिक अपराध तो छोटी या बड़ी बेईमानी से लगभग समान ही बनता है। उससे आत्मिक पतन की गति में कोई कमी नहीं आती। बेईमानी का लाभ वस्तुतः दूसरों को अनीतिपूर्वक पीड़ा देकर किया गया उपार्जन ही है इसलिए उसे हिंसा, हत्या, शोषण, उत्पीड़न, अपहरण जैसे कुकृत्यों की श्रेणी का बड़ा पातक ही गिना जा सकता है। यद्यपि वह प्रचलन में आ जाने से छोटा-सा दोष प्रतीत होता है।

शरीरशास्त्री बताते हैं कि पारा पचता नहीं। उस भारी किन्तु पतली धातु को आसानी से खाया जा सकता है, पर पचता किसी प्रकार से नहीं। शरीर से फूट-फूटकर निकलता है। ठीक इसी प्रकार बेईमानी की कमाई अनेक विपत्तियाँ लाती हैं। यह अनेकों अवांछनीय छिद्रों में होकर बह जाती है। बीमारी, मुकदमेबाजी, चोरी, आतंकवादियों द्वारा अपहरण, व्यसन, अपव्यय आदि अनेक ऐसे द्वार खुलते हैं, जिनमें होकर वह पैसा जिस प्रकार आया था उसी प्रकार चला जाता है। चोर, जुआरी, जेबकट जिन्दगी भर में इतना कमाते हैं कि यदि वह धन रुक सका होता तो वे लोग ऊँचे दर्जे के धनी व्यवसायी बन जाते, पर ऐसा कभी भी नहीं देखा गया। अनीति की कमाई न कहीं ठहरती है और न कभी फलती-फूलती है। वह किसी को रुलाकर आई थी अस्तु, विदा होते समय भी कमाने वाले को रुलाकर ही जाती है। कहते हैं जादूगर ढेरों रुपये बना देता है पर वह कमाई सिर्फ देखने का मनोरंजन भर करती है, उससे बाजीगर या कोई और व्यक्ति धनी नहीं बन सकता, बेईमानी की कमाई की जादूगर की सफाई से पूरी तरह तुलना की जा सकती है। वह झोली में से निकलती है और झोली में ही जाती है। उसका कोई कारगर उपयोग हो नहीं सकता।

वैयक्तिक, पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में स्थायी सफलता केवल ईमानदार लोगों के लिए सुरक्षित है। जिन्हें अपनी ईमानदारी पर भरोसा है, वे आत्मबल सम्पन्न होते हैं। कहते हैं सत्य में हजार हाथियों का बल होता है। समस्त दुर्बलताएँ चारित्रिक दुर्बलता से उत्पन्न होती हैं। जो आदर्शों पर दृढ़तापूर्वक आरूढ़ है उसे अपने भीतर से शक्ति के स्रोत फूटते दीखते हैं। आत्मबल संसार का सबसे बड़ा बल है उसकी तुलना में धनबल, भुजबल, बुद्धिबल, शस्त्रबल आदि सब तुच्छ हैं। आत्मबल सम्पन्न व्यक्ति ही भौतिक एवं आत्मिक क्षेत्र में सुस्थिर और महत्त्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त करते हैं। यह शक्ति किसी पूजा-पत्री से नहीं केवल आदर्शवादी चरित्रनिष्ठा से ही उत्पन्न होती है। इसके लिए मनुष्य को बाहर के लोगों की दृष्टि से नहीं अपनी आत्मा की दृष्टि से ईमानदार रहना पड़ता है।

परिवार के सदस्यों का संगठित रहना—परस्पर स्नेह, दुलार, सहयोग देना—सुसंस्कृत बनकर समुन्नत स्तर की प्रगति करना तभी सम्भव है, जब उस कुटुम्ब में चरित्रनिष्ठा और आदर्शवादिता का वातावरण बना हुआ हो। यदि घर में बेईमानी की कमाई आती होगी तो जीभ से सिद्धान्तवादिता की चर्चा भले ही होती रहे। घर का हर सदस्य विश्वास यही करेगा कि बेईमानी के बिना काम नहीं चल सकता। वही व्यावहारिक और आवश्यक है। इस मान्यता का प्रयोग-परीक्षण घर में ही चलता है। एक-दूसरे के छल-कपट, छीन-झपट, लड़-झगड़ का व्यवहार करते हैं, उनके मूल में अनुदार स्वार्थपरता ही काम कर रही होती है। यहाँ से दुश्चरित्रता के सारे पेड़-पौधे उत्पन्न होते हैं और वे बड़े होकर कँटीले झाड़-झंखाड़ बन जाते हैं। स्पष्ट है कि किसी भी समूह परिवार का सुदृढ़ संगठन आदर्शवाद और सहयोग के आधार पर ही सुदृढ़ रह सकता है। जहाँ इसकी जितनी कमी होगी, वहाँ उसी अनुपात में मनोमालिन्य और बिखराव बढ़ेगा। परिवारों के सुरम्य उद्यान सदा अन्ततः कलह की चिन्गारी में जलकर भस्म हुए हैं और वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सर्वभक्षी आग केवल अनैतिक परम्पराओं का आश्रय और उन्नति के लिए सुविधा-साधनों की जितनी जरूरत है, उससे हजार गुनी आवश्यकता आदर्शवादी रीति-नीति को आधार बनाये जाने की है। इसका मूल स्रोत यह है कि गृहपति अनीति की कमाई करना बन्द करके और फिजूल-खर्ची के सारे मार्ग कड़ाई के साथ रोककर सादगी और मितव्ययता के साथ गुजारा करने का अभ्यास हर सदस्य को करायें। जहाँ ऐसे कदम उठाये गये होंगे, वहाँ परिवार के सदस्यों का आन्तरिक स्तर ऊँचा उठेगा और इस उत्कर्ष का परिणाम सर्वतोमुखी प्रगति एवं सुख-शान्ति के रूप में देखा जा सकेगा।

जो पैसा परिश्रमपूर्वक पसीना बहाकर न्यायपूर्वक, कमाया जाता है, वह उचित कामों में ही खर्च होता है। उसे अपव्यय की होली में फूँकते हुए कलेजा टूटता है। ऐसे वातावरण में अपनी मर्यादा के अनुरूप मात्र उपयोगी कार्यों में ही खर्च होता है। जहाँ यह क्रम चल रहा होगा वहाँ दरिद्रता का प्रवेश न हो सकेगा। अपव्ययी ही ऋण लेते और अनेक उलझनों में उलझते हैं। जहाँ सरलता, सादगी और मितव्ययिता है, वहाँ कम आमदनी होते हुए भी व्यवस्थापूर्वक हँसी-खुशी की जिन्दगी जियी जा रही होगी। अधिक उपार्जन की आवश्यकता अनुभव होगी तो अधिक परिश्रम करने, अधिक योग्यता बढ़ाने और अधिक सन्तुलन बरतने के लिए कदम बढ़ाये जायेंगे। इससे न केवल आर्थिक कठिनाई दूर होगी, वरन् योग्यता एवं प्रतिभा के विकास का दुहरा लाभ भी मिलेगा।

व्यापार सदा ग्राहकों को विश्वास में लेने से ही चल सकता है। अधिक खरीदार होंगे तो अधिक लाभ मिलेगा। यह सीधी बात है और यह भी स्पष्ट है कि ग्राहकों को फन्दे में फँसाये नहीं रखा जा सकता है। हर व्यक्ति विश्वस्त से ही व्यवहार करना चाहता है। ऐसे दुकानदार की ही सबको तलाश रहती है, जिससे उचित मूल्य पर अच्छी चीज, पूरे परिमाण में उपलब्ध हो सके। इस कसौटी पर जो व्यापारी खरे उतरते हैं, उनके ग्राहकों की संख्या बढ़ती ही रहती है। एक से दूसरे में प्रचार होता है और ऐसा सम्पर्क समाज बन जाता है, जो स्वयं ही उस दुकान का खरीदार नहीं रहता, वरन् अपने साथियों को भी उसी के साथ जोड़ देता है। सद्व्यवहार, ईमानदारी और कुशलता का मिश्रण-समन्वय जहाँ होगा वहाँ व्यापार निश्चित रूप से चल सकेगा और आर्थिक उन्नति सहज प्रतिफल सामने खड़ा दिखाई देगा। संसार में बड़े-बड़े व्यापारिक फर्म इसलिए प्रख्यात बने और लाभान्वित हुए हैं कि उन्होंने अपने लाभ की ही तरह ग्राहकों के हित का भी पूरा ध्यान रखा है और उन्हें मजबूत, सही और सुन्दर वस्तु देकर अपनी प्रामाणिकता का परिचय दिया है। लोग कुछ अधिक कीमत देना पसन्द करते हैं यदि उन्हें अच्छी चीज मिले और व्यवहार में ईमानदारी का समावेश हो। इसके विपरीत भले ही सस्तेपन का प्रलोभन दिया जाय पर जब कमजोर, रद्दी वस्तुएँ पल्ले बँधती हैं तो ग्राहक की आँखें खुल जाती हैं और वह फिर सस्तेपन के लालच में ठोकरें खाने की अपेक्षा महँगे मूल्य की प्रामाणिक वस्तुएँ ही प्रामाणिक दुकानदार से खरीदता है। यही तथ्य है कि बेईमान दुकानदार अन्ततः सिर पकड़कर रोते हैं और ईमानदारी दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति के साधन जुटा रही होती है।

अपने देश में लोग कम तोलने, कम नापने, नकली, मिलावटी चीजें बेचने के आदी होते जाते हैं। इस प्रकार उन्हें तत्काल कुछ अधिक कमाने का अवसर भी मिल जाता है। पर यह सिलसिला थोड़े ही समय चलता है। यथार्थता देर तक छिपी नहीं रहती। जब कलई खुलती है तो पुराने ग्राहक तो टूट ही जाते हैं, वे अपने परिचितों को भी उस शिकारी के जाल में फँसने के लिए सावधान करते रहते हैं। सोने का एक अण्डा देने वाली मुर्गी के सारे अण्डे एक ही दिन पा लेने के लालची ने उसका पेट चीर डाला था और एक अण्डा पाने का लाभ भी गँवा बैठा था। यह कहानी उन लोगों पर अक्षरशः सही उतरती है, जो बेईमानी का सहारा लेकर जल्दी अमीर बनने की बात सोचते हैं, किन्तु अन्ततः अपनी साख गँवाकर दुर्गति के शिकार बनते हैं।

ऊपर व्यापारी के उदाहरण दिये गये हैं पर बेईमानी केवल उसी क्षेत्र तक सीमित नहीं है। हर काम में, हर क्षेत्र में दूसरों के साथ मिल-जुलकर ही काम करना पड़ता है। एकाकी रहकर तो कुछ भी नहीं हो सकता। सम्पर्क में रहने वालों की घनिष्टता, श्रद्धा, आत्मीयता जितनी प्रगाढ़ होगी, उसी अनुपात में सहयोग का आदान-प्रदान और उसी क्रम में सफलताओं का पथ प्रशस्त होगा। बेईमानी की नीति अपनाकर हम दूसरों की दृष्टि में अपने को अविश्वस्त और अप्रामाणिक ठहराते हैं फलतः निकटस्थ व्यक्ति भी उदासीन रहने लगते हैं—उपेक्षा बरतते हैं और वह खिंचाव, असहयोग जैसी स्थिति उत्पन्न करता है। ऐसे वातावरण में रहकर मनुष्य अपने पुरुषार्थ से ही यत्किंचित सफलता पा सकता है। सहयोगजन्य सुविधाओं के सहारे ही आगे बढ़ना और ऊँचा उठना सम्भव होता है। बेईमानी इन दिव्य सम्भावनाओं को समाप्त करती चली जाती है। न उसके अधीनस्थ सम्मान करते हैं और न अधिकारी कोई प्रोत्साहन देते हैं। इसका दोष दूसरों पर लादकर अपना जी हल्का किया जा सकता है, पर जब गहराई से देखा जाय तो काम की चोरी, मनोयोग लगाने की उपेक्षा, लापरवाही, गैर-जिम्मेदारी जैसी बुरी आदतों ने सहयोगियों को असहयोगी बनाया है। श्रम, समय, वचन, उत्तरदायित्व का सही तरह निर्वाह न करना भी एक प्रकार से बेईमानी ही है। मात्र धन चुराने और धोखा देने तक ही बेईमानी सीमित नहीं है। कर्त्तव्यों की उपेक्षा करके भी हम लगभग उसी स्तर के निन्दनीय बनते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाज ने कितनों को ही सम्मान दिया है, नेता माना है, उनके आदेशों को बहुत कष्ट सहकर भी निबाहा है, यह सौभाग्य उन्हीं के लिए सुरक्षित रहा है, जो अपनी चरित्रनिष्ठा का गहरा विश्वास जनसाधारण को करा सकने में सफल हुए हैं।

टूटी धुरी का समाज-रथ चलेगा कैसे ?

किसी के सामने कोई भौतिक कठिनाइयाँ आती हैं तो उन्हें हल करने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगाना पड़ता है। परिवार की आर्थिक स्थिति डावाँडोल हो तो निर्वाह सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करना कठिन हो जाता है और उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए न केवल दिमाग खपाना पड़ता है, वरन् परिश्रम और पुरुषार्थ भी करना पड़ता है। घर में कोई व्यक्ति बीमार पड़ा हो, परिवार के किसी सदस्य का स्वास्थ्य बिगड़ गया हो तो उसकी तीमारदारी से लेकर चिकित्सा-परिचर्या तक में भाग-दौड़ करनी पड़ती है। एक व्यक्ति के बीमार होने पर प्रायः घर के सभी सदस्यों को भाग-दौड़ करनी पड़ती है, परेशान होना पड़ता है। इस तरह की समस्याएँ लगभग सभी परिवारों में आये दिन उत्पन्न होती रहती हैं, भाग-दौड़कर जी-तोड़ मेहनत कर उसका हल भी खोजा जाता है और ये हल भी हो जाती हैं, किन्तु एक समस्या ऐसी है, जिसका शिकार यदि कोई परिवार हो गया तो घर के सभी सदस्यों को परेशान होना पड़ता है। वह समस्या है परिवार के सदस्यों की भावनात्मक गुत्थियाँ।

ये गुत्थियाँ थोड़ी-सी असावधानी बरतने पर किसी भी सदस्य में उत्पन्न हो सकती हैं और पूरे परिवार का भावनात्मक स्वास्थ्य चौपट कर डाल सकती हैं। भौतिक कठिनाइयाँ तो फिर भी थोड़े-बहुत परिश्रम से थोड़ी-बहुत परेशानी उठाते हुए हल की जा सकती हैं। यद्यपि इस तरह की समस्याओं का सामना करने वाले जानते हैं कि यह कितना परेशानीपूर्ण कार्य है ? फिर भी विचारों और भावनाओं की गुत्थियाँ सुलझाना या परिवार के सदस्यों में सद्भावना तथा सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ाते रहना उससे भी जटिल काम है, यदि उस पर प्रारम्भ से ध्यान नहीं दिया गया तो।

सभी जानते हैं कि घर की वस्तुओं को स्वच्छ, सुव्यवस्थित और सुसज्जित रखने से ही उनकी शोभा और सुरक्षा बनी रहती है। ठीक इसी उदाहरण से यह भी समझा जा सकता है कि परिवार के लोगों में परिवारिकता की गौरवानुभूति तभी सम्भव है, जबकि घर में सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाते रहने वाला वातावरण बना रहे। परिवार के सदस्य एक-दूसरे के प्रति सहयोग रखा करें और इसी आधार पर अपने व्यक्तित्व को सुविकसित बनायें, जब परिवार के सदस्य एक-दूसरे के प्रति उपेक्षा का भाव बरत रहे हों, उनमें परस्पर सहयोग, सद्भाव न हो, आपसी सम्बन्ध एक-दूसरे से तालमेल न खाते हों तो परिवार का वातावरण नारकीय ही हो जाता है। उस स्थिति में प्रत्येक सदस्य अपने ही स्वार्थ को पूरा करने के लिए आग्रही होता है, दूसरों से मतभेद जरा भी सहन नहीं होते, अन्य सदस्यों की जरूरी माँगें भी उपेक्षणीय और अपनी अनावश्यक माँगें भी अवश्य पूरणीय लगती हैं। उसी के प्रति वह आग्रही रहता है और आग्रह पूरा न होने पर विग्रह की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसे परिवारों में नित्य कलह मची रहती है क्योंकि परिवार संस्था के मूलभूत आधारों का तो वहाँ ध्यान ही नहीं रखा जाता।

स्वाभाविक ही ऐसे परिवार कभी भी फलते-फूलते नहीं देखे जा सकते और न ही वहाँ के वातावरण में सुख-शान्ति की ही झांकी मिलती है। संघर्ष और कलह की प्रवृत्ति का बोल-बाला देखकर यही कहना पड़ता है कि इस परिवार में रहने वाले सदस्य धर्मशाला या होटल में साथ-साथ रहने वालों की तरह की येन-केन प्रकारेण दिन काटते हैं। धर्मशाला या होटल में दिन काटना तो फिर भी एक दृष्टि से उन परिवारों की अपेक्षा अच्छा ही कहा जायेगा, क्योंकि वहाँ साथ ठहरने वाले आपस में लड़ते-झगड़ते तो नहीं हैं। एक-दूसरे के प्रति अपरिचय और आपस में कोई रुचि न होना ही धर्मशाला या होटल में रहने वालों की नियति है। परिवारों में यह बातें तो होती हैं पर इतने घृणित और विकृत रूप में कि अलगाव संघर्ष की सीमा को भी पार कर जाता है यदि कहा जाय कि ऐसे परिवारों का वातावरण जानवरों को एक बाड़े में बन्द करने पर उत्पन्न होने वाली स्थिति जैसा बन जाता है तो भी कोई अत्युक्ति नहीं है।

इस स्थिति में वह लाभ मिल पाना असम्भव ही है जो परिवार के सदस्य को स्वाभाविक रूप से मिलना चाहिए। परिवार के लोग यदि अपने अधिकारों को आगे रखेंगे और कर्त्तव्यों को भूल जायेंगे, पारिवारिक भावना की उपेक्षा करेंगे और अपनी ही इच्छा तथा आग्रह को महत्त्व देंगे तो उनका व्यक्तित्व स्वभावतः ही ओछा पड़ जाएगा और ओछे व्यक्तित्व खींचतान बढ़ाकर परिवार में ही नहीं समाज में भी विग्रह खड़े करते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

दुर्भाग्य से इन दिनों अधिकांश परिवारों की यही हालत है। अनेकों की स्थिति ऐसी है कि जैसे कोई चट्टान किसी चट्टान से टकराकर चूर-चूर हो उठती है। परिवार संस्था भी इसी प्रकार दुर्बुद्धि की चट्टान से टकराकर टूटते और चरमराते देखे जा सकते हैं। इस स्थिति की किसी भी दृष्टि से सराहना तो दूर रहा, सहन भी नहीं किया जा सकता। पर उपाय क्या है ? परिवार संस्था की उपयोगिता और महत्त्व किसी से छुपे नहीं हैं, हर विचारशील व्यक्ति उन्हें जानता, समझता है, पर जो दुर्बुद्धि का राहु उस पवित्र संस्था को ग्रसे जा रहा है, उस संकट का निवारण किस प्रकार किया जाए ?

इसका उत्तर एक ही हो सकता है कि परिवार में सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों को प्रेरणा, प्रोत्साहन देने वाला वातावरण बनाया जाय। इसका उत्तरदायित्व कौन सँभाले ? परिवार में सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देने वाला वातावरण बनाना परिवार के प्रत्येक सदस्य का कर्त्तव्य है, लेकिन प्रश्न उठता है कि जब परिवार के अधिकांश सदस्य अपने-अपने अहंकार को लेकर विग्रह खड़े कर रहे हों, तब इस ओर कौन ध्यान दे ? इस सन्दर्भ में विचार करते समय ध्यान दिया जाना चाहिए कि संकटकाल के समय महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की जिम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं। परिवार संस्था की वर्तमान स्थिति संकटकाल से कम नहीं है। तो इस संस्था में महत्त्वपूर्ण सदस्य कौन है ? उत्तर एक ही है नारी।

और नारी ही पारिवारिक वातावरण को सुधारने, सँवारने, सद्भावपूर्ण बनाने की जिम्मेदारी सरलता से सँभाल सकती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि परिवार के सदस्यों को प्रस्तुत दिशा में कोई ध्यान ही नहीं देना चाहिए परिवार संस्था के पुनर्जीवित और उसके पोषण सिंचन की जिम्मेदारी प्रत्येक सदस्य की है, किन्तु इस कार्य में अग्रणी तो नारी को ही रखा जा सकता है, क्योंकि प्रकृति ने उसके भीतर इस जिम्मेदारी को वहन और नेतृत्व करने की सम्भावनाएँ पहले ही भर रखी हैं। उसके भीतर सद्भावनाओं का एक अमृत निर्झर निरन्तर इस प्रकार बहता रहता है, जो कभी नहीं सूखता है। इस अमृत निर्झर से एक-एक चुल्लू अमृत वह घर के सभी लोगों को पिलाती रह सकती है और स्वभाव से ही टेढ़े कहे जाने वाले व्यक्तियों को शिवजी की सेना कहलाने का सौभाग्य प्रदान कर सकती है। सरकस वाले तरह-तरह के जानवरों को साधकर उनकी सहज शत्रुता भुला उन्हें मित्र जैसा व्यवहार करने का आदी बना देते हैं, किन्तु यह विशेषता नारी की प्रकृति में ही मौजूद है। वह चाहे तो इसका कौशल से उपयोग करके किसी भी स्तर के लोगों में स्नेह-सौजन्यता-सहयोग पैदा कर सकती है।

नारी में एक गुण प्रकृति ने इतनी प्रचुर मात्रा में भर रखा है कि उसे सहज ही देवी कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए, उसकी सहनशीलता को ही लें। आमतौर पर वह परिवार भर के दोष-दुर्गुणों का प्रभाव अपने ऊपर सहती है। यह सहनशीलता प्रशंसनीय है, परन्तु जहाँ परिवार संस्था के पुनर्जीवन और कायाकल्प का प्रश्न आता है, वहाँ इतने भर से सन्तोष नहीं किया जा सकता है। यह सद्गुण यहीं तक सीमित नहीं रहना चाहिए, वरन् इसका सार्थक उपयोग किया जाना चाहिए और इसका सम्बल लेकर परिवार के सदस्यों में जो दोष-दुर्गुण समा गये हैं, उनको निकालने में करना चाहिए। यदि यह नहीं किया गया तो परिवार में दुर्गुण और दुर्भाग्य जहाँ के तहाँ पड़े रहेंगे तथा आपस में किसी का भी सहयोग नहीं बन पड़ेगा। इसके लिए एक ओर जहाँ दोषों को उखाड़ने, पछाड़ने का पूरा-पूरा ध्यान रखना होता है, वहीं यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि किसी के स्वाभिमान को चोट न लगे।

स्वाभिमान को बिना ठेस पहुँचाये भावनाओं को शुद्ध करना और जीवन को एक नई दिशा प्रदान करना चतुराई का काम है। इसके लिए परिवार के हर सदस्य के साथ तालमेल बिठाना पड़ता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से इसे बड़ी चतुराई भरी सफलता कहा जा सकता है और यह केवल नारी ही कर सकती है और अन्य के लिए तो नितान्त ही कठिन है। नारी में यह सब करने की क्षमता तो है ही, यह उसका कर्त्तव्य भी है।

परिवार निर्माण पूरा एक दर्शन एक प्रायोगिक और व्यवहारिक विज्ञान है। उसका सफल प्रयोग करने के लिए यह आवश्यक है कि नारी पहले उसमें स्वयं निष्णात हो। यह ठीक है कि प्रकृति ने उसमें इस तरह के अनेकानेक गुण भर दिये हैं, परन्तु उन गुणों के उपयोग की कला भी तो आनी चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि नारी की अपनी योग्यता एवं मानसिक क्षमता भी विकसित हो। शारीरिक दृष्टि से रुग्ण, कमजोर और मानसिक दृष्टि से अविकसित स्त्रियाँ स्वयं ही अपनी साज-सँभाल नहीं कर सकतीं तो वे परिवार का निर्माण कहाँ से कर सकेंगी ? अस्तु, परिवार निर्माण के लिए महिलाओं के स्वयं शिक्षित, समर्थ और सुयोग्य होने के साथ-साथ अपनी प्रतिभा और योग्यता को परिवार निर्माण का प्रयोजन पूरा करने में लगाने की कला भी आनी चाहिए।

इन गुणों का उपयोग परिवार निर्माण में किस प्रकार किया जाय ? किस तरह परिवार के सदस्यों को सुसंस्कारी और परिष्कृत व्यक्तित्व सम्पन्न बनाया जाए ? यह प्रश्न परिवार निर्माण के प्रारम्भ में आना स्वाभाविक है। इनके उत्तर में पहली बात तो यही कही जा सकती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है कि ठोस प्रभाव कह-सुनकर नहीं स्वयं के माध्यम से आदर्श प्रस्तुत कर ही उत्पन्न किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए घरों में स्वच्छता और सुरुचिपूर्ण सुसज्जता का अभाव रहता है तो इसका एक बड़ा कारण यह है कि स्वयं गृहिणी का इस और कोई ध्यान नहीं रहता, इसलिए परिवार के अन्य सदस्य भी इस ओर उपेक्षा बरतते हैं। घर में गन्दगी देखकर बच्चे भी और गन्दगी बढ़ाने लगते हैं। घर की यह अव्यवस्था बताती है यहाँ आलस्य और प्रमाद का राज्य है। आलस्य और प्रमाद मनुष्य के सबसे बड़े दोष समझे गये हैं और उनका पहला परिचय गन्दगी के रूप में ही मिलता है। इसीलिए गृहिणी को स्वयं साफ-स्वच्छ रहने के साथ-साथ घरों में भी सुरुचि और सुसज्जता का वातावरण बनाने की कार्यपद्धति अपनानी चाहिए। परिवार के लोगों में इसी प्रकार स्वच्छता तथा सुसज्जा के संस्कार डाले जा सकते हैं।

अन्य सद्गुण सत्प्रवृत्तियों के विकास में भी यही रीति-नीति अपनाई जा सकती है। जहाँ तक दोष-दुर्गुणों को हटाने-मिटाने का प्रश्न है, उसके लिए स्नेह, सद्भाव भरा सत्परामर्श उपयोगी हो सकता है। परिवार संस्था के पुनर्जीवन, सुदृढ़ीकरण और पूर्ण निर्माण में नारी इस प्रकार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है और यह निबाही भी जानी चाहिए। व्यक्ति और समाज की मध्यवर्ती कही जाने वाली यह संस्था इन दिनों जितनी दीन-हीन और दुर्दशाग्रस्त स्थिति में पड़ी है, यह बहुत ही भयावह और विषम है। उसके दुष्परिणाम किसी व्यक्ति परिवार या समुदाय को नहीं, वरन् पूरे मानव समाज के लिए हानिकारक हैं। इस दु:सम्भावना का निवारण करने के लिए परिवार संस्था को टूटने से बचाना चाहिए। यदि ऐसे न किया गया तो परिवार संस्था की यह टूटन अन्ततः मनुष्य को आदिम कबीलाई अवस्था में ही पहुँचाकर छोड़ेगी।

सुसंस्कारिता जीवनचर्या का एक महत्त्वपूर्ण अंग

सभ्यता से बढ़कर सुसंस्कारिता का मान, महत्त्व एवं गौरव है। उनकी क्षमता और परिधि भी अपेक्षाकृत अधिक है। सभ्यता का श्री-गणेश करने वाले अगला कदम सुसंस्कारिता अपनाने के रूप में उठाते हैं। सभ्यता की पूर्णता सुसंस्कारिता के साथ जुड़ने से ही होती है अन्यथा सभ्यता का व्यवहार-कौशल तो कलात्मक छद्म के रूप में भी सीखा-अपनाया जा सकता है। उतने भर से बात बनती नहीं, सर्वतोमुखी प्रगति की सम्भावना सुनिश्चित होती नहीं। हमें शरीर से सुन्दर, स्वच्छ और सुव्यवस्थित तो होना ही चाहिए, किन्तु आवश्यक यह भी है कि आदर्शों के प्रति आस्थावान बना जाय, दृष्टिकोण में उत्कृष्टता को समाविष्ट रखा जाय। भाव-संवेदनाएँ, आकांक्षाएँ इस स्तर की हों, जिन्हें शालीनता, सज्जनता की पक्षधर कहा जा सके।

सुसंस्कारिता के चार आधारों को प्रमुख माना गया है— (१) समझदारी, (२) ईमानदारी, (३) जिम्मेदारी, (४) बहादुरी। इन्हें आन्तरिक वरिष्ठता की दृष्टि से उतना ही महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए, जितना कि शरीर के लिए अन्न, जल, वस्त्र और निवास को अनिवार्य समझा जाता है।

समझदारी का तात्पर्य है दूरदर्शी विवेकशीलता को अपनाया जाना। आमतौर से लोग तात्कालिक लाभ को ही सब कुछ मानते हैं और उसके लिए अनाचार भी अपना लेते हैं। इससे भविष्य अन्धकारमय बनता है और व्यक्तित्व का स्तर एक प्रकार से हेय ही बन जाता है। अदूरदर्शिता तुर्त-फुर्त, अधिक सुविधा-सम्पादन के लिए लालायित रहती है और इस उतावली में ऐसे काम करने में भी नहीं झिझकती, जिनकी भावी परिणति बुरे किस्म की हो सकती है। मूर्ख चिड़ियाँ और मछलियाँ इसी दुर्बुद्धि के कारण तनिक से प्रलोभन में अपनी जिन्दगी देती देखी गई हैं। चटोरे व्यक्ति इसी में अपनी स्वास्थ्य सम्पदा को तहस-नहस कर लेते हैं। यौनाचार में अतिवाद बरतने वाले लोग, जवानी में ही बूढ़े-खोखले होकर अकाल मृत्यु के मुँह में जा घुसते हैं। अपराधी तत्त्वों में से अधिकांश लोग इसी मनोवृत्ति के होते हैं। पढ़ने का समय आवारागर्दी में गुजार देने वाले व्यक्ति जवानी में ही दर-दर की ठोकरें खाते हैं। नशेबाज भी इसी मूर्खता को अपनाकर धीमी आत्म-हत्या करने में निधड़क रूप से लगे रहते हैं। ऐसी नासमझी के रहते आज का अभी का लाभ ही सब कुछ दीख पड़ता है और भविष्य की सम्भावनाओं के सन्दर्भ में सोचने तक की फुर्सत नहीं मिलती।

दूरदर्शिता, विवेकशीलता, उस अनुभवी किसान की गतिविधियों जैसी है, जिनके अनुसार खेत जोतने, बीज बोने, खाद-पानी देने, रखवाली करने में आरम्भिक हानि उठाने और कष्ट सहने को शिरोधार्य किया जाता है। दूरदर्शिता उसे बताती है कि इसका प्रतिफल उसे समयानुसार मिलने ही वाला है। एक बीज के बदले में सौ दाने उगने ही वाले हैं और समय पर उस प्रयास के प्रतिफल कोठे भरे धन-धान्य के रूप में मिलने ही वाले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

हैं। संयम और सत्कार्य ऐसी ही बुद्धिमत्ता है। पुण्य-परमार्थ में भविष्य को उज्ज्वल बनाने वाली सम्भावनाएँ सन्निहित हैं। संयम का प्रतिफल वैभव और पौरुष के रूप में दृष्टिगत होता है।

सुसंस्कारिता का दूसरा चिह्न है—ईमानदारी। कथनी और करनी को एक-सा रखना ईमानदारी है। आदान-प्रदान में प्रामाणिकता को इसी सिद्धान्त के सहारे अक्षुण्ण रखा जाता है। विश्वसनीयता इसी आधार पर बनती है। सहयोग और सद्भाव अर्जित करने के लिए ईमानदारी ही प्रमुख आधार है। इसे अपने व्यवसाय में अपनाकर कितनों ने ही छोटी स्थिति से उठकर बड़े बनने में सफलता पाई है। बड़े उत्तरदायित्वों को उपलब्ध करने और उसका निर्वाह करने में ईमानदार ही सफल होते हैं। इस सद्गुण को सुसंस्कारिता का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष माना गया है। उसे अपनाने वाले ईमानदारी और परिश्रम की कमाई से ही अपना काम चला लेते हैं। उनकी गरीबी भी ऐसी शानदार होती है, जिस पर अमीरी के भण्डार को निछावर किया जा सके।

सुसंस्कारिता का तीसरा पक्ष है—जिम्मेदारी। मनुष्य अनेकानेक जिम्मेदारियों से बँधा हुआ है। यों गैर-जिम्मेदार लोग कुछ भी कर गुजरते हैं, किसी भी दिशा में चल पड़ते हैं, अपने किन्हीं भी उत्तरदायित्वों से निर्लज्जतापूर्वक इन्कार कर सकते हैं, पर जिम्मेदार लोगों को ही अपने अनेकों उत्तरदायित्वों का सही रीति से, सही समय पर निर्वाह करना पड़ता है। स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने की, जीवन सम्पदा का श्रेष्ठतम उपयोग करने की, लोक-परलोक को उत्कृष्ट बनाने की व्यक्तिगत जिम्मेदारी जो निभाना चाहते हैं, वे ही सन्तोष, यश और आरोग्य का लाभ प्राप्त कर सकते हैं। पारिवारिक जिम्मेदारियाँ समझने वाले आश्रितों को स्वावलम्बी, सद्गुणी बनाने में निरत रहते हैं और सन्तान बढ़ाने के अवसर आने पर फूँक-फूँककर कदम रखते हैं।

पेट और प्रजनन तक ही मनुष्य की सीमा नहीं है। धर्म और संस्कृति के प्रति, विश्व मानवता के प्रति मनुष्य के सामाजिक और सार्वभौम उत्तरदायित्व जुड़े हैं, यहाँ तक कि अन्य प्राणियों एवं वनस्पतियों के प्रति भी। उन सभी के सम्बन्ध में दायित्वों एवं कर्त्तव्यों के निर्वाह की चिन्ता हर किसी को रहनी चाहिए। यह कार्य तभी सम्भव है, जब अपनी संकीर्ण स्वार्थपरता पर अंकुश लगाया जाय। औसत व्यावहारिक स्तर का निर्वाह स्वेच्छापूर्वक स्वीकार किया जाय। यदि लोभ, मोह, अहंकार का, वासना, तृष्णा और संकीर्ण-स्वार्थपरता का घटाटोप ऊपर छाया होगा, तो फिर नासमझ खाली बच्चों का मन, न तो उस स्तर का सोचेगा और न सयानों से लोक-मंगल के लिए कुछ निकालते बन पड़ेगा। आवश्यकताएँ तो कोई थोड़े श्रम, समय में पूरी कर सकता है; पर वैभवजन्य भौतिक महत्त्वाकांक्षाएँ तो ऐसी हैं, जिन्हें पूरी कर सकना रावण, हिरण्यकश्यप, सिकन्दर आदि तक के लिए सम्भव नहीं हुआ, फिर सामान्य स्तर के लोगों की तो बात ही क्या है ? वे हविश की जलती चिताओं वाली कशमकश में आजीवन विचरण करते रहते हैं। भूत-पलीत की तरह डरते, डराते समय गुजारते और अन्ततः असन्तोष तथा पाप की चट्टानें ही सिर पर लादकर विदा होते हैं। जिन्हें मानव जन्म के साथ जुड़ी हुई जिम्मेदारियाँ निबाहनी हों, उनके लिए करने को तो बहुत कुछ पड़ा है; पर वह सब बन तभी पड़ेगा, जब निजी जीवन में सन्तोष और सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन जैसे लोक-मंगल के कार्यों के लिए समुचित उत्साह अन्तःकरण में उमगता हो।

सुसंस्कारिता का चौथा चरण है—बहादुरी। दैनिक जीवन में अनेकानेक उलझनें आती रहती हैं। उन सबसे निपटने के लिए आवश्यक साहस होना आवश्यक है, अन्यथा हड़बड़ी में समाधान का कोई सही उपाय तक नहीं सूझ पड़ेगा। आगे बढ़ने और ऊँचा उठने की प्रतिस्पर्धाओं से सम्मिलित होना पड़ता है। गुण, कर्म, स्वभाव में गहराई तक घुसे, जन्म-जन्मान्तरों के कुसंस्कारों से भी निरन्तर वह महाभारत लड़ने का कृत्य करना पड़ता है, जिसमें गीताकार ने अर्जुन को प्रशंसा एवं भर्त्सना की नीति अपनाते हुए प्रवृत्त होने के लिए उद्यत किया है। अपने को निखारने, उबारने और उछालने के लिए अदम्य साहस का सहारा लिए बिना कोई मार्ग नहीं। समाज में अवांछनीय तत्वों की, अन्धविश्वासों, कुप्रचलनों और अनाचारों की कमी नहीं है। उनके साथ समझौता सम्भव नहीं, जो चल रहा है, उसे चलने देना सहन नहीं हो सकता। उसके विरुद्ध असहयोग, विरोध की नीति अपनाए बिना और कोई चारा नहीं। इसके लिए सज्जन प्रकृति के लोगों को संगठित भी तो करना होता है। यह सभी बहादुरी के चिह्न हैं। इन्हें भी सुसंस्कारिता का महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है।

सभ्यता के सर्वतोमुखी क्षेत्र को प्रकाशित करने के लिए जहाँ स्काउट स्तर की जागरूकता, पराक्रम, प्रयत्न अपनाए जाने की आवश्यकता है, वहीं सुसंस्कारिता को भी बढ़ाने और अपनाने के लिए, भरपूर प्रयत्न करते रहने की भी अनिवार्य आवश्यकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवनकाल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण, उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युग निर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी, जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्र निर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़, पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद काँग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं-सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति-स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रँगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका- मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोवाजी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण, आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि.संवत् २०८६ में जन्मे, राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराममत्त कहलाने वाले, आचार्यश्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रान्ति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माताजी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका अपनी लेखनी से लिखी, ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उन्होंने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्त्वदर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में सम्पन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरुसत्ता को त्याग करने की, यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उन्होंने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेध के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से सम्पन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक अपनी जन्मभूमि आँवलखेड़ा से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी १२ वर्ष पूर्व आरम्भ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंतःस्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा हवेली कहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा के रूप में** विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जो कि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ में बनाई गई। १९५३ में क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों, प्रज्ञा संस्थानों, भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों का महत्त्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं, ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत् उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्यपूर्ण था।

परमपूज्य गुरुदेव की महत्त्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ इस प्रकार हैं–

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शान्तिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार ।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन, ब्राह्ममुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर, १९११ के दिन आती थी, में जन्मा। एक श्रीमंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित, पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित, बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलालेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थीं। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुँआ जिसे पूरे गाँव का एकमात्र मीठे जल वाला कुँआ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीरधारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशाधारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क-पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इण्टर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धनराशि द्वारा विनिर्मित है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म-निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ एवं कन्या इंटर कॉलेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा जो एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित, संस्कारवान, आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव-निर्माण की सांस्कृतिक व भावनात्मक क्रान्ति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये, जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा में स्थित है। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रान्तिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरम्भ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ व अन्यान्य लेखों की पंक्तियों के माध्यम से सम्पन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतःस्थल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुःखी, तनावग्रसित

व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परमवंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी ट्रेडिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी-सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजाघर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में १९४२-४३ में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ में सहस्र कुण्डी यज्ञ की आधारशिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परमवंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं सम्पन्न हुआ। जनसम्मेलनों, छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट् यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन, विस्तार, डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू. गुरुदेव की साधनास्थली व प्रातःकाल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन सम्पन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा सम्पन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्यश्री ने युग निर्माण योजना के शत-सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युग निर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरम्भ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युग निर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शान्तिकुंज, हरिद्वार ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड ज्योति दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालये में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुनः एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने, सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया। इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने २४ कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़

गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था। पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्तन सत्र, जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े। यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का ताँता लगा रहता है। पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्तऋषियों की मूर्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को सम्पन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत् चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा,- पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार सम्पन्न होते हैं। इस बीच परमवंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ सम्पन्न करना आरम्भ रखा। देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया। इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक एकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं, १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी-बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थस्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया। यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी। स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता-जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवीं स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७१ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था। वर्तमान शांतिकुंज- गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फलश्रुतियों सहित स्थापित हैं। द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच-पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये। इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है। यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों, जैव विद्युत आदि पर पड़ा, यह देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं। तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित है, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं। यहाँ प्राय: ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं। यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीली संदोह रचकर चली गयी। प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान ४०००० से अधिक प्रज्ञामण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जाएँ तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है। ❑❑❑

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६.ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे—

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संबंधी नीति
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org